

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मवैवर्तपुराण

मूल तथा भाषानुवाद

प्रथम भाग

(ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड एवं गणपतिखण्ड)

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

(श्री नाथ खण्डेलवाल)

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२६५
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मवैवर्तपुराण

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

प्रथम भाग
(ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड एवं गणपतिखण्ड)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय वि० सं० २०८०, सन् २०२४
मूल्य : रु० १६२५.००

ISBN : 978-81-218-0408-0 (प्रथम भाग)

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० ११२८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
(गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर)
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : २३३३४५८ (आफिस), २३३४०३२ एवं २३३५०२० (आवास)
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

निवेदन

"पुरा परम्परा वष्टि कामयते" प्राचीनता की, परम्परा की कामना करने वाले शास्त्र को पद्मपुराण ने पुराण कहा है। यास्क कहते हैं "पुरा नवं भवति" जो प्राचीन होकर भी नवीन है, वह पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार "पुरा एतत् अभूत्" प्राचीन काल में ऐसा घटित हुआ, यह कहने वाला पुराण है। वायुपुराण ने स्वयं को पुरातन इतिहास कहा है (वायुपुराण, १०३/४८-५१)। आचार्य शंकर कहते हैं कि सृष्टि प्रक्रिया वर्णन पुराण है तथा विभिन्न वर्णन इतिहास है। जो आख्यायिका सूचक भाग है, वह इतिहास एवं सृष्टि प्रक्रिया सूचक भाग पुराण है। (छान्दोग्योपनिषद् का शांकर भाष्य)। तथापि आचार्य सायण का मत है कि सृष्टि प्रक्रिया सूचक भाग इतिहास है तथा नाना आख्यायिका आदि भाग पुराण है। कुछ आचार्यगण का अभिमत है कि इतिहास का क्षेत्र सीमित न मानें। वह तिथियों तथा लोकव्यवहारात्मक तत्वों को प्रकट करता है। नाना विषय की शिक्षा प्रदान करके मानव में व्याप्त मोहावरण एवं अज्ञान का उच्छेदन करता है—

"इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम्॥

इस सम्बन्ध में अधिक न कह कर इसी संदर्भित श्लोक का अलोकन करने से पुराणों का यथार्थ उद्देश्य विहित हो जाता है। यह पुराण है अथवा इतिहास—इस विवाद में न पड़ कर पुराणों का यथायथ उद्देश्य यही है। हमें पुराणों के संदेश में ही डुबकी लगाना उचित है। नारदीय पुराण में पौराणिक उद्देश्य को और भी प्रकृष्ट रूप से व्यक्त किया गया है—

शृणुवत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम्।
यस्मिन् ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्॥

—नारदीय, १/९२/२१

सम्प्रति यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का भाषानुवाद प्रस्तुत है। यह १८००० श्लोकात्मक तथा चतुःखण्डात्मक है। कृष्ण के द्वारा ब्रह्म के विवर्त्त अर्थात् प्रकटीकरण का वर्णन होने के कारण इसे "ब्रह्मवैवर्त्त" नाम दिया गया। दक्षिण भारत में इसका नाम "ब्रह्मकैवर्त्त" रखा गया है। इस पुराण की जो अनुक्रमणिका नारद पुराणोक्त है, उससे ब्रह्मवैवर्त्त का प्रस्तुत संस्करण पूर्णतः साम्यमय है। यह कृष्णभक्ति प्रधान है। वैष्णवों में यह अत्यन्त मान्य है। सम्प्रति यह आनन्दाश्रम पूना से पहले छपा था। स्मृतिचंद्रिका तथा हेमाद्रि में इस पुराण के जो उद्धरण मिलते हैं, वे प्रचलित ब्रह्मवैवर्त्त पुराण से नहीं मिलते। विद्वानों में इस पुराण की स्थिति के सम्बन्ध में मतभेद है। विद्वान् विल्सन ने अपने ग्रन्थ पुराणिक रिकार्ड्स पृष्ठ १६६-१६७ में तो इसे पुराण ही नहीं माना है। कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी के हस्तलेख सं० ३८२० तथा ३८२१ के अन्तर्गत् "आदि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण" उपलब्ध है। यह चतुःखण्डात्मक नहीं है। समस्त ग्रन्थ एक सूत्रात्मक है। श्लोक संख्या भी कम है। नारदीय पुराणानुसार यह पुराण १८००० श्लोकात्मक ही है, जबकि बंगाल का ब्रह्मवैवर्त्त

पुराण संस्करण २२ हजार श्लोकात्मक है। स्मृति चन्द्रिका, चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि), स्मृतितत्व में ब्रह्मवैवर्त्त की १५०० पंक्तियां सन्दर्भित हैं, तथापि उपलब्ध ब्रह्मवैवर्त्त की मात्र २८-३० पंक्तियां ही उसमें हैं। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि वर्त्तमान ब्रह्मवैवर्त्त अपने प्राचीन मूल रूप में नहीं है। अत: विद्वानगण इसे अप्रमाणित मानने की भूल कर देते हैं। कतिपय विद्वान् लोग इसे बंगाल में रचित मानने लगे हैं। उनका कथन है कि आदि ब्रह्मवैवर्त्त जो कलकत्ता में संरक्षित है, वही प्राचीन है। मत्स्यपुराण में इसे राजस पुराण कहा गया है। इसमें ब्रह्मा की स्तुति अंकित है, तथापि वर्त्तमान ब्रह्मवैवर्त्त में तो ब्रह्मा की निन्दा भी कई स्थान पर अंकित है। इस कारण आधुनिक विद्वानों का कथन है कि पश्चात् काल में यह सब निन्दापरक क्षेपक अंकित करके इसे पूर्णत: वैष्णव पुराण का रूप दिया गया।

इन सब तथ्यों की गवेषणा करना प्रबुद्ध विद्वानों का अधिकार क्षेत्र है। मैं तो इस पुराण में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रभु की भक्ति तथा उनके अप्रतिम ऐश्वर्य का, अगाध करुणा का ही दर्शन पा रहा हूं। उपरोक्त विवादमय शुष्क विषय में अवगाहन करना मेरा प्रयोजन नहीं है। सम्पूर्ण पुराण हरिकथामय है। इसमें कहीं श्रीकृष्ण प्रभु गणेश रूप में, तो कहीं वे ब्रह्मा रूप में, कहीं प्रकृति रूप में विद्यमान हैं। उनसे अभिन्न शंकर रूप की भक्ति का भी इसमें वर्णन मिल जाने से अपूर्व सन्तोष मुझ काशीवासी को हो रहा है। मुझे तो इसका अनुवाद करते समय उस रससागर में निमज्जित होने का सौभाग्य मिला है। अत: यह प्राचीन है अथवा अर्वाचीन, इसमें क्षेपक है अथवा शुद्ध है, इत्यादि व्यर्थ विवाद में पड़ना उचित प्रतीत नहीं हो सका। मुझे तो इसकी प्रत्येक पंक्ति सार्थक, भक्तिभाव पूर्ण तथा रसमय लगी। यह प्रभु कृपा ही है। इसके काल का आकलन पुरातत्ववेत्ता करें। इस अखण्ड कालमयी सत्ता में खण्डकालात्मक बिन्दुओं का आकलन करना समय की व्यर्थता ही लगी। माधुर्यमय कृष्ण-राधा की सात्विक भावमयी लीला का आस्वादन ही सार्थक समझ इन व्यर्थ प्रश्नों को अनुत्तरित ही छोड़ता हूं।

यह ब्रह्मवैवर्त्त भावसाधक के लिए एक नूतन सुर के साथ उदित हुआ है। जिनके कर्णकुहर में यह सुर बजा है, वे तो इससे सतत् मुग्ध रहते हैं। इसमें जो मैंने देखा है, वह अन्यत्र नहीं है। इसका प्रधान गुण है आन्तरिकता। यह सरल-सुन्दर आवेगमयी आन्तरिकता साधक भक्त के हृदयतल का स्पर्श करती है। उसके हृदय पर आच्छन्न अपरिचेय आवरण अपसारित हो जाता है। वे भक्त एकान्त मन से अपने प्राण की व्यथा प्राणेश्वर प्रभु के चरणों में निवेदित करने लगते हैं। प्रतिदिन यमुनातट पर सूर्यमण्डल की ओर देखते अश्रुसिक्त नयनों से ऋषियों ने जो सहज-सरल प्रार्थना संगीत गाया है, यह वही है। भगवान् के निकट भक्त का आत्मनिवेदन भी वही मधुर भाव लहरी है।

इस ग्रन्थ का मार्मिक अंश है गोपियों का तथा राधा का विरह। जीव का प्रथम विरह मनुष्य भाव में जाग्रत होता है। तथापि इस विरह में भी एक अज्ञात क्षण में विलासरूप शैय्या पर

वैराग्य की रागिनी बजने लगती है। तब कितनी ही बार, कितने ही भाव से, कितने ही रूप में विद्युतवल्लरी की तरह विरही को उन अरूप का दर्शन मिलता है।

जीवमात्र वधू है, गोपी है। प्राणप्रिय प्रभु उसके पास अनेक भावमय रूप लेकर आते हैं। मृत्यु, सर्वनाश, काल सब उनका रूप है। घोर विपदा, निराशा, निष्फलता, सब उनके ही आविर्भाव के अंग हैं। तथापि भक्त का कर्त्तव्य है सर्वस्व समर्पण। निर्भीक होकर, अटल विश्वास के साथ परम धैर्य का अवलम्बन लेकर मुक्ति पथ पर चलना होगा। गन्तव्यस्थल का पता नहीं, तब भी चलते रहना है। यही इस पुराण का संदेश मैंने जाना है। सहृदय पाठकगण इसके रचनाकाल, इसकी प्रामाणिकता, इसके क्षेपक, पाठान्तरादि झंझावात से स्वयं को अलग करके इसके आन्तरिक मर्म को जान कर प्रभूत उल्लास एवं भावमय आनन्द का अनुभव करेंगे, यह विश्वास है।

गंगादशहरा, २०१८ ई०

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

❖❖❖

विषयानुक्रमणिका

अध्याय | पृष्ठाङ्क

प्रथम ब्रह्मखण्ड

द्वितीय प्रकृतिखण्ड

❖❖❖

।। श्रीगणेशायनमः।।

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्राऽऽदिमं ब्रह्मखण्डम्

मङ्गलाचरण

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च यं नमन्ति देव्यः प्रणमामि तं विभुम्।।१।।

मैं उन विभु देवदेव को प्रणाम करता हूं! जिनकी चरण वन्दना गणपति, ब्रह्मा, ईश्वर, देवेन्द्र, शेषनाग, समस्त देवता, समस्त मनुगण, सभी मुनीन्द्रगण, सरस्वती, लक्ष्मी, गिरिजादि देवियां भी करती हैं।।१।।

स्थूलास्तनूर्विदधतं त्रिगुणं विराजं विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम्[1]।
सृष्ट्युन्मुखः स्वकलयाऽपि ससर्जसूक्ष्मं नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि।।२।।

ये प्रभु स्थूल देह तक धारण करने वाले, त्रिगुणात्मरूप, विराट्रूप हैं। इनके रोम विवरों में (रोम के छिद्रों में) अनेक-अनगिनत विश्व विराजमान रहते हैं। मैं इन अजन्मा परमेश्वर का हृदय में भजन करता हूं, जो महान्, आद्य, सृष्टिकार्य करने वाले तथा सृष्टिकाल में मात्र अपनी कला से समग्र सृष्टि के रचयिता हैं। ये प्रभु सूक्ष्मरूपेण सभी प्राणीगण के हृदय में रहने वाले अजन्मा हैं। मैं इनका सतत् भजन करता रहता हूं।।२।।

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढाः
सन्तः स्वप्नेऽपि[2] सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा[3]।
ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं
भक्त्त्या ध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम्।।३।।

---

१. क. माद्यः।

२. क. स्वप्नोन्मिषन्तं।

३. क. तप्ताः।

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः। आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥४॥

ध्याननिष्ठ देवता-मनुष्य-मनुगण-योगारूढ़ योगीगण इन प्रभु का सदैव ध्यान करते रहते हैं, तथापि अनेक साधनारत लोग नाना जन्मों में भी कठोर तप करने के उपरान्त भी स्वप्न तक में इनका दर्शन नहीं प्राप्त कर पाते! प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सभी देवता जिन कृष्ण से आविर्भूत होते हैं, उन गुणातीत, परब्रह्म अच्युत श्रीकृष्ण के चरणों की मैं वन्दना करता हुआ उन भगवान् का ध्यान करता हूं, जो भक्तों के ध्येय के रूप में परम मनोहर श्यामरूप धारण करते हैं।।३-४।।

मन्त्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। ([1]ॐ नमः सर्वलोकविघ्नविनायकाय। ॐ नमो ब्रह्मणे। ॐ नमः शिवाय। ॐ नमो गणपतये। ॐ नमो नारदाय। ॐ नमो व्यासाय। ॐ नमः प्रकृत्यै)।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ नमः सर्वलोक विघ्नविनायकाय, ॐ नमो ब्रह्मणे। ॐ नमः शिवाय। ॐ नमो गणपतये। ॐ नमो नारदाय। ॐ नमो व्यासाय। ॐ नमः प्रकृत्यै।

।।मंगलाचरण समाप्त।।

❖❖❖

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मवैवर्तपुराण कथारंभ, पुराण परिचय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वती को तथा व्यासजी को प्रणाम करके पुराण पाठ करना चाहिये।।१।।

अमृतपरमपूर्वं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणकृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह।
अतिरुचिपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतत्पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम्॥२॥

भगवान् व्यास ने भगवती भारती को कामधेनु (गौ) के रूप में कल्पित किया तथा वेदों को गोवत्स बना कर इस अत्यन्त रुचिर ब्रह्मवैवर्त्तपुराणरूप अमृतमय दुग्ध का दोहन किया। हे सज्जनगण! इस दुग्ध का आप लोग यथेच्छ पान करिये। यह पुराणरूप अक्षय दुग्ध है।।२।।

---

१. अयं पाठः ख. पुस्तके नास्ति।

भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।
नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यदृच्छया। प्रणतं सुविनीतं तं विलोक्य ददुरासनम्॥४॥

एक समय भारत स्थित नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषिवृन्द नित्य तथा नैमित्तिक क्रिया सम्पन्न करने के अनन्तर कुशासनासीन थे। तभी ऋषिगण ने वहां सूतनन्दन उग्रश्रवा को अपनी इच्छा से आया देख कर उन सभी ऋषिगण ने उन विनयावनत तथा प्रणत सूतजी को आदर पूर्वक आसन प्रदान किया॥३-४॥

तं संपूजयतिथिं भक्त्या शौनको मुनिपुङ्गवः।
पप्रच्छ कुशलं शान्तं शान्तः पौराणिकं मुदा॥५॥

वहां शौनक आदि ऋषियों ने इन अतिथि की आदर पूर्वक पूजा किया। तदनन्तर मुदित शौनकादि ऋषिगण ने उनसे उनकी कुशलता आदि का भी प्रश्न किया॥५॥

वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्तं सुस्थिरासने। सस्मितं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणानां पुराणवित्॥६॥
परं [1]कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसंमतम्[2]। मङ्गलं मङ्गलार्हं च मङ्गल्यं मङ्गलालयम्॥७॥
सर्वमङ्गलबीजं च सर्वदा मङ्गलप्रदम्। सर्वामङ्गलनिघ्नं[3] च सर्वसंपत्करं परम्॥८॥
हरिभक्तिप्रदं शश्वत्सुखदं मोक्षदं भवेत्। तत्त्वज्ञानप्रदं दारपुत्रपौत्रविवर्धनम्॥९॥
पप्रच्छ [4]सुविनीतं च सुप्रीतो मुनिसंसदि।
यथाऽऽकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते॥१०॥

जब मार्गश्रम से रहित सूतजी सुस्थिर होकर आसनासीन हो गये, तब सर्वतत्वज्ञ, पुराणज्ञ सूतजी से शौनक ऋषि ने, जो तारकों के मध्य स्थित चन्द्रमा के समान उस मुनिसभा में द्योतित हो रहे थे, परम विनयी सूत जी से अत्यन्त प्रसन्न मन से तथा स्मित हास्य के साथ कृष्णकथापूर्ण, श्रवणसुन्दर तथा श्रवणसुखद, सर्व मंगलबीज, सर्वदा मंगलदायक, परम मंगलमय, सर्व सम्पदा प्रदायक, सर्व अमंगलहारी, हरिभक्तिप्रद, शाश्वत सुखदायक, मोक्षबीजरूप, तत्वज्ञान उद्बोधक, स्त्री-पुत्र-पौत्र विवर्द्धक श्रीकृष्ण कथा को पूछा॥६-१०॥

शौनक उवाच

प्रस्थानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम्।
किमस्माकं पुण्यदिनमद्य त्वद्दर्शनेन च॥११॥

---

१. क. ०ष्णवरोपे०।
२. क. ०तिसुन्दरम्।
३. क. ०लविघ्नं।
४. क. सुमहाभागो विनी।

वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः।
मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः॥१२॥

शौनक ऋषि कहते हैं—हे मुनिवर! आप कहां से यहां तक आये हैं? आपको अब कहां जाना है? आप कुशल से तो हैं न? अहा! यह हम लोगों के लिये कितना शुभ दिवस है! क्योंकि आज हम सभी ने आपके समान साधु का दर्शन लाभ कर लिया! प्रतीत होता है कि हम सभी भले ही मोक्षकामी हैं, तथापि हम तत्वज्ञान रहित होकर भवसागर में निमग्न हैं और कलि के प्रभाव से भयभीत हैं। तभी आप यहां आये हैं॥११-१२॥

भवान्साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित्। सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः॥१३॥
श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती।
तत्कथ्यतां महाभाग पुराणं ज्ञानवर्धनम्॥१४॥

आप साधु तथा महाभाग्यशाली हैं। आप समस्त पुराणों के तत्व से अवगत हैं तथा उस तत्व को धारण करने वाले भी हैं। तभी आप पौराणिक नाम से विख्यात हैं। आपकी दया तो असीम है। हे महाभाग! अब यह कृपा करिये, जिससे हमें श्रीकृष्ण के प्रति अचला भक्ति की प्राप्ति हो! इसलिये आप ऐसे ज्ञानदीपक अद्भुत पुराण का वर्णन करें॥१३-१४॥

गरीयसी या साक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसंनिबद्धानां निगडच्छेदकर्तरी॥१५॥
भवदावाग्निदग्धानां पीयूषवृष्टिवर्षिणी।
सुखदाऽऽनन्ददा सौते शश्वच्चेतसि जीविनाम्॥१६॥
यत्राऽऽदौ सर्वबीजं च परब्रह्मनिरूपणम्।
तस्य सृष्ट्युन्मुखस्यापि सृष्टेरुत्कीर्तनं परम्॥१७॥

कृष्णभक्ति जो मुक्ति से भी श्रेष्ठ है। यह समस्त कर्मबन्धन को काटने वाली कैंची के समान है। कृष्ण की भक्ति के प्रभाव से ही मानवगण संसाररूपी मायापाश को छिन्न करते हैं। जब जीव निरन्तर संसाररूपी दावानल में दग्ध होता रहता है, उसके लिये तो कृष्णभक्ति सुधावर्षा के समान है। कृष्णभक्ति के अभाव में प्राणियों के चित्त में किसी भी प्रकार से सुख अथवा आनन्द का संचार नहीं हो सकता। हे सूतनन्दन! उस पुराण को कहिये, जिसमें सर्वप्रथम सबके बीजरूप परब्रह्म का निरूपण तथा उनके सृष्टिकार्य आदि का वर्णन हो॥१५-१७॥

साकारं वा निराकारं परमात्मस्वरूपकम्।
किमाकारं च तद्ब्रह्म तद्ध्यानं किं च भावनम्॥१८॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः किं वा शान्ताश्च योगिनस्तथा।
मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम्॥१९॥

प्रकृतेश्च[1] य आकारो यत्र वत्स निरूपितः। गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निश्चयः॥२०॥

आप उस पुराण को कहिये, जिसमें यह वर्णन हो कि वे परमात्म स्वरूप ब्रह्म साकार अथवा निराकार हैं, उनका ध्यान तथा भावना किस प्रकार की है? वैष्णव तथा साधुयोगी लोग किस प्रकार से उनकी उपासना करते हैं। वेद ने किनको अथवा किसके मत को उत्कृष्ट कहा है? यह समस्त विषय तथा प्रकृति का आकार, गुणों का लक्षण, महदादि का निर्णय, स्वरूप जिस पुराण में वर्णित हो, वह कहिये।।१८-२०।।

गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम्। वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत्स्वर्गवर्णनम्॥२१॥

अंशानां च कलानां च यत्र सौते निरूपणम्।
के प्राकृताः का प्रकृतिः क आत्मा प्रकृतेः परः॥२२॥
निगूढं जन्म येषां वा देवानां देवयोषिताम्।
समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरितामपि॥२३॥
के वांऽशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः।
तासां च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम्॥२४॥

हे सूत! जिस पुराण में गोलोक, शिवलोक, वैकुण्ठ तथा अन्य स्वर्गादि का वर्णन हो, जिसमें अंशकला निरूपण, प्रकृति तथा प्राकृत भेद, प्रकृति से भिन्न आत्मा का वर्णन हो, जिस पुराण में निगूढ़जन्मा देवताओं एवं उनकी पत्नियों का, समुद्र, पर्वत, नदियों की उत्पत्ति अंकित हो, यह वर्णित हो कि कौन प्रकृति के अंश हैं, कौन कलांश हैं, कौन कलाओं की भी कलायें हैं, उनके चरित, ध्यान, पूजा, शुभ स्तोत्रादि जिसमें वर्णित हों।।२१-२४।।

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणां च वर्णनम्।
यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं[2] सुधोपमम्॥२५॥
जीवकर्मविपाकश्च नरकाणां च वर्णनम्।
कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम्॥२६॥
येषां च जीविनां यद्यत्स्थानं यत्र शुभाशुभम्।
जीविनां कर्मणो यस्माद्यासु यासु च योनिषु॥२७॥
जीवानां कर्मणो यस्माद्यो यो रोगो भवेदिह।
मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषां च तन्निरूपय॥२८॥

जिस पुराण में दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री का वर्णन कहा गया हो, जहां अमृत के समान

१. क. श्च ०किमाका०।
२. ''सत्य पूर्वसुधोपमिति'' बहुपुस्तक सम्मतः पाठः पूर्व सुधोपमितास्य नवीनामृत तुल्यमित्यर्थः।

राधिका का अपूर्व आख्यान वर्णित हो, जिस पुराण में जीवों का कर्मविपाक, नरक वर्णन, कर्म-खण्डन, इन सबसे मुक्ति का उपाय कहा गया हो, जिन-जिन कर्मों के कारण जीवगण जिस-जिस शुभाशुभ स्थान को प्राप्त करते हैं, जो-जो योनि तथा रोग प्राप्त करते हैं, वह सब जिस पुराण में निरूपित हो तथा इनसे छुटकारा पाने का उपाय जहां कहा गया हो, मोक्षोपाय वर्णित हो, वह पुराण कहिये।।२५-२८।।

मनसा तुलसी काली गङ्गा पृथ्वी वसुंधरा।
आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै।।२९।।
शालग्रामशिलानां च दानानां च निरूपणम्।
अपूर्वं यत्र वा सौते धर्माधर्मनिरूपणम्।।३०।।

गणेश्वरस्य[1] चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च। कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम्।।३१।।
यदपूर्वमुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम्। कृत्वा मनसि तत्सर्वं सांप्रतं वक्तुमर्हसि।।३२।।

हे सूतपुत्र! जिस पुराण में मनसा, तुलसी, काली, गंगा, वसुन्धरा, पृथिवी और अन्य देवीगण का चरित वर्णन हो, जिस पुराण में शालग्राम शिला, दान तथा धर्म-अधर्म का अपूर्व निरूपण हो, जिस पुराण में गणेश-चरित, उनका जन्म, कर्म, गूढ़ कवच, स्तोत्र तथा मन्त्र का वर्णन हो, साथ ही अन्य परम अद्भुत उपाख्यान वर्णित हों, जिनको हमने कभी नहीं सुना है, वे सब जिस पुराण में हैं, स्मरण करके हमसे वह सब कहिये।।२९-३२।।

यत्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते। परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः।।३३।।
जन्म कस्य गृहे लब्धं पुण्ये पुण्यवतो मुने।
सुतं प्रसूता का धन्या मान्या पुण्यवती सती।।३४।।

आविर्भूत च तद्गेहात्क्व गतः केन हेतुना। गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः।।३५।।

जिस पुराण में परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्ण का इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में जन्मप्रसंग वर्णित हो, उस पुराण का वर्णन हमसे कहिये। हे मुनिवर! उन्होंने किस पुण्यवान् के गृह में जन्म लिया था? किस पुण्यवती सती नारी ने उन्हें जन्म दिया था? वह कौन नारी थी, जो कृष्ण को जन्म देकर संसार में धन्या तथा माता कही गयी? कृष्ण उस माता के गृह में आविर्भूत होकर किस कारण से किस स्थान पर चले गये? जाकर क्या किया, वहां से कैसे वापस आये?।।३३-३५।।

भारावतरणं केन प्रार्थितो गोश्चकार सः।
विधाय किंवा सेतुं च गोलोकं गतवान्पुनः।।३६।।

इतीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम्। दुर्विज्ञेयं मुनीनां च मनोनिर्मलकारणम्।।३७।।

---

१. क. स्य देवस्य उत्पत्तिर्जा।

स्वज्ञानाद्यन्मया पृष्टामपृष्टं वा शुभाशुभम्। सद्यो वैराग्यजननं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥३८॥

शिष्यपृष्टमपृष्टं वा व्याख्यानं कुरुते च यः।
स सद्गुरुः सतां श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च यः समः॥३९॥

उन्होंने किसकी प्रार्थना के कारण भूभार हरणार्थ तथा लोकमर्यादा स्थापनार्थ आगमन किया तथा किस कारण से गोलोक वापस चले गये? हे सूतपुत्र! ये सब प्रसंग तथा अन्य चित्तशुद्धिकारक, मुनिगण के लिये दुर्ज्ञेय, श्रुतिदुर्लभ आख्यान जो इस पुराण में कहे गये हों तथा अपनी बुद्धि के अनुसार जो सभी शुभाशुभ प्रश्न किये हैं, जो मन को निर्मल करें, उन सभी जिज्ञासित तथा अजिज्ञासित (जिसे न पूछा गया हो), विषयों को कहिये तथा जो कुछ उत्तम उपाख्यान समन्वित तथा सुनने मात्र से वैराग्य उत्पन्न करने वाला अद्भुत पुराण हो, वह कहिये। जो सद्गुरु हैं, वे शिष्य को समस्त जिज्ञासित तथा अजिज्ञासित विषयों का उपदेश देते हैं। जो योग्य तथा अयोग्य, दोनों के प्रति कृपावर्षा करते हैं, वे ही श्रेष्ठ उत्तम महात्मा हैं।।३६-३९।।

सौतिरुवाच

सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात्।
सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम्॥४०॥

दृष्ट्वा विप्रसमूहं च नमस्कर्तुमिहागतः। द्रष्टुं च नैमिषारण्यं पुण्यदं चापि भारते॥४१॥

देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद्यस्तु संभ्रमात्। स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥४२॥

सूतपुत्र कहते हैं–हे शौनक! आपके चरणकमलों का दर्शन करके सब कुछ कुशल हो गया। मैं सिद्धाश्रम से आया हूं। यहां से नारायणाश्रम गमन करूंगा। मैं पुण्यप्रद भारत में नैमिषारण्य का दर्शन करने यहां आया। यहां विप्रसमूह को देख कर उनके दर्शनार्थ एवं प्रणामार्थ मैं यहां आ गया। जो व्यक्ति अज्ञान के वश में होकर देवता, ब्राह्मण तथा गुरु को देख कर उनको प्रणाम नहीं करता, जब तक सूर्य-चन्द्रमा सृष्टि में स्थित हैं, तब तक वह कालसूत्र नरक से छुटकारा नहीं पा सकता!।।४०-४२।।

हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद्भ्रमति [1]भूतले। सुकृती[2] प्रणमेत्पुण्याद्ब्राह्मणं हरिरूपिणम्॥४३॥

भगवन्यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम्। सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्॥४४॥

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविवर्धनम्॥४५॥

श्रीहरि ब्राह्मणरूपी होकर भारत क्षेत्र में सदा विचरण करते रहते हैं। इसलिये पुण्यवान् व्यक्ति पुण्यबल से ब्राह्मण रूपधारी हरि को प्रणाम करते हैं। हे भगवान्! आपने जिन विषयों के लिये प्रश्न पूछा है, मैं उन समस्त वांछित विषयों को जानता हूं। सब पुराणों में से सारभूत जो ब्रह्मवैवर्त नामक

---

१. क. भारते।
२. क. ०कृतिस्तं नमे०

पुराण है, उसमें यह सब विषय वर्णित है। यह पुराण अन्य सभी पुराणों, उपपुराण तथा वेद सम्बन्धित भ्रम का निवारण कर देता है। यह हरिभक्तिकारिणी भी है। यह सभी प्रकार के तत्वज्ञान का विवर्द्धन करने वाली है।।४३-४५।।

कामिनां कामदं चेदं मुमुक्षूणां च मोक्षदम्।
भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्।।४६।।
ब्रह्मखण्डे[१] सर्वबीजं परब्रह्मनिरूपणम्।
ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम्।।४७।।
वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक।
स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात्।।४८।।
सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद्योगिसङ्गेन योगिनः[२]।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात्सद्योगिनः पराः।।४९।।

यह पुराण कामना चाहने वालों के लिये कामनाप्रद है। यह मोक्षकामी के लिये मोक्ष देने वाली है। यह वैष्णवों के लिये भक्तिप्रदायिनी है। फलस्वरूप यह कल्पवृक्षस्वरूपा है। जिन परात्पर प्रभु का ध्यान योगी-साधु तथा वैष्णव करते हैं, इस ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के आदि **ब्रह्मखण्ड** में वे सर्वबीज परब्रह्म ही निरूपित हैं। हे शौनक! वैष्णवों, साधुओं (सन्त) तथा योगियों में कोई भी भेद नहीं है। ये अपने ज्ञान के परिपाक द्वारा क्रमशः उत्कृष्ट उपाधि प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य अपने ज्ञानलाभ द्वारा क्रमशः सन्त आदि उपाधि लाभ करते हैं। मनुष्य सत्संगति के प्रभाव से सन्त कहलाते हैं। योगी लोगों का साथ करने वाला योगी कहलाता है। क्रमशः व्यक्ति भक्तों का संग करने से संत तथा योगी से भी श्रेष्ठ "वैष्णव" उपाधि लाभ करता है।।४६-४९।।

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्।
ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्।।५०।।
जीवकर्मविपाकश्च शालिग्रामनिरूपणम्। तासां च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्।।५१।।
प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्। कीर्तेरुत्कीर्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः।।५२।।

इसके अनन्तर **प्रकृति खण्ड** में समस्त देवदेवी तथा सभी देवगण की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। प्राणियों का कर्मविपाक, शालिग्राम निरूपण भी प्रकृतिखण्ड में अंकित है। देव-देवीगण का चरित, सभी प्राणीगण की उत्पत्ति भी प्रकृतिखण्ड में वर्णित है। देवीगण के कवच, स्तोत्र, मन्त्र तथा पूजाविधि का भी निरूपण प्रकृतिखण्ड में किया गया है। प्रकृति लक्षण, कलांशों का निरूपण, देवीगण की कीर्त्ति तथा प्रभाव भी इसमें वर्णित है।।५०-५२।।

१. ख. खण्डं स।
२. यत्सङ्गाद् योगेयोगेशयोगिनः। इति पाठान्तरम्।

सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद्यत्स्थानं शुभाशुभम्।
वर्णनं नरकाणां च रोगाणां मोक्षणं ततः॥५३॥
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्तितम्। अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्॥५४॥
गणेशभृगुसंवादे सर्वतत्त्वनिरूपणम्। निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम्॥५५॥

सुकृति-दुष्कृति अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्म द्वारा जिन स्थानों में जाते हैं, यहां उसका भी निर्णय किया गया है। इसी खण्ड में नरक तथा व्याधिसमूह का वर्णन तथा उनसे छुटकारे के उपाय का भी वर्णन है। तदनन्तर **गणेशखण्ड** में गणेश जन्म तथा वेदों-शास्त्रों में भी दुर्लभतर गणेश चरित, गणेश तथा भृगु के बीच का संवाद, गणेश के गूढ़ कवच, स्तोत्र एवं मन्त्र-तन्त्र भी वर्णित हैं।।५३-५५।।

श्रीकृष्णजन्मखण्डं च कीर्तितं च ततः परम्।
भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च॥५६॥
भुवो भारावतरणं क्रीडाकौतुकमङ्गलम्। सतां सेतुविधानं च जन्मखण्डे निरूपितम्॥५७॥
इदं ते कथितं विप्र पुराणप्रवरं परम्। चतुःखण्डैः परिमितं सर्वधर्मनिरूपणम्॥५८॥

तदनन्तर **श्रीकृष्ण जन्मखण्ड** है। इसका वर्णन गणेशखण्ड के पश्चात् किया गया है। इस खण्ड में पुण्यक्षेत्र भारत के अन्तर्गत् श्रीकृष्ण के जन्म तथा कार्यकलाप का वर्णन है। इस जन्मखण्ड में कृष्ण द्वारा भूभार हरण, मंगलमय कृष्ण का क्रीड़ा-कौतुक तथा उनके द्वारा साधुगण हेतु मर्यादा स्थापन कार्य का वर्णन किया गया है। हे ब्राह्मणों! मैंने इस प्रकार से चार खण्डों में विभक्त, सर्वधर्म निरूपक उत्कृष्ट पुराण के विषय में आपसे कहा है।।५६-५८।।

सर्वेषामीप्सितं[1] श्रीदं सर्वाशापूर्णकारकम्[2]। ब्रह्मवैवर्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥५९॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसंमतम्[3]। विवृतं ब्रह्म कात्स्न्र्यं च कृष्णेन यत्र शौनक॥६०॥
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः॥६१॥

यह पुराण सभी लोगों द्वारा प्रार्थनीय (वांछित), सर्वाशापूरक, अभीष्ट फलप्रद है। हे शौनक! यह पुराण वेदसम्मत होने के कारण सभी पुराणों की तुलना में श्रेष्ठ है। इसमें पूर्णतया अपना ब्रह्मभाव श्रीकृष्ण ने विवृत (निरूपित) किया है। तभी पुरातन पण्डितों ने इसका नाम ब्रह्मवैवर्त्त रख दिया।।५९-६१।।

इदं पुराणसूत्रं च पुरा दत्तं च ब्रह्मेण। निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना॥६२॥
महातीर्थे पुष्करे च दत्त धर्माय ब्रह्मणा। धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च॥६३॥

१. क. ०प्सिततमं स०।
२. ख. ०रणम्।
३. ख. संमितम्।

[१]नारायणर्षिर्भगवान्प्रददौ नारदाय च। नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे॥६४॥

यह पुराणसूत्र पूर्वकाल में निरामय गोलोक धाम में परमात्मा श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को प्रदान किया था। तदनन्तर ब्रह्मा ने इसे पुष्कर नामक महातीर्थ में धर्मदेव को प्रदान किया। तत्पश्चात् धर्मदेव ने प्रेम के साथ इसे नारदमुनि को प्रदान किया था। इसके अनन्तर देवर्षि नारद ने यह पुराण गंगातट पर व्यासदेव को अर्पित कर दिया।।६२-६४।।

व्यासः पुराणसूत्रं तत्संव्यस्य विपुलं महत्। मह्यं ददौ [२]सिद्धक्षेत्रे पुण्यदेशे मनोहरम्॥६५॥
मयेदं कथितं ब्रह्मँस्तत्समग्रं निशामय। अष्टादशसहस्त्रं तु व्यासेनेदं पुराणकम्॥६६॥
पुराणकात्स्न्र्यश्रवणे यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणेन च॥६७॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डेऽनुक्रमणिकानाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

व्यासदेव ने इसके पश्चात् इस मनोहर विपुल पुराणसूत्र को संक्षेप में ग्रथित किया और पुण्यप्रद सिद्धक्षेत्र में मुझे (सूतजी को) प्रदान किया था। हे ब्रह्मन्! मैंने आप लोगों से इस पुराण परम्परा का इतिहास निवेदित कर दिया। अब आप लोग इसे सुनिये। व्यासदेव द्वारा यह पुराण १८००० श्लोकों में निबद्ध है। समस्त पुराण आद्योपान्त श्रवण करके मानव जो फललाभ करते हैं, वह फल इस पुराण का मात्र एक ही अध्याय का श्रवण करने से प्राप्त हो जाता है।।६५-६७।।

प्रथम अध्याय समाप्त

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विभिन्न लोकों की स्थिति तथा परब्रह्मनिरूपण के अन्तर्गत् कृष्ण स्वरूप वर्णन

शौनक उवाच

किमपूर्वं श्रुतं सौते परमाद्भुतदर्शनम्[३]। सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्॥१॥

१. इदं श्लोकार्धं ख. पुस्तके नास्ति।
२. क. सिद्धिक्षेत्रे।
३. क. ०तमीप्सितम्।

शौनक मुनि कहते हैं–हे सूतपुत्र! आज आपके मुख से हमने अत्यन्त अनिर्वचनीय प्रार्थित विषय का श्रवण किया। अब आप कृपया इस उत्कृष्ट समग्र ब्रह्माण्ड का वर्णन करिये।।१।।

सौतिरुवाच

वन्दे गुरोः पादपद्मं व्यासस्यामिततेजसः। हरिं देवान्द्विजान्नत्वा धर्मान्वक्ष्ये सनातनान्॥२॥
यच्छतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्। अज्ञानान्धतमोध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम्॥३॥

सौति (सूतपुत्र उग्रश्रवा) कहते हैं–मैं अब अमित तेजस्वी गुरु व्यासदेव की वन्दना करता हूं तथा हरि, देवगण तथा ब्राह्मणों को प्रणाम करके सनातन धर्म का वर्णन करने हेतु प्रवृत्त हो रहा हूं। मैंने व्यासदेव से जिस उत्तम ब्रह्माण्ड का वर्णन सुना था, वह प्रसंग अज्ञानान्धकार का विनाशक तथा ज्ञानमार्ग का प्रदीपरूप है।।२-३।।

ज्योतिः समूहं प्रलये पुराऽऽसीत्केवलं द्विज।
सूर्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यं विश्वकारणम्॥४॥
स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत्।
ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम्॥५॥

तेषामुपरि गोलोकं [१]नित्यमीश्वरवद्द्विज। त्रिकोटियोजनायामं विस्तीर्णं मण्डलाकृति॥६॥
तेजः स्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम्। अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यं च वैष्णवैः॥७॥

हे द्विजप्रवर! पूर्व के प्रलयकाल में कोटिसूर्य तुल्य प्रभाशाली, अनन्त असंख्य विश्व का कारण अविनाशी ज्योतिपुंज ही विद्यमान था। स्वेच्छामय परमेश्वर की इस ज्योति में मनोहर लोकत्रय विलीन था। हे द्विजप्रवर! इन लोकत्रय के ऊर्ध्वभाग में ईश्वर के समान अविनश्वर, तीन कोटि योजनात्मक विस्तार वाला मण्डलाकृति गोलोक धाम स्थित है। यह सुमहान् रत्नभूमिमय गोलोक देखने में तेजरूप है। योगी लोग भी इसका दर्शन स्वप्न तक में नहीं पा सकते। यह केवल वैष्णवों को ही दिखलाई दे पाता है तथा वे लोग ही यहां जा सकते हैं।।४-७।।

योगेन धृतमीशेन चान्तरिक्षस्थितं वरम्। आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम्॥८॥

यह गोलोक धाम आधि-व्याधि, जरा-मृत्यु, शोक-भय से सर्वथा रहित है। यह आकाशस्थ महान् लोक परमात्मा द्वारा योगशक्ति से धारण किया गया है।।८।।

सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम्। लये कृष्णयुतं सृष्टौ गोपगोपीभिरावृतम्॥९॥

इस गोलोक धाम में असंख्य उत्कृष्ट रत्ननिर्मित भवन विराजमान हैं। प्रलयकाल में यहां मात्र श्रीकृष्ण ही रहते हैं। सृष्टिकाल में यहां असंख्य गोप-गोपिकायें इस लोक को आवृत किये रहती हैं।।९।।

---

१. क. ०त्यममरव०।

तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात्।
वैकुण्ठं शिवलोकं तु तत्समं सुमनोहरम्॥१०॥
कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति।
लये शून्यं च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम्॥११॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्व्यादिवर्जितम्।
सव्ये च शिवलोकं च कोटियोजनविस्तृतम्॥१२॥

इस गोलोक के अधोभाग में ५० करोड़ योजन दक्षिण में उसके ही समान मनोहर वैकुण्ठ लोक स्थित है। इसी के (गोलोक के) वामभाग में शिवलोक की स्थिति है। ये दोनों लोक गोलोक जैसे ही मनोहारी हैं। वैकुण्ठ एक कोटि योजन विस्तृत तथा मण्डलाकृति है। यह लोक प्रलयकाल में शून्य हो जाता है तथा सृष्टिकाल में लक्ष्मी-नारायण युक्त रहता है। सृष्टिकाल में लक्ष्मी-नारायण के अतिरिक्त वहां उनके चतुर्भुज पार्षद भी निवास करते हैं। यह लोक जरा-मृत्यु रहित है। इसके बायीं ओर एक कोटि योजन विस्तृत शिवलोक है॥१०-१२॥

लये शून्यं च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम्।
गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम्॥१३॥
परमाह्लादकं शश्वत्परमानन्दकारकम्। ध्यायन्ते योगिनः शश्वद्योगेन ज्ञानचक्षुषा॥१४॥

यह शिवलोक प्रलयकाल में शून्य हो जाता है। सृष्टिकाल में यहां पार्षदों सहित शिव रहते हैं। गोलोक के मध्य में परम आनन्ददायक तथा परमानन्द रूप मनोहर ज्योति विराजित रहती है। योगीगण योग का अवलम्बन लेकर ज्ञानचक्षु द्वारा इसी ज्योति का ध्यान करते हैं॥१३-१४॥

तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम्। तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम्॥१५॥
नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम्। शारदीयपार्वणेन्दुशोभितं चामलाननम्॥१६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम्॥१७॥

इस आनन्दप्रद निराकार परात्पर ज्योति के अन्तराल में एक अत्यन्त मनोहर रूप स्थित है। यह रूप नव जलधर के समान श्याम वर्ण है। उसके दोनों नेत्र लाल कमल के समान शोभायमान हैं। उनका मुखकमल शरद की पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र के समान शोभा वाला है। किम्बहुना, वह मनोहर रूप कोटि कन्दर्प (कामदेव) के समान है तथा रम्य लीलाओं का आधार रूप है। यह रूप द्विभुज, मुरलीधारी, पीतवस्त्र से शोभायमान तथा मन्द मुस्कान से युक्त है॥१५-१७॥

[1]सद्रत्नभूषणौघेन भूषितं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्॥१८॥
श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम्। सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥१९॥

१. क. ०द्रत्नैर्भूषणैः प्रेमभू०।

रत्नसिंहासनस्थं च वनमालाविभूषितम्। तदेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्॥२०॥

यह मनोहर रूप भक्तवत्सल तथा उत्तम रत्नाभूषणों से भूषित है। इस रूप के सभी अंग चन्दन-कस्तूरी तथा कुंकुम के लेप से लिप्त हैं। इसका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नांकित है। वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि भी शोभायमान है। इस मनोहर रूप वाले ने उत्तम रत्नों से जड़े किरीट तथा मुकुट को धारण किया है। यही रूप है सनातन भगवान् परब्रह्म का जो वनमाला भूषित होकर रत्न सिंहासन पर आसीन हैं।।१८-२०।।

स्वेच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम्। किशोरवयसं शश्वद्गोपवेषविधायकम्॥२१॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकारकम्। निरीहं निर्विकारं च परिपूर्णतमं विभुम्॥२२॥
रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं[1] वरम्। माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्॥२३॥

ये प्रभु स्वेच्छामय (अपनी इच्छा से सब करने वाले), सब के बीजरूप, सबके आधार परात्पर ब्रह्म हैं। ये किशोर आयु वाले गोपवेशधारी हैं। सदा भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु तत्पर परिपूर्णतम परमेश्वर करोड़ों पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित हो रहे हैं। ये निरीह तथा निर्विकार हैं। इनसे ही समस्त मंगल की प्राप्ति होती है। इन रासेश्वर की यह मूर्त्ति शान्त है तथा यह रासमण्डल में स्थित है। यह मूर्त्ति मंगलयोग्य मंगलमय है। यह मंगलार्ह तथा मंगलस्वरूप है। सभी लोकों को इनसे ही मंगललाभ होता है।।२१-२३।।

परमानन्दबीजं[2] च सत्यमक्षरमव्ययम्। सर्वसिद्धेश्वरं[3] सर्वसिद्धिरूपं सिद्धिदम्॥२४॥
प्रकृतेः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम्। आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥२५॥

ये ही परमानन्द के कारण तथा सिद्धिप्रदाता हैं। ये सिद्धीश्वर सत्य, अक्षय, अव्यय तथा सर्वसिद्धिरूप भी हैं। ये निर्गुण, नित्यविग्रह, आदिपुरुष, परमेश्वर, अव्यक्त, प्रकृति से परे तथा पुरुहूत एवं पुरुष्टुत भी हैं।।२४-२५।।

सत्यं स्वतन्त्रमेकं च परमात्मस्वरूपकम्।
ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत्परमायणम्॥२६॥

एवं[4] रूपं परं विभ्रद्भगवानेक एव सः। दिग्भिश्च नभसा सार्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह॥२७॥

।।इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे परब्रह्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः।२।।

---

१. क. ०हरं हरिम्०।
२. क. ०न्दराजं।
३. क. ०रं सिद्धिसि०।
४. क. एकं रू०।

ये सत्य, स्वतन्त्र, एक, परमात्मस्वरूप हैं। शान्त चित्त वैष्णवगण इनके ध्यान में तल्लीन रहा करते हैं। वे शान्त वैष्णवगण इन शान्तिमूर्त्ति की ही आराधना करते हैं। ऐसे रूप वाले, अद्वितीय प्रभु ने उस प्रलयकाल में समस्त दिशाओं को, गगनमण्डल को तथा समस्त विश्व को सृष्टि के पूर्व शून्यमय देखा।।२६-२७।।

द्वितीय अध्याय समाप्त

❖❖❖

अथ तृतीयोऽध्यायः

सृष्टि निरूपण, कृष्ण के शरीर से नारायण आदि का आविर्भाव, इन सबके द्वारा कृत श्रीकृष्ण की स्तुति का वर्णन

सौतिरुवाच

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकं च भयङ्करम्।
निर्जन्तुनिर्जलं घोरं निर्वातं तमसाऽऽवृतम्।।१।।
वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विकृताकृतिम्।
निर्मृत्तिकं[१] च निर्धातुं निःसस्यं निस्तृणं द्विज।।२।।
आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान्।
स्वेच्छया स्रष्टुरमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः।।३।।

सौति कहते हैं–हे द्विजवर! तब स्वेच्छामय परमेश्वर ने समग्र विश्व तथा गोलोक को प्राणीगण से रहित, निर्जन, वायु रहित, वृक्ष-शैल-समुद्रादि विहीन, शस्य-तृणादि से विवर्जित, मात्र अन्धकार से आच्छन्न भयंकर शून्यमय देख कर मन में विचार किया। उन्होंने देखा कि सर्वत्र मृत्तिका-धातु-शस्य तृण तो है ही नहीं। तब उन्होंने विचार करने के उपरान्त उस सहायक रहित अवस्था में अकेले अपनी इच्छा से सृष्टि की रचना प्रारम्भ कर दिया।।१-३।।

आविर्बभूवुः सर्गादौ[२] पुंसो दक्षिणपार्श्वतः। भवकारणरूपाश्च मूर्तिमन्तस्त्रयो गुणाः।।४।।

---

१. ख. निर्मुक्तिकं।
२. क. सर्वादौ।

तत्क्षण उनके दक्षिण पार्श्व से उस सृष्टि के आदिकाल में सृष्टि कारण मूर्त्तिमान तीन गुण मूर्त्तिमान होकर सर्वाग्र आविर्भूत हो गये।।४।।

ततो महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव च। रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेति संज्ञकाः।।५।।
आविर्बभूव तत्पाश्चात्स्वयं नारायणः प्रभुः।
श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः।।६।।
शङ्खचक्रगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः। रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः।।७।।

तदनन्तर उन गुणत्रय से महान् (महत्तत्व), महान् से अहंकार, उससे रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द नामक तन्मात्राओं की उत्पत्ति हो गयी। इसके पश्चात् उनके उसी पार्श्व से श्याम कलेवर, युवा, पीत वस्त्रधारी, वनमाला पहने चतुर्भुज प्रभु साक्षात् नारायण का आविर्भाव हो गया। उनका मुखकमल तनिक हास्ययुक्त था। उन्होंने चारों बाहु में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किया था। उन्होंने रत्नजड़ित आभूषण धारण किया था। वे कैस्तुभमणि से विभूषित थे तथा उन्होंने जिस धनुष को धारण किया था, वह सींग का बना शार्ङ्गधनुष था।।५-७।।

श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। शारदेन्दुप्रभामृष्टमुखेन्दुसुमनोहरः।।८।।
कामदेवप्रभामृष्टरूपलावण्यसुन्दरः। श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः।।९।।

उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नांकित था। वे प्रभु श्रीनिवास, श्रीनिधि, श्री द्वारा चिन्तनीय थे। उनका मुखचन्द्र शरत्कालीन पूर्ण चन्द्र की प्रभा से द्योतित होने के कारण परम मनोहर तथा कामदेव की प्रभा से कान्तिमान् था। वे अत्यन्त सुन्दर तथा रूप-लावण्यमय थे। ऐसे नारायण उन परमेश्वर श्रीकृष्ण के समक्ष करबद्ध होकर उनकी स्तुति करने लगे।।८-९।।

नारायण उवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्। कारणं कारणानां च कर्म तत्कर्मकारणम्।।१०।।
तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्वीशं च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम्।।११।।

श्री नारायण कहते हैं-हे प्रभो! आप वरप्रद, वर योग्य तथा सभी वरों के कारण रूप हैं। आप ही सब कुछ के कारण तथा कर्म के स्वरूप, कारण समूह के भी कारण, कर्म के कारण हैं। आप ही तपस्यास्वरूप, तपस्वी लोगों में से तपस्वी हैं। आप ही तपस्वीगण को उनके तप का फल प्रदान करते हैं। मैं आपकी वन्दना करता हूं, जो नवघनश्याम, मनोहर तथा सर्वसुन्दर प्रभु हैं। आप स्वात्माराम भी हैं।।१०-११।।

निष्कामं कामरूपं[१] च कामघ्नं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम्।।१२।।
वेदरूपं वेदबीजं[२] वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानं च सर्ववेदविदां वरम्।।१३।।

१. क. ०मपूरं च।
२. ख. ०दभवं वे०।

आप निष्काम होकर भी सर्वकामनारूप हैं, तथापि आप ही कामनाओं के नाशक तथा कामस्वरूप भी हैं। आप ही समस्त पदार्थ रूप तथा सबके ईश्वर भी हैं। आपसे बढ़ कर कोई है ही नहीं। आप सर्वबीजरूप हैं। आप सबके कारण होकर स्थित हैं। आप ही वेद हैं तथा वेद के फल भी हैं। आप ही वेदों के कारण हैं। सभी लोग आपसे ही वेदोक्त फल की प्राप्ति कर पाते हैं। आप वेदज्ञ, वेदोक्त विधान के ज्ञाता, समस्त वेदज्ञों के शिरोमणि हैं। मैं आपको प्रणाम अर्पित करता हूं।।१२-१३।।

इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः।।१४।।

इस प्रकार से नारायण ने भक्तिभाव के साथ भगवान् का स्तव किया और परमात्मा के आदेश से वे उनके समक्ष स्थित रमणीय रत्न सिंहासन पर बैठ गये।।१४।।

नारायणकृतं स्तोत्रं यः पठेत्सुसमाहितः। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्यते।।१५।।

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनो लभेत्।।१६।।
कारागारे विपद्ग्रस्तः स्तोत्रेणानेन मुच्यते।
रोगात्प्रमुच्यते रोगी[1] वर्ष श्रुत्वा च संयतः।।१७।।

।।इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।।

जो मनुष्य नारायण कृत इस स्तोत्र का पाठ समाहित होकर तीनों सन्ध्याकाल में करता है अथवा भक्तिभाव से श्रवण करता है, उसमें पातकों का लेश भी नहीं रहता। इसके फलस्वरूप पुत्रार्थी पुत्र, पत्नीकामी सुन्दरी पत्नी, राज्यच्युत राजा राज्य तथा धनहीन धनभ्रष्ट व्यक्ति धनलाभ कर लेता है। जो व्यक्ति कारागार में बन्दी होकर विपत्तिग्रस्त हो गया है, वह इस स्तोत्र पाठ से बन्धनमुक्त होगा, यह निश्चित है। जो रोगी व्यक्ति एक वर्ष पर्यन्त संयतात्मा होकर इसका श्रवण (अथवा पाठ) करेगा, वह रोगमुक्त हो जायेगा।।१५-१७।।

।।नारायण कृत कृष्णस्तव समाप्त।।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वत। शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः।।१८।।
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वरः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः।।१९।।
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः। सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।।२०।।
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युञ्जयः शिवः। ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः।।२१।।
पूर्णचन्द्रप्रभामृष्टसुखदृश्यो मनोहरः। वैष्णवानां च प्रवरः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।।२२।।

सौति कहते हैं—तदनन्तर परमात्मा कृष्ण के वाम पार्श्व से शुद्ध स्फटिक के समान शुक्लवर्ण,

१. ख. ०गी ध्रुवं श्रु०।

पंचमुख, दिगम्बर महादेव महेश्वर आविर्भूत हो गये। उनकी कान्ति तप्त स्वर्ण के समान उज्ज्वल थी। मस्तक पर जटाजूट शोभायमान था। उनके प्रसन्नता भरे मुखकमल पर मन्द मुस्कान छिटक रही थी। उनके प्रत्येक मस्तक पर तीन नेत्र थे। ललाट पर चन्द्ररेखा विराजित थी। ये योगीगण के गुरुओं के भी गुरु, सभी सिद्धेश्वरों के सिद्ध पुरुष थे। इनके करकमलों में त्रिशूल, पट्टिश, जपमाला स्थित थी। ये मृत्युरूप तथा महाज्ञानी थे। ये मृत्यु के भी मृत्यु, ईश्वर, मृत्युंजय, कल्याणमय, ज्ञानानंदपूर्ण, महाज्ञानप्रद, सबसे श्रेष्ठ, पूर्णिमा के चन्द्र की प्रभा से भूषित आनन वाले, परम मनोहर, वैष्णवगण में मूर्धन्य एवं ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त से थे।।१८-२२।।

श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः॥२३॥

तदनन्तर महेश्वर महादेव श्रीकृष्ण के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हो गये तथा उनकी स्तुति करने लगे।।२३।।

महादेव उवाच

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानां[1] च वन्दे तमपराजितम्॥२४॥
विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्थं[2] विश्वकारणकारणम्॥२५॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥२६॥

महादेव कहते हैं—जो जय देने वालों में प्रधान, जय स्वरूप, जय के क़ारण हैं, जो जयप्रद, जयेश हैं, उन अपराजित प्रभु की मैं वन्दना करता हूं। आप ही विश्वमय, विश्वेश्वरों के भी ईश्वर, विश्वेश एवं विश्व के कारण, विश्व के आधार, विश्व में स्थित, विश्व के कारणों के भी कारण रूप हैं। आप विश्वरक्षण के कारण, विश्वसंहारक, विश्व में सर्वोत्तम हैं। आप ही फल देने वाले, फल के बीज (कारण) रूप, फल के आधार रूप तथा स्वयं ही फलस्वरूप भी हैं। आप उस फल को देने वाले हैं।।२४-२६।।

तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे।
नारायणं च संभाष्य उवास स तदाज्ञया॥२७॥

"आप तेजरूप, तेजप्रदाता, सभी तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं।" महादेव ने यह स्तवन करके शिव को प्रणाम किया तथा श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर श्रेष्ठ रत्नसिंहासन पर बैठे।।२७।।

इति शंभुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयं च चदे पदे॥२८॥

---

१. क. ॰दाने च।
२. ख. ॰श्वस्तं वि॰।

संततं वर्धते मित्रं धनमैश्वर्यमेव चै। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च॥२९॥

॥इति ब्रह्मवैवर्ते शंभुकृत श्रीकृष्णस्तोत्रम्॥

इस शंभु कृत स्तोत्र को जो मनुष्य संयतात्मा होकर पढ़ता है, उसे पग-पग पर समस्त सिद्धियों की तथा विजय की प्राप्ति होती है। उसके मित्र, धन, ऐश्वर्य की सदा वृद्धि होती है। उसके शत्रु के सैन्य क्षयीभूत हो जाते हैं। दुःख-दरिद्र नष्ट हो जाते हैं॥२८-२९॥

॥शंभुकृत श्रीकृष्ण स्तोत्र समाप्त॥

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य नाभिपङ्कजात्।
महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः॥३०॥
शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः।
योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको गुरुः॥३१॥

सौति कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्ण के नाभिकमल से एक महातपस्वी, कमण्डलुधारी वृद्ध प्रकट हो गये जो ब्रह्मा थे। ये योगी, शिल्पियों के ईश्वर, चतुर्मुख, सबके पिता एवं गुरु हैं। इनका परिधान है श्वेत वस्त्र, इनके दांत तथा केश भी धवल वर्ण हैं॥३०-३१॥

तपसां फलदाता च प्रदाता सर्वसंपदाम्।
स्रष्टा विधाता कर्ता च हर्ता च सर्वकर्मणाम्॥३२॥
धाता चतुर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसूपतिः।
शान्तः सरस्वतीकान्तः सुशीलश्च कृपानिधिः॥३३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकंधरः॥३४॥

यह देवता ब्रह्मा तपस्वीगण को तपःफल देने वाले, सभी सम्पत्ति के प्रदाता, स्रष्टा, विधाता, सभी कर्मों के कर्त्ता, जगत् को धारण करने वाले तथा कर्मों का संहार करने वाले, चतुर्वेदज्ञ, वेद को प्रकट करने वाले, शान्त मुद्रा वाले, सुशील, कृपानिधि एवं सरस्वती के पति हैं। इन्होंने कृष्ण का जब दर्शन किया, तब इनके समस्त अंग पुलकित तथा रोमांचित हो उठे। इनकी ग्रीवा भक्तिभाव से कृष्ण के समक्ष नत सी हो गयी। ये हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे॥३२-३४॥

ब्रह्मोवाच

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम्।
अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेषविधायिनम्॥३५॥

किशोरवयसं शान्तं गोपीकान्तं मनोहरम्। नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्॥३६॥

वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम्। रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम्॥३७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—मैं एक, अक्षर, गुणातीत, गोविन्द श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूं। वे अव्यक्त (निराकार), अव्यय (सदा एकरस, एक प्रकार के), व्यक्त, गोपवेश धारणकारी, किशोर वयः वाले, शान्त, मनोहर, गोपीगण के कान्त, नवजलधर ऐसे श्यामवर्ण, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, वृन्दावनस्थ रासमण्डल में विराजित, रासेश्वर, रास में सतत् उपस्थित, रासजनित उल्लास हेतु सदा उत्सुक हैं, मैं ऐसे गोविन्द की वन्दना करता हूं।।३५-३७।।

इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे। नारायणेशौ संभाष्य स उवास तदाज्ञया॥३८॥

ब्रह्मा ने इस प्रकार से श्रीकृष्ण का स्तव करके उनको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्होंने नारायण एवं शिव से कुछ वार्त्ता करके श्रीकृष्ण के आदेशानुसार उत्तम रत्नसिंहासन पर बैठ गये।।३८।।

इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नःसुस्वप्नो भवेत्॥३९॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे श्रीपुत्रपौत्रवर्धिनी।
अकीर्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्तिर्वर्धते चिरम्॥४०॥

।।इति ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।।

इस ब्रह्माकृत स्तोत्र को जो कोई प्रातः उठ कर पढ़ता है, उसके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। उसके दुःस्वप्न भी सुस्वप्न रूप हो जाते हैं। उसमें गोविन्द की पुत्र-पौत्र विवर्द्धिनी भक्ति का उन्मेष हो जाता है। उसकी अकीर्त्ति भी नष्ट होकर सत्कीर्त्ति में परिणत हो जाती है।।३९-४०।।

ब्रह्माकृत श्रीकृष्ण स्तोत्र समाप्त

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चाद्वक्षसः परमात्मनः। सस्मितः पुरुषः कश्चिच्छुक्लवर्णो जटाधरः॥४१॥
सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकर्मणाम्। समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः॥४२॥

सौति कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल से एक शुक्लवर्ण जटाधारी पुरुष प्रकट हो गया। वह मन्द मुस्कान वाला, प्राणीगण के सभी कर्म का साक्षी, सर्वज्ञ, सर्वत्र समदृष्टि सम्पन्न, दयालु एवं हिंसा-क्रोध से रहित था।।४१-४२।।

धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत्। स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मा फलोद्भवः॥४३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि। तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम्॥४४॥

वह धर्म-ज्ञानयुक्त, धर्मात्मा, धर्मनिष्ठ, धर्मदाता था। वह स्वयं धर्मरूप था। यह परमात्मा की कला से आविर्भूत पुरुष ही धर्मशीलों के धर्म हैं। इन्होंने श्रीकृष्ण के समक्ष भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया तथा हाथ जोड़ कर स्थित होकर सर्वकामप्रद, सर्वेश, परमात्मा की स्तुति करने लगे।।४३-४४।।

श्रीधर्म उवाच

कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम्। गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम्।।४५।।
गोपेश्वरं च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम्।
गवामीशं च गोष्ठस्थं गोवत्सपुच्छधारिणम्।।४६।।
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम्। [1]वन्देऽनवद्यमनघं श्यामं शान्तं मनोहरम्।।४७।।

श्री धर्म कहते हैं–हे वासुदेव, कृष्ण, विष्णु, परमात्मा, ईश्वर, गोविन्द, परमानन्दरूप, एकमात्र, अविनश्वर, अक्षर, अच्युत, गोपेश्वर, गोपीश, गोप, गोरक्षक, विभु, गोगण के ईश्वर, गोशाला में स्थित, गोवत्सों की पूंछ पकड़ने वाले, गौ-गोप-गोपीगण के मध्य में स्थित, प्रधान, पुरुषोत्तम, श्याम, शान्त तथा मनोहर रूप आप अनवद्य, निष्पाप प्रभु की मैं सदा वन्दना करता हूं।।४५-४७।।

इत्युच्चार्य समुत्तिष्ठन्रत्नसिंहासने वरे। ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान्संभाष्य स उवास ह।।४८।।

यह स्तुति करके धर्म उठे तथा उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर से कुछ वार्त्ता किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण की आज्ञा से वे उत्कृष्ट रत्नसिंहासन पर बैठ गये।।४८।।

चतुर्विंशतिनामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च। यः पठेत्प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी।।४९।।
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं[2] भवेद्ध्रुवम्।
स यात्यन्ते हरेः स्थानं हरिदास्यं[3] भवेद्ध्रुवम्।।५०।।
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्गतिर्भवेत्। चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत्करगतं भवेत्।।५१।।

धर्म के मुख से उच्चरित श्रीकृष्ण के इन २४ नामों का जो प्रातःकाल उठ कर पाठ करता है, वह सभी प्रकार से सुखी तथा विजयी होता है। वह मृत्युकाल में भी हरिनाम लेना नहीं भूलता। धर्म सदा उसे आश्रय देते हैं। उसकी प्रवृत्ति कदापि अधर्मरत नहीं होती। उसे चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति भी होती है। यह फल उसके करतलगत रहता है।।४९-५१।।

तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायनते भयेन च। भयानि चैव दुःखानि त्रैनतेयमिवोरगाः।।५२।।

।।इति ब्रह्मवैवर्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।।

उस व्यक्ति को देखते ही सभी पाप भयभीत होकर भाग जाते हैं। दुःख तथा भय तक उससे ऐसे भयग्रस्त होते हैं, जैसे गरुड़ को देख कर सर्प पलायन कर जाते हैं।।५२।।

धर्मकृत श्रीकृष्ण स्तोत्र समाप्त

---

१. क. ०न्दे नवघनश्यामं कामवासं म०।
२. क. ०वेद्भवि०।
३. क. ०स्यं लभेद्ध्रु०।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः।
मूर्तिर्मूर्तिमती साक्षाद्द्वितीया कमलालया॥५३॥
आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी॥५४॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥५५॥
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणां च सुन्दरी।
श्रेष्ठा श्रुतीनां शास्त्राणां विदुषां जननी परा॥५६॥

सौति कहते हैं—तब धर्म के बायें पार्श्व से एक कन्या आविर्भूत हो गयी। वह मूर्त्तिमान कन्या साक्षात् लक्ष्मी की तरह की थी। तदनन्तर परमात्मा कृष्ण के मुख से वीणा-पुस्तकधारिणी शुक्लवर्णा एक देवी आविर्भूत हो गयीं। उनका सौन्दर्य कोटि पूर्णचन्द्र के समान था। उनके दोनों नेत्र शरद् ऋतु में उत्पन्न कमल के समान थे। वे रत्नभूषण भूषिता थीं। उनके वस्त्र प्रतीत होते थे मानों अग्नितप्त स्वर्ण के समान हों। वे मधुर स्मित मुस्कान वाली देवी थीं, जिनकी दन्तपंक्ति अत्यन्त मनोहर थी। ये श्यामा तो सुन्दरियों में सर्वश्रेष्ठ रूपमती थीं। ये श्रुति-शास्त्र तथा विद्वान् लोगों की परम श्रेष्ठ विदुषी जननी तथा परा देवी थीं।।५३-५६।।

वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती॥५७॥
गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः सुखम्।
तन्नामगुणकीर्तिं च वीणया सा ननर्त च॥५८॥
कृतानि यानि कर्माणि कल्पे कल्पे युगे युगे।
तानि सर्वाणि हरिणा तुष्टाव च पुटाञ्जलिः॥५९॥

ये वाक् की अधिष्ठात्री देवी, कवियों की इष्ट देवता, शुद्ध सत्वरूपा, शान्तरूपा सरस्वती कही गयी हैं। ये सर्वप्रथम गोविन्द के समक्ष सुख के साथ स्थित हो गईं। उन्होंने वीणावादन के साथ भगवान् के नाम तथा गुणों का कीर्त्तन किया, तदनन्तर वे प्रभु के समक्ष नृत्यरत हो गईं। तत्पश्चात् उन्होंने भगवान् के प्रति कल्प तथा युगों में उनके द्वारा किये कर्मों का गुणगान किया। तदनन्तर वे करबद्ध होकर प्रभु की स्तुति करने लगीं।।५७-५९।।

सरस्वत्युवाच

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्॥६०॥
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम्। रासाधिष्ठातृदेवं च वन्दे रासविनोदिनम्॥६१॥

श्रीसरस्वती कहती हैं—रासमण्डल के मध्य में विराजित, रासोल्लास हेतु उत्सुक, रत्नसिंहासनस्थ,

रत्नभूषणादि से भूषित, रासेश्वर, श्रेष्ठ रासकर्त्ता, रासेश्वरी के ईश्वर, रास के अधिष्ठातृ देवता, गोपीकान्त, शान्त, मनोहर, रासविनोदी प्रभु को मैं प्रणाम करती हूं!।।६०-६१।।

रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम्।
रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तं मनोहरम्।।६२।।

प्रणम्य च तमित्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती। उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे।।६३।।

"रास के प्रयास से श्रान्त (थके), प्रति रास में विहार करने वाले, रासोत्सुक गोपीगण के कान्त! आप शान्त तथा मनोहर हैं।" यह कहकर प्रसन्नवदना सती सरस्वती ने उन प्रभु को प्रणाम किया। तदनन्तर सफल कामना वे देवी उत्तम रत्नसिंहासन पर आसीन हो गईं।।६२-६३।।

इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
बुद्धिमान्धनवान्सोऽपि विद्यावान्पुत्रवान्सदा।।६४।।

।।इति ब्रह्मवैवर्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।।

इस सरस्वती कृत स्तोत्र का पाठ जो मनुष्य प्रातः उठ कर करेगा, वह सदा बुद्धिशाली, धनी, विद्यावान् तथा पुत्रवान् होगा।।६४।।

सरस्वती कृत श्रीकृष्ण स्तोत्र समाप्त

सौतिरुवाच

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः। एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता।।६५।।
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना। सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्फलप्रदा।
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।।६६।।
सा हरेः पुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम्। तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकंधरा।।६७।।

सौति कहते हैं—तभी भगवान् के मन से एक सर्वालंकार तथा रत्नभूषिता गौरवर्णा देवी प्रकट हो गयीं। उनका परिधान पीत वस्त्रमय था। वे नवयौवना एवं मन्द मुस्कान वाली थीं। ये सर्वैश्वर्यमय देवी सभी सम्पदा का फल प्रदान करने वाली थीं। ये स्वर्ग में स्वर्ग लक्ष्मी तथा राजाओं की राज्यलक्ष्मी कही जाती हैं। ये साध्वी परमात्मा, ईश्वरों के भी ईश्वर हरि के समक्ष नत शिर होकर प्रणामोपरान्त भक्ति के साथ उनकी स्तुति करने लगीं।।६५-६७।।

महालक्ष्मीरुवाच

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं[१] सनातनम्।
सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम्।।६८।।

१. क. ०त्यराजं स०।

श्री महालक्ष्मी कहती हैं–हे प्रभो! आप सत्यरूप, सत्येश, सत्य के बीजस्वरूप, सनातन, सत्य के आधार, सत्यज्ञ तथा सत्य के मूल हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं!।।६८।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशस्त्विषा।।६९।।

यह कहकर महालक्ष्मी श्रीहरि को प्रणाम करके सुखासनासीन हो गयीं। वे देवी तप्त स्वर्ण के समान देहकान्ति युक्त थीं। इनकी देहकान्ति से दसों दिशायें उद्भासित हो रही थीं।।६९।।

आविर्बभूव तत्पश्चाद्बुद्धेश्च परमात्मनः। सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी।।७०।।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना।।७१।।
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता। निद्रातृष्णाक्षुत्पिपासादयाश्रद्धाक्षमादिकाः।।७२।।
तासां च सर्वशक्तीनामीशाऽधिष्ठातृदेवता। भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।।७३।।

तदनन्तर परमात्मा श्रीकृष्ण की बुद्धि से सबकी अधिष्ठातृ देवता स्वरूपा एक देवी आविर्भूत हो गयीं। ये हैं परमेश्वरी मूल प्रकृति। इनका देहवर्ण तपे हुए स्वर्ण के समान था और प्रभा कोटि सूर्य के समान थी। शरत्कालीन खिले कमल जैसे इनके नेत्रद्वय थे। ये भगवती प्रसन्न मुखकमल वाली तथा मन्द मुस्कान से शोभायमान थीं। इनका परिधान था रक्तवर्ण वस्त्र! यह भगवती रत्नाभरण से भूषित थीं। निद्रा, तृष्णा, क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि देवीगण की ये ही अधिष्ठातृ देवता हैं। ये ही समस्त शक्तिसमूह की भी अधिष्ठातृ हैं। यही भयानक रूप वाली, सौ भुजाओं से युक्त दुर्गतिनाशिनी दुर्गा हैं।।७०-७३।।

आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननी परा।
त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गं च धनुःखड्गशराणि च।।७४।।

ये आत्मा की शक्ति तथा समस्त जगत् की परम श्रेष्ठ जननी हैं। इन्होंने त्रिशूल, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, खड्ग तथा बाण धारण किया है।।७४।।

शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमालां कमण्डलुम्। वज्रमङ्कुशपाशं च भृशुण्डीदण्डतोमरम्।।७५।।
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा। पार्जन्यं वारुणं वाह्नं[1] गान्धर्वं बिभ्रती सती।
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता।।७६।।

इनकी बाहुओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म, जपमाला, कमंडलु, वज्र, अंकुश, पाठ, भुशुण्डि, दण्ड, तोमर, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, पार्जन्यास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा गान्धर्वास्त्र भी हैं। इन सबको धारण करने वाली सती भगवती मुदित मन से कृष्ण के समक्ष स्थित होकर उनकी स्तुति करने लगीं।।७५-७६।।

---
१. क. ०वाय्वं गा०।

प्रकृतिरुवाच

अहं प्रकृतिरीशाना सर्वेशा सर्वरूपिणी।
सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत्॥७७॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेव जगतां पतिः।
गतिश्च पाता स्त्रष्टा च संहर्ता च पुनर्विधिः॥७८॥

प्रकृति कहती हैं–हे विभो! मैं सर्वशक्तिरूपा, सर्वरूपिणी, परमेश्वरी हूं। मेरे द्वारा ही यह सब कुछ शक्तिमान् है, यह बात तो सत्य है, तथापि मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। आपने ही मेरी सृष्टि किया है। अतः आप ही जगत्पति, जगत् की गति, पालन-रक्षण कर्त्ता, स्त्रष्टा-संहर्त्ता हैं तथा आप ही पुनः सृष्टि का विधान करने वाले विभु हैं।।७७-७८।।

स्त्रष्टुं[1] स्त्रष्टा च संहर्तुं संहर्ता वेधसां विधिः। परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वकम्।
चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत्॥७९॥

इसलिये मैं आप परमानन्दमय प्रभु की वन्दना अत्यन्त आदर पूर्वक कर रही हूं। आप ही सृर्जनार्थ स्त्रष्टा हैं। आप ही संहारार्थ संहारक हैं। आप ब्रह्मा को भी उत्पन्न करने वाले हैं। आपकी पलकों के झपकते ही ब्रह्मा का भी पतन (अन्त) हो जाता है।।७९।।

तस्य प्रभावमतुलं वर्णितुं कः क्षमो विभो।
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः॥८०॥
चराचरांश्च[2] विश्वेषु देवान्ब्रह्मपुरोगमान्।
मद्विधाः कति वा देवीः स्त्रष्टुं शक्तश्चलीलया॥८१॥

हे विभु! आपका प्रभाव वर्णन कर सकने की किसमें क्षमता है? आप भ्रूभंगिमा मात्र से कोटि-कोटि विष्णु का सृजन कर सकते हैं। आप अपनी लीला मात्र से समस्त ब्रह्माण्डों में चराचर समस्त प्राणीगण, ब्रह्मा आदि समस्त देवगण तथा मेरे समान न जाने कितनी देवियों का सृजन कार्य भी कर सकते हैं!।।८०-८१।।

परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वकम्।
महान्विराड् यत्कलांशो विश्वसंख्याश्रयो विभो[3]।
वन्दे साऽऽनन्दपूर्व तं परमात्मानमीश्वरम्[4]॥८२॥

आप परिपूर्णतम होने के कारण अत्यन्त पूज्य हैं। तभी मैं आपकी वन्दना कर रही हूं। हे विभु!

१. क. ०स्त्रष्टुः स्त्रष्टा च संहर्तृः सं०।
२. क. ०चरेषु वि०।
३. यत् इति लुप्तषष्ठीकमव्ययपदम्। विश्वासंख्याश्रयः असंख्य विश्वाश्रय इत्यर्थ।
४. सानन्द पूर्वमित्यस्य आनन्दपूर्वकं सानन्दश्च इत्यर्थ।

आपकी कला मात्र से असंख्य विश्व आश्रयलाभ करते हैं। विश्वाश्रय महान् विराट् तो आपका कलांश मात्र है। मैं आपकी, जो परमात्मा तथा ईश्वर हैं, पुनः वन्दना करती हूं।।८२।।

यं च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
वेदा अहं च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम्।।८३।।
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ताश्च लक्ष्यतः।
निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम्।।८४।।

आपकी स्तुति तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सभी वेद, मैं, सरस्वती भी कर सकने में असमर्थ हैं। आप प्रकृति से परे हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं! समस्त वेद तथा श्रेष्ठ वेदज्ञ भी आपका स्तव करने के सामर्थ्य से रहित हैं। आप लक्ष्य से परे, लक्ष्य रहित हैं। निरीह हैं। आपकी स्तुति कौन कर सकेगा? अतः मैं आपको पुनः-पुनः प्रणाम करती हूं!।।८३-८४।।

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे। उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तां सुरेश्वराः।।८५।।

दुर्गा ने इस प्रकार से स्तुति करके श्रीकृष्ण को प्रणाम किया तथा उत्तम रत्नसिंहासन पर आसीन हो गईं। सुरेश्वरगण इन दुर्गा (प्रकृति) का स्तव करने लगे।।८५।।

इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः। यः पठेदर्चनाकाले स जयी सर्वतः सुखी।।८६।।

दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन।
भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम्।।८७।।

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणे
दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

दुर्गाकृत इस परमात्मा कृष्ण के स्तव का जो व्यक्ति पूजाकाल में पाठ करता है, वह सर्वत्र विजयी तथा सुखी हो जाता है। दुर्गा उसके गृह से कभी नहीं जातीं। वह मनुष्य संसार में महायशस्वी होकर देहान्त के पश्चात् गोलोकधाम जाता है।।८६-८७।।

तृतीय अध्याय समाप्त

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सावित्री प्रभृति का आविर्भाव, ब्रह्माण्डोत्पत्ति, महाविराट् के जन्म का वर्णन

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य रसनाग्रतः। शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनोहरा॥१॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूषिता। बिभ्रती जपमालां च सावित्री सा प्रकीर्तिता॥२॥

सौति कहते हैं–तदनन्तर कृष्ण के जिह्वाग्र भाग से एक मनोहरा, शुद्ध स्फटिक के वर्ण वाली देवी आविर्भूत हो गईं। उनका परिधान था श्वेत वर्ण वस्त्र। वे सभी अलंकारों से भूषिता तथा जपमाला धारिणी सावित्री कहलाईं॥१-२॥

सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम्। पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकंधरा॥३॥

वे साध्वी सनातन ब्रह्म के समक्ष स्थित होकर तथा हाथ जोड़ कर भक्तिभाव से ग्रीवा झुकाये हुए भगवान् की स्तुति करने लगीं॥३॥

नमामि सर्वबीजं त्वां [1]ब्रह्मज्ज्योतिः सनातनम्। परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निरञ्जनम्॥४॥

सावित्री कहती हैं–हे विभो! जो निर्विकार, निरंजन, केवल मात्र ज्योतिर्मय होकर भी भक्तों पर अनुग्रहार्थ श्याम रूप धारण कर लेते हैं, उन सनातन, परात्पर, सर्वबीज परमेश्वर को मैं प्रणाम करती हूं!॥४॥

इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे। उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसूः॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य परमात्मनः। मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसंनिभः॥६॥
मनो मथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम्। तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः॥७॥
तस्य पुंसो वामपार्श्वात्कामस्य कामिनी वरा। बभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी॥८॥

वेदमाता सावित्री ने इस प्रकार से श्रीकृष्ण का स्तव किया। तत्पश्चात् वे पुनः हरि को प्रणाम करने के उपरान्त प्रसन्न होकर रत्नमय मनोरम सिंहासन पर बैठ गईं। तत्पश्चात् परमात्मा कृष्ण के मन से तप्त स्वर्ण के समान सुन्दर देह एक पुरुष आविर्भूत हो गये। उन्होंने अपने पांच बाणों से सभी कामिनियों के मन को मथित किया था। तभी मनीषीगण ने उनका नाम मन्मथ रखा। ये पुरुष इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये। इन कामदेव के वाम पार्श्व से सबको मोहित करने वाली अनुपम रूपलावण्यवती एक कामिनी उत्पन्न हो गई॥५-८॥

रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम्। रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥९॥

१. क. ०ह्मयोनि स०।

हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धं स उवास हरेः पुरः। रत्नसिंहासने[१] रम्ये पञ्चबाणो धनुर्धरः॥१०॥

इन हास्यमय मुख वाली कामिनी को देखने मात्र से सबके मन में रति का उद्रेक हो जाने के कारण मनीषी लोगों ने इनका नाम रति रख दिया। धनुर्धारी तथा पंच बाणयुक्त मन्मथ ने रति के साथ ही परब्रह्म हरि का यथोचित स्तव किया तथा उनके समक्ष सुन्दर रत्नसिंहासन पर आसीन हो गये॥९-१०॥

मारणं स्तम्भनं चैव जृम्भणं शोषणं तथा।
उन्मादनं पञ्चबाणान्पञ्चबाणो बिभर्ति सः॥११॥
बाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया। सद्यः सर्वे सकामाश्च बभूवुरीश्वरेच्छया॥१२॥

ये मन्मथ जिन पंचबाण को धारण किये रहते हैं, उनका नाम है—मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण तथा उन्मादन। उन मन्मथ ने इन पांच बाणों की परीक्षा हेतु इन पांचों बाणों को छोड़ा। ईश्वरेच्छा से छूटे इन बाणों के प्रभाव से तत्काल एक साथ सभी कामवश में हो गये॥११-१२॥

रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह।
तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य लज्जया॥१३॥
वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः।
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन्॥१४॥

यहां तक कि महायोगी ब्रह्मा ने भी सतृष्ण नेत्रों से रति की ओर देखा। रति को देखते ही ब्रह्मा का वहां वीर्यपात हो गया! इससे ब्रह्मा ने अत्यन्त लज्जित होकर अपने परिधान वस्त्र से उस क्षरित वीर्य को ढांक दिया तथा वहीं बैठे रह गये! तभी उस वीर्य ने इस आवरण वस्त्र को अपने तेज से दग्ध कर दिया। वह वीर्य जाज्वल्यमान अनेक शिखा (लपट) युक्त अत्यन्त प्रकाण्ड देवप्रधान ज्वलन्त अग्निरूप हो गया। इस अग्नि ने करोड़ों ताड़ वृक्षों के समान विशाल ज्वलन्त रूप धारण कर लिया॥१३-१४॥

कृष्णस्तद्वर्धनं[२] दृष्ट्वा समर्जापः स्वलीलया।
निःश्वासवायुना सार्धं मुखबिन्दून्समुद्गिरन्॥१५॥
विश्वौघं प्लावयामास मुखबिन्दुजलं द्विज।
तत्र किञ्चिज्जलकणं (णो) वह्निं शान्तं चकार ह॥१६॥
ततःप्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत्। आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता॥१७॥

तभी देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने जब अग्नि को इस भयानक स्वरूप में वर्द्धित होते देखा, तब उन्होंने तत्काल लीला से अपने मुख से ही निःश्वास वायु के साथ एक-एक बूंद करके जल गिराया!

१. ख. ०ने चाऽस्य प०।
२. क. ०ष्णस्तं दहन।

हे द्विज! हरि के मुखविन्दु से समुद्भूत इस जल ने उत्पन्न होते ही समस्त विश्व को आप्लावित कर लिया। उसके तनिक से अंश ने इस प्रचण्ड अग्नि को शान्त किया। इसी कारण से आज भी जल-स्पर्श मात्र से अग्नि बुझ जाती है। तत्पश्चात् इस जल से उसी के अधिदेवता एक पुरुष उत्पन्न हो गये।।१५-१७।।

उत्तस्थौ तज्जलादेकः पुमान्स वरुणः स्मृतः।
जलाधिष्ठातृदेवोऽसौ सर्वेषां यादसां पतिः॥१८॥
आविर्बभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः।
सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः॥१९॥

यह जो अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हो गये थे, ये वरुण नाम से विख्यात होकर जलजन्तुगण के अधिपति बने। इसके पश्चात् अग्निदेवता के वाम पार्श्व से स्वाहा नाम्नी कन्या आविर्भूत हो गई। मनीषीगण इनको अग्निदेव की पत्नी कहते हैं।।१८-१९।।

जलेशस्य वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव सा।
वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती॥२०॥
बभूव पवनः श्रीमान्विभोर्निःश्वासवायुना।
स च प्राणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः॥२१॥

जलपति वरुण के वाम पार्श्व से वारुणी नाम से प्रसिद्ध एक कन्या आविर्भूत हो गई, जो वरुणदेव की प्रियतमा पत्नी वरुणा कही गयीं। ये वरुण की प्रिया साध्वी पत्नी हैं। उन परमेश्वर के निःश्वास से पवन देवता उत्पन्न हो गये। वे सभी प्राणीगण के प्राण रूप से अवस्थित हैं। उनके अंश से ही समस्त जीवगण का निःश्वास उत्पन्न होता है। यह श्वास-प्रश्वास उनकी ही अंशकला है।।२०-२१।।

तस्य वायोर्वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव ह।
वायोः पत्नी च सा देवी वायवी परिकीर्तिता॥२२॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतः पातो बभूव ह। जले तद्रेचनं[1] चक्रे लज्जया सुरसंसदि॥२३॥

इन वायुदेव के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हो गई, जो वायुदेव की पत्नी तथा वायवी नाम से प्रसिद्ध है। हे ब्रह्मन्! यह आश्चर्य की बात है कि कभी भी व्यर्थ न होने वाले कामदेव के बाण के प्रभाव से परमात्मा का वीर्यपात हो गया था। परन्तु परमात्मा कृष्ण ने लज्जावश तथा देवगण के समक्ष यह प्रकट न हो सके इसलिये उन्होंने स्वयं इस वीर्य को जल में छोड़ा। उसका रेचन जल में कृष्ण द्वारा किया गया।।२२-२३।।

सहस्रवत्सरान्ते [2]तड्डिम्भरूपं बभूव ह। ततो महान्विराड्जज्ञे विश्वौघाधार एव सः॥२४॥

१. क. तत्प्रेरणं च०।
२. क. तद्बिन्दुरू०।

यस्यैकलोमविवरे विश्वैकस्य व्यवस्थितिः।
स्थूलात्स्थूलतरः सोऽपि महान्नान्यस्ततः परः॥२५॥

एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर उस रेतः ने डिम्बरूप धारण किया। इसी डिम्ब से विराट्मूर्त्ति महत् का आविर्भाव हो गया। यह विराट्मूर्त्ति ही समग्र विश्व-ब्रह्माण्ड का आधार है। इस विराट्मूर्ति के प्रत्येक रोम विवर में एक-एक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। ये ही विश्व संसार में स्थूल से भी स्थूलतम हैं। इनके समान महान् अन्य कोई नहीं है।।२४-२५।।

स एव षोडशांशोऽपि कृष्णस्य परमात्मनः।
महाविष्णुः स विज्ञेयः सर्वाधारः सनातनः॥२६॥

महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले। बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ॥२७॥

ये विराट् परमात्मा कृष्ण के षोडशांश हैं। ये ही महाविष्णु रूप से परिज्ञात हैं। ये प्रभु सर्वाधार-सनातन हैं। जैसे पद्मपत्र जल के ऊपर रहता है, तदनुरूप ये महार्णव में जल के ऊपर शयनरत रहते हैं। उस समय इन विराट् के कर्णमल से दो दैत्य उत्पन्न हो गये।।२६-२७।।

तौ जलाच्च समुत्थाय ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ। नारायणश्च भगवाञ्जघने तौ जघान ह॥२८॥

ये दोनों दैत्य उत्पन्न होकर जब जल से ऊपर उठ कर ब्रह्मा के वध का प्रयास करने लगे, तब भगवान् नारायण ने तत्क्षण उनको अपनी जंघा पर लिटा कर उनका नाश कर दिया।।२८।।

बभूव मेदिनी कृत्स्ना[१] कात्स्न्र्येन मेदसा तयोः।
तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुंधरा॥२९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

उन दोनों के समस्त मेद से इस पृथिवी की उत्पत्ति होने के कारण इसे मेदिनी कहा गया है। इस मेदिनी पर ही समस्त स्थावर-जंगमात्मक विश्व है तथा वसुन्धरा देवी यहीं निरन्तर स्थित हैं। ये पृथिवी की अधिष्ठात्री देवता हैं।।२९।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

१. क. कृष्णा कार्ष्ण्येन मे०।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कालसंख्यान, रासमण्डल में राधा की उत्पत्ति, राधा-कृष्ण के शरीर से गो-गोपी-गोपों का आविर्भाव, शिव प्रभृति देवगण को वाहन प्रदान करना, गुह्यक आदि की उत्पत्ति का वर्णन

शौनक उवाच

गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिता।
मम संदेहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

शौनक मुनि कहते हैं—हे सूतनन्दन! आपका सुधामय वाक्य सुन कर क्रमशः हमारी श्रवण की पिपासा बढ़ती जा रही है। आपने कृपा पूर्वक गोलोक धामस्थ जिन गो, गोप–गोगिकागण का उल्लेख किया है, क्या वे नित्य हैं, किंवा कल्पित हैं। आप विशेषतया यह वर्णन करके मेरे सन्देह का उच्छेद करें।।१।।

सौतिरुवाच

सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताः प्रलये[1] कृष्णसंस्थिताः।
सर्वादिसृष्टिकथनं यन्मया कथितं द्विज॥२॥
सर्वादिसृष्टौ क्लृप्तौ च नारायणमहेश्वरौ। प्रलये प्रलये व्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्च सा॥३॥

सौति कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपकी जिज्ञासा के अनुसार उत्तर देता हूं। श्रवण करिये। मैंने इतिपूर्व आप लोगों से आदि सृष्टि के विषय में जो कहा था, ये सभी उस आदि सृजन काल में कल्पित किये जाने पर भी प्रत्येक प्रलय में भी स्थित रहते हैं अर्थात् ये सभी आदि सृष्टि काल में प्रकट रहते हैं तथा प्रलय में कृष्ण में स्थित हो जाते हैं। आदि सृष्टि के समय नारायण तथा महेश्वर प्रकटरूपेण स्थित रहते हैं। प्रलयकाल में ये अवस्थित रहते हैं। ये व्यक्त रूप रहते हैं। (ये सभी नित्य न होकर कल्पित हैं)।।२-३।।

सर्वादौ ब्रह्मकल्पस्य चरितं कथितं द्विज।
वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामि श्रोष्यसि॥४॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च कल्पाश्च त्रिविधा मुने।
यथा युगानि चत्वारि क्रमेण कथितानि च॥५॥
सत्यं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम्॥६॥

---

१. ख. ०ये प्रलये स्थि०।

मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। चतुर्दशेषु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम्॥७॥
त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्दिनैर्वर्षं च ब्रह्मणः। अष्टोत्तरं वर्षशतं विधेरायुर्निरूपितम्॥८॥

हे द्विज! सर्वप्रथम (ब्रह्मवैवर्त्त के अन्तर्गत्) ब्राह्मकल्प का मैंने वर्णन किया है। अब मैं वाराह तथा पाद्मकल्प के विषय को कहता हूं। कल्प त्रिविध रूप से विख्यात हैं। जैसे ब्रह्म, वाराह तथा पाद्म। हे मुनिवर! इस प्रकार युग भी चतुर्धा विभक्त हैं। यथा–सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि। मनुष्य मान के ३६० युगों में देवता का एक युग सम्पन्न होता है। देवगण के मान वाले ७१ युग में एक मनु का काल समाप्त हो जाता है। ऐसे १४ मनुओं का काल समाप्त होने पर प्रजापति ब्रह्मा का एक दिवस समाप्त होता है। ऐसे मान वाले ३६० दिनों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। ऐसे मान वाला १०८ वर्ष को ब्रह्मा की आयु कहा गया है।।४–८।।

एतन्निमेषकालस्तु कृष्णास्य परमात्मनः।
ब्रह्मणश्चाऽऽयुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः॥९॥
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्तादयः स्मृताः।
सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः॥१०॥
ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्तितः। विधेश्च सप्तदिवसैर्मुनेरायुर्निरूपितम्॥११॥

तथापि ब्रह्मा की पूर्ण आयु कृष्ण का एक निमेष मात्र है। कालज्ञ विद्वान् ब्रह्मा के आयुकाल को एक कल्प कहते हैं। इसी प्रकार सम्वर्त्त आदि अनेक छोटे कल्प भी हैं। मार्कण्डेय मुनि को ७ कल्प पर्यन्त जीवित रहने वाला कहा गया है, तथापि ये सात कल्प ब्रह्मा के सात दिन के ही बराबर हैं (ब्रह्मा की आयु वाला कल्प तो अन्य महाकल्प है)। ब्रह्मा के ७ दिनों में ही मार्कण्डेय की सात कल्पात्मक आयु पूर्ण हो जाती है।।९–११।।

ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः।
कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय॥१२॥
ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्त्रष्टा सृष्टिं चकार सः।
मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाऽऽज्ञया प्रभोः॥१३॥
वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात्।
विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः॥१४॥
पाद्मे विष्णोर्नाभिपद्मे स्त्रष्टा सृष्टिं विनिर्ममे।
त्रिलोकीं ब्रह्मलोकान्तां नित्यलोकत्रयं विना॥१५॥

वास्तव में कल्प मात्र तीन हैं। यथा–ब्राह्म, वाराह तथा पाद्म। इन कल्पों में जिस प्रकार जगत् की सृष्टि हुई, वह कहता हूं! श्रवण करिये। ब्राह्मकल्प में विधाता ब्रह्मा ने परमब्रह्म श्रीकृष्ण के

आदेशानुसार प्रथमतः मधु-कैटभ के मेद से मेदिनी का सृजन किया था। तदनन्तर उन्होंने अन्य सब का सृजन किया। द्वितीय कल्प-**वाराह कल्प** में वाराह रूपी भगवान् विष्णु ने विलुप्त प्रायः पृथिवी का रसातल से उद्धार करके उसे ऊर्ध्व में उठाया। तृतीय-**पाद्मकल्प** में प्रजापति ब्रह्मा ने विष्णु के नाभिकमल में अवस्थित होकर नित्य लोकत्रय के अतिरिक्त ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकमय त्रिभुवन की सृष्टि किया था। ब्रह्मलोक के ऊर्ध्व में जो तीन लोक हैं। वे ब्रह्मा की सृष्टि नहीं हैं।।१२-१५।।

एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे।
किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१६॥

हे तपोनिधि! इस प्रकार से मैंने आपके सृष्टि संबंधित प्रश्न का यत्किंचित् उत्तर देते हुए सृष्टि निरूपण के साथ कालसंख्या का भी वर्णन कर दिया। अब आपको और क्या सुनने की इच्छा है?।।१६।।

शौनक उवाच

अतः परं किं चकार भगवान्सात्वतां पतिः।
एतान्सृष्ट्वा किं चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१७॥

शौनक मुनि कहते हैं-कृपा पूर्वक यह कहने का कष्ट करिये कि श्रीकृष्ण ने किसकी सृष्टि किया तथा और क्या कार्य किया?।।१७।।

सौतिरुवाच

अतः परं तु गोलोके गोलोकेशो महान्प्रभुः। एतान्सृष्ट्वा जगामासौ रम्यं रासमण्डलम्।
एतैः समेतैर्भगवानतीव कमनीयकम्॥१८॥
रम्याणां कल्पवृक्षाणां मध्येऽतीवमनोहरम्।
सुविस्तीर्णं च सुसमं सुस्निग्धं मण्डलाकृति॥१९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम्। दधिलाजसक्तुधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम्॥२०॥

सौति कहते हैं-तदनन्तर भगवान् गोलोकेश्वर पूर्व में सृष्ट किये देवगण के साथ होकर अत्यन्त कमनीय रासमण्डल में गये। यह रासमण्डल अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्ष के मध्य में है। वह मण्डलाकृति, अत्यन्त स्निग्ध, समतल तथा विस्तीर्ण है। यह रासमण्डल चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम प्रभृति नाना सुगंधद्रव्य से सुसंस्कृत है। वह कहीं दही, कहीं पर लावा, कहीं शुक्लवर्ण धान्य से परिव्याप्त है! कहीं-कहीं पर नूतन दूर्वांकुर से वह शोभायमान है।।१८-२०।।

पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तं नवचन्दनपल्लवैः। संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम्॥२१॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः। रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः॥२२॥

वह रासमण्डल पट्टसूत्र (रेशमी सूत्र) से ग्रथित चन्दन के नवीन पल्लवों की बन्दनवार तथा

कदली स्तम्भों से घिरा था। वह रासमण्डल रत्नों से निर्मित त्रिकोटिमण्डप (तीन करोड़) गृहों से अतिशय शोभायमान था। उन मण्डपों में निरन्तर अनेक रत्ननिर्मित दीपक प्रज्वलित थे। वे अपनी-अपनी किरणों द्वारा वहां के अन्धकार को दूर कर रहे थे। वे सभी मण्डप पुष्प तथा धूप द्वारा सुगन्धित थे।।२१-२२।।

शृङ्गारार्हभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितम्। अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम्॥२३॥

वे सभी अनेक भोग्य सामग्री (प्रसाधन सामग्री) से पूर्ण थे। वहां मनोहर शय्या निरन्तर बिछी रहती थीं, जो सभी सुखद सामग्री से युक्त थीं तथा ये वहां की अलौकिक शोभा का वर्द्धन कर रही थीं।।२३।।

तत्र गत्वा च तैः सार्धं समुवास जगत्पतिः।
दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम॥२४॥
आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे॥२५॥

हे मुनिप्रवर! जगदीश्वर गोलोकनाथ कृष्ण देवताओं के साथ वहां आकर अवस्थित हो गये। वे देवता भी उस अपूर्व रासमण्डल को देखने मात्र से अतिशय आश्चर्यान्वित हो गये। तभी वहां कृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या आविर्भूत हो गई। उसने शीघ्रता से जाकर पुष्प ग्रहण करके भगवान् के चरण-कमलों पर उन पुष्पों को अर्पित कर दिया।।२४-२५।।

रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरे पुरः। तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥२६॥

प्राणाधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥२७॥

गोलोकस्थ रासमण्डल में वह कन्या आविर्भूत होकर श्रीकृष्ण की ओर धावमान (दौड़ पड़ी) हो गई थी। अतः पण्डितगण ने उसे राधा (रासमण्डल का 'रा' तथा धावमान का 'धा' लेकर) कहा-राधा श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। वे कृष्ण के प्राणों से निर्गत हैं। वे इसी कारण कृष्ण को प्राणों से अधिक प्रिय हैं।।२६-२७।।

देवी षोडशवर्षीया नवयौवनसंयुता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा॥२८॥
सुकोमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी। बृहन्नितम्बभारार्ता पीनश्रोणिपयोधरा॥२९॥
बन्धुजीवजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरानना। मुक्तापङ्क्तिजिताचारुदन्तपङ्क्तिर्मनोहरा॥३०॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामृष्टशुभानना। चारुसीमन्तिनी चारुशरत्पङ्कजलोचना॥३१॥

ये देवी राधा अपने आविर्भाव के ही समय से षोडश वर्षीया तथा नवयौवना थीं। ये अत्युज्वल वस्त्रधारिणी, ईषत् हास्य युक्त मुख वाली तथा मनोहारिणी थीं। ये देवी अतिशय कोमल अंगों वाली तथा जगत् की सभी सुन्दरियों से भी परम सुन्दरी थीं। उनकी देह अपने पृथुल नितम्बों के भार से कुछ

झुक सी गयी थी। इन देवी का स्तन तथा नितम्बदेश अत्यन्त स्थूल था। इन देवी के ओष्ठ तथा अधर बन्धूक पुष्प की भी लालिमा को मानों पराजित कर रहे थे। इनकी दन्तपंक्ति मुक्ता से भी अधिक श्वेत तथा उत्तम थी। देवी का मुख (चेहरा) तो पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा था। इन देवी के नयनद्वय तो कमल के समान थे।।२८-३१।।

खगेन्द्रचञ्चुविजिताचारुनासामनोहरा। स्वर्णगण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च बिभ्रती।।३२।।
दधती चारुकर्णे च रत्नाभरणभूषिते। चन्दनागरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमबिन्दुभिः।।३३।।
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा। सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम्।।३४।।

इनकी नासिका गरुड़ की चोंच के समान सुन्दर थी। राधिका के दोनों कपोल स्वर्ण निर्मित दर्पण की शोभा को भी म्लान कर रहे थे। श्रीराधा भगवती के कर्णद्वय रत्नों के आभूषण से विभूषित थे। इनके कपोलों पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम तथा सिन्दूर के विन्दु शोभायमान हो रहे थे। इससे वे अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं। इनके केश अच्छी तरह संवारे गये थे तथा उनमें मालती की सुन्दर माला भी गूंथी गई थी।।३२-३४।।

सुगन्धकबरीभारं सुन्दरं दधती सती। स्थलपद्मप्रभामुष्टं पादयुग्मं च बिभ्रती।।३५।।
गमनं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम्। सद्रत्नसारनिर्माणं वनमालां मनोहराम्।।३६।।

इन साध्वी तथा सती बालिका की वेणी सुगन्धित तथा अत्यन्त मनोहर थी। इनके दोनों चरणकमल तो स्थलकमल की भी शोभा को लज्जित कर रहे थे। इन कृष्ण के मन को भी मोहित करने वाली राधा की चाल तो हंस तथा खंजन की चाल के गर्व को चूर्ण-विचूर्ण करने वाली थी। राधा सदा उत्तम रत्नयुक्त मनोहर वनमाला धारण किये रहती थीं।।३५-३६।।

हारं हीरकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम्। सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम्।।३७।।
अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिबिभ्रती।।३८।।

इन देवी का कण्ठहार हीरों से बना था। केयूर रत्ननिर्मित था। देवी ने उत्तम कंगन भी पहना था। देवी ने रत्नों के सारभाग से बनी अत्यन्त सुन्दर पोशाक धारण किया था। ये देवी नाना प्रकार के अमूल्य रत्नों से निर्मित नाना आभरण से भूषित अंगों वाली थीं। इस प्रकार सज्जित वे देवी वहां विराजमान हो गयीं।।३७-३८।।

सा च संभाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे।
उवास सस्मिता भर्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम्।।३९।।

हे तपोधन! श्रीराधा का आविर्भाव इस प्रकार जब हो गया, तब वे श्रीकृष्ण से कुछ बातें करके उनके श्रीमुख का अवलोकन करती स्वामी की आज्ञा मिलते ही मन्द मुस्कान के साथ उस रत्नसिंहासन पर आसीन हो गईं, जो उनके लिये रखा था।।३९।।

तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गागणः। आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः॥४०॥

लक्षकोटीपरिमितः शश्वत्सुस्थिरयौवनः।
संख्याविद्भिश्च संख्यातो गोलोके गोपिकागणः॥४१॥

तभी राधा के रोमकूपों से (रोम के छिद्रों से) सभी गोपियां आविर्भूत हो गईं। वे सभी रूप तथा सज्जा में राधा के ही समान लग रही थीं। ये गोपियां लक्षकोटि संख्यक थीं। वे सभी गोपियां स्थिर यौवन युक्त थीं।।४०-४१।।

कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणो मुने। आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः॥४२॥

त्रिंशत्कोटिपरिमितः कमनीयो मनोहरः।
संख्याविद्भिश्च संख्यातो बल्लवानां गणः श्रुतौ॥४३॥
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाऽऽविर्बभूव ह।
नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनः॥४४॥
बलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधाः शुभाः।
अतीवललिताः श्यामा वह्व्यो वै कामधेनवः॥४५॥

हे मुनिप्रवर! उसी समय श्रीकृष्ण के रोमकूपों से रूप तथा वेश रचना में कृष्ण के ही समान प्रतीत होने वाले गोपों का आविर्भाव हो गया। पूर्वोक्त पण्डितों ने शास्त्र में इन अनिर्वचनीय सुन्दर गोपों की संख्या तीस करोड़ कही है। उसी समय पुनः कृष्ण के रोमकूपों से स्थिर यौवन युक्त नाना वर्ण की गौयें तथा असंख्य सांड़ उत्पन्न हो गये। ये सभी शुभ लक्षण सम्पन्न थे। गौयें वत्सों के साथ थीं। ये सभी अति सुन्दर श्यामवर्णा तथा कामधेनु के समान थीं। ये असंख्य थीं। ये सभी सुरभि जाति की गौयें थीं!।।४२-४५।।

तेषामेकं बलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले। शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम्॥४६॥
कृष्णाङ्घ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपङ्क्तिर्मनोहरा। आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्विता॥४७॥
तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्। वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने॥४८॥

उन सांड़ों में से जो वृष कोटि सिंहों के समान बली तथा अत्यन्त मनोहर था, उसे श्रीकृष्ण ने वाहनार्थ भगवान् शिव को प्रदान किया। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण के चरण के नखरंध्र से सहसा मनोहर हंसी समूह के साथ हंस समूह आविर्भूत हो गया। भगवान् कृष्ण ने उन हंसों में से एक महाबली पराक्रमी राजहंस को महायोगी ब्रह्मा को वाहन हेतु अर्पित किया।।४६-४८।।

वामकर्णस्य विवरात्कृष्णस्य परमात्मनः। गणः श्वेततुरङ्गाणामाविर्भूतो मनोहरः॥४९॥
तेषामेकं च श्वेताश्वं धर्मार्थं वाहनाय च। ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंसदि॥५०॥
दक्षकर्णस्य विवरात्पुंसश्च सुरसंसदि। आविर्भूता सिंहपङ्क्तिर्महाबलपराक्रमा॥५१॥

तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम्। अमूल्यरत्नमाल्यं च वरं यदभिवाञ्छितम्।।५२।।

तत्पश्चात् कृष्ण के वाम कर्ण विवर से मनोहर श्वेत वर्ण अश्व समूह निर्गत हो गया। गोपांगनाओं के ईश्वर श्रीकृष्ण ने उनमें से एक अतिशय श्वेतवर्ण अश्व को वाहनार्थ सभी देवगण के सामने धर्मदेव को प्रीति पूर्वक प्रदान किया। पुनः महापुरुष श्रीकृष्ण के दक्षिण कर्ण विवर से देवगण के देखते-देखते महाबलो-पराक्रमी सिंह समूह आविर्भूत हो गये। भगवान् ने उन सब में से एक उत्तम सिंह परम आदर के साथ प्रकृति भगवती देवी को प्रदान करने के साथ उनको वांछित वर देकर उत्कृष्ट अमूल्य अक्षमाला प्रदान किया।।४९-५२।।

कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम्। शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम्।।५३।।
लक्षयोजनमूर्ध्वे च प्रस्थे च शतयोजनम्। लक्षचक्रं वायुरहं लक्षक्रीडागृहान्वितम्।।५४।।
शृङ्गाराहँ भोगवस्तुल्पासंख्यसमन्वितम्। रत्नप्रदीपलक्षाणां[1] राजिभिश्च विराजितम्।।५५।।

इसके पश्चात् योगीप्रवर श्रीकृष्ण ने योगबल द्वारा विशुद्ध रत्नों से बने, मनोवेग से चलने वाले पांच रथों का सृजन किया। ये एक लाख योजन उच्च तथा विस्तार में १०० योजन वाले थे। इनमें एक लक्ष चक्के थे। वे सभी वायुवेग से चलने वाले थे। इन रथों में प्रत्येक में एक-एक लक्ष क्रीड़ागृह थे। ये सभी नाना भोग्य वस्तुओं से समाकीर्ण, असंख्य शय्याओं से सज्जित थे। ये सभी लाखों की संख्या में प्रदीपों से युक्त तथा अश्वों से जुते थे।।५३-५५।।

नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नकलशोज्ज्वलम्।
रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः।।५६।।

ये सभी क्रीड़ागृह नाना प्रकार के चित्रों से सजे, रत्नमय कलसों से शोभायमान थे। इनमें कहीं-कहीं रत्ननिर्मित दर्पण समूह टंगे थे, कहीं-कहीं रत्नालंकार रखे थे। कहीं-कहीं अतिशय शुभ्र चामर अवस्थित होने के कारण ये सभी गृह अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे।।५६।।

वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रैर्मुक्ताजालैर्विभूषितम्। मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविराजितम्।।५७।।
आरक्तवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः। पङ्कजानामसंख्यैश्च सुन्दरैश्च सुशोभितम्।।५८।।
ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम। एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने।।५९।।

हे शौनक! ये सभी गृह (एवं रथ) अग्निवत् उज्ज्वल कांति वाले वस्त्रों से सज्जित, विचित्र पुष्पमालाओं, अत्युत्तम मणि-मुक्ता-माणिक्य-हीरों के हार से सुशोभित थे। ये सभी रक्तवर्ण के रत्नों से निर्मित असंख्य अति सुन्दर कृत्रिम कमलों से सजाये गये थे। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! श्रीकृष्णदेव ने इन विमानों (रथों) में से एक रथ नारायण को, अन्य एक रथ अपनी प्रियतमा राधा को अर्पित कर दिया। उन्होंने शेष तीन रथ अपने उपयोगार्थ रक्षित कर लिया।।५७-५९।।

---

१. ख. ०णां वाजि०।

आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम्। पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह॥६०॥
आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः।
यः पुमान्स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः॥६१॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के गुह्यदेश से एक पिंगल वर्ण के पुरुष अपने पिंगलवर्ण सहचरों के साथ आविर्भूत हो गये। ये लोग गुह्य से उत्पन्न हुए थे, अतः ये सभी गुह्यक कहलाये। इन सब गुह्यकों में से जो प्रधान महान् गुह्यक थे, वे ही कुबेर नाम से प्रसिद्ध हैं। वे समस्त धन-रत्न के अधिकारी तथा गुह्यकों के स्वामी बने।।६०-६१।।

बभूव कन्यका चैका कुबेरवामपार्श्वतः। कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा॥६२॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डब्रह्मराक्षसाः।
वेताला विकृतास्तस्याऽऽविर्भूता गुह्यदेशतः॥६३॥

कुबेर के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न होकर उनकी पत्नी बनी। पुनः श्रीकृष्ण के गुह्यदेश से ही भूत-प्रेत-पिशाच-कूष्माण्ड-ब्रह्मराक्षस-वेतालादि विकृत रूप वाले उत्पन्न हो गये। श्रीकृष्ण के मुख से शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाला भूषित विष्णु पार्षदों का आविर्भाव हो गया। ये सभी पीतवर्ण का वस्त्र धारण करने वाले, श्यामवर्ण, किरीट-कुण्डल तथा अन्य रत्नाभरणों से भूषित थे। कृष्ण ने इन समस्त चतुर्भुज पार्षदों को नारायण को अर्पित कर दिया। श्रीकृष्ण ने समस्त गुह्यकों को, कुबेर को तथा भूत-प्रेतादि को शंकर को अर्पित कर दिया।।६२-६३।।

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः॥६४॥
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः।
आविर्भूताः पार्षदाश्च कृष्णस्य मुखतो मुने॥६५॥
चतुर्भुजान्पार्षदांश्च ददौ नारायणाय च। गुह्यकान्गुह्यकेशाय भूतादीञ्छङ्कराय च॥६६॥
द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः।
ध्यायन्तश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य सततं मुदा॥६७॥
दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यत्नतः।
आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः॥६८॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः। आविर्भूताः पादपद्मात्पादपद्मैकमानसाः॥६९॥

(यह सब परमेश्वर कृष्ण की अद्भुत महिमा है)। इसके पश्चात् भगवान् गोलोकपति ने (कृष्ण ने) अपने चरणकमलों से कृष्णपरायण कतिपय वैष्णवगण की सृष्टि किया। ये द्विभुज, श्याम वर्ण, हाथों में जपमाला धारण करने वाले, सदा सानन्द चित्त से श्रीकृष्ण चिन्तन में मग्न रहने वाले थे। ये सदा श्रीकृष्ण की सेवा में निरत रहने वाले, श्रीकृष्ण की पूजा के लिये निरन्तर हाथ में अर्घ्य आदि धारण करने वाले थे। इनके अंग सदा कृष्ण प्रेम से रोमांचित रहते थे। इनके नेत्रों से अनवरत

आनन्दाश्रु बहते रहते थे। इस आनन्दभाव के कारण ये सभी वैष्णव अस्फुट वाक्य ही बोल पाते थे। ये सभी कृष्ण के चरणकमल का चिन्तन करते रहते थे। भगवान् ने उनको अपने दास्यकर्म में नियुक्त कर दिया।।६७-६९।।

आविर्बभूवः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयङ्कराः। त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः।।७०।।

दिगम्बरा महाकाया ज्वलदग्निशिखोपमाः।

ते भैरवा महाभागाः शिवतुल्याश्च तेजसा।।७१।।

रुरुसंहारकालाख्या असितक्रोधभीषणाः।

महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः।।७२।।

तदनन्तर श्रीकृष्ण प्रभु के दक्षिण नेत्र से भयंकर भैरवमूर्त्ति (भीषण) का आविर्भाव हो गया। ये सभी–त्रिशूल, पट्टिश आदि नाना अस्त्रधारी, त्रिनेत्र, मस्तक पर अर्द्धचन्द्ररेखायुक्त, वस्त्र रहित, बृहद् देहधारी थे। इनका तेज ज्वलन्त अग्निशिखा के समान था। ये सभी पराक्रम में शिव के समान थे और महाशक्तिशाली थे। ये संख्या में आठ भैरव इन नाम वाले कहे गये हैं। यथा–रुरु, संहार, काल, असित, क्रोध, भीषण, महाभैरव, खट्वांग भैरव।।७०-७२।।

आविर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयङ्करः। त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः।।७३।।
दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः। स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधीश्वरः।।७४।।

तदनन्तर परब्रह्म कृष्ण के वाम नेत्र से एक भयंकर पुरुष निर्गत हो गया। यह पुरुष भी त्रिशूल, पट्टिश प्रभृति अस्त्रधारी, गदाधारी, महाकाय, दिगम्बर था। उसने व्याघ्र चर्म लपेट रखा था। इसके तीन नेत्र थे। मस्तक पर अर्द्धचन्द्र विराजमान था। यह महाभाग दिक्पालों का अधीश्वर ईशान नाम से प्रसिद्ध हो गया।।७३-७४।।

डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः।

आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात्।।७५।।

सुरास्त्रिकोटिसंख्याता दिव्यमूर्तिधरा वराः। आविर्बभूवुः सहसा पुंसो वै पृष्ठदेशतः।।७६।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की नासिका तथा उदर से शत-सहस्र डाकिनी, योगिनी, क्षेत्रपाल आविर्भूत हो गये। तभी अचानक श्रीकृष्ण के पृष्ठदेश (पीठ) से सभी प्रकार के महान् दिव्यमूर्त्तिधारी तीन करोड़ देवगण उत्पन्न हो गये।।७५-७६।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीकृष्ण द्वारा शंकर को वर प्रदान, शिवनाम की व्युत्पत्ति, भगवान् कृष्ण द्वारा सृष्टि करने के लिये ब्रह्मा को प्रेरित करना

सौतिरुवाच

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरं च सरस्वतीम्। नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रं मालया सह॥१॥

सावित्रीं ब्रह्मणे प्रादान्मूर्तिं धर्माय सादरम्।
रतिं कामाय रूपाढ्यां कुबेराय मनोरमाम्॥२॥

सौति कहते हैं–तदनन्तर गोलोकाधीश श्रीकृष्ण ने महालक्ष्मी तथा वाग्देवी सरस्वती को वरमाला के साथ नारायण प्रदान किया (वरमाला = परम उत्तम रत्नमाला)। श्रीकृष्ण देव ने इसी प्रकार आनन्दित होकर ब्रह्मा को सावित्री देवी, धर्म को मूर्त्ति देवी, कामदेव को अलौकिक रूप-लावण्यमयी रतिदेवी तथा गुह्यपति कुबेर को मनोरमा अर्पित किया॥१-२॥

अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः।
तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम्॥३॥

ततः शङ्करमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम्। उवाच प्रियमित्येवं गृहणीयाः सिंहवाहिनीम्॥४॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहसन्नीललोहितः।
उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्युतम्॥५॥

इसी प्रकार श्रीकृष्णदेव ने वहां जिन-जिन देवता से जिन-जिन देवी का आविर्भाव हुआ था, उन-उन देवी को उन्हीं देवता को अर्पित कर दिया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने सभी योगीगण के गुरु, सभी के ईश्वर शंकर को बुला कर उनसे यह प्रिय वाक्य कहा कि "आप सिंहवाहिनी भगवती को ग्रहण करिये।" महेश्वर ने कृष्ण का यह कथन सुनकर तनिक मुस्कान के साथ, तथापि भयपूर्ण चित्त से विनीत वचनों द्वारा प्राणों के ईश्वर अविनाशी श्रीकृष्ण प्रभु से कहा–॥३-५॥

श्रीमहेश्वर उवाच

अधुनाऽहं च गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा।
त्वद्भक्त्यैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम्॥६॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम्।
मुक्तीच्छाध्वंसरूपां च सकामां कामवर्धिनीम्॥७॥

तपस्याच्छन्नरूपां च महामोहकरण्डिकाम्। भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम्[१]॥८॥

शश्वद्विबुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम्।
शश्वद्विभोगसारां[२] च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्॥९॥

नीललोहित भगवान् महेश्वर कहते हैं—हे विभो! अभी मैं साधारण लोगों के समान प्रकृति को ग्रहण करने का इच्छुक नहीं हूं। यह प्रकृति ही आपकी भक्ति तथा आपके दास कार्य की विरोधिनी है। यह तो योगमार्ग के लिये कपाट स्वरूप जो है। यह तत्व ज्ञान को आच्छादित कर देती हैं। इन विषयानुरागिणी प्रकृति के कारण ही प्राणीगण मोक्षकामना नहीं कर पाते तथा उत्तरोत्तर उनमें विषयों के प्रति अनुराग वर्द्धित होता जाता है। यह प्रकृति तप पर आच्छादन कर देती है। यह प्रकृति ही महामोह का निवास स्थान है। तप का लोप कर देती है। यह काम भोग को बढ़ाने वाली कामुकी है। यह भयंकर संसार रूपी कारागार की शृंखला बन्धनरूपा है। यह सुबुद्धिनाशकारिणी, दुर्बुद्धि की जन्मदात्री है। यह विषयेच्छा विवर्द्धिनी भी है।।६-९।।

नेच्छामि गृहिणीं नाथ वरं देहि मदीप्सितम्।
यस्य यद्वाञ्छितं तस्मै तद्ददाति तदीश्वरः॥१०॥

त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्धतेऽनिशम्। तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने॥११॥

त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणं सन्मङ्गलालयम्।
स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन्गायन्भ्रमाम्यहम्॥१२॥

हे नाथ! मुझे ऐसी गृहिणी की कामना है ही नहीं। आप मुझे अभिलषित वर प्रदान करें। हे भक्तवत्सल जगत्पति! भक्तजन जो इच्छा करते हैं, उनको वही प्रदान करिये। हे जगदीश्वर! मेरी अभिलाषा है कि आपके दासकार्य के प्रति मेरी भक्ति में वृद्धि होती रहे। आपके पवित्र नाम-जप तथा पादसेवन से कदापि मुझे तृप्ति न हो (अर्थात् बारम्बार वही करता रहूं)। मैं स्वप्न-निद्रा-जागरणादि सभी अवस्था में अपने पांचों मुखों से बारम्बार आपका नाम-जप तथा गुणगान करता-करता भ्रमण करता रहूं।।१०-१२।।

आकल्पकोटि कोटिं च त्वद्रूपध्यानतत्परम्।
भोगेच्छाविषये नैव योगे तपसि मन्मनः॥१३॥

कोटि-कोटि कल्प पर्यन्त मेरा चित्त आपके श्यामल रूप के ध्यान में निमग्न रहे। कभी भी मेरा चित्त विषयों की, भोग की कामना न करे। मेरा मन योग तथा तप में ही लगा रहे।।१३।।

त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्तने। सदोल्लसितमेषा च विरतौ विरतिं लभेत्॥१४॥

आपकी सेवा, आपकी पूजा-वन्दना-नाम-कीर्त्तन में ही मेरा चित्त सतत् उल्लासित रहे। इससे

१. एष श्लोकः क्वचित् पुस्तके नास्ति।
२. क. ०साध्यां च वि।

क्षण मात्र के लिये भी विरत होने पर मेरा मन अत्यन्त क्लेशग्रस्त हो जाता है। अतएव इस समय मैं किसी भी प्रकार से प्रकृति देवी को ग्रहण नहीं कर सकता।।१४।।

स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम्॥१५॥
समर्पणं चाऽऽत्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम्। वरं वरेश देहीदं नवधाभक्तिलक्षणम्॥१६॥

हे वरेश! अतः आप अपना स्मरण, अपने नाम-गुण का कीर्त्तन, श्रवण, अपने मंगलमय नाम का जप, अपने कमनीय रूप का ध्यान, आपकी चरणसेवा, आपका स्तवपाठ, आपके समक्ष आत्मसमर्पण, नित्य आपके नैवेद्य का भोजन—इस नवधा भक्तिलक्षण प्राप्त करने का वर मुझे दीजिये। मुझे यहीं वांछित है।।१५-१६।।

सार्ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यं साम्यलीनताम्।
वदन्ति षड्विधां मुक्तिं मुक्ता मुक्तिविदो विभो॥१७॥

हे प्रभो! मुक्तिविज्ञ मनीषी लोग सार्ष्टि (जिसके द्वारा जगदीश्वर के समान षड्विध ऐश्वर्य का भागी होना कहा गया है), सालोक्य (गोलोक धाम वास), सारूप्य (परमेश्वरवत् रूप धारी होना), सामीप्य (सदा ईश्वर सन्निधि में स्थित रहना), साम्य (ईश्वर समान होना), लीनता (परमेश्वर में लय), इन छः प्रकार की मुक्ति का वर्णन कर गये हैं।।१७।।

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसायिता॥१८॥

अणिमा (सूक्ष्मतम रूप धारण शक्ति), लघिमा (लघुता लाभ हल्का होकर आकाश में उठना), प्राप्ति (कुछ भी अप्राप्त न होना), प्राकाम्य (यथेच्छा आवागमन शक्तिलाभ, इच्छा में व्याघात न होना), महिमा (सर्वोत्कृष्टत्व लाभ), ईशित्व (ईश्वरत्व), वशित्व (सब कुछ वशीभूत करना), सर्वकामावसायित्व (सभी कामनाओं की प्राप्ति) ये अष्टैश्वर्य कहे गये हैं।।१८।।

सार्वज्ञं दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम्। वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्त्रष्टुं संहर्तुमीशता॥१९॥
अमरत्वं च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादश स्मृताः।
योगास्तपांसि सर्वाणि दानानि च व्रतानि च॥२०॥

सर्वज्ञत्व, दूरश्रवण (दूर की बातों का श्रवण), परकाया में प्रवेश की शक्ति, वाक्सिद्धि (वाणी से कहा गया सत्य होना), कल्पवृक्षत्व (जैसे कल्पवृक्ष इच्छा पूर्ण करता है, वैसी शक्ति सम्पन्न होना), सृष्टि तथा संहार की क्षमता, अमरत्व एवं सर्वाग्रता (सर्वश्रेष्ठत्व प्राप्त होना), ये अष्टादश सिद्धि वर्णित हैं। योग, तप, सभी प्रकार के दान तथा व्रत-।।१९-२०।।

यशः कीर्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च। भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम्॥२१॥
सुरार्चादर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम्। स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम्॥२२॥

ब्रह्मत्वं चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वं च परं पदम्।
अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्ति वा॥२३॥
सर्वाण्येतानि सर्वेश कथितानि च यानि च।
तव भक्तिकलांशस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२४॥

यश, कीर्त्ति, सत्यवादिता, उपवासी रहना, सभी तरह के धर्मकृत्य, सर्व तीर्थभ्रमण तथा वहां स्नान, देव-देवी पूजन, देवता दर्शन, सात बार सातों द्वीपों की प्रदक्षिणा, सातों समुद्र में स्नान, सभी स्वर्गों का दर्शन, ब्रह्मत्व, रुद्रत्व, विष्णुत्व आदि परमपद लाभ अथवा इन सबसे भी बढ़ कर विशेष वांछित-प्रार्थनीय पदार्थ हैं, इन सबकी महत्ता आपकी भक्ति के एक अंश का सोलहवां अंश भी नहीं है॥२१-२४॥

शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम्।
प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्वसुखप्रदम्॥२५॥

योगीगण के गुरु महेश्वर का यह कथन सुनकर मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण प्रभु ने यह सुखप्रद तथा सत्य वाक्य शंकर से कहा-॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदां वर। कल्पकोटिशतं यावत्पूर्णं शश्वदहर्निशम्॥२६॥
वरस्तपस्विनां त्वं च सिद्धानां योगिनां तथा।
ज्ञानिनां वैष्णवानां च सुराणां च सुरेश्वर॥२७॥
अमरत्वं लभ[1] भव भव मृत्युञ्जयो महान्।
सर्वसिद्धिं च वेदांश्च सर्वज्ञत्वं च मद्वरात्॥२८॥

श्रीभगवान् कहते हैं-हे सर्वेश्वर! सर्वज्ञप्रवर महादेव! आप शतकोटि कल्प पर्यन्त दिन-रात बारम्बार मेरी सेवा करिये। हे सुरेश्वर! आप तपस्वी, सिद्धयोगी, ज्ञानी, वैष्णव तथा सभी देवगण में श्रेष्ठ हैं। आपको मेरे वर द्वारा अमरत्व लाभ हो। आप मृत्युंजय होकर सबसे महान् हों। आप सर्वसिद्धि, समस्त वेदज्ञान तथा सर्वज्ञता प्राप्त करें॥२६-२८॥

असंख्यं ब्रह्मणां पात्रं लीलया वत्स पश्यसि।
अद्यप्रभृति ज्ञानेन तेजसा वचसा शिव॥२९॥
पराक्रमेण यशसा महसा मत्समो भव। प्राणानामधिकस्त्वं च न भक्तस्त्वपरो मम॥३०॥
त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतनाः॥३१॥

१. क. ॰भत्वं च भ॰।

पच्यन्ते ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कल्पकोटिशतान्ते च ग्रहीष्यसि शिवां शिव॥३२॥

आप लीलाक्रम में असंख्य ब्रह्माओं का अवसान होते अनायास देखेंगे। आज से आप यश, ज्ञान, तेजः, वयक्रम, पराक्रम तथा प्रताप में मेरे ही तुल्य होंगे। आप मुझे तो प्राणों से भी प्रिय हैं। आपके समान मेरा भक्त तथा आपके समान मेरा प्रिय बन्धु अन्य कोई भी नहीं है। आप मेरे आत्मस्वरूप हैं। जो पापी, दुर्बुद्धि, अज्ञानी आपकी निन्दा करेंगे, वे सभी जब तक सृष्टि में चन्द्रमा-सूर्य की विद्यमानता है, तब तक वे घोर कालसूत्र नरक में अनन्त दुःख-क्लेश का भोग करेंगे! तथापि हे शिव! क्या आप अब शतकोटि कल्पों के उपरान्त शिवा को ग्रहण करेंगे?॥२९-३२॥

ममाव्यर्थं च वचनं पालनं कर्तुमर्हसि। त्वन्मुखान्निर्गतं वाक्यं न करोम्यधुनेति च॥३३॥
मद्वाक्यं च स्ववाक्यं च पालनं तत्करिष्यसि।
गृहीत्वा प्रकृतिं शंभो दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥३४॥
सुखं महच्च शृङ्गारं करिष्यसि न संशयः।
न केवलं तपस्वी त्वमीश्वरो मत्समो महान्॥३५॥

हे महेश्वर! आपने जिन सब वाक्यों को अभी कहा है, उन सबका मैंने पालन कर दिया। अब आप भी मेरे व्यर्थ न जाने वाले अव्यर्थ कथन का पालन करें। यही उचित है। आपमें तथा मुझमें कोई भेद ही नहीं है। इसी प्रकार मेरे तथा आपके वाक्यों में भी कोई भेद नहीं है। इसलिये हम दोनों को एक-दूसरे के वाक्य का पालन करना ही होगा। हे शंभु! मेरे तथा आपके कथन का पालन तभी होगा। आपने अभी जो कहा कि प्रकृति को ग्रहण नहीं करूंगा, मैं यह नहीं मान सकता। हे शंभु! आप द्वारा मेरे वाक्य का पालन उसी समय सम्पन्न कहा जायेगा, जब आप प्रकृति का वरण करके दिव्यमान वाले (देवगण वाले) सहस्र वर्ष पर्यन्त महासुख एवं शृंगार जनित आनन्द का उपभोग करेंगे। यह निःसंशय है। आप तो केवल तपस्वी तथा योगी ही नहीं हैं, प्रत्युत मेरे समान महान् ईश्वर भी हैं!॥३३-३५॥

काले गृही तपस्वी च योगी स्वेच्छामयो हि यः।
दुःखं च दारसंयोगे यत्त्वया कथितं शिव॥३६॥
कुस्त्री ददाति दुःखं च स्वामिने न पतिव्रता।
कुले महति या जाता कुलजा कुलपालिका॥३७॥
करोति पालनं स्नेहात्सत्पुत्रस्य समं पतिम्। पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोषिताम्॥३८॥

हे शिव! जो स्वेच्छामय अर्थात् इच्छामात्र से लोगों की अभिलाषा पूर्ण करने में समर्थ हैं, वे मेरी तरह समय पर गृही, तपस्वी तथा योगी होकर समय व्यतीत करने में भी समर्थ होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। आपने जो स्त्री वरण को दुःख का विषय कहा, उसका भी उत्तर सुनिये। कुलटा-निन्दित श्रेणी की स्त्रियां ही पति को दुःखी करती हैं। पतिव्रता नारी कभी भी ऐसा दुष्कार्य नहीं करती। ऐसी नारी

महान् वंश में जन्म लेकर कुलधर्म का पालन करती हैं। ये कुलपालिका पतिव्रता नारी पति का पालन पुत्र के समान करती हैं। उनके लिये पति ही एकमात्र बन्धु, आश्रय, पालक एवं पति ही देवता होता है॥३६-३८॥

पतितोऽपतितो वाऽपि कृपणश्चेश्वरोऽथवा।
असत्कुलप्रसूता याः पित्रोर्दुःशीलमिश्रिताः॥३९॥
ध्रुवं ताः परभोग्याश्च पतिं निन्दन्ति संततम्।
आवयोरतिरिक्तं च या पश्यति पतिं सती॥४०॥

भले पति पतित क्यों न हो अथवा अपतित ही क्यों न हो, वह चाहे धनी हो किंवा दरिद्र हो, नारी इन सबका कदापि विचार न करे। केवल पति सेवा में लगी रहे। जो असत्कुल में उत्पन्न होकर अपने पिता-माता से असत् तथा दुःशीलता की शिक्षा पाती हैं, उसमें माता-पिता का दुःस्वभाव मिला रहता है। ये परभोग्या (कुलटा) होती हैं। वे सतत् पति निन्दा करती रहती हैं। लेकिन जो सती नारी है, वह तो पति को मुझसे तथा आपसे भी अधिक पूज्य मानती है!॥३९-४०॥

गोलोके स्वामिना सार्द्धं कोटिकल्पं प्रमोदते।
भविता सा शिवा शैवी प्रकृतिर्वैष्णवी शिव॥४१॥

वह एक कोटि कल्प पर्यन्त स्वामी के साथ गोलोक में आनन्द भोग करती है। हे शिव! इसके पश्चात् वह नारी शैवी किंवा वैष्णवी प्रकृति में लीन हो जाती है। हे शिव! वह वैष्णवी प्रकृति शिवप्रिया (आपकी प्रिया) होकर आपके लिये कल्याणप्रदा होगी॥४१॥

मदाज्ञया च तां साध्वीं ग्रहीष्यसि भवाय च।
प्रकृत्या योनिसंयुक्तं त्वल्लिङ्गं तीर्थमृत्कृतम्॥४२॥
तीर्थे सहस्रं संपूज्य भक्त्या पञ्चोपचारतः। सदक्षिणं संयतो यः पवित्रश्च जितेन्द्रियः॥४३॥
कोटिकल्पं च गोलोके मोदते च मया सह।
लक्षं तीर्थे पूजयेद्यो विधिवत्साधुदक्षिणम्॥४४॥
न च्युतिस्तस्य गोलोकात्स भवेदावयोः समः।
मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तीर्थवालुकयाऽपि वा॥४५॥

आप मेरी आज्ञा को अंगीकृत करके संसार के सुख के लिये प्रकृति को अवश्य ग्रहण करें और भी कहता हूं कि जो कोई पवित्रभाव से इन्द्रियों का संयम करके तीर्थस्थान में वहां की मृत्तिका द्वारा प्रकृति के योनि चिह्न (पीठिका) के साथ आपका लिंग बना कर भक्ति के साथ पंचोपचार से १००० बार उसकी पूजा करेगा, वह कोटि कल्प पर्यन्त मेरे इस गोलोक धाम में मेरे सहित आनन्दोपभोग करेगा। जो व्यक्ति तीर्थस्थल में सविधि प्रचुर दक्षिणा युक्त एक लाख शिवलिंग की पूजा करेगा, वह कभी भी गोलोक से च्युत ही नहीं होगा। वह चिरकाल तक हम लोगों के समान होकर गोलोक में ही

निवास करेगा। मनुष्य को चाहिये कि वह तीर्थ मृत्तिका, भस्म, गौ के गोबर अथवा तीर्थ की बालू से ही लिंग निर्माण करे।।४२-४५।।

कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि। प्रजावान्भूमिमान्विद्वान्पुत्रवान्धनवांस्तथा॥४६॥

इस प्रकार से लिंग बनाकर जो व्यक्ति एक बार भी उसकी पूजा करता है, उसे दस सहस्र कल्प पर्यन्त स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है। तदनन्तर वह सम्राट् होकर (पृथिवी पर) प्रजापालन करेगा तथा विद्या, सन्तान, धन लाभ द्वारा अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत करेगा।।४६।।

ज्ञानवान्मुक्तिमान्साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्। शिवलिङ्गार्चनस्थानमतीर्थं तीर्थमेव तत्।
भवेत्तत्र मृतः पापी शिवलोकं स गच्छति॥४७॥

वह लिंग पूजा के प्रभाव से साधु चित्त एवं ज्ञानी होकर मुक्तिलाभ भी करेगा। किम्बहुना जिस स्थान पर शिवलिंग की पूजा की जाती है, यदि वह स्थल तीर्थ नहीं भी हो, तथापि तीर्थरूपेण परिगणित हो जाता है। यदि उस स्थान पर अत्यन्त पातकी भी मृत होता है, तब भी वह अनायास शिवलोक प्राप्त करेगा।।४७।।

महादेव महादेव महादेवेति वादिनः। पश्चाद्यामि महास्तोत्रनामश्रवणलोभतः॥४८॥

हे महादेव! जो कोई मनुष्य 'महादेव' शब्द का उच्चारण करता है, मैं इस मधुर नाम को सुनने की कामना से उस व्यक्ति के पीछे-पीछे व्यग्रता के साथ चलने लगता हूं। मैं इस नाम रूप महास्तोत्र को सुनने के लोभ से उस व्यक्ति का अनुसरण (पीछा) करता रहता हूं।।४८।।

शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥४९॥
शिवकल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम्।
यतस्तत्प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः॥५०॥
विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे। शिवेति शब्दमुच्चार्य लभेत्सर्वशिवं नरः॥५१॥

जिसने शिव-शिव कहते प्राण त्याग किया है, वह करोड़ों जन्मों में अर्जित पापों से मुक्त होकर मुक्तिलाभ करता है। शिव शब्द से कल्याण का तथा कल्याण शब्द से मुक्ति का बोध होता है। 'शिव' 'शिव' का उच्चारण करने वाला मनुष्य अनायास मुक्ति प्राप्त कर लेता है। तभी महादेव का 'शिव' यह नाम है। हे शिव! मनुष्य लोग धन अथवा बन्धुजन के विच्छेद (विछोह) जनित शोक समुद्र में डूब कर यदि एक बार भी 'शिव' शब्द का उच्चारण कर सकें, तब अनायास उनको सभी प्रकार का मंगललाभ हो सकेगा!।।४९-५१।।

पापघ्ने वर्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा। पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्तितः॥५२॥
शिवेति च शिवं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम्॥५३॥

"शि" पापनाशक शब्द है। "व" मुक्तिप्रद है। इसीलिये प्रतीत होता है कि विद्वानों ने मनुष्यों के पापनाशार्थ तथा मुक्तिलाभार्थ महादेव को ही शिव शब्द से कीर्त्तित किया है। जिस मनुष्य की वाणी में सतत् "शिव" "शिव" शब्द स्थित रहा करता है, उसके कोटि जन्मार्जित पातकों का निश्चितरूपेण नाश हो जायेगा। यह निश्चित है।।५२-५३।।

इत्युक्त्वा शूलिने कृष्णो दत्त्वा कल्पतरुं मनुम्। तत्त्वज्ञानं मृत्युञ्जयमवोचत्सिंहवाहिनीम्।।५४।।

भगवान् श्रीकृष्णदेव ने त्रिपुरारि महादेव से यह कह कर उनको कल्पतरु रूप मन्त्र मृत्यु विजय का तत्वज्ञान प्रदान करके भगवती सिंहवाहिनी देवी से कहा-।।५४।।

श्रीभगवानुवाच

अधुना तिष्ठ वत्से त्वं गोलोके मम संनिधौ।
काले भजिष्यसि शिवं शिवदं च शिवायनम्।।५५।।

तेजःसु[1] सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने। संहृत्य दैत्यान्सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता।।५६।।

श्रीभगवान् कहते हैं-हे वत्से (पुत्री)! इस समय तुम मेरे पास सुख पूर्वक गोलोक धाम में निवास करो। तदनन्तर समय आने पर सर्वमंगलाधार मंगलप्रद शिव को प्राप्त करोगी। हे वरानने! इसके पश्चात् तुम देवगण के तेजपुंज से आविर्भूत होकर दैत्यसंहार करके जगत् में सर्वपूज्य हो जाओगी।।५५-५६।।

ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति।
भविता दक्षकन्या त्वं सुशीला शंभुगेहिनी।।५७।।

ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया। मेनायां शैलभार्यायां भविता पार्वतीति च।।५८।।

हे सती! इसके पश्चात् एक विशेष कल्प का सत्ययुग आने पर शान्त स्वभाव दक्षकन्या के रूप में जन्म लेकर निश्चित रूप से शंभुपत्नी हो जाओगी। उसके पश्चात् दक्षयज्ञ में स्वामीनिन्दा सुनकर अपना शरीर त्याग करोगी तथा हिमालय पत्नी मेनका के गर्भ से जन्म लेकर पार्वती नाम से प्रसिद्ध हो जाओगी।।५७-५८।।

दिव्यं वर्षसहस्रं च विहरिष्यसि शंभुना। पूर्णं ततः सर्वकालमभेदं त्वं लभिष्यसि।।५९।।

काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा सुपूजिते। भविता प्रतिवर्षे च शारदीया सुरेश्वरि।।६०।।

तत्पश्चात् देवमान वाले १००० वर्ष (१००० × ३६० मानव वर्ष) तक शंभु के साथ विहार करके तुम पति के साथ मिलित होकर हरगौरी रूप से स्थित होगी (अर्थात् शिव से अभिन्नता प्राप्त करोगी)। हे सर्वपूजित सुरेश्वरी! उस समय से प्रति वर्ष उत्तम काल में सभी लोकों के निवासी तुम्हारी शारदीया पूजा सम्पन्न करेंगे।।५९-६०।।

---

१. ख. ०तेजसा स०।

ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेवता। भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा॥६१॥
महाज्ञया शिवकृतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि। पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम्॥६२॥

भविष्यन्ति महान्तश्च तवैव परिचारकाः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः॥६३॥

प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक नगर में तुम्हारी पूजा ग्रामदेवीरूप में अन्य सुन्दर नामों से की जायेगी। मेरी आज्ञा से शिव कथित नाना तन्त्रों द्वारा तुम्हारी पूजाविधि तथा स्तव-कवचादि का विधान भी प्रचलित हो जायेगा। यही विधान मैं भी तुम्हारे लिये प्रचलित करूंगा। इस प्रकार तुम्हारे परिचारक (भक्त) धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चतुर्वर्ग फलप्रद सिद्धियां भी प्राप्त करेंगे।।६१-६३।।

ये त्वां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते।
तेषां यशश्च कीर्तिश्च[1] धर्मैश्वर्यं च वर्द्धते॥६४॥

हे माता! इस पुण्यभूमि भारतवर्ष में जो कोई तुम्हारा भजन करेंगे, उनके यश, कीर्त्ति, धर्म, ऐश्वर्य की सीमा भी नहीं रहेगी।।६४।।

इत्युक्त्वा प्रकृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम्।
दत्त्वा सकामबीजं च मन्त्रराजमनुत्तमम्॥६५॥
चकार विधिना ध्यानं भक्तं भक्तानुकम्पया।
श्रीमायाकामबीजाढ्यं ददौ मन्त्रं दशाक्षरम्॥६६॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रकृति देवी से यह कहकर उनको अत्यन्त श्रेष्ठ कामबीज (क्लीं) युक्त एकादश अक्षरात्मक मन्त्र प्रदान किया। यही अत्युत्तम मन्त्रराज है। तदनन्तर श्रीकृष्णदेव ने भगवती प्रकृति को ध्यान विधि का उपदेश देकर भक्तों पर अनुग्रह हेतु भक्त के लिये उपयोगी श्रीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं) तथा कामबीज (क्लीं) युक्त दशाक्षर मन्त्र भी प्रदान किया।।६५-६६।।

सृष्ट्यौपयौगिकीं शक्तिं सर्वसिद्धिं च कामदाम्।
तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वं ज्ञानं तस्यै ददौ विभुः॥६७॥
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः।
कवचं स्तोत्रसहितं शङ्कराय तथा द्विज॥६८॥

श्रीकृष्ण ने इसी के साथ प्रकृति देवी को सृष्टिकारिणी शक्ति, अभीष्टदात्री सर्वसिद्धियां तथा अत्युत्तम तत्वज्ञान भी प्रदान किया। हे द्विजप्रवर! तत्पश्चात् जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने शंकर को भी पुनः स्तव, कवचयुक्त त्रयोदशाक्षर मन्त्र प्रदान किया।।६७-६८।।

दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च। कामाय वह्नये चैव कुबेराय च वायवे॥६९॥

---

१. ख. र्ति: श्रीर्धनैश्च०।

एवं कुबेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम्।
विधिं प्रोवाच सृष्ट्यर्थं विधातुर्विधिरेव सः॥७०॥

इसके अनन्तर सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण ने धर्म, कामदेव, अग्नि, कुबेर तथा वायु को वही मन्त्र तथा सिद्धिज्ञानादि प्रदान किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कुबेर आदि देवगण को परम मन्त्र प्रदान करके, सृष्टि करने का आदेश ब्रह्मा को देकर उनसे कहा—॥६९-७०॥

श्रीभगवानुवाच

मदीयं च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां पराम्॥७१॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौ मालां मनोरमाम्।
जगाम सार्धं गोपीभिर्गोपैर्वृन्दावनं तथा॥७२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे महाभाग विधाता! मेरी आज्ञा से आप तप करिये तथा उसके फलस्वरूप नाना प्रकार की सृष्टि करिये।" श्रीकृष्ण ने विधाता को यह आदेश देकर उनको एक मनोहारी माला प्रदान किया तथा स्वयं गोप-गोपीगण सहित (गोलोकस्थ) वृन्दावन चले गये॥७१-७२॥

॥षष्ठ अध्याय समाप्त॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मा द्वारा पृथिवी आदि के सृष्टिकार्य का वर्णन

सौतिरुवाच

तदा ब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम्। ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेदसा॥१॥
ससृजे पर्वतानष्टौ प्रधानान्सुमनोहरान्। क्षुद्रानसंख्यान्किं ब्रूमः प्रधानाख्यां निशामय॥२॥

सौति (सूतपुत्र उग्रश्रवा) कहते हैं—हे तपोधन शौनक! तदनन्तर ब्रह्मा ने तपस्या द्वारा यथाभिलषित सिद्धि पाकर सर्वाग्र में मधु-कैटभ दैत्यों के मेद से पृथिवी (मेदिनीं) का सृजन कार्य किया। तदनन्तर

अत्यन्त सुन्दर प्रधान आठ पर्वतों का सृजन करके छोटे-छोटे असंख्य पर्वतों की सृष्टि किया। उन सबके नामों का वर्णन कर सकना तो अतीव दुष्कर कार्य है, तथापि प्रधान पर्वतों का नाम श्रवण करिये।।१-२।।

सुमेरुं चैव कैलासं मलयं च हिमालयम्। उदयं च तथाऽस्तं च सुवेलं गन्धमादनम्।।३।।

वे प्रधान पर्वत हैं—सुमेरु, कैलास, मलयाचल, उदयगिरि, अस्त पर्वत, सुबेल, गन्धमादन तथा हिमाचल।।३।।

समुद्रान्ससृजे सप्त नदान्कतिविधा नदीः। वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्या निशामय।।४।।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्। लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान्।।५।।

इसके अनन्तर ब्रह्मदेव ने सप्त सागर, अनेक नद, अनेक नदियों-वृक्षों-ग्रामों तथा नगरों का सृजन किया। ये सप्त सागर हैं—लवणसागर, इक्षु सागर, सुरा सागर, घृत सागर, दधि सागर, क्षीर सागर तथा शुद्ध जल के सागर। लवण सागर एक लाख योजन लम्बाई-चौड़ाई के परिमाण वाला है। बाकी क्रमशः पहले वाले से दूसरा सागर उससे द्विगुण होता चला गया है।।४-५।।

सप्तद्वीपांश्च तद्भुमिमण्डले कमलाकृते। उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमाशैलांश्च सप्त च।।६।।

निबोध विप्र द्वीपाख्यां पुरा या विधिना कृता।
जम्बूशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपौष्करान् ।।७।।

इसके पश्चात् सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मदेव ने कमलाकृति इस पृथिवी मण्डल पर सप्त द्वीप, सप्त उपद्वीप तथा सात सीमा विभाजन करने वाले पर्वतों का सृजन किया। हे ब्राह्मणप्रवर! अब सप्त द्वीपों का नाम श्रवण करिये। यह पूर्वकाल में विधाता जगत्पति ब्रह्मा द्वारा निश्चित किया गया है। यथा—जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, कुशद्वीप, प्लक्षद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, न्यग्रोधद्वीप, पुष्करद्वीप।।६-७।।

मेरोरष्टसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः। अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहराः।।८।।
मूलेऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः। ऊर्ध्वे स्वर्गाश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशामय।।९।।

भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम्।
जनोलोकं तपोलोकं सत्यलोकं च शौनक।।१०।।

इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्मा ने आठों लोकपालों के विहार के लिये सुमेरु पर्वत के आठ शृंगों पर आठ मनोहर पुरियों का सृजन किया। जगत्पति ब्रह्मा ने सुमेरु के मूल देश में अनन्त देव हेतु एक नगरी का भी निर्माग करके सुमेरु के ऊपरी भाग में सप्त स्वर्ग की भी सृष्टि किया। हे शौनक! अब उनका नाम सुनिये। वे हैं—भूर्लोक, भुवलोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक।।८-१०।।

शृङ्गमूर्ध्नि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम्। तदूर्ध्वे ध्रुवलोकं च सर्वतः सुमनोहरम्।।११।।

तदधः सप्त पातालान्निर्ममे जगदीश्वरः। स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानघोऽधः क्रमतो मुने॥१२॥
अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम्। महातलं च पातालं रसातलमधस्ततः॥१३॥

इनके सृजन के उपरान्त ब्रह्मदेव ने मेरुशृंग के अति ऊर्ध्वभाग में जरा आदि रहित ब्रह्मलोक का सृजन किया। उसके ऊर्ध्व में ब्रह्मा ने सभी प्रकार से मनोहर ध्रुवलोक की सृष्टि चतुर्दिक् किया। उन जगदीश्वर ने अत्यन्त नीचे की ओर सप्त पाताल की भी सृष्टि किया था। ये क्रमशः एक के नीचे एक हैं। इनके नाम हैं–अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल, रसातल।।११-१३।।

सप्तद्वीपैः सप्तनाकैः सप्तपातालसंज्ञकैः। एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकृतमेव च॥१४॥
एवं चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव चं महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु च शौनक॥१५॥

हे मुनिप्रवर! ये सप्त द्वीप, सप्त स्वर्ग, सप्त पाताल हैं। इनका वर्णन मैंने आपसे कर दिया। इनको तथा इनके लोकों को मिला कर एक ब्रह्माण्ड होता है। यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा के ही अधिकार में रहता है। हे शौनक! इसी प्रकार असंख्य ब्रह्माण्ड हैं तथा सभी कृत्रिम हैं। महाविष्णु के प्रत्येक रोमछिद्र में एक-एक ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं।।१४-१५।।

प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सुरा[1] नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया॥१६॥
ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः।
न शङ्करो न धर्मश्च न च विष्णुश्च के सुराः॥१७॥

प्रभु परमेश्वर श्रीकृष्ण की माया से प्रति ब्रह्माण्ड में इसी प्रकार से दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवगण तथा मनुष्य आदि सभी पदार्थ स्थित रहते हैं। सामान्य देवगण की तो बात ही क्या? स्वयं जगत्पति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि श्रेष्ठ देवता भी यह गणना नहीं कर सकते कि कुल कितने ब्रह्माण्ड हैं?।।१६-१७।।

संख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथाऽपि सः।
विश्वाकाशदिशां चैव सर्वतो यद्यपि क्षमः॥१८॥
कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च।
अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च॥१९॥

मात्र परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण ही यह गणना कर सकने में समर्थ हैं। यद्यपि वे इस कार्य में समर्थ हैं, तथापि विश्व, आकाश, दिशाओं की संख्यागणना की उनको कोई इच्छा ही नहीं है। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! समस्त विश्व एवं विश्व में स्थित समस्त वस्तु-पदार्थ भी कृत्रिम है। वह अनित्य तथा स्वप्नदर्शनवत् नश्वर कहा गया है।।१८-१९।।

---

१. क. ०राऽसुराद०।

वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः।
नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चाऽऽत्माकाशदिशो यथा॥२०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

केवल परमात्मा ही इन सब दिक् आकाशादि से पृथक् हैं। वे ही एकमात्र नित्य हैं। इसी प्रकार से वैकुण्ठ-शिवलोक तथा गोलोक रूपी लोकत्रय ही नित्य हैं तथा वे सब कृत्रिम विश्व से परे भी हैं।।२०।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टमोऽध्यायः

वेदादि शास्त्रों की उत्पत्ति, स्वायम्भुव मनु-मानस पुत्रों-पुलत्स्यादि ऋषिगण की उत्पत्ति, ब्रह्मा तथा नारद को शाप प्राप्ति

सौतिरुवाच

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति।
चकार वीर्याधानं च कामुक्यां कामुको यथा॥१॥
सा दिव्यं शतवर्षं च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम्। सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान्मनोहरान्॥२॥

सौति कहते हैं—प्रजापति ब्रह्मा इस प्रकार से विश्व-संसार का निर्माण करके अन्त में प्रियतमा सावित्री देवी के प्रति उस प्रकार से आसक्त हो गये, जिस प्रकार से कामुक व्यक्ति कामुकी नारी के प्रति आसक्त हो जाता है। उसी प्रकार ब्रह्मा ने अत्यन्त रूपवती सावित्री का गर्भाधान किया। सुप्रसवा सावित्री देवी ने भी दिव्यमान से सौ वर्ष काल (१०० × ३६० मानव वर्ष) पर्यन्त इस दुःसह गर्भ का भार उठाया। अन्त में उन्होंने मनोहर चारों वेदों का प्रसव किया।।१-२।।

विविधाञ्शास्त्रसङ्घांश्च तर्कव्याकरणादिकान्।
षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः॥३॥
षड् रागान्सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान्। सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिं च कलहप्रियम्॥४॥

साथ ही तर्क-व्याकरणादि विविध शास्त्रसमूह को उत्पन्न करके उन्होंने दिव्यमूर्त्ति ३६ रागिनियों, नाना ताल समन्वित मनोहर छः रागों का प्रसव किया। तदनन्तर देवी सावित्री ने सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलहप्रिय कलियुग को भी जन्म दिया।।३-४।।

वर्षं मासमृतुं चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम्। दिनं रात्रिं च वारांश्च संध्यामुषसमेव च।।५।।

पुष्टिं च देवसेनां च मेधां च विजयां जयाम्।
षट् कृत्तिकाश्च योगांश्च करणं च तपोधन।।६।।

देवसेनां महाषष्ठीं कार्तिकेयप्रियां सतीम्। मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता।।७।।

हे तपोधन शौनक! तत्पश्चात् सावित्री ने वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण, दिन, रात्रि, वार, सन्ध्या तथा ऊषाकाल आदि का प्रसव करने के अनन्तर उन्होंने पुनः पुष्टि, देवसेना, मेधा, विजया, जया, छहों कृत्तिका एवं योगकरण प्रभृति को भी उत्पन्न किया। हे मुनिवर! तदनन्तर कार्त्तिकेय प्रिया देवसेना ही महाषष्ठी नाम वाली, प्रसिद्धा मातृगणों में प्रधाना और बालक-बालिकाओं की इष्टदेवता रूपा रक्षाकारिणी कही गयीं। ये भी सावित्री द्वारा उत्पन्न थीं।।५-७।।

ब्राह्मं पाद्मं च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम्। नित्यं नैमित्तिकं चैव द्विपरार्धं च प्राकृतम्।।८।।

चतुर्विधं च प्रलयं कालं वै मृत्युकन्यकाम्।
सर्वान्व्याधिगणांश्चैव सा प्रसूय स्तनं ददौ।।९।।

इसके अनन्तर देवी सावित्री ने ब्राह्म, पाद्म, वराह नामक तीनों कल्प, नित्य-नैमित्तिक-द्विपरार्द्ध-प्राकृत, इन चार प्रकार के प्रलयकाल को तथा मृत्यु नाम्नी कन्या एवं सभी प्रकार की व्याधियों को प्रसव किया। तदनन्तर देवी ने उन सबको अपना स्तनपान कराया।।८-९।।

अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत। अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वाद्बभूवात्यन्तकामिनी[१]।।१०।।

नाभिदेशाद्विश्वकर्मा जातो वै शिल्पिनां गुरुः।
महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः।।११।।

तत्पश्चात् ब्रह्मदेव की पीठ से अधर्म ने जन्म लिया। उसी क्षण अधर्म के वाम भाग से अलक्ष्मी नामक कामिनी उत्पन्न हो गई, जो अधर्म की पत्नी बनी। हे ऋषिप्रवर! इसी समय प्रजापति के नाभिस्थल से शिल्पीप्रवर विश्वकर्मा का और महाबली-पराक्रमी आठों वसुगण का भी जन्म हो गया!।।१०-११।।

अथ धातुश्च मनस आविर्भूता कुमारकाः।
चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा।।१२।।

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिनां वरः।।१३।।

---

१. क. ०भूव तस्य का०।

आविर्बभूवः मुखतः कुमारः कनकप्रभः।
दिव्यरूपधरः श्रीमान्सस्त्रीकः सुन्दरो युवा॥१४॥

इसके अनन्तर विधाता के मन से ५ वर्ष वय वाले अत्यन्त सुन्दर ४ कुमारों ने जन्म लिया। इनके देह ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान थे। इन कुमारों का नाम ज्येष्ठताक्रमेण इस प्रकार से है–सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार। ये सभी ज्ञानियों में श्रेष्ठ कहे जाते हैं। पुनः ब्रह्मा के मुखकमल से स्वायम्भुव मनु के नाम से प्रख्यात दिव्य रूपधारी अत्यन्त सुन्दर युवक अपनी पत्नी के साथ आविर्भूत हो गये।।१२-१४।।

क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्ना स्वायंभुवो मनुः।
या स्त्री सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला॥१५॥
सस्त्रीकश्च मनुस्तस्थौ धात्राज्ञापरिपालकः।
स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षितान्॥१६॥

ये स्वायम्भुव मनु क्षत्रियों के बीजरूप थे। ये सूर्य के समान उज्ज्वल देहकान्ति वाले थे। इनको देखने से ही प्रतीत हो रहा था कि ये अत्यन्त भाग्यवान् हैं। ये ही ऋषिगण के मूल कारण भी हैं। उनकी पत्नी अत्यन्त रूपमती थीं, जिनको देखने से ही प्रतीत हो रहा था कि ये तो लक्ष्मी की अंश हैं। इनका नाम था शतरूपा। तदनन्तर स्वायम्भुव मनु विधाता की आज्ञा मिलने की आशा के साथ पत्नी सहित श्रीकृष्ण के समक्ष खड़े हो गये! तब विधाता ने हर्षित होकर पुत्रों से कहा–।।१५-१६।।

सृष्टिं कर्तुं महाभागो महाभागवतान्द्विजः।
जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपरायणाः॥१७॥
चुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः। कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा॥१८॥
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो।
कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेषामेकः प्रकीर्तितः॥१९॥

ब्रह्मदेव ने महाभागवत चारों कुमारों से सृष्टि करने तथा गृहस्थ धर्म पालनार्थ कहा, तथापि उन चारों कृष्णपरायण महात्माओं ने ब्रह्मा से "नहीं" कहा और तप करने चले गये। हे मुनिप्रवर! जब चारों कुमार ने ब्रह्मा के कथन को नहीं माना, तब जगत्पति ब्रह्मदेव अत्यन्त रुष्ट हो गये। उनके इस क्रोध के कारण उनके ही ललाट से एकादश रुद्र आविर्भूत हो गये, जो ब्रह्मतेज से अत्यन्त दीप्त लग रहे थे। इनमें से एक का नाम संहर्त्ता होने के कारण कालाग्नि रुद्र कहा गया।।१७-१९।।

सर्वेषामेव विश्वानां स तामस इति स्मृतः।
राजसश्च स्वयं ब्रह्मा शिवो विष्णुश्च सात्त्विकौ॥२०॥
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः।
परमज्ञानिनो मूर्खा वदन्ति तामसं शिवम्॥२१॥

समस्त विश्व-संसार में एकमात्र वे ही प्रधान तमोगुण के आश्रय हैं। स्वयं ब्रह्मदेव राजस रजोगुणाधार हैं तथा शिव-विष्णु ही एकमात्र सात्विक (सत्वगुणाधार) हैं। गोलोकनाथ कृष्ण निर्गुण तथा प्रकृति से परे हैं। जो लोग परम अज्ञानी एवं मूर्ख हैं, वे ही शिव को तामस कहते हैं।।२०-२१।।

शुद्धसत्त्वस्वरूपं च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम्।
शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च॥२२॥
महान्महात्मा मतिमान्भीषणश्च भयङ्करः[1]।
[2]ऋतुध्वजश्चोर्ध्वकेशः पिङ्गलाक्षो रुचिः शुचिः॥२३॥

तथापि शिव तो शुद्धसत्वमय तथा निर्मल एवं वैष्णवगण में अग्रणी हैं। अब आप रुद्रों का वेदोक्त नाम श्रवण करें। वे नाम हैं—महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयंकर, ऋतुध्वज, ऊर्ध्वकेश, पिंगलाक्ष, रुचि तथा शुचि। ग्यारहवें हैं कालाग्नि रुद्र।।२२-२३।।

पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः।
दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात्क्रतुः स्वयम्॥२४॥
[3]अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः।
भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः॥२५॥
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा।
वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः॥२६॥
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा[4] गलात्।
वसिष्ठो रसनादेशात्प्रचेता अधरोष्ठतः॥२७॥

ब्रह्मदेव के दक्षिण कर्ण से पुलत्स्य, वाम से पुलह, दक्षिण नेत्र से अत्रि, वाम नेत्र से स्वयंक्रतु, नासिका से अरणि (पाठभेद से आरुणि) तथा अंगीरा ऋषि, मुख से मुनिवर रुचि, वामपार्श्व से भृगु, दक्षिण पार्श्व से दक्ष, ब्रह्मा की छाया से कर्दम, नाभि से पंचशिख, वक्ष से वोढु मुनि, कण्ठ से देवर्षि नारद, कन्धे से मरीचि मुनि, गले से अपान्तरतमा, जिह्वाग्र से वसिष्ठ, अधरोष्ठ से प्रचेता मुनि जन्मे।।२४-२७।।

हंसश्च[5] वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम्। सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराऽऽज्ञां सुतान्प्रति।
पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य तवमुवाच स नारदः॥२८॥

---

१. क. ॰रः। ऊर्ध्वतेजोर्ध्वके॰।
२. शतध्वज इति पाठान्तरम्।
३. अरुणिरिति क्वचित् पाठः। आरुणिरिति क्वचित् पाठः।
४. क. तमो ग॰।
५. हंसिरिति क्वचित् पाठः।

ब्रह्मा की वाम कुक्षि से हंस (पाठभेद से हंसी) तथा दक्षिण कोख (कुक्षि) से यति प्रकट हो गये। तब ब्रह्मा ने अपने पुत्रगण को सृष्टि हेतु आदेश दिया। पिता का वाक्य सुनकर नारद ने कहा–।।२८।।

नारद उवाच

पूर्वमानय मज्ज्येष्ठान्सनकादीन्पितामह। कारयित्वा दारयुक्तानस्मान्वद जगत्पते।।२९।।
पित्रा ते तपसे युक्ताः संसाराय वयं कथम्। अहो हन्त प्रभोर्बुद्धिर्विपरीताय कल्पते।।३०।।

कस्मै पुत्राय पीयूषात्परं दत्तं तपोऽधुना।
कस्मै ददासि विषयं विषमं च विषाधिकम्।।३१।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे पितामह! जगत्पति! आप पहले हमारे ज्येष्ठ भ्राता सनकादि को पत्नीयुक्त करके, तब हमें आदेश प्रदान करिये। तब आप अपनी इच्छानुरूप हमें सृष्टि हेतु आदेश दीजिये। हे ब्रह्मन्! आपने पिता होकर ही उनको तपःश्चरण में नियुक्त किया है, तब क्या कारण है कि आप मुझे अपार दुःखप्रद संसारी होने की आज्ञा दे रहे हैं? इसकी अपेक्षा दुःख का विषय क्या हो सकता है कि आप जैसे महात्मा की यह विपरीत बुद्धि हो रही है? आप विवेचना करें कि पिता के लिये तो सभी सन्तान समान स्नेह के पात्र होते हैं, तथापि यह कैसा आश्चर्य है? किसी पुत्र को तो आप अमृत से भी बढ़ कर सुखदायक तपस्यारूपी मधुरतम वस्तु दे रहे हैं, अन्य पुत्र को आप विष से भी अधिक भयंकर विषयोपभोगार्थ नियुक्त कर रहे हैं!।।२९–३१।।

अतीव निम्ने घोरे च भवाब्धौ यः पतेत्पितः।
निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च।।३२।।

निस्तारबीजं सर्वेषां बीजं च पुरुषोत्तमम्। सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम्।।३३।।
भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम्।।३४।।

हे पिता! आप यह तथ्य निश्चित रूप से जानते हैं कि जो व्यक्ति एक बार अति भयानक, गंभीर, संसार–सागर में डूब गया, कोटि कल्प काल में भी उसे वहां से छुटकारा नहीं मिलना है। तो सबके उद्धारक, सबके आदि कारण तथा सभी पुरुषों की तुलना में श्रेष्ठ हैं, जिनकी कृपा से जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता, जो भक्ति पथ के एकमात्र सहायक, भक्तवत्सल हैं, भक्तों को अपना किंकर मान कर उनकी सदा रक्षा करते रहते हैं।।३२–३४।।

भक्providedाराध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम्। मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे।।३५।।

विहाय कृष्णसेवां च पीयूषादधिकां प्रियाम्।
को मूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम्।।३६।।

जो भक्तों के परम प्रिय, भक्तों द्वारा आराधित, भक्तों की एकमात्र गति तथा आराध्य हैं,

भक्तजन अनायास ही जिनकी उपासना कर पाते हैं, जो निरन्तर सत्पथ का अवलंबन करने वाले हैं, ऐसे निर्मल स्वभाव वाले भक्तों पर कृपालु परमेश्वर हरि का भजन छोड़ कर कौन मूढ़ बुद्धि व्यक्ति विनाशकारण विषम विषयों के प्रति अपना मन लगायेगा?।।३५-३६।।

स्वप्नवन्नश्वरं तुच्छमसत्यं मृत्युकारणम्। यथा दीपशिखाग्रं च कीटानां सुमनोहरम्॥३७॥

यथा बडिशमांसं च मत्स्यापातसुखप्रदम्।
तथा विषयिणां तात विषयो मृत्युकारणम्॥३८॥

हे पिता! आप तो सर्वज्ञाता हैं। जिस प्रकार कीट-पतंगों को दीपशिखा मनोहर प्रतीत होती है तथा जिस प्रकार मछली फंसाने वाली बंसी में लगा मांस का खण्ड मछलियों को सुखप्रद प्रतीत होता है, तदनुरूप विषयासक्त लोगों को तो विषय भोग सुखप्रद प्रतीत होता है, जो वास्तव में स्वप्नवत् नश्वर, तुच्छ, असत्य एवं मृत्युकारण रूप हैं। वे इसी भ्रान्ति में नष्ट होते हैं।।३७-३८।।

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम विधेः पुरः।
तस्थौ तातं नमस्कृत्य ज्वलदग्निशिखोपमः॥३९॥

ब्रह्मा कोपपरीतश्च शशाप तनयं द्विज। उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्तास्यः स्फुरिताधरः॥४०॥

यह कहकर अग्निशिखा की तरह तेजपुंज कलेवर वाले परम वैष्णव नारद मौन हो गये। उन्होंने पिता को प्रणाम किया तथा वहीं स्थित हो गये। हे द्विज! यह सुन कर प्रजापति ब्रह्मा अत्यन्त क्रोधान्ध हो गये तथा उन्होंने अपने पुत्र नारद को शाप दे दिया। उस समय ब्रह्मा का शरीर क्रोध से कम्पित हो रहा था। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया, ओंठ तक क्रोध से फड़क रहे थे।।३९-४०।।

ब्रह्मोवाच

भविता ज्ञानलोपस्ते मच्छापेन च नारद।
क्रीडामृगश्च त्वं साध्यो योषिल्लुब्धश्च लम्पटः॥४१॥
स्थिरयौवनयुक्तानां रूपाढ्यानां मनोहरः।
पञ्चाशत्कामिनीनां च भर्ता च प्राणबल्लभः॥४२॥

शृङ्गारशास्त्रवेत्ता च महाशृङ्गारलोलुपः। नानाप्रकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब मेरे शाप के प्रभाव से तुम्हारा तत्वज्ञान लुप्त हो जायेगा। तुम कामिनी स्त्रियों के क्रीड़ामृग, नारीलोलुप तथा लम्पट हो जाओगे। तुम स्थिरयौवना, रूपलावण्यवती ५० स्त्रियों के प्राणप्रिय पति होगे। तुम उनका मन हर कर नित्य उनके साथ क्रीड़ा-कौतुक में उन्मत्तवत् रहोगे। तुम शृंगार शास्त्र के ज्ञाता, महाशृंगार में निष्णात, लोलुप, नाना प्रकार के शृंगार में निपुण गुरुगण के भी गुरु हो जाओगे।।४१-४३।।

गन्धर्वाणां च सुवरः सुस्वरश्च सुगायन। वीणावादनसंदर्भनिष्णातः स्थिरयौवनः॥४४॥

प्राज्ञो मधुरवाक्शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः।
भविष्यसि न संदेहो नामतश्चोपबर्हणः॥४५॥
ताभिर्दिव्यं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने। पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्परः॥४६॥
वत्स वैष्णवसंसर्गाद्वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्।
पुनः कृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममाऽऽत्मजः॥४७॥

तुम गन्धर्वों के आदिपुरुष, (वंश प्रवर्त्तक) हो जाओगे। तुम्हारा कण्ठ स्वर अत्यन्त मधुर होगा। तुम्हारा यौवन चिरस्थायी रहेगा। तुम वीणा वादन तथा गायन में अत्यन्त प्रसिद्धि लाभ करोगे। हे नारद! तुम प्राज्ञ, मीठा बोलने वाले, शान्त, सुशील तथा सुबुद्धिमान् कहलाओगे। तुम्हारा नाम होगा उपबर्हण। इसमें कोई सन्देह नहीं है। तुम इन विलासिनी ५० पत्नियों के साथ निर्जन वन में एक लाख दिव्य युगों तक निवास करोगे। तदनन्तर पुनः मेरे शाप के प्रभाव से दासीपुत्र होकर जन्म लाभ करोगे। हे वत्स! तत्पश्चात् तुम वैष्णवों के संसर्ग के कारण तथा वैष्णवों का जूठन खाने के कारण दयामय श्रीकृष्ण की कृपा से पुनः मेरे पुत्र हो जाओगे।।४४-४७।।

ज्ञानं दास्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम्।
अधुना भव नष्टस्त्वं [1]मत्सुतो निपत ध्रुवम्॥४८॥

तब मैं पुनः तुमको पुरातन दिव्य तत्वज्ञान प्रदान करूंगा, तथापि अभी तुम विनष्ट होकर घोर संसार-सागर में गिरोगे तथा वहां अशेष यन्त्रणा भोगते हुए यह समय व्यतीत करोगे।।४८।।

ब्रह्मेत्युक्त्वा सुतं विप्र विरराम जगत्पतिः। रुरोद नारदस्तातमवोचत्संपुटाञ्जलिः[2]॥४९॥

हे ब्राह्मणप्रवर! जगत्पति ब्रह्मा ने अपने पुत्र से यह कहा तथा मौन हो गये। इसके पश्चात् इस शाप से भयभीत होकर करबद्ध मुद्रा में नारद रुदन करने लगे।।४९।।

नारद उवाच

क्रोधं संहर संहर्तस्तात तात जगद्गुरो। स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयं मय्यनाकरः॥५०॥
शपेत्परित्यजेद्विद्वान्पुत्रमुत्पथगामिनम्। तपस्विनं सुतं शप्तुं कथमर्हसि पण्डित॥५१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे तात! क्रोध न करें। उसे शान्त करिये। आप जगद्गुरु तथा जगत्संहारक हैं। आप ही तपस्वी लोगों के प्रभु हैं। आप पुत्र पर इतने क्रोधित हो गये। यह आपका क्रोध अकारण है। पण्डित लोग पुत्र का त्याग अथवा शाप देने का कार्य तभी करते हैं, जब पुत्र कुमार्ग-गामी हो। अतएव आपने विद्वान् होकर भी कैसे अपने निरीह तपस्वी पुत्र को शाप देना उचित समझा?।।५०-५१।।

---

१. नम्रस्त्वमित्यपि पाठः।
२. तमुवाच पुटाञ्जलिरित्यपि पाठः।

जनिर्भवतु मे ब्रह्मन्यासु यासु च योनिषु। न जहातु हरेर्भक्तिर्मामेवं देहि मे वरम्॥५२॥
पुत्रश्चेज्जगतां धातुर्नास्ति भक्तिर्हरेः पदे। सूकरादतिरिक्तश्च सोऽधमो भारते भुवि॥५३॥

हे ब्रह्मन्! भाग्यदोष से ही यह हो गया। अब कृपा पूर्वक मुझे यह वर दीजिये कि चाहे जिस किसी योनि में मेरा जन्म क्यों न हो, कदापि हरिभक्ति मेरा त्याग न करे। मैं सभी अवस्था में हरिनाम स्मरण करता रहूं। जो व्यक्ति भले ही विश्व विधाता की सन्तान क्यों न हो, यदि वह हरि के चरणों की भक्ति से रहित है, तब वह अधम भारतभूमि के शूकर की अपेक्षा भी निन्दनीय तथा अधम है। इसमें सन्देह नहीं है।।५२-५३।।

जातिस्मरो हरेर्भक्तियुक्तः सूकरयोनिषु। जनिर्लभेत्स प्रवरो[1] गोलोकं याति कर्मणा॥५४॥

यदि व्यक्ति का जन्म भले ही शूकर योनि में हो जाये तथा पूर्वजन्म स्मृति एवं भगवद्भक्ति बनी रहे, तब भी वह श्रेष्ठ व्यक्ति इस स्वकर्म प्रभाव से गोलोक गमन करता है।।५४।।

गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमाध्वीकमीप्सितम्। पिबतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूता वसुंधरा॥५५॥

तीर्थानि स्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह।
पापानां पापितत्त्वानां क्षालनायाऽऽत्मनामपि॥५६॥

मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते। परैश्च कोटिपुरुषैः पूर्वैः सार्धं हरेरहो॥५७॥

हे तात! मैं अपने इस एक मुख से हरिभक्ति की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। जो वैष्णवगण सदा सबके द्वारा प्रार्थित हरि चरणारविन्द की भक्तिमधु का पान करते रहते हैं, उनके पवित्र स्पर्श को पाकर यह धरती भी पवित्र हो जाती है। हे पितामह! अधिक क्या कहूं! सभी तीर्थगण पापीगण के स्पर्श जनित अपने पातकों के नाशार्थ सतत् वैष्णवों के स्पर्श की कमना करते रहते हैं। इस भारत भूमि में मनुष्यगण हरिमन्त्र से दीक्षित होते ही अपनी करोड़ों पूर्व पीढ़ी के लोगों के साथ मुक्त हो जाते हैं।।५५-५७।।

कोटिजन्मार्जितात्पापान्मन्त्रग्रहणमात्रतः। मुक्ताः शुध्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निर्मूलयन्ति च॥५८॥

पुत्रान्दारांश्च शिष्यांश्च सेवकान्बान्धवांस्तथा।
यो दर्शयति सन्मार्गं सद्गतिस्तं लभेद्ध्रुवम्॥५९॥
यो दर्शयत्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितो गुरुः।
कुम्भीपाके स्थितिस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥६०॥

इस मन्त्र को ग्रहण करने मात्र से वे मनुष्य कोटि जन्मों के अर्जित पापों से मुक्त होकर पवित्र हो जाते हैं। उनको पूर्वकृत कर्मों का फल मन्त्र के प्रभाव से नहीं भोगना पड़ता। जो व्यक्ति पुत्र-पत्नी-शिष्य-सेवक-बन्धुगण को सत्पथ दिखलाता है, वह सद्गति लाभ करता है। जो गुरुगण शिष्य को

---
१. स प्रवरः इत्यपि पाठः।

असत् पथ प्रदर्शित करते हैं, वे इस विश्वासघात के कारण सूर्य-चन्द्रमा की स्थिति पर्यन्त कुम्भीपाक नरक भोग करते हैं।।५८-६०।।

स किंगुरुः स किंतात स किंस्वामी स किंसुतः।
यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः॥६१॥

हे पिता! जो गुरु, पिता, स्वामी, हरि चरणारविन्द की भक्ति की शिक्षा नहीं दे पाता, वह गुरु, पिता तथा स्वामी नहीं है। उसे गुरु अथवा पिता अथवा स्वामी कहना एक विडम्बना ही है।।६१।।

शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन।
मया शप्तुं त्वमुचितो घ्नन्तं घ्नन्त्यपि पण्डिताः॥६२॥
कवचस्तोत्रपूजाभिः सहितस्ते मनुर्मनोः।
लुप्तो भवतु मच्छापात्प्रतिविश्वेषु निश्चितम्॥६३॥
अपूज्यो भव विश्वेषु यावत्कल्पत्रयं पितः।
गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्य पूज्यो भविष्यसि॥६४॥

हे चतुरानन! आपने तो मुझ निरपराध को शाप दिया है। इसलिये मेरे द्वारा भी आपको शाप देना उचित है। जो हिंसा के लिये प्रवृत्त होता है, पण्डितगण उसके प्रति प्रतिहिंसा अवश्य करते हैं, जो विहित कार्य है। हे पिता! भले ही आप पूज्य हैं, तथापि मेरे शाप के प्रभाव से इस विश्व-संसार से आपके स्तव-कवच, पूजाविधि सहित आपका मन्त्र भी विलुप्त होगा। आपको संसार में सामान्य व्यक्ति की तरह अपूज्य होकर ही कालयापन करना होगा। तदनन्तर तीनों कल्प व्यतीत हो जाने पर पुनः आप सविधि पूजित होंगे।।६२-६४।।

अधुना यज्ञभागस्ते व्रतादिष्वपि सुव्रत।
पूजनं चास्तु नामैकं वन्द्यो भव सुरादिभिः॥६५॥

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुरः। तस्थौ सभायां स विधिर्हृदयेन विदूयता॥६६॥
उपबर्हणगन्धर्वो नारदस्तेन हेतुना। दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेव च शौनक॥६७॥
ततः पुनर्नारदश्च स बभूव महानृषिः। ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात्कथयिष्यामि चाधुना॥६८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदशापोपलम्भनं नामाष्टमोऽध्यायः।।८।।

"हे ब्रह्मन्! इस समय केवल मात्र आपको प्राप्त होने वाला यज्ञभाग मात्र मिलेगा तथा व्रतादि में मात्र एक ही बार आपकी पूजा होगी। आपकी बाकी आराधना लुप्त हो जायेगी। यह निःसंदेह होगा, तथापि देवगण आपकी वंदना करेंगे।" यह कहकर नारद मौन हो गये। प्रजापति विधाता भी अत्यन्त दुःखी मन से देवसभा में बैठे रह गये। हे शौनक! तत्पश्चात् नारद ने पिता के इस शाप के प्रभाव से

उपबर्हण गन्धर्व का जन्मलाभ किया। तदनन्तर वे दासी के पुत्ररूप में जन्मे। अन्त में उन्होंने पुनः प्रजापति के पुत्ररूपेण जन्म लेकर महर्षि नारद के नाम से प्रसिद्धि लाभ किया। तदनन्तर उन्होंने पुनः ब्रह्मा से तत्वज्ञान प्राप्त किया था। वह प्रसंग कहता हूं।।६५-६८।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ नवमोऽध्यायः

कश्यपादि ऋषिगण की सृष्टि, पृथ्वी के गर्भ से मंगल का जन्म, कश्यप वंश वर्णन, चन्द्र को दक्ष प्रजापति द्वारा शाप दिया जाना, शिव के शरणागत चन्द्र को विष्णु का वरदान, सर्वान्त में दक्ष और चन्द्र का जाना

सौतिरुवाच

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये। सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना।।१।।
मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः। अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह।।२।।
प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह। पुलस्त्यमनसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च।।३।।

सौति कहते हैं–हे विप्रप्रवर! तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने नारद के अतिरिक्त सभी पुत्रों को सृष्टिकार्य करने के लिये आज्ञा दिया। उन सबने यह आज्ञा शिरोधार्य किया तथा सृष्टि हेतु प्रवृत्त हो गये। सर्वप्रथम मरीचि के मन से कश्यप प्रजापति ने जन्म लिया। तदनन्तर अत्रि मुनि के नेत्र से क्षीरसमुद्र के मध्य निशाकर चन्द्र उपस्थित हो गये। प्रचेता के मानस से गौतम का, पुलत्स्य के मानस से मैत्रावरुण उत्पन्न हो गये।।१-३।।

मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे। आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः।।४।।
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ। उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः।।५।।

हे तपोधन! इसके पश्चात् मनु के औरस से उनकी पत्नी शतरूपा के गर्भ से आकूति, देवहूति तथा प्रसूति नामक तीन कन्या जन्मीं। तदनन्तर प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नाम वाले अति कमनीय कलेवर वाले दो पुत्रों को शतरूपा ने जन्म दिया। कालान्तर में महात्मा उत्तानपाद की पत्नी के गर्भ से ध्रुव नामक परम धार्मिक वैष्णव चूड़ामणि पुत्र ने जन्म लिया।।४-५।।

आकूतिं रुचये प्रादाद्दक्षायाथ प्रसूतिकाम्। देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम्॥६॥

कुछ समय पश्चात् महाराज मनु ने अपनी कन्या आकूति रुचि मुनि को प्रदान किया। दक्ष को अपनी कन्या प्रसूति अर्पित किया, कर्दम मुनि को उन्होंने अपनी कन्या देवहूति प्रदान किया। देवहूति के गर्भ से त्रैलोक्य प्रख्यात कपिल ने जन्म लिया था। (हे ऋषिप्रवर शौनक! अब जिनका नाम सुनने में सुख देने वाला है, उन जगदीश्वर के अद्भुत् सृष्टि कौशल को कहता हूं। सुनिये)॥६॥

प्रसूत्यां दक्षबीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे। अष्टौ धर्माय स ददौ रुद्रायैकादश स्मृताः॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात्कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान्॥८॥

नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्र निशामय।
शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिः क्षमा श्रद्धा मतिः स्मृतिः॥९॥

तदनन्तर प्रजापति दक्ष के औरस से प्रसूति के गर्भ से ६० कन्या जन्मीं। इनमें से दक्ष ने ८ धर्म को, ११ रुद्र को तथा प्रकृति सती देवी को भगवान् शिव को अर्पित किया। महात्मा कश्यप से दक्ष ने १३ कन्याओं का विवाह कराया। शेष बची २७ कन्याओं को दक्ष ने चन्द्रमा को प्रदान कर दिया। हे विप्र! अब मैं धर्म की ८ पत्नियों का नाम कहता हूं। वे हैं—शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, क्षमा, श्रद्धा एवं मति तथा स्मृति॥७-९॥

शान्तेः पुत्रश्च संतोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत्। धृतेर्धैर्यं च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ॥१०॥

क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिकः।
मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरो महान्॥११॥

पूर्वपत्न्यां च मूर्त्यां च नरनारायणावृषी। बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक॥१२॥

शान्ति के गर्भ से सन्तोष नामक पुत्र जन्मा। पुष्टि का पुत्र महान् नाम से प्रख्यात था। धृति के गर्भ से धैर्य ने, तुष्टि के गर्भ से हर्ष तथा दर्प ने जन्म लिया। क्षमा का पुत्र था सहिष्णु, श्रद्धा का पुत्र था धार्मिक, मति का पुत्र था ज्ञान, स्मृति का पुत्र जातिस्मर नाम से प्रसिद्ध हो गया। धर्म की पूर्व पत्नी मूर्त्ति के गर्भ से महर्षि नर-नारायण ने जन्म लिया था। हे शौनक! धर्म के सभी पुत्र धर्मतत्पर थे॥१०-१२॥

नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे।
कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया॥१३॥
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी।
एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्षदाः॥१४॥
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज्य यज्ञतः।
पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे सा शङ्करं पतिम्॥१५॥

अब मैं रुद्रपत्नियों का नाम कहता हूं। सावधानी से सुनिये। ये हैं—कला, कलावती, काष्ठा, कालिका, कलहप्रिया, कन्दली, भीषणा, रास्ना, प्रमोचा, भूषणा, शुकी। इन्होंने अनेक सन्तानों को जन्म दिया। वे सभी सन्तान शिव के सेवक हैं। शिव पत्नी सती अपने पिता से अपने स्वामी शिव की भयानक निन्दा सुन कर सहन नहीं कर सकीं। उन्होंने यज्ञमण्डप में ही प्राण त्याग कर दिया। इन्होंने पुनः हिमालय पत्नी मेनका के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। तत्पश्चात् पूर्ववत् शिव को ही पतिरूप से प्राप्त कर लिया॥१३-१५॥

कश्यपस्य प्रियाणां च नामानि शृणु धार्मिक।
अदितिर्देवमाता वै दैत्यमाता दितिस्तथा॥१६॥
सर्पमाता तथा कद्रूर्विनता पक्षिसूस्तथा।
सुरभिश्च गवां माता महिषाणां च निश्चितम्॥१७॥
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम्। दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः॥१८॥

हे धार्मिक ऋषिवर! अब आप कश्यप की पत्नियों का नाम श्रवण करिये। वे हैं—देवमाता अदिति, दैत्यमाता दिति, सर्पमाता कद्रु, पक्षियों की माता विनता, गो-महिष आदि की माता सुरभि, सारमेय आदि चतुष्पदों की माता सरमा (कुत्ते-बाघ आदि की माता), दानव माता दनु तथा अन्य कश्यप पत्नियों ने भी अन्य सन्तानों को उत्पन्न किया॥१६-१८॥

इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने। कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः॥१९॥
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मञ्शच्यामजायत।
आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः॥२०॥
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा।
उपेन्द्रवीर्यात्पृथ्व्यां तु मङ्गलः समजायत॥२१॥

अदिति पुत्र हैं इन्द्रादि द्वादश आदित्य, उपेन्द्रादि जो महाबली एवं पराक्रमी हैं। हे ब्रह्मन्! इन्द्रपत्नी शचि का पुत्र है जयन्त। विश्वकर्मा की सवर्णा नामक कन्या से आदित्य देव ने शनि तथा यम नामक दो पुत्र तथा यमुना नामक कन्या (कालिन्दी) को उत्पन्न किया। देवी वसुन्धरा ने भी उपेन्द्र विष्णु द्वारा मंगल नामक पुत्र उत्पन्न किया॥१९-२१॥

शौनक उवाच

कथं सौते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत।
वसुंधरायां बलवान्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥२२॥

शौनक मुनि कहते हैं—कृपया यह कहने का कष्ट करें कि उपेन्द्रदेव से बली मंगल ने कैसे जन्मलाभ किया था?॥२२॥

सौतिरुवाच

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्ता च वसुंधरा। विधाय सुन्दरीवेषमक्षता प्रौढयौवना॥२३॥
मलये निर्जने रम्ये चारुचन्दनपल्लवे। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्॥२४॥
तं सुशीलं शयानं च शान्तं सस्मितमीप्सितम्।
सस्मिता तस्य तल्पे च सहसा समुपस्थिता॥२५॥

सौति कहते हैं—हे तपोधन शौनक! किसी काल में भगवान् उपेन्द्र अत्यन्त शोभित चन्दन पल्लवों से परिपूर्ण निर्जन मलयाचल पर एकाकी अवस्थित थे। उनका सम्पूर्ण शरीर चन्दन लेप से लिप्त एवं रत्नों के आभूषण से शोभायमान था। उनकी शोभा अनिर्वचनीय थी। वे शान्त चित्त तथा मन्द मुस्कान से युक्त थे। ऐसे उपेन्द्रदेव के रम्य सौन्दर्य को देख कर भगवती वसुन्धरा ने कामबाण से नितान्त आहत होकर सुरम्य सौन्दर्यमयी पूर्ण यौवना रमणी का वेश धारण किया तथा मुस्कराते हुए भगवान् उपेन्द्र की शय्या के पास आ गईं॥२३-२५॥

सुरम्यां मालतीमालां ददौ तस्मै वरानना।
सुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्॥२६॥
उपेन्द्रस्तन्मनो ज्ञात्वा कामिनीं कामपीडिताम्।
नानाप्रकारशृङ्गारं चकार च तया सह॥२७॥

उन्होंने परम सुगन्धित चन्दन, कस्तूरी, कुंकुमादि से सुवासित अति मनोहर मालती माला उपेन्द्र देव के कण्ठ में पहना दिया। भगवान् उपेन्द्र भी वसुन्धरा देवी के इस प्रकार से कामपीड़ित मनोभाव को जान कर उनके साथ नाना प्रकार का क्रीड़ा-कौतुक करने लगे॥२६-२७॥

तदङ्गसङ्गसंसक्ता मूर्छा प्राप सती तदा। मृतेव निद्रितेवासौ बीजाधाने कृते हरौ॥२८॥
तां विलग्नां च सुश्रोणीं सुखसंभोगमूर्छिताम्।
बृहन्मुक्तनितम्बां च सस्मितां विपुलस्तनीम्॥२९॥
क्षणं वक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठं च चुचुम्ब ह। विहाय तत्र रहसि जगाम पुरुषोत्तमः॥३०॥

प्रभु के अंग से जब वसुन्धरा के अंग का स्पर्श हुआ, तभी वे मूर्च्छित-सी हो गईं। जब उपेन्द्र ने उनमें अपने वीर्य का आधान किया, वे तत्काल निद्रित किंवा मृतवत् प्रतीत होने लगीं। तब भगवान् पुरुषोत्तम उपेन्द्रदेव ने उन अस्त-व्यस्त वस्त्रों वाली, सुश्रोणी, स्थूल स्तनों वाली, विशाल नितम्बों वाली, सहास्य मुख, तथापि सुख-सम्भोग के कारण मूर्च्छित-सा देखा। उन्होंने वसुन्धरा को वक्ष से लगाया तथा उनका मुख चुम्बन किया। तत्पश्चात् वे वसुन्धरा को उस निर्जन स्थल में एकाकिनी छोड़ कर चले गये॥२८-३०॥

उर्वशी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने।
सा च पप्रच्छ वृत्तान्तं कथयामास भूश्चताम्॥३१॥

हे मुनीश्वर! तभी एक उर्वशी नाम वाली विद्याधरी वहां आई तथा वसुन्धरा (पृथिवी) की यह अवस्था देख कर उसने नाना उपाय से उनको चैतन्य किया। तदनन्तर उर्वशी ने वसुन्धरा से इस अवस्था का कारण भी पूछा। धरणी देवी (वसुन्धरा) ने उर्वशी को समस्त वृत्तान्त से अवगत करा दिया।।३१।।

वीर्यसंवरणं कर्तुं सा चाशक्ता च दुर्बला।
प्रवालस्याऽऽकरे त्रस्ता वीर्यन्यासं चकार सा।।३२।।
तेन प्रवालवर्णश्च कुमारः समपद्यत। तेजसा सूर्यसदृशो नारायणसुतो महान्।।३३।।

तदनन्तर सम्भोग से दुर्बल हो गई वसुन्धरा उस महान् तेजमय वीर्य को धारण नहीं कर सकी। उसने प्रवाल की खान में उस वीर्य को रक्षित कर दिया। इसके कारण प्रवाल के वर्ण वाला कुमार मंगल उत्पन्न हो गया, जो नारायण उपेन्द्र का पुत्र तथा सूर्य समप्रभ था।।३२-३३।।

मङ्गलस्य प्रिया मेधा तस्य[१] घण्टेश्वरो महान्।
व्रणदाताऽतितेजस्वी विष्णुतुल्यो बभूव ह।।३४।।
दितेर्हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महाबलौ। कन्या च सिंहिका विप्र सैंहिकेयश्च तत्सुतः।।३५।।
निर्ऋतिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः।
सूकरेण हिरण्याक्षोऽप्यनपत्यो मृतो युवा।।३६।।

मंगल की प्रिय पत्नी का नाम है मेधा। उसके पुत्र का नाम है घण्टेश्वर। वह अति व्रणदाता एवं विष्णुतुल्य तेजस्वी था। हे विप्रप्रवर! तदनन्तर कश्यप पत्नी दिति के गर्भ से महाबली-पराक्रमी हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नामक एक कन्या का जन्म हुआ। सिंहिका के ही गर्भ से सैंहिकेय राहु ग्रह का जन्म कहा गया है। इस दितिपुत्री सिंहिका का अन्य नाम है निर्ऋति। तभी राहु को नैर्ऋत् भी कहते हैं। पूर्वोक्त हिरण्याक्ष का वध यौवन काल में ही शूकर रूपी विष्णु ने किया था। तब उसके सन्तानादि नहीं थे।।३४-३६।।

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो वैष्णवाग्रणीः।
विरोचनश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्च बलिः स्वयम्।।३७।।
बलेः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शङ्करकिंकरः। दितेर्वंशश्च कथितः कद्रूवंशं निबोध मे।।३८।।

हिरण्यकशिपु के पुत्र थे परम वैष्णव प्रह्लाद। उनके पुत्र थे विरोचन, जिनके पुत्र बलिराज के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे अपने उदारता गुण के कारण जगत् प्रसिद्ध हैं। बलिराज का पुत्र था योगीगण में अग्रगण्य बाणासुर। यह अपने भक्तिबल से शंकर का महान् सेवक बना। यह दितिवंश का वर्णन हो गया। अब आप कद्रुवंश का वर्णन श्रवण करिये।।३७-३८।।

---

१. क. तस्यां खड्गैश्च०।

अनन्तं वासुकिं चैव कालीयं च धनञ्जयम्।
कर्कोटकं तक्षकं च पद्ममैरावतं तथा॥३९॥
महापद्मं च शङ्कुं च शङ्खं च संवरणं तथा[1]। धृतराष्ट्रं च दुर्धर्षं दुर्जयं दुर्मुखं बलम्॥४०॥
मोक्षं गोकार्मुकं चैव विरूपादींश्च शौनक[2]। एतेषां प्रवसंश्चैव यावत्यः सर्पजातयः॥४१॥

हे शौनक! कद्रुवंशी नाग हैं अनन्त, वासुकि, कालीय, धनंजय, कर्कोटक, तक्षक, पद्म, ऐरावत, महापद्म, शंकु, शंख, संवरण, बल, मोक्ष, धृतराष्ट्र, दुर्द्धर्ष, दुर्जय, दुर्मुख, गोकार्मुक, विरूप आदि। ये समस्त सर्प जातियों में प्रधान हैं।।३९-४१।।

कन्यका मनसा देवी कमलांशसमुद्भवा। तपस्विनीनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा॥४२॥
यत्पतिश्च जरत्कारुर्नारायणबलोद्भवः[3]।
आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यश्च तेजसा॥४३॥

तदनन्तर कद्रु के गर्भ से सभी तपस्विनियों में श्रेष्ठा, महातेजस्विनी मनसा नामक कन्या जन्मी। ये देखने से लक्ष्मी का अंश प्रतीत होती हैं। नारायण के अंश से उत्पन्न जरत्कारु मुनि ने मनसा देवी का पाणिग्रहण किया था तथा उनके गर्भ से विष्णुतुल्य तेजस्वी महामुनि आस्तीक का जन्म हुआ।।४२-४३।।

एतेषां नाममात्रेण नास्ति नागभयं नृणाम्।
कद्रूवंशो निगदितो विनतायाः शृणुष्व मे॥४४॥

हे तपोनिधि शौनक! इन अपारशक्ति सभी विषधर प्रवर नागों का नामोच्चारण करने मात्र से मनुष्यों को सर्पभय नहीं होता। मैंने कद्रु की वंशावली को कहा। अब विनता के वंश का वर्णन श्रवण करिये।।४४।।

वैनतेयारुणौ पुत्रौ विष्णुतुल्यपराक्रमौ। तौ बभूवुः क्रमेणैव यावत्यः पक्षिजातयः॥४५॥
गावश्च महिषाश्चैव सुरभिप्रवरा इमे। सर्वे वै सारमेयाश्च बभूवुः सरमासुताः॥४६॥
दानवाश्च दनोर्वंश्या अन्याः सामान्यजातयः।
उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राख्यानं निबोध मे॥४७॥

इनके प्रथमतः पुत्रद्वय थे गरुड़ तथा अरुण। ये दोनों पराक्रम में विष्णु के समान हैं। इन दोनों से ही समस्त पक्षी जाति का जन्म कहा गया है। हे मुनिवर! सुरभि के गर्भ से गौयें तथा महिषादि जन्मे हैं। सरमा के गर्भ से सारमेय आदि चार पैरों वाले प्राणी की उत्पत्ति कही गयी है। दनु के गर्भ से समस्त महाबली दानवों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार अन्य जाति वाले प्राणीगण महामुनि कश्यप के औरस

१. इत्यर्द्धं क्वचित् पुस्तके नास्ति।
२. ख. ०क। न ते०।
३. ख. ०णकुलो०।

से अन्य पत्नियों द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। इस प्रकार मैंने कश्यप वंश का वर्णन विशेषतया कह दिया। अब सम्प्रति चन्द्र का विवरण श्रवण करिये।।४५-४७।।

नामानि चन्द्रपत्नीनां सावधानं निशामय। अत्यपूर्वं च चरितं पुराणेषु पुरातनम्।।४८।।

हे शौनक! सम्प्रति चन्द्रमा की पत्नियों का नाम तथा समस्त पुराणों के सारभूत अद्‌भुत चरित का वर्णन करता हूं। सावधान होकर श्रवण करिये।।४८।।

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा।
मृगशीर्षा तथाऽऽर्द्रा च पूज्या साध्वी पुनर्वसुः।।४९।।
पुष्याऽऽश्लेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी।
हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका।।५०।।

चन्द्र की २७ स्त्रियों का नाम है–अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा,।।४९-५०।।

ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढा चैवोत्तरा स्मृता।
श्रवणा च धनिष्ठा च तथा शतभिषक्छुभा।।५१।।
[१]पूर्वा भाद्रोत्तरा भाद्रा रेवत्यन्ता विधुप्रियाः।
तासां मध्ये च सुभगा रोहिणी रसिका वरा।।५२।।

ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शुभा शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा तथा रेवती। ये २७ (नक्षत्र) चन्द्र की प्रिय पत्नियां हैं, तथापि इन २७ में से सुभगा रोहिणी रसिका है, जो चन्द्र को सर्वाधिक प्रिय हैं।।५१-५२।।

संततं रसभावेन चकार शशिनं वशम्।
रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्यां च कामिनीम्।।५३।।

सर्वा भगिन्यः पितरं कथयामासुरादृताः। सपत्नीकृतसंतापं प्राणनाशकरं परम्।।५४।।

इसने अपनी रसिकता रूपी अनुराग के प्रभाव से चन्द्र को वशीभूत किया है। रोहिणी से सतत् युक्त चन्द्रमा ने अन्य पत्नियों की उपेक्षा किया। वे उनके पास नहीं जाते थे। यह देख कर सभी चन्द्रपत्नियों ने जो परस्परतः बहनें थीं, एक साथ पिता के पास जाकर अपना दुःख व्यक्त किया। यह दुःख सपत्नी के डाह के कारण उद्भूत तथा परम प्राणनाशक सन्ताप जो था।।५३-५४।।

दक्षः प्रकुपितश्चन्द्रमशपन्मन्त्रपूर्वकम्। द्रुतं श्वशुरशापेन यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः।।५५।।
दिने दिने यक्ष्मणा स क्षीयमाणश्च दुःखितः। वपुष्यर्धे क्षीयमाणे शङ्करं शरणं ययौ।।५६।।

---

१. क. पूर्वोत्तराभाद्रपदा रे.।

यह सुन कर दक्ष ने क्रोधित हो चन्द्र को मन्त्रयुक्त शाप दे दिया। श्वसुर के शाप से ग्रस्त चन्द्रमा क्षय रोग से पीड़ित हो गये। नित्यप्रति इस यक्ष्मा रोग से ग्रस्त चन्द्रमा क्षीण होते गये, जिससे उनको महान् दुःख हो गया। जब उनका आधा देह क्षीण हो गया, तब उन्होंने शंकर की शरण ग्रहण किया।।५५-५६।।

दृष्ट्वा चन्द्रं शङ्करश्च क्लेशितं शरणागतम्। करुणासागरस्तस्मै कृपया चाभयं ददौ।।५७।।

निर्मुक्तं यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपाले स्थलं ददौ।
अपरो निर्भयो भूत्वा स तस्थौ शिवशेखरे।।५८।
तं शिवः शेखरे कृत्वा चाभवच्चन्द्रशेखरः।
नास्ति लोकेषु देवेषु शिवाच्छरणपञ्जरः।।५९।।

तदनन्तर कृपामय शंकर ने चन्द्रदेव को अत्यन्त दुःखी तथा शरणागत देख कर उनको अभय प्रदान किया और उन्होंने स्वमहिमा विस्तार करके यक्ष्मारोग से चन्द्रमा को मुक्त कर दिया, साथ ही उनको अपने मस्तक पर स्थान प्रदान किया। तभी से चन्द्रमा करुणामय शिव के प्रभाव से अपना पूर्व रूप पा गये और निर्भय होकर शिव के शीश पर अवस्थान करने लगे। वे अमरत्व पा गये तथा शिव भी चन्द्रमा को शीश रूपी शिखर पर धारण कर लेने के कारण चन्द्रशेखर कहलाये। शिव के समान शरणागत पालक न तो कोई देवता है, न अन्य कोई उनके समान शरणागत रक्षक ही है।।५७-५९।।

दक्षकन्याः पतिं मुक्तं दृष्ट्वा च रुरुदुः पुनः।
आजग्मुः शरणं तातं दक्षं तेजस्विनां वरम्।।६०।।
उच्चैश्च रुरुदुर्गत्वा निहत्याङ्गं पुनः पुनः।
तमूचुः कातरं दीना दीनानाथं विधेः सुतम्।।६१।।

इधर जब दक्षपुत्रीगण ने पति चन्द्रमा को रोगमुक्त देखा, तब वे सभी चन्द्रपत्नियां अतिशय रुदन करते पुनः तेजस्वी देवगण में प्रवर दक्षराज के पास गईं। वे सभी पतिपरायणी नारीगण पतिवियोग से दुःखी होकर पिता के पास पहुंचीं तथा अपनी छाती पीटते हुए उच्च स्वर से रुदनरत होकर अनाथबन्धु ब्रह्मपुत्र दक्षराज से कहने लगीं—।।६०-६१।।

दक्षकन्या ऊचुः

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेव च।
सौभाग्यमस्तु नस्तात गतः स्वामीगुणान्वितः।।६२।।
स्थिते चक्षुषि हे तात दृष्टं ध्वान्तमयं जगत्।
विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम्।।६३।।

दक्षकन्यागण (चन्द्रपत्नियां) कहती हैं—हे पिता! स्वामी सन्निधान का सौभाग्य प्राप्त करने के

लिये ही हमने आपसे प्रार्थना किया था, तथापि हमारा ऐसा दुर्भाग्य है कि सौभाग्य मिलना तो दूर की बात है, हम तो सर्वगुणान्वित अपने स्वामी चन्द्र के दर्शनसुख से भी वंचित हैं! हे पिता! इससे अधिक दु:ख की क्या बात हो सकती है! हे तात! नेत्र रहते भी हमें जगत् अन्धकाराच्छन्न प्रतीत हो रहा है। हमें यह सर्वथा विदित हो गया कि पत्नी के लिये एकमात्र पति ही उसके नेत्र हैं।।६२-६३।।

पतिरेव गतिः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च संपदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे।।६४।।

पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतं धर्मः सनातनः।
सर्वं कर्म वृथा तासां स्वामिनो विमुखाश्च याः।।६५।।

इस संसार में रमणी के लिये पति ही एकमात्र गति, जीवन है। पति से बढ़ कर कोई सम्पदा नारी के लिये है ही नहीं। पति से ही कामिनी स्त्रियां धर्म-अर्थ-काम-मोक्षलाभ करती हैं। पति ही पत्नी को भवसागर पार कराने वाला सेतु है। पति ही नारी का नारायण है। वही उसका व्रत एवं सनातन धर्म है। अतः पति से विमुख नारी का किया समस्त शुभ कर्म तथा धर्म व्यर्थ माना गया है।।६४-६५।।

स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा। सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमाश्च ये।।६६।।

देवार्चनं चानशनं सर्वाणि च तपांसि च।
स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।६७।।
सर्वेषां बान्धवानां च प्रियः पुत्रश्च योषिताम्।
स एव स्वामिनोऽशश्च शतपुत्रात्परः पतिः।।६८।।

हे पिता! आप सर्वज्ञाता हैं। आपको विदित ही है कि सभी प्रकार का तीर्थस्नान, यथाविधि यज्ञकार्य, दक्षिणादान, सभी तरह के पुण्यप्रद अन्य दान, व्रत, नियम, देवार्चन, सभी प्रकार का उपवास तथा अन्य पुण्य कार्य जिनको संसार से छुटकारा दिलाने वाला कहा गया है, वे सब कोई भी पति सेवा की तुलना में १६वां भाग (१/१६ भाग) भी पुण्यप्रद नहीं हैं। फलतः स्त्री के लिये स्वामी सेवा ही सर्वोत्तम मुक्तिमार्ग है। हे तात! समस्त बन्धु-बान्धवों में से स्त्री को पुत्र सबसे प्रिय होता है। वह पुत्र स्वामी के ही अंश से उत्पन्न होता है। अतः सौ पुत्र की तुलना में स्वामी ही नारी को अतिशय प्रिय है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६६-६८।।

असद्वंशप्रसूता या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा। यस्या मनश्चलं दुष्टं सततं परपूरुषे।।६९।।
पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम्। युवानं चैव वृद्धं वा भजेत्तं न त्यजेत्सती।।७०।।

जो रमणी असत्कुलोत्पन्न है तथा जिसका चित्त सदा परपुरुष की अभिलाषा करता है, वह दुष्टा कामिनी ही पति की निन्दा करती है। जो रमणी यथार्थतः साध्वी है, भले ही उसका पति पतित, रोगी, दुष्ट, निर्धन, गुणहीन हो, किंवा युवा अथवा वृद्ध, चाहे जैसा क्यों न हो, वह क्षणकाल के लिये भी किसी भी प्रकार से उसका त्याग नहीं करती। निरन्तर ऐसे पति की भी सेवा में रत रहती है!।।६९-७०।।

सगुणं निर्गुणं वाऽपि द्वेष्टि या संत्यजेत्पतिम्।
पच्यते कालसूत्रे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥७१॥
कीटैः शुनकतुल्यैश्च भक्षिता सा दिवानिशम्।
भुङ्क्ते[1] मृतवसामांसे पिबेन्मूत्रं च तृष्णया॥७२॥

गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। श्वापदः शतजन्मानि सा भवेद्बन्धुहा ततः॥७३॥

जो असती नारी गुणहीन किंवा गुणमय पति का त्याग कर देती है, वह कालसूत्र नरक से तब तक छुटकारा नहीं पाती, जब तक चन्द्र-सूर्य सृष्टि में स्थित हैं। उसे अनन्त काल पर्यन्त नरक में भयंकर डांस तथा दाढ़ वाले कुत्ते जैसे कीट उसका अहर्निश उसके मांस को काट कर खाते रहते हैं। वहां वह नारी क्षुधापीड़ित होने पर मृतक का मांस खाती है। पिपासा से त्रस्त होकर मूत्रपान करती है। इसके अनन्तर कोटि जन्म पर्यन्त गृध्रयोनि, सौ जन्म पर्यन्त शूकरी योनि, सौ जन्मों तक हिंसक जीव की योनि में रह कर अन्त में बन्धुओं की हत्या करने वाली होकर जन्म लेती है।।७१-७३।।

ततो मानवजन्मानि लभेच्चेत्पूर्वकर्मणः। विधवा धनहीना च रोगयुक्ता भवेद्ध्रुवम्॥७४॥

यदि पूर्व कर्मवशात् कदाचित् मानव जन्म मिल भी जाये, तब उस जन्म में वह विधवा, निर्धन, रोगग्रस्त होकर रहती है। यह निश्चित जाने।।७४।।

देहिनः कान्तदानं च कामपूरं विधेः सुत।
विधात्रा सदृशस्त्वं च पुनः स्रष्टुं क्षमो जगत्॥७५॥

हे ब्रह्मपुत्र! आप ब्रह्मा के समान समस्त जगत् की सृष्टि कर सकने में समर्थ हैं। अतः आपसे की गई हमारी यह सामान्य प्रार्थना व्यर्थ नहीं जानी चाहिये। हम अपने ही दोष के कारण स्त्रियों के परमाराध्य तथा उनके लिये जगत् सार रूपी पति रूपी धन से वंचित हो गई हैं। अब आप अपने प्रभाव से हमें हमारे पति को प्रदान करने की कृपा करिये।।७५।।

कन्यानां वचनं श्रुत्वा दक्षः शङ्करसंनिधिम्।
जगाम शंभुस्तं दृष्ट्वा समुत्थाय ननाम च॥७६॥
दक्षस्तस्याऽऽशिषं कृत्वा समुवाच कृपानिधिम्।
तत्याज कोपं दुर्धर्षं[2] दृष्ट्वा च प्रणतं शिवम्॥७७॥

दुःखी कन्याओं का यह करुण निवेदन सुनकर दक्ष प्रजापति भगवान् शंकर के पास गये। महादेव ने दक्ष को प्रणाम किया। तदनन्तर दक्ष ने कृपानिधान शिव को प्रणत देख कर अपने क्रोध को रोक कर उनको आशीर्वाद देकर कहा—।।७६-७७।।

---

१. क. ॰ङ्क्ते मूत्ररसं मां॰।
२. ख. धर्षो दृ॰।

दक्ष उवाच

देहि जामातरं शंभो मदीयं प्राणवल्लभम्।
मत्सुतानां च प्राणानां परमेव प्रियं पतिम्॥७८॥
न चेद्ददासि जामातर्मम जामातरं विधुम्।
दास्यामि दारुणं शापं तुभ्यं त्वं केन मुच्यसे॥७९॥

दक्ष कहते हैं–हे शम्भु! हमें हमारे प्राणवल्लभ जामाता चन्द्रमा को वापस दीजिये। चन्द्रमा मेरी कन्याओं का प्राणों की अपेक्षा प्रिय पति है। मेरी पुत्रियां अपने पति को न देख कर अत्यन्त कातर हो गई हैं। अब विलम्ब न करें। हे जामाता शंभु! मैं निश्चय कहता हूं कि यदि आप मेरे जामाता को वापस नहीं देते, तब मैं सत्य कहता हूं कि आपको घोर शाप दूंगा। उससे रक्षा करने की शक्ति किसमें है?।।७८-७९।।

दक्षस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः। सुधाधिकं च वचनं ब्रह्मञ्शरणपञ्जरः॥८०॥

हे द्विजप्रवर शौनक! शरणागतवत्सल कृपालु शंकर ने अपने श्वसुर का यह कथन सुनकर सुधा से भी मधुर शब्दों में उनको प्रत्युत्तर दिया।।८०।।

शिव उवाच

करोषि भस्मसाच्चेन्मां दत्त्वा वा शापमेव च।
नाहं दातुं समर्थश्च चन्द्रं च शरणागतम्॥८१॥

महादेव कहते हैं–हे दक्षराज! चाहे आप मुझे भस्मसात् कर दीजिये अथवा शाप दीजिये, तथापि मैं शरणागत चन्द्रमा को नहीं दे सकता।।८१।।

शिवस्य वचनं श्रुत्वा दक्षस्तं शप्तुमुद्यतः।
शिवः सस्मार गोविन्दं विपन्मोक्षणकारकम्॥८२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्।
समाययौ तयोर्मूलं तौ तं च नमतुः क्रमात्॥८३॥
दत्त्वा शुभाशिषं तौ स ब्रह्मज्योतिः सनातनः।
उवाच शङ्करं पूर्वं परिपूर्णतमो द्विज॥८४॥

हे शौनक! शिव का यह वचन सुनकर दक्ष शिव को शाप देने हेतु उद्यत हो गये। यह देख कर शिव ने तत्काल विपत्ति से मुक्ति दिलाने वाले गोविन्द का स्मरण किया। तदनन्तर भगवान् कृष्ण वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके वहां आये। भगवान् कृष्ण ही तो दक्ष तथा शिव के मूल कारण हैं। उन वृद्ध ब्राह्मण को शिव तथा दक्ष ने क्रमशः प्रणाम किया। हे द्विज! तब उन सनातन ब्रह्मज्योति कृष्ण जो ब्राह्मण रूपधारी थे, उन्होंने शिव तथा दक्ष को शुभाशीर्वाद देते हुए शंकर से कहा–।।८२-८४।।

श्रीभगवानुवाच

न चाऽऽत्मनः प्रियः कश्चिच्छर्वं सर्वेषु बन्धुषु।
आत्मानं रक्ष दक्षाय देहि चन्द्रं सुरेश्वर॥८५॥
तपस्विनां वरः शान्तस्त्वमेवं वैष्णवाग्रणीः।
समः सर्वेषु जीवेषु हिंसाक्रोधविवर्जितः॥८६॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे शर्व (शिव)! सभी बन्धु-बान्धवों में से आत्मा से बढ़ कर कोई प्रिय नहीं है। हे देवपति शिव! आत्मरक्षा ही सर्वतोभावेन करे। तभी मैं कहता हूं कि दक्षराज को उनके द्वारा प्रार्थित चन्द्रमा सौंप कर अपनी रक्षा करें। हे शंकर! आप तो तपस्वियों में श्रेष्ठ हैं। आप तो शान्त स्वभाव, वैष्णवों में अग्रगण्य तथा समदर्शी हैं। आप हिंसा तथा क्रोध से रहित भी हैं।।८५-८६।।

दक्षः क्रोधी च दुर्धर्षस्तेजस्वी ब्रह्मणःसुतः। शिष्टो बिभेति दुर्धर्षं न दुर्धर्षश्च कञ्चन॥८७॥

दक्ष ब्रह्मा का पुत्र दक्ष क्रोधी, दुर्धर्ष तथा तेजस्वी है। जो व्यक्ति शिष्ट है, वही दुर्धर्ष से भयभीत होता है, तथापि दुर्धर्ष किसी से भी भय नहीं करता।।८७।।

नारायणवचः श्रुत्वा हसित्वा शङ्करः स्वयम्।
उवाच नीतिसारं च नीतिबीजं परात्परम्॥८८॥

नारायण का यह कथन सुनकर शंकर ने हंसते हुए नीतिशास्त्र का सारतत्व कहते हुए बीजरूप परमोत्तम वाक्य कहा–।।८८।।

शङ्कर उवाच

तपो दास्यामि तेजश्च[१] सर्वसिद्धिं च संपदम्।
प्राणांश्च न समर्थोऽहं प्रदातुं शरणागतम्॥८९॥
यो ददाति भयेनैव प्रपन्नं शरणागतम्।
तं च धर्मः परित्यज्य याति शप्त्वा सुदारुणम्॥९०॥

श्री शंकर कहते हैं–हे नारायण! मैं तेज, सभी सिद्धि, संपदा, प्राण तक प्रदान कर दूंगा, तथापि कदापि शरणागत का त्याग नहीं कर सकता। जो प्रपन्न शरणागत को भय के कारण दे देता है, उसे धर्म त्याग देता है तथा घोर शाप देकर चला जाता है।।८९-९०।।

सर्वं त्यक्तुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो। यः स्वधर्मविहीनश्च स च सर्वबहिष्कृतः॥९१॥
यश्च धर्मं सदा रक्षेद्धर्मस्तं परिरक्षति। धर्मं वेदेश्वरं त्वं च किं मां ब्रूहि स्वमायया॥९२॥

त्वं सर्वमाता स्रष्टा च हन्ता च परिणामतः।
त्वयि भक्तिर्दृढा यस्य तस्य कस्माद्भयं भवेत्॥९३॥

१. क. ०श्च० ब्रह्मसि०।

हे जगत्प्रभु! तभी मैं कहता हूं कि मैं सब कुछ त्यागने हेतु प्रस्तुत हूं, लेकिन धर्म का कदापि त्याग नहीं करूंगा। जो व्यक्ति धर्मविहीन हो जाता है, उसकी कोई गति नहीं रह जाती। जो व्यक्ति सतत् धर्म रक्षा करता रहता है, स्वयं धर्म उस व्यक्ति की रक्षा करता है। हे प्रभो! आप ही तो वेदों के कर्त्ता हैं। मैं आपसे पूछता हूं कि इस परिस्थिति में क्या करने से धर्म की रक्षा होगी? हे सनातन! आपने ही इस संसार का सृजन किया है। आप ही इसके पालनहार हैं। अन्त में आपकी इच्छा से ही समस्त आपमें विलीन हो जाता है। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है। हे ईश्वर! आप धर्म के ज्ञाता हैं। (आप माया से मुझे मोहित करके यह सब क्यों कहते जा रहे हैं)। जिसकी भक्ति आपमें दृढ़ है, उसे किसका भय?।।९१-९३।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा भगवान्सर्वभाववित्।
चन्द्रं चन्द्राद्विनिष्कृष्य दक्षाय प्रददौ हरिः।।९४।।
प्रतस्थावर्धचन्द्रश्च निर्व्याधिः शिवशेखरे। निजग्राह परं चन्द्रं विष्णुदत्तं प्रजापतिः।।९५।।
यक्ष्मग्रस्तं च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टाव माधवम्।
पक्षे पूर्णं क्षतं पक्षे तं चकार हरिः स्वयम्।।९६।।
कृष्ण[1] एवं वरं दत्त्वा जगाम स्वालयं द्विज।
दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वा च कन्याभ्यः प्रददौ पुनः।।९७।।

सभी के भाव के ज्ञाता कृष्ण ने शंकर का कथन सुना। वे इस कथन से अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तब कृष्ण ने शंभु के शिखर भाग पर स्थित चन्द्रमा में से आधा चन्द्रमा ले लिया तथा शम्भु शीर्षस्थ चन्द्रमा में से आधा चन्द्रमा ग्रहण करके दक्षराज को दे दिया। हे द्विजप्रवर! तभी से व्याधि रहित अर्द्ध चन्द्रमा शिव के शीर्ष पर अवस्थित हो गया। विष्णु द्वारा प्रदत्त आधे चन्द्रमा को यक्ष्मा से ग्रस्त देख कर दक्षराज कमलापति श्रीकृष्ण का स्तव गायन करने लगे। दयामय श्रीहरि उनके ऊपर प्रसन्न हो गये। उन्होंने तब कहा कि चन्द्रमा एक पक्ष में पूर्ण रहेगा, लेकिन अन्य पक्ष में क्षीण रहेगा। हे द्विज! एवंविध वर प्रदान करके श्रीकृष्ण वापस अपने घर चले गये। दक्ष ने भी शिव से चन्द्र को वापस पाकर उसे अपनी पुत्रियों को दे दिया।।९४-९७।।

चन्द्रस्ताश्च परिप्राप्य विजहार दिवानिशम्।
समं ददर्श ताः सर्वास्तत्प्रभृत्येव कम्पितः।।९८।।

चन्द्रमा अपनी सभी पत्नियों को प्राप्त करके उनके साथ रात्रि-दिन विहाररत हो गये। वे सभी पत्नियों के प्रति अब समान भाव रखने लगे।।९८।।

इत्येवं कथितं सर्वं किञ्चित्सृष्टिक्रमं मुने। श्रुतं च गुरुवक्त्रेण पुष्करे मुनिसंसदि।।९९।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे प्रसूतिवंशवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।।९।।

---

१. ख. ०ष्णास्तेभ्यो व०।

हे मुनिप्रवर! मैंने पुष्कर तीर्थ की मुनि सभा में यह वृत्तान्त गुरु से सुना था, जो सृष्टिक्रम सम्बन्धित था। मैंने वही यथाश्रुत आपसे कहा है।।९९।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ दशमोऽध्यायः

जाति निर्णय प्रस्ताव में घृताची एवं विश्वकर्मा का परस्पर एक-दूसरे को शाप देना तथा सम्बन्ध निरूपण का वर्णन

सौतिरुवाच

भृगोः पुत्रश्च च्यवनः शुक्रश्च ज्ञानिनां वर। क्रतोरपि क्रिया भार्या बालखिल्यानसूयत।।१।।
त्रयः पुत्राश्चाङ्गिरसो बभूवर्मुनिसत्तमाः। बृहस्पतिरुतथ्यश्च[1] शम्बरश्चापि[2] शौनक।।२।।
वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः। पराशरसुतः श्रीमान्कृष्णद्वैपायनो हरिः।।३।।
व्यासपुत्रः शिवांशश्च शुक्रश्च ज्ञानिनां वरः।
विश्वश्रवाः पुलस्त्यस्य यस्य पुत्रो धनेश्वरः।।४।।

सौति कहते हैं–(हे द्विजप्रवर! इसके पश्चात् अन्य सृष्टिप्रकरण कहता हूं)। महर्षि भृगु ज्ञानीगण में श्रेष्ठ थे। उनके पुत्र थे च्यवन तथा शुक्र। क्रतु मुनि की भार्या क्रिया से बालखिल्य मुनिगण जन्मे। हे शौनक! तत्पश्चात् महामुनि अंगीरा के औरस से मुनिप्रधान बृहस्पति, उतथ्य एवं सम्बर नामक तीन पुत्र जन्मे। वसिष्ठ के पुत्र थे शक्ति। उनके पुत्र थे पराशर तथा पराशर के पुत्र थे श्रीमान् कृष्ण द्वैपायन व्यास। ये व्यास विष्णु के ही अंशावतार कहे जाते हैं। व्यास के पुत्र शुक को शिव का अंश माना गया है। पुलत्स्य के पुत्र थे विश्वश्रवा। उनके पुत्र थे धनेश्वर कुबेर।।१-४।।

शौनक उवाच

अहो पुराणविदुषामत्यन्तं दुर्गमं वचः। न बुद्धं वचनं किञ्चिद्धनेशोत्पत्तिपूर्वकम्।।५।।
अधुना कथितं जन्म धनेशस्येश्वरादिदम्। पुनर्भिन्नक्रमं जन्म ब्रवीषि कथमेव माम्।।६।।

शौनक मुनि कहते हैं–यह क्या अद्भुत बात है। हे सौति! पुराणज्ञ महात्माओं का कथन अत्यन्त

---

१. क. ०श्च संवर्तश्चा०।
२. सम्वर्त्तश्चाति शोभनः इत्यपि पाठः।

दुर्बोध होता है। मैं तो कुबेर का जन्म विवरण तनिक भी नहीं समझ सका। आपने अभी परमेश्वर कृष्ण से धनेश्वर कुबेर के जन्म की बात कही है। अब पुनः किस कारण से अन्य बात उनके सम्बन्ध में कह रहे हैं कि कुबेर विश्वश्रवा के पुत्र थे?।।५-६।।

सौतिरुवाच

बभूवुरेते दिक्पालाः पुरा च परमेश्वरात्। पुनश्च ब्रह्मशापेन स च विश्रवसः सुतः।।७।।

सौति कहते हैं– पूर्वकाल में ये सभी दिक्पाल परमेश्वर से ही जन्मे थे। यह सत्य है, तथापि ये धनेश्वर कुबेर ब्रह्मा के शाप से विश्रवा के वंशधर हो गये।।७।।

गुरवे दक्षिणां दातुमुतथ्यश्च धनेश्वरम्। ययाचे कोटिसौवर्णं यत्नतश्च प्रचेतसे।।८।।
धनेशो विरसो भूत्वा तस्मै तद्दातुमुद्यतः। चकार भस्मसाद्विप्र पुनर्जन्म ललाभ सः।।९।।
तेन विश्रवसः पुत्रः कुबेरश्च धनाधिपः। रावगः कुम्भकर्णश्च धार्मिकश्च विभीषणः।।१०।।

इसका कारण श्रवण करिये। एक बार अंगीरा के पुत्र उतथ्य अपने गुरु प्रचेता को दक्षिणा देने के लिये धनेश्वर कुबेर के यहां गये तथा अत्यन्त आदर से १ कोटि स्वर्णमुद्रा की याचना किया। हे विप्रवर! धनेश्वर ने इतनी बड़ी राशि देने में कुछ निष्ठुर व्यवहार उतथ्य के साथ किया। तब उतथ्य ने धनेश्वर को क्रोध पूर्वक भस्मसात् कर दिया। इसी से कुबेर को विश्रवा मुनि के पुत्ररूप में पुनः जन्म लेना पड़ा। इसी कारण कुबेर वैश्रवण कहलाये। कुबेर के अतिरिक्त विश्रवा के पुत्र थे रावग, कुंभकर्ण तथा विभीषण।।८-१०।।

पुलहस्य सुतो वात्स्यः शाण्डिल्यश्च रुचेः सुतः।
सावर्णिर्गौतमाज्जज्ञे मुनिप्रवर एव सः।।११।।
काश्यपः कश्यपाज्जातो भरद्वाजो बृहस्पतेः।
(स्वयं वात्स्यश्च पुलहात्सावर्णिर्गौतमात्तथा।।१२।।
शाण्डिल्यश्च रुचेः पुत्रो मुनिस्तेजस्विनां वरः।)
बभूवः पञ्चगोत्राश्च एतेषां प्रवरा भवे।।१३।।
बभूवुर्ब्रह्मणो वक्त्रादन्या ब्राह्मणजातयः।
ताः स्थिता देशभेदेषु गोत्रशून्याश्च शौनक।।१४।।

पुलह मुनि का वात्स्य नामक तथा महर्षि रुचि का शाण्डिल्य नामक एक पुत्र था। मुनिप्रवर सावर्णि ने गौतम के औरस से जन्म लिया था। कश्यप के पुत्र थे विख्यात काश्यप मुनि तथा भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र थे। इन पांच मुनियों ने पंचगोत्र का प्रवर्तन किया था। ये सभी महातेजस्वी भी थे। हे तपोधन! प्रजापति ब्रह्मा के मुख से अन्य ब्राह्मणों की जाति की उत्पत्ति कही गयी है। वे अनेक देशों में निवास करने वाले गोत्र रहित हैं।।११-१४।।

चन्द्रादित्यमनूनां च प्रवराः क्षत्रियाः स्मृताः।
ब्रह्मणो बाहुदेशाच्चैवान्याः क्षत्रियजातयः॥१५॥
ऊरुदेशाच्च वैश्याश्च पादतः शूद्रजातयः। तासां सङ्करजातेन बभूवुर्वर्णसङ्कराः॥१६॥

हे शौनक! चन्द्र-सूर्य एवं मनु से उत्पन्न सभी क्षत्रियगण श्रेष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त अन्य क्षत्रियों की उत्पत्ति ब्रह्मा की बाहु से कही जाती है। इनसे श्रेष्ठ हैं चन्द्र-सूर्य तथा मनु से उत्पन्न क्षत्रिय। प्रजापति ब्रह्मा के उरु से वैश्यों की तथा चरण से शूद्रों की उत्पत्ति कही गयी है। तदनन्तर इन चारों जाति के मिश्रण (साङ्कर्य) से जिनका जन्म हुआ, वे वर्णसंकर कहे गये॥१५-१६॥

गोपनापितभिल्लाश्च तथा मोदककूबरौ।
ताम्बूलिस्वर्णकारौ च वणिग्जातय एव च॥१७॥
इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सच्छूद्राः परिकीर्तिताः।
शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्द्विजन्मनोः॥१८॥

हे ब्राह्मणप्रवर! गोप, नाई, भील, मोदक (हलवाई), कूबर, पनवाड़ी, स्वर्णकार तथा वणिक्- ये सत् शूद्र हैं। शूद्र तथा वैश्य के मिश्रण से उत्पन्न सन्तान को करण कहते हैं। वैश्य से ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय से उत्पन्न सन्तान अम्बष्ट कही जाती है॥१७-१८॥

(शूद्रा नारी के गर्भ से तथा वैश्य के औरस से उत्पन्न सन्तान ही करण है। क्षत्रिय किंवा ब्राह्मण के औरस से वैश्य नारी से उत्पन्न सन्तान है अम्बष्ट)।

विश्वकर्मा च विद्यायां वीर्याधानं चकार सः।
ततो बभूवुः पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिणः॥१९॥
मालाकारः कर्मकारः शङ्खकारः कुबिन्दकः।
कुम्भकारः कांस्यकारः षडेते शिल्पिनां वराः॥२०॥
सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च। पतितास्ते ब्रह्मशापादयाज्या वर्णसङ्कराः॥२१॥

विश्वकर्मा ने विद्याधरी में गर्भाधान किया। उससे ९ शिल्पकार पुत्र जन्मे। ये हैं-माली, बढ़ई, शंख का कारीगर, जुलाहा, कुम्हार (मिट्टी का पात्र बनाने वाला), कांस्यकार (बर्तन बनाने वाला)। ये छह प्रकार के श्रेष्ठ शिल्पी हैं। लेकिन ब्रह्मा के शाप के कारण बढ़ई, चित्रकार (मूर्त्ति निर्माता) सोनार को वर्णसंकर तथा पतित एवं यज्ञाधिकार रहित माना गया है॥१९-२१॥

शौनक उवाच

कथं देवो विश्वकर्मा वीर्याधानं चकार सः। शूद्रयामधमायां च कथं ते पतितास्त्रयः॥२२॥
कथं तेषु ब्रह्मशापो ह्यभवत्केन हेतुना। हे पुराणविदां श्रेष्ठ तन्नः शंसितुमर्हसि॥२३॥

शौनक मुनि कहते हैं-हे सौति! आप उत्तम पुराणज्ञ हैं। कृपया कहिये कि शिल्पीप्रवर

विश्वकर्मा ने देवता होकर भी शूद्रा में गर्भ स्थापित क्यों किया? किस कारण से उनके पुत्रगण पतित कहे गये? उनको किस कारण से ब्रह्मशाप मिला था? यह सब विशेषतया कहिये।।२२-२३।।

सौतिरुवाच

घृताची कामतः कामं वेषं चक्रे मनोहरम्। तामपश्यद्विश्वकर्मा गच्छन्तीं पुष्करे पथि।।२४।।
आगच्छत्तद्विलोकाच्च प्रसादोत्फुल्लमानसः।
तां ययाचे स शृङ्गारं कामेन हृतचेतनः।।२५।।
रत्नालङ्कारभूषाढ्यां सर्वावयवकोमलाम्। यथा षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।।२६।।
बृहन्नितम्बभारार्तां मुनिमानसमोहिनीम्। अतिगवेकटाक्षेण लोलां कामातिपीडिताम्।।२७।।

सौति कहते हैं–एक बार स्वर्ग की रमणी घृताची कामार्त्ता होकर मनोहर वेश बना कर पुष्कर तीर्थ गयी। तभी आनन्द चित्त वाले विश्वकर्मा सूर्यलोक से वहां आये तथा उन्होंने सहसा इस विद्याधरी को देखा, जो अत्यन्त विलासिनी प्रतीत हो रही थी। उस विद्याधरी को देखते ही विश्वकर्मा कामभाव से अत्यन्त अधीर हो गये। उन्होंने उस विद्याधरी से सहवास हेतु प्रार्थना किया। हे मुनियों में अग्रगण्य! वह नारी सर्वालंकार विभूषिता, कोमलांगी, सुस्थिरयौवना, षोडश वर्षीया बाला लग रही थी। उसके नितम्ब बृहद् थे। उसके भार से वह किंचित् आर्त्त (झुकी) लग रही थी। उसका रूप तो मुनिगण के मन को भी मोहित कर रहा था। उसके वेगयुक्त कटाक्ष थे, जिससे वह चंचला तथा अति कामपीड़िता लग रही थी।।२४-२७।।

तच्छ्रोणीं कठिनां दृष्ट्वा वायुनाऽपहृताऽशुकाम्।
अतीवोच्चैः स्तनयुगं कठिनं वर्तुलं परम्।।२८।।
सुस्मितं चारु वक्त्रं च शरच्चन्द्रविनिन्दकम्।
पक्वबिम्बफलारक्तस्वोष्ठाधरमनोहरम् ।।२९।।
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तं कस्तूरीबिन्दुसंयुतम्। कपोलमुज्ज्वलं शश्वन्महार्हमणिकुण्डलम्।।३०।।
तामुवाच प्रियां शान्तं कामशास्त्रविशारदः।
कामाग्निवर्धनोद्योगि वचनं श्रुतिसुन्दरम्।।३१।।

वायु के प्रवाह से उस नारी के कठोर जंघाओं पर से वस्त्र उड़ते जा रहे थे। प्रतीत हो रहा था मानों पवनदेव उसके विशाल वर्त्तुल तथा कठोर स्तनों की दर्शन लालसा के कारण उसके आंचल को उड़ा रहे थे। उसका आनन तो शारदीय चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा था। उस पर मन्द-मन्द मुस्कान की छटा अलौकिक लग रही थी। उसके ओष्ठ तथा अधर पके हुए बिम्बफल से भी द्विगुणित शोभायुक्त तथा मनोहर थे। उसके ललाट पर कस्तूरी मिश्रित सिन्दूर का टीका लगा था। कपोलों पर मणिकुण्डल विराजमान थे, जिनको देख कर कोई भी पुरुष धैर्य धारण ही नहीं कर सकता था। ऐसी अलौकिक

सौन्दर्यमयी घृताची को सामने देख कर कामशास्त्र विशारद विश्वकर्मा ने कामभाव को उद्दीप्त करने वाले, श्रवण मनोहर वाक्यों को कहना प्रारम्भ किया।।२८-३१।।

विश्वकर्मोवाच

अयि क्व यासि ललिते मम प्राणाधिके प्रिये।
मम प्राणांश्चापहृत्य तिष्ठ कान्ते क्षणं शुभे॥३२॥
तवैवान्वेषणं कृत्वा भ्रमामि जगतीतलम्।
स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहं त्वां न दृष्ट्वा हुताशने॥३३॥

विश्वकर्मा कहते हैं—हे सुन्दरी! तुम तो मेरे लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। इस समय मुझे छोड़ कर मेरा प्राणहरण करते कहां जा रही हो? हे शुभे! क्षणमात्र रुक जाओ। सामने रुको, जिससे मैं अपने नयन तुम्हारे रूप से भर सकूं। मैंने तो यह सुना कि तुम कहीं जा रही हो, तब से ही मैं तुमको खोजते हुए समग्र भूमण्डल में भटक रहा हूं। मैंने यह संकल्प किया था कि तुम्हारा यदि दर्शन नहीं मिलेगा, तब मैं अग्नि में कूद कर प्राणत्याग करूंगा।।३२-३३।।

त्वं कामलोकं यासीति श्रुत्वा रम्भामुखान्मया।
आगच्छमहमेवाद्य चास्मिन्वर्त्मन्यवस्थितः॥३४॥
अहो सरस्वतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे। सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुरभीकृते॥३५॥
रम कान्ते मया सार्द्धं यूना कान्तेन शोभने।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्॥३६॥

मैंने अप्सरा रंभा से यह सुना था कि तुम कामलोक जा रही हो। तभी मैं यहां आकर रुक गया था। हे सुन्दरी! यह देखो। सरस्वती नदी के तट पर यह कितना उत्तम पुष्पोद्यान है। यही शीतल मन्द सुगन्धित पवन से सुरभित स्थान है। हे शोभने! अब विलम्ब मत करो। शीघ्र मुझ रूपवान् युवक के साथ रमण करो। जो विचक्षण पुरुष है, उसका विचक्षण (चतुर) नारी के साथ का समागम अत्यन्त सुखदायी होता है।।३४-३६।।

स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी। कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी॥३७॥
मृत्युञ्जयवरेणैव मृत्युकन्या जिता मया। कुबेरभवनं गत्वा धनं लब्धं कुबेरतः॥३८॥
रत्नमाला च वरुणाद्वायोः स्त्रीरत्नभूषणम्। वह्निशुद्धं वस्त्रयुग्मं वह्नेःप्राप्तं महौजसः॥३९॥

हे शुभे! तुम्हारा यौवन नित्य स्थायी है। तुम चिरजीवी नारी हो। तुमने अपने अपूर्व सौन्दर्य द्वारा सभी सुन्दरियों की सुन्दरता पर जय पा लिया। तुम कामार्त्ता, अतिशय कोमल अंगों वाली तथा अपूर्व रूपवती हो। भूतभावन मृत्युंजय देव के वरप्रभाव से मैंने तुम्हारी ही तरह मृत्युकन्या पर विजय पा लिया है। मैंने भवन निर्माण कौशल द्वारा कुबेर से धन-रत्न पाया है। मैंने वरुण से रत्नमाला तथा वायुदेव से स्त्रीरत्नभूषण प्राप्त किया है। मैंने अग्निदेव से दो शुद्ध वस्त्रों की प्राप्ति किया है।।३७-३९।।

कामशास्त्रं कामदेवाद्योषिद्रञ्जनकारणम्।
शृङ्गारशिल्पं यत्किंचिल्लब्धं चन्द्राच्च दुर्लभम्॥४०॥
रत्नमालां वस्त्रयुग्मं सर्वाण्याभरणानि च। तुभ्यं दातुं हृदि कृतं प्राप्तं तत्क्षणमेव च॥४१॥
गृहे तानि च संस्थाप्य चाऽऽगतोऽन्वेषणे भवे।
विरामे सुखसंभोगे तुभ्यं दास्यामि सांप्रतम्॥४२॥

मैंने कामदेव से कामिनियों को मनोरंजित करने वाला कामशास्त्र प्राप्त किया है (अध्ययन किया है)। चन्द्रदेव ने मुझ पर कृपा करके यत्किंचित् शृंगारकला का ज्ञान प्रदान किया है। यह विद्या सामान्य लोगों हेतु अतीव दुर्लभ है। हे प्राणवल्लभे! मैंने पहले से ही यह निश्चित किया है कि वह रत्नमाला, वस्त्रद्वय तथा समस्त स्त्री योग्य वे आभूषण तुमको प्रदान करूंगा। मैं उन सब दुर्लभ वस्तुओं को अपने गृह में रक्षित करके ही यहां आया हूं। तुम्हारे साथ सुख पूर्वक संभोग सम्पन्न करके वे सभी तुमको प्रदान करूंगा।।४०-४२।।

कामुकस्य वचः श्रुत्वा घृताची सस्मिता मुने।
ददौ प्रत्युत्तरं शीघ्रं नीतियुक्तं मनोहरम्॥४३॥

हे मुनि! उन कामुक विश्वकर्मा का यह वचन सुनकर घृताची ने उनसे तत्काल नीतियुक्त मनोहर वचनों को कहा-।।४३।।

घृताच्युवाच

त्वया यदुक्तं भद्रं तत्स्वीकरोभ्यधुना परम्।
किंतु सामयिकं वाक्यं ब्रवीष्यामि स्मरातुर॥४४॥
कामदेवालयं यामि कृतवेषा च तत्कृते। यद्दिन यत्कृते यामो वयं तेषां च योषितः॥४५॥
अद्याहं कामपत्नी च गुरुपत्नी तवाधुना। त्वयोक्तमधुनेदं च पठितं कामदेवतः॥४६॥
विद्यादाता मन्त्रदाता गुरुर्लक्षगुणैः पितुः।
मातुः सहस्रगुणवान्नास्तयन्यस्तत्समो गुरुः॥४७॥

घृताची विद्याधरी कहती है-हे कामातुर! आपने जो कुछ भी कहा है, उसे मैं स्वीकार करती हूं, तथापि मैं समयानुकूल जो कहती हूं, उसे श्रवण करिये। हे देव! मैं इस समय कामदेव के उद्देश्य से ही यह वेष-सज्जा सहित उनके पास जा रही हूं। हमारा नियम यह है कि जिस दिन, जिसके लिये सज्जा करके हम जाती हैं, उस दिन हम उसी व्यक्ति की पत्नी हो जाती हैं। अतः आज मैं कामदेव की पत्नी तथा आपके लिये गुरुपत्नी हूं। यह आपने अभी स्वीकार किया है कि आपने कामशास्त्र की शिक्षा कामदेव से पाई है। शास्त्र का नियम है विद्यादाता तथा मन्त्रदाता की स्थिति पिता से एक लाख गुना तथा माता से सहस्त्र गुना अधिक होती है। उसके समान कोई गुरु नहीं कहा गया है।।४४-४७।।

गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुतौ श्रुता।
पितुः शतगुणं पूज्या यथा माता विचक्षणः॥४८॥
मात्रा समागमे सूनोर्यावान्दोषः श्रुतौ श्रुता। ततो लक्षगुणो दोषो गुरुपत्नीसमागमे॥४९॥
मातरित्येव शब्देन यां च संभाषते नरः।
सा मातृतुल्या सत्येन धर्मः साक्षी सतामपि॥५०॥
तया हि सङ्गतो यः स्यात्कालसूत्रं प्रयाति सः।
तत्र घोरे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥५१॥

हे विचक्षण विश्वकर्मा! यह वेद का वचन है कि पिता की तुलना में माता अधिक पूज्य होती है। उसी प्रकार गुरु की तुलना में गुरुपत्नी सौ गुना अधिक पूज्य कही गयी है। मातृहरण की तुलना में गुरुपत्नी हरण सौ गुना अधिक पापमय है। हे सुभग! व्यक्ति जिसे माता कहता है, वह भी मातृतुल्य है। धर्म इसका साक्षी है। अतः उसके साथ समागम करने वाला पातकी कालसूत्र नरक में फेंका जाता है, जहां वह तब तक यातना भोग करता है, जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य विद्यमान हैं।।४८-५१।।

मात्रा सह समायोगे ततो दोषश्चतुर्गुणः। सार्द्धं च गुरुपत्न्या च तल्लक्षगुण एव च॥५२॥
कुम्भीपाके पतत्येव यावद्वै ब्रह्मणो वयः। प्रायश्चितं पापिनश्च तस्य नैव श्रुतौ श्रुतम्॥५३॥

इसी कारण माता से समागम का दोष सामान्य अपहृत नारी से समागम की तुलना में चतुर्गुण कहा गया है, परन्तु गुरुपत्नी के साथ समागम करने वाला इससे भी एक लाख गुणित दोष का भागी होता है। उसे तो ब्रह्मा की पूर्ण आयु पर्यन्त कुंभीपाक नरक में दुःखभोग करना ही होगा। इस श्रेणी के पातकी हेतु कोई भी प्रायश्चित्त विधान वेदों में भी नहीं है।।५२-५३।।

चक्राकारं कुलालस्य तीक्ष्णधारं च खड्गवत्। वसामूत्रपुरीषैश्च परिपूर्णं सुदुस्तरम्॥५४॥
शूलवत्कृमिसंयुक्तं तप्तमग्निसमं द्रवत्। पापिनां तद्विहारं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम्॥५५॥

हे देव! यह कुंभीपाक नरक तो कुलाल (कुम्हार) के चक्के के समान गोलाकार, खड्ग जैसा तीक्ष्ण धार वाला है। वहां विष्ठा-मूत्र-चर्बी भरी रहती है। वहां फेंके जाने पर वहां से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं है। वहां निरन्तर भयानक शूल के समान क्रिमि विचरण करते रहते हैं। वहां का जल अग्निवत् अत्यधिक उष्ण है। उसका स्पर्श ही दग्धकारी है। वहां फेंके गये प्राणी इसी जल से पिपासा शान्त करने हेतु विवश हैं। उनका भोजन वहां पड़ा मल-मूत्र ही है। गुरुतर पातकी लोगों के भ्रमण का यही स्थान निश्चित है। यही है कुंभीपाक नरक।।५४-५५।।

यावान्दोषो हि पुंसां च गुरुपत्नीसमागमे।
तावांश्च गुरुपत्न्या वै तत्र चेत्कामुकी यदि॥५६॥

यदि गुरुपत्नी कामपरवश होकर पुरुष से संभोग करती है, उस पुरुष को जो पाप लगेगा, वही गुरुपत्नी को भी होगा।।५६।।

अद्य यास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्य कामिनी।
वेषं कृत्वाऽऽगमिष्यामि त्वत्कृतेऽहं दिनान्तरे॥५७॥

हे विश्वकर्मन्! मैं आज कामदेव की कामिनी होकर कामदेव के यहां जा रही हूं। मैं अन्य दिन आपके निमित्त उत्तम वेशधारी होकर आ जाऊंगी॥५७॥

घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा रुरोष ताम्। शशाप शूद्रयोनिं च व्रजेति जगतीतले॥५८॥

घृताची तद्वचः श्रुत्वा तं शशाप सुदारुणम्।
लभ जन्म भवे त्वं च स्वर्गभ्रष्टो भवेति च॥५९॥

घृताची का यह कथन सुन कर विश्वकर्मा उसके प्रति क्रोधित हो गये। उन्होंने घृताची को शाप दिया कि "तुम अब धरती पर शूद्र योनि में जन्म लोगी।" घृताची ने भी विश्वकर्मा का यह शाप सुन कर उनको दारुण शाप देते कहा कि "तुम भी स्वर्ग से भ्रष्ट (च्युत) होकर मृत्युलोक में जन्म लोगे"॥५८-५९॥

घृताची कारुमुक्त्वा च साऽगच्छत्काममन्दिरम्।
कामेन सुरतं कृत्वा कथयामास तां कथाम्॥६०॥
सा भारते च कामोक्त्या गोपस्य मदनस्य च।
पत्न्यां प्रयागे नगरे लेभे जन्म च शौनक॥६१॥

जातिस्मरा तत्प्रसूता बभूव च तपस्विनी। वरं न वव्रे धर्मिष्ठा तपस्यायां मनो दधौ॥६२॥

घृताची ने इस प्रकार शाप दिया और कामदेव के यहां जाकर उसने कामदेव के साथ सुख पूर्वक रमण करके अन्ततः यह सब वृत्तान्त भी कामदेव से कह दिया। तदनन्तर घृताची ने भारतभूमि स्थित तीर्थराज प्रयाग में मदन गोप की कन्या के रूप में जन्म लिया, तथापि घृताची को पूर्व जन्म की स्मृति बनी थी। उसने अब निश्चित मन से वर ग्रहण से दूर रहने का तथा तपःश्चरण करने का दृढ़ संकल्प किया॥६०-६२॥

तपश्चकार तपसा तप्तकाञ्चनसंनिभा। दिव्यं च शतवर्षं सा गङ्गातीरे मनोरमे॥६३॥
वीर्येण सुरकारोश्च नव पुत्रान्प्रसूय सा। पुनः स्वर्लोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह॥६४॥

उस स्वर्णवर्णा घृताची ने गंगा के रम्य तट पर १०० दिव्य वर्ष पर्यन्त कठोर तप किया। (१०० × ३६० मानव वर्ष)। हे मुनिवर! तदनन्तर घृताची ने देवशिल्पी विश्वकर्मा से समागम करके मृत्युलोक में ही ९ पुत्रों को उत्पन्न किया और शापमुक्त होकर वह स्वर्ग चली गई॥६३-६४॥

कथं वीर्यं सा दधार सुरकारोस्तपस्विनी।
पुत्रान्नव[१] प्रसूता च कुत्र वा कति वासरान्॥६५॥

१. क. ०त्रानष्टौ प्र०।

शौनक मुनि कहते हैं–हे सौति! वह तपस्विनी थी। उस अवस्था में उस घृताची ने कैसे विश्वकर्मा से समागम किया? इसके कितने दिनों पश्चात् कहां पर घृताची ने उन ९ पुत्रों को जन्म दिया? कृपया कहिये॥६५॥

सौतिरुवाच

विश्वकर्मा तु तच्छापं समाकर्ण्य रुषाऽन्वितः।
जगाम ब्रह्मणः स्थानं शोकेन हतचेतनः॥६६॥
नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम्।
ललाभ जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाज्ञया[१] विधेः॥६७॥
स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कारुर्बभूव ह।
नृपाणां च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ह॥६८॥

सौति कहते हैं–हे ऋषिप्रवर! विश्वकर्मा ने जब घृताची द्वारा दिये दारुण शाप को सुना, वे शोकाकुल होकर ब्रह्मलोक गये तथा उन्होंने विश्वनिर्माता ब्रह्मा का अनेक स्तव किया तथा पुनः-पुनः प्रणाम करके उनको प्रसन्न किया। तत्पश्चात् विश्वकर्मा ने उनसे समस्त घटनाक्रम भी कह दिया। इसके अनन्तर वे ब्रह्मा की आज्ञा से पृथिवी पर आये और वहां ब्राह्मणी के गर्भ से जन्म लिया। वे ब्राह्मण होकर भी शिल्पकार्य करते थे। उन्होंने अनेक राजाओं तथा गृहस्थों के यहां नाना प्रकार के शिल्पकार्य को किया था॥६६-६८॥

शिल्पं च कारयामास सर्वेभ्यः सर्वतः सदा।
विचित्रं विविधं शिल्पमाश्चर्यं सुमनोहरम्॥६९॥

वे स्वयं भी अन्य लोगों द्वारा शिल्प सम्बन्धित कार्य ही सम्पन्न कराने लगे। उनका यह कार्य विचित्र-विविध प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न करने वाला तथा मनोहर ही होता था!॥६९॥

एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च।
स्नातुं जगाम गङ्गां स चापश्यत्र कामिनीम्॥७०॥
घृताचीं नवरूपां[२] च युवतिं तां तपस्विनीम्।
जातिस्मरां तां बुबुधे स च जातिस्मरो द्विजः॥७१॥
दृष्ट्वा सकामः सहसा बभूव हतचेतनः।
उवाच मधुरं शान्तः शान्तां तां च तपस्विनीम्॥७२॥

एक समय वे प्रयाग में राजा के यहां शिल्पकार्यरत थे। तत्पश्चात् जब वे स्नानार्थ गंगातट पर

१. ख. ०थिमां साऽऽज्ञ०।
२. नररूपाञ्च इति वा पाठः।

गये, उन्होंने वहां एक तपस्विनी सुन्दरी रमणी को देखा। विश्वकर्मा को इस मनुष्य योनि में भी पूर्वजन्म की स्मृति अक्षुण्ण थी। अतः उन्होंने नवयौवना तपस्विनी घृताची को पहचान लिया। घृताची को देखते ही विश्वकर्मा कामपीड़ित हो उठे। वे सुमधुर वाणी से घृताची से कहने लगे। उनकी वाणी शान्त थी। उन्होंने उस शान्त तपस्विनी से कहा–।।७०-७२।।

ब्राह्मण उवाच

अहोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे[1]। मा मां स्मरसि रम्भोरु विश्वकर्माऽहमेव च।।७३।।

शापमोक्षं करिष्यामि भज मां तव सुन्दरि।
त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः।।७४।।

ब्राह्मण (विश्वकर्मा) कहते हैं–हे सुमनोहर घृताची! तुम यहां हो? स्मरण करो। हे केले के स्तम्भ के समान जांघों वाली! यह मैं विश्वकर्मा हूं। मेरे सहित रमण करो। हे सुन्दरी! मैं तुमको शाप रहित कर दूंगा। तुम्हारे ही लिये कामदेव मेरे मन को दग्ध कर रहे हैं।।७३-७४।।

द्विजस्य वचनं श्रुत्वा घृताची नवरूपिणी[2]। उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः।।७५।।

ब्राह्मण का यह वचन सुनकर वह नवरूपवती घृताची मधुर, शान्त तथा नीतियुक्त उत्तम वचन कहने लगी–।।७५।।

गोपिकोवाच

तद्दिने कामकान्ताऽहमधुना च तपस्विनी।
कथं त्वया सङ्गता स्यां गङ्गातीरे च भारते।।७६।।
विश्वकर्मन्निदं पुण्यं कर्मक्षेत्रं च भारतम्।
अत्र यत्क्रियते कर्म भोगोऽन्यत्र शुभाशुभम्।।७७।।
धर्मी मोक्षकृते जन्म प्रलभ्य तपसः फलात्।
निबद्धः कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया।।७८।।

गोपी (घृताची) कहती है–हे विश्वकर्मा! उस दिन मैं कामदेव की पत्नी थी। आज तपस्विनी हूं। मैं भारत के इस तीर्थ में गंगा तट पर आपके साथ कैसे रमणरत हो सकती हूं? हे विश्वकर्मन्! यह भारत सर्वदा पुण्यमय कर्मस्थल है। यहां लोग जो कर्म करते हैं, उसका शुभाशुभ फल अन्यत्र प्राप्त होगा। यहां वही व्यक्ति मोक्ष हेतु जन्म लेता है, जो धर्मात्मा है तथा पूर्वजन्म में जिसे तपोबल प्राप्त था। यहां जन्म लेकर वह विष्णु की माया से मोहित एवं बंध कर कर्माचरण करता है।।७६-७८।।

माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत्।
तस्मै ददाति श्रीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम्।।७९।।

---

१. क. ०रे मां संस्म०।
२. नररूपिणी इत्यपि पाठः।

यो मूढो विषयासक्तो लब्धजन्मा च भारते। विहाय कृष्णं सर्वेशं स मुग्धो विष्णुमायया॥८०॥

यह नारायणी माया जिससे सन्तुष्ट हो जाती है, उसे वह श्रीकृष्ण की भक्ति तथा अभिलषित मन्त्र मिल पाता है। इस भारत में जन्म लेकर जो मूढ़बुद्धि मनुष्य सर्वेश कृष्ण को छोड़ कर नारायणी माया से मोहित हो जाता है, वही मूढ़ है। यहां प्रत्येक विषयासक्त को देख कर उसे माया मोहित ही जानना चाहिए।।७९-८०।।

सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा। घृताची सुरवेश्याऽहमधुना गोपकन्यका॥८१॥

तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे[1]।
नात्र स्थलं च क्रीडायाः स्थिरस्त्वं भव कामुक॥८२॥

हे देव! इस समय मैं पूर्वजन्म का प्रसंग स्मरण कर रही हूं। मैं देववेश्या घृताची ही इस जन्म में गोपकन्या हो गई। मैं मोक्षकामी होकर सुपुण्यदायक गंगातट पर तप कर रही हूं। यह स्थान रमण क्रीड़ा का नहीं है। हे काम के वशीभूत विश्वकर्मा! आप शान्त होकर रहिये।।८१-८२।।

अन्यत्र च कृतं पापं गङ्गायां च विनश्यति। गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत्॥८३॥

तत्तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति। सद्यो वा कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत्पुनः॥८४॥

हे देव! कहीं पर भी किया पातक गंगा तट पर नष्ट होता है, परन्तु गंगा के किनारे जो पाप किया गया है, वह तो चार लाख गुना बढ़ जायेगा। वह चार लाख गुणित पातक केवल नारायण क्षेत्र में तप से नष्ट होगा। गंगा तट से लेकर ४ हाथ तक का स्थान ही नारायण क्षेत्र है। अचानक अथवा कामना के कारण कृत पातक का भी यहीं नाश कहा गया है।।८३-८४।।

घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्माऽनिलाकृतिः।
जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम्॥८५॥

रम्यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे। पुष्पचन्दनवातेन संततं सुरभीकृते॥८६॥

चकार सुखसंभोगं तया स विजने वने। पूर्णं द्वादशवर्षं च बुबुधे न दिवानिशम्॥८७॥

वायु की आकृतिधारी विश्वकर्मा घृताची का यह वचन सुन कर उनको वहां से चन्दन के वनों से युक्त मलयगिरि ले गये। वहां विश्वकर्मा ने मलय पर्वत के समतल प्रदेश में चन्दन की सुरभित वायु वाले मनोहर स्थल में पुष्प तथा चन्दन पत्तों से निर्मित उत्तम शय्या को बिछाया। वे उस निर्जन स्थल में घृताची के साथ सुखमय संभोग में रत हो गये। यह संभोग कार्य ऐसा चला कि १२ वर्ष पर्यन्त इन लोगों को दिन-रात का भी कोई भेद विदित नहीं हो सका।।८५-८७।।

बभूव गर्भः कामिन्याः परिपूर्णः सुदुर्वहः। सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव[2] मनोहरान्॥८८॥

---

१. सुखप्रदे इति पाठान्तरम्।

२. नव स्थाने अष्टौ इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः। एवमुक्तरत्र। तत्पाठवत्सु च पुस्तकेषु "मालाकारकर्मकारशंखकार कुविन्दकान्। कुंभकारसूत्रकार वर्णचित्रकरांस्तथा।"

कृतशिक्षितशिल्पांश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक।
पूर्वप्राक्तनतो योग्यान्बलयुक्तान्विचक्षणान्॥८९॥
मालाकारान्कर्मकाराञ्छङ्खकारान्कुविन्दकान्। कुम्भकारान्सूत्रकारान्स्वर्णचित्रकरांस्तथा॥९०॥
तौ च तेभ्यो वरं दत्त्वा तान्संस्थाप्य महीतले।
मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम्॥९१॥

तदनन्तर उस कामिनी नारी को परिपूर्ण तथा अत्यन्त दुर्वह गर्भभार उठाना पड़ा। कालान्तर में घृताची ने उसी मलयाचल पर ९ कुमारों को जन्म दिया। हे शौनक! विश्वकर्मा ने इन पुत्रों को शिल्पादि की शिक्षा देकर शिल्पज्ञान सम्पन्न किया। वे इस प्रकार योग्य-बली तथा बुद्धिमान हो गये। विश्वकर्मा ने उन पुत्रगण को मालाकार (माली), कर्मकार (बढ़ई), शंखकार, तन्तुकार (जुलाहा), कुंभकार (कुम्हार), सूत्रकार, स्वर्णकार तथा चित्रकार का कार्य प्रदान करके वर भी दिया। उन ९ पुत्रों को पृथिवी पर स्थापित करके विश्वकर्मा तथा घृताची ने मानव देह को त्याग दिया तथा अपने-अपने लोक चले गये॥८८-९१॥

स्वर्णकारः स्वर्णचौर्याद्ब्राह्मणानां द्विजोत्तम।
बभूव पतितः सद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा॥९२॥
सूत्रकारो[1] द्विजानां तु शापेन पतितो भुवि। शीघ्रं च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना॥९३॥
व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा। पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानां च कोपतः॥९४॥
कश्चिद्वणिग्विशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः। स्वर्णचौर्यादिदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः॥९५॥

हे द्विजोत्तम! जो विश्वकर्मा का पुत्र स्वर्णकार था, वह ब्राह्मणों के स्वर्णाभूषण के स्वर्ण की चोरी करने के फलस्वरूप ब्रह्मशाप से पतित हो गया। जो बढ़ई (कर्मकार) था उसने ब्राह्मणों को यज्ञार्थ तत्काल काष्ठ नहीं दिया। अतः वह भी ब्रह्मशाप से पतित हो गया। चित्रकार ने भी ब्राह्मणों के चित्र बनाने में व्यतिक्रम किया। प्रकुपित ब्राह्मणों के शाप से वह भी पतित हो गया। एक विशेष वणिक् भी पतित हो गये स्वर्णकार पुत्र के संसर्ग दोष के कारण दूषित होकर ब्रह्मशाप के कारण पतित हो गया। उसमें भी स्वर्ण चोरी का दोष संक्रमित हो गया था॥९२-९५॥

कुलटायां च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्यतः। बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः॥९६॥
अट्टालिकाकारबीजात्कुम्भकारस्य योषिति।
बभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः॥९७॥
कुम्भकारस्य बीजेन सद्यः कोटकयोषिति। बभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि॥९८॥
सद्यः क्षत्रियबीजेन राजपुत्रस्य योषिति। बभूव तीवरश्चैव पतितो जारदोषतः॥९९॥

१. छ. ख. ०त्रधारो०।

हे ऋषिप्रवर शौनक! इसी प्रकार अन्य जातियां उत्पन्न होकर जिस कारण से पतित हो गयीं, वह कारण श्रवण करिये। उस शूद्रा (घृताची) के गर्भ से उत्पन्न चित्रकार के औरस से एक प्रकार की जाति उत्पन्न हो गई थी। परन्तु वह जाति जारदोष से पतित हो जाने के कारण अट्टालिकाकार (राजगीर) के नाम से प्रसिद्ध है। इस जाति वाले के औरस से तथा कुंभकार नारी के गर्भ से जो जाति उत्पन्न हो गई, उसका नाम है कोटक। ये लोग गृहनिर्माण कार्य में अत्यन्त पारंगत होते हैं। तदनन्तर कुंभकार पुरुष के वीर्य से तथा कोटक पत्नी के गर्भ से अतीव कुटिल स्वभाव तेली जाति की उत्पत्ति हो गई। क्षत्रिय पुरुष तथा राजपूत जाति की पत्नी से उत्पन्न तीवर कहलाये। ये तीनों जाति अपने पितृकुल के दोष के कारण पतित हो गईं।।९६-९९।।

तीवरस्य तु बीजेन तैलकारस्य योषिति। बभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्तितः।।१००।।

लेटस्तीवरकन्यायां जनयामास षट् सुतान्।
माल्लं मन्त्रं मातरं च भण्डं कोलं कलंदरम्।।१०१।।

तीवर पुरुष तथा तेली नारी के संगम से पतित दस्यु जन्मे, जिनको लेट जाति कहा गया। इसकी जीविका दस्युवृत्ति होने के कारण ये दस्यु नाम से ही प्रसिद्ध हैं। तदनन्तर लेट जाति के पुरुष तथा तीवर कन्या के संयोग से मल्ल, मन्त्र, मातर, भड़, कोड़ तथा कलंद नामक (कलन्दर) नामक (छह जाति के) छह पुत्र जन्मे।।१००-१०१।।

ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्येण पतितो जारदोषतः।
सद्यो बभूव चाण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः।।१०२।।
तीवरेण च चण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह।
चर्मकार्यां च चण्डालान्मांसच्छेदो बभूव ह।।१०३।।

शूद्र पुरुष तथा ब्राह्मण कन्या के जारकर्म से उत्पन्न पुरुष सर्वाधिक अधम तथा अपवित्र चाण्डाल जाति कहे गये। तीवर पुरुष द्वारा चाण्डाल कन्या के संयोग से चर्मकार जन्मे। चर्मकार नारी तथा चाण्डाल पुरुष के संयोग से बहेलिया जन्मे।।१०२-१०३।।

मांसच्छेद्यां तीवरेण कोंचश्च परिकीर्तितः।
कोंचस्त्रियां तु कैवर्तात्कर्तारः परिकीर्तितः।।१०४।।
सद्यश्चाण्डालकन्यायां लेटवीर्येण शौनक।
बभूवतुस्तौ द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हड्डिडमौ तथा।।१०५।।
क्रमेण हड्डिकन्यायां[1] सद्यश्चाण्डालवीर्यतः।
बभूवुः पञ्च पुत्राश्च दुष्टा वनचराश्च ते।।१०६।।

१. हड्यान्तिमाविति वा पाठः।

बहेलिया नारी तथा तीवर पुरुष के संयोग से कोंच नाम से प्रसिद्ध जाति का उद्भव कहा गया है। कोंच नारी से केवट पुरुष का संयोग होने पर कर्त्तार जन्मे। हे शौनक! तदनन्तर चाण्डाल कन्या का लेट जाति के पुरुष का संयोग होने पर हड्डि तथा डम जाति की उत्पत्ति कही गयी है। ये दोनों दुष्ट स्वभाव हैं। तदनन्तर चाण्डाल पुरुष तथा हड्डि जाति की कन्या के संयोग से ५ प्रकार की जाति का उद्भव हुआ। ये अतिशय दुष्ट तथा अन्यायी वनेचर हैं।।१०४-१०६।।

लेटात्तीवरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक।
बभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्तितः।।१०७।।
गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्याद्वै वेषधारिणः।
बभूव वेषधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्तितः[१]।।१०८।।
वैश्यात्तीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह।
शुण्डियोषिति वैश्यात्तु पौण्ड्रकश्च बभूव ह।।१०९।।
क्षत्रात्करणकन्यायां राजपुत्रो बभूव ह। राजपुत्र्यां तु करणादागरीति प्रकीर्तितः।।११०।।

हे शौनक! गंगा तटस्थ लेट जाति के पुरुष तथा तीवर जाति की कन्या के योग से गंगापुत्र नामक बालक (जाति) की उत्पत्ति हो गई। गंगापुत्र की कन्या से वेषधारी (?) का संयोग होने पर युंगी जाति की उत्पत्ति कही जाती है। वैश्य पुरुष तथा तीवर कन्या के संयोग से शुंडी नामक जाति उत्पन्न हो गई। शुण्डी नारी तथा वैश्य पुरुष के संयोग से पौण्ड्रक जाति जन्मी। इसी प्रकार क्षत्रिय पुरुष तथा करण कन्या के संयोग से राजपुत्र जाति का उद्भव कहा गया है। राजपुत्र जाति की कन्या तथा करण पुरुष के संयोग से "आगरी" जाति की स्थिति कही गई।।१०७-११०।।

क्षत्रवीर्येण वैश्यायां कैवर्तः परिकीर्तितः। कलौ तीवरसंसर्गाद्धीवरः पतितो भुवि।।१११।।
तीवर्यां धीवरात्पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः।
रजक्यां तीवराच्चैव कोयालीति[२] बभूव ह।।११२।।
नापिताद्गोपकन्यायां सर्वस्वी तस्य योषिति।
क्षत्राद्बभूव व्याधश्च बलवान्मृगहिंसकः।।११३।।

क्षत्रिय पुरुष तथा वैश्य स्त्री के संयोग से कैवर्त्त जाति बनी। कैवर्त्त में कई लोग तीवर के संसर्ग दोष से कलिकाल में धीवर हो गये। धीवर पुरुष का तीवर स्त्री से संयोग होने पर उत्पन्न सन्तान रजक जाति कही गयी। तीवर पुरुष तथा रजकी नारी के संयोग से कोयालि जन्मे। नापित पुरुष तथा गोप कन्या से जन्मे पुत्र सर्वस्वी कहे गये। सर्वस्वी जाति की नारी से क्षत्रिय पुरुष का संसर्ग होने पर बली पशुघातक व्याध जाति प्रवर्त्तित हो गई।।१११-११३।।

---

१. सद्यो बभूव यो बालोः कणकः स प्रकीर्त्तितः। इति पाठान्तरम्।
२. कोदालीति वा पाठः।

तीवराच्छुण्डिकन्यायां बभूवुः सप्त पुत्रकाः।
ते कलौ हड्डिसंसर्गाद्बभूवुर्दस्यवः सदा॥११४॥
ब्राह्मण्यामृषिवीर्येण ऋतोः प्रथमवासरे। कुत्सितश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्तितः॥११५॥

धीवर पुरुष से शुण्डी नारी के समागम से सात जाति ने जन्म लिया। ये सातों जाति वाले कलिकाल में हड्डियों के साथ सहवास करके दस्यु वृत्ति करने लगे। ब्राह्मण कन्या में ऋतु के प्रथम दिन (जो त्याज्य दिन है) ऋषि वीर्य रह गया। यह कुत्सित गर्भ जन्म लेने पर कूदर कहा गया॥११४-११५॥

तदशौचं विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोषतः। सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले॥११६॥
क्षत्रवीर्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे। जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्धरः॥११७॥
चकार वागतीतं च क्षत्रियेणापि वारितः।
तेन जात्या स पुत्रश्च वागतीतः प्रकीर्तितः॥११८॥

यह सन्तान ऋतु के प्रथम दिन सहवास होने के कारण ऋतुदोष से पतित हो गया। इस जाति में ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अशौच व्यवहार ब्राह्मणों जैसा ही होता है, तथापि ये कोटक जाति के संसर्ग दोष के कारण धरती पर सभी के घृणाभाजन हो गये। इसी प्रकार ऋतु के प्रथम दिन क्षत्रिय ने वैश्य नारी से समागम किया था, जिससे महाबली, पराक्रमी, धनुर्विद्या पारंगत पुत्र ने जन्मदाता क्षत्रिय पिता द्वारा दस्युवृत्ति से रोके जाने पर पितृवाक्य की अवहेलना किया, तभी वह पुत्र "वागतीत" कहलाया॥११६-११८॥

क्षत्रवीर्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः। बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूवुर्म्लेच्छजातयः॥११९॥
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः।
शौचाचारविहीनाश्च दुर्धर्षा धर्मवर्जिताः॥१२०॥

इसी प्रकार के ऋतु दोष काल में समागम करने से क्षत्रिय पुरुष तथा शूद्र नारी के संयोग से बली तथा प्रचंड म्लेच्छ जाति वाले जन्मे। ये म्लेच्छ होकर कर्णछेदन नहीं कराते थे। ये सभी क्रूर, दयाहीन थे। रण में अत्यन्त परिश्रम तथा उपाय के बिना जीते ही नहीं जाते थे। ये शौचाचार रहित, दुर्धर्ष तथा धर्महीन थे॥११९-१२०॥

म्लेच्छात्कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव।
जोलात्कुबिन्दकन्यायां शराङ्कः परिकीर्तितः॥१२१॥
वर्णसङ्करदोषेण [1]बह्व्यश्चाश्रुतजातयः।
तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुं क्षमो द्विज॥१२२॥

१. क. ०हव्यश्च शठजा०।

म्लेच्छ पुरुष तथा कुविन्द कन्या के संयोग से जोला जाति वाले जन्मे। जोला पुरुष तथा कुविन्द कन्या के संसर्ग से शरांश जाति उद्भूत हो गई। एवंविध वर्णसंकर दोषों से ऐसी अनेक जातियां जन्मीं, जिनके नाम अब भी हमने नहीं सुने। उनकी संख्या की गणना कौन कर सकता है? उनके नामों का आकलन तथा संख्या कौन कर सकता है?।।१२१-१२२।।

वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातो विप्रस्य योषिति।
वैद्यवीर्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥१२३॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः।
तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि॥१२४॥

वैद्य अश्विनी कुमार ने ब्राह्मण स्त्री से वैद्य उत्पन्न किया। वैद्य पुरुष ने शूद्रा स्त्री से संगम करके अनेक लोगों को उत्पन्न किया जो ग्राम्य वनस्पतियों के गुण जानने वाले एवं मन्त्रौषधि विधान पारंगत थे। इनके साथ सहवास द्वारा शूद्रा नारीगण ने जिन सन्तानों को जन्म दिया, वे सभी व्यालग्राही (संपेरा) कहलाये।।१२३-१२४।।

शौनक उवाच

कथं ब्राह्मणपत्न्यां तु सूर्यपुत्रोऽश्विनीसुतः।
अहो केनाविवेकेन वीर्याधानं चकार ह॥१२५॥

शौनक मुनि कहते हैं—हे मुनि! किस विपाक के कारण किस प्रकार सूर्यनन्दन अश्विनीकुमार ने ब्राह्मण स्त्री से समागम का अविवेकपूर्ण कार्य करके उसमें वीर्य स्थापित किया?।।१२५।।

सौतिरुवाच

गच्छन्ती तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः।
ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्याने च निर्जने॥१२६॥
तथा निवारितो यत्नाद्बलेन बलवान्सुरः।
अतीव सुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्याधानं चकार सः॥१२७॥
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे। सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसंनिभः॥१२८॥
सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीडिता सदा।
स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसङ्कटम्॥१२९॥

सौति कहते हैं—एक समय शान्त प्रकृति बली अश्विनीकुमार ने एक परम सुन्दरी ब्राह्मणी को तीर्थाटन करते देखा, जिससे वे उसके प्रति अत्यन्त कामासक्त हो गये। बारम्बार उस ब्राह्मणी द्वारा रोके जाने पर भी वे उसे बलात् एक पुष्पोद्यान में ले गये तथा वहां समागम करके ब्राह्मणी को गर्भवती कर दिया। तत्पश्चात् लोकलज्जा के भय से जैसे ही ब्राह्मणी ने उस गर्भ का त्याग किया, वैसे ही उस रम्य

पुष्पोद्यान में तप्त स्वर्ण कान्ति वाला एक पुत्र उत्पन्न हो गया। तदनन्तर वह ब्राह्मणी पुत्रस्नेह के कारण उस कुमार को गोद में लेकर लज्जावनत सी अपने पति के पास गयी तथा मार्ग में घटित उस घटना का उनसे वर्णन भी कर दिया। समस्त दैवसंकट उस नारी ने पति से कहा—॥१२६-१२९॥

विप्रो रोषेण तत्याज तं च पुत्रं स्वकामिनीम्।
सरिद्बभूव योगेन सा च गोदावरी स्मृता॥१३०॥
पुत्रं चिकित्साशास्त्रं च पाठयामास यत्नतः।
नानाशिल्पं च मन्त्रं च स्वयं स रविनन्दनः॥१३१॥

लेकिन पति ब्राह्मण ने वह सब घटना सुनते ही अपनी पत्नी तथा उस पुत्र का त्याग कर दिया। वह नारी योग के प्रभाव से गोदावरी नदीरूपेण परिणत हो गई। उस पुत्र को रविपुत्र अश्विनीकुमार ने यत्नतः चिकित्साशास्त्र, नाना प्रकार के शिल्प तथा मन्त्रविद्या का ज्ञान कराया॥१३०-१३१॥

विप्रश्च वेतनाज्ज्योतिर्गणनाच्च निरन्तरम्। वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको भुवि॥१३२॥
लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान्। ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः॥१३३॥

हे शौनक! वह पुत्र निरन्तर नक्षत्र का गणना कार्य करता था तथा वेतन लेता था। अतः वह वेदधर्म से भ्रष्ट होकर पृथिवी पर गणक कहलाया। उस लोभी विप्र ने ग्रहण काल में दान लिया, मृतकों से सम्बन्धित दान भी ग्रहण किया तथा शूद्रों से अग्रदान लिया। तभी से उसके वंशज अग्रदानी कहे गये॥१३२-१३३॥

कश्चित्पुमान्ब्रह्मयज्ञे यज्ञकुण्डात्समुत्थितः।
स सूतो धर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषः स्मृतः॥१३४॥
पुराणं पाठयामास तं च ब्रह्मा कृपानिधिः।
पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः॥१३५॥
वैश्यायां सूतवीर्येण पुमानेको बभूव ह। स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः॥१३६॥
एवं ते कथितः किञ्चित्पृथिव्यां जातिनिर्णयः।
वर्णसङ्करदोषेण बह्व्योऽन्याः सन्ति जातयः॥१३७॥

जो पुरुष ब्राह्मणगण के यज्ञ में यज्ञकुण्ड से आविर्भूत हो गया था, उसे धर्मवक्ता सूत कहा गया। हे मुनिवर! वे धर्मवक्ता पुरुष ऐसे थे, जो ब्रह्मा द्वारा पुराणाध्ययन युक्त एवं पुराणवक्ता थे। इन सूत ने वैश्य नारी से एक पुत्र उत्पन्न किया। वह भी महान् वक्ता होकर भट्ट कहलाया (इसे भाट भी कहते हैं)। यह सबकी स्तुति (यश) का गायन करता है। एवंविध मैंने पृथिवी की कतिपय जातियों का ही वर्णन किया है। वर्णसंकर दोष से जनित अभी भी अनेक जातियों का वर्णन बाकी रह गया॥१३४-१३७॥

संबन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु[१] सर्वतः।
तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा॥१३८॥

इसके अतिरिक्त अनेक जातियों में क्रमशः वर्णसंकर दोष उत्पन्न हो गया। हे महर्षि! तदनन्तर विश्व निर्माता ब्रह्मा ने सभी जातियों में से वेदशास्त्र के अनुसार किससे किसका सम्बन्ध हो, यह निर्णय किया। मैं वही कहता हूं। एकाग्र होकर सुनिये।।१३८।।

पिता तातस्तु जनको जन्मदाता प्रकीर्तितः।
अम्बा माता च जननी जनयित्री प्रसूरपि॥१३९॥
पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः।
अत ऊर्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्तिताः॥१४०॥
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च। मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः॥१४१॥
पितामही पितुर्माता तच्छ्वश्रूः प्रपितामही।
तच्छ्वश्रूश्च परिज्ञेया सा वृद्धप्रपितामही॥१४२॥

पिता ही तात-जनक-जन्मदाता कहा गया है। जो गर्भ से प्रसव करती हैं, वे ही माता-अम्बा-जननी कही जाती हैं। जो पिता के पिता हैं, वे पितामह कहे जाते हैं। पितामह जिससे उत्पन्न हैं, वे प्रपितामह कहे गये हैं। प्रपितामह के ज्ञाति जन सगोत्र कहे गये हैं। माता के पिता मातामह हैं। मातामह के पिता प्रमातामह और प्रमातामह के पिता को वृद्ध प्रमातामह कहा गया है। पिता की माता ही पितामही है। पिंतामही की सास प्रपितामही कही जाती है। प्रपितामही की सास को वृद्ध प्रपितामही कहा गया है।।१३९-१४२।।

मातामही मातृमाता मातृतुल्या च पूजिता। प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी॥१४३॥
वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा।
पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुलः॥१४४॥
पितृष्वसा पितुर्मातृष्वसा मातुः स्वसा स्मृता।
सूनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चाऽऽत्मजस्तथा॥१४५॥
धनभाग्वीर्यजश्चैव पुंसि[२] जन्ये च वर्तते।
जन्यायां दुहिता कन्या चाऽऽत्मजा परिकीर्तिता॥१४६॥

अपनी जननी की माता मातामही हैं। ये भी-मातृतुल्य पूज्या हैं। प्रमातामह की पत्नी प्रमातामही तथा वृद्ध प्रमातामह की पत्नी वृद्ध प्रमातामही कही गयी हैं। पिता के भाई पितृव्य तथा माता के भाई

१. क. ०षु मंमतः०। त्वां तं ब्र०।
२. क. ०सि जीवे च०।

मातुल नाम से प्रसिद्ध हैं। पिता की बहन पितृस्वसा (बूआ), माता की बहन को मातृष्वसा (मौसी) कहा गया है। पुत्र के पर्यायवाची शब्द हैं--सूनु, तनय, पुत्र, दायाद, आत्मज। स्वयं से उत्पन्न किया गया पुत्र धनभाक् तथा वीर्यज कहा गया है। स्वयं उत्पन्न की गई कन्या को दुहिता, कन्या तथा आत्मजा कहते हैं।।१४३-१४६।।

पुत्रपत्नी वधूर्ज्ञेया जामाता दुहितुः पतिः।
पतिः प्रियश्च भर्ता च स्वामी कान्ते च वर्तते॥१४७॥
देवरः स्वामिनो भ्राता ननान्दा स्वामिनः स्वसा।
श्वशुरः स्वामिनस्तातः श्वश्रूश्च स्वामिनः प्रसूः॥१४८॥
भार्या जाया प्रिया कान्ता स्त्री च पत्नी प्रकीर्तिता।
पत्नीभ्राता श्यालकश्च स्वसा पत्न्याश्च श्यालिका॥१४९॥
पत्नीमाता तथा श्वश्रूस्तत्पिता श्वशुरः स्मृतः।
सगर्भः सोदरो भ्राता सगर्भा भगिनी स्मृता॥१५०॥

पुत्र की पत्नी वधू तथा कन्या का पति जामाता (दामाद) है। स्त्री का स्वामी उसका पति ही प्रिय, भर्त्ता, स्वामी तथा कान्त कहा गया है। स्त्री के पति का भाई देवर, पति की बहन ननद (ननांदा) है। पति के पिता स्त्री हेतु श्वसुर हैं। पति की माता पत्नी भी श्वश्रु (सास) हैं। स्त्री का पर्यायवाची है भार्या, जाया, प्रिया, कान्ता, स्त्री, पत्नी। स्त्री का भाई ही श्यालक (साला) है। स्त्री की बहन श्यालिका (साली) है। पत्नी की माता श्वश्रु (सास) तथा पत्नी का पिता ही श्वसुर है। सगा भाई ही सोदर, सगी बहन ही सोदरा है।।१४७-१५०।।

भगिनीजो भागिनेयो भ्रातृजो भ्रातृपुत्रकः।
आवृत्तो भगिनीकान्तो भगिनीपतिरेव च॥१५१॥
श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकत्वहेतुना।
श्वशुरस्तु पिता ज्ञेयो जन्मदातुः समो मुने॥१५२॥
अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च।
विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥१५३॥

बहन का पुत्र भागिनेय (भांजा), भाई का पुत्र भातृज (भतीजा), भगिनी का पति आवुत्त, भगिनी कान्त तथा भगिनीपति (जीजा) कहाता है। साली का पति साढू भी उस स्त्री के पति का भाई ही है। पत्नी तथा पति के श्वसुर जन्म देने वाले पिता के समान पूज्य हैं। मनुष्य के पंच पिता हैं अन्नदाता, भयत्राता, पत्नी का पिता, विद्या देने वाला तथा जन्म देने वाला।।१५१-१५३।।

अन्नदातुश्च या पत्नी भगिनी गुरुकामिनी।
माता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रिया तथा॥१५४॥

मातुर्माता पितुर्माता श्वश्रूःपित्रोः स्वसा तथा।
पितृव्यस्त्री मातुलानी मातरश्च चतुर्दश॥१५५॥

जो अन्नदाता है, उसकी पत्नी, बहन, गुरुपत्नी, अपनी माता, सौतेली माता, कन्या, पुत्रवधू, नानी, दादी, सास, माता की बहन (मौसी), पिता की बहन (बूआ), चाची, मामी ये १४ मातायें कही जाती हैं।।१५४-१५५।।

पौत्रस्तु पुत्रपुत्रे च प्रपौत्रस्तत्सुतेऽपि च।
तत्पुत्राद्याश्च ये वंश्याः कुलजाश्च प्रकीर्तिताः॥१५६॥
कन्यापुत्रश्च दौहित्रस्तत्पुत्राद्याश्च बान्धवाः।
भागिनेयसुताद्याश्च पुरुषा बान्धवाः स्मृताः॥१५७॥
भ्रातृपुत्रस्य पुत्राद्यास्ते पुनर्ज्ञातयः स्मृताः।
गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पोष्यः परमबान्धवः॥१५८॥
गुरुकन्या च भगिनी पोष्या मातृसमा मुने।
पुत्रस्य च गुरुर्भ्राता पोष्यः सुस्निग्धबान्धवः॥१५९॥

पुत्र का पुत्र पौत्र, उसका पुत्र प्रपौत्र, उसका पुत्र वंशज-कुलज कहा जाता है। कन्या का पुत्र दौहित्र (नाती), उसके पुत्रादिकों तथा भान्जे को बान्धव कहा जाता है। भाई के पुत्र के पुत्र को ज्ञाति कहते हैं। गुरुपुत्र तथा गुरुभाई तो परम बन्धु तथा पोषणीय हैं। हे मुनिवर! गुरु की पुत्री तथा गुरु की बहन का पोषण मातृवत् करे। पुत्र का गुरु भी भ्राता के समान है। उसे पोषणीय एवं सुबान्धव कहते हैं। उसे तो सुस्निग्ध बन्धु भी कहा गया है।।१५६-१५९।।

पुत्रस्य श्वशुरो भ्राता बन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः।
कन्यायाः श्वशुरे चैव तत्संबन्धः प्रकीर्तितः॥१६०॥
गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुस्निग्धबान्धवाः। गुरुश्वशुरभ्रातॄणां गुरुतुल्यः प्रकीर्तितः॥१६१॥
बन्धुता येन सार्धं च तन्मित्रं परिकीर्तितम्। मित्रं सुखप्रदं ज्ञेयं दुःखदो रिपुरुच्यते॥१६२॥

पुत्र का श्वसुर विवाह सम्बन्धी होता है। वह भी भाई है। कन्या के श्वसुर से भी भ्राता का सम्बन्ध रहे। कन्या का गुरु अत्यन्त प्रेमी बन्धु माना गया है। गुरु तथा श्वसुर के भ्राता भी गुरुवत् हैं। बन्धुत्व सम्बन्ध ही मैत्री सम्बन्ध है। ऐसा व्यक्ति ही मित्र है। सुखदाता ही मित्र है। दुःखदाता तो शत्रु है।।१६०-१६२।।

बान्धवा दुःखदो दैवान्निःसंबन्धोऽसुखप्रदः।
संबन्धास्त्रिविधाः पुंसां विप्रेन्द्र जगतीतले॥१६३॥
विद्याजो योनिजश्चैव प्रीतिजश्च प्रकीर्तितः।
मित्रं तु प्रीतिजं ज्ञेयं स संबन्धः सुदुर्लभः॥१६४॥

हे विप्रप्रवर! दैवात् यह देखा गया है कि बन्धु भी दुःख देने लग जाते हैं, तथापि जिससे कोई सम्बन्ध नहीं था, वही सुखदाता हो जाता है। मनुष्यों में तीन प्रकार के सम्बन्धों का वर्णन मिलता है। ये हैं विद्याजनित सम्बन्ध, योनिजन्य सम्बन्ध तथा प्रेमजन्य सम्बन्ध, तथापि मित्र के साथ प्रीतिजनित सम्बन्ध सुदुर्लभ ही हैं।।१६३-१६४।।

मित्रमाता मित्रभार्या मातृतुल्या न संशयः।
मित्रभ्राता मित्रपिता भ्रातृतातसमौ नृणाम्।।१६५।।

मित्र की जननी तथा मित्र की पत्नी को मातृवत् जाने। इसमें संशय नहीं है। मित्र का भाई अपने भाई के समान तथा मित्र के पिता भी पितातुल्य कहे गये हैं।।१६५।।

चतुर्थं नामसंबन्धमित्याह कमलोद्भवः। जारश्चोपपतिर्बन्धुर्दुष्टसंभोकर्तरि।।१६६।।
उपपत्न्यां नवज्ञा च प्रेयसी चित्तहारिणी।
स्वामितुल्यश्च जारश्च नवज्ञा गृहिणीसमा।।१६७।।

इसी प्रकार पद्मसंभव ब्रह्मदेव ने नामसम्बन्ध भी कहा है। दुष्टा कुलटा नारी से सम्भोग करने वाला उसका उपपति कहा गया है। उस नारी से इस जार पुरुष का उपपति सम्बन्ध होता है। जिस नारी ने चित्त हर लिया उसे प्रेमिका, उपपत्नी किंवा नवज्ञा कहते हैं। यहां जारपुरुष ही पति तथा नवज्ञा उपपत्नी पत्नीतुल्य होती है।।१६६-१६७।।

संबन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः।
अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः।।१६८।।
दुस्त्यजश्च महद्भिस्तु देशेभेदे विधीयते।
अकीर्तिजनकः पुंसां योषितां च विशेषतः।।१६९।।
तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे।।१७०।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे जातिसंबन्धनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

यह जार सम्बन्ध, उपपति, उपपत्नी सम्बन्ध सर्वदेश निन्दित कहा गया है। यह अवैदिक सम्बन्ध विश्वामित्र द्वारा निर्मित है। वेद में इस सम्बन्ध का निर्देश नहीं है। यह महान् व्यक्तिगण हेतु दुस्त्याज्य है। देशभेद से कहीं इसे विहित भी बताया गया है, तथापि यह पुरुष एवं विशेष करके नारी के लिये अकीर्त्तिकारी है, तथापि युग-युग में जो तेजस्वी रहे हैं, उनके लिये यह दोषप्रद नहीं था।।१६८-१७०।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

अथैकादशोऽध्यायः

अश्विनीकुमार की शापमुक्ति के प्रसंग में विष्णु, वैष्णवों तथा ब्राह्मणों की प्रशंसा

शौनक उवाच

द्विजः स भार्यां संत्यज्य किं चकार विशेषतः।
अश्विनोर्वा महाभाग किं नाम कस्य वंशजौ[१]॥१॥

शौनक मुनि कहते हैं–उन ब्राह्मण ने पत्नी तथा उसके पुत्र का त्याग करके तब क्या किया? यह अश्विनीकुमारनन्दन किस नाम से प्रसिद्ध था? उसका वंश कौन माना गया? कृपया कहिये।।१।।

सौतिरुवाच

द्विजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः। तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये॥२॥
महातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। ज्योतिर्ददर्श कृष्णस्य गगने सहसा क्षणम्॥३॥

महर्षि सौति कहते हैं–हे मुनिवर! वह भारद्वाज वंशोत्पन्न सुतपा विप्र एक मुनि था। रोषग्रस्त होकर अपनी पत्नी को त्यागने के अनन्तर हिमालय पर्वत जाकर उसने श्रीकृष्ण के लिये १ लाख वर्ष तप किया। तदनन्तर वह तेजस्वी सुतपा इस महातप के प्रभाव से पूर्वापेक्षा ब्रह्मतेज से और अधिक प्रज्वलित हो गया। उसने एक बार सहसा आकाश में क्षणकाल के लिये परब्रह्म श्रीकृष्ण की निर्मल ज्योति का दर्शन प्राप्त किया।।२-३।।

वरं स वव्रे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः परम्।
न च मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिं च निश्चलाम्॥४॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति कुरु दारपरिग्रहम्।
पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज॥५॥

तदनन्तर ब्राह्मण ने प्रकृति से पृथक् परमात्मा का दर्शन करके सानंद चित्त से भगवान् से मोक्ष नहीं मांगा। उन्होंने केवल परमेश्वर के दासत्व एवं भक्तिलाभ के वर की याचना किया। तभी वहां उनको आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि "तुम पत्नी हेतु विवाह करो। हे द्विज! जब भोग सम्बन्धित प्रारब्ध का क्षय हो जायेगा, तब मैं तुमको भक्ति प्रदान करूंगा"।।४-५।।

पितॄणां मानसीं कन्यां ददौ तस्मै विधिः स्वयम्।
तस्यां कल्याणमित्रश्च बभूव मुनिपुङ्गवः॥६॥

---

१. आत्मनो वामभागश्च किं नामा कस्य वंशजविति पाठः क्वचित्कः।

यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत्कुलिशाद्भयम्। न द्रष्टव्यं बन्धुमात्रं नूनं तत्स्मरणाल्लभेत्॥७॥

हे मुनिप्रवर शौनक! जब सुतपा ने विवाह हेतु अभिलाषा किया, तब विधाता ब्रह्मा ने स्वयं उनको पितरों की मानसी कन्या अर्पित कर दिया। उस मानसी कन्या के गर्भ से सुतपा ने कल्याणमित्र नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया। इस कल्याणमित्र का नाम स्मरण करने मात्र से प्राणीगण को वज्रपात का भय नहीं होता। विनष्ट द्रव्य, बन्धु तथा मित्रलाभ होता है। जिन मित्र का दर्शन तक असंभव है, उनकी भी प्राप्ति हो जाती है।।६-७।।

कल्याणमित्रजननीं परित्यज्य महामुनिः। शशाप सूर्यपुत्रं च यज्ञभाग्वर्जितो भव॥८॥

ससोदरश्च वा पूज्यो भवेति च सुराधम।
व्याधिग्रस्तो जडाङ्गश्च भूयात्तेऽकीर्तिमानिति[1]॥९॥

तदनन्तर किसी कारण से महामुनि सुतपा ने कल्याणमित्र की माता का त्याग करके अश्विनीकुमार को शाप दिया–"तुम अपने भ्राता सहित यज्ञभाग से रहित तथा अपूज्य हो जाओगे। तुम्हारा अंग रोगी तथा जड़ होगा। तुम कलंकित हो जाओगे।।८-९।।

इत्युक्त्वा सुतपा गेहं प्रतस्थे सूनुना सह।
अश्विभ्यां सहितः सूर्यः प्रययौ च तदन्तिकम्॥१०॥
पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्यस्त्रिजगतां पतिः।
मुनीन्द्रं वै सुतपसं स तुष्टाव च शौनक॥११॥

यह कहने के बाद महातेजस्वी सुतपा कल्याणमित्र के साथ अपने घर आ गये। तभी सूर्यदेव दोनों अश्विनीकुमार के साथ उनके यहां आये। हे शौनक! त्रैलोक्यपति सूर्य वहां आकर अपने व्याधिग्रस्त दोनों पुत्रों सहित मुनिप्रवर सुतपा का स्तव करने लगे।।१०-११।।

सूर्य उवाच

क्षमस्व भगवन्विप्र विष्णुरूप युगे युगे। मम पुत्रापराधं च भारद्वाज मुनीश्वर॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सुराः सर्वे च संततम्। भुञ्जते विप्रदत्तं तु फलपुष्पजलादिकम्॥१३॥

ब्राह्मणा वाहिता देवाः शश्वद्विश्वेषु पूजिताः।
न च विप्रात्परो देवो विप्ररूपी स्वयं हरिः॥१४॥

ब्राह्मणे परितुष्टे च तुष्टो नारायणः स्वयम्। नारायणे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः॥१५॥

सूर्यदेव कहते हैं–हे मुनिवर! भारद्वाजनन्दन! स्वयं नारायण ही कृपालु होकर युग-युग में जीवगण के उद्धारार्थ विप्रवेश धारण करते हैं। अतः आप सत्वगुणाश्रय विष्णु के स्वरूप हैं। आपको ऐसा क्रोध शोभा नहीं देता। हे विप्रवर! मेरा एक ही मुख है। उससे ब्राह्मण को कितनी प्रशंसा कर

१. भवते कीर्त्तिमानिति पाठन्तु प्रामादिकं एव।

सकूंगा? ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर आदि सभी देवता सदा ब्राह्मण प्रदत्त फल-पुष्प तथा जल ग्रहण करके ही तृप्त हो पाते हैं। ब्राह्मण द्वारा ही आवाहन किये जाने पर देवगण पुनः-पुनः विश्व-संसार में पूजा पाते हैं। ब्राह्मण से बढ़ कर देवता कोई भी नहीं है। स्वयं हरि ही ब्राह्मण रूप में विराजमान रहते हैं। ब्राह्मण के संतुष्ट होने पर स्वयं नारायण सन्तुष्ट होते हैं तथा जब नारायण संतुष्ट होते हैं, तब सभी देवगण तक सन्तोष लाभ करते हैं।।१२-१५।।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न च कृष्णात्परः सुरः। न शङ्कराद्वैष्णवश्च न सहिष्णुर्धरापरा॥१६॥

न च सत्यात्परो धर्मो न साध्वी पार्वतीपरा।
न दैवाद्बलवान्कश्चिन्न च पुत्रात्परः प्रियः॥१७॥

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है। कृष्ण के समान कोई देवता नहीं है। शंकर के समान कोई वैष्णव नहीं है तथा पृथिवी जैसा सहिष्णु कोई नहीं है। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है। पार्वती के समान साध्वी कोई नहीं है। दैव से बली कोई नहीं है तथा पुत्र से बढ़ कर कोई प्रिय नहीं होता।।१६-१७।।

न च व्याधिसमः शत्रुर्न च पूज्यो गुरोः परः।
नास्ति मातृसमो बन्धुर्न च मित्रं पितुःपरम्॥१८॥

एकादशीव्रतान्नान्यत्तपो[१] नानशनात्परम्। परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नं परं ततः॥१९॥

[२]सर्ववर्णात्परो विप्रो नास्ति विप्रसमो गुरुः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ इत्याह कमलोद्भवः॥२०॥

व्याधि जैसा कोई शत्रु नहीं है। गुरु के समान पूज्य कोई नहीं है। माता के समान बन्धु तथा पिता के समान मित्र भी कोई नहीं होता। एकादशी के समान कोई व्रत नहीं है। उपवास से बढ़ कर कोई तप नहीं है। सभी धनों में रत्न को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, तथापि सभी रत्नों की तुलना में विद्यारत्न उत्तम है। सभी वर्णों में ब्राह्मण उत्तम है। ब्राह्मण के समान कोई गुरु नहीं है। यह सब कमलयोनि वेद-वेदांग तत्ववेत्ता ब्रह्मा का कथन है।।१८-२०।।

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम्।
नीरुजौ चापि तत्पुत्रौ चकार तपसः फलात्॥२१॥
पश्चाच्च तव पुत्रौ च यज्ञभाजौ भविष्यतः।
इत्युक्त्वा तं च सुतपाः प्रणम्याहस्करं मुनिः॥२२॥

जगाम गङ्गां संत्रस्तो हरिसेवनतत्परः। पुत्राभ्यां सहितः सूर्यो जगाम निजमन्दिरम्॥२३॥

भारद्वाज सुतपा ने सूर्य का कथन सुनकर उनकी वन्दना किया तथा अपनी तपस्या के फल द्वारा अश्विनीकुमारद्वय को रोग रहित कर दिया। इसके अनन्तर सुतपा ने यह भी कहा कि "ये दोनों

१. नैकादशी व्रतपरा इति पाठस्तु एव।
२. ख. ०सर्वाश्रमैः प०।

आपके पुत्र यज्ञ में भाग प्राप्त करेंगे।" इसके पश्चात् ऋषि ने यह देखा कि उनका तपक्षय इस वरदान के कारण हो गया, तब उन्होंने सूर्य को प्रणाम किया तथा गंगा तट पर तपःश्चरण करने चले गये। उधर सूर्यदेव भी अपने पुत्रद्वय सहित स्वधाम चले गये।।२१-२३।।

बभूवतुस्तौ पूज्यौ च यज्ञभाजौ द्विजाशिषा[१]।
एतत्सूर्यकृतं विप्र स्तोत्रं यो मानवः पठेत्[२]।
विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत्।।२४।।

ब्राह्मणेभ्यो नम इति प्रातरुत्थाय यः पठेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।।२५।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च।।२६।।

विप्रपादोदकं पीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम्।।२७।।

हे विप्रवर! उनके दोनों पुत्र अश्विनीकुमारद्वय पुनः पूज्य होकर यज्ञभाग पाने लगे। जो मनुष्य इस सूर्यकृत स्तव का पाठ करेंगे, वे ब्राह्मण की कृपा से सर्वत्र जयलाभ में समर्थ होंगे। जो प्रातःकाल उठ कर "ब्राह्मणेभ्यो नमः" का उच्चारण करेंगे, उनको सर्वतीर्थ स्नानफल यहीं मिल जायेगा। इस प्रकार समस्त पुण्यलाभ में कोई सन्देह न करे। पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सागर में विद्यमान हैं। अतः ब्राह्मण के एक चरण चिह्न में पृथिवी तथा सागर में स्थित समस्त तीर्थ विद्यमान रहते हैं। त्रैलोक्य में ऐसा क्या है, जो ब्राह्मण की कृपा से सिद्ध न हो? जो ब्राह्मण के चरणजल का पान करता है, जब तक धरती स्थित है, उसके पितृगण कमलपत्र में (पद्माकृति स्वर्णपात्र में) रखा जल पीते हैं।।२४-२७।।

विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत्।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।।२८।।

महारोगी यदि पिबेद्विप्रपादोदकं द्विज। मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकं तु भक्तितः।।२९।।

अविद्यो वा सविद्यो वा संध्यापूतो हि यो द्विजः।
स एव विष्णुसदृशो न हरौ विमुखो यदि।।३०।।

जिसने भक्तिभाव के साथ ब्राह्मण का चरणोदक पान किया है, उसने सभी यज्ञ में दीक्षा का तथा सर्वतीर्थ स्नान का फल पा लिया। हे विप्रवर! यदि कोई महारोगी भी एक मास पर्यन्त भक्तिभाव से ब्राह्मण का चरण जल पीता है, तब सभी रोगों से मुक्त होगा, इसमें तनिक संदेह नहीं है। हे महर्षि! ब्राह्मण की महिमा इससे अधिक क्या कही जाये? ब्राह्मण विद्वान् हो अथवा मूर्ख ही क्यों न हो, तथापि

१. क. ०जाज्ञया०। ए।
२. एतत् सूर्यकृतं स्तोत्रं यो नरो नियतः पठेदिति वा पाठः।

जो ब्राह्मण नित्य सन्ध्यावन्दनादि करके रहता है तथा हरि से विमुख नहीं है, वह साक्षात् विष्णु ही है।।२८-३०।।

घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत्।
गोभ्यः शतगुणं पूज्यो हरिभक्तश्च स स्मृतः।।३१।।
पादोदकं च नैवेद्यं भुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विजः।
नित्यं नैवेद्यभोजी च राजसूयफलं लभेत्।।३२।।

यदि ब्राह्मण प्रहार करे, तब भी उस पर प्रहार न करे। शाप देते हुए ब्राह्मण को कदापि शाप नहीं देना चाहिये। जो ब्राह्मण हरि का भक्त है, वह तो गौओं से भी सौ गुना पूज्य है। हे द्विज! जो ब्राह्मण का पादोदक तथा नैवेद्य ग्रहण करता है, नित्य ब्राह्मण का नैवेद्य भक्षण करता है, वह हरिभक्त ही है। उसे राजसूय यज्ञफल लाभ होगा।।३१-३२।।

एकादश्यां न भुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत्।
तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेद् ध्रुवम्।।३३।।
यो भुङ्क्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यभोजनम्।
कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महीतले।।३४।।
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्।
द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः।।३५।।

जो ब्राह्मण एकादशी को भोजन नहीं करता तथा नित्य कृष्ण की अर्चना करता है, उसका चरणोदक प्राप्त होने वाला स्थल भी तीर्थ हो जाता है। यह निश्चित है। जो विष्णु का उच्छिष्ट नैवेद्य भोजन करता है, वह पूजात्मा पृथिवी पर ही जीवन्मुक्त है। कमलयोनि ब्रह्मा का कथन है कि यदि ब्राह्मण तक ने अन्न-दुग्ध भगवान् को अर्पित नहीं किया, तब वह अन्न विष्ठा तथा प्रभु को अर्पित न किया दुग्ध मूत्र ही है।।३३-३५।।

ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः। ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुखश्च हरौ कथम्।।३६।।
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्च वा।
दोषेण विमुखाः कृष्णे विप्रा जीवन्मृताश्च ते।।३७।।

कमलयोनि ब्रह्मदेव तथा उनके सभी वसिष्ठादि पुत्र हरिपरायण हैं। सभी ब्राह्मण, हरिपरायण तथा उनके ही वंशज हैं। जो ब्राह्मण पिता-माता-मातामहादि किंवा गुरु के संसर्गदोष के कारण ब्राह्मण हरि से विमुख हो गये हैं, वे जीवित होकर भी मृत ही हैं।।३६-३७।।

स किंगुरुः स किंतातः स किंपुत्रः स किंसखा।
स किंराजा स किंबन्धुर्न दद्याद्यो हरौ मतिम्।।३८।।

अवैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥३९॥

जो लोगों को हरि के प्रति भक्तियुक्त रहने की मति नहीं देता, वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा पुत्र, कैसा सखा, कैसा राजा तथा कैसा बन्धु है? जो ब्राह्मण अवैष्णव (विष्णुभक्त नहीं है) है, उससे तो विष्णुभक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है। तभी देखा गया है कि जो अवैष्णव ब्राह्मण है, वह नरक जाता है और वैष्णव चाण्डाल सपरिवार मुक्ति प्राप्त करता है!।।३८-३९।।

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुखो द्विजः।
स एव ब्राह्मणाभासो विषहीनो यथोरगः॥४०॥

जो द्विज सन्ध्यावन्दन से रहित, अपवित्र तथा कृष्ण विमुख है, वह तो केवल नाममात्र का ब्राह्मण है, जैसे कोई सर्प विषहीन होकर केवल नाममात्र का सर्प रह जाता है!।।४०।।

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति। तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं वदेद्विधिः॥४१॥
पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्धं हरेः पदम्। प्रयाति वैष्णवः पुंसामात्मनः कुलकोटिभिः॥४२॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चतस्त्रो जातयो यथा। स्वतन्त्रा जातिरेका च [1]विश्वस्मिन्वैष्णवाभिधा॥४३॥

गुरुमुख से निर्गत विष्णु मन्त्र का शब्द जिसके कर्ण कुहर में पड़ गया, उसे ब्रह्मा तक महापवित्र तथा जीवन्मुक्त कहते हैं। वह महाभाग्यशाली वैष्णव मातामह कुल की १०० पूर्वपीढ़ी तथा अपने कुल की एक कोटि पीढ़ी के पूर्वजों के साथ श्रीहरि के चरणकमल में लीन हो जाता है। हे मुनिवर! इस भूमण्डल में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र नामक चार जाति जो प्रसिद्ध हैं, उसके साथ ही वैष्णव नामक एक जाति की यहां अत्यन्त ख्याति है।।४१-४३।।

ध्यायन्ति वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपदपङ्कजम्।
ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥४४॥
सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च।
तथाऽपि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद्भक्तसंनिधौ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

वैष्णव लोग सदैव गोविन्द के चरण-कमल का ध्यान करते हैं। यही नहीं! भगवान् कृष्ण भी ऐसे वैष्णवों का सदा ध्यान उनके सन्निधान में करते रहते हैं। भक्त रक्षणार्थ गोविन्द सुदर्शन चक्र को भेज कर भी निश्चिन्त नहीं रहते। वे उनके रक्षणार्थ स्वयं उनकी सन्निधि में विराजमान हो जाते हैं।।४४-४५।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

१. क. विश्वेषु।

अथ द्वादशोऽध्यायः

उपबर्हण गन्धर्व रूप से नारद का जन्म वृत्तान्त

शौनक उवाच

ऋषिवंशप्रसङ्गेन बभूवुर्विविधाः कथाः। उपालम्भेन प्रस्तावात्कौतुकेन श्रुता मया॥१॥
प्रजा वा ससृजुः के वा ऊर्ध्वरेताश्च कश्चन। पित्रा सह विरोधेन नारदः किं चकार सः॥२॥
पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः। पितुर्वा पुत्रशापेन सौते तत्कथ्यतां शुभम्॥३॥

शौनक मुनि कहते हैं—आपने ऋषिवंश प्रसंगान्तर्गत् अनेक कथायें कहीं। अब यह जिज्ञासा है कि कमलयोनि ब्रह्मा के आदेश से ब्रह्मपुत्रों में से किसने-किसने सृष्टि कार्य प्रारम्भ किया? इनमें से कौन महर्षि ऊर्ध्वरेता थे। महात्मा नारद ने पिता से विरोध करने के पश्चात् क्या किया? इस पिता-पुत्र विरोध के फलस्वरूप क्या घटित हुआ? कृपया कहिये। पिता के शाप से पुत्र पर क्या बीता? पुत्र के शाप से पिता का क्या हाल हुआ? यह पवित्र वृत्तान्त कहें।।१-३।।

सौतिरुवाच

हंसो यतिश्चारणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा। अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक॥४॥
एतैर्विनाऽन्ये बहवो ब्रह्मपुत्राश्च संततम्। सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापरिपालकाः॥५॥

सौति कहते हैं—हे शौनक! हंसी, यति, आरुणि, वोढु, पंचशिख, अपान्तरतमा तथा सनकादि के अतिरिक्त सभी ब्रह्मपुत्रों ने पिता की आज्ञा का पालन करके संसार की वृद्धि हेतु सृष्टि किया। ये सभी पुत्र सतत् गुरु ब्रह्मा की आज्ञा के परिपालक थे।।४-५।।

अपूज्यः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः। तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः॥६॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव सः। कथयामि सुविस्तीर्णे तद्वृत्तान्तं निशामय॥७॥

प्रजापति ब्रह्मा तो पुत्रशाप के कारण अपूज्य हो गये। तभी बुद्धिमान् लोग ब्रह्मा के मन्त्र की उपासना से विरत रहते हैं। नारद भी गुरु ब्रह्मा के शाप से गन्धर्व हो गये। उनका विस्तृत प्रसंग कहता हूं। श्रवण करिये।।६-७।।

गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा॥८॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना। तपश्चकार शंभोश्च कृपणो दीनमानसः॥९॥
शिवस्य कवचं स्तोत्रं मन्त्रं च द्वादशाक्षरम्।
ददौ गन्धर्वराजाय वसिष्ठश्च कृपानिधिः॥१०॥

पूर्वकाल में सभी गन्धर्वों में श्रेष्ठ एक गन्धर्वराज सभी प्रकार के ऐश्वर्य का स्वामी होकर भी अपने कर्म विपाक के कारण संसार में समस्त सुखों के सार पुत्ररत्न से रहित होने के कारण निरन्तर

दुःख पूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे। तत्पश्चात् गुरु के आदेश से वे दीन चित्त से पुष्कर तीर्थ गये तथा वहां समाधि लगाकर कृपालु शंकर के उद्देश्य से तपःश्चरण करने लगे। हे ऋषिप्रवर! उनके तपस्या काल में दयालु महर्षि वसिष्ठदेव ने उनको शिव का स्तव-कवच तथा द्वादशाक्षर शिवमन्त्र प्रदान किया।।८-१०।।

जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्षशतं मुने। पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः॥११॥
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम्। भासयन्तं दश दिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥१२॥

हे मुनिसत्तम! उस परम मन्त्र का जप गन्धर्वराज ने वहां दिव्य मान के अनुसार १०० वर्ष पर्यन्त किया। वे पुत्रदुःख से तप्त होकर पुष्कर तीर्थ में निराहार रहते तप कर रहे थे। यह शतवर्ष विगत होने पर इन गन्धर्व को अपने सामने दसों दिशाओं को स्वतेज से उद्भासित करते भगवान् शिव का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हो गया!।।११-१२।।

महत्तेजः स्वरूपं च भगवन्तं सनातनम्। ईषद्धासं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥१३॥
तपोरूपं तपोबीजं तपस्याफलदं फलम्। शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसंपदाम्॥१४॥

भगवान् के मुख पर ईषत् हास्य (मुस्कान) शोभायमान था। उनके मुख पर प्रसन्नता छिटक रही थीं। ये प्रभु तपोरूप, तपः के बीज, तप फलदाता तथा तपःश्चरण के फल भी स्वयं हैं। शरणागत भक्तों के लिये ये प्रभु सर्वसम्पत् प्रदाता कहे गये हैं।।१३-१४।।

त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥१५॥
तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाजालधरं वरम्। नीलकण्ठं च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम्॥१६॥

उन प्रभु ने उस समय त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किया था। वे प्रभु वृषभ पर आसीन तथा दिगम्बर थे। उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान था। वे त्रिनेत्र तथा मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किये हुए थे। उनका जटाजूट स्वर्ण प्रभा से युक्त था। वे नीलकण्ठ, सर्वज्ञ तथा नागयज्ञोवीतधारी थे।।१५-१६।।

संहर्तारं च सर्वेषां कालं मृत्युञ्जयं परम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिसङ्काशमीश्वरम्॥१७॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम्।
दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वो दण्डवद्भुवि॥१८॥
वसिष्ठदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम्। वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधिः।
स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम्॥१९॥
गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा चाहसीच्चन्द्रशेखरः।

वे सबके संहारक तथा सबके काल होकर भी परम मृत्युंजय थे। वे ग्रीष्म के मध्याह्नकालीन कोटिसूर्य समप्रभ तेजयुक्त थे। वे प्रभु तत्वज्ञानप्रद, शान्त, मुक्तिप्रद तथा हरिभक्ति प्रदाता थे। ऐसे शिव को देखते ही गन्धर्वराज ने उनको दण्डवत् भूमि पर प्रणाम किया। तदनन्तर गन्धर्व ने वसिष्ठदेव द्वारा

प्रदत्त स्तोत्र से परमेश्वर शिव की स्तुति किया। इससे प्रसन्न होकर कृपानिधि शिव ने कहा–"वर मांगो।" यह सुनकर गन्धर्वराज ने शिव से परम वैष्णव हरिभक्तियुक्त पुत्र मांगा।।१७-१९।।

उवाच दीनं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनः॥२०॥

उन दीनों के ईश्वर, दीनजन के बन्धु सनातन चन्द्रशेखर ने हंसते हुए कहा–।।२०।।

महादेव उवाच

कृतार्थस्त्वं वरादेकादन्यच्चर्वितचर्वणम्। गन्धर्वराज वृणुषे को वा तृप्तोऽतिमङ्गले॥२१॥
यस्य भक्तिर्हरौ वत्स सुदृढा सर्वमङ्गला। स समर्थः सर्वविश्वं पातुं कर्तुं च लीलया॥२२॥
आत्मनः कुलकोटिं च शतं मातामहस्य च।
पुरुषाणां समुद्धृत्य गोलोकं याति निश्चितम्॥२३॥

महादेव कहते हैं–हे गन्धर्वराज! तुम्हारा एक ही वर से कृतार्थ हो जाना उचित है। दूसरा वर मांगना उसी प्रकार होगा, जैसे चबायी वस्तु को पुनः चबाना! विचार करके देखो कि तुमने जो द्वितीय वर मांगना चाहा है, वह भी उचित है। संसार में तनिक कल्याण से किसकी तृप्ति होती है? जिसे जो मिलता है, वह उससे अधिक चाह में लगता है। जिसकी सर्वमंगला भक्ति हरि के प्रति अत्यधिक सुदृढ़ है, वह तो समस्त विश्व को अपनी लीलामात्र से को पवित्र करने में समर्थ है। उस व्यक्ति में तो अपने कुल की करोड़ों पीढ़ी तथा मातामह की १०० पूर्वपीढ़ी का उद्धार कर दिया। वह अब निश्चित गोलोक जायेगा।।२१-२३।।

त्रिविधानि च पापानि कोटिजन्मार्जितानि च।
निहत्य पुण्यभोगं च हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम्॥२४॥
तावत्पत्नी सुतस्तावत्तावदैश्वर्यमीप्सितम्।
सुखं दुःखं नृणां तावद्यावत्कृष्णे न मानसम्॥२५॥
कृष्णे मनसि सञ्जाते भक्तिखड्गो दुरत्ययः।
नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो॥२६॥

उस व्यक्ति द्वारा कोटि जन्मार्जित कायिक-वाचिक-मानस पाप नष्ट हो जाते हैं। वह अपूर्व पुण्यभोग भोगने के साथ ही हरि का दासत्व पाता है। यह निश्चित है। जब तक व्यक्ति का मन कृष्ण के चरणों में नहीं निरत है, तभी तक संसार में पत्नी, पुत्र, ऐश्वर्य की कामना होती है और तभी तक सुख एवं दुःख भोग होता है। जिसने कृष्ण में अपना मन अर्पित कर दिया, वह भक्त भक्तिरूपी खड्ग के प्रहार से कर्मरूप वृक्षों का मूलोच्छेदन करने में समर्थ हैं। यह आश्चर्य है।।२४-२६।।

भवेद्येषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः। कुलकोटिं च तेषां च उद्धरन्त्येव लीलया॥२७॥
चरितार्थः पुमानेकद्वारमिच्छुर्वरादहो। किं वरेण द्वितीयेन पुंसां तृप्तिर्न मङ्गले॥२८॥

धनं संचितमस्माकं वैष्णवानां सुदुर्लभम्।
श्रीकृष्णे भक्तिदास्यं च न वयं दातुमुत्सुकाः॥२९॥
वरयान्यं वरं वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम्। इन्द्रत्वममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभ दुर्लभम्॥३०॥
सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युञ्जयादिकं।
सुखेन सर्वं दास्यामि हरिदास्यं त्यज ध्रुवम्॥३१॥

जिन सुकृति व्यक्ति के परम वैष्णव पुत्र जन्मे हैं, वे पुत्र तो खेल-खेल में अपने करोड़ों कुल का उद्धार कर देते हैं। यद्यपि व्यक्ति की कृतार्थता मात्र एक वर से हो जाती है, तब भी वह एक अन्य वर और चाहता है, यही विस्मय की बात है। अन्य वर की क्या आवश्यकता? क्योंकि व्यक्ति की तृप्ति कितना भी मंगल हो जाये, तब भी नहीं होती। मेरे पास तो वैष्णवगण के लिये दुर्लभ धन संचित है। मैं कृष्ण भक्ति तथा कृष्ण का दासत्व अन्य को देने हेतु उत्सुक नहीं रहता। अतः तुम भक्ति तथा दासत्व को छोड़ कर अन्य वर मांगो। हे वत्स! इन्द्रत्व, अमरत्व, परम दुर्लभ ब्रह्मत्व, सर्वसिद्धि, महायोग, मृत्युंजयादि ज्ञान, सभी सुख मांग लो, तथापि हरि की दासता का वर कदापि मत मांगो।।२७-३१।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
उवाच दीनो दीनेशं दातारं सर्वसंपदाम्॥३२॥

शंकर का यह वचन सुनकर उस दीन गन्धर्व के ओष्ठ-तालु-कंठादि शुष्क हो गये। तब सर्वसम्पत्ति दाता, दीनानाथ से वह दीन गन्धर्व कहने लगा-।।३२।।

गन्धर्व उवाच

यत्पक्ष्मचालनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्।
तद्ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति॥३३॥

गन्धर्वराज कहता है-देवाधिदेव भगवान्! परब्रह्म श्रीकृष्ण के पलक झपकने मात्र से जिस ब्रह्मत्व का पतन हो जाता है, ऐसे स्वप्न तुल्य नश्वर ब्रह्मत्व को कृष्णभक्त कभी नहीं चाहते!।।३३।।

इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धयोगादिकं शिव।
ज्ञानं मृत्युञ्जयाद्यं वा नहि भक्तस्य वाञ्छितम्॥३४॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि।
तत्र निर्वाणमोक्षं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥३५॥
शश्वत्तत्र दृढा भक्तिर्हरिदास्यं सुदुर्लभम्। स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम्॥३६॥
तद्दास्यं वैष्णवसुतं देहि कल्पतरो वरम्। त्वां प्राप्य लभते तुष्टं वरं सर्ववरोऽवरः॥३७॥

हे शिव! भक्त को इन्द्रत्व, अमरत्व, सिद्धयोगादि, ज्ञान, मृत्युञ्जय की कामना नहीं रहती। हरि की सालोवय, सार्ष्टि, सामीप्य, सायुज्य तथा निर्वाण मुक्ति की कामना भी भक्तगण नहीं करते। वे भक्त

तो सोते-जागते, स्वप्न देखते, सभी अवस्था में बारम्बार श्रीकृष्ण की अचला भक्ति तथा दुर्लभ दासत्व की ही कामना करते रहते हैं। हे भजन कल्पतरु! आप अपने गुण (प्रभाव) से इस अधम को हरिभक्ति तथा वैष्णव पुत्र प्रदान करिये। जो लोग आपको प्रसन्न रूप से पाकर अन्य वर चाहते हैं, उनके समान मूर्ख त्रैलोक्य में नहीं है। उससे बढ़ कर बर्बर कोई नहीं है।।३४-३७।।

न दास्यसीदं चेच्छंभो वरं दुष्कृतिनं च माम्।
कृत्वा हि स्वशिरश्छेदं प्रदास्यामि हुताशने।।३८।।

हे शंभु! यदि आप मुझ दुष्कृति को नराधम समझ कर यह वर नहीं देते, तब निश्चित रूप से मैं अपना मस्तक काट कर उसकी आहुति अग्नि में दे दूंगा।।३८।।

गन्धर्ववचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः।
भक्तं दीनं च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः।।३९।।

इसके पश्चात् गन्धर्वराज का वचन सुनकर कृपानिधि शिव ने दीन भक्त पर अनुग्रह करते हुए यह कहा-।।३९।।

शङ्कर उवाच

हरिभक्तिं हरेर्दास्यं पुत्रं परमवैष्णवम्। चिरायुषं च गुणिनं शश्वत्सुस्थिरयौवनम्।।४०।।
ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुभक्तं जितेन्द्रियम्। गन्धर्वराजप्रवरं वरेमं लभ मा शुचः।।४१।।

शंकर कहते हैं-हे गन्धर्वराज! अब शोक मत करो। तुमने मुझे अपनी भक्ति के बल से वर देने हेतु बाध्य कर दिया। अब तुमको वांछित वर देता हूं। ग्रहण करो। तुम्हारा पुत्र परम वैष्णव, चिरायु, गुणी, सुस्थिरयौवन, ज्ञानी, परम सुन्दर, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय होगा। तुमको भगवद् भक्ति तथा हरि का दासत्व भी प्राप्त होगा। यह वर तुम ग्रहण करो।।४०-४१।।

इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्माज्जगाम स्वालयं मुने।
गन्धर्वराजः संतुष्ट आजगाम स्वमन्दिरम्।।४२।।
प्रफुल्लमानसाः सर्वे मानवाः[१] सिद्धकर्मणः।
नारदस्तस्य भार्यायां लेभे जन्म च भारते।।४३।।

हे मुनिवर! यह वर देकर शंकर अपने धाम चले गये। गन्धर्वराज भी सन्तुष्ट होकर स्वगृह लौट आये। कार्य सिद्ध होने पर सभी मनुष्यगण का मन प्रफुल्लित हो जाता है। भारतवर्ष में गन्धर्वराज की पत्नी के गर्भ से नारद ने तब जन्म लिया।।४२-४३।।

सुषाव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने। गुरुर्वसिष्ठो भगवान्नाम चक्रे यथोचितम्।।४४।।
बालकस्य च तत्रैव[२] मङ्गलं मङ्गले दिने।

---

१. क. ०वाः सर्वकामिनः। ना०।
२. ख. तस्यैव।

उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान्।
पूज्यानामधिको बालस्तेनोबर्हणाभिधः॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्वराज की वृद्धा स्त्री ने यह पुत्र उत्पन्न किया था। इस पुत्र का सभी यथोचित संस्कार गुरुदेव वसिष्ठ मुनि ने सम्पन्न किया। उसका नामकरण भी गुरु वसिष्ठदेव द्वारा "उपबर्हण" यह किया गया। उप = अधिक। पुल्लिंग शब्द बर्हण का अर्थ है पूज्य। यह गन्धर्व बालक पूज्यजन में सर्वश्रेष्ठ पूज्य था। तभी वसिष्ठदेव ने उसका नाम रक्खा उपबर्हण॥४४-४५॥

॥द्वादश अध्याय समाप्त॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्मशाप के कारण उपबर्हण का प्राण त्याग तथा मालावती का विलाप करना

सौतिरुवाच

पुत्रोत्सवे च रत्नानि धनानि विविधानि च।
गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदाऽन्वितः॥१॥
उपबर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। वसिष्ठेन तु संप्राप्य च चक्रे दुष्करं तपः॥२॥

सौति कहते हैं—हे तपोनिधि शौनक! तदनन्तर उन वृद्ध गन्धर्वराज ने प्रभु शंकर की कृपा से चिरसंचित अभिलाषा के रूप में पुत्रमुख का दर्शन किया तथा इससे वे अत्यन्त आनन्दित होकर नाना प्रकार का धनरत्न ब्राह्मणों को देने लगे। कुछ समय पश्चात् उपबर्हण ने बाल्यावस्था का अतिक्रमण करके कुलगुरु वसिष्ठदेव से दुर्लभ हरिमन्त्र प्राप्त किया तथा कठोर तप करने लगे॥१-२॥

एकदा गण्डकीतीरे तं च संप्राप्तयौवनम्। गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्मूर्च्छामापुश्च तत्क्षणम्॥३॥
ताश्च तीव्रं तपः कृत्वा प्राणान्संत्यज्य योगतः।
पञ्चाशत्ता बभूवुश्च कन्याश्चित्ररथस्य च॥४॥

एक समय गण्डकी नदी के तट पर गन्धर्वों की पत्नियों ने मुनिकुमार उपबर्हण को जैसे ही

देखा, वे उन युवक उपबर्हण का सौन्दर्य देखते ही सुध-बुध खो बैठीं। उनमें से ५० नारीगण ने घोर तपस्यारत होकर देहत्याग योगमार्ग से कर दिया। उन पचास स्त्रियों ने चित्ररथ गन्धर्व की कन्या के रूप में पुनर्जन्म लिया।।३-४।।

उपबर्हणगन्धर्वे ताश्च तं वव्रिरे पतिम्। मुदा माला ददुस्तस्मै कामुक्यः पितुराज्ञया।।५।।
गृहीत्वा ताश्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः। दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च रेमे रहसि कामुकः।।६।।

तदनन्तर यथाकाल चित्ररथ की कामपीड़ित कन्याओं ने इस सुरूप युवा का मन से वरण कर लिया तथा पिता से आज्ञा लेकर उन्होंने उपबर्हण के गले में वरमाला पहना दिया। पहले जो उपबर्हण कृष्ण भक्त थे, अब वे कामुक गन्धर्व के रूप में इन पचास नारियों को एकान्त में ले गये तथा उन्होंने वहां दिव्य मान वाले तीन लाख वर्ष पर्यन्त क्रीड़ासुख का आनन्दभोग किया।।५-६।।

ततोऽपि सुचिरं राज्यं कृत्वा ताभिः सहानिशम्।
जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगाथां जगौ मुने।।७।।
दृष्ट्वा स रम्भारम्भोरुं नर्तने कठिनं स्तनम्। बभूव स्खलनं तस्य गन्धर्वस्य महात्मनः।।८।।
द्रुतं तत्याज सङ्गीतं मूर्च्छां प्राप सभातले।
उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्मा कोपाच्छशाप तम्।।९।।

हे मुनिप्रवर! तदनन्तर गन्धर्वनन्दन उपबर्हण ने दीर्घकाल तक उन ५० स्त्रियों के साथ राज्यसुख का उपभोग किया तथा सहसा वह पुष्कर में हरि गुण गायनमयी ब्रह्मा की सभा में पहुंचा। वहां यह गन्धर्व भी प्रभु का गुणगान सबके साथ कर रहा था। जब उसने नृत्यरत देवांगना रम्भा के केले के तने के समान उरु को तथा कठोर स्थूल स्तनों को देखा, तभी उस गन्धर्व का वीर्य वहीं स्खलित हो गया। इस कृत्य से अब वह संगीत गायन से विरत हो गया, साथ ही उसी सभा में वह सामान्य कामुक लोगों जैसे मूर्च्छित भी हो गया। उसकी यह स्थिति देख कर वहां उपस्थित देवता लोग उच्च स्वर में हंसने लगे। इससे कुपित होकर ब्रह्मा ने तत्काल उपबर्हण को शाप देते हुए कहा-।।७-९।।

वज्र त्वं शूद्रयोनिं च गान्धर्वीं तनुमुत्सृज।
काले वैष्णवसंसर्गान्मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि।।१०।।
विना विपत्तेर्महिमा पुंसां नैव भवेत्सुत। सुखं दुःखं च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति।।११।।

शाप देते ब्रह्मा ने कहा-"हे उपबर्हण! तुम इस दुष्कर्म के फलस्वरूप गन्धर्व देह त्याग कर शूद्र योनि में जन्म लोगे। तदनन्तर उचित समय आने पर तुमको वैष्णवजन का साथ मिलेगा। जिसके फलस्वरूप तुम पुनः मेरे पुत्ररूप से यहां निवास करोगे। हे पुत्र! इस शाप से दुःख करना उचित नहीं है। विपत्ति का भोग किये बिना पुरुष की महिमा नहीं बढ़ती। सभी को क्रमिक रूप से सुख-दुःख भोगना पड़ता है।।१०-११।।

इत्येवमुक्त्वा स विधिरगच्छत्पुष्करादृगृहम्। उपबर्हणगन्धर्वः स जहौ तां तनुं तदा।।१२।।

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्।
विशुद्धमाज्ञाख्यं चेति भित्त्वा षट्चक्रमेव च॥१३॥
इडां सुषुम्नां मेधां च पिङ्गलां [1]प्राणधारिणीम्।
सर्वज्ञानप्रदां चैव मनःसंयमिनीं तथा॥१४॥
विशुद्धां च निरुद्धां च वायुसञ्चारिणीं तथा।
तेजः शुष्ककरीं चैव बलपुष्टिकरीं तथा॥१५॥
बुद्धिसञ्चारिणीं चैव ज्ञानजृम्भणकारिणीम्। सर्वप्राणहरा चैव पुनर्जीवनकारिणीम्॥१६॥
एताः षोडशधा नाडीर्भित्त्वा वै हंसमेव च। मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः॥१७॥

यह कह कर भगवान् ब्रह्मा पुष्कर तीर्थ से स्वधाम चले गये। तभी उपबर्हण ने वहीं पर देहत्याग कर दिया। हे शौनक! मैं उस गन्धर्व के देहत्याग का प्रसंग कहता हूं। उसने प्रथमतः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत तथा आज्ञा नामक षट्चक्र का भेदन करके १. इड़ा, २. पिंगला, ३. सुषुम्ना, ४. मेधा, ५. प्राणधारिणी, ६. सर्वज्ञानप्रदा, ७. मनःसंयमनी, ८. विशुद्धा, ९. निरुद्धा, १०. वायुसंचारिणी, ११. तेजः शुष्ककरी, १२. ज्ञानजृम्भकारिणी, १३. सर्वप्राणवहा, १४. पुनर्जीवनकारिणी, १५. बलपुष्टिकरी तथा १६. बुद्धिसंचारिणी नाम्नी षोडश नाड़ियों का भेदन किया। इसके पश्चात् उपबर्हण ने योगबल से मन के साथ जीवात्मा को हंस रूप ब्रह्मरन्ध्र में लाकर परमात्मा के साथ युक्त कर दिया॥१२-१७॥

स्थित्वा मुहूर्तमात्मानमात्मन्येव युयोज ह।
जातिस्मरश्च योगीन्द्रः संप्राप ब्रह्म शौनक॥१८॥
वीणां त्रितन्त्रीं दुष्प्राप्यां वामस्कन्धे निधाय च।
शुद्धस्फटिकमालां च विधृत्वा दक्षिणे करे॥१९॥
सञ्जल्पन्परमं ब्रह्म वेदसारं परात्परम्। परं निस्तारबीजं च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्॥२०॥
प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम्।
विधाय दर्भशयनं शयानः पुरुषो यथा॥२१॥

हे शौनक! तदनन्तर जातिस्मर योगीप्रवर गन्धर्वनन्दन ने देवगण ध्येय ब्रह्मसाक्षात्कार को (ब्रह्मभाव) को प्राप्त किया। हे शौनक! क्षण काल पश्चात् गन्धर्व ने सामान्य लोगों के लिये दुष्प्राप्य त्रितंत्री वीणा को बायें कन्धे पर रखा तथा दाहिने हाथ में उन्होंने स्फटिक माला धारण किया। तत्पश्चात् उन्होंने कुशासन पर पूर्व की ओर अपना शिर रखा तथा पश्चिम की ओर पैर करके किसी थके हुए महापुरुष की तरह वहां लेट गये और वेदतत्व के सार बीज रूप, जो संसार से उद्धार का परम बीज है,

१. ख. ॰णहारि॰।

उस दो अक्षर वाले 'कृष्ण' बीज का परमानन्द से जप करने लगे तथा सहसा उनके नेत्र बन्द हो गये। (वे मृत हो गये)। कृष्ण नाम जपते इस प्रकार उपबर्हण ने योग द्वारा प्राण त्याग करके परमात्मा को प्राप्त कर लिया।।१८-२१।।

गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्यया सह तत्क्षणम्।
योगेन ब्रह्म संप्राप श्रीकृष्णं मनसा स्मरन्।।२२।।
पत्न्यश्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुरुदुर्भृशम्।
जग्मुः क्रमेण शोकार्ता मोहिता विष्णुमायया।।२३।।
पञ्चाशद्योषितां मध्ये प्रधाना महिषी च या।
साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसी वरा।।२४।।
उच्चै रुरोद सा तीव्रं कान्तं कृत्वा च वक्षसि।
इत्युवाच च शोकार्ता कान्तं संबोध्य चैव हि।।२५।।

उधर गन्धर्वराज (उपबर्हण के पिता) ने भी पुत्र को देहत्याग करते देख कर पत्नी के साथ तत्क्षण योग द्वारा ब्रह्मलाभ करके कृष्ण का स्मरण करते प्राणत्याग कर दिया। उस समय उपबर्हण की सभी पत्नियां, बन्धु-बान्धव यह देख कर जोरों से विलाप कर रहे थे। वे सभी विष्णुमाया से मोहित होकर इन तीनों के शव के निकट आये। उपबर्हण की पटरानी मालावती अत्यन्त श्रेष्ठ पतिव्रता तथा पति को अत्यन्त प्रिय थी। वह पति के शव को वक्ष से लगा कर शोकार्त्त होकर पति को सम्बोधित करते कहने लगी-।।२२-२५।।

मालावत्युवाच

हे नाथ रमण श्रेष्ठ विदग्ध रसिकेश्वर। दर्शनं देहि मां बन्धो निमग्नां शोकसागरे।।२६।।
विस्त्रम्भके[1] सुवसने रम्ये[2] चन्दनकानने। पुष्पभद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे।।२७।।
चन्दनाचलसांनिध्ये चारुचन्दनकानने। पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलवासिते।।२८।।
गन्धमादनशैलैकदेशे रम्ये नदीतटे। पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि।।२९।।

श्रीशैले श्रीवने दिव्ये श्रीनिवासनिषेविते।
श्रीयुक्ते श्रीपदाम्भोजे पूतेऽच्युतकृते शुभे।।३०।।

मालावती कहती है-हे चतुर, रसिकप्रवर, रमण में श्रेष्ठ, नाथ! आप कहां चले गये? मैं शोकसागर में निमग्न हो रही हूं। कृपया हे मेरे बन्धु! दर्शन दीजिये। हे जीवनकान्त! जहां चन्दनवन का सौरभ चारों ओर व्याप्त होकर आमोदित कर रहा है तथा जो स्थल निर्मल प्रवाह वाली सरिता के

---

१. क. ०स्रस्तके।
२. क. ०म्ये नन्द०।

जलकणों से सतत् शीतल है, उस पुष्पभद्रा नदी तटस्थ पुष्प के उद्यान में तथा जहां सुगन्धित चन्दनगन्ध युक्त वायु बह कर जीवन-मन को तृप्त करती है, उस मलय पर्वत के निकटवर्त्ती मनोहर चन्दनकानन में स्थित चन्दनलिप्त पुष्पशय्या पर तथा जहां सतत् नर कोकिल का मधुर कूजन हमारे कानों में निरन्तर सुधावर्षण कर रहा है तथा जहां मन्द-मन्द वायु से संचालित मालती के जलकण निरन्तर स्निग्ध स्पर्शानुभव दे रहे हैं, उस स्रोतस्वती के तट पर स्थित सुरम्य गन्धमादन पर्वत के एक ओर तथा जो वन है, वह पूर्वकाल में लक्ष्मी तथा नारायण के चलने से अत्यन्त पावन हो गया है। जहां इनके चरण-चिह्न भी लक्षित होते हैं, वह पर्वत श्री शैल श्रीनिवास प्रभु से सेवित है। वह दिव्य श्रीवन है।।२६-३०।।

पुरा या या कृता क्रीडा वसन्ते रहसि त्वया। मया च दुर्हृदा सार्धं तया वै दूयते मनः।।३१।।
सुधातुल्येन वचसा सिक्ताऽहं च पुरा त्वया। दूयते सततं तेन परमात्माऽतिदारुणः।।३२।।
साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः। अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्करः।।३३।।

वहां पूर्वकाल में वसन्त ऋतुकाल में एकान्त स्थल पर आपने मुझ दुष्ट हृदय वाली के साथ जो-जो क्रीड़ा किया था, उसे स्मरण कर-करके मुझे तो अत्यन्त क्लेश हो रहा है। पूर्व में आपने अमृत के समान मधुर वाक्य वर्षण से मुझे यहां अभिषिक्त किया था, उसे स्मरण कर-करके मेरा हृदय किस प्रकार से व्याकुल हो रहा है, उसे कहने के लिये मेरे पास भाषा तथा शब्द ही नहीं हैं! मेरी यह कठोर आत्मा तक वह याद करके परम दुःखी है। साधु संग को वैकुण्ठ धाम में मिलने वाले सुख से भी अधिक कहा गया है। मैं आपके उस साधु संग से वंचित होकर मृत्यु से भी अधिक दुःख पा रही हूं!।।३१-३३।।

तस्मात्तेषां च विच्छेदः साधुशोककरः परः।
ततोऽपि बन्धुविच्छेदः शोकः परमदारुणः।।३४।।
ततोऽपत्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते। सर्वस्मात्पतिभेदो हि तत्परं नास्ति सङ्कटम्।।३५।।

ऐसे लोगों का विछोह तथा उनकी मृत्यु सज्जनों हेतु भी दुःखदायी है। इससे भी महान् दुःखदायक है बन्धु वियोग। सन्तान का वियोग मरण से भी अधिक दुःखप्रद कहा गया है, तथापि पतिवियोग इतना बड़ा दुःख है, जिसके समान अन्य दुःख स्त्री के लिये नहीं है। नारी के लिये तो यह ऐसा संकट है, जो सभी संकटों से बढ़ कर है।।३४-३५।।

शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च।
स्वामिविच्छेददुःखं च नूतनं च दिने दिने।।३६।।
सर्वशोकं विस्मरेत्स्त्री स्वामिसंयोगमात्रतः।
बन्धुमन्यं न पश्यामि यं दृष्ट्वा विस्मरेत्पतिम्।।३७।।

पत्नी को शयनकाल में, भोजन करते समय, स्वप्न तथा जागरण-काल में तथा स्नान काल में पतिवियोग का दुःख नित्य नवीन होता अनुभूत होता है। स्वामी का संयोग होते ही स्त्री समस्त शोक

भूल जाती है। ऐसा कोई भी बन्धु नहीं है, जिसे देख कर मैं पतिवियोग दुःख का विस्मरण कर सकूं।।३६-३७।।

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना।
साध्वीनां कुलजातामित्याह कमलोद्भवः॥३८॥
हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म त्वं प्रजापते।
गिरीश कमलाकान्त पतिदानं च देहि मे॥३९॥

यह निश्चित है कि जो पतिव्रता साध्वी कुलीन नारी है, पति ही उनके लिये सर्वोत्कृष्ट तथा विशिष्ट बन्धु है। यह कमलोद्भव ब्रह्मा का वचन है। हे दिक्-विदिक् के अधिपति देवगण, दिक्पालगण, धर्मदेव, प्रजापति! हे गिरीश! कमलाकान्त! कृपया मुझे पति प्रदान करिये।।३८-३९।।

इत्युक्त्वा विरहार्ता सा कन्या चित्ररथस्य च। मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने वने॥४०॥
विचेतना तत्र तस्थौ कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। परिपूर्णे दिवानक्तं सर्वैर्देवैश्च रक्षिता॥४१॥
प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः। इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती॥४२॥

यह कहकर उस दुर्गम गहन वन में पति विरह से आर्त्त चित्ररथ की पुत्री मालावती दुःख से मूर्च्छित हो गयी। वह नारी पति के शव को वक्ष से लिपटाये एक दिन तथा रात पर्यन्त मूर्च्छित थी। उस समय देवगण ने उसकी रक्षा किया था। प्रभात होने पर जब उसकी चेतना वापस आई, तब वह बारम्बार रुदन करने लगी। उस सती ने तब हरि को सम्बोधन करके कहा—।।४०-४२।।

मालावत्युवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ नाहं जगद्बहिः।
त्वमेव जगतां पाता मां न पासि कथं प्रभो॥४३॥
अयं भर्ताऽस्य भार्याऽहं ममेति तव मायया। त्वमेव संभवो भर्ता सर्वेषां सर्वकारणः॥४४॥
गन्धर्वःकर्मणा कान्तः कान्ताऽहं चास्य कर्मणा।
क्व गतः कर्मभोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम्॥४५॥

मालावती कहती है—हे कृष्ण! हे जगन्नाथ! हे नाथ! मैं तो आपके जगत् में ही रहती हूं। आप तो जगत् रक्षक हैं। हे प्रभो! मेरी रक्षा क्यों नहीं कर रहे हैं? हे प्रभो! मैं आपकी माया से मोहित होकर "यह मेरा पति है", "मैं इसकी भार्या हूं" कह कर रुदन कर रही हूं, तथापि विवेचना से विदित होता है कि आप ही विश्व-ब्रह्माण्ड के एकमात्र पति तथा सबके आदि कारण हैं। हे दयामय! यह गन्धर्वपुत्र अपने कर्मबल से मेरे पति बने थे। मैं भी अपने पूर्वजन्मार्जित कर्म के कारण इनकी पत्नी बनी हूं। कर्मभोग से ही वे किसी अनजाने कारण से मुझ अभागिनी का त्याग करके न जाने कहां चले गये।।४३-४५।।

को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो।
संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा॥४६॥
संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम्।
शश्वज्जगति मूर्खस्य नाऽऽत्मारामस्य निश्चितम्॥४७॥

हे प्रभो! इस जगत् में कौन किसका पति है, कौन किसका पुत्र है, कौन किसका पिता है? यह तो विधाता उनके अपने-अपने कर्म के कारण कर्मानुरूप मिलन एवं वियोग का विधान करते हैं। इस जगत् में जो मूर्ख हैं, उनको ही संयोगजनित परमानन्द तथा वियोगजनित परम दुःख प्रतीत होता है। वियोग में तो वे प्राणसंकट का अनुभव करते हैं। यह मूर्खों की गति है, तथापि जो आत्माराम पुरुष हैं, वे कदापि संयोग से सुखी तथा वियोग से दुःखी नहीं होते! यह निश्चित है।।४५-४७।।

नश्वरो विषयः सत्यं भुवि भोगश्च बान्धवः।
स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः॥४८॥
तस्मात्सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम्।
ध्यायन्ते सततं कृष्णपादपद्मं निरापदम्॥४९॥

हे मधुसूदन! इस भूमण्डल के समस्त विषयभोग नश्वर हैं। विश्व-संसार तक नश्वर है। बन्धु-बान्धवादि भी चिरस्थायी नहीं हैं। हे नाथ! जो इस सार तत्व को जान कर स्वयं इसका त्याग कर देते हैं, केवल उनको ही सुखलाभ होता है। इसे जब अन्य कोई त्याग (बलात्) करता है अथवा अन्य कारण से त्याग करना पड़ता है, तब केवल दुःख की ही प्राप्ति होती है। इसी कारण से महापुरुष अत्यन्त वांछित तथा उपयोगी होने पर भी समस्त ऐश्वर्य का मन से त्याग कर देते हैं। वे केवल रात-दिन एकाग्रता के साथ सर्वदुःखविनाशक नित्यानन्दप्रद निरापद श्रीकृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में निमग्न रहते हैं।।४८-४९।।

सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि।
ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हसि वाञ्छितम्॥५०॥
न मे वाञ्छाऽमरत्वे च शक्रत्वे मोक्षवर्त्मनि। इमं कान्तं वरं देहि चतुर्वर्गकरं परम्॥५१॥

हे प्रभो! समस्त भूमंडल में साधु पुरुष ही ज्ञानी होते हैं, तथापि कौन सी नारी ज्ञानवती है? तभी मैं आपसे सजलनयन तथा हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूं कि इस माया से विमुग्धा नारी को वांछित प्रदान करके सुखी करें। हे दीनबन्धु! मैं इन्द्रत्व, अमरत्व, मोक्षपद भी नहीं चाहती। मेरी यही प्रार्थना है कि मुझको चतुर्वर्ग फलप्रद उन पति को पुनः प्रदान करके सुखी करिये।।५०-५१।।

यावती कामिनीजातिर्जगत्यां जगदीश्वर। कस्यैचिन्नहि दत्तश्च तेन धातेदृशः पतिः॥५२॥
तस्मै दत्ताः गुणाः सर्वे रूपाणि विविधानि च।
सुशीलानि च सर्वाणि चामरत्वं विना हरे॥५३॥

रूपेण च गुणेनैव तेजसा विक्रमेण च। ज्ञानेन शान्त्या संतुष्ट्या हरितुल्यः प्रभुर्मम॥५४॥

हे जगत्पति! मैं हतभागिनी होकर भी एक प्रकार से भाग्यवान हूं, इसमें सन्देह नहीं है। जगत् की जितनी भी स्त्री हैं, विधाता ब्रह्मा ने किसी को भी ऐसा पति प्रदान नहीं किया था। केवल उनको अमरत्व नहीं प्राप्त था, तथापि सौन्दर्य, साधुशीलता, रूप, गुण, बल, विक्रम, ज्ञान, शान्ति, सन्तुष्टि तो उनको हरि के समान मिली थी॥५२-५४॥

हरिभक्तो हरिसमो गाम्भीर्ये सागरो यथा।
दीप्तिमान्सूर्यतुल्यश्च शुद्धो वह्निसमस्तथा॥५५॥

चन्द्रतुल्यः सुदृश्यश्च कन्दर्पसमसुन्दरः। बुद्ध्या बृहस्पतिसमः काव्ये कविसमस्तथा॥५६॥

वे स्वामी रूप, गुण आदि से सम्पन्न होकर भी हरिभक्त, हरि के समान गंभीरता के सागर (सागरवत् गंभीर), सूर्यवत् दीप्तिशाली, अग्नि के समान शुद्ध, चन्द्रवत् दर्शनीय, कामदेव के समान सौन्दर्यशाली, बृहस्पति के समान बुद्धि वाले, शुक्र के समान कवि थे॥५५-५६॥

वाणी च सर्वशास्त्रज्ञा प्रतिभायां भृगोरिव। कुबेरतुल्यो धनवान्महान्दाता मनोरिव॥५७॥
धर्मे धर्मसमो धर्मी सत्ये सत्यव्रताधिकः। कुमारतुल्यतपसा स्वाचारे ब्रह्मणा समः॥५८॥

ऐश्वर्ये शक्रतुल्यश्च सहिष्णुः पृथिवीसमः।
एवंभूतो मृतः कान्तः प्राणा यान्ति न मे कथम्॥५९॥

वे वाग्देवी सरस्वती के समान सर्वशास्त्रज्ञान सम्पन्न थे। उनकी प्रतिभा तो भृगुदेव को भी लज्जित कर देती थी। वे कुबेर के समान धन-सम्पत्ति के स्वामी थे। दानियों में वे मनुदेव के समान दानदाता थे। वे धर्म के समान धर्मशील, सत्यानुष्ठान में राजा सत्यव्रत से भी महान् थे। उनकी तप करने की क्षमता को देख कर सनत्कुमार भी लघु लगते थे। उनका साधु-आचार तो ब्रह्मा के समान था। उनका ऐश्वर्य इन्द्रतुल्य एवं सहनशीलता वसुन्धरा के समान कही गई है। ऐसे गुणों के खान स्वामी को प्राण रहित देख कर भी मेरे प्राण क्यों शरीर में अटके हैं?॥५७-५९॥

अहो[१] सुरा यज्ञभाजो घृतं भोक्तुं क्षमा भुवि।
क्षणेनायज्ञभाजश्च करिष्यामि स्वलीलया॥६०॥
नारायण जगत्कान्त नाहमेव जगद्बहिः।
शीघ्रं जीवय मत्कान्तमन्यथा त्वां शपाम्यहम्॥६१॥

हे देवगण! आप लोग धरती से ही यज्ञांश भागी होकर घृतपान कर पाते हैं। मैं क्षणमात्र में लीला मात्र से आप सबको यज्ञभाग लेने से पृथक् कर देती हूं। हे नारायण! आप तो समस्त संसार के नाथ हैं। मैं जगत् में ही हूं। यदि आप मेरे पति को शीघ्र जीवित नहीं करते, तब मैं आपको शाप देती हूं॥६०-६१॥

---

१. ख. अरे सु०।

प्रजापते पुत्रशापात्त्वमपूज्यो महीतले। तवैवानधिकारित्वं करिष्याम्यधुना भवे॥६२॥
हे शंभो ज्ञानलोपं ते करिष्यामि शपेन च।
धर्मलोपं च धर्मस्य करिष्याम्येव लीलया॥६३॥
यमाधिकारं दूरे च करिष्यामि न संशयः।
सत्यं कालं शपिष्यामि मृत्युकन्यां सुनिष्ठुराम्॥६४॥

हे प्रजापति ब्रह्मदेव! आप पहले से ही पुत्र के शाप द्वारा पूजा से अपूज्य हो गये हैं। अब आपका ब्रह्माण्ड पर जो अधिकार है, मैं उसे भी नष्ट कर दूंगी। यह निःसंदेह होकर रहेगा। हे ज्ञानीप्रवर शंभु! मैं अभी शाप द्वारा आपका तत्वज्ञान लुप्त कर दूंगी। हे धर्मदेव! मैं तो आपको अनायास धर्मपद से च्युत कर दूंगी। मैं यम को भी उसके अधिकार से दूर कर दूंगी। इसमें संशय नहीं है। मैं अभी काल को तथा निष्ठुर मृत्युकन्या को भी शापित कर रही हूं।।६२-६४।।

शपामि सर्वानत्रैव जरां व्याधिं विनाऽधुना।
व्याधिना जरया मृत्युर्न ह्यभुच्च पतेर्मम॥६५॥

मैं केवल जरा-व्याधि को शाप नहीं दूंगी, क्योंकि मेरे पति की मृत्यु में जरा-व्याधि कारण नहीं है, तथापि अन्य सभी को मैं शाप देने के लिये उद्यत हो रही हूं!।।६५।।

इत्युक्त्वा कौशिकीतीरे चागच्छच्छप्तुमेव तान्।
मालावती महासाध्वी शवं कृत्वा स्ववक्षसि॥६६॥
तां शप्तुमुद्यतां दृष्ट्वा ब्रह्मा देवपुरोगमः[1]। जगाम शरणं विष्णुं तीरं क्षीरपयोनिधेः॥६७॥
तत्र स्नात्वा च तुष्टाव परमात्मानमीश्वरम्।
विष्णुं ब्रह्मा जगत्कान्तमित्युवाच ह भीतवत्॥६८॥

इसके पश्चात् महासाध्वी मालावती ने देवताओं को शाप देने के लिये अपने पति को गोद में उठाया तथा कौशिकी सरिता के तट पर चली गयीं। उस पतिव्रता को शाप देने के लिये उद्यत देख कर क्षीरसागर के तट पर ब्रह्मा को आगे करके सभी देवता विष्णु की शरण में चले गये। वहां सविधि स्नान करके वे ब्रह्मादि देवगण भयभीत होकर जगत्कान्त ईश्वर परमात्मा विष्णु की स्तुति करने लगे।।६६-६८।।

ब्रह्मोवाच

उपबर्हणपत्नी सा कन्या चित्ररथस्य च। कान्तहेतोश्च मां देवाञ्छपेत्त्वं रक्ष माधव॥६९॥
स्मरन्ति साधवः सन्तो जपन्ति मुनयो मुदा।
स्वप्ने जागरणे चैव सर्वकार्येषु माधवम्॥७०॥

१. क. देवाः ब्रह्मपुरोगमाः। प्रजग्मुः श०।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायण। रक्ष रक्ष हृषीकेश व्रजामः शरणं वयम्॥७१॥
पूजा मे पुत्रशापेन विहता सांप्रतं प्रभो। अधिकारहतं मां च कुरुते मालती सती॥७२॥
सर्वाधिकारो ब्रह्माण्डे त्वया दत्तः पुरा प्रभो।
संपदेतादृशी नाथ यास्यत्येवाधुना मम॥७३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे माधव! चित्ररथ की पुत्री तथा उपबर्हण गन्धर्व की पत्नी अपने पति के लिये मेरे साथ सभी देवगण को शाप देने के लिये उद्यत है। कृपया हमारी रक्षा करिये। हे माधव! साधु-पण्डितगण एवं योगीगण स्वप्नावस्था-जाग्रतावस्था-शयनावस्था आदि सभी अवस्था में तथा सभी कार्य में दीनतारण आपका ही स्मरण करते हैं। हे हृषीकेश! आप दीन-आर्त्त के शरणागत होते ही तत्क्षण उसकी रक्षा कर देते हैं। हे दीनतारण! हम आपके शरणागत हैं। हमारी रक्षा उस पतिव्रता के शाप से करिये। हे प्रभो! मधुसूदन! मैं अपना दुःख कहां तक कहूं? पहले से ही मैं पुत्रशाप के कारण पृथिवी पर अपूज्य हो गया, अब यह मालावती मेरे ब्रह्माण्डाधिकार को भी विलुप्त करने जा रही है। हे दयामय प्रभो! आपने ही कृपा पूर्वक मुझे ब्रह्माण्ड पर सर्वाधिकार प्रदान किया था। मेरी यह अनन्यसुलभ सम्पदा भी मालावती के कारण मुझसे छिन जायेगी। अब आपकी दया के अतिरिक्त रक्षा का कोई उपाय नहीं है॥६९-७३॥

महादेव उवाच

त्वया दत्तं महाज्ञानं गुप्तं सर्वेषु दुर्लभम्। शतमन्वन्तरतपःफलेन पुष्करे पुरा॥७४॥
ऐश्वर्यं वा धनं वाऽपि विद्या वा विक्रमोऽथवा।
ज्ञानस्य परमार्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥७५॥
सर्वज्ञातं सर्वगुप्तमत्यन्तं दुर्लभं परम्। मम तत्त्वज्ञानरत्नं शापान्निर्याति योषितः॥७६॥
अहो पतिव्रतातेजः सर्वेषां तेजसां परम्। तेजोऽनलेन दग्धं मां रक्ष रक्ष हरे हरे॥७७॥

महादेव कहते हैं–हे कृपामय! पूर्वकाल में मेरे द्वारा कृत पुष्करतीर्थ पर सौ मन्वन्तर पर्यन्त तपस्या के फलस्वरूप आपने सर्वजनदुर्लभ, अतीव गोपनीय, महाज्ञानरूप वर प्रदान किया था। उसकी महिमा नहीं कह सकता। जगत् की सम्पूर्ण विद्या, समस्त विक्रम, समस्त धनैश्वर्य भी इस महाज्ञान का १/१६ अंश भी नहीं है। हे दयामय प्रभो! सबके लिये अज्ञात, अन्य के लिये अत्यन्त दुर्लभ, आप द्वारा प्रदत्त जो तत्वज्ञान है, वह इस सती नारी के शाप प्रभाव से सदा के लिये लुप्त हो जायेगा। यदि आप रक्षा नहीं करते, तब मेरी रक्षा कौन करेगा? पतिव्रता का तेज अतीव अद्भुत तथा भयंकर होता है। मैंने भी त्रैलोक्य में ऐसा तेज नहीं देखा। मैं तो उस तेज को याद करने से ही दग्ध हो रहा हूं। हे करुणामय हरि! मेरी रक्षा करिये, रक्षा करिये॥७४-७७॥

धर्म उवाच

सर्वरत्नात्परं रत्नं धर्म एव सनातनः। यास्यत्येवंविधो धर्मस्त्वया दत्तः पुरा प्रभो॥७८॥

सप्तमन्वन्तरतपः फलेन परमेश्वर। प्राप्तो धर्मोऽधुना याति शापेन योषितः प्रभो॥७९॥

धर्मदेव कहते हैं–हे प्रभो! आपने तो सभी रत्नों में श्रेष्ठ सनातन धर्म रत्न मुझे प्रदान किया था। वह आज विनष्ट होने जा रहा है। हे परमेश्वर! मैंने सात मन्वन्तर तप करके इस धर्म को प्राप्त किया था। वह सती के शाप से लुप्त हो जायेगा।।७८-७९।।

देवा ऊचुः

यज्ञभाजो घृतभुजो वयमेव त्वया कृताः। योषिच्छापेन तत्सर्वमधुना याति माधव॥८०॥

देवगण कहते हैं–हे माधव! आपने ही कृपा पूर्वक हमें यज्ञांश तथा यज्ञीय घृतभोजन का अधिकारी बनाया था। यह आज साध्वी पतिव्रता के शाप से विनष्ट होगा।।८०।।

इत्युक्त्वा संयताः सर्वे तस्थुस्तत्र भयार्दिताः। एतस्मिन्नन्तरेऽकस्माद्वाग्बभूवाशरीरिणी॥८१॥

यूयं गच्छत तन्मूलं विप्ररूपी जनार्दनः।
पश्चाद्यास्यति शान्त्यर्थमिति वो रक्षणाय च॥८२॥

यह कहकर सभी देवता संयत मन से तथा भयभीत स्थिति में वहीं खड़े हो गये। तभी आकाशवाणी सुनाई पड़ी–"हे देवगण! तुम सभी मालावती के यहां जाओ। तदनन्तर जनार्दन ब्राह्मण वेष में वहां तुम लोगों की रक्षा तथा शान्तिस्थापनार्थ जायेंगे।।८१-८२।।

श्रुत्वा तद्वचनं देवाः प्रहृष्टमनसोन्मुखाः। जग्मुर्मालावतीस्थानं कौशिकीतीरमीश्वराः॥८३॥

तामेव ददृशुर्देवा देवीं मालावतीं सतीम्। रत्नसारेन्द्रभूषाभिरुज्ज्वलां कमलाकलाम्॥८४॥

वह्निशुद्धांशुकाधानां सिन्दूरबिन्दुभूषिताम्।
शरच्चन्द्रप्रभां शान्तां द्योतयन्तीं दिशस्त्विषा॥८५॥

पतिसेवामहाधर्मचिरसंचिततेजसा। प्रज्वलन्तीं सुप्रदीप्तशिखां वह्नेरिवोत्तमाम्॥८६॥

योगासनं कुर्वतीं च शववक्षःस्थलस्थिताम्।
सुरम्यां स्वामिनो वीणां बिभ्रती दक्षिणे करे॥८७॥
तर्जन्यङ्गुष्ठकोटिभ्यां शुद्धस्फटिकमालिकाम्।
भक्त्या स्नेहेन कान्तस्य बिभ्रती योगमुद्रया॥८८॥

देवगण यह देववाणी सुन कर सानन्द चित्त से कौशिकी नदी के तट पर मालावती के पास गये। मालावती को उस समय उन प्रसन्नचित्त देवगण दे देखा कि रत्नों के सारभूत भूषणों से भूषित अत्यन्त उज्ज्वला भगवती कमला की कला के समान प्रतीत हो रही थी। उनका परिधान वस्त्र अग्निवत् विभासित था। वे शारदीय चन्द्र के समान वाली अपनी शान्त प्रभा से दशदिक् को विभासित कर रही थीं। पति सेवारूप महाधर्म से संचित तेजः द्वारा उनका शरीर प्रदीप्त हो रहा था। वे योगासनासीन होकर मृत पति के शव को वक्ष से लगाये बैठी थीं। उनके दाहिने हाथ में स्वामी की सुरम्य त्रितंत्री वीणा

विराजमान थी। वे अपने स्वामी के प्रति पूर्ण भक्ति तथा प्रेम से ओतप्रोत स्थिति में तर्जनी तथा अंगूठे के अग्रभाग से शुद्ध स्फटिक की माला भी धारण किये थी।।८३-८८।।

चारुचम्पकवर्णाभां बिम्बोष्ठीं रत्नमालिनीम्।
यथा षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।।८९।।
बृहन्नितम्बभारार्तां पीनश्रोणिपयोधराम्।
पश्यन्तीं शवमीशस्य शुभदृष्ट्या पुनः पुनः।।९०।।

उनका उत्तम वर्ण चम्पा के पुष्प के समान था। उनके ओष्ठ विम्बफल के समान वर्ण वाले थे। उन्होंने रत्नमाला धारण किया था। वे स्थिरयौवना होने के कारण मात्र षोडशवर्षीया सुन्दरी लग रही थीं, जिनके नितम्ब विशाल तथा स्तन पीन (स्थूल) थे। वे बारम्बार अपने पति के शव का अपनी शुभ दृष्टि से अवलोकन कर रही थीं।।८९-९०।।

एवंभूतां च तां दृष्ट्वा देवास्ते विस्मयं ययुः।
स्थगितां च क्षणं तत्र धार्मिका धर्मभीरवः।।९१।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे मालावतीविलापो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

जब देवगण ने मालावती को इस प्रकार की स्थिति में विराजित देखा, तब वे विस्मयान्वित होकर स्थिर रूप से वहीं खड़े हो गये। ये देवता धार्मिक तथा धर्मभीरु थे। मानों उन्होंने स्वयं को वहां छिपा रखा था।।९१।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विप्ररूपी विष्णु-मालावती संवाद

सौतिरुवाच

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः। ययुर्मालावतीमूलं परं मङ्गलदायकाः।।१।।
मालावती सुरान्दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता। रुरोद कान्तं संस्थाप्य देवानां संनिधौ मुने।।२।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्ब्राह्मणबालकः। आजगाम सुराणां च सभामतिमनोहरः।।३।।

दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्।
दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्च सुस्मितः॥४॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। सुरान्संभाष्य तत्रैव विस्मितान्विष्णुमायया॥५॥
तत्रोवास सभामध्ये तारामध्ये यथा शशी। उवाच देवान्सर्वांश्च मालतीं च विचक्षणः॥६॥

सौति कहते हैं–तदनन्तर मंगलप्रद ब्रह्मादि देवगण क्षणमात्र वहां स्थित रह कर मालावती के निकट पहुंचे। हे मुनिवर! पतिव्रता मालावती ने देवताओं को देखने मात्र से सबको सविधि प्रणाम किया तथा उन सबको अपने पति के शव के समक्ष स्थित करके पुनः रुदनरत हो गयीं। तभी अति सुन्दर एक ब्राह्मण कुमार देवगण की सभा में आये। ये ब्राह्मण दण्ड–छत्रधारी थे। उनके ललाट पर उत्तम तिलक लगा था। उनके हाथों में एक पुस्तक थी। वे अत्यन्त प्रशान्तमूर्त्ति तथा हंसमुख थे। उनका समस्त अंग चन्दन चर्चित था। वे ब्रह्मतेज से अत्यन्त दीप्त थे। वहां आकर उन ब्राह्मण ने विष्णुमाया मोहित देवगण से यथाविधि बातचीत किया, तदनन्तर जैसे तारकों के बीच चन्द्रमा शोभित होता है, वैसे वे सभा में बैठ कर मालावती तथा देवगण से अत्यन्त चतुरता पूर्वक कहने लगे–१–६॥

ब्राह्मण उवाच

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः। स्वयं विधाता जगतां स्रष्टा वै केन कर्मणा॥७॥

ब्राह्मण कहते हैं–यहां पर ब्रह्मादि देवगण किस प्रयोजन से आये हैं? स्वयं जगत् के सृष्टिकर्त्ता विधाता यहां उपस्थित हैं?॥७॥

सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः। अहो त्रिजगतां साक्षी धर्मो वै सर्वकर्मणाम्॥८॥
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः।
कथं कालो मृत्युकन्या कथं वाऽत्र यमादयः॥९॥
हे मालावति ते क्रीडे कोऽतिशुष्कः शवोऽनघे।
जीविकायाः कथं मूले योषितश्च पुमाञ्छवैः॥१०॥

जगत् का संहार करने वाले शम्भु यहां क्यों आये हैं? यह तो आश्चर्य है कि त्रैलोक्य साक्षी धर्म भी, जो सबके कर्म के साक्षी हैं, वे भी यहां आये हैं! रवि, चन्द्र, अग्नि, काल, मृत्युकन्या तथा यम के यहां आगमन का क्या कारण है? हे मालावती, निष्पापे! तुम्हारी गोद में यह सूखा शव क्यों है? तुम तो जीवित नारी हो! तुमने यह पुरुष शव क्यों लिया है?॥८–१०॥

इत्युक्त्वा तांश्च तां[१] विप्रो विरराम सभातले।
मालावती तं प्रणम्य समुवाच विचक्षणम्॥११॥

---

१. तां सतीमिति वा पाठः।

सभा में इतना कहकर वे ब्राह्मण मौन हो गये। तब उन विद्वान् ब्राह्मण को प्रणाम करके मालावती ने कहा—।।११।।

मालावत्युवाच

आनन्दपूर्वकं वन्दे विप्ररूपं जनार्दनम्। तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च।।१२।।
अवधानं कुरु विभो शोकार्ताया निवेदने। समा कृपा सतां शश्वद्योग्यायोग्ये कृपावताम्।।१३।।
उपबर्हणभार्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च। सर्वे मालावतीं कृत्वा वदन्ते विप्रपुङ्गव।।१४।।
दिव्यं लक्षयुगं रम्ये स्थाने[1] स्थाने मनोहरे।
कृता स्वच्छन्दतः क्रीडा चानेन स्वामिना सह।।१५।।

मालावती कहती है—जिन ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त जल तथा पुष्प मात्र से समस्त देवता तथा भगवान् हरि प्रसन्न हो जाते हैं, मैं उन ब्राह्मणरूपी जनार्दन को सानन्द प्रणाम करती हूं! हे विभु! मैं अतिशय शोकमग्न हूं। मेरी कुछ प्रार्थना है, उसे श्रवण करिये। दयावान व्यक्ति कभी भी दया प्रदान करते समय कौन योग्य है, कौन अयोग्य है, इसका विचार नहीं करते। हे विप्रप्रवर! मैं गन्धर्व उपबर्हण की पत्नी तथा चित्ररथ गन्धर्व की कन्या हूं। सभी लोग मेरा नाम मालावती कह कर पुकारते हैं। मैंने इन स्वामी के साथ अत्यन्त रम्य प्रदेशों में दिव्य १ लाख युग पर्यन्त विहार किया था।।१२-१५।।

प्रिये स्नेहो हि साध्वीनां यावान्विप्रेन्द्र योषिताम्।
सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण।।१६।।
अकस्माद्ब्रह्मणः शापात्प्राणांस्तत्याज मत्पतिः।
देवानुद्दिश्य विलपे यथा जीवति मत्पतिः।।१७।।

हे विप्रप्रवर! आप विद्वान् हैं। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि साध्वी रमणियां पति से कितना स्नेह करती हैं। यह तथ्य आपको शास्त्रों से भी ज्ञात है। मेरे पति ने ब्रह्मा के शाप के कारण अकस्मात् देह त्याग कर दिया। मैंने भी स्वामी के जीवनार्थ देवताओं के समक्ष अनेक विलाप भी किया। मेरे स्वामी जीवित हों, यही प्रार्थना कर रही हूं।।१६-१७।।

स्वकार्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले।
भावाभावं न जानन्ति केवलं स्वार्थतत्पराः।।१८।।

इस भूमण्डल में सभी अपने-अपने स्वार्थ में लगे हैं। वे अपना कार्य साधन करने में ही व्यस्त हैं। कोई अन्य के दुःख के प्रति दृष्टि निःक्षेप भी नहीं करता। सभी स्वार्थ में ही तल्लीन हैं।।१८।।

सुखं दुःखं भयं शोकः संतापः कर्मणां नृणाम्।
ऐश्वर्यं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम्।।१९।।

---

१. प्रायः इति पाठान्तरम्।

देवाश्च[1] सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम्।
कर्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं च लीलया॥२०॥
नहि देवात्परो बन्धुर्नहि देवात्परो बली। दयावान्नहि देवाच्च न च दाता ततः परः॥२१॥
सर्वान्देवानहं याचे पतिदानं ममेप्सितम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदांश्च सुरद्रुमान्॥२२॥

मानव मात्र को सुख-दुःख, भय-शोक-सन्ताप उसके कर्म के ही कारण प्राप्त होता है। जन्म-मृत्यु, परमानंद लाभ तथा मोक्ष भी कर्म का ही फल है। देवगण सबके जनक तथा कर्मफल दाता हैं। ये देवता ही अनायास कर्मरूपी वृक्ष का मूलोच्छेदन तक कर सकते हैं। देवता से बढ़ कर बन्धु कोई नहीं है। देवता सबसे बली हैं। देवगण से अधिक बली तथा दाता अन्य है ही नहीं। इसी कारण मैं इन सभी देवगण से एकमात्र प्राप्तव्य पतिभिक्षा की प्रार्थना कर रही थी। मुझे ज्ञात है कि देवतारूप वृक्ष से ही धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्षफल मिलता है।।१९-२२।।

यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं यथेप्सितम्।
भद्रं तदाऽन्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीवधं ध्रुवम्॥२३॥
शपिष्यामि च सर्वांश्च दारुणं दुर्निवारकम्। दुर्निवार्यः सतीशापस्तपसा केन वार्यते॥२४॥

यदि ये देवगण मुझे मेरे वांछित इन पति का जीवनदान देते हैं, तब तो सब कुछ उत्तम रहेगा, अन्यथा मैं स्त्रीहत्या का पाप इनको निश्चित रूप से प्रदान करूंगी। साथ ही इन सबको भयानक, निवारण न हो सकने वाला शाप भी प्रदान करूंगी। सती का शाप कभी निवारित नहीं किया जा सकता। देखती हूं कि ऐसे सतीशाप का निवारण देवगण किस तपस्या से कर पाते हैं?।।२३-२४।।

इत्युक्त्वा मालती साध्वी शोकार्ता सुरसंसदि।
विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक॥२५॥

हे शौनक! शोकार्त्ता साध्वी मालावती देवगण के सामने यह कहकर मौन हो गई। तदनन्तर वे ब्राह्मण कहने लगे-२५।।

ब्राह्मण उवाच

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यं च मालति।
न सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृषकवन्नृणाम्॥२६॥
गृही च कृषकद्वारा क्षेत्रे धान्यं वपेप्सति। तदङ्कुरो भवेत्काले काले वृक्षः फलत्यपि॥२७॥
काले सुपक्वं भवति काले प्राप्नोति तद्गृही।
एवं सर्वं समुन्नेयं चिरेण कर्मणः फलम्॥२८॥

ब्राह्मण कहते हैं-हे मालावती! यह सत्य है कि देवता धर्म का फल प्रदान करते हैं, तथापि

---

१. क. ०श्च कर्मज०।

कृषक जिस प्रकार बीजों को बोता है, उसका तत्काल फल नहीं पा सकता, विलम्ब से उसे फल मिलेगा। कृषक हल जोत कर खेत में बीज वपन करता है। समयानुकूल बीज अंकुरित होते हैं। समय आने पर वह पौधा बन कर फलता है। उचित काल एवं ऋतु में वह पक्व होता है। तदनन्तर समयानुसार गृहस्थ को उसकी प्राप्ति होती है। एवंविध कर्मफल विलम्ब से मिलता है।।२६-२८।।

अष्ठीं वपति संसारे गृहस्थो विष्णुमायया।
काले तदङ्कुरो वृक्षः काले प्राप्नोति तत्फलम्।।२९।।
पुण्यवान्पुण्यभूमौ च करोति सुचिरं तपः।
तेषां च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः।।३०।।

गृहस्थ मनुष्य विष्णुमाया से मुग्ध होकर संसार रूपी खेत में कर्मबीज बोता है। यथा समय उसमें अंकुरोद्गम होता है। यथा समय वही अंकुर बीजरूप हो फल देता है। पुण्यात्मा लोग पुण्यभूमि भारत में दीर्घकाल जो तप-संचय करते हैं, देवगण उसी का फल देते हैं। यह बात सत्य तथा संदेह रहित है।।२९-३०।।

ब्राह्मणानां मुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूषर एव च[१]।
यो यज्जुहोति भक्त्या च स तत्प्राप्नोति निश्चितम्।।३१।।
न बलं न च सौन्दर्यं नैश्वर्यं न धनं सुतः।
नैव स्त्री न च सत्कान्तः किं भवेत्तपसा विना।।३२।।
सेवते प्रकृतिं यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि।
स लभेत्सुन्दरीं कान्तां विनीतां च गुणान्विताम्।।३३।।
श्रियं च निश्चलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम्।
प्रकृतेश्च[२] वरेणैव लभेद्भक्तोऽवलीलया।।३४।।

विशेषतः ब्राह्मण के मुख में उत्तम अन्न प्रदान तथा उर्वरा भूमि में भक्तिभाव से बीजरूप जो आहुति मनुष्य प्रदान करते हैं, उसका फल उनको निश्चित रूप से प्राप्त होगा। बल, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, स्त्री, सत्पति प्रभृति तप के बिना कदापि नहीं मिलता। जो व्यक्ति जन्म-जन्मान्तर भक्ति सहित मूल प्रकृति भगवती की सेवा करते हैं, वे भक्त लीलामात्र से प्रकृति के वरदान द्वारा सर्वगुण सम्पन्ना विनीता सुन्दरी पत्नी, अचला लक्ष्मी, पुत्र-पौत्र, भूमि, बल, प्रजा आदि प्राप्त कर लेते हैं।।३१-३४।।

शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम्।
ज्ञानानन्दं महात्मानं परं मृत्युञ्जयं वरम्।।३५।।

---

१. श्रेष्ठे चान्नजलं परः इति वा पाठान्तरम्।
२. क. ०श्च प्रियेणै०।

तमीशं सेवते यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि।
पुमान्प्राप्नोति सत्कान्तां कामिनी चापि सत्पतिम्॥३६॥
विद्यां ज्ञानं सुकवितां पुत्रं पौत्रं परां श्रियम्[१]। बलं धनं विक्रमं च लभेद्धरवरेण सः॥३७॥
ब्रह्माणं भजते यो हि लभेत्सोऽपि प्रजां श्रियम्।
विद्यामैश्वर्यमानन्दं वरेण ब्रह्मणो नरः॥३८॥
यो नरो भजते भक्त्या दीननाथं दिनेश्वरम्।
विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद्ध्रुवम्॥३९॥

हे भद्रे! जो साक्षात् मंगलस्वरूप, मंगलदाता तथा मंगल के एकमात्र कारण हैं, जो ज्ञानानन्दमय मृत्युंजय महात्मा हैं, ऐसे शिव की जो जन्म-जन्म में आराधना भक्ति के साथ करते हैं, वे यदि पुरुष हैं, तब उनको उत्तम पत्नी की प्राप्ति होगी। यदि वह पूजक आराधक स्त्री है, तब उसे सत्पति लाभ होगा। साथ ही शिवाराधक को विद्या, ज्ञान, उत्तम कवित्व, पुत्र-पौत्र, अतुलित ऐश्वर्य, बल, विक्रम का लाभ होगा। जो लोग ब्रह्मा की आराधना करते हैं, वे उनके वर के द्वारा सन्तान, लक्ष्मी, विद्या, ऐश्वर्य तथा सुख-आनन्द की प्राप्ति अनायास करते हैं। जो मनुष्य दीनानाथ सूर्य का भजन भक्ति सहित करता है, उसे विद्या, आरोग्य, आनन्द तथा धनपुत्रादि का लाभ होगा। यह निश्चित है।।३५-३९।।

गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम्। सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनि जन्मनि॥४०॥
विघ्ननाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरेणेऽनिशम्। परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः॥४१॥
ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते तद्वरेण च।
भजते यो हि विष्णुं च लक्ष्मीकान्तं सुरेश्वरम्॥४२॥
वरार्थी चेल्लभेत्सर्वं निर्वाणमन्यथा ध्रुवम्।
शान्तं निषेव्य पातारं सत्यं सत्यं लभेन्नरः॥४३॥
सर्वं तपः सर्वधर्मं यशः कीर्तिमनुत्तमाम्। विष्णु निषेव्य सर्वेशं यो मूढो लभते वरम्॥४४॥
विडम्बितो विधात्राऽसौ मोहितो विष्णुमायया।
माया नारायणीशाना सर्वप्रकृतिरीश्वरी॥४५॥

हे शोभने! सभी देवों के पहले जिनकी पूजा होती है तथा जो सबके ईश्वर हैं, उन देवाधिदेव सनातन गणपति का भक्ति पूर्वक जन्म-जन्म में भजन करने से उनके वर के प्रभाव से उस भक्त की स्वप्नावस्था, निद्रावस्था तथा जाग्रतावस्था के सभी विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। वह परम आनंद, ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्रादि, परिवार तथा ज्ञान-विद्या-सुकवित्व को प्राप्त कर लेता है। जो सुरेश्वर लक्ष्मीपति विष्णु का भजन करते हैं, वे वर चाहने पर सभी वर लाभ करते हैं। यदि वे निष्काम हैं, तब उनको मोक्षलाभ

---

१. क. ०म्। वरं ध०।

होता है। यह निश्चित है। उन शान्त, जगत्पालक विष्णु की सेवा द्वारा मनुष्य समस्त तप, समस्त धर्म-यश तथा अतुल कीर्त्ति पा लेते हैं, तथापि दुर्बुद्धिवशात् यदि कोई व्यक्ति विष्णुसेवा करके उनसे वर मांगता है, तब यह निश्चय जानें कि विधान ने उसे ठग लिया। वह तो विष्णुमाया से मोहित है। यह माया नारायणी है। यह सबकी कारणरूप परमेश्वरी भी है।।४०-४५।।

सा कृपां कुरुते यं च विष्णुमन्त्रं ददाति तम्।
धर्मं यो भजते धर्मी सर्वधर्म लभेद्ध्रुवम्।।४६।।

जिस पर इनकी कृपा होती है, वह इनसे विष्णुमन्त्र प्राप्त करता है। धर्म का सेवन करने वाला निश्चित रूप से सभी धर्मों को प्राप्त करता है।।४६।।

इह लोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम्।
यो यं देवं भजेद्भक्त्या स चाऽऽदौ लभते च तम्।।४७।।
काले पश्चात्तेन सार्धं परं विष्णोः पदं लभेत्।
श्रीकृष्णं भजते यो हि निर्गुणं प्रकृतेः परम्।।४८।।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सेव्यं बीजं परात्परम्। अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।।४९।।
साकारं च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम्।
सर्वाधारं च[1] सर्वेशं परमानन्दमीश्वरम्।।५०।।

वह मनुष्य इहलोक में सुखभोग करने के अनन्तर विष्णु का परम पद प्राप्त करता है। अतः व्यक्ति भक्ति पूर्वक किसी भी देवता की उपासना करने पर प्रथमतः उस देवता को प्राप्त करके परिणाम में उस देवता सहित विष्णुपद प्राप्त करता है। जो ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के भी उपास्य एवं सबके परात्पर बीज हैं, जिनको योगीगण परमब्रह्म, अक्षर कहते हैं, जो सर्वशक्तिमान् तथा सनातन हैं, जो स्वेच्छामय भगवान् हैं, वे व्यापक केवल ज्योतिस्वरूप होकर कभी साकार तथा कभी निराकार रूप से प्रतीत होते हैं, वे सर्वाधार, सबके अधीश्वर, सर्वेश, परमानन्दमय ईश्वर हैं।।४७-५०।।

निर्लिप्तं साक्षिरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्।
जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न वरं लभते सुधीः।।५१।।
स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा मोक्षं यत्तुच्छवत्सति।।५२।।
ऐश्वर्यं लोष्टतुल्यं च नश्वरं चैव मन्यते। इन्द्रत्वं च मनुत्वं च चिरजीवित्वमेव वा।।५३।।
जलबुद्बुदवद्बुद्ध्या चातितुच्छं न गण्यते।
स्वप्ने जागरणे वाऽपि शश्वत्सेवां च वाञ्छति।।५४।।

वे प्रभु सब कुछ से निर्लिप्त साक्षीरूप हैं। उनका विग्रह धारण केवल भक्तों पर अनुग्रहार्थ ही

१. क. च सर्वेषां परमात्मानमी०।

होता है। वे प्रकृति से पृथक् त्रिगुणातीत हैं। ऐसे कृष्ण का भजन करने वाला जीवन्मुक्त हो जाता है। वही सुबुद्धिशाली है। वह प्रभु से किसी वर की आकांक्षा नहीं करता। हे सती! उस व्यक्ति को तो सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति, ब्रह्मत्व, अमरत्व, निर्वाण, मोक्ष भी तुच्छ प्रतीत होता है। वह कृष्णभक्त समस्त ऐश्वर्य को मिट्टी के ढेले के समान तुच्छ मानता है। वह तो इन्द्रत्व, मनुत्व किंवा चिरजीवित्व को भी जल के बुलबुले जैसा क्षणिक मानता है। उसे तो स्वप्न-जाग्रत आदि सभी अवस्था में कृष्ण की सेवा ही वांछित रहती है।।५१-५४।।

दास्यं विना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदं परम्।
तत्पादाब्जेदृढां भक्तिं लब्ध्वा पूर्णो निरन्तरम्।।५५।।

वह कृष्णभक्त कृष्ण की दासता के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कामना नहीं करता। वह तो दास्य भक्ति रहित कृष्ण का परमपद भी नहीं चाहता। वह भक्त निरन्तर कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अचला भक्ति पाकर पूर्णकाम हो जाता है।।५५।।

परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्यं सुस्थिरैः सदा। आत्मनः कुलकोटिं च शतं मातामहस्य च।।५६।।
श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्धृत्य चावलीलया। दासं दासी प्रसूं भार्यां पुत्रादपि परं शतम्।।५७।।
उद्धरेत्कृष्णभक्तश्च गोलोकं यात निश्चितम्। तावद्गर्भे वसेत्कामी तावती यमयातना।।५८।।

तावद्गृही[1] च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते।
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति।।५९।।

वह इन परिपूर्णतम ब्रह्म की सेवा सुस्थिर होकर सदा करता रहता है। ऐसा भक्त ही यथार्थतः अपनी करोड़ों पीढ़ी तथा श्वसुर तथा मातामह की सौ पीढ़ी के साथ ही दास, दासी, जननी, भार्या तथा पुत्र आदि का तथा अपनी १०० आगामी पीढ़ी का उद्धार करके निश्चित रूप से गोलोक धाम गमन करता है। कामनायुक्त कामी व्यक्ति तभी तक गर्भवास तथा नरक यातना सहन करता है, गृहस्थ तभी तक भोगों की इच्छा करता है, जब तक वह कृष्ण की सेवा नहीं करता। गुरु के मुख से निकला विष्णुमन्त्र जिसके कानों में प्रविष्ट होता है।।५६-५९।।

यमस्तल्लिखनं दूरं करोति तत्क्षणं भिया। मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव[2] तन्नियोजयेत्।।६०।।

अहो विलङ्घ्य मल्लोकं मार्गेणानेन यास्यति।
तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि।।६१।।

दुरितानि च भीतानि कोटिजन्मकृतानि च। तं विहाय पलायन्ते वैनतेयं यथोरगाः।।६२।।

यमराज उस व्यक्ति से भयभीत होकर तत्क्षण उसके ललाट पर लिखे को मिटा देते हैं। उस लेख को ही अपने यहां से भी हटा देते हैं। ब्रह्मा उसके आगमन से प्रसन्न होकर कहते हैं-"यह हरिभक्त

१. क. द्गृहं च भोगोऽपि वा०।
२. क. पुनरेव नियो०।

ब्रह्मलोक का लंघन करके इसी पथ से जायेगा।" यह विचार कर वे हरिभक्त के स्वागतार्थ मधुपर्क आदि तैयार रखते हैं। कोटि जन्मार्जित पाप के ढेर रहने पर भी उस व्यक्ति को देख कर ऐसे पलायन कर जाते हैं, जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भाग जाते हैं।।६०-६२।।

पुरातनं कृतं कर्म यद्यत्तस्य शुभाशुभम्। छिनत्ति कृष्णश्चक्रेण तीक्ष्णधारेण संततम्।।६३।।

तं विहाय जरा मृत्युर्याति चक्रभिया सति।
अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः।।६४।।
निःशङ्को याति गोलोकं विहाय मानवीं तनुम्।
गत्वा दिव्यां तनुं धृत्वा श्रीकृष्णं सेवते सदा।।६५।।

हरिभक्त के समस्त पूर्वकृत कर्म कृष्ण के तीक्ष्ण धार वाले सुदर्शन चक्र द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिये जाते हैं। हे सती! श्रीकृष्ण के चक्रभय के कारण जरा-मृत्यु तक हरिभक्त को छोड़ कर पलायन कर जाते हैं। यदि पलायन नहीं करते तब कृष्ण उनका अपने चक्र द्वारा सैकड़ों टुकड़े कर देते हैं। वे हरिभक्त मनुष्य देह त्याग करके निःशंक होकर गोलोक जाते हैं। वे गोलोक जाकर दिव्य देह धारण कर लेते हैं तथा श्रीकृष्ण की सेवा में निरत हो जाते हैं।।६३-६५।।

यावत्कृष्णो हि गोलोके तावद्भक्तो वसेत्सदा।
निमेषं मन्यते दासो नश्वरं ब्रह्मणो वयः।।६६।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे विष्णुमालावतीसंवादे नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

जब तक कृष्ण गोलोक में रहेंगे, उस असीम काल तक कृष्णभक्त भी गोलोक में विद्यमान रहेंगे। ये भक्तगण ब्रह्मा की पूर्ण आयु को मात्र एक निमेष ऐसा ही देखते हैं।।६६।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

मालावती से कालपुरुष आदि का संवाद

ब्राह्मण उवाच

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि तव प्रियः। सर्वरोगचिकित्सां[1] च जानामि च चिकित्सकः।।१।।

१. क. ०त्सकान्।

मृततुल्यं मृतं[1] रोगात्सप्ताहाभ्यन्तरे सति। महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया[2]॥२॥
राजमृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः।
निबध्य दातुं शक्तोऽहं व्याधो बध्वा पशुं यथा॥३॥

ब्राह्मण कहते हैं–हे साध्वी! तुम्हारा स्वामी किस रोग से मृत हुआ था। मैं एक चिकित्सक हूं। सभी रोगों की चिकित्सा करता हूं। मैं रोग के कारण मृत्युतुल्य अथवा मृत (सात दिन के भीतर मृत) को अपने महाज्ञान द्वारा अनायास जीवित कर सकता हूं। यदि मेरी इच्छा हो जाये, तब मैं व्याध की तरह जरा, मृत्यु, यम, काल तथा व्याधियों को बांध कर तुम्हारे सामने उपस्थित कर सकता हूं।।१-३।।

यतो न सञ्चरेद्व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम्। व्याधीनां कारणं यद्यत्सर्वं जानामि सुन्दरि॥४॥
यतो न सञ्चरेद्व्याधिबीजं दुष्टममङ्गलम्। तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः॥५॥
यो वा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च। तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः॥६॥

मैं ऐसा शास्त्रोक्त उपाय भी जानता हूं, जिससे अमंगलप्रद दिखाई देने वाला व्याधि का कारण ही सामने न आये। व्याधिबीज देह में अंकुरित ही न हो। जिसने योग अथवा दुःख के कारण देह त्याग किया है, मैं योगधर्म के अनुसार उसके जीवित होने का कौशल जानता हूं।।४-६।।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्फीता मालावती सती।
सस्मिता स्निग्धचित्ता सा तमुवाच प्रहर्षिता॥७॥

तदनन्तर साध्वी मालावती ने ब्राह्मण का यह कथन सुन कर प्रफुल्ल मन से तनिक हंसते हुए ब्राह्मण से कहा–।।७।।

मालावत्युवाच

अहो श्रुतं किमाश्चर्यं वचनं बालवक्त्रतः। वयसाऽतिशिशुर्दृष्टो ज्ञानं योगविदां परम्॥८॥
त्वया कृता प्रतिज्ञा च कान्तं जीवयितुं मम।
विपरीतं न सद्वाक्यं तत्क्षणं जीवितः पतिः॥९॥

मालावती कहती है–अहो! यह बालक कितनी आश्चर्यजनक बातें कह रहा है, जिसे मैंने सुना। यह ब्राह्मण तो देखने में शिशु है, तथापि इसका ज्ञान तो योगविद् लोगों से भी श्रेष्ठ है। हे ब्रह्मन्! जब आपने मेरे पति के जीवनदान हेतु प्रतिज्ञा कर ही लिया है, तब आप अपना कथन बदल नहीं सकते! इसलिये वे जीवित हो जायेंगे। आपके कहते ही मुझे यह निश्चित विश्वास भी हो गया कि वे जीवित ही हैं।।८-९।।

जीवयिष्यति मत्कान्तं पश्चाद्वेदविदां वरः। यद्यत्पृच्छामि संदेहात्तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१०॥

---

१. क. ०तं० लोकात्स०।
२. क०या॥२॥ जरामृत्युं जराका०।

सभायां जीविते कान्ते तस्य तीव्रस्य संनिधौ।
त्वां हि प्रष्टुं न शक्ताऽहं विद्यमाने मदीश्वरे॥११॥
एते ब्रह्मादयो देवा विद्यमानाश्च संसदि। त्वं च वेदविदां श्रेष्ठो न च कश्चिन्मदीश्वरः॥१२॥

आप महान् वेदविद् हैं। आप मेरे पति को जीवित कर ही देंगे, तथापि इस समय मुझे जो सन्देह है, उसे पूछ रही हूं। कृपया उसका उचित उत्तर दीजिये, क्योंकि जब देवगण के समक्ष मेरे पति जीवित हो जायेंगे, तब उनके उपस्थित रहते मैं आप लोगों से प्रश्न नहीं कर सकूंगी। वे तेज स्वभाव हैं। इस सभा में ब्रह्मा आदि देवता तथा वेदज्ञों में श्रेष्ठ आप तो विद्यमान हैं तथा यहां मेरा कोई स्वामी उपस्थित नहीं है॥१०-१२॥

नारीं रक्षति भर्ता चेन्न कोऽपि खण्डितुं क्षमः।
शास्तिं करोति यदि स न कोऽपि रक्षिता भुवि॥१३॥
एवं वेदेषु नो शक्तिः शक्रे वा ब्रह्मरुद्रयोः।
स्त्रीपुंभावश्च[1] बोद्धव्यः स्वामी कर्ता च योषिताम्॥१४॥
स्वामी कर्ता च हर्ता च शास्ता पोष्टा च रक्षिता।
अभीष्टदेवः पूज्यश्च न गुरुः स्वामिनः परः॥१५॥

जब पति अपनी स्त्री की रक्षा करता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता। जब पति नारी को दण्ड देता है, तब कोई भी उसे इस कार्य से रोकने में सक्षम नहीं होता। स्त्रियों का कर्त्ता (स्वामी) पति ही है। यही स्त्री-पुरुष भाव पृथिवी पर प्रचलित है। उसे रोकने की (पति को निवारित करने की) शक्ति वेद, इन्द्र, ब्रह्मा में भी नहीं कही गई है। स्त्रीगण के लिये पति ही सब कुछ करने वाला, पालने वाला, रक्षा करने वाला है। उसके लिये पति से श्रेष्ठ कोई गुरु नहीं है॥१३-१५॥

कन्या सत्कुलजाता या सा कान्तवशवर्तिनी।
या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात्कुटिला ध्रुवम्॥१६॥
दुष्टा परपुमांसं च सेवते या नराधमा। सा निन्दति पतिं शश्वदसद्वंशप्रसूतिका॥१७॥
उपबर्हणभार्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च। वधूर्गन्धर्वराजस्य कान्तभक्ता सदा द्विज॥१८॥
सर्वं कालयितुं शक्तस्त्वं च वेदविदां वर। कालं यमं मृत्युकन्यां मदभ्याशं समानय॥१९॥

श्रेष्ठ कुलोत्पन्न कन्या स्वामी के वश में ही सदैव रहती है। जो दुष्टकुलोत्पन्ना स्वतंत्राचार मानने वाली स्त्री है, वह परपुरुषगामी, अधम तथा पतिनिन्दक होती है। यह उसके निम्न कुल में उत्पन्न होने का सूचक है। हे ब्रह्मन्! मैं तो उपबर्हण गन्धर्व की भार्या, गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री तथा गन्धर्वों के सम्राट् की पुत्रवधू हूं। मैं स्वामी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं जानती। हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! आप तो सभी

---
१. क. ०श्च यो ब्रह्मन्स्वा०।

को यहां बुला सकने में समर्थ हैं। आप कृपा पूर्वक यहां काल, यम तथा मृत्युकन्या को मेरे सामने ले आयें।।१६-१९।।

मालावतीवचः श्रुत्वा विप्रो वेदविदां वरः। सभामध्ये समाहूय तान्प्रत्यक्षं चकार ह।।२०।।

ददर्श मृत्युकन्यां च प्रथमं मालावती सती।
कृष्णवर्णां घोररूपां रक्ताम्बरधरां वराम्।।२१।।
सस्मितां षड्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम्।
कालस्य स्वामिनो वामे चतुःषष्टिसुतान्विताम्।।२२।।

कालं नारायणांशं च ददर्श पुरतः सती। महोग्ररूपं विकटं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभम्।।२३।।
षड्वक्त्रं षोडशभुजं चतुर्विंशतिलोचनम्। षट्पादं कृष्णवर्णं च रक्ताम्बरधरं परम्।।२४।।
देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहाररूपिणम्। कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम्।।२५।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यमक्षमालाकरं वरम्। जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्।।२६।।

तदनन्तर वेदविद्प्रवर ब्राह्मण ने मालावती का यह आग्रह सुन कर तत्क्षण सभा में उन तीनों का आवाहन करके उनको उपस्थित कर दिया। सती मालावती ने सर्वाग्र में मृत्युकन्या को देखा। उसने श्रेष्ठ रक्तवर्ण के वस्त्रों को धारण किया था। वह काले रंग की घोर रूप वाली थी। वह मन्द मुस्कान युक्त, छः भुजाओं वाली, शान्त, दयावान् तथा महासती थी। वह पति कालदेव के बांयीं ओर अपने ६४ पुत्रों के साथ खड़ी थी। तदनन्तर मालावती ने अपने समक्ष काल को देखा, जो नारायण अंश, महाउग्ररूप, विकराल तथा ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान प्रभावान्, षड्मुख, १६ भुजा युक्त, २४ नेत्र वाले, छः पैर से समन्वित, कृष्णवर्ण तथा रक्तवर्ण वस्त्रधारी थे। वे देवताओं के भी देवता, विकृत, सर्वसंहारक, काल के अधिदेवता, सर्वेश सनातन भगवान् थे। वे स्मित मुस्कान वाले, जपमालाधारी थे तथा सतत् कृष्णनाम जप में तल्लीन थे।।२०-२६।।

सती ददर्श पुरतो व्याधिसङ्घान्सुदुर्जयान्। वयसाऽतिमहावृद्धान्स्तनंधान्मातृसंनिधौ।।२७।।
स्थूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं रविनन्दनम्। जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।।२८।।
धर्माधर्मविचारज्ञं परं धर्मस्वरूपिणम्। पापिनामपि शास्तारं ददर्श पुरतो यमम्।।२९।।
तांश्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम्। मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा।।३०।।

तदनन्तर सती मालावती ने अपने समक्ष माता के स्तनपानकारी होकर भी अत्यन्त वृद्ध दुर्जय व्याधियों को देखा। तदनन्तर स्थूल पैर वाले, कृष्ण वर्ण, धार्मिक यमदेव को देखा जो सतत् परब्रह्म सनातन भगवान् का नाम जप करते जा रहे थे। ये प्रभु यमदेव साक्षात् धर्माधर्म के विचारक, धर्मस्वरूप तथा पातकियों को दण्डित करने वाले थे। उनका दर्शन पाकर महान् सती मालावती के मुख तथा नेत्रों से प्रसन्नता छलक उठी। वे निःशंक होकर सबसे पहले यमदेव से प्रश्न पूछने लगीं।।२७-३०।।

मालावत्युवाच

हे धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशारद। कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विभो॥३१॥

मालावती कहती हैं–हे धर्मराज! आप धर्मात्मा, धर्मशास्त्र विशारद हैं। हे विभु! आप कालातिक्रमण करके मेरे स्वामी को हरण करके क्यों ले जा रहे हैं?॥३१॥

यम उवाच

अप्राप्तकालो म्रियते न कश्चिज्जगतीतले।
ईश्वराज्ञां विना साध्वि नामृतं चालयाम्यहम्॥३२॥
अहं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च सुदुर्जयाः।
निषेकेण प्राप्तकालं कालयन्तीश्वराज्ञया॥३३॥

मृत्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः। तमहं कालयाम्येव पृच्छतां केन हेतुना॥३४॥

यमदेव कहते हैं–हे साध्वी! इस भूमण्डल पर बिना समय आये कोई भी मृत नहीं होता। मैं भी ईश्वर की आज्ञा के बिना किसी को भी नहीं ले जा सकता। मैं, मृत्युकन्या अथवा दुर्जय व्याधियों में से कोई भी ईश्वर द्वारा निश्चित समय आने पर ही प्राणीगण को ले जा सकते हैं। यह मृत्युकन्या विचार करने के पश्चात् परमायुगत जिस प्राणी के पास पहुंच जाती है, उसे ही मैं ले जाता हूं। उसी पर मेरा अधिकार होता है। अब आप मृत्युकन्या से पूछिये, उसने क्यों यह कार्य किया?॥३२-३४॥

मालावत्युवाच

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिवेदनम्।
कथं हरसि मत्कान्तं जीवतायां मयि प्रिये॥३५॥

मालावती कहती है–हे मृत्युकन्या! तुम तो नारी हो। तुमको पतिवियोग जनित वेदना का ज्ञान है। हे मृत्युकन्ये! तुम मेरे जीवित पति का हरण क्यों कर रही हो?॥३५॥

मृत्युकन्योवाच

पुरा विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि। न च क्षमा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति॥३६॥

सती सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी वरा।
मामेव भस्मसात्कर्तुं क्षमा यदि भवेद्भवे॥३७॥

सर्वापच्छान्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि। पुत्राणां स्वामिनः पश्चाद्भविता यद्भविष्यति॥३८॥

मृत्युकन्या कहती है–हे सती! विधाता ने मुझे इस कार्य के लिये सृजित किया है। मैं अनेक तप करके भी इस कार्य का त्याग नहीं कर सकती। हे सुन्दरी! यदि पृथिवी की कोई तेजस्विनी महासाध्वी मुझे भस्म करे, तब ही इस लोक की समस्त आपत्ति समाप्त हो जायेगी। तब मेरे स्वामी तथा पुत्रों का चाहे जो परिणाम हो!॥३६-३८॥

कालेन प्रेरिताऽहं च मत्पुत्रा व्याधयश्च वै।
न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शृणु निश्चितम्॥३९॥
पृच्छ कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि। तदा यदुचितं भद्रे तत्करिष्यसि निश्चितम्॥४०॥

हे साध्वी! तुम तो यह निश्चित जान लो कि इसमें मेरा अथवा मेरे पुत्रों का कोई भी दोष नहीं है। हम सभी काल द्वारा प्रेरित होकर ही कार्यरत होते हैं। हे भद्रे! तुम सबके सामने धर्म महात्मा काल से यह प्रश्न करो। तब जो उचित समझना, वह करना॥३९-४०॥

मालावत्युवाच

हे कालकर्मणां [१]साक्षिन्कर्मरूप सनातन। नारायणांश भगवन्नमस्तुभ्यं पराय च॥४१॥
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रभो।
जानासि सर्वदुःखं च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे[२]॥४२॥

मालावती कहती हैं—आप काल एवं कर्म के साक्षी तथा सनातन हैं। आप नारायण के अंश परमेश्वर भगवान् को प्रणाम करती हूं! हे सर्वज्ञ! कृपानिधि! आप सभी प्राणीगण के दुःख के ज्ञाता हैं। हे प्रभो! आप मेरे पति का अपहरण उनकी जीवितावस्था में क्यों कर रहे हैं?॥४१-४२॥

कालपुरुष उवाच

को वाऽहं को यमः का च मृत्युकन्या च व्याधयः।
वयं भ्रमामः सततमीशाज्ञापरिपालकाः॥४३॥
यस्य सृष्टा च प्रकृतिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सुरा मुनीन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः॥४४॥
ध्यायन्ते तत्पदाम्भोजं योगिनश्च विचक्षणाः।
जपन्ति शश्वन्नामानि पुण्यानि परमात्मनः॥४५॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्।
स्रष्टा ब्रह्माऽऽज्ञया यस्य पाता विष्णुर्यदाज्ञया॥४६॥

कालपुरुष कहते हैं—हे साध्वी! मैं तथा यम, मृत्युकन्या अथवा व्याधिगण कौन होते हैं? (अर्थात् इनकी क्या ताकत है, जो किसी का प्राण हरण कर सकें?)। हम सभी परमेश्वर की आज्ञा से विचरते रहते हैं। जो मूलाप्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, समस्त देवगण, मुनिगण, १४ मनुगण तथा सभी मनुष्यों एवं जन्तुओं के सृष्टिकर्त्ता हैं, जिन परमात्मा के चरण-कमलों का योगीगण ध्यान करते रहते हैं, जिनके पवित्र नाम का वे लोग सदैव जप करते रहते हैं, जिनके भय से वायु देव प्रवाहित होते हैं, जिनके भय से सूर्य उत्तप्त रहते हैं, जिनकी आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि करते तथा जिनकी आज्ञा का पालन करके विष्णु जगत्पालन करते हैं॥४३-४६॥

१. क. ०क्षिन्धर्मरू०।
२. क. ०निधिः।

संहर्ता शङ्करः सर्वजगतां यस्य शासनात्। धर्मश्च कर्मणा साक्षी यस्याऽऽज्ञापरिपालकः॥४७॥

राशिचक्रं ग्रहाः सर्वे भ्रमन्ति यस्य शासनात्।
दिगीशाश्चैव दिक्पाला यस्याऽऽज्ञापरिपालकः॥४८॥
यस्याऽऽज्ञया च तरवः पुष्पाणि च फलानि च।
बिभ्रत्येव ददत्येव काले मालावति सति॥४९॥
यस्याऽऽज्ञया जलाधारा सर्वाधारा वसुंधरा।
क्षमावती च पृथिवी कम्पिता न भयेन च॥५०॥

जिनकी आज्ञा से शंकर सर्वसृष्टि संहारकार्य करते हैं, धर्म जिनकी आज्ञा के परिपालक होकर सभी के धर्म के साक्षी हैं, जिनके शासन से राशिचक्र तथा ग्रहादि सतत् भ्रमणरत रहते हैं, दिशाओं के स्वामी तथा दिक्पालगण जिनकी आज्ञा के परिपालक हैं, जिनकी आज्ञा से वृक्षगण, पुष्प एवं फल उत्पन्न करते हैं, हे मालावती! जिनकी आज्ञा से धरती, जल एवं सचराचर का आधार बनी रहती है, जिनके भय से यह क्षमावती पृथिवी कांप उठती है।।४७-५०।।

सहसा मोहिता माया मायया यस्य संततम्।
सर्वप्रसूर्या प्रकृतिः सा भीता यद्भयावहो॥५१॥
यस्यान्तं न विदुर्वेदा वस्तूनां भावगा अपि।
पुराणानि च सर्वाणि यस्यैव स्तुतिपाठकाः॥५२॥
यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान्विराट्।
षोडशांशो भगवतः स एव तेजसो विभोः॥५३॥
सर्वेश्वरः[१] कालकालो मृत्योर्मृत्युः परात्परः।
सर्वविघ्नविनाशाय तं कृष्णं परिचिन्तय॥५४॥

जिनकी माया से माया भी सदा मोहित होती रहती है, यह सब कुछ उत्पन्न करने वाली प्रकृति जिनके भय से भयभीत रहती है तथा जिन वेदों से सभी वस्तुओं के भाव का ज्ञान होता है, वे वेद भी जिनके अन्त को नहीं जानते तथा समस्त पुराण-शास्त्र जिनके स्तुतिपाठ में निरत बने रहते हैं, जिनके नाम का सेवन ब्रह्मा, विष्णु तथा महान् विराट् भी करते रहते हैं, जो भगवान् की सोलहवीं कला मात्र हैं, वे प्रभु सबके अधीश्वर, काल के भी काल रूप, मृत्यु की भी मृत्यु हैं तथा सर्वविघ्न विनाशक हैं, उन प्रभु श्रीकृष्ण का चिन्तन करो।।५१-५४।।

सर्वाभीष्टं च भर्तारं प्रदास्यति कृपानिधिः।
इमे यत्प्रेरिताः सर्वे स दाता सर्वसंपदाम्॥५५॥

१. क. ०रः सर्वका०।

इत्युक्त्वा कालपुरुषो विरराम च शौनक। कथां कथितुमारेभे पुनरेव तु ब्राह्मणः।।५६।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे मालावतीकालपुरुषसंवादे नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

वे कृपानिधान ही तुमको सर्व अभीष्ट तथा पति प्रदान करेंगे। वे प्रभु सर्वसम्पत्ति प्रदाता हैं। हे शौनक! यह कह कर कालपुरुष मौन हो गये। तब ब्राह्मण ने पुनः कहा–।।५५-५६।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

अथ षोडशोऽध्यायः

चिकित्सा प्रकरण का वर्णन

ब्राह्मण उवाच

इष्टः कालो यमो मृत्युकन्या व्याधिगणा अहो।
कस्तेऽधुना च संदेहस्त पृच्छ कन्यके शुभे।।१।।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा हृष्टा मालावती सती। यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम्।।२।।

ब्राह्मण कहते हैं–हे भद्रे! हे शुभे! गन्धर्वकन्या मालावती! तुमने काल, यम, मृत्युकन्या आदि सबका वक्तव्य सुना तथा उनको देख लिया। अब कोई सन्देह हो, तब कहो। सती मालावती ने ब्राह्मण का यह कथन सुनकर प्रसन्न अन्तःकरण से ब्राह्मणरूपी जगदीश्वर से अपना मनोगत प्रश्न किया।।१-२।।

मालावत्युवाच

त्वया यः कथितो व्याधिः प्राणिनां प्राणहारकः।
तत्कारणं च विविधं सर्वं[१] वेदे निरूपितम्।।३।।

यतो न सञ्चरेद्व्याधिर्दुर्निवारोऽशुभावहः। तमुपायं च साकल्यं भवान्वक्तुमिहार्हति।।४।।

यद्यत्पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा। सर्वं कथय तद्भद्रं त्वं गुरुर्दीनवत्सलः।।५।।

मालावती कहती है–हे ब्रह्मन्! आपने कहा है कि व्याधिगण प्राणीगण का अहित प्राणहरण से करते हैं। व्याधियों के नाना प्रकार के कारण वेद में निरूपित भी हैं। हे महात्मन्! उक्त अशुभप्रद

१. ख. ०वं देवनि०।

दुर्निवार व्याधियां देही के देह में विचरण न कर सकें, अनुग्रह करके उसका उपाय कहिये। हे साधु! आप दयालु तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः मैं जो जानती तथा जो नहीं जानती हूं, वह जिज्ञासा करती हूं तथा जो मैंने जिज्ञासा नहीं भी किया है, वह सब उत्कृष्ट विषय मुझसे कहिये। आप गुरु हैं। दीनवत्सल भी हैं।।३-५।।

मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः।
संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थं च वैद्यकीम्[१]।।६।।

मालावती का वचन सुनकर विप्ररूपी जनार्दन ने वैद्यक संहिता कहना प्रारम्भ किया।।६।।

ब्राह्मण उवाच

वन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम्। वेदवेदाङ्गबीजस्य बीजं श्रीकृष्णमीश्वरम्।।७।।
स ईशश्चतुरो वेदान्ससृजे मङ्गलालयान्। सर्वमङ्गलमङ्गल्यबीजरूपः सनातनः।।८।।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान्दृष्ट्वा वेदान्प्रजापतिः।
विचिन्त्य तेषामर्थं चैवाऽऽयुर्वेदं चकार सः।।९।।

ब्राह्मण कहते हैं–जो वेद-वेदांग आदि के आदिकारण हैं, सभी कारणों के कारण हैं, उन सर्वतत्वज्ञ परमेश्वर श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूं। जो चारों वेदों के सृजनकर्त्ता हैं, जो मंगलमय तथा सर्वमंगल समूह के आदिकारण हैं, उन सनातन परमेश्वर को नमस्कार! पहले प्रजापति ब्रह्मा ने ऋक्, साम, यजुः तथा अथर्व नामक चार वेद का दर्शन किया। तत्पश्चात् उन्होंने उसके सभी अर्थ की पर्यालोचना करके आयुर्वेद नामक अन्य एक वेद की सृष्टि किया।।७-९।।

कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः।
स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्च चकार सः।।१०।।
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम्।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः।।११।।
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च।
व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय।।१२।।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने उक्त पंचम वेद भास्कर देव को प्रदान कर दिया। भास्कर देव ने उस आयुर्वेद से एक स्वतन्त्र संहिता प्रस्तुत किया। अन्त में भास्कर देव ने शिष्यों को आयुर्वेद का तथा अपनी संहिता का अध्ययन कराया। तब उन शिष्यों ने भी इन दोनों शास्त्रों का दर्शन करके एक अन्य संहिता का निर्माण किया। हे साध्वी! अब तुम मुझसे उन सब पंडितों तथा उनके द्वारा निर्मित रोगनाश के मूलभूत सभी तन्त्रों का नाम सुनो।।१०-१२।।

---

१. क. वैदिकीम्।

धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशीराजोऽश्विनीसुतौ।
नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः॥१३॥
जाबालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च।
एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः॥१४॥

१. धन्वन्तरि, २. दिवोदास, ३. काशिराज, ४-५. अश्विनीकुमारद्वय, ६. नकुल, ७. सहदेव, ८. यमराज, ९. च्यवन, १०. जनक, ११. बुध, १२. जाबाल, १३. जाजलि, १४. पैल, १५. करथ, १६. अगत्स्य—ये १६ भास्कर के शिष्य थे। ये सभी वेदवेदांगवेत्ता तथा रोगशान्तिकारक हैं।।१३-१४।।

चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नामतन्त्रं मनोहरम्। धन्वन्तरिश्च भगवांश्चकार प्रथमे सति॥१५॥
चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः।
चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशीराजश्चकार सः॥१६॥
चिकित्सासारतन्त्रं च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ। तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः॥१७॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम्। ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह॥१८॥
च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः। चकार जनको योगी वैद्यसंदेहभञ्जनम्॥१९॥
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम्। वेदाङ्गसारं तन्त्रं च चकार जाजलिर्मुनिः॥२०॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम्। द्वैधनिर्णयतन्त्रं च चकार कुम्भसंभवः॥२१॥
चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश।
व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च॥२२॥

हे सती! सर्वप्रथम भगवान् धन्वन्तरि ने अति सुन्दर चिकित्साशास्त्रविज्ञान नाम की संहिता का प्रणयन किया। तदनन्तर दिवोदास ने चिकित्सा दर्शन, काशिराज ने चिकित्सा कौमुदी नामक अति उत्तम शास्त्र रचा। अश्विनीकुमारद्वय ने चिकित्सकों के भ्रम का नाश करने वाला चिकित्सा सारतंत्र नामक ग्रन्थ रचा। नकुल ने वैद्यसर्वस्व, सहदेव ने व्याधिसिन्धुविमर्दन, यमराज ने ज्ञानार्णव, च्यवन ऋषि ने जीवदान नामक तन्त्र, योगी जनक ने वैद्यसंदेहभंजन, चन्द्रनन्दन बुध (ग्रह) ने सर्वसार, जाबाल ने तन्त्रसार, जाजलि मुनि ने वेदांगसार की रचना किया। पैल ने निदानतन्त्र, करथ ने उत्तम सर्वधर तंत्र, अगत्स्य ने द्वैधनिर्णयतन्त्र की रचना किया। ये षोडश तन्त्र चिकित्सा शास्त्र के बीज हैं। ये व्याधिनाश के बीजरूप तथा बद्धवर्द्धक हैं।।१५-२२।।

मथित्वा [१]ज्ञानमन्त्रेणैवाऽऽयुर्वेदपयोनिधिम्। ततस्तस्मादुदाजह्रुर्नवनीतानि कोविदाः॥२३॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम्।
आयुर्वेदं सर्वबीजं सर्वं जानामि[२] सुन्दरि॥२४॥

१. क. ०मन्थेनैवा०।
२. ख. ०नासि सु०।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः। एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥२५॥

आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित्।
धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्तितः॥२६॥

इन पण्डितगण ने आयुर्वेद नामक सागर का ज्ञानरूपी मथानी से मंथन करके नवनीतरूपेण इन १६ तन्त्रों को नवनीत रूप से प्राप्त किया। हे सुन्दरी! मैं क्रमशः इन शास्त्रों का, आयुर्वेद एवं भास्कर संहिता को देखा (पढ़ा) है तथा रोग के विषय में निदान करना, व्याधितत्व को ज्ञात करना, पीड़ा को रोकना, यह वैद्यों का वैद्यत्व है, यह जान लिया। वैद्य आयु प्रदान नहीं कर सकते। जो आयुर्वेदज्ञ लोग हैं, चिकित्सा शास्त्र के यथार्थ वेत्ता हैं, धार्मिक एवं दयालु हैं, वे ही वैद्य कहे जाते हैं।।२३-२६।।

जनकः सर्वरोगाणां दुर्वारो दारुणो ज्वरः।
शिवभक्तश्च योगी च निष्ठुरो विकृताकृतिः॥२७॥
भीमस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः।
भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः॥२८॥
मन्दाग्निस्तस्य जनको मन्दाग्नेर्जनकास्त्रयः।
पित्तश्लेष्मसमीराश्च प्राणिनां दुःखदायकाः॥२९॥

दारुण ज्वर सभी रोगों में भयंकर तथा दुर्निवार कहा गया है। ज्वर से सभी रोग उत्पन्न होते हैं। यह ज्वर अत्यन्त शिवभक्त है। यह योगी, निष्ठुर तथा विकृत आकार वाला कहा गया है। देखने में भयानक है। इसके तीन पैर, तीन मस्तक, छः हाथ, नौ नेत्र हैं। यह भस्मप्रहरण ज्वर अति रौद्र एवं कालान्तक यम के समान है। इस ज्वर का जनक है मन्दाग्नि। मन्दाग्नि के जनक हैं पित्त, श्लेष्मा तथा वायु। यह प्राणी के लिये दुःखदायक ज्वर है।।२७-२९।।

वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च। ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः॥३०॥

ये ज्वर के तीन भेद हैं अर्थात् वातज, पित्तज एवं कफज। चतुर्थ भेद भी हैं, उसे त्रिदोषज कहा गया है।।३०।।

पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः प्लीहा च शूलकः।
ज्वरातिसारग्रहणीकासव्रणहलीमकाः ॥३१॥

मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः। विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः॥३२॥
भ्रमरी संनिपातश्च विषूची दारुणी सति। एषां भेदप्रभेदेन चतुःषष्टी रुजः स्मृताः॥३३॥

पाण्डु, कामला, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूल, ज्वरातिसार, ग्रहणी, कास, व्रण, हलीनक, रक्तदोष तथा रक्त विकार से उत्पन्न गुल्म, विषमेह, कुब्ज, गोद, गलगण्ड, भ्रमरी, सन्निपात, विषूचिका तथा दारुणी रोग होते हैं। इनके भेद-प्रभेद से ६४ रोगों का वर्णन है।।३०-३३।।

मृत्युकन्यासुताश्चैते जरा तस्याश्च कन्यका।
जरा च भ्रातृभिः सार्धं शश्वद्भ्रमति भूतले॥३४॥
एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम्। पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः॥३५॥
चक्षुर्जलं च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्।
कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलं च जराव्याधिविनाशनम्॥३६॥

ये सभी रोग (६४ रोग) मृत्युकन्या के ६४ पुत्र हैं। जरा उसकी पुत्री है। यह जरा ही अपने ६४ भ्राताओं के साथ सतत् भूमण्डल पर भ्रमण करती है। हे मालावती! तथापि ये उपायवेत्ता तथा संयत के यहां नहीं जाते। जिस प्रकार गरुड़ को देखते ही सर्प भाग जाते हैं, उसी प्रकार से उपायवेत्ता को देखते ही यह माता तथा उसके पुत्र वहां से भाग जाते हैं। नेत्र को जल से स्वच्छ करना, व्यायाम, तलवे में तेल मलना, कर्ण में तेल की बूंदें छोड़ना, मस्तक पर तैल लगाना, इससे जरा-व्याधि का नाश होता है।।३४-३६।।

वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वल्पां करोति यः।
बालां च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति॥३७॥
[१]खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम्।
नोपयाति जरा तं च निदाघेऽनिलसेवकम्॥३८॥
प्रावृष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं न सेवते। समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति॥३९॥

वसन्त में भ्रमण (टहलना), कम अग्नि तापना तथा समय पर बाला नारी से समागम करने वाले के पास जरा आती ही नहीं। ग्रीष्मकाल में वायु से शीतल हो गये जल से (तालाब, कूप आदि के जल से) प्रातः स्नान करता है, चन्दन लेप तथा वायु सेवन ग्रीष्म में करता है, उसके निकट जरा नहीं आती। वर्षाकाल में उष्ण जल से स्नान, वर्षा जल का सेवन न करना, समयानुकूल नियमित तथा परिमित आहार करने वाले के पास जरा नहीं आती।।३७-३९।।

शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत्। खातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति॥४०॥
[२]खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निं च सेवते।
भुङ्क्ते नवान्नमुष्णं च जरा तं नोपगच्छति॥४१॥
शिशिर्रेऽशुकवह्निं च न (क) वोष्णान्नं च सेवते।
यः कवोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपगच्छति॥४२॥

शरत् काल में धूप सेवन न करे। भ्रमण न करें। तड़ाग प्रभृति में स्नान तथा नियमित आहार करे। उसके पास जरा नहीं आती। हेमंतकाल में सरोवर आदि के जल से प्रातः स्नान,

१. ख. प्रातः शी०।
२. ख. प्रातः स्ना०।

यथाकाल आग तापना और किंचित् उष्ण नवान्न भोजन करे। उसके पास जरा नहीं आती। शिशिरकाल में गरम वस्त्र, प्रज्वलित अग्नि तापना, गरम अन्न भोजन, गर्म जल से स्नान करे। उसके निकट जरा नहीं आती।।३९-४२।।

सद्योमांसं नवान्नं च बाला स्त्री क्षीरभोजनम्।
घृतं च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति।।४३।।
भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम्।
नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति।।४४।।

ताजा मांस (पका कर), नवान्न, षोडशी नारी, क्षीर भोजन तथा घृत का सेवन करने वाला जराग्रस्त नहीं होता। क्षुधा लगने पर ही श्रेष्ठ अन्न भक्षण, पिपासा लगते ही जलपान करे। नित्य ताम्बूल सेवी व्यक्ति जरा से ग्रस्त नहीं होता।।४३-४४।।

दधि हैयङ्गवीनं च नवनीतं तथा गुडम्।
नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति।।४५।।
शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि।
संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टा भ्रातृभिः सह।।४६।।
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वलाः। तानुपैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि।।४७।।

नित्य दधि, नवनीत, घृत, गुड़ का नित्य सेवन करने वाला संयमी व्यक्ति जराग्रस्त नहीं होता। शुष्क मांस, वृद्धा नारी, कन्या राशि (क्वार-कार्तिक मासीय) स्थित सूर्य की धूप, ५ दिन पुराना दधि जो सेवन करता है, जरा उसके पास प्रसन्न मन से अपने ६४ भाईयों के साथ जाती है। जो रात में दही खाते हैं, कुलटा-रजस्वला नारी से समागम करते हैं, उनके पास जरा प्रसन्नता पूर्वक अपने भ्रातागण के साथ आकर आक्रमण करती है।।४५-४७।।

रजस्वला च कुलटा चावीरा जारदूतिका।
शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति।।४८।।
यो हि तासामन्नभोजी ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः। तेन पापेन सार्धं सा जरा तमुपगच्छति।।४९।।

हे सुन्दरी! रजस्वला, कुलटा, विधवा, जार पुरुष की दूती का काम करने वाली, शूद्र को यज्ञ कराने वाले की पत्नी, मासिक धर्म रहित नारी, इनका जो कोई अन्न भोजन करता है, वह ब्रह्महत्या पातकी कहा गया है। उस पर जरा अपना अधिकार कर लेती है। ब्रह्महत्या जैसे पातक से आक्रान्त उस व्यक्ति पर जरा का भी अधिकार हो जाता है।।४८-४९।।

पापानां व्याधिभिः सार्धं मित्रता संततं ध्रुवम्।
पापं व्याधिजराबीजं विघ्नबीजं च निश्चितम्।।५०।।

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयं कलिः॥५१॥

तस्मात्पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम्। भारते सततं सन्तो नाऽऽचरन्ति भयातुराः॥५२॥

पापसमूह से उत्पन्न व्याधि का बन्धुत्व जरा से होता है। पाप ही समस्त व्याधि तथा जरा के कारण एवं विघ्नोत्पादक कहे गये हैं। किम्बहुना जीवगण के पापों से ही उनमें व्याधि, जरा, दैन्य तथा भयंकर शोक एवं दुःख उत्पन्न होते हैं। तभी भारतवासी साधु लोग सदा भयभीत रहकर महाअमंगलकारी, दोषप्रद, परमशत्रुरूप पापों से दूर रहते हैं।।५०-५२।।

स्वधर्माचारयुक्तं च दीक्षितं हरिसेवकम्। गुरुदेवातिथीनां च भक्तं सक्तं तपःसु च॥५३॥
व्रतोपवासयुक्तं च सदा तीर्थनिषेवकम्। रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः॥५४॥
एताञ्जरा न सेवेत व्याधिसङ्घश्च दुर्जयः। सर्वं[1] बोध्यमसमये काले सर्वं ग्रसिष्यति॥५५॥

जो स्वधर्माचरणरत है, दीक्षित एवं श्रीहरि का सेवक है, जिसकी गुरु, देवता, अतिथि के प्रति भक्ति रहती है, जो तपोसाधन में समर्थ हैं तथा व्रत-उपवास करने वाले, नियमित तीर्थसेवी हैं, उनको देखते ही रोग उस प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुड़ को देखते सर्प पलायन कर जाते हैं। सदाचारी व्यक्तिगण पर जरा अथवा दुर्जय व्याधिसमूह का अधिकार नहीं हो पाता, तथापि ये सब नियम तभी प्रभावी होते हैं, जबकि समय हो। असमय में तो काल सभी को ग्रस लेता है। अर्थात् आयु शेष हो तभी से सब नियम प्रभावान् होते हैं। जब विधि द्वारा निश्चित आयु शेष हो गई, तब ये सब कुछ काम नहीं करते। तात्पर्य है कि कालमृत्यु तो होकर रहेगी। ये सभी अकाल मृत्यु से ही रक्षा कर पाते हैं।।५३-५५।।

ज्वरश्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति।
पित्तश्लेष्मसमीराश्च ज्वरस्य जनकास्त्रयः॥५६॥
एते यथा सञ्चरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु।
तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय॥५७॥
क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहाराभाव एव च।
प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके॥५८॥
तालबिल्वफलं भुक्त्वा जलपानं च तत्क्षणम्।
तदेव तु भवेत्पित्तं सद्यः प्राणहरं परम्॥५९॥

हे पतिव्रते! ज्वर तो सर्वरोग जनक है। ज्वर को वात-पित्त-कफ उत्पन्न करते हैं। यह पित्त-श्लेष्मा तथा वायु से उत्पन्न होता है। हे साध्वी! ये रोग देहीकरण के अन्दर जिस प्रकार से प्रवेश कर

१. क. ०वं गमिष्य०।

पाते हैं, उसका कारण श्रवण करो। अत्यन्त भूख लगने पर आहार न करने से प्राणीगण के मणिपूर चक्र में पित्तोत्पत्ति होती है। जो ताड़ फल अथवा बेलफल खाकर तत्काल जल पीता है, वह तत्काल प्राणघातक पित्त से ग्रस्त हो जाता है।।५६-५९।।

तप्तोदकं च शिरसि (शिशिरे) भाद्रे तिक्तं विशेषतः।
दैवग्रस्तश्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते।।६०।।
सशर्करं च धान्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम्।
चणकं सर्वगव्यं च दधितक्रविवर्जितम्।।६१।।
बिल्वतालफलं पक्वं सर्वभैक्षवमेव च। आर्द्रकं [1]मुद्गसूपं च तिलपिष्टं सशर्करम्।।६२।।
पित्तक्षयकरं सद्यो बलपुष्टिप्रदं परम्। पित्तनाशं च तद्बीजमुक्तमन्यन्निबोध मे।।६३।।

जो दैववशात् शरत्काल में उष्ण जल का प्रयोग करता है, भाद्रपद में तिक्त रसयुक्त वस्तु खाता है, उसमें पित्तवृद्धि हो जाती है। धनिया का चूर्ण शीतल जल तथा शर्करायुक्त पान करने से पित्त शान्त हो जाता है। चना-दुग्ध-दधि-घृत-नवनीत, तक्र रहित दधि, पक्व बेलफल, ताड़फल, ईख रस से बनी वस्तु, अदरख, मूली, मूंग दाल, शर्करा युक्त तिलचूर्ण के खाने से पित्त तत्क्षण शान्त होगा। बल-पुष्टि मिलेगी। यह मैंने पित्त के कारण का तथा नाश का उपाय कहा।।६०-६३।।

भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा।
तिलतैलं स्निग्धतैलं स्निग्धमामलकीद्रवम्।।६४।।
पर्युषितान्नं तक्रं च पक्वं रम्भाफलं दधि। मेघाम्बु शर्करातोयं सुस्निग्धजलसेवनम्।।६५।।
नारिकेलोदकं रुक्षस्नानं पर्युषितं जलम्। तरुमुञ्जापक्वफलं सुपक्वं कर्कटीफलम्।।६६।।
खातस्नानं च वर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम्।
ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्यविनाशनम्।।६७।।

अब मैं अन्य विषय कह रहा हूं। भोजनोपरान्त स्नान, बिना पिपासा जलपान, तिल तैल-स्निग्ध तैल, स्निग्ध आमलकी रस, बासी अन्न, मट्ठा, पक्व केला, दधि, वर्षा का जल, चीनी का शरबत, अत्यन्त स्निग्ध जलपान, नारिकेल का जल, बासी जल, रुक्ष स्नान (?), तरबूज पका, पकी ककड़ी, वर्षा में तालाब स्नान तथा मूली भक्षण, ये सभी कफकारक हैं। कफ से ब्रह्मरन्ध्र से जन्म लेने वाले महावीर्य का नाश होता है।।६४-६७।।

वह्निस्वेदं भ्रष्टभङ्गं पक्वतैलविशेषकम्। भ्रमणं शुष्कभक्षं च शुष्कपक्वहरीतकी।।६८।।
पिण्डारकमपक्वं च रम्भाफलमपक्वकम्। वेसवारः सिन्धुवार[2] अनाहारमपानकम्।।६९।।

१. ख. ०द्‌यूषं च।
२. क. ०रमना०।

सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम्। मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं [1]जीवकं मधु॥७०॥

द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि सद्यःश्लेष्महराणि च।
बलपुष्टिकराण्येव वायुबीजं निशामय॥७१॥

देह अग्नि तप्त होने से पसीना होना, भूजी भांग खाना, पक्व तेल सेवन, भ्रमण, शुष्क भोजन, शुष्क शोधित हर्रे, कच्चा लोहबन, कच्चा केला, वेशवार (मसाला), निर्गुण्डी, उपवास, जल न पीना, घृतयुक्त गोरोचन चूर्ण सेवन, घृतयुक्त शुष्क शर्करा सेवन, मरीच, पिप्पिली, सोंठ, जीरा, मधु—इनके सेवन से तत्क्षण कफ नाश होगा। हे गन्धर्वपुत्री! अब वायु का कारण श्रवण करो।।६८-७१।।

भोजनानन्तरं सद्यो गमनं धावनं तथा। छेदनं वह्नितापश्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् (ने)॥७२॥
वृद्धस्त्रीगमनं चैव मनःसंताप एव च। अतिरूक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च॥७३॥

कटुवाक्यं भयं शोकः केवलं वायुकारणम्।
आज्ञाख्यचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम्॥७४॥

भोजन करते ही तत्काल चलना, दौड़ना, कुछ काटना, अग्नि सेवन, सदा चलना एवं मैथुन, वृद्धा स्त्री का संगम करना, मन दुःखी रहना, अति रुक्ष भोजन, अनाहार करना, युद्ध, कलह, कटु वाक्यभाषण, भय, शोक—ये वायु के कारण हैं। यह आज्ञाचक्र में जन्म लेता है। अब इसकी औषधि को सुनो।।७२-७४।।

पक्वं रम्भाफलं चैव सबीजं शर्करोदकम्। नारिकेलोदकं चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम्॥७५॥

माहिषं दधि मिष्टं च केवलं वा सशर्करम्।
सद्यः पर्युषितान्नं च सौवीरं शीतलोदकम्॥७६॥

पक्वतैलविशेषं च तिलतैलं च केवलम्। लाङ्गली तालखर्जूरमुष्णमामलकीद्रवम्[2]॥७७॥

शीतलोष्णोदकस्नानं सुस्निग्धं चन्दनद्रवम्।
स्निग्धपद्मपत्रतल्पं सुस्निग्धव्यजनानि च॥७८॥
एतत्ते कथितं वत्से सद्यो वायुप्रणाशनम्।
वायवस्त्रिविधाः पुंसां क्लेशसंतापकामजाः॥७९॥

पका केला, बिजौरा-नींबू मिश्रित चीनी का पेय, नारिकेल जलपान, तत्काल निर्मित मट्ठा, उत्तम पिष्टक, शर्करा युक्त अथवा सादा भैंस के दूध का दधि, ताजा (एक दिन मात्र का) बासी अन्न (चावल को छोड़ कर), कचौड़ी, जौ की कांजी, शीतल जल, पका तेल तिल का, नारियल, ताड़, खजूर, आंवला का उष्ण रस, शीतल-उष्ण जल से स्नान, अत्यन्त स्निग्ध चन्दन का लेप, स्निग्ध

१. क. जीरकं म०।
२. क. ०मुस्तमा०।

कमल पत्र की शय्या, स्निग्ध व्यंजन, ये सद्यः वायुनाशक हैं। हे वत्से! वायु त्रिविध है। क्लेश, संताप तथा काम से उत्पन्न।।७५-७९।।

व्याधिसङ्घश्च कथितस्तन्त्राणि विविधानि च।
तानि व्याधिप्रणाशाय कृतानि सद्भिरेव च॥८०॥
तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च।
रसायनादयो येषु चोपायाश्च सुदुर्लभाः॥८१॥
न शक्तः कथितुं साध्वि यथार्थं वत्सरेण च।
तेषां च सर्वतन्त्राणां कृतानां च विचक्षणैः॥८२॥
केन रोगेण त्वत्कान्तो मृतः कथय शोभने। तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं सति॥८३॥

हे साध्वी! मैंने आपसे व्याधिसमूह का वर्णन तथा उनके विनाश कारण का वर्णन एवं साधु विरचित सभी शास्त्रों का नाम कहा। इसके अतिरिक्त विद्वानों ने जिन समस्त रसायनादि दुर्लभ उपायविषयक शास्त्र की रचना किया है, उसका वर्णन मैं एक वर्ष तक सतत् कह कर भी समाप्त नहीं कर सकता। तुम्हारे स्वामी ने इनमें से किस रोग से ग्रस्त होकर देह त्याग किया है, इसकी विवेचना करूंगा। हे शोभने! इससे यह विदित होगा कि वे किस उपाय से जीवित हो सकेंगे। तब उसी उपाय का अवलम्बन लेकर उनको जीवन दिया जायेगा।।८०-८३।।

सौतिरुवाच

ब्राह्मणस्य वचःश्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च।
कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्वी प्रहर्षिता॥८४॥

सौति कहते हैं–ब्राह्मण का कथन सुनकर गान्धर्वी चित्ररथनन्दिनी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा–।।८४।।

मालावत्युवाच

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना।
सभायां लज्जितः कान्तो मम विप्र निशामय॥८५॥
सर्वं श्रुतमपूर्वं च शुभाख्यानं मनोहरम्। भवेद्भवे कुतः केषां महल्लभ्यं विपद्विना॥८६॥
अधुना [1]मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण।
नत्वा वः स्वामिना सार्धं यास्यामि स्वगृहं प्रति॥८७॥

मालावती कहती हैं–हे विप्र! श्रवण करिये। मेरे पति ने देवसभा में लज्जित होकर ब्रह्मा से शाप प्राप्त किया। उसी कारण उन्होंने योग का आश्रय लेकर देहत्याग किया। अब मैंने आपसे समस्त

---

१. क. मत्प्रभोः देहि वि॰।

मनोहर शुभ आख्यान का श्रवण कर लिया। यथार्थ तो यह है कि पृथिवी पर कोई भी विपदा में पड़े बिना मंगललाभ नहीं कर सकता। हे विचक्षण! अब मेरे प्राणनाथ को जीवन प्रदान करिये। इस प्रकार मैं अपने पति के साथ आप लोगों को प्रणाम करके सानन्द गृह जा सकूंगी।।८४-८७।।

मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः।
सभां जगाम देवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकात्।।८८।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे चिकित्साप्रणयने षोडशोऽध्यायः।।१६।।

विप्ररूपी विष्णु ने मालावती का यह कथन सुनकर वहां का स्थान त्याग किया तथा तत्काल देवसभा में चले गये।।८८।।

षोडश अध्याय समाप्त

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ब्राह्मण रूपधारी विष्णु एवं देवताओं का परस्पर संवाद, विष्णु की प्रशंसा

सौतिरुवाच

दृष्ट्वा द्विजं देवसङ्घः प्रत्युत्थानं चकार च। परस्परं च संभाषा बभूव तत्र संसदि।।१।।
मा तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम्। पौर्वापर्य विस्मृताश्च मोहिता विष्णुमायया।।२।।
सुरान्संबोध्य विप्रश्च वाचा मधुरया द्विज। उवाच सत्यं परमं प्राणिनां यच्छुभावहम्।।३।।

सौति कहते हैं—तदनन्तर देवगण ने उन ब्राह्मण को अपने पास देखते ही उठ कर उनका आदर किया तथा वे आपस में वार्त्ता करने लगे। वे देवता विष्णुमाया से मोहित थे। वे पूर्वापर सब भूल गये। वे सभी विष्णुमाया के कारण श्रीहरि को जान ही नहीं सके। तदनन्तर ब्राह्मण ने भी मधुर वाणी से देवगण को सम्बोधित करके प्राणीगण को सुखप्रद लगने वाला उत्तम विषय कहना प्रारम्भ किया।।१-३।।

ब्राह्मण उवाच

उपबर्हणभार्येयं कन्या चित्ररथस्य च। ययाचे जीवदानं च स्वामिनः शोककर्षिता।।४।।

अधुना किमनुष्ठानमस्य कार्यस्य निश्चितम्।
तन्मां ब्रूत सुराः सर्वे नित्यं यत्समयोचितम्॥५॥
शप्तुकामा सुरान्सर्वान्साध्वी तेजस्विनी वरा।
अहं क्षेमाय युष्माकमागतो बोधिता सती॥६॥
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपे हरेरपि।
युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नाऽऽगतः॥७॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति पश्चाद्यास्यति[1] केशवः।
विपरीतं कथं भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम्॥८॥

ब्राह्मण कहते हैं–हे देवताओं! यह कन्या उपबर्हण की पत्नी तथा चित्ररथ की पुत्री अतिशय शोकार्त्त होकर स्वामी के जीवन की प्रार्थना कर रही है। हे देवताओं! इस समय कैसा कार्य करना चाहिये? आप समयानुकूल बात कहिये। यह तेजस्विनी साध्वी समस्त देवगण को शाप देने हेतु उद्यत है। मैं आप लोगों के मंगलार्थ उसे बहुत कुछ समझा कर शान्त कर पाया। आप लोगों ने भी श्वेतद्वीप जाकर विष्णु का स्तव किया था, तथापि परमेश्वर विष्णु भी किस कारण से यहां नहीं आये? यह आकाशवाणी सुनी गयी थी कि "केशव यहां बाद में आयेंगे।" तथापि वह अचंचल दैववाणी भी मिथ्या हो गई?"॥४-८॥

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः।
उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम्॥९॥

ब्राह्मण का यह वाक्य सुन कर जगद्‌गुरु ब्रह्मा ने स्वयं सत्यपूर्ण हितकर परम मांगलिक वचन कहा–॥९॥

ब्रह्मोवाच

मत्पुत्रो नारदः शप्तो गन्धर्वश्चोपबर्हणः। योगेन प्राणांस्तत्याज पुनः शापान्ममैव हि॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं–(हे देवताओं! यह कन्या उपबर्हण की पत्नी तथा चित्ररथ की कन्या है)। मेरा ही पुत्र नारद शापग्रस्त होकर उपबर्हण नामक गन्धर्व हो गया तथा मेरे ही शाप के कारण उसने योग द्वारा देहत्याग किया॥१०॥

कालं लक्षयुगं व्याप्य स्थितिरस्य महीतले।
शूद्रयोनिं ततः प्राप्य भविता मत्सुतः पुनः॥११॥
अस्य कालावशेषस्य किञ्चिदस्ति द्विजोत्तम।
तत्तु वर्षसहस्रं चैवाऽऽयुरस्यास्ति सांप्रतम्॥१२॥

१. क. ०ति निश्चितम्।

दास्यामि जीवदानं च स्वयं विष्णोः प्रसादतः।
यथैनं न स्पृशेच्छापस्तत्करिष्यामि निश्चितम्॥१३॥
नाऽऽगतो हरिरत्रेति त्वया यत्कथितं द्विज।
हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहः कुत आत्मनः॥१४॥
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः। सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः॥१५॥

मैंने उससे कहा था कि तुम पृथिवी पर एक लाख युग तक रह कर शूद्रयोनि पाकर पुनः मेरे पुत्र होगे। हे द्विजप्रवर! उस निश्चित काल में अभी भी कुछ समय बाकी है। उसकी गणना करने से उसकी आयु अभी १००० वर्ष बाकी है। अब मैं श्रीकृष्ण की कृपा से स्वयं उसको जीवन प्रदान करूंगा तथा यह उपाय भी करूंगा जिससे पुनः उसको शाप का स्पर्श कभी भी न हो। हे द्विजप्रवर! आपने जो कहा है, कि हरि यहां नहीं आये, वह पूर्ण भ्रम है। वे तो सर्वव्यापी तथा सर्वात्मा हैं। अतः उनका शरीर कहां है? वे स्वेच्छामय परम ब्रह्म हैं। भक्त पर कृपा करने हेतु ही वे देहधारी होते हैं। वे सब कुछ देखने वाले, सर्वज्ञ, सर्वव्याप्त, सनातन हैं।।११-१५।।

विषिश्च व्याप्तिवचनो नुश्च सर्वत्रवाचकः।
सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुः प्रकीर्तितः॥१६॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥१७॥
कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुं च यः स्मरेत्।
परिपूर्णं तस्य कर्म वैदिकं च भवेद्द्विज॥१८॥

'वि' तथा 'ष' शब्द व्याप्तिवाचक है। 'नु' शब्द से सब कुछ का बोधन होता है। अतः पण्डितगण उन सर्वव्यापी सर्वात्मा को विष्णु कहते हैं। पुरुष अपवित्र हो अथवा पवित्र हो, सभी अवस्था में जो उन विष्णु का स्मरण भक्तिभाव से करता है, वह तो बाह्यतः एवं आभ्यान्तरतः सदा पावन है। हे द्विजप्रवर! जो मनुष्य वैदिक कर्म के प्रारम्भ में, मध्य में तथा अन्त में विष्णु स्मरण करता है, उसके तो अंगहीन कर्म तक सम्पूर्ण हो जाते हैं।।१६-१८।।

अहं स्रष्टा च जगतां विधाता संहरो हरः।
धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याऽऽज्ञापरिपालकः॥१९॥
कालः संहरते लोकान्यमः शास्ता च पापिनाम्।
उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्याऽऽज्ञया सदा॥२०॥
सर्वेशा या च सर्वाद्या प्रकृतिः सर्वसूः पुरा।
सा भीता यस्य पुरतो यस्याऽऽज्ञापरिपालिका॥२१॥

मैं जगत् का स्रष्टा तथा जगद्विधाता ब्रह्मा, सर्वसंहारक शंकर एवं धर्म के साक्षी धर्मदेव उनकी ही आज्ञा से सब कार्य करते हैं। काल तो उनकी ही आज्ञा से भयभीत होकर लोक संहारक, यमदेव पापीगण के शासक तथा मृत्यु सब पर आक्रामक होते हैं। किम्बहुना जो आद्या प्रकृति सबका प्रसव करने वाली सर्वेश्वरी है, वे भी उनकी आज्ञा का भय पूर्वक पालन करती है।।१९-२१।।

महेश्वर उवाच

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान्।
वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कः सार एव च॥२२॥
शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्वं नाम्ना च भो द्विज[1]।
विभर्ष्यर्कातिरिक्तं च शिशुरूपोऽसि सांप्रतम्॥२३॥
विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम्।
हृदिस्थं च न जानासि परमात्मानमीश्वरम्॥२४॥

महेश्वर कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मा के पुत्रों में से किसके वंश से उत्पन्न हैं? आपने समस्त वेदों का अध्ययन करके क्या सार रूप जाना है? हे द्विजप्रवर! आप किस महामुनि के शिष्य हैं? आपका नाम क्या है? आप तो देखने में बालक हैं, परन्तु सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं। आपने किसलिये देवगण को भी अपने तेज से म्लान कर दिया है? तथापि आप हमारे ईश्वर परमात्मा को नहीं जानते। वे सबके हृदय में विराजित रहते हैं।।२२-२४।।

यस्मिन्गाते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि। प्रयान्ति सर्वे तत्पचान्नरदेवानुगा इव॥२५॥
जीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च मनो ज्ञानं च चेतना। प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः॥२६॥

जिन परमात्मा के शरीरधारियों के देह से निकल जाने पर यह देह गिर जाता है, उस समय समस्त इन्द्रिय वर्ग एवं प्राण उसी प्रकार देह से चले जाते हैं, जैसे नृपति के कहीं जाने पर उसके सेवक उस राजा के पीछे-पीछे ही चलते हैं। बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति!।।२५-२६।।

निद्रा दया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णा पुष्टिरेव च।
श्रद्धा संतुष्टिरिच्छा च क्षमा लज्जादिकाः स्मृताः॥२७॥
प्रयाति यत्पुरः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे।
एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याऽऽज्ञापरिपालकाः॥२८॥

निद्रा, दया, तन्द्रा, क्षुधा, तृष्णा, पुष्टि, श्रद्धा, सन्तोष, इच्छा, क्षमा, लज्जा आदि समस्त भाववर्ग उस परमात्मा के ही अनुगामी कहे जाते हैं। ईश्वर के देह से गमनोद्यत होने पर शक्ति पहले चली जाती है। फलतः ये सभी भाववर्ग तथा शक्ति भी उन प्रभु के आज्ञापालक मात्र हैं।।२७-२८।।

---

१. क. ०जा। विभास्यर्कातिरिक्तश्च।

ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु।
गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं देही न[1] मन्यते॥२९॥

स्वयं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः। पादारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः॥३०॥

जब तक परमात्मा देह में स्थित हैं, तभी तक प्राणी सभी कार्य करने में सक्षम होता है। परमात्मा जब देह से निर्गत हो जाते हैं, तब देह स्पर्श योग्य नहीं रहता। यह तो शव हो जाता है। अतः ऐसा कौन व्यक्ति है, जो उनको (उन प्रभु) को अस्वीकार करे? अतः विधानकर्त्ता ब्रह्मा सृष्टिकार्य में लगे रहकर उनके ही चरणारविन्द का सदा ध्यान करते हैं, तथापि उनका दर्शन ही नहीं मिलता।।२९-३०।।

युगलक्षं तपस्तप्तं श्रीकृष्णस्य च वेधसा। तदा बभूव ज्ञानी च जगत्स्रष्टुं क्षमस्तदा॥३१॥

असंख्यकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया। तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले॥३२॥

ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण के उद्देश्य से एक लाख युग तक कठोर तप किया था। तभी वे ज्ञानी होकर जगत् सृष्टि में सक्षम हो सके। स्वयं मैंने असंख्य काल पर्यन्त हरि के उद्देश्य से कठोर तपःश्चरण किया था, तथापि मैं तृप्त नहीं हो सका। इसका कारण यह है कि मंगल से कोई भी तृप्त नहीं होता।।३१-३२।।

अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नमगुणकीर्तनम्। गायन्भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु॥३३॥

मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्तनात्।
शश्वज्जपन्तं तन्नाम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते॥३४॥

इस समय मैं सभी कर्मों से निस्पृह होकर मैं जिनके नाम का कीर्त्तन-गायन करते-करते सर्वत्र भ्रमणरत रहता हूं, जिनके नाम का कीर्त्तन करने से मृत्यु मेरा स्पर्श ही नहीं कर पाती, ऐसे प्रभु का निरन्तर मधुर नाम-जप करने वाले लोगों को देखते ही मृत्यु पलायित हो जाती है।।३३-३४।।

सर्वब्रह्माण्डसंहर्ताऽप्यहं मृत्युञ्जयाभिधः। सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्तनात्॥३५॥

काले तत्र विलीनोऽहमाविर्भूतस्ततः पुनः। न कालो मम संहर्ता न मृत्युर्यत्प्रसादतः॥३६॥

मैं दीर्घकालीन तपःश्चरण से उनके नाम का कीर्त्तन करके ब्रह्माण्ड का संहारक हो गया, साथ ही मृत्युंजय नाम से प्रसिद्ध हूं, वह मैं अर्थात् महेश्वर कभी समय आने पर उन परमेश्वर में विलीन हो जाता हूं, कभी उनसे आविर्भूत हो जाता हूं। उन कृष्ण के ही प्रभाव से मृत्यु कभी भी मेरे संहार में समर्थ नहीं हो पाती। सदा उनकी कृपा से मैं मृत्युजित् तथा कालजित् होकर रहता हूं।।३५-३६।।

गोलोकेः यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च।
अंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिङ्गवत्[2]॥३७॥

---

१. क. नमस्यते।

२. क. ०त्। इन्द्रायुश्चैव दि०।

मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। अष्टविंशतिमे शक्रे गते च ब्रह्मणो दिनम्॥३८॥
एतत्संख्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः। पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः॥३९॥
अहं कलानावृषभः कृष्णस्य परमात्मनः।
पारं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किञ्चन॥४०॥

हे ब्रह्मन्! गोलोक वाले कृष्ण ही वैकुण्ठ तथा श्वेत द्वीप में रहते हैं। अग्नि तथा उसकी चिन्गारी में जिस प्रकार से कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार अंश तथा अंशी में कुछ प्रभेद नहीं है। दिव्य मान वाले ७१ युगों का एक मन्वन्तर होता है। २८ इन्द्र जब समाप्त हो जाते हैं, तब ब्रह्मा का एक दिन माना गया है। ब्रह्मा की सौ वर्ष आयु गत होते ही परमात्मा विष्णु का एक निमेष होता है। मैं तथा सभी देवर्षिगण इन परमात्मा की कला मात्र हैं। मैं श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठ कला हूं। उन प्रभु की महिमा की इयत्ता कौन जान सकता है। मुझे तो उनकी तनिक महिमा ज्ञात नहीं है!॥३७-४०॥

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक। धर्मश्च वक्तुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम्॥४१॥

हे शौनक! शंकर यह कह कर वहां बोलने से विरत हो गये, तब सर्वकर्मसाक्षी धर्म ने कहना आरम्भ किया॥४१॥

धर्म उवाच

यत्पाणिपादौ सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम्। सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मनः॥४२॥
अधुनाऽपि सभां विष्णुर्नायाति इति यद्वचः।
त्वयोक्तं तत्कया बुद्ध्या मुनीनां च मतिभ्रमः॥४३॥
महन्निन्दा भवेद्यत्र नैव साधुः शृणोति ताम्।
निन्दकः श्रोतृभिः सार्धं कुम्भीपाकं व्रजेद्युगम्॥४४॥
श्रुत्वा दैवान्महन्निन्दां श्रीविष्णोः स्मरणाद्बुधः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति दुर्लभम्॥४५॥

धर्म कहते हैं-जिनके चरण तथा बाहु सर्वत्र विराजित हैं, जिनके नेत्र एक ही साथ सभी पदार्थसमूह को देखने में समर्थ हैं, जो सर्वान्तरात्मा तथा साधुगण के लिये प्रत्यक्ष तथा दुरात्माओं के लिये अप्रत्यक्ष हैं, "वे सर्वमय विष्णु अभी भी यहां नहीं आये" ऐसा आपका कथन किस बुद्धि की उपज है? क्या आश्चर्य की बात है? इसमें तो मुनिगण को भी मति भ्रम हो जाता है। जो भी हो, साधु पुरुष कभी भी महान् की निन्दा नहीं करते तथा नहीं सुनते। ज्ञानीगण दैवात् महत् की निन्दा सुन कर तत्काल विष्णु का स्मरण करते हैं। सभी पाप से मुक्त होकर वे दुर्लभ पुण्य का संचय कर लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। जो महान् लोगों की निन्दा सुनता है, वह तथा निन्दा करने वाला युगों तक कुंभीपाक नरक में रहते हैं॥४२-४५॥

कामतोऽकामतो वाऽपि विष्णुनिन्दां करोति यः।
यः शृणोति हसति वा सभामध्ये नराधमः॥४६॥
कुम्भीपाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वयः। स्थलं भवेदपूतं च सुरापात्रं यथा द्विज॥४७॥

चाहते हुए अथवा अनचाहे जो कोई विष्णुनिन्दा करता है, जो नीच व्यक्ति उस निन्दा का श्रवण करके सभा में हास्य करता है, उसे तो ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कुंभीपाक नरक में ही पड़ा रहना होगा। जहां यह निन्दा होती है, हे ब्रह्मन्! वह स्थान भी उसी प्रकार अपवित्र होता है, जैसे मद्यपात्र।।४६-४७।।

प्राणी च नरकं याति श्रुतं तत्रैव चेद्ध्रुवम्।
विष्णुनिन्दा च त्रिविधा ब्रह्मणा कथिता पुरा॥४८॥
अप्रत्यक्षं च कुरुते किंवा तं च न मन्यते। देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः॥४९॥

ब्रह्मा ने पूर्वकाल में कहा है कि विष्णु निन्दा के तीन रूप हैं। यथा–पीठ पीछे निन्दा करना, विष्णु को किसी प्रकार से न मानना, अन्य देवों से विष्णु का साम्य करना। ये निन्दात्रय करने वाला ज्ञानहीन नराधम हो जाता है।।४८-४९।।

तस्यात्र निष्कृतिर्नास्ति यावद्वै ब्रह्मणः शतम्।
गुरोर्निन्दां यः करोति पितुर्निन्दां नराधमः।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥५०॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः। पोष्टा पाता भयत्राता वरदाता जगत्त्रये॥५१॥

सौ ब्रह्मा की आयु तक उसको नरकादि से छुटकारा नहीं मिल सकता। जो नराधम गुरु की, पिता की निन्दा करते हैं, वे सृष्टि में सूर्य-चन्द्र के विद्यमान रहने तक कालसूत्र नरक में पड़े रह जाते हैं। विष्णु ही सबके गुरु तथा ज्ञानदाता पिता हैं। वे पोषक, रक्षक, भय से त्राण दिलाने वाले तथा त्रैलोक्य में वरदाता भी हैं।।५०-५१।।

एषां च वचनं श्रुत्वा त्रयाणां विप्रपुङ्गव। प्रहस्योवाच तान्देवान्वाचा मधुरया पुनः॥५२॥

इन तीनों का वचन सुनकर उन द्विजप्रवर ने हंसते हुए उन सभी से मधुर वाणी में पुनः कहा–।।५२।।

ब्राह्मण उवाच

का कृता विष्णुनिन्दाऽहो हे देवा धर्मशालिनः।
नाऽऽगतो हरिरत्रेति व्यर्थाऽऽकाशसरस्वती॥५३॥
इति प्रोक्तं मया भद्रं ब्रूत धर्मार्थमीश्वराः।
सभायां पाक्षिकाः सन्तो घ्नन्ति स्म शतपूरुषम्॥५४॥

ब्राह्मण कहते हैं–आश्चर्य है! हे धर्मात्मा देवताओं! मैंने कब विष्णुनिन्दा किया है? जब हरि नहीं आये, तब तो आकाशवाणी व्यर्थ हो गई, मात्र यही कहा था। आप लोग तो ईश्वर हैं। आप लोग इस समय यथार्थ ही बोलिये। साधुजन कभी भी पक्षपातमय वचन नहीं कहते। जो सभा में पक्षपात करता है, उसकी सौ पीढ़ी के पूर्वज नरक जाते हैं। ऐसे लोग सौ पीढ़ी को नष्ट कर देते हैं।।५३-५४।।

यूयं च भावुका ब्रूत विष्णुः सर्वत्र संततम्। इति चेत्तत्कथं याताः श्वेतद्वीपं वराय च।।५५।।

अंशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम्।
कलां हित्वा निषेवन्ते सन्तः पूर्णतमं कथम्।।५६।।

कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि। आशा बलवती पुंसां कृष्णं सेवितुमिच्छति।।५७।।

आप लोगों का यह भावुक कथन है कि विष्णु सर्वत्र हैं। तब यह कहिये कि आप लोग वर ग्रहण करने क्यों श्वेतद्वीप गये थे? इस प्रकार "परमात्मा के अंश एवं अंशी में कोई प्रभेद नहीं है।" यह कथन भी उचित नहीं है। यदि अंश-अंशी में कोई भेद नहीं है, तब साधु लोग किस कारण से कला त्याग करके पूर्णतम की सेवा क्यों करते? पुरुषों की आशा ही बलवती है। क्योंकि कोटि जन्म पर्यन्त दुराराध्य रहने वाली तथा असत् पुरुषगण को असाध्य प्रतीत होने वाली इस श्रीकृष्ण की सेवा को क्यों करते?, तथापि इसी कार्य हेतु भक्तों की बलवती आशा प्रेरित करती है।।५५-५७।।

किं क्षुद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्ति परमं पदम्।
लब्धुमिच्छति चन्द्रं च बाहुभ्यां वामनो यथा।।५८।।

क्योंकि कोटि जन्मों में भी जो दुराराध्य हैं तथा असत् लोगों के लिये जिनकी प्राप्ति सदैव असाध्य है, ऐसे कृष्ण की सेवा करने की कामना इन लोगों की रहती है तथा इस सम्बन्ध में यह कहना है कि जो बौना है, वह अपने हाथों से चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है अर्थात् महान् एवं क्षुद्र, सभी लोग परमपद पाना चाहते हैं।।५८।।

यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनिवासकृत्।
यूयं ब्रह्मेशधर्माश्च दिक्पालाश्च दिगीश्वराः।।५९।।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः।
एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषु संततम्।।६०।।

जिस प्रकार इस संसार में श्वेतद्वीप वासी विष्णु-ब्रह्मा-महेश्वर-धर्म एवं दिक्पाल, दिशाओं के पति आदि देवता स्थित हैं, उसी प्रकार प्रत्येक विश्व (ब्रह्माण्ड) में कितने ही प्रकार के ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर तथा देवलोक आदि सभी सचराचर विद्यमान हैं।।५९-६०।।

विश्वानां च सुराणां च कः संख्यां कर्तुमीश्वरः।
सर्वेषामीश्वरः कृष्णो भक्तानुग्रहविग्रहः।।६१।।

ऊर्ध्वं च सर्वब्रह्माण्डाद्वैकुण्ठं सत्यमीप्सितम्।
तस्मादूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम्॥६२॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः। सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः॥६३॥

गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः।
गोपाङ्गनादिभिर्युक्तो द्विभुजैर्गोपपार्षदैः॥६४॥

उन ब्रह्माण्ड समूह तथा उनके देवगण की गणना करने में कोई मनुष्य समर्थ नहीं है। भक्त पर कृपा करने वाले तथा इसी ब्रह्माण्डों तथा देवगण के और सबके ईश्वर कृष्ण हैं, जिन्होंने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही विग्रह (शरीर) धारण किया है। सभी ब्रह्माण्ड से ऊर्ध्व में सबके लिये वांछनीय नित्य वैकुण्ठधाम विराजमान है। उससे भी ऊर्ध्वस्थ है गोलोक जो ५० कोटि योजन विस्तृत है। वैकुण्ठ में सुनन्द, नन्द, कुमुद आदि पार्षदों से घिरे सनातन चतुर्भुज लक्ष्मीकान्त विष्णु का निवास है। गोलोक में द्विभुज गोपगण से परिवृत, गोपांगनाओं सहित राधाकान्त सनातन कृष्ण विराजित रहते हैं। उनके समस्त पार्षद गोपगण द्विभुज हैं।।६१-६४।।

परिपूर्णतमं ब्रह्म स चाऽऽत्मा सर्वदेहिनाम्। स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे वृन्दावने सदा॥६५॥

तज्ज्योतिर्मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
ध्यायन्ते योगिनः सन्तः संततं च निरामयम्॥६६॥

नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम्। कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्॥६७॥

किशोरवयसं शश्वच्छान्तं सस्मितमीश्वरम्।
ध्यायन्ते वैष्णवाः[1] सन्तः सेवन्ते सत्यविग्रहम्॥६८॥

वे श्रीकृष्ण प्रभु सभी जीवगण की आत्मा हैं। वे सदा स्वेच्छा से लीलाप्रसंग में वहां स्थित वृन्दावनस्थ रासमंडल में विहार करते रहते हैं। वे ही परिपूर्ण तथा ब्रह्म हैं। साधु लोग इनकी निरामय, कोटिसूर्यसमप्रभ भास्वर मण्डलाकार ज्योति का ही सतत् चिन्तन करते रहते हैं। सभी वैष्णवभक्त एवं साधुजन करोड़ों कामदेव के समान लावण्ययुक्त, अत्यन्त मनोहर, पीत वस्त्रधारी, द्विभुज, नव नीरद घनश्याम रूप ईश्वर के इस सत्य विग्रह का चिन्तन करते हैं। इनकी ही सेवा करते हैं। ये प्रभु किशोर वयस वाले, सदा शान्त मन्द मुस्कान से युक्त रहते हैं। वैष्णवगण तथा सन्तजन सतत् इसी सत्यविग्रह का चिन्तन करने में तल्लीन रहते हैं।।६५-६८।।

यूयं च वैष्णवा ब्रूत कस्य वंशोद्भवो भवान्।
शिष्यः कसय मुनीन्द्रस्येत्येवं मां च पुनः पुनः॥६९॥
यस्य वंशोद्भवोऽहं च यस्य शिष्यश्च बालकः।
तस्येदं वचनं ज्ञानं देवसङ्घा निबोधत॥७०॥

---

१. क. ०वा: शान्ता: से०।

हे देवताओं! आप सभी वैष्णव हैं, तथापि मुझसे बारम्बार जिज्ञासा कर रहे हैं कि मैं किस वंश का हूं, किस ऋषि का शिष्य हूं? इत्यादि! तथापि मैं किसका वंशधर तथा किसका शिष्य हूं, यह मेरे वाक्य से ही जान लीजिये। यह उनका ही कथन तथा उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान है।।६९-७०।।

शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर। व्यक्ते विचारे मूर्खःको वाग्युद्धे किं प्रयोजनम्।।७१।।

इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः। विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक।।७२।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौ० ब्रह्मखण्डे विष्णुसुरसङ्घसंवादे विष्णुप्रशंसाप्रणयनं सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

"हे देवेश्वर! सुरेश्वर! शीघ्रता से इस गन्धर्व को जीवित करिये। विचार करने से यह बात तो शीघ्र ज्ञात हो जाती है कि कौन मूर्ख है और कौन विचक्षण है। हे देवताओं! इस वाक्युद्ध का यहां कोई प्रयोजन नहीं है। इस समय तो इस गन्धर्वपुत्र को शीघ्र जीवित करिये।" हे शौनक! यह कहकर ब्राह्मण बालक रूपधारी जनार्दन सभा में मौन हो गये तथा सभा में ही जोरों से हंसने लगे।।७०-७२।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

अथाष्टादशोऽध्यायः

मालावती द्वारा महापुरुष का स्तोत्र करना तथा उपबर्हण को पुनर्जीवन लाभ

सौतिरुवाच

देवाः सार्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया। प्रययुर्मालतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः।।१।।

ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च। सञ्चारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः।।२।।

ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिवः स्वयम्।
धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानं च ब्राह्मणः।।३।।

सौति कहते हैं--तदनन्तर ब्रह्मा, महेश्वर प्रभृति देवगण विष्णुमाया से मोहित होकर ब्राह्मण बालक के साथ मालावती के पास गये। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु का जल शव पर छिड़का। तत्क्षण शव में मनःसंचार तथा देह में सुन्दर कान्ति व्यक्त हो गई। तभी ज्ञानानन्द शिव ने उसमें ज्ञान संचार किया। धर्म ने उसे धर्मज्ञान तथा ब्राह्मण ने जीवदान प्रदान किया।।१-३।।

वह्निदर्शनमात्रेण बभूव जठरानलः। कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम्॥४॥

तस्य वायोरधिष्ठानाज्जगत्प्राणस्वरूपिणः।
निःश्वासस्य च सञ्चारः प्राणानां च बभूव ह॥५॥

सूर्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह। वाक्यं वाणीदर्शनेन शोभा श्रीदर्शनेन च॥६॥

शवस्तथाऽपि नोत्तस्थौ यथा शेते जडस्तथा।
विशिष्टबोधनं प्राप चाधिष्ठानं विनाऽऽत्मनः॥७॥

अग्नि के दर्शन मात्र से उस शरीर में जठराग्नि उत्पन्न हो गई। कामदेव का दर्शन करते ही उपबर्हण के देह में कामनाओं का उदय हो गया। जगत् प्राणरूप वायुदेव उस देह में अधिष्ठित हो गये। इससे उपबर्हण के देह में श्वास-प्रश्वास संचालित हो गया। तत्पश्चात् सूर्यदेव के स्थित होने से दृष्टिशक्ति का और भगवती वाणी का दर्शन होते ही वाक् का, श्री भगवती लक्ष्मी के दर्शन मात्र से देह में श्री का संचार हो गया, तथापि अब भी परमात्मा का अधिष्ठान न होने के कारण देह में बोध का उदय नहीं हो सका तथा उत्थान शक्ति (उठने की शक्ति) नहीं थी। वह शरीर जड़वत् पड़ा था। वह शरीर जड़वत् शयान था। आत्मा के अधिष्ठान के अभाव में देह में बोधन (चैतन्य) रहित स्थिति ही रहती है।।४-७।।

ब्रह्मणो वचनात्साध्वी तुष्टाव परमेश्वरम्।
स्नात्वा शीघ्रं सरित्तोये धृत्वा धौते च वाससी॥८॥

यह देख कर ब्रह्मदेव की आज्ञा के अनुसार साध्वी मालावती ने सरिता के जल में तत्काल स्नान किया तथा धुले पवित्र दो वस्त्र पहनने के उपरान्त परमेश्वर की स्तुति प्रारम्भ किया।।८।।

मालावत्युवाच

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम्। विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले॥९॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च सर्वेषां सर्वकर्मसु। विद्यमानमदृष्टं च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा॥१०॥

मालावती कहती है—मैं सर्व कारणों के भी कारणरूप परमात्मा की वन्दना करती हूं, जिनके बिना जगत् के सभी प्राणी शव ही हैं। आप निर्लिप्त हैं। आप सभी कर्मों के साक्षी हैं। आप यद्यपि विद्यमान हैं, सदा सर्वत्र विराजित हैं, तथापि लोग आपको देख नहीं सकते! सबके लिये आप अदृश्य हैं।।९-१०।।

येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका॥११॥
जगत्स्रष्टा स्वयं ब्रह्मा नियतो यस्य सेवया।
पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शङ्करः स्वयम्॥१२॥

ध्यायन्ते यं सुराः सर्वे मुनयो मनवस्तथा। सिद्धाश्च योगिनः सन्तः संततं प्रकृतेः परम्॥१३॥

साकारं च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम्। वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्॥१४॥
तपः फलं तपोबीजं तपसां च फलप्रदम्। स्वयं तपःस्वरूपं च सर्वरूपं च सर्वतः॥१५॥

जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव का भी प्रसव करने वाली त्रिगुणात्मिका, परात्परा, सबकी आधाररूपा प्रकृति के भी सृजनकर्त्ता हैं, स्वयं ब्रह्मा जिनकी सेवा में निरत होने के कारण सृष्टिकर्त्ता तथा विष्णु पालनकर्त्ता एवं महेश्वर संहारक हो सके हैं, समस्त देवता-मुनि-मनु-सिद्ध लोग और साधु-सन्त, योगीगण, प्रकृति से अतीत जिन परमेश्वर का ध्यान करते हैं, जो स्वेच्छामय देहधारी होकर कभी साकार तो कभी निराकार हो जाते हैं, जो सबसे उत्कृष्ट एवं वरेण्य हैं, जिनसे सभी वरों का लाभ होता है, जिनके कारण समस्त तप का फल मिल पाता है, जो तपफल रूप, तपबीज, स्वयं तपरूप तथा सर्वत्र सर्वरूप हैं।।११-१५।।

सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तत्कर्मणां फलम्। तेषां च फलदातारं तद्बीजं[1] क्षयकारणम्॥१६॥
स्वयं तेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्।
सेवा ध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना॥१७॥
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम्। अतीव कमनीयं च रूपं तत्र मनोहरम्॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम्॥१९॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्॥२०॥

वे ही सर्वाधार, सबके कर्म के बीज रूप, कर्मफल, साथ ही कर्मबीज का क्षय करने वाले, स्वयं तेजरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ विग्रहधारी हैं। इसका कारण यह है कि भक्तगण विग्रह (आकार) के अभाव में ध्यान तथा सेवा कर ही नहीं सकते। वे प्रभु तेज रूपी मण्डलाकार, कोटि सूर्यसमप्रभ, अतीव मनोहर कमनीय रूपधारी, नव जलधर के समान श्यामवर्ण, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान कमल नयन, शारदीय पूर्णिमा के समान खिल रही मुस्कान से शोभायमान, करोड़ों कामदेव के समान लावण्यवान्, लीलाधाम, मनोहर, चन्दन लिप्त अंगों वाले तथा रत्नाभूषण से भूषित हैं।।१६-२०।।

द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम्। किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम्॥२१॥
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने। कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिषेवितम्॥२२॥
कुत्रचिद्गोपवेषं च वेष्टितं गोपबालकैः। शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे[2] रम्ये वृन्दावने वने॥२३॥
निकरं[3] कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम्। गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने॥२४॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसंमोहकारणम्। निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम्॥२५॥
लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितं च चतुर्भुजैः। कुत्रचित्स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च॥२६॥

१. क. ०द्बीजम्०।
२. क. ०लोद्देशे र०।
३. क. ०रं वामधे०।

वे प्रभु द्विभुज, मुरलीधारी, पीतवर्ण के रेशम के वस्त्र पहनने वाले, किशोर वय, शान्त, राधाकान्त, अनन्त हैं। भगवान् सतत् गोपबालाओं से घिरे किसी निर्जन वनस्थल में, किसी रास के मध्य में राधारानी से सेवित हो रहे हैं। कभी वे गोपवेश में गोप बालकों से घिरे हैं, कभी वे सैकड़ों शिखर युक्त गोवर्धन पर्वत पर जो उत्तम शोभा से युक्त एवं रम्य वृन्दावन है, वहां शिशुरूपधारी होकर कामधेनुओं के झुण्ड को चरा रहे हैं। कभी वे गोलोकस्थ विरजा नदी के तट पर पारिजात के वन में मधुर वेणु के क्वणन से गोपीगण को सम्मोहित कर रहे हैं। कभी वे निरामय वैकुण्ठधाम में चतुर्भुज, लक्ष्मीकान्त तथा पार्षदों से सेवित होकर विराजित हैं। कभी वे अपने अंश रूप से जगत्पालनार्थ अवतीर्ण हैं।।२१-२६।।

श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिषेवितम्।
कुत्रचित्स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम्॥२७॥
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम्।
स्वात्मनः षोडशांशेन सर्वाधारं परात्परम्॥२८॥

कभी वे श्वेतद्वीप में विष्णुरूप धारण करके पद्मा से सेवित हो रहे हैं। कभी किसी ब्रह्माण्ड में वे अपनी अंशकला द्वारा ब्रह्मरूपेण विराजमान हैं। ये प्रभु शिवस्वरूप एवं शिवप्रद (कल्याणप्रद) होकर अपने अंश से स्थित हैं। कहीं पर ये परमात्मा अपनी सोलहवीं कला से परात्पर एवं सर्वाधार रूप से विराजमान हैं।।२७-२८।।

स्वयं महाविराड्रूपं विश्वौघौ यस्य लोमसु।
लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च॥२९॥
नानावतारं बिभ्रन्तं बीजं तेषां सनातनम्।
वसन्तं कुत्रचित्सन्तं योगिनां हृदये सताम्॥३०॥
प्राणरूपं प्राणिनां च परमात्मानमीश्वरम्।
तं च स्तोतुमशक्ताऽहमबला निर्गुणं विभुम्॥३१॥

इस षोडशांश कला से ये परात्पर प्रभु विराट् रूपी हैं, जिनके प्रत्येक रोमकूप में विश्वसमूह विराजमान रहते हैं। ये जगत्पालनार्थ लीला द्वारा अपने अंश तथा कला से नाना अवतारों को ग्रहण करके उन अवतारों से लीला करते हैं। उन सबके ये प्रभु सनातन बीज हैं। कभी ये सत् योगीगण के हृदय में भी निवास करते हैं। ये प्रभु सबके प्राणरूप, परमात्मा तथा ईश्वर हैं। मैं एक अशक्त अबला हूं। मैं ऐसे निर्गुण विभु की स्तुति कैसे कर सकूंगी?।।२९-३१।।

निर्लक्ष्यं च निरीहं च सारं वाङ्मनसोः परम्।
यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च॥३२॥

पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः षडाननः।
यं स्तोतुं न क्षमा माया मोहिता यस्य मायया॥३३॥
यं स्तोतुं न क्षमा श्रीश्च जडीभूता सरस्वती।
वेदा न शक्तं यं स्तोतुं को वा विद्वांश्च वेदवित्॥३४॥
किं स्तौमि तमनीहं च शोकार्ता स्त्री परात्परम्।
इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च॥३५॥

आप निर्लक्ष्य विभु का स्तव सहस्रमुख वाले अनन्त नागदेव भी नहीं कर सकते। जिनका स्तव कर सकने में ब्रह्मा, महेश्वर, गणेश, कार्त्तिकेय भी अक्षम हैं, स्वयं माया भी उनकी माया से मोहित होकर उनका स्तव नहीं कर सकती, लक्ष्मी, सरस्वती, वेदज्ञ विद्वान्, समस्त वेद भी जिनका स्तव करने के सामर्थ्य से रहित हैं, मैं एक सामान्य नारी शोकार्त्त स्थिति में परात्पर निरीह परमेश्वर का स्तव किस प्रकार कर सकती हूं। यह कहकर मालावती चुप हो गई तथा रुदन करने लगी।।३२-३५।।

कृपानिधिं प्रणनाम भयार्ता च पुनः पुनः।
कृष्णश्च शक्तिभिः सार्धमधिष्ठानं चकार ह॥३६॥
भर्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः।
उत्थाय शीघ्रं वीणां च धृत्वा च वाससी पुनः॥३७॥

उस नारी ने भयभीत स्थिति में कृपानिधि भगवान् को पुनः-पुनः प्रणाम किया। इसी समय परमात्मा श्रीकृष्ण शक्ति के साथ उपबर्हण के देह में प्रविष्ट हो गये। तभी गन्धर्वकुमार तत्काल उठा। उसने स्नान करके वस्त्रद्वय पहना और पहले की तरह हाथ में वीणा धारण कर लिया।।३६-३७।।

प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम्। नेदुर्दुन्दुभयो देवाः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥३८॥
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम्। गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त च जगौ क्षणम्॥३९॥
जीवितं पुरतः प्राप देवानां च वरेण च।
जगाम पत्न्या सार्धं च पित्रा मात्रा च हर्षितः॥४०॥
उपबर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः। मालावती रत्नकोटिं धनानि विविधानि च॥४१॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान्सती। वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम्॥४२॥
महोत्सवं च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम्। जगमुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिः स्वयम्॥४३॥

उसने सम्मुख स्थित ब्राह्मणों तथा देवगण को प्रणाम किया। वहां दुन्दुभि बजने लगी। देवगण ने गन्धर्व को सपत्नीक प्रसन्न देख कर वहां पुष्पवर्षा करके उनको आशीर्वाद प्रदान किया। गन्धर्वकुमार ने क्षणकाल उनके समक्ष नृत्य तथा गायन भी किया। तत्पश्चात् उपबर्हण नामक गन्धर्व ने देवताओं के वर के प्रभाव से पिता-माता को भी जीवित देखा। इससे हर्षित होकर उसने सबके साथ गन्धर्व नगर

प्रयाण किया। वहां जाने पर मालावती ने ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको कोटि-कोटि रत्न तथा धन प्रदान किया। वहां वेदपाठ एवं मंगलकार्य सम्पन्न कराने के अनन्तर मंगलप्रद हरिनाम संकीर्त्तन युक्त विविध गहोत्सव भी आरंभ कराया गया। तत्पश्चात् देवता तथा ब्राह्मणरूपी जनार्दन भी वहां से चले गये।।३८-४३।।

एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजं च शौनक। इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत्।।४४।।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते वैष्णवो जनः।
वरार्थी यः पठेद्भक्त्या चाऽऽस्तिकः परमास्थया।।४५।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।।४६।।
भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतम्।
धर्मार्थी लभते धर्मं यशोऽर्थी लभते यशः।।४७।।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत्।
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।।४८।।
भयान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत्। दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः।।४९।।
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे।।५०।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गन्धर्वजीवदाने महापुरुषस्तोत्रप्रणयनं नामाष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

हे शौनक! मैंने आपसे श्रीहरि का स्तवराज पूर्णतः कह दिया। जो व्यक्ति पूजा काल में इस पुण्यजनक स्तव का पाठ करेंगे, वे वैष्णव हरिभक्ति तथा हरिदास्यत्वलाभ में समर्थ होंगे। जो आस्तिक वरप्रार्थी होकर परम भक्ति के साथ यह पाठ करेगा, वह निश्चित रूप से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी फललाभ में समर्थ होगा। विद्यार्थी विद्या, धनार्थी धन, भार्यार्थी भार्या, पुत्रार्थी पुत्र, धर्मार्धी धर्म, यशप्रार्थी यश लाभ करेगा। यह स्तवपाठ करने पर राज्यभ्रष्ट को राज्य, प्रजाभ्रष्ट को प्रजालाभ होगा। रोगी रोग से, बद्ध बन्धन से मुक्त होगा। भीत व्यक्ति भय रहित होगा। धन नष्ट व्यक्ति धन लाभ करेगा तथा जो व्यक्ति वन में, दस्यु अथवा हिंसक जन्तु से आक्रान्त स्थिति में होंगे, दावाग्नि में पड़े होंगे, समुद्र में डूब रहे होंगे, इस स्तव पाठ से वे रक्षा प्राप्त करेंगे।।४४-५०।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

ब्रह्माण्डपावन कवच तथा बाणासुर द्वारा शंकर का स्तव करना

सौतिरुवाच

मालावती धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता। चकार विविधं वेशं स्वात्मनः कृते॥१॥
भर्तृश्चकार शुश्रूषां पूजां च समयोचिताम्। तेन सार्धं सुरसिका रेमे सा सुचिरं मुदा॥२॥
महापुरुषस्तोत्रं च पूजां च कवचं मनुम्। विस्मृतं बोधयामास स्वयं रहसि सुव्रता॥३॥
पुरा दत्तं वसिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः। गन्धवार्य च मालत्यै मन्त्रमेकं च पुष्करे॥४॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं वसिष्ठश्च कृपानिधिः। गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः॥५॥

सौति कहते हैं–तदनन्तर मालावती ने प्रसन्न मन से ब्राह्मणों को धन दान देकर अपने स्वामी के मनोरंजनार्थ विविध वेषभूषा धारण किया तथा समयोचित रूप से स्वामी की पूजा एवं सूश्रुषा में निरत हो गयीं। रसिका मालावती ने परम उल्लास के साथ दीर्घकाल पर्यन्त पति के साथ विहार किया। पूर्वकाल में पुष्करतीर्थ में वसिष्ठदेव ने जो श्रीहरि सम्बन्धित स्तोत्र पूजादि उन पति-पत्नी को प्रदान किया था, वह विस्मृत हो जाने के कारण सुव्रता मालावती ने स्वामी को पुनः याद करा दिया। इस प्रकार उन महापुरुष (श्रीकृष्ण) का स्तव-कवच-मन्त्र-पूजादि जब उपबर्हण को पुनः स्मरण हो गया, तब स्वयं कृपालु वसिष्ठ देव ने निर्जन में विस्मृत शूलपाणि के भी स्तव-कवचादि को उन उपबर्हण गन्धर्व की स्मृति में दृढ़ता से स्थापित कर दिया॥१-५॥

एवं चकार राज्यं च कुबेरभवनोपमे। आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो बान्धवैः सह॥६॥

यथातथागताभिश्च स्त्रीभिरन्याभिरेव च।
आगत्य ताभिः स्वस्वामी संप्राप्तः परया मुदा॥७॥

इस प्रकार गन्धर्व उपबर्हण परमानन्द सहित अपने कुबेर भवन के समान भवन में दीर्घकाल पर्यन्त बन्धु-बान्धवादि परिवारवर्ग के साथ अत्यन्त राज्यसुख भोग करने लगा। तब नानास्थानगत उसकी शेष ४९ पत्नियां भी वहां आकर आनन्दमग्न होकर पति उपबर्हण के साथ निवास करने लगीं॥६-७॥

शौनक उवाच

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा।
दत्तो विशिष्टस्ताभ्यां च तं भवान्वक्तुमर्हति॥८॥

द्वादशाक्षरमन्त्रं च शूलिनः कवचादिकम्। दत्तं गन्धर्वराजाय वसिष्ठेन च किं पुरा॥९॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम। शङ्करस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम्॥१०॥

शौनक कहते हैं—हे सौति! पूर्वकाल में वसिष्ठदेव ने इन गन्धर्वदम्पत्ति को विष्णु का कौन–सा स्तोत्र–कवचादि तथा पूजाविधि बतलाया था। उसे कृपया कहिये। वसिष्ठदेव ने इन गन्धर्वराज को पूर्वकाल में शूलपाणि शिव का जो १२ अक्षरात्मक मन्त्र तथा कवच का उपदेश दिया था, उस दुःखहारी शिवमन्त्र तथा स्तव–कवचादि को सुनने की तीव्र इच्छा है। कृपया कहिये।।८–१०।।

तुष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम्। तदेव स्तोत्रं दत्तं च मन्त्रं च कवचं शृणु।।११।।
ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा। इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोडशाक्षरम्।।१२।।
पुरा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः। पुरा दत्तं च कृष्णेन गोलोके शङ्कराय च।।१३।।
ध्यानं च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम्। मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम्।।१४।।

सौति कहते हैं—मालावती ने जिस स्तोत्रपाठ से परमेश्वर का स्तव किया था, वही उनको वसिष्ठदेव ने प्रदान किया था। अब आप लोग उस मन्त्र तथा स्तव का श्रवण करिये। "ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा" यह षोडशाक्षर मन्त्र वसिष्ठदेव प्रदत्त है। पूर्व में ब्रह्मदेव ने पुष्करतीर्थ में श्रीहरि का यह मन्त्र कुमार को दिया था। यही मन्त्र पूर्वकाल में गोलोकधाम में श्रीकृष्ण ने शंकर को प्रदान किया था। साथ ही वेदोक्त सर्वदुर्लभ शाश्वत विष्णु का ध्यान भी प्रदान किया था, जो दुर्लभ है। नैवेद्यादि समुदय उत्तम देय वस्तु भगवान् को मूलमन्त्र जपते हुए प्रदान करें।।११–१४।।

अतीव गुप्तकवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम्। पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम्।।१५।।
शूलिने ब्रह्मणा दत्तं गोलोके रासमण्डले। धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम्।।१६।।

हे विप्र! भगवान् के अतीव गुप्त कवच को मैंने पितृमुख से श्रवण किया था। उस कवच को गंगातट पर मेरे पिता को भगवान् शूलपाणि ने प्रदान किया था। इस कवच को गोपीकान्त श्रीकृष्ण ने गोलोकस्थ रासमंडल में कृपा पूर्वक शंकर, ब्रह्मा तथा धर्मदेव से कहा था।।१५–१६।।

ब्रह्मोवाच

राधाकान्त महाभाग कवचं यत्प्रकाशितम्। ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो।।१७।।
मां महेशं च धर्मं च भक्तं च भक्तवत्सल।
त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः।।१८।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे राधाकान्त! महाभाग! प्रभो! आपने ब्रह्माण्डपावन नामक जो कवच प्रकाशित किया था, हे भक्तवत्सल! वह कृपा करके मुझे, महेश्वर को तथा धर्म को बतायें। हम सभी आपके भक्त हैं। मैं भक्ति के साथ आपके इस कृपाप्रसाद को अपने पुत्रों को भी प्रदान करूंगा।।१७–१८।।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम्।
अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्।।१९।।

यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि।
यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च॥२०॥
कुरु सृष्टिमिमं धृत्वा धाता त्रिजगतां भव। संहर्ता भव हे शंभो मम तुल्यो भवे भव॥२१॥
हे धर्म त्वमिदं धृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम्। तपसां फलदातारो यूयं भवत मद्वरात्॥२२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे ब्रह्मा! ईश्वर (शिव)! धर्म! इस गोपनीय दुर्लभ कवच को आप लोगों को प्रदान कर रहा हूं। यह मेरे लिये प्राणवत् है। इसे जिस किसी व्यक्ति को कदापि प्रदान न करें। मेरे शरीर में जो तेज है, वही तेज इसमें भी विराजमान है। हे ब्रह्मन्! इस कवच को आप धारण करके सृष्टि करिये। इस प्रकार से जगद्विख्यात हो जाइये। हे भव (शंकर!) आप इसे धारण करके संहर्त्ता तथा मेरे समान हो जायें। हे धर्म! आप भी इसे ग्रहण करके सभी प्राणीगण के कर्मों के साक्षी हो जायें। मेरे वर से आप तप के फलदाता हो जायें।।१९-२२।।

ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम्।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं जगदीश्वरः॥२३॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। त्रिलक्षवारपठनात्सिद्धिदं कवचं विधे॥२४॥
यो भवेत्सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेच्च सः।
तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च॥२५॥

इस ब्रह्माण्ड को पावन करने वाले कवच के ऋषि हैं हरि! छन्दः है गायत्री, मैं जगदीश्वर इसका देवता हूं। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चतुर्वर्ग फलप्राप्ति ही इसका विनियोग (प्रयोग) है। हे विधाता! यह कवच ३ लाख जप करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो व्यक्ति यह कवच सिद्ध कर लेता है, वह तेज, सिद्धि, योग, ज्ञान तथा विक्रम में मेरे समान हो जाता है।।२३-२५।।

प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च। भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च॥२६॥
कृष्णः पायाच्छ्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च।
जिह्विकां वह्निजाया तु कृष्णायेति च सर्वतः॥२७॥
श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठं पातु षडक्षरः।
ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं क्लींपूर्वश्च भुजद्वयम्॥२८॥
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु।
दन्तपङ्क्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च॥२९॥

प्रणव मेरे शिर की, "नमो रासेश्वराय" मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करें। कृष्ण दोनों कानों की रक्षा करें। "हे हरि!" यह नाम नासिका की, 'स्वाहा' जिह्वा की तथा "कृष्णाय स्वाहा" यह मन्त्र चतुर्दिक् रक्षा करें। "श्रीकृष्णाय स्वाहा" यह मन्त्र जो षडक्षर है, मेरे कण्ठ की रक्षा करें। "ह्रीं कृष्णाय नमः" मेरे मुख की रक्षा करें। "क्लीं कृष्णाय नमः" यह भुजद्वय की रक्षा करें। "नमो गोपांगनेशाय" यह मन्त्र

(अष्टाक्षर मन्त्र) मेरे कंधों की, "ॐ नमो गोपीश्वराय" मेरे दन्तपंक्ति की तथा ओंठ और अधर की रक्षा करें।।२६-२९।।

ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा।
स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः।।३०।।
ऐं कृष्णाय स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु।
ॐ विष्णवे स्वाहेति च कपोलं सर्वतोऽवतु।।३१।।

ॐ हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु। ॐ गोवर्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम्।।३२।।

प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः।
दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः।।३३।।
वारुण्यां पातु गोविन्दो वायव्यां राधिकेश्वरः।
उत्तरे पातु रासेश ऐशान्यामच्युतः स्वयम्।।३४।।

सततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम्। इति ते कथितं ब्रह्मन्कवचं परमाद्भुतम्।।३५।।

"ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा" यह षोडशाक्षर मन्त्र मेरे वक्ष की रक्षा करे। "ऐं कृष्णाय स्वाहा" सर्वदा मेरे दोनों कानों की तथा "ॐ विष्णवे स्वाहा" मेरे कपोलों की सभी ओर से रक्षा करे। "ॐ हरये नमः" सर्वदा पीठ की तथा पदद्वय की रक्षा करे। "ॐ गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा" मेरे पूरे शरीर की रक्षा करे। श्रीकृष्ण पूर्व में, माधव अग्निकोण में, गोपीश दक्षिण में, नन्दनन्दन नैर्ऋत् कोण में मेरी रक्षा करें। पश्चिम में गोविन्द, वायुकोण में राधिकेश्वर, उत्तर में रासेश, ईशान कोण में अच्युत मेरी रक्षा करें। वे सर्वश्रेष्ठ स्वयं नारायण सभी दिशाओं में मेरी रक्षा सर्वतोभावेन करें। यह मैंने परम अद्भुत नारायण कवच कहा।।३०-३५।।

मम जीवनतुल्यं च युष्मभ्यं दत्तमेव च। अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च।

कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात्।।३६।।
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
स्नात्वा तं च नमस्कृत्य कवचं धारयेत्सुधीः।।३७।।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज[1]।।३८।।

मैंने अपने जीवन के समान कवच आप लोगों को दे दिया। इसे धारण करने से सहस्त्र अश्वमेध तथा सौ वाजपेय यज्ञ इसके एक अक्षर के बराबर भी नहीं हैं। सुखी व्यक्ति स्नान के उपरान्त विविध वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनादि से गुरु की पूजा करके उनको प्रणाम करे। तब यह कवच धारण करना

१. क. द्विज। इति महापुरुषब्रह्माण्डकथनं नाम कवचं सम्पूर्णम्।

चाहिए। इस कवच के प्रभाव से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाते हैं। यह कवच सिद्ध होने पर वह व्यक्ति विष्णु के समान हो जायेगा।।३६-३८।।

।।ब्रह्माण्ड पावन कवच समाप्त।।

सौतिरुवाच

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक। वसिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः।।३९।।
ॐ नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः। दत्तो वसिष्ठेन पुरा पुष्केन कृपया विभो।।४०।।
अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा। स्वयं शंभुश्च बाणाय तथा दुर्वाससे पुरा।।४१।।
मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम्। ध्यायेन्नित्यादिकं[1] ध्यानं वेदोक्तं सर्वसंमतम्।।४२।।

ॐ नमो महादेवाय।

सौति कहते हैं—हे शौनक! पूर्वकाल में वसिष्ठदेव ने गन्धर्वराज को महादेव का जो मन्त्र तथा स्तव कवच प्रदान किया था, यही पूर्वकाल में भगवान् ब्रह्मा ने रावण को तथा स्वयं शंकर ने पूर्वकाल में बाणासुर एवं दुर्वासा मुनि को दिया था। मूलमन्त्र द्वारा ही नैवेद्यादि सभी उत्तम वस्तु को शिव के समक्ष अर्पित करे। इसमें "ध्यायेन्नित्यं महेशं" इत्यादि ध्यान वेदोक्त तथा सर्वसम्मत है। (पूर्वकाल में कवच की अभिलाषा से महादेव को सम्बोधित करते बाणराज ने कहा था) "ॐ नमो महादेवाय"।।३९-४२।।

बाणासुर उवाच

महेश्वर महाभाग कवचं यत्प्रकाशितम्। संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो।।४३।।

बाणासुर कहते हैं—हे प्रभो! महादेव! महाभाग! संसारनाशन नामक आपका जो कवच है, कृपया उसे कहिये।।४३।।

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं परमाद्भुतम्।
अहं तुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम्।।४४।।

पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च। ममैवेदं च कवचं भक्त्या यो धारयेत्सुधीः।।४५।।
जेतु शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया। संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।।४६।।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं च महेश्वरः। धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः।।४७।।

महेश्वर कहते हैं—हे वत्स! परम अद्भुत कवच सुनिये। मैं यह सुदुर्लभ गोपनीय कवच तुमको प्रदान करता हूं। पूर्वकाल में त्रैलोक्य विजयार्थ मैंने यह दुर्वासा को दिया था। जो सुधी मानव भक्तिभाव

---

१. क. ०त्यात्मकं।

के साथ यह कवच धारण करते हैं, हे महाभाग! वे तो अनायास ही त्रैलोक्य जय में समर्थ हो जाते हैं। संसारपावन नामक इस कवच के ऋषि हैं प्रजापति। छन्दः है गायत्री। इसके देवता हैं महेश्वर! इसका विनियोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लिये होता है।।४४-४७।।

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत्। यो भवेत्सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि।
तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च॥४८॥

पांच लाख जप द्वारा यह कवच सिद्ध होता है। जो इस कवच को सिद्ध कर लेता है, वह भूमि पर मेरे समान है। वह तेज, सिद्धि, योग, तप, विक्रम में मेरे ही तुल्य कहा गया है।।४८।।

शंभुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः।
दन्तपङ्क्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम्॥४९॥
कण्ठं पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ वृषभवाहनः।
वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः॥५०॥
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा। स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु संततम्॥५१॥

शंभु मस्तक की, महेश्वर मुख की, नीलकण्ठ दन्तपंक्ति की, अधर-ओष्ठ की रक्षा स्वयं हर करें। चन्द्रचूड़ कण्ठ की, वृषवाहन स्कन्ध की, नीलकण्ठ वक्षःस्थल की, दिगम्बर पीठ की रक्षा करें। मेरे सभी अंगों की रक्षा विश्वेश सभी दिशाओं में करें। भगवान् स्थाणु सतत् स्वप्न तथा जाग्रत अवस्था में मेरी रक्षा करें।।४९-५१।।

इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम्। यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः॥५२॥
यत्फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात्॥५३॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥५४॥

हे बाणासुर! यह मैंने परम अद्भुत कवच कह दिया। इसे जिस-किसी को नहीं देना चाहिए। इसे प्रयत्नतः गोपनीय रखे। जो फल सभी तीर्थ में स्नान से मिलता है, वह फल मात्र कवच धारण से प्राप्त हो जाता है। जो मन्दबुद्धि मनुष्य इस कवच का पाठ किये बिना मेरा भजन करता है, वह सौ लाख मन्त्र जप से भी सिद्धिलाभ नहीं कर पाता।।५२-५४।।

सौतिरुवाच

इदं च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रं च शृणु शौनक।
मन्त्रराजः कल्पतरुर्वसिष्ठो दत्तवान्पुरा॥५५॥

सौति कहते हैं—हे शौनक! पूर्वकाल में वसिष्ठ देव द्वारा प्रदत्त कल्पतरु सदृश मन्त्रराज तथा कवच का मैंने वर्णन कर दिया। अब स्तोत्र पाठ सुनिये।।५५।।

ॐ नमः शिवाय।

बाणासुर उवाच

वन्दे सुराणां सारं च सुरेशं नीललोहितम्। योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च गुरोर्गुरुम्॥५६॥
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्॥५७॥
तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम्। वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः॥५८॥
कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम्। आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्॥५९॥

बाणराज ने कहा—"ॐ नमः शिवाय। जो देवगण में श्रेष्ठ तथा योग के ईश्वर हैं, योग के कारण हैं तथा जो योगीगण के गुरुओं के भी गुरु हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! वे ज्ञानानन्द, ज्ञानरूप, ज्ञानबीज, सनातन, तपःफल के दाता, सर्वसम्पत् प्रदाता, तपोरूप, तपोबीज, श्रेष्ठ तपोधन के भी धन हैं। वे वर, वरेण्य हैं। वे वरदाता, सिद्धगण के ईश्वर, भोग-मोक्ष के कारण तथा नरकार्णव से पार कराने वाले हैं। वे करुणा सागररूप हैं, जिनका मुखकमल निरन्तर प्रसन्न रहता है, उनको भक्तगण द्वारा अतिशीघ्र सन्तुष्ट किया जा सकता है।।५६-५९।।

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभम्। ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्॥६०॥
विषयाणां विभेदेन बिभ्रतं बहुरूपकम्। जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम्॥६१॥
वायुरूपं चन्द्ररूपं[1] सूर्यरूपं महत्प्रभुम्। आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया॥६२॥
भक्तजीवनमीशं च भक्तानुग्रहकारकम्[2]।
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्॥६३॥

जिनकी देहकान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्र, कुमुद तथा शुक्लपक्ष जो समान सुन्दर है, जो ईश्वर ब्रह्मज्योतिस्वरूप तथा भक्तजन के प्रति अनुग्रह के कारण ही शरीरधारी हैं, जो प्रभु ईश्वर विषय भेद से जल-अग्नि-आकाश-वायु-चन्द्र-सूर्य इत्यादि नानारूपेण सभी स्थान पर भ्रमण करते हैं, जो लीलामात्र से आत्मपद भी देने में समर्थ हैं, जो ईश्वर भक्तजन के जीवनस्वरूप तथा अनुग्रहकारक हैं, किम्बहुना समस्त वेद भी उनका स्तव कर सकने में समर्थ नहीं हैं, मैं कैसे उनका स्तव कर सकूंगा?।।६०-६३।।

अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसो परम्।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम्॥६४॥

वे वाक्य-मन से परे, परमेश्वर, अपरिच्छिन्न, वृषवाहन हैं। वे दिगम्बर एवं व्याघ्रचर्मधारी हैं। वे चन्द्रशेखर एवं त्रिशूल पट्टिशधारी हैं, मैं उनका स्तव कैसे कर सकूंगा? उनका मुख मधुर मुस्कान युक्त रहता है।।६४।।

---

१. क. ०पं महर्षीणां म०।
२. क. ०म्। देवा।

इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं बाणः सुसंयतः।
प्राणमच्छङ्करं भक्त्या दुर्वासाश्च मुनीश्वरः॥६५॥
इदं दत्तं वसिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने। कथितं च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम्॥६६॥

बाणराज तथा ऋषिप्रवर दुर्वासा नित्य संयत मन से इस स्तोत्रराज का पाठ करते थे तथा भगवान् शिव को प्रणाम भी करते थे। हे मुनिप्रवर! पूर्वकाल में वसिष्ठदेव ने यह स्तोत्र गन्धर्व को दान किया था। मैंने यह शूलपाणि का महान् स्तोत्र कह दिया॥६५-६६॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं[1] पठेद्भक्त्या च यो नरः।
स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम्॥६७॥

जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक इस महान् पुण्यमय स्तोत्र को भक्ति के साथ पढ़ता है, वह निश्चित रूप से सभी तीर्थों में आराधना का फल प्राप्त कर लेता है॥६७॥

अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः। संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शङ्करं गुरुम्॥६८॥

जो संयत होकर, हविष्यासी रहकर जगद्गुरु शंकर को प्रणाम करते हैं, अपुत्र होने पर उनको पुत्र एक वर्ष तक आराधना द्वारा प्राप्त हो जाता है॥६८॥

गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः।
अवश्यं मुच्यते रोगाद्व्यासवाक्यमिति श्रुतम्॥६९॥
कारागारेऽपि बद्धो यो नैव प्राप्नोति निर्वृतिम्।
स्तोत्रं श्रुत्वा मासमेकं मुच्यते बन्धनाद्ध्रुवम्॥७०॥

भयानक शूलरोगी तथा गलित कुष्ठ का रोगी एक वर्ष तक इस कवच का श्रवण करता है, वह रोगों से अवश्य मुक्तिलाभ करता है। यह व्यासदेव का निश्चित कथन है। जो बन्धनयुक्त होकर बंदीगृह में बद्ध है, जो किसी भी प्रयास से कारागार से छूट नहीं सकता, यह स्तोत्र नित्य सुने। वह एक मास संयत रहे। उसे अवश्य बंधनमुक्ति मिलेगी। यह ध्रुव निश्चित है॥६९-७०॥

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भक्त्या मासं शृणोति यः।
मासं श्रुत्वा संयतश्च लभेद्भ्रष्टधनो धनम्॥७१॥
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोति चेत्।
निश्चितं मुच्यते रोगाच्छङ्करस्य प्रसादतः॥७२॥

इससे राज्यच्युत व्यक्ति राज्यलाभ करता है। उसे एक मास नित्य भक्ति पूर्वक यह कवच पाठ करना चाहिए। जिसका धन नष्ट है, वह एक मास तक तथा संयत होकर यह स्तोत्र श्रवण करके, अपना गायब हो गया धन एक मास में पुनः पाता है। जो यक्ष्माग्रस्त मनुष्य एक वर्ष तक आस्तिकता के साथ यह स्तोत्र सुनेगा, वह शंकर की कृपा से निश्चित रूप से रोगमुक्त होगा॥७१-७२॥

१. क. ०ण्यं प्रातरुत्थाय पठेत्। स्ना०।

यः शृणोति सदा भक्त्या स्तवराजमिमं द्विज।
तस्यासाध्यं त्रिभुवने नास्ति किञ्चिच्च शौनक॥७३॥
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य भारते। अचलं परमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः॥७४॥

हे द्विज! यह स्तवराज जो कोई भक्तिभाव से सुनेगा, हे शौनक! त्रैलोक्य में उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। भारत में उसे कभी भी बन्धुवियोग नहीं होगा। वह अचल परमैश्वर्य लाभ करेगा। इसमें संशय न करे।।७३-७४।।

सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकं शृणोति यः।
अभार्यो लभते भार्यां सुविनीतां सतीं वराम्॥७५॥
महामूर्खश्च दुर्मेधा मासमेकं शृणोति यः। बुद्धिं विद्यां च लभते गुरूपदेशमात्रतः॥७६॥
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः।
ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य शङ्करस्य प्रसादतः॥७७॥

जो मनुष्य सुसंयत होकर एक माह इस कवच का श्रवण करता है, वह पत्नी रहित होने पर पत्नीलाभ करता है। उसकी पत्नी विनीत तथा श्रेष्ठ सती होगी। जो मंदबुद्धि, महामूर्ख एक मास तक यह स्तव श्रवण करेगा, वह मात्र गुरु के उपदेश से ही बुद्धि एवं विद्या प्राप्त करेगा।।७५-७७।।

इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्तिं सुदुर्लभाम्।
नानाप्रकारधर्मं च यात्यन्ते शङ्करालयम्॥७८॥
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शङ्करम्। यः शृणोति त्रिसंध्यं च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम्॥७९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुशङ्करस्तोत्रकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

वह इहलोक में दुर्लभ कीर्त्ति तथा सुख भोग करके तथा अनेक प्रकार के धर्म का पालन करके शंकर के लोक जाता है। वह वहां प्रवर शंकर पार्षद होकर शंकर की सेवा करता है। यह फल उसे ही मिलेगा, जो त्रिसन्ध्या काल में नित्य उत्तम स्तोत्र पाठ करेगा।।७८-७९।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।

अथ विंशोऽध्यायः

उपबर्हण गन्धर्व का क्षुद्रयोनि में जन्म

सौतिरुवाच

मुदा मालावतीसार्धं गन्धर्वश्चोपबर्हणः। रेमे कालावशेषं च ताभिश्च निर्जने वने॥१॥
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह। नानाविधं क्रतुवरं महत्पुण्यं चकार ह॥२॥

सौति कहते हैं–तदनन्तर उपबर्हण गन्धर्व ने मालावती तथा शेष पत्नियों के साथ आनन्द पूर्वक निर्जन वन में विहारसुख के साथ जीवनयापन किया। उनके वृद्ध पिता गन्धर्वराज ने भी अपने पुत्रों तथा पत्नियों के साथ आनन्द पूर्वक महत् पुण्यकार्य तथा अनेक उत्तम यज्ञानुष्ठान भी किया॥१-२॥

राजत्वं बुभुजे राजा कुबेरभवनोपमे। रेमे सुशीलया सार्धं स्थिरयौवनयुक्तया॥३॥
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे। पत्न्या सार्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठं च ययौ मुदा॥४॥
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया। बभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोः श्यामचतुर्भुजः॥५॥

इन गन्धर्वराज ने कुबेर के महल जैसे अपने भवन में जीवन का शेष समय अपनी पत्नी सुशीला के साथ सुख पूर्वक व्यतीत किया। अन्त में गन्धर्वराज ने यथाकाल अपनी पत्नी सुशीला के साथ गंगातट पर प्राणत्याग के उपरान्त प्रसन्न मन से वैकुण्ठलोक प्रयाण किया था। अन्ततः ये गन्धर्वराज शिव की सन्तुष्टि तथा पुत्र की विष्णुसेवा के प्रभाव से वैकुण्ठ में श्यामवर्ण चतुर्भुज होकर विष्णु के पार्षद हो गये!॥३-५॥

कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपबर्हणः।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्र धनानि विविधानि च॥६॥
काले स्वयं ब्रह्मशापात्प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः।
स जज्ञे वृषलीगर्भे ब्रह्मबीजेन शौनक॥७॥

माता-पिता के वैकुण्ठगमन के उपरान्त उपबर्हण गन्धर्व ने उनका संस्कार करके ब्राह्मणों को अनेक दान प्रदान किया और तत्पश्चात् देहत्यागोपरान्त उपबर्हण ने ब्रह्मशाप के प्रभाव से ब्राह्मण के वीर्य से शूद्रा के गर्भ से जन्म ग्रहण किया॥६-७॥

मालावती वह्निकुण्डे पुष्करे भारते भुवि।
कृत्वा तु वाञ्छितं कामं प्राणांस्तत्याज सा सती॥८॥
सृञ्जयस्य तु पत्न्यां च मनुवंशोद्भवस्य च।
जज्ञे नृपस्य साध्वी सा पुण्या जातिस्मरा वरा॥९॥

उपबर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च। इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा॥१०॥

इसी के पश्चात् सती मालावती ने पृथिवी पर स्थित भारत के पुष्कर तीर्थ स्थित ब्रह्मा के यज्ञकुण्ड में कामना सहित प्राणत्यागोपरान्त मनुवंशीय सृंजयराज की पत्नी के गर्भ से पवित्र स्वभाव वाली साध्वी के रूप में जन्म लिया, जिसे पूर्वजन्म की स्मृति प्राप्त थी। श्रेष्ठ सुन्दरी मालावती ने प्राणत्याग काल में यह कामना किया था कि मेरे अगले जन्म में उपबर्हण ही मेरे पति हों।।८-१०।।

शौनक उवाच

ब्रह्मवीर्याच्छूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपबर्हणः। जातः केन प्रकारेण तद्भवान्वक्तुमर्हति॥११॥

शौनक मुनि कहते हैं—हे सौति! उपबर्हण ब्राह्मण के औरस से शूद्र नारी के गर्भ से कैसे जन्मे? कृपया कहिये।।११।।

सौतिरुवाच

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः।
कलावती तस्य पत्नी वन्ध्या चापि पतिव्रता॥१२॥
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्तुराज्ञया।
उपतस्थे वने घोरे[1] नारदं काश्यपं मुनिम्॥१३॥
ध्यायमानं च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
तस्थौ सुवेशं कृत्वा सा ध्यानान्तं च मुनेः पुरः॥१४॥

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभातुल्येन तेजसा। तपन्तं दूरतोऽप्येवं समीपं गन्तुमक्षमा॥१५॥

सौति कहते हैं—कान्यकुब्ज देश में द्रुमिल राजा की पतिव्रता वन्ध्या पत्नी थी। वह कलावती स्वामी के दोष से वन्ध्या थी। वह किसी काल में पति की आज्ञा से वन में काश्यप ऋषि (काश्यप पुत्र नारद) के समीप आई। ये मुनि कृष्णध्यान में तल्लीन तथा ब्रह्मतेज से उद्भासित थे। उनका तेज ग्रीष्मकालीन सूर्य तेज के समान दसों दिशाओं को दीप्त कर रहा था। कलावती उस समय अत्यन्त सुन्दर वेश से सज्जित थी। वह इन मुनि के तेज से तप्त हो गईं तथा उनसे दूर ही खड़ी हो गईं।।।१२-१५।।

ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठः परं कृष्णपरायणः। ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिरयौवनाम्॥१६॥
चारुचम्पकवर्णाभां शरत्पङ्कजलोचनाम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां रत्नभूषणभूषिताम्॥१७॥

बृहन्नितम्बभारार्तां पीनश्रोणिपयोधराम्।
शोभितां पीतवस्त्रेण सस्मितां रक्तलोचनाम्॥१८॥

मोहितां मुनिरूपेण कामबाणप्रपीडिताम्। दर्शयन्तीं स्तनश्रोणिं मैथुनासक्तचेतसा॥१९॥

तदनन्तर कृष्णपरायण मुनि ने ध्यान का अवसान हो जाने पर दूर से इस स्थिर यौवना सुन्दरी

---
१. क. ॰रे वरदं कस्य॰।

नारी को देखा, जिसकी देहकान्ति सुन्दर चम्पक के समान तथा लोचनद्वय शरत्कालीन कमल के तुल्य थे। उसके सभी अंग रत्नभूषण से विभूषित थे। उसका मुखकमल शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान प्रतीत हो रहा था। इस सुन्दरी के स्तन मण्डल तथा जघन (जंघा) स्थूल थे। यह अपने मांसल विशाल नितम्ब भार से मानों थकी जा रही थी। यह पीतवर्ण के वस्त्रों से शोभायमान, मन्द मुस्कान युक्त, आरक्त नयना थी। वह मुनि काश्यप के रूप पर अत्यन्त मोहित तथा मैथुनासक्त होकर अपने स्तनद्वय एवं श्रोणिमण्डल का दर्शन उनको करा रही थी।।१६-१९।।

सिन्दूरबिन्दुभूषाढ्यां सुचारुकज्जलोज्ज्वलाम्[१]।
पादालक्तकशोभाढ्यां रूपेणैव यथोर्वशीम्।।२०।।

उस कलावती के सुन्दर कपोल सिन्दूर विन्दुयुक्त होने के कारण अत्यन्त उज्ज्वल लग रहे थे। तलवों की शोभा की तो कोई सीमा नहीं थी, क्योंकि वे आलता से रंगे थे। किम्बहुना, वह नारी अपने रूप के कारण उर्वशी जैसी लग रही थी।।२०।।

मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने।
कस्य पत्नी कथं वाऽत्र सत्यं ब्रूहि च पुंश्चलि।।२१।।

मुनिवर ने उस रमणी को देख कर जिज्ञासा किया—"तुम इस निर्जन वन में अकेली क्यों विचरण कर रही हो? सत्य कहना, तुम तो मुझे एक पुंश्चली प्रतीत हो रही हो!।।२१।।

मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती। उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि।।२२।।

मुनि का यह कथन सुन कर कलावती कांप उठी। उसने मन ही मन श्रीकृष्ण का स्मरण किया तथा विनय पूर्वक कहने लगी—।।२२।।

कलावत्युवाच

गोपिकाऽहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी।
पुत्रार्थिनी चाऽऽगताऽहं त्वन्मूलं भर्तुराज्ञया।।२३।।
वीर्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थितां[२]।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा।।२४।।

कलावती कहती है—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं गोपकन्या तथा द्रुमिल की पत्नी हूं। पुत्र की प्रार्थना हेतु आपके पास आई हूं। आप मुझे गर्भ प्रदान करिये। स्वयं उपस्थित नारी की उपेक्षा करना उचित नहीं होता। जैसे सर्वभक्षी अग्नि को कोई दोष नहीं लगता, उसी प्रकार आप जैसे तेजस्वी का कोई कार्य दोषयुक्त नहीं कहा जाता।।२३-२४।।

---

१. क. कञ्जलोचनाम्। पा.।
२. स्त्रीं नोपेक्षेदुपस्थितामिति पाठान्तरम्।

वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः। उवाच नित्यं सत्यं च कोपप्रस्फुरिताधरः॥२५॥

इस वृषली नारी का कथन सुन कर मुनिवर क्रोध में भर गये। क्रोध से उनके ओष्ठ तथा अधर कांपने लगे। तब उन्होंने नीतिपूर्ण यथार्थ वचन कहा–॥२५॥

काश्यप उवाच

यः स्वलक्ष्मीं च भोगार्हां पराय दातुमिच्छिति।
तं सा त्यजति मूढं च वेदवाद इति ध्रुवम्॥२६॥

काश्यप ऋषि कहते हैं–जो भोग के लिये अपनी भोग्या लक्ष्मी (गृहिणी) को अन्य को प्रदान करता है, वह लक्ष्मी (नारी) उस मूढ़ का सदा के लिये त्याग कर देती है। यह वेद की आज्ञा है॥२६॥

न त्वं द्रुमिलभोगार्हा पुनरेव भविष्यसि।
विरक्तेन स्वयं त्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः॥२७॥
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
स चाण्डालो भवेत्सत्यं न कर्मार्हो द्विजातिषु॥२८॥

पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलांस्पर्शे सुरार्चने। नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः॥२९॥

कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरुषान्।
मातामहान्स्वात्मनश्च दश पूर्वान्दशापरान्॥३०॥
तत्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डः सद्यः पुरीषकम्।
शालग्रामस्य तत्स्पर्शे चोपवासस्त्रिरात्रकम्॥३१॥

इस अकार्य को करके तुम पुनः द्रुमिल राजा की भोग्या नहीं रह सकोगी। वह तुमको पुनः स्वीकार नहीं करेगा। जो ब्राह्मण अज्ञान के चलते शूद्र नारी का संसर्ग करता है, वह ब्राह्मणों के किसी कर्म का अधिकारी नहीं रह जाता। वह चाण्डाल कहा जाता है। ब्रह्मा का कथन है कि पितरों के श्राद्ध, यज्ञ, शालग्राम शिलास्पर्श तथा देवता पूजादि का कोई अधिकार उसे नहीं रहता। वह पातकी अपने मातृकुल को तथा अपनी पूर्वापर दस पीढ़ी को नरकगामी करके अन्ततः स्वयं भी कुंभीपाक में जाता है। उसका किया तर्पण मूत्रवत् तथा पिण्डदान सद्यः मलवत् हो जाता है। ऐसा ब्राह्मण शालग्राम का स्पर्श करने पर तीन रात्र पर्यन्त (३ दिन-रात) उपवास करे॥२७-३१॥

तदिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम्। संन्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नं च पुरीषवत्॥३२॥

कुम्भीपाके पच्यते स शक्रान्तं यावदेव हि। एकविंशतिपुरुषैः सार्धं सत्यं च पुंश्चलि॥३३॥

पत्रोच्छिष्टं च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः।
तत्तुल्योऽधरभोजी चैवेत्याङ्गिरसभाषितम्॥३४॥

उसके इष्टदेव उसका प्रदत्त नैवेद्य एवं जल ग्रहण ही नहीं करते। ब्राह्मण तथा संन्यासी उसके

दिये अन्न को मल के समान माने। जब तक एक इन्द्र का शासनकाल है, तब तक वह अपनी २१ पीढ़ी के पितृगण के साथ कुंभीपाक नरक में पकाया जाता है। हे पुंश्चली! ऋषि अंगीरा का कथन है कि जो ब्राह्मणाधम शूद्र के जूठे पात्र में भोजन करता है, वह तो स्वयं नीचभोजी है।।३२-३४।।

शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणीं ज्ञानदुर्बलः। स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।३५।।

अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालं च कालसूत्रके।
ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिर्ध्रुवम्।।३६।।

यदि शूद्र पुरुष अज्ञान से अंधा होकर ब्राह्मणी को पत्नी बनाता है अथवा उससे समागम करता है, तब वह अधम शूद्र १४ इन्द्रों के स्थितिकाल पर्यन्त कालसूत्र नरक में यन्त्रणा का भोग करेगा। वह ब्राह्मणी भी १८ इन्द्रों के स्थितिकाल तक कालसूत्र नरक में आक्रान्त होकर वहां के क्रिमि-कीटों द्वारा खाई जायेगी। अन्त में उसे चाण्डालिनी होकर जन्म लेना होगा। यह निश्चित है।।३५-३६।।

ततश्चाण्डालयोनौ च लब्ध्वा जन्म च ब्राह्मणी।
शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः।।३७।।

वह ब्राह्मणी चाण्डालिनी होकर जन्म लेगी, तथापि वह शूद्र भी कोढ़ी होगा तथा अपने बन्धु-बान्धवों द्वारा त्याग दिया जायेगा।।३७।।

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विरराम च शौनक।
वृषली तत्पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठौष्ठतालुका।।३८।।

एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका। तस्या ऊरुं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह।।३९।।

ऋतुस्नाता च वृषली कृत्वा तद्भक्षणं मुदा।
मुनिं प्रणम्य सा हृष्टा प्रययौ भर्तुरन्तिकम्।।४०।।
गत्वा प्रणम्य द्रुमिलं कान्ता कान्तं मनोहरम्।
सर्वं निवेदयामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम्।।४१।।

हे शौनक! इतना कह कर वे मुनिश्रेष्ठ मौन हो गये। उधर वह वृषली नारी शुष्क कण्ठ तथा तालु की स्थिति में होकर स्थित हो गई। इसी समय मेनका अप्सरा उसी मार्ग से जा रही थी। उसकी जंघा तथा स्तनों को देख कर मुनि काश्यप का वीर्य स्खलित हो गया। यह देख कर वह ऋतुस्नाता वृषली तत्क्षण मुदित हो गई। उसने उस वीर्य का भक्षण कर लिया तथा मुनि को प्रणाम करके अपने पति के यहां चली गई। वहां जाकर उस मनोहर नारी ने द्रुमिल को प्रणाम किया तथा समस्त गर्भवृत्तान्त का वर्णन पति द्रुमिल से कर दिया।।३८-४१।।

कलावतीवचः श्रुत्वा प्रहृष्टवदनेक्षणः।
उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखावहम्।।४२।।

कलावती का कथन सुनकर तत्क्षण द्रुमिल का चेहरा खिल उठा। वह अपनी पत्नी से परिणाम में सुख देने वाला मधुर वाक्य कहने लगा—।।४२।।

द्रुमिल उवाच

विप्रस्य वीर्यं त्वद्गर्भे वैष्णवस्य महात्मनः।
वैष्णवो भविता बालस्त्वं च भाग्यवती सती।।४३।।
यद्गर्भे वैष्णवो जातो यस्य वीर्येण वा सति।
तयोर्याति च वैकुण्ठं पुरुषाणां शतं शतम्।।४४।।
तौ च विष्णुविमानेन सद्रत्ननिर्मितेन च। यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम्।।४५।।
कस्यचिद्ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने।
पश्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरेः[१] पुरम्।।४६।।

द्रुमिल कहता है—हे कलावती! निश्चितरूपेण तुम्हारे गर्भ से परम वैष्णव सन्तान उत्पन्न होगी। तुम्हारे समान भाग्यशाली कोई भी नारी नहीं है। क्योंकि जिसके गर्भ से तथा जिसके औरस से वैष्णव सन्तान उत्पन्न होती है, उनके कुल की १०० पूर्व पीढ़ी वैकुण्ठगामी हो जाती है। उस वैष्णव के माता-पिता उत्कृष्ट रत्नों से बने विष्णुरथ (विमान) पर आरूढ़ होकर जन्म-मृत्यु-जरा से रहित वैकुण्ठधाम जाते हैं। हे शुभानने! अब तुम किसी ब्राह्मण के घर जाकर तदनन्तर वैकुण्ठ में हरि के समक्ष मुझे प्राप्त करोगी।।४३-४६।।

इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम्।
संपूज्याभीष्टदेवं च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।।४७।।
अश्वानां च चतुर्लक्षं गजानां[२] लक्षमेव च।
शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।।४८।।
उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानां च सहस्रकम्।
शकटानां त्रिलक्षं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।।४९।।
गवां द्वादशलक्षं च महिषाणां त्रिलक्षकम्।
त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।।५०।।

यह कह कर गोपराज द्रुमिल ने स्नान, तर्पण तथा इष्टदेव की पूजा करके ब्राह्मणों को धन वितरण किया। उसने आनन्दित होकर ब्राह्मणों को ४ लाख अश्व, एक लाख हाथी, सौ मदमत्त गजराज का दान किया। उसने ५ लाख उच्चैःश्रवा घोड़े, एक हजार रथ, तीन लाख छकड़े, १२ लाख गौएं, तीन लाख भैंस, तीन लाख राजहंस ब्राह्मणगण को दान दिया।।४७-५०।।

१. क. ०रेः पदम्।
२. क. ०नां च त्रिलक्षकम्।

पारावतानां लक्षं च शुकानां च शतं मुने।
लक्षं च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥५१॥
ग्रामाणां च सहस्रं च नगराणां शतं शतम्।
धान्यतण्डुलशैलं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥५२॥
शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानां च सहस्रकम्।
मुद्राणां कोटिकलशं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥५३॥
ददौ तैजसपात्राणां भूषणानामसंख्यकम्।
तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥५४॥
राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्बाह्ये हरिं स्मरन्।
जगाम बदरीं गोपो मनोगामी मुदाऽन्वितः॥५५॥

तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे। प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः॥५६॥

उसने तीन लाख कबूतर, १०० तोते, एक लाख दास-दासी प्रसन्नता पूर्वक ब्राह्मणों को प्रदान किया। उसने १००० ग्राम, सैकड़ों नगर, असीम धान्य-चावल, शतकोटि भार स्वर्ण सहस्र रत्न, १ करोड़ रत्नकलश, असंख्य भूषण तथा रत्नाभूषणभूषिता स्त्री द्विजगण को असीम आनन्द सहित प्रदान किया। तदनन्तर गोपराज ने प्रसन्न अन्तःकरण से राज्य भी ब्राह्मणों को दान कर दिया। वह अन्तर्मन में तथा बाह्यतः (जिह्वा द्वारा) हरि स्मरण करते शीघ्रता से बदरिकाश्रम चला गया। वहां एक मास तक गंगा तट पर उसने तप किया था। तत्पश्चात् उसने वहां महर्षियों के सामने रम्य गंगातट पर योग द्वारा प्राणत्याग कर दिया।।५१-५६।।

स च विष्णुविमानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च। संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठं च जगाम ह॥५७॥

तत्र प्राप्य हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः।
वृत्तान्तं च कलावत्याः श्रूयतामिति शौनक॥५८॥

गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्ररुरोद ह। वह्नौ प्राणांस्त्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता॥५९॥

ब्राह्मणां मातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदाऽन्वितः।
जगाम रत्नपूर्णं च स्वगहं च क्षणेन च॥६०॥

यह गोपराज मृत्यु के पश्चात् विष्णु के दूतों से घिरा रत्ननिर्मित विमान पर बैठ कर वैकुण्ठ चला गया। हे शौनक! वह गोपराज वैकुण्ठ में हरि का दास होकर हरिदास नाम से प्रसिद्ध हो गया। अब कलावती का वृत्तान्त सुनिये। गोपराज के देहत्याग के पश्चात् कलावती उच्च स्वर से रुदन करती अग्नि में प्राणत्याग का उद्योग करने लगी। तब एक ब्राह्मण ने उसकी रक्षा किया। यह ब्राह्मण कलावती को माता शब्द से सम्बोधित करके तत्क्षण अपने रत्नपूर्ण निवास पर ले-गया।।५७-६०।।

सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥६१॥
तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा॥६२॥
कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्॥६३॥
हस्तपादादिललितं सुकपोलं मनोहरम्। पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽतुलमुज्ज्वलम्॥६४॥
करयुग्मं वाऽतुलं च रुदन्तं च स्तनार्थिनम्।
योषितो बालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा॥६५॥

तत्पश्चात् साध्वी कलावती ने इस ब्राह्मण के यहां ब्रह्मतेज से प्रज्वलित तप्त स्वर्णवत् उत्कृष्ट पुत्र को उत्पन्न किया। वहां उपस्थित स्त्रियों ने उस बालक को ब्रह्मतेज से मध्याह्नकालीन सूर्य से भी अधिक तेजस्वी पाया। इस बालक की सुन्दरता कामदेव से भी अधिक थी। मुखकमल शरद्कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी रम्य था। उसके लोचनद्वय शारदीय कमल ऐसे थे। उसके हाथ-पैर अत्यन्त सुन्दर थे। कपोल अत्यन्त मनोहर थे। उसके पैर के तलवे पद्म-चक्रादि शुभ चिह्नों से युक्त तथा असीम उज्ज्वल थे। उसकी हथेलियां अतुलित थीं। रमणीगण ने इस सद्यः जन्मे बालक को स्तनपानार्थ रोदन करते देख कर आनन्दित होकर अपने-अपने गृह गमन किया॥६१-६५॥

पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टश्च ननर्त ह। स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी॥६६॥
पुपोष ब्राह्मणस्तां च सपुत्रां च यथा सुताम्॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० ब्रह्म० सौ० उपबर्हणजन्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

यह बालक जन्म देख कर वह (आश्रयदाता) ब्राह्मण अपने पुत्र तथा स्त्री सहित आनन्दित हो गया तथा वे सभी नाचने लगे। वह बालक क्रमशः उसी प्रकार से बढ़ने लगा जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है। वह ब्राह्मण कलावती तथा उसके पुत्र का पालन अपनी कन्या तथा पुत्र की तरह करने लगे॥६६-६७॥

॥विंश अध्याय समाप्त॥

अथैकविंशोऽध्यायः

नारद नाम की व्युत्पत्ति तथा नारद की शाप से मुक्ति

सौतिरुवाच

बभूव काले बालश्च क्रमेण पञ्चहायनः। जातिस्मरौ ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रस्मृतः सदा॥१॥
गीयते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम्। क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः॥२॥
कृष्णसंबन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै।
तत्संबन्धिपुराणं च तत्र तिष्ठति बालकः॥३॥

सौति कहते हैं–ज्ञानयुक्त पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त यह बालक जब ५ वर्ष का हो गया, तब पूर्वजन्म के सभी मन्त्रों का उसे स्मरण हो गया। यह बालक निरन्तर श्रीकृष्ण के यश का गायन, नाम जप, उनके गुणों का चिन्तन करने लगा। यह कभी प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करता, तो कभी रोने लगता। इस स्थिति में वह रोमांचित–पुलकित हो जाता था। आश्चर्य की बात है कि जहां भी कृष्ण कथा अथवा कृष्ण सम्बन्धित पुराण पाठ होता था, वहीं यह बालक पहुंच जाता।।१–३।।

धूलिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम्। धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम्॥४॥
पुत्रमाह्वयते माता प्रातराशाय चेन्मुने। हरिं संपूजयामीति मातरं संवदेत्पुनः॥५॥

यह धूल–धूसरित होकर धूल (मिट्टी से) ही हरि प्रतिमा बना कर मन में नैवेद्य की कल्पना करता तथा धूल को ही कल्पना द्वारा नैवेद्य मान कर भगवान् की धूलि से ही पूजा करता रहता। यदि उसकी माता प्रातः भोजन के लिये उसे पुकारतीं, तब वह कहता कि मैं हरिपूजा कर रहा हूं!।।४–५।।

शौनक उवाच

किन्नाम बालकस्यास्य जन्मन्यत्र बभूव ह।
व्युत्पत्त्या संज्ञया वाऽपि तद्भगवान्वक्तुमर्हति॥६॥

शौनक मुनि कहते हैं–यह बालक किस व्युत्पत्तिसिद्ध नाम से प्रसिद्ध हो गया था, वह कहिये।।६।।

सौतिरुवाच

अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह। नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः॥७॥
ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च बालकः। जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः॥८॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने। मुनीन्द्रस्य वरेणैव तेनायं नारदाभिधः॥९॥

सौति कहते हैं–इस बालक ने अनावृष्टि के समय जन्म लिया था। उसके जन्मकाल में 'नार'

अर्थात् जलदान किया गया था। तभी यह नारद नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह पूर्वजन्म की स्मृति युक्त महाज्ञानी था। यह अन्य बालकों को ज्ञान अर्थात् "नार" प्रदान करने के कारण नारद कहलाया। हे मुनिवर! इसने काश्यप नारद मुनि के वीर्य से जन्म लिया था, तभी नारद कहलाया।।७-९।।

शौनक उवाच

शिशुनाम च विज्ञातं व्युत्पत्त्या च यथोचितम्।
मुनीन्द्रस्य कथं नाम नारदश्चेति मङ्गलम्।।१०।।

शौनक मुनि कहते हैं—यथोचित् व्युत्पत्ति से सिद्ध बालक का नाम सुन लिया, तथापि जिज्ञासा है कि उक्त मुनिवर का नाम नारद क्यों था?।।१०।।

सौतिरुवाच

अपुत्रकाय विप्राय धर्मपुत्रो नरो मुनिः। ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः।।११।।

सौति कहते हैं—धर्म के पुत्र थे नर नामक मुनि। अपुत्रक ब्राह्मण कश्यप को नर मुनि ने यह पुत्र प्रदान किया। ये "नर" द्वारा प्रदत्त होने के कारण नारद कहे गये।।११।।

शौनक उवाच

अधुना नामव्युत्पत्तिः श्रुता सौते शिशोरपि।
शूद्रयोनौ ब्रह्मपुत्रः कथं स नारदाभिधः।।१२।।

शौनक मुनि कहते हैं—हे सौति! मैंने शिशु के नाम की व्युत्पत्ति को सुना। शूद्र योनि में उत्पन्न शिशु नारद के नाम की यह व्युत्पत्ति है, परन्तु जो ब्रह्मा के पुत्र नारद थे, उनका नाम नारद क्यों पड़ा?।।१२।।

सौतिरुवाच

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठाद्बभूवुर्बहवो नराः। नरान्ददौ तत्कण्ठं च तेन तन्नरदं स्मृतम्।।१३।।
ततो बभूव बालश्च नरदात्कण्ठदेशतः। अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम्।।१४।।
सांप्रतं शिशुवृत्तान्तं सावधानं निशामय। उपालम्भरहस्येन विशिष्टं किं प्रयोजनम्।।१५।।
ववृधे गोपिकाबालो विप्रगेहे दिने दिने।
सुपुत्रां पालितां चक्रे ब्राह्मणः स्वसुतां यथा।।१६।।

सौति कहते हैं—कल्पान्तर में ब्रह्मा के कण्ठ से अनेक मनुष्य जन्मे। तभी ब्रह्मा के कण्ठ को नरद कहा गया। तदनन्तर इस कण्ठ से उक्त बालक जन्मा, तभी कण्ठ से जन्मे बालक ब्रह्मपुत्र का नाम नारद हो गया। अब सावधान होकर शूद्रवंशोत्पन्न नारद का वृत्तान्त सुनें। अन्य जिज्ञासा इस समय उचित नहीं है। उसे सुनकर क्या मिलेगा? यह गोपी का बालक ब्राह्मण के घर में दिनोंदिन बढ़ने लगा। ब्राह्मण ने भी स्वपुत्रवत् उसका पालन किया।।१३-१६।।

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा आययुर्विप्रमन्दिरम्। शिशवः पञ्चवर्षीया महातेजस्विनो यथा॥१७॥

प्रच्छन्नं[1] कृतवन्तश्च ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम्।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा तान्ननाम गृही द्विज॥१८॥

इसी बीच ब्राह्मण के गृह कतिपय महान् तेजवान् ब्राह्मण आये। वे सभी पंचवर्षीय बालक की आयु के प्रतीत हो रहे थे। उन्होंने तो स्वतेज से ग्रीष्म के मध्याह्नकालीन सूर्य प्रभा को भी मात कर दिया था। गृहस्थ ब्राह्मण ने इन बालक तपस्वियों का स्वागत मधुपर्क आदि से किया॥१७-१८॥

फलमूलादिकं काले चत्वारो मुनिपुङ्गवाः। विप्रदत्तं बुभुजिरे गच्छेषं बुभुजे शिशुः॥१९॥

चतुर्थको मुनिस्तस्मै कृष्णमन्त्रं ददौ मुदा।
तेषां दासः स बभूव द्विजस्य मातुराज्ञया॥२०॥

तदनन्तर उन मुनिप्रवर चारों ब्राह्मणकुमार ने ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त फलमूलादि का भोजन किया। उनके उच्छिष्ट का भोजन नारद ने किया। तत्पश्चात् उन चार मुनियों में से एक अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने गोपकुमार नारद को कृष्ण मन्त्र प्रदान किया। गोपकुमार भी उन ब्राह्मण तथा अपनी माता की आज्ञा से उन चारों मुनियों का दास हो गया॥१९-२०॥

एकदा शिशुमाता च गच्छन्ती निशि वर्त्मनि।
ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरती हरिम्॥२१॥

सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती। विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन॥२२॥

गोपकुमार की माता कलावती एक बार अर्द्धरात्रिकाल में कहीं जा रही थी। तभी एक सर्प ने उसे डंस लिया। वह नारी भगवत् स्मरण करती मृत हो गई। वह महासती रत्ननिर्मित विमान पर बैठा कर उस विष्णुयान से वैकुण्ठ लोक ले जाई गई॥२१-२२॥

प्रातर्बालो द्विजैः सार्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात्।
तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मै ब्राह्मणाश्च कृपालवः॥२३॥
ब्रह्मपुत्राः शिशुं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल।
महाज्ञानी शिशुस्तस्थौ गङ्गातीरे मनोहरे॥२४॥

तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः। क्षुत्पिपासारोगशोकहरं[2] वेदेषु दुर्लभम्॥२५॥
महारण्ये च घोरे च अश्वत्थमूलसंनिधौ। कृत्वा योगासनं तस्थौ सुचिरं तत्र बालकः॥२६॥

तदनन्तर रात्रि गत होने पर प्रभात हो गया। कृपालु गोपबालक को तत्वज्ञान प्रदान करके वे चारों ब्राह्मण कुमार बालक के पास से अपने-अपने स्थान चले गये तथा वह महाज्ञानी गोपबालक मनोहर गंगा तट पर निवास करने लगा। वह बालक उस भयानक वन में पीपल वृक्ष के नीचे स्नान

१. ख. ०न्नं हत०।
२. क. ०रं देवेषु।

करके योगासनस्थ होकर दीर्घकाल तक देवदुर्लभ विप्रदत्त विष्णुमन्त्र का जप करने लगा। वह मन्त्र क्षुधा-तृष्णा-रोग-शोक नाशक था।।२३-२६।।

शौनक उवाच

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता। दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान्वक्तुमर्हति।।२७।।

शौनक कहते हैं–उन धीमान् ब्राह्मण कुमार ने इस बालक को श्रीहरि का कौन-सा परम मन्त्र प्रदान किया था, कृपया कहिये।।२७।।

सौतिरुवाच

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा। द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः।।२८।।

तं च ब्रह्मा ददौ भक्त्या कुमाराय च धीमते।
कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज।।२९।।
ॐ श्री नमो भगवते रासमण्डलेश्वराय।
श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयं कल्पपादपः।।३०।।

महापुरुषस्तोत्रं च पूर्वोक्तं कवचं च यत्। अस्यौपयौगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च।।३१।।

सौति कहते हैं–हे द्विजप्रवर शौनक! पूर्वकाल में गोलोक में कृष्ण ने कृपा पूर्वक जो वेददुर्लभ २२ अक्षरात्मक मन्त्र ब्रह्मा को दिया था, वही मन्त्र ब्रह्मा ने धीमान् सनत्कुमार का भक्तिभाव देख कर उनको प्रदान कर दिया। तत्पश्चात् सनत्कुमार ने उसी मन्त्र का उपदेश गोपबालक को दिया। "ॐ श्री नमो भगवते रासमण्डलेश्वराय श्रीकृष्णाय स्वाहा" यह मन्त्र तो कल्पवृक्ष के समान है। इसके साथ ही महापुरुष का स्तोत्र एवं कवच पहले कहा गया है। अब सामवेदोक्त वह ध्यान कहता हूं, जो इस आराधना हेतु आवश्यक है।।२८-३१।।

तेजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे।
योगिभिर्वाञ्छितं ध्याने योगैः सिद्धगणैः सुरैः।।३२।।

ध्यायन्ते वैष्णवा रूपं [1]तदभ्यन्तरसंनिधौ। अतीव कमनीयानिर्वचनीयं मनोहरम्।।३३।।
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम्।।३४।।
मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तालम्बनमेव च।।३५।।

श्रीकृष्ण के कोटिसूर्यसमप्रभ मण्डलाकार तेजःपुंज का योगीगण-सिद्धगण-देवगण ध्यानयोग द्वारा चिन्तन करते हैं, तथापि वैष्णव लोग उसके अभ्यन्तर में स्थित अनिर्वचनीय अत्यन्त मनोहर रूप का ही चिन्तन करते रहते हैं। वे प्रभु नव जलधर के समान नीलवर्ण हैं। उनके दोनों नयन शरद्कालीन कमल के समान सुन्दर हैं। उनका मुखकमल शारदीय पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र के समान मनोहर है और

१. क. ०रमेव च।

उनके ओष्ठ एवं अधर को देखने से वे विम्बफल जैसे प्रतीत होते हैं। उनकी दन्तपंक्ति मुक्ताश्रेणी को भी लज्जित कर दे रही है। मुखमण्डल मन्द मुस्कान युक्त है। हाथों में मुरली विराजमान है।।३२-३५।।

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम्। चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम्।।३६।।
त्रिभङ्गभङ्गिकायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम्। रत्नकेयूरवलयरत्ननुपुरभूषितम्।।३७।।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्। मयूरपुच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम्।।३८।।
शोभितं जानुपर्यन्तं मालतीवनमालया। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम्।।३९।।

ये प्रभु करोड़ों कामदेव के समान कमनीय, लाखों चन्द्र के समान प्रभा वाले हैं। उन्होंने पीत वस्त्र धारण किया है। वे दो भुजा वाले, त्रिभंग भंगिमा से शोभायमान हैं। उन्होंने रत्नों से बने केयूर, वलय तथा नूपुर धारण किया है। उनके कपोल रत्नकुण्डलद्वय से भूषित हैं। उन्होंने मस्तक पर मयूर पुच्छ का मुकुट धारण किया है। वे रत्नमाला भूषित हैं। मालती की वनमाला उनके घुटनों तक लम्बित है। उनके सभी अंग चन्दन द्वारा लिप्त हैं। ये भगवान् भक्तों पर अनुग्रह करते हैं।।३६-३९।।

मणिना कौस्तुभेन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्जवलम्[१]।
वीक्षितं गोपिकाभिश्च शश्वद्व्रीडितलोचनैः।।४०।।
स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च संततम्।
भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम्।।४१।।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वन्दितं स्तुतम्।
किशोर राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम्।।४२।।

उनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि की दीप्ति द्वारा समुज्ज्वल बना रहता है। गोपीगण सतत् उनको सलज्जभाव से आंख झुकाये देखा करती हैं। स्थिरयौवन सम्पन्न गोपीगण उनको चतुर्दिक् से घेरे रहती हैं। वे सभी गोपियां भूषणों से विभूषित हैं। ये प्रभु राधा के वक्षःस्थल में स्थित रहते हैं। ये ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि देवगण से पूजित तथा स्तुत हैं। ये भगवान् राधिकाकान्त किशोर, शान्तरूप तथा परात्पर हैं।।४०-४२।।

निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्। ध्यायेत्सर्वेश्वरं तं च परमात्मानमीश्वरम्।।४३।।
इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रं च कवचं मुने।
मन्त्रौपयौगिकं सत्यं मन्त्रश्च कल्पपादपः।।४४।।

ये प्रभु निर्लिप्त, साक्षीरूप, निर्गुण तथा प्रकृति से परे हैं। ऐसे सर्वेश्वर, ईश्वर परमात्मा का ध्यान करें। हे मुनिवर! इस प्रकार इन प्रभु का ध्यान, स्तोत्र, कवच तथा वह मन्त्र भी आपसे कहा जो कल्पवृक्षरूप फलप्रद है।।४३-४४।।

१. क. ०म्। वेष्टितं गो०।

सांप्रतं बालकस्तस्थौ ध्यानस्थस्तत्र[१] शौनक।
दिव्यं वर्षसहस्रं च निराहारः कृशोदरः॥४५॥
शक्तिमान्परिपुष्टश्च सिद्धमन्त्रप्रभावतः।
ददर्श बालको ध्याने दिव्यं लोकं च बालकम्॥४६॥

हे शौनक! वह बालक नारद इस स्थान पर आहार रहित तथा ध्यानस्थ स्थिति में पूर्णतः कृश हो गया। उसने इस प्रकार ध्यानस्थ रहते दिव्य १०० वर्ष अर्थात् ३६० × १०० = ३६००० मानव वर्ष व्यतीत कर दिये, तथापि सिद्ध मन्त्र का यह प्रभाव था कि उसकी शक्ति तथा पुष्टि में वृद्धि होने लगी। इस प्रकार ध्यानयोगयुक्त स्थिति में बालक तपस्वी ने एक बार एक दिव्य बालक का दिव्यलोक में दर्शन किया।।४५-४६।।

रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। किशोरवयसं श्यामं गोपवेशं च सस्मितम्॥४७॥
गोपैर्गोपाङ्गनाभिश्च वेष्टितं पीतवाससम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं चन्दनेन विचर्चितम्॥४८॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तूयमानं परात्परम्।
दृष्ट्वा च सुचिरं शान्तं शान्तश्च गोपिकासुतः॥४९॥

यह दिव्य बालक रत्नसिंहासनासीन तथा रत्नाभूषण से भूषित था। वह किशोरवय का श्यामवर्ण गोपवेशधारी तथा तनिक मुस्कराहट युक्त था। उसने पीतवर्ण वस्त्र पहना था। उसके सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित थे। वह द्विभुज, मुरलीधारी, गोप-गोपांगना परिवेष्ठित था। यही बालक परात्पर देव ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवगण द्वारा स्तुत हो रहा था। ऐसे शान्तरूप प्रभु को उस तपस्वी बालक ने दीर्घकाल तक देखा।।४७-४९।।

विरराम च शोकार्तो यदा तद्द्रष्टुमक्षमः। रुरोदाश्वत्थमूले च न दृष्ट्वा बालकं शिशुः॥५०॥

वह तपस्वी बालक इस शान्तरूप को देर तक देखता रहा, तथापि वह ध्यान से व्युत्थित होने पर जब उस परमात्मरूप बालक का दर्शन नहीं पा सका, तब वह उसी पीपल के नीचे बैठा-बैठा रुदन करने लगा। वह अत्यन्त शोकग्रस्त था।।५०।।

बभूवाऽऽकाशवाणीति रुदन्तं बालकं प्रति।
सत्यं प्रबोधयुक्तं च हितमेव मिताक्षरम्॥५१॥
सकृद्यद्दर्शितं रूपं तदेव नाधुना पुनः। अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शं च कुयोगिनाम्॥५२॥

तभी उस रुदनरत बालक को सुनाते हुए मितक्षरयुक्त (कम अक्षर युक्त), तथापि हितप्रद एवं ज्ञानप्रद आकाशवाणी होने लगी। यथा-"हे नारद! तुमने जिस रूप को देखा था, अब उसे नहीं देख सकोगे। वह परमरूप कुयोगी नहीं देख सकते। तुम देहान्त के पश्चात् दिव्य देहधारी होकर पुनः जन्म-मृत्यु, जराशून्य होकर श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त कर सकोगे।।५१-५२।।

१. ध्याने च तत्र इति वा पाठः।

एतस्मिन्विग्रहेऽतीते संप्राप्ते दिव्यविग्रहे। पुनर्द्रक्ष्यसि गोविन्दं जन्ममृत्युहरं हरिम्॥५३॥
इति श्रुत्वा बालकश्च विरराम मुदाऽन्वितः।
काले तत्याज तीर्थे च तनुं कृष्णं हृदि स्मरन्॥५४॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। बभूव शापमुक्तश्च नारदश्च महामुनिः॥५५॥
तनुं त्यक्त्वा स जीवश्च विलीनो ब्रह्मविग्रहे।
बभूव प्राक्तनान्नित्यः कालभेदे तिरोहितः॥५६॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया नित्यदेहिनाम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिर्भक्तानां नास्ति शौनक॥५७॥

इति श्री ब्र० महा० ब्र० सौ० नारदशापविमोचनं नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

बालक यह सुनकर हर्षित हो गया। उसने कृष्ण का स्मरण अपने हृदय में किया तथा देहत्याग कर दिया। उस समय स्वर्ग में दुन्दुभिवादन होने लगा तथा पुष्पवर्षा होने लगी। इस प्रकार महामुनि नारद शापमुक्त हो गये। उन्होंने यह मर्त्यदेह त्याग करके ब्रह्मशरीर में स्वयं को लीन कर दिया। यद्यपि नारद नित्य स्थिति वाले थे, तथापि पूर्वकर्मानुसार ही वे आविर्भूत होकर इस मृत्युलोक से तिरोहित हो गये। हे शौनक! नित्य देहधारी का आविर्भाव तथा तिरोभाव उसकी स्वेच्छा मात्र से होता है। फलस्वरूप जो भक्त हैं, उनके लिये जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि है ही नहीं॥५३-५७॥

॥एकविंश अध्याय समाप्त॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नारदादि ब्रह्मपुत्रगण की नामनिरुक्ति का वर्णन

सौतिरुवाच

कति कल्पान्तरेऽतीते स्रष्टुः सृष्टिविधौ पुनः।
मरीचिमिश्रैर्मुनिभिः सार्धं कण्ठाद्बभूव सः॥१॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशाद्बभूव सः। नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना॥२॥
यः पुत्रश्चेतसो धातुर्बभूव मुनिपुङ्गवः। तेन प्रचेता इति च नाम चक्रे पितामहः॥३॥

सौति कहते हैं–(हे ऋषिवर! इस समय आप कुछ मुनिगण की नाम व्युत्पत्ति को सुनिये)। कतिपय कल्पान्तर व्यतीत होने पर पुनः विधाता के द्वारा सृष्टि किये जाने पर मरीचि आदि मुनिगण सहित नारद मुनि उनके कण्ठ से उत्पन्न हो गये तथा विधाता के कण्ठ से आविर्भूत होने के कारण उनका नाम नारद प्रसिद्ध हो गया। हे मुनिप्रवर! जो विधाता के चित्त से जन्मे, उन मुनि का नाम पितामह ने प्रचेता रखा।।१-३।।

बभूवः धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः। सर्वकर्मणि दक्षश्च तेन दक्षः प्रकीर्तितः।।४।।
वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायायां वर्तते स्फुटः। बभूव कर्दमादबालः कर्दमस्तेन कीर्तितः।।५।।
तेजोभेदे मरीचिश्च वेदेषु वर्तते स्फुटम्। जातः सद्योऽतितेजस्वी मरीचिस्तेन कीर्तितः।।६।।
क्रतुसङ्घश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना। ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते।।७।।

जो पुत्र ब्रह्मा के दक्षिण पार्श्व से सहसा उत्पन्न हो गये, वे सभी काम में दक्ष होने के कारण दक्ष कहलाये। जो छाया से जन्मे, वे कर्दम कहे गये। वेद में कर्दम शब्द से छाया का बोध होता है। मरीचि शब्द तेज बोधक है। अतः ब्रह्मा के तेज से जिन तेजस्वी ऋषि ने जन्म लिया था, वे मरीचि नाम से विख्यात हैं। जिस ब्रह्मापुत्र ने अन्य जन्म में अनेक यज्ञों को सम्पन्न किया था, वह ब्रह्मपुत्र क्रतु कहलाया। क्रतु का अर्थ है यज्ञ।।४-७।।

प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो ज़ातश्च बालकः। इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेन कीर्तितः।।८।।
अतितेजस्विनि भृगुर्वर्तते नाम्नि शौनक। जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्तितः।।९।।

बालोऽप्यरुणवर्णश्च जातः सद्योऽतितेजसा।
प्रज्वलन्नुर्ध्वतपसा चारुणिस्तेन कीर्तितः।।१०।।
हंसा आत्मवशा यस्य योगेन योगिनो ध्रुवम्।
बालः परमयोगीन्द्रस्तेन हंसी प्रकीर्तितः।।११।।

"इर" शब्द का अर्थ है तेजस्वी। प्रधान "अंग" मुख से उत्पन्न होने से वे ऋषि अंगीरा कहे गये। भृगु शब्द का अर्थ है अति तेजवान्। अतः ब्रह्मा के जो पुत्र अतीव तेजस्वी थे, तभी उनका नाम भृगु पड़ा। ब्रह्मा का जो पुत्र बालक था, तथापि अतीव तेजसम्पन्न होने के कारण अरुण वर्ण का हो गया तथा पुनः उग्र तपःश्चरण से प्रज्वलित-सा लगा, वह आरुणी कहा गया। जिस योगी के योग के कारण हंसगण योगबल से उसके वशीभूत हो गये, वह हंसी कहलाया।।८-११।।

वशीभूतश्च शिष्यश्च जातः सद्यो हि बालकः।
अतिप्रियश्च धातुश्च वशिष्ठस्तेन कीर्तितः।।१२।।

जिसने जन्म लेते ही ब्रह्मा के वशीभूत होकर परम शिष्ट तथा परम प्रिय स्थान लाभ किया (ब्रह्मा के प्रिय पात्र के रूप में स्थान पाया) वह वसिष्ठ कहलाया।।१२।।

संततं यस्य यत्नश्च तपःसु बालकस्य च। प्रकीर्तितो यतिस्तेन संयतः सर्वकर्मसु।।१३।।

पुलस्तपःसु वेदेषु वर्तते हः स्फुटेऽपि च। [1]स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः॥१४॥
पुलस्तपःसमूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम्। तपःसङ्घस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः॥१५॥

त्रिगुणायां प्रकृत्यां त्रिर्विष्णावश्च प्रवर्तते।
तयोर्भक्तिः समा यस्य तेन बालोऽत्रिरुच्यते॥१६॥

जो निरंतर तप के लिये यत्नशील थे तथा सभी कर्म संयत होकर करते थे, वे यति कहलाये। वेद में 'पुल' शब्द का तात्पर्य है तप तथा प्रस्फुट। अतः जो तपःसमूहरूप है (पुल है) तथा प्रस्फुट बोधक ह है, वह है पुल + ह = पुलह। इसी प्रकार जिसमें पूर्वजन्म में तप विद्यमान था, वह ब्रह्मपुत्र पुलत्स्य कहे गये। त्रिगुणा प्रकृति का बोधक है 'त्रि'। विष्णु का बोधक बतलाने में 'अ' प्रयुक्त होता है। जिसकी प्रकृति में तथा विष्णु में भक्ति है, वह अत्रि नामक ब्रह्मपुत्र कहे गये।।१३-१६।।

जटावह्निशिखारूपाः पञ्च च सन्ति मस्तके।
तपस्तेजोभवा यस्य स च पञ्चशिखः स्मृतः॥१७॥

अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि। अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्तितम्॥१८॥

जिसके मस्तक पर अग्नि की शिखा के समान तपःतेज उद्भूत था तथा वह पंचशिखा के रूप में स्थित था, वह पंचशिख कहे गये। जिस शिशु ने किसी जन्म में अपान्तरतम प्रदेश में तपःश्चरण किया था, वे अपान्तरतमा कहे गये। (अपान्तरतम = आंतरिक अन्धकार रहित प्रदेश)।।१७-१८।।

स्वयं तपः समाप्नोति वाहयेत्प्रापयेत्परान्। वोढुं समर्थस्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्तितः॥१९॥
तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान्सततं मुने। तपःसु रोचते चित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्तितः॥२०॥
कोपकाले बभूवुर्ये स्त्रष्टुरेकादश स्मृताः। रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना॥२१॥

जिसने स्वयं तपःश्चरण किया तथा अन्य को भी जो तपस्वी बनाने हेतु सतत् प्रयत्नशील था, तपःभार को सदा प्रसन्नता से वहन करता था, उसे वोढु कहा गया। हे मुनिवर! तपः से दीप्त जिस सन्तान का चित्त सदैव तप के प्रति रुचि से पूर्ण रहता था, वह रुचि कहलाये। जो भगवान् ब्रह्मा के कोपकाल में एकादश संख्यक प्रकट हो गये तथा रुदनरत हो गये, वे रुद्र कहे गये।।१९-२१।।

शौनक उवाच

रुद्रेष्वेकतमो[2] वाऽन्यो महेश इति मे भ्रमः।
भवान्पुराणतत्त्वज्ञः संदेहं छेत्तुमर्हति॥२२॥

शौनक मुनि कहते हैं—११ रुद्रों में से एक का नाम "महेश" प्रसिद्ध है अथवा अन्य किसी देवता का नाम महेश है। आप मेरे इस भ्रम को दूर करिये। आप पुराण के तत्व को जानते हैं।।२२।।

---

१. क. स्फुटं तपः स्वरूपं च।
२. ख. ०मो बालो म०।

सौतिरुवाच

विष्णुः सत्त्वगुणः पाता ब्रह्मा स्रष्टा रजोगुणः।
तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवारा भयङ्कराः॥२३॥
कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेष्वेकः शङ्करांशकः।
शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदःसताम्॥२४॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौ विष्णुशङ्करौ।
समौ सत्त्वस्वरूपौ द्वौ परिपूर्णतमस्य च॥२५॥

सौति कहते हैं–सबके रक्षक विष्णु सत्वगुणाधार हैं। सृजनकारी ब्रह्मा रजोगुणधार हैं। भयंकर दुर्निवार रुद्रगण तमोगुणाधार हैं। रुद्रगण के मध्य में कालागिन रुद्र नाम वाले संहारकर्त्ता एक अन्य रुद्र हैं। ये शंकर के अंश हैं, तथापि साधुगण को कल्याण प्रदान करने वाले शिव तो विशुद्ध सत्वस्वरूप हैं। अन्य सभी देवता कृष्ण की कला (अत्यल्प अंश) के द्वारा उत्पन्न हैं। परन्तु विष्णु एवं शंकर परिपूर्णतम श्रीकृष्ण के अंश हैं। विष्णु तथा शंकर–ये दोनों समान तथा शुद्धसत्वरूप हैं॥२३-२५॥

उक्तं रुद्रोद्भवे काले कथं विस्मरसि द्विज।
मायया मोहिताः सर्वे मुनीनां च मतिभ्रमः॥२६॥

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः॥२७॥
ब्रह्मा स्त्रष्टुं [1]पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे। तेन प्रकोपितो धाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने॥२८॥

हे द्विज! यह प्रसंग मैंने रुद्रगण की उत्पत्ति के वर्णन क्रम में पहले भी कहा है। क्या आपने इसे विस्मृत कर दिया है? यह आश्चर्य कां विषय है! सभी माया से मोहित हैं। मुनिगण को भी मतिभ्रम हो जाता है। हे मुनिवर! सनक, सनन्दन, सनातन तथा भगवान् सनत्कुमार ब्रह्मा के पूर्वपुत्र हैं। जब ब्रह्मा ने इनको सृष्टि हेतु आज्ञा दिया, तब इन्होंने इस कार्य हेतु अस्वीकार कर दिया। तब ब्रह्मा को जो कोप उत्पन्न हो गया, उससे ही ये ११ रुद्र उत्पन्न हो गये॥२६-२८॥

सनकश्च सनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ।
आनन्दितौ च बालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौ सदा॥२९॥
सनातनश्च श्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमः स्वयम्।
तद्भक्तस्तत्समः सत्यं तेन बालः सनातनः॥३०॥
सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः।
सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः॥३१॥

---

१. ०र्वभूतानु०।

ब्रह्मणो बालकानां च व्युत्पत्तिः कथिता मुने।
सांप्रतं नारदाख्यानं श्रूयतां च यथाक्रमम्॥३२॥

इति श्रीब्र० महा० ब्र० सौ० ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

सनक तथा सनंदन शब्द का अर्थ है आनन्द देने वाला। तभी ये दोनों बालक सदा भक्तिपूर्ण नित्य आनंदित होकर सनक एवं सनन्दन कहे गये। सनातन शब्द से पूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण का बोध होता है। अतः जो ब्रह्मपुत्र कृष्णभक्त तथा कृष्ण के समान थे, वे सनातन कहे गये। सनत = नित्य। कुमार = शिशु। अतः ब्रह्मा के चतुर्थ पुत्र सनत्कुमार कहे गये। हे मुनिप्रवर! ब्रह्मपुत्रों की नाम व्युत्पत्ति को कह दिया। अब यथाक्रमेण नारद का वृत्तान्त सुनो॥२९-३२॥

॥द्वाविंश अध्याय समाप्त॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्मा-नारद संवाद

सौतिरुवाच

स्रष्टा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान्। नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्तुं च शौनक॥१॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम्। उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम्॥२॥

सौति कहते हैं–हे शौनक! विधाता ने अन्य सभी पुत्रों को सृष्टिकार्य में नियुक्त करके वेद-वेदांग पारंगत नारद को भी सृष्टि हेतु प्रेरित करने के लिये यह हितप्रद, सत्य, परिणाम में सुख देने वाला वेद का सारतत्व कहा–॥१-२॥

ब्रह्मोवाच

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणवल्लभ। ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक॥३॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां जनकः परमो गुरुः। विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुः परौ॥४॥
तवाहं जनकः पुत्र विद्यादाता च पालकः। ममाऽऽज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपरिग्रहम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे कुलश्रेष्ठ! वत्स! प्राणप्रिय नारद! तुम मेरे पास आओ! तुम्हारी ज्ञानरूपी दीपशिखा द्वारा समस्त अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है। सभी पूज्यों में से पिता ही परम गुरु कहा गया

है। विद्यादाता तथा मन्त्रदाता भी समान हैं तथा पिता से भी श्रेष्ठ होते हैं। हे वत्स! मैं ही तुम्हारा पिता, विद्यादाता तथा मन्त्रप्रदाता हूं। मैं ही तुम्हारा पालक भी हूं। मैं आज्ञा देता हूं कि तुम मेरी प्रसन्नता के लिये विवाह करो।।३-५।।

स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाऽऽज्ञां पालयेद्गुरोः।
न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः।।६।।
स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान्।
गुरोर्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे।।७।।
सर्वेषामाश्रमाणां च प्रधानः पुण्यवान्गृही। स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तं च मन्दिरं तपसः फलम्।।८।।

जो गुरु आज्ञा का पालन करते हैं, वे ही यथार्थ शिष्य तथा पुत्र हैं। जो मूढ़ ऐसा नहीं करता, उसका कदापि मंगल नहीं होता। जो गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, उनका प्रति पग पर मंगल होता है। वे ही यथार्थतः पण्डित, ज्ञानी तथा पुण्यात्मा हैं। समस्त आश्रमी लोगों में से गृहस्थ ही प्रधान तथा पुण्यवान हैं। तपःफल के बिना स्त्री, पुत्र, पौत्रगण से गृह सम्पन्न नहीं हो सकता।।६-८।।

[1]पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः। सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः।।९।।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा।
इह एतत्सुखं पुण्यं स्वर्गभोगः परत्र च।।१०।।
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः। यशस्वी पुण्यवांश्चैव कीर्तिमान्धवान्सुखी।।११।।
यशस्वी कीर्तिमान्यो हि मृतो जीवति संततम्।
यशःकीर्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः।।१२।।

जिस प्रकार गौयें जल पीने के लिये जल की टंकी के पास आती हैं, उसी प्रकार पर्वकाल में पितृगण तथा तिथिकाल में देवगण गृहस्थ के यहां आते हैं। गृहस्थगण भी नित्य-नैमित्तिक तथा काम्य कर्म का निर्वाह करके इहलोक में श्रेष्ठ सुख का तथा परलोक में स्वर्गसुख का भोग करते हैं। जो पुण्यात्मा गृही लोग स्वधर्म पालन करते हैं, वे जीवन्मुक्त, यशस्वी, धनी तथा सुखी हो जाते हैं। यशस्वी तथा कीर्त्तिशाली भले ही मर जाये, तथापि जीवित ही है। यशकीर्त्ति विहीन तो जीवित होकर भी मृततुल्य ही है!।।९-१२।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः।
उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः।।१३।।

ब्रह्मा का कथन सुनते ही मुनिप्रवर नारद का कण्ठ, ओष्ठ तथा तालु शुष्क हो गया। वे भयभीत होकर विनय पूर्वक कहने लगे—।।१३।।

---

१. क. ०रः सर्वका०।

नारद उवाच

एकदा वाग्विरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः। हानिर्बभूव दैवेन महती वाऽयशस्करी॥१४॥
मया प्राप्तं च त्वच्छापाद्गान्धर्वं शौद्रमेव च।
जन्म कर्म च मच्छापात्त्वमपूज्यो भवे भव॥१५॥
बभूव शापो मुक्तो मे काले ते भविता विधे।
दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधो न गुणाय च॥१६॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे पिता! एक बार हम दोनों के बीच वाणी का विरोध होने के कारण दैवात् महान् यशक्षयकारी हानि हो गयी है। वह स्मरण करिये। मैं आपके शाप से गन्धर्व तथा शूद्र योनि पाकर स्वकर्मभोग कर चुका तथा आप भी अपूज्य हो गये। हे विधाता! कालक्रमेण मैं शापमुक्त हो गया। आप भी हो जायेंगे। अतः बारम्बार इस प्रकार के वाग्विरोध में दोष ही दोष (हानि) ही है। इसमें कोई लाभ नहीं है।।१४-१६।।

स पिता स गुरुर्बन्धुः स पुत्रः स अधीश्वरः।
यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिं च कारयेत्॥१७॥
असद्वर्त्मनि चाज्ञानाद्गच्छन्ति यदि बालकाः।
निवर्तयति तानेव स पिता करुणानिधिः॥१८॥
कारयित्वा कृष्णापदे भक्तित्यागं च यः पिता।
अन्यस्मिन्विषये पुत्रं स किं हन्त प्रवर्तयेत्॥१९॥

विचार करिये कि जो श्रीकृष्ण के चरणकमल के प्रति दृढ़ भक्ति प्रदान कराये, वही पिता, गुरु, बन्धु, पुत्र अथवा ईश्वर कहलाता है। बालक अज्ञानी होने के कारण अनजाने में असत् मार्ग पर चला जाता है, जहां से पिता ही उसे उस मार्ग से निवृत्त करते हैं। जो पिता कृष्ण के चरणकमल के प्रति बालक की भक्ति का त्याग करा देता है तथा उसे अन्य कार्य में लगा देता है, उस पिता ने तो असत् कार्य का ही अनुष्ठान किया।।१७-१९।।

दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च। तपःस्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणां व्यवधायकः॥२०॥
योषितस्त्रिविधा ब्रह्मन्गृहिणाँ मूढचेतसाम्।
साध्वी भोग्या च कुलटास्ताः सर्वाःस्वार्थतत्पराः॥२१॥
परलोकभिया साध्वी तथेह यशसाऽऽत्मनः।
कामस्नेहाच्च कुरुते भर्तुः सेवां च संततम्॥२२॥
भोग्या भोगार्थिनी शश्वत्कामस्नेहेन केवलम्।
कुरुते कान्तसेवां च न च भोगादृते क्षणम्॥२३॥

वैवाहिक जीवन दुःखपूर्ण है। उसमें सुख नहीं है। वह तप, स्वर्ग, भक्ति तथा मुक्ति में व्यवधान कराता है। हे ब्रह्मदेव! मूढ़ गृहस्थों की पत्नी तीन प्रकार की होती हैं। यथा–साध्वी, भोग्या, कुलटा। ये तीनों स्वार्थतत्परा होती हैं। साध्वी तो परलोक के भय से तथा इहलोक में अपनी यशप्राप्ति हेतु तथा कामभाव के कारण पतिसेवारत होती है। भोग्या नारी केवल कामभाव एवं भोगलाभार्थ पति सेवा करती है। यदि भोग न मिले, तब वह ऐसी सेवा क्षणमात्र भी नहीं करेगी!।।२०-२३।।

वस्त्रालङ्कारसंभोगसुस्निग्धाहारमुत्तमम्। यावत्प्राप्नोति सा भोग्या तावच्च वशगा प्रिया॥२४॥

कुलाङ्गारसमा नारी कुलटा कुलनाशिनी।
कपटात्कुरुते सेवां स्वामिनो न च भक्तितः॥२५॥

सदा पुंयोगमाशंसुर्मनसा मदनातुरा। आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नवं नवम्॥२६॥

जारार्थे स्वपतिं तात हन्तुमिच्छति पुंश्चली।
तस्यां यो विश्वसेन्मूढो जीवनं तस्य निष्फलम्॥२७॥

ऐसी भोग्या नारी को जब तक वस्त्र, अलंकार, संभोगसुख, उत्तम स्निग्ध आहार मिलता रहता है, तब तक ही भोग्या नारी पति की वशवर्त्तिनी तथा प्रिय रहती है। जो कुलटा नारी है, वह कुलनाश करने वाली अंगार की तरह होती है। वह कपट से स्वामी सेवा करती है। उसमें पति के प्रति भक्ति कदापि नहीं होती है। वह सतत् कामभाव के वशीभूत होकर समागम के लिए आतुर बनी रहती है। वह अपने जारपुरुष से नित्य नये-नये आहारादि की कामना करती रहती है। हे तात! कुलटा तो अपने जार को निर्विरोध प्राप्त करने हेतु पति का वध तक कर देती है। जो मूढ़ चित्त वाला पुरुष कुलटा के प्रति विश्वास रखता है, उसका जीवन निष्फल हो गया।।२४-२७।।

कथिता योषितः सर्वा उत्तमाधममध्यमाः।
स्वात्मारामा विजानन्ति मनस्तासां न पण्डिताः॥२८॥

हृदयं क्षुरधाराभं शरत्पद्मोत्सवं मुखम्। सुधासमं सुमधुरं वचनं स्वार्थसिद्धये॥२९॥

प्रकोपे विषतुल्यं च विश्वासे सर्वनाशनम्। दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म केवलम्॥३०॥

मैंने इस प्रकार उत्तम (साध्वी), मध्यम (भोग्या) तथा अधम (कुलटा) नारी का वर्णन कर दिया। नारी के मनोभाव केवल स्वात्माराम योगी-भक्त ही जान सकते हैं। विद्वान् यह नहीं जान सकते। नारी के मुख से तो शरदकालीन कमल का आभास द्योतित होता है, तथापि इनका हृदय छुरे की धार जैसा होता है। ये क्रोधित होने पर विषतुल्य वाणी बोलती हैं। स्वार्थसिद्धि हेतु सुमधुर अमृतमय वाक्य बोलती हैं। इन पर विश्वास जिसने किया, उसका सर्वनाश निश्चित है। इनका अभिप्राय समझ सकना कठिनतर है। केवल इनके कर्म अत्यन्त गूढ़ माने गये हैं।।२८-३०।।

सदा तासामविनयः प्रबलं साहसं परम्। दोषोत्कर्षश्छलोत्कर्षः शश्वन्माया दुरत्यया॥३१॥

पुंसश्चाष्टगुणः कामः शश्वत्कामो जगद्गुरो। आहारो द्विगुणो नित्यं नैष्ठुर्यं च चतुर्गुणम्॥३२॥
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम्।
यत्रेमे दोषनिवहाः काऽऽस्था तत्र पितामह॥३३॥

स्त्रियों में सर्वदा अविनय, प्रबल साहस रहता है। उनका कार्य दोषपूर्ण तथा छलयुक्त देखा जाता है। हे जगद्गुरु! पुरुष की तुलना से नारी में कामभाव आठ गुना, आहार दो गुना, निष्ठुरता चौगुनी होती है। पुरुष की तुलना से नारीगण में क्रोध छः गुना अधिक कहा गया है। नारी में ऐसे दोष समूह रहते हैं। उनके प्रति मेरी क्या आस्था हो सकती है?।।३१-३३।।

का क्रीडा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रमलवेश्मनि।
तेजः प्रणष्टं संभोगे दिवाऽऽलापे यशःक्षयः॥३४॥
धनक्षयोऽतिप्रीतौ चात्यासक्तौ च वपुःक्षयः। साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे माननाशनम्।
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किं सुखम्॥३५॥

हे पितामह! नारी शरीर विष्ठा-मूत्र तथा क्लेद का भंडार है। उस नारी के साथ क्रीड़ा से सुख की संभावना कहां है? स्त्री समागम से तेजनाश होता है। दिन में बातें करने से यश नाश हो जाता है। नारी के साथ प्रगाढ़ प्रेम से धननाश, अत्यन्त स्त्री आसक्ति होने से शरीर नाश, सहवास से पौरुष-वीर्य नाश होता है। परस्परतः कलह होने पर सम्मान एवं मान का नाश हो जाता है। उस पर विश्वास करना तो सर्वनाश का कारण है। हे ब्रह्मन्! रमणी से सुख की आशा कहां है?।।३४-३५।।

यावद्धनी च तेजस्वी सश्रीको योग्यतापरः। पुमान्नारीं वशीकर्तुं समर्थस्तावदेव हि॥३६॥
रोगिणं निर्धनं वृद्धं योषिद्वै प्रेक्षतेऽप्रियम्।
लोकाचारभयात्तस्मै ददात्याहारमल्पकम्॥३७॥
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मागमो यथा।
सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वात्मारामेश्वरो भवान्॥३८॥
अनुग्रहं कुरु विभो विदायं देहि सांप्रतम्।
कृष्णभक्तिं प्रार्थयामि त्वयि कल्पतरोः परे॥३९॥

पुरुष जब तक पर्याप्त धनी, तेजस्वी तथा योग्य है, तभी तक नारी उसके वश में रहती है। यदि वही पुरुष जब रोगी, निर्धन एवं वृद्ध हो जाता है, तब नारीगण उसकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करतीं। केवल लोकाचार के कारण ऐसे पुरुष को आहार प्रदान करती रहती हैं। हे ब्रह्मन्! यह मैंने अपने ज्ञान के अनुसार स्त्री चरित का वर्णन कर दिया। हे सर्वज्ञ देव! आप ईश्वर तथा आत्माराम हैं। आप सब कुछ जानते हैं। हे विभु! कृपा पूर्वक मुझे इस कार्य से विदा करें (यह कार्य न सौंपें)। मैं आपसे केवल कृष्ण भक्ति मांगता हूं। आप तो कल्पवृक्ष जैसे हैं।।३६-३९।।

इत्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम्। आज्ञां ययाचे पितरं तपसि मङ्गले॥४०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः।
कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः॥४१॥
गच्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने।
रुरोदोच्चैर्मुक्तकण्ठं महासांसारिको यथा॥४२॥
करे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुम्ब च पुनः पुनः।
चिरं वक्षसि कृत्वा च वासयामास जानुनि॥४३॥
स्वात्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।
भेदं सोढुं न शक्तोऽभूद्विच्छेदो दुःसहो नृणाम्॥४४॥

यह कहने के पश्चात् नारद ने पितामह से मंगलमय तपःश्चरणार्थ आज्ञा की याचना किया। तत्पश्चात् मुनिप्रवर नारद पितामह ब्रह्मा की प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम करके जब जाने लगे, तब जगत् के विधाता ब्रह्मा एक संसारी सामान्य व्यक्ति की तरह उच्च स्वर से रोने लगे। उन्होंने नारद का हाथ पकड़ कर उनका आलिंगन तथा पुनः-पुनः चुम्बन किया। उन योगीन्द्रों के गुरु स्वात्माराम लोगों के ईश्वर ब्रह्मा ने उनका देर तक वात्सल्य से आलिंगन करने के पश्चात् उनको अपनी जांघ पर बैठा लिया। हे शौनक! उस समय ब्रह्मदेव पुत्रवियोग सहन कर सकने में अशक्त हो गये थे। प्राणीगण के लिये वियोग जनित दुःख दुःसह होता है।।४०-४४।।

कातरः पुत्रभेदेन मोहितो विष्णुमायया। शोकार्तो वक्तुमारेभे सुतं संबोध्य शौनक॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० ब्रह्म० सौ० ब्रह्मनारदसंवादो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

ब्रह्मदेव विष्णुमाया से मोहित होकर पुत्र विच्छेदजनित दुःख से अत्यन्त कातर हो गये थे। तब उन्होंने शोकार्त्त होकर पुत्र से कहा-।।४५।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

पितामह द्वारा नारद को मन्त्र प्राप्ति हेतु शिवलोक जाने का निर्देश दिया जाना

श्रीब्रह्मोवाच

त्वं गच्छ तपसे वत्स किं मे संसारकर्मणि।
अहं यास्यामि गोलोकं विज्ञातुं कृष्णमीश्वरम्॥१॥

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो वैरागी चतुर्थः पुत्र एव च॥२॥

यती हंसी चारुणिश्च[1] वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
पुत्रास्तपस्विनः सर्वे किं मे संसारकर्मणि॥३॥

वचस्करो मरीचिर्म अङ्गिराश्च भृगुस्तथा। [2]रुचिरत्रिः कर्दमश्च प्रचेताश्च क्रतुर्मनुः॥४॥

वसिष्ठो वशगः शश्वत्सर्वेषु च सुतेषु च।
अन्येऽविवेकिनोऽसाध्याः किं ते संसारकर्मणि॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे वत्स! मुझे संसारकर्म (सृष्टि) का क्या प्रयोजन? तुम तपस्या के लिये जाओ। मैं भी परमेश्वर श्रीकृष्ण के यथार्थ रूप के ज्ञानार्थ गोलोक जाता हूं। सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, यती, हंसी, आरुणी, वोढु, पंचशिख प्रभृति मेरे पुत्र वैराग्य के कारण तपस्वी हो गये। केवलमात्र मरीचि, अंगीरा, भृगु, रुचि, अत्रि, कर्दम, प्रचेता, क्रतु, मनु एवं मेरे वश में रहने वाले वसिष्ठ ही मेरे आज्ञाकारी हैं। इसके अतिरिक्त शेष पुत्र अविवेकी तथा असाध्य (मेरी आज्ञा न मानने वाले) हैं। अतः अब मुझे सृष्टिकार्य का कोई प्रयोजन प्रतीत नहीं होता॥१-५॥

निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं वचनं शुभम्। पारम्पर्यक्रमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥६॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्ति पण्डिताः।
वेदप्रणिहितानेतान्सभासु मुनिशंसितान्॥७॥

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः। आदौ विप्रो यज्ञसूत्रं परिधाय सुखं सुखी॥८॥

समधीत्य ततो वेदान्ददानि गुरुदक्षिणाम्। ततः प्रकृष्टकुलजां सुविनीतां समुद्वहेत्॥९॥

हे वत्स! अब मैं वेदसम्मत चतुर्वर्गफलदायक परम्परागत एवं शुभप्रद जो कह रहा हूं, उसे सुनो। सभी विद्वान् व्यक्ति समाज द्वारा प्रशंसनीय, वेदोक्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की ही कामना करते हैं। वही धर्म है। इसके विपरीत जो कुछ भी किया जाता है, वह अधर्मरूप है। इसीलिये ब्राह्मणगण

---

१. यतिर्हंसश्चारणश्चेत्यपि पाठः।

२. क. ०चिर्बर्हिः क०।

पहले वेदोक्त उपनयन संस्कार में यज्ञसूत्र धारण, वेदाध्ययन तत्पश्चात् गुरुदक्षिणा देकर उत्तम कुलोत्पन्न सुविनीता नारी से पाणिग्रहण करते हैं।।६-९।।

सा साध्वी कुलजा या च पतिसेवासु तत्परा।
सद्वंशे दुर्विनीता च संभवेन्न कदाचन आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणे कुतः।।१०।।
असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद। दुर्विनीता च सा दृष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु।।११।।
न वत्स दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमलाकलाः।
स्वर्वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंशसमुद्भवा।।१२।।

उत्तम कुलोत्पन्न कुलीन साध्वी पतिसेवा में तत्पर रहती है। उत्तम कुल में जन्मी नारी कदापि अविनीत नहीं होती। क्या पद्मराग की खान में कांच पैदा हो सकेगा? हे नारद! जो रमणी अकुलीन वंश में उत्पन्न है, वह माता-पिता के दोष से दुर्विनीता, दूषणीया तथा सभी काम मनमाने ढंग से करती है। लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न कोई भी नारी दुष्टा नहीं होती। जो स्वर्गीय नारीगण की अंश साध्वी नारी होती है, वह गुणहीन पति की भी प्रशंसा तथा सेवा करती है।।१०-१२।।

निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति।
न सेवते च कुलटा प्रियं निन्दति सद्गुणम्।।१३।।
साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत्।
तस्यां पुत्रान्समुत्पाद्य वृद्धस्तु तपसे व्रजेत्।।१४।।
वरं हुतवहे वासः सर्पवक्त्रे च कण्टके। एतेभ्यो दुःखदो वासः स्त्रिया दुर्मुखया सह।।१५।।

कुलटा नारी का स्वामी भले सद्गुणी हो, वह अपने पति की सेवा कभी नहीं करती, प्रत्युत् उसकी निन्दा ही करती है। इसीलिये साधु लोग यत्नतः सद्वंश में उत्पन्न कन्या से विवाह करके उसके गर्भ से सन्तानोत्पत्ति करते हैं तथा वृद्धावस्था में तप हेतु चले जाते हैं। हे वत्से! यह सत्य है कि दुष्टा दुर्मुखा रमणी के साथ निवास करने की अपेक्षा सर्प के मुख में अथवा कांटे भरे स्थान में निवास करना उत्तम है।।१३-१५।।

मत्तोऽधीतस्त्वया वेदो मह्यं च गुरुदक्षिणम्। पुत्र देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम्।।१६।।
वत्स त्वं कुलजातां च पूर्वपत्नीं च मालतीम्।
विवाहं कुरु कल्याण कल्याणे च दिनेऽनघ।।१७।।

हे पुत्र! एक शुभ दिन में सत्कुल में उत्पन्न तुम्हारी पूर्व पत्नी ने जन्म लिया है। तुमने मुझसे वेदाध्ययन किया है। अतः मेरी गुरुदक्षिणा यह है कि तुम विवाह करो। हे निष्पाप नारद! तुम उससे विवाह करो। किसी शुभ तिथि में विवाह कर लो।।१६-१७।।

मनुवंशोद्भवस्येह सृञ्जयस्य गृहे सती। त्वत्कृते जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः।।१८।।

गृह्णीष्व परमां रत्नमालां च कमलाकलाम्।
भारते न भवेद्व्यर्थं जनानां तपसः फलम्॥१९॥

उसने मनुवंशीय राजा सृंजय के यहां जन्म लिया है। वह सती भारतवर्ष में तुम्हें प्राप्त करने हेतु तपःश्चरण कर रही है। इस जन्म में उसका नाम है रत्नमाला। वह देवी लक्ष्मी के अंश से जन्मी है। उसे ग्रहण करो, क्योंकि भारत में की गई किसी की तपस्या व्यर्थ नहीं जाती। तप:फल भी व्यर्थ नहीं होता।।१८-१९।।

आदौ भवेद्गृही लोको वानप्रस्थस्ततः परम्।
ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रम एष श्रुतौ श्रुतः॥२०॥
वैष्णवानां हरेरर्चा तपस्या च श्रुतौ श्रुता। वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम्॥२१॥
अन्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा सुत॥२२॥
नान्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा फलम्।
तपसा हरिराराध्यो नान्यः कश्चन विद्यते॥२३॥

सभी लोग पृथिवी पर पहले गृहस्थ होते हैं। तत्पश्चात् वे वानप्रस्थ होते हैं। इसके अनन्तर वे मुक्ति प्राप्ति के लिये तपस्वी होते हैं। यही वेदोक्त क्रम है। वैष्णव हेतु हरिपूजा ही तपस्या है। यही वेदोक्त स्थिति है। तुम तो परम वैष्णव हो। घर में रह कर कृष्ण के चरण-कमल की पूजा करो। जिसके अन्तर्मन में तथा वाह्यतः हरि विद्यमान रहते हैं, उसे अन्य तप करके क्या लाभ? तथा जिसके अन्तर में तथा बाहर हरि नहीं हैं, उनको तप से क्या मिलना है?।२०-२३।।

यत्र तत्र कृतं कृष्णसेवनं परमं तपः। वत्स मद्वचनेनैव गृहे स्थित्वा हरिं भज॥२४॥
गृही भव मुनिश्रेष्ठ गृहीणां सर्वदा सुखम्।
कामिन्यां[1] सुखसंभोगः स्वर्गभोगसमो मतः॥२५॥
तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखत्स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं वरम्॥२६॥

फलस्वरूप तपस्या द्वारा हरि ही आराध्य हैं। अन्य कोई आराध्य नहीं है। जहां कहीं भी हो कृष्ण सेवा ही तप है। हे वत्स! मेरी बात मानो तथा गृह में निवास करके हरिसेवा करो। हे महामुनि! गृही हो जाओ। गृही को सदा सुख ही मिलता है। कामिनी के साथ सुख भोग करना तो स्वर्ग की अपेक्षा और भी दुर्लभ है। मुमुक्षु लोग भी कामिनी के दर्शन एवं स्पर्श (संग) की कामना करते हैं। सभी स्पर्श सुख से रम्य एवं सुखप्रद है नारी का स्पर्श!।।२४-२६।।

ततः सुखतमे पुत्रदर्शनस्पर्शने मुने। सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्तिता॥२७॥
पुत्रप्रयोजना कान्ता शतकान्ताप्रियः सुतः।
नास्ति पुत्रात्परो बन्धुर्नास्ति पुत्रात्परः प्रियः॥२८॥

१. क. ॰मिंन्या सह सं॰।

सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत्पुत्रादेकात्पराजयम्।
न चाऽऽत्मनोऽप्रियोऽर्थश्च तस्मादपि सुतः प्रियः॥२९॥
अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदात्मपरं धनम्।
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा विरराम च शौनक उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः॥३०॥

"उससे भी सुख है पुत्रदर्शन एवं पुत्रस्पर्श में। इसीलिये कान्ता कामिनी से बढ़ कर कोई भी प्रिय नहीं होता। तभी उसे प्रिया कहते हैं। पुत्र के लिये ही नारी का प्रयोजन है। तभी संसार में व्यक्ति सब पर विजय पाना चाहता है, तथापि वह पुत्र से पराजित रहना चाहता है। कोई भी अपने लिये जो कुछ प्रिय वस्तु संचित करता है, वह पुत्र को देता है। तभी पुत्र सर्वाधिक प्रिय माना गया है। इस प्रकार से सबसे प्रिय है पुत्र। उसे अपना समस्त धन प्रदान करे।" हे शौनक! यह कहकर ब्रह्मा मौन हो गये। तब ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारद ने कहा–॥२७-३०॥

नारद उवाच

स्वयं विज्ञाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने। प्रवर्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता॥३१॥
जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारमतिनश्वरम्। जलरेखा यथा मिथ्या तथा ब्रह्मञ्जगत्त्रयम्॥३२॥
विहाय हरिदास्यं च विषये यन्मनश्चलम्।
दुर्लभं मानवं जन्म मा भूत्तन्निष्फलं क्वचित्॥३३॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे पितृदेव! जो पिता स्वयं वेद तथा दर्शन शास्त्र का मर्मज्ञ होकर भी स्वयं पुत्र को असत् मार्गगामी बनाये, उसे दयालु कैसे कहा जा सकता है? हे ब्रह्मन्! यह समस्त जगत् जल के बुलबुले के समान नश्वर है तथा जैसे लहरें क्षणभंगुर होती हैं, तीनों लोक भी वैसा ही है। तभी जिस मनुष्य का मन हरि की सेवा त्याग करके विषयासक्त हो जाये, उसका तो यह दुर्लभ मानव जन्म ही व्यर्थ है॥३१-३३॥

का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे।
कर्मोर्मिभिर्योजना च तदपायो वियोजना॥३४॥
सुकर्म कारयेद्यो हि तन्मित्रं स पिता गुरुः।
दुर्बुद्धिं जनयेद्यो हि स रिपुः स्यात्कथं पिता॥३५॥
इत्येवं कथितं तात वेदबीजं यथागमम्।
ध्रुवं तथाऽपि कर्तव्यं तवाऽऽज्ञापरिपालनम्॥३६॥
आदौ यास्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम्। नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम्॥३७॥

यहां, इस भवसागर में कौन किसकी प्रिया है, कौन किसका पुत्र है, कौन बन्धु है? केवल स्वकृतकर्मरूपी तरंग द्वारा यह संयोग-वियोग होता है। जो पिता पुत्र को सत्कार्य में लगाते हैं, वे ही

उसके मित्र, गुरुरूप हैं। यदि वह पिता पुत्र को कुबुद्धि देता है,तब वही उसका परम शत्रु है। वह तो पिता कहलाने योग्य भी नहीं है। हे तात! आपसे मैंने वेदमूलक व्यवस्था ही कहा है, तथापि आपकी आज्ञा का पालन करना मेरे लिये कर्त्तव्यरूप है। हे प्रभो! पहले मैं नर-नारायण आश्रम जाकर नारायण का माहात्म्य सुन कर, तब विवाह करूंगा।।३४-३७।।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुरः। पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तत्क्षणेन बभूव ह।।३८।।
क्षणं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः। उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम्।।३९।।

यह कहकर पितृ सान्निध्य में नारद मौन होकर स्थित हो गये। तभी उन पर आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। कुछ क्षण इसी स्थिति में रहने के उपरान्त पुनः मुनिप्रवर नारद ने मंगलप्रद वचन पितामह ब्रह्मा से कहा-।।३८-३९।।

नारद उवाच

देहि मे कृष्णमन्त्रं च यन्मनोवाञ्छितं मम। तत्संबन्धि च यज्ज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम्।।४०।।
ततः पश्चात्करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंग्रहम्।
मानसे परिपूर्णे च कार्यं कर्तुं पुमान्सुखी।।४१।।

देवर्षि नारद कहते हैं-आप मुझे मनोभिलषित कृष्णमन्त्र दीजिये। साथ ही मन्त्र से सम्बन्धित उनका गुणवर्णनरूप ज्ञान भी प्रदान करिये। तदनन्तर मैं आपकी प्रसन्नता के लिये विवाह करूंगा। अभिलाषा (मन्त्र की) पूर्ण होने पर ही कोई व्यक्ति आनन्द पूर्वक कार्य सम्पन्न कर सकेगा।।४०-४१।।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः। उवाच पुनरेवेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः।।४२।।

यह सुनकर ज्ञानियों में प्रधान ब्रह्मा प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने पुनः नारद से कहा-।।४२।।

ब्रह्मोवाच

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद्विचक्षणः।
विविक्ताश्रमिणां चैव न[1] मन्त्रः सुखदायकः।।४३।।
निषेकाल्लभ्यते मन्त्रो [2]गुरुर्भर्ता च कामिनी।
विद्या सुखं भयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च।।४४।।
महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः।
गच्छ वत्स शिवं शान्तं शिवदं ज्ञानिनां गुरुम्।।४५।।
तत एव भवान्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात्।
नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मद्गृहम्।।४६।।

---

१. क. न पुत्रः सु०।
२. क. ०भक्ता च।

ब्रह्मा कहते हैं–हे वत्स नारद! विद्वान् व्यक्ति कदापि पिता अथवा पति से मन्त्रग्रहण न करे। यह उचित नहीं है। संन्यासी द्वारा प्राप्त मन्त्र सुखजनक नहीं होता। भाग्य (नियति) के बिना कोई अपनी इच्छा से पौरुष द्वारा मन्त्र, गुरु, नारी, विद्या, सुख, भय किंवा दुःखलाभ नहीं कर सकता। हे वत्स! महेश्वर तो तुम्हारे पूर्वजन्म के गुरु हैं। तुम शान्त, मंगलदायक, ज्ञानीगण के गुरु शिव के यहां जाकर उन पुरातन गुरु से कृष्णमन्त्र तथा ज्ञान लाभ करो। उनसे ही नारायण कथा सुनकर मेरे घर आओ।।४३-४६।।

इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च शौनक।
प्रणम्य पितरं भक्त्या शिवलोकं ययौ मुनिः।।४७।।

इति श्री० म० सौ० ब्र० ब्रह्मनारदोक्तसंसारसुखासुखवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

हे शौनक! जगद्विधाता ब्रह्मा यह कहकर मौन हो गये। मुनि नारद भक्ति पूर्वक पिता को प्रणाम करके शिवलोक गये।।४७।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

शिव तथा नारद का समागम

सौतिरुवाच

क्षणेन विप्रप्रवरो मुदाऽन्वितो जगाम शंभोः सदनं मनोहरम्।
ऊर्ध्वं ध्रुवाद्योजनलक्षमीप्सितं महार्हरत्नौघविनिर्मितं महत्।।१।।
निराश्रये योगबलेन शंभुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम्।
दृष्टं सुपुण्याशयसाधकैर्वरैर्मुनीन्द्रवर्यैः[1] परिपूरितं शुभम्।।२।।
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम्।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्धितैरुच्चैरसंख्याप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः।।३।।

सौति कहते हैं–विप्रप्रवर नारद आनन्दित होकर क्षणकाल में (मनोवेग से) मनोहर शंभुगृह में

---

१. क. ०रैर्मणीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम्।

आ गये। वह ध्रुवलोक से भी एक लाख योजन ऊर्ध्व में अवस्थित है। उसका निर्माण प्रभु शंकर शूलपाणि ने रत्नों से किया है। यह आश्रम नाना विचित्र भवनयुक्त है। यह शंभु के योगबल से शून्य में अवस्थित है। प्रधान मुनिगणों द्वारा योग साधन किये जाने के कारण यह स्थान तपःतेज से दिन-रात प्रज्वलन्त रहता है। हे मुनिवर! यहां चन्द्र-सूर्य का आलोक नहीं आता। यहां प्राचीर के आकार के अत्यन्त उच्च, अत्यन्त प्रवृद्ध, ज्वालामाला से उद्दीप्त असंख्य पावक शिखा द्वारा उज्ज्वल अग्निदेव इसे निरन्तर घेरे रहते हैं।।१-३।।

पुरं वरं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा।
विराजितं हीरकसारनिर्मितैश्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः।।४।।
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनैर्निषेवितं संततमेव शौनक।।५।।
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्षदैः।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम्।।६।।

यह उत्तम शिवपुरी एक लक्ष योजन विस्तार वाली है। यहां उत्तम रत्न-जड़ित तीन कोटि गृह हैं तथा यहां उत्तम हीरक निर्मित चित्र-विचित्र मनोहर पदार्थ भी विराजमान हैं। हे द्विज! शौनक! ये सभी गृह मणि-माणिक्य तथा मुक्तामय दर्पण से सज्जित हैं। विश्वकर्मा ने स्वप्न में भी ऐसा भवन नहीं देखा होगा! हे ऋषिप्रवर शौनक! प्रधान शिवसेवक लोग यहां कल्पान्त तक निवास करते हैं। शिवलोक १०० कोटि लक्ष सिद्ध लोग, तीन कोटि लक्ष शिव पार्षद, तीन लक्ष भयानक भैरवों तथा सैकड़ों लक्ष क्षेत्र से यह आवेष्ठित है।।४-६।।

सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव संततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सूपुष्पितैः।
विराजितं सुन्दरकामधेनुभिर्यथा बलाकाशतकैर्नभस्तलम्।।७।।

यह लोक मन्दार आदि सुपुष्पित देववृक्षों से घिरा तथा सैकड़ों कल्पवृक्षों से युक्त है। यहां सुन्दर कामधेनु उसी तरह निर्भय विचरती रहती हैं, जैसे सैकंड़ों बलाकाओं का झुण्ड आकाश की शोभावृद्धि करता है।।७।।

दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किं[1] नात्र चित्रं सुरयोगिनां गुरौ।
लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं भीमृत्युरोगार्तिजराहरं वरम्।।८।।

यह देख कर मुनि नारद अत्यन्त विस्मय से भर गये। उन्होंने यह निश्चित किया कि जो बुद्धिमानों तथा योगीगण के गुरु हैं, उनके सम्बन्ध में कुछ भी विचित्र नहीं हो सकता। फलस्वरूप यह स्थान त्रैलोक्य से विचित्र एवं उत्तम है। यहां पर भय, मृत्यु, रोग, शोक, जरा आदि कुछ भी नहीं है।।८।।

१. क. किमत्र चि०।

दूरे सभामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम्।
पद्मत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम्॥९॥
प्रतप्तहेमाभजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम्।
मन्दाकिनीपुष्करबीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा[1] जपन्तम्॥१०॥
सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम्।
सिद्धेश्वरं सिद्धविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम्॥११॥
प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं वरं विश्वाश्रयाणां शिवदं वरप्रदम्।
सदाऽऽशुतोषं भवरोगवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकबन्धुम्॥१२॥

तदनन्तर नारद ने दूर से ही सभामण्डल मध्यस्थ शिवप्रद शिव का दर्शन किया। उनकी मूर्त्ति शान्त तथा मनोहर एवं नयनत्रय कमल के समान थे। उनके पांचों मुख चन्द्रतुल्य थे। उन्होंने मस्तक पर गंगा तथा ललाट पर निर्मल चन्द्रखण्ड धारण किया था। वे शुभ्रवर्ण दिगम्बर परमेश्वर प्रतप्त स्वर्ण के समान जटाभार धारी थे। वे अनन्त तथा अक्षय थे। वे निरन्तर मन्दाकिनी में उगे पद्मबीज की माला से आनन्द के साथ कृष्णनाम का जप कर रहे थे। इस सिद्धिप्रद कृष्णनाम जप के कारण सिद्धेश्वर मृत्युंजय काल तथा यम के भी अन्तक हैं। महायोगीन्द्र, सिद्ध तथा मुनिगण उनकी चरण वन्दना करते हैं। उनका कण्ठ नीलवर्ण, सर्वाङ्ग नागों से मण्डित था। उनका मुखकमल प्रसन्न, हास्यमय था। वे प्रभु विश्व को मंगल प्रदान करने वाले, वरप्रद, आशुतोष, भक्तजन प्रिय तथा भक्तों के एकमात्र बन्धु, सर्वश्रेष्ठ मनोहर, भवरोग रहित, विश्वाश्रय तथा आशुतोष हैं॥९-१२॥

गत्वा समीपं मुनिरेष शूलिनं ननाम मूर्ध्ना पुलकाङ्कविग्रहः।
वीणां त्रितन्त्रीं क्वणयन्पुनर्जगौ कृष्णं स तुष्टाव कलं सुकण्ठः॥१३॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरं च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम्।
योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह हर्षेण पीठादुदपश्यदीश्वरः॥१४॥

मुनिप्रवर नारद ने शूलपाणि के निकट जाकर रोमांचित शरीर से मस्तक झुका कर उनको प्रणाम किया। तदनन्तर सुकण्ठ नारद ने त्रितंत्री वीणा वादन करते हुए मधुर स्वर में कृष्ण का गुणगान तथा उनका स्तव किया। तदनन्तर परमेश्वर मुनीन्द्रप्रधान वेदज्ञप्रधान स्मित हास्ययुक्त विधिपुत्र को देख कर अतिशीघ्र योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र तथा महर्षियों सहित आसन से उठ गये॥१३-१४॥

ददौ च तस्मै मुनये ससंभ्रमादालिङ्गनं चाऽऽशिषमासनादिकम्।
पप्रच्छ भद्रागमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसां च शौनक॥१५॥
सद्रत्नसिंहासनसुन्दरे परश्चोवास शंभुर्वरपार्षदैः सह।
नोवास धातुस्तनयः कृताञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज॥१६॥

१. सदेति च पाठः।

गन्धर्वराजेन कृतेन नारदः स्तोत्रेण रम्येण शुभप्रदेन च।
स्तुत्वा प्रणामं पुनरेव कृत्वा भवाज्ञयोवास भवस्य वामतः॥१७॥

हे शौनक! शंकर ने तब निःसंकोच होकर मुनिप्रवर नारद का आलिंगन किया। उनको आशीर्वाद देकर आसन भी प्रदान किया। उन्होंने उन तपोधन की तपस्या की कुशलता के सम्बन्ध में भी पूछा। नारद से उनके आगमन के प्रयोजन की भी जिज्ञासा किया। तदनन्तर प्रभु पार्षदगण सहित अपने-अपने उत्कृष्ट रत्न सिंहासन पर बैठे। उस समय नारद ने खड़े ही रहकर हाथ जोड़ कर प्रभु का स्तव किया। नारद ने गन्धर्वराजकृत वेदोक्त मंगलदायक स्तोत्र द्वारा उनका स्तव किया तथा बारम्बार प्रणाम करके महादेव की आज्ञा से उनके वामभाग में आसन ग्रहण किया।।१५-१७।।

चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिलाषं निजकामपूरके।
श्रुत्वा मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञाय चकार चोमिति॥१८॥

इति श्री० म० सौ० ब्र० कैलासं प्रति नारदागमनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

तदनन्तर नारद ने जगत् की कामना पूर्ण करने वाले शिव से अपने मनोगत भाव को भी कह दिया। तदनन्तर कृपालु शिव ने मुनिवाक्य सुन कर कहा कि 'ऐसा ही होगा'।।१८।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद के प्रति महादेव द्वारा कृष्णमन्त्र प्रदान का वर्णन तथा आह्निक प्रकरण कथन

सौतिरुवाच

हरिस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं पूजाविधिं परम्। हरं ययाचे देवर्षिर्ध्यानं च ज्ञानमेव च॥१॥
स्तोत्रं च कवचं मन्त्रं ध्यानं पूजाविधिं तथा।
तत्प्राक्तनीयज्ञानं च ददौ तस्मै महेश्वरः॥२॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः। उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम्॥३॥

सौति कहते हैं—उस समय देवर्षि नारद ने शिव से श्रीहरि का स्तोत्र, कवच, मन्त्र, पूजाविधि,

ध्यान तथा ज्ञान हेतु प्रार्थना किया। महेश्वर ने नारद को हरि का स्तोत्र, कवच, मन्त्र, ध्यान, पूजाविधि तथा उनके जन्मान्तरीण (पूर्व जन्मार्जित) ज्ञान को भी प्रदान किया। (अर्थात् प्राक्तन ज्ञान भी दिया)। मुनिप्रवर नारद यह सब पाकर परिपूर्ण मनोरथ हो गये। उन्होंने भक्ति के साथ अपने गुरु के समक्ष प्रणत होकर उन प्रणतवत्सल गुरु महादेव से कहा–॥१-३॥

नारद उवाच

आह्निकं ब्राह्मणानां च वद वेदविदां वर। स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! जिस कार्य से नित्य स्वधर्म का पालन किया जा सके, कृपा पूर्वक ब्राह्मणों की आह्निक क्रिया का (नित्यकर्म का) वर्णन करिये।।४।।

श्रीमहेश्वर उवाच

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे। सूक्ष्मे सहस्त्रपत्रे स्वे निर्मले ग्लानिवर्जिते॥५॥

रात्रिवासं परित्यज्य गुरुं तत्रैव चिन्तयेत्।

व्याख्यामुद्राकरं प्रीतं सस्मितं शिष्यवत्सलम्॥६॥

प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम्। साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपं च[1] परमं चिन्तयेत्सदा॥७॥

श्री महेश्वर कहते हैं–ब्राह्मण लोग ब्राह्ममुहूर्त्त में उठें। रात्रि का वस्त्र त्याग कर निर्मल तथा ग्लानि से रहित ब्रह्मरन्ध्रस्थ सूक्ष्म सहस्र दल पद्म में गुरु का चिन्तन इस प्रकार करें कि वे उपदेशदाता हैं। सर्वदा प्रसन्न एवं ईषत् हास्ययुक्त तथा भक्तवत्सल हैं। उनका मुखकमल निरन्तर प्रसन्न है। मूर्त्ति शान्त है तथा वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। शिष्य द्वारा गुरु का इसी प्रकार चिन्तन किया जाये।।५-७।।

ध्यात्वैवं गुरुमाराध्य हृत्पद्मे निर्मले सिते। सहस्त्रपत्रे विस्तीर्णे देवमिष्टं विचिन्तयेत्॥८॥

यस्य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत्। गृहीत्वा तदनुज्ञां च कर्तव्यं समयोचितम्॥९॥

गुरु का यह ध्यान करके उनकी आज्ञा लेकर निर्मल शुक्लवर्ण विस्तीर्ण सहस्रदल पद्म में इष्टदेव का चिन्तन करना चाहिये। जिस देवता का जैसा ध्यान है, उसका चिन्तन उसी प्रकार से होगा। समस्त समयोचित कर्त्तव्य गुरु आज्ञा से करे।।८-९।।

आदौ ध्यात्वा गुरुं नत्वा संपूज्य विधिपूर्वकम्।

पश्चात्तदाज्ञामादाय ध्यायेदिष्टं प्रपूजयेत्॥१०॥

गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रः पूजाविधिर्जपः। न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्माद्देवाद्गुरुः परः॥११॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः॥१२॥

गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत्। गुरुरेव परं ब्रह्म नास्ति पूज्यो गुरोः परः॥१३॥

नियम यह है कि सर्वप्रथम गुरु ध्यानोपरान्त उनको प्रणाम करे। तदनन्तर उनकी सविधि पूजा

१. क. च शिष्याणां चित्तनायकम्॥७॥ ध्यात्वा हृदाऽऽज्ञामादाय ह०।

करके उनकी आज्ञा लेकर ही इष्टध्यान तथा पूजन करे। गुरुदेव इष्टदेव का, उनके मन्त्र का, उनकी पूजाविधि का तथा जप का प्रदर्शन कराते हैं, तथापि इष्टदेव गुरु का दर्शन नहीं करा सकते। इसी कारण इष्टदेव से गुरु श्रेष्ठ हैं। गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु तथा महेश्वर देव हैं। गुरुदेव ही आद्या प्रकृति, चन्द्र, अग्नि, सूर्य, वायु, वरुण, माता, पिता तथा सुहृद् हैं। सब कुछ गुरु ही हैं। गुरुदेव ही परमब्रह्म हैं। अतः गुरु से बढ़ कर कोई भी पूजनीय नहीं है।।१०-१३।।

अभीष्टदेवे रुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः। न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः।।१४।।
यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे। यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा।।१५।।
न संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद्भ्रमात्। ब्रह्महत्याशतं पापी लभते नात्र संशयः।।१६।।

अभीष्ट देव के रुष्ट होने पर गुरु उसकी रक्षा कर देते हैं, तथापि गुरुदेव के रुष्ट होने पर समस्त देवता मिल कर भी उस शिष्य की रक्षा नहीं कर सकते। जिस पर गुरु प्रसन्न हो गये, पग-पग पर वह विजय लाभ करता है। जिसके प्रति गुरु रुष्ट हो जाते हैं, उसका सर्वदा सर्वनाश होता है। जो मूढ़ व्यक्ति गुरुपूजा न करके भ्रम में पड़कर पहले इष्टदेव की पूजा करता है, उसे १०० ब्रह्महत्या का पाप लगता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है।।१४-१६।।

सामवेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम्। तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः।।१७।।
[1]गुरुमिष्टं स्वयं ध्यात्वा स्तुत्वा वै साधको मुने[2]।
निर्मलं स्थलमासाद्य विण्मूत्रं ह्युत्सृजेन्मुदा।।१८।।
जलं जलसमीपं च सरन्ध्रं प्राणिसंनिधिम्। देवालयसमीपं च वृक्षमूलं च वर्त्म च।।१९।।
हलोत्कर्षस्थलं चैव सस्यक्षेत्रं च गोष्ठकम्।
नदीकन्दरगर्भं च पुष्पोद्यानं च पङ्किलम्।।२०।।

भगवान् श्रीहरि ने सामवेद में यही स्वयं कहा है कि इसी कारण अभीष्टदेव से भी गुरु पूज्यतम तथा उत्कृष्ट है। हे मुनिवर! साधक पहले गुरु ध्यान एवं स्तव पाठ करके तभी वेदोक्त (वेदविहित) स्थान पर जाकर मल-मूत्र त्याग करे। जल के पास, जल में, रन्ध्रयुक्त स्थान में अर्थात् जहां प्राणीगण के बिल हों, जहां प्राणी निवास करते हों, देवालय के निकट, वृक्ष की जड़ पर, मार्ग पर, हल जोते खेत में, फसल वाले खेत में, गोशाला में, नदी में, नदी तट के पास के गढ़े में, पुष्पोद्यान में, कीचड़ वाले स्थान में-।।१७-२०।।

ग्रामाद्यभ्यन्तरं चैव नृणां गृहसमीपकम्। शङ्कुं सेतुं शरवणं श्मशानं वह्निसंनिधिम्।।२१।।
क्रीडास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलं तथा।
वृक्षच्छायायुतं स्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम्।।२२।।

१. क. ०मिष्टसुरं ध्या०।
२. क. ०ने। वेदोक्तं स्थ०।

दूर्वास्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च।
वृक्षारोपणभूमिं च कार्यार्थं च परिष्कृतम्॥२३॥

एतत्सर्वं परित्यज्य सूर्यतापविवर्जितम्। कृत्वा गर्तं पुरीषं च मूत्रं च परिवर्जयेत्॥२४॥

ग्राम के अन्दर, मनुष्यों के गृह के पास, कन्दरा में, शंकुयुक्त स्थान में, पुलों पर, सरकण्डों के वन में, श्मशान में, अग्नि के पास, खेल की जगह, भयानक वन में, किसी मंच के नीचे, वृक्ष के नीचे, दूर्वा अथवा कुश के ऊपर, दीमक की बांबी पर, वृक्षारोपण होने वाली भूमि पर, किसी कार्य के लिये साफ की गई भूमि पर, मलमूत्र त्याग कदापि न करे। इन स्थानों का त्याग करके सूर्य की धूप जहां न पड़े, वहां गढ़ा करके तब मलोत्सर्ग करे।।२१-२४।।

पुरीषमूत्रोत्सर्गं च दिवा कुर्यादुदङ्मुखः।
पश्चिमाभिमुखो रात्रौ संध्यायां दक्षिणामुखः॥२५॥
मौनी धृत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न सञ्चरेत्।
त्यक्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौचं कुर्याद्विचक्षणः॥२६॥
कृत्वा तु लोष्टशौचं च जलशौचं ततः परम्।
मृद्युक्तं तज्जलं चैव तत्प्रमाणं निशामय॥२७॥

दिन में मल-मूत्र त्याग उत्तराभिमुख होकर करे। रात्रि में पश्चिम की ओर मुख करके मल-मूत्र त्यागे। सन्ध्याकाल में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके यह उत्सर्जन कार्य करे। मलमूत्र त्यागकाल में मौनी रहे, दीर्घ श्वास न ले, इससे दुर्गन्ध शरीर में प्रवेश नहीं करेगी। मल त्याग के उपरान्त बुद्धिमान व्यक्ति उसे मिट्टी से ढांके। तदनन्तर मिट्टी के ढेले से गुदा आदि शुद्ध करके जल से प्रक्षालन करके शुद्धि सम्पन्न करना चाहिये। मृत्तिका मिले जल को शौचार्थ उपयोग में लाया जाता है। स्वच्छता का प्रमाण श्रवण करो।।२५-२७।।

एकां लिङ्गे मृदं दद्याद्वामहस्ते चतुष्टयम्। उभयोर्हस्तयोर्द्वे तु मूत्रशौचं प्रकीर्तितम्॥२८॥
मूत्रशौचं द्विगुणितं मैथुनानन्तरं यदि। मैथुनानन्तरं यद्वा मूत्रशौचं चतुर्गुणम्॥२९॥

मूत्रत्यागोपरान्त लिंग में एक बार मिट्टी लगाये। वाम हस्त में ४ बार तथा दोनों हाथ में दो बार मृत्तिका लगाये। मैथुनोपरान्त मूत्रत्याग की शुद्धि द्विगुण किंवा चतुर्गुण मृत्तिका से की जाये।।२८-२९।।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश।
उभयोः सप्त दातव्याः पादः षष्ठेन शुध्यति॥३०॥

मलत्यागोपरान्त लिंग में एक बार मिट्टी लगाये। गुदा में तीन बार, वाम हाथ में १० बार, दोनों हाथों में ७ बार तथा चरण में छः बार मिट्टी लगाये। इसी से शुद्धि होगी।।३०।।

पुरीषशौचं विप्राणां गृहिणामिदमेव च। विधवानां द्विगुणितं शौचमेवं प्रकीर्तितम्॥३१॥

वैष्णवानां यतीनां च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम्।
चतुर्गुणं च गृहिणां तेषां शौचं प्रकीर्तितम्॥३२॥
नो यावदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाऽङ्गना। गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौचं प्रकीर्तितम्॥३३॥
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानां गृहिणां समम्।
द्विगुणं वैष्णवादीनां मुनीनां परिकीर्तितम्॥३४॥

जो ब्राह्मण गृहस्थ हैं, वे भी इसी नियम से शौचकार्य करे। विधवा को इससे द्विगुणित शौच करना चाहिये। जो वैष्णव, यती, ब्रह्मर्षि तथा ब्रह्मचारी हैं, वे गृही के लिये कहे शौचकार्य से चतुर्गुण शौच करें। शूद्र, नारी तथा जो द्विज यज्ञोपवीत से रहित हैं, वे उसी प्रमाण में जल का प्रयोग करें, जिससे अंग शुद्ध हो जाये। गृहस्थ द्विजों के ही परिमाण में शुद्धि कार्य से क्षत्रिय एवं वैश्य की शुद्धि होती है। वैष्णव तथा मुनिगण हेतु द्विगुण शुद्धि का विधान है।।३१-३४।।

न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता।
प्रायश्चित्तं प्रयज्येत विहितातिक्रमे कृते॥३५॥
शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय।
मृच्छौचे च शुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्च व्यतिक्रमे॥३६॥

जो वास्तव में शुद्धि चाहते हैं, वे इससे न्यून तथा अधिक मात्रा में शौचकार्य न करे। नियम का उल्लंघन करने वाले को प्रायश्चित्त करना होता है। अतः यह कार्य शास्त्रविहित परिमाण में करे। अब सावधान चित्त से शौच नियम श्रवण करे। मृत्तिका से ही ब्राह्मण शुद्ध होगा। जो इस नियम का व्यतिक्रम करेगा, उसमें अशुद्धि रह जायेगी।।३५-३६।।

वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा।
शौचावशिष्टां गेहाच्च नाऽऽदद्याल्लेपसंभवाम्॥३७॥
अन्तःप्राण्यवपर्णां च हलोत्खातां विशेषतः।
कुशमूलोत्थितां चैव दूर्वामूलोत्थितां तथा॥३८॥
अश्वत्थमूलान्नीतां च तथैव शयनोत्थिताम्।
चतुष्पथाच्च गोष्ठानां गोष्पदानां तथैव च॥३९॥
सस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानां मृदंत्यजेत्।
स्नातो वाऽप्यथवाऽस्नातो विप्रः शौचेन शुद्ध्यति॥४०॥

इस शुद्धिकार्य में बांबी (दीमक की बांबी) की, मूषक द्वारा उतखनित, जल के अन्दर की, शुद्धि कार्य से बची, मिट्टी के घर की दीवाल की मृत्तिका का प्रयोग न करे। स्थान शुद्धि हेतु लीपने वाली जो मृत्तिका लाई गयी है, वह भी त्याज्य है। जिस मृत्तिका में प्राणीगण का निवास हो, पत्ते के ढेर के नीचे

जो मिट्टी हो, हल से जोते गये स्थान की मिट्टी त्याज्य है। वह शौचार्थ वर्जित है। इसी प्रकार कुश एवं दूर्वा के जड़ की मिट्टी, पीपल के पेड़ के निकट की मिट्टी, शयनार्थ बने चबूतरे की मिट्टी वर्जित है। चौराहा, गोशाला, गाय के खुर में लगी, फसल के नीचे की, उद्यान की मृत्तिका भी वर्जित है। ब्राह्मण ने भले ही स्नान नहीं किया है, तथापि शौचाचार पालन से उसे शुद्धिलाभ हो जाता है।।३७-४०।।

शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
कृत्वा शौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत्सुधीः॥४१॥

आदौ षोडश गण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च। दन्तकाष्ठेन दन्तांश्च तत्पश्चात्परिमार्जयेत्॥४२॥
पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत्। दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद॥४३॥
निरूपितं सामवेदे हरिणा चाऽऽह्निकक्रमे। अपामार्गं सिंधुवारमाम्रं च करवीरकम्॥४४॥
खदिरं च शिरीषं च जातिपुन्नागशालकम्। अशोकमर्जुनं चैव क्षीरिवृक्षं कदम्बकम्॥४५॥

जम्बूकं बकुलं तोक्मं पलाशं च प्रशस्तकम्।
बदरीं पारिभद्रं च मन्दारं शाल्मलिं तथा॥४६॥
वृक्षं कण्टकयुक्तं च लतादि परिवर्जयेत्।
पिप्पलं च प्रियालं च तिन्तिडीकं च तालकम्॥४७॥

खर्जूरं नारिकेलं च तालं च परिवर्जयेत्। दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः॥४८॥

शुद्धि रहित मानव सदैव सभी कार्य के लिये अधिकारी नहीं रहता। अतः विद्वान् ब्राह्मण शुद्धि करे तब मुख धोये। पहले १६ बार कुल्ला करके मुखशुद्धि करने के अनन्तर दतुअन से दांत मांज कर पुनः १६ बार कुल्ला करके मुख को शुद्ध करना चाहिये। हे नारद! अब दन्तमार्जनार्थ दातौन काष्ठ का नियम श्रवण करो। इसे सामवेदोक्त में निरूपित आह्निक क्रम में श्रीहरि ने स्वयं कहा है। यथा- चिड़चिड़ा, सिन्धुआर, आम, कनेर, खैर, सिरस, जायफल, नागकेशर, साखू, अशोक, अर्जुन, गूलर, कदम्ब, जामुन, मौलसिरी, जौ आदि की हरी बाली तथा पलाश का दन्तकाष्ठ उत्तम कहते हैं। परन्तु बेर, देवदारु, मदार, सेमर, कंटकयुक्त वृक्ष, लता, पीपल काष्ठ, चिरौंजी की लकड़ी, इमली-ताड़-खजूर-नारिकेल का काष्ठ इस कार्य में पूरी तरह वर्जित है। जो नारी दांत शुद्ध नहीं करती, वह सर्वशुद्धि रहित है।।४१-४८।।

शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी॥४९॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रातःसंध्यां समाचरेत्।
एवं त्रिसंध्यं सन्ध्यां च कुरुते कुलजो द्विजः॥५०॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु त्रिसंध्यं यः समाचरेत्। संध्यात्रितयहीनः स्यादनर्हः सर्वकर्मसु॥५१॥

यदृच्छा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्॥५२॥
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः।
पूर्वां संध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमां तथा॥५३॥
ब्रह्महत्यामात्महत्यां प्रत्यहं लभते द्विजः।
एकादशीविहीनो यः संध्याहीनश्च यो द्विजः॥५४॥
कल्पं व्रजेत्कालसूत्रं यथा हि वृषलीपतिः।
प्रातः संध्यां विधायैवं गुरुमिष्टं सुरं रविम्॥५५॥

जो मनुष्य दन्तशौच से रहित है, वह सर्वशौच रहित कहा गया है और जो शुद्धि रहित अपवित्र है, वह सभी कार्य हेतु अधिकारी है ही नहीं। ब्राह्मण एवंविध शौच से पवित्र होकर धुले दो वस्त्रों को पहने तथा पैरों को धोकर आचमन करके तीनों काल सन्ध्यावन्दनादि करे। उसे समस्त तीर्थ स्नान का फल मिल जाता है। त्रिसन्ध्या रहित व्यक्ति भी अपवित्र तथा समस्त कार्य हेतु अयोग्य होता है। उसे समस्त आह्निक कार्यों का कोई फल नहीं मिलता। जो प्रातः सन्ध्या का त्याग करके मध्याह्न एवं सायं सन्ध्या करते हैं, उनको नित्य ब्रह्महत्या पातक, आत्महत्या का पातक नित्य लगता है। त्रिकाल सन्ध्या रहित को शूद्रवत् द्विज के कर्मों से दूर रखना चाहिए। जो द्विज एकादशी व्रत से रहित तथा सन्ध्या रहित है, वह शूद्रा के पति ब्राह्मण के समान कालसूत्र नरक में कल्पकाल निवास करता है। प्रातः सन्ध्या करके गुरु, इष्ट, देवगण तथा सूर्य को प्रणाम करे॥४९-५५॥

ब्रह्माणमीशं विष्णुं च मायां पद्मां सरस्वतीम्।
प्रणम्य गुरुमाज्यं च दर्पणं मधु काञ्चनम्[१]॥५६॥
स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्यात्साधकसत्तमः।
पुष्करिण्यां तु वाप्यां वा यदा स्नानं समाचरेत्॥५७॥
समुद्धृत्य पञ्च पिण्डानादौ धर्मी विचक्षणः।
नद्यां नदे कन्दरे वा तीर्थे वा स्नानमाचरेत्॥५८॥
कुर्यात् स्नात्वा तु सङ्कल्पं ततः स्नानं पुनर्मुने।
श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम्॥५९॥

वह व्यक्ति ब्रह्मा, शिव, विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गादेवी तथा सरस्वती को प्रणाम अवश्य करे। तदनन्तर गुरुदेव, घृत, दर्पण, मधु, स्वर्ण का स्पर्श करके यथाकाल स्नान करना चाहिए। यदि वह विद्वान् धार्मिक व्यक्ति अन्य के बनाये पोखरा, बावली में स्नान करता है, तब उसे स्नानकाल में उस

१. क. ०म्। ५६॥ दृष्ट्वा।

जलाशय की ५ पिण्ड मिट्टी तल में से बाहर तट पर रख कर, तब स्नान करना होगा। नदी, नद, वापी, तीर्थ में स्नान करे। ५ पिण्ड मृत्तिका बाहर निकाल कर तभी नदी, नद, कन्दरा किंवा तीर्थ में स्नान का नियम है। स्नानोपरान्त संकल्प करके पुनः स्नान करे। हे मुनिवर! वैष्णव महात्मागण का सभी संकल्प अपनी प्रसन्नता हेतु न होकर कृष्ण की प्रसन्नता हेतु ही किया जाता है।।५६-५९।।

सङ्कल्पो गृहिणां चैव कृतपातकनाशनः।
विप्रः कृत्वा तु सङ्कल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत्।।६०।।
वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिकृते नरः। अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।।६१।।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्। उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।।६२।।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पाप प्रमोचय।
पुण्यं देहि महाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम्।।६३।।
इत्युक्त्वा च जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम्। चतुर्हस्तप्रमाणां च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम्।।६४।।
तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तं दत्त्वा तपोधन।
यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते।।६५।।

गृही का संकल्प कृत पातक नाशार्थ हो। विप्रगण यह संकल्प कार्य सम्पन्न करने के अनन्तर इस वेदमन्त्र से शरीर को मृत्तिका लिप्त करें। यथा—हे मृत्तिके! मेरे द्वारा कृत सभी पातकों का नाश करो। तुम सदा अश्व, रथ तथा विष्णु के चरणों से आक्रान्त हो। श्रीकृष्ण देव ने वराहरूपी होकर अपनी सौ बाहु से तुम्हारा एकार्णव से उद्धार किया था। अब तुम इस मृत्तिकालेप रूप में मेरे शरीर पर आरूढ़ होकर मुझे पाप रहित करो। हे महाभागे! मुझे इस पुण्य स्नानार्थ आज्ञा प्रदान करो। यह मन्त्र पाठ करके जलाशय में नाभिमात्र जल में खड़ा हो जाये। वहां मन्त्रोच्चार करके चार हाथ के मण्डल की कल्पना जल पर करे। हे तपोधन! उसे स्पर्श करते वहां तीर्थों का आवाहन करना चाहिए। जिन तीर्थों का आवाहन वहां करना है, वह कह रहा हूं।।६०-६५।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु।।६६।।
नलिनी नन्दिनी सीता मालिनी च महापगा।
[1]विष्णुपादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी।।६७।।
पद्मावती भोगवती स्वर्णरेखा च कौशिकी।
दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवाऽमृता।।६८।।
विद्याधरी [2]सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी।
क्षेमा च वैष्णवी शान्ता[3] शान्तिदा गोमती सती।।६९।।

१. क. ०दार्घ्यं सं०।
२. क. सुपत्ना च त०।
३. क. ०न्ता प्रमदा गो०।

सावित्री तुलसी दुर्गा महालक्ष्मीः सरस्वती।
कृष्णप्राणाधिका राधा लोपामुद्रा दिती रतिः॥७०॥
अहल्या चादितिः संज्ञा स्वधा स्वाहाऽप्यरुन्धती।
शतरूपा देवहूतिरित्याद्याः संस्मरेत्सुधीः॥७१॥
स्मृत्वा स्नात्वा महापूतः कुर्यात्तु तिलकं बुधः।
बाह्वोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशे च वक्षसि॥७२॥

हे गंगे! यमुने! गोदावरी! सरस्वती! नर्मदा! सिन्धु! कावेरी! आप सब इस जल में निवास करें। नलिनी, नन्दिनी, सीता, महानदी, मालिनी, विष्णु चरणकलोद्भूता गंगा जो त्रिपथगा है, पद्मावती, भोगवती, स्वर्णरेखा, कौशिकी, दक्षा, पृथिवी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, असिता, विद्याधरी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसाधनी, क्षेमा, वैष्णवी, शान्तिप्रदायिनी, शान्ता, सती, गोमती, सावित्री, तुलसी, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, कृष्णप्राणाधिका राधा, लोपामुद्रा, दिति, रति, अहल्या, अदिति, संज्ञा, स्वाहा, स्वधा, अरुन्धती, शतरूपा, देवहूति प्रभृति का स्मरण करके यह सुधी स्नानार्थी व्यक्ति स्नान से महापावन होकर अपने बाहुमूल, ललाट, कण्ठ, वक्ष पर तिलक लगाये॥६६-७२॥

स्नानं दानं तपो होमो देवता पितृकर्म च।
तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना॥७३॥
ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्यात्संध्यां च तर्पणम्।
नमस्कृत्य सुरान्भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदाऽन्वितः॥७४॥
प्रक्षाल्य पादौ यत्नेन धृत्वा धौते च वाससी। मन्दिरं प्रविशेत्प्राज्ञ इत्याह हरिरेव च॥७५॥
विना पादक्षालनं यः स्नात्वाा विशति मन्दिरम्।
तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमादिपञ्चकम्॥७६॥

ब्राह्मणगण सर्वाग्र में तिलक धारणोपरान्त सन्ध्या तथा तर्पणादि कार्य समाप्त करके पैर धोकर एवं एक जोड़ी वस्त्र धारण करके गृह में जायें। यह स्वयं हरि का कथन है। तिलक लगाये बिना स्नान, दान, तप, होम, देवकर्म-पितृकर्म नष्ट हो जाता है। जो स्नान करके घर में प्रवेश अथवा मंदिर में प्रवेश पैर धोये बना करता है, उसके स्नानादि, जपादि पांच कर्मों का सर्वथा नाश होगा॥७३-७६॥

परिधाय स्निग्धवस्त्रं गृहं च प्रविशेद्गृही।
रुष्टा लक्ष्मीर्गृहाद्याति शापं दत्त्वा सुदारुणम्॥७७॥
जङ्घोर्ध्वतश्च यो विप्रःपादौ प्रक्षालयेद्यदा।
तावद्भवति चाण्डालो यावद्गङ्गां न पश्यति॥७८॥

जो कोई गृही स्निग्ध वस्त्र (आर्द्र वस्त्र) पहने घर में जाता है, उस पर लक्ष्मी कुपित हो जाती हैं। इसे दारुण शाप देकर उसके गृह से चली जाती हैं। जो ब्राह्मण जांघ ऊपर करके पैर धोता है (अर्थान्तर से, तब जांघ के ऊपर तक धोता है) वह तब तक चाण्डाल ही रहेगा, जब तक गंगादर्शन नहीं कर लेता।।७७-७८।।

उपविश्याऽऽसने ब्रह्मञ्छुचिराचम्य साधकः।
पूजां कुर्यात्तु वेदोक्तां भक्तियुक्तो हि संयतः।।७९।।
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले स्थले। गोपृष्ठे वा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः।।८०।।
सर्वेषु शस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद। सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च।।८१।।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत्।।८२।।

हे ब्रह्मन्! जो एवंविध पवित्र हो गये हैं, वे ही आसन पर स्थित होकर आचमन करें। वे भक्ति सहित संयत मन से वेदोक्त पूजा करें। हे नारद! शालग्राम, मणि, यन्त्र, प्रतिमा, जल, स्थल, गोपृष्ठ, गुरु, ब्राह्मण, ये सभी हरिपूजन के उत्तम आधार हैं, तथापि इन सबमें शालग्राम सर्वश्रेष्ठ हैं। हे नारद! जिसने शालग्राम के चरणजल से अपना अभिषेक किया है, उसने तो सभी तीर्थ में स्नान का तथा सभी यज्ञों में दीक्षा का फल पा लिया।।७९-८२।।

शालग्रामजलं भक्त्या नित्यमश्नाति यो नरः।
जीवन्मुक्तः स च भवेद्यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्।।८३।।
शालग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद। सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम्।।८४।।
तत्र यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः। रत्ननिर्मितयानेन स याति श्रीहरेः पदम्।।८५।।
शालग्रामं विनाऽन्यत्र कः साधुः पूजयेद्धरिम्।
कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलं लभेत्।।८६।।

जो मानव नित्य भक्तिभाव से नित्य शालग्राम शिला का जल पीते हैं (शालग्राम को स्नान कराकर वह जल) वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। वे देहान्तोपरान्त गोलोक जाते हैं। हे नारद! जहां शालग्राम शिलाचक्र स्थित रहता है, वहां सभी तीर्थ तथा चक्रधारी भगवान् का निवास रहता है। यदि कोई देहधारी वहां ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः मृत हो जाता है, वह रत्नमय विमान पर बैठ कर गोलोक जाता है। साधु मनुष्य शालग्राम के बिना पूजा नहीं करते। हरि की पूजा शालग्राम पर ही करते हैं। उस स्थान पर पूजा का परिपूर्ण फल मिलता है।।८३-८६।।

पूजाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः। हरेः पूजां बहुमतां कथयामि यथागमम्।।८७।।

मैंने भगवत् पूजा के आधार का वर्णन कर दिया। अब शास्त्रसम्मत बहुविध हरिपूजन का नियम वर्णन करता हूं। श्रवण करिये।।८७।।

कश्चितद्ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश।
सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्त्या च वैष्णवः॥८८॥
कश्चिद्द्वादश वस्तूनि पञ्च वस्तूनि कश्चन।
येषामेव यथा [1]शक्तिर्भक्तिर्मूलं च पूजने॥८९॥

कतिपय लोग (जो भक्तिमान् वैष्णव हैं) भक्तिभावेन हरि की मनोहर पूजा षोडशोपचार से करते हैं। कोई द्वादशोपचार से, कोई पंचोपचार से हरिपूजा करते हैं। अतः जिसकी जो क्षमता हो, वे तदनुसार पूजा करें। वास्तव में भक्ति ही पूजा का मूल है।।८८-८९।।

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। पुष्पं चन्दनधूपं च दीपं नैवेद्यमुत्तमम्॥९०॥
गन्धं माल्यं च शय्यां च ललितां सुविलक्षणाम्।
जलमन्नं च ताम्बूलं साधारं देयमेव च॥९१॥

१. आसन, २. वस्त्र, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमनीय, ६. पुष्प, ७. चन्दन, ८. धूप, ९. दीप, १०. उत्तम नैवेद्य, ११. गन्ध, १२. माल्य, १३. उत्तम कोमल शय्या, १४. जलपात्र साधार, १५. साधार अन्न, १६. आधार युक्त ताम्बूल-ये १६ उपचार हैं।।९०-९१।।

गन्धान्नतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश। पाद्यार्घ्यजलनैवेद्यपुष्पाण्येतानि पञ्च च॥९२॥
सर्वाण्येतानि मूलेन दद्यात्साधकसत्तमः। गुरूपदिष्टं मूलं च प्रशस्तं सर्वकर्मसु॥९३॥

इनमें से गन्ध, अन्न, शय्या तथा ताम्बूल को कम कर दें, तब शेष १२ द्रव्य ही द्वादशोपचार हैं। केवल पाद्य, अर्घ्य, जल, नैवेद्य, पुष्प, यह पंचोपचार हैं। सभी वस्तु साधक गुरुप्रदत्त मूलमन्त्र से अर्पित करे। गुरु के उपदेश से जो मन्त्र मिलता है, वही सभी कार्य में प्रशस्त है।।९२-९३।।

आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणायामं ततः परम्।
अङ्गप्रत्यङ्गयोर्न्यासं मन्त्रन्यासं ततः परम्॥९४॥
वर्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत्।
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र कूर्मं प्रपूजयेत्॥९५॥
जलेनाऽऽपूर्य शङ्खं च तत्र संस्थापयेद्द्विजः।
जलं संपूज्य विधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः॥९६॥
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत्पुनः।
ततो गृहीत्वा पुष्पं च कृत्वा योगासनं शुचिः॥९७॥
ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेत्कृष्णमनन्यधीः।
ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः॥९८॥

१. क. ०क्तिर्यथा मू०।

अङ्गप्रत्यङ्गदेवं च तन्त्रोक्तं पूजयेद्धरिम्।
मूलं जप्त्वा यथाशक्ति देवे[1] मन्त्रं[2] समर्पयेत्॥९९॥

साधक सर्वप्रथम भूतशुद्धि करके प्राणायाम करे, तत्पश्चात् अंगन्यास सम्पन्न करके मन्त्रन्यास करे। इसके पश्चात् वर्णन्यास का निर्वाह करके अर्घ्यस्थापना करने के अनन्तर त्रिकोणमण्डल निर्माण करके उस पर कूर्मदेवता की पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् शंख में जल भर कर उसे वहीं स्थापित करके (आधार सहित शंख हो) यथाविधि उस जल की पूजा करने के पश्चात् जल में तीर्थावाहन करे। इसके अनन्तर पूजोपकरणों को प्रक्षालित करके पुष्प लेकर योगासनासीन साधक पुष्प अंजलि में लेकर शुद्ध मन से गुरुप्रदत्त ध्यान द्वारा श्रीकृष्णदेव का ध्यान करके पुष्पाञ्जलि दे। तत्पश्चात् सभी वस्तु मूलमन्त्र द्वारा यथा नियम निवेदित करे।।९४-९९।।

दत्त्वोपहारं विविधं स्तुत्वा च कवचं पठेत्।
ततः कृत्वा परीहारं मूर्ध्ना च प्रणमेद्भुवि॥१००॥
कृत्वा वै देवपूजां च यज्ञं कुर्याद्विचक्षणः।
श्रौतस्मार्ताग्नियुक्तं च बलिं दद्यात्ततो मुने॥१०१॥

तदनन्तर नाना उपहारों को निवेदित करके वह साधक शास्त्रोक्त अंगदेवतागण की पूजा तथा विष्णुदेव की पूजा करे। अंगदेवगण के साथ प्रत्यंग देवगण की भी पूजा होनी चाहिए। इसके अनन्तर मूलमन्त्र का जप अपनी शक्ति के अनुसार करके साधक समस्त जप इष्टदेव को अर्पित करे। इसके पश्चात् प्रभु को नाना उपहार समर्पित करने के अनन्तर भक्ति के साथ स्तुति करे एवं कवच पाठ करे। तत्पश्चात् विसर्जन करना चाहिए और अवनत मस्तक साधक भगवान् को भूमि पर लेट कर दण्डवत्-प्रणाम निवेदित करे। इस देवपूजा के अनन्तर साधक को श्रौत अथवा स्मार्त्त अग्नियुक्त होम करके (मातृदेवी के उद्देश्य से तथा) दिक्पालादि के उद्देश्य से बलि देनी चाहिए।।१००-१०१।।

नित्यश्राद्धं यथाशक्ति दानं वित्तानुरूपकम्।
कृत्वा कृती स विहरेत्क्रम एष श्रुतौ श्रुतः॥१०२॥
इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम्।
आह्निकस्य च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१०३॥

इति श्री ब्रह्म० महा० ब्रह्म० शिवनारदसंवाद आह्निकनिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

तदनन्तर अपनी धन की शक्ति के अनुसार नित्य श्राद्ध एवं दान देकर तब वह पुण्यात्मा साधक

१. ख. दैवम्०।
२. ख. ०न्त्रं विसर्जये०।

यथानियम आहार-विहारादि कर सकता है। मैंने वेदोक्त उत्तम सूक्त का वर्णन तुमसे कर दिया। अब और क्या सुनने की इच्छा है?॥१०२-१०३॥

॥षड्विंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भक्ष्य-अभक्ष्य का निर्णय

नारद उवाच

भक्ष्यं किं वाऽप्यभक्ष्यं च द्विजानां गृहिणां प्रभो।
यतीनां वैष्णवानां च विधवाब्रह्मचारिणाम्॥१॥
किं कर्तव्यमकर्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा। सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारण॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! गृही, ब्राह्मण, यति, वैष्णव, विधवा तथा ब्रह्मचारीगण के लिये विहित भक्ष्य, अविहित अभक्ष्य का वर्णन, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य एवं भोग्य-अभोग्य का वर्णन करिये। आप सर्वज्ञाता हैं। आप ही सर्वेश, सर्वकारण भी हैं॥१-२॥

महेश्वर उवाच

कश्चित्तपस्वी विप्रश्च निराहारी चिरं मुनिः। कश्चित्समीरणाहारी फलाहारी च कश्चन॥३॥
अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः।
येषामिच्छा च या[१] ब्रह्मन्रूचीनां विविधा गतिः॥४॥
हविष्यान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा। नारायणोच्छिष्टमिष्टमभक्ष्यमनिवेदितम्॥५॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। विण्मूत्रं सर्वथा प्रोक्तमन्नं च हरिवासरे॥६॥
ब्राह्मणः कामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः॥७॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं च नारद। गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरे॥८॥
गृही शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः। प्रयाति कालसूत्रं च भुक्त्या च हरिवासरे॥९॥

महेश्वरदेव कहते हैं—कोई ब्राह्मण तपस्वी होकर, कोई चिरकाल पर्यन्त निराहारी मुनि होकर,

---

१. क. ०ह्मन्कवीनां वि०।

कोई मात्र वायु आहारी होकर, कोई फलाहारी होकर कालयापन करते हैं। जो पत्नीयुक्त है, वह यथाकाल भोजन करता है। फलतः सबकी रुचि एक जैसी नहीं है। जिसकी जैसी इच्छा होती है, वह वैसा ही करता है। गृही ब्राह्मणार्थ सर्वदा हविष्यान्न भोजन ही श्रेष्ठ है, तथापि यदि वह नारायण को निवेदित नहीं किया गया, तब अभक्ष्य है। जो अन्न विष्णु को निवेदित नहीं है, वह विष्ठा है, वह अनिवेदित जल मूत्ररूप है। जो कोई द्विज एकादशी तिथि के अवसर पर अन्न ग्रहण करता है, वह त्रैलोक्य के पापों का ही आहार करता है, इसमें कोई संशय नहीं है। हे नारद! जो गृही ब्राह्मण हैं, वे एकादशी को कदापि अन्नाहार न करें। एकादशी तिथि पर गृहस्थ, शैवगण, शाक्त ब्राह्मण यदि ज्ञानहीनता के चलते भोजन करते हैं, तब उनको कालसूत्र नरक जाना निश्चित ही है।।३-९।।

कृमिभिः शालिमानैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति।
विण्मूत्रभोजनं कृत्वा यावन्दिन्द्राश्चतुर्दश।।१०।।

उस नरक में ऐसे व्यक्ति को उसी अन्न में पैदा होने वाले कीटगण कर्त्तन करके भक्षण करते हैं। वह जीवात्मा मल-मूत्र का आहार करते हुए चतुर्दश इन्द्रों के जीवनकाल तक उसी कालसूत्र नरक को भोगता है।।१०।।

जन्माष्टमीदिने रामनवमीदिवसे हरेः। शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते सोऽपि द्विगुणपातकी।।११।।
उपवासासमर्थश्च फलं मूलं जलं पिबेत्। नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चाऽऽत्मघातकः।।१२।।

सकृद्भुङ्क्ते हविष्यान्नं विष्णोर्नैवेद्यमेव च।
न भवेत्प्रत्यवायी स चोपवासफलं लभेत्।।१३।।

इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, शिवरात्रि के दिन जो भोजन करते हैं, वे इसकी तुलना में दूनी पापयातना के भागी होते हैं, तथापि जो शारीरिक कारण से उपवासी न रह सके, वह फलमूलाहार तथा जल पर निर्वाह करे। उपवास के कारण यदि शरीर नष्ट होता है, तब उसे आत्महत्या पातक लगता है अथवा ऐसे लोग एक ही बार विष्णु को अर्पित हविष्यान्न खायें। इसमें तनिक भी अपराध (दोष) नहीं होता। जो मात्र विष्णुनैवेद्य खा कर रह जाता है, वह पापभागी नहीं होता। उसे उपवास फल ही मिलता है।।११-१३।।

एकादश्यामनाहारी गृही विप्रश्च भारते। स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणो वयः।।१४।।

गृहिणां [1]शैवशाक्तानामिदमुक्तं च नारद।
विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।।१५।।
नित्यनैवेद्यभोजी यः श्रीविष्णोः स हि वैष्णवः।
नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तफलं लभेत्।।१६।।

---

१. क. ०वभक्ता।

इसी कारण भारत के गृहस्थ विप्रगण एकादशी तिथि पर उपवासी रह कर ब्रह्मा के पूर्ण जीवनकाल पर्यन्त वैकुण्ठ में रहते हैं। हे नारद! यह नियम गृहस्थगण, शैव, शाक्त एवं विशेषतया वैष्णवों, यतियों तथा ब्रह्मचारी के लिये वर्णित है। जो प्रभु विष्णु का नैवेद्य नित्य ग्रहण करता है, वह नित्य सौ उपवास तथा जीवनमुक्त का फल लाभ करता है।।१४-१६।।

वाञ्छन्ति तस्य संस्पर्शं तीर्थान्यखिलदेवताः।
आलापं दर्शनं चैव सर्वपापप्रणाशनम्॥१७॥

द्विस्विन्नमन्नं पृथुकं शुद्धं देशविशेषके। नात्यन्तशस्तं विप्राणां भक्षणे न निवेदने॥१८॥

अभक्ष्यं वै यतीनां च विधवाब्रह्मचारिणाम्।
ताम्बूलं च यथा ब्रह्मन्तथैतद्वस्तु न ध्रुवम्॥१९॥
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
तपस्विनां च विप्रेन्द्र गोमांससदृशं स्मृतम्॥२०॥

ऐसे वैष्णव के दर्शनार्थ, उसे स्पर्श करने हेतु, उससे वार्त्ता करने के लिये तो सभी तीर्थ एवं देवता तक उत्सुक हो जाते हैं। ऐसा वैष्णव सभी महान् पातकों का नाशक है। जो अन्न दो बार अग्नि पर पका हो तथा चिवड़ा किसी-किसी देश में शुद्ध कहा गया है, तथापि ब्राह्मण भोजनार्थ तथा भगवान् को निवेदनार्थ उसे प्रशस्त नहीं मानते। हे ब्रह्मन्! ऐसा अन्न, ताम्बूल की तरह ही विधवा, ब्रह्मचारी तथा संन्यासी हेतु अभक्ष्य है। ताम्बूल तो विधवा नारी, यति, ब्रह्मचारी तथा तपस्वी हेतु गोमांसवत् त्याज्य समझे।।१७-२०।।

सर्वेषां ब्राह्मणानां यदभक्ष्यं शृणु नारद। यदुक्तं सामवेदे च हरिणा चाऽऽह्निकक्रमे॥२१॥

हे ब्रह्मन् नारद! अब तुम ब्राह्मणों के लिये अभक्ष्य माने गये उन अन्न को सुनो, जिसे सामवेदोक्त दैनिक क्रम प्रकरण में श्रीहरि ने पितामह ब्रह्मा से कहा था।।२१।।

ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्। दुग्धं लवणसार्धं च सद्यो गोमांसभक्षणम्॥२२॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। ऐक्षवं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः॥२३॥
उत्थाय वामहस्तेन यस्तोयं पिबति द्विजः। सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥२४॥
अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषं च नित्यशः। पीतशेषजलं चैव गोमांससदृशं मुने॥२५॥

[1]वानिङ्गणफलं चैव गोमांसं कार्तिके स्मृतम्।
माघे च मूलकं चैव कलम्बीशयने तथा॥२६॥
श्वेतवर्णं च तालं च मसूरं मत्स्यमेव च।
सर्वेषां ब्राह्मणानां च त्याज्यं सर्वत्र देशके॥२७॥

१. ख. कलिङ्गणमित्यर्थः।

मत्स्यांश्च कामतो भुक्त्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा शुद्धिमाप्नोति वाडवः॥२८॥

ताम्रपात्रस्थ दुग्ध, उच्छिष्ट पात्र में घृत, नमक के साथ दुग्ध मिला कर पान, ये सब तत्काल गोमांस जाने। कांस्य पात्र में रखा नारियल जल, ताम्रपात्रस्थ शहद, ईख के रस से बना सभी पदार्थ मद्यतुल्य है। ब्राह्मण यदि बायें हाथ से पात्र उठा कर जल पीता है, तब वह मद्यपायी तथा सर्वधर्म बहिष्कृत होगा। हे मुनिवर! जो अन्न श्रीहरि को निवेदित न हो, खाने से बचा तथा पीने से बचा जल गोमांस तुल्य होता है। कार्त्तिक मास में बैंगन, माघ में मूली, चातुर्मास्य में करभी का साग वर्जित है। श्वेत वर्ण का ताल, मसूर, मत्स्य सभी देशों में ब्राह्मण द्वारा त्याज्य कहा गया है। यदि ब्राह्मण जानबूझ कर मछली खाता है, तब त्रिरात्र उपवासी रह कर प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होगा।।२२-२८।।

प्रतिपत्सु च कूष्माण्डमभक्ष्यं ह्यर्थनाशनम्।
द्वितीयायां च बृहतीं भोजनेन[1] स्मरेद्धरिम्॥२९॥
अभक्ष्यं च पटोलं च शत्रुबुद्धिकरं परम्। तृतीयायां चतुर्थ्यां च मूलकं धननाशनम्॥३०॥
कलङ्ककारणं चैव पञ्चम्यां बिल्वभक्षणम्।
तिर्यग्योनिं प्रापयेत्तु षष्ठ्यां वै निम्बभक्षकम्॥३१॥
रोगवृद्धिकरं चैव नराणां तालभक्षणम्।
सप्तम्यां च तथा तालं शरीरस्य च नाशकम्॥३२॥

प्रतिपदा को कोहड़ा न खाये। यह अर्थनाशक है। द्वितीया के दिन बृहती न खाये। ऐसा हो जाने पर विष्णु स्मरण करे। तृतीया को परवल खाने से शत्रु बढ़ते हैं। चतुर्थी को मूली का आहार धननाशक है। पंचमी को बिल्वफल खाना कलंकित करेगा। षष्ठी को नीम खाने वाला पक्षी होता है। सप्तमी को ताड़ फल खाने वाला रोगी होगा। यह फल देहनाशक है।।२९-३२।।

नारिकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशकम्।
तुम्बी नवम्यां गोमांसं दशम्यां च कलम्बिका॥३३॥
एकादश्यां तथा शिम्बी द्वादश्यां पूतिका तथा।
त्रयोदश्यां च वार्ताकी न भक्ष्या पुत्रनाशनम्॥३४॥

अष्टमी को नारिकेल खाना बुद्धिनाशक है। नवमी को लौकी खाना गोमांस भक्षण है। दशमी तिथि पर कदम्बी का साग गोमांसवत् है। एकादशी को सेम न खाये। द्वादशी को पूतिका (पोई), त्रयोदशी को भंटा खाने से पुत्र नाश होगा।।३३-३४।।

चतुर्दश्यां माषभक्ष्यं महापापकरं परम्। पञ्चदश्यां तथा मांसमभक्ष्यं गृहिणां मुने॥३५॥

---

१. बृहती भोजको न इति वा पाठः।

गृहिणां प्रोक्षितं मांसं भक्ष्यमन्यदिनेषु च। प्रातःस्नाने तथा श्राद्धे पार्वणे व्रतवासरे॥३६॥
प्रशस्तं सार्षपं तैलं पक्वतैलं च नारद। कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च॥३७॥
रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्रीतिलतैलकम्।
मांसं च रक्तशाकं च कांस्यपात्रे च भोजनम्॥३८॥
निषिद्धं शयनं चैव कूर्ममांसं च मन्त्रितम्।
निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेवणम्॥३९॥

चतुर्दशी को उर्द खाना महापाप प्रदान करता है। गृहस्थगण अमावस्या को कदापि मांसाहार न करें। गृहस्थ अन्य तिथियों पर यज्ञ का मांस खा सकते हैं। हे नारद! प्रातः स्नान, श्राद्ध दिवस, व्रत के दिन, अमावस्या-पूर्णिमा, संक्रान्ति के दिन, चतुर्दशी-अष्टमी तिथि पर सरसों का तैल तथा पका तैल प्रशस्त है। रविवार, श्राद्ध तिथि पर, व्रत के दिन स्त्री सहवास करना, तिल तैल मर्दन, उर्द तथा लाल शाक का भक्षण तथा कांसे के पात्र में भोजन सर्वथा वर्जित है। सभी वर्ण वाले दिन में शयन न करें, कच्छप मांस न खायें, दिन में स्त्री सहवास न करें॥३५-३९॥

रात्रौ च दधिभक्ष्यं च शयनं संध्ययोर्दिने। रजस्वलास्त्रीगमनमेतन्नरककारणम्॥४०॥
उदक्यवीरयोरन्नं पुंश्चल्यन्नभक्षकम्। शूद्रान्नं याजकान्नं च शूद्रश्राद्धान्नमेव च॥४१॥
अभक्ष्यान्नं च विप्रर्षे यदन्नं वृषलीपतेः। [१]ब्रह्मन्वार्धुषिकान्नं च गणकान्नभक्षकम्॥४२॥

रात्रि में दधि आहार, प्रातः सन्ध्या तथा सायं सन्ध्या के समय शयन, रजस्वला से समागम-ये तीनों कार्य नरकप्रद हैं। रजस्वला का पकाया अन्न, व्यभिचारिणी का अन्न, शूद्रान्न, यज्ञकर्त्ता तथा पुरोहित का अन्न तथा शूद्र का श्राद्धान्न सर्वथा वर्जित है॥४०-४२॥

अग्रदानिद्विजान्नं च चिकित्साकारकस्य च। हस्तचित्राहरौ तैलमग्राह्यं चाप्यभक्षकम्॥४३॥
मूले मृगे भाद्रपदे मांसं गोमांसतुल्यकम्। मघायां कृत्तिकायां वै चोत्तरासु च नारद॥४४॥
करोति मैथुनं यो हि कुम्भीपाकं स च व्रजेत्।
रोहिण्यां च विशाखायां मैत्रे चैवोत्तरासु च।
[२]अमायां कृत्तिकायां च द्विजैः क्षौरं विवर्जितम्॥४५॥
कृत्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत्पितृन्। रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत्॥४६॥
यत्कर्तव्यमकर्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम्।
सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदं प्रति शिवोपदेशभक्ष्याभक्ष्यादि-विवरणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

१. अयं सार्धश्लोकः ख. पुस्तके नास्ति।
२. ख. मघायामिति पाठः।

मूल नक्षत्र, मृगशिरा नक्षत्र, भाद्रपद मास में कोई भी मांस न खाये। वह गोमांस भक्षण जैसा दोषप्रद होगा। हे नारद! मघा, कृत्तिका, उत्तरा नक्षत्र काल में मैथुनरत व्यक्ति को कुंभीपाक नरक प्राप्त होगा। द्विजगण रोहिणी, विशाखा, अनुराधा, तीनों उत्तरा तथा कृत्तिका नक्षत्र के समय, अमावस्या तिथि पर क्षौरकर्म न करायें। जो मैथुन करके देव-पितृतर्पण करता है, उसका तर्पण जल रक्तवत् है। वह जलदाता (तर्पणकर्त्ता) नरकगामी होगा। हे नारद! मैंने तुमको कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य सब कह दिया। अब क्या सुनना है?।।४३-४७।।

सप्तविंश अध्याय समाप्त

❖❖❖

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मनिरूपण, नारद को शिव से वर लाभ, शिवाज्ञा से नारद का नारायण ऋषि आश्रम जाना

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो। भवान्ब्रह्मस्वरूपं च वद ब्रह्मनिरूपणम्।।१।।
प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वर। किं तद्विशेषणं किंवाऽप्यविशेषणमेव च।।२।।
किंवा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा।
किंवा तल्लक्षणं शस्तं वेदे वा किं निरूपितम्।।३।।
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किंवा ब्रह्मस्वरूपिणी। प्रकृतेर्लक्षणं किंवा सारभूतं श्रुतौ श्रुतम्।।४।।
प्राधान्यं कस्य सृष्टौ च द्वयोर्मध्ये वरं परम्। विचार्य मनसा सर्वं सर्वज्ञ वद मां ध्रुवम्।।५।।

देवर्षि कहते हैं–हे जगन्नाथ! जगद्गुरु! आपकी कृपा से मैंने प्रश्नानुसार सब श्रवण किया है। अब कृपा पूर्वक ब्रह्मतत्व को कहिये। हे प्रभो! परमेश्वर ब्रह्म साकार हैं अथवा निराकार हैं? वे सविशय हैं अथवा निर्विशेष, दृश्य हैं अथवा अदृश्य, देहीगण से लिप्त हैं अथवा अलिप्त? उनका लक्षण वेद-शास्त्र में क्या निरूपित है? प्रकृति ब्रह्म से अलग है अथवा ब्रह्मरूपा है? वेद ने प्रकृति के सारभूत लक्षण का वर्णन करते समय क्या कहा है? प्रकृति तथा ब्रह्म में से सृष्टि के सम्बन्ध में कौन प्रधानता रखता है? हे सर्वज्ञ! विचार करके यह सब उपदेश मुझे प्रदान करिये।।१-५।।

नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च। भगवान्कर्तुमारेभे[१] परब्रह्मनिरूपणम्।।६।।

१. क. ०वान्वक्तु०।

नारद का वचन सुनकर भगवान् पंचमुख शिव ने तनिक हंसते हुए नारद को ब्रह्मनिरूपण विषय का उपदेश देते हुए कहा—।।६।।

महादेव उवाच

यद्यत्पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम्। सुदुर्लभं च वेदेषु पुराणेषु च नारद।।७।।
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान्विराट्।
सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्मुने।।८।।
यद्विशेषणयुक्तं च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च। तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर।।९।।

महेश्वर कहते हैं—हे वत्स! तुमने जो पूछा है, वह अत्यन्त गूढ़ तथा उत्कृष्ट ज्ञान से ही साध्य हो सकता है। हे नारद! यह वेद तथा पुराण में भी अत्यन्त दुर्लभ है। मैं, ब्रह्मा, विष्णु, अनन्त, धर्म तथा महान् विराट् भी एवं वेद भी ब्रह्म के यथार्थ तत्व का निरूपण नहीं कर सकते। हे वेदज्ञों में प्रवर! वेद में जो विशेषण युक्त, दृश्य तथा प्रत्यक्ष वर्णित है, उसी का मैं निरूपण कर रहा हूं।।७-९।।

वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा तदा। यदुवाच हरिः किञ्चिन्निबोध कथयामि ते।।१०।।
सारभूतं च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम्। द्वैधभ्रमतमोध्वंससुप्रकृष्टप्रदीयकम्।।११।।
परमात्मस्वरूपं च परं ब्रह्म सनातनम्। सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहि कर्मणाम्।।१२।।
प्राणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्मा प्रजापतिः।
सर्वज्ञानस्वरूपोऽहं शक्तिः प्रकृतिरीश्वरी।।१३।।

हे वेदविशारद! पूर्व में वैकुण्ठ में मेरी, धर्म की तथा ब्रह्मा की जिज्ञासा सुनकर श्रीहरि ने जो कहा था, उसे सुनो। यह सर्वतत्व साररूप, अज्ञान अन्धकार का निवारण करने वाला, नेत्र तथा द्वैतभ्रमात्मक अंधकार का ध्वंस करने वाला उत्तम प्रदीपरूप संवाद है। सनातन परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप, देहमात्र में स्थित तथा देहीगण के सभी कर्मों का साक्षी है। देह, इन्द्रिय, पंचप्राण स्वयं विष्णु हैं। मन है प्रजापति ब्रह्मा। मैं महेश्वर समस्त ज्ञानस्वरूप हूं। ईश्वरी प्रकृति ही शक्तिरूपा है।।१०-१३।।

आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिन्वयं स्थिताः।
गते गताश्च परमे नरदेवमिवानुगाः[१]।।१४।।
जीवस्तत्प्रतिबिम्बं च सर्वभोगी हि कर्मणाम्।
यथाऽर्कचन्द्रयोर्बिम्बं जलपूर्णघटेषु च।।१५।।
बिम्बं घटेषु भग्नेषु प्रलीनं चन्द्रसूर्ययोः। तथा लयप्रसङ्गे स जीवो ब्रह्मणि लीयते।।१६।।

तथापि हम सभी परमात्मा के ही अधीनस्थ हैं। उनकी स्थिति है, तभी हम स्थित हैं! वे जो भी करते हैं, हम उसका अनुगमन वैसे ही करते हैं, जैसे राजा का अनुगमन उनके सेवक करते हैं। जीव

१. नारदैवमिवानुगा इति। नातिसङ्गतः पाठः क्वाचित्कः।

तो परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। वे प्रभु कर्मफलदाता हैं। जैसे घटस्थ जल में चन्द्र-सूर्य का प्रतिबिम्ब रहता है, तथापि घट टूट जाने पर वे प्रतिबिम्बात्मक चन्द्र-सूर्य विलीन हो जाते हैं, तद्रूप सृष्टि भंग होने पर जीव ब्रह्मलीन हो जाता है।।१४-१६।।

एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये। वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम्॥१७॥
तच्च ज्योतिःस्वरूपं च मण्डलाकारमेव च। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम्॥१८॥
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम्।
सुखदृश्यं यथा चन्द्रबिम्बं योगिभिरेव च॥१९॥

हे वत्स! जैसे संसार नष्ट हो जाने पर केवल ब्रह्म ही रहता है, हम तथा चराचर विश्व उसमें ही लीन हो जाते हैं। वह ब्रह्म है मण्डलाकार ज्योतिरूप। इसकी ज्योति की प्रभा करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्य के समान है। यह ब्रह्मज्योति आकाशवत् विस्तृत है। यह अव्यय एवं सर्वव्यापक भी है। योगीगण उसका सुख से दर्शन चन्द्रबिम्बवत् करते हैं।।१७-१९।।

वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम्।
दिवानिशं च ध्यायन्ते सत्यं तत्सर्वमङ्गलम्॥२०॥
निरीहं च निराकारं परमात्मानमीश्वरम्। स्वेच्छामयं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम्॥२१॥
परमानन्दरूपं च परमानन्दकारणम्। परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥२२॥
तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी।
यथाऽग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्ये यथा मुने॥२३॥
यथा दुग्धे च धावल्यं जले शैत्यं यथैव च।
यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा॥२४॥
तथा हि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा।

योगीगण इसी ज्योतिपुंज को सर्वमंगलमय, सनातन परब्रह्म कहकर इनका दिन-रात ध्यान करते हैं। ये परमात्मा, ईश्वर, निरीह, निराकार, स्वेच्छामय, स्वतंत्र तथा सर्वकारण समूह के भी कारण हैं। ये परमपुरुष निर्गुण तथा प्रकृति से अलग हैं। सर्वबीजरूपा प्रकृति भी इन परमेश्वर में लीन हो जाती है। हे मुनिवर! जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति, सूर्य में प्रभा, दुग्ध में सफेदी, जल में ठंडापन, गगन में शब्द तथा पृथिवी में गन्ध है, यह स्वभावसिद्ध ही है। अर्थात् निर्गुण ब्रह्म में निर्गुण प्रकृति सदैव रहती है।।२०-२४।।

सृष्ट्युन्मुखेन तद्ब्रह्म चांशेन पुरुषः स्मृतः॥२५॥
स एव सगुणो वत्स प्राकृतो विषयी स्मृतः।
त्रिगुणा सा हि तत्रैव[1] परस्येच्छामयी स्मृता॥२६॥

१. ख. परा छायाम्०।

ब्रह्म ही सृष्टिकाल में अपने अंश से पुरुषरूप उत्पन्न होता है। हे वत्स! वही सगुण-प्राकृत एवं विषयों का भोक्ता विषयी है। इस पुरुष में ही त्रिगुणात्मिका परा-प्रकृति पुरुष की छायारूपिणी होकर रहती है। ब्रह्म इस प्रकृति द्वारा ही सृष्टि सामर्थ्यमय हो जाता है।।२५-२६।।

यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्तुं क्षमः सदा। तथा प्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्त्रष्टुं क्षमं मुने॥२७॥

स्वर्णेन कुण्डलं कर्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा।
तथा ब्रह्म तया सार्धं सृष्टिं कर्तुमिहेश्वरः (म्)॥२८॥

कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या चैव सनातनी। न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णं वा नित्यमेव च॥२९॥

हे मुनिप्रवर! कुम्हार मृत्तिका से जिस प्रकार घटपात्रादि बना देता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी प्रकृति द्वारा समग्र सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। वे सृष्टिकार्य में इस प्रकार सामर्थ्यवान हैं। स्वर्णकार स्वर्ण से आभूषण बनाने में सदैव समर्थ है। ब्रह्म भी तदनुरूप प्रकृति द्वारा सृष्टि में समर्थ है। कुम्हार द्वारा लायी मृत्तिका नित्य तथा सनातनी नहीं है। तदनुरूप स्वर्णकार जिससे आभूषणादि बनाता है, वह स्वर्ण नित्य-सनातन नहीं है।।२७-२९।।

नित्यं तत्परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता।
द्वयोः समं च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि॥३०॥

मृदं स्वर्णं समाहर्तुं कुलालस्वर्णकारकौ। न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम्॥३१॥

तथापि परब्रह्म एवं प्रकृति को नित्य कहा गया है। दोनों की प्रधानता एक जैसी है। कुम्हार स्वयं मिट्टी उत्पन्न नहीं कर सकता, स्वर्णकार स्वर्ण स्वयं उत्पन्न नहीं कर सकता। मिट्टी कुम्हार को नहीं ला सकेगी, स्वर्ण को भी स्वर्णकार लाने की शक्ति नहीं है। तभी निर्मित घट में मिट्टी एवं कुम्हार की तथा स्वर्णाभूषण में स्वर्ण तथा सुनार की प्रधानता है।।३०-३१।।

तस्मात्तत्प्रकृतेर्ब्रह्म परमेव च नारद। इति केचिद्वदन्त्येवं द्वयोर्वै नित्यता ध्रुवम्॥३२॥

केचिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयं च प्रकृतिः पुमान्।
ब्रह्मातिरिक्तप्रकृतिर्वदन्तीति च केचन॥३३॥

तद्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम्। तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निदं किञ्चिच्छ्रुतौ श्रुतम्॥३४॥

ब्रह्म चाऽऽत्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपि च।
सर्वव्यापी च सर्वादि लक्षणं च श्रुतौ श्रुतम्॥३५॥
तद्ब्रह्म शक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी।
यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम्॥३६॥

हे नारद! इस दृष्टि से भी प्रकृति से ब्रह्म ही प्रधान है। इस दृष्टिकोण से कतिपय विद्वान् कहते हैं कि ब्रह्म ही स्वयं प्रकृति-पुरुष है। प्रकृति तो ब्रह्म के अतिरिक्त है, यह भी कतिपय पण्डितों का मत

है। ब्रह्म परमधाम, सर्वकारण का भी कारण है। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मलक्षण प्रकट करते हुए श्रुति का वचन है कि ब्रह्म आदि सर्वात्मा, निर्लिप्त, साक्षीरूप, सर्वव्यापी है। सर्वबीजरूपा शक्ति (प्रकृति) ब्रह्मशक्ति है। शक्ति ब्रह्म में ही स्थित रहती है। यही प्रकृति का लक्षण है। प्रकृति लक्षण में ब्रह्म को शक्तिमान मानते हैं।।३२-३६।।

तेजोरूपं च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा।
वैष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः।।३७।।
तत्तेजः कस्य नाऽऽश्चर्यं ध्यायन्ते पुरुषं विना।
कारणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भुवि।।३८।।
ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम्।
स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्याऽऽत्मनः सदा।।३९।।

योगीगण सदा तेजो रूप से ब्रह्म का ध्यान करते हैं, तथापि सूक्ष्म बुद्धि वाले भक्त वैष्णव यह नहीं मानते। वे कहते हैं कि तेज के आधार स्वरूप किसी पुरुष के अतिरिक्त इस आश्चर्यमय मात्र तेज का ध्यान कर सकना संभव ही नहीं है। कारण के बिना कोई कार्य ही नहीं होता। अतः यदि तेज का कोई आधार नहीं है, तब केवल तेज कैसे संभव होगा? तभी वे तेज के मध्य में मनोहर रूप की चिन्ता करते हैं। योगी लोग इस तेजःपुंज को सर्वमंगलमय सनातन परब्रह्म मान कर उनका रात-दिन ध्यान करते हैं। यह स्वेच्छामय पुरुष जिसका वैष्णव ध्यान करते हैं, वह परमात्मा का साकार रूप है।।३७-३९।।

तत्तेजोमण्डलाकारे सूर्यकोटिसमप्रभे। नित्यं स्थलं च प्रच्छन्नं गोलोकाभिधमेव च।।४०।।
लक्षकोट्या योजनानां चतुरस्रं मनोहरम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीभिश्चाऽऽवृतं सदा।।४१।।

सुदृश्य वर्तुलाकारं यथा चन्द्रस्य मण्डलम्।
नानारत्नैश्च खचितं निराधारं तदिच्छया।।४२।।
ऊर्ध्वं च नित्यं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
गोगोपगोपीसंयुक्तं कल्पवृक्षसमन्वितम्।।४३।।

कामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम्। वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने।।४४।।

शतशृङ्गैः शातकुम्भैः सुदीप्तं श्रीमदीप्सितम्।
लक्षकोट्या परिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः।।४५।।

शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम्। रत्नप्राकारपरिखाविचित्रेण विराजितम्।।४६।।

ये परमात्मा ईश्वर, निरीह, निराकार, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र, सर्वकारण के कारण हैं। ये परमात्मा रूपी पुरुष कोटिसूर्य समप्रभ, मण्डलाकार हैं। इस तेजोमय मंडल में नित्य, स्थूल, अथच प्रच्छन्न १ लाख योजन विस्तार वाला, चौकोर गोलोक धाम है। यह उत्तम दृश्यमय, चन्द्रमा के समान गोलाकार,

उत्तम रत्नों से बना तथा निराधार स्थित है। यह वैकुण्ठ से ५० करोड़ योजन ऊर्ध्वस्थ, गो, गोप, गोपीजन, कल्पवृक्ष युक्त, कामधेनुओं से व्याप्त, रासमण्डल से शोभित एवं वृन्दावन से आच्छन्न है। इसे घेरे हुए विरजा नदी स्थित है। शतशृंग नामक पर्वत के सौ शिखर यहां विराजमान हैं। यहां लक्ष कोटि संख्यक मनोहर आश्रम सुशोभित हैं। उन आश्रमों में मनोहर १००-१०० भवन भी विराजमान हैं।।४०-४६।।

अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्षमन्दिरसुन्दरम्। आश्रमं चतुरस्रं च चन्द्रबिम्बाकृतं वरम्।।४७।।
गोलोकमध्यदेशस्थमतीव सुमनोहरम्। [1]प्राकारपरिखायुक्तं पारिजातवनान्वितम्।।४८।।
कौस्तुभेन्द्रेण मणिना राजितं परमोज्ज्वलम्। हीरसारसुसंक्लृप्तसोपानैश्चातिसुन्दरैः।।४९।।
मणीन्द्रसाररचितैः कपाटैर्दर्पणान्वितैः। नानाचित्रविचित्राढ्यैराश्रमं च सुसंस्कृतम्।।५०।।
षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं [2]रत्नदीपकैः। रत्नसिंहासने रम्ये महार्घमणिनिर्मिते।।५१।।
नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तं वरमीश्वरम्। नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम्।।५२।।

यह गोलोक धाम परिखायुक्त, प्राचीर से घिरा, पारिजात वन से शोभित है। वहां के आश्रम कौस्तुभ तथा चन्द्रमणि रचित कलशों से अतिशय उज्ज्वल, मणिमालाओं से सज्जित, उत्तम हीरे की बनी सीढ़ियों से परस्पर शोभायमान तथा मणियों के सार से बने शीशे के समान कपाटों से युक्त, नाना प्रकार की चित्र-विचित्र वस्तुओं से परिपूर्ण १६ तोरणों से सज्जित, रत्नद्वीपों से आलोकित है। इस पुरी के बीच में रत्ननिर्मित चित्र-विचित्र रम्य सिंहासन पर परात्पर परमेश्वर विराजमान हैं। उनकी मूर्त्ति नवजलधर श्याम वर्ण की है। वे किशोर आयु के शिशु के समान हैं।।४७-५२।।

[3]शरन्मध्याह्नमार्तण्डप्रभामोचकलोचनम्। [4]शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशुभदीप्तिमदाननम्।।५३।।
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितमन्मथम्। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टं पुष्टं श्रीयुक्तविग्रहम्।।५४।।
सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम्[5]। परमोत्तमपीतांशकयुगेन समुज्ज्वलम्।।५५।।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम्। आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम्।।५६।।
त्रिभङ्गभङ्ग्यसंयुक्तं[6] मणिमाणिक्यभूषितम्।
मयूरपुच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्।।५७।।

उनके नेत्रद्वय शरत्कालीन मध्याह्न सूर्य की प्रभा को भी पराजित कर रहे हैं। उनका चेहरा

१. इदं श्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति।
२. क. ०कैः। तत्र र्सि०।
३. क. ०हनराजीवप्र०।
४. क. ०न्दुशोभाच्छादनमान०।
५. क. ०म्। वह्निसंस्कारपी०।
६. क. क्तं मुक्तामा०।

शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभादायक है। फलतः उनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेव के सौन्दर्य का भी तिरस्कार करता है। ये मन्द मुस्कान से युक्त, प्रशस्त मुरलीधारी, मंगलमूर्त्ति करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा को भी लज्जित कर देने वाले पुष्ट एवं श्रीयुक्त प्रभु हैं। ये दो पीत वस्त्रधारी हैं, जो अग्नि के समान दीप्त हैं। इनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित है तथा वक्ष पर कौस्तुभ मणि विराजमान है। ये त्रिभंग भंगिमा वाले प्रभु घुटनों तक लम्बी मालती माला, वनमाला तथा मणिमाणिक्यमयी माला से विभूषित हैं। इनका मुकुट मयूरपुच्छ है। इनका मुकुट उत्तम रत्नजटित होने के कारण अतीव उज्ज्वल है।।५३-५७।।

रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम्।।५८।।

[1]मुक्तापङ्क्तिसदृशामदशनं सुमनोहरम्।
पक्वबिम्बाधरोष्ठं च नासिकोन्नतिशोभनम्।।५९।।
वीक्षितं गोपिकाभिश्च वेष्टिताभिः समन्ततः।
स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम्।।६०।।

भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्मितैर्भूषणैः परम्। सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः।।६१।।
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम्।।६२।।

चरणद्वय में प्रभु ने रत्नमय नूपुर धारण किया है। हाथों में रत्नवलय तथा रत्नकेयूर विराजित है। उनके कपोल रत्नकुण्डलद्वय से शोभायमान हैं। मुखमण्डल तो मुक्ताश्रेणी को भी शोभा में लज्जित करने वाला है। दांत अत्यन्त मनोहर लग रहे हैं। उनका अधर एवं ओंठ पके बिम्बफल के समान हैं। नासिका उन्नत है। स्थिर यौवन वाली गोपियां नाना अलंकार विभूषिता होकर भगवान् को चतुर्दिक् घेर कर मुस्कराते हुए उनकी ओर आदर पूर्वक कटाक्षपात कर रही हैं। वहां मुनीन्द्र, सुरेन्द्र, मुनि, मानवेन्द्र, ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा असंख्य धार्मिक उन प्रभु की मुदित मन से वन्दना करते रहते हैं। ये प्रभु भक्त प्रिय, भक्तनाथ तथा भक्तों पर कृपालु हैं।।५८-६२।।

रासेश्वरं सुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम्। एवं रूपमरूपं तं मुने ध्यायन्ति वैष्णवाः।।६३।।
सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम्। अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।।६४।।
स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम्। सर्वाधारं[2] सर्वबीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च।।६५।।
सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरं परम्। स एव भगवानादिर्गोलोके द्विभुजः स्वयम्।।६६।।

ये प्रभु राधा के वक्षःस्थल में स्थित रासेश्वर, अत्यन्त रसिक हैं। हे मुनिवर! प्रभु के ऐसे अनुपम रूप का ध्यान सदा वैष्णव करते हैं। ये परमात्मा ईश्वर हमारे सतत् ध्येय हैं। ये ही अक्षर-परमब्रह्म, भगवान् तथा सनातन, स्वेच्छामय, निर्गुण, निरीह, प्रकृति के परे हैं। ये ही सर्वाधार-

१. क. ङ्क्तिविनिवेद्यद०।
२. क. सर्वसारं स०।

सर्वबीज-सर्वज्ञ-सब कुछ-सर्वेश्वर-सर्वपूज्य-सर्वसिद्धिप्रद हैं। यही एक भगवान् अनादि हैं, जो स्वयं गोलोक में द्विभुज होकर स्थित हैं।।६३-६६।।

गोपवेषश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः। परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णो राधिकेश्वरः।।६७।।
सर्वान्तरात्मा सर्वत्र प्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः।
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चाऽऽत्मदवाचकः।।६८।।
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः।
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चाऽऽदिवाचकः।।६९।।
सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः।
स एवांशेन भगवान्वैकुण्ठे च चतुर्भुजः।।७०।।
चतुर्भुजैः पार्षदैस्तैरावृतः कमलापतिः।
स एव कलया विष्णुः पाता च जगतां प्रभुः।।७१।।
श्वेतद्वीपे सिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः। एतत्ते कथितं सर्वं [1]परब्रह्मस्वरूपकम्।।७२।।
अस्माकं चिन्तनीयं च सेव्यं वन्दितमीप्सितम्।
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक।।७३।।

ये गोपाल गोपवेशधारी पार्षदों से घिरे, परिपूर्णतम श्रीमान् श्रीकृष्ण, राधिकेश्वर सर्वान्तरात्मा, सर्वत्र प्रत्यक्षरूप, सर्वगामी कहे गये हैं। 'कृष' शब्द का अर्थ = समस्त। 'ण' का अर्थ आत्मा है। अतः ये सर्वात्मा, सर्वव्याप्त आदि पुरुष स्वांश से चतुर्भुज रूपधारी होकर वैकुण्ठ धाम में वहां चतुर्भुज पार्षदों के साथ लक्ष्मी के पति के रूप में निवास करते हैं। वे ही स्वांश कला मात्र से विष्णुरूप में जगत्रक्षक हैं। वे ही श्वेतद्वीपवासी होकर चतुर्भुज एवं सागरकन्या लक्ष्मीपति होकर विराजित हैं। एवंविध मैंने परब्रह्मस्वरूप वर्णन कर दिया। ये प्रभु ही सर्व चिन्तनीय, सुसेव्यमान् प्रिय एवं स्मरणीय कहे गये हैं। हे शौनक! यह कहकर शंकर मौन हो गये।।६७-७३।।

गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टुवे तं च नारदः।
मुनिस्तोत्रेण संतुष्टो भगवानादिरच्युतः।।७४।।
ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौ वरमीप्सितम्। मुनीन्द्रस्तं संप्रणम्य प्रहृष्टवदनेक्षणः।।७५।।
तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम्।।७६।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते म० ब्र० सौ० ब्रह्मस्वरूपवैकुण्ठादिवर्णनं नारदप्रस्थानं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

तब नारद ने गन्धर्वराज रचित स्तोत्र से पुनः शंकर की स्तुति किया। तदनन्तर अच्युत मृत्युंजय

१. क. ०ह्मनिरूपणम्।

शिव मुनि पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने नारद को यथेप्सित श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान किया। इससे नारद के नेत्र खिल उठे। उन्होंने प्रसन्न मुखमुद्रा में शिव को प्रणाम किया तथा शिवाज्ञा लेकर पुण्यमय नारायणाश्रम गये।।७४-७६।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

नारायण के प्रति नारद का प्रश्न

सौतिरुवाच

ददर्शाऽऽश्रममाश्चर्यं देवर्षिर्नारदस्तथा। ऋषेर्नारायणस्यैव बदरीवनसंयुतम्।।१।।
नानावृक्षलताकीर्णं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम्[1]। शरभेन्द्रैः केसरीन्द्रैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम्।।२।।
ऋषीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम्। महारण्यमगम्यं च स्वर्गादपि मनोहरम्।।३।।
(त्रिषष्टिकोटिसिद्धौघैरावृतं[2] सूर्यवर्चसम्। ऋषीन्द्राणां च पञ्चाशत्कोटिभिश्चान्वितं मुदा।
विद्याधराणां नृत्यं तत्पश्यन्तं सस्मितं द्विज। गन्धर्वकृष्णसङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्।)
सिद्धेन्द्राणां मुनीन्द्राणामाश्रमाणां त्रिकोटिभिः।
आवृतं चन्दनारण्यैः पारिजातवनान्वितम्।।४।।

सौति कहते हैं–देवर्षि नारद ने बदरीवन से युक्त नारायण ऋषि के आश्चर्यमय आश्रम को देखा। यह आश्रम नाना फलों से भरे वृक्षों से भरा था। यहां नरकोकिल की कूक से सभी दिशायें निनादित थीं। यद्यपि यह आश्रम हाथी, सिंह तथा व्याघ्रों से वेष्ठित था, तथापि ऋषिप्रवर के प्रभाव से यह स्थान हिंसा, भय से रहित था। यह महावन अगम्य, तथापि स्वर्ग से भी मनोहर था। यह चन्दन तथा पारिजात वृक्षों से भरा वन था। यहां बदरीवन में सिद्धेन्द्रों तथा मुनीन्द्रगण के तीन कोटि आश्रम थे। यह ६३ कोटि सिद्धगण तथा ५० कोटि मुनियों से सुसेवित था। यहां नारद ने विद्याधरगण के नृत्य का अवलोकन करके मुस्कानयुक्त मुख से शोभित नारायण ऋषि को देखा। वे गन्धर्व द्वारा गाये मनोहर कृष्ण संगीत का श्रवण कर रहे थे।।१-४।।

ददर्श तमृषीन्द्रं च सभामध्ये मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं च वसन्तं योगिनां गुरुम्।।५।।

---

१. ''रुतद्रुतम्'' इति पाठान्तरः।
२. इदं श्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति।

जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्[१]। प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक॥६॥

तदनन्तर नारद ने आश्रम के मध्य सभास्थल में रत्नसिंहासनासीन ऋषिप्रवर नारायण को देखा। वे योगीगण के गुरु तथा मनोहर रूपधारी थे। हे शौनक! वे श्रीकृष्ण रूप परमात्मा के जप में तल्लीन थे। नारद ने उन्हें तत्काल प्रणाम किया॥५-६॥

उत्थाय सहसाऽऽलिङ्ग्य युयुजे परमाशिषम्।
प्रपच्छ कुशलं स्नेहाच्चकारातिथिपूजनम्॥७॥

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदम्। निवसन्नासने रम्ये वर्त्मश्रमविवर्जितः॥८॥

नारद को देखते ही ऋषि सिंहासन से उठे। उन्होंने सहसा नारद का आलिंगन करके उनको श्रेष्ठ आशीर्वाद भी प्रदान किया। उन्होंने कुशलता पूछ कर स्नेह पूर्वक अतिथि नारद का सत्कार किया। उन्होंने एक रम्य रत्नसिंहासन पर नारद को आसीन कराया। उस रम्य सिंहासन पर बैठ कर नारद मार्गश्रम रहित हो गये॥७-८॥

उवाच तमृषिश्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम्। अधीत्य वेदान्सर्वांश्च पितुः स्थाने सुदुर्गमान्॥९॥

ज्ञानं संप्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रं वै शङ्कराद्विभो।
मनो मे नहि तृप्नोति दुर्निवारं च चञ्चलम्॥१०॥
दृष्टं मया त्वत्पदाब्जं मनसा प्रेरितेन च।
किञ्चिज्ज्ञानविशेषं च लब्धुमिच्छामि सांप्रतम्॥११॥
यत्र कृष्णगुणाख्यानं जन्ममृत्युजरापहम्॥१२॥

तदनन्तर नारद ने उन महर्षि नारायण से कहा–"हे प्रभो! मैंने पिता से समस्त वेदों का अध्ययन करके योगिप्रवर शंकर से ज्ञानलाभ तो किया, तथापि मेरा चंचल चित्त तृप्त नहीं हो रहा है। मैं मनःप्रेरित होकर आपके चरणकमल के दर्शनार्थ आया हूं। हे प्रभो! अब किंचित् ज्ञानलाभ की इच्छा है। उस ज्ञान में कृष्णगुण कीर्त्तन हो जिसे पाकर जन्म-मृत्यु-जरा का नाश हो जाये॥९-१२॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्राश्च सुरा विभो। कं चिन्तयन्ति मुनयो मनवश्च विलक्षणाः॥१३॥

कस्मात्सृष्टिश्च भवति कुत्र वा संप्रलीयते।
को वा सर्वेश्वरा विष्णुः सर्वकारणकारकः॥१४॥

तस्येश्वरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते। विचार्य मनसा सर्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१५॥

हे विभो! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र तथा अन्य सभी देवता, विद्वान्, मुनिगण एवं मनुगण किसका चिन्तन करते हैं? किससे सृष्टि होती है? किसमें यह लीन हो जाती है? सर्वकारण सर्वेश्वर विष्णु कौन हैं? जगत्पति परमेश्वर का रूप तथा कार्य क्या है? आप विस्तार से यह सब कहिये"॥१३-१५॥

---

१. "आत्मन्यात्मानमीश्वरम्" इति वा पाठः।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवानृषिः। कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम्॥१६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते सौ० नारायणं प्रति नारदप्रश्नो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

नारद का यह वचन सुनकर भगवान् नारायण ने हंसकर यह भुवनपावनी कथा प्रारम्भ किया।।१६।।

।।एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

भगवत् स्वरूप वर्णन

श्रीनारायण उवाच

लम्बोदरो हरिरुमापतिरादिशेषब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः
वाणीशिवात्रिपथगाकमलादिकाश्च संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥१॥
संसारसागरमतीव गम्भीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितचेष्टिताङ्गम्।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥२॥

प्रभु नारायण कहते हैं—हे नारद! गणपति, विष्णु, महादेव, ब्रह्मादि देवता, मनुगण, मुनीन्द्रगण, सरस्वती, दुर्गा, त्रिपथगा गंगा, कमला आदि सभी भगवान् हरि के चरणकमल का ध्यान करते हैं। ये सभी जिन भगवान् के चिन्तन में रत हैं, उनका चिन्तन सबका कर्त्तव्य है। यह संसार गंभीर-घोर सागर रूप है। यह दावाग्निरूप सर्पगण के घिरा है। इसे पार करने के लिये लोग दास्यभाव का वरण करके प्रभु चरणकमल का ध्यान करें।।१-२।।

गोवर्धनोद्धरणकीर्तितरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रत एव चाऽऽर्द्रा।
विश्वानि लोमविवरेषु बिभर्तुरादेः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥३॥

गोवर्द्धन पर्वत के उद्धारक प्रभु ने वाराह अवतार में इस दीन पृथिवी को दन्ताग्रभाग से एकार्णव से उठाया तथा इसका उद्धार किया। समस्त प्राणीगण का ये प्रभु भरण-पोषण करते हैं। इन आदि देव के प्रत्येक रोमकूप में एक-एक ब्रह्माण्ड की स्थिति है। इन प्रभु के चरणकमल का सभी लोग चिन्तन करें।।३।।

वेदाङ्गवेदमुखनिःसृतकीर्तिरंशैर्वेदाङ्गवेदजनकस्य हरेर्विधातुः।
जन्मान्तकादिभयशोकविदीर्णदेहः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥४॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य [1]रसिकारमणस्य पुंसः।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेषविष्णोः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥५॥
चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितुं भुवि कः समर्थः।
त्वं चापि नारदमुने परमादरेण संचिन्तनं कुरु हरेश्चरणारविन्दम्॥६॥

समस्त वेद-वेदांग में इनका कीर्त्तिकलाप वर्णित है। जो लोग निरन्तर जन्म-मरण, यमभय से भीत तथा शोक से विदीर्ण हैं, वे वेद-वेदांग के विधायक ब्रह्मा के भी विधाता भगवान् के चरणों का ध्यान करें। भगवान् की पलक जितने समय में झपकती है, उतने समय मात्र में एक ब्रह्मा का आयुकाल समाप्त हो जाता है। अतः इस धरती पर भगवान् के कर्म को वर्णित कर सके, ऐसा कौन है? हे नारद! हम परमादर पूर्वक उन प्रभु का चरण चिन्तन करें।।४-६।।

यूयं वयं तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः।
कलाविशेषा भवपाद्ममुख्या महान्विराड् यस्य कलाविशेषः॥७॥
सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे बिभर्ति सिद्धार्थसमं च विश्वम्।
कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः॥८॥

हे नारद! तुम, मैं, उनकी कला के अंशमात्र हैं। सभी मनु, मुनीन्द्रगण, जो संसार से पार जाने वाले हैं, वे सभी उनकी कला के कलांश ही हैं। यह जो महाविराट् है, वह भी उनकी ही कला विशेष है। ये अनन्त देव अपने सहस्रफण पर समस्त विश्व को सरसों के दाने के समान धारण करते हैं। वे ही कूर्म पर स्थित होकर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों हाथी पर एक मच्छर बैठा हो! ये प्रभु कूर्मदेव भी कृष्ण के कलांश मात्र हैं।।७-८।।

गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे नहि किञ्चन स्फुटम्।
न पाद्ममुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पाद्मपुत्र॥९॥

हे ब्रह्मनन्दन! इन भगवान् गोलोकनाथ की निर्मल यशराशि का वर्णन वेद-पुराण तक स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते। ब्रह्मादि देवता भी उसे कहने में समर्थ नहीं हैं। अतः उन ईश्वर का भजन करो।।९।।

विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः।
तेषां च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज॥१०॥

इन विश्वधाम भगवान् के अनंत विश्वों में, प्रत्येक में ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर सदा स्थित हैं। ये

१. क. ०काभरण०।

कितने हैं, इसकी गणना वेद तथा देवता भी नहीं कर सकते। हे नारद! अतः इन ईश्वर की ही सेवा करनी चाहिये।।१०।।

करोति सृष्टिं च विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम्।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति॥११॥

ये प्रभु ही विधाता ब्रह्मा की सृष्टि करने वाले हैं। ब्रह्मा जगत् प्रसविनी सनातनी प्रकृति की सहायता से समुदय सृष्टि करते हैं। प्रकृति के उपासक ब्रह्मादि सभी देवता भक्तिप्रदा लक्ष्मी का ही प्रकृति रूप में भजन करते हैं।।११।।

ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यया च सृष्टिं कुरुते सनातनः[1]।
स्त्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः॥१२॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च।
आत्मेश्वरश्चापि यया च शक्तिमांस्तया विना स्त्रष्टुमशक्त एव॥१३॥

यह ब्रह्मस्वरूप देवी प्रकृति प्रभु परमेश्वर से अभिन्न हैं। विश्व की सभी स्त्रियां प्रकृति देवी की ही अंश हैं। वे मायारूपेण उत्पन्न हैं। इस माया से सभी मोहित हैं। भगवती ही सर्वोत्कृष्ट हैं। ये सनातनी नारायणी माया परमात्मपुरुष की शक्ति हैं। ये आत्मेश्वर कृष्ण भी उनके ही द्वारा शक्तिमान् हैं। वे प्रकृति के बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं हैं।।१२-१३।।

गत्वा विवाहं कुरु वत्स सांप्रतं कर्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेशः।
गुरोर्निदेशप्रतिपालको भवेः सर्वत्र पूज्यो विजयी च संततम्॥१४॥

स्वपत्नीं पूजयेद्यो हि वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
प्रकृतिस्तस्य संतुष्टा यथा कृष्णो द्विजार्चने॥१५॥

हे वत्स! अब तुम गृह वापस जाकर विवाह करो। यह पिता की आज्ञा का पालन करके तुम सर्वत्र पूजनीय एवं विजयी कहे जाओगे। जो मनुष्य अपनी पत्नी को वस्त्र, आभूषण, चन्दनादि से सन्तुष्ट करता है, द्विजगण के पूजित होने पर जिस प्रकार कृष्ण प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार पत्नी को प्रसन्न रखने वाले पर भगवती प्रकृति प्रसन्न हो जाती है।।१४-१५।।

सा च योषित्स्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया।
योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत्॥१६॥
दिव्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमङ्गलदायिनी॥१७॥

जितने भी विश्व हैं, उन सब में मायारूपा स्त्री स्थित रहती है। स्त्री का अपमान करने से भगवती प्रकृति का अपमान होता है। अतः जो पति-पुत्रयुक्ता नारी की पूजा करता है, उसने तो सर्वमंगला देवी प्रकृति की पूजा कर लिया।।१६-१७।।

---

१. ख. ०नः। श्रिय०।

मूलप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी। सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी॥१८॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः।
सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा प्रकीर्तिता॥१९॥
नारायणप्रिया लक्ष्मीः सर्वसंपत्स्वरूपिणी।
वागधिष्ठातृदेवी या सा च पूज्या सरस्वती॥२०॥
सावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया।
शङ्करस्य प्रिया दुर्गा यस्याः पुत्रो गणेश्वरः।२१॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे भगवत्स्तुतितत्स्वरूपमायास्वरूप-वर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

यह पूर्णब्रह्मरूपा सनातनी विष्णुमाया प्रकृति अद्वितीया है, तथापि यह अद्वितीया (एकमात्र) होकर भी सृष्टिकाल में पंचरूपा हो जाती है। जो सभी नारीगण में से परमात्मा कृष्ण की सबसे अधिक प्रिया हैं, वे कृष्णप्राण अधिष्ठात्री देवी राधिका हैं। सर्वसम्पत्स्वरूपा १. राधा नारायण की प्रिया ही २. लक्ष्मी हैं। वे ही राग-रागिनियों की अधिष्ठात्री देवी एवं सबकी पूज्या ३. सरस्वती हैं। वेदमाता तथा विधाता की प्रिया वेदमाता ४. सावित्री हैं। शंकर की प्रिया ५. दुर्गा गणेशजननी पांचवीं प्रकृति हैं।।१८-२१।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

।।ब्रह्मखण्ड समाप्त।।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रकृति-चरित का संक्षिप्त विवरण

नारद उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री वै सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥१॥
आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वरा।
किंवा तल्लक्षणं ब्रूहि साऽभवत्पञ्चधा कथम्॥२॥
सर्वासां चरितं पूजाविधानं[1] कथमीप्सितम्।
अवतारं कुत्र कस्यास्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं--सृष्टिकार्य में दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री--ये पंच प्रकार की प्रकृति कही गई। यह ज्ञानीजन में श्रेष्ठ यह प्रकृति कैसे आविर्भूत हो गईं? उनका लक्षण क्या है? वे पांच भाग में विभक्त कैसे हो गईं? उन सबका चरित, पूजाविधान, गुण तथा इच्छा के विषयभूत कार्य, पूजाविधान कहें तथा वे किसलिये अवतीर्ण हो गईं, यह भी विशेष रूप से कहिये॥१-३॥

नारायण उवाच

प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत्।
किञ्चित्तथाऽपि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥४॥

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः। सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥५॥
गुणे प्रकृष्टसत्त्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ। मध्यमे कृश्च रजसि तिशब्दस्तमसि स्मृतः॥६॥

---

१. क. ०नं गुणमौ०।

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता। प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥७॥

भगवान् नारायण कहते हैं–हे वत्स नारद! प्रकृति का लक्षण वर्णन कौन कर सकता है? तथापि शिव से मैंने जो कुछ सुना है, वही कहता हूं। 'प्र' शब्द से प्रकृष्टार्थ द्योतित होता है। 'कृति' का अर्थ है सृष्टि। अतः जो सृष्टिकार्य में प्रकृष्टा हैं, उनको ही प्रकृति देवी कहा गया है। श्रुति में 'प्र' का अर्थ है प्रकृष्ट सत्वगुण। 'कृ' शब्द का अर्थ है रजोगुण। 'ति' का अर्थ है तमोगुण। जो त्रिगुणात्मिका सर्वशक्ति सम्पन्ना हैं, जो सृष्टि व्यापार में प्रधान हैं, वे ही प्रकृति हैं।।४-७।।

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिः स्यात्सृष्टिवाचकः।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥८॥
योगेनाऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः॥९॥
सा च ब्रह्मस्वरूपा स्यान्माया नित्या सनातनी।
यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्मृता॥१०॥

अत एव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते। सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्पश्यति नारद॥११॥

'प्र' शब्द का अर्थ है प्रथमा। 'कृति' का अर्थ है सृष्टि। अतएव जो सृष्टि की आदिभूता हैं, वे ही प्रकृति हैं। प्रधान पुरुष परमात्मा योग के द्वारा स्वयं दो भाग में विभक्त हैं। उनके अंग का दाहिना भाग पुरुष तथा वाम भाग प्रकृतिरूप हो गया। वह प्रकृति ब्रह्मरूपा, मायामयी, नित्या तथा सनातनी हैं। अग्नि की दाहिका शक्ति जैसे अग्नि के साथ रहती है, उसी प्रकार से जहां आत्मा है, वहीं पर प्रकृति भी विराजमान है। हे नारद! इसीलिये योगीप्रवर लोग स्त्री-पुरुष भेद को नहीं मानते। हे नारद! योगीगण समग्र संसार को ब्रह्मरूप देखते हैं।।८-११।।

स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया।
साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी॥१२॥

तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः। अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रहविग्रहा॥१३॥

गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया।
नारायणी विष्णुमाया[१] पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी॥१४॥

ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः[२] पूजिता सदा। सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपा सनातनी॥१५॥

नित्य इच्छामय ईश्वरी मूल प्रकृति शक्ति भगवान् की सिसृक्षा (सृष्टि करने की इच्छा) से सहसा प्रकट कही गयी है। उन प्रभु की आज्ञा के अनुसार अथवा भक्त के अनुरोध से सृष्टिकार्य पांच भाग में विभक्त हो गये। ब्रह्मादि देवता, मुनिगण, मनुष्यगण–ये सभी भक्तों पर अनुग्रह करने वाली गणेशजननी,

१. क. ०ष्णुरूपा पू०।
२. क. ०र्महद्भिः पू०।

शिवरूपा, शिवपत्नी, नारायणी, पूर्णब्रह्मरूपा, विष्णुमाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी, सबकी अधिष्ठातृ देवी दुर्गा की निरन्तर पूजा करते हैं।।१२-१५।।

यशोमङ्गलधर्मश्रीसत्यपुण्यप्रदायिनी[1]। मोक्षहर्षप्रदात्रीयं शोकदुःखार्तिनाशिनी॥१६॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा। तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता॥१७॥
[2]सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम्।
सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी॥१८॥

ये ब्रह्मरूपा देवी सभी जीवगण के धर्म, सत्य, पुण्य, कीर्त्ति, यश, मंगल को प्रदान करती हैं। वे सुख, मुक्ति तथा हर्ष प्रदान करती हैं तथा शोक-पीड़ा-दुःख का नाश करती हैं। वे शरणागत, दुःखी तथा पीड़ितों का परित्राण करने में तत्पर रहती हैं। ये तेजःस्वरूपा हैं। उनकी अधिष्ठात्री देवता हैं। वे सबकी शक्तिरूपा हैं। वे ईश्वर की विस्तृत शक्तिरूप, सिद्धि की ईश्वरी, सिद्धिरूपा तथा सिद्धिदाताओं की भी ईश्वरी हैं।।१६-१८।।

बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः।
जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्ति र्भ्रान्तिश्चचेतना॥१९॥
तुष्टिः पुष्टिस्तथा[3] लक्ष्मीवृत्तिर्माता तथैव च।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥२०॥

वे बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, शान्ति, कान्ति, भ्रान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, वृत्ति तथा मातृरूपा हैं। वे परमात्मा कृष्ण की शक्तिरूपा हैं।।१९-२०।।

उक्तः श्रुतौ[4] श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथाऽऽगमम्।
गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय॥२१॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः। सर्वसंपत्स्वरूपा या तदधिष्ठातृदेवता॥२२॥
कान्ता दान्ताऽतिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला।
लोभान्मोहात्कामरोषान्मदाहङ्कारतस्तथा ॥२३॥
त्यक्ताऽनुरक्ता पत्युश्च सर्वाद्या च पतिव्रता। प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा॥२४॥

वेद में कथित जो सभी गुण सुने गये हैं, वे अत्यन्त अल्प हैं। वास्तव में इन अनन्तरूपिणी के अनन्त गुण हैं। अब अन्य की कथा सुनो। जो शुद्ध सत्वरूपा हैं, वे ही परमात्मा विष्णु की पत्नी हैं। वे समस्त सम्पदा स्वरूप हैं तथा सम्पदा की अधिष्ठात्री देवता हैं। वे मनोहारिणी, दान्ता, अत्यन्त शान्ता,

---

१. क. ०नी। सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुर्गना०।
२. क. र्वमन्त्रस्वरूपा च शक्तिबीजस्य साम्प्रतम्।
३. क. ०क्ष्मीर्धृतिर्मा०।
४. क. श्रुतिगु०।

सुशीला तथा सभी विषयों में मंगलप्रदा हैं। लाभ-मोह-काम-क्रोध-अहंकारादि दोष उनमें नहीं हैं। वे निरन्तर पति भक्ति में अनुरक्ता, पतिव्रता, सबकी आदिभूता, भगवान् को प्राणतुल्य प्रेम देने वाली तथा प्रियभाषिणी हैं।।२१-२४।।

सर्वसस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी। महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवापरायणा॥२५॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।
गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा॥२६॥
सर्वेषु प्राणिद्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा। प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च॥२७॥
वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहङ्करी[1]।
दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकारिका॥२८॥

वे समस्त शस्यरूपा हैं। (शस्यरूपा = अन्नरूपा)। अतः वे ही समस्त प्राणीगण को जीवन देने वाली हैं। वे महालक्ष्मी हैं। वे वैकुण्ठधाम में सर्वदा पतिसेवा परायणा हैं। स्वर्ग में वे स्वर्गलक्ष्मी हैं। राजभवन में राजलक्ष्मी हैं। मर्त्यलोक में रहने वाले गृहस्थों के लिये वे गृहलक्ष्मी रूपा हैं। वे समस्त प्राणीगण तथा द्रव्य में मनोहर शोभास्वरूपा, पुण्यवानों के लिये प्रीतिरूपा तथा राजाओं हेतु प्रभास्वरूपा हैं। वे वणिक्‌गण हेतु वाणिज्यरूपा, पापी लोगों में कलह उत्पन्न करने वाली हैं। वे दयामयी, भक्तों की माता रूपा तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हैं।।२५-२८।।

चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च। जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने॥२९॥
शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता।
सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय॥३०॥

वे चंचल व्यक्ति में चपला रूपा हैं तथा भक्ति की सम्पदा की रक्षा हेतु-चंचला हैं। हे मुनिवर! इन देवी के बिना समस्त जगत् जीवन्मृतवत् है। ये सर्वपूज्या सबके लिये वन्दनीया हैं। यह मैंने सर्वसम्मता द्वितीया शक्ति का वर्णन किया। अब अन्य प्रकृति का वर्णन श्रवण करें।।२९-३०।।

वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः। सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती॥३१॥
सुबुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम्। नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा॥३२॥
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जनी।
विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी[2]॥३३॥

जो परमात्मा के वाक्य, बुद्धि, विद्या, ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता तथा सर्वविद्यारूपा हैं, वे ही देवी सरस्वती हैं। वे सद्व्यक्तियों के लिये कविता रूपिणी हैं। वे सुबुद्धि, मेधा, प्रतिभा एवं स्मृतिदायिनी हैं। वे नाना प्रकार के सिद्धान्त भेद से अर्थ की कल्पना प्रदान करती हैं। वे व्याख्यारूपा, बोधरूपा,

१. क. ०लहाङ्करा द०।
२. क. ०णी॥ ३३॥ स्वरसं०।

समस्त संदेह का भंजन करने वाली, विचार करने वाली, विविध ग्रन्थों का प्रणयन करने वाली एवं शक्ति स्वरूपा हैं।।३१-३३।।

सर्वसङ्गीतसंधानतालकारणरूपिणी। विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वं च जीविनाम्।।३४।।
यया विना च विश्वौघौ मूको मृतसमः सदा।
[1]व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी।।३५।।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया। हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा।।३६।।
जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया। तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी।।३७।।

वे समस्त संगीत का सन्धान करने वाली, ताल आदि की कारणरूपा हैं। वे समग्र जगत् के प्राणियों का विषय हैं। ज्ञान तथा वाक्रूपा हैं। उनके हाथ में व्याख्यामुद्रा है। वे वीणा तथा पुस्तकधारिणी तथा अत्यन्त शान्त स्वभाव हैं। वे शुद्धसत्वरूपा हैं। ये सुशीला देवी ही हरि की प्रियतमा पत्नी हैं। वे हिम-चन्दन-कुन्दपुष्प-चन्द्र-कुमुद-श्वेत कमल सन्निभ अंगज्योति सम्पन्न हैं। वे रत्नमाला द्वारा निरन्तर परमात्मा कृष्ण का जप करती हैं। वे तपःस्वरूपा, तपस्या का फल देने वाली तथा स्वयं तपस्विनी हैं।।३४-३७।।

सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा।
देवी तृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्बिका।।३८।।
यथागमं यथाकिञ्चिदपरां संनिबोध मे।
माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानां चच्छन्दसाम्।।३९।।
संध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणां च विचक्षणा।
द्विजातिजातिरूपा च [2]जपरूपा तपस्विनी।।४०।।

वे सिद्धविद्यारूपा, अखिल (सब कुछ) देने वाली तथा सर्व सिद्धिप्रदा हैं। तृतीया देवी प्रकृति शोभासम्पन्ना जगदम्बिका तृतीय प्रकृति सरस्वती के विषय में यत्किंचित् कह दिया। अब अन्य प्रकृति के सम्बन्ध में जानिये। चतुर्था प्रकृति सावित्री हैं। वे चारों वेद, वेदांग तथा छन्दों की माता हैं। यह विचक्षणा देवी सन्ध्यावन्दन क्रिया मंत्र की तथा तन्त्रों की मातारूपा हैं। वे ब्राह्मणों की ब्राह्मणत्व जातिरूपा, जपरूपा तथा तापसी हैं।।३८-४०।।

ब्राह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्कारकारिणी।
पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया।।४१।।
तीर्थानि यस्या संस्पर्शं दर्शं वाञ्छन्ति शुद्धये।
शुद्धस्फटिकसङ्काशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।।४२।।

---

१. क. ०ख्या सूत्रक०।
२. क. ०पा सरस्वती।

ये ब्रह्मतेजोरूपा तथा समस्त संस्कारकारिणी हैं। ये पवित्ररूपा सावित्री, गायत्री ब्रह्मा की प्रिया हैं। सभी तीर्थ अपनी शुद्धि हेतु उनके स्पर्श तथा दर्शन का प्रयास करते हैं। ये शुद्ध स्फटिक के समान रूप वाली तथा शुद्ध सत्वरूपा हैं।।४१-४२।।

परमानन्दरूपा च परमा च सनातनी। परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी।।४३।।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता। यत्पादरजसा[१] पूतं जगत्सर्वं च नारद।।४४।।

ये परमानन्दरूपा परमा, सनातनी, परब्रह्मरूपा तथा निर्वाणपदप्रदा हैं। ये ब्रह्म तेजोमयी शक्ति तथा उसकी अधिष्ठातृ देवता हैं। हे नारद! इनकी चरण धूलि से समस्त जगत् पवित्र हो जाता है।।४३-४४।।

देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते। प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी।।४५।।
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्या[२] सुन्दरी वरा।
सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता।।४६।।
वामार्धाङ्गस्वरूपा च सुगुणैस्तेजसा समा। परावरा[३] सर्वमाता परमाद्या सनातनी।।४७।।
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता।
रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः।।४८।।
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता। रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी।।४९।।
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका। परमाह्लादरूपा च सन्तोषामर्षरूपिणी।।५०।।

ये चतुर्था देवी का वर्णन था। अब पंचमा देवी का वर्णन करता हूं। वे प्रेम तथा प्राण की अधिष्ठात्री देवी हैं। ये पंचविध प्राणरूपा हैं। वे विष्णु की प्राणाधिका प्रियतमा, श्रेष्ठा सुन्दरी तथा आदिभूता हैं। ये समस्त सौभाग्यशालिनी, मानिनी तथा गौरव से परिपूर्णा हैं। ये परात्परा, सर्वव्रत निरता, परमाद्या एवं सनातनी हैं, जो परम आनन्दरूपिणी धन्या, मान्या तथा पूज्या हैं। वे परमात्मा कृष्ण की रासक्रीड़ा की अधिष्ठात्री देवी, रासमण्डलार्थ उत्पन्ना तथा रासमण्डल द्वारा भूषिता हैं। वे रास की ईश्वरी सुरसिका एवं रासवास में सदा स्थित रहती हैं। वे गोलोकवासिनी एवं गोपीवेशधारी हैं। वे भगवती परम आह्लादरूपा तथा सन्तोष एवं अमर्ष, इन दोनों से युक्त हैं।।४५-५०।।

निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी।
निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा।।५१।।
वेदानुसारध्यानेन विज्ञेया[४] सा विचक्षणैः। दृष्टिर्दृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः।।५२।।

---

१. क. ०सा भूतं ज०।
२. क. ०र्वाभ्यः सुन्दरी परा।
३. क. ०रा सारभूता०।
४. क. विज्ञातां च वि०।

वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कारभूषिता। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टश्रीयुक्ता भक्तविग्रहा॥५३॥
श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदायिनी सर्वसंपदाम्। अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या॥५४॥

देवी निर्गुणा, निराकारा, सबसे निर्लिप्त, आत्मरूपा, निरीहा, अहंकार रहित हैं तथा भक्तों पर अनुग्रहार्थ उन्होंने आकार (देह) धारण किया है। विचक्षण लोग उनको वेदोक्त ध्यान द्वारा ही जान पाते हैं, तथापि ये देवी तत्वज्ञ देवगण तथा मुनिगण की दृष्टि का विषय नहीं हैं। वे देवी अग्नि के समान दीप्त शुद्धवस्त्रधारिणी हैं तथा अनेक रत्नमय अलंकारों से भूषिता हैं। ये कोटि चन्द्रवत् प्रभाशालिनी, मनोहारिणी शोभायुक्त, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारिणी हैं। वे ही भक्तों को कृष्ण का दासत्व प्रदान करने में एकमात्र समर्थ हैं। अन्य कोई भी कृष्णदासत्व प्रदान नहीं कर सकता। ये भगवती सर्व सम्पत्ति देने वाली हैं। इन्होंने वराहकल्प में वृषभानु पुत्री होकर अवतार लिया है॥५१-५४॥

यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुंधरा। ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते॥५५॥

इस वराहकल्प में इनके चरण-कमल के स्पर्श से धरती सदैव पवित्र हो गई है। इनका दर्शन ब्रह्मादि को भी अलभ्य है। अथच भारत में ये देवी सबको परिलक्षित हो गईं॥५५॥

स्त्रीरत्नसारसंभूता [1]कृष्णवक्षःस्थलोज्ज्वला।
यथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने॥५६॥
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा[2] पुरा। यत्पादपद्मनखरदृष्टये चाऽऽत्मशुद्धये॥५७॥
स्वप्नेऽपि नैव दृष्टा स्यात्प्रत्यक्षे तु च का कथा।
तेनैव तपसा दृष्टा[3] भूरिवृन्दावने वने॥५८॥
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता।
अंशरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा॥५९॥
प्रकृतेः प्रतिविश्वं च रूपं स्यात्सर्वयोषितः।
परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यः प्रकीर्तिताः॥६०॥

हे मुनिवर! ये स्त्री रत्नों में सार रूप हैं (सर्वश्रेष्ठ हैं) ये नव जलधर (बादलों) में चमक रही आकाशीय विद्युत्वत् कृष्ण के वक्षःस्थल पर सदैव स्थित रहती हैं। इन भगवती के चरणकमल के नख का दर्शन करने तथा स्वयं की शुद्धता प्राप्ति हेतु ब्रह्मा ने ६०००० वर्ष पर्यन्त तप तो किया, तथापि प्रत्यक्ष दर्शन मिलना तो दूर की बात है, वे स्वप्न में भी इनका दर्शन प्राप्त नहीं कर सके। तथापि वृन्दावनस्थ लोगों ने सदा इनका दर्शन लाभ किया है। यह मैंने पंचम प्रकृति राधा का वर्णन कर दिया। समस्त जगत् की देवियों तथा समस्त स्त्रियों में कोई इन प्रकृति के अंश से उत्पन्न हैं, कोई इनकी कला

१. ख. ०स्थलस्थिता। तथा।
२. क. ०णा तपः य०।
३. क. ०ष्टा भुवि वृ०।

से उत्पन्न हैं, कोई इनके कलांश के भी अंश से उत्पन्ना हैं। मूलतः ये पांच प्रकृति ही देवी पूर्ण प्रकृति हैं।।५६-६०।।

या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय। प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी।।६१।।
विष्णुपादाब्जसंभूता द्रवरूपा सनातनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी।।६२।।

अब इन देवी की प्रधान अंशभूता देवियों का वर्णन कर रहा हूं। प्रकृति की प्रधान अंशभूता हैं भुवनपावनी गंगा। ये विष्णु देह से उद्भूता द्रवरूपा नित्या हैं। ये पापीगण के पातकों का दहन करने हेतु प्रज्वलित ईन्धन की तरह हैं।।६०-६२।।

दर्शनस्पर्शनस्नानपानैर्निर्वाणदायिनी। गोलोकस्थानगमनसुसोपानस्वरूपिणी।।६३।।
पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परा वरा। शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापङ्क्तिस्वरूपिणी।।६४।।
तपःसंपादिनी सद्यो भारते च तपस्विनाम्[1]।
शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।।६५।।

गंगा का दर्शन, स्पर्शन, जलपान, इनके जल में स्नान करने से निर्वाणपद गंगा की कृपा से मिलता है। ये गोलोक धाम में जाने हेतु उत्तम सोपान (सीढ़ी) हैं। ये समस्त तीर्थों में से अत्यन्त पवित्र, सभी नदियों में से सर्वोत्तम हैं। ये शंभु के जटारूपी (सुमेरु पर्वत जैसी जटा में) पर्वत पर मुक्ता पंक्ति के समान शोभायमान हैं। ये भारत में तपोधनगण की तपस्या को सफल कर देती हैं। ये देवी शंख-श्वेतपद्म-चन्द्र तथा दुग्ध की तरह धवल, शुद्धसत्वरूपा हैं।।६३-६५।।

निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया।
प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी।।६६।।

भगवती गंगा निर्मल, अहंकार रहित, साध्वी, नारायणप्रिया हैं। इसी प्रकार प्रकृति देवी की प्रधान अंश हैं विष्णु को प्रिय तुलसी।।६६।।

विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती। तपः सङ्कल्पपूजादि सद्यः संपादनी मुने।।६७।।
सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा।
दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी।।६८।।
कलौ कलुषशुष्केध्मदाहनायाग्निरूपिणी। यत्पादपद्मस्पर्शात्सद्यःपूता वसुंधरा।।६९।।

सती तुलसी विष्णु की भूषणस्वरूपा होकर विष्णु के चरणों में निरन्तर निवास करती हैं। हे मुनिवर! तुलसी की कृपा से तपः, संकल्प, पूजादि सद्यः सम्पन्न होता है। ये पुष्पों की सारभूता, स्वयं पवित्रा तथा सदैव पुण्यप्रदा हैं। इनके दर्शन तथा स्पर्श से ये सद्यः निर्वाणप्रदा हो जाती हैं। ये कलि कलुष को भस्म करने वाली तथा उसे शुद्ध ईन्धन भस्म बना देने वाली एकमात्र अग्निरूपा भी हैं। इनके पादस्पर्श से ही धरती पावन है।।६७-६९।।

---
१. क. ॰म् चन्द्रप॰।

यत्स्पर्शदर्शं वाञ्छन्ति तीर्थानामात्मशुद्धये।
यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मास्ति निष्फलम्॥७०॥

मोक्षदा या मुमुक्षुणां कामिनां सर्वकामदा। कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते वृक्षरूपिणी॥७१॥
त्राणाय[1] भारतानां च प्रजानां परदेवता। प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा॥७२॥

तीर्थ समूह आत्मशुद्धि के निमित्त जिनके स्पर्श तथा दर्शन की कामना करते हैं, वे सद्यः निर्वाणपद प्रदान कर देती हैं। इन देवी के बिना जगत् के सभी कर्म निष्फल हैं। भगवती तुलसी मुमुक्षुगण को मुक्ति देने वाली, कामना पूर्त्ति के इच्छुक लोगों को अभीष्टप्रदा, जगत् में कल्पवृक्ष रूपा हैं। ये जगत् स्वरूपा हैं। ये तुलसी भारत में रहने वाली प्रजा हेतु कल्पवृक्ष स्वरूपा तथा जगत्स्वरूपिणी हैं। ये भारत के लोगों की रक्षा करने वाली एकमात्र प्रधान देवता हैं। ये भारत के लोगों के रक्षार्थ यहां आयी हैं। अब कश्यपनन्दिनी प्रकृति की प्रधान अंश रूप मनसा देवी का वर्णन करता हूं।।७०-७२।।

शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा। नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता॥७३॥
नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी। [2]नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता॥७४॥
नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी।
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा॥७५॥

ये शंकर की प्रिय शिष्या, महाज्ञानशालिनी, नागेश्वर अनन्त की बहन तथा नागगण द्वारा पूजिता हैं। ये महासुन्दरी हैं। इनका वाहन नाग है। ये स्वयं भी नागेश्वरी तथा नागों की माता भी हैं। ये नागरूप भूषण से भूषिता, नागेन्द्रगण संयुता हैं। ये भगवती सिद्धियोगिनी एवं नागेन्द्रों द्वारा वन्दिता हैं। ये नागों के मध्य में ही सदा निवास करती हैं। ये विष्णु की भक्त, विष्णुरूपा तथा विष्णुपूजा परायणा हैं।।७३-७५।।

तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी। दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्तं यया हरेः॥७६॥
तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते। सर्पमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा॥७७॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा। जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णशम्भुपतिव्रता॥७८॥
आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम्। प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद॥७९॥

ये तपःस्वरूपा, तप का फल देने वाली तपस्विनी हैं। इन्होंने दिव्य मान वाले तीन लाख वर्ष तक तपः किया था। इसी कारण ये तपस्विनियों एवं तपस्वियों के द्वारा पूजिता हो गईं। ये सभी सर्पमन्त्रों की अधीश्वरी तथा ब्रह्मतेज से सतत् प्रदीप्त रहने वाली हैं। ये परब्रह्मस्वरूपा तथा सतत् ब्रह्मचिन्तन तत्पर रहती हैं। ये हरि तथा हर की सेविका, पतिपरायणा, जरत्कारु ऋषि की पत्नी तथा महातपस्वी आस्तीक की माता हैं। हे नारद! इसी प्रकार प्रकृति की प्रधान अंशभूता हैं भगवती देवसेना।।७६-७९।।

---

१. क. ०य भवतीनां।
२. ०न्द्रगुण०।

मातृका सा पूज्यतमा सा च च षष्ठी प्रकीर्तिता।
शिशूनां प्रतिविश्वं तु प्रतिपालनकारिणी॥८०॥
तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्तिकेयस्य कामिनी।
षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता॥८१॥
पुत्रपौत्रप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा। सुन्दरी[1] युवती रम्या सततं भर्तुरन्तिके॥८२॥

ये भगवती मातृकाओं में पूज्यतमा षष्ठी कही गई हैं। ये संसार के प्रत्येक शिशु का पालन करती हैं। ये सदैव विष्णुभक्ति में तत्पर, तपस्विनी तथा कार्त्तिकेय की पत्नी भी हैं। ये प्रकृति का छठा अंश होने के कारण षष्ठी कही गयी हैं। ये पुत्र-पौत्रप्रदा हैं। तभी जगत् में इनको धात्री कहते हैं। ये सुन्दरी, युवती, मनोहर अपने पति के सान्निध्य में सतत् रहती हैं।।८०-८२।।

स्थाने शिशुनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी।
पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तु संततम्॥८३॥
पूजा च सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः। एकविंशतितमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी॥८४॥
[2]शश्वन्नियमिता चैषा नित्या काम्याऽप्यतः परा।
मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी॥८५॥
जले स्थले चान्तरिक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा।
प्रधानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका॥८६॥

इन भगवती की पूजा शिशु जन्म के छठे दिन किंवा २१वें दिन सूतिकागृह में की जाती है। बालकों हेतु ये परम वृद्धा तथा परम योगिनी हैं। इनकी इक्कीसवें दिन वाली पूजा सन्तान के कल्याणार्थ की जाती है। यही नित्य हैं। अर्थात् ये सदैव नियमिता, नित्या, काम्या एवं परारूपिणी हैं। ये शिशु की सदा रक्षा करने वाली, मातृरूपा तथा दयारूपा हैं। ये शिशु को स्वप्न में जल-स्थल-आकाश में परिलक्षित होती हैं। प्रकृति का अन्य प्रधान अंश ही मंगल चंडी कहा गया है।।८३-८६।।

प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा। सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी॥८७॥
तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता। प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता॥८८॥
पञ्चोपचारैर्भक्त्या च योषिद्भिः परिपूजिता। पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमङ्गलदायिनी॥८९॥
शोकसंतापपापार्तिदुःखदारिद्र्यनाशिनी। परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम्॥९०॥

ये प्रकृति के मुख से उत्पन्न हैं। सर्वदा मंगलप्रदा हैं। ये सृष्टिकार्यार्थ मंगलप्रदा, मंगलरूपा एवं संहारकार्य में क्रोधरूपा हैं। अतः विद्वान् लोग इनको मंगल चण्डी कह गये हैं। समस्त संसार में ये मंगलवार को पूजित होती हैं। नारीगण द्वारा पंचोपचार से ये स्त्रियों द्वारा भक्तिभाव से पूजित होती हैं।

१. क. ०री सुरभी र०।
२. क. ०श्वद्वियति भात्येषा।

ये भगवती पुत्र-पौत्र, धन, ऐश्वर्य तथा मंगलप्रदा हैं। ये नारीगण का शोक, संताप, पाप, दुःख, दरिद्रता नाश करती हैं। ये सन्तुष्ट होने पर स्त्रियों की सभी कामना पूर्ण करती हैं।।८७-९०।।

रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी। प्रधानांशस्वरूपा च काली कमललोचना।।९१।।
दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः।
दुर्गार्धांशस्वरूपा स्याद् गुणैः सा तेजसा समा।।९२।।
[1]कोटिसूर्यप्रभाजुष्टदिव्यसुन्दरविग्रहा। प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा।।९३।।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी। कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः।
कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी।।९४।।

यदि ये महेश्वरी रुष्ट हो जायें, तब क्षणकाल में समस्त संसार का संहार कर देती हैं। इसी प्रकार प्रकृति की प्रधान अंशरूपा हैं कमलनयन वाली काली। ये शुंभ-निशुंभ से युद्धकाल में दुर्गा के ललाट से आविर्भूत हैं। ये दुर्गा के अर्धांश से उत्पन्ना तथा गुण एवं तेज में उनके ही समान हैं। इनका शरीर कोटिसूर्यसमप्रभ अतीव उज्ज्वल है। ये सभी शक्तियों में प्रधान, अत्यन्त बलवती, सर्वसिद्धिप्रदा तथा उत्तम सिद्धयोगिनी हैं। ये कृष्णभक्ति परायणा तथा तेज-गुण-विक्रम में कृष्ण के समान हैं। ये सदैव कृष्ण भावना में तल्लीन रहने के कारण कृष्णवर्णा हो गयीं! ये देवी सनातनी हैं।।९१-९४।।

ब्रह्माण्डे सकलं हर्तुं शक्ता निःश्वासमात्रतः।
रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकरक्षया।।९५।।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता सुपूजिता।
ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः।।९६।।
प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतिश्च वसुंधरा। आधारभूता सर्वेषां सर्वसस्यप्रसूतिका।।९७।।

ये निःश्वास मात्र से समस्त ब्रह्माण्ड का संहार कर देती हैं। इन्होंने जो दैत्यवर्ग के साथ जगत् रक्षार्थ युद्ध किया था, वह सब देवी की क्रीड़ा मात्र ही है। ये पूजिता होकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग प्रदान करने में सक्षम हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनिगण, मनुगण, नरगण, इनका सदा स्तव करते रहते हैं। इसी प्रकार देवी पृथिवी भी प्रकृति की प्रधान अंशरूपा हैं। ये संसार की आधारभूता तथा सभी अन्न को उत्पन्न करने वाली हैं।।९५-९७।।

रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकाराश्रया। प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा।।९८।।
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी। यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम्।।९९।।

ये देवी पृथिवी रत्नाकारा, रत्न की खान हैं। समस्त रत्न खानों की आश्रयभूता हैं। प्रजावर्ग तथा प्रजावर्ग के अधिपति इनकी निरन्तर पूजा वन्दनादि करते हैं। ये सभी की जीविका स्वरूपा, सर्वसम्पत्ति का विधान करने वाली हैं। इनके बिना समस्त संसार निराधार रहता।।९८-९९।।

---

१. क. ०ष्टपुष्टजाज्वल्यवि०।

प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर।
यस्य यस्य च याः पत्न्यस्ताः सर्वा वर्णयामि ते॥१००॥
स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता।
यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः॥१०१॥
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता।
यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्म च निष्फलम्॥१०२॥

हे मुनीश्वर! अब मैं प्रकृति की कलास्वरूपा अन्य का वर्णन कर रहा हूं तथा वे किन-किन की पत्नी हैं यह भी कह रहा हूं। श्रवण करो। स्वाहा–अग्निपत्नी हैं। ये त्रैलोक्य पूजिता हैं। जब तक 'स्वाहा' नहीं कहा जाता, तब तक प्रदत्त हवि देवगण ग्रहण नहीं कर पाते।

दक्षिणा–यज्ञ की पत्नी हैं। ये सर्वत्र पूज्या हैं। इनके बिना सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं (दक्षिणा = यज्ञादि की दक्षिणा)।।१००-१०२।।

स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः।
पूजिता पैतृकं दानं निष्फलं च यया विना॥१०३॥
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता।
आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना॥१०४॥
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले।
यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च॥१०५॥
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वन्दिता सदा।
यया विना न संतुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः॥१०६॥
ईशानपत्नी संपत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः।
सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना॥१०७॥
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता।
सर्वे लोका अधीराः स्युर्जगत्सु च यया विना॥१०८॥

स्वधा देवी–पितरों की पत्नी हैं। उनकी पूजा मुनिगण तथा मनुगण निरन्तर करते हैं। इस देवी के बिना पितरों के उद्देश्य से प्रदत्त दान निष्फल होता है। **स्वस्ति देवी**–वायु पत्नी हैं। ये निखिल विश्व में पूजिता हैं। इन देवी के बिना प्रदान करना तथा ग्रहण करना विफल हो जाता है। **पुष्टि देवी**–ये गणेश पत्नी हैं। ये धरती पर सदा पूज्या हैं। इनके बिना स्त्री-पुत्रादि सभी अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं। सभी लोकों में अनन्त **पत्नी तुष्टि** पूज्या एवं वन्दनीया हैं। इनके अभाव से सभी असन्तुष्ट हो जाते हैं। **सम्पत्ति देवी** ईशान देव की पत्नी हैं। इनके अभाव में लोग दरिद्रता रूपी महादुःख का भोग करते हैं।

देवी धृति कपिलदेव की पत्नी हैं। इनकी सभी लोग पूजा करते हैं। इनका अवलम्बन लिये बिना सभी को अधैर्य हो जाता है।।१०३-१०८।।

यमपत्नी क्षमा साध्वी सुशीला सर्वपूजिता।
समुन्मत्ताश्च रुद्राश्च सर्वे लोका यया विना॥१०९॥
क्रीडाधिष्ठातृदेवी सा कामपत्नी रतिः सती।
केलिकौतुकहीनाश्च सर्वे लोका यया विना॥११०॥

क्षमादेवी यम पत्नी हैं। ये सुशीला तथा साध्वी हैं। इनका आश्रय लिये बिना सभी लोग उन्मत्त तथा क्रोधित हो जाते हैं। सती नारियों में श्रेष्ठा कामक्रीड़ा की अधिष्ठात्री देवी हैं **रति** जो कामदेव की पत्नी हैं। इनकी कृपा के बिना लोग कामक्रीड़ा तथा कौतुकादि से रहित हो जाते हैं।।१०९-११०।।

सत्यपत्नी सती उक्तिः पूजिता जगतां प्रिया।
यया विना भवेल्लोको बन्धुतारहितः सदा॥१११॥
मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया।
सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्ठुराश्च यया विना॥११२॥
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा या पुण्यरूपा च पूजिता।
यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने॥११३॥
सुकर्मपत्नी कीर्तिश्च धन्या मान्या च पूजिता।
यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा॥११४॥

सत्य की पत्नी हैं **उक्ति**। ये जगत्प्रिय, जगत्पूजिता सती श्रेष्ठा हैं। इनके बिना लोग बन्धुत्वहीन हो जाते हैं। मोह की पत्नी है जगत्प्रिया, सर्वपूजिता साध्वी **दया**। इनकी कृपा के बिना जगत् के सभी लोग निष्ठुर हो जाते हैं। **प्रतिष्ठा** पुण्य की पत्नी हैं। ये स्वयं पुण्यरूपा तथा जगत्पूजिता हैं। इनके बिना समस्त जगत् मृतवत् हो जाता है। हे मुनिवर! सुकर्म की पत्नी हैं **कीर्त्ति**। ये धन्या, मान्या तथा पूजिता हैं। इनके बिना यश रहित होकर सब कोई मृतक्वत् हो जाता है।।१११-११४।।

क्रिया उद्योगपत्नी[1] च पूजिता सर्वसङ्गता।
यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नमिव नारद॥११५॥
अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता।
यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम्॥११६॥
सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी। अर्धावयवरूपा च द्वापरे संहृता ह्रिया॥११७॥

---
१. क. ०त्नी ईर्ष्या सा।

कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र[1] व्याप्तिकारणात्।
कपटेन सह भ्रात्रा भ्रमत्येव गृहे गृहे॥११८॥

उद्योग की पत्नी हैं क्रिया। ये पूज्या आदरणीया हैं। ये सर्वत्र विराजमान रहती हैं। इनका आश्रय लिये बिना (क्रिया किये बिना) समस्त जगत् ही उत्सन्न-उच्छित हो जाता है। **मिथ्या** अधर्म पत्नी है। केवल धूर्त्त इसके पूजक हैं। यदि मिथ्या न हो, तब ब्रह्मा सृष्ट समग्र जगत् अवसन्न-सा हो जाता है। यह मिथ्या सत्ययुग में अदृश्य, त्रेता में मात्र सूक्ष्मरूपा, द्वापर में आधे शरीर वाली तथा कलिकाल में सर्वव्यापिनी होकर अत्यन्त प्रभावी रूप से अपने कपट नामक भाई के साथ प्रत्येक गृह में घूमती रहती है।।११५-११८।।

शान्तिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते।
याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद॥११९॥

सुशील की दो पत्नियां हैं। यथा–शान्ति तथा लज्जा। हे नारद! इनके अभाव में समस्त जगत् ही उन्मत्तवत् है।।११९।।

ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा।
याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मृतसमं सदा॥१२०॥
मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा।
परमात्मा च विश्वौघा निराधारा यया विना॥१२१॥

ज्ञान की तीन पत्नियां हैं। **बुद्धि-मेधा-स्मृति**। इनके आश्रय के अभाव में समस्त जगत् मूढ़ जैसा होकर मृतवत् हो जाता है। **मूर्त्तिदेवी** धर्म की पत्नी हैं। वे मनोहर कान्तिरूपा हैं। इनका अवलम्बन किये बिना सभी विश्व तथा परमात्म ज्ञान निराधार हो जाता है।।१२०-१२१।।

सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती।
श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता॥१२२॥
कालाग्निरुद्रपत्नी च निद्रा[2] या सिद्धयोगिनाम्।
सर्वलोकाः समाच्छन्ना[3] मायायोगेन रात्रिषु॥१२३॥
कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च[4]।
याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्तुं न शक्यते॥१२४॥

इसके स्वरूप का वर्णन करके ही साध्वी देवी लक्ष्मी सर्वत्र शोभायमान हैं। ये लक्ष्मीस्वरूपा

१. क. व्यापिकाबलात्।
२. क. ०द्रा सा सिद्धयोगिनी। स०।
३. क. ०न्ना यया योगेन रा०।
४. क. च। प्रभा च या०।

तथा मूर्त्तिमती होने के कारण समस्त जगत् में धन्या-मान्या-पूज्या हैं। कालाग्नि रुद्र की पत्नी हैं **निद्रा**। ये सिद्ध योगीगण में प्रधान इन कालाग्नि रुद्र की सहधर्मिणी हैं। इनकी माया से ही रात में सभी लोग आकुलित हो जाते हैं। **सन्ध्या-रात्रि-दिन** तीनों काल की पत्नी हैं। विधाता ब्रह्मा (विधाता) इनके बिना संख्या गणना ही नहीं कर पाते!।।१२२-१२४।।

क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते।
याभ्यां व्याप्तं जगत्क्षोभयुक्तं चिन्तितमेव च॥१२५॥
प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा।
याभ्यां विना जगत्स्रष्टुं विधाता च नहीश्वरः॥१२६॥
कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वरस्य प्रिये प्रिये।
याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मिते विधौ॥१२७॥

लोभ की दो पत्नियां हैं **क्षुधा-पिपासा**। इनके प्रभाव से जगत् व्याप्त है। इनके कारण संसार सदा क्षुब्ध तथा चिन्तित होता है। तेज की **प्रभा** तथा **दाहिका** नामक भार्याद्वय हैं। इनके अवलम्बन के अभाव में विधाता अलग से सृजन ही नहीं कर पाते! काल की दो कन्याएं हैं **मृत्यु** तथा **जरा**। ये प्रज्वर की पत्नियां हैं। यदि ये दोनों न हों, तब प्राणीगण की अत्यन्त वृद्धि हो जाने से ब्रह्मा निर्मित जगत् ही विच्छिन्न हो जायेगा।।१२५-१२७।।

निद्राकन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्यासुखप्रिये।
याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ॥१२८॥
वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते।
याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं जीवन्मुक्तमिदं मुने॥१२९॥
अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः। दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः॥१३०॥
उपयुक्ताः सृष्टिविधावेताश्च प्रकृतेः कलाः।
कलाश्चान्याः सन्ति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे॥१३१॥

निद्रा की दो कन्याएं हैं **तन्द्रा** तथा **प्रीति**। ये दोनों ही सुख की पत्नी हैं। हे ब्रह्मपुत्र! ये दोनों ब्रह्मा द्वारा सृष्ट समस्त जगत् में परिव्याप्त हैं। हे मुनिप्रवर! वैराग्य की दो पूजित पत्नियां हैं **श्रद्धा** तथा **भक्ति**। हे मुनिवर! इनकी कृपा से जगत् निरन्तर जीवन्मुक्त होता है। **अदिति** देवमाता हैं। गौओं को जन्म देने वाली **सुरभि** हैं। दैत्य जननी दिति, कद्रु, विनता, दनु ये सभी प्रकृति की कलारूपा तथा सृष्टिकार्य में निपुण हैं। इनके अतिरिक्त प्रकृति की जो नाना कलायें हैं, उनमें से कतिपय का वर्णन करता हूं। श्रवण करो।।१२८-१३१।।

रोहिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी।
शतरूपा मनोर्भार्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी॥१३२॥

तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती।
अहल्या गौतमस्त्री स्यादनसूयाऽत्रिकामिनी॥१३३॥
देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी।
पितृणां मानसी कन्या मेनका साऽम्बिकाप्रसूः॥१३४॥

रोहिणी चन्द्रपत्नी हैं। **संज्ञा** सूर्यपत्नी हैं। **शतरूपा** मनु की पत्नी हैं। **शचिदेवी** इन्द्र की गृहिणी हैं। **तारा** बृहस्पति की भार्या हैं। **अरुन्धती** वसिष्ठ की पत्नी हैं। **अहल्या** गौतम की, **अनुसूया** अत्रि की, **देवहूति** कर्दम की, **प्रसूति** दक्ष की पत्नी हैं। पितृगण की मानस पुत्री **मेनका** पार्वती अम्बिका की माता हैं।।१३२-१३४।।

लोपामुद्रा तथाऽऽहूतिः कुबेरस्य तु कामिनी।
वरुणानी यमस्त्री च बलेर्विन्ध्यावलीति च॥१३५॥
कुन्ती च दमयन्ती च यशोदा देवकी सती।
गान्धारी द्रौपदी शैब्या सावित्री सत्यवत्प्रिया॥१३६॥
वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कलावती।
मन्दोदरी च कौसल्या सुभद्रा कैटभी तथा॥१३७॥
रेवती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा।
मित्रविन्दा नाग्नजिती तथा जाम्बवती परा॥१३८॥
लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता।
कला योजनगंधा च व्यासमाता महासती॥१३९॥

लोपामुद्रा, आहुति, कुबेरपत्नी, वरुणानी, यम की स्त्री, बलिपत्नी, विन्ध्यावली, कुन्ती, दमयन्ती, यशोदा, सती देवकी, गान्धारी, द्रौपदी, शैव्या, सत्यवानपत्नी सावित्री, वृषभानु की पत्नी साध्वी कलावती जो राधा की माता थीं, मन्दोदरी, कौशल्या, सुभद्रा, कैटभी, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, मित्रवृन्दा, नाग्नजिती, जाम्बवती, लक्ष्मणा, रुक्मिणी, सीता, ये स्वयं लक्ष्मी ही हैं। व्यासमाता महासती योजनगंधा सत्यवती।।१३५-१३९।।

बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी।
प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती॥१४०॥
रेणुका च भृगोर्माता हलिमाता च रोहिणी।
एकाऽनंशा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती॥१४१॥

बाणपुत्री ऊषा, चित्रलेखा जो ऊषा की सखी थी, प्रभावती, भानुमती, सती मायावती, भार्गव परशुराम की माता रेणुका देवी, हलधारी बलराम की माता रोहिणी, दुर्गा स्वरूपा एकनंशा जो कृष्ण की बहन हैं।।१४०-१४१।।

बह्वयः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते।
या याश्च ग्रामदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः॥१४२॥
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः। योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभवः॥१४३॥
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः॥१४४॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता॥१४५॥
सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः।
सत्त्वांशश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः॥१४६॥

ये सभी भारत में प्रकृति की नाना कलायें हैं। सभी ग्रामदेवीगण भी प्रकृति की कलायें हैं। इस जगत् की स्त्रियां प्रकृति के कलांश से ही उत्पन्ना हैं। अतएव स्त्रीगण का अपमान प्रकृति देवी का ही अपमान है। जो कोई पतिपुत्र युता सती ब्राह्मण स्त्री की पूजा वस्त्रालंकारादि से करता है, उससे तो यह प्रकृति ही पूजित हो जाती हैं। यदि कोई व्यक्ति आठ वर्ष की कुमारी कन्या की पूजा वस्त्रालंकार से कर देता है, उसने तो भगवती प्रकृति का ही पूजन कर दिया। संसार में जो भी उत्तम-मध्यम-अधम हैं, वे सभी नारीगण प्रकृति से ही उत्पन्न होती हैं। जिसमें सत्वांश अधिक है, जो सुशीला तथा पतिव्रता हैं, वे स्त्रियां ही उत्तमा हैं।।१४२-१४६।।

मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः।
सुखसंभोगवत्यश्च[1] स्वकार्ये तत्पराः सदा॥१४७॥
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः।
दुर्मुखाः कुलटा धूर्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रिया॥१४८॥
पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः।
प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः॥१४९॥

जो प्रकृति के रजोभाग से उत्पन्ना हैं, वे ही मध्यमा नारी हैं तथा भोग्या कही गयी हैं। ये सदैव सुखभोग में ही तत्पर तथा सुखसंभोगादि अपने कार्य में लगी रहती हैं। जो अधमा नारी हैं, वे प्रकृति के तमः अंश से उत्पन्ना हैं। वे अज्ञात कुल में जन्मी दुर्मुखा, कुलटा, धूर्त्ता, सर्वदा स्वतन्त्र रहने वाली तथा सदा कलही होती हैं। पृथिवी पर कुलटायें तथा स्वर्ग में अप्सरायें–ये प्रकृति के तमः अंश से उत्पन्न हैं। ये सभी पुंश्चली कहलाती हैं।।१४७-१४९।।

एवं निगदितं सर्वं प्रकृतेर्भेदपञ्चकम्।
ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते॥१५०॥
पूजिता सुरथेनाऽऽदौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
द्वितीया रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना॥१५१॥

१. क. ०वश्याश्च स्व०।

तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता।
जाताऽऽदौ दक्षपत्न्यां च निहन्तुं दैत्यदानवान्॥१५२॥
ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया।
जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम्॥१५३॥

इस प्रकार मैंने पंच प्रकृति का समस्त भेद कह दिया। ये सभी नारीगण पुण्यक्षेत्र भारत में पृथिवी पर पूज्या हैं। दुर्गतिनाशिनी दुर्गा की सर्वप्रथम धरती पर संभवतः राजा सुरथ ने पूजा किया था। द्वितीयतः रावणवधार्थ रामचन्द्र ने इनकी पूजा किया था। तदनन्तर जगन्माता तो तीनों लोक में पूजी गयीं। इन भगवती ने सर्वप्रथम दैत्य-दानव नाशार्थ दक्षपत्नी के गर्भ से जन्म लिया था। तदनन्तर यज्ञ में स्वामी शिव के प्रति निन्दा वाक्य सुन कर भगवती सती ने देहत्याग कर दिया तथा हिमवान् की पत्नी मेना के गर्भ से जन्म लेकर पशुपति को पति रूप से पुनः प्राप्त किया।।१५०-१५३।।

गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः।
बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद॥१५४॥
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमं परिपूजिता। त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवः॥१५५॥
सावित्री प्रथमं चापि भक्त्या वै परिपूजिता।
तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः॥१५६॥
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता। तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः॥१५७॥
प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले।
पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना॥१५८॥

हे नारद! तत्पश्चात् दुर्गादेवी के गर्भ से स्वयं कृष्णस्वरूप गणेश तथा विष्णुकला से स्कन्द नामक दो पुत्रगण ने जन्म लिया। सर्वप्रथम मंगल नामक राजा ने लक्ष्मी की पूजा किया तत्पश्चात् त्रिभुवन में देवता, मुनि तथा मानवों ने उनकी पूजा किया था। भक्ति ने सर्वप्रथम सावित्री की पूजा किया तदनन्तर त्रिभुवनस्थ मुनि-देवता तथा मनुष्यों ने भी इनकी पूजा किया था। ब्रह्मा ने सर्वाग्र में सरस्वती देवी की पूजा किया था। तत्पश्चात् त्रिभुवन में देवता आदि सभी ने उनका पूजन किया।।१५४-१५८।।

गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः।
गवां गणैः सुरगणैस्तत्पश्चान्मायया हरेः॥१५९॥
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा।
पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा॥१६०॥
पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेन च पूजिता। शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते॥१६१॥
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः।
पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः॥१६२॥

तदनन्तर गोपीगण, गोपगण, उनके बालक एवं बालिकाओं ने, गौओं, गोपिकाओं, देवताओं, विष्णुमाया, ब्रह्मादि ने, मुनिगण एवं मनुओं ने पुष्पधूपादि के साथ भक्ति सहित इनकी पूजा-वन्दना किया था। पृथिवी के पुण्यक्षेत्र में भारत में देवी की पूजा शंकर का उपदेश सुनकर सुयज्ञ ने सर्वप्रथम किया था। तदनन्तर परमात्मा की आज्ञा से मुनियों एवं देवताओं ने भक्ति पूर्वक इन देवी का पूजन किया था। इनकी पूजा भक्ति के साथ पुष्प-धूपादि से किया था।।१५९-१६२।।

कला या या सुसंभूताः पूजितास्ताश्च भारते।
पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने।।१६३।।
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम्।
यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।१६४।।

इति श्रीब्र० म० प्रकृ० नारायणनारदसंवादे प्रकृतिस्वरूपतद्भेदवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

हे मुनिवर! प्रकृति से उत्पन्न जितनी भी कलायें हैं, वे सभी पूजित होती हैं तथा ग्राम्य देवता भी ग्राम में पूजित होते हैं। इस प्रकार प्रकृति का शुभ चरित आगम के अनुसार लक्षणानुसार वर्णन कर दिया। पुनः क्या श्रवण करने की इच्छा है?।।१६३-१६४।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शक्ति प्रभृति शब्द की व्युत्पत्ति, ब्रह्माण्ड आदि की उत्पत्ति तथा देवदेवियों की उत्पत्ति का कथन

नारद उवाच

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो। विबोधनार्थं बोधस्य व्यासतो वक्तुमर्हसि।।१।।
सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह। कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदां वर।।२।।
भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्।।३।।

तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम्। स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम्॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे विभु! मैंने देवियों का चरित संक्षेप में सुना। मुझ अबोध के बोध की वृद्धि करने हेतु अब विस्तार से कहिये। हे श्रेष्ठ वेदज्ञ! सृष्टि कार्य में ये आद्या सृष्टि प्रकृति कैसे आविर्भूता हो गयीं? ये पांच भागों में कैसे विभक्त हो गयीं? इन त्रिगुणात्मिका प्रकृति से जो-जो कलारूपा देवियां आविर्भूत हो गई थीं, मैं सम्प्रति उनका चरित विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूं। पहले उनका जन्मवृत्तान्त कहिये। तदनन्तर ध्यान, पूजा विधान, स्तोत्र, कवच, मंगलप्रद उनकी महिमा तथा शौर्य भी कहिये॥१-४॥

नारायण उवाच

नित्यात्मा न नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा।
विश्वेषां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च॥५॥

तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः। तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना सनातनी॥६॥

यथाऽग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ।
शश्वद्युक्ता न भिन्नासा तथा प्रकृतिरात्मनि॥७॥

श्री नारायण कहते हैं–परमात्मा, आकाश, काल, दिक् जैसे नित्य है, उसी प्रकार गोलोक भी नित्य है। अग्नि में दाहिका शक्ति होती है। चन्द्र तथा पद्म में शोभा होती है तथा सूर्य में शोभा होती है। ये सभी शोभा से युक्त रहते हैं। अर्थात् जैसे चन्द्रमा से उसकी शोभा युक्त रहती है, इसी प्रकार से प्रकृति भी परम आत्मा के साथ सदा युक्त रहती है और यह उससे एक क्षण भी अलग नहीं रहती॥५-७॥

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः। विना मृदा कुलालो हि घटं कर्तुं नहीश्वरः॥८॥

न हि क्षमस्तथा ब्रह्मा सृष्टिं स्रष्टुं तया विना।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा तया स्याच्छक्तिमान्सदा॥९॥
ऐश्वर्यवचनःशक् च तिः पराक्रमवाचकः।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रकीर्तिता॥१०॥

जैसे स्वर्णकार स्वर्ण के बिना कुण्डल गठित कर सकने में सक्षम नहीं होता, जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घट निर्माण नहीं कर सकता, उसी प्रकार परब्रह्म ईश्वर प्रकृति के बिना सृष्टि में समर्थ नहीं होते। वह सर्वशक्तिरूपा है। उसके द्वारा सभी लोक शक्तिमान् हो जाते हैं। "शक्" शब्द ऐश्वर्य वाचक है। "ति" शब्द पराक्रम वाचक है। जो पराक्रम तथा ऐश्वर्यकारिणी होकर यह दोनों प्रदान करे, वही है शक्ति॥८-१०॥

समृद्धिबुद्धिसंपत्तियशसां वचनो भगः। तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा॥११॥

तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।
स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः॥१२॥

'भग' शब्द समृद्धि-सम्पत्ति तथा यश वाचक है। अतः इन तीनों से युक्त होकर शक्ति ही भगवती नाम वाली हैं। वे सर्वदा भगरूपा हैं। इन भगरूपा शक्तियुक्त होने के कारण परमात्मा ही भगवान् कहे गये हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण इच्छामय हैं। अपनी इच्छा से ही वे कभी साकार, तो कभी निराकार हो जाते हैं॥११-१२॥

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा। वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥१३॥
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम्॥१४॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः।
वदन्ति इति ते कस्य तेजस्तेजस्विनं विना॥१५॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम्॥१६॥
अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्।
किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्॥१७॥

योगीगण सदा-सर्वदा तेजोरूप निराकार का ही ध्यान करते हैं। वे कृष्ण को परमब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, अदृश्य, सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वनिदान, कर्त्ता, सर्वरूप वाले-रूपशून्य, सबका पोषक कहते हैं। जो सूक्ष्मदर्शी कृष्णभक्त हैं, वे वैष्णव ऐसा नहीं मानते। उनका कहना है कि यदि तेजस्वी व्यक्ति है, तभी यह तेज उसका कहा जायेगा। यदि कोई तेजस्वी है ही नहीं, तब यह तेज हम किसका कह सकेंगे? तभी वैष्णवजन का मत है कि इस तेजमण्डल के मध्य में वे ही परमब्रह्म तेजवान्, स्वेच्छामय, सर्वरूपसम्पन्न तथा सर्वकारण कारण हैं। वे अत्यन्त सुन्दर, रमणीय, अतीव मनोहर तथा परात्पर हैं! उनकी कान्ति नवनीलजलधर (मेघ) जैसी है। वे किशोर अवस्था में सदा स्थित, शान्त, सर्वप्रिय एवं परात्पर हैं॥१३-१७॥

नवीननीरदाभासं रासैकश्यामसुन्दरम्। शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचकलोचनम्॥१८॥
मुक्तासारमहास्वच्छदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। मयूरपुच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्॥१९॥
सुनासं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकारकम्। ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्॥२०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्। सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम्॥२१॥

वे श्याम वर्ण वाले हैं। उनकी कान्ति नवीन जलधर के समान है। ये श्यामसुन्दर रासलीला में अद्वितीय हैं। इनके दोनों नेत्र मध्याह्न काल में विकसित कमल की शोभा से भी अधिक शोभायमान हैं। इनकी दन्तपंक्ति मुक्ता को भी लज्जित करने वाली तथा मनोहर है। इनका मुकुट मोरपंख से शोभित है। ये प्रभु मालती माला से शोभायमान हैं। इनकी नासिका अत्यन्त मनोहर है। ये भक्तों पर अनुग्रह करने में सदा दयालु चित्त वाले हैं। ज्वलन्त अग्नि के समान विशुद्ध एक पीतवस्त्र पीताम्बर को इन्होंने धारण

किया है। इससे उनकी मूर्त्ति अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रही है। ये द्विभुज तथा हाथों में मुरलीधारी हैं। ये प्रभु रत्नभूषण भूषित हैं। ये विभु सबके आधार, सर्वेश, सर्वशक्तिमान् हैं।।१८-२१।।

सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम्। परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम्।।२२।।

ये प्रभु सर्वैश्वर्यप्रद, सब कुछ, स्वतन्त्र, सर्वमंगल, परिपूर्णतम, सिद्ध, सिद्धिप्रद तथा सिद्धिकारण हैं।।२२।।

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वदेवंरूपं सनातनम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्।।२३।।
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते। स चाऽऽत्मा परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।२४।।
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः।
भक्तिदास्यप्रदाता यः स कृष्णः परिकीर्तितः।।२५।।

वैष्णवगण इस प्रकार जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोक-भयनिवारक सनातन रूप का निरन्तर ध्यान करते हैं। ब्रह्मा की पूर्ण आयु इनका एक निमेष मात्र है। ये परमात्मा परब्रह्म ही कृष्ण हैं। वैष्णव लोग यही कहते हैं। 'कृष्' शब्द का अर्थ है—भक्ति वाचकता। 'ण' का अर्थ है—दासत्व। अतः जो भक्ति एवं दास्य प्रदान करते हैं, वे ही कृष्ण कहे गये हैं।।२३-२५।।

कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजवाचकः। सर्वबीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।२६।।
असंख्यब्रह्मणां पाते कालेऽतीतेऽपि नारद।
यद्गुणानां[1] नास्ति नाशस्तत्समानो गुणेन च।।२७।।
स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुस्त्वेक एव च।
सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः।।२८।।

'कृष्' शब्द से 'सर्व' कहा गया है। 'ण' शब्द का अर्थ है बीज। जो सबके बीज हैं, वे ही कृष्ण हैं। यह भी विद्वानों का कथन है। ये कृष्ण ही सर्वबीजरूप परब्रह्म हैं। यह इन विद्वानों का मत है। हे नारद! जब तक असंख्य ब्रह्मा समाप्त हो जाते हैं, वह काल व्यतीत हो जाने पर भी उन प्रभु का गुणग्राम विनष्ट नहीं होता। जिनके समान गुणी कोई भी नहीं है, उन कृष्ण ने सृष्टि के आदि में सृजनेच्छा किया था, उस समय उन प्रभु के ही अंश से उत्पन्न काल ने इनको सृष्टि कार्य की ओर उन्मुख देख कर प्रभु को प्रेरित किया था। तब कृष्ण प्रभु सृष्टिकार्य में प्रवृत्त हो गये थे!।।२६-२८।।

स्वेच्छामयःस्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपा वामभागांशाद्दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः।।२९।।
तां ददर्श महाकामी कामाधारः सनातनः।
अतीव कमनीयां च चारुचम्पकसंनिभाम्।।३०।।

---

१. क. यदंशानां ना०।

पूर्णेन्दुबिम्बसदृशनितम्बयुगलां पराम्। सुचारुकदलीस्तम्भसदृशश्रोणिसुन्दरीम्॥३१॥

श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्।
पुष्ट्या युक्तां सुललितां मध्यक्षीणां मनोहराम्॥३२॥

वे स्वेच्छामय हैं। अतः प्रभु स्वेच्छा से दो भागों में विभक्त हो गये। उनका वाम भाग नारीरूपी था। दक्षिणांश पुरुष रूप था। उन महाकामी काम के भी आधार सनातन प्रभु ने अपनी अंशभूता स्त्रीरूपा प्रकृति को देखा, जो अत्यन्त कमनीया तथा मनोहर थीं। उनकी कान्ति चम्पापुष्प जैसी थी। उनके श्रेष्ठ नितम्ब चन्द्रबिम्बवत् गोलाकृति थे। उनके उरुभाग तो केले के वृक्ष के स्तम्भ को भी लज्जित करने वाले थे। वे अतीव सुन्दरी, अति शोभासम्पन्ना, श्रीफल के समान स्तनद्वय की शोभा से अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रही थीं। उनकी कटि क्षीण (पतली), शरीर मनोहर पुष्टता युक्त तथा सुललित था॥२९-३२॥

अतीव सुन्दरीं[1] शान्तां सस्मितां वक्रलोचनाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥३३॥

ये देवी शान्त स्वभावा थीं। उनके मुख पर सदा हंसी खिली रहती थी। नेत्र की भंगिमा वक्र थी। उनके वस्त्र अग्नि के समान दीप्त थे। उन्हें देवी ने पहना था। वे आभूषण रत्नों से भूषित थीं॥३३॥

शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबन्तीं संततं मुदा।
कृष्णस्य[2] सुन्दरमुखं चन्द्रकोटिविनिन्दकम्॥३४॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना।
समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥३५॥

सुवक्रकबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्। रत्नेन्द्रसारहारं च दधतीं कान्तकामुकीम्॥३६॥

इन देवी के चक्षुरूप चकोर कोटि चन्द्रों को भी लज्जित करने वाले कृष्ण के मुखचन्द्र की रश्मियों का निरन्तर पान कर रहे थे। उनके ललाट में कस्तूरी की बिन्दी लगी थी। उस बिन्दी के कुछ नीचे चन्दन की बिन्दी और उसके मध्य में सिन्दूर की बिन्दी शोभायमान थी। वे मालती माला से शोभिता थीं। उनकी दृष्टि सदा प्रियतम को ही देखती रहती थी तथा चित्त भी प्रियतम कृष्ण के प्रति अनुरक्त था। देवी के केश घुंघराले थे। मालती पुष्पों से बना उत्तम हार इन देवी को शोभित कर रहा था॥३४-३६॥

[3]कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टशोभासमन्विताम्। गमने राजहंसीं तां दृष्ट्या खञ्जनगञ्जनीम्॥३७॥
अतिमात्रं[4] तथा सार्धं रासेशो रासमण्डले। रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह॥३८॥

---

१. क. ०रीं रामां स०।
२. क. ०स्य मुखचन्द्रं च च०।
३. क. ०टिसूर्यप्र०।
४. क. इष्टमा०।

नानाप्रकारशृङ्गारं शृङ्गारो मूर्तिमानिव। चकार सुखसंभोगो यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥३९॥

वे इस प्रकार करोड़ों चन्द्र की समन्वित प्रभारूप शोभा से समन्वित विग्रह वाली थीं। उनकी चाल (चलना) राजहंस, हाथी तथा खंजन पक्षी को भी लज्जित करने वाली थी। भगवान् श्रीकृष्ण उनको देखने मात्र से रासमण्डल में इन देवी के साथ निर्जन में रास के उल्लास से उन्मत्त होकर रासक्रीड़ा करने लगे। इन नित्यानन्दरूप जगत्पिता भगवान् ने ब्रह्मा की आयु पर्यन्त (एक ब्रह्मा की जितनी आयु कही जाती है) इन भगवती के साथ नाना रतिजनित सुख का उपभोग किया। उस समय प्रतीत हो रहा था मानों स्वयं शृंगार ही मूर्त्तरूप धारण करके अपने शृंगारिक क्रियाकलाप के साथ यह रासक्रीड़ा कर रहा हो।।३७-३९।।

ततः स च परिश्रान्तस्तस्या योनौ जगत्पिता।
चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दः शुभक्षणे॥४०॥

गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत। निःससार श्रमजलं श्रान्तायास्तेजसा हरेः॥४१॥

तदनन्तर भगवान् ने आनंद से अत्यन्त थक कर एक शुभ क्षण में देवी के गर्भ में अपना वीर्य निःक्षिप्त किया। रति के अवसान काल में कामिनी उन देवी का शरीर भगवान् के तेज से ऐसा श्रान्त हो गया कि उनको स्वेद (पसीना) बहने लगा।।४०-४१।।

महासुरतखिन्नाया निःश्वासश्च बभूव ह। तदाधारश्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम्॥४२॥

स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह।
निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च॥४३॥
बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा।
तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पञ्च च जीविनाम्॥४४॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च।
बभूवुरेव तत्पुत्रा अधः प्राणाश्च पञ्च च॥४५॥

महासुरत क्रीडा जनित श्रम के कारण परिभूता उन प्रकृति की निःश्वास वायु वेग से प्रवाहित होने लगी। उनके देह से वह श्रमजल (स्वेद-पसीना) अनवरत गोलाकृति में प्रवाहित होने लगा। इसी से यह गोलाकार समस्त संसार सृष्ट हो गया। यही प्रकृति का निःश्वास वायु ही सबका आधार स्वरूप हो गया। वही समस्त जीवों की निःश्वास वायु भी है। इस मूर्त्तिमान निःश्वास वायु के वामांग से एक स्त्रीरत्न ने जन्म लिया। वही स्त्री ही इन निःश्वास वायु की प्राण के समान पत्नी हो गयी! इसी स्त्री से वायु के प्राण-अपान-समान-उदान तथा व्यान नामक पंचवायु रूप पांच पुत्र जन्मे। (ये ही प्राणीगण के ५ प्राण हैं)।।४२-४५।।

घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान्। तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा॥४६॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह। शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा॥४७॥

इस प्रकार भगवती के स्वेद जल के अधिपति वरुण हो गये। वे जल के अधिष्ठात्री देवता हैं। तभी उनके वाम अंग से एक नारी उत्पन्न हो गई, जो वारुणी कही गयी। वे वरुण की पत्नी बनीं। तभी कृष्ण की शक्ति ने गर्भ धारण किया। यह कृष्ण का प्रदत्त गर्भ था। यह गर्भ सौ मन्वन्तर पर्यन्त ब्रह्मतेज से युक्त रहकर स्थित था। इतने समय तक वह गर्भ इस तेज से दीप्त था।।४६-४७।।

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया।
कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता।।४८।।
शतमन्वन्तरातीतकाले परमसुन्दरी। सुषावाण्डं सुवर्णाभं विश्वाधारालयं परम्।।४९।।
दृष्ट्वा चाण्डं हि सा देवी हृदयेन विदूयता।
उत्ससर्ज च कोपेन[१] तदण्डं गोलके जले।।५०।।
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह।
शशाप देवी देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम्।।५१।।

जब सौ मन्वन्तर व्यतीत हो गया, तब प्रभु की प्राणप्रिया कृष्ण की संगिनी सतत् कृष्ण के वक्ष पर स्थिता कृष्ण के प्राणों की अधिदेवता भगवती प्रकृति ने एक स्वर्णमय अण्ड को जन्म दिया। यह स्वर्ण की आभा वाला अण्ड ही विश्वाधार का आलय रूप था। इस अण्ड को देख कर देवी अत्यन्त दुःखी हो गईं। उन्होंने उस गोलाकृति जलराशि में इस स्वर्ण अंड को फेंक दिया। तभी भगवान् ने देवी को यह अण्ड त्यागते और फेंकते देख कर हाहाकार करते हुए उनको यथोचित (कार्य के लिये उपयुक्त) शाप प्रदान किया।।४८-५१।

यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे।
भव त्वमनपत्याऽपि चाद्यप्रभृति निश्चितम्।।५२।।
या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः।
अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः।।५३।।

(भगवान् ने कहा) तुम क्रोधमय स्वभावा निष्ठुरा हो। तभी तुमने सन्तान को फेंक दिया। इसके फलस्वरूप तुम सदा सन्तान रहित हो जाओ। तुम्हारे अंश से उत्पन्न समस्त देवस्त्रियां तुम्हारे जैसी ही नित्ययौवना होने पर भी सन्तान रहित होंगी।।५२-५३।।

एतस्मिन्नन्तरे देवीजिह्वाग्रात्सहसा ततः। आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा।।५४।।
पीतवस्त्रपरिधाना वीणापुस्तकधारिणी। रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता।।५५।।
अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपा बभूव ह।
वामार्धाङ्गा च कमला दक्षिणार्धा च राधिका।।५६।।

---

१. क. ०न ब्रह्माण्डगो०।

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह।
दक्षिणार्धः स्याद्द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः॥५७॥

तभी सहसा देवी के जिह्वाग्र से शुक्लवर्णा मनोहरा एक कन्या आविर्भूत हो गई। वे पीताम्बर धारिणी तथा वीणा-पुस्तक अपने हाथों में लिये थीं। वे देवी सभी शास्त्रसमूह की अधिष्ठातृ देवी थीं, जो नाना रत्नाभूषणों से विभूषित थीं। कालान्तर में वे द्विधा विभक्त हो गईं। दक्षिणार्ध भाग की जो देवी थीं, वे राधा तथा वामार्द्धभाग की जो देवी थीं, वे कमला कही गईं। कालान्तर में कृष्ण भी द्विधा विभक्त हो गये। दक्षिण भाग वाले द्विभुज (कृष्ण) तथा वाम भाग वाले चतुर्भुज विष्णु कहे गये॥५४-५७॥

उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य भव कामिनी।
अत्रैव मानिनी राधा नैव भद्रं भविष्यति॥५८॥
एवं लक्ष्मीं संप्रददौ तुष्टो नारायणाय वै।
सञ्जगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः॥५९॥

कृष्ण ने उस समय देवी सरस्वती से कहा-"तुम नारायण की पत्नी हो जाओ। राधा माननीया हैं। वे मेरे साथ निवास करेंगी। यही कल्याणकारी होगा। उन्होंने लक्ष्मी भी नारायण को ही प्रदान कर दिया। जगत्पति भगवान् नारायण ने लक्ष्मी तथा सरस्वती के साथ वैकुण्ठ प्रस्थान किया॥५८-५९॥

अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसंभवे। नारायणाङ्गादभवन्पार्षदाश्च चतुर्भुजाः॥६०॥
तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः।
बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः॥६१॥

लक्ष्मी तथा देवी सरस्वती मूलप्रकृतिमयी राधा का अंश होने के कारण सन्तान रहित हो गईं। (यह शाप के कारण हुआ था)। उस समय नारायण के शरीर से उनके समान चतुर्भुज नाना पार्षद उत्पन्न हो गये। वे सभी नारायण जैसे थे। इसी प्रकार से भगवती लक्ष्मी के शरीर से कोटि-कोटि दासीगण उत्पन्न हो गईं, जो लक्ष्मीवत् थीं॥६०-६१॥

अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने।
आसन्नसंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः॥६२॥
रूपेण सुगुणेनैव वेषाद्वा विक्रमेण च।
प्राणतुल्याः प्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः॥६३॥
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः।
राधातुल्याश्च सर्वास्ता[१] नान्यतुल्याः प्रियंवदाः॥६४॥

१. क. स्ता राधादास्यः प्रि०।

रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः।
अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम्॥६५॥

हे मुनिवर! इसके पश्चात् गोलोकपति कृष्ण के रोमकूपों से भी असंख्य गोप उत्पन्न हो गये। वे तेज तथा आयु में प्रभु के ही समान लग रहे थे। वे सभी रूप-गुण-वेशभूषा एवं विक्रम में कृष्ण के समान थे तथा कृष्ण के प्राणप्रिय पार्षद थे। राधा के रोमकूपों से असंख्य गोपकन्यायें उत्पन्न हो गईं। वे रूप-गुण तथा वयस में राधा के समान लगने वाली तथा उनका प्रिय करने वाली, रत्नाभूषण भूषिता एवं स्थिरयौवना थीं, तथापि कृष्णशाप के चलते वे सभी सन्तान रहित थीं।।६२-६५।।

एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः। आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमायया सनातनी॥६६॥

देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः॥६७॥

हे विप्र! तभी कृष्णदेह से सहसा विष्णुमाया सनातनी दुर्गा आविर्भूत हो गईं। वे नारायणी, ईशानी तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। ये परमात्मा कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठातृ देवता कही गयी हैं।।६६-६७।।

देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी। परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका॥६८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा। ईषद्धासप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता॥६९॥
नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥७०॥

ये देवीगण की बीजरूपा मूल प्रकृति तथा ईश्वरी हैं। ये पूर्ण तेजस्वरूपा तथा त्रिगुणात्मिका भी हैं। इनका देहवर्ण तप्त स्वर्ण के समान शोभायुक्त है। ये कोटिसूर्यसमप्रभ प्रभा से प्रभान्वित हैं। इनका मुखकमल तनिक मुस्कानयुक्त है। ये प्रसन्न मुद्रा में रहती हैं। भगवती सहस्रभुजा हैं। भगवती नाना शास्त्रों की रहस्यवेत्ता हैं तथा अनेक आयुध धारण किये रहती हैं। ये तीन नेत्रों वाली, अग्निवत् चमकीले शुद्ध वस्त्र धारण करने वाली रत्नभूषण भूषिता हैं।।६८-७०।।

यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः।
सर्वविश्वस्थिता लोका मोहिता मायया यया॥७१॥

संसार की सभी नारीगण इनके ही अंश से उत्पन्न हैं। इनकी माया से सभी लोक मोहित रहते हैं।।७१।।

सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहमेधिनाम्।
कृष्णभक्तिप्रदात्री च वैष्णवानां च वैष्णवी॥७२॥
मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीः सा गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ॥७३॥

ये देवी गृहस्थों को सभी ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। ये वैष्णवी होकर वैष्णवों को कृष्ण की भक्ति

देती हैं। ये मुमुक्षुजन को मोक्ष, सुख चाहने वाले को सुख देने वाली हैं। ये भगवती स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी तथा गृह में गृहलक्ष्मी हैं।।७२-७३।।

तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा सा नृपेषु च।
या चाग्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे।।७४।।
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना।
सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि।।७५।।
यया च शक्तिमानात्मा यया वै शक्तिमज्जगत्।
यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम्।।७६।।
या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी।
स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा[1] च नारद।।७७।।

वे तपस्वी लोगों में तपस्या रूपी, राजाओं में राजलक्ष्मी रूपी, अग्नि में दाहिका शक्ति रूपी, सूर्य में प्रकाशरूपी, चन्द्रमा में शोभारूपी, पद्म में सौन्दर्यरूपी होकर विराजमान हैं। वे देवी परमात्मा कृष्ण में सर्वशक्तिस्वरूपा होकर स्थिता हैं। इन भगवती से ही आत्मतत्व तथा समस्त जगत् शक्तिमत्ता प्राप्त करता है। इनके अभाव में समस्त जगत् जीवन्मृत ही हो जायेगा। ये देवी संसाररूपी महावृक्ष की सनातन बीज हैं। हे नारद! ये ही स्थिति, बुद्धि तथा फलरूपा हैं।।७४-७७।।

क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः।
शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी।।७८।।

"ये देवी क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, धृति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति तथा कान्ति आदि रूप से विराजित रहती हैं"।।७८।।

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुपस्थितः। रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः।।७९।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभनाभिपद्मान्निःससार पुमान्मुने।।८०।।

वे देवी देवेश श्रीकृष्ण का स्तव करने के पश्चात् प्रभु के सामने ही स्थित हो गयीं। उस समय राधिकेश्वर भगवान् ने उनको रत्नसिंहासन पर आसीन कराया। हे मुनिप्रवर! तभी वहां सपत्नीक ब्रह्मदेव का आगमन हो गया। वे ब्रह्मा विष्णु के ही नाभिकमल से आविर्भूत थे।।७९-८०।।

कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः। चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।।८१।।

ब्रह्मदेव कमण्डलुधारी, श्रीमान्, तपस्वी, ज्ञानीगण में प्रधान, चतुर्मुख, चतुर्हस्त तथा ब्रह्मतेज से दीप्त थे। वे कृष्ण की स्तुति करने लगे।।८१।।

सुदती सुन्दरी श्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता।।८२।।

१. क. ०पा व्रतरू०।

रत्नसिंहासने रम्ये स्तुता वै सर्वकारणम्। उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा॥८३॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः।
वामार्धाङ्गो महादेवो दक्षिणो गोपिकापतिः॥८४॥

इन चतुर्मुख पद्मनाभ के साथ आविर्भूता सुन्दरी, जो शतचन्द्र के समान शोभा वाली, शुभ्र अग्निवत् चमकीले वस्त्र धारण करने वाली रत्नमय अलंकार से भूषिता थीं, वे रत्नसिंहासनासीन सर्वकारण कृष्ण का स्तव करके प्रसन्न अन्तःकरण से प्रभु के समक्ष अपने पति (ब्रह्मा) के साथ अवस्थित हो गईं। तभी कृष्ण ने स्वयं भागद्वय में विभक्त होकर दो रूप धारण किया। उनका वाम अंग महादेव तथा दाहिना अंग यथावत् श्रीकृष्ण ही रहा।।८२-८४।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः। त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः॥८५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः। भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः॥८६॥

महादेव वाला कृष्ण का देहभाग शुद्ध स्फटिक के समान कान्तिमान् था। वे शतकोटि सूर्यसमप्रभ थे। उनके हाथ में त्रिशूल तथा पट्टिश था। उन्होंने व्याघ्रचर्म धारण किया था। ये भगवान् हर कहलाये। इनका जटाभार तप्त स्वर्ण वर्ण का था। सर्वाङ्ग भस्मलिप्त था। मुख स्मित हास्ययुक्त था, मस्तक पर चन्द्र विराजित थे।।८५-८६।।

दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्वभूषणभूषितः। बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम्॥८७॥
प्रजपन्पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्॥८८॥
कारणं कारणानां च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्॥८९॥
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातो मृत्युञ्जयाभिधः। रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः॥९०॥

इति श्री० म० प्र० नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

ये प्रभु दिगम्बर, नीलकंठ थे। ये सर्पाभूषण भूषित थे। इन्होंने दाहिने हाथ में उत्तम सुसंस्कृत रत्नमाला धारण किया था। ये पंचमुख से ब्रह्मज्योतिर्मय सत्यरूप सनातन परमात्मा ईश्वर कृष्ण के निरन्तर जप में तल्लीन थे। कृष्ण प्रभु सर्वकारण समूह के भी कारण, सभी मंगल के मंगल, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-भय-शोक इत्यादि का हरण करने में समर्थ हैं। ये सभी मंगलों के भी मंगल, मृत्यु-जरा-व्याधि-शोक-भयहारी, मृत्यु के भी मृत्युरूप श्रीकृष्ण की स्तुति करने के पश्चात् स्वयं भी मृत्युंजय कहे गये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से मृत्युंजय देव उनके समक्ष मनोहर रत्नसिंहासन पर आसीन हो गये।।८७-९०।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

विश्वनिर्णय कथन

श्रीनारायण उवाच

अथाण्डं तज्जलेऽतिष्ठद्यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततः स्वकाले सहसा द्विधारूपो बभूव सः॥१॥
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः। क्षणं रोरूयमाणश्च स शिशुः पीडितः क्षुधा॥२॥
पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः। नैकब्रह्माण्डनाथो[1] यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत्॥३॥

श्री नारायण कहते हैं—वह अंड ब्रह्मा के आयुकाल पर्यन्त जल में पड़ा था। तदनन्तर कालक्रम से वह भागद्वय में विभक्त हो गया। इस डिम्ब में से शतकोटि सूर्यसमप्रभ एक शिशु क्षुधापीड़ित रूप में स्तनपान की इच्छा पूर्ण न होने के कारण अत्यन्त उच्च स्वर से रुदन करने लगा। वह शिशु पिता-माता से त्यक्त होने के कारण जल में ही निराश्रित निवास करने लगा। जो ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, वे ही अनाथ के समान पड़े थे। तब उन्होंने ऊर्ध्व की ओर देखा॥१-३॥

स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो[2] महाविराट्।
परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाऽप्यसौ॥४॥
तेजसां षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः।
आचारोऽसंख्यविश्वानां महाविष्णुः[3] सुरेश्वरः॥५॥
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।
अद्यापि तेषां संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः॥६॥
यथाऽस्ति संख्या रजसां विश्वानां न कदाचन।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते॥७॥
प्रतिविश्वेषु सन्त्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्॥८॥

वे स्थूल से भी स्थूलतम थे। उनका नाम पड़ा महाविराट्। परमाणु जैसे सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर होता है, वैसे ही विराट् पुरुष भी स्थूल से भी स्थूल हैं। वे परमात्मा कृष्ण के तेज के सोलहवें भाग १/१६ से उत्पन्न हैं। वे असंख्य विश्व के आधार एवं महाविष्णु हैं। उनके प्रत्येक रोमकूप में विश्व विराजित है। कृष्ण भी आज तक उनकी संख्या गणना नहीं कर पाये। यद्यपि रजःकण की संख्या गणना हो जाये

---

१ ब्रह्माण्डनाथनाथ इति वा पाठः।

२ 'यो हि' इति वा पाठः।

३. क. ०ष्णुश्च प्राकृतः।

कि वे संसार में कितने हैं, तथापि इन विश्वों की संख्या गणना कर सकना संभव नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्मा-विष्णु-शिव कितने हैं, इनकी भी कोई संख्या नहीं है। प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा-विष्णु-शिव की स्थिति है। पाताल से ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड का परिमाण है।।४-८।।

तत ऊर्ध्वे च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद्बहिरेव सः। स च सत्यस्वरूपश्च शश्वन्नारायणो यथा।।९।।

ब्रह्माण्ड से ऊर्ध्व में वैकुण्ठ है, जो ब्रह्माण्ड से पृथक् है। वह भी नारायण की तरह ही सतत् सत्यस्वरूप है।।९।।

तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात्।
नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम्।।१०।।
[1]सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता। एकोनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यवनान्विता।।११।।
ऊर्ध्वं सप्त सुवर्लोका ब्रह्मलोकसमन्विताः।
पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्डमेव च।।१२।।
ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परः।
स्वर्लोकस्तु ततः पश्चान्महर्लोकस्ततो जनः।।१३।।
ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः। ततः परो ब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः।।१४।।

वैकुण्ठ से ५० करोड़ योजन ऊर्ध्व में गोलोक है, जो कृष्ण की ही तरह नित्य तथा सत्यस्वरूप है। यह पृथिवी सप्तद्वीपा, सप्तसागर समन्विता, ७ द्वीपों, सप्त सागर, ४९ उपद्वीपों तथा असंख्य वनों से व्याप्त है। पृथिवी से ऊर्ध्व में ब्रह्मलोक तथा सात स्वर्ग हैं। नीचे सात पाताल हैं। इतने को मिला कर एक ब्रह्माण्ड है। धरा के ऊपर भूर्लोक, उससे ऊपर भुवर्लोक, उससे ऊपर स्वर्लोक, उससे ऊपर महर्लोक, उससे ऊर्ध्व में जनलोक, उससे ऊर्ध्व में तपोलोक, उसके ऊर्ध्व में सत्यलोक, उसके ऊर्ध्व में तप्त स्वर्णवर्ण वाला ब्रह्मलोक है।।१०-१४।।

एवं सर्वं कृत्रिमं तद्बाह्याभ्यन्तर एव च। तद्विनाशे[2] विनाशश्च सर्वेषामेव नारद।।१५।।
जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसङ्घमनित्यकम्। नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ सत्यौ शश्वदकृत्रिमौ।।१६।।
लोमकूपे च ब्रह्माण्डं प्रत्येकं तस्य निश्चितम्।
एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा।।१७।।
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक।।१८।।
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः।
भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽधो नागाश्च चराचराः।।१९।।

१. क. ०पमयी पृ०।
२. क. नाशश्च नाशाय स०।

हे नारद! यह सब लोक कृत्रिम है। पृथिवी का नाश होते ही ये सब नष्ट हो जायेगा। यह विश्व समूह पानी के बुलबुले के समान अनित्य है, तथापि गोलोक एवं वैकुण्ठ ही नित्य एवं अकृत्रिम है। हे वत्स नारद! विराट् के प्रत्येक रोमकूप में एक-एक ब्रह्माण्ड विराजमान है। अन्य की तो बात ही क्या, स्वयं श्रीकृष्ण भी इनकी गणना में समर्थ नहीं हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उस ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा करोड़ों देवता, दिशापति, दिक्पालगण, नक्षत्र तथा ग्रहादि सर्वदा विराजमान रहते हैं। धरती पर चार वर्ण हैं। इसके नीचे चराचर वर्ग तथा नागलोक है।।१५-१९।।

अथ कालेन स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः।
डिम्भान्तरं च शून्यं च न द्वितीयं कथञ्चन॥२०॥
चिन्तामवाप[1] क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः।
ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम्॥२१॥

इसके पश्चात् उस विराट् ने बारम्बार ऊर्ध्व में देखा, तथापि उस डिम्ब के अन्दर कुछ नहीं था। वहां कोई दूसरा था ही नहीं। एकमात्र वह विराट् ही था। तब क्षुधाग्रस्त वह बालक (विराट्) पुनः-पुनः चिन्तातुर होकर रुदन करने लगा। तत्पश्चात् उसने ज्ञान होने पर भगवान् कृष्ण का ध्यान किया।।२०-२१।।

ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम्॥२२॥
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम्। जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम्॥२३॥

तभी उस शिशु ने वहां सनातन ब्रह्मज्योतिः का दर्शन प्राप्त किया, जिसमें द्विभुज, पीतवस्त्रधारी, नवजलधर के समान श्याम वर्ण, मुस्कानयुक्त, मुरली हाथों में लिये, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले अपने पिता ईश्वर को देखा। इनको देख कर वह सन्तुष्ट होकर हंसने लगा।।२२-२३।।

वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम्। मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासाविवर्जितः॥२४॥
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि।
निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो वरः रोगमृत्युजराशोकपीडादिपरिवर्जितः॥२५॥

तब वरों के ईश्वर कृष्ण ने सन्तुष्ट होकर उस शिशु को समयोचित वर देते हुए कहा-"तुम मेरे समान ज्ञानयुक्त तथा क्षुधा-पिपासा से रहित होकर ब्रह्माण्ड के लयकाल पर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डों के आश्रय बन जाओ। तुम रोग-मृत्यु-जरा-शोक-पीड़ा आदि से रहित रहोगे।।२४-२५।।

इत्युक्त्वा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रं षडक्षरम्। त्रिः कृत्वा प्रजजापाऽऽदौ वेदागमपरं वरम्।२६॥
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। वह्निजायान्तमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम्॥२७॥
मन्त्रं दत्त्वा तदाऽऽहारं कल्पयामास वै प्रभुः।
श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते॥२८॥

१. क. ०प शुष्कोष्ठो रु०।

यह कह कर भगवान् ने उनके दाहिने कान में वेदों में तथा श्रेष्ठ आगमों में वर्णित षडक्षर मन्त्र का तीन बार उच्चारण किया। इसके आरंभ में 'ऊ' कार है। मध्य में चतुर्थ्यन्त 'कृष्ण' नामक अक्षरद्वय हैं। अन्त में सभी विघ्नों का हरण करने वाला (वह्निजाया) स्वाहा है। इसका मन्त्रोद्धार है 'ॐ कृष्णाय स्वाहा'। यह सर्व विघ्ननाशक मन्त्र है। हे ब्रह्मपुत्र! तदनन्तर मन्त्रदान के उपरान्त श्रीकृष्णदेव ने उस शिशु के लिये आहार का भी प्रबन्ध किया। वह श्रवण करो।।२६-२८।।

प्रतिविश्वेषु नैवेद्यं दद्याद्वै वैष्णवो जनः।
षोडशांशं विषयिणी विष्णोः पञ्चदशास्य वै॥२९॥
निर्गुणस्याऽऽत्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च।
नैवेद्येन च कृष्णस्य नहि किञ्चित्प्रयोजनम्॥३०॥
यद्ददाति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः।
स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीदृष्ट्या पुनर्भवेत्॥३१॥

प्रत्येक विश्व में वैष्णवगण उपयुक्त वस्तु नियमानुरूप विष्णु को प्रदान करते हैं, तथापि निर्गुण परिपूर्णतम परमात्मा कृष्ण को किसी वस्तु का प्रयोजन ही नहीं है। अन्य देवता को मनुष्य जो भी वस्तु भक्षणार्थ प्रदान करते हैं, वे उसका भक्षण करते हैं, तथापि भगवती लक्ष्मी की दृष्टि पड़ते ही वह सभी भक्षित वस्तु यथावत् हो जाती है।।२९-३१।।

तं च मन्त्रं वरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः। वर अन्यः क इष्टस्ते तं मे ब्रूहि ददामि ते॥३२॥

विष्णु ने कृपा पूर्वक इस विराट् पुरुष (शिशु) को मन्त्र तथा वर देकर पुनः उससे कहा कि "और कौन-सा वर चाहते हो? उसे कहो। मैं तत्काल प्रदान करूंगा"।।३२।।

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच महाविराट्।
अदन्तो बालकस्तत्र वचनं समयोचितम्॥३३॥

कृष्ण का वचन सुनकर उस अजातशत्रु दन्तहीन बालक महाविराट् ने उनसे समयोचित वाक्य कहा-।।३३।।

महाविराड्वाच

वरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला। संततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा॥३४॥
त्वद्भक्तियुक्तो यो लोके जीवन्मुक्तः स संततम्।
त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः॥३५॥

महाविराट् ने कहा-हे भगवन्! क्षणकाल हो अथवा दीर्घकाल हो, जब तक मेरी आयु रहे, तब तक मैं आपके चरणों की निश्चला भक्ति करता रहूं। यह मेरी प्रार्थना है। इस जगत् में जो भी आपके भक्त हैं, वे ही सर्वदा जीवन्मुक्त हैं। जो व्यक्ति आपकी भक्ति के रस से वंचित है, वह नराधम मूर्ख है तथा जीते जी मृत ही है।।३४-३५।।

किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन[1] यजनेन च। व्रतेनैवोपवासेन [2]पुण्य तीर्थनिषेवया॥३६॥
कृष्णभक्तिविहीनस्य पुंसः स्याज्जीवनं वृथा।
येनाऽऽत्मना जीवितश्च तमेव नहि मन्यते॥३७॥
यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स्याच्छक्तिसंयुतः।
पश्चाद्यान्ति गते तस्मिन्न स्वतन्त्राश्च शक्तयः॥३८॥

ऐसे मनुष्य को जप, तप, यज्ञ-यजन, व्रत, उपवास, पुण्यतीर्थ सेवा से क्या मिलेगा? कृष्णभक्ति रहित मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। वह जिस आत्मरूप ईश्वर के कारण जीवित है, उसे ही नहीं मानता। वह उन परमात्मा की अवमानना करता है। आत्मा जब तक देह में अवस्थान करता है, तब तक ही वह व्यक्ति शक्तिसम्पन्न रहता है। जब आत्मा देह से अन्तर्हित् हो जाता है, तब समस्त शक्तियां आत्मा के पीछे चली जाती हैं। अतः शक्तियां आत्मा से स्वतन्त्र नहीं हैं।।३६-३८।।

स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः।
स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः॥३९॥

"हे महाभाग! आप इन सबके आत्मरूप परमात्मा हैं। आप प्रकृति से अलग हैं। आप स्वेच्छामय हैं"।।३९।।

इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद।
उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम्॥४०॥

हे नारद! यह कहकर वह बालक (महाविराट्) मौन हो गये। तब भगवान् कृष्ण कानों को सुखकर लगने वाले वाक्यों से कहने लगे-४०।।

श्रीकृष्ण उवाच

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव।
असंख्यब्रह्मणां पाते पातस्ते न भविष्यति॥४१॥
अंशेन प्रतिविध्यण्डे त्वं च पुत्र विराड् भव।
त्वन्नाभिपद्मे ब्रह्मा च विश्वस्त्रष्टा भविष्यति॥४२॥
ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव तु। शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै॥४३॥
कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः।
पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति॥४४॥

श्रीकृष्ण कहते हैं-तुम मेरे समान चिरकाल तक स्थिरता पूर्वक अवस्थान करो। असंख्य ब्रह्माण्डों का विनाश हो जाने पर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा। हे पुत्र! तुम अंशरूपेण विराट्रूप धारण

१. क. ०न पूज०।
२. क. पुण्येन तीर्थसे०।

करके प्रत्येक ब्रह्माण्ड में विराजमान हो जाओ। तुम्हारे नाभिकमल से विश्वस्रष्टा ब्रह्मा उत्पन्न होंगे। उन ब्रह्मा के ललाट से सृष्टि संचारार्थ शिवांश से उत्पन्न एकादश रुद्रों की उत्पत्ति होगी। इन रुद्रों में से एक कालाग्नि रुद्र नामक विश्वसंहारक होंगे। भोगासक्त विष्णु अपने क्षुद्र अंश रूप से प्रति विश्व में अवतीर्ण होकर रक्षाकर्त्ता होंगे।।४१-४४।।

मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे।
ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम्।।४५।।
मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम्।
यामि लोकं[1] तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत।।४६।।

"तुम मेरे वर के प्रभाव से मेरे प्रति निरन्तर भक्तिसम्पन्न होकर ध्यानयोग से तुम मुझे नित्य कमनीय रूपयुक्त निश्चय देख सकोगे। तुम मेरे वक्ष पर स्थित अपनी जननी का कमनीय रूप देख सकोगे। हे वत्स! मैं अब अपने स्थान में जाता हूं। तुम सुख पूर्वक निवास करो।" यह कहने के उपरान्त कृष्ण अन्तर्हित् हो गये।।४५-४६।।

गत्वा[2] च नाकं ब्रह्माणं शङ्करं स उवाच ह।
स्त्रष्टारं स्त्रष्टुमीशं[3] च संहर्तारं च तत्क्षणम्।।४७।।
सृष्टिं स्त्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव।
महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधेः शृणु।।४८।।
गच्छ वत्स महादेव ब्रह्ममालोद्भवो भव। अंशेन च महाभाग स्वयं च रुचिरं तपः।।४९।।
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत।
जगाम नत्वा तं ब्रह्मा शिवश्च शिवदायकः।।५०।।
महाविराड्लोमकूपे ब्रह्माण्डे गोलके जले।
स बभूव विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम्।।५१।।

उन्होंने स्वर्ग में जाकर सृजनकर्त्ता ब्रह्मा तथा संहारक शंकर से कहा-"हे ब्रह्मा! वत्स! आप महाविराट् के रोमकूपों में छोटे-छोटे विश्वों की सृष्टि करो। आप विराट् की नाभि से उत्पन्न हो जायें।" तदनन्तर उन्होंने रुद्र से कहा-"हे वत्स, महादेव! आप अंशरूपेण ब्रह्मा के ललाट से संहारार्थ आविर्भूत हो जायें। आप तत्पश्चात् चिरकाल तपःश्चरण करें।" हे ब्रह्मपुत्र नारद! जगन्नाथ प्रभु यह कहकर मौन हो गये। उस समय मंगलप्रद ब्रह्मा तथा शिव ने प्रभु को प्रणाम किया तथा ब्रह्माण्ड के समान गोलाकार जलराशि में स्थित उन महाविराट् के रोमकूप में उन्होंने प्रवेश किया। अब वे

१. क. लोके ति०।
२. क. ०त्वा स्वलोकं०।
३. क. मीशश्च सं०।

महाविराट् पुरुष अपने अंश से क्षुद्र विराट् होकर स्थित हो गये। इस समय भी वे वहां विद्यमान हैं।।४७-५१।।

श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके।
ईषद्धासः प्रसन्नास्यो विश्वरूपी जनार्दनः।।५२।।
तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः। संभूय पद्मदण्डं च बभ्राम युगलक्षकम्।।५३।।
नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः।
नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पितामहः।।५४।।

वे श्यामवर्ण, युवा, पीतवस्त्रधारी, सस्मित, प्रसन्नवदन, विश्वरूपी, जनार्दन जलशय्या में सुप्त हो गये। उनके नाभिकमल में ब्रह्मा स्वयं आविर्भूत हो गये। स्वयम्भु कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने इस पद्म के मृणाल में एक लाख युग परिभ्रमण करके भी उस नाभिकमल के मृणालदण्ड के अन्तिम छोर तक नहीं जा सके! तब पितामह ब्रह्मा नाभिपद्म के सम्बन्ध में कुछ चिन्तातुर हो उठे।।५२-५४।।

स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्। ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा।।५५।।
शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते। यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तं च तत्परमीश्वरम्।।५६।।
श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम्।
तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः।।५७।।

इसके पश्चात् वे पुनः अपने स्थान पर आकर कृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करने लगे। वे क्षणकाल ध्यान करके ही दिव्य नेत्र पाकर उसके द्वारा वे क्षुद्र विराट् का दर्शन पा सके। वे ब्रह्माण्डगोलकव्यापी जलशय्या पर शयनरत थे। उनके प्रत्येक रोमकूप में एक-एक ब्रह्माण्ड था। तदनन्तर इन्होंने वहां उन महाविराट् का तथा उनके भी स्वामी महाप्रभु कृष्ण का दर्शन किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण की स्तुति किया और उन महाप्रभु से वर पाकर सृजन कार्य प्रारम्भ किया।।५५-५७।।

बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः।
ततो रुद्राः कपालाच्च शिवस्यैकादश स्मृताः।।५८।।
बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः। चतुर्भुजश्च भगवाञ्श्वेतद्वीपनिवासकृत्।।५९।।
क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज सः।
स्वर्गं मृत्युं च पातालं त्रिलोकं सचराचरम्।।६०।।
एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च। प्रतिविश्वं क्षुद्रविराड्ब्रह्मविष्णुशिवादयः।।६१।।
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्तनं शुभम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।६२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदनारायणसंवादे विश्वब्रह्माण्डवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

इसके पश्चात् ब्रह्मा से सनकादि मानसपुत्रों ने जन्म लिया था। इसके अनन्तर ब्रह्मा के ललाट से शिवांश रूप ११ रुद्र उत्पन्न हो गये। इन क्षुद्ररूप विराट् के दक्षिणांग से विष्णु प्रकट हो गये जो चतुर्भुज हैं। वे श्वेतद्वीप में रहने लगे। इन क्षुद्र विराट् की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा द्वारा स्वर्ग-मृत्युलोक-पाताल, चराचर त्रैलोक्य का सृजन किया गया। इन महाविराट् के प्रत्येक रोमकूप में एक-एक विश्व हैं। इनमें प्रत्येक में पृथक्तः क्षुद्र विराट् तथा पृथक्-पृथक् ब्रह्मा-विष्णु-शिव भी स्थित रहते हैं। हे वत्स नारद! मैंने इस प्रकार सुख तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला कृष्ण के गुणों का वर्णन कह दिया। अब क्या श्रवण करने की इच्छा है?।।५८-६२।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वती की पूजाविधि-ध्यान-कवचादि वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं सर्वमपूर्वं च त्वत्प्रसादात्सुधोपमम्। अधुना प्रकृतीनां च व्यासं वर्णय भोः प्रभो।।१।।

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता।
केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता मुने।।२।।
कवचं स्तोत्रकं ध्यानं प्रभावं चरितं शुभम्।
काभिः काभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—आपकी कृपा से मैंने अपूर्व अमृतस्वरूप समस्त वृत्तान्त श्रवण किया। अब प्रकृतिगण की पूजापद्धति का वर्णन करिये। हे प्रभो! नारायण! किसने किसकी पूजा किया था? किसने किसका स्तव किया था? वह सभी कवच, स्तव, मन्त्र, उसका प्रभाव तथा पवित्र चरित्र तो विशेष रूप से कहिये। किसने किसे वर दिया था, यह सब विशेष रूप से कहिये।।१-३।।

नारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता।।४।।

आसां[1] पूजा प्रभावश्च प्रसिद्धः परमाद्भुतः। सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम्।।५।।

---

१. ख. आसीत्पूज्या प्रसिद्धा च प्रभावः प०।

प्रकृत्यंशाः कलायाश्च तासां च चरितं शुभम्।
सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानं निशामय॥६॥

श्री नारायण कहते हैं–गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री–ये सृष्टिकार्य हेतु पंच प्रकृति हैं। इनकी पूजा प्रसिद्ध है। इनका प्रभाव अत्यन्त अद्भुत तथा सर्व मंगल कारणभूत है। इनका चरित्र सुधा के समान है, जो प्रकृति की कला से उत्पन्न हैं, उनका चरित्र शुभप्रद है। इनका प्रभाव भी अत्यन्त अद्भुत् है। हे ब्रह्मन्! जो कुछ मैं तुमसे कह रहा हूं, उसे सावधानी से सुनो।।४-६।।

वाणी वसुंधरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका।
तुलसी मानसी निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा॥७॥
तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च॥८॥
संक्षेपमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम्। जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम्॥९॥
दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत्।
तच्च पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्क्रमतः शृणु॥१०॥

वाणी (देवी सरस्वती), वसुन्धरा पृथिवी, गंगा, देवी षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा नामक देवीगण तेज-रूप में तथा गुण में मेरी तरह हैं। इनका कानों को मधुर लगने वाला पुण्यमय चरित तथा जीवों का कर्मविपाक भी मैं संक्षेप में कहता हूं। दुर्गा तथा राधा का चरित तो विस्तृत एवं अतीव महत् है, उसे बाद में कहूंगा। अभी क्रमशः जो कहता हूं, वही सुनो।।७-१०।।

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता।
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः॥११॥
आविर्भूता यदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः।
इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी॥१२॥
स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम्। तामुवाच हितं सत्यं परिणामसुखावहम्॥१३॥

प्रथमतः सरस्वती की पूजा कृष्ण ने प्रवर्त्तित किया था। हे मुनिप्रवर! इस पूजा के प्रभाव से मूर्ख भी पण्डित हो जाता है। ये भगवती कृष्णपत्नी के मुख से आविर्भूता हैं। आविर्भूत होकर कामरूपा देवी काम के वश में होकर कृष्ण के पास आईं। कृष्ण उनके इस भाव को जान गये। तब कृष्ण ने इन जगन्माता देवी से परिणाम में सुखप्रद तथा हितजनक सत्यवाक्य कहा-।।११-१३।।

श्रीकृष्ण उवाच

भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम्। युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम्॥१४॥
कामदं कामिनीनां च तासां तं कामपूरकम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलान्यक्कृतमन्मथम्॥१५॥

कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि।
त्वत्तो बलवती राधा न ते भद्रं भविष्यति॥१६॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे साध्वी! तुम मेरे अंशस्वरूप चतुर्भुज नारायण का वरण पतिरूपेण करो। वे युवा, अति रूपवान्, सर्वगुणसम्पन्न तथा मेरे ही समान हैं। वे कामिनियों को काम प्रदान करने वाले हैं। वे उनकी कामेच्छा को पूर्ण करते हैं। वे करोड़ों कामदेव के समान लावण्ययुक्त हैं। वे अपने लावण्य द्वारा तथा लीला द्वारा कामदेव को भी पराभूत करने वाले हैं। हे कान्ते! तुम मुझे पति बनाकर यहां नित्य रहना तो चाहती हो, तथापि मेरे पास तुमसे अधिक बलवती राधा जो है। इससे यहां तुम्हारे किसी मंगल के होने की आशा नहीं है॥१४-१६॥

यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः।
कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः॥१७॥
सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां राधितुमक्षमः।
तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च॥१८॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः।
प्राणतोऽपि प्रियः कुत्र केषां वाऽस्ति च कश्चन॥१९॥

हे सरस्वती! यदि कोई किसी की तुलना में अधिक बली है, वह उससे अन्य लोगों की रक्षा कर सकता है, तथापि जो व्यक्ति स्वयं समर्थ नहीं है, न ही बल है, वह अन्य की रक्षा कैसे करेगा? प्रभुता रहित व्यक्ति किस प्रकार अन्य पर शासन कर सकेगा? मैं तो सबका ईश्वर होने के कारण सब पर शासन कर सकता हूं, तथापि किसी भी प्रकार मैं राधा पर शासन नहीं कर सकता। इसकी क्षमता मुझमें नहीं है। राधा तो तेज, रूप, गुणादि सर्वविषय में मेरे समान है। वह मेरे प्राणों की अधिष्ठातृ देवी है। अतः कौन व्यक्ति अपने प्राणों का त्याग कर सकता है? क्योंकि प्राणों से प्रिय कोई भी नहीं होता॥१७-१९॥

त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति।
पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम्॥२०॥

हे भद्रे! तुम वैकुण्ठ जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम उन ईश्वर का वरण करके उनके साथ चिरकाल तक सुख-सम्भोग से रहो। लोभ-मोह-काम-क्रोध-मान-हिंसादि से रहित लक्ष्मी रूप तथा गुण में तुम्हारे समान हैं। उनके साथ तुम निरन्तर प्रेम पूर्वक समय व्यतीत करो॥२०॥

विवर्जिता लोभमोहकामकोपेन हिंसया।
तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च॥२१॥
तया सार्धं तव प्रीत्या सुखं कालः प्रयास्यति।
गौरवं चापि तत्तुल्यं करिष्यति पतिर्द्वयोः॥२२॥

प्रतिविश्वेषु ते पूजां महतीं ते मुदाऽन्विताः।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि॥२३॥
मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः।
सन्तश्च योगिनः सिद्धाः नागगन्धर्वकिंनराः॥२४॥
मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे यथाविधि।
भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचारांश्च षोडश॥२५॥

पति विष्णु तुम दोनों के साथ समान गौरव का व्यवहार करेंगे। हे सुन्दरी! मेरे वर के प्रभाव से प्रत्येक विश्व में माघमासीय शुक्ला पञ्चमी तिथि के दिन तथा विद्यारंभ में मानवगण, मनुगण, देव, मुनिगण, मुमुक्षुगण, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व तथा किन्नरगण मेरे वर के प्रभाव से प्रलयकाल तक कल्प-कल्प में भक्तियुक्त होकर तुम्हारी पूजा षोडशोपचार से करेंगे।।२१-२५।।

काण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च।
जितेन्द्रियाः संयुताश्च पुस्तकेषु घटेऽपि च॥२६॥
कृत्वा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम्।
कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे॥२७॥
पठिष्यन्ति[१] च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते।
इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः॥२८॥

जितेन्द्रिय संयमी लोग घट तथा पुस्तक में काण्वशाखोक्त विधि से तुम्हारा ध्यान तथा पूजन करेंगे। अर्थात् वे घट अथवा पुस्तक में तुम्हारा आवाहन करके पूजनादि सम्पन्न करेंगे। वे स्वर्णमय गुटिका (ताबीज) बना कर उसकी गन्ध तथा चन्दन से अर्चना करके दाहिने हाथ पर तुम्हारा वह कवच पहनेंगे। हे पूजनीये! पण्डितगण पूजाकाल में तुम्हारा स्तवपाठ भी करेंगे। यह कहने के पश्चात् भगवान् ने सर्वपूजित भगवती की पूजा किया।।२६-२८।।

ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः॥२९॥
सर्वे देवाश्च मनवो नृपा वा मानवादयः। बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती॥३०॥

इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव ने भी उनकी पूजा किया। तदनन्तर इसी प्रकार अनन्तदेव, धर्म, मुनिगण, सनकादि ब्रह्मपुत्रगण, देवगण, मनुगण, राजाओं तथा मनुष्यों ने भी देवीपूजन किया। इस प्रकार से नित्यरूपा सरस्वती सर्वलोक पूज्य हो गयीं।।२९-३०।।

नारद उवाच

पूजाविधानं स्तवनं ध्यानं कवचमौप्सितम्।
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं वा चन्दनादिकम्॥३१॥

१. क॰ भविष्य॰।

वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम। वर्धते सांप्रतं शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम्॥३२॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे वेदज्ञश्रेष्ठ! उनकी पूजाविधि, स्तव, ध्यान, कवच, ईप्सित वस्तु, पूजा में विहित निवेदनीय द्रव्यादि-पुष्प तथा चन्दनादि क्या हो, यह कहिये। यह सब सुनने में सुखकर लग रहा है। इस सम्बन्ध में मुझे भी अधिक कुतूहल है। आप विशेषतया कहिये।।३१-३२।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम्।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम्॥३३॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च।
पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्र स्यात्संयतः शुचिः॥३४॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः।
संपूज्य[1] देवषट्कं च नैवेद्यादिभिरेव च॥३५॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
संपूज्य संयतोऽग्रे च ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत्॥३६॥

श्री नारायण कहते हैं–हे नारद! मैं जगन्माता सरस्वती की पूजाविधि काण्वशाखोक्त पद्धति के आधार पर कहता हूं। श्रवण करो। माघमासीय शुक्ला पंचमी पर तथा विद्यारंभ के पूर्वदिन संयमित होकर शुद्ध अन्तःकरण व्यक्ति स्नान, नित्यक्रिया समापन करके भक्तिभाव से घट स्थापना करे। उसमें प्रथमतः निवेदन (अर्पण) करने योग्य उपयुक्त वस्तुओं से गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा–इन छह देवगण की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् अभीष्ट देवता (सरस्वती) की पूजा करे।।३३-३६।।

ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे बुधः।
ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारैस्तां पूजयेद्व्रती॥३७॥

पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम्। वक्ष्यामि सांप्रतं किञ्चिद्यथाधीतं यथागमम्॥३८॥
नवनीतं दधिं क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकान्। इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु॥३९॥

स्वस्तिकं शर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम्।
अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम्॥४०॥

घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यैर्व्यञ्जनैस्तथा। यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम्॥४१॥

पिष्टकं स्वतिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च।
परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम्॥४२॥

नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम्। पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम्॥४३॥

---

१. क. ०ज्य संयतोऽभीष्टं नै०।

कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम्।
सुगन्धि शुक्लपुष्पं च गन्धाढ्यं शुक्लचन्दनम्॥४४॥
नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुमनोहरम्।
माल्यं च शुक्लपुष्पाणां मुक्ताहीरादिभूषणम्॥४५॥

जो ध्यान कहता हूं, उस ध्यान द्वारा देवी का पूजन १६ उपचारों से करना होगा। वेद में पूजा हेतु जो-जो उपयुक्त नैवेद्य कहे गये हैं तथा मैंने वेद में जो-जो अध्ययन किया है, सम्प्रति वही कहता हूं। नवनीत, दधि, क्षीर, लावा, तिल के लड्डु, शुक्लवर्ण गन्ना, उसका रस, पका गुड़, मधु, स्वस्तिक, शर्करा, श्वेत धान का अक्षत चावल, बिना उबाले गये धान का चिउड़ा, श्वेत लड्डू, घृत-सेंधा नमक युक्त व्यंजन, हविष्यान्न, जौ-गेहूं के आटे का घृतयुक्त पिष्टक, पक्व केले का पिष्टक, घृतयुक्त पक्व अन्न, अमृत जैसे मिष्ठान्न, नारियल, नारियल का जल, बकुल का फल (मौलसरी का फल), केशर, मूली, अदरख, पका केला, मनोहर बिल्वफल, बेर, ऋतुफल जो पके तथा स्वादिष्ट हों, सुगन्धित शुक्लवर्ण पुष्प, श्वेत चन्दन, श्वेत वर्ण के नये वस्त्र, मनोहर शंख, श्वेत पुष्प की माला, मुक्ता तथा हीरे के आभूषण ये सभी निवेदित करे।।३७-४५।।

यद्दृष्टं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्तं श्रुतिसुन्दरम्। तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम्॥४६॥

हे महाभाग नारद! वेद में प्रशंसित श्रुति-सुखावह (सुनने में सुखदायक) भ्रम भंजन करने की कारणरूपा सरस्वती देवी का जो ध्यान वर्णित है, उसे सुनो।।४६।।

सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहरम्। [1]कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम्॥४७॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहरम्। रत्नसारेन्द्रखचितवरभूषणभूषिताम्॥४८॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः॥४९॥

एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः।
संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि॥५०॥

सरस्वती शुक्लवर्णा, हास्ययुक्त मनोहारिणी हैं। वे करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा के समान प्रभा सम्पन्ना हैं। वे अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण करने वाली, हंसती हुई अत्यन्त मनोहारिणी लग रही हैं। वे उत्तम रत्नों से बने श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषिता हैं। ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवता सतत् उनकी पूजा करते हैं। मुनिगण, मनुगण तथा मनुष्यगण उनका निरन्तर स्वत करते हैं। मैं उनकी वन्दना भक्तिभाव से करता हूं।" विद्वान् व्यक्ति इस प्रकार से ध्यान करके मूलमन्त्र पढ़ते सभी द्रव्य क्रमशः इनको प्रदान करें। तब स्तव पाठोपरान्त कवच धारण करके भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करें।।४७-५०।।

येषां स्यादिष्टदेवीयं तेषां नित्यं शुभं मुने। विद्यारम्भे च सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने॥५१॥

---

१. क. सूर्य०।

सर्वोपयुक्तमूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः। येषां यदुपदेशो वा तेषां तन्मूलमेव च।
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च॥५२॥
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा। लक्ष्मीमायादिकं चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः॥५३॥

हे मुनिवर! सरस्वती जिनकी इष्टदेवी हैं, वे इस प्रकार उनकी पूजा नित्य करें। अन्य लोग इनकी पूजा विद्यारंभ के दिन तथा माघमासीय शुक्ला पंचमी के दिन अवश्य करें। सभी लोगों हेतु व्यवहार में उपयुक्त वैदिक षडक्षर मूलमन्त्र कहा गया है। गुरु जिसे जो मन्त्र उपदेश करें, वही इनका मूलमन्त्र है। श्रीं ह्रीं कहकर सरस्वती शब्द को चतुर्थ्यन्त करके अन्त में स्वाहा लगाये। मन्त्रोद्धार होगा "श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा"। लक्ष्मी तथा माया आदि (देवी नामों को) इसी प्रकार से चतुर्थ्यन्त करके स्वाहा का योग करे। प्रारम्भ में लक्ष्मीबीज (श्रीं) तथा मायाबीज (ह्रीं) लगाने के कारण यह मन्त्र कल्पवृक्ष हो जाता है।।५१-५३।।

पुरा नारायणश्चेमं वाल्मिकाय कृपानिधिः। प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते॥५४॥

पूर्वकाल में कृपानिधान नारायण ने इस पुण्यक्षेत्र में भारतभूमिस्थ गंगातट पर वाल्मीकि को यह मन्त्र प्रदान किया था।।५४।।

भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि। चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा॥५५॥
भृगवे च ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे। आस्तीकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसंन्निधौ।
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते॥५६॥
शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने। सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च॥५७॥
शेषः पाणिनये चैव भरद्वाजाय धीमते। ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि॥५८॥
चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।
यदि स्यात्सिद्धमन्त्रो हि बृहस्पतिसमो भवेत्॥५९॥

यही मन्त्र भृगु ने पुष्कर तीर्थ में (सूर्यग्रहण में) अमावस्या तिथि पर शुक्र को प्रदान किया था। मरीचिपुत्र कश्यप ऋषि ने पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण पर यही मन्त्र बृहस्पति को दिया था। ब्रह्मा ने सन्तुष्ट होकर बदरिकाश्रम में यह मन्त्र भृगु को प्रदान किया था। जरत्कारु मुनि ने क्षीरसागर तट पर यही मन्त्र आस्तीक मुनि को प्रदान किया था। विभाण्डक मुनि ने ऋष्यशृंग मुनि को मेरु पर्वत शिखर पर यही मन्त्रोपदेश दिया था। हे मुनिप्रवर! प्रभु शिव ने यही मन्त्र ऋषि कणाद एवं गौतम को प्रदान किया था। सूर्यदेव ने यही मन्त्र याज्ञवल्क्य तथा कात्यायन को प्रदान किया। बलि की सभा में पाताल में अनन्त ने यह मंत्र प्राप्त करके इसे पाणिनि, विद्वान् भरद्वाज तथा शाकटायन को दिया था। चार लाख जप से यह सिद्ध होता है। सिद्ध होने पर व्यक्ति बृहस्पति के समान हो जाता है।।५५-५९।।

कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं विधिना पुरा। विश्वश्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने॥६०॥

हे विप्र! इसी विश्व में सर्वप्रधान तथा विश्वविजयी जिस कवच को गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मा

ने भृगु मुनि को प्रदान किया था, उस कवच का प्रसंग श्रवण करो। हे विप्रेन्द्र! गन्धमादन पर भृगु ने ब्रह्मा से कहा था कि–॥६०॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद। सर्वज्ञ सर्वजनक [1]सर्वपूजकपूजित॥६१॥
सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो। अयातयाममन्त्राणां समूहो यत्र संयुतः॥६२॥

ऋषि भृगु कहते हैं–हे ब्रह्मन्! आप वेदज्ञश्रेष्ठ तथा ब्रह्मज्ञान सम्पन्न हैं। आप सर्वज्ञ, सर्वजनक (सबके पिता) सर्वपूजित हैं। हे प्रभो! मुझसे सर्वपूज्य, विश्वविजयी, मन्त्रसमूहयुक्त सरस्वती कवच विशेष रूप से कहिये। तत्काल फलप्रद यह विश्वजय नामक कवच कहने की कृपा करें।॥६१-६२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्।
श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्॥६३॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले॥६४॥
अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्॥६५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मान्बुद्धिमांश्च[2] बृहस्पतिः।
यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः॥६६॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे वत्स भृगु! सर्वकामनाप्रद, श्रुतिसार, श्रवण में सुखकर, श्रुति में वर्णित, श्रुतियों द्वारा पूजित कवच कह रहा हूं। इसका श्रवण करो। गोलोकधामस्थ वृन्दावन में रासमण्डल के अन्तर्गत् रासेश्वर प्रभु ने मुझसे यह कवच कहा था। यह अति गुप्त, कल्पवृक्ष के समान, अश्रुत तथा अद्भुत मन्त्रसमूह युक्त है। हे ब्रह्मन्! यह कवच धारण करके तथा पाठ करके बृहस्पति बुद्धिशाली कहलाये। इसे धारण करके शुक्र मुनि दैत्यों द्वारा पूजित हो गये।॥६३-६६॥

पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः।
स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः॥६७॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः।
ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्॥६८॥
धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च।
चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥६९॥
शातातपश्च संवर्तो वशिष्ठश्च पराशरः।
यद्धृत्वा पठनाद्ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः॥७०॥

१. क. सर्वेश सर्वपू.।
२. क. यच्छ्रुत्वा भ.।

मुनिप्रवर वाल्मीकि इसी कवच को पढ़ कर तथा धारण करके वाग्मी (वक्ता) तथा कवीन्द्र हो गये। इसे धारण करने से स्वायंभुव मनुदेव भी सर्वपूजित हो गये। कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष, कात्यायन प्रभृति मुनिगण ने यह कवच धारण किया तथा पूजित हो गये। इन्होंने ग्रन्थ का प्रणयन भी किया। इसी कवच को धारण करने से कृष्णद्वैपायन व्यास ने वेदों का विभाग किया तथा अखिल पुराणों का प्रणयन भी लीलाक्रमेण कर दिया। शातातप, संवर्त्त, वसिष्ठ, पराशर, याज्ञवल्क्य प्रभृति ऋषियों ने यह कवच धारण करके तथा इसका पाठ करके ग्रन्थरचना किया था।।६७-७०।।

ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चाऽऽस्तीको देवलस्तथा।
जैगीषव्योऽथ जाबालिर्यद्धृत्वा सर्वपूजितः।।७१।।

कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेष प्रजापतिः। स्वयं बृहतिश्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः।।७२।।
सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थेऽपि च साधने। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः।।७३।।

ऋष्यशृंग, भरद्वाज, शतानीक, देवल, जैगीषव्य, जाबालि इस कवच को धारण करके सर्वपूज्य हो गये। हे विप्रेन्द्र! इस कवच के ऋषि प्रजापति स्वयं हैं। इसका छन्द है बृहती। इसके देवता हैं प्रभु रासेश्वर। सर्वतत्वज्ञानार्थ समस्त अभिलषित विषयों के साधनार्थ, सभी प्रकार की कविता के प्रणयनार्थ इस मन्त्र का प्रयोग (विनियोग) कहा गया।।७१-७३।।

ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः।
श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु।।७४।।
ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोतं पातु निरन्तरम्।
ॐ श्री ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु।।७५।।
ॐ ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु।
ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चौष्ठं सदाऽवतु।।७६।।

कवच–'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' मेरे शिर की सदा रक्षा करें। 'श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा' मेरे भाल की रक्षा (भाल = ललाट) करें। 'ॐ सरस्वत्यै स्वाहा' मेरे कानों की रक्षा करें। 'ॐ श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा' मेरे नेत्रद्वय की रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा' सब ओर से मेरी नासिका की रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृ देव्यै स्वाहा' मेरे ओष्ठ की रक्षा करें।।७४-७६।।

ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तीः सदाऽवतु।
ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु।।७७।।
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धं मे श्रीं सदाऽवतु।
श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु।।७८।।

'ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा' यह मेरी दन्तपंक्ति की सदा रक्षा करें। 'ऐं' एकाक्षर मन्त्र सदा मेरे कण्ठ की रक्षा करें। 'ॐ श्रीं ह्रीं' यह मन्त्रात्मक देवता सदा मेरी ग्रीवा की रक्षा करें। 'श्रीं स्वाहा' यह

मन्त्रस्वरूप मेरे कन्धों की सदा रक्षा करें। 'ॐ श्रीं विद्याधिष्ठात्रि देव्यै स्वाहा' सर्वदा मेरे वक्ष की रक्षा करें।।७७-७८।।

ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्।
ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदाऽवतु॥७९॥
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु। ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥८०॥
ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु॥८१॥
ॐ ऐं श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु॥८२॥
ॐ ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदाऽवतु।
कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥८३॥
ॐ सदम्बिकायै स्वाहा वायव्यै मां सदाऽवतु।
ॐ गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥८४॥

'ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा' यह मेरे नाभि की रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा' यह मन्त्र सर्वकाल में मेरे पृष्ठदेश की रक्षा करें। 'ॐ सर्ववर्णात्मिकायै स्वाहा' यह सर्वदा मेरे पदद्वय की रक्षा करे। 'ॐ वागाधिष्ठातृ देव्यै स्वाहा' यह सर्वदा मेरे समस्त अंग-प्रत्यंग की रक्षा करें। 'ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा' मन्त्र सर्वदा पूर्व में मेरी रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा' ये मेरी अग्निकोण की ओर रक्षा करें। 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा' यह मन्त्रराज सदा मेरी रक्षा दक्षिण दिक् में करें। 'ॐ ह्रीं श्रीं स्वाहा' यह तीन अक्षर वाला मन्त्र नैर्ऋत् कोण में मेरी रक्षा करे। 'ॐ कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा' यह सदा पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें। 'ॐ सदाम्बिकायै स्वाहा' यह मन्त्र सर्वदा वायुकोण में मेरी रक्षा करें। 'ॐ गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा' सदा उत्तर दिक् में मेरी रक्षा करें।।७९-८४।।

ॐ सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यो सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु॥८५॥
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु।
ॐ ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥८६॥

'ॐ सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा' ये देवी सदा ईशानकोण में मेरी रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा' ये सदा ऊर्ध्व में मेरी रक्षा करें। 'ॐ ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा' ये सदा अधः में मेरी रक्षा करें। 'ॐ ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा' ये देवी सदा सर्वत्र मेरी रक्षा करें।।८५-८६।।

इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्॥८७॥

पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने।
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥८८॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः॥८९॥

हे विप्र! यह मैंने ब्रह्मस्वरूप 'विश्वजय' नाम वाला समस्त मन्त्रात्मक कवच तुमको प्रदान कर दिया। यह ब्रह्मस्वरूप कवच पूर्व में गन्धमादन पर्वत पर धर्म के मुख से मैंने श्रवण किया था। मैंने इसे केवल स्नेह के कारण तुमसे कहा। इसे किसी से भी मैंने नहीं कहा है। धीमान् मनुष्य पहले नियमतः गुरुदेव की चन्दन तथा वस्त्रालंकार से पूजा करें। तदनन्तर भूमि पर दण्डवत् होकर उनको प्रणाम करें। तत्पश्चात् यह कवच कण्ठ में धारण कर लेना चाहिए।।८७-८९।।

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्॥९०॥

महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचस्य प्रभावतः[१]॥९१॥
इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने।
स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं वै वन्दनं तथा॥९२॥

इति श्री ब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदनारायणसंवादे सरस्वतीकवचं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

यह कवच ५ लाख जप से सिद्ध हो जाता है। जो इसे सिद्ध करता है, वह तो साक्षात् बृहस्पति तुल्य हो जाता है। वह महावक्ता, कवीन्द्र एवं त्रैलोक्यविजयी होकर इस कवच के प्रभाव से सब पर जयी हो जाता है। हे मुनिवर! मैंने यह काण्वशाखोक्त कवच कह दिया। इसकी पूजा विधि, स्तोत्र, ध्यान, वन्दना, सब कुछ तुमको मैंने बतला दिया।।९०-९२।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य कृत सरस्वती स्तव

नारायण उवाच

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम्। महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा॥१॥

१. क. प्रदानतः।

गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह। तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं च पुण्यदम्॥२॥
संप्राप्य तपसा सूर्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे। तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च पुनः पुनः॥३॥
सूर्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः। उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे॥४॥

तमित्युक्त्वा दीननाथो ह्यन्तर्धानं जगाम सः।
मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकंधरः॥५॥

श्री नारायण कहते हैं—अब वाग्देवी का सर्वकामनाप्रद स्तवन सुनो। इससे सर्वप्रथम महामुनि याज्ञवल्क्य ने वाग्देवी की स्तुति किया था। गुरुशाप के कारण याज्ञवल्क्य की विद्या नष्ट हो गई थी। उस समय वे मुनि बहुत दुःखी होकर सूर्य के पुण्यदायक कोणार्क क्षेत्र पहुंचे। वहां उन्होंने विशेष तपःश्चरण द्वारा सूर्यदर्शन प्राप्त किया। वे सूर्यदेव का दर्शन पाते ही उनका स्तव करते हुए शोकाभिभूत होकर पुनः-पुनः रोने लगे। यह देख कर सूर्य द्रवित हो गये तथा उन्होंने मुनि पर कृपा करके उनको वेद-वेदांग का उपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् सूर्य ने याज्ञवल्क्य से कहा—"तुम स्मृतिलाभार्थ भक्ति के साथ सरस्वती (वाग्देवी) का स्तव करो।" सूर्यदेव यह कहकर अन्तर्हित् हो गये। इसके पश्चात् मुनि ने स्नान किया तथा नतशिर होकर सरस्वती का स्तव करने लगे॥१-५॥

याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्। गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम्॥६॥

ज्ञानं देहि स्मृतिं देहि विद्यां विद्याधिदेवते।
प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिं शिष्यप्रबोधिकाम्॥७॥

याज्ञवल्क्य कहते हैं—हे जगन्माता! मैं गुरु के शाप के कारण तेजोहीन, स्मरणशक्ति रहित तथा विद्याहीन होकर नितान्त दुःखसागर में गिर गया। इस दास के प्रति कृपाकटाक्षपात करिये। हे विद्या की अधिष्ठातृ देवी! आप मुझे ज्ञानदान, स्मृति शक्ति-विद्यादान करिये तथा मुझे प्रतिष्ठा, कवित्व शक्ति, शिष्य को प्रबोधित करने की शक्ति दीजिये!॥६-७॥

ग्रन्थनिर्मितिशक्तिं च सच्छिष्यं सुप्रतिष्ठितम्।
प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम्॥८॥

लुप्तां सर्वां [1]दैववशान्नवं कुरु पुनः पुनः। यथाऽङ्कुरं जनयति भगवान्योगमायया॥९॥

आप कृपा पूर्वक ग्रन्थ लिखने की शक्ति, उत्तम शिष्यलाभ, सत् सभा में प्रतिष्ठा-प्रतिभा तथा उत्तम विचारक्षमता मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देख कर प्रदान करिये, जो दैव दुर्विपाक से लुप्त हो गया है। हे माता! कृपा करके वे सब शक्तियां पुनः मुझे प्रदान करिये। यह सब पुनः मुझे नवीनता की स्थिति को उसी प्रकार प्रदान करें, जैसे श्री भगवान् योगमाया से अंकुरोत्पन्न करते हैं॥८-९॥

१. क. ०वदोषात्रवी भूतं पुनः कुरु।

ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतिरूपा सनातनी।
सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः॥१०॥
यया विना जगत्सर्वं शश्वज्जीवन्मृतं सदा।
ज्ञानाधिदेवी या तस्यै सरस्वत्यै नमो नमः॥११॥
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत्सदा। वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः॥१२॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभा। वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः॥१३॥

हे भगवती! आप ब्रह्मरूपा, परमा ज्योतिस्वरूपा, सनातनी, सभी विद्याओं की अधिदेवता हैं। हे वाणी! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूं! जिसके अभाव में समस्त जीवन्त जगत् जीवित रह कर भी मृतवत् है, मैं उन भगवती सरस्वती को प्रणाम करता हूं! जिनकी कृपा के अभाव में समस्त संसार वाक्‌शक्ति रहित तथा उन्मत्तवत् हो जायेगा, मैं उन वाणी की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती को प्रणाम करता हूं! जो शीतल चन्दन, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, कुमुद तथ श्वेत पद्म जैसी अंगप्रभा वाली हैं तथा सभी वर्णों की अधिष्ठातृ देवता हैं, उन अक्षर स्वरूपा सरस्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम!॥१०-१३॥

विसर्गबिन्दुमात्राणां यदधिष्ठानमेव च। इत्थं त्वं गीयसे सद्भिर्भारत्यै ते नमो नमः॥१४॥

विसर्ग, विन्दु, मात्रा में जिनका अधिष्ठान है, वे आप ही हैं। ऐसा कहकर सत् लोग आपकी महिमा का गायन करते हैं। ऐसी देवी भारती को मैं प्रणाम करता हूं!॥१४॥

यया विनाऽत्र संख्याकृत्संख्यां कर्तुं न शक्नुते।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥१५॥
व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता।
भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥१६॥

जिनका व्यवहार किये बिना संख्या गणना करने वाले वस्तु की संख्या तक नहीं गिन पाते, उन काल तथा संख्या स्वरूपा देवी को मैं करबद्ध प्रणाम करता हूं! जो ग्रन्थों की व्याख्यास्वरूपा तथा व्याख्या की अधिष्ठातृ देवता हैं, जो भ्रमसिद्धान्त स्वरूपा हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं!॥१५-१६॥

स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी।
प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः॥१७॥
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै। बभूव जडवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः॥१८॥
तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः।
उवाच स च तं स्तौहि वाणीमिति प्रजापते॥१९॥
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाऽऽज्ञया परमात्मनः।
चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्॥२०॥

जो स्मृतिशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्ति स्वरूपा, प्रतिभाकल्पना शक्ति हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं! एक समय सनत्कुमार ने ब्रह्मा से ज्ञान के सम्बन्ध में जिज्ञासा किया था, ब्रह्मा इस विषय में कोई सिद्धान्त स्थिर न करके जड़वत् हो गये। तभी भगवान् वहां आये तथा उन्होंने प्रजापति ब्रह्मा से कहा–"निरन्तर सरस्वती (वाग्देवी) का स्तव करिये।" ब्रह्मा ने परमात्मा कृष्ण के कथनानुसार वाणी का स्तव किया तथा उनकी कृपा से इस प्रश्न का उत्तर देने हेतु उत्तम सिद्धान्त भी ज्ञात कर लिया।।१७-२०।।

यदाऽप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा। बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः॥२१॥

तदा त्वां च स तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया।
ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्॥२२॥
व्यासः पुराणसूत्रं समपृच्छद्वाल्मिकिं यदा।
मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम्[1]॥२३॥

तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः। स प्राप निर्मलं ज्ञानं [2]प्रमादध्वंसकारणम्॥२४॥

एक समय देवी वसुन्धरा (धरती) ने अनन्त देव से ज्ञानविषयक कुछ जिज्ञासा किया था, तथापि अनन्तदेव वाक्शक्ति रहित की तरह उस विषय के सम्बन्ध में मन में कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सके। तब अनन्त ने व्याकुल होकर कश्यप की आज्ञा के अनुसार वाग्देवी का स्तव किया तथा उनकी कृपा से वसुन्धरा से भ्रमनिवारक निर्मल सिद्धान्त कह सके। जब व्यासदेव ने महर्षि वाल्मीकि से पुराणसूत्र की जिज्ञासा किया, तब मुनिवर वाल्मीकि क्षण भर मौन रह गये। उस समय उन्होंने जगदम्बिकारूपा आप सरस्वती का ही स्मरण किया था। आपकी ही महिमा से वे इस जिज्ञासा का उत्तर सिद्धान्त निश्चित करके दे सके! उनको प्रमादध्वंसक निर्मल ज्ञान मिला!।।२१-२४।।

पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकलोद्भवः।
त्वां सिषेवे च दध्यौ तं शतवर्षं च पुष्करे॥२५॥

तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह। तदा वेदविभागं च पुराणानि चकार ह॥२६॥

यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवा शिवम्।
क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यै ज्ञानं ददौ विभुः॥२७॥

कृष्ण की कला से उत्पन्न व्यासदेव ने (वाल्मीकि से) पुराण सूत्र का सिद्धान्त सुना तथा प्रमादनाशक निर्मल ज्ञानराशि उनको प्राप्त हो गई। उन्होंने १०० वर्ष तक पुष्कर तीर्थ में आप सरस्वती की सेवा तथा निरन्तर ध्यान किया। तदनन्तर व्यासदेव ने आपसे वर प्राप्त किया और वे कविश्रेष्ठ हो गये। उन्होंने वेदों का विभाग किया तथा पुराणों का प्रणयन भी किया। किसी समय शिवा ने शिव से

१. क. ०म्बिके।
२. क. प्रदध्यौ स च का०।

तत्वज्ञान सम्बन्धित जिज्ञासा किया था। तब विभु महादेव ने क्षणकाल तक आपका ही चिन्तन करके भगवती शिवा को तत्त्वज्ञान का उपदेश भी दिया था।।२५-२७।।

पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्।
दिव्यं वर्षसहस्त्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे॥२८॥

तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यं वर्षसहस्त्रकम्। उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम्॥२९॥

जब इन्द्र ने बृहस्पति से शब्दशास्त्र के सम्बन्ध में प्रश्न किया था, तब बृहस्पति उत्तर नहीं दे सके। उन्होंने १००० दिव्य वर्षों तक आपका ध्यान पुष्कर तीर्थ में करके आपसे वर प्राप्त किया था। तदनन्तर उन्होंने दिव्य १००० वर्ष तक देवराज को शब्दशास्त्र तथा उसका विशद् अर्थ पढ़ाया था।।२८-२९।।

अध्यापिताश्च यः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः।
ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरि॥३०॥
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः।
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः॥३१॥
जडीभूतः सहस्त्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः।
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः॥३२॥

हे सुरेश्वरी! जो मुनीश्वर लोग शिष्यों को नित्य अध्ययन कराते हैं तथा जो लोग अध्ययनरत हैं, वे सभी आपका चिन्तन करके अध्ययन एवं अध्यापन कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। हे देवी! आपका स्तव-पूजन मुनिगण, मानवगण, मनुवर्ग, दैत्येन्द्र कुल वाले, देववर्ग, ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि सभी करते हैं। सहस्त्रमुख (अनन्त), पंचमुख (शिव) तथा चतुर्मुख (ब्रह्मा) आदि जड़ीभूत होकर जिनका स्तव करते हैं, मैं मात्र एकमुखी मानव उनका स्तव कैसे कर सकूंगा?।।३०-३२।।

इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः॥३३॥

तदा ज्योतिः स्वरूपा सा तेनादृष्टाऽप्युवाच तम्।
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह॥३४॥

यह कहकर याज्ञवल्क्य ने अवनत मस्तक होकर देवी को प्रणाम किया तथा वे बारम्बार रोने लगे। तभी ज्योतिरूपा सरस्वती ने मुनि से अलक्षित रहते उनसे कहा—"तुम कविकुल में श्रेष्ठ हो जाओ।" यह कहकर सरस्वती वैकुण्ठ चली गईं।।३३-३४।।

महामूर्खश्च दुर्मेधा वर्षमेकं च यः पठेत्।
स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम्॥३५॥

इति श्रीब्र० महा० प्रकृति० नारदना० याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

यदि इस याज्ञवल्क्य कृत स्तोत्र का पाठ महामूर्ख तथा बुद्धि रहित भी एक वर्ष नित्य करेगा, वह निश्चित रूप से पण्डित-मेधावी-सुकवि हो जायेगा। इसमें तनिक सन्देह नहीं है।।३५।।

पञ्चम अध्याय समाप्त

❖❖❖

अथ षष्ठोऽध्यायः

सरस्वती, लक्ष्मी तथा गंगा के बीच परस्पर विवाद, शाप तथा परस्परतः नदीरूपत्व प्राप्त होना

नारायण उवाच

सरस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके। गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारते सरित्।।१।।
पुण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी।
पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने।।२।।

श्री नारायण कहते हैं—हे मुनिवर! वैकुण्ठधाम में सरस्वती का गंगा से कलह हो गया। ये सरस्वती नारायण के पास रहने वाली थीं। वे गंगा के शाप के कारण अपने कलारूप से भारत में नदीरूपा हो गयीं। हे मुनिप्रवर! ये पुण्यप्रदा, पुण्य को उत्पन्न करने वाली, पवित्र तीर्थरूपा हैं। पुण्यात्मा लोग निरन्तर इनकी पूजा करते हैं।।१-२।।

तपस्विनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी। कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी।।३।।
ज्ञाने सरस्वतीतोये गतं यैर्मानवैर्भुवि। तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि।।४।।
भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्रैव लीलया। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम्।।५।।

वे पुण्यात्माओं हेतु स्थितिरूपा हैं। वे तपस्वियों के लिये तपोरूपा हैं। ये ही मूर्त्तिमती तपस्या हैं। वे मनुष्यों द्वारा आचारित पापराशि का दहन करने वाली अद्वितीया अग्नि हैं। जो लोग सरस्वती तट पर ज्ञानतः प्राणत्याग करते हैं, वे चिरकाल पर्यन्त वैकुण्ठधाम में हरि की सभा में नित्य निवास करते हैं। इस भारत में पापी लोग इस सरस्वती जल में स्नान करके सर्वपातक समूह से मुक्तिलाभ करते हैं तथा चिरकाल तक विष्णुलोक में निवास करते हैं।।३-५।।

चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये।
ग्रहणे च व्यतीपातेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च।।६।।

अनुषङ्गेण यः स्नाति हेलया श्रद्धयाऽपि वा। सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि॥७॥

चतुर्दशी, पूर्णिमा, अक्षय तृतीया, दक्षिणायन, व्यतीपात योग में, ग्रहण तथा अन्य पुण्यकाल के दिन यदि कोई व्यक्ति अवहेलना से ही सही, किंवा सश्रद्धभाव से ही सही अथवा खेल-खेल में ही सही, सरस्वती जल में स्नान करता है, वह वैकुण्ठ में भगवान् के सारूप्य मोक्ष को प्राप्त करता है।।६-७।।

सरस्वतीमन्त्रकं च मासमेकं तु यो जपेत्। महामूर्खः कवीन्द्रश्च स भवेन्नात्र संशयः॥८॥
नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नात्वा मुण्डयेन्नरः। न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः॥९॥
इत्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्तनम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१०॥

जो मनुष्य एक मास पर्यन्त नित्य सरस्वती मन्त्र जपता है, वह महामूर्ख होने पर भी कविकुल चूड़ामणि होगा, इसमें कोई सन्देह न करे। जो व्यक्ति सरस्वती नदी के तट पर मुण्डन कराकर स्नान करता है, उसे पुनः गर्भयन्त्रणा सहन नहीं करना पड़ता। इस प्रकार मैंने सुखदान करने वाली मोक्ष की सारभूता भारती सरस्वती के किंचित् गुणों को कह दिया। अब क्या सुनने की कामना है?।।८-१०।।

सौतिरुवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः। पुनः पप्रच्छ संदेहच्छेदं शौनक सत्वरम्॥११॥

सौति कहते हैं—नारायण का यह वाक्य सुन कर मुनिसत्तम नारद ने अपना संदेह-भंजन करने हेतु प्रश्न किया।।११।।

नारद उवाच

कथं सरस्वतीदेवी गङ्गाशापेन भारते। कलया कलहेनैव समभूत्पुण्यदा सरित्॥१२॥
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम। कथामृतानां नो तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते॥१३॥
कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम्।
शान्तसत्त्वस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम्॥१४॥
तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम्। सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! देवी सरस्वती ने कलह के कारण, गंगा के शाप के कारण अपने सोलहवें अंश से पवित्रताप्रदा नदीरूप धारण कर लिया। तब वे अवतरित कैसे हो सकीं? यह सारभूत श्रवणयोग्य वचन सुनकर मेरा कुतूहल बढ़ता जा रहा है। यह अमृततुल्य कथा सुनने से मेरी तृप्ति ही नहीं हो रही है। श्रेयप्राप्ति से कौन तृप्त हो सकता है? शान्तस्वभावा, सत्वरूपा, पुण्यप्रदा, सर्वदात्री गंगा तो जगत्पूजिता हैं। उन्होंने परमपूज्या सरस्वती को शाप क्यों दिया? इन दोनों तेजस्विनी देवीगण के बीच सुनने में सुन्दर पुराणदुर्लभ कलह का क्या कारण था? यह सब मुझ पर कृपा करके कहिये।।१२-१५।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्। यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते॥१६॥

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि।
प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसंनिधौ॥१७॥
चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम्।
सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः॥१८॥

श्री नारायण कहते हैं–हे नारद! जिसके स्मरणमात्र से ढेरों पाप दूर हो जाते हैं, वह प्राचीन कथा कहता हूं। श्रवण करो। लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा–ये हरि की तीन पत्नियां हैं। ये प्रेमपाश में आबद्ध होकर नित्य हरि के पास रहती हैं। एक समय गंगा ने अभिलाषा करके (सकामा होकर) हंसते हुए पुनः-पुनः हरि को कटाक्षपूर्ण दृष्टि से कई बार देखा।।१६-१८।।

विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च मुदा क्षणम्।
क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती॥१९॥
बोधयामास तां पद्मा सत्त्वरूपा च सस्मिता।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह॥२०॥

इस समय श्रीहरि भी गंगा का मुख देख कर आनंदित होते कुछ हंसे। यह भाव देख कर देवी लक्ष्मी ने तो क्षमा कर दिया, तथापि यह सरस्वती के लिये असह्य हो उठा। तब सत्वरूपा सहास्यमुख वाली लक्ष्मी ने सरस्वती से विशेष रूप से प्रबोध वाक्य कहा, तथापि क्रोधपरवशा सरस्वती शान्त नहीं हो सकीं।।१९-२०।।

उवाच गङ्गाभर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना। कम्पिता कोपवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा॥२१॥

क्षणकाल में ही उनका मुख तथा नेत्र आरक्त हो उठा। शरीर एवं अधर कोप के आवेग से निरन्तर कम्पायमान हो उठे। उन्होंने क्रोधित होकर गंगा तथा स्वामी हरि से कहा–।।२१।।

सरस्वत्युवाच

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीः प्रति।
धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च॥२२॥
ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर।
कमलायां च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयि प्रभो॥२३॥

गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चापि सुसंमता। क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया॥२४॥

किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम्।
निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता॥२५॥

देवी सरस्वती कहती हैं–यदि स्वामी सतत् धार्मिक, श्रेष्ठ है, तब अपनी स्त्रियों के प्रति उसकी समत्वरूप बुद्धि होती है, तथापि यदि स्वामी दुष्ट है, तब उसकी बुद्धि समत्वमय न होकर विपरीत होती है। हे प्रभो! गदाधर! मुझे पता है कि आपका गंगा के प्रति अधिक प्रेम है। लक्ष्मी के प्रति भी वैसा ही प्रेम है। मेरे प्रति आपका प्रेम तनिक भी नहीं है। आपका प्रेम लक्ष्मी के प्रति अधिक है, तभी लक्ष्मी ने गंगा का यह भाव देख कर भी उसे क्षमा कर दिया। मैं नितान्त दुर्भगा हूं। मेरे जीवन का क्या प्रयोजन रह गया? जो नारी पति प्रेम से वंचित है, उसका जीवन धारण ही निष्फल है।।२२-२५।।

त्वां सर्वेशं सत्त्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः। ते मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्ति मतिं तव॥२६॥

जो मनीषी आपको देख कर सत्वरूप कहते हैं, वे नितान्त मूर्ख हैं, वेदधर्म तथा आपकी बुद्धिवृत्ति को जान ही नहीं पाते।।२६।।

सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम्।
मनसा तु समालोच्य स जगाम बहिः सभाम्॥२७॥

सरस्वती का यह क्रोध देख कर तथा उनका यह कथन सुनकर नारायण ने मन ही मन विचार किया तथा वे सभा से बाहर चले गये।।२७।।

गते नारायणे गङ्गामवोचन्निर्भयं रुषा। वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम्॥२८॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम्।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि॥२९॥
मानहानिं करिष्यामि तवाद्य हरिसंनिधौ।
किं करिष्यति ते कान्तो मम वै कान्तवल्लभे॥३०॥

नारायण देव के वहां से बहिर्गत् होते ही वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती अत्यन्त निर्भय हो गयीं। वे भी अब सुनने में कठोर वाक्यों से गंगा से कहने लगीं–हे निर्लज्ज! कामयुक्त! तुम स्वामी का गर्व क्यों करती हो? क्या तुम अपना पति सौभाग्य दिखलाना चाहती हो? आज मैं विष्णु के सामने तुम्हारी मानहानि करूंगी। तुम स्वयं को पति की अत्यन्त प्रिय मानती हो? अब मुझे यह देखना है कि हरि तुम्हारा क्या बचाव करते हैं?।।२८-३०।।

इत्येवमुक्त्वा गङ्गाया जिघृक्षं केशमुद्यताम्।
[1]वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती॥३१॥
शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती। वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः॥३२॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्नो वक्तुमर्हसि।
संतिष्ठसि सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित्॥३३॥

---

१. क. ०त्वा कारयामा०।

यह कहने के उपरान्त सरस्वती गंगा का केश पकड़ने लगीं, तथापि उस समय लक्ष्मी ने बीच में आकर उनको रोक दिया। तभी सरस्वती ने क्रोध पूर्वक लक्ष्मी को शाप दिया "तुमने ऐसा विपरीत भाव दिखलाया तथा किसी से कुछ बोले बिना तुम सभा में वृक्ष तथा नदी के समान निर्वाक् होकर अवस्थित हो, तब तुम निश्चय ही वृक्ष एवं नदी हो जाओगी। तुम निर्वाक् (वाणी रहित) रहोगी।।३१-३३।।

शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशाप चुकोप न।
तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च॥३४॥
अत्युद्धतां च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताननना।
उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां पद्मविलोचना॥३५॥

यह शाप सुनकर भी कमला (लक्ष्मी) ने क्रोध नहीं किया तथा प्रतिशाप भी नहीं दिया। वे सरस्वती का हाथ पकड़े वहीं अवस्थित हो गईं। पद्मलोचना गंगा ने सरस्वती का यह उग्रभाव देख कर कोप से फड़फड़ाते मुख से लक्ष्मी से कहा-।।३४-३५।।

गङ्गोवाच

त्वमृत्सृज महोग्रां तां पद्मे किं मे करिष्यति। वाग्दुष्टा वागधिष्ठात्री देवीयं कलहप्रिया॥३६॥
यावती योग्यताऽस्याश्च यावती शक्तिरेव वा।
तया करोतु वादं च मया सार्धं सुदुर्मुखा॥३७॥
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हतु। जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति॥३८॥

भगवती गंगा कहती हैं-हे लक्ष्मी! कमले! भद्रे! तुम इस उग्रस्वभावा सरस्वती के हाथों को छोड़ दो। यह वाणी की अधिष्ठात्री कलहप्रिया, दुष्ट वाक्य बोलने वाली देवी मेरा कुछ भी अहित नहीं कर सकती। इस दुर्बुद्धि की जितनी भी शक्ति तथा क्षमता है, यह मुझसे विवाद करे। यह आज अपनी तथा मेरी शक्ति को लोक में प्रकट करने की इच्छा कर रही है। हे सती कमले (लक्ष्मी)! आज सब लोग हम दोनों के प्रभाव तथा पराक्रम को जानें।।३६-३८।।

इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति।
सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वामशपद्रुषा॥३९॥
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः।
कलौ तेषां च पापांशं लभिष्यति न संशयः॥४०॥

यह कहकर देवी गंगा ने वाणी (सरस्वती) को शाप दिया-जिसने क्रोध में भर कर लक्ष्मी को शाप दिया है, वह स्वयं नदी रूप होकर मर्त्यलोक में पापीगण के समूह के निकट रहे तथा कलिकाल में उन पातकी लोगों के पापांश को भी स्वयं प्राप्त करे। इसमें कोई सन्देह नहीं होगा।।३९-४०।।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती। त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि॥४१॥

गंगा देवी का यह शाप सुनकर सरस्वती ने गंगा को यह प्रतिशाप प्रदान किया कि तुम भी नदीरूप होकर पृथिवी पर जाओ। तुमको भी वहां पापी लोगों का पापभार वहन करना होगा॥४१॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह। चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः॥४२॥
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि। बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम्॥४३॥

इसी अवसर पर वहां चतुर्भुज भगवान् नारायण अपने चतुर्भुज पार्षदों के साथ आ गये। उन्होंने सरस्वती की बांह पकड़ कर उनको अपने वक्षःस्थल से लगाया। तदनन्तर सर्वज्ञ नारायण ने उनको सभी पुरातन ज्ञान द्वारा प्रबोधित किया॥४२-४३॥

श्रुत्वां रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च।
उवाच दुःखितास्ताश्च वाक्यं सामयिकं विभुः॥४४॥

तभी उनके बीच हो रहे कलह तथा शाप के गूढ़ विषय को सुनकर सभी दुःखी हो गये। उस समय भगवान् विभु नारायण समयोचित बातें कहने लगे—४४॥

श्रीभगवानुवाच

लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे।
अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि॥४५॥
तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि। मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी॥४६॥
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः।
त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते॥४७॥
कलया च सरिद्भुत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने। भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव॥४८॥

श्री नारायण कहते हैं—हे शुभे! लक्ष्मी! तुम पृथिवी पर कलारूप से धर्मध्वज के गृह में जाकर वहां योनि से जन्म न लेने वाली (अयोनिसंभवा) कन्या के रूप में अवतीर्ण हो जाओ। दैवदुर्विपाक से उस धर्मध्वज राजा के घर में तुम वृक्षरूपा हो जाओगी। मेरे अंश से उत्पन्न शंखचूड़ असुर की पत्नी होने के पश्चात् तुम पुनः मेरी पत्नी हो जाओगी। भारत में तुम्हारा नाम त्रैलोक्य पावनी तुलसी के रूप में प्रसिद्ध होगा। हे वरानने लक्ष्मी! तुम सरस्वती के शाप प्रभाव से अपने अंश से नदीरूप धारण करके भारतभूमि जाओ तथा वहां पद्मावती नाम से अवतीर्ण हो जाओ॥४५-४८॥

गङ्गे यास्यसि चांशेन पश्चात्त्वं विश्वपावनी। भारतं भारतीशापात्पापदाहाय देहिनाम्॥४९॥
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुदुष्करात्। नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले॥५०॥

हे गंगे! तुम भी सरस्वती के शाप के कारण अंशरूपेण विश्वपावनी नदी होकर देहधारी लोगों की पापराशि भस्मसात् करने के लिये भारत में अवतीर्ण होगी। भगीरथ कठोर तपस्या के बल

से तुमको भूतल पर अवतीर्ण करेंगे। इसीलिये तुम्हारा पवित्र नाम भागीरथी धरती पर प्रसिद्ध हो जायेगा।।४९-५०।।

मदंशस्य समुद्रस्य जाया जाये ममाऽऽज्ञया।
मत्कलांशस्य भूपस्य शन्तनोश्च सुरेश्वरि॥५१॥

हे प्रिये सुरेश्वरी! तुम मेरी आज्ञा से पृथिवी पर जाकर मेरे अंशभूत समुद्र से मिलोगी तथा मेरे अंश के भी अंश से उत्पन्न शान्तनु नामक राजा की पत्नी होकर कुछ समय अवस्थित रहोगी।।५१।।

गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति।
कलहस्य फलं भुङ्क्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते॥५२॥
स्वयं च ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनी भव। गङ्गा यातु शिवस्थामत्र पद्मैव तिष्ठतु॥५३॥
शान्ता च क्रोधरहिता मद्भक्ता[1] मत्स्वरूपिणी।
महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी॥५४॥
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः। शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु योषितः॥५५॥
तिस्रो भार्यास्त्रयः शालास्त्रयो भृत्याश्च बान्धवाः।
ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मङ्गलप्रदाः॥५६॥

हे भारती सरस्वती! तुम सपत्नियों से कलह करने का परिणाम गंगा के शाप के कारण भोगो। तत्पश्चात् स्वयं ब्रह्मा के यहां जाकर उनकी पत्नी हो जाओ। हे लक्ष्मी! हे पद्मे! तुम यहीं रहो। वैकुण्ठ में ही निवास करो। तुम शान्त स्वभाव हो। तुम क्रोध रहित, मेरी भक्ति में तत्पर, सुशील तथा धार्मिक हो। समस्त जगत् में जो स्त्रियां तुम्हारे अंश से उत्पन्न होंगी, वे धार्मिक, पतिव्रता, शान्त स्वभावा तथा सुशीला होंगी। किसी भी गृहस्थ की तीन पत्नी होना वेदविरुद्ध है। इसी प्रकार तीन घर, तीन नौकर, तीन भाई सर्वदा अशुभ होते हैं।।५२-५६।।

स्त्री पुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान्।
निष्फलं जन्म वै तेषामशुभं च पदे पदे॥५७॥
मुखदुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया। अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम्॥५८॥
जलानां[2] च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च।
सततं सुलभा तत्र न तेषां तद्गृहेऽपि च॥५९॥
वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्त्रजन्तूनां संनिधौ सुखम्।
ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसंनिधौ ध्रुवम्॥६०॥

जिसके घर में स्त्री पुरुष के समान तथा पुरुष स्त्री के समान है, अर्थात् पुरुष स्त्री के वश में

१. क. ०क्ता सत्त्वरू०।
२. ख. जनानां च स्थलानां च पुराणां प्रा०।

है (तथा स्त्री ही सर्वाधिकार सम्पन्न स्वामीवत् है) उस पुरुष का जीवन निष्फल है। उसका प्रति पग पर अमंगल होता है। जिसकी पत्नी कटुभाषिणी, व्याभिचारिणी, कलहप्रिया है, उस पुरुष के लिये अच्छा है कि वन में रहे, क्योंकि उसका घर तो वन से भी भयंकर है। अरण्य में तो जल, निवास की जगह, फलादि सब मिल जाता है, लेकिन ऐसी दुष्ट वाणी वाली नारी से युक्त घर में कुछ भी नहीं मिलता। ऐसी दुःखप्रदा दुष्टा नारी के पास रहने से उत्तम है अग्नि में रहना अथवा हिंसक जन्तुगण के बीच में रहना। यह निश्चित है।।५७-६०।।

व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने।
दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते॥६१॥
पुंसश्च स्त्रीजितस्येह जीवितं निष्फलं ध्रुवम्।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥६२॥
स निन्दितोऽत्र सर्वत्र परत्र नरकं व्रजेत्।
यशः कीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृताा हि सः॥६३॥
बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसी स्थितिः।
एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन॥६४॥

हे सुमुखी! पुरुष रोगयन्त्रणा तथा विष की यन्त्रणा तो सह लेता है, तथापि दुष्टा नारी की वाक्ययन्त्रणा तो मृत्युजनित यन्त्रणा से भी भयानक है। जो पुरुष नारी से पराजित हो गया, उसका जीते रहना व्यर्थ है। यत्न से वह चाहे कोई कार्य क्यों न करे, उसे कोई फल नहीं मिलता! वह सर्वत्र निन्दाभाजन तथा परलोक में भी नरकगामी होता है। यश रहित एवं कीर्त्ति रहित व्यक्ति का जीवित रहना तो मरणतुल्य है। अनेक सौतों का एक स्थान पर रहना उचित नहीं है। लोग एक पत्नी रहने पर भी सुखी नहीं हो पाते, अतः अनेक पत्नी वाला कदापि सुखी नहीं होता। इसमें क्या सन्देह?।।६१-६४।।

गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति। अत्र तिष्ठतु मद्गेहे[1] सुशीला कमलालया॥६५॥
सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता। इह स्वर्गसुखं तस्य धर्ममोक्षौ परत्र च॥६६॥

पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचिः सुखी।
जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव यः॥६७॥

हे गंगे! तुम शिव सान्निध्य में जाओ। हे सरस्वती! ब्रह्मा के पास जाओ। लेकिन सुशीला लक्ष्मी मेरे ही पास रहेगी। जिसकी पत्नी उसके वश में है, सुशीला तथा पतिव्रता है, इहलोक में उसे स्वर्गीय सुखलाभ होता है। परलोक में उसे धर्म एवं मोक्ष मिलता है। जिसकी पत्नी पतिव्रता है, वह महात्मा

१. ख. मद्देहे।

सर्वदा मुक्त, पवित्र, सुखी है। जो व्यक्ति दुःशीला पत्नी का पति है, वह सदा अपवित्र, दुःखी होकर जीते जी मृतकवत् है।।६५-६७।।

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद। अत्युच्चै रुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम्।।६८।।
ताश्च सर्वाः समालोच्य क्रमेणोचुः सदीश्वरम्।
कम्पिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च।।६९।।

हे नारद! यह कहकर जगत्स्वामी विष्णु मौन हो गये। अब वे देवियां गंगा तथा सरस्वती परस्परतः एक-दूसरे को लिपटा कर रुदन करने लगीं। वे भविष्य के विषय में बातचीत करने लगीं। वे भय एवं शोक से कांपती हुई साश्रुनयन होकर नारायण से क्रमशः कहने लगीं-।।६८-६९।।

सरस्वत्युवाच

प्रायश्चित्तं देहि नाथ दुष्टायां जन्मशोधकम्।
सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुत्र जीवन्ति काः स्त्रियः।।७०।।
देहत्यागं करिष्यामि ध्रुवं योगेन भारते। अत्युच्यतो निपतनं प्राप्तुमर्हति निश्चितम्।।७१।।

भगवती सरस्वती कहती हैं-हे नाथ! मैं नितान्त दुष्टस्वभावा हूं। अतएव आप कृपया मुझे जन्म को शुद्ध करने वाला प्रायश्चित्त बतायें। संसार की ऐसी कौन स्त्री है, जो उत्तम स्वभाव युक्त पति द्वारा त्याज्य होकर जीवित रह सके? मैं भारत में योगावलम्बन द्वारा निश्चित रूप से देह त्याग कर दूंगी। जो अत्यन्त ऊंचाई पर चढ़ता है, उसका शीघ्र गिरना निश्चित ही है।।७०-७१।।

गङ्गोवाच

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते। देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ।।७२।।
निर्दोषकामिनीत्यागं कुरुते यो जनो भवे। स याति नरकं कल्पं किं ते सर्वेश्वरस्य वा।।७३।।

देवी गंगा कहती हैं-हे जगत्पति! मुझे किस अपराध के कारण आपने त्यागा है? मैं निश्चित रूप से देहत्याग करूंगी। इससे आप निरपराधिनी की हत्या के भागी होंगे। इस संसार में जो व्यक्ति निर्दोष स्त्री का त्याग करता है, वह कल्पान्त पर्यन्त नरकभोग करता है। यद्यपि आप सर्वेश्वर हैं, तथापि आपको भी फल तो भोगना ही होगा।।७२-७३।।

लक्ष्मीरुवाच

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव।
प्रसादं कुरु[1] चास्मभ्यं सदीशस्य क्षमा वरा।।७४।।
भारतं भारतीशापाद्यास्यामि कलया यदि।
कतिकालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम्।।७५।।

१. क. रु भार्याभ्यः स०।

दास्यन्ति पापिनः पापं मह्यं स्नानावगाहनात्।
केन तस्माद्विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम्॥७६॥

देवी लक्ष्मी कहती हैं–हे नाथ! आप सत्वरूप हैं। आपमें क्रोध उत्पन्न होना अत्यन्त आश्चर्य की बात है! आप पत्नियों के प्रति कृपा करिये, क्योंकि सत्स्वामी (पति) सदा पत्नी पर कृपा कर देते हैं। सरस्वती के शाप के कारण यदि मुझे भारत जाना ही है, तब वहां मैं कला रूप से अवतीर्ण तो हो जाऊंगी, तथापि मुझे वहां कितने दिन निवास करना पड़ेगा? कब मैं पुनः आपके चरणकमलों का दर्शन प्राप्त कर सकूंगी? पापी लोग मेरे जल में स्नान तथा डुबकी लगा कर अपनी पापराशि मुझे अर्पित तो कर देंगे। मैं उस विशाल पापराशि से कैसे मुक्त होकर आपके पास आ सकूंगी? कौन मुझे उन पापों से मुक्त करेगा?।।७४-७६।।

कलया तुलसीरूपा धर्मध्वजसुता सती।
भूत्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत॥७७॥
वृक्षरूपा भविष्यामि तदधिष्ठातृदेवता। मामुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे॥७८॥
गङ्गा सरस्वतीशापाद्यादि यास्यति भारतम्।
शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां वा लभिष्यति॥७९॥

हे अच्युत! मैं अपने अंश से तुलसीरूपा होकर तथा राजा धर्मध्वज की पुत्री होकर कब पुनः आपके चरणकमल का दर्शन पा सकूंगी? हे कृपालुदेव! मैं वृक्षरूप से अवतीर्ण होकर उसकी अधिष्ठातृ देवता हो जाऊंगी। परन्तु आप कब मेरा उद्धार करेंगे? यह कहिये। सरस्वती के शाप से गंगा भारत में अवतीर्ण होकर वह कब शाप रहित होकर पुनः आपको पा सकेंगी?।।७७-७९।।

गङ्गाशापेन सा वाणी यदि यास्यति भारतम्।
कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव॥८०॥
तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम्। गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च मद्वचः॥८१॥

यदि गंगा सरस्वती के शाप से भारत जाती हैं, तब शाप एवं पापराशि से मुक्त होकर कब आपके निकट आ सकेंगी? यदि गंगा के शाप से वाणीदेवी (सरस्वती) भारत में जाती हैं, तब वे कब पाप से मुक्त होकर आपके चरणों की प्राप्ति कर सकेंगी? हे नाथ! आपने सरस्वती को ब्रह्मा के पास तथा गंगा को शिव के पास जाने का आदेश तो दे दिया है, तथापि कृपा करके उनको क्षमा करिये। ऐसा मत कहिये कि वे दोनों ब्रह्मा तथा शिव के यहां जायें।।८०-८१।।

इत्युक्त्वा कमला कान्तपदं धृत्वा ननाम च।
स्वकेशैर्वेष्टयित्वा च रुरोद च पुनः पुनः॥८२॥
उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि। ईषद्धासः प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः॥८३॥

यह कहकर कमला ने अपने पति नारायण का चरण पकड़ कर प्रणाम किया तथा अपने

केशों को उनके चरणों में लिपटाकर वे पुनः-पुनः रुदन करने लगीं। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये कातर पद्मनाभ विष्णु ने लक्ष्मी को वक्ष से लगाया तथा प्रसन्नता पूर्वक तनिक हंसते हुए कहने लगे-८२-८३॥

नारायण उवाच

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि।
समतां च करिष्यामि शृणु तत्क्रममेव च॥८४॥
भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारतम्। अर्धांशा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥८५॥
भगीरथेन नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम्। पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥८६॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम्।
ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूता भविष्यति॥८७॥
कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते कमलोद्भवे। पद्मावती सरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी॥८८॥
कलौ पञ्चसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम्।
युष्माकं सरितां भूयो मद्गृहे चाऽऽगमिष्यथ॥८९॥
संपदां हेतुभूता च विपत्तिः[१] सर्वदेहिनाम्। विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्भवे॥९०॥
मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात्।
युष्माकं मोक्षणं पापात्पापिस्पर्शनहेतुकात्॥९१॥

श्री नारायण कहते हैं-हे सुरेश्वरी! तुम्हारे अनुरोध का पालन करते हुए मुझे यह देखना होगा कि मेरा वाक्य भी विफल न हो। अतः हम दोनों के कथन की समभाव से रक्षा हो, क्रमशः उसका प्रतिविधान करता हूं। श्रवण करो। सरस्वती अपने अंश से नदीरूप धारण करेंगी तथा उनका आधा अंश ब्रह्मा के पास जायेगा। वे पूर्ण अंश से मेरे यहां ही निवास करें। इसी प्रकार गंगा भी भगीरथ द्वारा लाई जाकर त्रिभुवन को पवित्र करने हेतु अंश रूप से भारत में अवतीर्ण हो जायें। वे पूर्णांश से मेरे पास रहें। वहां गंगा को चन्द्रशेखर शंकर का दुर्लभ शिर प्राप्त होगा। इससे उस शिर पर गिरते हुए वे पहले से पवित्र होने पर और अधिक पवित्र हो जायेंगी। हे कमले! तुम भी अपने कलांश के भी अंश से पद्मावती नदीरूपा होकर तुलसी वृक्षरूप धारण करके भारत जाओ। कलि का ५००० वर्ष व्यतीत होने पर तुम्हारा शाप समाप्त होगा तथा तुम मेरे गृह में पुनः वापस आओगी। हे पद्मे! जो कोई भी देहधारी है, तुमको पाने के लिये उसके उद्योग में उसकी विपत्तिग्रस्तता ही एकमात्र कारण है। यदि ऐसा नहीं होता, तब जगत् में विपदाग्रस्त व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य कौन धर्मपालन करता है? मेरे मन्त्रोपासक भक्त जब तुम्हारे जल में स्नान करेंगे तथा डुबकी लगायेंगे, तब उनके स्पर्श से तुम पातकियों के स्पर्श से उत्पन्न पापभार से मुक्त होती जाओगी।।८४-९१।।

१. क. ॰क्तिः कापि दे॰।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्त्यसंख्यानि सुन्दरि।
भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥९२॥
मन्त्रमन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ते भारते सति। पूतं कर्तुं भारतं च सुपवित्रां वसुंधराम्॥९३॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च।
तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम्॥९४॥
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः।
जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥९५॥

पृथिवी पर स्थित जो असंख्य तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तों के दर्शन तथा स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं। हे सती! मेरे मन्त्रोपासक मनोहर पवित्र भक्तवृन्दगण भारत को पवित्र करने हेतु भारत में यत्र-तत्र भ्रमण करते रहते हैं। मेरे भक्तगण जहां अवस्थान करते हैं तथा जहां-जहां अपने चरण धोते हैं, वह स्थान निश्चित रूप से पवित्र होकर महातीर्थ कहा जाता है। स्त्रीघाती, गोहत्यारे, कृतघ्न, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नी का हरण करने वाले व्यक्ति भी मेरे भक्त का दर्शन-स्पर्श करने से जीवन्मुक्त हो जाते हैं।।९२-९५।।

एकादशीविहीनश्च संध्याहीनोऽपि[१] नास्तिकः।
नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥९६॥
असिजीवी मषीजीवी धावकः शूद्रयाजकः।
वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥९७॥

एकादशी व्रत रहित, सन्ध्या वन्दन रहित, नास्तिक, मनुष्यों की हत्या करने वाले, सभी मेरे भक्त का दर्शन करके तथा उनका स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं। शस्त्र बना कर जीविका चलाने वाले, लेखन (हिसाब-किताब लिख कर, मुनीमी करके) से जीविका चलाने वाले, दूतकर्म से जीविका चलाने वाले, शूद्रों का यजन करने वाले, बैल जोतने वाले, यह सब कर्म करने वाले ब्राह्मणादि भी मेरे भक्तगण के दर्शन-स्पर्श से पावन हो जाते हैं।।९६-९७।।

विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः।
न्यासहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥९८॥
ऋणग्रस्तो वार्धुषिको जारजः पुंश्चलीपतिः।
पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥९९॥
शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः।
अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥१००॥

---

१. क. ०नो ऽप्यनाश्रमी।

विश्वासघाती, मित्रघाती, झूठी गवाही देने वाला, अमानत हड़प जाने वाला भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्श से पावन हो जाता है। ऋण से ग्रस्त, ब्याजखोर, वर्णसंकर, व्यभिचारिणी स्त्री का पति, उसका पुत्र भी मेरे भक्तों का दर्शन एवं स्पर्श करके शुद्धिलाभ करता है। शूद्रों का रसोईया, देवल (मंदिरों का पुजारी जो वहां की धनराशि से जीविका चलाता है), गांव-गांव में घूम कर यज्ञ कराने वाला, अदीक्षित व्यक्ति भी मेरे भक्तों का दर्शन-स्पर्श करके पवित्र हो जाता है।।९८-१००।।

अश्वत्थघातकश्चैव मद्भक्तानां च निन्दकः।
अनिवेदितभोजी च पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्।।१०१।।

पीपल का वृक्ष नष्ट करने वाला, मेरे भक्तों की निन्दा करने वाला, बिना निमन्त्रण भोजनार्थ पहुंच कर भोजन करने वाला भी मेरे भक्तगण के दर्शन-स्पर्श से शुद्धिलाभ करता है।।१०१।।

मातरं पितरं भार्यां तनयं सुताम्। गुरोः कुलं च भगिनीं वंशहीनं च बान्धवम्।।१०२।।
श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति नारद।
स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्।।१०३।।

हे नारद! माता-पिता, स्त्री, भाई, पुत्र, गुरु के कुल वालों, बहन, वंशहीन बांधव, सास-ससुर का जो सेवा-पालन नहीं करता, वह महापापी मेरे भक्तों का दर्शन-स्पर्श करके शुद्धिलाभ कर लेता है।।१०२-१०३।।

देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः। लाक्षालोहरसानां च विक्रेता[1] दुहितुस्तथा।।१०४।।
महापातकिनश्चैते शूद्राणां शवदाहकाः। भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्।।१०५।।

देवता के द्रव्य का हरण करने वाला, ब्राह्मणों के द्रव्य का हरण करने वाला, लाख-लोहा-रस तथा कन्या विक्रयकारी, शूद्रों का मृत शरीर जलाने वाला, ये सभी महापातकी भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं।।१०४-१०५।।

लक्ष्मीरुवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक। येषां संदर्शनस्पर्शात्सद्यःपूता नराधमाः।।१०६।।
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुताः। स्वप्रशंसारता धूर्ताः[2] शठा वै साधुनिन्दकाः।।१०७।।
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात्।
येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही।।१०८।।
येषां संदर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते।
सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः।।१०९।।

१. क. ०ता लवणस्य च।
२. क. ०ताः सगर्वाः सा०।

भगवती लक्ष्मीदेवी कहती हैं—हे भक्तों पर अनुग्रहकारी प्रभु! जिनके दर्शन-स्पर्श से हरिभक्ति विहीन, महा अन्धकार सम्पन्न, अपनी प्रशंसा स्वयं करने वाले, साधुनिन्दक, शठ, धूर्त्त, नराधम लोग सदा पवित्रता लाभ करते हैं, उन भक्तों का लक्षण क्या है? मुझसे विशेषतया कहिये। जिनके स्नान करने से सभी तीर्थ शुद्ध हो जाते हैं, जिनकी चरणरज तथा पादोदक से धरती पावन हो जाती है, जिनका दर्शन, स्पर्श तो देवगण को भी वांछित है, जिन वैष्णवों के साथ सत्संग से सबका परमलाभ होता है, ऐसे विष्णुभक्तों का लक्षण क्या है?।।१०६-१०९।।

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो॥११०॥

सभी जलयुक्त तीर्थ तथा मृत्तिका अथवा शिला के देवता दीर्घकाल में भी व्यक्ति को पावन नहीं कर पाते, तथापि विष्णुभक्ति परायण लोग व्यक्ति को क्षणकाल में पवित्र कर देते हैं।।११०।।

सौतिरुवाच

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः।
निगूढतत्त्वं कथितुमृषिश्रेष्ठोपचक्रमे॥१११॥

सौति कहते हैं—हे ऋषिसत्तम! लक्ष्मीपति विष्णु ने महालक्ष्मी का यह कथन सुन कर हंसते हुए लक्ष्मी द्वारा पूछे गये गूढ़ तत्व के सम्बन्ध में कहने लगे—१११।।

श्रीनारायण उवाच

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः।
पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भक्तिमुक्तिदम्॥११२॥
सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च।
त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय॥११३॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेद्वरः। वदन्ति वेदवेदाङ्गास्तं पवित्रं नरोत्तमम्॥११४॥

श्री नारायण कहते हैं—हे लक्ष्मी! श्रुति तथा पुराणों में गूढ़ पुण्यस्वरूप, पापनाशक, सुखप्रद, भक्तिप्रद तथा मुक्तिप्रद सारभूत गोपनीय तत्व जिसे दुष्ट से नहीं कहना चाहिए, वह भक्तों का लक्षण मैं तुमसे कहता हूं, क्योंकि तुम तो प्राणतुल्य हो। श्रवण करो। गुरुमुख से निर्गत विष्णुमन्त्र ने जिसके कानों में प्रवेश कर लिया, उसे ही वेद-वेदाङ्ग ने नरश्रेष्ठ कहा है।।११२-११४।।

पुरुषाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः।
स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिं प्राप्नोति तत्क्षणात्॥११५॥
यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जन्तुषु।
जीवन्मुक्तास्ते च पूता यान्ति काले हरेः पदम्॥११६॥

ऐसे व्यक्ति के कुल में जन्म लेने मात्र से उसकी १०० पूर्व पीढ़ी के पितृगण पवित्र हो जाते हैं तथा वे १०० पीढ़ी के लोग चाहे स्वर्ग में हों अथवा नरक में हों, वे तत्क्षण निर्वाण मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। उन पूर्वजों में से चाहे किसी भी योनि में क्यों न जन्मे हों, वे जीवन्मुक्त तथा पवित्र होकर कालक्रम से हरि के समीप जाते हैं।।११५-११६।।

मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः।
मद्गुणश्लाघनीयश्च मन्निविष्टश्च संततम्।।११७।।
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृतिरेव च।।११८।।
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने।।११९।।

जो मेरे प्रति भक्तियुक्त हैं, मेरी पूजा में निरत हैं, मेरी शुश्रूषा में तत्पर रहते हैं, मुझमें जो निविष्ट चित्त हैं, जो मेरा गुण श्रवण करते ही आनन्द में हो जाते हैं, पुलकित तथा गद्‌गद् हो जाते हैं, साश्रुनयन और आत्मविस्मृत हो जाते हैं, वे कभी भी सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति की कामना नहीं करते। उनको अमरत्व, ब्रह्मत्व पाने हेतु भी कामना नहीं रहती। वे केवल मेरी सेवा ही करते रहना चाहते हैं।।११७-११९।।

इन्द्रत्वं च मनुत्वं च देवत्वं च सुदुर्लभम्।
स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि नहि वाञ्छति।।१२०।।
ब्रह्माण्डानि[1] विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा।
कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति।।१२१।।
भ्रमन्ति भारते भक्ता लब्ध्वा जन्म सुदुर्लभम्।
तेऽपि यान्ति महीं पूतां कृत्वा तीर्थं ममाऽऽलयम्।।१२२।।
इत्येतत्कथितं सर्वं कुरु पद्मे यथोचितम्।
तदाज्ञाताश्च ताश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने।।१२३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सरस्वत्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

"वे दुर्लभ इन्द्रत्व, मनुत्व, अत्यन्त दुर्लभ देवत्व तथा स्वर्ग-राज्यादि की कामना स्वप्न में भी नहीं करते। ब्रह्मादि देवता तथा ब्रह्मत्व प्रभृति सभी नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्माण्ड का भी नाश हो जाता है, तथापि मेरी कल्याणप्रदा शक्तियुक्त मेरा भक्त कदापि नष्ट नहीं होता। मेरा भक्त मनुष्य भारत में जन्म लेकर भ्रमण करता है। तदनन्तर इस प्रकार धरती को सर्वत्र पवित्र करके वैकुण्ठधाम चला आता है।

१. क. ०ण्डादीनि न०।

हे कमला! मैंने सब कुछ तुमसे कह दिया। अब तुम जो उचित समझो, वही करो।" यह कहकर हरि सुख पूर्वक आसन पर बैठ गये।।१२०-१२३।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तमोऽध्यायः

काल, कलि तथा ईश्वर के गुणों का निरूपण

नारायण उवाच

पुण्यक्षेत्रे ह्याजगाम भारते सा सरस्वती। गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदम्।।१।।

भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया।
वागधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी च कीर्तिता।।२।।

श्रीनारायण कहते हैं—सरस्वती गंगा के शाप के कारण अंश रूप में पुण्यक्षेत्र भारतभूमि में अवतीर्ण हो गईं, तथापि वे अपने पूर्णांश से हरि के पास ही स्थित थीं। वे भारती सरस्वती भारत जाकर एवं ब्रह्मा की प्रिया होकर ब्राह्मी नाम से तथा वाक् की अधिदेवता होने के कारण वाणी कही गयीं।।१-२।।

सर्वं विश्वं परिव्याप्य स्त्रोतस्येव हि दृश्यते।
हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती।।३।।

सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपातिपावनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी।।४।।
पश्चाद्भगीरथानीता महीं भागीरथी शुभा। समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद।।५।।
तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः। वेगं सोढुमशक्तया भुवः प्रार्थनया विभुः।।६।।

भगवान् श्रीहरि तो विश्वव्यापी हैं, तथापि वे दीर्घकाल पर्यन्त जलस्त्रोत में शयनरत देखे गये थे। सरोवर अर्थात् सरस से सम्पर्कित होने के कारण वाणी देवी ही सरस्वती हो गयीं। ये अति पवित्र सरस्वती नदी तीर्थरूपा हो गयीं। वे पापरूपी ईन्धन को दग्ध करने वाली ज्वलन्त अग्निरूपा हैं। हे नारद! तदनन्तर गंगा के कलारूप से अवतीर्ण होने पर (तपस्या द्वारा) भगीरथ उनको धरती पर लाये। पृथिवी उनके वेग को धारण कर सकने में समर्थ नहीं थीं। उन्होंने शिव से प्रार्थना किया। तभी शिव ने अवतरित हो रही गंगा (भागीरथी) को शिर पर धारण कर लिया।।३-६।।

पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी। भारतं भारती शापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदम्।।७।।

ततोऽन्यया सा कलया चालभज्जन्म भारते।
धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च॥८॥
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्धरिशापतः। बभूव वृक्षरूपा सा कलया [1]विश्वपावनी॥९॥

लक्ष्मी देवी (पद्मा) सरस्वती के शाप के कारण अपने एक अंश से पद्मावती नदी रूप में अवतीर्ण हो गईं। तदनन्तर वे अपने अन्य अंश से राजा धर्मध्वज की पुत्रीरूपेण आविर्भूत हो गयीं। वे लक्ष्मी भारती के शाप तथा भगवान् हरि की आज्ञा से तुलसी वृक्षरूप भी हो गईं। यह भी उनका ही अंश है। यह वृक्ष विश्वव्यापी कहा गया।।७-९।।

कलौ पञ्चसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते। जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्॥१०॥

भगवती लक्ष्मी ने ५००० वर्ष तक भारत में निवास (कलियुग में) किया है। यह काल व्यतीत होने पर वे पुनः इन रूपों से रहित होकर श्रीहरि के स्थान पर लौट आयेंगी।।१०।।

यानि सर्वाणि तीर्थानि काशी वृन्दावनं विना।
यास्यन्ति सार्धं ताभिश्च हरेर्वैकुण्ठमाज्ञया॥११॥
शालग्रामो हरेर्मूर्तिर्जगन्नाथश्च भारतम्। कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम्॥१२॥

कलिकाल में काशी तथा वृन्दावन के अतिरिक्त समस्त तीर्थ हरि की आज्ञा से इन देवियों के साथ वैकुण्ठ चले आयेंगे (यह कलिकाल के ५००० वर्ष व्यतीत होने पर कहा गया है, जो सम्प्रति व्यतीत हो गया है)। इसी प्रकार जब कलिकाल के १०००० वर्ष व्यतीत हो जायेंगे तथा हरिमूर्त्ति रूप शालग्राम तथा जगन्नाथ (पुरी स्थित) भी भारत त्याग कर विष्णुलोक गमन करेंगे।।११-१२।।

वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च श्राद्धतर्पणम्।
वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च॥१३॥
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम्। वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च॥१४॥
सन्तश्च[2] सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः। व्रतं तपस्याऽनशनं ययुस्तैः सार्धमेव च॥१५॥
वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकापट्यसंयुताः।
तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यन्ति ततः परम्॥१६॥
एकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिताः। हरिप्रसङ्गविमुखा भविष्यन्ति ततः परम्॥१७॥
शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः।
चौराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम्॥१८॥
पुंसां भेदस्तथा स्त्रीणां विवाहो वादनिर्णयः।
स्वस्वामिभेदो वस्तूनां न भविष्यत्यतः परम्॥१९॥

१. क. ०स्वरूपिणी।
२. ख. सत्त्वं च।

सर्वे जनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे।
तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च॥२०॥

कलि का १०००० वर्ष व्यतीत होते ही समस्त वैष्णव, पुराण, शंख, श्राद्ध-तर्पण-वेदोक्त कर्म भी शालग्राम तथा जगन्नाथ के साथ वैकुण्ठ चले जायेंगे। हरिपूजा, हरिनाम, हरिनाम कीर्त्तन, वेद-वेदांग आदि शास्त्र हरिगुणगान-कीर्त्तन, सभी इनके साथ चले जायेंगे। सत्वगुण-सत्य-धर्म-वेद-ग्राम्य देवता, व्रत, तप, उपवासादि सभी कार्य लुप्त हो जायेंगे। मनुष्य स्वेच्छाचारी होंगे। वे झूठ तथा कपट से पूर्ण रहेंगे। तुलसी न होने से पूजा तुलसी रहित होगी। लोग एकादशी व्रत त्याग कर धर्मशून्य हो जायेंगे। वे हरिकथा रहित होंगे। सभी लोग शठ, कुटिल, दाम्भिक, महाअहंकारी, चोर, हिंसक होंगे। स्त्री-पुरुष का भेद कार्यक्षेत्र में तथा अधिकार क्षेत्र में नहीं रह जायेगा। वैवाहिक सम्बन्ध भी नहीं रहेगा। वाद-विवाद का (न्यायाधीश) उचित निर्णय नहीं करेंगे। अपनी तथा परायी वस्तु का कोई भेद नहीं रहेगा। (स्त्रीगण में) यह मेरा स्वामी है, यह पराया पुरुष है, ऐसा भेद नहीं रह जायेगा। नारीगण पुंश्चली (व्यभिचारिणी) होंगी। मनुष्य नारी की अधीनता में रहेंगे। वे अपने पतियों पर गर्जन-तर्जन तथा उनकी भर्त्सना करेंगी।।१३-२०।।

गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः।
चेटी भृत्यासमा वध्वः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा॥२१॥
कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबन्धिबान्धवाः।
विद्यासंबन्धिभिः सार्धं संभाषाऽपि न विद्यते॥२२॥

गृहणियां ही घर की स्वामी होकर रहेंगी। उनका पति तथा घर के पुरुष भृत्य से भी निम्न स्थिति वाले होकर रहेंगे। प्रधान गृहिणी अन्य परिवार की स्त्रियों को दासी की तरह रखेगी। यही स्थिति उसके सास-ससुर की भी होगी। जो बली होगा वही गृह का कर्त्ता पुरुष माना जायेगा। जन्म सम्बन्ध तथा रक्त सम्बन्ध वाले ही भाई माने जायेंगे, तथापि विद्याजनित सम्बन्ध वाले गुरुभाई आदि से तो वे बातें भी नहीं करेंगे।।२१-२२।।

यथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः।
सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना॥२३॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा जात्याचारविनिर्णयः।
संध्या च यज्ञसूत्रं च भावलुप्तं न संशयः॥२४॥

लोग अपने भ्राता तथा बन्धुगण से ऐसा व्यवहार करेंगे, मानों वे अपरिचित हों। पुरुष इतने स्त्री के वश में होंगे कि वे स्त्रैण की तरह उसकी आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं करेंगे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अपने जातिगत वर्णाश्रमाचार का त्याग करेंगे। निःसंशय रूप से संध्या-वंदन करना तथा यज्ञोपवीत आदि वेदोक्त संस्कार भी लुप्त हो जायेंगे।।२३-२४।।

म्लेच्छाचारा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च।
म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय ते।
ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ॥२५॥

चारों वर्णों वाले लोग म्लेच्छों के आचार-विचार को अपना लेंगे। वह अपने शास्त्रों को त्याग कर म्लेच्छ शास्त्रों का पठन करेंगे। कलिकाल में ब्राह्मण-क्षत्रिय तथा वैश्य वंश वाले शूद्रसेवा करेंगे।।२५।।

सूपकारा भविष्यन्ति धावका वृषवाहकाः।
सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी॥२६॥
फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः।
क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम्॥२७॥
दम्पती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सुखवर्जिताः। प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः॥२८॥
जलहीना नदा नद्यो दीर्घिकाः कन्दरादयः।
धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च॥२९॥

वे (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) रसोईया, पत्राहक दूत, बैलगाड़ी हांकने वाले इत्यादि निकृष्ट कार्य को करते हुए जीवन यापन करेंगे। लोग सत्यवर्जित, मिथ्याभाषी होंगे। पृथिवी भी फसल से रहित होती जायेगी। वृक्ष फलहीन, नारीगण पुत्रहीन, गैयें दुग्धहीन, दुग्ध घृतहीन होगा। पति-पत्नी में परस्परतः प्रेम नहीं होगा। अतः गृहस्थ लोग सुख रहित हो जायेंगे। भूपालगण प्रताप रहित होंगे। प्रजावर्ग राजकर से (टैक्स से) पीड़ित रहेगा। नद-नदी जलहीन होंगे। बावली कन्दराओं से निकले निर्झरादि भी सूख जायेंगे। चारों वर्ण के लोग धर्म रहित तथा पुण्य रहित होंगे।।२६-२९।।

लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तेष्ठति ततः परम्।
कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः॥३०॥
कुर्वाताः कुत्सितपथा भविषन्ति ततः परम्।
केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः॥३१॥
केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः। अरणानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च॥३२॥

लाखों मनुष्यों में सम्भवतः कोई एक ही पुण्यात्मा होगा। सभी पुरुष-नारी-बालकादि-युवा आदि दुष्ट वार्त्ता में निरत, कुत्सित पथ पर चलने वाले होंगे। कतिपय ग्राम-नगर जनशून्यता के कारण भयानक प्रतीत होंगे।।३०-३२।।

अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः।
सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च॥३३॥

क्षेत्राणि सस्यहीनानि प्रकृष्टान्यर्थतः परम्। हीनाः प्रकृष्टा धनिनो बलदर्पसमन्विताः॥३४॥

कोई लोग छोटी-छोटी कुटिया में निवास करने को विवश होंगे। ग्राम-नगर वन के समान होने लगेंगे। यहां तक कि वन में रहने वाले भी राजसत्ता द्वारा लिये जाने वाले कर से पीड़ित रहेंगे। तालाब तथा नदी को पाट कर उन पर खेती की जायेगी। खेत अच्छी फसल पैदा नहीं कर पायेंगे (उर्वरता खत्म होगी)। कृषि से अर्थलाभ नहीं होगा। हीन लोगों को उत्तम कहा जायेगा। धनी लोग धन दर्प से उन्मत्त होंगे।।३३-३४।।

प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे।
अलीकवादिनो धूर्ताः शठा वै सत्यवादिनः॥३५॥
पापिनः पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टः शिष्ट एव च।
जितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः॥३६॥
तपस्विनः पातकिनो विष्णुभक्ता अवैष्णवाः।
हिंसकाश्च दयायुक्ताश्चौराश्च नरघातिनः॥३७॥

भिक्षुवेषधरा धूर्ता निन्दन्त्युपहसन्ति च। भूतार्दिसेवानिपुणा जनानां[१] मोदकारिणः॥३८॥

उत्तम वंशोत्पन्न लोग (हीन कार्य करने के कारण) हीन हो जायेंगे। सत्यवादी भी मिथ्यावादी हो जायेंगे। वे धूर्त तथा शठ कहे जायेंगे। इस प्रकार पापी लोग पुण्यवानों की निंदा तथा उनका उपहास करेंगे। अशिष्ट व्यक्ति शिष्टों की, लम्पट वर्ग जितेन्द्रियों की, वेश्यागामी पवित्र लोगों की, पातकीगण तपस्वियों की, विष्णु से द्वेष करने वाले विष्णुभक्तों की, चोर तथा नरहत्या करने वाले अहिंसकों की तथा दयावान् की सदा निन्दा करते रहेंगे। उनका उपहास करेंगे। जो भूत-प्रेतादि की पूजा-सेवा में निपुण हैं, वे लोगों के लिये प्रिय हो जायेंगे।।३५-३८।।

पूजितास्ते भविष्यन्ति वञ्चका ज्ञानदुर्बलाः।
वामना[२] व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः॥३९॥

अल्पायुषो जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे। पलिता षोडशे वर्षे महावृद्धास्तु विंशतौ॥४०॥

ठग, अधकचरा ज्ञान रखने वाले ही पूजित होंगे। नर-नारी वामन (बौने) तथा व्याधियुक्त होंगे। कलिकाल में उत्पन्न मनुष्य अल्प आयु वाले होंगे तथा वे युवाकाल में ही वृद्ध प्रतीत होने लगेंगे। वे सोलह वर्ष की आयु में ही वृद्धवत् हो जायेंगे। उनके केश श्वेत हो जायेंगे। वे महावृद्ध लगने लगेंगे।।३९-४०।।

अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी।
वत्सरान्ते प्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता॥४१॥

१. ०नानामपकाणिः०।
२. क. ०ना ज्ञानयु०।

एताः काश्चित्सहस्त्रेषु वन्ध्याश्चापि कलौ युगे।
कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च॥४२॥

नारीगण आठ वर्ष की आयु में ही रजस्वला तथा युवती हो जायेंगी। इसी अवस्था में उनको गर्भ भी होगा। वे प्रति वर्षान्त में सन्तान प्रसव करेंगी। चारों वर्ण के मनुष्य कन्या विक्रयी हो जायेंगे।।४१-४२।।

मातृजायावधूनां च जारोपार्जनतत्पराः। कन्यानां भगिनीनां च जारोपार्जनजीविनः॥४३॥
हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यन्ति कलौ युगे। स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे॥४४॥

माता, पत्नी, वधू–ये सभी जार पुरुष से ही उपार्जन करेंगी। पुरुषगण अपनी कन्या तथा बहनों को सौंप कर उससे अर्थोपार्जन करेंगे। ये हरिनाम का विक्रय करेंगे। यह सब कलिकाल में होगा। वे लोगों को दिखलाकर अपनी कीर्त्ति बढ़ाने हेतु ही स्वयं दान करेंगे।।४३-४४।।

तत्पश्चान्मनसाऽऽलोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति।
देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च॥४५॥
स्वदत्तां परदत्तां च सर्वमुल्लङ्घयिष्यति।
कन्यकागामिनः केचित्केचिच्छ्वश्रभिगामिनः॥४६॥

केचिद्वधूगामिनश्च केचित्सर्वत्रगामिनः। भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः॥४७॥
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे। अगम्यागमनं चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे॥४८॥

लोग सबके समक्ष दान करने के पश्चात् उस व्यक्ति से अपनी प्रदत्त वस्तु वापस ले लेंगे। इस कलि में मनुष्य लोग देवता हेतु प्रदत्त वृत्ति, ब्रह्मवृत्ति, गुरुकुल को प्रदत्त वृत्ति, वह स्वयं प्रदत्त हो किंवा अन्य द्वारा प्रदत्त हो, वे उनसे पुनः हर लेंगे। कलिकाल में उत्पन्न कोई अपनी कन्या से, तो कोई सास से, कोई पुत्रवधू से तथा कोई-कोई तो सभी से समागम रूप व्यभिचार करेगा। कोई बहन से, कोई सौतेली जननी से, कोई भातृवधू से समागम करेगा। गृह-गृह में पुरुषगण अगम्या नारी से समागम करेंगे।।४५-४८।।

आत्मयोनिं परित्यज्य विहरिष्यन्ति सर्वतः।
पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तृणां च कलौ युगे॥४९॥
प्रजानां चैव वस्तूनां ग्रामाणां च विशेषतः।
अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चौर्यार्थलम्पटाः॥५०॥

परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः। ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्ति च पापिनः॥५१॥
लाक्षालोहरसानां च ध्यापारं लवणस्य च। वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः॥५२॥

कलिकाल के पुरुष केवल माता को छोड़ कर प्रत्येक स्त्री से व्यभिचार करने में तनिक

संकोच नहीं करेंगे। कलिकाल में यही निर्णय कठिन होगा कि कौन स्त्री किसकी पत्नी है, कौन पुरुष किसका पति है। प्रजावर्ग का स्वामित्व एवं अधिकार अपनी वस्तु तथा ग्रामादि पर भी नहीं रह जायेगा। कौन किस वस्तु अथवा भूमि आदि का अधिकारी अथवा स्वामी है, यह निश्चित नहीं हो पायेगा। सभी मनुष्य झूठे, शठ तथा लम्पट होंगे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य वेश वाले मनुष्यों की पापवृत्ति तथा परस्परतः हिंसा वृत्ति होगी। वे नरहत्यादि घोर पातकी कार्य करके महापातकियों में भी अग्रणी होंगे। वो उत्तम वर्ण के वंशजगण लाख, लौह, रस, लवण का वाणिज्य व्यवसाय करेंगे। बैल हांकने का (बैलगाड़ी आदि) का कार्य करेंगे। ब्राह्मण ही शूद्र का शवदाह करेंगे।।४९-५२।।

शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः। पञ्चपर्वपरित्यक्ताः कुहूरात्रिषु भोजिनः।।५३।।

यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः।।५४।।
पुंश्चली वार्धुषाऽवीरा कुट्टिनी च रजस्वला।
विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्ति च पाचिकाः।।५५।।
अन्नानां निर्णयो[1] नास्ति योनीनां च विशेषतः।
आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे।।५६।।

एवं कलौ संप्रवृत्ते सव म्लेच्छमया भवे। हस्तप्रमाणे वृक्षे चाङ्गुष्ठमाने च मानवे।।५७।।

सभी शूद्रान्न भोजी तथा शूद्रा नारी भोगी होंगे। विप्रगण पंचयज्ञ विहीन होंगे। यहां तक कि अमावस्या की रात्रि में भोजन ग्रहण करेंगे। सभी द्विज यज्ञोपवीत त्यागी, संध्या एवं पवित्रता से भी रहित होंगे। व्यभिचारिणी नारी, व्याज खाने वाली, पतिपुत्र रहित, विकृत दांतों वाली, कुटनी, रजस्वला नारी ब्राह्मणों का खाना बनायेगी। अन्नपाक में अन्न भोजन में, स्त्रियों में, आश्रमस्थ लोगों में (गृहस्थाश्रम आदि चार आश्रमों में) नियम अथवा कोई विधान ही नहीं रहेगा। अतः सभी कलिकाल के मनुष्य म्लेच्छ ही होंगे। उस घोर कलिकाल में आज के मनुष्य के माप से एक हाथ का वृक्ष तथा अंगूठे के बराबर के मानव होंगे।।५३-५७।।

विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्र कल्की भविष्यति।
नारायणकलांशश्च भगवान्बलिनां बली।।५८।।

दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः। म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति।।५९।।

ऐसी विकराल स्थिति होने पर ब्राह्मण विष्णुयशा के पुत्र होंगे नारायण की कला के अंश से आविर्भूत महाबली भगवान् कल्की। वे दीर्घकाय घोड़े पर बड़ी तलवार लेकर बैठेंगे। वे तीन रात्रि में धरती को म्लेच्छविहीन करेंगे।।५८-५९।।

निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चान्तर्धानं करिष्यति।
अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति।।६०।।

१. क. नियमो।

स्थूलप्रमाणं षड्रात्रं वर्षाधाराप्लुता मही।
लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति॥६१॥

ये प्रभु धरती को पूर्णतः म्लेच्छविहीन करने के अनन्तर स्वयं अन्तर्हित् हो जायेंगे। तत्काल पृथिवी अराजकता युक्त होकर दस्युओं से त्रस्त होगी। तदनन्तर छह दिन-रात मोटी धार वाली महान् वर्षा से पृथिवी पर जल ही जल दीखेगा। पृथिवी प्राणी रहित, वृक्ष रहित तथा गृह रहित हो जायेगी॥६०-६१॥

ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने।
प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा॥६२॥
कलौ गते च दुर्धर्षे संप्रवृत्ते कृते युगे। तपःसत्यसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति॥६३॥

तदनन्तर द्वादश आदित्यगण एक साथ उदित होकर अपने प्रचण्ड तेज से पृथिवी को शुष्क कर देंगे। इस प्रकार दुर्धर्ष कलिकाल के व्यतीत होते ही सत्ययुग का प्रारम्भ होगा। इससे तपः तथा सत्य से युक्त धर्म का पूर्ण आविर्भाव होगा॥६२-६३॥

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि। पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे॥६४॥
राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताः स्वधर्मिणः।
प्रतापवन्तो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा॥६५॥

इस धरती पर तपोधन-धार्मिक-वेदज्ञ ब्राह्मण उत्पन्न होंगे। घर-घर में पतिव्रता-धार्मिक स्त्रियां होंगी। सभी क्षत्रिय तथा राजा लोग विप्रभक्त तथा स्वधर्म पालक होंगे। वे प्रतापी-धार्मिक तथा सदा पुण्यकर्मरत होंगे॥६४-६५॥

वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः।
शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः॥६६॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः।
विष्णुमन्त्ररताः सर्वे विष्णुभक्ताश्च वैष्णवाः॥६७॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः। लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णे कृते युगे॥६८॥

तब वैश्य लोग वाणिज्य करने वाले ब्राह्मणभक्त होंगे। वे धार्मिकों में अग्रगण्य होंगे। शूद्र लोग पुण्यात्मा-धार्मिक तथा विप्रसेवारत होंगे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य प्रभृति श्रेष्ठ वंशोत्पन्न लोग विष्णुभक्त, यज्ञानुष्ठान करने वाले होंगे। वे सभी विष्णुमन्त्र तथा विष्णुभक्त होकर वैष्णव कुलतिलक कहे जायेंगे। वे श्रुति, स्मृति, पुराण आदि की अभिज्ञाता वाले तथा धर्मज्ञ होंगे। वे केवल नियमतः ऋतुकाल में ही पत्नी सेवन करेंगे। धर्ममय सत्ययुग में अधर्म का लेश भी नहीं रहेगा॥६६-६८॥

धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः।
कलौ प्रवृत्ते पादात्मा सर्वलोपस्ततः परम्॥६९॥

वाराः सप्त यथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः।
यथा द्वादश मासाश्च ऋतुवश्च षडेव हि॥७०॥
द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम्। चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा॥७१॥
वर्षः पञ्चविधो ज्ञेयः कालसंख्यां निबोध मे।
यथा चाऽऽयान्ति यान्त्येव तथा युगचतुष्टयम्॥७२॥

त्रेता में धर्म त्रिपाद, द्वापर में द्विपाद तथा कलिकाल में एक पाद ही रहता है। तदनन्तर वह एक पाद भी कलिकाल के अन्त में लुप्त हो जाता है। हे विप्रप्रवर! (वार में) सात दिन, १६ तिथि तथा १२ मास कहे गये हैं। इसी प्रकार षड्ऋतु, द्विपक्ष (शुक्ल-कृष्ण), दो अयन, चार प्रहर दिन में तथा ४ प्रहर रात में कहे गये हैं। ३० दिन का एक मास तथा १२ मास का एक वर्ष होता है। काल एवं संख्या विधान से वर्ष ५ प्रकार का होता है। वर्ष के आवागमन से ही ४ युगों का आवागमन (आकलन) होता है॥६९-७२॥

वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्। शतत्रये षष्ट्यधिके नराणां च युगे गते।
देवानां च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः॥७३॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। मन्वन्तरसमं ज्ञेयं चेन्द्रायुः परिकीर्तितम्॥७४॥
अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्राह्मं दिवानिशम्। अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातो विधेर्भवेत्॥७५॥
प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुंधरा। जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥७६॥
ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे।
तत्रैव प्रकृतिर्लीना तेन प्राकृतिको लयः॥७७॥

मनुष्य का एक वर्ष देवगण का दिन-रात है। इसी प्रकार मनुष्य का ३६० युग व्यतीत होने पर देवताओं का एक युग कहा गया है। देवगण का ७१ युग एक मन्वन्तर होता है। यह एक मन्वन्तर (एक इन्द्र का) आयुकाल है। इस प्रकार २८ इन्द्र का पतन होने पर वह ब्रह्मा का एक दिन-रात है। इस दिन-रात के परिमाण वाले १०८ वर्ष व्यतीत होने पर एक ब्रह्मा का पतन हो जाता है। यह है प्राकृत प्रलय का काल। तब वसुन्धरा अदृश्यावस्था में चली जाती है। जगत् जलप्लावित हो जाता है। सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता परात्पर कृष्ण में लीन हो जाते हैं। अब प्रकृति भी लीन हो जाती है। यही है प्राकृतिक प्रलय॥७३-७७॥

लये प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने।
निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः॥७८॥
एवं नश्यन्ति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च।
स्थितौ गोलोकवैकुण्ठौ श्रीकृष्णश्च सपार्षदः॥७९॥

निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम्। निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेण च॥८०॥

एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा।
कतिकृत्वो गतायातः संख्यां जानातिः कः पुमान्॥८१॥

हे मुनिवर! इस प्रकार प्रकृति का लय होने पर तथा ब्रह्मा का पतन हो जाने वाला समय परमात्मा का एक निमेष मात्र है। इस प्रकार समस्त प्राणीगण तथा जगत् का नाश होने पर केवल अपने पार्षदों सहित श्रीकृष्णदेव, गोलोक एवं वैकुण्ठ ही विद्यमान रह जाते हैं। जितने काल में जगत् जलप्लावित हो जाता है, वह कृष्ण का एक निमेष मात्र है। इस निमेष मात्र काल के उपरान्त पुनः क्रमशः सृष्टि होती है। इस प्रकार से बारम्बार कितने प्रलय तथा कितनी सृष्टि होती है? यह कोई भी व्यक्ति गणना कर सकने में समर्थ ही नहीं है। कितने कल्प आये, कितने व्यतीत हो गये, इसकी गणना कौन कर सकेगा?॥७८-८१॥

सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्माण्डानां च नारद।
ब्रह्मादीनां च विध्यण्डे संख्यां जानातिः कः पुमान्॥८२॥

हे नारद! कितनी सृष्टि हो गई, कितने प्रलय हो हैं, कितने ब्रह्माण्ड हैं, उनमें रहने वाले ब्रह्मा आदि कितने हैं, यह जान सकने में कौन समर्थ है?॥८२॥

ब्रह्माण्डानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः।
सर्वेषां परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः॥८३॥
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट्।
तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिः स्मृता॥८४॥
स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥८५॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत्। यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च॥८६॥

विद्ध्येकं सृष्टिमूलं तत्सत्यं नित्यं सनातनम्।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणं परम्॥८७॥

इन अनन्त ब्रह्माण्डों तथा सब कुछ के अधिपति एकमात्र सबके परमात्मरूप श्रीकृष्ण हैं, जो प्रकृति के अतीत हैं। ब्रह्मा महाविराट्-क्षुद्रविराट् आदि सभी उनके अंश हैं। प्रकृति भी उनका अंश है। ये कृष्ण ही भागद्वय में विभक्त होकर द्विभुज तथा चतुर्भुज हो गये। चतुर्भुज तो वैकुण्ठ में तथा द्विभुज तो स्वयं गोलोक में अवस्थान करते हैं। इस जगत् में ब्रह्मा से लगाकर क्षुद्र तृणपर्यन्त सभी प्रकृतिजनित है, जो-जो प्राकृतिक तथा सृष्ट है, वह सब नश्वर है। हे नारद! सत्यरूप, नित्य, सनातन, स्वेच्छामय, निर्लिप्त, निर्गुण प्रभु ही सृष्टि के कारण हैं। उनकी धारणा (चिन्तन) विशेषतया करो॥८३-८७॥

निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्। अतीव कमनीयं च नवीननीरदप्रभम्॥८८॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपवेषं किशोरकम्। सर्वज्ञं सर्वसेव्यं च परमात्मानमीश्वरम्॥८९॥

वे प्रभु निरुपाधि, निराकार तथा भक्तों पर कृपा करने हेतु ही सगुण विग्रहधारी हो जाते हैं। वे अतीव कमनीय नवजलधर के समान अंगकान्तियुक्त हैं। वे द्विभुज, मुरलीधारी, गोपवेशधारी, किशोर वय वाले हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वसेव्य तथा परमात्मा एवं ईश्वर हैं॥८८-८९॥

करोति धाता ब्रह्माण्डं ज्ञानात्मा कमलोद्भवः।
शिवो मृत्युञ्जयश्चैव संहर्ता सर्वतत्त्ववित्॥९०॥
यस्य ज्ञानाद्यत्तपसा सर्वेशस्तत्समो महान्।
महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदः स्वयम्॥९१॥
सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम्।
विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यस्य ज्ञानाज्जगत्पतिः॥९२॥

जिनके ज्ञान के प्रभाव को पाकर तथा तपोबल से ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं तथा सर्वतत्वज्ञ मृत्युंजय शिव संहार कार्य करते हैं, उन प्रभु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के द्वारा तथा उनके निमित्त किये गये तपःश्चरण के प्रभाव से ये शिव उन श्रीकृष्ण के समान महान् एवं सर्वेश्वर हो गये हैं। उन श्रीकृष्ण के ही ज्ञान के महाप्रभाव द्वारा विष्णुदेव महाविभूतिशाली हैं। सर्वज्ञत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वरक्षकत्व, सर्वसम्पत्प्रदत्व, समर्थत्व, सर्वेश्वरत्व भी विष्णु को उन कृष्ण की कृपा से मिल सका है। तभी वे कृष्णकृपा से जगदाधिपति भी हो गये॥९०-९२॥

महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमतीश्वरी।
यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया॥९३॥

सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता। पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया॥९४॥

इन परमेश्वर के ही ज्ञान के प्रभाव से, इनके उद्देश्य से तपःश्चरण करके तथा इनकी भक्ति एवं सेवा बल से महामाया प्रकृति सर्वशक्ति सम्पन्ना तथा ईश्वरी रूप से प्रख्यात हो गईं। इनके ही ज्ञान के तथा इनकी सेवा के प्रभाव से देवी सावित्री वेद की अधिष्ठात्री, वेदमाता, ब्राह्मणों की पूज्या तथा वेदज्ञानमयी हो गयीं॥९३-९४॥

सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां पुरा। यत्सेवया यत्तपसा यस्य ज्ञानात्सरस्वती॥९५॥
यत्सेवया यत्तपसा प्रदात्री सर्वसंपदाम्। [1]धनदस्याधिदेवी सा महालक्ष्मीः सनातनी॥९६॥
यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता। सर्वज्ञानाधिदेवी[2] सा सर्वसंपत्प्रदायिनी॥९७॥

---

१. ख. नसस्या०।
२. ख. र्वग्रामाधि०।

सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम्। सर्वस्तुता च सर्वज्ञा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥९८॥

इनकी सेवा, तपस्या तथा ज्ञान के प्रभाव से विद्या की अधिष्ठात्री देवी विद्वानों द्वारा पूजी जाती हैं। इन श्रीकृष्णदेव की सेवा तथा तपस्या के बल से लक्ष्मी सर्वसम्पदा प्रदायिनी धन तथा धान्य आदि की अधीश्वरी तथा सनातनी महालक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। इनकी ही सेवा तथा तपस्या को करके दुर्गति का नाश करने वाली देवी दुर्गा सभी ग्रामों की अधीश्वरी, सर्वसम्पदा प्रदायिनी, सभी विश्वों में पूजिता, सर्वेश्वरी, निखिल जगत् द्वारा वन्दिता, सबके द्वारा स्तुता तथा सर्वज्ञा हो गईं। अतः इन सती ने महादेव को पति रूप से प्राप्त कर लिया! ये सबकी पीड़ा का हरण भी इन प्रभु की कृपा से ही करती हैं।।९५-९८।।

कृष्णवामांशसंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता।
[1]कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका कृष्णसेवया॥९९॥
सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवम्।
कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वं प्राप सेवया॥१००॥

तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते। दिव्यं युगसहस्रं च निराहाराऽतिकर्शिता॥१०१॥

कृष्ण के वाम अंग से आविर्भूता राधिका भी कृष्ण की सेवा तथा कृष्ण प्रेम के कारण कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हो गईं। वे कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। कृष्ण सेवा के बल से उनको सर्वाधिक रूप, सौभाग्य, मान, गौरव तथा कृष्ण के वक्षःस्थल में स्थान मिला है। उन्होंने कृष्ण को ही पतिरूप से प्राप्त किया है। पूर्वकाल में राधिका ने १००० दैव युग पर्यन्त (१००० दैवयुग = १००० × ३६० = ३६०००० मानव युग) शतशृंग पर्वत पर तपःश्चरण किया था। यह तप उन्होंने पूर्णतः निराहार रह कर किया था।।९९-१०१।।

कृशां निःश्वासरहितां दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम्।
कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः॥१०२॥
वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम्।
मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयि ते भक्तिरस्त्विति॥१०३॥
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा वै गौरवेण च।
त्वं मे श्रेष्ठा[2] परं प्रेम्णा ज्येष्ठा त्वं सर्वयोषिताम्॥१०४॥
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया।
सततं तव साम्योऽहं राध्यश्च प्राणवल्लभे॥१०५॥

इस तप के समय उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। उनको इतनी दुर्बल, निःश्वास रहित

१. ख. ०ष्ण प्रेमाधि०।
२. क. ०ष्ठा च प्रेष्ठा च प्रेयसी स०।

तथा क्षीण चन्द्रमा की कला के समान देख कर प्रभु कृष्ण ने उनको अपने वक्षःस्थल पर धारण कर लिया। एक क्षण के उपरान्त कृष्ण ने उनको सारभूत, सबके लिये दुर्लभ यह वर दिया था। श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवी! तुम्हारी भक्ति मेरे प्रति अचल हो जाये। तुम मेरे वक्ष में सदा स्थित रहो। मेरे लिये सौभाग्य, मान, प्रेम, गौरव हेतु तुम सर्वश्रेष्ठ हो। तुम मेरे द्वारा सभी स्त्रियों में श्रेष्ठ हो जाओ तथा सर्वाधिक महत्व तथा गौरवशालिनी होकर रहो। मेरे द्वारा सदैव तुम्हारा गुणगान (स्तुति) तथा पूजन (आदर) किया जायेगा। मैं सर्वदा तुम्हारे ही अधीन हूं। मैं सदा तुम्हारी आज्ञा का पालन करने हेतु तत्पर रहूंगा।।१०२-१०५।।

इत्युक्त्वा जगतां नाथश्चक्रे तच्चेतनां ततः।
सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम्।।१०६।।

जगत्स्वामी कृष्ण ने यह कहकर उन देवी राधा को चेतना प्रदान किया। उन्होंने सौतों के कष्ट से राधा को मुक्त करके अपनी प्राणवल्लभा बनाया।।१०६।।

अन्या[१] या याश्चदेव्यो वै पूजितास्तस्य सेवया।
तपस्या यादृशी यासां तासां तादृक्फलं मुने।।१०७।।
दिव्यं वर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमालये।
दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह।।१०८।।
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने। लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववन्द्या बभूव सा।।१०९।।

हे मुनिवर! अन्य जो देवता-देवीगण उनकी सेवा के बल से जगत्पूजित हो गये हैं, उनकी जैसी-जैसी तपस्या तथा कृष्णसेवा है, वे वैसा ही फल लाभ करते हैं। दुर्गा ने देवमान वाले १००० वर्ष अर्थात् मानवों के ३६०००० वर्ष पर्यन्त हिमालय के गंधमादन पर तप तथा कृष्ण के चरणकमल का ध्यान किया था। इस प्रकार वे सर्वपूज्या हो गयीं।।१०७-१०९।।

लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे।
सर्वसंपत्प्रदात्री सा चाभवत्तस्य सेवया।।११०।।
सावित्री मलये तप्त्वा द्विजपूज्या बभूव सा।
षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम्।।१११।।
शतमन्वन्तरं तप्तं शङ्करेण पुरा विभो। शतमन्वन्तरं चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तितः।।११२।।
शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह।
शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह।।११३।।

देवी लक्ष्मी ने १०० दिव्य युग पर्यन्त पुष्कर तीर्थ में तप किया था। इसके तथा कृष्ण सेवा

---
१. ख. येषां या।

प्रभाव से वे सर्वसम्पदा प्रदान करने वाली शक्तियुक्ता हो गईं। सावित्री ने मलय पर्वत पर दिव्य ६०००० वर्ष (६०००० × ३६० = मानववर्ष) तप करके तथा ध्यान करके द्विजपूज्या पद को प्राप्त किया। पूर्वकाल में विभु शंकर ने १०० मन्वन्तर पर्यन्त कृष्ण के उद्देश्य से तप किया था। ब्रह्मा ने भी कृष्ण के उद्देश्य से इतने ही समय तक तप करके सृष्टिकर्त्ता पद लाभ किया। विष्णु भी १०० मन्वन्तरों तक कृष्ण के उद्देश्य से तप करने के कारण जगत्रक्षक बन सके। धर्म ने भी १०० मन्वन्तर पर्यन्त कृष्ण के उद्देश्य से तप करके सर्वपूज्यत्व लाभ किया।।११०-११३।।

मन्वन्तरं तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद। मन्वन्तरं च सूर्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथा गुरुः।।११४।।

दिव्यं शतयुगं चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तितः।
सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः।।११५।।

हे नारद! शेषनाग, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, बृहस्पति ने कृष्ण के उद्देश्य से १ मन्वन्तर भक्तिभाव के साथ तप किया। वायु तो १०० दिव्य युग पर्यन्त (१०० × ३६० = ३६००० युग) पर्यन्त भक्तिभाव से तप करने के कारण सर्वपूज्य, सर्वप्राण, सर्वाधार हो गये।।११४-११५।।

एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः।
मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः।।११६।।
एवं ते कथितं सर्वं पुराणं च यथागमम्।
गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।११७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० युगतन्माहात्म्यमन्वन्तरकालेश्वरगुण-
निरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

एवंविध समस्त देवता, मुनि, मनुष्य, राजा, द्विजगण कृष्ण के लिये किये गये तपःश्चरण से ही पूज्य हो सके हैं। हे नारद! मैंने पुराण सारभूत एवं आगम के सारतत्वरूप तत्त्व को जैसे गुरु से श्रवण किया था, यथावत् कहा। अब और क्या श्रवणेच्छा है?

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टमोऽध्यायः

पृथिवी की उत्पत्ति, पृथिवी पूजाविधि, ध्यान तथा स्तोत्र आदि का वर्णन

नारद उवाच

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च। तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुंधरा। जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीना हराविति॥२॥
वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति। सृष्टेर्विधानसमये साऽऽविर्भूता कथं पुनः॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया।
तस्याश्च जन्मविस्तारं वद मङ्गलकारणम्॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! हरि के निमेषमात्र में अर्थात् पलक झपकाने में जितना समय लगता है, उतने ब्रह्मा का जीवन समाप्त हो जाता है। अर्थात् उतना ही ब्रह्मा का जीवन है। ब्रह्मा का पतन होते ही प्राकृत प्रलय होता है। यह कथित है। इस प्राकृत प्रलय में वसुन्धरा अदृश्य हो जाती है। समग्र संसार जलप्लावित हो जाता है। उस समय सब कुछ हरि में लीन हो जाता है। यह कहा गया है, तथापि इस समय वसुन्धरा पृथिवी तिरोभूता (गायब) होकर कहां अवस्थित हो जाती है? तदनन्तर सृष्टिकाल में वह पुनः आविर्भूत होकर कैसे धन्या, मान्या तथा सर्वाश्रयभूता एवं मंगलकारण हो जाती है? यह सब वृत्तान्त तथा उनका जन्मवृत्तान्त कहिये॥१-४॥

श्रीनारायण उवाच

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विघ्ननिघ्नं परं पापनाशनं पुण्यवर्धनम्॥६॥

श्रीनारायण कहते हैं–आदि सृष्टि में सबका जन्म कृष्ण से होता है। यह बात श्रुति में प्रसिद्ध है, तथापि प्रलय में मात्र तिरोभाव होता है तथा सृष्टि काल में सबका आविर्भाव हो जाता है। हे नारद! सभी मंगल कार्यों से भी मंगल देने वाला, विघ्ननाशक, पापराशि विनाशक, पुण्यवर्द्धक वसुधा का अद्भुत जन्मविवरण श्रवण करो॥५-६॥

अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा। बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु॥७॥

अहो! कोई विद्वान् कहते हैं कि यह पृथिवी मधु-कैटभ असुरद्वय की मेद (चर्बी) से निर्मित है। पुण्यमयी वसुधा की उत्पत्ति का यह कारण है, तथापि इससे मत में विशेष दोष का श्रवण करो॥७॥

ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा। आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा संवृतेति च॥८॥

तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा न भवेत्स्फुटम्। ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः॥९॥

मेदिनीति च विख्यातेत्युक्ता यैस्तन्मतं शृणु।
जलधौता कृशा पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः॥१०॥

पूर्वकाल में मधु-कैटभ ने विष्णु से युद्ध किया तथा वे दोनों विष्णुतेज से अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने भगवान् विष्णु से कहा "जहां पृथिवी जलमग्न नहीं है, उस जल रहित प्रदेश में हमारा वध करो।" अतः यह प्रकट होता है कि मधु-कैटभ के पहले से पृथिवी विद्यमान थी। यह स्पष्ट है। तदनन्तर उन दोनों असुरों का वध करते समय पृथिवी प्रत्यक्षतः प्रकाशिता हो गई तथा असुरों की मृत्यु के पश्चात् पृथिवी इन असुरों की मेदराशि से और भी पुष्ट हो गई। बस इतना ही जाने। उस समय जल से धुली, दुर्बल देह वाली पृथिवी मधु-कैटभ के मेद से पुष्ट हो गई। तभी उसे मेदिनी कहा गया॥८-१०॥

कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसंमतम्।
पुरा श्रुतं च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे॥११॥
महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम्।
मलो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापको ध्रुवम्॥१२॥

स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च। कालेन महता तस्माद्बभूव वसुधा मुने॥१३॥

प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च स्थिता कूपेषु सा स्थिरा।
आविर्भूता तिरोभूता सा[1] चला च पुनः पुनः॥१४॥
आविर्भूता सृष्टिकाले [2]तज्जलात्पर्युपस्थिता।
प्रलये च तिरोभूता जलाभ्यन्तरवस्थिता॥१५॥

तथापि पूर्वकाल में जो कुछ पुष्कर तीर्थ में धर्म द्वारा सुना गया था, वही यथार्थ मत है। वह सर्वसम्मत तथा श्रुतिप्रसिद्ध मत है। वह पृथिवी-जन्म विवरण कहता हूं। श्रवण करो। पहले महाविराट् दीर्घकाल तक जलमग्न थे। तब उनके अंगों पर व्याप्त मलराशि (कीचड़) उत्पन्न हो गया। यह मलराशि उन महाविराट् के रोमकूपों में प्रविष्ट हो गई। हे मुनिवर! तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् इस मलराशि से ही वसुधा की उत्पत्ति कही जाती है। यह वसुधा महाविराट् के रोमकूपों में भिन्न-भिन्न रूप से विराजित है। ये पुनः-पुनः आविर्भूत होती है तथा इनका तिरोधान भी होता रहता है। ये पुनः-पुनः जलमग्न भी हो जाती हैं। ये सृष्टिकाल में जल में से आविर्भूत होकर उत्थित होती हैं तथा प्रलयकाल में तिरोभूता होकर जल में प्रविष्ट होकर स्थित रहती हैं॥११-१५॥

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता। सप्तसागरसंयुक्ता [3]सप्तद्वीपमिता सती॥१६॥

---

१. क. ०ता सजला च।
२. क. ०ज्जलोपर्यधःस्थि०।
३. क. सप्तस्वर्गस०।

हिमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथा नुता॥१७॥

यह वसुधा प्रत्येक विश्व में पर्वत-काननयुता होकर तथा सप्तद्वीपमयी एवं सप्तसागर संयुता रहती है। प्रत्येक विश्व में यह शैल-वनादि से, हिमाचल-मेरु पर्वत, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रादि से सुशोभित रहती है। यह सभी विश्वों में ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवगण तथा लोकों से युक्त रहती है।।१६-१७।।

पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता। काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता॥१८॥
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वे ब्रह्मलोकतः। ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै॥१९॥

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै।
ऊर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ॥२०॥

यह पृथिवी प्रत्येक विश्व में काञ्चनमयी भूमि से युक्ता, पुण्यमय तीर्थों में पुण्यमयी, भारतभूमि द्वारा शोभाशालिनी है। यह सभी दुर्गों से समन्वित भी है। पातालादि सप्तलोक समूह उसके निम्न देश में हैं। ऊपर में ब्रह्मलोकादि सप्तलोक हैं। सबसे ऊर्ध्व में ध्रुवलोक है। समस्त विश्व पृथिवी पर ही निर्मित है। उसके ऊर्ध्व में विश्वातीत गोलोक एवं वैकुण्ठ लोक हैं।।१८-२०।।

नश्वराणि च विश्वानि कृत्रिमाकृत्रिमाणि च। प्रलये प्राकृते ब्रह्मन्ब्रह्मणश्च निपातने॥२१॥

यह समस्त सृष्ट विश्व (गोलोक तथा वैकुण्ठ को छोड़ कर) कृत्रिम तथा नश्वर कहा गया है। हे ब्रह्मन्! प्राकृतिक प्रलयकाल में समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम विश्व तक नष्ट हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा का अन्त होना ही प्राकृतप्रलय है। उसमें सब नष्ट हो जाता है।।२१।।

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चाऽऽत्मना।
नित्ये स्थितः स प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः सह॥२२॥
क्षित्यधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः। मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च॥२३॥
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता।
तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः॥२४॥

सृष्टि के आदिकाल में भगवान् कृष्ण ने महाविराट् की सृष्टि किया था। यह महाविराट् महाप्रलय में भी दिक्, आकाश तथा ईश्वर सहित स्थित रह जाता है। वराहकल्प में पृथिवी की अधीश्वरी देवी, देवता, मनुगण, विप्र-गन्धर्व इनकी पूजा करते हैं। श्रुति का वचन है कि ये वसुधा भी वराहरूपी विष्णु की पत्नी हैं। उनके पुत्र हैं मंगल तथा ये विष्णु के औरस से उत्पन्न हैं। मंगल का पुत्र है सुयशा। (मतान्तर से मंगल के पुत्र का नाम है घन्टेश)।।२२-२४।।

नारद उवाच

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही। वराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती॥२५॥

तस्याः पूजाविधानं चाऽप्यधश्चोद्धरणक्रमम्।
मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म[1] वासं वद प्रभो॥२६॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! वाराहकल्प में देवगण ने किस प्रकार से पृथिवी की पूजा किया था? वसुधा किस प्रकार से वराहदेव से मिली थीं? वे सबकी आश्रय हैं। ऐसा कैसे हो गया? उनकी पूजाविधि, उनके जल से ऊपर उत्थान होने का क्रम, मंगल का मंगलप्रद जन्म का विवरण तथा सब कुछ विस्तार पूर्वक कहिये।।२५-२६।।

नारायण उवाच

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा। उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात्॥२७॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथाऽर्णवे। तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वं विश्वं मनोहरम्॥२८॥
दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः। वराहरूपी भगवान्कोटिसूर्यसमप्रभः॥२९॥
कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्तिं च सुमनोहराम्। क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम्॥३०॥

श्री नारायण कहते हैं–पूर्व वाराह कल्प में ब्रह्मा ने वराहरूपी भगवान् का स्तव किया था। उन्होंने हिरण्याक्ष आदि असुर का वध करके धरती का उद्धार रसातल से किया था। उन्होंने पृथिवी को जल पर वैसे ही स्थापित किया जैसे जल पर कमलपत्र रहता है। ब्रह्मा ने इसी के ऊपर मनोहर अखिल विश्व का सृजन किया। जब कोटिसूर्य समप्रभ प्रभावान् वराहरूपी भगवान् हरि ने पृथिवी की अधिष्ठातृ देवी वसुधा को सकामा देखा, तब वे स्वयं काम पीड़ा से पीड़ित हो गये। तब उन्होंने स्वयं अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया तथा निर्जन में प्रभु ने कामक्रीड़ा के लिये उपयोगी शय्या का निर्माण करके वसुधा देवी के साथ दिव्य मान वाले १ वर्ष पर्यन्त (३६० मानव वर्ष तक) दिन-रात उनका भोग किया।।२७-३०।।

सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी। विदग्धया विदग्धेन [2]सङ्गमोऽतिसुखप्रदः॥३१॥
विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम्।
वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी[3] तत्याज कामुकीम्॥३२॥

वे सुन्दरी वसुधादेवी सुख-संभोग के स्पर्श के कारण मूर्च्छिता हो गईं। जो प्रवीण नायिका होती हैं, वे प्रवीण नायक (पुरुष) के साथ समागम करके सुखानुभव करती हैं। विष्णुदेव पृथिवी का अंगस्पर्श करते हुए निरन्तर विराजमान थे। उनको इस सुख के कारण दिन-रात का भी भान नहीं था। उस दिव्य वर्ष के वर्षान्त में जब विष्णु की चेतना वापस लौटी, तब उन्होंने उन कामुकी वसुधा का साथ छोड़ा।।३१-३२।।

१. ख. ०न्म व्यासं व०।
२. ख. ०मोऽपि सु०।
३. क. कामं तत्याज कामिनी०।

दधार पूर्वरूपं हि वाराहं चैव लीलया।
पूजां चकार भक्त्या च ध्यात्वा च धरणीं सतीम्॥३३॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः। वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः॥३४॥

तब प्रभु ने लीला पूर्वक अपना वराहरूप पुनः धारण किया। तदनन्तर उन्होंने सती धरणी देवी (वसुधा) का ध्यान करके उनकी पूजा किया। उन्होंने धूप-दीप-नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन लेप, वस्त्र, पुष्प, बलि से वसुधा देवी की अर्चना किया तथा भगवान् विष्णु ने तब वसुधा से कहा-॥३३-३४॥

महावराह उवाच

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सती। मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैर्वा मानवादिभिः॥३५॥
जलोच्छ्वासाज्जलत्यागगृहारम्भप्रवेशने। वापीतडागारम्भे च शुभे च कृषिकर्मणि॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति संभ्रमेण सुरादयः। मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकं च ते॥३७॥

महावराह देव कहते हैं-हे शुभे! वसुधे! तुम अब सबकी आधारभूता हो जाओ तथा सभी मुनि, मनु, देवता, सिद्ध, मानवगण तुम्हारी सुख से पूजा करेंगे। देवता प्रभृति सभी तुम्हारी पूजा जल निकालने (भूगर्भस्थ जल निकालने) में, वापी, तड़ाग खनन के समय, गृहारंभ, गृहप्रवेश के समय, शुभ कृषि कर्म के समय देवादि सब तुम्हारी पूजा करेंगे। जो मूढ़ व्यक्ति इन कार्यों में तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उनको नरक प्राप्त होगा॥३५-३७॥

वसुधोवाच

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया। लीलामात्रेण भगवन्विश्वं च सचराचरम्॥३८॥
मुक्तां शुक्तिं हरेचर्चां शिवलिङ्गं शिलां तथा।
शङ्खं प्रदीपं रत्नं[1] च माणिक्यं हीरकं मणिम्॥३९॥
यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम्। जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम्॥४०॥
गोरोचनां चन्दनं च शालग्रामजलं तथा।
एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु॥४१॥

वसुधा देवी कहती हैं-हे प्रभो! मैं आपके आदेश के अनुरूप अनायास समस्त विश्व को वराहरूपी होकर धारण करूंगी। सबका वहन करूंगी, तथापि हे प्रभो! मेरा निवेदन श्रवण करें। मुक्ता, सीपी, शिवलिंग, शालग्राम शिला, शंख, दीपक, रत्न, माणिक, हीरा, अन्य मणि, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, स्वर्ण, गोरोचन, चन्दन, शालग्राम का चरणामृत का भार वहन सीधे करने में मुझे क्लेश होगा। अतः मैं इनका वहन नहीं कर सकूंगी॥३८-४१॥

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि।
यास्यन्ति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि॥४२॥

१. क. ०पं यन्त्रं च।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद। बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः॥४३॥

पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाऽऽज्ञया हरेः।
दध्युः काण्वोक्तमार्गेण तुष्टुवुः स्तवनेन च॥४४॥

दद्युर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च। संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह॥४५॥

श्रीभगवान् कहते हैं–"हे सुन्दरी! जो कोई मूढ़ व्यक्ति ये समस्त द्रव्य तुम्हारे ऊपर रखेगा, वह दिव्य १०० वर्ष तक कालसूत्र नरक में नरक यातना भोग करेगा।" हे नारद! भगवान् यह कहकर मौन हो गये। वसुधा के गर्भ से तेजस्वी मंगल ग्रह उत्पन्न हो गया। देवगण ने मिल कर हरि के आज्ञानुसार काण्वशाखोक्त ध्यान द्वारा देवी की पूजा किया तथा सभी ने काण्वशाखोक्त स्तव के अनुसार देवी का स्तव किया। उन्होंने मूलमन्त्रोच्चार करके नैवेद्यादि देवी को अर्पित किया। इस प्रकार देवी वसुधा जगत्पूज्या तथा स्तुति योग्य हो गईं। मूलमन्त्र का उच्चारण करके नैवेद्यादि वस्तु प्रदान किया गया। एवंविध त्रैलोक्य में पृथिवी पूजा की गयी॥४२-४५॥

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किंवा तस्य मूलं च किं वद। गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम॥४६॥

देवर्षि नारद कहते हैं–इन देवी का ध्यान, स्तवन, मूलमन्त्र कहिये। यह तो सभी पुराणों में गूढ़ है। इसे सुनने हेतु मुझे कुतूहल हो रहा है॥४६॥

नारायण उवाच

आदौ च पृथिवीदेवी वराहेण सुपूजिता। ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्ततश्च पृथुना पुरा॥४७॥
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः। ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद॥४८॥

श्री नारायण कहते हैं– पूर्वकाल में प्रथमतः पृथिवी देवी ने वराहदेव की पूजा किया था। उस समय सभी मुनीन्द्र लोग, मनु तथा मानव ने उनकी पूजा किया। हे नारद! अब मैं उनका ध्यान, स्तव तथा मन्त्र कहता हूं। सुनो!॥४७-४८॥

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा।[१] इत्यनेन तु मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा॥४९॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम्॥५०॥

रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे॥५१॥

मन्त्र है–"ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा।" इसी मन्त्र से पूर्वकाल में विष्णु ने वसुधा की पूजा किया था। (मतान्तर से मन्त्र है "ॐ ह्रीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा")। तदनन्तर सभी मुनिगण ने मनु तथा नारदादि ने पूजा किया। इनका ध्यान है–देवी वसुधा का वर्णन श्वेत चम्पा के समान है। उनकी

१. "ॐ ह्रीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहेत्यनेन पूजिता" इति पाठश्च दृश्यते।

प्रभा सैकड़ों चन्द्र के समान है। उनका सर्वांग चन्दन लिप्त है। वे सभी प्रकार के आभूषणों से भूषिता हैं। ये देवी सभी प्रकार के रत्नों की आधार, रत्नगर्भा, रत्नों की खानों से पूर्ण हैं। इनके परिधान के वस्त्र अग्नि के समान चमकते तथा शुद्ध हैं। ये मन्द हास्य से युक्त हैं। इन सर्ववन्दिता देवी का भजन करें।।४९-५१।।

ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैर्वै पूजिता भवेत्।
स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेव च॥५२॥

हे विप्रेन्द्र! इस ध्यान द्वारा वसुधा देवी की पूजा सभी लोग करते हैं। हे विप्रेन्द्र! अब तुम काण्वशाखोक्त स्तवन श्रवण करो।।५२।।

विष्णुरुवाच

यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे। जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे॥५३॥
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे स्थिरे॥५४॥
सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे। सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके क्षिते॥५५॥
मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे। मङ्गलार्थे मङ्गलांशे मङ्गलं देहि मे परम्॥५६॥

श्रीविष्णुदेव कहते हैं–हे देवी! जयप्रदे! तुम यज्ञवाराह की पत्नी हो। हे जये! तुम जयाधार, जयशील तथा जयप्रदा हो। तुम सर्वाधार, सर्वबीज, सर्वशक्तियुक्त हो। हे देवि! तुम समस्त कामना प्रदान करने वाली हो। कृपा करके सभी इष्ट वस्तु प्रदान करो। हे स्थिर रूप से स्थिता वसुधा! तुम सबका आलयस्वरूप, सभी प्रकार की फसलों से युक्त, सभी प्रकार का अन्न प्रदान करने वाली हो। तुम समस्त मंगलों की आधारभूता हो, सबका मंगल ही तुम्हारा प्रयोजन है, तुम मंगल की अंशरूपा हो। मुझे परम मंगल प्रदान करो।।५३-५६।।

पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि। पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे॥५७॥
स्त्रीरत्नरूपे रत्नौघे रत्नसारवरप्रदे॥५८॥

हे देवी! तुम पुण्यस्वरूपा, पुण्य की बीजरूपा तथा सनातनी हो। तुम पुण्याश्रय (पुण्याधार), पुण्यात्माओं का मन्दिर रूप, पुण्यप्रदा, भवरूपा, स्त्रीरत्नरूपा, रत्नों के ढेर से युक्त, रत्नसारप्रदा तथा वरप्रदा हो।।५७-५८।।

भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे। भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि वसुंधरे॥५९॥

हे देवी! हे भूमि! तुम भूमिपालकों की निखिल सर्वस्व धन रूपा तथा राजकुल परायणा (भूमिपाल परायणा) और भूमिपालगण की अहंकार रूपा हो। हे भूमिप्रदा! तुम मुझे भूमि प्रदान करो।।५९।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तां संपूज्य च यः पठेत्।
कोट्यन्तरे जन्मनि च संभवेद्भूमिपेश्वरः॥६०॥

भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः। दत्तापहारजात्पापान्मुच्यते ते नात्र संशयः॥६१॥

जो मानव देवी भूमि (वसुधा) की पूजा करके यह महान् पवित्र स्तवपाठ करता है, वह करोड़ों जन्म तक पृथिवी का अधीश्वर हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है। इस स्तवपाठ मात्र से व्यक्ति भूमिदान का फल लाभ कर लेते हैं। किसी की दान दी गई भूमि का हरण करने से जो पातक संचित होता है, यह स्तव पाठ करने से ही वह उस पातक से मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।।६०-६१।।

अम्बुवीचीभूखननात्पापान्मुच्येत स ध्रुवम्।
अन्यकूपे कुपवजात्पापान्मुच्येत स ध्रुवम्॥६२॥

परभूश्राद्धजात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। भूमौ वीर्यत्यागपापाद्दीपादिस्थापनात्तथा॥६३॥
पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पठनान्मुने। अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥६४॥

इति श्री० म० प्र० नारदना० पृथिव्युपाख्याने पृथिवीस्तोत्रं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

जो पराये कूप का उसकी अनुमति के बिना खनन करता है, अम्बुवीची योग काल में भूमि खोदता है तथा अन्य की भूमि पर श्राद्ध करता है, उसके ये सभी पातक समूह इस स्तव पाठ से समाप्त हो जाते हैं। धरती पर वीर्यपात करने से तथा सीधे भूमि पर दीपक जलाने का जो पातक है, इस स्तवपाठ मात्र से उससे मुक्ति मिल जाती है। हे मुनिवर! जो प्राज्ञ (बुद्धिशाली) इस स्तव का पाठ करता है, वह सौ अश्वमेध यज्ञ का फललाभ कर लेता है।।६२-६४।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

अथ नवमोऽध्यायः

पृथिवी का उपाख्यान वर्णन तथा भूमिदान के फल का कथन

नारद उवाच

भूमिदानकृत पुण्यं पापं तद्धरणेन यत्। परभूमौ [1]श्राद्धपापं कूपे कूपदजं तथा॥१॥
अम्बुवीचीभूखननबीजत्यागजमेव च। दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः॥२॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्प्रश्नतः परम्। यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदां वर॥३॥

१. ख. ०द्धरूपं।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे श्रेष्ठ वेदज्ञ! भूमि दान द्वारा जो पुण्य मिलता है, भूमि हरण करने का जो पाप है, अन्य की भूमि पर श्राद्ध करने से अथवा कूपादि खनन करके उसकी प्रतिष्ठा करने से, अम्बुवाची के समय मिट्टी खोदने से किंवा भूमि पर वीर्यपात करने से अथवा भूमि पर दीप आदि स्थापित करने से जो पाप होता है, वह मैं यत्नतः सुनने की इच्छा कर रहा हूं। इसके अतिरिक्त पृथिवी से सम्बन्धित अन्य जो पाप समुद्भूत होते हैं, उनके प्रतिकार का जो कुछ उपाय है, वह भी कृपा पूर्वक कहिये।।१-३।।

नारायण उवाच

वितस्तिमानां भूमिं च यो ददाति च भारते।
संध्यापूताय विप्राय स यायाद्विष्णुमन्दिरम्।।४।।
भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति यः। भूमिरेणुप्रमाणे च वर्षे विष्णुपदे वसेत्।।५।।
ग्रामं भूमिं च धान्यं च यो ददात्याददाति यः।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ वैकुण्ठवासिनौ।।६।।

श्री नारायण कहते हैं–इस भारतभूमि में जो मनुष्य १२ अंगुल भूमि भी श्रद्धायुक्त होकर सन्ध्यापरायण विप्र को देता है, वह मनुष्य पुण्यात्मा है तथा अन्त में वह विष्णुलोक जाता है। जो व्यक्ति अत्यन्त उपजाऊ भूमि ब्राह्मण को देता है, वह उतने वर्ष पर्यन्त विष्णुपद में स्थित रहता है, जितने बालुका कण उस भूमि में हैं। जो ग्राम, भूमि, धान्य इत्यादि दान करता है तथा जो इसे दान द्वारा ग्रहण करता है, वे दोनों व्यक्ति सर्वपाप रहित होकर मुक्तिलाभ करते हैं तथा वैकुण्ठ गमन करते हैं।।४-६।।

भूमिं ददाति यः काले यः साधुश्चानुमोदते। स प्रयाति च वैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः।।७।।

भूमिदान देते समय जो व्यक्ति इसका अनुमोदन करता है, वह भी अपने मित्र तथा बान्धवों के साथ वैकुण्ठधाम प्रयाण करता है। (अनुमोदन = दान देने हेतु उत्साहित करने वाला, दान की प्रेरणा देने वाला, दान की प्रशंसा करने वाला)।।७।।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। कालसूत्रे तिष्ठति स यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।८।।
तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः। सुखहीनो[1] दरिद्रः स्यादन्ते याति च रौरवम्।।९।।
गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति सः।
दिव्यं वर्षशतं चै कुम्भीपाके च तिष्ठति।।१०।।

जो मनुष्य अपने द्वारा दिये गये अथवा अन्य द्वारा दिये गये भूखण्ड का (इस प्रकार ब्राह्मण को प्रदत्त भूमि का) हरण करता है, वह तब तक कालसूत्र नरक में पड़ा रहेगा, जब तक धरती पर चन्द्र-

१. क. पुत्रही०।

सूर्य का अस्तित्व है। उस व्यक्ति के पुत्र-पौत्रादि भी भूमि रहित, श्रीभ्रष्ट तथा पुत्र दीन एवं दरिद्र रहते हैं। मृत्यु के पश्चात् वे रौरव नरक जाते हैं। जो मनुष्य गौओं के आने-जाने के मार्ग को अवरुद्ध करता हैं अर्थात् गोचर भूमि हड़पता है और उस पर अपने लिये खेती करता है, वह १०० दिव्य वर्षों तक कुंभीपाक नरक में पड़ा रहता है।।८-१०।।

गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गं सत्यं ददाति यः। स च तिष्ठत्यसीपत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥११॥
न पञ्चपिण्डमुद्धत्य स्नाति कूपे परस्य यः। प्राप्नोति नरकं चैव न स्नानफलमेव च॥१२॥
कामी भूमौ च रहसि बीजत्यागं करोति यः। स्निग्धरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे॥१३॥

गोशाला तथा तालाब को भग्न करके आवागमनार्थ मार्ग बनाने वाला, उस भूमि में कृषि कार्य करने वाला तब तक के लिये असिपत्र नामक नरक में फेंका जाता है, जब तक १४ इन्द्रों का समय समाप्त न हो जाये। जो व्यक्ति दूसरे के स्वामित्व वाले कूप के जल से बिना उसमें से ५ पिण्ड मिट्टी निकाले स्नान करता है, उसे नरक प्राप्ति होती है तथा स्नानफल नहीं मिलता। जो कामी पुरुष भूमि पर वीर्यपात करता है, उस वीर्य से आर्द्र हो गई भूमि में जितने बालू के कण हैं, वह उतने वर्षों तक रौरव नरक में निवास करता है।।११-१३।।

अम्बुवीच्यां भूखननं यः करोति च मानवः।
स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम्॥१४॥
परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः।
पुष्करिण्यां च लुप्तायां तां ददाति च यो नरः॥१५॥
सर्वं फलं परस्यैव तप्तसूर्मि व्रजेत्तु सः। तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥१६॥

जो व्यक्ति अम्बुवीची योगकाल में भूमि खनन करता है, उसे ४ युग पर्यन्त कृमिदंश नरक में निवास करना होगा। जो व्यक्ति अन्य द्वारा बनाये गये कूप तथा बावली के लुप्त हो जाने पर उसे बना कर उस पर अपना नामपट्ट लगाता है, वह तब तक तप्तभूमि नरक में रहेगा, जब तक १४ इन्द्रों का समय समाप्त नहीं होता। साथ ही उसे उस कूप तथा बावली के जीर्णोद्धार का फल नहीं मिलेगा। वह फल उसके पूर्व निर्माता को ही मिलेगा।।१४-१६।।

परकीयतडागे च पङ्कमुद्धृत्य चोत्सृजेत्। रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः॥१७॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः।
श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम्॥१८॥

जो दूसरे के बनवाये तालाब का कीचड़ आदि से उद्धार करके उसका जीर्णोद्धार करता है, उस तालाब के जितने बालुका कण हैं, वह उतने काल तक ब्रह्मलोक में ही निवास करता है। जो मानव अन्य की भूमि पर श्राद्ध करता है, वह भूमि के स्वामी को श्राद्धान्न अवश्य प्रदान करे। जो ऐसा नहीं करता, वह निश्चित रूप से नरकगामी होगा।।१७-१८।।

भूमौ दीपं योऽर्पयति सोऽन्धः सप्तसु जन्मसु।
भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत्॥१९॥
मुक्तामाणिक्यहीरं च सुवर्णं च मणिं तथा। यश्च संस्थापयेद्भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु॥२०॥

जो भूमि पर दीपक रखता है, वह सात जन्मों तक अन्धा रहेगा (तभी दीपक रखते समय उसके नीचे मृत्तिका अथवा चावल के दाने रखा जाता है)। बिना आधार के शंख को भूमि पर रखने वाला परजन्म में कुष्ठरोगी होगा। (आधार = तिपाई)। मोती, माणिक, हीरा, स्वर्ण, मणि को भूमि पर न रखे। ऐसा मनुष्य ७ जन्म पर्यन्त दरिद्र रहेगा।।१९-२०।।

शिवलिङ्गं [1]शिलामर्च्यां यश्चार्पयति भूतले। शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षे स तिष्ठति॥२१॥
[2]सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्।
यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके युगम्॥२२॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनां तथा। यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम्॥२३॥

शिवलिंग, शालग्राम शिला को पृथिवी पर रखने वाला सौ मन्वन्तर काल तक कृमिभक्ष नरकवासी होगा। वेदोक्त सूक्त, मन्त्र, शालग्राम शिला का चरणामृत, पुष्प, तुलसीदल कदापि भूमि पर न रखे। ऐसा मनुष्य चार युग पर्यन्त नरक में पड़ा रहता है। भूमि पर जपमाला, पुष्पमाला, कर्पूर, गोरोचन न रखे। ऐसा करने वाला मूढ़ व्यक्ति अवश्य नरकगामी होगा।।२१-२३।।

मुने चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्। संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि॥२४॥

हे मुनिप्रवर! चन्दन की लकड़ी, रुद्राक्ष, कुश तथा कुशमूल जो भूमि पर रखता है, वह मन्वन्तर पर्यन्त नरक में पड़ा रहेगा! यह निश्चित जाने।।२४।।

पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेत्तु यः। न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः॥२५॥
ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्। ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं स्यात्सर्ववर्णकैः॥२६॥
यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण नहि सिञ्चति।
स याति तप्तसूर्मिं च संतप्तः सर्वजन्मसु॥२७॥

पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमि पर रखने वाला मनुष्य अगले जन्म में ब्राह्मण वंश में उत्पन्न नहीं होगा। वह ब्रह्महत्या पातक भागी होगा। सभी द्विजगण ग्रंथियुक्त यज्ञोपवीत की अवश्य पूजा करें। यज्ञान्त में यज्ञभूमि को दुग्ध से सिंचित करे। ऐसा जो नहीं करता, वह तप्तभूमि नरक में जाता है तथा सभी जन्मों में उसका शरीर सन्तप्त रहता है।।२५-२७।।

भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः।
जन्मान्तरे महापापी सोऽङ्गहीनो भवेद्ध्रुवम्॥२८॥

१. क. शिवाम०।
२. क. शुक्तिं पत्रं सि०।

भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता। वसु रत्नं या दधाति वसुधा च वसुंधरा॥२९॥
हरेरूरौ च या जाता सा चोर्वी परिकीर्तिता। धरा धरित्री धरणी सर्वेषां धरणात्तु या॥३०॥
इज्या च यागभरणात्क्षोणी क्षीणालये च या।
महालये क्षयं याति क्षितिस्तेन प्रकीर्तिता॥३१॥
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थितिरूपतः। विश्वंभरा तद्धरणाच्चान्ताऽनन्तरूपतः॥३२॥
पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्मही मुने॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० पृथिव्युपाख्यानं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

ग्रहण काल तथा भूकम्प काल में भूमिखनन कदापि न करे। ऐसा करने वाला परजन्म में अवश्य अंगहीन होगा। भवनों का आधाररूप होने के कारण धरती को **भूमि** कहते हैं। यह वसु अर्थात् धन धारण करने के कारण ही **वसुधा** है तथा **वसुन्धरा** भी है। यह महाविराट् प्रभु के उरु से उत्पन्न है तभी **उर्वी** कही गयी है। सबकी शरणस्थली होने के कारण यही **धरित्री** एवं **धरणी** है। यज्ञों का भरण-पोषण पृथिवी से होता है। तभी इसे **इज्या** कहते हैं। यह प्रलय में क्षीण हो जाता है, अतः इसे **क्षोणी** कहा गया है। महाप्रलय में सर्वथा नष्ट होने के कारण यह **क्षिति** है। यह कश्यपनन्दिनी होने के कारण **काश्यपी**, स्थिर होने के कारण **अचला**, सर्व विश्वसमूह का भरण करने के कारण **विश्वम्भरा**, अन्नरूपा होने के कारण यही **अनन्ता** कही गई है। हे मुनिवर! यह पृथु की कन्या होकर **पृथिवी** कही गई। यह अत्यन्त विस्तार वाली है। अतः इसे **मही** कहा गया॥२८-३३॥

॥नवम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ दशमोऽध्यायः

गंगा का उपाख्यान, भगीरथ द्वारा गंगा को लाना, गंगा स्तव तथा गंगा पूजा आदि का वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम्। गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर॥१॥
भारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी। विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदी सती॥२॥

कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा। तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम्॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! मैंने आपसे अत्यन्त मनोहर पृथिवी उपाख्यान सुन लिया। अब आप गंगा का उपाख्यान कहिये। ये सुरेश्वरी गंगा सरस्वती के शाप के कारण भारत में आईं। ये विष्णुस्वरूपा तथा स्वयं सती एवं विष्णुपदी कही जाती हैं। ये गंगा किसकी प्रार्थना तथा प्रेरणा से भारत में अवतीर्ण हैं, यह पापनाशक, पुण्यप्रद तथा शुभ प्रसंग को सुनने की इच्छा है। कृपया कहिये।।१-३।।

नारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः। तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे॥४॥
सत्यस्वरूपः सत्येष्ठः सत्यवाक्सत्यभावनः। सत्यधर्मविचारज्ञः परं[१] सत्ययुगद्भोवः॥५॥
एकस्यामेव पुत्रश्च बभूव सुमनोहरः। असमञ्ज इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्धनः॥६॥
अन्या चाऽऽराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी। बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य तु वरेण च॥७॥

गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा।
तद्दृष्ट्वा च शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः॥८॥

श्री नारायण कहते हैं–सूर्यवंशी श्रीमान् राजराजेश्वर सगर थे। उनकी पत्नियां थीं वैदर्भी तथा शैव्या। वे दोनों अत्यन्त मनोहर थीं। ये राजा सत्ययुग में जन्मे थे। ये सत्यरूप, सत्य को प्रिय मानने वाले, सत्यवक्ता, सत्य-धर्म विचारज्ञ थे। शैव्या से इन राजा को कुल बढ़ाने वाला एक पुत्र असमंजस नाम वाला जन्मा। सगर राज की अन्य पत्नी वैदर्भी ने पुत्रकामना से शंकर की आराधना किया था। कालान्तर में शिव के वर से यह वैदर्भी गर्भवती हो गई। गर्भ के १०० वर्ष व्यतीत होने पर उसने एक मांसपिंड को जन्म दिया। यह देख कर यह रानी शिव का ध्यान करते-करते उच्च स्वर से रुदन करने लगीं।।४-८।।

शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह। चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्त्रधा॥९॥
सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाजुष्टकलेवराः॥१०॥

तब शंभु ब्राह्मण रूप में रानी के पास आये। उन्होंने इस मांसपिण्ड को ६०००० भाग में विभक्त कर दिया। इसके प्रत्येक भाग से महाबली, महापराक्रमी, ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य के समान प्रभायुक्त एक-एक पुत्र जन्मे।।९-१०।।

कपिलर्षेः कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते।
राजो रुरोद तच्छुत्वा जगाम मरणं[२] शुचा॥११॥

तपश्चकारासमञ्जो गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः॥१२॥

---

१. क. परमत्त्वगुणोद्भ०।
२. क. ०म च वनं शु०।

दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात्।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः[१]॥१३॥

अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं मृतश्च कालयोगतः॥१४॥

ये सभी ६०००० पुत्र महर्षि कपिल की क्रोधदृष्टि से भस्मीभूत हो गये। राजा सगर भी यह सुनकर रोते हुए मृत हो गये। तदनन्तर उनके पुत्र असमंजस ने गंगा को पृथिवी पर लाने के लिये एक लाख वर्ष तप किया, परन्तु कालयोग से मृत हो गये। तत्पश्चात् इसी उद्देश्य से उनके पुत्र दिलीप ने एक लाख वर्ष तप किया, परन्तु कालयोग से वे भी मृत हो गये। उनके पुत्र अंशुमान ने भी इसी लक्ष्य के लिये एक लाख वर्ष तक तप किया, परन्तु वे भी कालयोग से मृत हो गये।।११-१४।।

भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः। वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः॥१५॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणात्। ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥१६॥

उनके पुत्र भगीरथ महान् भागवत तथा बुद्धिशाली थे। ये वैष्णव, विष्णुभक्त तथा अजर-अमर थे। ये महान् गुणी भी थे। इन्होंने भी गंगा को पृथिवी पर ले आने हेतु एक लाख वर्ष तप किया। इससे करोड़ों सूर्य के समान प्रभाशाली प्रसन्नमुख श्रीकृष्ण का दर्शन इन राजा ने प्राप्त किया।।१५-१६।।

द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषकम्। परमात्मानमीशं च भक्तानुग्रहविग्रहम्॥१७॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम्॥१८॥

निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥१९॥

वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्। तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः॥२०॥

ये प्रभु द्विभुज, मुरलीधारी, किशोर, गोपवेश में थे। ये परमात्मा ईश्वर हैं। इन्होंने भक्त पर कृपा करने हेतु मूर्त्ति धारण किया था। ये स्वेच्छामय, परब्रह्म, परिपूर्ण तथा विभु हैं। इनकी स्तुति ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवगण तथा मुनिगण नतशिर होकर करते हैं। ये प्रभु सर्वदा निर्लिप्त, सब कार्यों के साक्षी, निर्गुण, प्रकृति से परे हैं। इनका मुखमण्डल स्मित मुस्कान युक्त होने के कारण प्रसन्नतापूर्ण रहता है। ये भक्त पर विशेष कृपालु रहते हैं। इन्होंने अग्नि के समान चमकीला वस्त्र धारण किया था। इनके अंग रत्नमय आभूषणों से भूषित थे। राजा भगीरथ उनकी अनिर्वचनीय रूपराशि का दर्शन पाकर पुनः-पुनः उनको प्रणाम करते हुए स्तव करने लगे।।१७-२०।।

लीलया च वरं प्राप्य वाञ्छितं वंशतारकम्।
तत्राऽऽजगाम गङ्गा सा स्मरणात्परमात्मनः॥२१॥

---

१. यदि च बहुषु पुस्तकेषु तपश्चकारासमञ्जा इत्येतं श्लोकानन्तरं दिलीपस्तस्य तनय इत्ययं श्लोकः, ततश्च अंशुमांस्तस्य पुत्रश्चेति श्लोको दृश्यते; तथापि अंशुमतिऽसमञ्जपुत्रत्वं दिलीपस्य चांशुमत् पुत्रत्वं सर्वसम्मतमिति विपरीतक्रमेण श्लोकवितौ निवेशितौ।

तं प्रणम्य प्रतस्थौ च तत्पुरः संपुटाञ्जलिः। उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम्।
कुर्वतीं स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम्॥२२॥

भगीरथ को अपने वंश के उद्धारार्थ कृष्ण से वरलाभ भी हो गया। उस समय कृष्ण ने गंगा का स्मरण किया और गंगा वहां तत्काल उपस्थित हो गईं। उन्होंने कृष्ण को प्रणाम किया तथा उनके आगे हाथ जोड़ कर खड़ी हो गईं। वे रोमांचित होकर भगवान् की स्तुति करने लगीं। तब भगवान् ने उनका मनोहर रूप देख कर उन स्तव करती भगवती से कहा-॥२१-२२॥

श्रीकृष्ण उवाच

भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि॥२३॥
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाऽऽज्ञया।
त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम्॥२४॥
विभ्रतो दिव्यमूर्तिं ते दिव्यस्यन्दनगामिनः।
मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः॥२५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं-हे सुरेश्वरी! भारती सरस्वती ने तुमको जो शाप दिया था, उसके कारण तुम यथाशीघ्र भारत जाओ। यह मेरी आज्ञा है। तुम वहां जाकर सगर के सभी पुत्रों को पवित्र करो। तुम्हारे स्पर्शमात्र से वे पवित्र होकर मेरे लोक आयेंगे। वे मेरे लोक में दिव्य रूपधारी, दिव्य रथ-अश्व पर आरूढ़ होकर मेरे पार्षद होंगे। वे सर्वकाल में निरामय (रोग रहित, दुःख रहित) रहेंगे॥२३-२५॥

कर्मभोगं समुच्छिद्य कृतं जन्मनि जन्मनि।
नानाविधं महत्स्वल्पं पापं स्याद्भारते नृभिः॥२६॥
गङ्गायाः स्पर्शवातेन नश्यतीति श्रुतो श्रुतम्।
स्पर्शनं दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः॥२७॥
मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्।
कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्॥२८॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
नानाजन्मार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च॥२९॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम्।
पुण्याहस्नानजं पुण्यं वेदा नैव विदन्ति च॥३०॥

उनका जन्म-जन्मान्तर का कर्मभोग उच्छिन्न (नष्ट) हो जायेगा। श्रुति का यह वाक्य सुना गया है कि मनुष्यों की कोटि जन्मार्जित पापराशि भारत में गंगा की पवित्र वायु के स्पर्श मात्र से नष्ट हो जाती है। इन गंगा के दर्शन-स्पर्शन से पुण्य भी दस गुणित बढ़ जाते हैं। जिस दिन कोई पुण्यतिथि न भी हो,

उस दिन भी गंगाजल से स्नान करने वाले मनुष्यों की शतकोटि जन्मार्जित पापराशि तत्काल एक साथ नष्ट हो जाती है। यह मैंने श्रुति से जाना है। यदि मनुष्य द्वारा ब्रह्महत्या पाप जानबूझ कर भी किया गया हो तथा असंख्य जन्मार्जित पातक समूह हो, वह भी गंगाजल में डुबकी लगाने मात्र से नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य को यह मौसल स्नान से भी फल मिलता है। (मौसल स्नान = डुबकी लगाने मात्र से)। अतः पुण्यतिथियों पर स्नान का जो फल मिलता है, उसका वर्णन वेद भी नहीं कर पाते।।२६-३०।।

केचिद्विदन्ति ते देवि फलमेव यथागमम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव विदन्ति च।।३१।।
सामान्यदिवसस्नानसङ्कल्पं शृणु सुन्दरि। पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम्।।३२।।
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने। अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने।।३३।।
ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे। चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च।।३४।।
अक्षयायां च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम्। असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम्।।३५।।

हे देवी! कतिपय शास्त्रों के अनुसार उसका फल सामान्य रूप से कहा गया है। इस फल को ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवता भी नहीं कह सकते। हे सुन्दरी! सामान्य दिनों में स्नान का जो संकल्प है, वह सुनो। जो गंगाजल में मौसल स्नान करते हैं, उनको १० गुना फल मिलता है। संक्रान्ति स्नान द्वारा इससे ३० गुना फल लाभ होता है। दक्षिणायन की संक्रान्ति पर स्नान से इसका दूना फल लाभ होता है। अमावस्या स्नान का फल संक्रान्ति फल के तुल्य ही जाने। उत्तरायण संक्रान्ति काल में स्नान का फल दक्षिणायन संक्रान्ति स्नान से १० गुना मिलता है। चातुर्मास की पूर्णिमा पर स्नान का तो अनन्त पुण्य मिलता है। अक्षय तृतीया के दिन वहां का स्नानफल तो वेद भी नहीं कह सके। वहां इस अवसर पर स्नान-दान का अनन्त फल है।।३१-३५।।

सामान्यदिवसे स्नानं ध्यानाच्छतगुणं फलम्। मन्वन्तरेषु देवेशि युगादिषु तथैव च।।३६।।
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च।
तथाऽशोकाष्टमीतिथ्यां नवम्यां च तथा हरेः।।३७।।
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम्। [1]दशपापहरायां तु दशम्यां मुहत्फलम्।।३८।।
नन्दोपमं च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुगुर्णम्। ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति।।३९।।
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतो भवेत्। चन्द्रसूर्योपरागेषु स्मृतं दशगुणं ततः।।४०।।
पुण्येऽप्यर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम्।
सर्वेषामेव सङ्कल्पो वैष्णवानां विपर्ययः।।४१।।

सामान्य दिनों में भी यहां स्नान करने का फल ध्यान की तुलना में १०० गुना मिलता है। हे देवकुलेश्वरी गंगे! मन्वन्तरा, युगाद्या, माघी सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी तथा रामनवमी के दिन यहां स्नान-दान करने से वैसा ही फललाभ होगा। नन्दा तिथि पर स्नान-दान की अपेक्षा दूना पुण्य होता

१. क. ०शहरादशम्यां च युगाद्यादिसमं फ०।

है। दशहरा के दिन स्नान का फल नन्दातिथि इतना ही होगा। वारुणी के दिन स्नान-दानादि का फल भी नन्दा के ही समान होगा। महावारुणी के दिन गंगा में स्नान-दानादि का फल वारुणी की तुलना में चौगुना होगा। महामहावारुणी पर स्नान (गंगास्नान) का फल उससे भी चौगुना मिलेगा। सामान्यतः गंगास्नान से जो पुण्य संचित होता है, चन्द्रग्रहण के समय स्नान द्वारा कोटि गुणित फललाभ होता है। इससे भी १० गुना फल सूर्यग्रहणकालीन गंगास्नान तथा वहां दान का जाने। अर्द्धोदय योग में गंगास्नान का फल तो सौ गुना अधिक है। अन्य स्नानार्थी लोगों की अपेक्षा वैष्णवगण का संकल्प नितान्त भिन्नवत् कहा गया है।।३६-४१।।

फलसंधानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः। मत्प्रीतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु।।४२।।

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेत्परः।
जीवन्मुक्तं वैष्णवं तं वेदाः सर्वे वदन्ति च।।४३।।

पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकं च परं शतम्। मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम्।।४४।।
भगिनीं भ्रातरं चैव भागिनेयं च मातुलम्। श्वश्रूं च श्वशुरं चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम्।।४५।।

गुरुं च ज्ञानदातारं मित्र च सहचारिणम्।
भृत्यं शिष्यं तथा चेटीं प्रजां स्वाश्रमसंनिधौ।।४६।।

उद्धरेदात्मना सार्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः। मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।४७।।

वैष्णवों में फल पाने की कामना नहीं होती। वे जीवन्मुक्त होते हैं। वे सभी कार्य मेरी प्रसन्नता तथा भक्ति की कामना से करते हैं। गुरुमुख से निर्गत विष्णुमन्त्र जिसके कानों में प्रविष्ट हो गया, वेद उसे जीवन्मुक्त तथा वैष्णवगण में अग्रणी कहता है। जैसे ही कोई व्यक्ति विष्णुमन्त्र ग्रहण करता है, उसके पितापक्ष की पूर्व १०० पीढ़ी के पितर, मातामहपक्ष के भी पूर्व १०० पीढ़ी के पितर, माता, मातामही, बहन, भ्राता, बहनोई, भानजा, सास-ससुर, मामा, गुरुपत्नी, गुरुपुत्र, ज्ञानदाता अन्य लोग, गुरुभाई लोग, उसके भृत्यगण, शिष्यगण, आश्रम के पड़ोसी प्रभृति का उस व्यक्ति के साथ ही उद्धार हो जाता है। विष्णुमन्त्र ग्रहण करते ही मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।।४२-४७।।

तस्य संस्पर्शनात्पूतं तीर्थं च भुवि भारते। तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा।।४८।।
पादोदकस्थानमिदं तीर्थमेव भवेद्ध्रुवम्। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्।।४९।।

उस व्यक्ति के चरणस्पर्श मात्र से भारतीय तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। उस वैष्णव की चरण-धूलि से धरती पावन हो जाती है। उस वैष्णव का चरणजल (पादोदक) जहां पड़ता है, वह स्थल भी तीर्थरूप हो जाता है। यह निश्चित है। जो अन्न विष्णु को निवेदित नहीं किया जाता, वह अन्न मल है, विष्णु को अनिवेदित जल तो मूत्र है।।४८-४९।।

खादन्ति नो वैष्णवाश्च सदा नैवेद्यभोजिनः।
विष्णोर्निवेदितान्नं च नित्यं ये भुञ्जते नराः।।५०।।

पूतानि सर्वतीर्थानि तेषां च स्पर्शनादहो।
विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः॥५१॥
तत्पापानि पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः। तेषां दर्शनमात्रेण पूतं च भुवनत्रयम्॥५२॥

जो वैष्णव सदा नैवेद्य का (विष्णु को अर्पित अन्न = नैवेद्य) भोजन करता है, उस व्यक्ति के स्पर्शमात्र से तीर्थ तक पावन हो जाते हैं। जो विष्णु के पुण्यमय पादोदक का नित्य पान करते हैं, उसके पाप ऐसे भाग जाते हैं, जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भागते हैं। उस व्यक्ति के दर्शन मात्र से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं।।५०-५२।।

विष्णोः सुदर्शनं चक्रं सततं तांश्च रक्षति। मद्गुणश्रवणाद्ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः॥५३॥
गद्गदाः साश्रुनेत्राश्च नरास्ते वैष्णवोत्तमाः। पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम्।
गृहोद्याश्च मयि न्यस्तास्ते नरा वैष्णवोत्तमाः॥५४॥

भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र सतत् ऐसे भक्तों की रक्षा करता रहता है। मेरे गुणों का श्रवण करके जिसके अंग पुलकित होते हैं, वाणी गद्गद् हो जाती है, नेत्र में अश्रु उमड़ पड़ते हैं (अश्रु = प्रेमाश्रु से तात्पर्य है), वे मनुष्य ही उत्तम वैष्णव हैं। जो मेरे प्रति निरन्तर पुत्र से भी अधिक स्नेह करते हैं, वे वैष्णवोत्तमगण अपना गृह आदि सब कुछ मुझ पर छोड़ देते हैं। अर्थात् सबके साथ शरणागत हो जाते हैं। उनका सारा भार मुझ पर ही रहता है।। तृण से लेकर ब्रह्मा तक समस्त सचराचर मुझ कृष्ण से उत्पन्न है। मैं सबका स्वामी हूं। ऐसा जानने वाले ही उत्तम वैष्णव होते हैं।।५३-५४।।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमेवेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः॥५५॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रलये मयि लीयन्ते चेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः॥५६॥
तेजः स्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम्॥५७॥
सर्वे प्राकृतिका मत्त आविर्भूतास्तिरोहिताः।
इति जानन्ति ये देवि ते नरा वैष्णवोत्तमाः॥५८॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकंधरा॥५९॥

अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड तथा उन-उन ब्रह्माण्डों के ब्रह्मा-शिव-विष्णु आदि सब कुछ प्रलयकाल में मुझमें ही लीन हो जाते हैं। यह जो वैष्णव जानते हैं, वे ही उत्तम वैष्णव हैं। मैं परम तेजस्वरूप, भक्तों पर कृपा करने हेतु मूर्त्तिधारी, स्वेच्छामय, निर्गुण, निरीह, प्रकृति से परे हूं। यह प्राकृत सृष्टि मुझसे ही आविर्भूत होकर मुझमें तिरोहित हो जाती है। हे देवी! यह जानने वाले मनुष्य ही उत्तम वैष्णव कहे गये हैं। उन दोनों के समक्ष यह कहने के उपरान्त श्रीकृष्ण मौनी हो गये। तदनन्तर भक्तिभाव से नतशिर होकर गंगा त्रिपथगा ने कहा-।।५६-५९।।

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा।
तवाऽऽज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव सांप्रतम्॥६०॥

यानि कानि च पापानि मह्यं दास्यन्ति पापिनः।
तानि मे केन नश्यन्ति तदुपायं वद प्रभो॥६१॥

देवी गंगा कहती हैं–हे देव! सरस्वती के शाप तथा आपकी आज्ञा का पालन करते हुए एवं राजकुलतिलक भगीरथ की तपस्या के कारण यदि मुझे भारत में ही अवतीर्ण होना पड़ता है, तब पापीगण तो अपने चाहे जैसे पाप होंगे, मुझमें ही अर्पित करेंगे। उन पातकों से मुझे कैसे छुटकारा मिल सकेगा? हे प्रभो! यह उपदेश दीजिये।।६०–६१।।

कति कालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते।
कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमं पदम्॥६२॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो॥६३॥

हे देव! सर्वेश! मुझे कितने काल पर्यन्त भारत में स्थित रहना होगा? मैं कब आपके परम विष्णुपद को पुनः प्राप्त कर सकूंगी? हे प्रभु! आप तो सर्वज्ञ हैं। मुझे जो-जो कामना है, वह सब आपको विदित है। आप सबके अन्तरात्मा के ज्ञाता हैं। हे प्रभो! वह उपाय कहिये, जिससे मेरी कामना (विष्णुपद लाभ की) पूर्ण हो सके?।।६२–६३।।

श्रीकृष्ण उवाच

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदो भविष्यति॥६४॥
ममैवांशः समुद्रश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भुवि॥६५॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते।
सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते॥६६॥
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्या भुवि शापेन भारते॥६७॥
नित्यं वारिधिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम्। त्वमेव रसिका देवी रसिकेन्द्रेण संयुता॥६८॥
त्वां तोषयन्ति स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च।
भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः॥६९॥

श्रीकृष्णदेव कहते हैं–हे सुरेश्वरि गंगा! मैं तुम्हारी सभी कामना को जानता हूं। तुम्हारा पति होगा यह रुद्ररूप लवण-सागर। तुम लक्ष्मी स्वरूपा हो। सागर मेरा अंश है। अतः विदग्ध (चतुर विद्वान्) नायक के साथ विदग्ध नायिका का संयोग अत्यन्त गुणमय होगा। भारत में सरस्वती आदि जितनी भी नदी हैं, उनके संगम की तुलना में तुम्हारा संगम पाने से लवण समुद्र अत्यन्त प्रसन्न होगा। हे देवेशी! भारती सरस्वती के शाप के कारण आज से लेकर ५००० वर्ष पर्यन्त ही तुम भारतभूमि पर अवस्थित रहोगी। तुम तो समुद्र के साथ सुरत (मिलन) क्रीड़ा में नित्य रत रहोगी। तुम रसिका हो।

अतः इस सुरसिक नागर समुद्र के साथ सतत् मिली रहोगी। भारत के निवासी मनुष्यगण तुम्हारा स्तव भागीरथी कृत स्तव से करेंगे तथा वे भक्तिभाव से तुम्हारा पूजन करेंगे।।६४-६९।।

ध्यानेन कौथुमोक्तेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति।
यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।७०।।
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।७१।।

सहस्रपापिनां स्नानाद्यात्पापं ते भविष्यति। मद्भक्तदर्शने तावत्तदैव हि विनश्यति।।७२।।
पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्तव। मन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनश्यति।।७३।।

जो व्यक्ति नित्य कौथुम शाखा में कहे विधान से तुम्हारा ध्यान करके नित्य पूजा करेंगे तथा प्रणाम (प्रदक्षिणा) आदि करेंगे, उन महात्माओं को अश्वमेध के समान फल मिलेगा। इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। यदि कोई व्यक्ति गंगा से १०० योजन दूर रह कर भी गंगा-गंगा कहेगा, वह समस्त पापों के ढेर से मुक्त होकर मुक्ति पाकर विष्णुलोक जायेगा। सहस्रों पापियों के स्नान द्वारा तुम्हारे जल में जो पातक संचित होंगे, वे सभी मेरे एक भक्त का दर्शन मिल जाने मात्र से नष्ट हो जायेंगे। हजारों पातकियों का शव स्पर्श होने से तुम्हारे भीतर जो पाप संचित होगा, वह सब मेरे मन्त्र की उपासना करने वाले वैष्णव के स्नान मात्र से नष्ट हो जायेगा।।७०-७३।।

यत्र यत्र भवेद्गङ्गे मन्नामगुणकीर्तनम्। तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनात्।।७४।।
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिःसरस्वत्यादिभिः शुभे।
तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र मद्गुणकीर्तनम्।।७५।।

हे गंगे! जहां-जहां मेरे नाम का, गुण का कीर्त्तन होगा, वहीं पर पापनाशार्थ तुम स्थित रहना। हे शुभे! जहां-जहां मेरे गुणों का कीर्त्तन होगा, वहां तुम सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियों के साथ जाना। इससे वह स्थल तत्काल तीर्थ हो जायेगा।।७४-७५।।

यद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी। रेणुप्रमाणं वर्षं च स वैकुण्ठे वसेद्ध्रुवम्।।७६।।
स्नास्यन्ति त्वयि ये भक्ता मन्नामस्मृतिपूर्वकम्।
समुत्सृजन्ति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम्।।७७।।
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम्। असंख्यकं प्राकृतिकं लयं द्रक्ष्यन्ति ते नराः।।७८।।

वहां के बालु का कण स्पर्श करने से पापीगण पवित्र होकर उतने वर्ष तक वैकुण्ठ में निवास करेंगे, जितनी वहां के बालूकणों की संख्या है! जो मेरा नाम स्मरण करते हुए तुम्हारे जल में प्राण त्याग करेंगे, वे मृत्यु के उपरान्त तत्काल हरिपद की प्राप्ति करेंगे। वे चिरकाल तक हरि के यहां पार्षद होकर रहेंगे। वे वहां से असंख्य प्राकृतिक प्रलयों का दर्शन करेंगे (अर्थात् उतने दीर्घकाल तक उनका वहां निवास रहेगा)।।७६-७८।।

मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत्।
प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदस्थ्नां स्थितिस्त्वयि॥७९॥
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मजम्।
तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम्॥८०॥

पुण्यबल के कारण जिसका शव तुम्हारे जल में छोड़ा जायेगा, जब तक उसकी अस्थि तुम्हारे जल में पड़ी रहेगी, तब तक वह वैकुण्ठ में निवास करेगा। तत्पश्चात् मैं उसका कायव्यूह करके उसके शेष स्वकृत कर्मों का भोग कराकर उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान करूंगा तथा अपना पार्षद बना लूंगा॥७९-८०॥

अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत्।
तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम्॥८१॥
अन्यत्र वा [1]त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्।
तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम्॥८२॥

जो तुम्हारे प्रभाव को नहीं जानता, वह अनजान (अज्ञानी) व्यक्ति यदि तुम्हारा जल स्पर्श करते प्राणत्याग कर देता है, उसे भी मैं सारूप्य मुक्ति देकर अपना पार्षद बना लेता हूं। अथवा यदि कोई अन्यत्र भी तुम्हारा नाम स्मरण करते प्राणत्याग करता है, उसे भी मैं सारूप्य मुक्ति प्रदान कर देता हूं। वह मुझमें ही असंख्य प्रलयकाल पर्यन्त लीन रह जाता है॥८१-८२॥

अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्।
तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥८३॥

जो अन्यत्र भी मेरा नाम स्मरण करते प्राणत्याग करता है, उसे मैं ब्रह्मा की आयु पर्यन्त तक के लिये सालोक्य मुक्ति प्रदान कर देता हूं॥८३॥

तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन।
मन्मन्त्रोपासकानां च नित्यं नैवेद्यभोजिनाम्॥८४॥
पूतं कर्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः।
सद्यः स याति गोलोकं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥८५॥

वह व्यक्ति चाहे तीर्थ में मृत हो किंवा अन्यत्र मृत हो, इसमें कोई विशेषता न समझे, जो सदा मेरे मन्त्र की उपासना करता है, नित्य मेरा नैवेद्य भक्षण करता है, वह तो लीला मात्र से (सहजता पूर्वक) त्रैलोक्य को भी पवित्र कर सकने में समर्थ है। वह मेरे पार्षदों के साथ श्रेष्ठ रत्न निर्मित विमान पर आरूढ़ होकर तथा मेरे समान होकर सद्यः गोलोक गमन करता है। यह निश्चित है॥८४-८५॥

---

१. क. ०प्राणान्मन्त्रा०।

मद्भक्तबान्धवा ये ये ते ते पुण्यविधः शुभे।
ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकं च सुदुर्लभम्॥८६॥

यत्र यत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति। जीवन्मुक्ताश्च ते पूता भक्तसंनिधिमात्रतः॥८७॥

हे शुभे! जो कोई भी मेरे भक्त के पुण्यमय बन्धु-बान्धव हैं, वे भी रत्नयुक्त विमानारूढ़ होकर दुर्लभ गोलोक धाम जाते हैं। व्यक्ति ज्ञानी हो, अज्ञानी हो, चाहे जिस अवस्था में प्राणत्याग करे, वह मात्र मेरे भक्तों का साथ करने से ही पावन एवं जीवन्मुक्त हो जाता है।।८६-८७।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च तमुवाच भगीरथम्।
स्तुहि गङ्गामिमां भक्त्या पूजां कुरु च सांप्रतम्॥८८॥

श्री भगवान् ने देवी गंगा से यह कह कर राजा भगीरथ से कहा—"तुम अब भक्ति के साथ गंगा की पूजा तथा स्तुति करो"।।८८।।

भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः।
ध्यानेन कौथुमोक्तेन स्तोत्रेण च पुनः पुनः॥८९॥

श्रीकृष्णं प्रणनामाथ परमात्मानमीश्वरम्। भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं गतो हरिः॥९०॥

भगवती ने भक्ति के साथ भगवती गंगा की पूजा किया। उन्होंने कौथुमीशाखा में कहे गये ध्यान को करके पुनः-पुनः उनकी स्तुति किया। तदनन्तर भगीरथ ने परमात्मा ईश्वर श्रीकृष्ण एवं गंगा को प्रणाम किया। तत्पश्चात् हरि वहां से अन्तर्हित् हो गये।।८९-९०।।

नारद उवाच

स्तोत्रेण केन ध्यानेन केन पूजाक्रमेण च। पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर॥९१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे देव! आप वेदज्ञों में प्रधान हैं। यह कहने की कृपा करिये कि राजा ने किस स्तोत्र से, किस ध्यान से तथा किस पूजाक्रम से गंगा की आराधना किया था?।९१।।

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी।
पादौ प्रक्षाल्य चाऽऽचम्य संयतो भक्तिपूर्वकम्॥९२॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवम्।
संपूजयेन्नरः शुद्धः सोऽधिकारी च पूजने॥९३॥

गणेशं विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम्। वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्नरः॥९४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—मनुष्यगण प्रथमतः स्नान करें। नित्य क्रिया सम्पादन करके धुले वस्त्रद्वय पहनें। संयतभाव से तथा भक्ति के साथ गणपति प्रभृति छः देवगण की पूजा करने से व्यक्ति वस्तुतः पूजाधिकारी होता है। इससे पूर्व पैर धोकर आचमन करके गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव-

शिवा की पूजा करे। गणेश की पूजा विघ्ननाशार्थ, सूर्य की पूजा पापनाशार्थ, अग्नि पूजा अपनी शुद्धि हेतु, विष्णुपूजा मुक्ति हेतु मनुष्य करे।।९२-९४।।

शिवं ज्ञानाय[1] ज्ञानेशं शिवां बुद्धिविवृद्धये।
संपूज्यैतल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा॥९५॥
दध्यावनेन तद्ध्यानं शृणु नारद तत्त्वतः। ध्यानं च कौथुमोक्तं वै सर्वपापप्रणाशनम्॥९६॥

ज्ञानार्थ शिव की, बुद्धिवर्द्धनार्थ भगवती शिवा की पूजा करे। इस पूजन से बुद्धिमान् व्यक्ति को यथोक्त फललाभ होता है। इनकी पूजा न करने वाला विपरीत फल पाता है। हे नारद! कौथुमी शाखा में कहे जिस ध्यान को भगीरथ ने किया था, वह सर्वपातक नाशक है। उस ध्यान को तत्वतः सुनो।।९५-९६।।

श्वेतचम्पकवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्।
कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम्॥९७॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभाजुष्टकलेवराम्॥९८॥
ईषद्धासप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
नारायणप्रियां शान्तां सत्सौभाग्यसमन्विताम्॥९९॥

सर्वपापनाशिनी गंगा श्वेत चम्पा के वर्ण वाली, कृष्ण की मूर्त्ति से उत्पन्न कृष्णतुल्य तथा परम सती हैं। इन्होंने अग्नि शुद्ध रेशमी वस्त्र धारण किया है। ये भगवती रत्नों के निर्मित आभूषणों से भूषिता हैं। ये पूर्ण शारदीय सैकड़ों चन्द्रमा की प्रभा के समान दीप्तिमान शरीर वाली हैं। इनका मुख मन्द मुस्कान से शोभित है। ये सदा सुस्थिर यौवना हैं। ये देवी शान्त, नारायण प्रिया, उत्तम सौभाग्य से समन्विता हैं।।९७-९९।।

बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम्।
सिन्दूरबिन्दुललितां सार्धं चन्दनबिन्दुभिः॥१००॥
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्। पक्वबिम्बसमानैकचार्वोष्ठपुटमुत्तमम्॥१०१॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभाजुष्टदन्तपङ्क्तिमनोहराम्। सुचारुवक्त्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम्॥१०२॥
कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम्।
बृहच्छ्रोणीं सुकठिनां [2]रम्भास्तम्भविनिन्दिताम्॥१०३॥

इन भगवती गंगा के शिर पर सघन केशराशि सुशोभित है। देवी की शोभा की वृद्धि गले में विलम्बित मालती माला कर रही है। इन्होंने चन्दन की बिन्दी के साथ मस्तक पर (ललाट पर) सिन्दूर की बिन्दी भी लगा रखी है। इससे इनका रूप अत्यन्त मनोहर परिलक्षित हो रहा है। नाना

१. ख. ०य तदीनां शि०।
२. ख. ०म्भपरिष्कृता०।

चित्रमय कस्तूरी से बने पत्र उनके गालों की शोभा वर्द्धित कर रहे हैं। उनके ओष्ठपुट तो बिम्बफल की भी शोभा को लज्जित कर रहे हैं। वे अति मनोहर हैं। स्तनद्वय कठोर श्रीफल के आकार वाले हैं। उनकी दंतपंक्ति मुक्ता की पंक्तियों जैसी मनोहर तथा प्रभायुक्त है। मुख अत्यन्त सुन्दर है। भगवती गंगा के नेत्रों की सुचारु वक्र तिरछी चितवन अत्यन्त कटाक्षपूर्ण है। इन देवी के दोनों उरु सुगठित हैं तथा कदली स्तम्भ को भी अपनी शोभा से म्लान कर देने वाले हैं। देवी का नितम्ब विशाल तथा उन्नत है।।१००-१०३।।

स्थलपद्मप्रभाजुष्टपादपद्मयुगं धराम्। रत्नाभरणसंयुक्तं कुङ्कुमाक्तं सयावकम्।।१०४।।
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्। सुरसिद्धमुनीन्द्रादिदत्तार्घ्यैः संयुतं सदा।।१०५।।
तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम्। मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां स्वर्गभोगदम्।।१०६।।

भगवती के दोनों चरण-कमल स्थल कमल जैसे उत्तम शोभा वाले हैं। वे रत्नों के आभरण से सज्जित हैं। वे कुंकुम तथा आलता से रंगे हुए हैं। देवराज इन्द्र इनके चरणों पर मुकुटयुक्त अपना मस्तक झुकाते हैं। अतएव इन्द्र के मस्तक पर स्थित मन्दार पुष्पों के मकरन्द कणों से देवी के चरण अरुणवर्ण हो गये हैं। ये चरण देवता, सिद्धगण तथा मुनियों के अर्घ्यजल से युक्त हैं। तपस्वीगण के मस्तक इनके चरणों पर नत रहते हैं। प्रतीत होता है कि देवी के चरण रूपी कमल पर इन तपस्वीगण का शिर भ्रमरों की श्रेणी जैसा शोभायमान हो रहा है। देवी के ये चरणयुगल अमूल्य हैं, जो मुमुक्षु लोगों को मुक्ति देते हैं। कामनायुक्त भक्तों को ये चरण स्वर्गभोग प्रदान करते रहते हैं।।१०४-१०६।।

वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहविग्रहाम्।
श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम्।।१०७।।

देवी स्वयं वरेण्या हैं। श्रेष्ठ तथा सम्माननीया हैं। वे भक्तों पर अनुग्रहार्थ विग्रह (मूर्त्ति रूपा) हैं। वे वरप्रदा हैं। ये विष्णु पद प्रदान करती हैं। इन विष्णुपदी (विष्णु के पद से जलरूपा निर्गत) सती गंगा का सदा भजन करना चाहिए।।१०७।।

इति ध्यानेन चानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्।
दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचारांश्च षोडश।।१०८।।
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्।।१०९।।
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश।।११०।।
दत्त्वा भक्त्या संप्रणमेत्स्तुत्वा तां संपुटाञ्जलि।
संपूज्यैवंप्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।१११।।

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार देवी त्रिपथगा गंगा का ध्यान करके उनकी पूजा षोडशोपचार से करें। १. आसन, २. पाद्य, ३. अर्घ्य, ४. स्नानीय, ५. अनुलेपन, ६. धूप, ७. दीप, ८. नैवेद्य, ९. ताम्बूल, १०.

शीतल जल, ११-१२. वस्त्राभूषण, १३. माला, १४. गन्ध, १५. आचमनीय, १६. मनोहर शय्या। ये १६ उपचार प्रदान करके भगवती को करबद्ध प्रणाम करें। इस नियमानुसार भागीरथी गंगा की पूजा करने से मनुष्यों को अश्वमेध फललाभ होता है।।१०८-१११।।

स्तोत्रं वै कौथुमोक्तं च संवादं विष्णुवेधसोः।
शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं च सुपुण्यदम्।।११२।।

हे नारद! अब मैं पापनाशक, पुण्यदायक, कौथुम शाखा में गये गये स्तोत्र को कहता हूं, इसे सुनो। इस प्रसंग में ब्रह्मा-विष्णु की उक्ति तथा प्रत्युक्ति (संवाद) भी है।।११२।।

ॐ नमो गङ्गायै।

श्रीब्रह्मोवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त[1] नमः प्रभो।
विष्णो विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम्।।११३।।

ब्रह्मदेव कहते हैं-हे जगत्प्रभो लक्ष्मीकान्त! पापनाशक, पुण्यकारणभूत, विष्णुपदी गंगा का स्तव सुनने की मेरी इच्छा हो रही है। कृपया उसे कहिये।।११३।।

श्रीनारायण उवाच

शिवसङ्गीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम्। राधाङ्गद्रवसंभूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।११४।।
या जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले।
संनिधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।११५।।
गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे।
कार्तिकीपूर्णिमाजातां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।११६।।

श्री नारायण कहते हैं-शिव के संगीत को सुन कर मुग्ध हो जाने के कारण कृष्ण तथा राधा का अंग द्रवीभूत हो गया। उससे उद्भूता गंगा को मैं करबद्ध प्रणाम करता हूं! सृष्टि के आदि में शिव के निकट गोलोकस्थ रासमण्डल में जिनका जन्म हुआ था, उन गंगा को मैं करबद्ध प्रणाम करता हूं! गोप-गोपीगण से व्याप्त शुभ राधा महोत्सव के अवसर पर कार्त्तिकी पूर्णिमा को जन्मी गंगा को मैं प्रणाम करता हूं!।।११४-११६।।

कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः।
समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।११७।।
षष्टिलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
समावृता या वैकुण्ठं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।११८।।

१. क. ॰न्त जगत्र॰।

जो कोटि योजन विस्तीर्ण (चौड़ी) तथा उससे एक लाख गुना दीर्घ (लम्बी) गोलोक तक को समावृत करने वाली गंगा हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं! जो गंगा साठ लाख योजन विस्तीर्णा तथा उससे चतुर्गुण विस्तार वाली हैं, जिन्होंने समस्त वैकुण्ठ को समावृत (घेरा है) किया है, मैं उन गंगा को प्रणाम करता हूं!।।११७-११८।।

विंशल्लक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
समावृता ब्रह्मलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।११९।।
त्रिंशल्लक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता शिवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२०।।
षड्योजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२१।।

जो २० लाख योजन विस्तीर्ण तथा इससे चौगुनी दीर्घ हैं तथा जिन्होंने ब्रह्मलोक को समावृत किया है, मैं उन गंगा को प्रणाम करता हूं! जो तीस लाख योजन विस्तीर्ण तथा इससे पांच गुना दीर्घता वाली हैं, जिन्होंने शिवलोक को घेर रखा है, मैं उन गंगा को प्रणाम करता हूं! जिसका विस्तार छह योजन तथा दीर्घता तीस योजन है, मैं इन्द्रलोक को घेरने वाली मन्दाकिनी (गंगा) को प्रणाम करता हूं!।।११९-१२१।।

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः।
आवृता ध्रुवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२२।।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः।
आवृता चन्द्रलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२३।।
योजनैः षष्टिसाहस्रैर्दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
आवृता सूर्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२४।।

ये गंगा एक लाख योजन विस्तीर्ण तथा ७ लाख योजन दीर्घता वाली होकर ध्रुवलोक को आवृत करके स्थित हैं। उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूं! ये लक्ष योजन विस्तीर्णा तथा दीर्घता में छः लाख योजन वाली होकर चन्द्रलोक को आवृत करके स्थित हैं। मैं इन गंगा को प्रणाम करता हूं! ये देवी गंगा ६०००० योजन विस्तृत तथा दीर्घता में इससे दस गुणित अर्थात् छह लाख योजन लम्बी होकर सूर्यलोक को आवृत करती स्थित हैं। मैं इनको प्रणाम करता हूं!।।१२२-१२४।।

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः।
आवृता सत्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२५।।
दशलक्षैयोजनैर्या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता या तपोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।।१२६।।

सहस्त्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः।
आवृता जनलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१२७॥

जो गंगा देवी एक लाख योजन विस्तृत तथा दीर्घता में छह लाख योजन वाली होकर सत्यलोक को आवृत किये रहती हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! जो गंगा देवी दस लाख योजन विस्तृत होकर तथा पचास लाख योजन दीर्घ होकर तपोलोक को आवृत करती हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! जो १००० योजन विस्तीर्ण तथा दीर्घता में ७००० योजन होकर जनलोक को आवृत किये रहती हैं, मैं उन गंगा को प्रणाम करता हूं!॥१२५-१२७॥

सहस्त्रयोजनायामा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः।
आवृता या च कैलासं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१२८॥
पाताले या भोगवती विस्तीर्णा दशयोजना।
तातेे दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१२९॥

जो १००० योजन विस्तार वाली तथा ७००० योजन लम्बाई (दीर्घता) वाली गंगा देवी कैलास को आवृत किये रहती हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! जो पातालस्थ भोगवती में १० योजन चौड़ी तथा १०० योजन लम्बी होकर स्थित हैं, मैं उन गंगा को प्रणाम करता हूं!॥१२८-१२९॥

क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा न कुत्रचित्।
क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१३०॥
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसंनिभा।
द्वापरे चन्दनाभा च तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१३१॥
जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले।
स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१३२॥

जो पृथिवी तल पर मात्र १ कोस विस्तीर्ण हैं, कहीं पर भी उससे क्षीण नहीं हैं, उन अलकनन्दा नाम से प्रसिद्ध गंगा को प्रणाम करता हूं! जो सत्ययुग में दुग्ध वर्ण वाली, त्रेता में चन्द्र के समान शुभ्रा, द्वापर में चन्दन की आभा वाली हैं, उन गंगा को प्रणाम करता हूं! जो कलिकाल में पृथिवी पर जलप्रवाहमयी हैं, अन्यत्र अन्य रूप वाली नहीं हैं तथा स्वर्ग में दुग्ध की आभा वाली हैं, उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूं!॥१३०-१३२॥

यस्याः प्रभाव अतुलः पुराणे च श्रुतौ श्रुतः।
या पुण्यदा पापहर्त्री तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥१३३॥

जिनका अतुल प्रभाव पुराणों में तथा श्रुतियों में कहा गया है, जो पुण्यप्रदा तथा पापहारिणी हैं, उन गंगा को प्रणाम करता हूं!॥१३३॥

यत्तोयकणिकास्पर्शः पापिनां च पितामह।
ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत्॥१३४॥

हे पितामह! जिनकी कणिकामात्र जल के स्पर्श से पापीगण की ब्रह्महत्या आदि कोटिजन्मार्जित पापराशि का नाश हो जाता है, उन देवी गंगा को मैं प्रणाम करता हूं!।।१३४।।

इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गङ्गपद्यैकविंशतिम्। स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यबीजकम्॥१३५॥
नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम्।
अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः॥१३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम्।
रोगान्मुच्येत रोगी च बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥१३७॥

हे ब्रह्मन्! मैंने यह २१ श्लोकात्मक गंगास्तव तुमसे कहा। यह स्तव पुण्य का बीज तथा पापहारी है। जो मनुष्य नित्य भक्तिभाव से देवी की अर्चना करके यह स्तवपाठ करता है, वह नित्य अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है। इसके पाठ से अपुत्र को पुत्रलाभ, भार्या रहित को मनोरमा भार्या लाभ होता है। इसके पाठ से रोगीगण रोगों से मुक्त हो जाते हैं। बद्ध व्यक्ति बंधन रहित हो जाता है।।१३५-१३७।।

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम्॥१३८॥
शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गास्नानफलं भवेत्॥१३९॥

जो कीर्त्ति रहित व्यक्ति है, वह इसके पाठ से कीर्त्ति विस्तार कर लेता है। मूर्ख पण्डित हो जाता है। जो प्रातः उठते ही इस शुभ गंगास्तव का पाठ करता है, उसको तो दुःस्वप्न भी शुभ फल देते हैं। उसे गंगास्नान का फल प्राप्त होता है।।१३८-१३९।।

श्रीनारायण उवाच

भगीरथोऽनया स्तुत्या स्तुत्वा गङ्गां च नारद।
जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः॥१४०॥
वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना।
भगीरथेन साऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता॥१४१॥
इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्।
पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१४२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! भगीरथ इस स्तुति से गंगा का स्तव करके उनको लेकर वहां गये, जहां सगर पुत्रगण कपिल के शाप से भस्म हो गये थे। उन सगरपुत्रों का उद्धार तो गंगा के

वायुस्पर्श मात्र से हो गया और वे सभी वैकुण्ठलोक चले गये। देवी त्रिपथगा गंगा को भगीरथ पृथिवी पर लाये थे। तभी उनका नाम भागीरथी पड़ा। इस प्रकार मैंने तुमसे उत्तम गंगा उपाख्यान पूर्णतः कहा। यह पुण्यप्रद-मोक्षप्रद तथा साररूप है। अब क्या श्रवण की इच्छा है?।।१४०-१४२।।

नारद उवाच

शिवसङ्गीतसंमुग्धे श्रीकृष्णे द्रवतां गते। द्रवतां च गतायां च राधायां किं बभूव ह॥१४३॥

तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुद्यमम्।
एतत्सर्वं सुविस्तीर्णं प्रभो वक्तुमिहार्हसि॥१४४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! जब शिव के निकट उनके संगीत से मुग्ध होकर कृष्ण द्रवीभूत हो गये थे तथा इससे देवी राधिका भी द्रवीभूत हो गई थीं, तब क्या घटित हुआ था? उस समय वहां जो-जो लोग उपस्थित थे, उन लोगों ने क्या किया? कृपया यह विस्तार से कहिये।।१४३-१४४।।

नारायण उवाच

कार्तिकीपूर्णिमायां च राधायाः सुमहोत्सवे।
कृष्णा संपूज्य तां राधामवसद्रासमण्डले॥१४५॥
कृष्णेन पूजितां तां तु संपूज्याऽऽदृतमानसाः।
ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः सनकादयः॥१४६॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसङ्गीतं च सरस्वती। जगौ सुन्दरतानेन[1] वीणया च मनोहरम्॥१४७॥

तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै महारत्नाढ्यमालिकाम्।
शिरोमणीन्द्रसारं च सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम्॥१४८॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–कार्त्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर राधा महोत्सव प्रसंग में कृष्ण ने स्वयं रासमण्डल के अन्तर्गत् राधिका की पूजा किया तथा सुख पूर्वक स्थित हो गये। तभी देवी सरस्वती वहां वीणा द्वारा उसकी सुमधुर तान पर मनोहर कृष्णगुण का गायन करने लगीं। तदनन्तर ब्रह्मा गीत सुन कर संतुष्ट हो गये। उन्होंने एक श्रेष्ठ रत्नमाला उनको प्रदान किया। वह उत्तम मणियों के सारभाग से निर्मित थी। उन्होंने ऐसी ही रत्नसारभाग निर्मित एक चूड़ामणि उनको दिया जो सभी ब्रह्माण्डों में दुर्लभ है।।१४५-१४८।।

कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम्। अमूल्यरत्नखचितं हारसारं च राधिका॥१४९॥

नारायणश्च भगवान्वनमालां मनोहराम्।
अमूल्यरत्नकलितं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम्॥१५०॥

कृष्ण ने कौस्तुभ रत्नमणि प्रदान किया जो सर्वोत्तम रत्न है। देवी राधिका ने अमूल्य हार प्रदान

१. क. ०तालेन।

किया जो उत्तम रत्नों से बना था। भगवान् नारायण (विष्णु) ने उनको मनोहर वनमाला प्रदान किया। देवी लक्ष्मी ने उनको अमूल्य रत्ननिर्मित मकराकृति कुण्डल अर्पित किया।।१४९-१५०।।

विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी।
दुर्गा नारायणीशानी विष्णुभक्तिं सुदुर्लभाम्।।१५१।।

धर्मबुद्धिं च धर्मस्तु यशश्च विपुलं भवे। वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च [१]मणिनूपुरम्।।१५२।।
एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः। जगौ श्रीकृष्णसङ्गीतं रासोल्लाससमन्वितम्।।१५३।।

मूर्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा।
क्षणेन चेतनां प्राप्य ददृशुः रासमण्डलम्।।१५४।।
स्थलं सर्वं जलाकीर्णं हीनराधाहरिं तथा।
अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः।।१५५।।

नारायणी ईशानी भगवती मूलप्रकृति विष्णुमायारूपा दुर्गा ने उनको दुर्लभ विष्णुभक्ति प्रदान किया। धर्मदेव ने धर्म-यज्ञ-यश तथा विपुल धर्मबुद्धि अर्पित किया। अग्निदेव ने उनको अग्नि के समान शुभ्र वस्त्र प्रदान किया। तभी शंभुदेव ने ब्रह्मा के कहने पर वहां रसोल्लासयुक्त मनोहर कृष्ण संगीत प्रारम्भ कर दिया। उस संगीत को सुनने पर देवता लोग मूर्च्छितप्रायः होकर चित्रों में बनी पुतली की तरह स्तम्भित होकर बैठे रह गये। क्षणमात्र में चेतना लौटने पर वे लोग केवल रासमण्डल की ओर देखने लगे। वह रासमण्डल अब जल से पूर्ण था। वहां राधाकृष्ण थे ही नहीं! यह देख कर गोप-गोपिकायें, देवता-ब्राह्मण अत्युच्च स्वर से रुदन करने लगे।।१५१-१५५।।

ध्यानेन धाता बुबुधे सर्वमेतदभीप्सितम्।
गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति।।१५६।।

ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम्। स्वमूर्तिं दर्शय विभो वाञ्छितो वर एष नः।।१५७।।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने ध्यानयोग द्वारा सब जान लिया कि यहां राधाकृष्ण द्रवीभूत हो गये हैं। यह कार्य जान कर ब्रह्मा ने बतलाया कि श्रीकृष्ण तथा राधा जलमय हो गये हैं। तब ब्रह्मा एवं सभी समागत देवता उन परमेश्वर की स्तुति करते कहने लगे-"हे देव! प्रभो! आप अपनी शुभ मूर्त्ति हमारे समक्ष व्यक्त करिये। हमें यही वर चाहिए। आप दर्शन दीजिये"।।१५६-१५७।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागबभूवाशरीरिणी।
तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरां शुभाम्।।१५८।।
सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा।
ममाप्यस्याश्च हे देवा देहेन च किमावयोः।।१५९।।

१. क. ०णिहारकम्।

मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः।
मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम्॥१६०॥

तभी वहां अशरीरी वाणी सबने सुना। वह वाणी सुव्यक्त मधुर शुभ थी। उसने कहा-हे देवताओं! मैं सर्वात्मा हूं। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये शरीरधारिणी मेरी शक्ति तो विद्यमान है। हम दोनों (राधा-कृष्ण) को मूर्त्त रूप में देखने की क्या आवश्यकता? मनुगण, मानवगण, सभी मुनिगण, वैष्णवगण सभी मेरे मन्त्र जप से पवित्र होकर मेरे दर्शनार्थ मेरे धाम में आगमन करेंगे।।१५८-१६०।।

मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यग्रा यूयं यदि सुरेश्वराः। करोतु शंभुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम्॥१६१॥
स्वयं विधाता त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरो।
कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदाङ्गं सुमनोहरम्॥१६२॥
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः। स्तोत्रैश्च कवचैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः॥१६३॥
मन्मन्त्रं कवचं स्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपय।
भवन्ति विमुखा ये न जनानां यत्करिष्यति॥१६४॥

हे देवेश्वर वृन्द! यदि तुम लोग मेरी मूर्त्ति के दर्शनार्थ इतने व्यग्र हो, तब शंभु मेरे एक वाक्य का पालन करें। हे ब्रह्मन्! आप स्वयं विधाता सृष्टिकर्त्ता हैं। अतः आप जगद्गुरु को विशेष शास्त्र तथा मनोहर वेदांग प्रणयन करने की अनुमति दीजिये। यह शास्त्र विविध वांछित वस्तु प्रदान कर सके तथा यह एक अपूर्व मन्त्रादियुक्त हो तथा पूजाविधि क्रम, स्तव-ध्यान एवं कवचादि का भी उसमें वर्णन हो। आप मेरे मन्त्र, कवच तथा ध्यान को गोपनीय रखें। यत्न पूर्वक रक्षित करें। ऐसा भी करिये, जिससे मेरे भक्त उससे विमुख न हो सकें।।१६१-१६४।।

सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत्।
ते ते जना मन्त्रपूताश्चाऽऽगमिष्यन्ति मत्पदम्॥१६५॥
अन्यथा च भविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः।
निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्माण्डं चैव वेधसः॥१६६॥
जनः पञ्चप्रकाराश्च युक्ताः स्रष्टुर्भवे भवे।
पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः॥१६७॥
अधोनिवासिनः केचिद्ब्रह्मलोकनिवासिनः।
केचिद्वा वैष्णवाः केचिन्मम लोकनिवासिनः॥१६८॥
इदं कर्तुं महादेवः करोतु सुरसंसदि। प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च पश्यसि॥१६९॥

सैकड़ों-हजारों लोगों में से कोई एक मेरा मन्त्रोपासक होता है। जो-जो लोग मन्त्रपूत होंगे, उनको मेरा पदलाभ होगा। अन्यथा वे सभी गोलोकवासी हो जायेंगे। इससे तो ब्रह्मा का यह ब्रह्माण्ड भी

निष्फल होगा। प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि में पांच प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं। यथा–कोई पृथिवी वासी, कोई स्वर्ग निवासी, कोई अधोलोक पाताल का निवासी, कोई ब्रह्मलोक वासी, तो कोई वैष्णव मेरे लोक का निवासी होता है। यदि महादेव देव संसद में ऐसा करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि वे पूर्व कथित शास्त्र का निर्माण करेंगे, तब सभी लोग यहां मेरी मूर्त्ति का दर्शन कर सकेंगे।।१६५-१६९।।

इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः।
तद्दृष्ट्वा तां जगद्धाता तमुवाच शिवं मुदा।।१७०।।

इतना कहने के अनन्तर वह आकाशवाणी मौन हो गई, जो सनातन देव की ही वाणी थी। यह देख कर जगत्पति ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। उन्होंने मुदित होकर शिव से शास्त्र निर्माण हेतु कहा–।।१७०।।

ब्राह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः।
गङ्गातोयं करे धृत्वा स्वीचकार वचस्तु सः।।१७१।।
संयुक्तं विष्णुमायाद्यैर्मन्त्राद्यैः शास्त्रमुत्तमम्। वेदसारं करिष्यामि कृष्णाज्ञापालनाय च।।१७२।।

ब्रह्मा का यह कथन सुनकर ज्ञानेश ज्ञानीप्रवर शिव ने गंगाजल अंजलि में लेकर इस कार्य हेतु वचन दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा लेते हुए कहा–"मैं विष्णुमाया तथा मन्त्रादि युक्त वेदसारभूत एक उत्तम शास्त्र की रचना कृष्ण की आज्ञा का पालन करते हुए करूंगा"।।१७१-१७२।।

गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः।
स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः।।१७३।।
इत्युक्त शङ्करे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि। आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सह तत्पुरः।।१७४।।
ते तं दृष्ट्वा च संहृष्टाः संस्तूय पुरुषोत्तमम्। परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्।।१७५।।
कालेन शंभुर्भगवाञ्छास्त्रदीपं चकार सः।
इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम्।।१७६।।

यदि कोई व्यक्ति गंगाजल हाथ में लेकर मिथ्या वचन बोलता है, तब वह ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कालसूत्र नरक भोग करेगा। हे ब्रह्मन्! शंकर ने गोलोकस्थ देवसभा में जैसे ही यह प्रण किया, वहां श्रीकृष्ण राधा सहित आविर्भूत हो गये। कालक्रमेण भगवान् शंकर ने शास्त्रदीप ग्रन्थ का प्रकाशन किया। अत्यन्त गुप्त दुर्लभ सभी विषयों को मैंने कह दिया।।१७३-१७६।।

सा चैवं द्रवरूपा या गङ्गा गोलोकसंभवा। राधाकृष्णाङ्गसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।।१७७।।
स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन परमात्मना।
कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता।।१७८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदना० गङ्गोपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

यह वे ही द्रवरूपिणी गंगा हैं, जो द्रवरूप से गोलोक में जन्मीं। ये राधा-कृष्ण के अंग से उद्भूत तथा भुक्ति-मुक्ति फलप्रदा हैं। भगवान् परमात्मा कृष्ण ने इन्हें स्थान-स्थान पर स्थापित किया है। ये गंगा स्वयं भी कृष्णस्वरूपा तथा ब्रह्माण्डों में पूजिता हैं।।१७७-१७८।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकादशोऽध्यायः

गंगा के विष्णुपदी नाम की व्युत्पत्ति का वर्णन, राधिका द्वारा कृष्ण का तिरस्कार, राधा द्वारा गंगा को पी जाने के भय से गंगा द्वारा कृष्ण के चरण में शरण ग्रहण करना तथा ब्रह्मा आदि देवगण की प्रार्थना द्वारा गंगा का कृष्ण के चरणों से निकलना

नारद उवाच

कलेः पञ्चसहस्त्राब्दे समतीते सुरेश्वरी। क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जब कलिकाल का ५००० वर्ष व्यतीत होगा, तब ये महाभागा गंगा कहां जायेंगी? कृपया कहिये।।१।।

श्रीनारायण उवाच

भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया। जगाम तं च वैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा॥२॥
भारतं भारती त्यक्त्वा चागमत्तद्धरेः पदम्। पद्मावती च शापान्ते गङ्गायाश्चैव नारद॥३॥
गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्त्रः प्रिया हरेः।
तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्त्रः कीर्तिताः श्रुतौ॥४॥

श्री नारायण कहते हैं—गंगा ईश्वर की इच्छानुसार तथा सरस्वती के शाप से भारत में अवतीर्ण होकर शाप का अन्त होने पर पुनः वैकुण्ठ धाम वापस आयेंगी। हे नारद! सरस्वती भी शाप समाप्त होने पर हरिभवन लौट आयेंगी। गंगा एवं पद्मा, ये दोनों ही शापान्त में वैकुण्ठ हरिधाम चली आयेंगी। हे ब्रह्मन्! श्रीहरि की तीन भार्या हैं। यथा—गंगा, सरस्वती तथा लक्ष्मी। तुलसी तो चौथी भार्या है। यह श्रुति में कहा गया है।।२-४।।

हेतुना केन देवी वै विष्णुपादाब्जसंभवा। धातुः कमण्डलुस्था च शङ्करस्य शिरोगता॥५॥
बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया। अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिप्रवर! गंगा देवी किस प्रकार से नारायण की प्रिय पत्नी हो गईं, यह मुझसे विशेषतया कहें। वे भगवान् विष्णु के चरणकमल से निकल कर ब्रह्मा के कमण्डल में क्यों स्थित हो गईं तथा शंकर के मस्तक पर कैसे पहुंचीं? कृपया इसकी व्याख्या करिये।।५-६।।

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी। राधाकृष्णाङ्गसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी॥७॥
द्रवाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि। नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिता॥८॥
शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा। तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा॥९॥
स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं वरम्॥१०॥
पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम्। सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवक्रिमम्॥११॥
वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः॥१२॥

श्री नारायण कहते हैं—ये गंगा राधा-कृष्ण की अंशभूता द्रवरूपा हैं। पूर्वकाल में इनका उद्भव गोलोक में हुआ। ये राधा कृष्ण की अंशभूता होने के कारण उनकी ही स्वरूपा हैं। ये द्रव की अधिष्ठातृ देवता हैं। ये भूतल में अनुपम रूपवती हैं। ये नवयौवना तथा रत्नभूषण भूषिता हैं। इनका मुखमण्डल शरद् ऋतु के मध्याह्न काल के विकसित कमल के समान है। ये अति मनोहारिणी हैं, जो तप्त स्वर्णवर्णा तथा शरत् चन्द्र के समान मनोरमा हैं। नितम्बद्वय अतीव मनोहर हैं। ये शारदीय चन्द्र के समान प्रभाशालिनी हैं। इनकी प्रभा अत्यन्त स्निग्धरूपा तथा शुद्ध सत्त्वरूपा है। इनके दोनों उरु स्थूल होकर भी कठोर हैं। स्तनद्वय तनिक स्थूल तथा कठोर हैं तथा वर्त्तुल हैं। इनके नेत्रद्वय मनोहर कटाक्षयुक्त हैं। चितवन बंकिम है। इनके मालती मालायुक्त घुंघराले केशपाश हैं। इनके ललाट पर सिन्दूर की बिन्दी लगी है। वहीं साथ में चन्दन के विन्दु भी लगे हैं।।७-१२।।

कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोहरम्। बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम्॥१३॥
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वलम्। वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती॥१४॥

इनके कपोल अत्यन्त मनोहर तथा कस्तूरी से बने पत्र कपोल पर चित्रित हैं। इनके अधरोष्ठ बन्धूक कुसुम के खिले पुष्प ऐसे सुन्दर हैं। दन्तपंक्ति पक्व अनार के दानों ऐसी समुज्ज्वल थी। इन्होंने अग्निशुद्ध, नीवीयुक्त, वस्त्रद्वय को धारण किया था।।१३-१४।।

सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुत्तस्थे सुलज्जिता[1]।
वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम्॥१५॥

१. ख. ०ता। पद्मपत्रसमानाभ्यां लो०।

एवंविध कामभाव युक्त लज्जितावस्था में ये देवी कृष्ण के बगल में आ गईं। इन देवी गंगा ने अपने अंचल वस्त्र से अपना मुख ढांक रखा था। ये नेत्रों से विभु कृष्ण के मुख का अवलोकन कर रही थीं।।१५।।

निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा। प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसङ्गमलालसा॥१६॥

तब इनकी पलकें गिर नहीं रही थीं। ये नेत्रों से मुदित होकर कृष्ण की सुन्दरता का पान कर रही थीं। भगवती गंगा प्रफुल्ल मुखमुद्रा वाली थीं। ये हर्ष पूर्वक कृष्ण संगम की लालसा से युक्त थीं।।१६।।

मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका॥१७॥

गंगा प्रभु के रूप का दर्शन पुलकित होकर कर रही थीं। वे भगवान् के रूप का दर्शन करते इतनी तन्मय हो गईं कि यह प्रतीत होने लगा मानों मूर्च्छित हो गई हैं। तदनन्तर वहां देवी राधा भी आ गईं।।१७।।

गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा। कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना॥१८॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा मत्तवारणगामिनी। अमूल्यरत्नखचितनानाभरणभूषिता॥१९॥
माणिक्यखचितं हारममूल्यं वह्निशौचकम्।
पीताभवस्त्रयुगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती॥२०॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं कोमलं च सुरञ्जितम्।
कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम्॥२१॥
रत्नेन्द्रराजखचितविमानादवरुह्य च। सेव्यमाना च सखिभिः श्वेतचामरवायुना॥२२॥

देवी राधा के साथ तीस करोड़ गोपियां भी थीं। राधा देवी करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभा एवं कान्तियुक्त थीं। उस समय वे इतनी क्रोधित थीं कि उनका मुखमण्डल रक्तपद्म के वर्ण का हो गया। दोनों नेत्र भी लाल कमल के समान आरक्त हो गये। राधा श्वेत चम्पा के समान गौरवर्णा, मत्त गजेन्द्रगामिनी राधिका अमूल्य रत्नरचित अग्नि के समान शुद्ध तथा चमकते नीवीयुक्त पीतवर्ण के दो परिधानों को धारण किये थीं। उनकी प्रभा तो स्थलकमल की शोभा को भी लज्जित करने वाली थी। उनके कोमल उत्तम रूप से रंजित चरणकमल कृष्ण द्वारा प्रदत्त अर्घ्य से सुशोभित थे। वे उत्तम रत्नों से बने विमान से धीरे-धीरे नीचे उतरीं। (नीवी = इजारबन्द)। उस समय देवी राधा की सखियां श्वेत चामरों से उनका व्यजन (हवा करना) कर रही थीं।।१८-२२।।

कस्तूरीबिन्दुतिलकं चन्दनेन्दुसमन्वितम्। दीप्तदीप्रभाकारं सिन्दूरारुणसुन्दरम्॥२३॥
दधती भालमध्ये च सीमान्ताधस्तदुज्जवलम्।
पारिजातप्रसूनादिमालायुक्तं सुवक्रिमम्॥२४॥

सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता। सुचारुनासा संयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा॥२५॥

देवी राधा (के ललाट के मध्य में अर्थात्) मांग के ठीक नीचे उज्ज्वल ललाट के बीच में कस्तूरी की बिन्दी लगी थी तथा प्रदीप्त दीप्त प्रभा के समान उज्ज्वल तथा मनोहर सिन्दूर की बिन्दी भी लगी थी। रोष के कारण भगवती राधा का शरीर कम्पित हो रहा था। इसी के कारण उनके गले में लटकी पारिजात पुष्पों की माला और शिरस्थ मनोहर अलकों में भी कम्पन होने लगा। क्रोध की अधिकता के कारण देवी की नासिका तथा ओष्ठ भी कम्पित होने लगे।।२३-२५।।

गत्वा तस्थौ कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे। सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः सभा॥२६॥

तां च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरमुच्यतः।
संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः॥२७॥

वे देवी कृष्ण के पार्श्व में श्रेष्ठ रत्नसिंहासन पर आसीन हो गईं। उनकी सखियों से कृष्ण की सभा भर-सी गई थी। कृष्ण ने राधा को जब वहां समागत देखा, वे आसन से उठे तथा उन्होंने सादर और मन्द मुस्कान के साथ मधुर वाणी में देवी राधा से सम्भाषण भी किया।।२६-२७।।

[1]प्रणेमुरतिभक्ताश्च गोपा नम्रात्मकंधराः। [2]तुष्टुवुस्ते च भक्त्या तं तुष्टाव परमेश्वरः॥२८॥
उत्थाय गङ्गा सहसा संभाषां च चकार सा। कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च॥२९॥

इसके पश्चात् कृष्णसभा में उपस्थित गोपों ने भक्तिभाव के साथ नतशिर होकर राधा को प्रणाम किया। अब परमेश्वर कृष्ण भी भगवती राधा की स्तुति करने लगे। गंगा भी राधा को देख कर सहसा खड़ी हो गईं तथा उन्होंने भयभीत स्थिति में विनय पूर्वक राधा का स्तव करके, राधा का कुशल पूछा।।२८-२९।।

नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका।
ध्यानेन शरणापन्ना श्रीकृष्णचरणाम्बुजे॥३०॥
तद्धृत्पद्मे स्थितः कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ।
बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च॥३१॥

उस समय गंगा वहां नम्रता पूर्वक स्थित थीं। भय के कारण गंगा का कण्ठ-ओष्ठ तथा तालु शुष्कवत् हो रहा था। ऐसी स्थिति में गंगा ने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करके उनकी शरण ग्रहण किया। यह अनुभव करके प्रभु श्रीकृष्ण ने भयभीता गंगा के हृदय में स्थित होकर उनको अभय प्रदान किया। इस प्रकार का अभयदान पाकर अब गंगा सर्वेश्वर की इस कृपा के कारण स्थिर चित्त वाली हो गईं।।३०-३१।।

ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गङ्गा ददर्श सा।
सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा॥३२॥

१. ख. ०रभिसंत्रस्ता गो०।
२. क. ०वुश्चातिसंतुष्टास्तु०।

असंख्यब्रह्मणामाद्यां चाऽऽदिसृष्टिं सनातनीम्।
यथा द्वादशवर्षीयां कन्यां च नवयौवनाम्॥३३॥

क्षणकाल के पश्चात् गंगा ने ऊर्ध्व सिंहासनस्था ब्रह्मतेज से दीप्ता राधिका को देखा। वे अब स्निग्ध एवं देखने में सुखकर लग रही थीं। वे असंख्य ब्रह्मसृष्टि की तथा ब्रह्मा की आदिभूता सनातनी जननी थीं। उनकी मूर्त्ति बारह वर्ष की कन्या के समान नवयौवन सम्पन्ना थी।।३२-३३।।

विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च।
शान्तां कान्तामनन्तां तामाद्यन्तरहितां सतीम्॥३४॥
शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम्।
सौन्दर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सुन्दरीष्वखिलासु च॥३५॥
कृष्णार्धाङ्गीं कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा।
पूजितां च महालक्ष्म्या महालक्ष्मीश्वरेण च॥३६॥
प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम्।
सखीदत्तं च ताम्बूलं गृह्णतीमन्यदुर्लभम्॥३७॥

देवी राधा समस्त विश्व में रूप तथा गुणों में अनुपम हैं। वे शान्त स्वभाव वाली, कमनीय, अनन्तरूपिणी तथा सौभाग्यवती तथा सुभगा, स्वामीसौभाग्ययुता, विश्व में विद्यमान समस्त सुन्दरियों से कहीं अधिक सुन्दरी हैं। देवी राधा कृष्ण की अर्द्धांगिनी, तेज-वय में कृष्ण के ही समान पूज्या हैं। वे तो महालक्ष्मीश्वर से भी पूजिता महालक्ष्मी रूपा हैं। अर्थात् वे ही महालक्ष्मीश्वर की महालक्ष्मी हैं। वे अतुलित प्रभाशालिनी हैं। तभी उनकी प्रभा द्वारा वह सभास्थल व्याप्त हो गया। उन्होंने उस समय सखीगण द्वारा प्रदत्त दुर्लभ ताम्बूल ग्रहण किया था।।३४-३७।।

अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम्।
कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम्॥३८॥

देवी राधा जन्म रहित (अजन्मा), सबकी जननी, धन्या, माननीया एवं मानिनी हैं। वे कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। वे साक्षात् रमा स्वरूपा हैं।।३८।।

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी।
निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम्॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा। वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने॥४०॥

भगवती गंगा इस प्रकार एकटक रासेश्वरी राधा का दर्शन कर रही थीं, तथापि उनको तृप्ति नहीं मिल रही थी। उनके नेत्रद्वय सतत् निर्निमेष होकर राधा की रूपमाधुरी का पान कर रहे थे। हे मुनि! तभी शान्त विनीत तथा मुस्कानयुक्त होकर राधा ने विनय पूर्वक जगदीश्वर से कहा-।।३९-४०।।

राधिकोवाच

केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम्।
पश्यन्तीं सततं पार्श्वे सकामा रक्तलोचना॥४१॥
मूर्च्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा।
वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः॥४२॥
त्वं चापि मां संनिरीक्ष्य सकामः[1] सस्मितः सदा।
मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी॥४३॥
त्वमेव चैवं दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च।
क्षमां करोमि ते प्रेम्णा स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा॥४४॥
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट। अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति[2] सुरेश्वर॥४५॥

राधिका कहती हैं—हे प्राणेश! यह सकामा आरक्त दृष्टि से मुस्कान के साथ सतत् आपके मुखमण्डल को निहार रही यह कल्याणी स्त्री कौन है? यह आपकी मुखच्छवि को देख कर इतनी रोमांचित हो गई है कि मूर्च्छित-सी प्रतीत हो रही है। यह वस्त्र से अपना मुख छिपा कर आंचल की ओट से आपको पुनः-पुनः देखती जा रही है। पहले तो आप केवल मेरी ओर मुस्कानयुक्त होकर सकाम दृष्टि से देखते थे, तथापि अब तो मेरे जीवित रहते गोलोक में यह कैसी दुर्वृत्ति पनपती जा रही है? आप तो ऐसी दुर्वृत्ति मेरे साथ बार-बार करते आये हैं, जिसे मैं सदा क्षमा करती रहती आई हूं। क्योंकि नारी जाति तो अत्यन्त स्निग्ध स्वभाव की होती हैं। मैं प्रेम के कारण सब क्षमा कर देती हूं। हे लम्पट! आप अपनी इस प्रिय भार्या को लेकर गोलोक से दूर चले जायें। हे ब्रजेश्वर! ऐसा किये बिना आपका कल्याण नहीं होगा!।।४१-४५।।

दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने। क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो॥४६॥
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा। देहं संत्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा॥४७॥

इस घटना से पहले भी मैंने आपको चन्दनवन में सखी विरजा के साथ देखा था, तथापि अपनी सखियों की बात मान कर मैंने आपको क्षमा कर दिया था। मेरी आहट तथा आवाज सुनते ही यद्यपि आपने उसे वहां से लुप्त कर दिया था। वह भी देह त्याग कर नदीरूपी हो गई।।४६-४७।।

कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी॥४८॥
गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदन्तिकम्। उच्चैररौषीर्विरजे विरजे चेति संस्मरन्॥४९॥
तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी।
सालङ्कारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम्॥५०॥

१. क. ०म इव सा।
२. क. ०ति वज्रेश्वर।

वह एक करोड़ योजन चौड़ी तथा ४ कोटि योजन लम्बी नदी है। वह आपकी सत्कीर्त्तिस्वरूपा होकर आज भी विराजमान है। जैसे ही मैं चन्दन वन से अपने गृह चली गई, आप पुनः उसी स्थान पर आकर "हाय विरजा तुम कहां हो?" यह कहकर रुदन करने लगे। यह देख कर वह सिद्ध योगिनी विरजा योगावलम्बन से जल से उत्थित तथा बहिर्गत् हो गई। उसने नाना अलंकारों से अलंकृत होकर आपको अपना दर्शन प्रदान किया था।।४८-५०।।

ततस्तां च समाश्लिष्य वीर्याधानं कृतं त्वया।
ततो बभूवस्तस्यां च समुद्राः सप्त चैव हि।।५१।।
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने।
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।।५२।।
शोभा देहं परित्यज्य प्राविशच्चन्द्रमण्डलम्।
ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह।।५३।।
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता। रत्नाय किञ्चित्स्वर्णाय किञ्चिन्मतिवराय च।।५४।।
किञ्चित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किञ्चिद्राज्ञेचकिञ्चन।
किञ्चित्प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किञ्चन।।५५।।
किञ्चिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किञ्चन।
किञ्चित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किञ्चन।।५६।।
किञ्चित् फलेभ्यः सस्येभ्यः सुपक्वेभ्यश्च किञ्चन। नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किञ्चन।
किञ्चिन्नूतनवस्त्रेभ्यो गोरसेभ्यश्च किञ्चन।।५७।।

तत्पश्चात् आपने उसका गाढ़ आलिंगन करके उसमें अपना वीर्य स्थापित किया, जिससे सात समुद्र उत्पन्न हो गये। मैंने यह भी देखा है कि चम्पा उपवन में आपने शोभा नामक गोपी से मिलन किया था। मेरे आने की आहट सुनते ही आप वहां से उसे छिपा कर अन्तर्हित् हो गये तथा शोभा गोपी भी देहत्यागोपरान्त चन्द्रमण्डल में चली गई। तदनन्तर उसका शरीर स्निग्ध तेज रूप में परिणत हो गया। उस समय आपने दुःखी होकर उस तेज में से कुछ-कुछ तेज रत्न को, स्वर्ण को, श्रेष्ठ मेधायुक्त मनुष्यों को, कुछ नारीगण के मुखकमल को, कुछ राजाओं को, कुछ उत्तम वस्त्रों को, कुछ रजत को, कुछ चन्दन लेप को, कुछ जल को, कुछ वृक्षों के नये पत्तों को, पुष्प-फल-अन्न-पक्वान्न को, देकर इस प्रकार आपने यह विभाग किया था। कुछ तेज आपने संस्कृत राजगृह को तथा देवगृह को प्रदान करके कुछ तेज वितरण गोरस में भी किया।।५१-५७।।

दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने।
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।।५८।।

प्रभा देहं परित्यज्य प्राविशत्सूर्यमण्डलम्।
ततस्तस्याः शरीरं च तीक्ष्णं तेजो बभूव ह॥५९॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। विभज्य चक्षुषोर्दत्तं लज्जया मद्भयेन च॥६०॥
हुताशनाय किञ्चिच्च नृपेभ्यश्चापि किञ्चन।
किञ्चित्पुरुषसङ्घेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन॥६१॥
किञ्चिद्दस्युगणेभ्यश्च[1] नागेभ्यश्चापि किञ्चन।
ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किञ्चन॥६२॥
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो[2] यशस्विभ्यश्च किञ्चन।
तच्च दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यतः॥६३॥

तदनन्तर आप वृन्दावन में प्रभा गोपी के साथ मिलन करते देखे गये थे। मेरी आहट सुनते ही आपने उसे तिरोहित कर दिया, तथापि वह देह त्याग कर सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो गई। उसका शरीर प्राण रहित होकर तीक्ष्ण तेज में परिवर्त्तित हो गया। अपने रोते हुए उसके तेज का विभाजन किया। आपने लज्जा तथा मेरे भय के कारण वह तेज नेत्र-अग्नि-राजागण-पुरुष संघ-देवगण-दस्युगण-नागगण-ब्राह्मण-मुनिगण-तपस्वीगण-सौभाग्यशालिनी नारीगण-यशस्वीगण में कुछ-कुछ विभक्त करके वितरित कर दिया। यह तेज वितरित करके आप पूर्ववत् रुदनरत हो गये॥५८-६३॥

शान्त्या गोप्या युतस्त्वं च दृष्टो वै रासमण्डले।
वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः॥६४॥
रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्मितमन्दिरे। रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह॥६५॥
त्वया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवत्यै सुवासितम्।
तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्त्वांस्त्वं पुरा विभो॥६६॥
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।
शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो॥६७॥

तदनन्तर आप रासमण्डल में शान्ति गोपी के साथ वसन्तकालीन पुष्पशय्या पर माला धारण किये विहाररत देखे गये थे। आपका शरीर चन्दन चर्चित था। हे विभु! उस रत्नजड़ित गृह में रत्नदीप की प्रभा में आप रत्नभूषण भूषित तथा शोभायमान हो रहे थे। आप आपस में एक-दूसरे को सुवासित ताम्बूल खिला रहे थे। मेरे आने की आहट पाकर आपने उसे अन्तर्हित् करना चाहा, परन्तु शान्ति गोपी स्वदेह त्याग कर आपमें ही लीन हो गई॥६४-६७॥

ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह। संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा॥६८॥

---

१. क. ०स्युजनेभ्य०।
२. ०भ्यो व्रतिनीभ्य०।

विश्व विषयिणे किञ्चित्सत्त्वरूपाय विष्णवे।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किञ्चिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो॥६९॥
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन।
तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन॥७०॥

उस समय उसका मृत देह श्रेष्ठ गुणों में परिणत हो गया। उस समय आपने रुदन करते-करते उस गुणराशि को विभिन्न अनासक्त लोगों में बांट दिया। आपने सत्वगुणमय विष्णु को, शुद्ध सत्वरूपा लक्ष्मी को, अपने मन्त्रोपासक वैष्णवों को, तपस्वीगण को तथा धर्म एवं धर्मिष्ठ लोगों को वह गुण किंचित्-किंचित् प्रदान किया।।६९-७०।।

मया पूर्वं हि दृष्टस्त्वं गोप्या च क्षमया सह। सुवेषवान्माल्यवांश्च गन्धचन्दनसंयुतः॥७१॥
रत्नभूषितया चारुचन्दनोक्षितया तया। सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते॥७२॥
शिलष्टोऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसङ्गमात्।
मया प्रबोधितौ सा च भवांश्च स्मरणं कुरु॥७३॥
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा। वनमाला कौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम्॥७४॥
पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो।
लज्जया कृष्णवर्णोऽभूदद्यापि च भवान्प्रभो॥७५॥

पूर्वकाल में मैंने आपको क्षमा नामक गोपी के साथ देखा था। आप उत्तम वेश बना कर माला-गन्ध-चन्दनादि से भूषित होकर चन्दनयुक्त पुष्पशय्या पर गन्धचन्दन चर्चिता, रत्नमय भूषणों से भूषिता क्षमा नामक गोपी के साथ विहार करते सुख में तन्मय हो गये थे। आप क्षमा गोपी को आलिंगनबद्ध करके निद्रित थे। तब मैंने उसे तथा आपको निद्रा से जगाया था। एक बार चिन्तन करिये। आपके पीत वस्त्र, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ मणि तथा रत्नकुण्डल तक सब मैंने ले लिया था, परन्तु सखियों के अनुरोध तथा प्रेम के कारण वह सब पुनः आपही को वापस कर दिया! हे प्रभो! उस कार्य से आप इतने लज्जित हो गये कि आपके शरीर का वर्ण कृष्णवर्ण का हो गया। वही कृष्णवर्ण आपका अभी भी है!।।७१-७५।।

क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता। ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह॥७६॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा।
किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्चः किञ्चन॥७७॥
धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन।
तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किञ्चन॥७८॥

क्षमा गोपी लज्जा के कारण देहत्यागोपरान्त धरती में प्रवेश कर गयी। उसका कलेवर भी श्रेष्ठ

गुणों में परिवर्त्तित हो गया। तब आपने प्रेमाश्रु वर्षण करते हुए उसके कलेवर से आविर्भूत गुणों का विभाग कर दिया। आपने उसका सम्यक् विभाग करके किंचित्-किंचित् विष्णु को, वैष्णवों को, धार्मिकों को, धर्म को, दुर्बलों को, तपस्वीगण को, देवगण को, पण्डितों को बांट दिया था।।७६-७८।।

एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। त्वद्गुणं बहुविस्तारं जानामि च परं प्रभो।।७९।।

"हे देव! प्रभो! यह सब आपके गुणों को मैंने आपसे कहा। अब और इस प्रकार के कितने गुण सुनना चाहते हैं, मैं तो आपके गुणों को (आपकी ऐसी असलियत) अत्यन्त विस्तार से जानती हूं"।।७९।।

इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना।
गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम्।।८०।।

यह कहने के अनन्तर रक्तपद्मवर्ण नेत्रों वाली राधा उन गंगा से कुछ कहने लगीं जो वहां सिर झुकाये लज्जा से अवनत होकर खड़ी थीं।।८०।।

गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी।
तिरोभूय सभामध्यात्स्वजलं प्रविवेश सा।।८१।।
राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम्।
पानं कर्तुं समारेभे गण्डूषात्सिद्धयोगिनी।।८२।।

गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। श्रीकृष्णचरणाम्भोजं परमं शरणं ययौ।।८३।।

तभी सिद्धयोगिनी गंगा ने योग द्वारा समस्त रहस्य को जान लिया। वे उस सभा से अन्तर्हित् होकर जल में प्रविष्ट हो गईं। तत्पश्चात् राधा ने भी योग द्वारा जब गंगा को सर्वत्र जलरूप देखा, तब सिद्धयोगिनी राधा ने सर्वत्र जलावस्थित गंगा को अंजलि में उठा कर उस जल का पान प्रारम्भ कर दिया, तथापि गंगा भी तो सिद्ध योगिनी थीं। वे भी इस रहस्य को जान गयीं तथा उन्होंने योगबल से समस्त वृत्तान्त जान कर श्रीकृष्ण के चरणों की शरण ग्रहण किया!।।८१-८३।।

गोलोकं चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा। ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा।।८४।।
सर्वतो जलशून्यं च शुष्कं गोलोकपङ्कजम्। जलजन्तुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम्।।८५।।

ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः।
मनवो मानवाः[1] सर्वे देवाः सिद्धास्तपस्विनः।।८६।।
गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः।
सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम्।।८७।।

तत्पश्चात् राधिका ने वहां गंगा को न पाकर गोलोक, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोकादि सभी स्थान पर गंगा

१. क. मुनयः।

को खोजा, परन्तु उनको कहीं भी गंगा का दर्शन नहीं हो सका। गंगा के तिरोहित हो जाने सर्वत्र जलशून्यता हो गई। यहां तक कि गोलोकस्थ कमल भी सूख गये। सभी मनुगण, मानव, (पाठान्तर से मुनि), देवता, सिद्ध, तपस्वी लोग कण्ठ सूख जाने के कारण अत्यन्त त्रस्त होकर गोलोक आये। सभी ने उन प्रभु गोविन्द को प्रणाम किया जो प्रकृति से परे हैं।।८४-८७।।

वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्। वरेशं च वरार्हं च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम्॥८८॥

निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्।
निर्गुणं च निरुत्साहं निर्व्यूहं च निरञ्जनम्॥८९॥
स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्।
सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम्॥९०॥

परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्। प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः॥९१॥
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः। सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम्॥९२॥

ये प्रभु वरप्रद, वरेण्य, वरिष्ठ, वर के कारण, वरेश, वर देने योग्य, सबके परम प्रभु, निरीह, निराधार, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्व्यूह, निरंजन हैं। वे स्वेच्छामय, साकार, भक्तों पर कृपा करने हेतु मूर्त्तिमान, सत्यरूप, सत्येश, साक्षी, सनातन हैं। वे परेश, पर, परम, परमेश्वर, परमात्मा, ईश्वर हैं। सभी लोग उनको प्रणाम करने के पश्चात् भक्ति पूर्वक नतमस्तक होकर उनकी स्तुति करने लगे। सभी की वाणी गद्गद् थी, नेत्र अश्रुपूर्ण थे। सभी के अंग पुलकित थे। वे सभी सर्वेश परमात्मा भगवान् परात्पर हरि की स्तुति करने लगे।।८८-९२।।

ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्। अमूल्यरत्नखचितचित्रसिंहासनस्थितम्॥९३॥
सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना। गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥९४॥

वे प्रभु ज्योतिर्मय, परंब्रह्म, सभी कारणों के कारण हैं। वे अमूल्य रत्नजड़ित चित्रित सिंहासन पर आसीन हैं। गोपगण उनकी सेवा श्वेत चामर झलने से उत्पन्न वायु से कर रहे हैं। ये परम प्रभु मुदित मन से मुस्कान के साथ गोपियों के नृत्य का अवलोकन कर रहे हैं।।९३-९४।।

वल्गुवेषैः परिवृतं गोपैश्च शतकोटिभिः। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्॥९५॥
नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम्। यथा द्वादशवर्षीयं बालं गोपालरूपिणम्॥९६॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम्। स्वतेजसा परिवृतं सुखदृश्यं मनोहरम्॥९७॥

करोड़ों संख्यक ये गोपिकायें चन्दन लेप से आर्द्र शरीर वाली तथा रत्नभूषणादि से भूषित हैं। भगवान् कृष्ण का देह वर्ण नवजलधर श्यामल है। वे किशोर वय वाले, पीत वस्त्रधारी हैं। वे गोपों के १२ वर्षीय बालक प्रतीत हो रहे हैं। उनका शरीर करोड़ों चन्द्रों के समान प्रभायुक्त है। वे श्रीसम्पन्न हैं तथा स्वतेज की प्रभा से आवृत हैं। अतः इनको देखने से नेत्रों को सुख मिलता है। ये प्रभु इस प्रकार मनोहर भी हैं।।९५-९७।।

कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलालावण्यविग्रहम् ।
दृश्यमानं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम्॥९८॥
भूषणैर्भूषिताभिश्च महारत्नविनिर्मितैः। पिबन्तीभिर्लोचनाभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा॥९९॥
प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम्। तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्॥१००॥
परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः।
मुनयो मानवाः[1] सिद्धास्तपसा च तपस्विनः॥१०१॥
प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्। परस्परं समालोच्य ते तमूचुश्चतुर्मुखम्॥१०२॥
निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम्।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा स्थितं विष्णोस्तु दक्षिणे॥१०३॥
वामतो वामदेवस्य[2] चागमत्कृष्णमुत्तमम्। परमानन्दयुक्तं च परमानन्दरूपकम्॥१०४॥
सर्वं कृष्णमयं धाता चापश्यद्रासमण्डले। सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम्॥१०५॥

ये देव कृष्ण करोड़ों कामदेव के समान सौन्दर्यवान् तथा लावण्यधाम हैं। उनका दर्शन हसमुख गोपिकायें निरन्तर करती रहती हैं। ये गोपीगण अत्यन्त उत्तम रत्नों से बने आभूषण द्वारा विभूषिता हो गई देवी का निरन्तर दर्शन करती रहती हैं। ये प्रभु कृष्ण अपनी प्राणों से प्रिय प्रियतमा राधा के वक्ष में सदा रहते हैं और उनके द्वारा प्रदत्त सुवासित ताम्बूल सादर ग्रहण करते हैं। ये परिपूर्णतम प्रभु हैं। उस रासकाल में, रासमण्डल में देवगण को उनका रूप सभी स्थानों में दिखा था। इसके अनन्तर इस रूप का दर्शन सभी मुनि, मानव, सिद्ध, तपस्वी एवं तापसों ने प्रसन्न मन से विस्मय विमुग्ध होकर किया। इसके पश्चात् सभी ने परस्पर समालोचना करने के पश्चात् अपना अभिप्रेत विषय भगवान् जगन्नाथ से निवेदित करने हेतु चतुरानन ब्रह्मदेव से कहा। ब्रह्मदेव ने इन लोगों का कथन सुना तथा विष्णु के दाहिने पहुंचे। उस समय भगवान् वामदेव कृष्ण के बायें थे। इस प्रकार वे कृष्ण के पास आये। इन लोगों ने समस्त रासमण्डलस्थ गोप-गोपीगण को परमानन्दयुक्त देखा। वहां सभी ने परमानन्दरूप भगवान् कृष्ण का दर्शन किया। वहां सभी रासमण्डलस्थ लोग कृष्णमय थे। वे सभी कृष्ण के समान वेषधारी तथा कृष्ण के समान आसन पर विराजित थे।।९८-१०५।।

द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम्। मयूरपुच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम्॥१०६॥
अतीव कमनीयं च सुन्दरं शान्तविग्रहम्। गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा॥१०७॥
वाससा यशसा[3] कीर्त्या मूर्त्या सुन्दरया समम्।
परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्॥१०८॥

१. ख. मनवः।
२. क. ॰देवं च जगाम कृष्णमन्दिरम्।
३. ख. ॰सा कृत्या मू॰।

वे भी लोग जो रासमण्डलस्थ थे, द्विभुज, मुरलीधारी, वनमालाभूषित, मयूरपुच्छ युक्त मुकुट वाले तथा कौस्तुभ मणिधारी थे। वे अतीव कमनीय, सुन्दर, शान्तरूप, गुणों के भूषण, तेज-वय में समान ही थे। उनका वस्त्र, यश, आकृति, रूप-सौन्दर्य समान था। सभी परिपूर्णतम एवं समस्त ऐश्वर्य युक्त थे।।१०६-१०८।।

कः सेव्यः सेवको वेति दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः।
क्षणं तेजः स्वरूपं च रूपराशियुतं क्षणम्।
निराकारं च साकारं ददर्श द्वैधलक्षणम्।।१०९।।
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम्।
प्रत्येकासनसंस्थं च तया च सहितं क्षणम्।।११०।।

ये सभी रासमण्डलस्थ लोग ऐसे थे कि देख कर पता ही नहीं चल पाया कि इनमें से कौन सेवक है और कौन सेव्य (स्वामी) है। वहां तो एक क्षण में तेजरूप, अगले क्षण में रूपराशियुक्त, उससे अगले क्षण में एकमात्र कृष्ण ही थे, तो अगले क्षण में राधा के साथ कृष्ण प्रत्येक सिंहासन पर आसीन परिलक्षित हो रहे थे।।१०९-११०।।

राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम्।
किं स्त्रीरूपं च पुंरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः।।१११।।
हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा।
चकार स्ववनं भक्त्या प्रणम्याथ त्वनेकधा।।११२।।

कभी कृष्ण राधारूपी परिलक्षित होते थे। कभी राधा कृष्णरूपिणी हो जाती थीं। यह देख कर विधाता ब्रह्मा इतने भ्रमित हो गये कि भगवान् स्त्रीरूप हैं, अथवा पुरुष रूप, कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। इसके अनन्तर विधाता ने चित्त को ध्यानावस्था में स्थित किया तथा हृत्कमलस्थ कृष्ण का स्तव भक्तिभावेन करने लगे। इसके साथ ही उन्होंने भगवान् को अपनी स्वयं की इस न्यूनता का भी वर्णन किया। उन्होंने बारम्बार कृष्ण को ध्यानावस्था में प्रणाम भी किया।।१११-११२।।

ततः स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया।
अपश्यत्कृष्णमेकं च राधावक्षः स्थलस्थितम्।।११३।।
स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम्। पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते।।११४।।
विज्ञाय तदभिप्रायं तानुवाच सुरेश्वरः। सर्वा[1] सा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभावनः।।११५।।

तदनन्तर ब्रह्मा ने कृष्ण की आज्ञा से जब अपने नेत्रों को खोला, तब देखते हैं कि राधा के वक्षःस्थल पर स्थित एकमात्र कृष्ण ही विराजमान हैं। वे प्रभु पार्षदों के बीच गोपियों के साथ

१. क. ०र्वान्तरात्मा सर्वज्ञः स०।

अवस्थान कर रहे हैं। यह देख कर विधाता तथा उनके साथ समागत सभी ने प्रसन्न मन से प्रभु को बारम्बार प्रणाम किया तथा उनका स्तवगान करने लगे। इसके पश्चात् उन सर्वज्ञ, सर्वान्तरात्मरूप, सर्वेश्वर, सर्वभावन, सुरेश्वर कृष्ण ने, जो सभी यज्ञों के ईश्वर तथा सबके स्रष्टा हैं, ब्रह्मा आदि से कहा-।।११३-११५।।

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते।
इहाऽऽगच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः।।११६।।
अगताः स्थ महाभागा गङ्गानयनकारणात्।
गङ्गा मच्चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता।।११७।।
राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्संनिधानतः।
दास्यामीमां बहिः कृत्वा यूयं कुरुत निर्भयाम्।।११८।।

श्रीभगवान् कहते हैं–हे ब्रह्मन्! कमलापति (विष्णु)! महादेव! यहां आईये। आप सबका कुशल हो। हे महाभागगण! आप लोगों का उद्देश्य है कि गंगा को ले जायें। परन्तु गंगा ने भयभीत होकर मेरे चरणद्वय में शरण ले लिया है। राधा अपनी अंजलि में लेकर इसका पान करने हेतु उद्यत हो गई थी। यह देख कर गंगा शरणागत होकर मेरे पास आ गई। मैं इसको अपने चरणों से अलग करके आप लोगों को देता हूं, तथापि आप लोग इसे यहां से ले जाकर अभय प्रदान करें।।११६-११८।।

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः।
तुष्टाव सर्वाराध्यां तां राधां श्रीकृष्णपूजिताम्।।११९।।
वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः।
धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः।।१२०।।

ब्रह्मा ने कृष्ण का यह कथन सुन कर हंसते हुए सर्वाराध्या कृष्णपूजिता राधिका का स्तव करना प्रारम्भ किया। चतुर्वेद प्रणेता चतुरानन ब्रह्मा भक्ति से नतशिर होकर अपने चारों मुख द्वारा देवी राधा की स्तुति करने लगे।।११९-१२०।।

ब्रह्मोवाच

गङ्गा त्वदङ्गसंभूता प्रभोर्वै रासमण्डले।
[1]युवयोर्द्रवरूपा या मुग्धयोः शङ्करः स्वराट्।।१२१।।
कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया।
त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम्।।१२२।।

१. ख. द्रवरूपा च या रासमुग्धया शं.।

भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठे च चतुर्भुजः।
भूगतायाः कलायाश्च लवणोदश्च वारिधिः॥१२३॥
गोलोकस्य च या राधा सर्वत्रस्था तथात्मिका।
तदात्मिका त्वं देवेशि सर्वदा च तवाऽऽत्मजा॥१२४॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे भगवती! रासमण्डल में जब शंकर के स्वर से मुग्ध होकर आप तथा प्रभु श्रीकृष्ण मुग्ध हो गये थे, तब आप लोगों के देह से यह द्रवरूपा गंगा उद्भूत हो गयीं। गंगा तो आपकी तथा कृष्ण की अंशरूपा हैं। ये तो आपकी पुत्री के समान आपकी प्रिय हैं। इसलिये ये आपका मन्त्र ग्रहण करके आपकी पूजा करें। इससे वैकुण्ठ में इनके पति चतुर्भुज विष्णु होंगे। जब ये अपनी कला से पृथिवी पर अवतीर्ण होंगी, तब लवणसमुद्र इनके पति होंगे। आप गोलोकस्थ राधा ही सर्वव्यापिनी हैं। आप तपःस्वरूपा अम्बिका हैं। आपसे ही उद्भूता गंगा तो आपकी पुत्री होकर प्रसिद्ध हैं॥१२१-१२४॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता।
बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः॥१२५॥
तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः। उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता॥१२६॥
तत्तोयं ब्रह्मणा किञ्चित्स्थापितं च कमण्डलौ।
किञ्चिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धे चन्द्रशेखरः॥१२७॥

ब्रह्मा का कथन सुनकर स्मित मुस्कान युक्त राधा ने इस बात पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दिया। यह सुनकर गंगा कृष्ण के अंगुष्ठ के नखाग्र भाग से निर्गत हो गईं। वे अपने आंचल से मुख एवं शिर ढंक कर वहां सबके बीच बैठ गईं। जल गंगा से उसकी अधिष्ठातृ देवी गंगा बहिर्गत् हो गईं। ब्रह्मा ने उस जलराशि से तनिक जल लेकर अपने कमण्डलु में रखा। चन्द्रशेखर शिव ने भी शिर के चन्द्रार्द्ध पर कुछ जल धारण किया॥१२५-१२७॥

गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः।
तत्स्तोत्रं कवचं पूजाविधानं ध्यानमेव च॥१२८॥
सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा। गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती॥१२९॥

गंगा को ब्रह्मा ने राधिकामन्त्र प्रदान किया। उन्होंने सामवेदोक्त विधान से उसका पुरश्चरण, पूजाविधान, ध्यान आदि सब कहा। सती गंगा ने तदनुसार राधा का पूजन किया तथा वैकुण्ठधाम चली गयीं॥१२८-१२९॥

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी।
एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने॥१३०॥

अथ तं सम्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच ह।
सर्वं कालस्य वृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम्॥१३१॥

हे मुनिप्रवर! लक्ष्मी, सरस्वती, पतितपावनी गंगा तथा तुलसी, ये चारों नारायण पत्नी हैं। तदनन्तर कृष्ण ने हंसते हुए काल का वह वृत्तान्त कहा, जो अपण्डितगण हेतु सदा दुर्बोध्य है॥१३०-१३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर।
शृणु कालस्य वृत्तान्तं यदतीतं निशामय॥१३२॥
यूयं च येऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा।
सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः॥१३३॥
ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते। जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये॥१३४॥
ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि।
वैकुण्ठं च विना सर्वं सजलं पश्य पद्मज॥१३५॥
गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं परम्।
सब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गा च यास्यति॥१३६॥
एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः। करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह॥१३७॥
मच्चक्षुषोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत्।
गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः॥१३८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे ब्रह्मन्! हे विष्णु! हे महेश्वर! आप सभी गंगा को ग्रहण करें। जो काल अतीत हो गया है, उसका वृत्तान्त अब श्रवण करिये। आप लोग तथा अन्य देवता, मुनि, मनु, सिद्ध तथा तपस्वीगण जो मेरे समीप आये हैं, वे काल रहित गोलोक में हैं। इसीलिये सब जीवित हैं, तथापि इस समय प्राकृत प्रलय के कारण समस्त जगत् जलप्लावित हो गया है। उस विश्व के ब्रह्मा आदि सभी मुझमें लीन हो गये। हे पद्मनाभ! आप देखें! गोलोक तथा वैकुण्ठ के अतिरिक्त समस्त विश्व जलमय है। अतः जाकर पुनः ब्रह्माण्ड का तथा ब्रह्मलोक आदि का सृजन करिये तभी गंगा वैकुण्ठ से जा सकेंगी। इसी प्रकार अन्य विश्व का अन्य ब्रह्मा आदि कर भी सृजन करके पुनः सृष्टि की अवतारणा करेंगे। अब आप भी देवगण के साथ शीघ्र जाईये। मेरे एक बार पलक झपकने भर में (निमेष में) एक ब्रह्मा का समय समाप्त हो जाता है। इस प्रकार न जाने कितने ब्रह्मा चले गये, कितने जायेंगे, यह संख्या गणना असंभव है॥१३२-१३८॥

इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने।
देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः॥१३९॥

हे मुनि! यह कहकर राधिकानाथ अपने अन्तःपुर में चले गये तथा देवगण जाकर पुनः सृष्टि का उपक्रम करने लगे।।१३९।।

गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके।
ब्रह्मलोके तथाऽन्यत्र यत्र यत्र पुरा स्थिता।।१४०।।

तत्पश्चात् भगवान् परमात्मा कृष्ण ने गंगा को जिस प्रकार से गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक तथा ब्रह्मलोक के अतिरिक्त जहां कहीं रहने का आदेश दिया था, वे वहां-वहां चली गईं।।१४०।।

तत्रैव सा गता गङ्गा चाऽऽज्ञया परमात्मनः।
निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता।।१४१।।
इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं मोक्षदं सारं[१] किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।१४२।।

इति श्रीब्र० महा० प्रकृति० नारदना० गङ्गोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

वे विष्णु के पादपद्म से निर्गत होने के कारण विष्णुपदी कही गयीं। इस प्रकार मैंने तुमसे सुखद-मोक्षप्रद, सारभूत गंगा का उत्तम प्रसंग सुना दिया। अब और क्या सुनने की इच्छा है?।।१४१-१४२।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

गंगा के साथ नारायण का विवाह

नारद उवाच

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी लोकपावनी। एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति।।१।।
गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया। कथं सा तस्य पत्नी च बभूव[२] ब्रूहि केशव।।२।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! लक्ष्मी, सरस्वती तथा लोकपावनी गंगा एवं तुलसी, ये चारों

१. क. साक्षात्किं।
२. क. ०भवेति च न श्रुतम्।

नारायण की पत्नी हैं। आपने कहा। इनमें से गंगा वैकुण्ठ चली गयीं। यह सुना। हे केशव! गंगा विष्णुपत्नी कैसे हो गयीं? यह कृपया कहिये।।१-२।।

श्रीनारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाच्च गतो विधिः।
गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम्।।३।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–जब गंगा वैकुण्ठ चली गईं तब जगत्विधाता ब्रह्मा भी उनके पीछे-पीछे गये तथा उन प्रणम्य जगदीश्वर लक्ष्मीश्वर को प्रणाम करके कहने लगे–३।।

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसंभूता या देवी द्रवरूपिणी। तदधिष्ठातृदेवीयं रूपेणाप्रतिमा भुवि।।४।।
नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुन्दरी वरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहङ्कारवर्जिता।।५।।
यदङ्गसंभवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना। तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा।।६।।
समुद्यता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम्। विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं–जो देवी राधा-कृष्ण के अंग से द्रवरूपेण निर्गत हो गयी थीं, ये ही द्रव की अधिष्ठातृ देवता हैं। ये रूप में इस जगत् में अनुपम हैं। ये नवयौवन सम्पन्ना, सुशीला तथा सुन्दरियों में श्रेष्ठ हैं। ये शुद्धस्वरूपा हैं। क्रोध, अहंकारादि से रहित हैं। ये जिनके अंग से उद्भूता हैं, उन पुरुष के अतिरिक्त अन्य पुरुष का वरण पतिरूप में नहीं करेंगी, तथापि राधा अत्यन्त मानिनी हैं। वे महातेजस्विनी भी हैं। वे तो गंगा का पान करने को उद्यत हो गई थीं। तब गंगा भयभीत होकर बुद्धिमानी से कृष्ण के पदतल में प्रविष्ट हो गईं।।४-७।।

सर्वं विशुष्कं गोलोकं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा। गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तलब्धये।।८।।
सर्वान्तरात्मा सर्वं[१] नो ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च। बहिश्चकार गङ्गां च पादाङ्गुष्ठनखाग्रतः।।९।।

दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम्।
संप्रणम्य च राधेशं गृहीत्वाऽत्राऽऽगमं विभो।।१०।।

जब मैंने समस्त जगत् को शुष्कप्रायः देखा, तब मैं वहां गया जहां कृष्ण थे। उस गोलोकधाम में मैंने समस्त वृत्तान्त परमात्मा कृष्ण से निवेदित किया। तदनन्तर सर्वान्तरात्मा स्वरूप कृष्ण ने मेरा अभिप्राय जान कर पैर के अंगूठे के अग्रभाग से गंगा को पुनः बाहर निकाला। हे विभो! तत्पश्चात् मैंने इनको राधिका मन्त्र देकर इनके जल से गोलोक को पूर्ण कर दिया। तत्पश्चात् मैंने राधा तथा राधेश्वर कृष्ण को प्रणाम किया तथा गंगा को लेकर यहां आ गया।।८-१०।।

गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम्। सुरेश्वरस्त्वं रसिको रसिकां रसभावनः।।११।।

१. क. सर्वज्ञो ज्ञा०।

त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्॥१२॥
उपस्थितं च यः कन्यां न गृह्णाति मदेन च।
तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः॥१३॥

हे रसभावन विभु! आप सुरेश्वर हैं तथा अत्यन्त रसिक शिरोमणि हैं। आप इन रसिका सुरेश्वरी से गन्धर्व विवाह करके इनको ग्रहण करें। आप पुरुषों तथा सभी देवताओं में रत्नस्वरूप हैं। ये देवी गंगा भी सती नारीगण में स्त्रीरत्नरूपा हैं। चतुर नायिका के साथ चतुर नायक का मिलन विशेष प्रीतिप्रद है। जो व्यक्ति सामने आई कन्या को अभिमान के कारण त्याग देता है, उससे महालक्ष्मी रुष्ट होकर उसका त्याग करके चली जाती हैं। यह निःसंदिग्ध तथ्य है।।११-१३।।

यो भवेत्पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते।
सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः॥१४॥
त्वमेव भगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः।
अर्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्धाङ्गेन चतुर्भुजः॥१५॥

विद्वान् व्यक्ति कदापि प्रकृति (नारी) की अवमानना नहीं करता, क्योंकि सभी पुरुष प्रकृति से ही जन्म लेते हैं और नारीगण भी प्रकृति की कला से उत्पन्न होती हैं। आप भगवान् हैं। आप भगवान् ही एकमात्र ऐसे हैं, जो निर्गुण तथा प्रकृति से परे हैं। जो पूर्णतम कृष्ण हैं, उनका ही अर्धांश द्विभुज कृष्ण तथा अर्धांश आप चतुर्भुज श्रीहरि के रूप में प्रकट हैं।१४-१५।।

कृष्णवामाङ्गसंभूता परमा राधिका पुरा।
दक्षिणाङ्गात्स्वयं सा च वामाङ्गात्कमला यथा॥१६॥
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा। स्त्रीपुंसौ वै तथैकाङ्गौ यथा प्रकृतिपूरुषौ॥१७॥

पूर्वकाल में कृष्ण के वाम अंश से राधिका का उद्भव वर्णित है। ये राधिका भी द्विधा विभक्त हो गईं। वे दक्षिणांग के रूप में स्वयं राधारूपेण स्थित हैं। उनका ही वामांग कमला (लक्ष्मी) हो गया। इसी प्रकार से गंगा का भी प्राकट्य कहा गया है। आपके देह से उत्पन्न होने के कारण गंगा आपका ही वरण करने हेतु उद्यत हैं। जैसे प्रकृति तथा पुरुष एक ही है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष भी एक ही अंग कहे गये हैं।।१६-१७।।

इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम्॥१८॥

तदनन्तर विधाता ने गंगा से यह कहा तथा विष्णु को गंगा प्रदान करके स्वस्थान चले गये। इसके पश्चात् विष्णुदेव ने गान्धर्व विवाहानुसार गंगा का वरण किया।।१८।।

शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्। रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा॥१९॥
गां पृथ्वीं च गता यस्मात्स्वस्थानं पुनरागता।
निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता॥२०॥

इसके पश्चात् रमापति ने रतिप्रदा चन्दन चर्चिता शय्या की रचना करके उस पर गंगा के साथ आनन्द पूर्वक क्रीड़ा किया। गंगा भी पृथिवी पर जाकर यथाकाल पुनः स्वस्थान वापस आने के कारण गंगा कही गयीं। विष्णुपद से निर्गत होकर वे विष्णुपदी कही गईं।।१९-२०।।

मूर्च्छां संप्राय सा देवी नवसङ्गममात्रतः। रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता॥२१॥
तद्दृष्ट्वा दुःखिता वाणी सापत्न्येर्ष्याविवर्जिता।
नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम्॥२२॥

वे जब सुख पूर्वक संभोग क्रीड़ान्तर्गत् रसिकेश्वर विष्णु के साथ मिलित होकर नवसमागम तत्पर हो रही थीं, तभी मूर्च्छित हो गईं। यह देख कर सरस्वती अत्यन्त दुःख में भर गईं, तथापि कमला ने भगवान् को गंगा के साथ रमणरत देख कर कोई ईर्ष्या नहीं किया। सरस्वती ने ही ईर्ष्या किया था। पहले सरस्वती को गंगा के प्रति सौतिया डाह नहीं था, जब उनको रमणरत देखा था। परन्तु कालान्तर में सरस्वती गंगा से नित्य ईर्ष्यालु हो गईं। परन्तु गंगा कदापि सरस्वती को भगवान् के साथ देख कर भी ईर्ष्यालु नहीं होती थीं।।२१-२२।।

गङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः।
सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रो ह्यभवन्मुने॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० गङ्गोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

हे मुनिप्रवर! इस प्रकार रमापति की गंगा, सरस्वती, कमला–ये तीन भार्या थीं। कालान्तर में तुलसी को लेकर ४ भार्या हो गईं।।२३।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

तुलसी उपाख्यान, वृषध्वज का चरित्र वर्णन

नारद उवाच

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह। तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि॥१॥
कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या तपस्विनी।
केन वा तपसा सा च संप्राप प्रकृतेः परम्॥२॥
[1]निर्विकल्पं निरीहं च सर्वसाक्षिस्वरूपकम्। नारायणं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥३॥
सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं[2] सर्वकारणम्। सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम्॥४॥
कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह। कथं साऽप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी॥५॥
संदिग्धं मे मनो लोलं प्रेरयेन्मां मुहुर्मुहुः। छेत्तुमर्हसि संदेहं सर्वसंदेहभञ्जन॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—साध्वी तुलसी किस प्रकार से नारायण की पत्नी हो गयीं? पूर्वजन्म में उन्होंने कहां जन्म ग्रहण किया था? वे कौन हैं? प्रथमतः उन्होंने किस कुल में जन्म लिया था? वे तपस्विनी किसकी कन्या हैं? किस तपस्याकाल में उन्होंने प्रकृति से पृथक्, निर्विकार, निश्चेष्ट, सर्वसाक्षी, परमब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, सर्वाराध्य, सर्वज्ञ, सर्वेश, सर्वकारण, सर्वाधार, सर्वरूप, सबके परिपालक नारायण को प्राप्त किया था? किस प्रकार वे देवी इस प्रकार वृक्षरूपा हो गईं? वे तपस्विनी किस प्रकार असुर से ग्रस्त हो गईं? हे सबका सन्देह भंजन करने वाले! मेरा संदिग्ध मन यह सब विषय सुनने के लिये अत्यन्त लोलुप हो रहा है। कृपया मेरे सन्देह का उच्छेद करिये।।१-६।।

श्रीनारायण उवाच

मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः।
यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः॥७॥
तत्पुत्रो धर्मसावर्णिधर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः।
तत्पुत्रो विष्णुसावर्णिवैष्णवश्च जितेन्द्रियः॥८॥
तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः। तत्पुत्रो राजसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः॥९॥
वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः। यस्याऽऽश्रमे स्वयं शंभुरासीद्देवयुगत्रयम्॥१०॥

श्री नारायण कहते हैं—दक्ष सावर्णि मनु पुण्यात्मा, विष्णु उपासक, सदाचारी, यशस्वी, कीर्तिमान तथा भगवद अंश से उत्पन्न हुए थे। वे महान् वैष्णव थे। उनके पुत्र थे धर्म सावर्णि। वे भी अत्यन्त

१. क. ०विकारं नि०।
२. क. ०र्वमङ्गलकारकम्।

धार्मिक एवं वैष्णव थे। धर्मसावर्णि के पुत्र थे विष्णुसावर्णि। वे भी अत्यन्त वैष्णव तथा इन्द्रियजित् थे। तदनन्तर देवसावर्णि के पुत्र राजसावर्णि ने जन्म लिया था। वे भी पिता के समान महावैष्णव तथा विष्णुपरायण थे। इनके पुत्र थे शिवपरायण वृषध्वज। स्वयं भगवान् शंकर उनके यहां तीन दिव्ययुग पर्यन्त निवास करते रहे।।७-१०।।

पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च।
न च नारायणं मेने न च लक्ष्मीं सरस्वतीम्॥११॥
पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः।
भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो[१]ऽत्यजन्नृपः॥१२॥
माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः।
यज्ञं च विष्णुपूजां च निनिन्दे न चकार सः॥१३॥

उन राजा के प्रति शिव पुत्र से भी अधिक स्नेह करते थे। इस कारण वे राजा किसी भी देवी लक्ष्मी-सरस्वती आदि की पूजा नहीं करते थे। उन्होंने सभी देवताओं की पूजा त्याग दिया था। वे भाद्रमास में महालक्ष्मी पूजा, माघमास में सरस्वती पूजा इत्यादि नहीं करते थे। वे तो यज्ञ तथा विष्णुपूजा के भी महानिन्दक थे। उन्होंने यज्ञ तथा विष्णुपूजा की निन्दा किया था।।११-१३।।

न कोऽपि देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात्।
भ्रष्टश्रीर्भव भूपेति चाशपत्तं दिवाकरः॥१४॥
शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं धृतवाञ्छङ्करः स्वयम्।
पित्रा सार्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ॥१५॥

शिव के राजा पर कृपालु होने के कारण कोई भी देवता राजा वृषध्वज को शाप नहीं देता था, तथापि एक बार भगवान् दिवाकर ने राजा को शाप दे ही दिया कि तुम श्रीभ्रष्ट हो जाओ, तथापि यह शाप सुन कर महादेव त्रिशूल लेकर सूर्य के पीछे दौड़ पड़े। तब सूर्य देव अपने पिता कश्यप मुनि को साथ लेकर ब्रह्मा के शरणागत हो गये।।१४-१५।।

शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा।
ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया॥१६॥
शूलं गृहीत्वा तत्रापि धृतवाञ्छङ्करो रविम्।
ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः संत्रस्ताः शुष्कतालुकाः॥१७॥
नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया। मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः॥१८॥
[२]सर्वे निवेदनं चक्रुर्भियस्ते कारणं हरौ॥१९॥

१. क. ०त्तो बभञ्ज ह।
२. क. सर्वं नि०।

यह देख कर शिव अपना त्रिशूल लेकर पीछा करते ब्रह्मलोक पहुंचे। तब ब्रह्मा भी निरुपायावस्था में सूर्य को आगे करके वैकुण्ठ पहुंच गये। इस पर उनका पीछा करते हुए शिव भी शूलपाणि होकर वहां आ गये। यह देख कर ब्रह्मा, कश्यप तथा सूर्य के कण्ठ भय के कारण सूख गये। वे भय पूर्वक सर्वेश्वर नारायण की शरण में आ गये। वे सभी नारायण को प्रणाम करके उनका पुनः-पुनः स्तव करने लगे तथा सभी ने हरि से अपने भय के कारण को कहा।।१६-१९।।

नारायणश्च कृपयाऽभयं तेभ्यो ददौ मुने।
स्थिरा भवत हे भीता भयं किं वो मयि स्थिते॥२०॥
स्मरन्ति ये यत्र यत्र मां विपत्तौ भयान्विताः।
तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः॥२१॥

देवेश्वर विष्णु ने कृपा पूर्वक इन सबको अभय प्रदान किया। कहा-"हे भयभीत महात्मागण! स्थिर हो जायें। मेरे विद्यमान रहते आप सबको कोई भय नहीं है। जो मनुष्य विपत्ति में भय के कारण मेरा स्मरण करता है, शीघ्र मैं चक्रधारी होकर वहां जाता हूं तथा उस विपन्न की रक्षा करता हूं"।।२०-२१।।

पाताऽहं जगतां देवाः कर्ताऽहं सततं सदा। स्त्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः॥२२॥
शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः।
विधाय नानारूपं च कुर्यां सृष्ट्यादिकाः क्रियाः॥२३॥

हे देवताओं! मैं ही जगत्पालक, जगत्कर्त्ता हूं तथा ब्रह्मा रूप से सृजन कार्य, शिव रूप से संहार कार्य करता हूं। मैं ही शिव तथा त्रिगुणात्मक सूर्य हूं। मैं नाना रूपधारी होकर सृजन-पालनादि कार्यरत रहता हूं। आप सबका कल्याण हो!।।२२-२३।।

यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः।
अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वराच्छङ्कराद्भयम्॥२४॥
आशुतोषः स भगवाञ्छङ्करश्च[१] सतां गतिः।
भक्ताधीनश्च भक्तेशो भक्तात्मा भक्तवत्सलः॥२५॥
सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ। ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः॥२६॥
शक्तः स्त्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया।
कोटिं च ब्रह्मणामेवं किमसाध्यं च शूलिनः॥२७॥
वाह्यज्ञानं तत्र किञ्चिद्ध्यायतो मां दिवानिशम्।
मन्नाम मद्गुणं भक्त्या पञ्चवक्त्रेण गीयते॥२८॥

१. क. ०करः शंकरः सताम्।

आज से मेरे वर के कारण शंकर से आप लोगों को कोई भय नहीं रहेगा। प्रभु शंकर सद्व्यक्तिगण की गति हैं। वे आशुतोष हैं। वे भक्त के अधीन, भक्त के ईश्वर, महात्मा तथा भक्तवत्सल हैं। शिव तथा यह चक्र सुदर्शन मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। हे ब्रह्मन्! इनकी अपेक्षा तेजस्वी ब्रह्माण्ड में कोई नहीं है। महादेव तो मात्र लीला द्वारा ही करोड़ों सूर्य तथा करोड़ों ब्रह्मा का सृजन कर सकते हैं। वे भक्त के अधीन, भक्त के ईश्वर, महात्मा तथा भक्तवत्सल हैं। इन प्रभु शूलपाणि के लिये असाध्य कुछ भी नहीं है। वे सतत् मेरे ध्यान में आसक्त चित्त वाले होने के कारण बाह्य ज्ञानशून्य हैं। वे अपने पंचमुखों से भक्ति पूर्वक केवल मेरे नाम तथा गुण का गायन सतत् करते रहते हैं।।२४-२८।।

अहमेवं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम्।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।।२९।।
शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता।
शिवो भवति यस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः।।३०।।

जो कोई मेरा जिस प्रकार से भजन करता है, मैं उस पर उसी प्रकार से कृपा करता हूं। भगवान् शिव समस्त कल्याण के अधिष्ठातृ देवता हैं। विद्वान् कहते हैं कि जिनके द्वारा कल्याण मिले, वे ही शिव हैं।।२९-३०।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्छङ्करः स्वयम्। शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपङ्कजलोचनः।।३१।।
अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकंधरः।
ननाम भवत्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम्।।३२।।

इसी के पश्चात् वहां स्वयं शंकर आ गये। वे वृषारूढ़ थे। उनके नेत्र क्रोध के कारण लाल वर्ण के कमल जैसे लग रहे थे। उन्होंने त्रिशूल धारण किया था। उन्होंने जब भगवान् विष्णु को देखा, तब वे शीघ्र वृषभ से नीचे उतरे। उन्होंने भक्ति से विनम्र होकर तथा शिर नत करके उन शान्त परात्पर सिंहासनस्थ रत्न-अलंकार भूषित लक्ष्मीकान्त को प्रणाम किया।।३१-३२।।

रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालङ्कारभूषितम्। किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम्।।३३।।
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं च चतुर्भुजम्। चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना।।३४।।

वे प्रभु रत्नसिंहासनासीन, रत्नालंकार भूषित, किरीट, कुंडल पहने हुए, चक्रधारी तथा वनमाली थे। वे नव जलधर के समान श्यामवर्ण, सुन्दर चतुर्भुज थे। वे चतुर्भुज पार्षदों से सेवित थे, जो उनको श्वेत चामर झल रहे थे।।३३-३४।।

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा। लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं च नारद।।३५।।
विद्याधरीनृत्यगीतं शृण्वन्तं सस्मितं मुदा। ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्।।३६।।

हे नारद! उन प्रभु का सर्वांग चन्दन से चर्चित तथा पीले वर्ण के वस्त्र से भूषित था। वे लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त ताम्बूल चबा रहे थे। उनके समक्ष विद्याधरियां नृत्य तथा गायन कर रही थीं। नारायणदेव

सस्मित एवं मुदित होकर गायन सुन रहे थे। ये प्रभु ईश्वर, परमात्मा तथा भक्तों पर अनुग्रहार्थ देह धारण करते हैं।।३५-३६।।

तं ननाम महादेवो ब्रह्माणं च ननाम सः।
ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चन्द्रशेखरम्॥३७॥
कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च नमाम च। शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने॥३८॥

तब महादेव ने नारायण तथा ब्रह्मा को प्रणाम किया। उस समय संत्रस्त स्थिति में सूर्य ने चन्द्रशेखर देव को भक्ति के साथ नमस्कार किया। दिवाकर के पिता महर्षि कश्यप ने महान् भक्ति के साथ शिवस्तुति करके उनको प्रणाम किया। इसके अनन्तर सर्वेश शिव भगवान् नारायण की स्तुति करके सुखासनासीन हो गये।।३७-३८।।

सुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम्। श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः॥३९॥
अक्रोधं सत्त्वसंसर्गात्प्रसन्नं सस्मितं मुदा। स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम्॥४०॥
तमुवाच प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि। पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम्॥४१॥

उस समय विष्णुपार्षदगण ने जब शिव को अत्यन्त श्रान्त देखा, तब सुखासनासीन महादेव की सेवा श्वेत चामर झल कर करने लगे। सत्व के संसर्ग से (विष्णु सत्वगुणात्मक हैं, अतः विष्णु के संसर्ग से) शिव क्रोध रहित हो गये। तब प्रसन्न, मंद मुस्कान से युक्त, पंचमुख से परम विभु नारायण की स्तुति में तन्मय शिव से उस सुर संसद में नारायण देव ने प्रसन्न होकर अमृततुल्य मनोहर वचन कहे।।३९-४१।।

श्रीभगवानुवाच

अत्यन्तमुपहास्यं च शिवप्रश्नं शिवेऽशिवम्।
लौकिकं वैदिकं चैव त्वां पृच्छामि तथाऽपिशम्॥४२॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। संपत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वां च सांप्रतम्॥४३॥
ज्ञानाधिदेवे सर्वज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा। निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युञ्जये हरे॥४४॥
[१]त्वामेवाऽऽगमने प्रश्नमलं स्वाश्रयमागमे।
[२]आगतोऽसि कथं वेगादित्युवाच रमापतिः॥४५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे महादेव! आप तो सर्वमंगलमय हैं। अतः आपका मंगल पूछना तो अत्यन्त उपहासास्पद है, तथापि आपसे लौकिक तथा वैदिक प्रथा के अनुरूप वैसा ही प्रश्न पूछ रहा हूं। आप तपःफलदाता, सर्व सम्पदा प्रदाता हैं। अतः आपसे आपकी सम्पत्ति की कुशलता तथा तप की वृद्धि के सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछना असंगत ही लग रहा है। आपके ज्ञान की उन्नति आदि की कुशलता

१. ख. ॰मेव वाग्धनं प्र॰।
२. क. ॰गतस्तत इत्येव वद कोपस्य कारणम्।

भी पूछना व्यर्थ है, क्योंकि आप सर्वज्ञ तथा ज्ञान के भी अधिदेवता हैं। आप स्वयं विपत्ति रहित एवं मृत्युजयकर्त्ता हैं, तब आप विपत्तिग्रस्त हैं कि विपत्ति रहित हैं, यह पूछना भी असंगत ही है। आप मेरे आश्रम में आये हैं, अतः आपके आगमन के सम्बन्ध में क्या प्रश्न करूं?, तथापि आप इतने वेग से क्यों आये? यही प्रश्न करता हूं।।४२-४५।।

श्रीमहादेव उवाच

वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम्। सूर्यः शशाप इति मे हेतुरागमकोपयोः।।४६।।
पुत्रवात्सल्यशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः। स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च ससूर्यश्च विधिस्त्वयि।।४७।।
त्वां ये शरणमापन्ना ध्यानेन वचसाऽपि वा।
निरापदस्ते निःशङ्का जरा मृत्युश्च तैर्जितः।।४८।।
साक्षाद्ये शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदा सदा।।४९।।

श्री महादेव कहते हैं—हे प्रभो! राजा वृषध्वज तो मुझे प्राणों से बढ़ कर प्रिय हैं। वह मेरा प्रिय भक्त है। उसे सूर्य ने शाप दे दिया। यही मैं पुत्र वात्सल्य के शोक में सूर्य का वध करने हेतु उद्यत हो गया। इससे भयभीत होकर वह पहले ब्रह्मा की शरण में गया। ब्रह्मा सूर्य के साथ आपके शरणापन्न हो गये। जो वाणी किंवा ध्यान मात्र से आपकी शरण ग्रहण कर लेता है, वह निरापद-निःशंक होकर जरा तथा मृत्यु को भी जीत लेता है। लेकिन जो साक्षात् स्वयं आपके यहां आकर शरणागत हो गये, उनके भाग्य के बारे में मैं क्या कह सकूंगा? हरि की स्मृति अभयप्रदा तथा सदा सर्वमंगलप्रदा है।।४६-४९।।

किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो। श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना।।५०।।

हे जगत्प्रभो! यह मेरा भक्त वृषध्वज सूर्य शाप से श्रीहत् हो गया है। उसका अब क्या होगा? हे जगत्प्रभो! कृपया कहिये।।५०।।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः।
वैकुण्ठे घटिकार्धेन[१] शीघ्रं याहि नृपालयम्।।५१।।
वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात्।
[२]हंसध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः।।५२।।
तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ। हतश्रियौ सूर्यशापात्तौ वै परमवैष्णवौ।।५३।।
राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातापसावुभौ।
तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च जनिष्यति।।५४।।

१. क. ०न यात शीघ्रं नृ०।
२. क. रथध्व०।

संपद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः।
मृतस्ते सेवकः शंभो गच्छ यूयं च गच्छत॥५५॥

श्रीभगवान् कहते हैं–यहां वैकुण्ठ में आप लोगों को आये आधी घड़ी ही व्यतीत हुई है। इतने समय में पृथिवी पर २१ युग व्यतीत हो गये। वृषध्वज दुर्निवार कालक्रम में मृत हो गया। उसका पुत्र हंसध्वज भी श्रीहत होकर कालक्रम से मृत्युग्रस्त हो गया। उसके पुत्र धर्मध्वज तथा कुशध्वज भी परम वैष्णव थे, तथापि सूर्यशाप से भी श्रीहत होकर कालक्रमेण राज्यभ्रष्ट एवं श्रीभ्रष्ट होकर कमला की आराधना करने लगे। उनके तप से प्रसन्न होकर लक्ष्मी स्वयं उनकी दोनों पत्नी के गर्भ से अंश रूपेण जन्म लेंगी। उसी समय से ये दोनों राजा सम्पत्तिवान् तथा श्रीयुत होंगे। हे शंकर! आपका सेवक वृषध्वज मृत हो गया। शंभु, सूर्य, ब्रह्मा! आप भी यहां से स्वस्थान जायें।।५१-५५।।

इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः।
देवा जग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा॥५६॥
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ॥५७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

यह कहकर विष्णु लक्ष्मी के साथ सभा से अन्तःपुर चले गये। देवगण प्रसन्न मन से शीघ्र तपस्यार्थ परिपूर्णतम धाम में चले गये।।५६-५७।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

वेदवती उपाख्यान का वर्णन तथा संक्षेप में रामायण वर्णन

नारायण उवाच

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने। प्रत्येकं वरमिष्टं च संप्रापतुर भीप्सितम्॥१॥
महालक्ष्म्या वरेणैव तौ पृथ्वीशौ वभूवतुः। धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ॥२॥
कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती।
सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम्॥३॥

सा च भूतलसंबन्धाज्ज्ञानयुक्ता बभूव ह। कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! राजपुत्र धर्मध्वज तथा कुशध्वज ने उग्र तप द्वारा लक्ष्मी की आराधना करके इच्छित सभी वर प्राप्त किया तथा महालक्ष्मी के वर के प्रभाव से वे धनी, पुत्रवान् एवं पृथिवीपति हो गये। तदनन्तर कुशध्वज की पत्नी मालावती ने कालक्रम से लक्ष्मी के अंश वाली एक कन्या को जन्म दिया। यह कन्या उत्पन्न होते ही उत्तम ज्ञान युक्त हो गई। वह सूतिकागृह में ही स्पष्ट वेदध्वनि करती उठ गई॥१-४॥

वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका। तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः॥५॥
जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम्। सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा॥६॥

उस कन्या ने जन्म लेते ही वेदध्वनि किया था, अतः मनीषी लोग उसे वेदवती कहते हैं। उसने जन्म लेते ही सम्यक्तः स्नान किया तथा उसी के साथ तप करने वन में जाने लगी। सभी ने प्रयत्न के साथ वनगमन से रोकना चाहा, परन्तु वह रुकी ही नहीं! वह पूर्णतः नारायण परायण थीं॥५-६॥

एकमन्वन्तरं चैव पुष्करे च तपस्विनी। अत्युग्रां वै तपस्यां तु लीलया च चकार सा॥७॥
तथाऽपि[1] पुष्टा न कृशा नवयौवनसंयुता। शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम्॥८॥

उस तपस्विनी ने एक मन्वन्तर तक पुष्कर तीर्थ में तप किया। उस अत्युग्र तप को उसने लीला से ही कर लिया। इतने तप पर भी वेदवती कृश नहीं हो सकी। वह पुष्ट तथा नवयौवना थी। तभी उसने आकाश से एक अशरीरी वाणी सुना॥७-८॥

जन्मान्तरे ते भर्ता च भविष्यति हरिः स्वयम्।
ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि॥९॥

यथा–हे सुन्दरी! जन्मान्तर में हरि स्वयं तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मादि देवगण हेतु दुर्लभ श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे॥९॥

इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार च पुनस्तपः। अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने॥१०॥

यह सुनकर वेदवती रुष्ट हो गई तथा पुनः तप करने लगी। उसने गन्धमादन पर्वतस्थ अत्यन्त निर्जन स्थल में तप प्रारम्भ किया॥१०॥

तत्रैवं सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा। ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम्॥११॥
दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल।
सुस्वादु फलमूलं च जलं चापि सुशीतलम्॥१२॥

उस स्थान पर वेदवती ने चिरकाल पर्यन्त तप किया तथा विश्वास पूर्वक वहीं रहने लगी। उसने

---

१. क. ०पि सा न च क्लिष्टा न०।

एक दिन अत्यन्त दुर्निवार रावण को देखा। उस समय वेदवती ने रावण को अतिथि मान कर अत्यन्त भक्ति से उसे पाद्य प्रदान किया। सुस्वादु फल-मूल तथा शीतल जल भी प्रदान किया।।११-१२।।

तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चावात्सीत्रत्समीपतः।
चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि चेति च।।१३।।
तां च दृष्ट्वा वरारोहां [1]पीनोन्नतपयोधराम्।
शरत्पद्मनिभास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम्।।१४।।
मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः। तां करेण समाकृष्य संभोगं कर्तुमुद्यतः।।१५।।
सा सती कोपदृष्ट्या च स्तम्भितं तं चकार ह।
स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तुं न च क्षमः।।१६।।

वह सब खाकर पापी रावण वहीं रुक गया। उसने वेदवती से प्रश्न किया कि "हे कल्याणी! तुम कौन हो?" पापी रावण इस मनोहारिणी, स्थूल उन्नत स्तनों वाली, शरत्कालीन पद्म के समान प्रफुल्ल वदना सुहासिनी एवं सुदर्शना उस वेदवती को देख कर कामबाण से पीड़ित हो गया। इस कामासक्ति के कारण वह मूर्च्छित-सा होने लगा तथा उसे खींच कर उस वेदवती से समागम करने को उद्यत हो गया। तभी सती वेदवती ने कोपमयी दृष्टि से रावण को स्तंभित कर दिया। उसके हस्तपाद जड़ हो गये। वह कुछ भी कहने में समर्थ नहीं था।।१३-१६।।

तुष्टाव मानसा देवीं पद्मांशां पद्मलोचनाम्। सा तत्स्तवेन संतुष्टा तं मुमोच ह।।१७।।
शशाप च मदर्थे त्वं विनश्यसि सबान्धवः।
स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्विसृजाम्यवलोकय।।१८।।
इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्यागं चकार ह।
गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ।।१९।।

तत्पश्चात् जब उस रावण ने मन ही मन उन पद्मलोचना तथा लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न वेदवती की स्तुति किया। तब प्रसन्न होकर कन्या वेदवती ने मूर्ख रावण को मुक्त कर दिया। परन्तु शाप भी दिया कि "तुमने कामातुर होकर मेरा स्पर्श किया, अतः तुम्हारे समक्ष मैं देहत्याग करती हूं। मेरे कारण तुम सपरिवार नष्ट हो जाओगे।" यह कहकर वेदवती ने योग द्वारा देह त्याग कर दिया। रावण भी उसके शव का गंगा प्रवाह करके स्वगृह चला गया।।१७-१९।।

अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वा मयाऽधुना।
इति संचिन्त्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः।।२०।।

गृह जाते समय रावण सोचता जा रहा था "अहो! मैंने कितना विस्मयजनक दृश्य देखा, साथ ही मैं कितना अन्यायपूर्ण कार्य किया? इस प्रकार विलाप करता वह गृह गया।।२०।।

---

१. क. पीनश्रेणीप.।

सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा।
सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः॥२१॥
महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मनः। लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम्॥२२॥
संप्राप्य तपसाऽऽराध्य[१] स्वामिनं च जगत्पतिम्।
सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी॥२३॥

कालान्तर में यही साध्वी जनक की पुत्री रूप में जन्मी। उसका नाम 'सीता' प्रसिद्ध था। उनके ही कारण रावण नष्ट हो गया। इन सीता ने अपनी जन्मान्तरीण महातपस्या द्वारा महातपस्विनी होकर जगत्पति राम को पतिरूप में प्राप्त किया तथा चिरकाल पर्यन्त उन्होंने राम के साथ निवास किया। वे अत्यन्त सुन्दरी थीं।।२१-२३।।

जातिस्मरा[२] स्म स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा।
सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले॥२४॥
नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती। संप्राप्य सुकुमारं तमतीव[३] नवयौवनम्॥२५॥
गुणिनं रसिकं शन्तं कान्तवेषमनुत्तमम्।
स्त्रीणां मनोज्ञं[४] रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम्॥२६॥

वे जातिस्मरा (पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त थीं) थीं, तथापि पूर्वजन्म की तपस्या का कष्ट उनकी स्मृति में अवश्य था। इतने पर भी इस जन्म के सुखभोग के आगे उन्होंने पूर्व जन्म के तपक्लेश को विस्मृत कर दिया। इन जनकपुत्री ने नवयौवनयुक्त सुकोमल राम को पति रूप से पाया तथा अनेक वैभव भोग करने लगी। रामचन्द्र अत्यन्त गुणी, रसिक, शान्त स्वभाव, मनोहर वेश-भूषा वाले तथा स्त्रियों को अत्यन्त आकर्षक लगते थे। वे सीता के मनोभिलषित पति थे।।२४-२६।।

पितुर्वचः पालनार्थं सत्यसंधो रघूत्तमः। जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा॥२७॥
तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च। ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः॥२८॥
तं रामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह।
उवाच किञ्चित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः॥२९॥

सत्यसंघ, रघुकुलप्रवर राम ने पिता के वचन पालनार्थ कुछ समय वनवास किया। तदनन्तर महाबली काल के कारण वे सीता-लक्ष्मण के साथ समुद्र तट पर आये। वहां हरि श्रीराम ने विप्ररूपधारी

---

१. क. राध्यं सुराराध्यं च०।
२. क. ०रा च स्म०।
३. क. ०व सुमनोहरा।
४. क. ०नोज्ञरूपं च त०।

अग्नि का दर्शन किया। अग्नि राम को दुःखी देख कर स्वयं दुःखी हो गये। उन्होंने सत्यरूप तथा सत्यपरायण राम से कहा–।।२७-२९।।

वह्निरुवाच

भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं कालेन यदुपस्थितम्। सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः।।३०।।

दैवं च दुर्निवार्यं वै न च दैवात्परं बलम्।
मत्प्रसूं मयि संन्यस्य च्छायां रक्षान्तिकेऽधुना।।३१।।
दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः।
देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः।।३२।।

अग्निदेव कहते हैं–हे प्रभो! जो कालक्रमेण सामने उपस्थित होने वाला है, उस सम्बन्ध में मेरा कथन श्रवण करिये। अब सीताहरण का योग उपस्थित है। दैव तो टाला नहीं जा सकता। दैवबल के समान कोई बल नहीं है। आप मेरी माता सीता को मुझे ही अर्पित कर दीजिए। आप अपने पास छायारूपा सीता को रखिये। पुनः अग्निपरीक्षा काल में मैं सीता आपको प्रदान कर दूंगा। इसी उद्देश्य से देवताओं ने मुझे भेजा है। हे देव! मैं ब्राह्मण नहीं हूं। मैं अग्नि हूं।।३०-३२।।

रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम्।
स्वछन्दं स्वीचकारासौ हृदयेन विदूयता।।३३।।

वह्नियोगेन सीतावन्मायासीतां चकार ह। तत्तुल्यगुणरूपाङ्गीं[1] ददौ रामाय नारद।।३४।।

सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषेध्य च।
लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा।।३५।।

राम ने अग्निदेव का यह वचन सुन कर लक्ष्मण को इस सम्बन्ध में नहीं बताया। वे यद्यपि हृदय से दुःखी थे, तथापि उन्होंने स्वच्छन्दता पूर्वक अग्नि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। हे नारद! अग्नि ने तभी वहां पर पूर्णतः सीता की ही प्रतिकृति रूप गुणशालिनी माया सीता का सृजन किया तथा राम को प्रदान कर दिया। तत्पश्चात् अग्नि ने यह गुप्त विषय किसी से भी प्रकट न करने हेतु राम से कहा और वे विप्ररूपी अग्नि वास्तविक सीता को लेकर चले गये। इस गोपनीय विषय को महाबली लक्ष्मण तक नहीं जान सके। अन्य की तो बात ही क्या?।।३३-३५।।

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम्। सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम्।।३६।।

संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने।
स्वयं जगाम हन्तुं तं विव्यधे सायकेन च।।३७।।

तभी एक दिन राम ने वन में स्वर्णमृग देखा। उसे प्राप्त करने हेतु देवी (छाया) सीता ने

१. ख. ०रूपां तां द०।

अत्यन्त प्रयत्न से राम को भेजा। राम ने तब लक्ष्मण को सीता की रक्षा का भार दिया तथा वन में उस मृग का वध करने हेतु गये। राम ने अपने दिव्य बाण से उस मृग का वध कर दिया।।३६-३७।।

लक्ष्मणेति च शब्दं वै कृत्वा मायामृगस्तदा।
प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन्॥३८॥

मृगरूपं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च। रत्ननिर्मितयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह॥३९॥

वह मृग मारीच राक्षस था, जो माया से मृग बना था। मरते समय उसने अत्यन्त घोर शब्द किया "हा लक्ष्मण!" उसने अपने समक्ष श्रीहरि राम का दर्शन करते तथा हरिस्मरण करते प्राण त्याग दिया। अब वह मृगरूप त्याग कर दिव्यरूपी हो गया था। वह रत्नों से निर्मित यान पर आसीन होकर वैकुण्ठगामी हो गया!।।३८-३९।।

वैकुण्ठस्य महाद्वारे किङ्करो द्वारपालयोः। जयविजययोश्चैव बलवांश्च जयाभिधः॥४०॥
शापेन सनकादीनां संप्राप्य राक्षसीं तनुम्। पुनर्जगाम तद्द्वारमादौ स द्वारपालयोः॥४१॥

यह पूर्वकाल में वैकुण्ठ के महाद्वारस्थ द्वारपाल जय-विजय में से जय का बली सेवक था। परन्तु सनक-सनकादि ब्रह्मपुत्रों के शाप से राक्षसी योनि पाकर पुनः अब उस द्वार पर द्वारपाल के रूप में आ गया।।४०-४१।।

अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम।
सीता तं प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसंनिधौ॥४२॥

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः। सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया॥४३॥

विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम्।
तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः॥४४॥

मूर्च्छां संप्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः। पुनर्बभ्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम्॥४५॥
काले संप्राप्य तद्वार्तां गृध्रद्वारा नदीतटे। सहायं वानरं कृत्वा बबन्धे सागरं हरिः॥४६॥

लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च।
सबान्धवं रावणं च सीतां संप्राप्य दुःखिताम्॥४७॥

उधर सीता ने जब अत्यन्त कष्टपूर्ण शब्द "हे लक्ष्मण!" सुना, तब उन्होंने लक्ष्मण को राम की कुशलता जानने उनके पास भेजा था। महाबली लक्ष्मण उस समय जैसे ही राम के पास गये, तभी दुर्विनीत रावण आया तथा आसानी से सीता का हरण करके उनको लंकापुरी ले गया। इधर राम ने लक्ष्मण को जब अपनी ओर आते देखा, तब वे अत्यन्त चिन्तित होकर शीघ्र आश्रम आये तथा वहां उन्होंने कहीं भी सीता को नहीं पाया। वे सीता को वहां न पाकर रुदन करते मूर्च्छित हो गये। वे पुनः सीता को खोजते बारम्बार वन में भटकने लगे। कुछ काल के अनन्तर नदी तट पर उनको जटायु गृध्र से सीता का समाचार प्राप्त हो सका। उसके अनन्तर राम ने वानरों की सहायता से सागर पर सेतुबंधन

(पुल बनाया) तथा रघुप्रवर राम लंका आये। यहां उन्होंने अपने बाणों से बन्धु-बान्धवों सहित रावण का वध कर दिया तथा वहां दुःखी सीता प्राप्त किया।।४२-४७।।

तां च वह्निपरीक्षां वै कारयामास सत्वरम्।
हुताशनस्तत्र काले वास्तवीं जानकीं ददौ।।४८।।

इसके पश्चात् राम ने शीघ्रता से अग्नि परीक्षा (सीता की) किया। तभी अग्निदेव प्रकट हो गये तथा उन्होंने वास्तविक सीता को राम को दे दिया!।।४८।।

छाया चोवाच वह्निं च रामं च विनयान्विता।
करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे।।४९।।

उस समय छाया सीता ने राम के प्रति तथा अग्नि के प्रति विनयान्वित होकर पूछा-"अब मैं क्या करू? वह उपाय कहें।।४९।।

वह्निरुवाच

त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम्।
कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि।।५०।।
सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य[१] पुष्करे तपः।
कृत्वा त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गे लक्ष्मीर्बभूव ह।।५१।।
सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा।
कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा।।५२।।

कृतयुगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा। त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा।।५३।।
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा। त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये।।५४।।

अग्नि कहते हैं-तुम तपस्या हेतु पुष्कर तीर्थ जाओ। वहां तप करने के फलस्वरूप तुम स्वर्गलक्ष्मी हो जाओगी। छाया ने उनका यह कथन सुना तथा पुष्कर तीर्थ जाकर वहां दिव्य तीन लाख वर्ष तक (१ दिव्य वर्ष = ३६० मानव वर्ष) तप किया और वे स्वर्गलक्ष्मी हो गईं। कुछ काल पश्चात् वे यज्ञकुण्ड से आविर्भूत होकर द्रुपद की कन्या कहलाईं तथा पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी कही गईं। जो कृतयुग में कुशध्वज की शुभ कन्या वेदवती थीं, वे ही त्रेता में जनकपुत्री तथा रामपत्नी सीता कही गईं। उनकी छाया ही द्रुपदपुत्री द्रौपदी देवी द्वापर युग में कहलाईं। ये तीनों युगों में विद्यमान रहने के कारण त्रिहायणी कही गईं।।४९-५४।।

नारद उवाच

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव। इति मे चित्तसंदेहं दूरं कुरु महाप्रभो।।५५।।

१. ख. प्रतेपे पुष्करे तपः। दिव्यं त्रि०।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे मुनिप्रवर! आप संदेह का नाश करने वाले हैं। इन द्रुपदनन्दिनी द्रौपदी ने किस प्रकार से पांच पति प्राप्त किया था? इस सम्बन्ध में मेरे सन्देह का नाश करिये।।५५।।

श्रीनारायण उवाच

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद। रूपयौवनसंपन्ना छाया सा बहु विह्वला।।५६।।

रामाग्न्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शङ्करं वरम्।
कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः।।५७।।

पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन। पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा।।५८।।

शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः।
प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्त्विति वरं ददौ।।५९।।
तेनाऽऽसीत्पाण्डवानां च पञ्चानां कामिनी प्रिया।
इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तुतं वस्तुतः शृणु।।६०।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–जब अग्निपरीक्षा के पश्चात् वास्तविक सीता राम को लंका में मिल गईं, तब नवयौवना छाया चिन्तित हो गई थीं। तदनन्तर अग्नि तथा राम की आज्ञा से छाया सीता ने शंकर की आराधना किया। तप फलित होने पर कामातुरा तथा पति के लिये व्यग्र छाया ने वर मांगा– "हे त्रिलोचन! मुझे पति दीजिये।" इसी प्रकार उन्होंने व्यग्रता के कारण ५ बार पति मांगा। यह सुन कर रसिकश्रेष्ठ शिव ने हंसते हुए यह वर दिया "तुम ५ पति प्राप्त करो।" इसी वर के प्रभाव से द्रुपदपुत्री द्रौपदी ने पांच पाण्डवों को पति रूप से प्राप्त किया था। यह सब प्रसंग मैंने तुमसे कह दिया। हे नारद! अब वास्तविक प्रस्ताव का श्रवण करो।।५६-६०।।

अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम्।
विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः।।६१।।
एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते।
जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव च।।६२।।

इसके पश्चात् राम मनोरमा सीता को लंका में प्राप्त करने के अनंतर विभीषण को लंका का राज्य प्रदान किया तथा वे अयोध्या वापस आये। उन्होंने भारत में ११००० वर्ष तक राज्य किया और सभी अयोध्या निवासी लोगों के साथ वैकुण्ठ धाम आ गये।।६१-६२।।

कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा।
कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम्।।६३।।

सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च। सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता।।६४।।

लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न वेदवती भी पुनः लक्ष्मी में लीन हो गईं। मैंने तुमसे यह पुण्यप्रद,

पापनाशक, पुण्यमय आख्यान कह दिया। मूर्तिमान् चारों वेद वेदवती की जिह्वा के अग्रभाग पर सतत् स्थित रहते थे, तभी वह वेदवती कहलाई।।६३-६४।।

कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव। धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते॥६५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्याने वेदवतीप्रस्तावो नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

हे नारद! मैंने कुशध्वज की पुत्री का आख्यान तुमसे संक्षेप में कहा। अब धर्मध्वज की कन्या का आख्यान कहता हूं। श्रवण करो।।६५।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तुलसी का जन्म, बदरिकाश्रम में उनकी तपस्या, ब्रह्मा से वर प्राप्ति का वर्णन

श्रीनारायण उवाच

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता। नृपेण सार्धं सा रागाद्रेमे वै गन्धमादने॥१॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिता। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना॥२॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता। कामुकी रसिकश्रेष्ठा रसिकेशेन सङ्गता॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–राजा धर्मध्वज की पत्नी माधवी ने गन्धमादन पर्वत पर पुष्पचन्दन युक्त रतिप्रदा शय्या रचा तथा उस पर अपने पति धर्मध्वज के साथ नियत सुरतक्रीड़ारत होकर समय व्यतीत करने लगी। उसका सम्पूर्ण अंग चन्दन से युक्त एवं पुष्पचन्दन सुरभि युक्त वायु के प्रवहवान् होने के कारण सद्गन्ध युक्त था। यह रानी स्त्रीरत्नरूपा थी। उसके अंग अत्यन्त मनोहर तथा रत्नाभूषण भूषित थे। वह रानी अत्यन्त रसिक, कामुक थी। वह अपने रसिक शिरोमणि पति के साथ सतत् रमणरत रहती थी।।१-३।।

सुरताद्विरतिर्नाऽऽसीत्तयोः सुरतविज्ञयोः। गतं वर्षशतं दैवं न जानीतां दिवानिशम्॥४॥

ततो[१] राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः।
कामुकी सुन्दरी किञ्चिन्न च तृप्तिं जगाम सा॥५॥

१. क. ०तो रजस्वलां प्रा०।

दधार गर्भं सा सद्यो देवाब्दशतकं सती। श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने॥६॥

वे पति-पत्नी सुरतक्रीड़ा में सतत् निमग्न तथा सुरत क्रीड़ा (कामक्रीड़ा) के विशिष्ट जानकार थे। इस प्रकार क्रीड़ा करते-करते दिव्य सौ वर्ष (१ दिव्य वर्ष = ३६० मानव वर्ष) व्यतीत हो गये। उन पति-पत्नी को दिन-रात का भी भान नहीं रहता था। तदनन्तर राजा ज्ञानोदय होने के कारण सुरत क्रीड़ा से विरत हो गये, तथापि उस कामुकी रानी की अभी भी कामक्रीड़ा जनित तृप्ति नहीं हो सकी थी। इसी के साथ सती रानी गर्भवती हो गई। उसने उस गर्भ को १०० वर्ष पर्यन्त धारण किया। उसका गर्भ देवी लक्ष्मी के अंश से युक्त था तथा दिन-प्रतिदिन वह गर्भ शोभित होता गया।।४-६।।

शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते। शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते॥७॥
कार्तिकीपूर्णिमायां च सितवारे च पाद्मजे। सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम्॥८॥
पादपद्मयुगे[1] चैव पद्मरागविराजिताम्। राजराजेश्वरीं लक्ष्मीं सर्वावयवसुन्दरीम्॥९॥

तदनन्तर शुभ क्षण, शुभ दिन, शुभ योगयुक्त शुभ लग्न के शुभ अंश में तथा शुभ गृहाधिप ग्रहयोग में शुक्रवासरी कार्त्तिकी पूर्णिमा की तिथि पर उसने लक्ष्मी के अंश से युक्त पद्मिनी लक्षणयुक्त मनोहर कन्या को जन्म दिया। उसके पैर के तलवों में कमल का चिह्न अंकित था। उसके अंगों से राजराजेश्वरी लक्ष्मी की भंगिमा सुव्यक्त हो रही थी।।७-९।।

राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां राजलक्ष्म्यधिदेवताम्।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्॥१०॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम्।
हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम्॥११॥

वह कन्या राजलक्ष्मी के लक्षणों वाली समस्त राजलक्ष्मी की अधिष्ठातृ देवता थी। उस देवी का मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था। उसके नेत्र शारदीय कमल के समान मनोहर थे। उस कन्या के अधर-ओष्ठ पके बिम्बफल के समान थे। वह मुस्कराते हुए गृह को चतुर्दिक् देखती जा रही थी। उस कन्या की हथेली तथा तलवे रक्तवर्ण के थे। नाभि गंभीर तथा सुन्दर थी।।१०-११।।

तदधस्त्रिवलीयुक्तां वृत्तवल्गुनितम्बिनीम्।
शीते सुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम्॥१२॥
श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेकसुन्दरीम्॥१३॥

नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमा। तेन नाम्ना च तुलसी तां वदन्ति पुराविदः॥१४॥

नाभि से ऊपर त्रिवली रेखा मनोहर लग रही थी। उसके नितम्बद्वय वर्तुल थे। उसके अंग

---

१. क. ॰गे यस्याः पदमराजी विराजते।

शीतकाल में सुखप्रद उष्ण तथा ग्रीष्मकाल में शीतल रहते थे। उसके श्याम वर्ण के केश अत्यन्त सुन्दर थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों वे वटवृक्ष की जड़ें हों, जो ऊर्ध्व से निम्न प्रदेश में लटकती रहती है। इसकी प्रभा श्वेत चंपक पुष्प जैसी थी। यह सुन्दरियों से भी सुन्दरी थी। नर-नारी उसे देख कर किसी भी नारी के साथ उसके सौन्दर्य की तुलना नहीं कर पा रहे थे। प्राचीन विद्वानों ने उस कन्या का नाम तुलसी कहा है।।१२-१४।।

सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्री प्रकृतिर्यथा। सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम्॥१५॥
तत्र दैवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः। मम नारायणः स्वामी भवितेति विनिश्चिता॥१६॥

ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयस्था सा च सुन्दरी।
प्रकाशस्था वृष्टिधारां सहन्ती च दिवानिशम्॥१७॥

वह जन्म लेते ही ब्रह्मप्रेरित प्रकृति की तरह सबके रोकने पर भी सबकी बातों को अनसुनी करके बदरिकाश्रम वन में तप करने लगी। उसने यह संकल्प लिया—"नारायण ही मेरे स्वामी होंगे" तथा उसने एक लाख दैववर्ष पर्यन्त इसी वन में तप किया था। वह ग्रीष्म में ५ स्थान पर अग्नि प्रज्वलित करके उसके मध्य में स्थिर होकर पंचतपा तप करती, शीत में जल में रह कर तप करती, वर्षा में दिन-रात श्मशान की अजस्र वर्षाधारा में भींगते रह कर तप करने लगी।।१५-१७।।

विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा। त्रिंशद्वर्षसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी॥१८॥
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी। ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा॥१९॥

उसने २०००० वर्षों तक मात्र फल-जल पर आश्रित रह कर तप किया। तत्पश्चात् उसने ३०००० वर्षों तक केवल पन्तों का आहार करते जप किया। उस पतली कमर वाली वेदवती ने ४०००० वर्ष तक वायु का आहार करते तप किया। तदनन्तर उसने १०००० वर्ष पर्यन्त निराहार रहते तप किया।।१८-१९।।

निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः।
समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम्॥२०॥
चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा प्राणंसीद्धंसवाहनम्।
तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि॥२१॥

ब्रह्मा ने उसे निर्लक्ष्य, एक पैर पर खड़े रह कर तप करते देखा। अतः वे उसे वर देने की इच्छा से बदरिकाश्रम आये। ब्रह्मा ने देखा वे निर्लक्ष्य एक पैर पर खड़ी तपश्चरण कर रही हैं। हंसारूढ़ चतुर्भुज को समागत देख कर तुलसी ने उनको प्रणाम किया।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम्। हरिभक्तिं च मुक्तिं वाऽप्यजरामरतामपि॥२२॥

विधाता ने उनसे कहा–"हे तुलसी! तुम वर मांगो। तुम मुक्ति, हरिभक्ति, अजरत्व–अमरत्व, जो चाहे मांगो।।२२।।

तुलस्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम्।
सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम्॥२३॥
अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा।
कृष्णप्रियाकिङ्करी च तदंशा तत्सखी प्रिया॥२४॥
गोविन्देन सहाऽऽसक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम्।
रासेश्वरी समागत्य चापश्यदासमण्डले॥२५॥

देवी तुलसी कहती हैं–हे तात! मैं अपना इच्छित विषय आपसे कह रही हूं। सुनिये! आप तो सर्वज्ञ हैं। अतः आपसे कहने में क्या लज्जा? मैं तुलसी हूं। मैं पूर्वकाल में गोलोक में गोपी थी। कृष्ण की सेविका होकर सदैव उनकी सेवा करती थी। मैं राधा की अंशभूता प्रियतमा सखी थी। एक बार मैं रासमण्डल में गोविन्द के साथ क्रीड़ा कौतुक भोग करती मूर्च्छित हो गई तथा गिर गई। उसी समय रासेश्वरी राधिका हठात् वहां आ गईं। उन्होंने मुझे इस अवस्था में देख लिया।।२३–२५।।

गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशापं रुषाऽन्विता।
याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च पितामह॥२६॥
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम्।
लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात्॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशेऽप्यन्तर्धानमवाप सः।
देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा लब्धं जन्म मया भुवि॥२८॥
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्। सांप्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेव च देहि मे॥२९॥

उन्होंने क्रोधित होकर गोविन्द की अनेक प्रकार से भर्त्सना किया तथा मुझे शाप दिया–"हे पापिनी! तुम मनुष्य योनि में जन्म लोगी।" हे पितामह! तभी गोविन्द ने मुझसे कहा–"तुम भारत में तप करके वहां ब्रह्मा के वर द्वारा मेरे ही अंश चतुर्भुज विष्णु को पति रूप से प्राप्त करोगी।" यह कहकर गोविन्द अन्तर्हित् हो गये। मैंने भी देवी के भय से वह देह त्याग दिया तथा भारत में जन्म लिया है। हे प्रभो! आप मुझे यह वर दीजिये कि मैं उन कमनीय रूपधारी सुन्दर शान्त नारायण को पति रूप से प्राप्त करूं। यही वर चाहती हूं। प्रदान करिये।।२६–२९।।

ब्रह्मोवाच

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः। तदंशश्चातितेजस्वी चालभज्जन्म भारते॥३०॥

साम्प्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः। शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च सत्समः॥३१॥

गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः।
विलम्बितुं मा शशाक राधिकायाः प्रभावतः॥३२॥
स च जातिस्मरस्तप्त्वा त्वां ललाभ वरेण च।
जातिस्मरा तु त्वमपि सर्वं जानासि सुन्दरि॥३३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे देवी! कृष्ण के अंग से समुद्भूत तथा उनके अंशरूप अतीव तेजस्वी सुदामा नामक गोप भारत में जन्म लेगा। वह राधा के शाप से दैत्य वंश में जन्म लेकर त्रैलोक्य में शंखचूड़ नाम से प्रसिद्ध होगा। यह सुदामा गोलोक में पूर्वकाल में तुमको देख कर अत्यन्त काम-पीड़ित हो गया था, तथापि राधिका के प्रभाव से भयभीत होने के कारण वह नियम का अतिक्रमण वहां नहीं कर सका। उसे पूर्वजन्म का स्मरण है। तप द्वारा वह वरदान में तुमको ही प्राप्त करेगा। तुमको भी पूर्वजन्म का स्मरण है। तुम भी सब जानती हो।।३०-३३।।

अधुना तस्य पत्नी च भव भाविनि शोभने।
पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष्यसि॥३४॥

शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः। प्राप्नोषि वृक्षरूपं च त्वं पूता विश्वपावनी॥३५॥

प्रधाना सर्वपुष्पाणां विष्णुप्राणाधिका भवेः।
त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत्॥३६॥

हे शोभने! अब तुम उसकी पत्नी हो जाओ। हे भाविनी! इसके अनन्तर तुम नारायण को पतिरूपेण प्राप्त कर सकोगी। तुम दैवयोग से नारायण के शाप से विश्वपावनी तुलसी वृक्षरूपा होगी। तुम जगत् के सभी पुष्पों में प्रधान तथा वृक्षरूपा हो जाओगी। तुम विश्व में विष्णु की प्राणाधिका होकर रहोगी। तुम्हारे बिना सब पूजा विफल होगी।।३४-३६।।

वृन्दावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च।
त्वत्पत्रैर्गोपिका गोपाः पूजयिष्यन्ति माधवम्॥३७॥

वृक्षाधिदेवरूपेण सार्धं कृष्णेन संततम्। विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च॥३८॥

तुम वृन्दावन में वृन्दावनी नामक वृक्षरूप से अवस्थित रहोगी। तुम्हारे पत्तों से गोप-गोपियां माधव पूजन करेंगी। तुम वृक्षों की अधिष्ठात्री देवीरूप में मेरे वर से गोपवेशधारी श्रीकृष्ण के साथ निरन्तर स्वच्छन्द विहार करोगी।।३७-३८।।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा। प्रणनाम च धातारं तं च किञ्चिदुवाच ह॥३९॥

ब्रह्मा का यह वचन सुन कर तुलसी प्रसन्न होकर मुस्कराने लगीं। उन्होंने विधाता ब्रह्मा को प्रणाम करके कुछ प्रार्थना किया।।३९।।

तुलस्युवाच

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे।
सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे॥४०॥
अतृप्ताऽहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गारभङ्गता।
गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम्॥४१॥
त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम्। ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय॥४२॥

देवी तुलसी कहती हैं–हे तात! मैं द्विभुज श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण को पाने की अभिलाषिणी हूं। मेरी वैसी प्रीति चतुर्भुज विष्णु हेतु नहीं है। गोविन्द के साथ रमण में व्यवधान आने के कारण रमण क्रिया भग्न हो गई, मैं तृप्त नहीं हो सकी। तभी मैं गोविन्द की आज्ञा से चतुर्भुज विष्णु की कामना कर रही हूं। यदि आपकी कृपा से मैं सुदुर्लभ द्विभुज गोविन्द को पुनः प्राप्त कर सकूं, तब सर्वप्रथम आप राधा के भय का निवारण करिये, जिससे मैं त्रस्त हूं।।४०-४२।।

ब्रह्मोवाच

गृहाण राधिकामन्त्रं ददे वै षोडशाक्षरम्। तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि॥४३॥
शृङ्गारं युवयोर्गोप्यमाज्ञास्यति च राधिका।
राधासमा त्वं सुभगा गोविन्दस्य भविष्यसि॥४४॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–मैं तुमको १६ अक्षरों वाला राधा मन्त्र प्रदान करता हूं। उसे ग्रहण करो। मेरे वर से तुम राधिका की प्राणतुल्या होगी तथा कृष्ण के साथ तुम्हारी गोपनीय रमण क्रीड़ा हेतु राधा स्वयं अनुमति देंगी। तुम गोविन्द की राधा जैसी आदरणीया हो जाओगी।।४३-४४।।

इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्यै तत्षोडशाक्षरम्।
मन्त्रं तस्यै जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम्॥४५॥
सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम्। परं शुभाशिषं कृत्वा सोऽन्तर्धानमवाप ह॥४६॥
सा च ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये बदरिकाश्रमे। जजाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्वजन्मनः॥४७॥
दिव्यं द्वादशवर्षं च पूजां चैव चकार सा। बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रत्यादेशमाप च॥४८॥
सिद्धे तपसि मन्त्रे च वरं प्राप्य यथेप्सितम्।
बुभुजे च [1]महाभागं यद्विश्वेषु सुदुर्लभम्॥४९॥

ब्रह्मा ने यह कहने के पश्चात् तुलसी को १६ अक्षरों वाला मन्त्र, स्तोत्र, परम कवच प्रदान किया। उन्होंने सभी पूजाविधान तथा पुरश्चरण विधि का भी उपदेश दिया और परम आशीर्वाद देकर वहां से अन्तर्हित् हो गये। वह तुलसी ब्रह्मा का उपदेश पाकर परम पवित्र बदरिकाश्रम गयी। वहां वह

१. क. ०हादेवं य०।

पूर्वजन्म का अभीष्ट मन्त्र जप करने लगी। १२ वर्ष मन्त्र जप तथा पूजा द्वारा वह सिद्ध हो गईं। उसने देवता का आदेश पाया। उसे देवता से अभीष्ट वर भी मिला। उसने महाभाग्यशाली होकर विश्व में दुर्लभ सुखों का भोग किया।।४५-४९।।

प्रसन्नमानसा देवी तत्याज तपसः क्लमम्।
सिद्धे फले नराणां च दुःखं तत् सुखमुत्तमम्।।५०।।

भुक्त्वा पीत्वा च संतुष्टा शयनं च चकार सा। तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते।।५१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्याने तुलसीवरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

तपःफल सिद्ध हो जाने के कारण मनुष्य का समस्त तपःजनित क्लेश उत्तम सुखरूप हो जाता है। इसी प्रकार देवी तुलसी भी तपःजनित क्लेश को भूल कर प्रसन्न मन हो गयीं। वे भोजन-पानादि से संतुष्ट होकर शयन करने लगीं। उनकी शय्या मनोरम तथा पुष्पचन्दनादि से चर्चित थी।।५०-५१।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

अथ षोडशोऽध्यायः

तुलसी आश्रम में शंखचूड़ का आगमन, दोनों का विवाह, देवगण का वैकुण्ठ जाकर विष्णु से शंखचूड़ के उपद्रवों का वर्णन, शंखचूड़ वधार्थ विष्णु से शंकर द्वारा शूल पाना

श्रीनारायण उवाच

तुलसी परितुष्टा सा चास्वाप्सीद्धृष्टमानसा। नवयौवनसंपन्ना[1] प्रशंसन्ती वराङ्गना।।१।।
चिक्षेप पञ्चबाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति। पुष्पायुधेन सा विद्धा पुष्पचन्दनचर्चिता।।२।।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कम्पिता रक्तलोचना। क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह।।३।।
क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्द्रां सुखावहाम्। क्षणं सा दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम्।।४।।

क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम्।
उत्तिष्ठन्ती क्षणं तल्पाद्गच्छन्ती निकटं क्षणम्।।५।।

१. क. ॰न्ना वृषस्यन्ती ब॰।

भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगाद्विवसन्ती क्षणं पुनः। क्षणमेव समुद्वेगादस्वाप्सीत्पुनरेव सा॥६॥
पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवातिकण्टकम्। विषमाहारकं स्वादु दिव्यरूपं फलं जलम्॥७॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—नवयौवन सम्पन्ना वराङ्गना तुलसी अत्यन्त सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर शयन कर रही थी। तभी कामदेव ने उस पर अपने पांच काम बाणों को छोड़ा। इस बाणाघात के कारण पुष्प-चन्दन से लिप्त तुलसी कामभाव से उत्तप्त हो गई। उसके अंग पुलकित हो गये। नयनद्वय रक्तवर्ण हो गये। वह कम्पित हो उठी। क्षण में वह शुष्क हो जाती, अगले क्षण वह कामवेग से मूर्च्छित हो उठती। क्षण में वह उद्विग्न होती, क्षण में वह सुखावह तन्द्रा में डूब जाती। क्षण में उसका शरीर जलने लगता। क्षण में वह प्रमत्तता प्राप्त करती। क्षण में उसकी चेतना लौट आती, परन्तु अगले क्षण वह अन्यमनस्क हो उठती। कभी ऊबन के कारण उठती, क्षण में वस्त्र फेंक कर विवस्त्र हो जाती, पुनः अगले क्षण वापस शय्या पर शयन करने लगती। क्षण में उठ कर इधर-उधर भटकती, अगले क्षण पुनः लौट आती! वह पुष्प-चन्दन युक्त शय्या उसे कंटकवत् प्रतीत हो रही थी। दिव्यरूप स्वादु फल-जल उसे विषम आहार जैसे (विष जैसे) प्रतीत होने लगे॥१-७॥

निलयश्च[1] निराकारः सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः। सिन्दूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम्॥८॥

अब तुलसी को अपना गृह ऐसा लगता था, मानो वहां कोई न हो। अपने सूक्ष्म उत्तम वस्त्र तक अग्नि जैसे लगते। सिन्दूर पत्र तो उसे घाव के समान दुःखजनक लग रहे थे॥८॥

क्षणं ददर्श तन्द्रायां सुवेषं पुरुषं सती। सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम्॥९॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्।
आगच्छन्तं माल्यवन्तं पश्यन्तं तन्मुखाम्बुजम्॥१०॥

वह इस प्रकार तन्द्रा में थी, तभी अगले क्षण उसने तन्द्रा में एक उत्तम वेश वाले, सुन्दर युवा, मुस्कान युक्त, रसिकेश्वर जैसे पुरुष को अपने आश्रम में समागत देखा। उसका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित था। वह उत्तम रत्नाभरण से भूषित था। उसने कण्ठ में माला धारण किया था। वह एकटक तुलसी के मुखकमल को देखे जा रहा था॥९-१०॥

कथयन्तं रतिकथां चुम्बन्तमधरं मुहुः। शयानं पुष्पतल्पे च समाश्लिष्यन्तमङ्गकम्॥११॥
पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं वसन्तकम्।
कान्त क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा॥१२॥

तदनन्तर वह पुरुष उस पुष्पशैय्या पर आकर अनेक रतिप्रसंगपूर्ण कथाओं (बातों) को कहता पुनः-पुनः तुलसी का अधर चुम्बन करता तथा बगल में लेट कर तुलसी के अंगों का आलिंगन कर रहा था। वह पुरुष तदनन्तर मानों पुनः वहां से जा रहा था, क्षणकाल में पुनः लौट

१. क. ०श्च बिलाका०।

आ रहा था। यह देख कर तुलसी ने उसी तन्द्रा में कहा "हे कान्त! हे प्राणेश! कहां जा रहे हो? तुम यहीं रुक जाओ"।।११-१२।।

पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः। एवं तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव नारद॥१३॥

शङ्खचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम्।
कृष्णस्य मन्त्रं संप्राप्य प्राप्य सिद्धिं तु पुष्करे॥१४॥

पठन्सदा तु कवचं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। ब्रह्मेशाच्च वरं प्राप्य यत्तन्मनसि वाञ्छितम्॥१५॥
आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं वै समाययौ। आगच्छन्तं शङ्खचूडमपश्यत्तुलसी मुने॥१६॥
नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम्। श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम्॥१७॥

कुछ देर बाद तन्द्रा में रहने के पश्चात् जब तुलसी की चैतन्यता जाग्रत हो गई, तब वह पुनः-पुनः विलाप करने लगी। हे नारद! तुलसी ऐसी अवस्था में अपने तपोवनस्थ आश्रम में रहती थी। इधर महायोगी शंखचूड़ ने कृष्णमन्त्र प्राप्त करके पुष्कर तीर्थ में वह मन्त्र सिद्ध करने हेतु जाकर सर्वमंगलमंगल कवच धारण किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा से अभिलषित वर पाकर उनकी आज्ञा से बदरिकाश्रम आया। हे मुनिवर! तब तुलसी ने भी शंखचूड़ को वहां आते देख लिया। वह नवयौवन युक्त कामदेवतुल्य प्रभाशाली, श्वेतचम्पक पुष्पवत् शोभा सम्पन्न, रत्नाभूषणों से भूषित था।।१३-१७।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्। महारत्नगणाक्लृप्तविमानस्थं मनोहरम्॥१८॥
रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम्। पारिजातप्रसूनाढ्यमाल्यवन्तं च सुस्मितम्[1]॥१९॥

कस्तूरीकुङ्कुमयुतं [2]सुगन्धितिलकोज्ज्वलम्।
सा दृष्ट्वा संनिधाने तं मुखमाच्छाद्य वाससा॥२०॥

उसकी मुखशोभा शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान, नेत्र शारदीय कमल के समान प्रतीत हो रहे थे। वह महारत्न जड़ित तथा रत्नों से निर्मित मनोहर विमान पर आसीन था। उसने दो रत्नकुण्डल धारण किये थे, जो अपनी द्युति से उसके कपोल की शोभावृद्धि कर रहे थे। उसने पारिजात पुष्पनिर्मित माला को कण्ठ में पहना था तथा मुख उत्तम मुस्कान से युक्त था। उसका सर्वांग कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित सुगन्धित चन्दन लेप से लिप्त था।।१८-२०।।

सस्मिता तं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः। बभूव सा नम्रमुखी नवसङ्गमलज्जिता॥२१॥

कामुकी कामबाणेन पीडिता पुलकान्विता।
पिबन्ती तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां च संततम्॥२२॥

तुलसी ने शंखचूड़ को निकट समागत देख कर वस्त्र से किंचित् अपना मुख आच्छादित कर दिया तथा मुस्कराते हुए अपने नेत्र के कटाक्ष से वह इस नव सम्मिलन से लज्जित होकर कपड़े की

१. क. सुप्रियम्।
२. क. ॰न्धिचन्दनान्वितम्।

ओट से शंखचूड़ को देख कर शिर झुकाये स्थित हो गई। उस समय यह कामुकी तुलसी कामबाण से पीड़िता हो गई तथा रोमांचित होकर शंखचूड़ के मुख की सुन्दरता का पान अपने नेत्रों से करने लगी॥२१-२२॥

ददर्श शङ्खचूडश्च कन्यामेकां तपोवने।
पुष्पचन्दनतल्पस्थां वसन्तीं वाससाऽऽवृताम्॥२३॥

पश्यन्तीं तन्मुखं शश्वत्सस्मितां सुमनोहराम्। सुपीनकठिनश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम्॥२४॥

मुक्तापङ्क्तिप्रभाजुष्टदन्तपङ्क्तिं सुबिभ्रतीम्।
पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च सुनासां सुन्दरीं वराम्॥२५॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभां शरच्चन्द्रसमप्रभाम्। स्वतेजसा परिवृतां सुखदृश्यां मनोरमाम्॥२६॥

शंखचूड़ ने भी तपोवन में पुष्प-चन्दन से रची मनोहर शय्या पर अवस्थिता वस्त्र से कुछ मुखभाग को आच्छादित किये इस कन्या को देखा। यह युवती अत्यन्त मनोहर थी तथा उसी के मुख को एकटक देखे जा रही थी। उसके नितम्बद्वय स्थूल तथा कठोर थे। स्तनद्वय स्थूल तथा तनिक उन्नत थे। इस रमणी की मुक्तापंक्ति के समान शोभायुता दंतपंक्ति की सुन्दरता भी शंखचूड़ ने देखा। उसके अधर तथा ओष्ठ बिम्बफल के समान थे। तुलसी की नासिका अति मनोहर थी। शरीर तो तप्त स्वर्ण के समान वर्ण का था। तुलसी की देहकान्ति शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान थी। वह देवी अपने तेज से व्याप्त, देखने में सुखप्रदा (सौम्यदर्शना) तथा मनोरमा थी॥२३-२६॥

कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना। सिन्दूरबिन्दुना शश्वत्सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम्॥२७॥
निम्ननाभिगभीरां च तदधस्त्रिवलीयुताम्। करद्वतलारक्तां नखचन्द्रैर्विभूषिताम्॥२८॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं पादपद्मं च बिभ्रतीम्। आरक्तवर्णं ललितमलक्तकसमप्रभम्॥२९॥

ललाट के अधोभाग पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ चन्दन की बिन्दी लगाया गया था। उसके कुछ नीचे सिन्दूर की बिन्दी से तुलसी की शोभा अतीव मनोमुग्धकारी प्रतीत हो रही थी। उसकी नाभि निम्न तथा गहरी थी। उस नाभि के कुछ नीचे त्रिवली रेखा शोभायमान थी। हथेली स्थलपद्म जैसी रक्तवर्ण थी। उसकी उंगलियां उत्तम नखरूपी चन्द्रमा से (नख चन्द्राकार थे) युक्त थीं। उसके तलवे भी स्थलपद्मवत् प्रभाशाली, रक्तवर्ण मनोहर तथा आलता से रंगे थे॥२७-२९॥

[1]स्थलपद्मैश्च जलजैः पद्मरागविराजिताम्। शरदिन्दुविनिन्द्यैकनखेन्द्वोघविराजिताम्॥३०॥
[2]अमूल्यरत्नसंमिश्रयावकेन स्वलंकृताम्। मणीन्द्रमुख्यखचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम्॥३१॥

तलवों से ऊर्ध्व में पैरों की उंगलियों के पांच-पांच नख दोनों पैरों में थे। वे कमल के समान वर्ण वाले थे। अतः वे पद्मराग मणि पर विराजिता लग रही थीं। इनकी नखश्रेणी शरद्कालीन

१. क. ऊर्ध्वपद्मस्थलपद्मबीजराजिवि०।
२. क. ०स्नर्निर्माणपाशकावलिसंयुताम्।

चन्द्र की शोभा को लज्जित करने वाली थी। तुलसी अमूल्य रत्ननिर्मित महावर से सुशोभित थी। इन्होंने अमूल्य रत्ननिर्मित घुंघरू युक्त नूपुर अपने पैरों में पहन रखे थे, जो पैरों की शोभावृद्धि कर रहे थे।।३०-३१।।

दधतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। अमूल्यरत्नसंक्लृप्तमकराकृतिरूपिणा।।३२।।
[1]चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। रत्नेन्द्रमुक्ताहारश्रीस्तनमध्यस्थलोज्ज्वलाम्।।३३।।

शंखचूड़ ने देखा "उनके केश का जूड़ा मालती पुष्पों की माला से सजा है। उनके कपोल अमूल्य रत्नों से निर्मित मकराकृति विचित्र कुण्डल से सुशोभित हैं। उनके स्तनद्वय के मध्य में उत्तम रत्न से निर्मित मुक्ताहार लटक रहा है। इससे उनकी शोभा अत्यन्त बढ़ गई है। यह हार देवी के वक्ष को उज्ज्वलता प्रदान कर रहा है"।।३२-३३।।

रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिताम्। रत्नाङ्गुलीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिभिर्युताम्।।३४।।

देवी की शोभा वृद्धि रत्नमय कंकण, बाजूबन्द तथा मनोहर शंख से हो रही है। देवी के हाथों की उंगलियां उत्तम रत्नजटित अंगूठियों से सजी हैं।।३४।।

दृष्ट्वा तां ललितां कन्यां सुशीलां सुदतीं सतीम्।
उवास तत्समीपे च मधुरं तामुवाच सः।।३५।।

जब शंखचूड़ ने ऐसी लावण्ययुक्ता सुशीला, उत्तम दन्तपंक्तियों से शोभायमान साध्वी कन्या को देखा, तब वह उनके पास बैठ कर मधुर वचन कहने लगा–।।३५।।

शङ्खचूड उवाच

का त्वं[2] कस्य च कन्याऽसि धन्ये मान्ये सुयोषिताम्।
का त्वं कामिनि कल्याणि सर्व कल्याणदायिनि।।३६।।
स्वर्गभोगादिसारेऽतिविहारे हाररूपिणि। संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे।।३७।।

शंखचूड़ कहता है–तुम धन्य हो! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? तुम तो स्त्रियों में श्रेष्ठ तथा सब कल्याण देने वाली हो। तब इस वन में क्यों आई हो? हे भामिनी! तुम तो स्वर्गभोग की सार हो। रमणीगण में भी अत्यन्त विहार प्रदान करने वाली में सर्वोत्तम हो। विहारार्थ हाररूपा हो। तुम संसार की नारीगण की साररूपा तथा मनोहर एवं माया की आधाररूप हो!।।३६-३७।।

जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीनां मोहकारिणि।
मौनं त्यक्त्वा किङ्करं मां संभाषां कुरु सुन्दरि।।३८।।

तुम तो इस संसार में विलक्षण रूप वाली हो। तुम तो मुनिगण को भी मोहित कर सकती हो। हे सुन्दरी! मैं तो तुम्हारा दास हूं। कृपा पूर्वक मौन त्यागो तथा कुछ बातें मुझसे करो।।३८।।

---

१. क. ०युग्मे श्रीसुषमापरिशोभिताम्।
२. क. त्वं मानिनि।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना। सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा॥३९॥

उस सकामा नारी ने शंखचूड़ का यह वचन सुनकर मुस्कान के साथ शिर झुका कर उस कामभाव युक्त युवक से कहा–॥३९॥

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने।
तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्॥४०॥
कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम्।
न पृच्छति कुले जात एवमेव श्रुतौ श्रुतम्॥४१॥
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः।
येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम्॥४२॥

भगवती तुलसी कहती हैं–हे युवक! मैं धर्मध्वज राजा की पुत्री तपस्यार्थ तपस्विनी होकर इस तपोवन में रहती हूं। तुम कौन हो? यथा इच्छा जहां जाना हो जाओ। जो सत्कुल में जन्मे व्यक्ति हैं, वे सती नारी को निर्जन स्थान में एकाकी देख कर कुछ भी नहीं पूछते, यह श्रुति में सुना गया है। जो मनुष्य धर्मशास्त्र नहीं जानता, लम्पट, असत्कुल में जन्मा है तथा जिसने कभी भी श्रुति वचन नहीं सुना है, वही नराधम कामी ही कामिनी की इच्छा करता है॥४०-४२॥

आपातमधुरामन्ते चान्तकां पुरुषस्य ताम्।
विषकुम्भाकाररूपाममृतास्यां च संततम्॥४३॥

हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम्। स्वकार्यपरिनिष्पत्तितत्परां सततं च ताम्॥४४॥

इसका कारण है कि स्त्रियां प्रारम्भ में मधुर लगती हैं, तथापि अन्ततः वे पुरुष का अन्त करने वाली हो जाती हैं। नारीगण का मुख बाह्यतः अमृत वर्षण करता प्रतीत तो होता है, लेकिन उनका अन्तःकरण तो विष भरे घट के समान है। वे सदा मधुर वाक्यों का प्रयोग तो करती हैं, तथापि उनका हृदय तीक्ष्ण छूरे के समान है। वे सदा अपना कार्य साधन करने में तत्पर रहती हैं, तथापि वे बाह्यतः मधुर वाणी बोल कर कार्यसाधन तत्पर रहती हैं॥४३-४४॥

कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा। स्वान्तर्मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम्॥४५॥
श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमनिरूपितम्। तासु को विश्वसेत्प्राज्ञो ह्यप्राज्ञ इव सर्वदा॥४६॥
तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्तीं नवं नवम्। दृष्ट्वा सुवेशं पुरुषमिच्छन्तीं हृदये सदा॥४७॥

स्त्रियां तो स्वकार्य साधनार्थ ही पति की वशवर्त्तिनी रहती है। अन्यथा वे वश में न रहने वाली हैं। उनका अन्तर्मन अतीव मलिनरूप है, तथापि बाह्यतः वे प्रसन्नमुख होकर देखती लगती हैं। श्रुति-पुराण में कहा गया है कि इनके चरित्र के विषय में कुछ भी कह सकना कठिन है। ऐसा कौन बुद्धिशाली

व्यक्ति है, जो बुद्धिहीन की तरह इन पर विश्वास करेगा? इनका कोई शत्रु-मित्र होता ही नहीं। ये नित्य नवीन पुरुष का समागम चाहती हैं। ये सुवेशधारी पुरुष को देखते ही हृदय में उसे पाने की कामना सदा करती हैं।।४५-४७।।

बाह्ये स्वात्मसतीत्वं च ज्ञापयन्तीं प्रयत्नतः।
शश्वत्कामां च रामां च कामाधारां मनोहराम्॥४८॥
बाह्ये छलाच्छादयन्तीं स्वान्तर्मैथुनलालसाम्[१]।
कान्तं ग्रसन्तीं रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिताम्॥४९॥

तथापि ये बाह्यतः स्वयं को सतित्वमयी प्रदर्शित करती हैं। नारी सदा कामभाव युक्त, रमणेच्छु, काम की आधार रूपा तथा मनोहर होती हैं। ये अन्तर्मन में मैथुन की लालसा तो रखती हैं, परन्तु बाह्यतः छल पूर्वक सती बनने का ढोंग करके उस लालसा को छिपाये रखती हैं। ये बाह्यतः लज्जालु लगती हैं, परन्तु एकान्त में अपने प्रिय को पूर्णतः ग्रस लेती हैं।।४८-४९।।

मानिनीं मैथुनाभावे कोपिनीं कलहाङ्कुराम्।
[२]सुप्रीतां भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिताम्॥५०॥

जो मानिनी नारी है, वह मैथुन का अभाव अथवा उसकी न्यूनता होने पर कोप की प्रतिमूर्त्तिरूपा हो जाती है। तब इनके मन में कलह का अंकुर पनपने लगता है। अधिक संभोग होने पर ये प्रसन्न होकर प्रेम करती हैं। अल्प संभोग होने पर ये दुःखी हो जाती हैं।।५०।।

सुमिष्टान्नं शीततोयमाकाङ्क्षन्तीं च मानसे।
सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा॥५१॥
सुखात्परमतिस्नेहं कुर्वतीं रतिकर्तरि। प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम्॥५२॥
पश्यन्तीं रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम्।
कलहं कुर्वतीं शश्वत्तेन सार्धं सुकोपनाम्॥५३॥
चर्चया भक्षयन्ती तं कीनाश इव गोरजः। दुःसाहसस्वरूपां च सर्वदोषाश्रयां सदा॥५४॥

ये सदा उत्तम मिष्ठान्न, शीतल जल, सुन्दर-रसिक-युवा-गुणी पति या प्रेमी चाहती हैं। जो उत्तम संभोग क्षमता वाला पुरुष है, उससे नारी अत्यधिक स्नेह करती है। उस संभोग कुशल को वह प्राणाधिक प्रिय तथा प्रियतम मानती है। जो व्यक्ति मैथुन में अक्षम अथवा वृद्ध है, उसे शत्रुतुल्य मान कर उसके साथ सदा क्रोधित होकर कलह करती हैं। ये नारी तो दुःसाहस स्वरूपा तथा सभी दोषों की खान हैं। ये तनिक भी विरोध करने वाले को वैसे ही खाती हैं, जैसे गिरगिट कीटों को खा जाता है।।५१-५४।।

१. क. ०नदुःखिताम्।
२. ख. सुभीतां।

शश्वत्कपटरूपां च दुःसाध्यामप्रतिक्रियाम्।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुस्त्याज्यां मोहरूपिणीम्॥५५॥
तपोमार्गार्गलां शश्वन्मुक्तिद्वारकपाटिकाम्॥५६॥
हरेर्भक्तिव्यवहितां सर्वमायाकरण्डिकाम्। संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणीम्॥५७॥
इन्द्रजालस्वरूपां च मिथ्यावादिस्वरूपिणीम्।
बिभ्रतीं बाह्यसौन्दर्यमध्याङ्गमतिकुत्सितम्॥५८॥
नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम्। दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्ताक्तं चाप्यसंस्कृतम्॥५९॥

यह सतत् छल का आश्रय लेकर रहती हैं। इनका कार्य दुःसाध्य होता है। ये वश में नहीं रहतीं। सदा अविश्वास करती हैं। इनका रूप अतीव मोहप्रद होता है। ब्रह्मा-विष्णु-शिव प्रभृति देवता भी इनका त्याग नहीं कर पाते। वे सदा तपोमार्ग को अवरुद्ध करने वाली अर्गला रूपा हैं। ये मुक्तिद्वार का कपाटरूप हैं। ये हरिभक्ति के लिये विघ्नरूप हैं। सभी प्रकार की माया का आधार हैं तथा संसार-सागर जैसे बन्दीगृह हेतु बेड़ी स्वरूपा हैं। ये नारीगण इन्द्रजाल स्वरूपा तथा साक्षात् मिथ्या (झूठ) की तो मूर्त्ति हैं। इनका जो बाह्य सौन्दर्य है, वही सुन्दर प्रतीत होता है, परन्तु इनके आन्तरिक अंग अत्यन्त कुत्सित, नाना मल-मूत्र का आधार, दुर्गन्धि दोष से दूषित तथा अशुद्ध (ऋतुकालीन) रक्तयुक्त है। यह अशुद्ध होती हैं।॥५५-५९॥

मायारूपं मायिनां च विधिना निर्मितं पुरा। विषरूपां मुमुक्षूणामदृश्यां चैव सर्वदा॥६०॥

ब्रह्मा ने पूर्वकाल में मायाशीलों के लिये मायारूपी स्त्री की रचना किया है। ये मोक्षकामी मनुष्य के लिये विषवत् हैं। मुमुक्षुगण तो इनका दर्शन भी नहीं करते।॥६०॥

इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद। सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे॥६१॥

हे नारद! इतना कह कर तुलसी मौन हो गईं। तब मुस्कुराते हुए शंखचूड़ कहने लगा-।॥६१॥

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम्।
किञ्चित्सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय॥६२॥
[1]निर्मितं विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम्।
कृत्यारूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम्॥६३॥
[2]लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकादिकम्। सृष्टिसूत्रस्वरूपं चाप्याद्यं स्रष्टा तु निर्मितम्॥६४॥
एतासामंशरूपं यत्स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम्। तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारणम्॥६५॥

१. ख. ०तं द्विवि०।
२. क. ०तीगङ्गासा।

शंखचूड़ कहता है–हे देवी! तुम्हारा कथन पूर्णतः मिथ्या नहीं है। इसमें कुछ सत्य है, कुछ मिथ्या है। उसका विशेष विवरण कह रहा हूं। विधाता ने सर्वमोहन स्त्री रूप को दो प्रकार से रचा है। प्रथम है नारी का वास्तविक रूप। दूसरा है उनका कृत्यारूप। वास्तविक रूप प्रशंसनीय है। कृत्रिम रूप (कृत्यारूप) निन्दित है। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधिका आदि सृष्टिस्वरूपा तो हैं, तथापि ये ब्रह्मा द्वारा सृष्ट नहीं हैं। इनकी अंशरूप जो स्त्रियां हैं, वे ही वास्तविक कहलाती हैं। ये प्रशस्त स्त्रियां हैं। ये प्रशंसनीय हैं। सर्वमंगल कारण भी हैं।।६२-६५।।

शतरूपा देवहूतिः स्वधा स्वाहा च दक्षिणा।
छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा।।६६।।
कुबेरवायुपत्नी साऽप्यदितिश्च दितिस्तथा।
लोपामुद्राऽनसूया च कैटभी तुलसी तथा।।६७।।
अहल्याऽरुन्धती मैना तारा मन्दोदरी परा। दमयन्ती वेदवती गङ्गा च यमुना तथा।।६८।।
पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुंधरा।
षष्ठी मङ्गलचण्डी च मूर्तिर्वै धर्मकामिनी।।६९।।
स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः[1] शान्तिस्तथापरा।
निद्रा तन्द्राक्षुत्पिपासासंध्यारात्रिर्दिनानि च।।७०।।
[2]संपत्तिवृत्तिकीर्त्यश्च क्रिया शोभा प्रमांशकम्।
यत्स्त्रीरूपं च संभूतमुत्तमं तद्युगे युगे।।७१।।

जैसे शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरपत्नी, वायुपत्नी, दिति, अदिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कैटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेनका, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलचण्डी, धर्म की पत्नी मूर्त्तिदेवी, स्वस्ति, श्रद्धा, कान्ति, तुष्टि, अपरा तुष्टि तथा कान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, रात्रि, दिवा, सम्पत्ति, वृत्ति, कीर्त्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा प्रभृति स्त्रियां वास्तव स्त्रीगण रूप से विख्यात हैं। ये युग-युग में सुखप्रद स्त्रियां हैं।।६६-७१।।

कृत्यास्वरूपं तद्यत्तु स्वर्वेश्यादिकमेव च। तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च।।७२।।
सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्धं स्वभावतः। तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम्।।७३।।
तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः। रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविधं स्मृतम्।।७४।।

इस जगत् में स्त्री का अन्य रूप कृत्या का है। इस जगत् में स्वर्वेश्या (अप्सरायें) पुंश्चली नारीगण कृत्या नारी हैं। ये प्रशंसनीय नहीं होतीं। जो सत्वगुण प्रधाना हैं, वे ही जगत् में स्वभावतः शुद्ध

१. क. ०ष्टिर्लज्जा त०।
२. क. ०त्तिधृतिकी०।

एवं उत्तम हैं। वे ही नारी साध्वी कही जाती हैं। इनको ही मनीषीगण वास्तव स्त्रियां कहते हैं। कृत्या रजोरूप तथा तमोरूप दो प्रकार की कही गयी हैं।।७२-७४।।

स्थानाभावात्क्षणाभावान्मध्यवृत्तेरभावतः। देहबलेशेन रोगेण[१] सत्संसर्गेण सुन्दरी।।७५।।
बहुगोष्ठावृतेनैव रिपुराजभयेन च। रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते।।७६।।
इदं मध्यमरूपं च प्रवदन्ति मनीषिणः। तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः।।७७।।

हे सुन्दरी! स्थानाभाव, समय का अभाव, प्रार्थी लोगों का अभाव, देहक्लेश, रोग, साधु संसर्ग, बहुत सी गोष्ठी में निवास, रिपुभय तथा राजभय प्रभृति कारण से ही रजोरूपा कृत्या स्त्री के सतीत्व की रक्षा हो जाती है। इन्हें मनीषीगण मध्यमरूप कहते हैं। जो नारियां तमोगुण प्रधान होती हैं, वे दुर्निवार्य होने के कारण विद्वानों द्वारा अधमा कही जाती हैं।।७५-७७।।

न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम्।
निर्जने दुर्जने वाऽपि रहस्ये वचसा स्त्रियम्।।७८।।
आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना।
गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने।।७९।।

निर्जन में अथवा जनसंकुल स्थान में हो, किंवा गुप्त स्थान में हो, सत्कुलोत्पन्न पण्डित व्यक्ति परस्त्री से कुछ भी जिज्ञासा नहीं करते। हे शोभाशालिनी! मैं ब्र्ह्मा की आज्ञा से ही तुम्हारे पास आया हूं। मैं गन्धर्व रीति से विवाह करके तुमको ग्रहण करना चाहता हूं।।७८-७९।।

अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः। दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाऽहं हरेः पुरे।।८०।।
अहमष्टसु गोपेषु[२] गोगीपीपार्षदेषु च। अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः।।८१।।

जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः।
जातिस्मरा त्वं तुलसी संसक्ता[३] हरिणा पुरा।।८२।।
त्वमेव राधिकाकोपाज्जाताऽसि भारते भुवि।
त्वां संभोक्तुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्तदा।।८३।।

मैं दनुवंश में उत्पन्न देवविद्रोही शंखचूड़ हूं। मैं पूर्व में गो-गोपीगण से घिरे गोलोक परिषद् सुदाम नाम से विख्यात था। वर्त्तमान काल में मैं राधिका के शाप से दानवराज हो गया। कृष्ण के मन्त्र के प्रभाव से मेरे लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है। मैं जातिस्मर (पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त) हूं। तुम तुलसी भी जातिस्मर हो। हरि के साथ संभोगरत होने के कारण राधा के शाप से तुमने भारत में जन्म लिया है। मैं गोलोक में भी तुम्हारे साथ सम्भोगार्थ उत्कंठित था, तथापि राधा के भय से वह हो ही नहीं सका।।८०-८३।।

१. क. ०ण तदसङ्गेन सु०।
२. क. गोविन्दपा०।
३. क. संभुक्ता।

इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने। सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥८४॥

हे मुनि! यह कहकर महात्मा शंखचूड़ चुप हो गया। तुलसी ने विस्मित होकर प्रसन्न मन से कहना प्रारम्भ किया॥८४॥

तुलस्युवाच

एवंविधो बुधो विश्वे बुधेषु च प्रशंसितः।
कान्तमेवंविधं कान्ता शश्वदिच्छति कामतः॥८५॥
त्वयाऽहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता।
सनिन्दितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः॥८६॥
निन्दन्ति पितरो देवा बान्धवाः स्त्रीजितं जनम्।
स्त्रीजितं मनसा वाचा पिता भ्राता[1] च निन्दति॥८७॥

देवी तुलसी कहती हैं—जगत् में ऐसे पण्डित लोग विद्वानों में प्रशंसित होते हैं। कामिनी नारीगण भी स्वभावतः इस प्रकार के ही किसी पुरुष की अभिलाषा करती हैं। यह सत्य है कि तुमने मुझे विचार में पराजित कर दिया है। जो व्यक्ति नारी से पराजित हो जाता है, उसकी निन्दा पितर, देवता तथा बान्धवगण करते हैं। पिता तथा भाई भी स्त्री से पराजित व्यक्ति की निन्दा मन तथा वाणी से करते रहते हैं॥८५-८७॥

शुध्येद्विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा। भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः॥८८॥
शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्वर्णसङ्करः। अशुचिः स्त्रीजितः शुद्धेच्चितादाहेन कालतः॥८९॥
न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम्।
न गृह्णन्तीच्छया देवास्तस्य पुष्पजलादिकम्॥९०॥

जनना शौच तथा मरणा शौच होने पर ब्राह्मणगण १० दिनों में पवित्र हो जाते हैं। क्षत्रिय १२ दिनों में, वैश्य १५ दिनों में तथा शूद्र १ मास में शुद्ध होता है। लेकिन वेदोक्ति है कि वर्णसंकर व्यक्ति, उसकी जननी तथा अत्यन्त अशुद्ध स्त्रीजित पुरुष तो चिता पर दग्ध होने पर ही शुद्ध होते हैं। ऐसे व्यक्ति का पिण्ड तथा तर्पण पितृगण स्वेच्छा से ग्रहण नहीं करते। ऐसा व्यक्ति जो भी पुष्प अथवा जलादि देवगण को देते हैं, वह देवगण स्वीकार नहीं करते॥८८-९०॥

किं तस्य[2] ज्ञानतपसा जपहोमप्रपूजनैः।
किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥९१॥
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः।
कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम्॥९२॥

१. क. माता।
२. क. तद्ध्यानेन त।

वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा। दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च॥९३॥
अत्यन्तकोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मुखाय च। पङ्गुलायाङ्गहीनाय चान्धाय बधिराय च॥९४॥
जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने।
ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि यः स्वकन्यां ददाति च॥९५॥

स्त्रीगण ने जिसके मन का हरण कर लिया, उस व्यक्ति के ज्ञान, तप, जप, होम, पूजा, विद्या, यश इन सबका क्या प्रयोजन? (सब व्यर्थ है)। सभी निष्फल है। मैंने तुम्हारी विद्या-प्रभाव ज्ञात करने के लिये यह परीक्षा किया था। कुल कामिनी को चाहिये कि वह व्यक्ति की परीक्षा करके ही उसका वरण करे। गुण रहित, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, योगी, कुत्सित, अति क्रोधी, अति दुर्मुख, पंगु, अंगहीन, अन्धा-बधिर, जड़, मूक, नपुंसक तुल्य, पापी व्यक्ति को कन्या प्रदान करता है, वह पिता अथवा कन्या प्रदाता ब्रह्महत्या पातक का भागी हो जाता है।।९१-९५।।

शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च।
वैष्णवाय सुतां दत्त्वा दशवाजिफलं[1] लभेत्॥९६॥
यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि।
विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥९७॥
कनयामूत्रपुरीषं च तत्र भक्षति पातकी। कृमिभिर्दंशितः काकैयविदिन्द्राश्चतुर्दश॥९८॥
तदन्ते व्याधयोनौ च लभते जन्म निश्चितम्।
विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम्॥९९॥

हे मुनि! जो शान्त, गुणी, युवा, विद्वान्, वैष्णव वर को कन्या प्रदान करता है, उसे दस अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। जो मनुष्य कन्या पालन करके विपत्ति के कारण अथवा धनलाभ के लिये उस कन्या का विक्रय करता है, वह पापिष्ट कुंभीपाक नामक नरक का भोग करता है तथा वह उस नरक में कन्या का मल-मूत्र भक्षण करता है। वह १४ इन्द्र के जीवनकाल पर्यन्त उस नरक में कौवे, कृमि उसका नित्य दंशन करते हैं। तत्पश्चात् वह पापी व्याध होकर जन्म लेता है। नित्य मांस ढोता है और उसी मांसपिण्ड का विक्रय करता रहता है।।९६-९९।।

इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तयोरन्तिकमाययौ॥१००॥
मूर्ध्ना ननाम तुलसी शङ्खचूडश्च नारद। उवास तत्र देवेशश्चोवाच च तयोर्हितम्॥१०१॥

ब्रह्मोवाच

तपोवन में यह कहकर तुलसी मौन हो गयीं। तभी वहां ब्रह्मा भी आ गये। हे भारत! तुलसी तथा दानव शंखचूड़ ने उनको नतशिर होकर प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने उनके हितार्थ यह कहा-।।१००-१०१।।

१. क. ॰वापीफ॰।

किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह। गान्धर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु॥१०२॥

त्वं च पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्॥१०३॥
निर्विरोधमुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम्।
योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः॥१०४॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे शंखचूड़! तुम इस नारी के साथ यह कथनोपकथन क्यों करते जा रहे हो? तुम गान्धर्व विवाह द्वारा इसका पाणिग्रहण करो। तुम पुरुषों में रत्नस्वरूप हो। तुलसी भी नारियों में रत्नस्वरूपा है। चतुर नायक के साथ चतुर नायिका का मिलन अत्यन्त आनन्ददायक होता है। हे राजन्! यह निर्विवाद दुर्लभ सुख को कौन त्यागेगा? ऐसे सुख का त्याग करने वाला पशुतुल्य है, यह निःसंदिग्ध है॥१०२-१०४॥

किमुपेक्षसि[1] त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सति।
देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दनम्॥१०५॥
यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका।
यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा॥१०६॥

यथा धरा वराहे च यथा मेना हिमालये। यथाऽत्रावनसूया च दमयन्ती नले यथा॥१०७॥

रोहिणी च यथा चन्द्रे यथा कामे रतिः सती।
यथाऽदितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा॥१०८॥

यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्च कर्दमे। यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा॥१०९॥

यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने।
यथा शची महेन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे॥११०॥
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती।
सौभाग्यासु प्रिया त्वं च शङ्खचूडे तथा भव॥१११॥
अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि।
स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु संततम्॥११२॥

हे सती! तुम देवता, असुर तथा दानवों का मर्दन करने वाले ऐसे गुणी व्यक्ति की परीक्षा कर रही हो? जैसे लक्ष्मीपति के साथ लक्ष्मी, कृष्ण के साथ राधिका, मेरे साथ सावित्री, शंकर के साथ भवानी, वराहदेव के साथ धरा (वसुन्धरा), हिमालय के साथ मेनका, अत्रि के साथ अनुसूया, नल के साथ दमयन्ती, चन्द्र के साथ रोहिणी, काम के साथ रति, कश्यप के साथ अदिति, वसिष्ठदेव के साथ

---

१. क. किं परीक्ष्य०।

अरुन्धती, गौतम के साथ अहल्या, कर्दम के साथ देवहुति, बृहस्पति के साथ तारा, मनु के साथ शतरूपा, यज्ञ के साथ दक्षिणा, अग्नि के साथ स्वाहा, इन्द्र के साथ शचि, गणपति के साथ पुष्टि, कार्तिकेय के साथ देवसेना तथा धर्म के साथ मूर्त्ति प्रभृति सुख पूर्वक मिलन से आबद्ध हैं, तुम भी शंखचूड़ के साथ मिलकर इसकी सौभाग्यशालिनी प्रिया बनो। तुम सदा स्थान-स्थान पर इसके साथ इच्छानुसार विहार करो।।१०५-११२।।

पश्चात्प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च। चतुर्भुजं च कण्ठे शङ्खचूडे मृते सति।।११३।।

इत्येवमाशिषं कृत्वा स्वालयं प्रययौ विधिः।
गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः।।११४।।

"जब शंखचूड़ देहत्यागोपरान्त लोकान्तर गमन करेगा, तब तुमको गोलोक में पुनः गोविन्द की प्राप्ति होगी तथा वैकुण्ठ में चतुर्भुज हरि को प्राप्त करोगी।" यह आशीर्वाद देकर ब्रह्मा स्वधाम चले गये। तदनन्तर तुलसी ने भी दानव से गान्धर्व विवाह किया। दानव ने भी तुलसी का पाणिग्रहण किया।।११३-११४।।

स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोहरे।।११५।।
मूर्च्छां संप्राप तुलसी नवसङ्गमसङ्गता। निमग्ना निर्जने साध्वी संभोगसुखसागरे।।११६।।

उस समय स्वर्ग से दुन्दुभिध्वनि तथा पुष्पवृष्टि होने लगी। शंखचूड़ अपनी पत्नी के साथ रमणक्रीड़ा में प्रवृत्त हो गये। सती तुलसी भी नव संगमावेश के कारण मूर्च्छित हो गयीं। वह उस निर्जन प्रदेश में सन्तोष-सागर में निमग्न हो गईं।।११५-११६।।

चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम्।
कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम्।।११७।।
अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम्। तत्सर्वं सुखशृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः।।११८।।

कामवेग से ६४ कला परिमित रसिकों को वांछित जो ६४ प्रकार का सुख कहा गया है, रसिकेश्वर शंखचूड़ समस्त सुखभोग अपने अंग-प्रत्यंग के आलिंगन, सम्मिलन के द्वारा स्त्रियों को मनोहर लगने वाले सुख-शृंगार का नाना भोग तुलसी के साथ करने लगा।।११७-११८।।

अतीव रम्ये देशे च सर्वजन्तुविवर्जिते। पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना।।११९।।
पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते। गृहीत्वा रसिकां रामां पुष्पचन्दनचर्चिताम्।।१२०।।
भूषितां भूषणैः सर्वैरतीवसुमनोहराम्। सुरतेर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः।।१२१।।
जहार मानसं भर्तुर्लीलया तुलसी सती। चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित्।।१२२।।

वक्षसश्चन्दनं[१] बाह्वोस्तिलकं विजहार सा।
स च जग्राह तस्याश्च सिन्दूरबिन्दुपत्रकम्।।१२३।।

१. क. ०नं राज्ञस्ति०।

स तद्वक्षसि तस्याश्च नखरेखां ददौ मुदा। सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम्॥१२४॥

वह अत्यन्त रम्य प्रदेश सभी जन्तुओं से रहित था। वहां पुष्प तथा चन्दन से सज्जित शय्या पर मन्द सुगन्ध-वायु इन लोगों को आनन्दित करने लगी। वायु भी सुगन्ध से पूर्ण होकर प्रवाहित हो रही थी। कभी ऐसी शय्या पर तो कभी नदी-तटस्थ पुष्प-चन्दन चर्चित पुष्पोद्यान में शंखचूड़ इस पुष्पचन्दन से सुगन्धित विविध भूषण विभूषित रसिका तुलसी के साथ सुख सम्भोग में रत हो गया। सुरतक्रीड़ा निपुण तुलसी तथा शंखचूड़ की समागम क्रीड़ा से उन्हें कभी भी ऊबन नहीं होती थी। वह नित्य चलती थी। तुलसी ने समागम प्रसंग में अपने प्रिय पति का मन हरण कर लिया था। रसभावज्ञ शंखचूड़ ने भी इस रसिका की चेतना का हरण कर लिया। कभी शंखचूड़ की बाहु पर से तुलसी तिलक का तथा वक्ष पर लगे चन्दन का हरण कर लेती थी तो कभी शंखचूड़ की तुलसी के ललाट पर लगी सिन्दूर की बिन्दी को हर लेता। शंखचूड़ जब प्रियतमा के वक्ष पर नखक्षत करता तब तुलसी भी रसराज शंखचूड़ के वाम पार्श्व पर अपने बाहु के आभूषण का चिह्न बना देती!॥११९-१२४॥

राजा तदोष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम्। तद्गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम्॥१२५॥
सुरतेर्विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम्। सुवेशं चक्रतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम्॥१२६॥

कुङ्कुमाक्तचन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ।
सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम्॥१२७॥
सुवासितं च ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी।
पारिजातस्य कुसुमं[1] माल्यं चैव सुशोभनम्॥१२८॥

अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुलीयकमुत्तमम्। सुन्दरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥१२९॥

राजा शंखचूड़ ने जब तुलसी के ओठों का अपने दांतों से दंशन (काटा) किया, तब तुलसी ने भी शंखचूड़ के कपोल पर उससे चतुर्गुण दंशन किया। इसके पश्चात् उनका संभोग-समागम जब समाप्त हो गया, तब वे शय्या से उठ कर आपस में पुनः उत्तम वेश-विन्यास करने लगे। तुलसी ने पति के रमणीय सर्वाङ्ग पर गन्धद्रव्य का लेप कर दिया। ललाट पर कुंकुम युक्त चन्दन द्वारा तिलक लगाया। सुवासित ताम्बूल, अग्नि के समान चमकते वस्त्रद्वय, नानादुःख विनाशक पारिजात पुष्प, अमूल्य रत्ननिर्मित अंगूठी जो त्रैलोक्य दुर्लभ सुन्दर मणि से बनी थी, पति को प्रदान किया।॥१२५-१२९॥

दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः।
ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम्॥१३०॥
सस्मिता तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां पपौ पुनः।
निमेषरहिताभ्यां च सकटाक्षं च सुन्दरम्॥१३१॥

इसके पश्चात् तुलसी ने बारम्बार कहा-"स्वामी! मैं तो आपकी दासी हूं। यह कहकर उसने

१. क. ०मं जरारोगहरं परम्।

अपने गुणी स्वामी को भक्तिभाव से प्रणाम किया तथा एकटक कटाक्षपात के साथ पति के मुखकमल के सौन्दर्य का पान करने लगी॥१३०-१३१॥

स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम्।
सस्मितं वाससा छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम्॥१३२॥
चुचुम्ब कठिने गण्डबिम्बोष्ठे पुनरेव च। ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत्॥१३३॥
तदा हृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम्॥१३४॥

तत्पश्चात् शंखचूड़ ने तुलसी को अपनी ओर खींच कर उसको वक्ष से लिपटा कर आलिंगन करते हुए वस्त्र के घूंघट से आच्छादित तुलसी के मुखरूपी कमल को देखा। इसके पश्चात् तुलसी के कठिन गण्डस्थल (चिबुक) का तथा बिम्बफल जैसे ओंठ का पुनः चुम्बन करके उस प्रेयसी को वरुणलोक से लाये दिव्य वस्त्र तथा त्रैलोक्य प्रसिद्ध माला धारण कराया॥१३२-१३४॥

ददौ मञ्जीरयुग्मं च स्वाहायाश्च हृतं च यत्।
केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम्॥१३५॥
अङ्गुलीयकरत्नानि[1] रत्याश्च वरभूषणम्। शङ्खं सुरुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा॥१३६॥
[2]विचित्रपीठकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम्।
भूषणानि च दत्त्वा च परीहारं चकार ह॥१३७॥

उसने अग्निपत्नी स्वाहा से हरण करके मिले नूपुर की जोड़ी, सूर्यपत्नी छाया के केयूरद्वय, चन्द्रपत्नी रोहिणी के कुण्डल, कामपत्नी रति की अंगूठी, विश्वकर्मा प्रदत्त शंख, सुन्दर चित्र, नाना आसन, दुर्लभ शय्या तुलसी को प्रदान किया तथा उसे अनेक आभूषण अपने हाथों से पहनाया॥१३५-१३७॥

निर्ममे कबरीभारं तस्याश्च माल्यसंयुतम्। सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेखसमं तथा॥१३८॥
चन्द्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना।
परितः परितश्चित्रैः सार्धं कुङ्कुमबिन्दुभिः॥१३९॥

शंखचूड़ ने तुलसी के बालों का जूड़ा बना कर उसे माला से सज्जित किया। तुलसी के गण्डस्थल पर सुन्दर पत्र बना कर वहां सुगन्धित चन्दन की रेखात्रय भी अंकित कर दिया। शंखचूड़ ने उसके चतुर्दिक् कुंकुम से नाना चित्रों की रचना किया॥१३८-१३९॥

ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिन्दूरतिलकं ददौ। तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते॥१४०॥
चित्रालक्तकरागं च नखरेषु ददौ मुदा। स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागं चरणाम्बुजम्॥१४१॥

उसने तत्पश्चात् जलते हुए दीपक की अग्निशिखा जैसा सिन्दूर तिलक तुलसी के ललाट पर

१. क. ०नि रेवत्याः करभू०।
२. क. ०त्रपाशकश्रेणीं शय्याश्चापि।

लगाया। तुलसी के दोनों तलवों स्थलपद्म को भी अपनी शोभा से लज्जित कर देने वाला आलता लगा कर पैर के नखों को रंग से रंग कर तुलसी के उन दोनों चरण-कमल को अपने वक्षःस्थल पर अत्यन्त राग पूर्वक एक मुहूर्त्त रख कर कहा-॥१४०-१४१॥

हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः।
रत्ननिर्माणयानेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि॥१४२॥
तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ। मलये देवनिलये शैले शैले वने वने॥१४३॥
स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने।
कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे तीरेऽतिसुन्दरे॥१४४॥
पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे। पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे॥१४५॥
मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते। विनिस्यन्दे सूपवने नन्दने गन्धमादने॥१४६॥

(शंखचूड़ ने कहा-) "हे देवी तुलसी! मैं तुम्हारा दास हूं।" तत्पश्चात् तुलसी को अपने वक्ष से सटा कर शंखचूड़ रत्ननिर्मित यान पर बैठा तथा उस तपोवन को त्याग कर अन्य स्थानों पर गया। वह मलय पर्वत पर, देवताओं के रहने के स्थानों पर, पर्वतों पर, वनों में, अन्य रम्य स्थल पर, अत्यन्त निर्जन पुष्पोद्यानों में, कन्दराओं में, सिन्धु तट पर, अन्य उत्तम तटों पर, पुष्पभद्रा नदी के तट पर, उत्तम वायु तथा जल वाले नदी तटों पर, दिव्य नदियों तथा नदों के किनारे, वसन्त में भ्रमरगण की ध्वनि से गुंजरित उपवनों में, निर्झरों के निकट, नन्दन वन में, गन्धमादन पर गया॥१४२-१४६॥

देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने। चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे॥१४७॥
कुन्दानां मालतीनां च कुमुदाम्भोजकानने। कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने॥१४८॥
निर्जने काञ्चनस्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते।
काञ्चीवने किञ्जलके कञ्चुके काञ्चनाकरे॥१४९॥
पुष्पचन्दनतल्पे च पुंस्कोकिलरुते श्रुते। पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना॥१५०॥
कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह।
न तृप्तो दानवेन्द्रश्च तृप्तिं नैव जगाम सा॥१५१॥

वह देवताओं के उद्यान में देवताओं के वनों में, उत्तम चन्दन वन में, चम्पा, केतकी, माधवी लता, कुन्द, मालती, कुमुद, कमल के वनों में, कल्पवृक्ष तथा पारिजात वनों में, निर्जन कांचन स्थान में, धन्य कांचन पर्वत पर (सुमेरु पर), काञ्ची वन में, किंजल्क में जहां स्वर्ण खानें हैं, काञ्चक प्रदेशों में, कोकिलाओं की कुहुध्वनि से मधुर रम्य लगने वाले प्रदेश में, पुष्प-चन्दन निर्मित शय्या पर कामुक शंखचूड़ पुष्प-चन्दनादि से भूषित होकर कामभावपरायण तुलसी के साथ कामक्रीड़ारत हो गया, तथापि इन दोनों की तृप्ति ही नहीं हो रही थी!॥१४७-१५१॥

हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः। तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः॥१५२॥
रम्यं क्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः।
एवं संबुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान्॥१५३॥

जैसे जितना घृत छोड़ा जाये, अग्नि उतनी ही प्रदीप्त होती जाती है, तदनुरूप जितनी काम-क्रीड़ा ये दम्पति करते उनमें कामभाव उसी मात्रा में वर्द्धित होता जाता! तदनन्तर दानव तुलसी को लेकर अपने गृह आ गया। वहां उसने कामक्रीड़ार्थ एक रम्य रतिगृह निर्माण कराया तथा वहां पुनः तुलसी के साथ सतत् कामक्रीड़ारत हो गया। इस प्रकार राजा प्रतापी शंखचूड़ ने राज्यसुख का उत्तम भोग किया।।१५२-१५३।।

एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली। देवानामसुराणां च दानवानां च संततम्॥१५४॥
गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शास्तिदः।
हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा॥१५५॥

इस महाबली राजराजेश्वर ने एक मन्वन्तर काल पर्यन्त सतत् देवता, असुर, दानव, गन्धर्व, किन्नर तथा राक्षसगण पर शासन किया। अपना अधिकार हरण किये जाने के कारण देवता लोग भिक्षुक की तरह भटकने लगे।।१५४-१५५।।

पूजाहोमादिकं तेषां जहार विषयं बलात्।
आश्रयं चाधिकारं च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम्॥१५६॥
निरुद्यमाः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा।
ते च सर्वे विषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्॥१५७॥
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः। तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शङ्करालयम्॥१५८॥
सर्वं सङ्कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम्।
ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह॥१५९॥
सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम्। संप्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो॥१६०॥
ददर्श द्वारपालाश्च रत्नसिंहासनस्थितान्।
शोभितान्पीतवस्त्रांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥१६१॥

शंखचूड़ ने देवताओं की पूजा, होम आदि का तथा विषय, आश्रय, अधिकार, शस्त्रास्त्र, भूषणादि बलात् छीन लिया था। अब सभी देवता चित्र में बनी पुतली जैसे निष्क्रिय तथा उद्यम रहित होकर विषण्ण मन से ब्रह्मा के यहां गये तथा वहां रोते हुए समस्त वृत्तान्त पितामह से कहा। ब्रह्मा सभी विवरण से अवगत होकर देवगण के साथ शिवलोक गये। वहां जाकर उन्होंने समस्त घटनाक्रम भगवान् चन्द्रशेखर से जब कहा, तब शिव भी ब्रह्मा आदि को लेकर दुर्लभ जरामृत्यु रहित परमधाम

वैकुण्ठ गये। वे वहां हरि के गृह के द्वार पर आये। वहां उन्होंने द्वारपालों को रत्नसिंहासनासीन देखा। वे द्वारपाल पीले वस्त्र तथा रत्नाभूषण भूषित थे।।१५६-१६१।।

वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान्। शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान्।।१६२।।

सस्मितान्पद्मवक्त्रांश्च पद्मनेत्रान्मनोहरान्।

ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम्।।१६३।।

तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया। एवं च षोडश द्वारान्निरीक्ष्य कमलोद्भवः।।१६४।।

देवः सार्धं ताननतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम्। देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः।।१६५।।

वे सभी गले में वनमाला से शोभित श्यामवर्ण तथा अतीव सुन्दर थे। उन्होंने अपनी चार भुजाओं में शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किया था। वे मुस्कानयुक्त कमल ऐसे मुखमण्डल से शोभित, पद्म जैसे मनोहर नेत्रद्वय वाले थे। ब्रह्मा ने उनसे अपने आने का प्रयोजन कहा। इसके पश्चात् उनकी अनुमति होने पर सभी ने विष्णुपुरी में प्रवेश किया। ब्रह्मा देखते हैं कि उस पुरी में १६ द्वार हैं। वे लोग इन द्वारों को पार करके देवगण के साथ हरि की सभा में आकर देखते हैं कि सभा तो चतुर्भुज विष्णुपार्षदों तथा देवर्षि लोगों से भरी है।।१६२-१६५।।

नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः। पूर्णेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्त्रां मनोहरम्।।१६६।।

मणीन्द्रसारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम्।

अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः।।१६७।।

सभी पार्षद चतुर्भुज, नारायण तुल्य तथा कौस्तुभमणि भूषित थे। हरि की यह सभा चतुरस्त्र, पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी गोल, उत्तम मणियों से निर्मित, उत्तम हीरों से जड़ित, अमूल्य रत्नराशि से शोभित थी, जो हरि की इच्छा मात्र से बनी थी।।१६६-१६७।।

माणिक्यमालाजालाढ्यां मुक्तापङ्क्तिविभूषिताम्।

मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः।।१६८।।

विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम्। पद्मरागेन्द्ररचितै [1]रचितां पद्मकृत्रिमैः।।१६९।।

सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः। पट्टसूत्रगन्थियुतैश्चारुचन्दनपल्लवैः।।१७०।।

इन्द्रनीलमणिस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोरमाम्। सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम्।।१७१।।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम्।

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च सुगन्धिचन्दनद्रवैः।।१७२।।

सभामण्डल में कहीं माणिक्य माला की श्रेणी थी, कोई स्थान मुक्तापंक्ति से शोभायमान था। कोई मण्डलाकृति करोड़ों दर्पण से शोभान्वित था। कहीं पर विविध मनोहर चित्र लगे थे। सभा की

१. क. ०चितां पद्मरागविचित्रितैः।

१०० सीढ़ियां स्यमन्तक मणि रचित थीं। वहां पद्मराग मणि से बनी कृत्रिम कमल पंक्ति भी उन सीढ़ियों को और शोभित कर रही थी। सभागृह के सभी स्तम्भ इन्द्रनीलमणि से बने थे। कहीं पट्टसूत्र की गांठों से गुंथी मनोहर चन्दन के पत्तों की बन्दनवार भी शोभायमान थी। ये सभी स्तम्भ सभा के चतुर्दिक् सन्निवेशित होकर सभा का शोभावर्द्धन कर रहे थे। सभा में किसी-किसी स्थान पर जलपूर्ण अनेक रत्नघट रखे थे। सभा का कोई भाग पारिजात पुष्पों की माला से शोभायमान था! वह स्थान कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित सुगंधित चन्दन जल से सुवासित था।।१६८-१७२।।

सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना। विद्याधरीसमूहानां सङ्गीतैश्च मनोहराम्।।१७३।।
सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किङ्करैः। ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करश्च सुरैः सह।।१७४।।

वह स्थान सुसंस्कृत (स्वच्छ) तथा सुगन्धित वायु से सुवासित था। वहां विद्याधरियों का समूह उत्तम मनोहर संगीत प्रस्तुत कर रहा था। वह एक हजार योजन विस्तार वाली सभा विष्णु किंकरों से भरी थी। वहां पर शंकर-ब्रह्मा आदि देवगण ने श्रीहरि का दर्शन किया।।१७३-१७४।।

वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम्। अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम्।।१७५।।
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं च चतुर्भुजम्।।१७६।।
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम्। अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वाभरणभूषितम्।।१७७।।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम्। पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा।।१७८।।

उस सभा में श्रीहरि ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों वे तारकों (तारा) से घिरे चन्द्रमा हों। वे सभामध्य में अमूल्य रत्नों से बने विचित्र उत्तम सिंहासन पर आसीन थे। वे किरीट-कुण्डल-वनमाला भूषित थे। वे प्रभु शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज थे। उनका शरीर नवजलधर के समान श्याम वर्ण, मनोहर तथा अमूल्य रत्नों के नाना आभूषणों से विभूषित था। उनका सर्वाङ्ग सुगन्धित चन्दन से आर्द्र था। उनके एक हाथ में क्रीड़ाकमल थ। यह भगवद्विग्रह पूर्णतः शान्त था! ये प्रभु अपने समक्ष हो रहे नृत्य-गीत को मुस्कराते-मुदित होते देखते जा रहे थे।।१७५-१७८।।

शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्।
भक्तप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्।।१७९।।
गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः। सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकंधरैः।।१८०।।

वहां ये सरस्वतीपति शान्तचित्त होकर आसीन थे। भगवती लक्ष्मी उनकी चरण सेवा में तल्लीन थीं। वे भक्तों द्वारा प्रदत्त सुवासित ताम्बूल का चर्वण कर रहे थे। गंगादेवी परम भक्तिभाव से उनको श्वेत चामर झल रही थीं। सभी लोग भक्ति पूर्वक नतशिर होकर उन सर्वेश प्रभु की स्तुति कर रहे थे।।१७९-१८०।।

एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम्। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा।।१८१।।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः। भक्त्या परमया भक्ता भीता नम्रात्मकंधराः।।१८२।।

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि। वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुनः॥१८३॥

हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित्[1]।
प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम्॥१८४॥

ऐसे परिपूर्णतम परमेश्वर का दर्शन करके ब्रह्मादि देवताओं का शरीर रोमांचित हो उठा। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु की वर्षा होने लगी। वे परम भक्ति पूर्वक अवनत मस्तक होकर भगवान् को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर जगत् विधानकर्त्ता ब्रह्मा ने हाथ जोड़ कर सविनय समस्त घटनाक्रम का निवेदन श्रीहरि से किया। यह सुनकर सर्वज्ञ सर्वभाव ज्ञाता हरि ने हंसते हुए ब्रह्मा से परम मनोहर रहस्य कहा–॥१८१-१८४॥

शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज।
मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा॥१८५॥
सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम्।
गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारणम्॥१८६॥

सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम। स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात्॥१८७॥

तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम्।
विहाय मानिनीं राधां मम प्राणाधिकां पराम्॥१८८॥
सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किङ्करीमुखात्।
पश्चात्क्रुधा साऽऽजगाम मां ददर्श च तत्र च॥१८९॥
विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम्।
पुनर्जगाम सा रुष्टा स्वालयं सखिभिः सह॥१९०॥
मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं[2] पुरा।
भृशं मां भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम्॥१९१॥
तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामा तां चुकोप ह।
स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम संनिधौ॥१९२॥
तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना।
बहिष्कर्तुं चकाराऽऽज्ञां संत्रस्ता[3] मम संसदि॥१९३॥

(श्री भगवान् कहते हैं)–हे पद्मसंभव ब्रह्मा! आपसे शंखचूड़ का समस्त वृत्तान्त जो मैं पहले से

१. क. ०वनः।
२. क. ०मसेवितं।
३. क. संरम्भात्म०।

जानता हूं, वह कहता हूं। पूर्वकाल में वह महातेजस्वी मेरा गोप था। हे देवगण! उसका समस्त पूर्व इतिहास श्रवण करें। यह गोलोक में घटित गोपचरित पापनाशक तथा पुण्यप्रद है। मेरा पार्षद प्रवर एक गोप सुदामा था। उसने राधा के घोर शाप से दानवी योनि प्राप्त किया है। एक बार मैं गोलोक धाम में प्राणप्रिया मानिनी राधिका को साथ लिये बिना अपने महल से रासमण्डल चला गया। तदनन्तर राधिका ने एक दासी से सुना कि मैं वहां विरजा के साथ ही क्रीड़ारत हूं। यह सुनकर राधा क्रोध में भरी मुझे पकड़ने वहां आई। तत्क्षण विरजा नदीरूपा हो गई तथा मैं तिरोहित हो गया। तब राधा वहां से क्रोध में भरी अपने गृह वापस आ गई। वहां राधा ने मुझे मौन तथा सुस्थिर बैठे देख कर मेरी यथोचित भर्त्सना किया। मेरी यह भर्त्सना सुदामा सहन नहीं कर सका। उसने राधा के प्रति क्रोध प्रकट किया। तब राधा ने मेरे सामने ही सुदामा का यथेष्ट तिरस्कार किया। तब सुदामा ने बदले में राधा के साथ यही व्यवहार किया था। राधा यह देख कर उस पर अत्यन्त क्रोधित हो गईं। उनके नेत्रद्वय आरक्त हो गये। वे रक्तकमल जैसे शोभायमान हो गये। उन्होंने त्रस्त होकर मेरी सभा से सुदामा को बाहर निकालने हेतु आज्ञा दिया।।१८५-१९३।।

सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोज्ज्वलम्।
बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः॥१९४॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा समारुष्टा शशाप तम्।
याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः॥१९५॥

तभी १ लाख सखियां एक साथ उठीं तथा उन्होंने उस महातेजस्वी को बाहर निकाला, जो कुछ न कुछ बोलता जा रहा था। उस सुदामा का यह सब कथन सुन कर राधा ने उसे क्रोध पूर्वक कठोर शाप दिया कि "हे दुष्ट! तुम दानवी योनि वाले हो जाओ"।।१९४-१९५।।

तं गच्छन्तं शपन्तं च रुदन्तं मां प्रणम्य च।
वारयामास सा तुष्टा रुदती कृपया पुनः॥१९६॥
हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः।
समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विस्मिता[1]॥१९७॥
गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चेति सुदुःखिता।
ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया॥१९८॥

इस प्रकार सुदामा ने अभिशाप पाकर रोते हुए मुझे प्रणाम किया तथा जाने लगा। तब राधा भी उसे जाते देख कर कृपा पूर्वक रोते-रोते उसे जाने से रोकने लगीं। वे कहने लगीं-"हे वत्स! रुको कहीं मत जाओ। यहीं रुको।" पुनः-पुनः ऐसा कहते राधा शोकविह्वल हो गई तथा उसके पीछे जाने लगीं। यह देख कर सभी गोपियां विस्मित हो गईं। उस समय गोप-गोपी सभी रो रहे थे। सभी दुःखी थे। तब मैंने राधिका को तथा अन्य सबको प्रबोधित किया।।१९६-१९८।।

१. क. विक्लवा।

आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम्।
सुदामंस्त्वमिहाऽऽगच्छेत्युवाच सा निवारिता॥१९९॥

तब राधिका ने सुदामा से कहा—हे सुदामा! तुम यहां आओ। कहीं मत जाओ। मैंने राधिका को समझाया कि वह आधे क्षण में शाप भोग कर पुनः यहीं आ जायेगा, तथापि राधिका उसे बुलाती रहीं॥१९९॥

गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकमन्वन्तरं भवेत्।
पृथिव्यां जगतां धातुरित्येवं वचनं ध्रुवम्॥२००॥

स एव शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति। महाबलिष्ठो योगीशः सर्वमायाविशारदः॥२०१॥

मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम्।
शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः॥२०२॥

ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम्। बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारविजयी ततः॥२०३॥

हे ब्रह्मन्! गोलोक का आधा क्षण पृथिवी के एक मन्वन्तर इतना होता है। यह सब जो हुआ है, सब पूर्व निश्चित था, वही हो गया। यह सर्वमाया विशारद महाबली योगीश शंखचूड़ पुनः यहां लौट आयेगा। हे शंकर! आप मेरा शूल लेकर शीघ्र भारत जायें तथा मेरे शूल से राक्षस संहार करें। उस दानव के सदैव संसारविजयी होने का कारण यह है कि उसने अपने कंठ में मेरा सर्वमंगलमंगल कवच पहना है॥२००-२०३॥

कवचे संस्थिते तत्र न कोऽपि हिंसितुं क्षमः। तद्याच्ञां च करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च॥२०४॥

सतीत्वभङ्गस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति।
तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया॥२०५॥
तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम्।
तत्क्षणेनैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥२०६॥

हे ब्रह्मन्! जब तक उसके कण्ठ में वह कवच बंधा है, तब तक कोई उसका वध नहीं कर पायेगा। इसलिये मैं विप्ररूपी होकर उससे उस कवच को दान में मांगूंगा! जब उसकी पत्नी का सतीत्व भंग होगा, तभी वह मृत हो सकेगा। यह वर आपने ही उसे दिया था। मैं निश्चित रूप से उसकी पत्नी के उदर में अपना वीर्य स्थापित करूंगा। ऐसा करते ही उसकी मृत्यु होना निश्चित जानें॥२०४-२०६॥

पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति प्रिया मम।
इत्युक्त्वा जगतां नाथा ददौ शूलं हराय च॥२०७॥

शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरं मुदा। भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥२०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० तुलस्युपाख्याने षोडशोऽध्यायः॥१६॥

"तदनन्तर उसकी पत्नी तुलसी देहत्यागोपरान्त पुनः मेरी प्रिया होगी।" यह कह कर जगन्नाथ ने अपना शूल शिव को दे दिया। श्रीहरि ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ शिव को तत्काल अपना शूल दिया था। ब्रह्मा ने अब रुद्र को आगे करके देवगण के साथ भारत के लिये प्रस्थान किया।।२०७-२०८।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महादेव द्वारा शंखचूड़ के यहां युद्ध का संवाद देने दूत भेजना, तुलसी के साथ शंखचूड़ के विलास का वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च। जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं महामुने।।१।।
चन्द्रभागानदीतीरे घटमूले मनोहरे। तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे।।२।।
दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम्। शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा।।३।।
स चेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम्। महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम्।।४।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे महामुनि! ब्रह्मा महादेव को दानववधार्थ प्रेरित करके स्वयं शीघ्र अपने स्थान पर आ गये। तत्पश्चात् महादेव ने देवगण के संकट का नाश करने हेतु चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित एक मनोहर वटवृक्ष के नीचे स्थित होकर गन्धर्वराज पुष्पदन्त को अपने मनोनुकूल दूत बना कर शीघ्रता से शंखचूड़ के यहां भेजा। पुष्पदन्त शिवाज्ञा से शीघ्र शंखचूड़ के नगर गये। वे मुदित मन से उस नगरी में पहुंचे। वह कुबेर तथा इन्द्र के नगर से उत्तम भवनादि युक्त पुरी थी।।१-४।।

पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्यै तद्द्विगुणं मुने। स्फाटिकाकारमणिभिः समन्तात्परिवेष्टितम्।
सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम्।।५।।
ज्वलदग्निनिभैर्नित्यं शोभितं रत्नकोटिभिः। युक्तं च वीथिशतकैर्मणिवेदिसमन्वितैः।।६।।
परितो वणिजां सङ्घैर्नानावस्तुविराजितैः। सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः।।७।।
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः। गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम्।।८।।
अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम्। ज्वलदग्निशिखाभिश्च परिखाभिश्चतसृभिः।।९।।

हे मुनिवर! वह पुरी विस्तार (चौड़ाई में) में ५ योजन तथा लम्बाई में १० योजन थी। वह

अत्यन्त दुर्गम खाईयों (७ खाई) से घिरी नगरी थी, जो स्फटिक के समान मणिसमूह से चतुर्दिक् परिवेष्ठित थी। ज्वलन्त अग्नि के समान करोड़ों रत्न वहां प्रज्वलित प्रतीत होते थे। वह वणिकों की नाना वस्तुपूर्ण दुकानों से सैकड़ों गलियों से पूर्ण थी। ये सैकड़ों गलियां मणिनिर्मित वेदिकाओं से समन्वित थीं। यह नगरी सिन्दूराकृति मणियों से चित्रित सौ कोटि दिव्य भवनों से भूषित थी। दूत पुष्पदन्त ने वहां आकर शंखचूड़ के भवन को देखा। वह भवन पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मण्डलाकृति था। उसके चारों पार्श्व में ज्वलन्त अग्निशिखा जैसी चार खाईयां थीं।।५-९।।

सुदुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम्। अत्युच्चैर्गगनस्पर्श्यमणिप्राकारवेष्टितम्।।१०।।

वे अत्यन्त उच्च मणिजटित दीवार से घिरे थे। उसमें शत्रुगण किसी भी प्रकार से प्रविष्ट नहीं हो सकते थे, तथापि अन्य लोगों के आने-जाने में कोई बाधा नहीं थी।।१०।।

राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितैः। रत्नकृत्रिमपद्माढ्यै रत्नदर्पणभूषितैः।।११।।
मणीन्द्रसारखचितैः शोभितं लक्षमन्दिरैः। शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तम्भविराजितैः।।१२।।
रत्नचित्रकपाटाद्यैः सद्रत्नकलशान्वितैः। रत्नप्रतिमपद्माद्यै रत्नदर्पणभूषितम्।
रत्नेन्द्रचित्रराजीभिः सुदीप्ताभिर्विराजितम्।।१३।।
परितो रक्षितं शश्वद्दानवैः शतकोटिभिः। दिव्यास्त्रधारिभिः शूरैर्महाबलपराक्रमैः।।१४।।
सुन्दरैश्च सुवेषैश्च नानालङ्कारभूषितैः। तान्दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वरद्वारं ददर्श सः।।१५।।

वह स्थान बारह द्वार से युक्त था, जिस पर द्वारपाल उनकी रक्षा कर रहे थे। रत्न के बने कृत्रिम कमलों तथा रत्नमय दर्पण से सजे, मणियों के सार (उत्तम मणि) से निर्मित एक लाख गृहों से वह नगरी शोभित थी। उनमें रत्न की सीढ़ियां तथा स्तम्भ थे। ये सभी द्वार अत्यन्त दीप्त थे। उत्तम रत्नों की चित्रकारी उन पर बनी थी। उनके चारों ओर दिव्य अस्त्रधारी, महाबली, पराक्रमी, सुन्दर सुवेश वाले, नाना अलंकारों से भूषित सौ करोड़ दानव इस भवन की रक्षा में लगे थे। उनको देख कर पुष्पदन्त ने प्रमुख द्वार का अवलोकन किया।।११-१५।।

द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम्। तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षं च ताम्रवर्णं भयङ्करम्।।१६।।
कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया। अतिक्रम्य नवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम्।।१७।।

द्वार पर शूलधारी, मुस्कानयुक्त, ताम्रवर्ण का भयंकर पिंगलाक्ष बैठा था। पुष्पदन्त ने उससे समस्त समाचार कहा तथा दूत की आज्ञा पाकर नव द्वारों को लांघता पार करता पुष्पदन्त पुरी में पहुंचा।।१६-१७।।

न कैश्चिद्वारितो दूतो दूतरूपेण तस्य च। गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह।।१८।।
रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम्। स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह।।१९।।

वह दूत था, अतः किसी ने भी उसे रास्ते में नहीं रोका। अब उसने पुरी के आभ्यन्तर में पहुंचकर वहां के द्वारपाल से समस्त वृत्तान्त जब कहा, तब उस द्वारपाल ने उसे अन्दर प्रवेश की अनुमति भी दे दिया।।१८-१९।।

स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम्। सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम्॥२०॥
मणीन्द्रखचितं चित्रं रत्नदण्डसमन्वितम्। रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा॥२१॥
भृत्येन हस्तविधृतं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम्। सेवितं पार्षदगणैर्व्यजनैः श्वेतचामरैः॥२२॥
सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम्। माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रं च दधतं मुने॥२३॥
दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः। शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिः शस्त्रधारिभिः॥२४॥
एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः। उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च॥२५॥

भीतर जाकर पुष्पदन्त नामक दूत ने मनोहर रूप वाले शंखचूड़ को देखा जो सभा के बीच स्थित रत्नसिंहासनासीन था। एक भृत्य ने उसके मस्तक के ऊपर उत्तम मणिरचित रत्न के निर्मित दण्ड वाले तथा रत्नों से बने पुष्पों से शोभित मनोहर स्वर्णछत्र को धारण कर रखा था। सभी पार्षद पंखा एवं चंवर झल रहे थे, जो श्वेत वर्ण के थे। वे सुवेशधारी रत्नाभूषण से भूषित सुन्दर रूप वाले शंखचूड़ की सेवा में निरत थे। शंखचूड़ ने माला, उत्तम अनुलेप धारण किया था। उसने सूक्ष्म (महीन) वस्त्र पहने थे। वह दैत्येन्द्र दानवों से घिरा था जो उत्तम वेष वाले तीन कोटि थे। सौ कोटि अन्य शस्त्रधारी दानव भी इधर-उधर घूम रहे थे। यह सब देख कर पुष्पदन्त विस्मित हो गया। अब उसने वह युद्धवृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया जो शंकर ने कहा था॥२०-२५॥

पुष्पदन्त उवाच

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो। यदुक्तं शङ्करेणैव तद्ब्रवीमि निशामय॥२६॥
राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम्। देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहरौ परे॥२७॥

दत्त्वा त्रिशूलं हरिणां तुभ्यं प्रस्थापितः शिवः।
चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः॥२८॥
विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम्।
गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥२९॥

पुष्पदन्त कहता है—हे राजेन्द्र! मैं पुष्पदन्त नामक शिवदूत हूं। हे प्रभो! जो कुछ शंकर ने कहा है, वही यथावत् आपसे कहता हूं। इस समय देवगण हरि की शरण में आये हैं। आप देवताओं का राज्य तथा अधिकार उनको तत्काल वापस करिये। हरि ने त्रिलोचन शिव को अपना त्रिशूल देकर यहां भेजा है। वे अभी चन्द्रभागा के तट पर वटवृक्ष के नीचे विराजित हैं। आप अब देवगण को राज्य दीजिये अथवा युद्ध का उद्योग करिये। आप बतायें कि शंभु से क्या कहूं?॥२६-२९॥

दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च।
प्रभाते ह्यागमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह॥३०॥

शंखचूड़ भी दूत का कथन सुन कर हंसा तथा उसने कहा—"मैं प्रातःकाल उस स्थान पर आ रहा हूं। तुम जाओ"॥३०॥

स गत्वोवाच तूर्णं तं वटमूलस्थमीश्वरम्। शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत्परिच्छदम्॥३१॥

एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम्।
वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः॥३२॥
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः।
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः॥३३॥
कपिलाक्षो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः।
कालङ्कटो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः॥३४॥
बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा।
अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः॥३५॥
वसवो वासवाद्याश्च आदित्या द्वादश स्मृताः।
हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माऽश्विनौ च तौ॥३६॥

अब दूत पुष्पदन्त वटवृक्ष के नीचे आसीन शिव के पास गया तथा शंखचूड़ का जो उत्तर था, वह और उसके सेवकों आदि का भी वर्णन शिव से किया। इसके पश्चात् स्कन्ददेव शिव के पास आये। उनके साथ वीरभद्र, नन्दीश्वर, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृत, मणिभद्र, वाष्कल, कपिलाक्ष, दीर्घदंष्ट्रा, विकट, ताम्रलोचन, कालङ्कट, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी दुर्जय, दुर्गम, भयंकर अष्टभैरव, एकादश रुद्र, अष्ट वसु, वासवादि द्वादश आदित्य, अग्नि, चन्द्र, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार आये॥३१-३६॥

कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूबरः। वायुश्च वरुणश्चैव बुधो वै मङ्गलस्तथा॥३७॥
धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान्। उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कोट्टरी कैटभी तथा॥३८॥
स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली भयङ्करी। रत्नेन्द्रराजखचितविमानोपरि संस्थिता॥३९॥

कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशानदेव, वीर्यवान् कामदेव, उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोटरी, कैटभी, स्वयं शतभुजा भयङ्करी भद्रकाली देवी—ये सब शम्भु के पास आये। देवी अत्यन्त उत्तम रत्ननिर्मित विमान पर आसीना थीं॥३७-३९॥

रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना। नृत्यन्ती च हसन्ती गायन्ती सुस्वरं मुदा॥४०॥

अभयं ददती भक्तमभया सा भयं रिपुम्।
बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम्॥४१॥

देवी ने रक्तवर्ण का वस्त्र पहना था। उन्होंने रक्तवर्ण पुष्पों की माला तथा रक्तवर्ण का लेप लगाया था। वे नाचती, हंसती तथा उत्तम स्वर से मुदित होकर स्थित थीं। ये देवी भक्तों को भय रहित करती हैं। उनके शत्रुगण को भयभीत करती हैं। इनकी जिह्वा अत्यन्त विकट तथा योजन पर्यन्त लम्बी है। वह जिह्वा लपलपाती रहती है॥४०-४१॥

खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायताम्।
त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं वै योजनायताम्॥४२॥
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शरांश्चापं भयङ्करम्। मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुज्ज्वलम्॥४३॥
वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रमाग्नेयं नागपाशकम्।
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं गान्धर्वं गारुडं तथा॥४४॥
पार्जन्यं वै पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम्। माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं संमोहनं तथा।
अव्यर्थमस्त्रशतकं[1] दिव्यास्त्रशतकं परम्॥४५॥
आगत्य तत्र तस्थौ सा योगिनीनां त्रिकोटिभिः।
सार्धं वै डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः॥४६॥

इनके हाथ का वर्त्तुलाकार खप्पर भी एक योजन आयत है। इनके हाथ में आकाश को स्पर्श करने वाला त्रिशूल है। एक योजन लम्बी शक्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, बाण, भयंकर धनुष, मूसल, वज्र, खड्ग, प्रदीप्त फलक वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, नागपाश, आग्नेयास्त्र, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गान्धर्वास्त्र, गारुड़ास्त्र, पार्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायव्यास्त्र, दण्ड, सम्मोहनास्त्र तथा अन्य सैकड़ों अस्त्र हैं, जो व्यर्थ नहीं जाते तथा सैकड़ों दिव्यास्त्र भी देवी के पास विराजित हैं। भगवती भद्रकाली इनको धारण करके तीन कोटि योगिनीगण तथा तीन कोटि विकटाकार डाकिनियों के साथ विराजमान थीं। वे इनके साथ शिव के निकट विराजित हो गयीं।।४२-४६।।

भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः।
वेतालाश्चैव यक्षाश्च राक्षसाश्चैव किन्नराः॥४७॥
ताभिश्चैव सह स्कन्दो नत्वा वै चन्द्रशेखरम्।
पितुः पार्श्वे सभायां च समुवास भवाज्ञया॥४८॥

तभी भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष, राक्षस तथा किन्नरगणों, डाकिनियों तथा योगिनियों के साथ स्कन्ददेव आये। उन्होंने पिता शंकर को प्रणाम किया। वे पिता की आज्ञा से उनके पार्श्व में बैठ गये।।४७-४८।।

अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान्। उवाच तुलसी वार्तां गत्वाऽभ्यन्तरमेव च॥४९॥
रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता॥५०॥

जब दूत पुष्पदन्त शिव के पास लौट आये, तब प्रतापी शंखचूड़ अन्तःपुर में गया तथा पत्नी से युद्ध सम्बन्धित समस्त वृत्तान्त कहा। युद्ध होने का समाचार सुनते ही साध्वी तुलसी का ओठ तथा तालु शुष्क हो गया। वे दुःखित हृदय से शंखचूड़ से कहने लगीं-।।४९-५०।।

१. ख. ०था। नानाविधान्यायुधानि दि०।

तुलस्युवाच

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्। हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनं क्षणम्॥५१॥

भुङ्क्ष्व जन्मसु भोग्यं तद्यद्वै मनसि वाञ्छितम्।
पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां पिपासिता॥५२॥
आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदाहश्च संततम्।
दुःस्वप्नं च मया दृष्टं चाद्यैव चरमे निशि॥५३॥

तुलसी कहती हैं—हे प्राणनाथ! प्रभो! हे बन्धु! आप क्षणमात्र मेरे वक्ष से सट जायें। आप ही मेरे प्राण के अधिष्ठातृ देवता हैं। क्षणकाल मेरे जीवन की रक्षा करिये। हे नाथ! मन की इच्छा पूर्ण करके जन्म को सफल करें। हे नाथ! मैं चिरकालीन पिपासित नेत्रों से क्षणकाल आपका दर्शन कर लूं। हे जीवननाथ! मेरा प्राण आन्दोलित है तथा मन दग्ध हो रहा है। मैंने रात्रि अन्त होने पर अत्यन्त भयानक स्वप्न देखा था॥५१-५३॥

तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः।
उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम्[१]॥५४॥

उस बुद्धिमान दानवेश्वर ने तुलसी का यह वाक्य सुन कर पान-भोजन समाप्त किया तथा तुलसी से सत्य एवं हितप्रद यथोचित वाक्य कहने लगा—॥५४॥

शङ्खचूड उवाच

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धनम्। शुभं हर्ष सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम्॥५५॥

कालेभवन्ति वृक्षाश्च शाखावन्तश्च कालतः।
क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः॥५६॥
तेषां फलानि पक्वानि प्रभवन्त्येव कालतः।
ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च॥५७॥
भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च।
काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि॥५८॥

शङ्खचूड़ कहता है—हे रानी! जब प्राणीगण के कर्मभोग का समय आता है, तभी शुभ-अशुभ, सुख-दुःख, भय-शोक, अमंगलादि सभी घटित होता है। वृक्ष समय आने पर ही अंकुरित होते हैं। समय पर ही उनका तना निर्गत होता है। समय आने पर ही उसके पुष्प फूलते हैं तथा उचित समय आने पर ही उसमें फल उत्पन्न होता है। तदनन्तर सभी फलवान् वृक्ष यथाकाल नष्ट हो जाते हैं। सभी प्राणी समय (काल) आने पर ही जन्म लेते हैं। समय आने पर विलीन हो जाते हैं। हे सुन्दरी! समस्त विश्व

१. क. यभीप्सित०।

काल आने पर उत्पन्न होता है तथा समय पर काल में ही उसका विलय हो जाता है। हे सुन्दरी! यही नियम है।।५५-५८।।

स्त्रष्टा च काले सृजति पाता पाति च कालतः।
संहर्ता संहरेत्काले सञ्चरन्ति क्रमेण ते।।५९।।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः।
स्त्रष्टा पाता च संहर्ता स कृत्स्नांशेन सर्वदा।।६०।।

स्त्रष्टा काल ही सृष्टि करता है। समय आने पर ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, स्त्रष्टा काल ही पालन करता है। (समय आने पर ही विष्णु पालन करते हैं), स्त्रष्टा काल ही संहार करता है। (समय आने पर ही शंकर संहार करते हैं)। इस प्रकार से नियमतः सृष्टि-पालन-संहार कार्य होता है। अतएव जो ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वर आदि देवगण से भी और प्रकृति से भी अतीत हैं, जो स्त्रष्टा, पालनहार तथा संहर्त्ता हैं, उन अनादिनिधन श्रीकृष्ण का ही भजन निरन्तर करें। वे ही अपने अंश से सृष्टि-पालन-संहार करते हैं।।५९-६०।।

काले स एव प्रकृतिं निर्माय स्वेच्छया प्रभुः।
निर्माय प्राकृतान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान्।।६१।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च। प्रवदन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्वरम्।।६२।।
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्। सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वात्मानं तमीश्वरम्।।६३।।

ये परमेश्वर श्रीकृष्ण ही अपनी इच्छा से प्रकृति का सृजन करके विश्वस्थ सभी चर-अचर का सृजन कर देते हैं। ब्रह्मा से लगाकर तृण पर्यन्त जो कुछ भी पदार्थादि है, वह सब कृत्रिम तथा नश्वर है। काल से उत्पन्न होने वाला तथा काल द्वारा ही नष्ट होने वाला है। अतः तुम त्रिगुण से अतीत सत्यरूप परब्रह्म राधाकान्त का भजन करो। वे ही सर्वेश्वर, सर्वान्तरात्मा एवं सर्वस्वरूप हैं।।६१-६३।।

जनं जनेन सृजति जनं पाति जनेन यः। हरेज्जनं जनेनैव तं कृष्णं भज संततम्।।६४।।
यस्याऽऽज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च संततम्।
यस्याऽऽज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम्।।६५।।
यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु। यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति भीतवत्।।६६।।
मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम्। विभुं स्त्रष्टुश्च स्त्रष्टारं पातुः पालकमेव च।।६७।।
संहर्तारं च संहर्तुस्तं कृष्णं शरणं व्रज। को बन्धुश्चैव केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये।।६८।।

वे प्राणी से प्राणी को उत्पन्न करते हैं। प्राणी से ही प्राणी की रक्षा कराने वाले हैं। वे प्राणी से ही प्राणीगण का संहार कराने वाले हैं। ऐसे श्रीकृष्ण का भजन करो। उनकी आज्ञा से वायु शीघ्रगामी होकर सतत् प्रवाहित होता है, उनकी आज्ञा से समय के अनुसार सूर्य तप्त होता है, जिनकी आज्ञा से इन्द्र समयानुरूप जलवर्षा करते हैं, जिनकी आज्ञा से मृत्यु प्राणीगण में विचरण करता है, अग्नि दहन

करता है तथा चन्द्र भयभीत होकर भ्रमणरत रहता है, उन संहारक का भी संहार करने वाले कृष्ण की शरण ग्रहण करो। जगत् में कौन किसका बन्धु है? हे प्रिये! कृष्ण ही सबके बन्धु हैं। उनका भजन करो।।६४-६८।।

अहं को वा त्वं च का वा विधिना योजितः पुरा।
त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः॥६९॥

कहां मैं था, कहां तुम थी!, तथापि विधि के विधान ने कर्मानुसार हमें पुनः साथ किया। इस समय विधि ही हमारे कर्म के अनुरूप हमें वियुक्त कर रहा है।।६९।।

अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ च न पण्डितः।
सुखं दुःखं भ्रमत्येव चक्रनेमिक्रमेण च॥७०॥

विपत्ति आने पर, शोक में पड़ जाने पर अज्ञानी ही दुःखी-कातर होता है। ज्ञानी कदापि कातर नहीं होता। पण्डित कभी भी इस प्रकार दुःखी नहीं होता। सुख तथा दुःख तो नेमि चक्र के समान निरन्तर भ्रमण करते आते-जाते रहते हैं।।६९-७०।।

नारायणं तं सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम्। तपः कृतं यदर्थे च पुरा बदरिकाश्रमे॥७१॥
मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणश्च वरेण हि। हरेरर्थे तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि॥७२॥

वृन्दावने च गोविन्दं गोलोके त्वं लभिष्यसि।
अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम्॥७३॥

हे प्रिये! तुमने जिन प्रभु को पाने के हेतु बदरिकाश्रम में तप किया था, तुमको अवश्यमेव वे सर्वेश्वर नारायण पतिरूपेण प्राप्त होकर रहेंगे। हे कामिनी! मैंने तप करके ब्रह्मा से प्राप्त वर द्वारा तुमको प्राप्त किया था, तथापि तुमने तो हरि के लिये तपस्वी जीवन अपनाया था। अतः तुम निश्चित रूप से हरि को प्राप्त करोगी। तुम वृन्दावन तथा गोलोकवासी कृष्ण-गोविन्द को अवश्य प्राप्त करोगी। मैं भी इस दानवी कलेवर का त्याग करके उसी लोक में गमन करूंगा।।७१-७३।।

तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च त्वां द्रक्ष्यामि च संततम्।
आगमं राधिकाशापाद्धारतं च सुदुर्लभम्॥७४॥
पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये।
त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च॥७५॥
तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातरा भव।
इत्युक्त्वा च दिनान्ते च तया सार्धं मनोहरे॥७६॥
सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते। नानाप्रकारविभवे चचार रत्नमन्दिरे॥७७॥

"वहां सदा तुम मुझे देखोगी, मैं भी सदा तुम्हारा अवलोकन करूंगा। राधिका देवी के

शापानुसार मैंने इस दुर्लभ भारतदेश में जन्मलाभ किया है। तुमने भी उनके शाप से यहां जन्म लिया। हे प्रिये! अब हम दोनों ही उसी लोक में जाने वाले हैं, इसमें क्या शोक करना? तुम भी नरदेह त्याग कर दिव्य रूप धारण करके हरि को प्राप्त करोगी। तुम शोकातुर मत हो।" यह कहने के उपरान्त दिन का अन्त होने पर शंखचूड़ ने मनोहर, पुष्प-चन्दन चर्चित शैय्या पर तुलसी के साथ शयन किया। उसका रत्नों से निर्मित शयनकक्ष नाना प्रकार के वैभव से सम्पन्न था।।७४-७७।।

रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम। निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।।७८।।

कृत्वा वक्षसि कान्तां तां रुदतीमतिदुःखिताम्।
कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे।।७९।।
पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन बोधवित्।
पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम्।।८०।।

स च तस्यै ददौ तच्च सर्वशोकहरं परम्। ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा।।८१।।

वह शयनागार रत्नदीपों से युक्त था। राजा ने ऐसे कक्ष में परमसुन्दरी स्त्री रत्न के साथ मंगलमय क्रीड़ा-कौतुक करते रात्रि व्यतीत किया। तदनन्तर शोकसागर में मग्न कृश उदर वाली तुलसी को पुनः दुःख के साथ रोते देख कर दैत्यराज ने उसे वक्ष से लगाया। उस ज्ञानी शंखचूड़ ने पुनः अपने दिव्य ज्ञान द्वारा तुलसी को प्रबोधित किया। यह उत्तम ज्ञान शंखचूड़ को पूर्वजन्म में श्रीकृष्ण ने गोलोक के भाण्डीर वन में प्रदान किया था। यह ज्ञानलाभ करके तुलसी का मुखमण्डल तथा नेत्रयुगल (दोनों नेत्र) प्रसन्नता से भर गये। यह ज्ञान समस्त शोक का हरण करने वाला था। इस सर्वशोकहारी ज्ञान को पाकर देवी तुलसी अत्यधिक प्रसन्न थी।।७८-८१।।

क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वाऽतिनश्वरम्।
तौ दम्पती च क्रीडातौ निमग्नौ सुखसागरे।।८२।।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गौ मूर्च्छितौ निर्जने वने। अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ।।८३।।

एकाङ्गौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरौ यथा।
प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम्।।८४।।
प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणाधिकेश्वरीम्।
तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्द्रितौ सुन्दरौ समौ।।८५।।

इसके पश्चात् ये दम्पति हर्ष पूर्वक सब कुछ को नश्वर समझ कर क्रीड़ारत हो गये। उस क्रीड़ा से ये दोनों सुखसागर में मग्न हो गये। इनके अंग हर्ष से रोमांचित थे। प्रीतियुक्त होकर सुरतक्रीड़ार्थ उत्सुक इन दम्पति के अंग-प्रत्यंग इस प्रकार संयुक्त हो गये कि ये अर्द्धनारीश्वर शिव प्रतीत होने लगे। तुलसी ने उस समय शंखचूड़ को अपने प्राणों से भी अधिक तथा प्राणेश्वर माना। उधर राजा शंखचूड़ ने भी तुलसी को प्राणों से भी अधिक प्राणेश्वरी माना! तदनन्तर दोनों तंद्रा में अति सुन्दर लगने वाले लोग शयन करने लगे।।८२-८५।।

सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ। क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयाम्॥८६॥

कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः।
भुक्तवन्तौ च ताम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम्॥८७॥
परस्परं[१] सेवितौ च सुप्रीत्या श्वेतचामरैः।
क्षणं शयानौ सानन्दौ वसन्तौ च क्षणं पुनः॥८८॥

क्षणं केलिनियुक्तौ च रसभावसमन्वितौ। सुरताद्विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ॥८९॥

सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ॥९०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० तुलसीशङ्खचूडसंभोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

वे उत्तम वेष वाले सुख-संभोग करके निश्चेष्ट हो गये, तथापि अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। बीच में किसी क्षण वे सचेतन होकर आपस में रसमय दिव्य कथनोपकथन करते, अगले क्षण हंसते, कभी परस्परतः एक-दूसरे को ताम्बूल देते, प्रेम पूर्वक एक-दूसरे को श्वेत चामर झलते। कभी परमानन्द पूर्वक शयन करते तो कभी बैठ जाते। कभी रसपूर्ण सुरतक्रीड़ा में मग्न हो जाते थे। वे दोनों सुरतक्रीड़ा के विशेष पंडित थे, अतः इनमें से कोई भी इस क्रीड़ा से अलग ही नहीं होना चाहता था। ये दोनों ही इस क्रीड़ा में विजयी हो रहे थे। कोई भी पराजित ही नहीं हो रहा था!॥८६-९०॥

सप्तदश अध्याय समाप्त

अथाष्टादशोऽध्यायः

शंखचूड़ की युद्ध यात्रा, शिव-शंखचूड़ का परस्पर संवाद

श्रीनारायण उवाच

श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात्॥१॥
रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मङ्गलवारिणा।
धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम्॥२॥

१. क. ०रं वीजितौ च।

चकाराऽऽह्निकमावश्यमभीष्टगुरुवन्दनम् ।
दध्याज्यं मधु लाजांश्च सोऽपश्यद्वस्तु मङ्गलम्॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! तत्पश्चात् कृष्णपरायण दैत्यराज ने मन ही मन कृष्ण चिन्तन किया। वह ब्रह्ममुहूर्त्त में उस पुष्पशय्या से उठा तथा रात्रि के वस्त्रों को त्याग कर मंगल जल में स्नान किया और धुले वस्त्र धारण करके उज्ज्वल तिलक लगाया। तदनन्तर उसने अवश्य कर्त्तव्यरूप आह्निक एवं अभीष्ट देव की वन्दना किया था। साथ ही गुरु वन्दना भी किया। उसने इसके पश्चात् मांगलिक वस्तु दधि-घृत-लावा-मधु का दर्शन किया॥१-३॥

रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च काञ्चनम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद॥४॥

अमूल्यरत्नं यत्किंचिन्मुक्तामणिक्यहीरकम्। ददौ विप्राय गुरुवे यात्रामङ्गलहेतवे॥५॥

हे नारद! तदनन्तर उसने प्रतिदिन की ही तरह उत्तम रत्न, उत्तम मणि, स्वर्ण आदि भक्ति के साथ ब्राह्मणों को प्रदान किया। तत्पश्चात् अपनी यात्रा के मंगल-हेतु उसने अमूल्य रत्न, कुछ मुक्ता-माणिक्य-हीरे विप्रों तथा गुरु को प्रदान किया॥४-५॥

गजरत्नं [1]चाश्वरत्नं धेनुरत्नं मनोहरम्। ददौ सर्वं दरिद्राय विप्रार्थं मङ्गलाय च॥६॥
कोशागारसहस्रं च नगराणां त्रिलक्षकम्। ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥७॥
पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सुचन्द्रं दानवेषु च। पुत्रे समर्प्य भार्यां च राज्यं वै सर्वसंपदम्॥८॥

उस राजा ने गजरत्न, अश्वरत्न, धेनुरत्न को जो मनोहर लग रहे थे, वह सब दरिद्रों, ब्राह्मणगण को भी प्रदान किया। यह उसने यात्रा में मंगल हो, इसलिये दान किया। तदनन्तर शंखचूड़ ने एक सहस्र कोष खजाना, तीन लाख नगर एवं सौ कोटि ग्राम प्रसन्नता पूर्वक ब्राह्मणों को प्रसन्नता से प्रदान किया। उसने अपने पुत्र सुचन्द्र को समस्त दानवगण का राज्यत्व प्रदान किया। अपनी पत्नी, राज्य, सभी सम्पत्ति पुत्र को प्रदान किया॥६-८॥

प्रजानुचरसङ्घं च कोशौघं वाहनादिकम्। स्वयं संनाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह॥९॥

भृत्यद्वाराक्रमेणैव स चक्रे सैन्यसञ्चयम्।
अश्वानां च त्रिलक्षेण पञ्चलक्षेण हस्तिनाम्॥१०॥
रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः।
त्रिकोटिभिश्चर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः॥११॥

कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद। तस्यां सेनापतिश्चैको युद्धशास्त्रविशारदः॥१२॥

उसने प्रजा, अनुचरों, कोश, वाहनादि भी पुत्र को प्रदान किया। स्वयं कवचयुक्त होकर धनुष-

१. क. ०त्नं यानरत्नं म०।

बाण हाथों में ग्रहण किया। उसने भृत्यों को भेज कर समस्त सैन्य एकत्र कराया। उसने तीन लाख घोड़े, एक लाख उत्तम हाथी, १०००० रथ, तीन करोड़ धनुर्धारी, तीन कोटि ढाल-तलवार धारी, तीन कोटि शूलधारी सैन्य को एकत्र करके एक युद्धविशारद वीर को अपनी अगणित सैन्य का सेनापति नियुक्त किया।।९-१२।।

महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे। त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः॥१३॥

त्रिंशदक्षौहिणीवाद्यभाण्डौघं च चकार सः।
बहिर्बभूव शिबिरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन्॥१४॥

दानवराज ने महारथ नामक प्रसिद्ध रथी को तीन लाख अक्षौहिणी सैन्य का नायक बनाया। तदनन्तर तीन अक्षौहिणी सेना को रणवाद्य वादन में लगा कर उसने मन ही मन श्रीहरि का स्मरण किया तथा शिविर से बाहर निकला।।१३-१४।।

रत्नेन्द्रसारखचितं विमानं ह्यारुरोह सः। गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम्॥१५॥
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः। सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नामतः॥१६॥
कपिलस्य तपः स्थानं पुण्यक्षेत्रं च भारते। पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे॥१७॥
श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे। पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा।
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा॥१८॥

वह महान् उत्तम रत्नों से निर्मित विमान पर आरूढ़ हो गया और गुरुवर्ग को आगे करके उस पर बैठा और शंकर के सान्निध्य में जाने लगा। पुष्पभद्रा नदी तट पर वह उत्तम अक्षयवट था। यहां सिद्धक्षेत्र नामक सिद्धों का सिद्धाश्रम था। वह भारत का पुण्यक्षेत्र माना गया है, क्योंकि वह कपिल ऋषि की तपःस्थली है। उसकी पश्चिम सीमा पर पश्चिमसागर, पूर्व सीमा पर मलय पर्वत, दक्षिण सीमा पर श्री शैल, उत्तरी सीमा पर गन्धमादन पर्वत है। इसकी चौड़ाई पांच योजन तथा लम्बाई ५०० योजन है। यहां पुण्यमय जल वाली पुष्पभद्रा नदी प्रवाहित है।।१५-१८।।

लवणोदप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता।
शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारते च सुपुण्यदा॥१९॥

यह पुष्पभद्रा लवण-सागर की प्रिय पत्नी, सदा सौभाग्यसम्पन्ना, शुद्ध स्फटिक समुज्ज्वला तथा भारत में अतीव पुण्यप्रदा है।।१९।।

शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्।
गोमन्तं वामतः कृतवा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ॥२०॥

तत्र गत्वा शङ्खचूडो लुलोके चन्द्रशेखरम्। वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥२१॥

कृत्वा योगासने स्थित्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम्।
शुद्धस्फटिसङ्काशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा॥२२॥

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं जटाजालं च बिभ्रतम्।।२३।।
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च नागयज्ञोपवीतिनम्। मृत्युञ्जयं कालमृत्युं विश्वमृत्युकरं परम्।।२४।।

यह पुष्पभद्रा नदी हिमालय से निकल कर शरावती नदी के साथ संगम करती है। यह गोमान् पर्वत को बायीं ओर रख कर पश्चिम सागर से मिल जाती है। शंखचूड़ ने वहां पहुंच कर वटमूल पर बैठे कोटिसूर्यसमप्रभ चन्द्रशेखर को देखा। वे ब्रह्मतेज से दीप्त आनन्द के साथ मुस्कराते हुए योगासनासीन थे। उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र था। उन्होंने व्याघ्रचर्म धारण किया था। वे त्रिशूल कुठारधारी थे। उनका जटाभार तो तप्त स्वर्ण के समान था। इन मृत्युंजय के पांचों शिर में से प्रत्येक में ३-३ नेत्र थे। इनका यज्ञोपवीत नाग का था। ये प्रभु मृत्यु पर जय दिलाने वाले, मृत्यु के भी मृत्युरूप, विश्व के लिये मृत्युप्रदाता तथा सर्वापेक्षा परम (प्रधान) हैं।।२०-२४।।

भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्।।२५।।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्।
विश्वनाथं विश्वरूपं विश्वबीजं च विश्वजम्।।२६।।
विश्वंभरं विश्ववरं विश्वसंहारकारणम्। कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम्।।२७।।

ये शान्तमूर्त्ति, गौरीपति, परम मनोहर तथा भक्तों की मृत्यु का हरण करने वाले, तपःफल प्रदाता, सर्व सम्पत्ति प्रदाता, आशुतोष, प्रसन्नमुख तथा भक्तों पर अनुग्रहकारी हैं। ये विश्वनाथ-विश्वरूप-विश्वबीज तथा विश्वज हैं। ये प्रभु विश्वंभर, विश्ववर तथा विश्वसंहारक भी हैं। ये कारणों के भी कारण एवं नरकसागर से पार कराने वाले हैं।।२५-२७।।

ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्। अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः।।२८।।
सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः।
वामतो भद्रकाली च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम्।।२९।।

ये ज्ञानप्रद, ज्ञानबीज, ज्ञानानन्द, सनातन हैं। इन प्रभु को विमान पर बैठे दानवेश्वर ने देखा, तब वह विमान से उतरा और अपने साथ आये सभी लोगों सहित नतशिर होकर प्रभु शंकर को भक्तिभाव से प्रणाम किया। प्रभु के वाम भाग में भद्रकाली तथा सामने स्कन्द बैठे थे।।२८-२९।।

आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः।
उत्तस्थुर्दानवं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः।।३०।।
परस्परं च संभाषां ते चक्रुस्तत्र सांप्रतम्।
राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसंनिधौ।।३१।।
प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह।।३२।।

तब शंकर, काली एवं स्कन्द ने दानव को आशीर्वाद दिया। नन्दीश्वर आदि ने उत्थित होकर इस दानवेन्द्र का सम्मान किया। अब सभी लोग इस दैत्येन्द्र को वहां आया देख कर परस्परतः उसके

सम्बन्ध में वार्त्ता करने लगे। दैत्यराज ने भी सभी से वार्त्तालाप किया। जब वह शिव के पास बैठ गया, उस समय भगवान् महादेव ने प्रसन्नता के साथ उससे कहा–।।३०-३२।।

श्रीमहादेव उवाच

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्।
मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः।।३३।।
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः।
दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश।।३४।।
ताष्वेका च दनुः साध्वी सत्सौभाग्येन वर्धिता।
चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोज्ज्वलः।।३५।।
तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः।
तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः।।३६।।

श्रीमहादेव कहते हैं–जगद्विधाता ब्रह्मा धर्मदेव के पिता तथा धर्मविद् हैं। उनके परम धार्मिक वैष्णव पुत्र हैं मरीचि। मरीचि के धर्मात्मा पुत्र हैं कश्यप प्रजापति। दक्ष प्रजापति ने प्रीति पूर्वक तथा भक्तिभाव से अपनी १३ कन्या उनको प्रदान किया। इन तेरह पत्नियों में से हैं पतिव्रता दनु। इन साध्वी तथा सौभाग्यवती दनु ने कश्यप से ४० दानवों को पुत्ररूपेण उत्पन्न किया। वे अमित तेजस्वी पुत्र थे जिनमें विप्रचित्ति दानव महाबली, परम पराक्रमी था। इसका पुत्र था दम्भ। वह धर्मात्मा, जितेन्द्रिय तथा विष्णुभक्त था।।३३-३६।।

जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम्। शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः।।३७।।
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम्। पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वष्टसु धार्मिकः।।३८।।
अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं भ्रमं मेने च वैष्णवः।।३९।।

उस धर्मात्मा दम्भ ने अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश से पुष्कर तीर्थ आकर यहां एक लाख वर्ष पर्यन्त परमात्मा कृष्ण का मन्त्र जप किया था। उसके फलस्वरूप तुम कृष्णपरायण पुत्र उसके यहां जन्मे। पहले तुम पूर्व जन्म में गोलोक में प्रधान अष्टगोपों में से धार्मिक तथा कृष्ण पार्षद गोप सुदामा थे। तुम राधा के शाप के कारण इस भारतवर्ष में दानवराज हो गये। तुम भी परम वैष्णव हो। जो वैष्णव हैं, वे ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सब कुछ को भ्रमात्मक मानते हैं।।३७-३९।।

सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यैक्यं हरेरपि।
दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना।।४०।।

ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः। इन्द्रत्वं वा कुबेरत्वं[१] न मेने गणनासु च।।४१।।

१. मनुत्वं वेति पाठान्तरम्।

कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे।
देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप॥४२॥

वैष्णवगण हरिसेवा के अतिरिक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य तथा ऐक्य पर्यन्त मिलनें पर भी स्वीकार नहीं करते। वैष्णवगण के लिये तो इन्द्रत्व तथा कुबेरत्व प्राप्ति की इच्छा की तो बात ही क्या, उनके लिये तो ब्रह्मत्व-अमरत्व तक भी सामान्य तुच्छ पदार्थ होता है। हे राजन्! ऐसी स्थिति में जब तुम कृष्णभक्त परम वैष्णव हो, तब देवगण के भ्रमात्मक विषयों के प्रति क्यों उत्सुक हो। वह सब तो तुम्हारे लिये भ्रम ही है। हे राजन्! तुम देवगण को उनका राज्य दे दो तथा मुझे इस कार्य द्वारा प्रसन्न करो।।४०-४२।।

सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवाः सन्तु स्वके पदे।
अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः॥४३॥
यानि कानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
ज्ञातिद्रोहस्य पापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥४४॥

तुम सुख पूर्वक अपना राज्य करो। देवगण भी सुख के साथ अपने पद पर स्थित रहें। तुम सब देव-दानव कश्यप के वंशज हो। भाई के प्रति भाई का विरोध कैसा? जितने भी ब्रह्महत्या आदि महापातक समूह हैं, वे सब मिला कर भी ज्ञाति (गोत्र वालों) के विरोध की तुलना में १/१६ भाग भी पापपूर्ण नहीं हैं। (अर्थात् ज्ञातिविरोध तो ब्रह्महत्या से भी १६ गुना बड़ा पातक है)।।४३-४४।।

स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे। सर्वावस्थासु समता केषां याति च सर्वदा॥४५॥
ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सति। आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेदीश्वरेच्छया॥४६॥

ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्लोकस्य निश्चितम्।
करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्त्रष्टा सोऽपि क्रमेण च॥४७॥

हे राजेन्द्र! यदि इसमें अर्थात् राज्य वापस करने में तुम सम्पदा हानि का विचार रखते हो, तब विवेचना करो कि सभी दिन समान व्यतीत नहीं होते। प्राकृतिक प्रलय होने पर तो ब्रह्मा का भी तिरोभाव होता है। तदनन्तर वे ईश्वरेच्छा से पुनः आविर्भूत हो पाते हैं। तत्पश्चात् वे ज्ञानबल से समस्त सृष्टि करते हैं, तथापि ब्रह्मा की ज्ञान बुद्धि तथा स्मृति शक्ति पूर्वकृत तप के अधीन रहती है, तभी वे अपने ज्ञान द्वारा पुनः संसार की सृष्टि करने में सक्षम होते हैं।।४५-४७।।

परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रयः सदा।
सोऽपि त्रिभागस्त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः॥४८॥
एकभागः कलेः पूर्वे तद्ध्रासश्च क्रमेण च।
कलामात्रं कलेः शेषे कुह्वां चन्द्रकला यथा॥४९॥

सत्ययुग में धर्म सत्याश्रित रहता है। वह सत्ययुग में सदा परिपूर्ण रहता है। त्रेता में यह धर्म तीन भाग, द्वापर में दो भाग, कलि के प्रारम्भ में एक भाग रहता है। वह भी कलि वृद्धि के कारण क्रमशः ह्रास होते-होते अमावस्या के चन्द्रमा की तरह कलामात्र ही अवशिष्ट रह जाता है।।४८-४९।।

यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः।
दिने च यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम्।।५०।।
उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च।
प्रकाण्डतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेव सः।।५१।।
दिने प्रच्छन्नतां याति काले वै दुर्दिने घने। राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम्।।५२।।

(जगत् परिवर्तनशील है) सूर्य का जो ताप तेज ग्रीष्म में रहता है, वह शिशिर में नहीं होता। सूर्यताप दिवाकाल तथा मध्याह्न में जो रहता है, वह सायं-प्रातः नहीं रहता। सूर्य बालरूप से प्रातः उदित होते हैं। क्रमशः मध्याह्न आते-आते प्रचण्ड होकर बाद में पुनः मन्द होते अन्ततः अस्त हो जाते हैं। मेघाच्छन्न स्थिति वाले दुर्दिन में सूर्य बादलों से ढंक जाते हैं। राहुग्रस्त होकर कम्पायमान होते तथा पुनः राहु से मोक्ष होते ही प्रसन्नता पूर्वक उदीयमान हो जाते हैं।।५०-५२।।

परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च यादृशः। तादृशो न भवेन्नित्यं[1] क्षयं याति दिने दिने।।५३।।
पुनः स पुष्टतां याति पुरकुह्वा दिने दिने।
संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा।।५४।।
राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने निबिडे घने।
काले चन्द्रो भवेच्छुद्धो भ्रष्टश्रीः कालभेदके।।५५।।

ऐसे ही पूर्णिमा के चन्द्रमा जिस प्रकार परिपूर्णतम होते हैं, वैसे बाद में नहीं रहते। क्रमशः क्षयीभूत होते हैं। पुनः नित्यप्रति वर्द्धित होकर पुष्टता लाभ करते हैं। वे शुक्लपक्ष में पुनः शोभित होकर कृष्णपक्ष में यक्ष्मा रूपी क्षय को प्राप्त होते हैं तथा उनकी प्रभा नित्य मलिन होती जाती है। जब चन्द्रमा मेघ से आच्छन्न होते हैं, तब घनान्धकार के कारण मलिन हो जाते हैं। राहुग्रस्तता वाले दुर्दिन में भी मलिनताग्रस्त होकर मोक्ष होते ही वे पुनः शुद्ध ज्योत्स्नापूर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार विश्व में कालभेद से सबकी श्री का नाश होता है। काल के अनुसार चन्द्रमा शुद्ध होते हैं। काल के अनुसार उनकी प्रभा नष्ट होती है।।५३-५५।।

भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना।
कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा।।५६।।
काले जले निमग्ना सा तिरोभूता विपद्गता।
काले नश्यन्ति विश्वानि प्रभवन्त्येव कालतः।।५७।।

१. क. ०त्यं याति कुह्वामदृश्यताम्।

चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च। ईश्वरस्यैव समता कृष्णस्य परमात्मनः॥५८॥

अभी बलिराज श्रीभ्रष्ट होकर सुतल में निवास कर रहे हैं। पुनः वे ही इन्द्र होंगे। इस प्रकार अभी पृथिवी काल का प्रभाव होने से शस्य (अन्न) से पूर्ण है। सबकी आधार है। पुनः प्रलय जैसी विपदा के कारण काल प्रभाव से जल में डूब कर उसका तिरोभाव हो जाता है। सचराचरा सृष्टि तथा विश्व काल से उत्पन्न होकर काल में ही लयीभूत हो जाता है। केवल परमात्मा श्रीकृष्ण सर्वदा सनातनावस्था में स्थित रह जाते हैं।।५६-५८।।

अहं मृत्युञ्जयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम्।
अदृश्यं चापि पश्यामि वारं वारं पुनः पुनः॥५९॥
स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः।
स चाऽऽत्मा सर्वजीवश्च नानारूपधरः परः॥६०॥
करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम्।
कालं मृत्युं स जयति जन्म रोगं जरां भयम्॥६१॥
स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवे।
अहं कृतश्च संहर्ता वयं विषयिणो[1] यतः॥६२॥

कालाग्निरुद्रं संहारे नियुज्य विषये नृप। अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम्॥६३॥

इन कृष्णकृपा के मैंने मृत्युंजयावस्था लाभ किया तथा असंख्य प्राकृतिक लय को देखा है। पुनः-पुनः यही देखूंगा। वे ही नाना रूप धारण करके प्रकृति हैं। वे ही नाना रूपधारी पुरुष हैं। वे ही आत्मा तथा जीव भी हैं। जो मनुष्य निरन्तर उनके नाम-गुण का कीर्त्तन करते हैं, वे मृत्यु, काल, जन्म, रोग, जराभय पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। वे ही ब्रह्मा को स्रष्टा, विष्णु को पालक तथा मुझे संहर्त्ता नियुक्त करते हैं। हमें वे इन-इन विषयों में नियुक्त करते हैं। हम लोग विषयी मात्र हैं। हे राजन्! मैं संहार कार्य में कालाग्नि रुद्र को लगा कर स्वयं सदा श्रीकृष्ण के नाम-गुण का कीर्त्तन ही करता हूं (संहार कार्य कालाग्नि रुद्र करते हैं)।।५९-६३।।

तेन मृत्युञ्जयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः। मृत्युर्मत्तो भयाद्याति वैनतेयादिवोरगः॥६४॥
इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वज्ञः सर्वभावनः। विररामाथ शर्वश्च सभामध्ये च नारद॥६५॥
राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः। उवाच सुन्दरं देवं परं विनयपूर्वकम्॥६६॥

"तभी मैं मृत्युंजय हूं। तभी मैं ज्ञानबल से निर्भय हूं। किम्बहुना मृत्यु मुझे देख कर वैसे ही पलायन करती है, जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भाग जाते हैं।" हे नारद! ये सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वभावन महादेव सभा के बीच यह कहकर मौन हो गये। हे नारद! तब राजा उनकी बातों को सुन कर बारम्बार उनकी प्रशंसा करने लगा। वह शंकर से सविनय सुन्दर मधुर वाणी में कहने लगा-।।६४-६६।।

१. क. ०यिणाः कृताः।

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं नाथ सर्वं सत्यं च नानृतम्।
तथाऽपि किञ्चिद्यत्सत्यं श्रूयतां मन्निवेदनम्॥६७॥
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना त्रयम्।
गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः॥६८॥
मया समुद्धृतं सर्वमैश्वर्यं विक्रमेण च। सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं सोऽपि गदाधरः॥६९॥
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः।
शुम्भादयश्चासुरा वै कथं देवैर्निपातिताः॥७०॥

शंखचूड़ कहता है–हे प्रभो! आपका समस्त कथन सत्य है। इसमें तनिक मिथ्या नहीं है, तथापि मैं आपसे कुछ यथार्थ निवेदित करना चाहता हूं। श्रवण करिये। आपने मात्र इतना ही कहा है कि ज्ञातिद्रोह महापातक है। यही हो, तथापि किस कारण से बलि राजा का सर्वस्व लेकर उनको पाताल भेजा गया? हे ईश्वर! भगवान् गदाधर भी सुतल लोक से जिसे नहीं ले जा सकते, मैंने वह सब ऐश्वर्य अपने विक्रम से पा लिया। देवगण ने भ्राता सहित हिरण्याक्ष का वध क्यों किया? शुंभादि दैत्यों का वध देवगण ने क्यों कराया?॥६७-७०॥

पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः। बलेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभागिनः॥७१॥
क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं कृष्णस्य परमात्मनः। यदा ददाति यस्मै स तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा॥७२॥

पूर्वकाल में समुद्र मंथन के समय देवगण ने अमृत भक्षण कर लिया। परिश्रम तो हम लोगों ने भी किया था, तथापि सभी फलभागी देवता हो गये? समस्त सृष्टि तो भगवान् कृष्ण की क्रीड़ा सामग्री है। वे जिस समय जो भी ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वह उस समय उसी ऐश्वर्य का भागी हो जाता है।॥७१-७२॥

देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा। पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च॥७३॥
तत्राऽऽवयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं तव। समसंबन्धिनोर्बन्धोरीश्वरस्य महात्मनः॥७४॥
जायते महती लज्जा स्पर्धाऽस्माभिः सहाधुना।
ततोऽधिका च समरे कीर्तिहानिः पराजये॥७५॥

यह जो देवता-दानवों में कलह हो रहा है, यह सब मात्र कालजनित नैमित्तिक विवाद ही है। जय-पराजय तो कालक्रम से एक-दूसरे की होती ही रहती है। कभी हम विजयी होते हैं, कभी देवता! हमारे ऐसे विरोध में आपका आगमन तो निष्फल ही है। आपका देवता तथा दानवों से समान सम्बन्ध है। आप महात्मा तथा ईश्वर हैं। हम दानवों से वैर मानना तो आपके लिये लज्जा की बात है। इसी कारण आप हम दानवों से जो स्पर्द्धा कर रहे हैं, समयानुसार युद्ध में यदि आप पराजित हो गये, तब तो यह अधिक लज्जा तथा अपयश की बात होगी।॥७३-७५॥

शङ्खचूडवचः श्रुत्वा प्रहस्याऽऽह त्रिलोचनः। यथोचितं सुमधुरमत्युग्रं दानवेश्वरम्॥७६॥

शंखचूड़ का कथन सुनकर देवाधिदेव त्रिलोचन हंस पड़े। तब उन्होंने उस अत्यन्त उग्र दानवेश्वर से सुमधुर वाक्य कहा—॥७६॥

श्रीमहादेव उवाच

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः। का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये॥७७॥

युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च। हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनाऽऽत्मना नृप॥७८॥

हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता। त्रिपुरैः सह युद्धं च मया चापि पुरा कृतम्॥७९॥

सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह। सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम्॥८०॥

पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः।
ये ये हताश्च ते दैत्या नहि केऽपि त्वया समाः॥८१॥

का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह। सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरेरहो॥८२॥

देहि राज्यं च देवानां वाग्व्यये किं प्रयोजनम्।
युद्धं वा कुरु मत्सार्धमिति मे निश्चितं वचः॥८३॥

श्रीमहादेव कहते हैं—हे राजन्! तुम ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न हो। तुम्हारे साथ युद्ध में मुझे क्या लज्जा होगी तथा पराजित होने पर क्या अपयश होगा? हे राजन्! पूर्वकाल में हरि का युद्ध मधु-कैटभ से हुआ था। उन्होंने हिरण्यकशिपु से भी युद्ध किया। गदाधारी देव ने हिरण्याक्ष से भी युद्ध किया था। मैंने भी पूर्वकाल में त्रिपुरासुर से युद्ध किया था। पूर्व में सर्वेश्वरी तथा जगन्माता प्रकृति देवी का भी शुम्भादि दैत्यों के साथ आश्चर्यमय संग्राम हुआ था। विशेषतः इन संग्रामों में समस्त दैत्य निहत हो गये। उनमें से कोई भी तुम्हारे समान नहीं था। क्योंकि तुम तो परमात्मा कृष्ण के पार्षदों में प्रधान हो। अतः हे राजन्! देवगण जब श्रीहरि के शरणापन्न हो गये, तब मैं श्रीहरि द्वारा भेजा गया हूं। तुम्हारे समान महान् के साथ युद्ध करने में मुझे क्या लज्जा? मेरा यह निश्चित कथन है कि देवगण के राज्य को वापस करो। व्यर्थ वाक्विलास का क्या प्रयोजन?॥७७-८३॥

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद। उत्तस्थौ शङ्खचूडश्च स्वामात्यैः सह सत्वरः॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदना० तुलस्यु० शिवशङ्खचूडसंवादो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

हे नारद! यह कह कर भगवान् शंकर मौन हो गये। उस समय शीघ्रता पूर्वक शंखचूड़ एवं उसके आमात्यगण भी खड़े हो गये॥८४॥

॥अष्टादश अध्याय समाप्त॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

उभय सेना के बीच द्वैरथ युद्ध, कार्त्तिकेय की पराजय, काली से शंखचूड़ का युद्ध

श्रीनारायण उवाच

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान्। समारुरोह यानं च स्वामात्यैः सह सत्वरः॥१॥
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दशक्त्यर्दितास्तदा। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–तत्पश्चात् उस प्रतापी दानवराज ने नतशिर होकर शिव को प्रणाम किया तथा अपने आमात्यों को लेकर शीघ्र विमान पर आसीन होकर युद्धरत हो गया। उधर स्कन्द की शक्ति से दानव क्षुब्ध हो रहे थे। तब स्वर्ग से दुन्दुभिघोष एवं पुष्पवर्षा होने लगी।।१-२।।

स्कन्दस्योपरि तत्रैव समरे च भयङ्करे। स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महद्भुतमुल्बणम्॥३॥
दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिकं लयम्। राजा विमानमारुह्य शरवर्षं चकार ह॥४॥

यह पुष्पवर्षा स्कन्द पर हो रही थी, जो भयंकर युद्ध में उपस्थित थे। वहां स्कन्द द्वारा छेड़ा गया यह युद्ध देखने में महान् अद्भुत् तथा भयंकर था। यह युद्ध उस प्रकार दानवों का क्षय कर रहा था मानों प्राकृतिक प्रलय ही हो। तब दानवराज विमान पर बैठा हुआ बाणवर्षा करने लगा।।३-४।।

नृपस्य शरवृष्टिश्च घनवृष्टिर्यथा तथा। महान्घोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव ह॥५॥
देवाः प्रदुद्रुवुश्चान्ये सर्वे नन्दीश्वरादयः। एकाकी कार्तिकेयस्तु तस्थौ समरमूर्धनि॥६॥
पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा।
शश्वच्चकार वृष्टिं च दुर्वाह्यां च भयङ्करीम्॥७॥
नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रच्छन्नः शिवनन्दनः। नीरदेन च सान्द्रेण संछन्नो भास्करो यथा॥८॥

उस दानवराज की बाण वर्षा ने वहां मेघ की तरह महाघोर अन्धकार उत्पन्न किया। तदनन्तर अग्नि का प्राकट्य हो गया! अब वहां से नंदीश्वरादि शिवगण भाग गये। उस समर भूमि में अकेले स्कन्ददेव ही लोहा ले रहे थे। वहां सतत् पर्वत-नाग-शिला एवं वृक्षों की वर्षा होने लगी। जलपूर्ण मेघ से जैसे सूर्य परिलक्षित नहीं होते, तदनुरूप स्कन्ददेव दानवराज द्वारा की गई बाणवर्षा से आच्छन्न हो गये। वे परिलक्षित ही नहीं हो रहे थे।।५-८।।

धनुः स्कन्दस्य चिच्छेद दुर्वहं च भयङ्करम्।
बभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथघोटकान्॥९॥

दानवराज ने बाणों के प्रहार से स्कन्ददेव का भयानक एवं दुर्वह प्रचण्ड धनुष काट दिया। अपने बाणों से स्कन्द के दिव्य रथ को छिन्न-भिन्न करके अश्वों का वध भी कर दिया!।।९।।

मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः।
शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षोविभेदिनीम्॥१०॥
क्षणं मूर्च्छां च संप्राप्य चेतनामुपलभ्य सः।
गृहीत्वाऽन्यद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा॥११॥
रत्नेन्द्रसारखचितं यानमारुह्य चाग्निभूः। शस्त्रमस्त्रं गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम्॥१२॥

स्कन्दवाहन मयूर को भी अपने दिव्यास्त्रों से दानवराज ने जर्जर कर दिया। तदनन्तर स्कन्द का वक्ष विदीर्ण करने हेतु सूर्य के समान आभा वाली शक्ति का प्रहार स्कन्द के वक्ष पर किया। उसके आघात से स्कन्ददेव क्षणमात्र मूर्च्छित होने के पश्चात् पुनः चेतनायुक्त हो गये। तब उन्होंने पूर्वकाल में विष्णुप्रदत्त धनुष को उठाया। तदनन्तर स्कन्ददेव एक अन्य रथ पर बैठे, जो सारभूत उत्तम रत्नों द्वारा निर्मित था। उस पर आसीन होकर स्कन्द ने अस्त्र-शस्त्र से अत्यन्त महान् युद्ध किया॥१०-१२॥

सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः॥१३॥
आग्नेयं वारुणास्त्रेण वारयामास वै गुहः। रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया॥१४॥
सवाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम्।
चिक्षेप शक्तिमुल्काभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि॥१५॥

शिवपुत्र स्कन्द अत्यन्त कुपित हो गये थे। उन्होंने अपने दिव्यास्त्रों से दानवराज द्वारा छोड़े गये सर्प, पर्वत, वृक्ष तथा शिलाखण्डों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। स्कन्द ने शंखचूड़ द्वारा प्रक्षिप्त आग्नेयास्त्र का निवारण वारुणास्त्र से करके शंखचूड़ का रथ एवं धनुष सहसा छिन्न-भिन्न कर दिया। तदनन्तर स्कन्द ने दानवराज के सारथि, अश्व, उत्तम उज्ज्वल मुकुट को भी नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् उल्का के समान भीषण शक्ति का प्रयोग दानवराज के वक्ष पर किया॥१३-१५॥

मूर्च्छां संप्राप्य राजोपलभ्य वै चेतनां पुनः। आरुह्य वै यानमन्यं धनुर्जग्राह सत्वरः॥१६॥
चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः। गुहं चाऽऽच्छाद्य समरे शरजालेन नारद॥१७॥
जग्राह शक्तिमव्यर्थां शतसूर्यसमप्रभाम्।
प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोर्वै तेजसाऽऽवृताम्॥१८॥
चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके।
पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला॥१९॥

इस शक्ति प्रहार के कारण दानवराज मूर्च्छाग्रस्त हो गया। चेतना वापस आते ही दानवराज ने अन्य रथ पर बैठ कर एक-दूसरे धनुष को उठाया। हे नारद! इस मायावी दानव ने माया का प्रयोग किया और स्कन्द को बाणजाल से आच्छन्न कर दिया। तब उसने वह शक्ति उठाया जो कभी भी व्यर्थ न जाने वाली, सैकड़ों सूर्यों की प्रभा से युक्त, प्रलयाग्नि शिखा जैसी, विष्णुतेज से पूर्ण थी। शंखचूड़

ने क्रोधित होकर महावेग से यह शक्ति स्कन्द पर छोड़ा। यह शक्ति उज्ज्वल प्रज्ज्वलन्त अग्निशिखा जैसी कार्त्तिकेय पर गिरी।।१६-१९।।

मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः।
काली गृहीत्वा तं क्रीडे निनाय शिवसंनिधौ॥२०॥
शिवस्तं[1] दर्शनादेव जीवयामास लीलया।
ददौ बलमनन्तं च स चोत्तस्थौ प्रतापवान्॥२१॥

इस शक्ति के आघात से महाबली कार्त्तिकेय मूर्च्छाग्रस्त हो गये। तब देवी काली उनको गोद में उठा कर शिव के पास ले गईं। शिव ने कार्त्तिकेय को दृष्टिमात्र से जीवित कर दिया और प्रतापी महाबली स्कन्द तत्काल उठ कर बैठ गये।।२०-२१।।

शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः। दानवेन्द्रैः ससैन्यैश्च युद्धारम्भो बभूव ह॥२२॥

उस समय शिव ने शीघ्रता से देवगण को तथा अपने सैन्यबल को युद्धार्थ प्रेरित कर दिया। इस कारण पुनः दानवराज की सेना से घोर युद्ध होने लगा।।२२।।

स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा। भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः॥२३॥
दम्भेन[2] सह चन्द्रश्च चकार समरं परम्। कालेश्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः॥२४॥
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च। भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा॥२५॥
कलविङ्केन[3] वरुणश्चञ्चलेन समीरणः। बुधश्च घृतपुष्टेन[4] रक्ताक्षेण शनैश्चरः॥२६॥
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः। अश्विनौ वै दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः॥२७॥
धनुर्धरेण[5] धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मङ्गलः। शोभाकरेणैवेशानः पिठरेण च मन्मथः॥२८॥

उल्कामुखेन[6] धूम्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च।
काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना॥२९॥
विश्वे देवाः पलाशेन चाऽऽदित्या युयुधुः परम्।
एकादश महारुद्राश्चैकादश भयङ्करैः॥३०॥

महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह। नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह॥३१॥

स्वयं देवराज का युद्ध दानव वृषपर्वा से तथा सूर्य का विप्रचित्ति से होने लगा। चन्द्रमा का

१. क. ०स्तं चापि ज्ञानेन।
२. क. कुम्भे०।
३. क. ०विङ्कः कारणेन चञ्च।
४. क. ०तपृष्ठेन।
५. क. धुरंधरे०।
६. क. कोकामु०।

दम्भ के साथ, काल का कालेश्वर दैत्य के साथ, अग्नि का गोकर्ण के साथ, कुबेर का कालकेय के साथ, विश्वकर्मा का मय दानव के साथ, मृत्यु का भयंकर के साथ, यम का संहार दानव के साथ, वरुण का कालकिंकर के साथ, वायु का चंचल के साथ, बुध का घृतपृष्ठ के साथ एवं शनि का रक्ताक्ष के साथ संग्राम होने लगा। रत्नसार से जयन्त का, वर्चस्‌गण से वसुओं का, दीतिमान् से अश्विनीकुमारद्वय का, धूम्र से नलकूबर का, धनुर्द्धर से धर्म का, मंडूकाक्ष से मंगल का, शोभाकरण से ईशान का, पिठर से मन्मथ का युद्ध होने लगा। उल्कामुख, धूम्र, खंग, ध्वज, कांचीमुख, पिण्ड, धूम्र तथा नन्दी नामक दानव का विश्वेदेवा से युद्ध हो रहा था। उधर एकादश रुद्रों ने भी भयानक तथा बली ११ दानवों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उग्रदण्डा प्रभृति से महामारी का तथा अन्य दानवों से शिव के गणाधीश्वर नन्दीश्वर का युद्ध हो रहा था।।२३-३१।।

युयुधुश्च महायुद्धे प्रलये च भयङ्करे। वटमूले च शंभुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च।।३२।।
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने। रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह।।३३।।
उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः। शङ्करस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः।।३४।।

वह महायुद्ध तो प्रलय से भी भयंकर था। उस समय उसी वटवृक्ष के नीचे शंभु, काली तथा स्कन्ददेव विराजमान थे। हे मुनिवर! उस समय उभयपक्ष का सैन्य समूह सतत् युद्धरत था। उधर करोड़ों दानवों से घिरा शंखचूड़ रत्नाभूषण से भूषित रत्नसिंहासनस्थ था। वह ऐसा युद्ध था कि उसमें भगवान् शंकर के सभी योद्धा पराजित हो गये!।।३२-३४।।

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविक्षताः। चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ।।३५।।
बलं सुरगणानां वै वर्धयामास तेजसा। स्वयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह।।३६।।
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह। खर्परं पातयामास काली कमललोचना।।३७।।

पपौ रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतखर्परम्।
दशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं च वाजिनाम्।।३८।।

समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया। कबन्धानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने।।३९।।

वे देवता युद्ध में क्षतविक्षत होकर पलायन कर गये। तदनन्तर स्कन्ददेव ने स्वयं दानवों पर क्रोधित होकर देवगण को अभय प्रदान किया। उन्होंने अपने अप्रतिम तेज से देवगण तथा गणों का बलवर्धन किया और एकाकी ही युद्ध हेतु चल पड़े। उन्होंने स्वयं सौ अक्षौहिणी दानव सैन्य का वध किया। उधर कमलनयनी भगवती काली सौ खप्परों द्वारा दानवों का रक्तपान क्रोधित होकर कर रही थीं। भगवती काली ने खेल-खेल में दस लाख हाथियों तथा सौ लाख घोड़ों को हाथों से पकड़ कर मुख से निगल लिया। हे मुनिवर! उस समय सहस्रों सिर कटे धड़ युद्धक्षेत्र में थे, जिनको खाकर काली नाचने लगीं!।।३५-३९।।

स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविक्षताः। भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महाबलपराक्रमाः।।४०।।

वृषपर्वा[१] विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कनः।
स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च॥४१॥
काली जगाम समरमरक्षत्कार्तिकं शिवः। वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः॥४२॥

स्कन्ददेव के शरजाल से दानवगण क्षत-विक्षत होते जा रहे थे। वे महाबली-पराक्रमी दानवगण अब भयभीत होकर पलायित हो गये। यह देख कर स्कन्दकुमार से वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ, विकंकन प्रभृति महान् दानवों ने क्रमशः युद्ध किया। वहां शिव स्वयं कार्त्तिकेय स्कन्द की रक्षा में निरत थे तथा काली देवी युद्धरता थीं। देवी के साथ ही नन्दीश्वर आदि गणाधिप भी युद्धभूमि में युद्ध कर रहे थे।।४०-४२।।

सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः।
राज्यभाण्डाश्च[२] बहुशः शतकोटिर्बलाहकाः॥४३॥
सा च गत्वा च संग्रामं सिंहनादं चकार ह।
देव्या वै सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः॥४४॥
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः। हृष्टा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि॥४५॥
उग्रद्रंष्ट्रा चोग्रदण्डा[३] कौट्टरी च पपौ मधु।
योगिनीनां डाकिनीनां गणाः सुरगणादयः॥४६॥

समस्त देवगण, गन्धर्व, यक्ष-राक्षस, किन्नर, राज्य भाण्डगण, शतकोटि बलाहक भी युद्धरत थे। तभी देवी ने संग्रामभूमि में आगमन किया तथा ऐसा भयानक सिंहनाद किया जिसे सुन कर दानव मूर्च्छाग्रस्त हो गये। उस समय देवी कालिका पुनः-पुनः अमंगलकारी अट्टहास करती प्रसन्न अन्तःकरण से समरभूमि में माध्वीक पान करती नृत्य करती जा रही थीं। उस समय उग्रचण्डा, उग्रदंष्ट्रा, कौट्टरी, डाकिनी-योगिनियां, देवगण भी वहां मधुपान से उन्मत्त हो गये।।४३-४६।।

दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमाजिं समाययौ।
दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ॥४७॥
काली चिक्षेप चाऽऽग्नेयं प्रलयाग्निशिखोपमम्।
राजा निर्वापयामास वारुणेन स लीलया॥४८॥
चिक्षेप वारुणं सा च तत्तीव्रं महदद्भुतम्।
गन्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च[४] लीलया॥४९॥

१. क. ०त्तिर्लिकुम्भश्च वि०।
२. क. वाद्यभाण्डश्च बहुशः शातशो मधुवाह०।
३. क. ०ण्डा कोटरी।
४. क. ०न्द्रः प्रतापवान्।

माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली विह्निशिखोपमम्।
राजा जघान तच्छीघ्रं वैष्णवेन च लीलया[1]॥५०॥

भगवती काली को समरांगण में उपस्थित देख कर वहां शंखचूड़ भी त्वरा पूर्वक आया। उसने आकर अपनी उपस्थिति से दानवों को अभय प्रदान किया। उस समय देवी काली ने प्रलयाग्नि शिखातुल्य आग्नेयास्त्र छोड़ा, परन्तु शंखचूड़ ने खेल-खेल में पार्जन्यास्त्र द्वारा आग्नेयास्त्र का निवारण कर दिया। यह देख कर देवी ने अत्यन्त भयानक उग्ररूप वारुणास्त्र को छोड़ा, तथापि शंखचूड़ ने क्रीड़ामात्र से उसे भी गान्धर्वास्त्र से शान्त कर दिया। पुनः काली ने अग्निशिखासमप्रभ माहेश्वरास्त्र का प्रयोग किया, उसे भी शंखचूड़ ने खेल-खेल में वैष्णवास्त्र से शान्त कर दिया!॥४७-५०॥

नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावरुह्य रथादहो॥५१॥
ऊर्ध्वं जगाम तच्छस्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम्। पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या वै दण्डवद्भुवि।
ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम्॥५२॥
ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वाणं च चकार ह।
चिक्षेपातीव दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम्॥५३॥
राजा दिव्यास्त्रजालेन निर्वाणं च चकार ह।
देवी चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम्॥५४॥
राजा तीक्ष्णास्त्रजालेन शतखण्डं चकार ह। जग्राह मन्त्रपूर्वं च देवी पाशुपतं रुषा॥५५॥

तदनन्तर देवी ने अभिमन्त्रित नारायणास्त्र का प्रयोग करके शंखचूड़ पर छोड़ा, तथापि राजा ने उसे देख कर तत्काल रथ से उतरने के पश्चात् अस्त्र को करबद्ध साष्टांग प्रणाम किया। इससे वह अस्त्र शान्त होकर ऊर्ध्व में चला गया। अब देवी ने यत्नतः मन्त्रों द्वारा ब्रह्मास्त्र का संधान दानवराज पर किया, तथापि दानवराज ने भी ब्रह्मास्त्र प्रयोग द्वारा उसे शान्त कर दिया! इसे व्यर्थ जाते देख कर देवी ने मन्त्रों से अभिमन्त्रित अन्य दिव्यास्त्र को छोड़ा, तथापि राजा ने अपने दिव्यास्त्रों से उसे पूर्णतः शान्त कर दिया। तब देवी ने अन्ततः एक योजन लम्बाई वाली शक्ति का प्रयोग राजा के विरुद्ध पूर्ण यत्न के साथ किया था, तथापि राजा ने अपने तीक्ष्ण-नुकीले अस्त्रों द्वारा उसे शतखण्ड में विभक्त कर दिया। तब देवी ने रुष्ट होकर मन्त्र से अभिमंत्रित पाशुपतास्त्र उठाया॥५१-५५॥

निक्षेप्तुं सा निषिद्धा च वाग्बभूवाशरीरिणी।
मृत्युः[2] पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः॥५६॥
यावदस्त्येव कण्ठेऽस्य कवचं हि हरेरिति।
यावत्सतीत्वमस्तीह सत्याश्च नृपयोषितः॥५७॥

---
१. वैष्णवेन मलीयसेति वा पाठः।
२. क. ०त्युः शस्त्रशतैर्नास्ति नृ०।

तावदस्य जरा मृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वरः।
इत्याकर्ण्य महाकाली न तच्चिक्षेप सा सती॥५८॥

तथापि देवी को आकाशवाणी द्वारा यह अस्त्र छोड़ने से रोक दिया गया। उस अशरीरी वाणी ने कहा—"यह राजा महात्मा है। पाशुपतास्त्र से इसका वध संभव नहीं है। जब तक इसके कण्ठ में श्रीहरि का कवच लटका है तथा जब तक इसकी पतिव्रता पत्नी अपने सतीत्व से इसकी रक्षा करेगी, इस पर जरा-मृत्यु का प्रभाव ही नहीं होगा। यह ब्रह्मदेव का वर है। यह सुनकर महासती महाकाली ने पाशुपतास्त्र नहीं छोड़ा॥५६-५८॥

शतलक्षं दानवानामग्रहील्लीलया क्रुधा। अत्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयङ्करी॥५९॥

तथापि अत्यन्त क्रोध में भरी महाकाली ने सौ लक्ष दानवों का तत्काल भक्षण कर लिया। तदनन्तर वे भयंकरी काली वेग पूर्वक शंखचूड़ की ओर दौड़ी पड़ी तथा उसे निगलने को उद्यत हो गईं॥५९॥

दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः।
खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं परम्॥६०॥

दिव्यास्त्रैर्दानवेन्द्रोऽयं शतखण्डं चकार सः। पुनरत्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम्॥६१॥

तथापि उस दैत्यराज ने अपने तीक्ष्ण दिव्यास्त्रों द्वारा देवी को रोक दिया। उस समय देवी ने ग्रीष्मकालीन सूर्यप्रभा की तरह दीप्त अपना खंग राजा पर फेंका, तथापि दानवराज ने उसे भी अपने दिव्यास्त्रों के प्रहार से सौ टुकड़ों में विभक्त कर दिया! तब महादेवी दानवराज की ओर उसके भक्षणार्थ तीव्र गति से दौड़ पड़ीं॥६०-६१॥

सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः[१]। निवारयामास च तां सर्वसिद्धेश्वरो वरः॥६२॥
वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयङ्करी। बभञ्जाथ रथं तस्य चाहनत्सारथिं सती॥६३॥

सा च शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम्।
वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडं च लीलया॥६४॥

मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः। बभ्राम व्यथया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप ह॥६५॥

यह देख कर सर्वसिद्धेश्वर शंखचूड़ ने अपने आकार की अत्यन्त वृद्धि किया और इस सर्वसिद्धेश्वर वर के प्रभाव से देवी का निवारण कर दिया, तथापि क्रोधयुता भयंकरी सती काली ने वेग से मुष्टिप्रहार किया, जिससे राजा का रथ एवं सारथि छिन्न-भिन्न हो गये। जैसे ही इसके पश्चात् देवी ने प्रलयाग्निशिखा के समान अपना त्रिशूल राजा पर फेंका तभी उस राजा शंखचूड़ ने अनायास वह त्रिशूल बायें हाथ से पकड़ा और अपने पास रख लिया। यह देख कर देवी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस पर

१. निवारयामास च तां सर्वसिद्धेश्वरो वरः इति क्वचित् पाठः।

मुष्टिप्रहार किया। इससे क्षणकालार्थ व्यथा के कारण चक्कर खाते वह दैत्य भूपतित हो गया। वह मूर्च्छावस्था में हो गया।।६२-६५।।

क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान्।
न चक्रे बाहुयुद्धं स देव्या सह ननाम ताम्।।६६।।
देव्याश्चास्त्रं च चिच्छेद चाग्रहीत्स्वेन तेजसा।
नास्त्रं चिक्षेप तां भक्त्या मातृबुद्ध्या च वैष्णवः।।६७।।

कुछ क्षणों के पश्चात् शंखचूड़ संज्ञालाभ करके उठा। अब दानवेश्वर ने देवी के साथ बाहुयुद्ध नहीं किया तथा भगवती को प्रणाम करके अपने बल से देवी के सभी अस्त्रों को भग्न कर दिया और देवी को पकड़ लिया। लेकिन उनमें भक्ति पूर्वक मातृभावना करके भगवती के विरुद्ध अपने अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया!।।६६-६७।।

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः। ऊर्ध्वं च प्रेरयामास महावेगेन कोपतः।।६८।।

ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान्।
निपत्य च समुत्तस्थौ स नत्वा भद्रकालिकाम्।।६९।।

तभी देवी ने अत्यन्त रोष के साथ शंखचूड़ को चारों ओर घुमा कर आकाश में वेग पूर्वक फेंक दिया, तथापि अमित प्रतापी शंखचूड़ वेग से नीचे गिरने पर पुनः उठा तथा उन्हें भक्ति के साथ प्रणाम किया।।६८-६९।।

रत्नेन्द्रसारखचितं विमानाग्र्यं मनोहरम्। आरुरोह रथं हृष्टो न विश्रान्तो महारणे।।७०।।

तत्पश्चात् दानवराज ने उठ कर भद्रकाली को प्रणाम किया तथा आनन्द पूर्वक रत्ननिर्मित अन्य मनोहर विमान पर बैठा। उसे समरजनित थकान तनिक नहीं थी।।७०।।

क्षतजं दानवानां च मासं च विपुलं क्रुधा।
पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली ययौ सा शङ्करान्तिकम्।।७१।।

उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम्। श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम्।।७२।।
लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना। उद्वृत्तं भूभृता सार्धं तदन्यं भुक्तमीश्वरम्।।७३।।
संग्रामे दानवेन्द्रं च हन्तुं पाशुपतेन वै। अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी।।७४।।
राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः। न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम्।।७५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० कालीशङ्खचूडयुद्धो नाम एकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

उस समय भद्रकाली क्षुधित होकर दानवों का विपुल मांस भोजन तथा रुधिर पान कर रही थीं। तदनन्तर वे शिव के पास आईं तथा उन्होंने समस्त युद्ध वृत्तान्त उनसे कहा। महादेव भी दानवों

का अद्भुत् वृत्तान्त सुनकर हंस पड़े। तब देवी ने पुनः कहा–"हे नाथ! अब समरक्षेत्र में राजा शंखचूड़ के पास मात्र एक लाख दानव बचे हैं। शेष का मैं भोजन कर गई। जब मैं दानवराज को पाशुपतास्त्र से निहत करना चाहती थी तभी आकाशवाणी सुना "राजा तुम्हारा बध्य नहीं है।" अतः मैंने उसके विरुद्ध पाशुपतास्त्र नहीं छोड़ा। मैंने देखा कि वह दानवराज महाज्ञानी–महाबली–पराक्रमी है। उसने मेरे ऊपर इसके पश्चात् अस्त्र नहीं छोड़ा। केवल मेरे द्वारा छोड़े गये अस्त्रों को ही उसने छिन्न-भिन्न किया।।७१-७५।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ विंशोऽध्यायः

विष्णु द्वारा वृद्ध ब्राह्मण के वेश में शंखचूड़ का कवच लेना, महादेव द्वारा शंखचूड़ के साथ युद्ध करना तथा उसका वध करना, शंखचूड़ के कंकाल से शंखोत्पत्ति

श्रीनारायण उवाच

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः। ययौ स्वयं च समरं स्वगणैः सह नारद॥१॥
शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च। ननाम परया भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि॥२॥
तं प्रणम्य च वेगेन विमानं ह्यारुरोह सः। तूर्णं चकार संनाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम्॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! तदनन्तर तत्त्वज्ञान विशारद भगवान् शिव भी युद्ध का संवाद पाकर स्वयं अपने गणों के साथ रणभूमि गये। जैसे ही शंखचूड़ ने शंकर को देखा, वह विमान से उतरा तथा भक्ति के साथ भूमि पर लेट कर उसने शिव को साष्टांग प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह शीघ्रता से पुनः विमान पर बैठा और उसने अपने सैनिकों को सन्नद्ध होने का आदेश देकर अपना धनुष उठाया जो दुर्वह था।।१-३।।

शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दं बभूव ह। न वै बभूवतुर्ब्रह्मन्तयोर्जयपराजयौ॥४॥
न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः। रथस्थः शङ्खचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः॥५॥

शिव तथा दानव के बीच वह युद्ध वर्षपर्यन्त चला, परन्तु उसमें जय-पराजय का निर्णय ही नहीं हो सका। पहले भगवान् शिव यद्यपि अस्त्र-शस्त्र से सन्नद्ध थे, तथापि उनके अस्त्र-शस्त्र समाप्त

हो गये। यह देख कर शंखचूड़ ने अपने अस्त्र-शस्त्र को पृथिवी पर रखा तथा खड़ा हो गया। तदनन्तर शंखचूड़ अपने रथ पर बैठा तथा वृषध्वज देव अपने वृष पर बैठे।।४-५।।

दानवानां च शतकमुद्वृत्तं च बभूव ह। रणे ये ये मृताः शंभोर्जीवयामास तान्विभुः।।६।।
ततो विष्णुर्महामायो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्। आगत्य च रणस्थानमवोचद्दानवेश्वरम्।।७।।

उस युद्ध में इतने दानव मरे कि मात्र १०० ही जीवित बच सके। उधर शिव ने अपने मृत सैन्यबल को जीवित कर लिया। इतने में महामायी प्रभु विष्णु ने रणभूमि में वृद्ध ब्राह्मण वेष में आकर दानवराज से कहा-।।६-७।।

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय साम्प्रतम्।
त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वाञ्छितम्।।८।।
निराहाराय वृद्धाय तृषितायाऽऽतुराय च।
पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति।।९।।

वृद्ध ब्राह्मण कहते हैं-हे राजेन्द्र! आप कृपा पूर्वक मुझ वृद्ध विप्र को भिक्षा प्रदान करिये। आप तो याचक की मनोकामनानुरूप उसे समस्त सम्पदा प्रदान कर देते हैं। मैं वृद्ध, आतुर, दीर्घकाल से अनाहारी, प्यासा हूं। सर्वप्रथम मुझे मेरी याचनानुरूप वस्तु प्रदान करने की सत्य प्रतिज्ञा करिये। तब मैं अपनी वांछित वस्तु मांगूंगा।।८-९।।

ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः। कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाच स मायया।।१०।।
तच्छ्रुत्वा दानवश्रेष्ठो ददौ कवचमुत्तमम्। गृहीत्वा कवचं दिव्यं जगाम हरिरेव च।।११।।

राजा ने प्रसन्न मुद्रा में ब्राह्मण से "ॐ" कह कर वांछित प्रदान करने का प्रण किया। तदनन्तर विष्णु ने अपनी माया का प्रसार करते कहा-"मैं आपका कवच लेना चाहता हूं।" दानवश्रेष्ठ ने ये सुनते ही तत्काल ब्राह्मण को अपना कवच दे दिया (जो उसने कंठ में पहना था)। उस दिव्य कवच को लेने के पश्चात् विष्णु स्वस्थान चले गये।।१०-११।।

शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति। गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह।।१२।।
अथ शंभुर्हरेः शूलं दानवार्थं समग्रहीत्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम्।।१३।।
नारायणाधिष्ठिताग्रं ब्रह्माधिष्ठितमध्यमम्। शिवाधिष्ठितमूलं च कालाधिष्ठितधारकम्।।१४।।

तभी विष्णु ने शंखचूड़ का रूप स्वयं धारण किया तथा तुलसी के पास जाकर उसे माया से मुग्ध करके उसमें अपना वीर्य स्थापित कर दिया। इसी समय उचित अवसर जान कर शंभु ने दानववधार्थ विष्णुप्रदत्त त्रिशूल का संधान किया। वह त्रिशूल ग्रीष्म ऋतु में उदित मध्याह्न सूर्य के समान समुज्ज्वल था।।१२-१४।

किरणावलिसंयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम्। दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम्॥१५॥

शूल के अग्रभाग में स्वयं नारायण, मध्य में ब्रह्मा तथा मूलभाग में शिव स्थित थे। उसकी तीक्ष्णता (धार) में साक्षात् काल स्थित था। उसकी किरणें तो प्रलयाग्नि की शिखा के समान थीं। वह दुर्निवार, दुर्धर्ष, वैरीघातक था। वह छोड़ने पर कदापि व्यर्थ नहीं होता है।।१५।।

तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रविघातकम्। शिवकेशवयोरन्यद्दुर्वहं च भयङ्करम्॥१६॥
धनुःसहस्त्रं दैर्घ्येण विस्तृत्या शतहस्तकम्। सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम्॥१७॥

शंकर का वह त्रिशूल चक्र सुदर्शनवत् तेजवाला था। इसे शिव तथा केशव के अतिरिक्त अन्य कोई उठा ही नहीं सकता था। यह शूल नित्य है। किसी द्वारा निर्मित नहीं है। अन्य हेतु भयंकर तथा दुर्वह है। इसकी लंबाई १००० धनुष तथा चौड़ाई १०० हाथ थी। यह सजीव ब्रह्मरूप था तथा इसका निर्माता ही कोई नहीं था। इसका रूप अपरिवर्त्तनीय था।।१६-१७।।

संहर्तुं सर्वविध्यण्डमेकदा[1] दैवलीलया। चिक्षेप घूर्णनं कृत्वा शङ्खचूडे च नारद॥१८॥
राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्।
ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया॥१९॥
शूलं च भ्रमणं कृत्वा न्यपतद्दानवोपरि। चकार भस्मसात्तं च सरथं चैव लीलया॥२०॥

हे नारद! यह त्रिशूल अखिल ब्रह्माण्ड संहारकारी था। भगवान् शिव ने उसे लीलामात्र से उठा कर घुमाया तथा शंखचूड़ पर उसका प्रहार किया। उससे पहले ही राजा ने अपने बुद्धिबल से सब जान कर धनुष-बाण त्याग दिया था और वह योगासनासीन होकर अत्यन्त भक्ति के साथ श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करने लगा। तत्पश्चात् वह त्रिशूल भ्रमित (चक्कर खाते) होते-होते शंखचूड़ पर गिरा तथा शंखचूड़ को तथा उसके रथ को लीला पूर्वक दग्ध कर दिया।।१८-२०।।

राजा धृत्वा दिव्यरूपं बालकं गोपवेषकम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥२१॥
नानारत्नसुभूषाढ्यं गोपकोटिभिरावृतम्। गोलोकादागतं यानमारुह्य तत्पुरं ययौ॥२२॥

तत्पश्चात् राजा दिव्य गोप वेषधारी हो गया। वह दो भुजा वाला, मुरलीधारी, रत्नाभूषण भूषित, नाना रत्न से सज्जित और करोड़ों गोप लोगों से घिरा था। वह गोलोक से समागत यान पर आरूढ़ होकर गोलोक चला गया।।२१-२२।।

गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने। भक्त्या तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने मुने॥२३॥
सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ। तदा च चक्रतुः क्रोडे स्नेहेन परिसंप्लुतौ॥२४॥

हे मुनिवर! वहां से वह गोलोकस्थ वृन्दावन के रासमण्डल में गया। उसने भक्तिभाव से नतशिर होकर राधा-माधव के चरणारविन्द में साष्टांग प्रणाम किया। हे मुनि! सुदामा को देखते ही

---

१. क. ०ण्डमलं च स्वाव०।

राधा-माधव दोनों अत्यन्त हर्षित हो उठे। स्नेहार्द्र प्रभु ने अब उस गोप बालक को गोद में उठा लिया।।२३-२४।।

अथ शूलश्च वेगेन प्रययौ शूलिनः करम्। शङ्करस्तेन शूलेन शूलपाणिर्बभूव सः॥२५॥

स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालकम्।
प्रेम्णा च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे[1]॥२६॥

अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह। नानाप्रकाररूपा च श्रेष्ठा पूता सुरार्चने॥२७॥

इधर वह शूल शंखचूड़ का नाश करके पुनः शिव के पास वापस आ गया। शंकर उस शूल को प्राप्त करने के ही कारण शूलपाणि कहे गये। तत्पश्चात् शूलपाणि ने प्रेम पूर्वक अपने त्रिशूल से उठा कर शंखचूड़ की अस्थियों को लवण-सागर में फेंका। तदनन्तर शंखचूड़ की अस्थि के ढेर से प्रशस्त नाना प्रकार के शंख उत्पन्न हो गये। इन शंख का जल अत्यन्त पवित्र तथा देवगण को रुचिकर लगता है। इसे पूजाकार्य में उत्तम माना गया है।।२५-२७।।

प्रशस्तं शङ्खतोयं च देवानां प्रीतिदं परम्। तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शङ्करं विना॥२८॥

शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीश्च सुस्थिरा।
सुस्नातः सर्वतीर्थेषुः यः स्नातः शङ्खवारिणा॥२९॥

शङ्खो हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः। तत्रैव सततं लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम्॥३०॥

यह जल शिव को नहीं चढ़ाया जाता। अन्य सभी देवगण हेतु यह तीर्थ जलवत् पावन है। जहां शंखध्वनि की जाती है, वहां लक्ष्मी स्थिर रहती हैं। शंख जल से स्नान करने वाला व्यक्ति सर्वतीर्थ स्नानफल लाभ करता है। शंख में नित्य श्रीहरि अधिष्ठित रहते हैं। किम्बहुना, जहां शंख है, वहां हरि विद्यमान रहते हैं। वहां नित्य लक्ष्मी का भी निवास रहता है। वहां कोई अमंगल नहीं होता, तथापि शूद्र तथा नारी द्वारा बजाये गये शंख की ध्वनि सुन कर लक्ष्मी भयभीत होकर वहां से अन्यत्र चली जाती है।।२८-३०।।

स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिःशूद्राणां च विशेषतः।
भीता रुष्टा याति लक्ष्मीः स्थलमन्यत्स्थलात्ततः॥३१॥

शिवश्च दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम सः। प्रहृष्टो वृषमारुह्य स्वगणैश्च समावृतः॥३२॥
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः॥३३॥
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम्। प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनीन्द्रप्रवरादयः॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० शङ्खचूडवधे शङ्खप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

---

१. क. सादरम्।

अब शिव दानववध करके प्रसन्न अन्तःकरण से वृष पर बैठे तथा गणों के साथ शिवलोक चले गये। देवगण ने परम आनन्द के साथ अपना-अपना राज्य लाभ किया। इस समय स्वर्ग से देवदुन्दुभि बजने लगी। वहां गन्धर्व-किन्नर गायन करने लगे। शिव पर सतत् पुष्पवर्षा होने लगी। सभी देवता एवं मुनिगण शिव की प्रशंसा करने लगे।।३१-३४।।

विंश अध्याय समाप्त

❖❖❖

अथैकविंशोऽध्यायः

तुलसी का पातिव्रत्य भंग तथा शालिग्राम के लक्षण एवं महत्त्व

नारद उवाच

नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह।
तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—भगवान् विष्णु ने तुलसी के गर्भ में किस प्रकार वीर्यस्थापना किया? कृपया कहिये।।१।।

श्रीनारायण उवाच

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेन च। शङ्खचूडस्य रूपेण रेमे तद्रामया सह।।२।।
शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा मायया हरिः। पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम्।।३।।
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसंनिधौ। जयशब्दरवद्वारा बोधयामास सुन्दरीम्।।४।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—भगवान् विष्णु शंखचूड़ का कवच लेकर देवगण के कार्यसाधनार्थ शंखचूड़ का रूप धारण करके तुलसी के गृह के द्वार पर आकर तुलसी को प्रबोधित करने के उद्देश्य से द्वार पर दुन्दुभि वादन कराया।।२-४।।

तच्छ्रुत्वा सा च साध्वी च परमानन्दसंयुता। राजमार्गगवाक्षेण ददर्श परमादरात्।।५।।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मङ्गलम्।
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिकेभ्यो धनं ददौ।।६।।

यह शब्द सुन कर साध्वी तुलसी परमानन्द मग्न हो गई। वह अत्यन्त आदर से गवाक्ष (खिड़की) से राजमार्ग देखने लगी। उसने ब्राह्मणों को दान देकर उनसे मंगलध्वनि कराया। रानी ने बन्दीगण (भाट), भिक्षुओं तथा आशीर्वचन कहने वाले ब्राह्मणों को प्रचुर धन प्रदान किया।।५-६।।

अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ। अमूल्यरत्नसंक्लृप्तं सुन्दरं सुमनोहरम्।।७।।

दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं शान्तं कान्ता मुदाऽन्विता।
तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च॥८॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी। ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम्॥९॥
अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफलाः क्रियाः।
रणागतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे॥१०॥

अब रथ से उतर कर नारायण देवी के भवन गये। वह भवन अमूल्य रत्नजटित तथा सुन्दर-मनोहर था। उस समय तुलसी ने सामने आये शान्तमूर्त्ति पति को देख कर उनका चरण प्रक्षालन तथा प्रणाम किया। अब रुदन करने लगी। इसके पश्चात् कामुक तुलसी ने नारायण को रम्य रत्नसिंहासनासीन कराया। उसने कर्पूर आदि से सुवासित उत्तम ताम्बूल नारायण को देकर मन ही मन विचार किया कि आज मेरा जन्म सफल है। सभी कार्य भी सफल हो गये। क्योंकि मैंने अपने प्राणेश्वर को युद्ध से वापस घर आया देख लिया।।७-१०।।

सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकाञ्चिता।
प्रपच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा॥११॥

इसके पश्चात् कामभावनायुक्त पुलकित होकर कटाक्षपात करके मुस्कराती तुलसी ने मधुर वाणी में अपने पति से रणभूमि का वृत्तान्त पूछा।।११।।

तुलस्युवाच

असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो। कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे॥१२॥

तुलसी कहती हैं—हे प्रभो! आप तो असंख्य विश्व के संहारक शिव से युद्ध करने गये थे। हे कृपानिधि! आपने उन पर विजय किस प्रकार प्राप्त किया, यह कहिये।।१२।।

तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः। शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचानृतं वचः॥१३॥

तुलसी का वचन सुन कर शंखचूड़ रूपधारी कमलापति ने हंसते हुए तुलसी से मिथ्या वचन कहा–।।१३।।

श्रीहरिरुवाच

आवयोः समरं कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह। नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि॥१४॥
प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः। देवानामधिकारश्च प्रदत्तो[1] धातुराज्ञया॥१५॥
मयाऽऽगतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः।
इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह॥१६॥

---

१. ख. ०तो ब्रह्मणा पुरा।

रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद। सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात्।
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच ह॥१७॥

श्रीहरि कहते हैं—हे प्रिये! मेरा तथा भगवान् शिव के बीच युद्ध एक वर्ष पर्यन्त चला। उसमें समस्त दैत्य नष्ट हो गये। हे कामिनी! स्वयं ब्रह्मा ने रणभूमि में आकर हम दोनों के बीच प्रेम की स्थापना कर दिया। मैंने उनकी आज्ञा से देवगण को उनका अधिकार दे दिया। शिव तब शिवलोक चले गये तथा मैं अपने गृह आ गया। यह कहकर जगन्नाथ विष्णु शयन करने लगे। हे नारद! तब रामपति ने उस रमणी के साथ रमण किया। तब साध्वी तुलसी को सुख-संभोग तथा आकर्षण में जब कुछ व्यतिक्रम का अनुभव हुआ, तब वह मन ही मन वितर्क करते हुए कहने लगी—॥१४-१७॥

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया।
दूरीकृतं मत्सतीत्वमथवा त्वां शपामहे॥१८॥

तुलसी कहती हैं—हे मायापति! तुम कौन हो? तुमने मायाबल से मेरा उपभोग करके मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया। तुम चाहे जो भी हो, मैं तुमको शाप दूंगी॥१८॥

तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च। दधार लीलया ब्रह्मन्स्वां मूर्तिं सुमनोहराम्॥१९॥
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम्। नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्॥२०॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससा॥२१॥

हे ब्रह्मन्! तुलसी का यह कथन सुन कर हरि ने शापभय से लीला द्वारा अपनी मनोहर मूर्त्ति धारण कर लिया। देवी तुलसी देखती हैं कि उनके समक्ष देवाधिदेव सनातन प्रभु स्थित हैं। वे प्रभु नवीन जलधर ऐसे श्यामवर्ण थे। उनके दोनों नेत्र शरत्काल में खिले कमल ऐसे मनोहर थे। उनके मुखमण्डल पर किंचित् हास्यरेखा थी। वे प्रसन्न, रत्नाभूषणों से भूषित तथा पीतवर्ण वस्त्रों से शोभायमान थे। उनका लावण्य करोड़ों कामदेव के समान था॥१९-२१॥

तं दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूर्च्छां संप्राप लीलया।
पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह॥२२॥

इन प्रभु को देख कर कामिनी तुलसी कामावेश से मूर्च्छित हो गई। तदनन्तर संज्ञा लाभ होने पर पुनः विष्णु से कहने लगी—॥२२॥

तुलस्युवाच

हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च। छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः॥२३॥
पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो।
तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भुवि देव भवाधुना॥२४॥

ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वां ते भ्रान्ता न संशयः।
भक्तो विनाऽपराधेन परार्थे च कथं हतः॥२५॥
सर्वात्मा त्वं च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम्।
अतस्त्वमेकजनुषि स्वमेव विस्मरिष्यसि॥२६॥

तुलसी कहती हैं–हे नाथ! आपमें दया नहीं है। आप पाषाण हृदय वाले हैं। आपने छल से मेरा धर्म नाश करके मेरे स्वामी का वध किया है। हे प्रभो! आप पाषाणवत् दयाहीन हैं, अतः आप संसार में पाषाणवत् हो जायें। जो आपको दयासिन्धु कहते हैं, वे अवश्यमेव भ्रान्त हैं। क्योंकि आपने अपने निरपराधी भक्त का वध दूसरों के लिये किया है। आप सर्वात्मा एवं सर्वज्ञ हैं, तथापि अन्य के दुःख को नहीं जानते। तभी आप एक जन्म में आत्मविस्मृत हो जायेंगे।।२३-२६।।

इत्युक्त्वा च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः। भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः॥२७॥
तस्याश्च करुणां दृष्ट्वा करुणामयसागरः। नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः॥२८॥

यह कहकर वह साध्वी हरि के चरणों पर गिर कर पुनः-पुनः अत्यन्त शोकार्त्त होकर रुदन करने लगी। यह देख कर भगवान् करुणासागर हरि कमलापति उसे नीतियुक्त वचन कहने लगे–।।२७-२८।।

श्रीभगवानुवाच

तपस्त्वया कृतं साध्वि मदर्थे भारते चिरम्। त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः॥२९॥
कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत्फलात्।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम्॥३०॥

श्रीभगवान् कहते हैं–हे साध्वी! तुमने मेरे उद्देश्य से भारत में चिरकाल तप किया। तुम्हारे उद्देश्य से शंखचूड़ ने भी दीर्घकालीन तपःश्चरण किया था। उस तप के ही फलस्वरूप वह कामी शंखचूड़ तुमको पा सका। अब मैं तुमको तुम्हारे तप का फल दे रहा हूं।।२९-३०।।

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यं देहं विधाय च। रासे मे रमया सार्धं त्वं रमासदृशी भव॥३१॥
इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता। पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते॥३२॥
तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति। तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता॥३३॥
त्रिलोकेषु च पुष्पानां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥३४॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मय संनिधौ। भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सुन्दरि॥३५॥

अब तुम इस देह का त्याग करके दिव्य देहधारी हो जाओगी। लक्ष्मी के समान होकर रास में मेरे साथ अब विहार करोगी। तुम्हारा यह देह भारत में गण्डकी नदी रूप में परिणत होगा। यह नदी मानवों हेतु पुण्यप्रदा पवित्रा होगी। तुम्हारे केश से तुलसी की उत्पत्ति होगी। वे केश तुलसी नाम पवित्र

वृक्षरूपी हो जायें। हे वरानने! यह तुलसी देवपूजनार्थ समस्त पुष्पों तथा पत्तों में प्रशस्त मानी जायेगी। हे सुन्दरी! स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल, वैकुंठ तथा मेरे पास यह तुलसी वृक्ष सम्भूत पुष्प सबसे श्रेष्ठ माने जायेंगे।।३१-३५।।

गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने भुवि। भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥३६॥
माधवीकेतकीकुन्दमल्लिकामालतीवने। भवन्तु तरवस्तत्र पुष्पस्थानेषु पुण्यदाः॥३७॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥३८॥

यह पुण्यप्रद तुलसी वृक्ष गोलोक के विरजा तट पर, रासमण्डल में, वृन्दावन भूमि में, माधवी-केतकी-कुन्द-मल्लिका तथा मालती वनों में एवं अन्य पुण्य स्थलों में उत्पन्न होगी। पुण्यप्रद तुलसी वृक्ष के नीचे सभी तीर्थ स्थित रहेंगे।।३६-३८।।

तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनं प्रायो यश्च वरानने॥३९॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रयतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥४०॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेत्समा। या च तुष्टिर्भवेनृणां तुलसीपत्रदानतः॥४१॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति॥४२॥
तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्।
स मुच्यते सर्वपापाद्विष्णुलोकं स गच्छति॥४३॥

हे वरानने! उस स्थान में तुलसी के गिरे पत्तों को पाने की आशा में स्थित रहेंगे। जो व्यक्ति तुलसीपत्र जल से अभिषिक्त होंगे, उनको सभी तीर्थों में स्नान का तथा सर्वयज्ञ फल का लाभ होगा। सुधा भरे सहस्रों घट के दान द्वारा हरि को उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी मात्र एक तुलसीपत्र प्रदान करने से होता है। हे सती! मनुष्य १०००० गोदान से फल लाभ करते हैं, वही फल १ तुलसी पत्र अर्पित करने से मिलता है। जिनको मृत्युकाल में तुलसी पत्र का जल प्राप्त हो जाता है, वह सर्वपातक रहित होकर विष्णुलोक जाता है।।३९-४३।।

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च यो नरः।
स एव जीवन्मुक्तश्च गङ्गास्नानफलं लभेत्॥४४॥
नित्यं यस्तुलसीं दत्त्वा पूजयेन्मां च मानवः।
लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥४५॥

जो व्यक्ति नित्य तुलसीपत्र युक्त जल को भक्तिभाव के साथ पीता है, वह गंगास्नान फल प्राप्त करता है, वह तो जीवन्मुक्त है। जो व्यक्ति नित्य मुझ पर तुलसी प्रदान करके मेरी अर्चना करता है, वह एक लक्ष अश्वमेध फल लाभ करता है। यह बात संशय रहित है।।४४-४५।।

तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः।
प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति॥४६॥

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥४७॥

तुलसी स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥४८॥

जो व्यक्ति तीर्थस्थल में अपने शरीर तथा हाथों पर तुलसी पत्र रख कर देहत्याग करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है, उसे तो पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ फल प्राप्त होता है। यह निश्चित है। जो कोई हाथ में तुलसी लेकर उस वचन का पालन नहीं करता, उसे तो तब तक कालसूत्र नरक में रहना है, जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य स्थित हैं।।४६-४८।।

करोति मिथ्या शपथं तुलस्या यो हि मानवः।
स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥४९॥
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्।
रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च॥५०॥
पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसक्रमे।
तैलाभ्यङ्गेचास्नाते च मध्याह्ने निशि संध्ययोः॥५१॥
आशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्विते नराः।
तुलसीं ये च छिन्दन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥५२॥

जो कोई तुलसी लेकर झूठी शपथ लेता है, वह १४ इन्द्रों के स्थितिकाल तक कुंभीपाक नरक भोगेगा। जिसे एक बूंद भी तुलसी जल मरणकाल में मिल जाता है, वह रत्नयान पर आसीन होकर वैकुण्ठ गमन करता है। पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, सूर्य संक्रान्ति के दिन, तेल लगाये, मध्याह्न में, रात में, उभय संध्याकाल में, अशौच काल में, स्नान किये बिना, रात का बासी कपड़ा पहन जो कोई तुलसी पत्र तोड़ेगा, उसने तो साक्षात् भगवान् विष्णु का शिर काटा है!।।४९-५२।।

त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥५३॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥५४॥

तीन रात का बासी तुलसीपत्र श्राद्ध-दान-व्रत-प्रतिष्ठा तथा देवपूजनार्थ पवित्र रहता है। हे सती! विष्णु के लिये लाई तुलसी यदि मृत्तिका किंवा जल में गिरे, तब उसे धोकर इसे अन्य कार्य में लगाया जा सकता है।।५३-५४।।

वृक्षाधिष्ठात्री देवी या गोलोके च निरामये।
कृष्णेन सार्धं रहसि नित्यं क्रीडां करिष्यति॥५५॥

तुम वृक्षों की अधिष्ठात्री देवी हो जाओगी। निरामय गोलोक में निर्जन स्थल पर श्रीकृष्ण के साथ तुम नित्य क्रीड़ारत रहोगी।।५५।।

नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा। लवणोदस्य पत्नी च मदंशस्य भविष्यति॥५६॥
त्वं च स्वयं महासाध्वि वैकुण्ठे मम संनिधौ।
रमासमा च रासे च भविष्यसि न संशयः॥५७॥

तुम (अपने अन्य अंश से) भारत में पुण्यप्रदा नदियों की अधिष्ठातृ देवी होकर मेरे अंश से उत्पन्न लवणसागर की पत्नी हो जाओगी। हे महासाध्वी! तुम स्वयं वैकुण्ठ में मेरे निकट लक्ष्मी के समान ही मानी जाकर रास में सदा रहोगी। यह बात संशय रहित है।।५६-५७।।

अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसंनिधौ। अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः॥५८॥
वज्रकीटाश्च कृमयो वज्रदंष्ट्राश्च तत्र वै। तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम्॥५९॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम्। नवीननीरदश्यामं लक्ष्मीनारायणाभिधम्॥६०॥

मैं तुम्हारे द्वारा शापित होकर गण्डकी तट पर पर्वत रूप धारण करूंगा। वहां के वज्रकीट अपने वज्रदंष्ट्र से वहां पाषाणों को काट-काट कर उसमें चक्रचिह्न निर्मित करेंगे। उनमें से एक द्वारयुक्त, चार चक्रांकित, वनमाला चिह्न से अंकित नवजलधर श्याम वर्ण की शालग्राम शिला **''लक्ष्मी-नारायण''** कही जायेगी।।५८-६०।।

एकद्वारे चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्। लक्ष्मीजनार्दनं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥६१॥
द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन समन्वितम्। रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥६२॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम्। दधिवामनाभिधं ज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम्॥६३॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च[1] वनमालाविभूषितम्। विज्ञेयं श्रीधरं देवं श्रीप्रदं गृहिणां सदा॥६४॥

एकद्वारमयी, चार चक्र युक्त, नवमेघवत् श्यामल तथा वनमाला चिह्न रहित शालग्राम शिला **''लक्ष्मी-जनार्दन''** कही जाती है। जो शालग्राम शिला द्वारद्वय, चार चक्र, गोपद चिह्न तथा वनमाला चिह्न से रहित है, उसे **''रघुनाथ''** कहते हैं। नवजलधर श्याम, दो चक्र चिह्न वाली, शालग्राम शिला जिसके दोनों चक्र अत्यन्त क्षुद्राकृति हों, वह गृहस्थगण को सुखप्रदाता **''दधिवामन''** शालग्राम शिला है। अत्यन्त क्षुद्र, दो चक्र चिह्न युक्त वनमाला सहित शालग्राम शिला ही **''श्रीधर''** नामक है। यह भी गृहस्थों को सदा श्रीप्रद है।।६१-६४।।

स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया। द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम्॥६५॥
मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम्। रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम्॥६६॥
मध्यमं सप्तचक्रं च च्छत्रतूणसमन्वितम्। राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम्॥६७॥

स्थूल, वर्त्तुल, वनमाला चिह्न रहित, दो चक्र युक्त जो अत्यन्त स्पष्ट हों, वह शालग्राम शिला **''दामोदर''** नामक होती है। जो मध्यम, वर्त्तुलाकार, दो चक्र वाली, तूणीर (तरकश) तथा बाणचिह्नांकित

१. क. च नवीननीरदोपमम्।

शालग्राम शिला है। वह ''**रणराम**'' शिला है। मध्यम, सप्तचक्रात्मक, छत्र तथा तरकस चिह्नयुक्त हो, नवजलधर के समान प्रभायुक्ता हो, उसे ''**राजराजेश्वर**'' शालग्राम शिला कहते हैं। यह मनुष्यों को राज्य-सम्पदाप्रद है।।६५-६७।।

द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवीनजलदप्रभम्। अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम्।।६८।।
चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम्। सगोपदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम्।।६९।।
सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम्। द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम्।।७०।।
अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति।
नरसिंहाभिधं ज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम्।।७१।।

जो १४ चक्रयुक्त, स्थूल नवजलधर की तरह कान्तिमान शालग्राम शिला हो, वे ''**अनन्त शालग्राम**'' हैं। ये चतुर्वर्ग फल प्रदाता हैं। दो चक्र चिह्न वाले, श्रीयुक्त मेघ के समान प्रभाशाली गोपुर चिह्न वाले मध्यम श्रेणी की शालग्राम शिला को ''**मधुसूदन**'' कहा गया है। देखने में श्रेष्ठ, एक चक्र युक्त शालग्राम शिला ''**सुदर्शन**'', गुप्तचक्र शिला को ''**गदाधर**'', अश्वमुख तथा द्विचक्र चिह्नात्मक शालग्राम शिला को ''**हयग्रीव**'', अत्यन्त विस्तृत मुखयुक्त द्विचक्रात्मक विकटाकृति शालग्राम शिला ही ''**नरसिंह**'' है। यह तत्काल वैराग्यप्रदा है।।६८-७१।।

द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम्।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा।।७२।।
द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम्। वासुदेवं च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम्।।७३।।

दो चक्रयुक्त, विस्तृत मुख वाली, वनमाला चिह्न युक्त ''**लक्ष्मीनृसिंह**'' नामक शालग्राम शिला गृही लोगों हेतु सुखप्रद है। जिसके द्वार पर दो चक्र व्यक्त हों, सम तथा श्रीयुक्त चिह्न हो, वह ''**वासुदेव**'' नामक शालग्राम शिला है। इसकी अर्चना से मनुष्य कामना सुखलाभ करते हैं।।७२-७३।।

प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम्। सुषिरे छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम्।।७४।।
द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठे यत्र तु पुष्कलम्। सङ्कर्षणं तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा।।७५।।
अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम्। सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः।।७६।।

सूक्ष्म चक्रयुक्त, नवजलधर की प्रभायुक्त छोटे अनेक छिद्र वाली शिला ''**प्रद्युम्न**'' शिला गृही लोगों के लिये अत्यन्त सुखप्रद होती है। जिस शिला में दो चक्र परस्पर सटे हों, विशाल पृष्ठभाग युक्त हो, यह ''**संकर्षण**'' शिला गृही लोगों हेतु अत्यन्त सुखप्रद है। जो शिला वर्तुल, पीली आभा वाली अतीव शोभन हो, वह ''**अनिरुद्ध शिला**'' गृही लोगों हेतु अत्यन्त सुखप्रद है। यह मनीषीगण का कथन है।।७४-७६।।

शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः। तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता॥७७॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात्॥७८॥

शालग्राम शिला जहां रहती है, वहीं हरि भी सन्निहित रहते हैं। वह स्थान सर्वतीर्थ समन्वित है तथा वहां लक्ष्मी का निवास रहता है। शालग्राम शिला की अर्चना से ब्रह्महत्यादि सभी पातक नष्ट हो जाते हैं।।७७-७८।।

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः। दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम्॥७९॥
विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च।
भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम्॥८०॥

छत्राकार शालग्राम से राज्यलाभ, वर्तुल शालग्राम पूजनादि से परम श्री, शकटाकार शालग्राम से दुःख, जिसका अग्रभाग शूल के समान हो, उसके पूजन से निश्चित मृत्यु मिलती है। विकृत मुख वाले शालग्राम पूजन से दरिद्रता, पिंगल वर्ण शालग्राम पूजन से हानि, जिसके चक्र भग्न हों, उसके पूजन से व्याधि, विदीर्ण (फटे) शालग्राम के पूजन से मरण होना निश्चित है।।७९-८०।।

व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम्। शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानात्प्रशस्तकम्॥८१॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत्॥८२॥
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा। सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेष्वनशनेषु च॥८३॥
तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च।
जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः॥८४॥

व्रत-दान-प्रतिष्ठा-श्राद्ध, देवपूजा आदि के समय शालग्राम शिला के सान्निध्य से फल अमित मिलता है। जो शालग्राम शिलाजल द्वारा अभिषिक्त होते हैं, उनको सभी यज्ञों में दीक्षा का फल मिलता है। समस्त दान, पृथिवी प्रदक्षिणा, सभी प्रकार के यज्ञानुष्ठान, सर्वतीर्थ सेवा, अनशनादि व्रतानुष्ठान का जो फल है, वही फल शालग्राम शिला जल से अभिषिक्त व्यक्ति को मिलता है। सभी तीर्थ ऐसे व्यक्ति का स्पर्श करने की इच्छा करते हैं। ऐसा मनुष्य निश्चित रूप से जीवन्मुक्त तथा परम पवित्र होता है, इसमें सन्देह नहीं है।।८१-८४।।

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति। तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात्॥८५॥
शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः।
सुरेप्सितं प्रसादं च जन्ममृत्युजराहरम्॥८६॥
तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च।
जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्॥८७॥

चारों वेदों के पाठ तथा तपःश्चरण का जो पुण्यफल है, वही शालग्राम शिलार्चन से प्राप्त होता है। जो मनुष्य शालग्राम शिला के जल का नित्य पान करता है तथा देवता को नैवेद्य अर्पित करके भक्षण करता है, वह जन्म-मरण तथा जरा रहित हो जाता है। उसका स्पर्श करने की कामना सभी तीर्थ करते हैं। वह महापवित्र, जीवन्मुक्त होकर हरिपद प्राप्त करता है।।८५-८७।।

तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम्।
पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तो दास्यकर्मणि॥८८॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तं च दृष्ट्वा भिया यान्ति वैनतेयमिवोरगाः॥८९॥

वहां वह प्रभु के सान्निध्य में रहता है। उनकी सेवा में रत रह कर असंख्य प्राकृत प्रलय काल को भी देखता है। ऐसे व्यक्ति का दर्शन करके ब्रह्महत्यादि जितने पातक हैं, वे उसी तरह भाग जाते हैं, जैसे सर्प गरुड़ को देख कर भाग जाते हैं।।८८-८९।।

तत्पाद्मपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तारस्तस्य जन्मनः॥९०॥

शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत्।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥९१॥

ऐसे व्यक्ति के चरण की रज के स्पर्श से पृथिवी तत्काल पावन हो जाती है। उस व्यक्ति की एक लाख पूर्व पीढ़ी का निस्तार हो जाता है। जो मरणकाल में शालग्राम शिला (स्पर्श) के जल का सान्निध्य लाभ करता है, वह सभी पातकों से रहित होकर विष्णुलोक गमन करता है।।९०-९१।।

निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्विमुच्यते। विष्णुपादे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः॥९२॥

मृत्यु के उपरान्त वह कर्मभोग से मुक्त होकर निर्वाण मुक्ति लाभ करता है। तदनन्तर वह विष्णुपद में लीन होता है। इसमें संशय नहीं करे।।९२।।

शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावादं वदेत्तु यः।
स याति कूर्मदंष्ट्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥९३॥
शालग्रामशिलां स्पृष्टा स्वीकारं यो न पालयेत्।
स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तराधिकम्[1]॥९४॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः।
तस्य जन्मान्तरे काले स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥९५॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च।
भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु॥९६॥

१. क. ०रावधिः।

जो व्यक्ति शालग्राम शिला धारण करके (स्पर्श करके) मिथ्या कहते हैं, वे ब्रह्मा की जितनी आयु होती है, उतने समय तक कूर्मदंष्ट्र नरकभोग करते हैं। जो शालग्राम शिला का स्पर्श करके उस समय की गई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करते, उनको असिपत्र नरक में एक लाख मन्वन्तर काल निवास करना पड़ता है। हे प्रिये! जो शालग्राम शिला पर से तुलसी हटाते हैं, वे सात जन्मजन्मान्तर तक स्त्री वियोग की यन्त्रणा का भोग करते हैं।।९३-९६।।

शालग्रामं च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः॥९७॥
सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति यः। तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम्॥९८॥
त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि। शङ्खेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव॥९९॥

जो शालग्राम, तुलसी तथा शंख को साथ रख कर उसकी रक्षा करता है, वह महाज्ञानी तथा श्रीहरि प्रिय हो जाता है। यदि पुरुष किसी नारी में एक बार भी वीर्य स्थापित कर देता है, तब उस स्त्री का वियोग उस पुरुष हेतु अत्यन्त दुःखप्रद हो जाता है। तुम एक मन्वन्तर काल पर्यन्त शंखचूड़ के साथ रही हो। शंख के साथ तुम्हारा वियोग अत्यन्त दुःखप्रद होगा।।९७-९९।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद। सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं दधार ह॥१००॥
यथा श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि। प्रजगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः॥१०१॥

हे नारद! यह कहकर श्रीहरि मौन हो गये। तदनन्तर तुलसी ने देहत्याग किया। उसे दिव्य रूप प्राप्त हो गया। अब तुलसी लक्ष्मी की ही तरह हरि के वक्ष पर निवास करने लगीं। वह कमलापति के साथ वैकुण्ठ चली गईं।।१००-१०१।।

लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद। हरेः प्रियाश्चतस्त्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च॥१०२॥
सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी। हरेरंशेन शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम्॥१०३॥

कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने।
जले पतन्ति या याश्च जलदाभाश्च निश्चितम्॥१०४॥

हे नारद! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, तुलसी, ये चारों ईश्वर विष्णु की प्रिया हो गईं। सद्यः तुलसी के शरीर से यह गण्डकी नदी उद्भूत हो गई (शव देह से)। गण्डकी के तट पर ही भगवत् अंश से उत्पन्न शालग्राम शिला विद्यमान है। यह पुण्यप्रद है। हे मुनिवर! उस तट पर कीट पाषाण को अपने दांतों से काट कर अनेक तरह की शिला (शालग्राम का) निर्माण कर देते हैं। ये मेघकान्ति शिला तब जल में गिरती हैं।।१०२-१०४।।

स्थलस्थाः पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापांद्धरेरिति।
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१०५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० नाम एकविंशोऽध्यायः।।२१।।

यह श्रीहरि के ताप का फल है कि स्थलीय शिलायें पिंगल वर्ण की होती हैं। मैंने तुमसे यह प्रसंग कह दिया। अब क्या सुनना है?।।१०५।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

तुलसी नामाष्टक तथा पूजाविधि

नारद उवाच

तुलसी च जगत्पूज्या [1]पूता नारायणप्रिया।
तस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं किं न श्रुतं मया।।१।।

केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने। तव पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो।।२।।

देवर्षि नारद कहते हैं—देवी तुलसी जगत्पूज्या पवित्र तथा नारायण की अत्यन्त प्रिया हैं। अब तक मैंने उनका पूजाविधान तथा स्तोत्र सुना ही नहीं! हे मुनिवर! प्राचीनकाल में उनकी पूजा तथा स्तुति किन लोगों द्वारा की गई थी? वे आप जैसे लोगों हेतु भी पूज्या कैसे हो गईं? कृपया कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य[2] गरुडध्वजः। कथं कथितुमारेभे पुण्यरूपां पुरातनीम्।।३।।

सूतजी कहते हैं—नारद का वचन सुनकर भगवान् गरुड़ध्वज ने हंस कर उस पुण्यमयी पुरातनी कथा को कहना प्रारम्भ किया।।३।।

श्रीनारायण उवाच

हरिः संप्राप्य तुलसीं रेमे च रमया सह। रमासमां तां सौभाग्यां चकार गौरवेण च।।४।।

सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम्। सौभाग्यं गौरवं कोपान्न सेहे च सरस्वती।।५।।

सा तां जघान कलहे मानिनि हरिसंनिधौ।
व्रीडया स्वापमानाच्च साऽन्तर्धानं चकार ह।।६।।

---

१. क. पूज्या नारायणस्य च।
२. क. ०स्य मुनिपुंगव।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! श्रीहरि तुलसी को प्राप्त करके उनके साथ रमण करने लगे। भगवान् ने उनको लक्ष्मी जैसा ही सौभाग्य तथा गौरव प्रदान किया था। लक्ष्मी तथा गंगा ने तो तुलसी के इस नवसंगम को सहन कर लिया, तथापि इस नवसंगम के सौभाग्य एवं गौरव को सरस्वती नहीं सक सकीं! एक बार मानिनी सरस्वती ने हरि के समक्ष ही तुलसी के साथ वृथा कलह किया। इसमें सरस्वती ने तुलसी को आघात तक पहुंचाया। अतः लज्जित एवं अपमानित तुलसी वहां से अन्तर्ध्यान हो गईं।।४–६।।

सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी। बभूव दर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो।।७।।
हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम्। तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्।।८।।

वे देवी तुलसी सर्वसिद्धेश्वरी, ज्ञानयुक्त, सिद्ध योगिनी थीं। उन्होंने क्रोध पूर्वक स्वयं को हरि से अदृश्य कर लिया। उधर जब हरि ने कहीं तुलसी को नहीं देखा, तब हरि ने सरस्वती को नाना प्रकार से प्रबोधित किया तथा उनकी आज्ञा लेकर श्रीहरि तुलसीवन में गये।।७–८।।

तत्र गत्वा च स्नात्वा च तुलस्या तुलसीं सतीम्।
पूजयामास ध्यात्वा तां स्तोत्रं भक्त्या चकार ह।।९।।
लक्ष्मीं मायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम्।
वृन्दावनीति ङेन्तं च वह्निजायान्तमेव च।।१०।।
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा।
अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद। पूजयेच्च विधानेन सर्वसिद्धिं लभेन्नरः।।११।।

वहां जाकर नारायण ने स्नानोपरान्त भक्तिभाव से तुलसी पूजन, उनका ध्यान तथा स्तोत्र को लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) तथा वाणीबीज (ऐं) आदि युक्त दशाक्षर मन्त्र से गठित करके उस मन्त्र द्वारा भक्ति पूर्वक तुलसी का स्तव किया। अन्त में उस मन्त्र में चतुर्थी विभक्तियुक्त वृन्दावन कह कर अन्त में 'स्वाहा' कहा। मन्त्रोद्धार है–"श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा।" यही दशाक्षर मन्त्र है। हे नारद! यह कल्पतरु रूप मन्त्रराज है। इसके द्वारा सविधि पूजन करने वाला मानव सभी सिद्धि प्राप्त कर लेता है।।९–११।।

घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च। नैवेद्येन च पुष्पेण चोपहारेण नारद।।१२।।
हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाऽऽविर्भूय महीरुहात्।
प्रपन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुचिः।।१३।।

हे नारद! इस मन्त्रस्तव से घृतदीप, धूप, सिन्दूर, चन्दन, पुष्प, नैवेद्यादि के उपहार द्वारा नारायण ने तुलसी का पूजन किया। तदनन्तर उनकी स्तुति भी किया। इस हरिकृत स्तोत्र से देवी तुलसी सन्तुष्ट होकर तुलसी वृक्ष से आविर्भूत हो गईं। उन्होंने अत्यन्त कातर होकर हरि के चरणकमलों की शरण ग्रहण किया।।१२–१३।।

वरं तस्यै ददौ विष्णुर्जगत्पूज्या भवेति च।
अहं त्वां च धरिष्यामि स्वमूर्ध्नि वक्षसीति च॥१४॥
सर्वेत्वां धारयिष्यन्ति स्वयं मूर्ध्नि सुरादयः।
इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः॥१५॥

उस समय श्रीहरि ने तुलसी को वर दिया कि "अब तुम जगत्पूज्या हो जाओ। हे प्रिये! मैं तुमको मस्तक तथा वक्ष पर धारण करूंगा। सभी देवगण इसी कारण से तुमको मस्तक एवं वक्ष पर धारण करेंगे।" भगवान् यह कहकर तुलसी को साथ लेकर अपने गृह (धाम) चले गये।।१४-१५।।

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किंवा किंवा पूजाविधिक्रमः।
तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! तुलसीदेवी का ध्यान, स्तव क्या है? पूजाविधि क्या है? वह विशेष रूप से कहिये।।१६।।

श्रीनारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च गत्वा च तुलसीवनम्। हरिः संपूज्य तुष्टाव तुलसीं विरहातुरः॥१७॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! जब तुलसी अन्तर्हित् हो गयी थीं, तब हरि विरहाकुल होकर तुलसीवन गये थे। वहां पर तुलसी पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् श्रीहरि ने यह स्तव किया था।।१७।।

श्रीभगवानुवाच

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च।
विदुर्बुधास्तेन वृन्दा मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥१८॥
पुरा बभूव या देवी ह्यादौ वृन्दावने वने।
तेन वृन्दावनी ख्याता सुभगां तां भजाम्यहम्॥१९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जब अनेक वृन्दा वृक्ष एकत्र हो जाते हैं, तब पण्डितगण उसे वृन्दा (तुलसी) कहते हैं। मैं उन अपनी प्रिया का भजन करता हूं। पूर्वकाल में वे सर्वप्रथम वृन्दावन में वृक्षरूप से उत्पन्न होकर वृन्दावनी नाम से प्रसिद्ध हो गई थीं। वे सौभाग्यशालिनी हैं। मैं उनका भजन करता हूं।।१८-१९।।

असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्।
तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम्॥२०॥

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणियया सदा।
तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥२१॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना।
तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥२२॥

जो असंख्य विश्व में सतत् पूजिता होकर विश्वपूज्या नाम वाली हैं, मैं उन जगत्पूज्या का भजन करता हूं। जो सर्वदा असंख्य विश्व को पवित्र करके विश्वपावनी कही जाती हैं, मैं उन भगवती का विरहाकुल होकर स्मरण करता हूं। देवगण पुष्प समूह अर्पित करने पर भी जिनके बिना सन्तुष्ट नहीं होते, उन पुष्पों की सारभूता शुद्धा देवी को शोकातुर होकर अब देखने की इच्छा कर रहा हूं।।२०-२२।।

विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्त्यानन्दो भवेद् ध्रुवम्।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भविता हि मे॥२३॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च।
तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥२४॥
कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती। तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम्॥२५॥

विश्व में जिनकी प्राप्ति मात्र से भक्तों को निश्चित रूप से आनन्द होता है, जो नन्दिनी नाम से प्रसिद्ध हैं, वे देवी मुझ पर प्रसन्न हो जायें। जो समस्त विश्व में अतुलनीय हैं, जो तुलसी नाम से विख्यात हैं, मैं उस प्रिया की शरण लेता हूं। जिन सती ने कृष्ण की जीवनस्वरूपा प्रियतमा होकर कृष्णजीवनी का नाम धारण किया है, वे मेरे जीवन की रक्षा करें।।२३-२५।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तत्र तस्थौ रमापतिः। ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मे नतां सतीम्॥२६॥
रुदतीमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम्।
प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि॥२७॥
भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः।
भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम्॥२८॥

तुलसी की यह स्तुति करने के अनन्तर भगवान् रमापति ने वहां स्थित होकर अपने चरणकमलों में प्रणता सती तुलसी का साक्षात् दर्शन किया। तदनन्तर श्रीहरि ने मानिनी-मानपूजिता तुलसी को अभिमान के साथ रोते देख कर तत्क्षण उनको अपने वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर सरस्वती की अनुमति लेकर प्रभु तुलसी के साथ अपने भवन में गये। उन्होंने सरस्वती तथा तुलसी के बीच तत्काल प्रेम-प्रीति करा दिया!।।२६-२८।।

वरं विष्णुर्ददौ तस्यै विश्वपूज्या भवेति च।
शिरोधार्या च सर्वेषां वन्द्या मान्या ममेति च॥२९॥

विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह। सरस्वती तामाश्लिष्य वासयामास सन्निधौ॥३०॥
लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता तां समाश्लिष्य च नारद। गृहं प्रवेशयामास विनयेन सतीं मुदा॥३१॥

वृन्दां वृन्दावनीं विश्वपावनीं विश्वपूजिताम्।
पुष्पसारां नन्दिनीं च तुलसीं कृष्णजीवनीम्॥३२॥

तदनन्तर विष्णु ने तुलसी को यह वर दिया कि तुम विश्वपूज्या होकर सबके द्वारा शिरोधार्य होगी। तुम मेरी भी वन्दनीया एवं माननीया होगी। देवी तुलसी विष्णुप्रदत्त वर पाकर प्रसन्न हो गईं। सरस्वती ने भी उनका आलिंगन करके अपने पास बैठा लिया। हे नारद! इसी के पश्चात् गंगा तथा लक्ष्मी ने भी सती तुलसी का आलिंगन प्रसन्न मुद्रा में किया तथा अपने गृह तुलसी को ले गयीं! इन सभी ने सविनय सती तुलसी का हाथ पकड़ कर उनको आदर पूर्वक गृह में प्रवेश कराया।।२९-३२।।

एतन्नामाष्टकं चैतत्स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च संपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥३३॥
कार्तिकीपूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मङ्गलम्।
तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा॥३४॥
तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या च विश्वपावनीम्।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥३५॥

जो तुलसी पूजन करके अर्थयुक्त तुलसी के नामाष्टक का पाठ करेंगे, वे अश्वमेध यज्ञफल भागी होंगे। उनके आठ नाम हैं–वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी, कृष्णजीवनी। कार्त्तिकी पूर्णिमा की तिथि पर जगत् मंगलकारिणी तुलसी का जन्म कहा गया है। इस तिथि पर श्रीहरि ने उनकी पूजा का विधान किया है। जो इस तिथि पर भक्तिभाव से विश्वपावनी तुलसी की पूजा करते हैं, वे अनायास ही सर्वपातक रहित होकर विष्णुलोक जाते हैं।।३२-३५।।

कार्तिके तुलसीपत्रं विष्णवे यो ददाति च।
गवामयुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम्॥३६॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्। बन्धुहीनो लभेद्बन्धुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः॥३७॥

रोगी प्रमुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु[१] पापान्मुच्येत पातकी॥३८॥

कार्त्तिक में जो तुलसीपत्र विष्णु पर अर्पित करता है, उसे निश्चित रूप से १०००० गोदान का फल प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाये, तुलसी स्तोत्र के स्मरण मात्र से पुत्रहीन को पुत्र, प्रियाहीन को प्रिया, बन्धुहीन को बन्धु लाभ होता है। रोगी रोग से, बद्ध बन्धन से, भयभीत भय से और पातकी पाप से रहित हो जाता है।।३६-३८।।

१. क. ०स्तु मुच्येताऽऽपन्न आपदः।

इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
त्वमेव देव जानासि काण्वशाखोक्तमेव च॥३९॥
यद्वक्ष्ये पूजयेत्तां च भक्त्या चाऽऽवाहनं विना।
उपचारैः षोडशभिर्ध्यानं पातकनाशनम्॥४०॥
तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूज्यां मनोहराम्।
कृत्स्नपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥४१॥

यह मैंने स्तोत्र कहा। अब तुलसी का ध्यान एवं पूजन कहता हूं। तुम वेद ज्ञाता हो। अतः मैं काण्वशाखा में कहा गया विधान कह रहा हूं। तुलसी पुष्पों का सार है। इनकी पूजा तुलसी वृक्ष में बिना आवाहन किये भक्तिभाव से षोडशोपचार से करे। इनका पापनाशक ध्यान यह है—तुलसी पुष्पसार रूप, सती, पूज्या, मनोहर सर्वपापरूप ईन्धन को दग्ध करने वाली ज्वलन्त अग्नि है।।३९-४१।।

पुष्पेषु तुलनाऽप्यस्या [1]नासीद्देवीषु वा मुने।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥४२॥
शिरोधार्यां चा सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम्।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥४३॥

हे मुनिप्रवर! तुलसी देवी की तुलना अन्य देवी अथवा पुष्पों से नहीं हो सकती (ये अतुलनीय हैं)। सभी देवीगण में ये परम पवित्र रूप तथा अतुलनीय होने के कारण तुलसी (अतुलनीय) कही गई हैं। ये सबके द्वारा शिरोधार्या तथा सबको वांछित हैं। ये विश्वपावनी, जीवन्मुक्ता तथा मुक्तिप्रदा भी हैं। ये हरिभक्तिदायिनी भी हैं। इनका सदा भजन करे।।४२-४३।।

इति ध्यात्वा च संपूज्य स्तुत्वा च प्रणमेद्बुधः।
उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्यानं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

हे नारद! बुधगण एवंविध इनका ध्यान करके, इनकी पूजा, स्तुति तथा प्रणाम करें। यह तुलसी उपाख्यान मैंने कह दिया। अब क्या सुनना चाहते हो?।।४४।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

१. क. नास्ति वेदेषु वा।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अश्वपति को पराशर का उपदेश, सावित्री का ध्यान, उनके पूजा विधान का कथन तथा ब्रह्माकृत सावित्री स्तोत्र कथन

नारद उवाच

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधोपमम्।
यत्तु सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥
पुरा येन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसूः। केन वा पूजिता देवी प्रथमे कैश्च वाऽपरे॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! आपकी कृपा से अमृत के समान तुलसी उपाख्यान श्रवण किया। अब मुझसे सावित्री का उपाख्यान कहिये। पूर्वकाल में वेदमाता सावित्री जिस प्रकार से उद्भूत हो गई थीं, वह मैंने सुना था। इन देवी की पूजा पहले किस व्यक्ति ने किया था तथा बाद में किसने किया था, अब वही कहिये।।१-२।।

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मणा वेदजननी पूजिता प्रथमे मुने। द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः॥३॥
तथा चाश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते। तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! उन वेदजननी की पूजा सर्वप्रथम ब्रह्मा ने, तदनन्तर देवगण ने, तदनन्तर ज्ञानीगण ने किया था। भारत में राजा अश्वपति द्वारा उनकी पूजा सर्वप्रथम की गई थी। तदनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों ने भी उनकी पूजा किया था।।३-४।।

नारद उवाच

को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता।
सर्वपूज्या च सावित्री तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे ब्रह्मन्! ये अश्वपति कौन थे? सर्वपूज्या देवी की अश्वपति ने यह पूजा क्यों किया? कृपया कहिये।।५।।

श्रीनारायण उवाच

मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने। वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः॥६॥
आसीत्तस्य महाराज्ञी[1] महिषी धर्मचारिणी।
मालतीति च साऽऽख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः॥७॥

१. ख. महाराज्ञो।

सा च राज्ञी महासाध्वी वसिष्ठस्योपदेशतः।
चकाराऽऽराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद॥८॥
प्रत्यादेशं न सा प्राप महिषी न ददर्श तामु। गृहं जगाम सा दुःखाद्धृदयेन विदूयता॥९॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—मद्रदेश में वैरीगण की सैन्य को परास्त करने वाले, मित्रों के दुःख का निवारण करने वाले अश्वपति नामक राजा राज्य करते थे। जैसे नारायण की पत्नी लक्ष्मी हैं, उसी प्रकार से इन राजा की मालती नामक प्रसिद्ध महारानी धर्मचारिणी स्त्री थीं। हे नारद! ये रानी महावन्ध्या थीं। अतः उन्होंने वसिष्ठदेव के उपदेशानुसार भक्तिभाव से सावित्री की आराधना किया। तदनन्तर मालती ने देवी सावित्री से कोई वर नहीं पाया तथा दर्शन भी नहीं मिला, तब वे दुःखी होकर घर लौटीं॥६-९॥

राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै।
सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा॥१०॥
तपश्चचार तत्रैव संयतः शतवत्सरम्। न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ह॥११॥
शुश्रावाऽऽकाशवाणीं च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम्।
गायत्रीदशलक्षं च जपं कुर्विति नारद॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राजगाम पराशरः। प्रणनाम नृपस्तं च मुनिर्नृपमुवाच ह॥१३॥

तब राजा ने उनको दुःखी देख कर सान्त्वना देते हुए नीतिपूर्ण वाक्य कहा। तदनन्तर राजा भक्तिभाव से सावित्री की आराधना हेतु पुष्कर तीर्थ गये। अश्वपति ने संयत होकर वहां १०० वर्ष तक तप किया, तथापि उनको देवीदर्शन नहीं मिल सका। तथापि राजा ने वहां अशरीरी वाणी सुना "तुम १० लाख गायत्री जप करो।" हे नारद! तब राजा के यहां सहसा महामुनि पराशर आ गये। राजा ने जब पराशर को प्रणाम किया, तब वे महामुनि कहने लगे—१०-१३॥

पराशर उवाच

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनकृतं हरेत्। दशधा प्रजपो नृणां दिवारात्र्यघमेव च॥१४॥
शतधा च जपाच्चैवं पापं मासार्जितं परम्।
सहस्रधा जपाच्चैवं कल्मषं वत्सरार्जितम्॥१५॥
लक्षं जन्मकृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः। सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षे विनश्यति॥१६॥
करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः।
करं सर्पफणाकारं कृत्वा[1] तद्रन्ध्रमुद्रितम्॥१७॥
आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः। अनामिकामध्यदेशादधो वामक्रमेण च॥१८॥

१. ख. ०त्वा तु ऊर्ध्वमु०।

तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैष क्रमः करे।
[1]श्वेतपङ्कजबीजानां स्फाटिकानां च संस्कृताम्॥१९॥

श्री पराशर कहते हैं–गायत्री के १ जप से उस दिन के, १० जप से दिन-रात के, १०० बार के जप से मास पर्यन्त के तथा १००० जप द्वारा वर्ष पर्यन्त के पातक नष्ट हो जाते हैं। एक लक्ष गायत्री जप से उस जन्म के सभी पाप नष्ट होते हैं। दस लाख जप द्वारा तीन जन्म के पातकों का नाश होता है। सौ लक्ष गायत्री जप द्वारा सभी जन्मकृत पातक नष्ट होते हैं। दस शत लक्ष जप से (१० कोटि जप से) विप्रगण मुक्ति तक पा जाते हैं। ब्राह्मण लोग हथेली को अर्द्धमुद्रित सर्पफणाकृति करके तनिक-सा मस्तक झुका कर पूर्वमुख होकर जप करें। अनामिका के मध्यपर्व से प्रारम्भ करके नीचे तथा वामावर्त्त हो तर्जनी के मूल पर्यन्त अंगुली ले जाते हुए जप करें। यही जपक्रम है। अथवा श्वेत कमल के बीज से अथवा स्फटिक की संस्कृत माला लेना चाहिए।।१४-१९।।

कृत्वा वा मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये। संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रसप्तसु संयतः॥२०॥

कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः।
गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम्॥२१॥

ऐसी माला लेकर तीर्थ में किंवा देवालय में जप करे। सुसंयत होकर ७ पीपल के पत्ते पर माला रखे। उसे गोरोचन से लिप्त करके गायत्री पढ़ते हुए जल से स्नान कराये। तदनन्तर उससे १०० गायत्री जप करने से उस माला का शुद्धि संस्कार हो जाता है।।२०-२१।।

अथवा पञ्चगव्येन स्नाता माला च संस्कृता।
अथ गङ्गोदकेनैव स्नाता वाऽतिसुसंस्कृता॥२२॥

एवंक्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु। साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात्॥२३॥

नित्यं नित्यं त्रिसंध्यं च करिष्यसि दिने दिने।
मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा॥२४॥

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥२५॥

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥२६॥

यावज्जीवनपर्यन्तं यस्त्रिसंध्यं करोति च। स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा॥२७॥

अथवा पंचगव्य से स्नान कराने से भी माला शुद्ध हो जाती है। गंगाजल से स्नान कराई माला भी सुसंस्कृत हो जाती है। हे राजर्षि! इस नियम से जो १० लाख गायत्री जप करता है, उसके तीन जन्मों के पातकों का नाश हो जाता है। वह साक्षात् सावित्री का दर्शन लाभ करता है। हे राजन्! तुम

१. क. तचम्पक्वर्णाभां स्फा०।

सर्वदा पवित्रता के साथ प्रातः-मध्याह्न-सायं-नित्य सन्ध्योपासना तीन बार करो। नित्य संध्या रहित अपवित्र व्यक्ति सभी कार्य का अनधिकारी है। वह दिन भर जो भी कार्य (धर्मकार्य) करता है, उसका फल उसे नहीं मिल पाता! किम्बहुना, जो प्रातः सन्ध्या एवं सायं सन्ध्योपासना नहीं करता, उसे शूद्रवत् सभी द्विजकार्य के बाहर करे। जो यावज्जीवन त्रिसन्ध्या अनुष्ठान करते हैं, वे विप्र सदैव तेज तथा तपस्या में सूर्यतुल्य रहते हैं।।२२-२७।।

तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूजा वसुंधरा।
जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः॥२८॥
तीर्थानि च पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः।
ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः॥२९॥

उनके पैर के धूलिकण का स्पर्श करके पृथिवी पावन हो जाती है। वह सन्ध्या से पवित्र द्विज जीवन्मुक्त तथा तेजवान् हो जाता है। उसके स्पर्शमात्र से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। उसे देख कर पाप उसी प्रकार से पलायन करते हैं, जैसे गरुड़ को देखते ही सर्प भाग जाते हैं।।२८-२९।।

न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम्। स्वेच्छया चरतश्चैव त्रिसंध्यरहितस्य च॥३०॥
विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसंध्यरहितो द्विजः। एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥३१॥
हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः। शूद्रान्नभोजी विप्रश्च विषहीनो यथोरगः॥३२॥
शवदाही च शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः। शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः॥३३॥

शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः।
असिजीवी मषिजीवी विषहीनो यथोरगः॥३४॥

जो स्वेच्छाचारी त्रिकाल सन्ध्या-वन्दनादि रहित है, पितृगण उसका प्रदत्त तर्पण जल ग्रहण नहीं करते। देवता उसकी पूजा ही ग्रहण नहीं करते। जो ब्राह्मण विष्णुमन्त्र तथा एकादशी रहित है, जो श्रीहरि को बिना अर्पित किये भोजन करता है, जो ब्राह्मण दूत का अथवा धोबी का काम करता है, जो ब्राह्मण बैल की सवारी करता है, शूद्रान्न भक्षण करता है, शूद्र का शवदाह करता है, जो शूद्रा का पति है, जो शूद्रगण का भोजन पकाता है, शूद्रों से दान लेता है, किंवा शूद्र हेतु यजन करता है, जो ब्राह्मण तलवार से जीविका चलाता है, पटवारी का काम करता है, वह ब्राह्मण विष रहित सर्प जैसा व्यर्थ है।।३०-३४।।

यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः।
भगजीवी वार्धुषिको विषहीनो यथोरगः॥३५॥
यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी।
यो विद्याविक्रयी भूप विषहीनो यथोरगः॥३६॥

सूर्योदये योऽन्नभोजी मत्स्यंभोजी च यो द्विजः।
शिलापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः॥३७॥

जो पति-पुत्र रहित नारी का, ऋतुस्नाता का बनाया अन्न खाता है, पत्नी से व्यभिचार करा कर जीविका चलाता है, ब्याज खाता है, वह ब्राह्मण विषहीन सर्पवत् है। हे राजन्! कन्या विक्रय, प्रभु नाम का विक्रय, विद्या का विक्रय करने वाला विषहीन सर्प जैसा व्यर्थ ब्राह्मण है। जो सूर्योदयकाल में भोजन करता है, मछली खाता है, शालग्राम शिला, प्रस्तर शिवलिंग की पूजा नहीं करता, वह ब्राह्मण विषहीन सर्पवत् है। वह ब्राह्मण होकर भी ब्रह्मण्य रहित है।।३५-३७।।

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वं पूजाविधिक्रमम्।
तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम्॥३८॥
दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालयं मुनिः। राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च॥३९॥

मुनिवर पराशर ने इस प्रकार अश्वपति को सावित्री पूजाविधि तथा वांछित ध्यानादि कहा। तदनन्तर मुनि ने राजा को सभी विषय की शिक्षा दिया तथा अपने आश्रम चले गये। तदनन्तर राजा ने भी इस नियम के अनुसार देवी सावित्री की पूजा द्वारा वरलाभ किया।।३८-३९।।

नारद उवाच

किंवा ध्यानं च सावित्र्याः किंवा पूजाविधानकम्।
स्तोत्रं मन्त्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः॥४०॥
नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम्। वरं च किंवा संप्राप वद सोऽश्वपतिर्नृपः॥४१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे देव! सावित्री का ध्यान तथा पूजाविधि क्या है? उनका स्तव-मन्त्र क्या है, जो राजा को पराशर ने प्रदान किया था? राजा ने वेदमाता सावित्री की पूजा किस विधान से किया था? अश्वपति राजा ने क्या वरलाभ किया? यह कहिये।।४०-४१।।

श्रीनारायण उवाच

ज्येष्ठे [1]शुक्लत्रयोदश्यां शुद्धे काले च संयतः।
व्रतमेतच्चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत्॥४२॥
व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम्। दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं तथा॥४३॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोज्यं च विधिपूर्वकम्।
संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम्॥४४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं— ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी तिथि पर भक्तिभाव के साथ व्रती व्यक्ति शुद्ध काल में सावित्री की पूजा करे। १४ वर्ष तक यह व्रत इस तिथि पर करे। उस समय १४ फल, १४

१. ख. कृष्ण०।

नैवेद्य, पुष्प, धूपादि, वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा भोज्य वस्तु सविधि प्रदान करे। फल तथा आम्रपल्लवयुक्त मंगलघट स्थापना करे।।४२-४४।।

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। संपूज्य पूजयेदिष्टं घट आवाहिते मुने।।४५।।

शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यंदिने च यत्।
स्तोत्रं पूजाविधानं च मन्त्रं च सर्वकामदम्।।४६।।

गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव-पार्वती की पूजा करके उस कलश पर ही इष्टदेवी का आवाहन-पूजन करे। हे मुनिवर! अब यजुर्वेदोक्त माध्यन्दिनी शाखानुरूप सावित्री का ध्यान, स्तोत्र, पूजाविधि तथा सर्वकामनाप्रद मन्त्र कह रहा हूं।।४५-४६।।

तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्त्रसमसुप्रभाम्।।४७।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकारिकाम्।।४८।।

ये देवी तप्त स्वर्ण वर्ण वाली तथा ब्रह्मतेज से अत्यन्त दीप्त हैं। ग्रीष्म के मध्याह्नकालीन सहस्त्रों सूर्यों ऐसी इनकी प्रभा है। इनका मुख मन्द मुस्कान से युक्त है। देवी रत्नाभूषण से भूषित हैं। इन्होंने अग्निशुद्ध (चमकीले) वस्त्रों को धारण किया है। भगवती भक्तों पर कृपालु रहती हैं।।४७-४८।।

सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्तां च जगतां विधेः।
सर्वसंपत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम्।।४९।।

ये देवी सुखप्रदा, मुक्तिप्रदा, शान्त, जगत् रचयिता प्रभु की प्रिया हैं। ये सर्वसम्पत्तिरूपा तथा सर्व सम्पदा प्रदात्री हैं।।४९।।

वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम्।
वेदे बीजस्वरूपां च भजे त्वां वेदमातरम्।।५०।।
ध्यात्वा ध्यानेन चानेन दत्त्वा पुष्पं स्वमूर्धनि।
पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती।।५१।।
दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम्। संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेदेवं देवीं विधानतः।।५२।।
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्।।५३।।
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश।।५४।।

ये देवी वेद की अधिष्ठातृ देवता तथा वेदशास्त्र स्वरूपा हैं। ये वेदों में बीजरूपा हैं। हे वेदमाता! मैं आपका भजन करता हूं। यह ध्यान करके व्रती अपने मूर्द्धा (शिर) पर पुष्प रख कर पुनः ध्यान करके घट में (कलश में) देवी का आवाहन भक्तिभाव से करे। तदनन्तर वेदोक्त मन्त्र से १६ उपचारों

से उनकी पूजा, स्तुति करके सविधि देवी को प्रणाम करे। १. आसन, २. पाद्य, ३. अर्घ्य, ४. स्नानीय, ५. अनुलेप, ६. धूप, ७. दीप, ८. नैवेद्य, ९. ताम्बूल, १०. शीतल जल, ११. वस्त्र, १२. आभूषण, १३. माला, १४. गन्ध, १५. आचमनीय तथा १६. मनोहर शय्या प्रदान करने को १६ उपचार कहा गया है। यही षोडशोपचार पूजा है।।५०-५४।।

दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा। देवाधारं पुण्यदं च मया[1] तुभ्यं निवेदितम्।।५५।।

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया भक्त्या निवेदितम्।।५६।।

(यह षोडशोपचार अर्पण के मन्त्र हैं)-

मैं काष्ठसार तत्व निर्मित किंवा स्वर्णादि धातु निर्मित आसन दे रहा हूं। वह देवगण के बैठने का आधार, पुण्यप्रद है। भक्ति पूर्वक मैं तीर्थ जल का (पाद प्रक्षालनार्थ) पाद्य दे रहा हूं। यह पुण्य देने वाला, प्रीतिवर्द्धक, पूजांग एवं पवित्र है।।५५-५६।।

पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्य निवेदितम्।।५७।।

सुगन्धि धात्रीतैलं च देहसौन्दर्यकारणम्।
मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्।।५८।।

यह पावन अर्घ्य दूर्वा, पुष्प, अक्षत से युक्त है। यह अत्यन्त पुण्य देने वाला तथा शंखजल युक्त है। मैं इसे भक्ति पूर्वक प्रदान कर रहा हूं। मैं आपके स्नानार्थ सुगन्धित आंवले का तेल भक्ति पूर्वक अर्पित कर रहा हूं, जो देह के सौन्दर्य का कारण है। यह स्नानीय मेरे द्वारा भक्ति के साथ अर्पित है। कृपया ग्रहण करें।।५७-५८।।

मलयाचलसंभूतं देहशोभाविवर्धनम्। सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्।।५९।।

मलयाचल में उत्पन्न, देहशोभा विवर्द्धनकारी, सुगन्धित सुखप्रद चन्दन आपको अर्पित है।।५९।।

गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।६०।।

जगतां दर्शनीयं च दर्शनं दीप्तिकारणम्। अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्।।६१।।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्। पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।।६२।।
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया भक्त्या निवेदितम्।।६३।।

यह दिव्यगन्ध धूप अनेक गन्धद्रव्य से बना पुण्यमय प्रीतिप्रद है। यह मेरे द्वारा अर्पित इस धूप को ग्रहण करें। जो जगत् का दर्शन कराने वाला दीप्तिकारक तथा अंधकार नाशक है, वह दीप आपको प्रदान कर रहा हूं। जो तुष्टि-पुष्टि, प्रीतिप्रद, क्षुधा नष्ट करने वाला पुण्य स्वादमय नैवेद्य है, उसे आपको

---

१. ख. नित्यं।

निवेदित किया गया। वह आप ग्रहण करें। अत्यन्त रम्य, उत्तम कर्पूरादि से सुवासित, तुष्टि-पुष्टिप्रद ताम्बूल मैं भक्ति से निवेदित कर रहा हूं। कृपया नैवेद्य ग्रहण करिये।।६०-६३।।

सुशीतलं वासितं च पिपासानाशकारणम्। जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्॥६४॥

आपको सुशीतल, सुगन्धित, पिपासा नष्ट करने का कारण, जगत् जीवन रूप जल अर्पित है। कृपया ग्रहण करें।।६४।।

देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम्। कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥६५॥

काञ्चनादिभिराबद्धं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा। सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥६६॥

देह की तथा सभा की शोभावृद्धि करने वाला कपास का तथा कृमि से बना रेशमी वस्त्र आपको अर्पित है। कृपया स्वीकार करें। स्वर्णादि धातु निर्मित श्रीयुत्, शोभाकारक, सुखप्रद, पुण्यप्रद भूषण स्वीकार करिये।।६५-६६।।

नानापुष्पलताकीर्णं बहुभासा समन्वितम्।
प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं वे प्रतिगृह्यताम्॥६७॥

सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः। पुण्यप्रदश्च गन्धाढयो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम्॥६८॥

शुद्धं शुद्धिप्रदं चैव पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
रम्यमाचमनीयं च मया दत्तं प्रतिगृह्यताम्॥६९॥

नाना पुष्प लतायुक्त, चन्दनयुक्त, अत्यन्त प्रकाशित, प्रीतिप्रद, पुण्यप्रद यह माला ग्रहण करिये। सर्वमंगलरूप, सर्वमंगलप्रद, पुण्यप्रद, उत्तम मंगल गन्धयुक्त यह गन्ध ग्रहण करिये। शुद्ध, शुद्धप्रद, पुण्यप्रद, महाप्रीतिप्रद यह रम्य आचमनीय आपको प्रदान कर रहा हूं। कृपया ग्रहण करें।।६७-६९।।

रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्। सुखदं पुण्यदं चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥७०॥

नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्। फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्॥७१॥

उत्तम रत्न विरचित पुष्प तथा चन्दन युक्त सुखद, पुण्यप्रद सुन्दर शय्या अर्पित कर रहा हूं। कृपया स्वीकार करिये। अनेक वृक्षों से उत्पन्न, नाना रूपयुक्त, भोगरूप फल, जो दाता को फल देते हैं, कृपया ग्रहण करिये।।७०-७१।।

सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम्। भूषणं भूषणानां च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥७२॥

विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्। पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्॥७३॥

द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः।
ततः प्रणम्य विप्राय व्रती दद्याच्च दक्षिणाम्॥७४॥

"ललाट की शोभा बढ़ाने वाला उत्तम रम्य सिन्दूर, जो भूषणों का भी भूषण है, उसे ग्रहण करिये। विशुद्ध ग्रन्थि (गांठ) से युक्त पुण्य सूत्रविनिर्मित पवित्र वेदमन्त्र से मंत्रित यज्ञोपवीत ग्रहण

करिये।" इस प्रकार प्रत्येक वस्तु को इन मूल मन्त्र से प्रदान करके सुधी व्रती स्तोत्र पाठ करे। तदनन्तर विप्रगण को प्रणामोपरान्त दक्षिणा दान करे।।७२-७४।।

सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च। लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः।।७५।।

श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा।

तदनन्तर सावित्री का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करके स्वाहा कहे। पूर्व में लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं) तथा कामबीज (क्लीं) कहे। यह अष्टाक्षर मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है—"श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा"।।७५।।

माध्यंदिनोक्तं स्तोत्रं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम्।
विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते।।७६।।
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा।
न याति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोकं तु नारद।।७७।।

ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या पर्यष्टौद्वेदमातरम्। तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चक्रमे सती।।७८।।

माध्यन्दिन शाखोक्त जो सर्वकामना फलदायक तथा विप्रों का जीवनरूप स्तोत्र है, वह कहता हूं। सुनो। कृष्ण के आदेश से ब्रह्मा ने गोलोक में पूर्वकाल में इसी से सावित्री ने की स्तुति किया था। तभी से सावित्री देवी सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा के प्रति अनुरक्त हो गईं।।७६-७८।।

ब्रह्मोवाच

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात्समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि।।७९।।
तेजः स्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि।।८०।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे देवी! तुम नारायण रूपा, नारायणी, सनातनी हो। तुम नारायण से ही उत्पन्न हो। हे सुन्दरी! मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ! तुम परम तेजरूपा, परमानन्दरूपा, द्विजों की जातिरूपा हो। हे सुन्दरी! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ!।।७९-८०।।

नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि।
सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि।।८१।।

सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि।।८२।।
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे। ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि।।८३।।

हे देवी! तुम नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्दस्वरूपा हो। तुम तो सर्वमंगल रूपा हो। हे सुन्दरी! प्रसन्न हो जाओ। हे देवी! तुम सर्वस्वरूपा, विप्रों हेतु मन्त्रसार रूपा, परात्परा हो। तुम सुखप्रदा, मोक्षप्रदा हो। हे सुन्दरी! तुम प्रसन्न हो जाओ! हे देवी! तुम विप्रों के पापरूपी ईंधन को जलाने वाली प्रज्वलन्त वह्निशिखा हो। तुम ब्रह्मतेज प्रदायिनी हो। हे सुन्दरी! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ!।।८१-८३।।

कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते द्विजः। तत्ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति।।८४।।

शरीर, मन, वाणी से द्विजगण जो पातक करते हैं, वह तुम्हारे स्मरणमात्र से भस्मीभूत हो जाता है।।८४।।

इत्युक्त्वा जगतां धाता तत्र तस्थौ च संसदि।
सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा।।८५।।
अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः। ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम्।।८६।।

यह कहकर जगत्स्रष्टा ब्रह्मा वहां सभा में मौन होकर बैठ गये। तब सावित्री भी ब्रह्मा के साथ ब्रह्मलोक चली गयीं। इसी स्तवराज से राजा अश्वपति ने भगवती सावित्री की स्तुति किया था। इसके प्रभाव से राजा को सावित्री का दर्शन एवं वांछित वरलाभ हो सका।।८५-८६।।

स्तवराजमिदं पुण्यं[1] त्रिःसंध्यायां च यः पठेत्।
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं तल्लभेद्ध्रुवम्।।८७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्युपाख्याने सावित्रीस्तोत्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

जो मनुष्य त्रिसन्ध्या काल में यह स्तवराज पढ़ता है, वह निश्चित रूप से चारों वेदपाठ का फललाभ करता है।।८७।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

सावित्री जन्म, सावित्री-सत्यवान् का विवाह, सत्यवान की मृत्यु, यम-सावित्री संवाद

श्रीनारायण उवाच

स्तुत्वा सोऽश्वपतिस्तेन संपूज्य विधिपूर्वकम्। ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम्।।१।।
उवाच सा तं राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती।
यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।।२।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—राजा अश्वपति ने इस प्रकार से सविधि पूजा तथा स्तवपाठ करके

[1] क. ०ण्यं संध्यां कृत्वा च।

सहस्र सूर्य समप्रभ सावित्री देवी का दर्शन किया। ये सती सावित्री प्रसन्ना होकर अपनी अंगप्रभा से दिक्मण्डल को उद्भासित करके राजा से ऐसे कहा जिस प्रकार पुत्र से माता कहती है।।१-२।।

सावित्र्युवाच

जानामि ते महाराज यत्ते मनसि वर्तते।
वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम्।।३।।
साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी।
त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति च ते क्रमात्।।४।।

देवी सावित्री कहती हैं-हे राजन्! मैं तुम्हारी मनोगत कामना जानती हूं। आपकी पत्नी जो चाहती है, वह भी मुझे ज्ञात है। मैं उसे निश्चित रूप से पूर्ण करूंगी। तुम्हारी साध्वी पत्नी एक कन्या चाहती है और तुम पुत्र चाहते हो। अतः क्रमशः दोनों की ही अभिलाषा पूर्ण होगी।३-४।।

इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह।
राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह।।५।।
आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला [1]कला।
सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः।।६।।

महादेवी सावित्रीदेवी यह कहकर ब्रह्मलोक चली गयीं। राजा भी अपने गृह लौट गये। कुछ दिनों बाद दम्पति को एक कन्या उत्पन्न हो गयी। राजा ने उसका नाम सावित्री रखा।।५-६।।

कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने।
रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा।।७।।

सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा। सावित्री[2] सत्यवन्तं च नानागुणसमन्वितम्।।८।।
राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषितम्। स च सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ।।९।।

वह कन्या समयानुसार दिनों-दिन बढ़ती गयी। वह शुक्लपक्ष की चन्द्रकला के समान रूप-यौवन सम्पन्ना थी। उस सावित्री ने राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् का पति रूप से वरण किया। वह नाना गुणयुक्त था। राजा ने अपनी कन्या समस्त रत्नाभरण से भूषित करके सत्यवान् को प्रदान किया और सत्यवान् भी कौतुक पूर्वक उसे अपने घर ले गया।।७-९।।

स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः। जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया।।१०।।
जगाम तत्र सावित्री तत्पश्चाद्दैवयोगतः। निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान्।।११।।
यमस्तज्जीवपुरुषं बध्वाऽङ्गुष्ठसमं मुने। गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती।।१२।।

---

१. क. लया।
२. क. सत्यवर्णं सत्यशीलं ना०।

पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमिनीपतिः।
उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान्॥१३॥

एक वर्ष व्यतीत होने पर सत्यवादी सत्यवान् पितृ आज्ञा के अनुसार वन में प्रसन्न मन से फल-मूल तथा काष्ठ लेने गया। दैवयोग से सावित्री भी उसका अनुसरण करती वन में गई। दैवयोग से वहां सत्यवान् वृक्ष से गिरा तथा उसके प्राण निकल गये। हे मुनिवर! यमगण उसके अंगुष्ठमय देह को लेकर यमपुरी गमन करने लगे, तथापि सती सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। जब संयमिनी पति साधुप्रवर महान् यम ने सावित्री को देखा, तब वे मधुर वाणी से कहने लगे--।।१०-१३।।

यम उवाच

अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम्।
यदि यास्यसि कान्तेन सार्धं देहं तदा त्यज॥१४॥
गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्।
देहं च यमलोकं च नश्वरं नश्वरः सदा॥१५॥
पूर्णश्च भर्तुस्ते कालो ह्यभवद्भारते सति।
स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान्याति मद्गृहम्॥१६॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते॥१७॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥१८॥

यम कहते हैं--हे सावित्री! तुम मानुषी देह के साथ कहां जा रही हो? यदि तुम पति का अनुगमन करना चाहो, तब अपना देह त्यागो। कोई भी इस नश्वर पांचभौतिक शरीर के साथ कदापि यमलोक नहीं जा सकता। भारत में तुम्हारे पति का आयुकाल पूर्ण हो गया। अब अपने कर्मफल का भोग करने सत्यवान् मेरे लोक जा रहा है। जन्तु कर्म से ही उत्पन्न होते हैं। कर्म के कारण ही वे विलीन हो जाते हैं। सभी सुख-दुःख, भय-शोक कर्म से ही उत्पन्न होता है। प्राणीगण कर्म से ही इन्द्र होते हैं, अपने कर्मफल से ही ब्रह्मपुत्र होते हैं। कर्म द्वारा ही व्यक्ति हरि का दासत्व पाकर जन्मादि रहित हो जाते हैं।।१४-१८।।

स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम्।
लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम्॥१९॥
कर्मणा ब्राह्मणत्वं च मुक्तत्वं च स्वकर्मणा। सुरत्वं मनुजत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः॥२०॥

अपने कर्म के प्रभाव से ही सर्वसिद्धि, अमरत्व, विष्णु की चारों सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होती है। मनुष्य कर्म द्वारा ही पहले ब्राह्मणत्व पाकर मुक्ति पर्यन्त प्राप्त करते हैं। वे कर्म द्वारा ही देवत्व, मनुष्यत्व, राजेन्द्रत्व आदि प्राप्त करते हैं।।१९-२०।।

कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वं च स्वकर्मणा।
कर्मणा क्षत्रियत्वं च वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥२१॥
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः॥२२॥
स्वकर्मणा जङ्गमत्वं स्थावरत्वं स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा च शैलत्वं वृक्षत्वं च स्वकर्मणा॥२३॥
स्वकर्मणा पशुत्वं च पक्षित्वं च स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा क्षुद्रजन्तुः कृमित्वं च स्वकर्मणा॥२४॥
स्वकर्मणा च सर्पत्वं गन्धर्वत्वं स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा राक्षसत्वं किन्नरत्वं स्वकर्मणा॥२५॥
स्वकर्मणा च यक्षत्वं कूष्माण्डत्वं स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा च प्रेतत्वं वेतालत्वं स्वकर्मणा॥२६॥
भूतत्वं च पिशाचत्वं डाकिनीत्वं स्वकर्मणा।
दैत्यत्वं दानवत्वं चाप्यसुरत्वं स्वकर्मणा॥२७॥
कर्मणा पुण्यवाञ्जीवो महापापी स्वकर्मणा।
कर्मणा सुन्दरोऽरोगी महारोगी च कर्मणा॥२८॥

प्राणीगण स्वकर्मानुसार मुनीन्द्रत्व, तपस्वित्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व, अन्त्यजत्व तथा म्लेच्छत्व प्राप्त करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। स्थावरत्व, जंगमत्व, शैलत्व, वृक्षत्व, पशुत्व, पक्षित्व, क्षुद्र जन्तुत्व, कृमित्व, सर्पत्व, गन्धर्वत्व, राक्षसत्व, किन्नरत्व, यक्षत्व, कूष्माण्डत्व, प्रेतत्व, वेतालत्व, पिशाचत्व, डाकिनित्व, दैत्यत्व, दानवत्व, असुरत्व आदि जाति स्वकर्म द्वारा ही प्राप्त होती हैं। जीवगण स्वकर्मानुसार ही पुण्यात्मा अथवा पापात्मा होते हैं। कर्म से ही व्यक्ति सुन्दर, रोग रहित अथवा महारोगी होता है।।२१-२८।।

कर्मणा चाङ्गहीनत्वं बधिरश्च स्वकर्मणा।
कर्मणा चान्धः काणश्च कुत्सितश्च स्वकर्मणा॥२९॥
कर्मणा नरकं यान्ति जीवाः स्वर्गं स्वकर्मणा।
कर्मणा शक्रलोकं च सूर्यलोकं स्वकर्मणा॥३०॥

जीव कर्म से ही नरक जाता है अथवा कर्म से ही स्वर्गगामी होता है। कर्म से ही वह इन्द्रलोक अथवा सूर्यलोक जाता है।।२९-३०।।

कर्मणा चन्द्रलोकं च वह्निलोकं स्वकर्मणा।
कर्मणा वायुलोकं च कर्मणा वरुणालयम्॥३१॥

[१]तथा कुबेरलोकं च नरो याति स्वकर्मणा।
कर्मणा ध्रुवलोकं च शिवलोकं स्वकर्मणा॥३२॥
याति नक्षत्रलोकं च सत्यलोकं स्वकर्मणा।
जनोलोकं तपोलोकं महार्लोकं स्वकर्मणा॥३३॥
स्वकर्मणा च पातालं [२]ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा।
कर्मणा भारतं पुण्यं [३]सर्वेषामीप्सितं परम्॥३४॥

वह प्राणी अपने कर्म से ही चन्द्रलोक, अग्निलोक, वायुलोक, वरुणलोक, कुबेर लोक जाता है। वह स्वकर्म से ही ध्रुवलोक, शिवलोक, नक्षत्रलोक, सत्यलोक, जनलोक, तपोलोक, महर्लोक, पाताल, ब्रह्मलोक जाता है। कर्म द्वारा ही उसे परम ईप्सित भारत में जन्मलाभ होता है।।३१-३४।।

कर्मणा याति वैकुण्ठं गोलोकं च निरामयम्।
कर्मणा चिरजीवी च [४]क्षणायुश्च स्वकर्मणा॥३५॥
कर्मणा कोटिकल्पायुः क्षीणायुश्च स्वकर्मणा।
जीवसंसारमात्रायुर्गर्भे मृत्युः स्वकर्मणा॥३६॥
इत्येवं कथितं सर्वं मया[५] तत्त्वं च सुन्दरि।
कर्मणा ते मृतो भर्ता गच्छ वत्से यथासुखम्॥३७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० सावित्रीयमसंवादे कर्मणः सर्वहेतुत्वप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

प्राणी कर्म से ही वैकुण्ठ, निरामय गोलोक जाता है। कर्म से ही वह चिरायु अथवा अल्पायु होता है। कर्म से ही कोटि कल्प की आयु अथवा क्षीण आयु मिलती है। किसी को संसार में जन्म लेने मात्र की आयु, तो किसी को गर्भावस्था में मृत्यु मिलती है। हे सुन्दरी! यह मैंने तुमसे सभी तत्व कहा। हे वत्से! तुम्हारा पति अपने कर्म से मरा है। तुम सुख पूर्वक जाओ।।३५-३७।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

---

१. क. ब्रह्मकु०।
२. क. रसातलं।
३. ख. ०वेंप्सितवरप्रदम्।
४. क. च लक्षायु०।
५. क. महत्त०।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

यम-सावित्री संवाद, कर्म विवेचना

श्रीनारायण उवाच

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता। तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी॥१॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–यमराज का यह वचन जब सावित्री ने सुना, तब परम भक्ति पूर्वक यम की स्तुति करके उस मनस्विनी ने कहा–॥१॥

सावित्र्युवाच

किं कर्म वा शुभं धर्मराज किंवाऽऽशुभं नृणाम्।
कर्म निर्मूलयन्त्येव केन वा साधवो जनाः॥२॥
कर्मणां बीजरूपः कः को वा कर्मफलप्रदः। किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च॥३॥
को वा कर्मफलं भुङ्क्ते को वा निर्लिप्तं एव च।
को वा देही कश्च देहः को वाऽत्र कर्मकारकः॥४॥
किं वा ज्ञानं मनो बुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम्।
कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः॥५॥
भोक्ता भोजयिता को वा को भोगः का च निष्कृतिः।
को जीवः परमात्मा कस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि॥६॥

सावित्री कहती हैं–हे धर्मराज! मनुष्य हेतु कौन-सा कर्म शुभ है, कौन अशुभ है? साधुगण किस प्रकार से कर्म का उच्छेदन करते हैं? कर्मबीज क्या हैं? कौन है, जो कर्मफल देता है? किस प्रकार से कर्मफल उत्पन्न होता है? इसका हेतु क्या है? कौन कर्मफल प्रदाता है? कौन कर्म में लिप्त नहीं है? देही कौन है? इस देह में कर्म करने वाला कौन है? विज्ञान-मन-बुद्धि क्या है? देहधारी का प्राण क्या है? प्राणीगण की इन्द्रियां क्या हैं? उनका क्या लक्षण है? उनका देवता कौन है? कौन भोजनकर्त्ता है? भोक्ता कौन है, भोजयिता कौन है, भोग क्या है? इनसे निष्कृति (मुक्ति) का क्या उपाय है? जीव कौन है, परमात्मा कौन है? यह सब विषय कहिये।।२-६।।

यम उवाच

[1]वेदेन विहितं कर्म तन्मन्ये मङ्गलं परम्। अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च॥७॥
अहैतुकी विष्णुसेवा सङ्कल्परहिता सताम्। [2]कर्मनिर्मूलनात्मा वै सा चैव हरिभक्तिदा॥८॥

१. क. वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म तन्मङ्ग॰।
२. क. ॰निर्मलरूपा च सा चै॰।

हरिभक्तो नरो यश्च स च मुक्तः श्रुतौ श्रुतम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥९॥
मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता।
निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम्॥१०॥
हरिभक्तिस्वरूपां च मुक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः।
अन्ये निर्वाणरूपां च मुक्तिमिच्छन्ति साधवः॥११॥

यम कहते हैं–हे सावित्री! वेदविहित कर्म ही मंगलप्रद है। जो अवैदिक है, वही अशुभप्रद है। साधुगण द्वारा कृत अहैतुकी विष्णुसेवा जो संकल्प (कामना) रहित है, वही कर्म को निर्मूल करने वाली तथा हरिभक्तिप्रदा है। हरिभक्त मानव ही जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोक तथा भय रहित एवं मुक्त होते हैं। यही शास्त्र में प्रसिद्ध है। हे साध्वी! सर्वसम्मत शास्त्रोक्त मुक्ति द्विविध है। एक मुक्ति मनुष्यों को निर्वाणपद प्रदा है, अन्य मुक्ति है हरिभक्तिप्रदा। वैष्णव लोग केवल हरिभक्तिरूप मुक्ति ही चाहते हैं। अन्य साधुगण निर्वाण मुक्ति चाहते हैं।।७-११।।

कर्मणो बीजरूपश्च संततं तत्फलप्रदः। कर्मरूपश्च भगवाञ्छ्रीकृष्णः प्रकृतेः परः॥१२॥
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति।
जीवः कर्मफलं भुङ्क्त आत्मा निर्लिप्त एव च॥१३॥
आत्मनः प्रतिबिम्बं च देही जीवः स एव च।
पाञ्चभौतिकरूपश्च देहो नश्वर एव च॥१४॥
पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च। एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिः सृष्टिविधौ हरेः॥१५॥

प्रकृति से अतीत प्रभु कृष्ण ही समस्त कर्म के बीज हैं। वे ही कर्मफलदाता तथा कर्मरूप हैं। हे सती! श्रीकृष्ण ही कर्म के हेतु हैं। उनसे ही कर्म उत्पन्न होता है। जीव तो कर्मफल का भोग करता है। आत्मा सबसे निर्लिप्त है। हे पुत्री! इस आत्मा का प्रतिबिम्ब जो जीव है, वही देही कहा गया है। देह है पञ्चभूतमय तथा नश्वर। परमेश्वर ने सृष्टि काल में सृष्टि विधान द्वारा पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश से सृष्टिसूत्र गठित किया था।।१२-१५।।

कर्ता भोक्ता च देही च स्वात्मा भोजयिता सदा।
भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च॥१६॥
सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत्।
विषयाणां विभागानां भेदबीजं च कीर्तितम्॥१७॥
बुद्धिर्विवेचनारूपा ज्ञानसंदीपनी श्रुतौ। वायुभेदाश्च वै प्राणा बलरूपाश्च देहिनाम्॥१८॥
इन्द्रियाणां वै प्रवरमीश्वराणां समूहकम्। प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम्॥१९॥

अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम्।
लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम्॥२०॥

जीवरूप देही ही कर्म का कर्त्ता-भोक्ता है। परमात्मा ही भोग कराने वाला कहा गया है। ऐश्वर्यभेद के कारण ज्ञान एवं भोग अनेक प्रकार के होते हैं। यह ज्ञान ही सदा असत् भेद से तथा विषय विभाग से भेद का बीज है। हे साध्वी! विवेचन करना ही बुद्धि है। यह बुद्धि ही ज्ञान की जननी है। देहीगण की बलस्वरूपा वायु ही विशेष रूप से प्राण है। इन्द्रियों से श्रेष्ठ है ईश्वरांश समूह मन। यह मन ही देहीगण के कर्म का दुर्निवार प्रेरक है। यह मन अनिरुप्य, अदृश्य तथा ज्ञानविशेष रूप से प्रसिद्ध है। नेत्र, काम, घ्राण, त्वक्, जिह्वा ये इन्द्रियां हैं।।१६-२०।।

अङ्गिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम्। रिपुरूपं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा॥२१॥
सूर्यो वायुश्च पृथिवी वाण्याद्या देवताः स्मृताः।
प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परिकीर्तितः॥२२॥

मन ही अंगी (शरीरधारी) लोगों का अंग तथा सर्वकर्म प्रेरक है। मन जब इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्त करता है, तब यह व्यक्ति को दुःखी करता है। तब यही शत्रु है। उत्तम कार्य में प्रवृत्त करने पर वही सुखद है। सूर्य, वायु, पृथिवी, वाणी आदि ही देवता हैं। ये इन्द्रिय देवता हैं। जो प्राण-देहादि को धारण करे, वही जीव है।।२१-२२।।

परमात्मा परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
कारणं कारणानां च श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम्॥२३॥
इत्येवं कथितं सर्वं [1]मया पृष्टं यथागमम्।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम्॥२४॥

भगवान् कृष्ण स्वयं परमात्मा, परमब्रह्म, निर्गुण तथा प्रकृति से परे हैं। वे सर्वकारण के भी कारण हैं। हे पुत्री! यह मैंने आगम शास्त्रानुरूप तुम्हारी जिज्ञासा का उत्तर दे दिया। यह ज्ञानीगण के लिये गानरूप है। हे पुत्री! अब तुम सुख पूर्वक जाओ।।२३-२४।।

सावित्र्युवाच

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं बुधम्।
प्रश्नं यद्यत्करोमि त्वां तद्भवान्वक्तुमर्हति॥२५॥

देवी सावित्री कहती हैं—मैं पति को तथा ज्ञानसागररूप आपको छोड़ कर कहां जाऊं? अब आप मेरे पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दीजिये।।२५।।

कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा यम।
केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः॥२६॥

---

१. क. त्वया।

केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्धरेः।
केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा॥२७॥
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा।
केन वा कर्मणा दुःखी केन वा कर्मणा सुखी॥२८॥
अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा।
अन्धो वा कृपणो[१] वाऽपि प्रमत्तः केन कर्मणा॥२९॥
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः[२] केन वा नरघातकः।
केन[३] सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम्॥३०॥

हे यमदेव! जीवगण किस कर्म द्वारा किस योनि को प्राप्त करते हैं? वे किस कर्म से स्वर्ग तो, किस कर्म से नरकगामी होते हैं? हे देव! किस कर्म से मुक्तिलाभ होता है? किस कर्म से हरिभक्ति मिलती है? किस कर्म से मनुष्य रोगी होता है, किस कर्म से व्यक्ति निरोग होता है? किस-किस कर्म से वह दीर्घायु, अल्पायु, सुखी तथा दुःखी होता है? प्राणीगण किस कर्म से अंगहीन, बधिर, काने, अन्धे होते हैं? वे प्रमत्त, क्षिप्त, लुब्ध अथवा नरघातक किस कर्म से होते हैं? किस कर्म से उनको सालोक्य आदि चारों सिद्धि मिलती है?।।२६-३०।।

केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा। स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा॥३१॥
गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टं निरामयम्। नरकं वा कतिविधं किंसंख्यं नाम किं तथा॥३२॥
को वा कं नरकं याति कियन्तं तेषु तिष्ठति। पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजायते॥३३॥

किस कर्म से मनुष्य ब्राह्मणत्व, तपस्वित्व तथा स्वर्गभोगादि पाते हैं? किस कर्म से उनको वैकुण्ठ प्राप्ति होती है? हे ब्रह्मन्! किस कार्य द्वारा वे सर्वोत्कृष्ट निरामय गोलोक जाते हैं? नरक कितने प्रकार के हैं? उनकी संख्या कितनी है? उनके क्या नाम हैं? हे देव! किस कुकर्म से कौन नरक मिलता है? तथा उसे कितने दिन किस नरक में रहना पड़ता है? पापीगण किस कर्म से कौन-सा रोग झेलते हैं?।।३१-३३।।

यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० कर्मविपाके यमोत्तयनन्तरं सावित्रीप्रश्नो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

हे पिता! मैं जो जिज्ञासा कर रही हूं, उन सब विषयों को कृपा पूर्वक कहिये।।३४।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

१. क. पिङ्गलो वा।
२. ख. ०कश्चैव के०।
३. ०न स्वर्गम०।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

शुभ कर्मविपाक का वर्णन, यम से सावित्री को वरलाभ होना

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः। प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं च जीविनाम्॥१॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! धर्मराज यम ने सावित्री का यह वाक्य सुना, तब वे विस्मयापन्न हो गये। अन्ततः उन्होंने प्राणीगण के कर्मविपाक का वर्णन करना हंसते हुए प्रारम्भ किया॥१॥

यम उवाच

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना। ज्ञानं ते सर्वविदुषां योगिनां ज्ञानिनां परम्॥२॥
सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्रीकला सति। प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा शुभे॥३॥
यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि।
यथा राधा च श्रीकृष्णे सावित्री ब्रह्मवक्षसि॥४॥
धर्मोरसि यथा मूर्तिः शतरूपा मनौ यथा। कर्दमे देवहूतिश्च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा॥५॥

यमदेव कहते हैं–हे पुत्री! तुम इस समय मात्र १२ वर्षीया कन्या हो, तथापि तुम्हारा ज्ञान तो पुरातन ज्ञानी तथा योगीगण से भी अधिक है। हे शुभे! राजा अश्वपति ने पूर्वकाल में तप करके भगवती सावित्री के वरदान के प्रभाव से उनके ही अंश से उत्पन्न सतीश्रेष्ठा तुमको प्राप्त किया था। हे पुत्री! जिस प्रकार से श्रीपति की गोद में लक्ष्मी, भव (शिव) के वक्षःस्थल पर भवानी, कृष्ण के वक्ष पर राधिका, ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर देवी सावित्री, धर्म के वक्ष पर मूर्त्ति, मनु के वक्ष पर शतरूपा स्थित हैं, कर्दम के वक्ष पर देवहूति, वसिष्ठ के वक्ष पर अरुन्धती स्थित हैं॥२-५॥

अदितिः कश्यपे चापि यथाऽऽहल्या च गौतमे।
यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी॥६॥
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने। यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञा दिवाकरे॥७॥
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा। यथा धरा वराहे च देवसेना च कार्त्तिके॥८॥
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च भव सत्यवति प्रिये। इति तुभ्यं वरं दत्तमपरं च यदीप्सितम्।
वृणु देवि महाभागे सर्वं दास्यामि निश्चितम्॥९॥

जैसे कश्यप के वक्ष पर अदिति, गौतम के वक्ष पर अहल्या, इन्द्र के वक्ष पर शची, चन्द्र के वक्ष पर रोहिणी, कामदेव के वक्ष पर रति देवी, अग्नि के वक्ष पर स्वाहा, पितृगण के साथ स्वधा, सूर्य के साथ संज्ञा, वरुण के अंक में वरुणानी, यज्ञ के अंक में दक्षिणा, भगवान् वराह के अंक में धरती,

कार्त्तिकेय के साथ देवसेना शोभायमान है, तदनुरूप तुम सत्यवान् के साथ उसकी परम प्रिया तथा सौभाग्यवती होकर स्थित रहो। यह मेरा वर है। हे देवी! महाभागे! इस वर के साथ और भी जो वर पाने की इच्छा हो, वह मैं निश्चित रूप से प्रदान करूंगा।।६-९।।

सावित्र्युवाच

सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम। भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम्।।१०।।
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वसुरस्य च चक्षुषी। राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेवं मदीप्सितम्।।११।।

सावित्री कहती हैं–हे महाभाग! मुझे यह वर दीजिये कि सत्यवान् के औरस से मेरे १०० पुत्र उत्पन्न हों। मेरे पिता के १०० पुत्र हों। मेरे श्वसुर को नेत्रलाभ हो (जो अंधे हैं)। उनको उनका राज्य पुनः मिले। यह वर भी दीजिये।।१०-११।।

अन्ते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम्। समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत्प्रभो।।१२।।
जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं च मे।
विश्वविस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।।१३।।

हे जगत्प्रभो! मैं अपने पति के साथ एक लाख वर्ष पर्यन्त रह कर, तब पति सहित विष्णुलोक गमन करूं, यह वर भी प्रदान करिये। हे प्रभो! मैं प्राणीगण के कर्मविपाक के सम्बन्ध में सुनने हेतु अत्यन्त उत्सुक हूं। साथ ही आप मुझे विश्वविस्तार बीज भी बतलाने की कृपा करें।।१२-१३।।

यम उवाच

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव।
जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय।।१४।।
शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते। पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते जनोः।।१५।।

यम कहते हैं–हे महासाध्वी! तुम्हारी समस्त मानसिक अभिलाषा पूर्ण हो। अभी मैं जीवगण के कर्मविपाक का वर्णन कर रहा हूं। श्रवण करो। मनुष्य में शुभ-अशुभ कर्मों का भारत में जन्म होता है। यहीं पर मनुष्य को कर्मभोग करना होता है। अन्यत्र कर्मभोग नहीं होता!।।१४-१५।।

सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः। नराश्च कर्मजनका न सर्वे समजीविनः।।१६।।
विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु। शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च।।१७।।
विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनिषु। शुभाशुभं भुञ्जते च कर्म पूर्वार्जितं परम्।।१८।।

देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य आदि सभी कर्म के अधीन हैं। कोई भी स्वेच्छा से कर्मफल नहीं भोगता, कृतकर्म का फल भोगना ही पड़ता है। साथ ही सभी का जीवन एक जैसा नहीं होता। विशिष्ट जीवगण सभी योनि में कर्मफल भोग करते हैं। विशेष करके मानव सभी योनि में कर्मानुरूप भ्रमण करता है। अर्थात् मनुष्य योनि में ही शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं। इसका फलभोग

कर्मानुसार स्वर्ग तथा नरक में मिलता है। जिसने पूर्व में जैसा कर्म अर्जित किया है, तदनुरूप शुभाशुभ कर्मफल भोगेगा।।१६-१८।।

शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव च। कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषु च॥१९॥

कर्मनिर्मूलने मुक्तिः सा चोक्ता द्विविधा मता।
निर्वाणरूपा सेवा च कृष्णस्य परमात्मनः॥२०॥

शुभ कर्म के फलस्वरूप प्राणी स्वर्गादि उत्तम लोकों में जाता है। अशुभ कर्म के फलस्वरूप उसे नरकगामी होना पड़ता है। कर्म का निर्मूल होना मुक्ति है। यह दो प्रकार की होती है। प्रथम है निर्वाण मुक्ति। अन्य हैं परमात्मा कृष्ण की सेवारूपी।।१९-२०।।

रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा।
दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम्॥२१॥
अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा।
सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा॥२२॥

सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि। सुदुर्लभं सुभोग्यं च पुराणेषु श्रुतिष्वपि॥२३॥

प्राणी कुकर्म करने के कारण रोगी, क्षीणायु, दुःखी होता है। शुभ कर्म करने से वह दीर्घायु होता है तथा पुण्यकर्मा सुखी होता है। यह निश्चित है। कुत्सित कर्मा प्राणी अन्ध, बधिर, अंगहीन होता है। सर्वोत्कृष्ट कर्मा व्यक्ति सिद्धिलाभ करता है। हे सुन्दरी! इस प्रकार मैंने सामान्य कर्मफल कहा। अब विशेष फल सुनो। इनको श्रुति तथा पुराण में दुर्लभ तथा सुभोग्य कहा है।।२१-२३।।

दुर्लभा मानवी जातिः सर्वजातिषु भारते।
सर्वाभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु॥२४॥
विष्णुभक्तो द्विजश्चैव गरीयान्भारते ततः।
निष्कामश्च सकामश्च वैष्णवो द्विविधः सति॥२५॥

हे साध्वी! मानव जाति में जन्म होना तथा भारत में जन्म होना दुर्लभ कहा गया है। सभी से ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं। उनको समस्त कर्मों में प्रशस्त कहा गया है। भारतवर्ष में विष्णुभक्त द्विजगण सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं। वैष्णव दो प्रकार के होते हैं। यथा–निष्काम तथा सकाम।।२४-२५।।

सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च।
कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः॥२६॥
स याति देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निरामयम्।
पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिणां सति॥२७॥

ये सेवन्ते च द्विभुजं कृष्णमात्मानमीश्वरम्। गोलोकं यान्ति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः॥२८॥

ये च नारायणं भक्ताः सेवन्ते च चतुर्भुजम्।
वैकुण्ठं यान्ति ते सर्वे दिव्यरूपविधारिणः॥२९॥

इन दोनों वैष्णवों में निष्काम प्रधान हैं। सकाम भक्त कर्मयोगी होता है। निष्काम भक्त निरुपद्रव होते हैं। हे सती! निष्काम भक्तों का पुनः संसार में नहीं आना होता। वे देहान्तोपरान्त निरामय विष्णुपद लाभ कर लेते हैं। जो लोग परमात्मा ईश्वर द्विभुज श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं, वे भक्त दिव्यरूपी होकर गोलोक जाते हैं। जो भक्त चतुर्भुज नारायण की सेवा करते हैं, वे दिव्य रूपधारी होकर वैकुण्ठ जाते हैं।।२६-२९।।

सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च। भारते पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु॥३०॥

कालेन ते च निष्कामा भविष्यन्ति क्रमेण च।
भक्तिं च निर्मलां बुद्धिं तेभ्यो दास्यति निश्चितम्॥३१॥
ब्राह्मणद्वैष्णवादन्ये सकामाः सर्वजन्मसु।
न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः॥३२॥
तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति।
ते यान्ति ब्रह्मलोकं च पुनरायान्ति भारतम्॥३३॥

जो सकाम वैष्णवगण हैं, वे वैकुण्ठ जाकर कालान्तर में पुनः भारत में द्विजाति में जन्म लेते हैं। अन्ततः कालान्तर में वे भी निष्काम भक्त के रूप में परिवर्त्तित हो जाते हैं। भगवान् उनको भी निश्चित रूप से निर्मला बुद्धि तथा अपनी भक्ति प्रदान कर देते हैं। जो ब्राह्मण सकाम तथा विष्णुभक्ति रहित हैं, वे सभी योनि में भ्रमण करते हैं। उनकी बुद्धि कदापि निर्मल नहीं हो पाती। हे सती! जो ब्राह्मण तीर्थवासी तथा तपःनिरत हैं, वे ब्रह्मलोक जाकर कालान्तर में पुनः भारत में जन्म लेते हैं। (जो तीर्थवासी न होकर स्वधर्म तत्पर हैं, वे सत्यलोक जाकर कालान्तर में पुनः भारत में जन्म ग्रहण करते हैं। यह पाठान्तर है।)।।३०-३३।।

स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारतं। व्रजन्ति सूर्यलोकं तं पुनरायान्ति भारतम्॥३४॥

स्वधर्मनिरता विप्राः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः।
तं यान्ति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारतम्॥३५॥
ये विप्रा अन्यदेवेष्टाः स्वधर्मनिरताः सति।
ते गत्वा शक्रलोकं च पुनरायान्ति भारतम्॥३६॥

जो भारत में स्वधर्म निरत रहते सूर्य की भक्ति करते हैं, वे सूर्यलोक जाकर कालान्तर में भारत में पुनः जन्म लेते हैं। यदि स्वधर्माश्रित विप्रगण शैव, शाक्त अथवा गणेशोपासक हैं, वे शिवलोक जाकर कालान्तर में पुनः भारत में जन्म लेते हैं। हे सती! जो ब्राह्मण स्वधर्म तत्पर हैं तथा अन्य देवता के उपासक हैं, वे इन्द्रलोक जाकर कालान्तर में पुनः भारत में जन्म लेते हैं।।३४-३६।।

हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरताः द्विजाः।
तेऽपि यान्ति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो॥३७॥
स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेविनः सदा।
भ्रष्टाचाराश्च [1]वामाश्च ते यान्ति नरकं ध्रुवम्॥३८॥
स्वधर्मनिरताश्चैवं वर्णाश्चत्वार एव च। भवन्त्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभागिनः॥३९॥
स्वधर्मरहितास्ते च नरकं यान्ति हि ध्रुवम्।
भारते च भवन्त्येव कर्मणः फलभागिनः॥४०॥

जो हरिभक्त निष्काम हैं, तथापि अपने कुल-जाति धर्म से रहित हैं, वे भी क्रमशः अपनी भक्ति के बल से हरिलोक प्राप्त कर लेते हैं। जो अन्य देवों के सेवक स्वधर्म रहित विप्र भ्रष्टाचारी, वामाचारी हैं, वे नरक जाते हैं। इसमें सन्देह न करे! भारतवर्ष में तो सभी कर्मों का फलभोग प्राप्त होता है। यह निश्चित है। अतः चारों वर्णों वाले जो स्वधर्म तथा स्वकर्म में लगे रहते हैं, वे शुभ फल अवश्य प्राप्त करते हैं॥३७-४०॥

स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च। कन्यां ददति विप्राय चन्द्रलोकं व्रजन्ति ते॥४१॥
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते॥४२॥
सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च वैष्णवा।
ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसंधानवर्जिताः॥४३॥
गव्यं च रजतं भार्यां वस्त्रं सस्यं फलं जलम्।
ये ददत्येव विप्रेभ्यस्तल्लोकं हि व्रजन्ति च॥४४॥

हे साध्वी! जो स्वधर्म तत्पर ब्राह्मण स्वधर्म निरत वर को अपनी कन्या देते हैं, वे चन्द्रलोक जाते हैं। वे वहां १४ इन्द्रों के अवसान तक रहते हैं। जो वस्त्राभूषण से अलंकृत कन्यादान करते हैं, उनको दूना फल मिलता है, तथापि सकाम ब्राह्मण ही चन्द्रलोक गमन करते हैं। निष्काम वैष्णव फल संधान से रहित होने के कारण विष्णुलोक गमन करते हैं। जो लोग गोदुग्ध, घृत, रजत, भार्या, वस्त्र, अन्न, फल, जलदान ब्राह्मण को करते हैं, उनको भी वही लोक प्राप्त होता है॥४१-४४॥

वसन्ति ते[2] च तल्लोकं यावन्मन्वन्तरं सति।
कालं च सुचिरं वासं कुर्वन्ति तत्र ते जनाः॥४५॥
ये ददति सुवर्णं च गां च ताम्रादिकं सति।
ते यान्ति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च॥४६॥

१. ख. ०बाला च।
२. क. ते विष्णुलोकं।

ऐसे लोग उस लोक में मन्वन्तर पर्यन्त दीर्घकाल तक निवास करते हैं। जो ब्राह्मण को स्वर्ण तथा ताम्रादि दान करते हैं, गोदान करते हैं, वे सूर्यलोक प्राप्त करते हैं।।४५-४६।।

वसन्ति तत्र ते लोके वर्षाणामयुतं सति। विपुलं सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः॥४७॥

ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धान्यानि विपुलानि च।
स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम्॥४८॥

ऐसे लोग सूर्यलोक में १०००० वर्ष निवास करते हैं। वे वहां निरामय होकर विपुल दीर्घकाल निवास करते हैं। जो प्रचुर धान्य तथा भूमि ब्राह्मण को देता है, वह विष्णुलोक में तथा मनोहर श्वेतद्वीप में जाता है।।४७-४८।।

तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विपुलं विपुले वासं करोति पुण्यवान्सति॥४९॥
गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्। ते यान्ति सुरलोकं च चिरं तत्र भवन्ति ते॥५०॥
गृहरेणुप्रमाणाब्दं दानं पुण्यदिने यदि। विपुलं विपुले वासं कुर्वन्ति मानवाः सति॥५१॥
यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः। स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च॥५२॥

वह पुण्यवान् व्यक्ति उस समय तक विष्णुलोक तथा श्वेत द्वीप में रहता है, जब तक चन्द्र-सूर्य इस जगत् में विद्यमान रहेंगे। हे सती! जो ब्राह्मण को भक्तिभाव से गृहदान करते हैं, वे वसुलोक में दीर्घकाल तक निवास करते हैं। यदि यह दान किसी पुण्य तिथि पर किया जाये, तब उस गृह में जितने धूलिकण (रेणु) हैं, उतने विपुल वर्षों तक वह वसुलोक में निवास करेगा, जिसने गृहदान किया है। जिस व्यक्ति ने देवता हेतु गृह दान किया है, वह देवलोक में उतने वर्ष निवास करेगा, जितने रेणु उस गृह में हैं।।४९-५२।।

सौधे चतुर्गुणं पुण्यं पूर्ते शतगुणं फलम्। प्रकृष्टेऽष्टगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः॥५३॥

ब्रह्मा का कथन है कि अपने गृह की अपेक्षा देवमन्दिर में जाकर वहां दान करने से चौगुना, पूर्त्तदान (कुआं, वापी, तड़ाग, जलाशय दान के समय) के समय दान का सौ गुना तथा उत्तम तीर्थस्थल पर दान करने का इस सौ गुने से भी आठ गुना अधिक फललाभ होगा।।५३।।

यो ददाति तडागं च सर्वभूताय भारते। स याति जनलोकं च वर्षाणामयुतं सति॥५४॥
वाप्यां फलं शतगुणं प्राप्नोति मानवस्ततः। तथा सेतुप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत्॥५५॥

धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम्।
न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता॥५६॥

दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते। फलं ददाति द्विगुणं यदि सालंकृता भवेत्॥५७॥

यत्फलं च तडागे च पङ्कोद्धारेण तत्फलम्।
वाप्याश्च पङ्कोद्धारेण वापीतुल्यफलं लभेत्॥५८॥

अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां च करोति यः। स याति तपसो लोकं वर्षाणामयुतं परम्॥५९॥

हे सती! जो मानव भारत में तालाब दान करता है, उसे १०००० वर्ष तक जनलोक में निवास प्राप्त होता है। वापी दान का फल इससे १०० गुना अधिक है। सेतु दान का फल तड़ाग दान के बराबर होता है। जो जलाशय चौड़ाई में ४००० धनु के बराबर है, (अर्थात् १६००० हाथ चौड़ा) तथा इतना ही लम्बा है, वह तड़ाग है। इससे छोटे जलाशय को वापी कहते हैं। इस वापी को सजा कर सुपात्र को अर्पित करने का फल दूना होगा। तालाब दान का जो फल है, वही फल उस तालाब के कीचड़ को निकाल कर साफ करने का है। जो पीपल का वृक्ष लगा कर उसकी प्रतिष्ठा करते हैं, वे १०००० वर्ष तक तपोलोक में निवास करते हैं।।५४-५९।।

पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये। स वसेद्ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥६०॥

हे सावित्री! जो प्राणीगण के हितार्थ पुष्पोद्यान प्रदान करता है, उसे निश्चित रूप से १०००० वर्ष तक ध्रुवलोक में निवास लाभ होगा।।६०।।

यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति।
विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम्॥६१॥
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम्।
रथार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम्॥६२॥
यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम्।
विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम्॥६३॥

हे सती! भारत देश में विष्णु के उद्देश्य से जो विमान (रथ) दान करते हैं, वे मन्वन्तर पर्यन्त विष्णुलोक में निवास करते हैं। यदि यह विमान बृहद् तथा कारीगरी युक्त हो, तब चतुर्गुण फल होता है। पालकी दान करने से इसका आधा फल होगा, इसमें संशय न करे। जो भक्तिभाव से भगवान् नारायण को मन्दिराकृति झूला दान करता है, वह भी मन्वन्तर पर्यन्त विष्णुलोकवासी होता है।।६१-६३।।

राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते। वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते॥६४॥

ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफलं लभेत्।
यच्च दत्तं हि तद्भोक्तुर्न दत्तं नोपतिष्ठते॥६५॥

हे पतिव्रते! जो कोई धर्मशाला तथा पथिकों की सुविधा हेतु राजमार्ग निर्माण करता है, वह १०००० वर्ष पर्यन्त इन्द्रलोक में आदर पूर्वक रहता है। ब्राह्मण तथा देवगण को प्रदत्त दान का समान फल कहा गया है। जिसने पूर्वजन्म में जो दान किया है, वही इस जन्म में प्राप्त होगा। जिसने दान ही नहीं दिया, उसे क्या मिलेगा?।।६४-६५।।

भुक्त्वा स्वर्गादिकं सौख्यं पुनरायान्ति भारते। लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु॥६६॥

भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं परम्।
पुनः सोऽपि भवेद्विप्रो[१] न पुनः क्षत्रियादयः॥६७॥
क्षत्रियो वापि वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च।
तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम्॥६८॥

हे देवी! वह स्वर्गादि सुख भोग कर पुनः भारत में जन्म लेता है। वह यथाक्रम विप्रकुल में उत्पन्न होता है। जो पुण्यात्मा विप्र हैं, स्वर्ग सुख भोग कर वे अपने पुण्यानुरूप विप्रकुल में ही जन्म लेते हैं, तथापि क्षत्रियादि वर्ण हेतु यह नियम नहीं है। क्षत्रिय तथा वैश्यगण सैकड़ों कोटि कल्पों में भी किये तप के द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ नहीं कर सकते, यह वेद का कथन है।।६६-६८।।

स्वधर्मरहिता विप्रा नानायोनिं व्रजन्ति च।
भुक्त्वा च कर्मभोगं च विप्रयोनिं लभेत्पुनः॥६९॥
नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥७०॥

जो स्वधर्म रहित ब्राह्मण हैं, वे नाना योनियों में चक्रमण करते हैं। वे अपना कर्मफल भोग करने के उपरान्त पुनः विप्रयोनि प्राप्त करते हैं। सैकड़ों कोटि कल्पों में भी बिना भोगे कर्मक्षय नहीं होता। शुभ-अशुभ कृत कर्म का फल भोगना ही होगा।।६९-७०।।

देवतीर्थे सहायेन कायव्यूहेन शुध्यति। एतत्ते कथितं[२] सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० प्रकृति० सावित्र्यु० कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

केवल देवतीर्थ सेवन से वहां भ्रमण करने से कायव्यूह की शुद्धि मिल पाती है। तुमने जो पूछा था, वह सब मैंने कह दिया। अब क्या श्रवणेच्छा है?।।७१।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

१. 'भवेद्विप्रश्चैवञ्च' इति पाठान्तरम्।
२. क. ०तं किंचित्किं।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

सावित्री-यम संवाद, विविध दान निरूपण, शुभकर्म फल वर्णन

सावित्र्युवाच

प्रयान्ति स्वर्गमन्यं च येन येनैव कर्मणा। मानवाः पुण्यवन्तश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

सावित्री कहती हैं–हे देव! पुण्यात्मा मानवगण जिन अन्य कर्मफलों से स्वर्ग तथा अन्य स्थान गमन करते हैं, वह कृपा पूर्वक कहिये।।१।।

यम उवाच

अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते। अन्नप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते॥२॥

अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति। नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥३॥

देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चाऽऽसनं यदि।
महीयते वह्निलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥४॥

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम्। तल्लोममानवर्षं च वैकुण्ठे च महीयते॥५॥

यम कहते हैं–हे साध्वी! भारत में जो ब्राह्मण को अन्नदान करते हैं, वे इन्द्रलोक जाते हैं। अन्नदान से बढ़ कर कार्य अन्य नहीं है, न होगा, क्योंकि अन्नदान हेतु पात्र (योग्य याचक) तथा समय का कोई नियम नहीं है। देवता तथा ब्राह्मण को आसन दान करने वाला १०००० वर्ष तक अग्निलोक में सुखभोग करता है। जो ब्राह्मण को दिव्य दुग्धवती गौ दान करता है, उस गौ के जितने रोम हैं, वह उतने वर्ष वैकुण्ठलोक में निवास करता है!।।२-५।।

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम्। दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत्॥६॥

सामान्य दिनों की अपेक्षा पुण्यदिनों में दान करने का फल चौगुना है। तीर्थ में दान का सौ गुना फल मिलता है। नारायण क्षेत्र में दान का शतगुणित फल कहा गया है।।६।।

गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम्। वर्षाणामयुतं चैव चन्द्रलोके महीयते॥७॥

यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च। तल्लोममानवर्षं च वैकुण्ठे च महीयते॥८॥

जो भारत में भक्ति पूर्वक गोदान करता है, वह १०००० वर्ष चन्द्रलोक में निवास करता है। जो ब्राह्मण को उभयमुखी गौ दान करता है (जो गाय बच्चा जन रही है तथा बच्चा का मात्र शिर योनि से बाहर है, उसे द्विमुखी कहते हैं) वैकुण्ठ में उतने वर्ष निवास करता है, जितने रोम गौ तथा उसके वत्स के शरीर में हैं।।७-८।।

यो ददाति ब्राह्मणाय शालिग्रामं सवस्त्रकम्। महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥९॥

यो ददाति ब्राह्मणाय च्छत्रं च सुमनोहरम्। वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये॥१०॥

विप्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते। महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति॥११॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम्।
महीयते चन्द्रलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥१२॥

यो ददाति प्रदीपं च देवाय ब्राह्मणाय च। यावन्मन्वन्तरं सोऽपि [1]ब्रह्मलोके महीयते॥१३॥

जो ब्राह्मण को वस्त्रयुक्त शालग्राम दान करते हैं, वे चन्द्र-सूर्य की अवस्थिति पर्यन्त वैकुण्ठधाम में निवास करते हैं। जो मनोहर छत्र ब्राह्मण को अर्पित करते हैं, वे १०००० वर्ष पर्यन्त वरुणलोक में आनन्दित होते हैं। हे सती! भारत में जो ब्राह्मण को पादुका की जोड़ी दान करते हैं, वे १०००० वर्ष पर्यन्त वायुलोक में सुख-स्वच्छन्दता से रहते हैं। जो ब्राह्मण को दिव्य मनोहर शैय्यादान करते हैं, वे चन्द्र-सूर्य की अवस्थिति पर्यन्त चन्द्रलोक में सुखभोग करते हैं। जो मनुष्य देवता-ब्राह्मण को दीपदान करता है, उनका आदर ब्रह्मलोक में १ मन्वन्तर तक होता है।।९-१३।।

संप्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्मांश्च भवेद्ध्रुवम्।
न याति यमलोकं च तेन पुण्येन सुन्दरि॥१४॥

करोति गजदानं च यो हि विप्राय भारते। यावदिन्द्रादिदेवस्य लोके चार्धासने वसेत्॥१५॥

भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च। मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥१६॥

प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च।
महीयते विष्णुलोके यावन्मन्वन्तरं सति॥१७॥

वह मनुष्य योनि मिलने पर उत्तम नेत्रज्योति समन्वित होता है। इस पुण्यफल से वह यमलोक नहीं जाता। जो मानव भारत में ब्राह्मण को हाथी दान करता है, वह इन्द्र की आयु पर्यन्त उनके आधे आसन का भागी होता है। भारत में जो कोई ब्राह्मण को अश्व प्रदान करता है, वह वरुणलोक में आनन्दित होता है। जो व्यक्ति ब्राह्मण को उत्तम पालकी दान करता है, वह व्यक्ति विष्णु के लोक में मन्वन्तर पर्यन्त आदर पाता है।।१४-१७।।

यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम्। महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥१८॥

धान्याचलं यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते।
स च धान्यप्रमाणाब्दं विष्णुलोके महीयते॥१९॥

ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी।
दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ॥२०॥

ब्राह्मण को उत्तम श्वेत चामर प्रदान करने वाला १०००० वर्ष पर्यन्त वायुलोक में सम्मानित होता है। यह निश्चित है। जो ब्राह्मण को भारत में धान्य का ढेर (पर्वत) दान करता है, वह उतने वर्षों

---

१. क. वह्निलो०।

तक विष्णुलोक में आदर पाता है, जितने उस ढेर में अन्न के दाने हैं। वह पुनः भारत में मानव देह पाकर सुखी, चिरंजीवी होता है। ये दाता एवं दान लेने वाला विष्णुलोक जाते हैं। यह निश्चित है।।१८-२०।।

सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः। स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥२१॥

जो भारत में सतत् श्री हरिनाम का जप करता रहता है, वह चिरजीवी होता है। उसको देखते ही मृत्यु पलायित हो जाती है।।२१।।

यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेद्धरेः। पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥२२॥

इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्।
निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वन्तरावधि॥२३॥
फलमुत्तरफाल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत्।
कल्पान्तजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः॥२४॥

जो मनुष्य भारत में पूर्णिमा की रात्रि के अन्त में झूलनोत्सव श्रीहरि के निमित्त करता है, वह जीवन्मुक्त होकर इहलोक में सुख भोगता है तथा अन्त में विष्णुलोक जाकर सौ मन्वन्तर पर्यन्त वहां निवास करेगा, यह संदेह रहित बात है। यदि तब उत्तर फाल्गुनी पड़े, तब तो इस झूलनोत्सव का द्विगुणित फल होगा। ऐसे व्यक्ति के लिये ब्रह्मा ने कहा है कि वह कल्पान्त पर्यन्त जीवित रहेगा।।२२-२४।।

तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते। तिलप्रमाणवर्षं च मोदते विष्णुमन्दिरे॥२५॥

ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी।
ताम्रपात्रस्थदानेन द्विगुणं च फलं लभेत्॥२६॥

भारत में ब्राह्मण को तिलदान करने वाला उतने वर्ष तक विष्णुधाम में आनन्दित होगा, जितने दाने दान किये तिल में हैं। तदनन्तर वह मनुष्य योनि पाकर चिरकाल सुखी रहेगा। जो ताम्रपात्रस्थ तिल दान करता है, उसे द्विगुणित फल की प्राप्ति होती है।।२५-२६।।

सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम्।
यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम्॥२७॥

महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तत्र स्वर्वेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम्॥२८॥
ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं सति। दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते॥२९॥

ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम्।
सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम्॥३०॥

भोग हेतु उपयुक्त पतिव्रता प्रिय सुन्दरी नारी को वस्त्रालंकार भूषित करके ब्राह्मण को अर्पित करता है, वह १४ इन्द्रों के जीवनकाल पर्यन्त चन्द्रलोक में सम्मानित होता है। वह व्यक्ति चन्द्रलोक में

दिन-रात अप्सरागण के साथ कालयापन करेगा। तत्पश्चात् १०००० वर्ष तक गन्धर्वलोक जाकर उर्वशी के साथ आमोदित रहेगा। तदनन्तर १००० जन्मों तक इहलोक में वही व्यक्ति सुन्दरी, पतिव्रता, सौभाग्यवती, अत्यन्त कोमल अंगों वाली, मधुरभाषिणी स्त्री लाभ करता है।।२७-३०।।

ददाति सफलं वृक्षं ब्राह्मणाय च यो नरः। फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते॥३१॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम्।
सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम्॥३२॥

ब्राह्मण को फलयुक्त वृक्ष देने वाला उस वृक्ष के फलों इतने वर्षों तक इन्द्रलोक में सम्मानित होता है। तदनन्तर वह मनुष्यों में जन्म लेकर उत्तम पुत्रलाभ करता है। १००० फलयुक्त वृक्ष दान का फल एक हजार गुणा अधिक होगा।।३१-३२।।

केवलं फलदानं च ब्राह्मणाय ददाति यः।
सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारतम्॥३३॥

नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम्। ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम्॥३४॥

कुबेरलोके वसति स च मन्वन्तरावधि। ततः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्च धनवान्भवेत्॥३५॥

यो जनः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति।
ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च वा सति॥३६॥

महीयते स वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम्। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिवान्भवेत्॥३७॥

तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम्। श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः॥३८॥

ब्राह्मण को केवल फल अर्पित करने वाला दीर्घकाल तक स्वर्ग में रह कर भारत में जन्म लेगा। जो व्यक्ति भारतवर्ष में नाना द्रव्य, अन्नयुक्त विशाल गृह ब्राह्मण को देता है, वह एक मन्वन्तर पर्यन्त कुबेर लोक में रह कर मनुष्य योनि में महाधनी होकर जन्म लेगा। जिसने पुण्यभूमि भारत में ब्राह्मण को फसलयुक्त उत्तम भूमि दान दिया है, हे सती! वह १०० मन्वन्तर पर्यन्त आनन्द पूर्वक वैकुण्ठ में रह कर पुनः मानव होकर महाधनी होता है। धरती सौ जन्मों तक उसका त्याग नहीं करती (वह सौ जन्मों तक भूमिस्वामी होता है)। वह श्रीमान्, धनवान्, पुत्रवान् तथा प्रजेश्वर होगा।।३३-३८।।

सप्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद्द्विजातये। लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते॥३९॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षं लभेद्ध्रुवम्।
न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च॥४०॥

जो प्रजाजन युक्त उत्तमोत्तम ग्राम ब्राह्मण को भक्तिभाव से अर्पित करता है, वह १ लाख मन्वन्तर पर्यन्त वैकुण्ठ में पूजित होगा। तदनन्तर वह मानव जन्म लेकर एक लाख ग्रामों का अधिपति होगा। लाखों जन्म पर्यन्त वह भूमिहीन नहीं होगा।।३९-४०।।

सप्रजं सुप्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम्। नानापुष्करिणीवृक्षं फलभोगसमन्वितम्॥४१॥
नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि। महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम्॥४२॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत्। नगराणां च नियुतं लभते नात्र संशयः॥४३॥

जो भारत की प्रजायुक्त, उन्नत, पक्व फसल वाली, नाना वापी, फल-फूल युक्त वृक्षों से पूर्ण नगरी ब्राह्मण को देता है, वह वैकुण्ठ में दस लाख इन्द्रों के जीवन काल तक पूजित होगा। तदनन्तर मानव जन्म लेकर भारत में राजराजेश्वर होकर रहेगा। वह एक लाख नगरों का अधिपति होगा। यह निःसंशय है।।४१-४३।।

धरा तं न जहात्येव जन्मनां नियुतं ध्रुवम्। परमैश्वर्यसंयुक्तो भवेदेव महीतले॥४४॥
नगराणां च शतकं[1] देशं यो हि द्विजातये। [2]सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम्॥४५॥
वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम्। महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि॥४६॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि॥४७॥

वह मनुष्य १०००० जन्मों तक भूमिहीन नहीं होगा। वह धरती पर सर्वैश्वर्ययुक्त रहेगा। जो मनुष्य भक्तिभाव से १०० नगर भारत में ब्राह्मण को दान देगा, जो नगर उन्नत, प्रजायुक्त, बावली, तड़ाग, नाना वृक्ष समन्वित हो, वह अनेक कोटि मन्वन्तर पर्यन्त वैकुण्ठ में सम्मानित होगा। इसके पश्चात् मानव योनि में जन्मोपरान्त जम्बूद्वीपाधीश्वर होगा। वह इन्द्रवत् इस धरती पर महाऐश्वर्यशाली होगा।।४४-४७।।

मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च। कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान्॥४८॥
स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये।
चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्य न संशयः॥४९॥

वह कोटिजन्म पर्यन्त भूमिहीन नहीं होगा। वह चिरायु, राजाधिराज होगा। जो सर्वाधिकार ब्राह्मण को दे देता है, उसे इसका भी चौगुना फल लाभ होगा, इसमें संशय नहीं है।।४८-४९।।

जम्बूद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय पतिव्रते। फलं शतगुणं चातो भवेत्तस्य न संशयः॥५०॥
सप्तद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुसेविनः। सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वोपवासकारिणः॥५१॥
सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च। अन्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य हरेरहो॥५२॥

हे पतिव्रते! जो जम्बूद्वीप ब्राह्मण को प्रदान करेगा, उसे तो इसका १०० गुना फल होगा। यह निःसंशय है। सप्तद्वीपयुता भूमिदान करने वाले, सर्वतीर्थ सेवी, सर्व तपःश्चरण युक्त, सर्वोपवास व्रत पालक, सर्वस्व दाता, सर्वसिद्धि पारंगत तो पुनः जन्म लेते हैं, तथापि आश्चर्य की बात तो यह है कि भगवद्भक्त इस मर्त्यलोक में पुनः नहीं आते!।।५०-५२।।

१. क. च नियुतं दे०।
२. क. ०प्रसन्नप्र०।

असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति।
निवसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे॥५३॥
विष्णुमन्त्रोपासकश्च विहाय मानवीं तनुम्।
बिभर्ति दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजरापहम्॥५४॥
लब्ध्वा विष्णोश्च सारूप्यं विष्णुसेवां करोति च।
स च पश्यति गोलोके ह्यसंख्यं प्राकृतं लयम्॥५५॥
नश्यन्ति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च।
कृष्णभक्ता न नश्यन्ति जन्ममृत्युजराहराः॥५६॥
कार्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः। युगं पत्रप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे॥५७॥

ऐसे वैष्णवगण गोलोक किंवा विष्णुदेव के वैकुण्ठ में निवास करते असंख्य ब्रह्मा का उदय-तिरोधान देखते हैं। जो विष्णुमन्त्रोपासक हैं, वे मानव देह त्यागने के उपरान्त जन्म-मृत्यु-जरा आदि से पूर्णतः रहित दिव्य देहधारी हो जाते हैं। वे गोलोक में विष्णु का सारूप्य लाभ करते सतत् कृष्ण सेवानिरत रहते हैं। वे तो असंख्य प्राकृत प्रलय होते देखते हैं। भले ही देवता, सिद्ध तथा सृष्टि का नाश हो जाता है, तथापि जन्म-मृत्यु-जरा से रहित कृष्णभक्त का कदापि नाश नहीं होता। कार्त्तिक में भगवान् को जो तुलसी अर्पित करता है, वह जितने संख्यक तुलसीपत्र उसने अर्पित किया है, वह उतने युग पर्यन्त भगवद्धाम में आनन्दित रहता है।।५३-५७।।

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
सुखी च चिरजीवी च स भवेद्भारते भुवि॥५८॥
घृतप्रदीपं हरये कार्तिके यो ददाति च। पलप्रमाणं वर्षं च मोदते हरिमन्दिरे॥५९॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
महाधनाढ्यः स भवेच्चक्षुष्मांश्चैव दीप्तिमान्॥६०॥
माघे यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः। युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे॥६१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि॥६२॥

तदनन्तर वह मानव देह प्राप्त करके हरिभक्ति लाभ करता है। यह निश्चित है। वह महाधनी, नेत्र ज्योति सम्पन्न एवं कान्तियुक्त हो जाता है। जो अरुणोदय काल होते ही माघ मास में गंगा स्नान करता है, वह ६०००० युग तक हरिलोक में मुदित होकर रहता है। पुनः वह मानव योनि पाकर निश्चित रूप से विष्णुभक्ति प्राप्त करता है। वह भारतभूमि में जितेन्द्रियों में भी प्रधान होता है।।५८-६२।।

माघे यः स्नाति गङ्गायां प्रयागे चारुणोदये।
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि लक्षमन्वन्तरावधि॥६३॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद्ध्रुवम्।
त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम्॥६४॥

जो कोई अरुणोदय काल में प्रयाग में गंगा स्नान करता है, वह एक लाख मन्वन्तर पर्यन्त विष्णुलोक में आनन्द करता है। वह तदनन्तर मानव योनि पाकर विष्णुमन्त्र प्राप्त करेगा! यह निश्चित है। तदनन्तर मनुष्य देह त्याग कर उसे पुनः हरिपद मिलता है।।६३-६४।।

नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले।
करोति हरिदास्यं च लब्ध्वा सारूप्यमेव च॥६५॥
नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्यवद्भुवि।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥६६॥

अब वह पृथिवी पर वैकुण्ठ से लौट कर कभी नहीं आता। वह सारूप्य मुक्ति पाकर वहां हरि का दासत्व ग्रहण करता है। जो नित्य गंगा स्नान करने वाला है, वह पृथिवी पर सूर्य के समान पवित्र है। उसे प्रति-पग पर अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होना निश्चित है।।६५-६६।।

तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥६७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य तपस्विप्रवरो भवेत्।
स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च सुजितेन्द्रियः॥६८॥
मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करे। भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम्॥६९॥
मोदते स च वैकुण्ठे यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य सुखी निष्कपटो[1] भवेत्॥७०॥

उसकी चरणरजः के स्पर्श से धरती तत्काल पावन हो जाती है। वह चन्द्र-सूर्य के स्थितिकाल पर्यन्त वैकुण्ठ में मुदित रहता है। पुनः मानव योनि पाकर वह तपस्वी प्रवर हो जाता है। वह स्वधर्म निरत, शुद्ध, विद्वान् एवं जितेन्द्रिय होकर रहता है। जब कर्कट राशि हो, तब मध्याह्न में सूर्य अत्यन्त तपते हैं। तब भारत में सुगन्धित जल का दान करे। ऐसा व्यक्ति १४ इन्द्रों के काल तक वैकुण्ठ में आनन्दलाभ करता है। पुनः मानव योनि पाकर कपट सुखी हो जाता है।।६७-७०।।

वैशाखे हरये भक्त्या यो ददाति च चन्दनम्। युगषष्टिसहस्राणि मोदते विष्णुमन्दिरे।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत्॥७१॥
(यज्ञसूत्रेण तत्पुण्यं लभते नात्र संशयः वैकुण्ठे।
मोदते सोऽपि कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्)॥७२॥

जो व्यक्ति वैशाख मास में भक्ति के साथ हरि को चन्दन चढ़ाता है, वह ६०००० युग पर्यन्त

१. क. निष्कण्टको भ०।

विष्णुधाम में रह कर पुनः पूर्ववत् भारत में मानव योनि पाकर सुखी तथा सुरूप होता है। यज्ञोपवीत दान से भी (भगवान् को) उसे वही पुण्य मिलता है, इसमें सन्देह न करे। वह वैकुण्ठ में आनन्दित रहता है। उसे कृष्णभक्ति भी मिलती है। यह निश्चित है।।७१-७२।।

वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये। सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे।।७३।।

करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।।७४।।
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।।७५।।

जो वैशाख में सत्तूदान द्विजों को करता है, वह उतने वर्ष तक विष्णुलोक में निवास करता है, जितने कण उस सत्तू में हैं। जो भारत में कृष्ण जन्माष्टमी व्रत करता है, वह १०० जन्मों के पातक से रहित हो जाता है। इसमें संशय न करे। वह १४ इन्द्रों की आयु पर्यन्त वैकुण्ठवासी होकर आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करता है। तदनन्तर भारत में मानव योनि पाकर अवश्यमेव कृष्णभक्ति उसे मिलती है।।७३-७५।।

इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः। मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि।।७६।।
शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः। पत्रप्रमाणं च युगं मोदते शिवमन्दिरे।।७७।।

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत् ।।७८।।

भारत में शिवरात्रि व्रती व्यक्ति ७ मन्वन्तर तक शिवलोक में आनन्दित रहता है। जो शिवरात्रि को भगवान् को बिल्वपत्र अर्पित करता है, उसने जितने बिल्वपत्र अर्पित किये हैं, उतने युग पर्यन्त विद्या-पुत्र-श्री-प्रजा तथा भूमिसम्पन्न बना रहता है।।७६-७८।।

चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करं योऽर्चयेद्व्रती।
करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम्।।७९।।
मासं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनादि वा।
दिनमानं युगं सोऽपि शिवलोके महीयते।।८०।।

जो चैत्र किंवा माघ में व्रती रह कर शंकरार्चन करता है तथा हाथ में वेंत लेकर दिन-रात नृत्यरत रहता है, वह ऐसा १ दिन, १५ दिन, १० दिन, ७ दिन, २ दिन अथवा एक ही दिन करके वह उतने युगों पर्यन्त शिवलोक में सम्मानित होता है।।७९-८०।।

श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते नरः। सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे।।८१।।

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धार्मिको भवेत्।।८२।।

शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च। महिषैश्छागलैर्मेषैरिक्षुकूष्माण्डकैस्तथा॥८३॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा। नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलैः॥८४॥
शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य [१]बुद्धिं च निर्मलां लभेत्॥८५॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम्। महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः॥८६॥

जो मनुष्य भारत में श्रीरामनवमी व्रत करता है, वह ७ मन्वन्तर पर्यन्त विष्णुलोक में आनन्दित होता है। पुनः वह मानव योनि पाकर रामभक्ति लाभ करेगा, यह निश्चित है। वह जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ तथा महाधार्मिक होगा। जो शारदीय नवरात्र में प्रकृति (दुर्गा) पूजा करता है तथा महिष, बकरा (भेड़ा), गन्ना, कोहड़ा आदि उपहार से एवं धूप-दीपादि से नैवेद्य आदि द्वारा एवं नृत्य-गीत, वाद्य नाना मंगलमय कौतुक से यह उत्सव सम्पन्न करता है, वह सात मन्वन्तर पर्यन्त शिवलोक वास करके पुनः मानव योनि में जन्म लेकर निर्मल बुद्धि वाला हो जाता है। उसे अचला लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। वह पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि तथा महाप्रभावशाली एवं गज-अश्व युक्त रहता है॥८१-८६॥

राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः।
भाद्रशुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत्॥८७॥
नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते।
दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि भवेत्॥८८॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत्॥८९॥

वह राजराजेश्वर होगा। यह निःसंदिग्ध है। जो भाद्र शुक्लाष्टमी को महालक्ष्मी का यजन करता है, नित्य भक्ति के साथ १६ उपचारों से पुण्य क्षेत्र भारत में १ पक्ष तक महालक्ष्मी की पूजा करता है, वह वैकुण्ठ लोक में जब तक विश्व में सूर्य-चन्द्र की स्थिति है, तब तक आनन्द उठा कर पुनः मानव जन्म पाकर राजराजेश्वरत्व लाभ करता है॥८७-८९॥

कार्तिके पूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमण्डलम्।
गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा॥९०॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णं राधया सह। भारते पूजयेद्दत्त्वा चोपचाराणि षोडश॥९१॥
गोलोके च वसेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
भारतं पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्॥९२॥
क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरपि।
देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः॥९३॥

१. क. राजराजेश्वरो भवेत्।

जो कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन १०० गोपों तथा १०० गोपीगण एवं राधाकृष्ण की पाषाण मूर्त्ति बनवा कर रासमण्डल निर्मित करता है, उनकी १६ उपचारों से पूजा करता है, वह ब्रह्मा की आयु तक गोलोक में निवासोपरान्त पुनः भारत में जन्म लेकर हरिभक्ति लाभ करेगा। यह निश्चित है। तदनन्तर विष्णुमन्त्र जप तथा दृढ़ हरिभक्ति द्वारा वह देहान्त के उपरान्त पुनः शाश्वत गोलोकवास प्राप्त करता है।।९०-९३।।

तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत्।
पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो महान्।।९४।।
शुक्लां वाप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः।
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः।।९५।।
भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। पुनर्याति च वैकुण्ठं न तस्य पतनं भवेत्।।९६।।

वहां वह कृष्ण का सारूप्य पाकर उनका पार्षद होकर पुनः वहां से पतन से तथा जरामृत्यु रहित हो जाता है। जो शुक्लपक्षीय तथा कृष्णपक्षीय एकादशी व्रत करता है, उसे एक ब्रह्मा की आयु तक वैकुण्ठ में निवास का अवसर मिलता है। अन्ततः वह भारत में पुनः जन्म तथा विष्णुभक्ति पाकर पुनः वैकुण्ठगामी होता है। तदनन्तर विष्णुलोक वैकुण्ठ से कदापि उसका पतन नहीं होता।।९४-९६।।

भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः। षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते।।९७।।
रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षतः।
संपूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते।।९८।।
महीयते सोऽर्कलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
भारतं पुनरागत्य [1]चारोगी श्रीयुतो भवेत्।।९९।।

भाद्रमासीय शुक्ला द्वादशी तिथि पर इन्द्र की पूजा करने वाला ६०००० वर्ष पर्यन्त इन्द्रलोक में आनन्दित होगा। भारतवर्ष में प्रति रविवार, सूर्य संक्रान्ति तथा शुक्ला सप्तमी को सूर्य पूजा करने वाला हविष्यान्न दान करे। वह सूर्य लोक में तब तक आदर प्राप्त करेगा, जब तक सूर्य-चन्द्र विद्यमान हैं। अन्ततः भारत में मानव जन्म लेकर रोग रहित तथा ऐश्वर्यवान् श्री सम्पन्न होगा।।९७-९९।।

ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत्।
महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि।।१००।।
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः।
चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः।।१०१।।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम्।
संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश।।१०२।।

१. क. कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।

महीयते स वैकुण्ठे यावद्ब्रह्मदिवानिशम्।
संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपण्डितः॥१०३॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च।
नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते॥१०४॥
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे।
मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः॥१०५॥

ज्येष्ठमासीय शुक्ला चतुर्दशी के दिन सावित्री पूजन करने वाला ७ मन्वन्तर तक ब्रह्मलोक में पूजित होकर पुनः भारत में मानव जन्म लेने के पश्चात् श्रीमान्, महापराक्रमी, दीर्घजीवी, ज्ञानी, महाधनी होगा। माघमासीय शुक्ला पंचमी के दिन जो इन्द्रियां वश में करके भक्तिभावेन १६ उपचारों से सरस्वती पूजा करता है, वह एक ब्रह्मा के जीवन काल तक वैकुण्ठधाम में दिन-रात आदर प्राप्त करता है। अन्ततः मानव जन्म भारत में लेकर कवि एवं विद्वान् होगा। जो भारत में जीवन पर्यन्त नित्य ब्राह्मण को गौ किंवा स्वर्णदान करता है, उन गौओं में जितने रोम हैं, उससे द्विगुण वर्ष तक विष्णुलोक में भगवान् से क्रीड़ा तथा मंगलमय कौतुक करेगा।।१००-१०५।।

ततः पुनरिहाऽऽगत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
ततः पुनरिहाऽऽगत्य राजराजेश्वरो भवेत्।
गोमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी॥१०६॥

तदनन्तर वह भारत में मानव योनि में जन्म लेकर निश्चित रूप से विष्णुभक्ति प्राप्त करेगा तथा राजराजेश्वर होगा। वह उत्तम गौओं से युक्त, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानी एवं सभी प्रकार से सुखी होगा।।१०६।।

भोजयेद्यो हि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते।
विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे॥१०७॥
ततः पुनरिहाऽऽगत्य स सुखी धनवान्भवेत्।
विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः॥१०८॥
यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते। युगं नामप्रमाणं च विष्णुलोके महीयते॥१०९॥
ततः पुनरिहाऽऽगत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं लभेत्॥११०॥

भारत में ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन कराने वाला, उतने वर्ष तक विष्णुलोक वासी होगा, जितने रोम उस ब्राह्मण के देह में हैं। तदनन्तर भारत में मानव जन्म लेकर वह सुखी, धनी, विद्वान्, अत्यन्त दीर्घायु, श्रीमान् तथा महापराक्रमी होगा। जो मनुष्य भारत में विष्णुनाम गायन करता है अथवा लिख कर प्रदान करता है, वह उन नामों की संख्या इतने युग पर्यन्त विष्णुलोक में पूजित होकर पुनः भारत

में मानव जन्म पाकर विष्णुभक्ति प्राप्त करेगा। नारायण क्षेत्र में पुण्यकर्म रत व्यक्ति को तो कोटिगुणित फललाभ होगा।।१०७-११०।।

नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥१११॥
लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते। लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत्॥११२॥

जिसने नारायण क्षेत्र में एक करोड़ नाम जप कर लिया, वह सर्वपातक रहित होकर निश्चित रूप से जीवन्मुक्त होगा। उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। उसका विष्णुलोक में आदर होता रहेगा। वहां सारूप्य मुक्ति पाकर कदापि पतन (जन्म) नहीं होगा।।१११-११२।।

यः शिवं पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं च पार्थिवम्।
यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम्॥११३॥
मृदां रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते।
ततः पुनरिहाऽऽगत्य राजेन्द्रो भारते भवेत्॥११४॥

जो शिवपूजा नित्य पार्थिव लिंग बना कर करता है, वह यावज्जीवन इस नियम का पालन करके शिवलोक गमन करता है। जितने उन लिंगों में बालुका कण रहते हैं, उतने वर्ष पर्यन्त वह शिवलोकस्थ रहता है। तदनन्तर भारत में मानव जन्म पाकर राजेन्द्र पद पर शोभित होता है।।११३-११४।।

शिलां च योऽर्चयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति।
महीयते स वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥११५॥
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं सुदुर्लभाम्।
महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत्॥११६॥
तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च।
कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे[1] यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥११७॥

जो नित्य शालग्राम शिला की अर्चना करता है तथा उसके चरणामृत का पान करता है, वह १०० ब्रह्मा के आयुकाल तक वैकुण्ठ में आदर पाता है। तदनन्तर उसका भारत में जन्म होगा, जहां उसे दुर्लभ हरिभक्ति मिलेगी। तदनन्तर विष्णुलोक जाकर कभी वहां से उसका पतन नहीं होगा। समस्त तपःश्चरण तथा व्रताचरण करने वाला व्यक्ति १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक वैकुण्ठ में निवास करता है।।११५-११७।।

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत्।
ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते॥११८॥

१. क. वद्वै ब्रह्मणां शतम्।

य: स्नाति सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
स च निर्वाणतां याति न तज्जन्म भवेद्भवि॥११९॥
पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च।
अश्वलोमप्रमाणाब्दं शक्रस्यार्धासने वसेत्॥१२०॥

तदनन्तर वह भारत में जन्म पाकर यहां राजेन्द्र होता है। इसके पश्चात् मुक्ति पाकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जिसने पृथिवी प्रदक्षिणा तथा सभी तीर्थों में स्नान किया है, वह निर्वाण लाभ करता है। उसका पृथिवी पर पुनः जन्म नहीं होता। जिसने पुण्यक्षेत्र भारत में अश्वमेध यज्ञ किया है, यज्ञीय अश्व के शरीर में जितने रोम हैं, वह उतने वर्षों तक इन्द्र के आधे आसन पर बैठेगा।।११८-१२०।।

चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः। नरमेधेऽश्वमेधार्धं गोमेधे च तदेव च॥१२१॥
पुत्रेष्टौ च तदर्धं च सुपुत्रं च लभेद्ध्रुवम्। लभते लाङ्गलेष्टौ च गोमेधसदृशं फलम्॥१२२॥
तत्समानं च विप्रेष्टौ वृद्धियागे च तत्फलम्।
पद्मयज्ञे तदर्धं च फलमाप्नोति मानवः॥१२३॥
विशोके च विशोकं च पद्मार्धं स्वर्गमश्नुते।
विजये विजयी राजा स्वर्गं पद्मसमं लभेत्॥१२४॥
प्राजापत्ये प्रजालाभो भूवृद्धिर्भूभृतां भवेत्। इह राजश्रियं लब्ध्वा पद्मार्धं स्वर्गमश्नुते।
ऋद्धियागे महैश्वर्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत्॥१२५॥

राजसूय यज्ञकारी ४ अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। गोमेध तथा नरमेध का आधा होगा (२ अश्वमेध के बराबर होगा)। पुत्रेष्टि में इस आधे का आधा फल मिलता है तथा उत्तम पुत्रलाभ भी होता है। लाङ्गलेष्टि यज्ञ का फल गोमेध के समान होगा। वृद्धि यज्ञ तथा विप्रेष्टि यज्ञ का भी यही फल है। पद्मयज्ञ में इसका आधा फल होगा। विशोक यज्ञकारी शोक रहित होगा। पद्मयज्ञ का जो आधा फल है, वह स्वर्गप्रद है (स्वर्गसुख देगा)। प्राजापत्य यज्ञ करने वाला राजा प्रजालाभ तथा भूमिवृद्धि फल पाता है। वह अपनी विपुल राज्यलक्ष्मी का सुख के साथ उपभोग करेगा। अन्ततः पद्मयज्ञ के आधे फल द्वारा स्वर्ग मिलेगा।।१२१-१२५।।

विष्णुयज्ञः प्रधानं च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि। ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासंभारसंयुतः॥१२६॥
बभूव कलहो यत्र दक्षशङ्करयोःसति। शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नन्दी विप्रांश्च कोपतः॥१२७॥
यतो हेतोर्दक्षयज्ञं बभञ्ज चन्द्रशेखरः। चकार विष्णुयज्ञं च पुरा दक्षप्रजापतिः॥१२८॥

हे सुन्दरी! विष्णुयाग सभी यज्ञों में प्रधान है। इसे पूर्वकाल में पितामह ब्रह्मा ने अत्यन्त उत्साह तथा सामग्री के साथ किया था। पूर्वकाल में दक्ष ने वहां विष्णुयाग किया था, जहां दक्ष ने शंकर से कलह किया, जहां विप्रगण ने क्रोध पूर्वक नन्दीश्वर को शाप दिया था। नन्दी ने तब ब्राह्मणों को शाप दे दिया। तभी दक्षयज्ञ का विनाश चन्द्रशेखर द्वारा हो गया।।१२६-१२८।।

धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः। स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः॥१२९॥
शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा।
राजसूयसहस्राणां समृद्ध्या च क्रतुर्भवेत्॥१३०॥

इसी तरह धर्मदेव, कश्यप मुनि, शेषनाग, कर्दम, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल, ध्रुव ने विष्णुयज्ञ सम्पन्न किया। यदि पास में धन-समृद्धि हो, तब हजारों राजसूय यज्ञ किये जा सकते हैं।।१२९-१३०।।

राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्।
विष्णुयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः॥१३१॥
बहुकल्पान्तजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्।
ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह॥१३२॥

इस विष्णुयज्ञ को करने वाला सहस्रों राजसूय यज्ञों के फल को पा लेता है। विष्णुयज्ञ से बढ़ कर कोई यज्ञ उतना फलप्रद नहीं है। यह वेदवचन है। वह विष्णुयज्ञकर्त्ता अनेक कल्प जीवित रह कर जीवन्मुक्त होता है। यह निश्चित है। वह ज्ञान तथा तेज में विष्णुतुल्य हो जाता है।।१३१-१३२।।

देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा शिवः।
शास्त्राणां च यथा वेदा आश्रमाणां च ब्राह्मणाः॥१३३॥
तीर्थानां च यथा गङ्गा पवित्राणां च वैष्णवाः।
एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी यथा॥१३४॥
नक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गरुडो यथा।
यथा स्त्रीणां च प्रकृतिराधाराणां वसुंधरा॥१३५॥
शीघ्रगानां चेन्द्रियाणां चञ्चलानां यथा मनः।
प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानां प्रजापतिः॥१३६॥
वृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा।
श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती॥१३७॥
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका।
विष्णुयज्ञस्तथा वत्से यज्ञेषु च महानिति॥१३८॥

जैसे देवों में विष्णु, वैष्णवों में शिव, शास्त्रों में वेद, चारों आश्रमों में ब्राह्मण (वर्णाश्रम में ब्राह्मण), तीर्थों में गंगा, पवित्रों में वैष्णव लोग, व्रतों में एकादशी, पुष्पों में तुलसी, नक्षत्रों में चन्द्रमा, पक्षीगण में गरुड़, स्त्रियों में प्रकृति, आधार में पृथिवी, शीघ्रगामी में इन्द्रियां, चंचलता में मन, प्रजापतियों में ब्रह्मा, प्रजास्वामीगण में प्रजापति, वनों में वृन्दावन, वर्षों में भारतवर्ष, श्रीमंतों में श्री,

विदुषी में सरस्वती, पतिव्रताओं में दुर्गा, सौभाग्यशालिनियों में राधा प्रधान हैं, उसी प्रकार हे पुत्री! यज्ञों में यह विष्णुयज्ञ महान् है।।१३३-१३८।।

अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं लभते ध्रुवम्। सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप पृथुरेव च॥१३९॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च॥१४०॥
पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।
फलं बीजमिदं सर्वं मुक्तिदं कृष्णसेवनम्॥१४१॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः। निरूपितं सारभूतं कृष्णपादाम्बुजार्चनम्॥१४२॥
तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम्। तत्स्तोत्रं स्मरणं चैव वन्दनं जप एव च॥१४३॥
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च। सर्वसंमतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति॥१४४॥

१०० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने पर इन्द्रत्व प्राप्त होता है। सहस्र अश्वमेधयज्ञ करने पर देहान्त के पश्चात् विष्णुपद लाभ होता है। सर्वतीर्थ स्नान, सर्वयज्ञ दीक्षा, सभी व्रत तथा तप, चार वेद पाठ, पृथिवी प्रदक्षिणा ये सब शुभ फललाभ के कारण तो हैं, तथापि अकेले कृष्णसेवा मात्र करके मुक्तिलाभ तक होता है। सभी पुराण, वेद, इतिहास में श्रीकृष्ण के चरणकमलों की अर्चना सभी का सार कहा गया है। उनका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम का कीर्त्तन, उनके स्तोत्र का स्मरण, वन्दन, जप, उनके चरणामृत का पान, नित्य उनके नैवेद्य का भक्षण, सभी वांछित को प्राप्त करने का यह उपाय सर्वसम्मति से वर्णित है।।१३९-१४४।।

भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं गच्छ स्वमन्दिरम्॥१४५॥
एतत्ते कथितं सर्वं विपाकं[1] कर्मणां नृणाम्।
सर्वेप्सितं सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम्॥१४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० तुलस्यु० यमसावित्रीसं० शुभकर्मविपाककथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

हे पुत्री! इसी कारण से परंब्रह्म, प्रकृति से परे, निर्गुण प्रभु कृष्ण का ही भजन करना चाहिए। हे पुत्री! अब तुम सुख पूर्वक स्वामी को लेकर स्वगृह गमन करो। मैंने मनुष्यों के कर्म विपाक (कर्म का फल) तुमसे कह दिया। यह सभी को वांछित, सर्वसम्मत तथा मनुष्यों हेतु तत्त्वप्रद भी है।।१४५-१४६।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

१. क. ०कं सर्वमङ्गलम्।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

सावित्री कृत यम स्तव

श्रीनारायण उवाच

हरेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः। साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा॥१॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—भगवान् विष्णु के गुणों का कीर्त्तन यमराज के मुख से सुन कर सावित्री रोमांचित हो गई। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। तदनन्तर उसने यमराज से पुनः कहा—।।१।।

सावित्र्युवाच

हरेरुत्कीर्तनं धर्म स्वकुलोद्धारकारणम्। श्रोतृणां चैव वक्तृणां जन्ममृत्युजराहरम्॥२॥
दानानां च व्रतानां च सिद्धीनां तपसां परम्। योगानां चैव वेदानां सेवनं कीर्तनं हरेः॥३॥
मुक्तत्वममरत्वं वा सर्वसिद्धित्वमेव वा। श्रीकृष्णसेवनस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥४॥
भजामि केन विधिना श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। मूढां मामबलां तात वद वेदविदां वर॥५॥

सावित्री कहती है—हे धर्मदेव! हरिकीर्त्तन ही परम धर्म है। यह अपने कुल का उद्धार कारण भी है। इससे श्रोता-वक्ता, इन दोनों के जन्मचक्र, मृत्युचक्र तथा जरा का नाश होता है। हरिगुणगायन तथा हरिसेवा ही सभी दान-व्रत-सिद्धि-तप-योग एवं वेद से श्रेष्ठ है। मुक्ति, अमरत्व अथवा सिद्धि, इनमें से कोई भी श्रीकृष्ण सेवा का सोलहवां अंश भी नहीं है। हे पिता! आप वेदज्ञप्रधान हैं। आप इस मूढ़ अबला को उपदेश दीजिये कि किस विधि से प्रकृति से अतीत कृष्ण का भजन करूं?।।२-५।।

शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम्। कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥६॥

हे देव! मैंने आपकी कृपा से मानवगण के शुभ कर्मों का मनोहर परिणाम आपसे सुना। अब आप अशुभ कर्मों के परिणाम को कहने की कृपा करिये।।६।।

इत्युक्त्वा सा सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकंधरा। तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च॥७॥

हे ब्रह्मन्! यह कहकर सती सावित्री ने भक्ति पूर्वक नतमस्तक होकर वेदोक्त स्तोत्र से धर्मराज का स्तव प्रारम्भ किया। उसने धर्मराज को प्रसन्न करने के लिये यह स्तव कहा—।।७।।

सावित्र्युवाच

तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा। धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्॥८॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः। अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम्॥९॥

देवी सावित्री कहती हैं— पूर्वकाल में सूर्यदेव ने पुष्कर तीर्थ में तप करके धर्म के अंश से उत्पन्न जिन पुत्र को प्राप्त किया था, मैं उन धर्मराज को प्रणाम करती हूं! सर्वभूत समूह में समदर्शन करने वाले सर्वसाक्षी का, आपका नाम शमन है। मैं उन शमन को प्रणाम करती हूं!।।८-९।।

येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्।
कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्॥१०॥
बिभर्ति दण्डं दण्ड्याय पापिनां शुद्धिहेतवे।
नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वकर्मणाम्॥११॥
विश्वे यः कवलत्येव सर्वायुश्चापि संततम्।
अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्॥१२॥
तपस्वी वैष्णवो धर्मी संयमी विजितेन्द्रियः।
जीविनां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम्॥१३॥

जो विश्व संसारस्थ सभी प्राणीगण को उनके कर्मानुसार निश्चित काल में उनका अन्त करते हैं, मैं उन कृतान्त को प्रणाम करती हूं! जो समस्त कर्म के शास्ता हैं, जो पापी लोगों की शुद्धि हेतु दण्ड देने हेतु दण्डधारी हैं, मैं उन दण्डधारी को प्रणाम करती हूं! जो निरन्तर विश्व में सबकी आयु का क्षय करते हैं, मैं उन अत्यन्त दुर्निवार काल को प्रणाम करती हूं! जो परम वैष्णव, तपस्वी, धार्मिक, जितेन्द्रिय, संयमी हैं, मैं जीवों को कर्मफल प्रदाता यम को प्रणाम करती हूं!।।१०-१३।।

स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्।
पापिनं क्लेशदो यस्य[1] पुत्रो मित्रो नमाम्यहम्॥१४॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम्॥१५॥

जो स्वात्माराम, सर्वज्ञ, पुण्यात्माओं के मित्र, पापीगण को क्लेश देने वाले हैं, उन पुण्यात्माओं के मित्र को मैं प्रणाम करती हूं! जिनका जन्म ब्रह्मा के वंश में हुआ है, जो ब्रह्मतेज से ज्वलन्त प्रतीत होते हैं, जो सतत् परमेश्वर ब्रह्म का ध्यान करते हैं, मैं उस ब्रह्मवंश को प्रणाम करती हूं!।।१४-१५।।

इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने।
यमसतां विष्णुभजनं कर्मपाकमुवाच ह॥१६॥
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते॥१७॥
महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्त्या च नारद।
यमः करोति तं शुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम्॥१८॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० सावित्रीकृतयमस्तोत्रं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

---

१. क. यश्च पुण्यं मित्रं न०।

हे मुनिवर! यह कहकर सावित्री ने यम को प्रणाम किया। तब यमराज ने सावित्री को विष्णुभजन के सम्बन्ध में तथा कर्म विपाक का उपदेश प्रदान किया। यह यमाष्टक जो प्रातः उठ कर पढ़ता है, वह सर्व पातक रहित हो जाता है। उसे यमभय नहीं होता। हे नारद! जो महापातकी भी भक्ति पूर्वक नित्य यह स्तवपाठ करेगा, यमदेव उसके कायव्यूह को निश्चित रूप से शुद्ध कर देंगे।।१६-१८।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

यम द्वारा नरककुण्डों का वर्णन

नारायण उवाच

यमस्तस्यै विष्णुमन्त्रं दत्त्वा च विधिपूर्वकम्।
कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः।।१।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर यम ने सावित्री को सविधि विष्णुमन्त्र दीक्षा देकर, उससे अशुभ कर्मों के फल का वर्णन किया।।१।।

यम उवाच

शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नानाविधं सति। कर्माशुभविपाके च कथयामि निशामय।।२।।
नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः सुकर्मणा।
कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः।।३।।
नरकाणां च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च। नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च।।४।।
विस्तृतानि गभीराणि क्लेशदानि च जीविनाम्।
भयङ्कराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च।।५।।
षडशीतिश्च कुण्डानि संयमन्यां च सन्ति च।
निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति।।६।।

यम कहते हैं—हे पुत्री! सती! अब तक तुमने शुभ कर्मों का फल मुझसे सुना है। अब अशुभ कर्मों का फल सुनो। जीवगण शुभ कर्मों के फलस्वरूप नाना स्वर्गों में जाते हैं। अशुभ कर्मों के कारण नाना नरकगमन करते हैं। हे साध्वी! नरककुण्ड अनेक हैं। पुराणभेद से इनके नामों में भी पार्थक्य

परिलक्षित होता है। हे वत्से! ये सभी नरककुण्ड विस्तार वाले, गंभीर, भयानक, प्राणीगण हेतु क्लेशप्रद, अत्यन्त कुत्सित हैं। हे सती! अब वेदों में प्रसिद्ध छः नारकीय कुण्डों के नाम को सुनो जो प्रख्यात हैं॥२-६॥

वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम्।
विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम्॥७॥
गरकुण्डं दूषिकाकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च।
शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम्॥८॥
कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च।
मज्जाकुण्डं मांसकुण्डं नखकुण्डं च दुस्तरम्॥९॥
लोम्नां कुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुःखदम्।
ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत्॥१०॥
तीक्ष्णाकण्टककुण्डं च विषकुण्डं च विघ्नदम्।
धर्मकुण्डं तप्तकुण्डं सुराकुण्डं प्रकीर्तितम्॥११॥
प्रतप्ततैलकुण्डं च दन्तकुण्डं च दुर्वहम्। कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम्॥१२॥
मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम्।
कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते॥१३॥
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम्।
गोलकुण्डं नक्रकुण्डं काककुण्डं शुचास्पदम्॥१४॥
सञ्चालकुण्डं वाजकुण्डं बन्धकुण्डं सुदुस्तरम्।
तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम्॥१५॥
लालाकुण्डं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं सुदारुणम्।
चक्रकुण्डं वज्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्बणम्॥१६॥
ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं [1]पूतिकुण्डं च सुन्दरि।
तप्तसूर्यमसीपत्रं क्षुरधारं सुचीमुखम्॥१७॥
गोधामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम्। कुम्भीपाकं कालसूत्रमवटोदमरुंतुदम्॥१८॥
पांशुभोजं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम्। उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं दण्डताडनम्॥१९॥
जालबन्धं देहचूर्णं दलनं शोषणङ्करम्। शूर्पं ज्वालामुखं जिह्मं धूमान्धं नागवेष्टनम्॥२०॥

ये हैं—वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, क्षारकुण्ड जो भयानक है। मलकुण्ड, मूत्रकुण्ड, दुःसह कफकुण्ड,

१. क. ०दग्धकु०।

विषकुण्ड, दूषिका (नेत्रमल) कुण्ड, वसा कुण्ड, शुक्रकुण्ड, रुद्रकुण्ड, कुत्सित अश्रुकुण्ड, गात्रमल कुण्ड, कर्णमल कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, कठोर नरककुण्ड, लोमकुण्ड, दुःखदायक अस्थिकुण्ड, अति तप्त महादुःखप्रद ताम्र एवं लौह कुण्ड, तीक्ष्ण कण्टक कुण्ड, विषकुण्ड, धर्म (पसीने) का कुण्ड, तप्त सुराकुण्ड, मशक कुण्ड, दंश कुण्ड, भीषण गरल कुण्ड, वज्रदन्त वृश्चिक कुण्ड, शरकुण्ड, शूलकुण्ड, खड्ग कुण्ड, गोलकुण्ड, तीक्ष्ण पाषाण कुण्ड, लाला कुण्ड (लार का कुण्ड), असिकुण्ड, दारुण चूर्ण कुण्ड, गोलकुंड, मगरों का कुण्ड, शोकप्रद काककुण्ड, सञ्चाल कुण्ड, बाजकुण्ड, अति दुस्तर बन्ध कुण्ड, तप्त पाषाणकुण्ड, चक्रकुण्ड, वज्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, महान् उल्वण ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, दुर्गन्धित पूति कुण्ड, तप्तसूर्य, असिपत्र, क्षुरधार, सूचीमुख, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुंभीपाक, कालसूत्र, अवटोद, अरतुंद, पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, प्रकम्पन, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन, दण्डताड़न, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषण, सर्पज्वालामुख, जिह्वा, धूमान्ध, नागवेष्टन कुण्ड।।७-२०।।

कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च। नियुक्तैः किङ्करगणै रक्षितानि च संततम्॥२१॥
दण्डहस्तैः शूलहस्तैः पाशहस्तैर्भयङ्करैः। शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैर्मदमत्तैश्च दारुणैः॥२२॥
तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्दुर्निवार्यैश्च सर्वतः। तेजस्विभिश्च निःशङ्कैस्ताम्रपिङ्गललोचनैः॥२३॥
योगयुक्तैः सिद्धयोगैर्नानारूपधरैर्वरैः। आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः॥२४॥
स्वकर्मनिरतैः शैवैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः। अदृष्टैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धयोगिभिरेव च॥२५॥

हे सावित्री! पातकी लोग इन नरक कुण्डों में दुःखभोग करते हैं। इन कुण्डों की रक्षा मेरे किंकर सर्वदा करते हैं। इन किंकरों में से कोई दण्डधारी, कोई शूलधारी, कोई पाशधारी, कोई शक्तिधारी, कोई गदाधारी है। ये देखने में अतीव भयानक हैं। सभी मदमत्त, तमोयुक्त, दया रहित, सभी प्रकार से निवारित न होने वाले, तेजस्वी, निःशंक हैं। उनके नेत्र ताम्रवत् पिंगलवर्ण हैं। सभी योगयुक्त सिद्धयोगी तथा नाना रूपधारी हैं। मुमूर्ष स्थिति में अथवा मृत्यु पश्चात् पापीगण देख पाते हैं। इन सभी का दर्शन स्वधर्म तत्पर शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य प्रभृति को तथा सिद्ध योगीगण पुण्यात्मागण को नहीं होता।।२१-२५।।

स्वधर्मनिरतैर्वाऽपि विरतैर्वा स्वतन्त्रकैः।
बलवद्भिश्च निःशङ्कैः [१]स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः॥२६॥
एतत्ते कथितं साध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम्।
येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० प्रकृति० सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रिसं०नरककुण्डसंख्यानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

१. क. स्वात्माद्ट०।

स्वधर्म तत्पर, स्वतन्त्र, विरत, बली, निःशंक वैष्णव तो इनको स्वप्न तक में नहीं देखते! हे साध्वी! इस प्रकार मैंने तुमसे नरककुण्डों का वर्णन कर दिया। अब वह कहता हूं कि किस नरक में किस पातकी को रहना होता है? वह श्रवण करो।।२६-२७।।

।।एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रिंशोऽध्यायः

पाप के अनुसार मिलने वाले तत्तद् नरकों का वर्णन

यम उवाच

हरिसेवारतः शुद्धो योगी सिद्धो व्रती सति। तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं यतिः।।१।।

कटुवाचा बान्धवांश्च खेलत्वेन च यो नरः।
दग्धान्करोति बलवान्वह्निकुण्डं प्रयाति सः।।२।।

गात्रलोमप्रमाणाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने। पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धस्त्रिजन्मनि।।३।।

यम कहते हैं–हे सती! हरिसेवापरायण, विशुद्ध चित्त, योगी, सिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी तथा यतिगण नरक नहीं जाते। जो मानव स्वयं को बली मान कर बान्धवों के साथ खलत्व करके उनको कटु वाक्यों से जलाता है, वह वह्निकुण्ड नरक में जाता है। वह उसके देह में जितने रोम हैं, उतने वर्षों तक दग्ध होता अन्ततः पशुयोनि में तीन जन्म लेकर धूप में दग्ध होता है।।१-३।।

ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम्। न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः।।४।।

तत्र लोमप्रमाणाब्दं स्थित्वा तत्र च दुःखितः।
तप्तस्थले वह्निकुण्डे पक्षी च सप्तजन्मसु।।५।।

रविवारार्कसंक्रान्त्याममायां श्राद्धवासरे। वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति यो हि मानवः।।६।।

स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च। स व्रजेद्राजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते।।७।।

जो गृहागत प्यासे, सन्तप्त, लुब्ध, ब्राह्मण को भोजनादि प्रदान नहीं करता, वह तप्तकुण्ड नरक में जाता है। उसके देह में जितने रोम हैं, उतने वर्ष दुःख पूर्वक अग्नि के समान तप्त स्थान में अत्यन्त तप्त होता रहता है। अन्ततः उसे ७ जन्म पक्षी का मिलता है। जो मानव रविवार, रवि संक्रान्ति, अमावस्या, श्राद्ध दिवस पर वस्त्रों को क्षार मिट्टी (रेह) से स्वच्छ करता है, उस वस्त्र में जितने सूत हैं, वह उतने वर्ष तक क्षारकुण्ड में दुःख झेल कर भारत में ७ जन्मों तक धोबी होता है।।४-७।।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं [1]हरेत्तु यः। यो हरेद्भारते वर्षे विट्कुण्डं च प्रयाति सः॥८॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि॥९॥
परकीयतडागे च तडागं यः करोति च। उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥१०॥
तद्रेणुमानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। भारते गोधिका चैव स भवेत्सप्तजन्मसु॥११॥

जो मनुष्य स्वप्रदत्त किंवा अन्य द्वारा प्रदत्त ब्राह्मण की वृत्ति का हरण करता है, वह ६०००० वर्ष पर्यन्त विट् (मल) कुण्ड का कीट होकर इतने वर्ष तक मल भक्षण करता है। जो अन्य के जलाशय को अपना कह कर उसका खनन कराता है, उसे मूत्र कुण्ड में जाकर उस जलाशय में जितने रेणु कण थे, उतने वर्षों तक मूत्रभक्षी होकर काल व्यतीत करना होगा। तदनन्तर भारत में ७ जन्म तक गोह का जन्म लेगा।।८-११।।

एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति सः।
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥१२॥

पूर्णमब्दशतं चैव स प्रेतो भारते भवेत्। श्लेष्ममूत्रगरं चैव [2]तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥१३॥
पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम्। यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुण्डं प्रयाति सः॥१४॥

जो अकेले स्वयं मिष्ठान्न खाता है, वह श्लेष्मा वाले नरककुण्ड में १०० वर्ष तक उसे खाकर रहता है। तदनन्तर वह भारत में १०० वर्ष पर्यन्त प्रेत होकर दिन-रात श्लेष्मा (कफ), मूत्र, विष भक्षण करता है। जो माता-पिता-गुरु-पत्नी-पुत्र-पुत्री-अनाथ का पालन नहीं करता, उसे तो गरकुण्ड नरक में जाना ही है।।१२-१४।।

पूर्णमब्दसहस्रं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥१५॥

वह पातकी १००० वर्ष तक वहां उपरोक्त गर (विष) खाकर रहता है। तदनन्तर वह १०० वर्ष भूतयोनि में रह कर, तब पाप से शुद्ध होगा।।१५।।

दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः।
पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः॥१६॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
इहैव लभते चान्ते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत्॥१७॥

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो नरो भवेद्भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु॥१८॥

जो गृहागत अतिथि को देख कर मुंह बनाता है, निगाह टेढ़ी करता है, वह ऐसा पातकी है, जिसके तर्पण का जल पितृगण तथा देवता ग्रहण नहीं करते। वह जीवित रहते ब्रह्महत्यादि पातक का भागी होता है। मृत्यु होने पर दूषिका कुण्ड में जाकर १०० वर्ष तक वहां नेत्रमल का भक्षण

१. ख. सुरविप्रयोः।
२. ख. पूयं भुंक्ते ततः शुचिः।

करता है। वह १०० वर्ष तक यही भोजन करने के पश्चात् पृथिवी पर जन्म लेकर ७ जन्मों तक दरिद्र होगा।।१६-१८।।

दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि।
स तिष्ठति वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥१९॥
ततो भवेत्स चण्डालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः।
कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु।
ततो भवेन्मानवश्च दरिद्रोऽल्पायुरेव च॥२०॥

जो ब्राह्मण को दान देकर पुनः वह वस्तु किंवा धन वापस लेता है, वह सौ वर्ष वसाकुण्ड नरक भोग कर वहां वसा भोजन करता रहता है। वह तीन जन्म लेकर प्रति जन्म में चाण्डाल होगा। अन्त में भारत में ७ जन्म तक गिरगिट की योनि में रह कर दरिद्रता युक्त एवं अल्पायु मानव होगा।।१९-२०।।

पुमांसं कामिनी वाऽपि कामिनीं वा पुमानथ।
यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः॥२१॥
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
योनिकृमिः शताब्दं च भवेद्धुवि ततः शुचिः॥२२॥

पुरुष जब स्त्री को वीर्यपान कराये अथवा नारी पुरुष को वीर्यपान कराये, तब इनको वीर्यकुण्ड नरक में जाना होगा। वहां वह पातकी १०० वर्ष योनिकीट रह कर, तब शुद्ध होगा।।२१-२२।।

संताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत्।
स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥२३॥
ततो भवेद्व्याधजन्म सप्तजन्मसु भारते। ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण च॥२४॥
अश्रु स्त्रवन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम्।
श्रीकृष्णगुणसङ्गीते हसत्येव हि यो नरः॥२५॥
स वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम्।
ततो भवेत्स चण्डालो त्रिजन्मनि ततः शुचिः॥२६॥

जो गुरु किंवा ब्राह्मण पर प्रहार करता है, रक्ताक्त करता है, वह असृक् कुण्ड नरक में रक्त पीता १०० वर्ष रहेगा। तदनन्तर वह पातकी भारत में ७ जन्म तक व्याध होकर, तब शुद्ध होगा। जो कृष्ण का गुणगान करते, उसे प्रेमाश्रुपात करते देख कर, उसका उपहास करता है, वह १०० वर्ष तक अश्रुकुण्ड नरक में अश्रु भोजन करेगा। तीन जन्म चाण्डाल का भोग कर वह अन्ततः शुद्ध होगा।।२३-२६।।

करोति खलतां शश्वदशुद्धहृदयो नरः।
कुण्डं गात्रमलानां च स च याति [1]दशाब्दकम्॥२७॥
ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि।
त्रिजन्मनि च शार्गाली ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम्॥२८॥

जो खल बुद्धि मानव शुद्ध हृदय मनुष्य के साथ दुष्टता करता है, वह गात्रमल कुण्ड नरक में १० वर्ष रहकर, तब तीन जन्म तक गर्दभ एवं तीन जन्म तक श्रृगाल योनि में रहेगा, तब उसकी शुद्धि होगी।।२७-२८।।

बधिरं यो सहत्येव निन्दत्येव हि मानवः।
स वसेत्[2] कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥२९॥
ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मस्वङ्गहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम्॥३०॥

जो मानव बधिर व्यक्ति का उपहास करता है, वह १०० वर्ष तक कर्णविट् कुण्ड नरक में कर्णमल का भोजन करके रहेगा। तदनन्तर ७ जन्म तक बधिर एवं दरिद्र रहेगा। तदनन्तर ७ जन्म तक अंगहीन रहकर शुद्ध हो पायेगा।।२९-३०।।

लोभात्स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः।
मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवर्षकम्॥३१॥
ततोभवेत्स शशको मीनश्च सप्तजन्मसु।
एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम्॥३२॥

जो लोभवश अपने जीवनार्थ अन्य जीव का वध करता है, वह एक लाख वर्ष पर्यन्त मज्जाकुण्ड नरक में पड़ा रहकर मज्जा खाता है। अन्ततः ७ जन्म पर्यन्त खरगोश, मत्स्य, मृगादि योनि में जन्म लेकर दुःख भोगता है। तब वह शुद्ध हो सकेगा।।३१-३२।।

स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति हि यो नरः।
अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः॥३३॥
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति। तं च कुण्डे प्रहारं च करोति यमकिङ्करः॥३४॥
मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तधारां लिहेत्क्षुधा।
ततो हि भारते पापी कन्याविट्सु कृमिर्भवेत्॥३५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु। त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुरः सप्तजन्मसु॥३६॥
सप्तजन्मसु मण्डूको जलौकाः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम्॥३७॥

जो पापी कन्या को पाल-पोस कर धनलोभ में उसे बेचता है, उस कन्या के देह में जितने रोम

१. शताब्द०।
२. ०सेत्तीर्थवि०।

हैं, वह उतने वर्षों तक मांसकुण्ड नरक में मांस भक्षण करता रहता है। यमदूत उस पर दण्ड प्रहार करते रहते हैं, वह मांसपिंड शिर पर ढोने हेतु विवश रहता है। भूखा होने पर अपने क्षत से बहते रक्त का भोजन करता है। तदनन्तर वह भारत में ६०००० वर्ष तक कन्या के मल का कीड़ा होकर तत्पश्चात् ७ जन्म तक व्याध, तीन जन्म तक ग्रामशूकर, ७ जन्म तक श्वान, ७ जन्म तक मंडूक, ७ जन्मों तक जलौका (जोंक), ७ जन्मों तक कौआ होकर शुद्ध होगा।।३३-३७।।

व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संयमे। न करोति क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु।।३८।।
स च तिष्ठति कुण्डेषु नखादीनां च सुन्दरि।
तदेव दिनमानाब्दं तद्भोजी दण्डताडितः।।३९।।
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वाऽर्चयति भारते। स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम्।।४०।।
तदन्ते यावनीं[1] योनिं प्रयाति हरकोपतः।
शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति[2] स्वकुलं लभते ध्रुवम्।।४१।।

जो व्रतोपवास, श्राद्धादि कर्म में संयम पूर्वक स्थित रहने हेतु क्षौर नहीं कराता, उसका सभी कार्य अशुद्ध है। हे सुन्दरी! वह नखकुण्ड नरक में उसी के अनुसार उतने वर्ष तक नख खाता रहेगा। उस पर यमकिंकर दण्ड प्रहार करते रहते हैं। भारत में जो केशयुक्त रहते पार्थिव लिंग पूजा करते हैं, उस पार्थिव लिंग में जितने बालू के कण हैं, वे उतने वर्ष केशकुण्ड नरक में निवास करते हैं। तदनन्तर शिव कोप के कारण वे १०० वर्ष तक यवन जाति में जन्म लेकर रहते हैं। तदनन्तर शुद्ध होकर स्वकुल में जन्म लेते हैं।।३८-४१।।

पितॄणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च।
स तिष्ठत्यस्थिकुण्डे च स्वलोमाब्दं महोल्वणे।।४२।।
ततः स्वयोनिं संप्राप्य खञ्जः सप्तसु जन्मसु।
भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि दण्डतः।।४३।।

जो व्यक्ति पितरों को विष्णुपद पर पिण्ड प्रदान नहीं करता, वह अस्थिकुण्ड नरक में तब तक पड़ा रहता है, जितने रोम उसके शरीर में हैं। तदनन्तर वह अपने ही कुल में जन्म लेता है। वह अत्यन्त दरिद्र तथा पंगु होता है। यह दण्ड भोग कर वह शुद्ध हो जाता है।।४२-४३।।

यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम्। प्रतप्तताम्रकुण्डे च शतवर्षं स तिष्ठति।।४४।।
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च।
लौहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके।।४५।।
स व्रजेद्राजकीं योनिं कर्मकारीं च सप्तसु। महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।।४६।।

१. क. दानवीं।
२. क. राजत्वं लभते कलौ।

अपनी गर्भिणी पत्नी से समागम करने वाला मूढ़ व्यक्ति सौ वर्ष तक तप्तकुण्ड नरक में रहता है। पतिपुत्र रहित विधवा नारी के अन्न का अथवा रजस्वला नारी का अन्न खाने वाला तप्त लौहकुण्ड नरक में सौ वर्ष तपाया जाता है। वह सात जन्म पर्यन्त धोबी तथा कर्मकार होकर महान् घावयुक्त एवं दरिद्रता भोगते रहने के अनन्तर शुद्ध हो पाता है।।४४-४६।।

यो हि घर्माक्तहस्तेन द्रवद्रव्यमुपस्पृशेत्। शतवर्षप्रमाणं च घर्मकुण्डे स तिष्ठति।।४७।।

यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च।
स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः।।४८।।
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु।
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम्।।४९।।

जो व्यक्ति पसीने से तर हथेली द्वारा देवता के उपयोगी द्रव्यों का स्पर्श करता है, वह १०० वर्ष पर्यन्त तप्तधर्म (तप्त पसीने के) नरक में रहता है। शूद्र की आज्ञा से शूद्रान्न भक्षणकर्त्ता द्विज व्यक्ति सौ वर्ष पर्यन्त तप्त सुराकुण्ड में कष्ट पाता है। तदनन्तर वह जन्मों तक शूद्रों का यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण होगा। तदनन्तर श्राद्धान्नभोजी ब्राह्मण होकर जन्म लेगा। इतना भोग-भोगकर तब वह शुद्ध होगा। यह निश्चित है।।४७-४९।।

वाग्दुष्टा कटुवाचा या ताडयेत्स्वामिनं सदा।
तीक्ष्णकण्टककुण्डे सा तद्भोजी तत्र तिष्ठति।।५०।।

ताडिता यमदूतेन दण्डेन च चतुर्युगम्। तत उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः।।५१।।

जो स्त्री दुष्टतापूर्ण वाक्य एवं कटु वाक्य द्वारा पति को नित्य लांछित-पीड़ित करती है, वह तीक्ष्ण कण्टक कुण्ड नरक में कंटक खाती चार युग व्यतीत करती है। यमदूत उस पर दण्ड प्रहार करते हैं। तदनन्तर ७ जन्मों तक ऊंचा सुनने वाली स्त्री का जन्म लेती है। तत्पश्चात् ही उसकी शुद्धि होती है।।५०-५१।।

विषेण जीविनं हन्ति निर्दयो यो हि पामरः[1]।
विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति।।५२।।
ततो भवेन्नृघाती च व्रणी स्यात्सप्तजन्मसु।
सप्तजन्मसु कुण्ठी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम्।।५३।।

जो निर्दय पापी विष प्रदान करके हत्या करता है, वह सहस्रों वर्ष विषकुण्ड नरक में विषभोजी होकर रहता है। तदनन्तर सात जन्म पर्यन्त मनुष्यघाती एवं व्रणयुक्त होकर कोढ़ी रहता है। तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है।।५२-५३।।

१. क. मानवः।

दण्डेन ताडयेद्यो हि वृषं च वृषवाहकः। भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते॥५४॥
प्रतप्ततैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम्। गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम्॥५५॥

जो स्वयं अथवा उसका नौकर वृष को अथवा वृष सवार को दण्ड से पीटता है, उसे ४ युग तक प्रतप्त तैलकुण्ड नरक में रखते हैं। तदनन्तर जितने रोम एक गौ के देह में रहते हैं, तब तक वह वृष योनि में रहता है॥५४-५५॥

दन्तेन[1] हन्ति जीवं यो लौहेन बडिशेन वा।
[2]दन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति॥५६॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चोदरव्याधिसंयुतः। क्लिष्टेन जन्मनैकेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥५७॥

जो दांतों से किंवा लौह की वंशी से जन्तुओं का वध करता है, वह १०००० वर्ष पर्यन्त दन्तकुण्ड नरक में रहता है। अन्ततः अपने ही कुल में जन्म लेकर भी रोगों से त्रस्त रहता है। अब वह मात्र इस एक ही जन्म में कष्ट भोग कर शुद्धिलाभ करता है॥५६-५७॥

यो भुङ्क्ते च वृथा मांसं मत्स्यभोजी च ब्राह्मणः।
हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः॥५८॥
स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः॥५९॥

जो ब्राह्मण मत्स्यभोजी है, हरि के नैवेद्य को छोड़ कर व्यर्थ मांस भक्षण करता है, वह कृमिकुण्ड नरक में गमन करता है। जितने उसके देह में रोम हैं, उतने वर्ष तक वह कृमि को खाता उस नरक में रहता है। तदनन्तर म्लेच्छ योनि में तीन जन्म व्यतीत करके पुनः ब्राह्मण हो जाता है॥५८-५९॥

ब्राह्मणः शूद्रयाजी यः शूद्रश्राद्धान्नभोजकः।
शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डं व्रजेद् ध्रुवम्॥६०॥
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यजमानस्य सुव्रते। ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥६१॥
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु। महाशूली दरिद्रश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः॥६२॥

जो ब्राह्मण शूद्र का यज्ञ कराये, शूद्रों के यहां श्राद्धान्न भक्षण करे तथा शूद्रों के शव का दाह करे, वह पूयकुण्ड नरकगामी होता है। हे सुव्रते! उसके शूद्र यजमान के देह में जितने लोम हैं, वह उतने वर्ष तक वही पूय (मवाद) खाकर निवास करता है। उस पर नित्य यमदूत दण्ड प्रहार करते हैं। तदनन्तर भारत में वह सात जन्म तक शूद्र हो जाता है। वह महारोगी एवं दरिद्र होकर सात जन्म व्यतीत करने के उपरान्त पुनः ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होगा॥६०-६२॥

---
१. ख. कुन्त०।
२. ख. कुन्त०।

लघुं [१]क्रूरं महान्तं वा सर्पं हन्ति च यो नरः।
[२]स्वात्मलोमप्रमाणाब्दं सर्पकुण्डं प्रयाति सः॥६३॥
सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताडितः।
वसेच्च सर्पविड्जीवी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम्॥६४॥
ततो भवेन्मानवश्चाप्यल्पायुर्दद्रुसंयुतः।
महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षणं ध्रुवम्॥६५॥

जो लघु, क्रूर किंवा विशाल सर्प की हत्या करता है, उस व्यक्ति के शरीर में जितने रोम हैं, वह उतने वर्ष तक सर्पकुण्ड नरक में दुःख झेलता है। वहां उसके द्वारा मारा सर्प उसका भक्षण करता है। साथ ही यमदूत उस पर दण्ड प्रहार करते हैं। वह सर्पविष्ठा का भक्षण करता है। अन्ततः वह सर्पयोनि में जन्म लेकर अगला जन्म अल्पायु, कण्डु (दाद) रोगी मनुष्य का होता है। अन्ततः वह सर्पदंश से क्लेशप्रद मृत्युग्रसित हो जाता है।।६३-६५।।

[३]विधिं प्रकल्प्य जीवांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हन्ति यः।
स दंशमशके कुण्डे जनममानदिनाब्दकम्॥६६॥
दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दकृत्। बद्धहस्तपदादिश्च यमदूतेन ताडितः॥६७॥

जो अनेक प्रकार से जीवों तथा क्षुद्र जन्तुगण का वध करता है, वह दंशमशक कुण्ड में अपनी आयु जितने दिनों को अर्थात् प्रतिदिन को एक वर्ष मान कर उतने काल तक डास तथा मच्छर कुण्ड (दंश मशक कुण्ड) में पड़ा कष्ट भोगता है। वहां दिन-रात ये जीव उसको काट कर खाते हैं। वह स्वयं आहार रहित होकर चीत्कार करता रह जाता है। यमदूतगण उसके हाथ-पैर को रस्सी से जकड़ कर ताड़ित करते रहते हैं।।६६-६७।।

ततो भवेत्क्षुद्रजन्तुर्जातिर्वै यावती स्मृता।
ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः॥६८॥
यो मूढो मधु गृह्णाति हत्वा च मधुमक्षिकाः।
स एव गारले कुण्डे जीवमानदिनाब्दकम्॥६९॥
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः। ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥७०॥

तदनन्तर क्षुद्र जीवरूपेण उसका जन्म होता है। तदनन्तर कई जन्म के पश्चात् वह अंगहीन मनुष्य रूप में जन्म लेता है। इस कष्ट को झेल कर उसकी शुद्धि हो जाती है। जो व्यक्ति मूढ़ता वश मधुमक्षिकाओं का वध करके छत्ते का मधु संचय करता है, जितने उसके जीवन के दिवस हैं, उतने वर्ष

१. क. कृष्णपादमस्तकस्थं स०।
२. क. सर्पलो०।
३. क. विधिप्रदत्त जी०।

पर्यन्त वह विषकुण्ड नरक में दुःख सहता है। वहां उसको विष खाते हुए रहना पड़ता है। यमदूत उसे ताड़ित करते रहते हैं। तदनन्तर मधुमक्खी की योनि में जन्म लेकर वह शुद्ध हो सकेगा।।६८-७०।।

दण्डं करोत्यदण्ड्ये च विप्रे दण्डं करोति च।
स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां वै प्रयाति च॥७१॥
तल्लोममानवर्षं च तत्र तिष्ठत्यहर्निशम्। शब्दकृद्भक्षितस्तैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥७२॥
अर्थलोभेन यो भूपः प्रजादण्डं करोति च।
वृश्चिकानां च कुण्डेषु तल्लोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥७३॥
ततो वृश्चिकजातिश्च सप्त जन्मसु जायते।
ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥७४॥

अपराध रहित ब्राह्मण को दण्डित करने वाला वज्रदन्त कीटकुण्ड नरकगामी होता है। उसे अहर्निश वहां वज्रदन्त कीट काट कर खाते हैं और वह चीत्कार करता पड़ा रहता है। इससे ही उसकी शुद्धि हो पाती है। धन हरण करने के लोभ से जो राजा प्रजावर्ग को दण्डित करता है, उस प्रजाजन के शरीर में जितने लोम हैं, उतने वर्ष पर्यन्त वह वृश्चिक कुण्ड नरक में निवास करके वृश्चिक होकर जन्म लेता है। तदनन्तर अंगहीन एवं रोगपीड़ित मनुष्य होकर उत्पन्न होता है।।७१-७४।।

यः खादति गुरुं स्वं च धूर्तो धूर्ततया खलः।
स कुण्डे वज्रदंष्ट्राणां वसेन्मन्वन्तरावधि॥७५॥
ब्राह्मणःशस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत्।
संध्याहीनश्च मूढश्च हरिभक्तिविहीनकः॥७६॥
स तिष्ठति स्वंलोमाब्दं कुण्डादिषु शरादिषु।
विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥७७॥

जो धूर्त्त खल व्यक्ति चालाकी से गुरु की हिंसा करता है, वह एक मन्वन्तर पर्यन्त वज्रदंष्ट्र कुण्ड नरक में कष्ट पाता है। जो ब्राह्मण शस्त्रधारी होकर अन्य व्यक्ति का दूतकार्य करता है, वह हरिभक्ति रहित, सन्ध्याहीन, मूढ़ व्यक्ति शरकुण्ड नरक में उतने वर्ष निवास करता है, जितने रोम उसके देह में हैं। वहां बाणों के प्रहार से उसका देह क्षत-विक्षत होता रहता है। तदनन्तर उसकी शुद्धि हो जाती है।।७५-७७।।

कारागारे सान्धकारे निबध्नाति प्रजाश्च यः।
प्रमत्तः स्वल्पदोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः॥७८॥
तत्कुण्डं तप्ततोयाक्तं सान्धकारं भयङ्करम्।
तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम्॥७९॥

कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च।
ततो [१]भवेन्नीचभृत्यस्ततः शुद्धो नरो भुवि॥८०॥

जो राजा प्रमत्त होकर मामूली दोष में प्रजावर्ग को अन्धकारमय कारागृह में बन्दी बनाता है, वह प्रतप्त तप्ततोय (तप्तजल) युक्त गोलकुण्ड नरक में जाता है, जो अन्धकारमय भयंकर है। वह तेज दंष्ट्रा कीटों से भरा है। वह उस प्रजाजन के जितने रोम हैं, उतने वर्ष पर्यन्त वहां कष्टभोग करते हुए उन कीटों द्वारा काटे जाने से अत्यन्त भयानक परिलक्षित होता है। तदनन्तर वह प्रजावर्ग के निम्न लोगों का दास होकर अन्ततः पवित्रता पाकर पृथिवी पर मनुष्य जन्म लेता है।।७८-८०।।

सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हन्ति यः सति।
नक्रकण्टिकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः॥८१॥
ततो नक्रादिजातिश्च भवेन्नद्यादिषु ध्रुवम्। ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव नरः पुनः॥८२॥

उसे मनुष्य सरोवरों, जलाशयों आदि से बाहर आये मगर आदि जन्तुओं का वध करता है, उसे निश्चित रूप से नदी आदि में मगर आदि जाति वाला होकर जन्म लेना पड़ता है। इससे पहले उन जलजन्तुओं में जितने कांटे होते हैं, उतने वर्ष तक वह नक्रकुण्ड नामक नरक में रहेगा। तदनन्तर जलजन्तु होकर जन्म लेने से उसकी इस दण्ड से शुद्धि हो जाती है।।८१-८२।।

वक्षःश्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते॥८३॥
स वसेत्काककुण्डे च काकैश्च क्षुण्णलोचनः।
ततः स्वलोममानाब्दं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥८४॥

जो मनुष्य कामपूर्ण भावना से भारत में नारीगण के (परस्त्री का) वक्ष, कमर, स्तन, मुख आदि अंगों को देखता है, उस व्यक्ति के स्वयं की देह में जितने रोम हैं, वह उतने वर्ष तक काकतुण्ड नरक में रहेगा, जहां कौये उसके नेत्र उखाड़ कर खायेंगे। तत्पश्चात् वह तीन जन्म तक अंधा रहेगा।।८३-८४।।

स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः।
स च सञ्चानकुण्डं च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥८५॥
ताडितो यमदूतेन सञ्चानैः क्षुण्णलोचनः।
ततो भोजी च तत्रैव ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥८६॥
सप्तजन्मदरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी। भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः॥८७॥

जो मूढ़ भारत में देवता तथा ब्राह्मणों का स्वर्ण चोरी करता है, उसके अपने देह में जितने रोम

१. क. ०वेत्रजाजातिस्त०।

हैं, वह उतने वर्षों तक संचानकुण्ड में निवास करता है। वहां संचान जाति के काक उसके नेत्र उखाड़ते हैं। वह यमदूतों के द्वारा पीटा जाता है। यहां पापभोग के उपरान्त वह तीन जन्म पर्यन्त अन्धा होकर रहेगा। तदनन्तर ७ जन्म तक दरिद्रताग्रस्त, महाक्रूर, पापी होकर स्वर्णकार तथा स्वर्ण बेचने वाला वणिक् रहता है।।८५-८७।।

यो भारते ताम्रचौरो लौहचौरश्च सुन्दरि। स स्वलोमप्रमाणाब्दं वज्रकुण्डं प्रयाति वै।।८८।।
तत्रैव वज्रविड्भोजी वज्रैश्च क्षुण्णलोचनः। ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः।।८९।।

हे सुन्दरी! भारत में ताम्र तथा लौह की चोरी करने वाला वज्रकुण्ड नरक में उतने वर्ष तक रहेगा, जितने रोम उसके देह में हैं। वहां वह वज्रकीटों का मल भक्षण करेगा। ये कीट उसके नेत्र छेद देते हैं। यमदूत भी उस प्रहार करते रहते हैं। तदनन्तर वह शुद्ध होगा।।८८-८९।।

भारते देवचौरश्च देवद्रव्यादिहारकः। सुदुष्करे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्।।९०।।
देहदग्धो हि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत्। ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः।।९१।।

जो कोई भारत देश में देव मूर्त्ति किंवा देवता को अर्पित द्रव्य तथा वस्तु की चोरी करता है, वह अत्यन्त घोर वज्रकुण्ड नरक में तब तक क्लेश भोग उतने वर्ष पर्यन्त करेगा, जितने रोम उसके शरीर में हैं! वज्रकुण्ड नरक में कीड़ों के काटने से उसे देह में महान् दाह का अनुभव होता है। वह पीड़ा से चिल्लाता रहता है। यमदूत उस पर प्रहार करते रहते हैं। तब उसकी शुद्धि होती है।।९०-९१।।

रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः।
तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्।।९२।।
त्रिजन्मनि बकः सोऽपि श्वेतहंसस्त्रिजन्मनि।
जन्मैकं शङ्खचिल्लश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः।।९३।।
ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत्।
सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः।।९४।।

जो पातकी देवता किंवा ब्राह्मण की चांदी, वस्त्र, गौ की चोरी करता है, वह पाषाणकुण्ड नरक में उतने वर्ष निवास करेगा, जितने रोम उसके शरीर में हैं। तत्पश्चात् उसे ३ जन्मों तक बकुला की योनि, ३ जन्म तक हंस की योनि, १ जन्म शंख चील की योनि मिल कर इसके अगले जन्म में श्वेत पक्षी होकर जन्म लेता है। तदनन्तर ७ जन्म पर्यन्त रक्तविकारग्रस्त, अन्य रोगग्रस्त, अल्पायु मनुष्य योनि भोग कर शुद्धिलाभ करता है।।९२-९४।।

रौप्यकांस्यादिपात्रं च यो रेहत्सुरविप्रयोः।
तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्।।९५।।
स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु। ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी ततः शुचिः।।९६।।

देवता किंवा ब्राह्मण के पीतल, कांस्य धातु के पात्र की चोरी करने वाला तीक्ष्ण पाषाण कुण्ड नरक में अपने शरीर के रोमों की संख्या के अनुसार उतने वर्षों तक निवास करके भारत में ७ जन्म तक अश्वयोनि भोग कर अधिक अंग वाला और पैरों का रोगी मनुष्य होता है। तदनन्तर वह शुद्ध हो पाता है।।९५-९६।।

पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीवनः।
स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम्।।९७।।
ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततश्चक्षुः शूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः।।९८।।

व्यभिचारिणी स्त्री से जीविका चलाने वाला तथा ऐसी नारी का अन्न खाने वाला व्यक्ति उतने वर्ष तक लालाकुण्ड नरक में निवास करेगा, जितने उसके शरीर में रोम हैं। वह वहां यमदूतों द्वारा किये दण्ड प्रहार से क्लेशभोग करता है तथा वहां लाला (मुंह की लार) का भक्षण करके मनुष्य योनि में जन्म लेता है, जहां नेत्रशूल सह कर शुद्ध हो सकेगा।।९७-९८।।

म्लेच्छसेवी मषीजीवी यो विप्रो भारते भुवि।
स च तप्तमषीकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्।।९९।।
ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति।।१००।।
त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णसर्पस्त्रिजन्मनिं।
ततश्च तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।।१०१।।

जो ब्राह्मण भारत में म्लेच्छों का सेवक तथा उनका मुनीम होकर जीवन निर्वाह करता है, वह खौलती स्याही वाले मसिकुण्ड नरक में उतने वर्ष कष्ट पायेगा, जितनी संख्या के रोम उसके शरीर में हैं। वह वहां वही स्याही खाता है तथा यमदूत सदैव उस पर प्रहार करते हैं। तदनन्तर तीन जन्म तक बकरा होकर, तीन जन्म कृष्णवर्ण सर्प होता है। तदनन्तर ताड़ वृक्ष होकर उसकी शुद्धि होती है।।९९-१०१।।

धान्यादिसस्यं ताम्बूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः।
आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुण्डं प्रयाति सः।।१०२।।
शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः। ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि।।१०३।।
ततो भवेन्मानवश्च कासव्याधियुतो भुवि।
वंशहीनो दरिद्रश्चाप्यल्पायुश्च ततः शुचिः।।१०४।।

जो देवता, ब्राह्मण का अन्न-ताम्बूल-आसन-शय्या चोरी करता है, वह चूर्णकुण्ड नरकगामी होता है। वहां १०० वर्ष तक यमदूत उसे पीटते रहते हैं। तदनन्तर भेड़ योनि के पश्चात् तीन जन्म तक

मुर्गा की योनि में उत्पन्न होता मनुष्य योनि प्राप्त करता है। जहां वह खांसी (दमा आदि) से पीड़ित, वंश रहित, दरिद्र-अल्पायु जीवन व्यतीत करके शुद्धिलाभ करता है।।१०२-१०४।।

चक्रं करोति विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो नरः।
स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दण्डताडितः।।१०५।।
ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि।
व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः।।१०६।।
बान्धवेषु च विप्रेषु कुरुते वक्रतां नरः।
प्रयाति [1]वक्रकुण्डं च वसेत् तत्र युगं सति।।१०७।।
ततो भवेत्स वक्राङ्गो हीनाङ्गः सप्तजन्मसु।
दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः।।१०८।।

ब्राह्मण का द्रव्य चोरी करके चक्र निर्माण करने वाला पातकी व्यक्ति चक्रतुण्ड नरक में १०० वर्ष तक यमदूतों द्वारा ताड़ना सह कर, तीन जन्म तेली जाति के मनुष्य का लेता है, जिसमें वह सन्तान रहित एवं रोगी होकर व्यतीत करने के उपरान्त शुद्धिलाभ करता है। बन्धुगण तथा विप्रगण से टेढ़ा व्यवहार करने वाला व्यक्ति वक्रकुण्ड नरक जाकर वहां एक युग कष्ट भोगने के पश्चात् ७ जन्म तक कूबड़ युक्त, वक्र अंगों वाला, कम अंगों वाला, दरिद्र, निपूता मनुष्य तथा स्त्री रहित रह कर, तब शुद्ध होता है।।१०५-१०८।।

शयने कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति।
कूर्मकुण्डे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः।।१०९।।
ततो भवेत्कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च सूकरः।
त्रिजन्मनि विडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि।।११०।।
घृततैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः।
ज्वालाकुण्डं स वै याति भस्मकुण्डं च पातकी।।१११।।
तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपायिकः।
सप्तजन्मसु मत्स्यः स्यान्मूषकश्च ततः शुचिः।।११२।।

जो व्यक्ति पलंग पर बैठा कच्छप मांस खाता है, वह १०० वर्ष कूर्मकुण्ड नरक में कष्ट भोग कर रहता है, जहां पर कछुए उसका मांसभक्षण करते हैं। तदनन्तर वह १ जन्म कच्छप, तीन जन्म शूकर, तीन जन्म बिड़ाल, तीन जन्म तक मयूर पक्षी होगा। जो देवता तथा ब्राह्मण का तैल-घृत चोरी करता है, वह पापी ज्वाला कुण्ड तथा भस्मकुण्ड नरक भोगी होता है। वहां १०० वर्षों तक कष्ट पाकर ७ जन्म पर्यन्त क्रमशः श्रृगाल, मत्स्य तथा मूषक योनि पाकर शुद्ध हो पाता है।।१०९-११२।।

१. ख. वज्रकु०।

सुगन्धितैलं धात्रीं च गन्धद्रव्यं तथैव वा। भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः॥११३॥
[1]वसेद्दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धं च लभेत्सदा।
स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गन्धिको भवेत्॥११४॥

जो भारत भूमि में ब्राह्मण किंवा देवता का सुगन्धित तैल, आंवला तथा सुगन्धिद्रव्य हरण करता है, वह दुर्गन्धकुण्ड नरक में जितने उसके शरीर में रोम हैं, उतने वर्ष दुर्गन्ध का ही अनुभव करेगा।।११३-११४।।

दुर्गन्धिकः सप्तजनौ मृगनाभिस्त्रिजन्मनि।
सप्तजन्म सुगन्धिश्च ततो वै मानवो भवेत्॥११५॥

वह सात जन्म तक छछुन्दर की योनि में रह कर तीन जन्म पर्यन्त कस्तूरी किंवा मृग तथा ७ जन्म तक सुगन्धित पदार्थ होकर, तब मानव जन्म पाता है।।११५।।

बलेनैव खलत्वेन हिंसारूपेण वा सति। बली च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम्॥११६॥
स वसेत्तप्तशूले च भवेत्तप्तो दिवानिशम्।
तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भ्रमति संततम्॥११७॥
भस्मसान्न भवत्येव भोगदेहो न नश्यति। सप्तमन्वन्तरं पापी संतप्तस्तत्र तिष्ठति॥११८॥
शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिर्भारते ततः॥११९॥
ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः।
ततः स्वयोनिं संप्राप्य [2]शुभकर्मा भवेत्पुनः॥१२०॥

जो बल पूर्वक भारतवर्ष में बल प्रयोग करके तथा हिंसा द्वारा अन्य की पुश्तैनी भूमि हड़पता है, वह तप्त शूल नरक में तप्त तैल में दिन-रात पकाया जाता है, तथापि उसकी भोगदेह नष्ट नहीं होती, वह दग्ध होकर भस्म भी नहीं हो पाता। कष्ट भोगता ही रहता है। वह सात मन्वन्तर तक यही कष्ट झेलता रहेगा। वह आहार नहीं पाता। यमदूतों के प्रहार के कारण चीखता रहता है। तदनन्तर वह भारत में ६०००० वर्ष तक विष्ठा का कृमि होकर मानव शरीर प्राप्त करके भूमि रहित एवं दरिद्रता भोगता शुद्ध हो जाने पर अपने कुल में जन्म लेकर पुनः शुभकर्मरत होता है।।११६-१२०।।

छिनत्ति जीविनः खड्गैर्दयाहीनः सुदारुणः। नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते॥१२१॥
असिपत्रे च स वसेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तेषु चेद्ब्राह्मणान्हन्ति शतमन्वन्तरं तदा॥१२२॥
छिन्नाङ्गश्च भवेत्पापी खड्गधारेण संततम्।
अनाहारः शब्दकृच्च यमदूतेन ताडितः॥१२३॥

१. क. स वसेद्दग्धकुण्डे च भवेद्दग्धो दिवानिशम्।
२. क. ०कर्म चरेत्पु०।

[1]चण्डालः शतजन्मानि भारते सूकरो भवेत्।
कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु॥१२४॥
व्याघ्रश्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि।
सप्तजन्मसु गण्डी स्यान्महिषश्च त्रिजन्मनि॥१२५॥

भारत में जो दया रहित होकर खड्ग से दारुण रूप से प्राणीगण का वध करता है तथा जो भयानक नरघाती होकर अर्थलोभ से लोगों का वध करता है, वह १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक असिपत्रवन नरक में पापफल भोगता है। यदि उसने ब्रह्मघात किया है, तब सौ मन्वन्तर पर्यन्त उसी नरक में पड़ा रहेगा। वहां यमगण उसका टुकड़ा खड्ग से करते हैं। भोजन नहीं देते। वह यमदूतों के प्रहार से बराबर चीत्कार करता रहता है। तदनन्तर भारत में वह १०० जन्म तक चाण्डाल, सूकर होगा। १०० जन्म तक श्वान योनि, ७ जन्म तक शृगाल योनि, सात जन्म तक व्याघ्र योनि, तीन जन्म तक वृक योनि, ७ जन्म तक गैंडा की योनि, ३ जन्म तक महिष योनि प्राप्त करेगा।।१२१-१२५।।

ग्रामं वा नगरं वाऽपि दाहनं यः करोति च।
क्षुरधारे वसेत्सोऽपि च्छिन्नाङ्गस्त्रियुगं सति॥१२६॥
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमेन्महीम्।
सप्तजन्मामेध्यभोजी खद्योतः सप्तजन्मसु॥१२७॥
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु।
सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः॥१२८॥

जो ग्राम तथा नगर को दग्ध करता है, वह क्षुरधार नामक नरक में छूरे की धार से खण्ड-खण्ड किया जाता ३ युग तक वहां रहता है। तत्पश्चात् अग्निमुख प्रेतत्व पाकर पृथिवी पर चक्रमण करता है। तदनन्तर ७ जन्म तक अपवित्र आहार करने वाला, ७ जन्म तक खद्योत (जुगनू), ७ जन्म तक महान् शूल व्यथा पीड़ित मानव तथा ७ जन्म तक गलित कोढ़ी होकर शुद्ध हो जाता है।।१२६-१२८।।

परकर्णोपजापेन परनिन्दां करोति यः। परदोषे महातोषी देवब्राह्मणनिन्दकः॥१२९॥
सूचीमुखे स च वसेत्सूचीविद्धो युगत्रयम्।
ततो भवेद्वृश्चिकश्च सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु॥१३०॥
वज्रकीटः सप्तजनौ भस्मकीटस्ततः परम्।
ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः॥१३१॥

जो दूसरे की चुगली करने वाला तथा अन्य के दोषों का वर्णन करके सन्तुष्ट होने वाला मनुष्य

१. क. संचानः शतवर्षाणि शतजन्मानि सूकरः। कुक्कुरः सप्तजन्मानि सृ०।

है, जो सतत् देवता-ब्राह्मण का निन्दक है, वह सूचीमुख नरक पाकर सुईयों से भेदा जाकर तीन युग यही पीड़ा सहता है। तदनन्तर वृश्चिक योनि, सात जन्मों तक सर्प, सात जन्मों तक वज्रकीट, सात जन्म तक भस्मकीट योनि भोग कर पुनः महारोगी मनुष्य योनि प्राप्त करता है। इस प्रकार उसकी शुद्धि होती है।।१२९-१३१।।

गृहिणां च गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः।
गाश्च च्छागांश्च मेषांश्च याति गोधामुखं च सः।।१३२।।
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम्। ततो भवेत्सप्तजनौ गोजातिर्व्याधिसंयुतः।।१३३।।
त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि।
ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः।।१३४।।
भार्याहीनो बन्धुहीनः संतापी च ततः शुचिः।
सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं युगम्।।१३५।।
ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः। हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नरांस्तथा।।१३६।।

जो किसी की दीवार में सेंध लगा कर उस गृह की वस्तु, गौ, भेड़ तथा बकरी चुराता है, वह मृत होने के अनन्तर गोधामुख नरक जाता है। तदनन्तर ७ जन्म तक रोगी, गौ, तीन जन्म भेड़ का तथा तीन जन्म बकरी का जन्म भोगने के उपरान्त नित्य पीड़ायुक्त, दरिद्र, पत्नी-भ्राता रहित मनुष्य होकर जीवन व्यतीत करता है। इससे उसकी शुद्धि होती है। सामान्य द्रव्य के चोर नक्रमुख नरक में एक युग क्लेश पाते हैं। तदनन्तर महारोगी मनुष्य होकर पवित्र होते हैं। जो मनुष्य हाथी, गौ, गज, अश्व का वध करता है।।१३२-१३६।।

स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम्। ताडितो यमदूतेन गजदन्तेन संततम्।।१३७।।
स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि।
गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।।१३८।।
जलं पिबन्तीं तृषितां गां वारयति यो नरः।
तच्छुश्रूषाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः।।१३९।।
नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम्।
तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वन्तरावधि।।१४०।।
ततो [1]नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः।
सप्तजन्मन्यन्त्यजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः।।१४१।।

वह पतित व्यक्ति गजदंश नरक में तीन युग तक कष्ट भोगता है। उसे यमदूत गजदन्त से बराबर

१. क. ०रोप्यङ्गही०।

पीटते हैं। तदनन्तर वह तीन जन्म गज तथा घोड़ा होकर गौ एवं म्लेच्छ मनुष्य होकर शुद्ध होता है। जो पातकी तृषित गौ को जल नहीं पीने देता, वह गो सुश्रूषा रहित पातकी गोमुख नरक जाता है। यह नरक गोमुखाकार है तथा कृमि एवं तप्त जल युक्त है। वहां वह व्यक्ति एक मन्वन्तर तक तप्त होकर पड़ा रहता है। तदनन्तर वह मनुष्य योनि पाकर गो रहित, महारोगी, दरिद्र एवं ७ जन्मों तक अन्त्यज जाति में उत्पन्न होता है। तब उसे शुद्धिलाभ होता है।।१३७-१४१।।

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च यः करोत्यतिदेशिकीम्।
यो हि गच्छेदगम्यां च संध्याहीनोऽप्यदीक्षितः।।१४२।।
प्रतिग्राही च तीर्थेषु ग्रामयाजी च देवलः। शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः।।१४३।।
गोहत्यां ब्रह्महत्यां च स्त्रीहत्यां च करोति यः।
मित्रहत्यां भ्रूणहत्यां महापापी च भारते।।१४४।।
कुम्भीपाकं स च वसेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ताडितो यमदूतेन [1]घूर्णयमानश्च संततम्।।१४५।।
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके। क्षणं च तप्ततैलेषु तप्ततोयेषु च क्षणम्।।१४६।।
क्षणं च तप्तपाषाणे तप्तलोहे क्षणं ततः।
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः।।१४७।।
काकश्च सप्तजन्मानि सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु।
षष्टिवर्षसहस्राणि ततो वै विट्कृमिर्भवेत्।।१४८।।
ततो भवेत्स वृषलो गलत्कुष्ठी दरिद्रकः।
यक्ष्मग्रस्तो [2]वंशहीनो भार्याहीनस्ततः शुचिः।।१४९।।

जो व्यक्ति भारत में अन्य के कहने पर गोहत्या, ब्रह्महत्या करता है, जो व्यक्ति अगम्या नारी से गमन करने वाला, सन्ध्या-वन्दनादि रहित, अदीक्षित, सर्व तीर्थ में (सभी तीर्थों में) भिक्षा-दानादि लेता है, ग्रामयाजी (गांवों में घूम कर यज्ञ कराने वाला), मन्दिर का पुजारी, शूद्रों का भोजन पकाने वाला, प्रमत्त, शूद्रापति किंवा गोहत्यारा, ब्रह्महत्यारा, नारी हत्यारा, भिक्षुहत्याा, भ्रूणहत्यारा है, वह महापातकी १४ इन्द्रों के आयुकाल तक कुंभीपाक नरक में रहता निरन्तर मेरे दूतों द्वारा पीटा जाकर चक्कर खाता है। उसे कभी अग्नि में, कभी तप्त लौह पर, कभी कंटक कुण्ड में, कभी खौलते तेल कटाह में, कभी उष्ण जल में, कभी तप्त पत्थर पर, कभी तप्त लौह पर गिराया जाता है। वह कोटि जन्मों तक गीध, सौ जन्म तक शूकर, सात जन्म तक काक, सात जन्म सर्प होने के अनन्तर ६०००० वर्ष मल में पड़ा कीड़ा होता है। तदनन्तर मानव योनि पाकर शूद्र, कुष्ठरोगी, दरिद्र, यक्ष्मारोगी, वंश रहित, पत्नी रहित होकर रहता है। इससे उसकी शुद्धि होती है।।१४२-१४९।।

---

१. ख. ०चूर्णयमा०।
२. क. बन्धुही०।

सावित्र्युवाच

ब्रह्महत्या च गोहत्या किंविधा वाऽऽतिदेशिकी।
का वा नृणामगम्या वा को वा संध्याविहीनकः॥१५०॥
अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थे प्रतिग्रही।
द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रश्च देवलः॥१५१॥
शूद्राणां सूपकारः कः प्रमत्तो वृषलीपतिः। एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर॥१५२॥

सती सावित्री कहती हैं–हे देव! आरोपित ब्रह्महत्या, गोहत्या तथा आतिदेशिकी हत्या किस प्रकार की होती है? कौन नारी मानवों हेतु अगम्या है? कौन व्यक्ति सन्ध्याविहीन कहा जाता है? अदीक्षित तथा तीर्थ में दान लेने वाला कौन होता है? कौन ब्राह्मण ग्रामयाजी है? कौन देवल कहा जाता है? कौन शूद्र का रसोईया कहा जाता है? प्रमत्त तथा वृषलीपति कौन है? हे वेदज्ञों में प्रवर! कृपया इन सबके लक्षण कहिये।।१५०-१५२।।

यम उवाच

श्रीकृष्णे च तदर्चायां मृन्मय्यां प्रकृतौ तथा।
शिवे च शिवलिङ्गे वा सूर्ये सूर्यमणौ तथा॥१५३॥
गणेशे वा तदर्चायामेवं सर्वत्र सुन्दरि। करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१५४॥
स्वगुरौ स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मातरि। करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१५५॥
वैष्णवेष्वन्यभक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च।
करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१५६॥
यो मूढो विष्णुनैवेद्ये चान्यनैवेद्यके तथा। हरेः पादोदकेष्वन्यदेवपादोदके तथा।
करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१५७॥
सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे। सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि॥१५८॥
माययाऽनेकरूपे वाऽप्येक एव हि निर्गुणे।
करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१५९॥

यमदेव कहते हैं–हे सुन्दरी! जो व्यक्ति श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण की पूजा की आधार रूपा उनकी प्रतिमा में, शिव तथा शिवलिंग में, सूर्य तथा सूर्यमणि में, गणेश तथा उनकी प्रतिमा में तथा अन्य देवगण तथा उनकी-उनकी प्रतिमा में भेदज्ञान करता है, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। जो मूढ़ वैष्णव तथा अन्य भक्त में, ब्राह्मण तथा अन्य जाति में, विष्णु नैवेद्य तथा अन्य नैवेद्य में, हरि के चरणामृत में तथा अन्य देवता के चरणामृत में समत्व मानता है, वह ब्रह्महत्या पातक का भागी होता है। जो सर्वेश्वर, सर्व कारण के भी कारण सबके आदिपुरुष हैं, जिनकी सेवा समस्त देवगण करते हैं,

जो सबकी आत्मा हैं, जो एक होकर भी अपनी माया द्वारा असंख्य रूप धारण करते हैं, उन परमेश्वर की, निर्गुण देव की, समता अन्य देवगण से करने पर भी ब्रह्महत्या पातक हो जाता है।।१५३-१५९।।

पितृदेवार्चनां पौर्वापरां वेदविनिर्मिताम्।
यः करोति निषेधं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१६०॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकं तथा।
पवित्राणां पवित्रं च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥१६१॥

जो पितृगण, देवगण की वेदविहित पूजा का निषेध करता है, पवित्रों में पवित्रतम हृषिकेश तथा उनके मन्त्रोपासकों की जो निन्दा करता है, वह ब्रह्महत्या पातक का भागी हो जाता है।।१६०-१६१।।

शिवं शिवस्वरूपं च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम्।
पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानन्दं सनातनम्॥१६२॥
प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम्।
ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥१६३॥

भगवान् शिव कल्याणरूप हैं। वे कृष्ण को प्राणों से बढ़ कर प्रिय हैं। वे पवित्रों से पवित्र, ज्ञानानंदमय सनातन, वैष्णवों में प्रधान, देवों में भी प्रधान, सेव्य तथा ईश्वर हैं। जो उनकी अर्चना नहीं करता तथा शिवनिन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्या पातक लगेगा।।१६२-१६३।।

ये विष्णुमायां निन्दन्ति विष्णुभक्तिप्रदां सतीम्।
सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम्॥१६४॥
सर्वदेवीस्वरूपां च सर्वाद्यां सर्ववन्दिताम्।
सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥१६५॥

जो विष्णुभक्ति देने वाली, सर्वशक्तिरूपा, सबकी जननी हैं, जिनकी सब लोक वन्दना करते हैं, जो सर्वेश्वरी, सबकी आदि सर्वकारण हैं, उन विष्णुमाया प्रकृति की निन्दा से भी ब्रह्महत्या पातक लगता है।।१६४-१६५।।

कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं पुण्यदां पराम्।
शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारं रवेस्तथा॥१६६॥
पञ्च पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वति मानवाः।
लभन्ते ब्रह्महत्यां ते चाण्डालाधिकपापिनः॥१६७॥

जो व्यक्ति पुण्यदायिनी जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि,, एकादशी, रविवार इन पांच पर्वों का व्रत नहीं करते वे तो चाण्डाल से भी बड़े पातकी हैं। उनको ब्रह्महत्या अवश्य लगती है।।१६६-१६७।।

अम्बुवीच्यांबुखनने जले शौचादिकं च ये। कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥१६८॥

गुरुं च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम्।
अनाथान्यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१६९॥
विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं च यः।
हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१७०॥
हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत्।
पुण्यं पार्थिवलिङ्गं वा ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१७१॥

भारत में जो लोग अम्बुवाची के दिन भी मिट्टी खोद कर गढ़ा बनाते हैं तथा सामान्य दिनों में जल में मूत्रादित्याग करते हैं, गुरु-माता-पिता-साध्वी भार्या तथा पुत्र-कन्या का पोषण नहीं करते, वे ब्रह्महत्या पातक भागी होते हैं। जो अविवाहित हैं, जिनको पुत्र नहीं हुआ है, जो व्यक्ति हरिभक्ति रहित हैं, जो नित्य विष्णु अथवा शिवलिंग पूजा से रहित हैं, जो विष्णु को अर्पित किये बिना भोजन करते हैं, वे भी ब्रह्महत्या द्वारा आक्रान्त होते हैं।।१६८-१७१।।

आहारं कुर्वतीं गां च पिबन्तीं यो निवारयेत्।
याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां च लभेत्तु सः॥१७२॥
दण्डैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहकः।
दिने दिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः॥१७३॥
ददाति गोभ्य उच्छिष्टं याजयेद्वृषवाहकम्।
भोजयेद्वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७४॥

जो गौ को पानी पीने तथा आहार ग्रहण करने से रोकते हैं, गौ अथवा ब्राह्मण की पंक्ति के बीच से निकलते हैं, वे गोहत्या पातक भागी होते हैं। जो ब्राह्मण बैल की सवारी करते हैं, गौ को जूठन देते हैं, दण्ड से गोवंश को मारते हैं, उन मूढ़ लोगों को नित्य गोहत्या पातक लगता है। इसमें सन्देह ही नहीं है। जो व्यक्ति गौओं को जूठन देता है, बैल हांकने अथवा सवारी करने वाले से यज्ञादि कराता है, अथवा बैल की सवारी करने वाले का भोजन करता है, वह भी गोहत्या का दोषी पातकी है। यह निःसन्देह है।।१७२-१७४।।

वृषलीपतिं याजयेद्यो भुङ्क्तेऽन्नं तस्य यो नरः।
गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः॥१७५॥
पादं ददाति वह्नौ च गाश्च पादेन ताडयेत्।
गृहं विशेदधौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात्॥१७६॥
यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च।
सूर्योदये च द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७७॥

अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते योनिजीवी च वै द्विजः।
यस्त्रिसंध्याविहीनश्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७८॥

जो ब्राह्मण शूद्रा के पति ब्राह्मण से यज्ञ कराता है, उसका अन्न खाता है, उसे तो सैकड़ों गोहत्या का पाप लगता है। इसमें संशय न करे। अग्नि की ओर पैर करने वाला, गौ पर पैर से प्रहार करने वाला, स्नानोपरान्त बिना पैर धोये गृह में प्रवेश करने वाला भी गोहत्या पाप का भागी होता है। जो तैलाक्त पैर रहते भोजन करता है, सूर्योदय काल में दो बार आहार ग्रहण करता है, उसे निश्चित रूप से गोहत्या पातक लगेगा। जो अवीरा नारी का (पति-पुत्र रहित) अन्न खाता है, जो ब्राह्मण नारीगण से व्यभिचार कराकर जीविका चलाता है, त्रैकालिक सन्ध्योपासना नहीं करता, वह भी गोहत्या पातक का भागी होगा।।१७५-१७८।।

पितॄंश्च पर्वकाले च तिथिकाले च देवताम्।
न सेवतेऽतिथिं यो हि गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम्॥१७९॥
स्वभर्तरि च कृष्णे च भेदबुद्धिं करोति या।
कटूक्त्या ताडयेत्कान्तं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८०॥

जो गृहस्थ पर्वकाल में, पर्वतिथियों में पितृगण-देवगण-अतिथिगण की सेवा नहीं करता, उसे निश्चित रूप से गोहत्या पातक लगता है। जो नारी पति तथा कृष्ण के सम्बन्ध में भेदभावना रखती है (पति तथा कृष्ण को पृथक् मानती है), कटु शब्दों-वाक्यों से पति को आहत करती है, उसे गोहत्या पातक लगना निश्चित है।।१७९-१८०।।

गोमार्गखननं कृत्वा वपते सस्यमेव च।
तडागे वा तदूर्ध्वं वा स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८१॥
प्रायश्चित्तं गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्।
अर्थलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८२॥
राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न पालयेत्।
दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम्॥१८३॥

जो गौ के आने-जाने के मार्ग में अवरोध करके वहां फसल बो देता है, तड़ाग एवं उसके तट पर भी खेती करने लगता है, उसे गोहत्या पातक लगना निश्चित ही है। जो धन बचाने की नीयत से, अज्ञानतः गोहत्या के प्रायश्चित्त नियम में व्यतिक्रम (मनमाना परिवर्तन) कर देता है, उसे भी गोहत्या पातक लगना निश्चित जाने। जो गोपालक राजोत्सव किंवा देवोत्सव के समय यत्नतः गौ का विशेष आदर नहीं करता, गौ को सताता है, वह मूढ़ भी गोहत्या पातक का भागी होगा।।१८१-१८३।।

प्राणिनं लङ्घयेद्यो हि देवार्चायां रतं जलम्।
नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८४॥

शश्वन्नास्तीति वादी यो मिथ्यावादी प्रतारकः।
देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८५॥
देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति।
संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८६॥
न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः।
विद्यार्थिने च विद्यां वै स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८७॥
गोहत्या ब्रह्महत्या च कथिता चाऽऽतिदेशिकी।
यथा श्रुतं सूर्यवक्त्रात्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१८८॥

जो किसी भी प्राणी को, देवपूजार्थ संचित जल-पुष्प-अन्न का लंघन करता है, वह भी गोहत्या पातकी है। जो सदा याचक आदि से नकारात्मक "नहीं है" का वाक्य कहता है, मिथ्या बोलने वाला, ठगी करने वाला, देवद्वेषी, गुरुद्वेषी होता है, वह निश्चित रूप से गोहत्या पातक का भागी होता है। ऐसा ब्राह्मण जो क्रोधित रहता हुआ प्रणत व्यक्ति को आशीर्वचन नहीं कहता, विद्यार्थियों को विद्या प्रदान नहीं करता, वह निश्चित रूप से गोहत्या पातक प्राप्त करता है। मैंने सूर्यदेव के मुख से जो सुना था, वह गोहत्या, ब्रह्महत्या का आतिदेशिक प्रसंग (आरोपित गोहत्या-ब्रह्महत्या) कहा। अब क्या सुनने की इच्छा है, कहो॥१८४-१८८॥

सावित्र्युवाच

वास्तवे चाऽऽतिदेशे च संबन्धे पापपुण्ययोः।
न्यूनाधिके च को भेदस्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि॥१८९॥

सावित्री कहती हैं—हे देव! पाप-पुण्य के सम्बन्ध में वास्तविक तथा आतिदेश (आरोपित) में क्या भेद है? वह कहिये॥१८९॥

यम उवाच

कुत्रापि वास्तवः श्रेष्ठो न्यूनोऽतिदेशिकः सदा।
कुत्राऽऽतिदेशिकः श्रेष्ठो वास्तवो न्यून एव च॥१९०॥
कुत्र वा समता साध्वि तयोर्वेदप्रमाणतः।
करोति तत्र नाऽऽस्थां यो गुरुहत्यां लभेत्तु सः॥१९१॥

यमदेव कहते हैं—हे सती! कहीं पर वास्तविक की प्रधानता होती है तथा आतिदेशिक अप्रधान होता है। कहीं आतिदेशिक श्रेष्ठ होता है तथा वास्तविक न्यून हो जाता है। हे साध्वी! कहीं वेदप्रमाणानुरूप वास्तविक तथा आतिदेशिक दोनों समान हो जाते हैं। जिस व्यक्ति की आस्था वेद प्रमाण में नहीं होती, उसे गुरुहत्या का पातक लगता है॥१९०-१९१॥

पुरा परिचिते विप्रे विद्यामन्त्रप्रदातरि। गुरौ पितृत्मारोपाद्वस्तुतः श्रेष्ठ उच्यते॥१९२॥

पितुःशतगुणा माता मातुः शतगुणस्तथा।
विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः श्रुतेर्मतः॥१९३॥

पूर्व परिचित ब्राह्मण, विद्या-मन्त्रप्रदाता, ऐसे गुरु के प्रति पितृत्व की भावना रखना तो वास्तव में श्रेष्ठ है। माता तो पिता से सौ गुना श्रेष्ठ होती है। इन माता से भी सौ गुना श्रेष्ठ है विद्यादाता किंवा मन्त्रदाता। यह वेद सम्मत है।।१९२-१९३।।

गुरुतो गुरुपत्नी च गौरवे च गरीयसी। यथेष्टं देवपत्नी च पूज्या चाभीष्टदेवता॥१९४॥

विप्रः शिवसमो यश्च विष्णुतुल्यपराक्रमः।
राजाऽऽतिदेशिकाच्छ्रेष्ठो वास्तवो गुणलक्षतः॥१९५॥
सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः।
ग्रहणे सूर्यशशिनोऽचात्रैव समता तयोः॥१९६॥

इष्टदेव की अपेक्षा इष्टदेव की पत्नी, गुरु की अपेक्षा गुरुपत्नी का गौरव अधिक कहा गया है। अभीष्ट देवता की पत्नी भी पूज्या होती है। यद्यपि बोलचाल में हम कह देते हैं "यह ब्राह्मण शिवतुल्य हैं", "ये राजा विष्णुतुल्य पराक्रमी हैं" यह आतिदेशिक कथन है। वास्तविक शिव-विष्णु तो (इस कथन से) लाखों गुना अधिक श्रेष्ठ हैं। लेकिन जहां यह कहा गया है कि चन्द्र-सूर्य ग्रहणकाल में समस्त जल ही गंगाजल के समान हैं तथा सभी ब्राह्मण व्यास के तुल्य हैं, यहां दोनों की समता का बोध होता है।।१९४-१९६।।

आतिदेशिकहत्याया वास्तवश्च चतुर्गुणः। संमतः सर्ववेदानामित्याह कमलोद्भवः॥१९७॥

आतिदेशिक हत्या (जैसे ऊपर श्लोकों में कई पातकों को ब्रह्महत्या-गोहत्या के समान कहा गया, वह वास्तविक हत्या न होकर आतिदेशिक हत्या ही है) से वास्तविक हत्या का पातक चतुर्गुण अधिक वेदों में कहा गया है। यही ब्रह्मा का वचन भी है।।१९७।।

आतिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति।
या या गम्या नृणामेव निबोध कथयामि ते॥१९८॥
स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदे निरूपिता।
अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः॥१९९॥
सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि।
अत्यगम्याश्च या या वै निबोध कथयामि ते॥२००॥
शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी।
अत्यगम्याऽतिनिन्द्या च लोके वेदे पतिव्रते॥२०१॥

हे सती! मैंने आतिदेशिक हत्या के कुछ भेदों को आपसे कहा। अब मनुष्य हेतु जो-जो नारी अगम्या है, वह कहता हूं। सुनो! वेदों का तथा वेदज्ञों का कथन यह है कि अपनी पत्नी ही केवल मात्र गम्या है। अन्य समस्त स्त्रियां अगम्या हैं। यह सामान्य रूप से कहा गया है। अब इसका विशेष वर्णन श्रवण करो। जो-जो नारी अत्यन्त अगम्या हैं, उनका वर्णन करता हूं। ब्राह्मण के लिये शूद्रा नारी तथा शूद्र हेतु ब्राह्मण नारी अत्यन्त अगम्या तथा लोकों में निन्दिता है। कदापि इनसे वे भोग न करें।।१९८-२०१।।

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीं गच्छेद्ब्रह्महत्याशतं लभेत्।
तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्।।२०२।।
यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः।
स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चण्डालात्सोऽधमः स्मृतः।।२०३।।
विष्ठासमश्च तत्पिण्डो मूत्रतुल्यं च तर्पणम्।
तत्पितॄणां सुराणां च पूजने तत्समं सति।।२०४।।

हे पतिव्रते! जो शूद्र पुरुष ब्राह्मणी से समागम करता है, उसे सैकड़ों ब्रह्महत्या का पातक लगता है। इसी प्रकार वह ब्राह्मणी भी कुंभीपाक नरक जाती है। यह निश्चित है। ब्राह्मण भी शूद्रा नारी से समागम करके वृषलीपति कहा जाता है। वह विप्रजाति से भ्रष्ट होने के कारण चाण्डाल से भी अधम है। वह जो भी पिण्ड पितरों को देगा, वह पितृगण विष्ठावत् जान कर त्याग देते हैं। उसका प्रदत्त तर्पण भी पितृगण के लिये मूत्रवत् त्याज्य हो जाता है। पितृपूजन काल में उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड एवं तर्पण जल क्रमशः मल एवं मूत्र का रूप धारण कर लेता है।।२०२-२०४।।

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं संध्यार्चातपसाऽर्जितम्।
द्विजस्य वृषलीभोगान्नश्यत्येव न संशयः।।२०५।।
ब्राह्मणश्च सुरापीती विट्भोजी वृषलीपतिः।
हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्।।२०६।।
गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं प्रसूम्। सुतां पुत्रवधूंश्वश्रूँ सगर्भां भगिनीं सति।।२०७।।
सोदरभ्रातृजायां च मातुलानीं पितृप्रसूम्।
मातुः प्रसूं तत्स्वसारं गर्भिणीं भ्रातृकन्यकाम्।।२०८।।
शिष्यां च शिष्यपत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम्।
भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवाप्यगम्यामाह पद्मजः।।२०९।।

एवंविध सन्ध्योपासन, देवार्चन, तपःश्चरण से अर्जित तेज, कोटि जन्मार्जित पुण्य शूद्र स्त्री से भोग करते ही (ब्राह्मण का पुण्य) नष्ट हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है। मद्यप ब्राह्मण, विट् लवण भोजी, वृषलीपति ब्राह्मण, एकादशी को आहार करने वाला, ये सभी कुंभीपाक नरकगामी होते हैं। ब्रह्मदेव का

कथन है कि गुरुपत्नी, राजपत्नी, सौतेली माता, अपनी माता, पुत्री, पुत्रवधू, सास, सास की बहन, भाई की पत्नी, मामी, दादी, नानी, नानी की भगिनी, भ्रातृपुत्री, शिष्या, शिष्यपत्नी, भानजे की वधू, भ्राता की पुत्रवधू सर्वथा अगम्या होती है।।२०५-२०९।।

एतास्वेकामनेकां वा यो व्रजेन्मानवोऽधमः।
स्वमातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं लभेत्॥२१०॥
अकर्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोके वेदेऽतिनिन्दितः।
स याति कुम्भीपाकं च महापापी सुदुस्तरम्॥२११॥

इनमें से किसी एक के साथ अथवा इनमें से कई के साथ समागम करने वाला नरपशु तो अपनी माता से भोग करने के पातक से ग्रसित होता है। उसे शताधिक ब्रह्महत्या पातक लगता है। यह वेदोक्ति है। वह सभी शुभकर्म हेतु अनधिकारी कहा गया है। वह स्पर्श करने योग्य भी नहीं है। वह लोक-वेद में अतीव निन्दित, महापातकी है। वह महादुस्तर कुंभीपाक नरकगामी होता है।।२१०-२११।।

करोत्यशुद्धां संध्यां च संध्यां वा न करोति यः।
त्रिःसंध्यां वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः॥२१२॥
वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम्।
योऽहङ्कारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः॥२१३॥
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्। तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वरे॥२१४॥
तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरेः पदे। वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसङ्गमे॥२१५॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले। हरिद्वारे च केदारे सोमे बदरिकाश्रमे॥२१६॥
सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने।
गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमालये॥२१७॥
एष्वन्यत्र च यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः।
स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च॥२१८॥

अशुद्ध रूप से (विधि रहित) सन्ध्योपासना करने वाला, सन्ध्योपासना न करने वाला, त्रिकाल सन्ध्या न करने वाला विप्र सदैव सन्ध्याहीन कहा जायेगा। जो मनुष्य अपने अभिमान के कारण वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य मन्त्र को ग्रहण नहीं करता, वही अदीक्षित है। नदी तट पर जलप्रवाह से नाप कर ४ हाथ की भूमि श्रेष्ठ गंगा गर्भान्तर कहलाती है। यही है नारायण क्षेत्र। इसके स्वामी हैं नारायण। ऐसे नारायण क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, बदरिकाश्रम में, सरस्वती तट पर, पुण्यमय वृन्दावन वन में, गोदावरी-कौशिकी-त्रिवेणी-हिमालय प्रभृति स्थान में सकाम दान ग्रहण करने वाला तीर्थ में दान लेने वाला कहा जायेगा। वह कुंभीपाक नरकगामी होगा।।२१२-२१८।।

शूद्रातिरिक्तयाजी यो ग्रामयाजी च कीर्तितः।
तथा देवोपजीवी यो देवलः परिकीर्तितः॥२१९॥
शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः।
संध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः॥२२०॥

जो ग्रामों में घूम-घूम कर (शूद्र को छोड़ कर) अन्य का यज्ञ कराये, वह ग्रामयाजी है। देवपूजा से जीविका चलाये, वह देवल ब्राह्मण है। शूद्र की रसोई में भोजन पका कर जीविकोपार्जन करने वाला भंडारी है। जो संध्या-पूजा रहित प्रमत्त है, वही पतित है।।२१९-२२०।।

उक्तं पूर्वप्रकरणे लक्षणं वृषलीपतेः। एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते॥२२१॥
कुण्डान्यन्यानि ये यान्ति निबोध कथयामि ते॥२२२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० यमसावित्रीसं० कर्मविपाके पापिनरकनिरूपणं शिवप्राशस्त्यं ब्रह्महत्यादिपदार्थपरिभाषानिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

यह मैंने वृषलीपति (शूद्रा के पति ब्राह्मण) का लक्षण कहा। ये सभी महापापी कुंभीपाक नरक जाते हैं। अब अन्य कुण्डों (नरकों) में जाने वालों का लक्षण कहूंगा।।२२१-२२२।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

पापियों के भेद से नरकभेद का वर्णन

यम उवाच

हरिसेवां विना साध्वि न लभेत्कर्मखण्डनम्। शुभकर्म स्वर्गबीजं नरकं च कुकर्मतः॥१॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते वेश्यान्नं च पतिव्रते।
तां व्रजेत्तु द्विजो यो हि कालसूत्रं प्रयाति सः॥२॥
शतवर्षं कालसूत्रे स्थित्वा शूद्रो भवेद्ध्रुवम्।
तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद्द्विजः॥३॥

यमदेव कहते हैं—हे साध्वी! हरिसेवा के अभाव में शुभाशुभ कर्मजाल का उच्छेद नहीं होता।

जीवगण का शुभ कर्म स्वर्ग का कारण है। अशुभ कुकर्मों से उसे नरक मिलता है। हे पतिव्रता सावित्री! जो द्विज व्यभिचारिणी नारी अथवा वेश्या के अन्न का भोजन करता है, उसे कालसूत्र नामक नरक में १०० वर्ष रहना होगा। तदनन्तर वह शूद्रवर्ण में जन्म लेकर शुद्ध होगा तथा पुनः द्विज होगा।।१-३।।

पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृतो। तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली स्मृता।।४।।

वेश्या च पञ्चमे षष्ठे युग्मी[1] च सप्तमेऽष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु।।५।।

मात्र एक पति के साथ रहने वाली नारी पतिव्रता, दो पति के साथ निर्वाह करने वाली कुलटा, तीन पतियुक्ता धर्षिणी, चार पुरुषों से समागमरता पुंश्चली, पांच से समागम करने वाली वेश्या, छह से भोगरता नारी युग्मी तथा इससे अधिक लोगों से संभोगरता नारी महावेश्या है, जिसका स्पर्श तक सबसे वर्जित है।।४-५।।

यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि।
वेश्यां युग्मीं महावेश्यामवटोदं प्रयाति सः।।६।।
शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम्।
षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम्।।७।।

युग्मीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः। महावेश्याकामुकश्च ततः शतगुणं वसेत्।।८।।
तदा हि सर्वगामी चेत्येवमाह पितामहः। तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः।।९।।

जो ब्राह्मण कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, वेश्या, युग्मी एवं महावेश्या से संभोगरत रहता है, उसे अवटोद नरक में जाना निश्चित है। कुलटागामी १०० वर्ष, धर्षिणीगामी ४०० वर्ष, पुंश्चलीगामी उससे छह गुने समय तक, वेश्यागामी आठ गुने समय तक, युग्मीगामी उससे १० गुने समय तक, महावेश्यागामी युग्मीगामी की अपेक्षा १०० गुने समय तक अवटोद नरकवासी होते हैं। जो इन सभी से अथवा इनमें से कई से समागम करता है, वह तो महावेश्यागामी के लिये निश्चित काल पर्यन्त उसी नरक में रहेगा। यह ब्रह्मा ने कहा है! वहां वह अनेक यातना भोग के साथ यमदूतों से ताड़ित होता है।।६-९।।

तित्तिरः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः।
कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकस्तथा।।१०।।
युग्मीगामी सूकराश्च सप्तजन्मसु भारते।
महावेश्याकामुकश्च श्मशाने शाल्मलिस्तरुः।।११।।

कुलटागामी तीतर की योनि, धृष्टागामी काकयोनि, पुंश्चलीगामी कोकिल योनि, वेश्यागामी भेड़िया की योनि, युग्मीगामी शूकर योनि में सात जन्म पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। ये भारत में ही उत्पन्न होते हैं। महावेश्या से रमण करने वाला श्मशान में सेमल का वृक्ष हो जाता है।।१०-११।।

---

१. क. युङ्गी।

यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। अरुंतुदं स यात्येव चन्द्रमानाब्दमेव च॥१२॥
ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरव्याधिसंयुतः। गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः॥१३॥

जो मनुष्य मूर्खता के कारण चन्द्र-सूर्य ग्रहणकाल में भी भोजन करता है, वह जब तक चन्द्रमा विद्यमान है, उतने वर्ष तक अरुतुन्द नरक में कष्ट भोगता है। तत्पश्चात् मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर वह उदर रोगी, गुल्मरोगी, एक आंख रहित तथा दन्तहीन रहता है। इस कष्टभोग से ही उसकी शुद्धि हो पाती है॥१२-१३॥

वाक्प्रदत्तां हि कन्यां च यश्चान्यस्मै ददाति च।
स वसेत्पांशुभोगे[1] च तद्भोजी च शताब्दकम्॥१४॥
दत्तापहारी यः साध्वि पाशवेष्टं शताब्दकम्। निवसेच्छरशय्यायां यमदूतेन ताडितः॥१५॥
न पूजयेद्यो हि भक्त्या शिवलिङ्गं च पार्थिवम्।
स याति शूलिनः कोपाच्छूलप्रोतं सुदारुणम्॥१६॥
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु।
ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः॥१७॥

जो वाक्दत्ता कन्या उस वर को न देकर अन्य को प्रदान करता है, उसे १०० वर्ष तक पांशुभोग नरक में कष्टभोग करना होगा। वहां वह पांशु (धूल) को ही खाता है। हे साध्वी! दान की गई वस्तु का पुनः जो हरण करता है, उसे शरशय्या नामक नरक में पाश से बांध कर सौ वर्ष तक यमकिंकर उसको प्रताड़ित करते हैं। भक्तिभाव से शिव का पार्थिव पूजन जो नहीं करता, वह शिवकोप से अतीव दारुण शूलप्रोत नरकगामी होता है। वहां शतवार्षिकी यातना को भोग कर ७ जन्म तक हिंसक पशुयोनि में जन्म लेने के उपरान्त देवल (पुजारी) होकर शुद्ध होगा॥१४-१७॥

करोति दण्डं यो विप्रे यद्भयात्कम्पते द्विजः।
प्रकम्पने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च॥१८॥
प्रकोपवदना कोपात्स्वामिनं या च पश्यति।
कटूक्तिं तं च वदति याति चोल्कामुखं च सा॥१९॥
उल्कां ददाति वक्त्रे च सततं यमकिङ्करः।
दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम्॥२०॥

जो ब्राह्मणों को दण्डित करता है, जिसके भय के कारण द्विजगण कांपते रहते हैं, उस ब्राह्मण के देह में जितने रोम हैं, उतने काल तक वह मनुष्य प्रकम्पन नरकगामी होता है। अत्यन्त क्रोधयुक्त मुख वाली नारी जो पति को क्रोधित होकर देखती तथा उससे कटु शब्द का प्रयोग करती

---
१. क. शुकुण्डे च।

है, वह उल्कामुख नरकलाभ करती है। इस नरक में ज्वलन्त काष्ठ उसके मुख में यमदूत डालते रहते हैं। उस नारी के देह में जितने लोम हैं, उतने वर्ष तक यमगण उसके शिर पर दण्ड प्रहार करते रहते हैं।।१८-२०।।

ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु।
भुक्त्वा दुःखं च वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः॥२१॥
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या साऽन्धकूपं प्रयाति च।
तप्तशौचोदके ध्वान्ते तदाहारा दिवानिशम्॥२२॥
निवसेदतिसंतप्ता यमदूतेन ताडिता। शौचोदके निमग्ना च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥२३॥
काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरी।
कुक्कुटी शतजन्मानि शृगाली सप्तजन्मसु॥२४॥
पारावती सप्तजनौ वानरी सप्तजन्मसु।
ततो भवेत्सा चण्डाली सर्वभोग्या च भारते॥२५॥
ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली। ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः॥२६॥

तदनन्तर ७ जन्मों तक वह मानव योनि में उत्पन्न होकर सभी जन्मों में विधवा रहती है। वह वैधव्य क्लेश तथा रोग सहकर अन्ततः शुद्ध होती है। जो ब्राह्मण नारी शूद्र व्यक्ति से संभोग करती है, वह अन्धकूप नरकगामी होती है। वहां अन्धकार में उसे सदा शौच से बचा जल पीने को मिलता है। अत्यन्त दु:ख के साथ तथा यमदूतों से ताड़ित होती, उस शौच शेष जल में १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक पड़ी रह कर भारत में १००० जन्मों तक मादा काक, १०० जन्म तक शूकरी, १०० कुक्कुट, ७ जन्म तक शृगालिन, ७ जन्मों तक कबूतरी तथा सात जन्मपर्यन्त वानरी का जन्म लेती है। तदनन्तर भारत में चाण्डाली, सर्वभोग्या (सभी उसका उपभोग करते हैं), धोबन होती है, तब यक्ष्माग्रस्त वेश्या होकर कुष्ठग्रस्त तेली नारी होती है। इतना भोग कर, तब उसकी शुद्धि हो पाती है।।२१-२६।।

वेश्या वसेद्वेधने च युग्मी[1] वै दण्डताडने। जालबन्धे महावेश्या कुलटा देहचूर्णके॥२७॥
स्वैरिणी दलने[2] चैव धृष्टा वै शोषणे तथा। निवसेद्यातनायुक्ता यमदूतेन ताडिता॥२८॥
विण्मूत्रभक्षणं तत्र यावन्मन्वन्तरं सति। ततो भवेद्विट्कृमिश्च वर्षलक्षं ततः शुचिः॥२९॥

वेश्या-वेधन नरक, युग्मी-दन्तताड़न नरक, महावेश्या-जलबन्ध नरक, कुलटा-देहपूर्ण नरक, स्वैरिणी-दलन नरक, धृष्टा-शोषण नरक में गमन करती है। वह यमदूतों द्वारा ताड़ित होकर यातनामय काल व्यतीत करती है। वहां वह मलमूत्र भक्षण मन्वन्तर काल तक करती है। हे सती! तदनन्तर वह एक लाख वर्ष तक विष्ठा का कीट रह कर, तब पवित्र होती है।।२७-२९।।

---

१. क. युङ्गी।
२. क. दण्डने।

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियामपि क्षत्रियः।
वैश्यो वैश्यां च शूद्रां च शूद्रो वाऽपि व्रजेद्यदि॥३०॥
स्ववर्णपरदारी च कषं याति तया सह। भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेद्द्वादशाब्दकम्॥३१॥
ततो विप्रो भवेच्छुद्धश्चैवं च क्षत्रियादयः। योषितश्चापि शुध्यन्तीत्येवमाह पितामहः॥३२॥

जब ब्राह्मण ब्राह्मणी से, क्षत्रिय क्षत्राणी से, वैश्य वैश्य नारी से, शूद्र शूद्रा से गमन करता है, तब ये अपने ही वर्ण की पराई नारियों से समागम करने के दोष के कारण उन परनारियों के साथ १२ वर्ष पर्यन्त कष नामक नरक में कष (कसैला) नामक तपा द्रव पान करते हैं। तदनन्तर ये सभी नर-नारी शुद्ध हो जाते हैं। यह ब्रह्मा का कथन है।।३०-३२।।

क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते।
मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पं च नरकं व्रजेत्॥३३॥
शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः। प्रतप्तमूत्रभोजी च यमदूतेन ताडितः॥३४॥
तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सप्तजन्मसु वाराहश्छागलश्च ततः शुचिः॥३५॥

हे पतिव्रता सावित्री! यदि क्षत्रिय-वैश्य ब्राह्मणी से समागम करते हैं, तब वे मातृगामी पातक युक्त होते हैं। उनको माता के साथ समागम का पातक लगता है। वे शूर्प नरक में फेंके जाते हैं। वहां सूपाकृति कीट उस मनुष्य तथा उस नारी को नित्य काट कर भक्षण करते हैं तथा पुरुष तप्तमूत्र का पान करता है। वह यमदूतों द्वारा ताड़ित किया जाता है। वह चतुर्दश इन्द्र के स्थितिकाल पर्यन्त यहां यातना सहने के पश्चात् ७ जन्म पर्यन्त शूकर एवं बकरा हो जाता है। तभी उसकी शुद्धि हो पाती है।।३३-३५।।

करे धृत्वा च तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्।
मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत्॥३६॥
गङ्गातोयं करे धृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत्।
शिलां च देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत्॥३७॥
दत्त्वा च दक्षिणं हस्तं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्।
स्थित्वा देवगृहे वाऽपि स च ज्वालामुखं व्रजेत्॥३८॥

जो पातकी हाथ में तुलसी लेकर की गई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता, मिथ्या शपथ लेता है, उसे ज्वालामुख नरक जाना पड़ता है। जो हाथ में गंगाजल ली गई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता, देवप्रतिमा किंवा शालग्राम शिला लेकर की गई प्रतिज्ञा को पूरा नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकगामी होता है। जो इन सब पर दाहिना हाथ रख कर भी प्रण पालन नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकगामी होता है। देवमंदिर में प्रण करके पूरा न करने वाला ज्वालामुख नरकगामी होता है।।३६-३८।।

स्पृष्ट्वा च ब्राह्मणं गां च वह्निं विष्णुसमं सति। न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत्॥३९॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यो हि विश्वासघातकः।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत्॥४०॥
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दश। यथाऽङ्गारप्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताडिताः॥४१॥

जो विष्णु के ही समान माने गये हैं—ऐसे ब्राह्मण, गौ, अग्नि का स्पर्श करके भी जो प्रणपालन नहीं करता, वह ज्वालामुख नरकगामी होता है। जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, विश्वासघाती, झूठी गवाही देने वाले हैं, वे सभी ज्वालामुख नरक में पकाये जाते हैं। वे सभी जलते कोयले की तरह दग्ध होते हुए, यमदूतों का प्रहार सहते १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक वहां रहते हैं।।३९-४१।।

चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मस्वतः शुचिः।
म्लेच्छो गङ्गाजलस्पर्शी पञ्चजन्मस्वतः शुचिः॥४२॥
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुन्दरि।
अर्चास्पर्शी व्रणकृमिः सप्तजन्मस्वतः शुचिः॥४३॥

जो तुलसी हाथ में लेकर झूठ बोलता है, वह सात जन्म तक चाण्डाल रह कर, तब पवित्र हो पाता है। जो गंगाजल हाथ में लेकर झूठी शपथ खाता है, वह ५ जन्मों तक म्लेच्छ योनि भोग कर शुद्ध होता है। हे सुन्दरी! जो शालग्राम का स्पर्श करके मिथ्या बोलता है, वह ७ जन्मों तक मलभक्षी कीट होता है। जो देव प्रतिमा स्पर्श करके झूठ बोलता है, झूठी कसम खाता है, वह ७ जन्म तक घाव का कीट होकर, तब शुद्ध होगा।।४२-४३।।

दक्षहस्तप्रदाता च सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु। ततो भवेद्धस्तहीनो मानवश्च ततः शुचिः॥४४॥
मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु।
विप्रादिस्पर्शकारी च सोऽग्रदानी भवेदध्रुवम्॥४५॥
ततो भवन्ति मूकास्ते बधिराश्च त्रिजन्मसु।
भार्याहीना वंशहीना [१]बुद्धिहीनास्ततः शुचिः॥४६॥

दाहिने हाथ से मिथ्या शपथ लेने वाला सात जन्म तक सर्प होता है। तदनन्तर हाथ (बाहु) रहित मनुष्य होकर उसे मुक्ति मिल पाती है। जो व्यक्ति देवस्थान में मिथ्या बोलता है, वह ७ जन्म तक मन्दिर का देवल (पुजारी) होगा। ब्राह्मण आदि का स्पर्श करके मिथ्या बोलने वाला महापात्र ब्राह्मण (मृतक का सामान दान लेने वाला, दसवां के पहले की मृतक क्रिया कराने वाला) होता है। वह इसके पश्चात् ३ जन्म तक मूक-बधिर होगा। वह स्त्री-पुत्र रहित तथा निर्बुद्धि भी होगा। तब उसकी शुद्धि होगी।।४४-४६।।

मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि गण्डकः।
विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते॥४७॥

१. क. बन्धुही०।

मित्रद्रोही नकुल योनि में, कृतघ्न गैण्डा की योनि में तथा विश्वासघाती व्याघ्र योनि में जाता है। भारत में ये प्रत्येक ७-७ बार उस-उस योनि में जन्म लेते हैं।।४७।।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव भल्लूकः सप्तजन्मसु।
पूर्वान्सप्त परान्सप्त पुरुषान्हन्ति चाऽऽत्मनः॥४८॥
नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः।
यस्यानास्था वेदवाक्ये मन्दं हसति संततम्॥४९॥
व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरिनिन्दकः।
जिह्मे जिह्मो वसेत्सोऽपि शताब्दं च हिमोदके॥५०॥
जलजन्तुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च।
ततो नानाप्रकारा च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः॥५१॥

मिथ्या गवाही देने वाला ७ जन्म तक भालू होगा। ये सभी ७-७ जन्म पर्यन्त दुःख भोगते हैं। इनकी पूर्व की सात पीढ़ी तथा आगे की सात पीढ़ी भी नरक जाती है। नित्यक्रिया रहित, जड़, वेद के प्रति अविश्वासी ब्राह्मण जो निर्बुद्धि लोगों का उपहास करता है, व्रत एवं उपवास रहित है, उत्तम बातों की निन्दा करने वाला, दुष्ट के साथ दुष्ट बन जाने वाला, हिमकुण्ड नरक में १०० वर्ष कष्ट झेल कर १०० जन्म पर्यन्त जलजीव एवं नाना प्रकार के मत्स्य की योनि में उत्पन्न होकर, तब शुद्ध होगा।।४८-५१।।

यो वा धनस्यापहारं देवब्राह्मणयोश्चरेत्। पातयित्वा स्वपुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान्॥५२॥
स्वयं याति च धूमान्धं धूमध्वान्तसमन्वितम्।
धूमक्लिष्टो धूमभोजी वसेत्तत्र चतुर्युगम्॥५३॥

देव-ब्राह्मण का धनहारी अपने इस कुकर्म के कारण १० पूर्व पीढ़ी तथा १० आगामी पीढ़ी वालों को नरकगामी करता है। उसे स्वयं धूमांध नरकगामी होना पड़ता है। यह नरक धूमाच्छन्न है। वह पातकी वहां दुःख पूर्वक यह धूम खाता है। इस प्रकार ४ युग पर्यन्त इस नरक में दुःख भोगता है।।५२-५३।।

ततो मूषकजातिश्च शतजन्मानि भारते। ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातयः॥५४॥
ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नरः। भार्याहीनो वंशहीनः[1] शबरो व्याधिसंयुतः॥५५॥
ततो भवेत्स्वर्णकारः सुवर्णस्य वणिक्तथा। ततो यवनसेवी च ब्राह्मणो गणकस्ततः॥५६॥

इसके अनन्तर उसे भारत में मूषक का १०० जन्म, अनेक जाति के पक्षी की योनि, नाना रंग के कीटों की योनि, अनेक वृक्ष योनि भोगने के उपरान्त वनेचर मनुष्य योनि मिलेगी। वह स्त्री रहित,

१. क. ०नः स भवेद्व्या०।

सन्तान रहित तथा व्याधिग्रस्त रहेगा। तदनन्तर सोनार, स्वर्ण वणिक्, यवन सेवक मनुष्य योनि क्रमशः भोग कर अन्ततः ज्योतिष का विद्वान् ब्राह्मण होगा।।५४-५६।।

विप्रो दैवज्ञोपजीवी वैद्यजीवी चिकित्सकः।
व्यापारी लोहलाक्षादे रसादेर्विक्रयी च यः।।५७।।
स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टित एव च। वसेत्स्वलोममानाब्दं तत्र वै नागदंशितः।।५८।।
ततो भवेत्स गणको वैद्यो वै सप्तजन्मसु।
गोपश्च कर्मकारश्च [१]शङ्खकारस्ततः शुचिः।।५९।।

ज्योतिषी होकर, चिकित्साकारी वैद्यक होकर, लौह अथवा लाख का विक्रेता होकर, भस्मों का विक्रयी होकर जीविकोपार्जन करने वाला व्यक्ति नागवेष्ट नरकगामी होता है। उस व्यक्ति के देह में जितने रोम हैं, वह उतने वर्ष वहां सर्पों से डंसा जाकर सात जन्म तक ज्योतिषी, वैद्य, गोप, बढ़ई तथा शंख निर्माता होता है। तब वह शुद्ध हो पाता है।।५७-५९।।

प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते।
अन्यानि चाप्रसिद्धानि तत्र क्षुद्राणि सन्ति वै।।६०।।
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः।
भ्रमन्ति तावत्संसारे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।६१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० कर्मविपाके पापिनां कुण्डनिर्णयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

हे पतिव्रता सावित्री! यहां मैंने प्रसिद्ध नरक कुण्डों का वर्णन ही किया है। बहुत से छोटे अप्रसिद्ध नरककुण्ड भी हैं। इनमें कर्मफलभोगी पातकी गिराये जाते हैं। वे पातकी इस संसार में (नाना योनि में) भ्रमणरत रहते हैं। अब क्या सुनना चाहती हो?।।६०-६१।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

१. क. रङ्कका०।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण सेवा से कर्मों का उच्छेदन, भोगदेह (लिंगदेह) का वर्णन

सावित्र्युवाच

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग। नानापुराणेतिहासपाञ्चरात्रप्रदर्शक॥१॥
सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम्। कर्मच्छेदे बीजरूपं प्रशस्यं सुखदं नृणाम्॥२॥
यशःप्रदं धर्मदं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। येन यामीं न ते यान्ति यातनां भवदुःखदाम्॥३॥
कुण्डानि च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च। न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सुव्रत॥४॥

सावित्री कहती हैं–हे महाभाग! धर्मराज! आप तो वेद-वेदान्त के पारदर्शी हैं। नाना इतिहास-पुराणादि ग्रन्थों के विशेष ज्ञाता भी हैं। तभी मेरी जिज्ञासा है कि जो कर्म सबसे श्रेष्ठ, सबसे प्रार्थनीय एवं सर्वसम्मत हैं, जो कर्मछेदनार्थ बीज रूप है, अति प्रशंसनीय एवं मनुष्यों को सुख देने वाला है, जो सभी मंगलों का भी मंगलजनक है, जो यशप्रद तथा धर्मप्रद है, जिसके आश्रय द्वारा मनुष्य को यमपुरी गमन एवं संसार यन्त्रणा नहीं सहना होता, जिसके द्वारा नरककुण्ड दर्शन, उसमें गमन तथा जन्मादि यन्त्रणा, ये सब दूर हो जाते हैं, हे सुव्रत प्रभो! वह कहिये!॥१-४॥

किमाकाराणि कुण्डानि कानि तेषां मतानि च।
केन रूपेण तत्रैव सदा तिष्ठन्ति पापिनः॥५॥
स्वदेहे भस्मसाद्भुते यान्ति लोकान्तरं नराः। केन देहेन वा भोगं भुञ्जते वा शुभाशुभम्॥६॥
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति।
देहो वा किंविधो ब्रह्मन्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥७॥

उन कुण्डों का आकार क्या है? उनका परिमाण क्या है? पापीगण कैसे उन कुण्डों में रहते हैं? जब मर्त्यलोक में मरने पर मृत देह दग्ध कर दी जाती है, तब मानवगण किस प्रकार की देह से लोकान्तर जाकर शुभ-अशुभ कृतकर्म का फल भोग कर पाते हैं? वहां दीर्घकाल तक क्लेश भोग करने पर भी वह शरीर नष्ट क्यों नहीं हो जाता? वह देह किस प्रकार का होता है? कृपया यह सब कहिये।।५-७।।

नारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन्। कथां कथितुमारेभे गुरुं नत्वा च नारद॥८॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! सावित्री का कथन सुनकर धर्मराज ने हरि का स्मरण किया। तत्पश्चात् गुरु को प्रणाम करके यमराज ने कहना प्रारम्भ किया।।८।।

यम उवाच

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मो वै संहितासु च। पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च॥९॥
अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते। सर्वेष्टं सारभूतं च मङ्गलं कृष्णसेवनम्॥१०॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसंतापतारणम्। सर्वमङ्गलरूपं च परमानन्दकारणम्॥११॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम्। भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम्॥१२॥

यमदेव कहते हैं—हे पुत्री! चारों वेद, सभी धर्मसंहिता, पुराण, इतिहास, पाञ्चरात्रादि ग्रन्थों में तथा अन्य सभी शास्त्रों तथा वेदांग में एक स्वर से कृष्णसेवा ही प्रार्थनीय, सर्वश्रेष्ठ तथा मंगलप्रद कही गयी है। इसके प्रभाव से जन्म-मृत्यु-जरा-रोग-शोक-सन्तापादि सब दूर होते हैं। यह कृष्णसेवा पूर्णतः मंगलरूप है तथा परमानन्दमयी है। श्रीकृष्ण की सेवा से सर्वसिद्धि तथा नरकार्णव से छुटकारा मिल जाता है। यह भक्तिरूपी वृक्ष की अंकुररूपा है तथा कर्मवृक्ष की उच्छेदक है।।९-१२।।

गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम्[1]। सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे॥१३॥
कुण्डानि यमदूतं च यमं च यमकिङ्करान्।
स्वप्नेऽपि नहि पश्यन्ति सति श्रीकृष्णाकिङ्कराः॥१४॥
हरिव्रतं ये कुर्वन्ति गृहिणः कर्मभोगिणः। ये स्नान्ति हरितीर्थे च नाश्नन्ति हरिवासरे॥१५॥
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च।
न यान्ति ते च घोरां च मम संयमनीं पुरीम्॥१६॥

यह अविनाशीपद प्रदाता तथा गोलोक जाने के लिये सोपान (सीढ़ी) रूपा है। हे शुभे! यह कृष्ण सेवा सालोक्य, सार्ष्ट, सारूप्य तथा सामीप्यरूपी चारों मुक्तिप्रदा भी है। जो कृष्ण सेवक हैं, वे स्वप्न तक में नरककुण्ड, यमदूत, यम तथा यमकिंकरों को भी नहीं देखते। जो कर्मभोगी गृहस्थाश्रमी हरिव्रत करते हैं, हरितीर्थ जल में नहाते हैं, जो एकादशी को आहार नहीं करते, जो हरि की नित्य पूजा-अर्चना-प्रणाम करते हैं, वे मेरी घोर संयमनी पुरी में नहीं लाये जाते।।१३-१६।।

त्रिसंध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः।
स्वधर्मनिरताः शान्ता न यान्ति यममन्दिरम्॥१७॥
ते स्वर्गभोगिणोऽन्ये च शुद्धा देवान्यकिङ्कराः।
यान्त्यायान्ति च मर्त्यं च स्वर्गं च नहि निर्वृताः।
निवृत्तिं न हि लिप्सन्ति कृष्णसेवां विना नराः॥१८॥

जो त्रिसन्ध्या से पवित्र, शुद्धाचार वाले विप्र शान्त एवं स्वधर्मरत हैं, वे कभी भी यमलोक नहीं लाये जाते। वे निरन्तर स्वर्गभोग करते हैं, तथापि जो विशुद्ध रूप से अन्य देवता की उपासना करते हैं,

१. क. ०शिसुखप्र०।

वे कभी स्वर्ग में तो कभी जन्म लेकर मृत्युलोक में आते-जाते रहते हैं। मनुष्य श्रीकृष्ण की सेवा किये बिना किसी भी उपाय से मुक्तिलाभ नहीं कर पाते।।१७-१८।।

स्वकर्मनिरताश्चापि स्वधर्मनिरतास्तथा। गच्छन्तो मर्त्यलोकं च दुर्धर्षा यमकिङ्कराः॥१९॥
भीताः कृष्णोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः।
स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छन्तं तं वदाम्यहम्॥२०॥
यास्यसीति च सर्वत्र हरिभक्ताश्रमं विना।
कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निकृन्तनम्॥२१॥
करोति नखराञ्जल्या चित्रगुप्तश्च भीतवत्। मधुपर्कादिकं ब्रह्मा तेषां च कुरुते पुनः॥२२॥

कृष्णोपासक भले ही स्वधर्म निरत हों, अथवा स्वधर्म रहित क्यों न हों, मेरे दुर्धर्ष यमदूतगण मर्त्यलोक जाने पर उनको देखते ही ऐसे भयग्रस्त होते हैं, जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भयग्रस्त हो जाता है। मैं जब अपने किंकरों को पाश लेकर जाते देखता हूं, तब उनसे कह देता हूं कि "हे दूतों! तुम सब स्थान पर जा सकते हो, तथापि हरिभक्तगण के स्थान पर कदापि मत जाना। चित्रगुप्त भी भयभीत होकर अपने खाते में से भूल के कारण अंकित कर दिये गये हरिभक्तगण के नामों को काट कर करबद्ध क्षमा मन ही मन मांग लेते हैं। तदनन्तर मधुपर्क आदि से ब्रह्मा उन कृष्ण भक्तों की सेवा करते हैं।।१९-२२।।

विलङ्घ्य ब्रह्मलोकं च गोलोके गच्छतां सताम्।
दुरितानि च नश्यन्ति तेषां संस्पर्शमात्रतः॥२३॥
यथा सुप्रज्वलद्वह्नौ काष्ठानि च तृणानि च।
प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वाऽतिभीतवत्॥२४॥
कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति।
मृत्युः पलायते रोगो जरा शोको भयं तथा॥२५॥
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च।
ये ये न यान्ति यामीं च कथितास्ते मया सति॥२६॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि से सूखे तृण के ढेर का स्पर्श करते ही वे दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार हरिसेवकों के स्पर्शमात्र से सभी दुरित का नाश हो जाता है। हे सती! हरिसेवकों को देख कर मोह भी स्वयं मोहग्रस्त हो जाता है। वह उनको मोहित नहीं कर सकता। कामदेव हरिसेवक के पास से भाग कर अन्य व्यक्ति का आश्रय लेते हैं। लोभ, क्रोध, मृत्यु, रोग, जरा, शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म तथा हर्ष भी हरिसेवक के पास से भाग जाते हैं। मैंने यहां उन लोगों के सम्बन्ध में कहा, जिनको यमपुरी में नहीं जाना होता।।२३-२६।।

श्रृणु देहस्य विवृतिं कथयामि यथागमम्।
पृथिवी वायुराकाशं तेजस्तोयमिति स्फुटम्॥२७॥
देहिनां देहबीजं च स्रष्टुः सृष्टिविधौ परम्।
पृथ्व्यादिपञ्चभूतैश्च यो देहो निर्मितो भवेत्॥२८॥

अब मैं देह रचना का शास्त्रोक्त वर्णन करता हूं। जीवों की देह के तथा स्रष्टा की सृष्टि विधि के परम बीजरूपी कारण हैं, पृथिवी, वायु, आकाश, तेज, जल। इन पांच भूत समूह से ही देह निर्मित होता है।।२७-२८।।

स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह। वृद्धाङ्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः॥२९॥
बिभर्ति सूक्ष्मदेहं च तद्रूपं भोगहेतवे। स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममाऽऽलये॥३०॥
जले न नष्टो देहो वा प्रहारे सुचिरं कृते।
न शस्त्रे च न चास्त्रे च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा॥३१॥
तप्तद्रवे तप्तलौहे तप्तपाषाण एव च। प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्यूर्ध्वपतनेऽपि च॥३२॥
न च दग्धो न भग्नश्च भुङ्क्ते संतापमेव च।
कथितं देवि वृत्तान्तं कारणं च यथागमम्।
कुण्डानां लक्षणं सर्वं निबोध कथयामि ते॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

यह देह कृत्रिम तथा नश्वर है। वह यहीं भस्म हो जाता है। तदनन्तर कर्म भोग भोगने हेतु अंगुष्ठ के बराबर पुरुषाकृति जीव ही सूक्ष्मदेही प्रकट होता है। वह देह नरक में शस्त्र, अस्त्र, तीक्ष्ण कंटक, जल, अत्यन्त आघात करने पर भी नष्ट नहीं होता। वह तप्त द्रव्य पदार्थ, तप्त लौह, सन्तप्त पाषाण से नष्ट नहीं होता। तप्त प्रतिमा से सटाये जाने पर दग्ध नहीं होता। उच्च स्थान से पतित होकर भी नष्ट नहीं होता। वह भग्न नहीं होता, दग्ध भी नहीं होता, तथापि पीड़ा का पूर्णतः अनुभव करता रहता है। हे देवी! यह सब देह विवरण शास्त्रोक्त रीति से कह दिया। उसका कारण भी कह दिया। अब सभी नरककुण्डों का लक्षण श्रवण करो।।२९-३३।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

नरककुण्डों का लक्षण वर्णन

यम उवाच

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डं च वर्तुलम्। अतीव निम्नं पाषाणभेदैश्च खचितं सति॥१॥
न नश्वरं चाऽऽप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया। क्लेशदं वै पातकिनां नानारूपं तदालयम्॥२॥
ज्वलदङ्गाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम्। परितः क्रोशमानं च वह्निकुण्डं प्रकीर्तितम्॥३॥
महच्छब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम्। रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम्॥४॥

यमदेव कहते हैं–हे सती! समस्त नरककुण्ड पूर्ण चन्द्र के समान गोल मण्डलाकृति हैं। वे अत्यंन्त नीचे हैं तथा विशेष पाषाणों से बने हैं। ये सभी क्लेशदायक नाना प्रकार के कुण्ड ईश्वरेच्छा से निर्मित तथा अविनश्वर हैं। इनमें अग्निकुण्ड नरक अनन्त अंगार से प्रदीप्त सौ हाथ उच्च तथा चारों ओर १ कोस चौड़ा है। यह महान् चीत्कार करते पातकियों से भरा रहता है। उन पर आघात करने वाले मेरे दूतगण से यह सदा रक्षित होता रहता है।।१–४।।

प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजन्तुसमन्वितम्। महाघोरान्धकारं च पापिसङ्घेन सङ्कुलम्॥५॥
प्रकुर्वता काकुशब्दं प्रहारैर्घूर्णितेन च। क्रोशार्धमानं मद्दूतैस्ताडितेन च रक्षितम्॥६॥
तप्तक्षारोदकैः पूर्णं नक्रैश्च परिवेष्टितम्। सङ्कुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम्॥७॥
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः। प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः॥८॥

तदनन्तर तप्तोदक नरक कुण्ड प्रतप्त जल से पूर्ण रहता है। यह स्थान भयानक अन्धकार से भरा तथा हिंस्र जन्तुगण से व्याप्त है। यहां मेरे दूतों की ताड़ना से चक्कर खाकर पापी लोग निरन्तर विकृत शब्द करते हैं। यह कुण्ड आधा कोस चौड़ा तथा मेरे दूतों द्वारा सदा रक्षित रहता है। तदनन्तर क्षारकुण्ड नरक अतीव भयंकर है। उसका माप एक कोस है। यह मगरों से भरा हुआ है। यहां आहार रहित, कण्ठतालु शुष्क प्राणी मेरे दूतों द्वारा आहत होते रहते हैं। वे निरन्तर त्राहि–त्राहि करते चीत्कार करते रहते हैं। वे निरन्तर उसमें भागते–चलते फिरते रहते हैं।।५–८।।

विण्मूत्रैरेव पूर्णं च क्रोशमानं च कुत्सितम्। अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं व्याप्तं पापिभिरेव च॥९॥
ताडितैर्मम दूतैश्चाप्यनाहारैरुपद्रवैः[१]। रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितम्॥१०॥

विण्मूत्र कुण्ड नरक एक कोस परिमाण का तथा कुत्सित है। यह मल–मूत्र से भरा दुर्गन्धित एवं पापीगण से व्याप्त है। इस नरक में वे आहार रहित रहते हैं। महाउपद्रवी मेरे दूत उन पर प्रहार करते रहते हैं। वे रक्षा करो कह कर चीखते हैं। यहां के कीट उनको खाते रहते हैं।।९–१०।।

---

१. क. तदाकारै०।

तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च सङ्कुलम्। युक्तं महापापिभिश्च तत्कीटैर्दंशितं सदा॥११॥

गव्यूतिमानं ध्वान्तात्तं शब्दकृद्भिश्च संततम्।
मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः॥१२॥
श्लेष्मपूर्णं क्रोशमितं वेष्टितं चेष्टितैः सदा।
तद्भोजिभिः पापिभिश्च तत्कीटैर्भक्षितैः सदा॥१३॥

मूत्रकुण्ड नरक अत्यन्त उष्ण मूत्र से तथा मूत्रकीटों से भरा है। यह गाढ़ अन्धकाराच्छन्न है। यह दो कोश परिमाण वाला है। इस नरक में महाघोर पातकी मेरे दूतों द्वारा पीटे जाते हैं तथा मूत्रकीटों द्वारा सतत् काटे जाकर शुष्क कण्ठ तथा तालु की स्थिति में निरन्तर चीत्कार करते रहते हैं। एक कोश वाला जो श्लेष्मकुण्ड नरक है, वहां पापीगण श्लेष्मा ही खाते हैं। यहां के कीट परमानन्द पूर्वक श्लेष्मा खाते तथा इन पातकी लोगों को निरन्तर डंक मारते रहते हैं।।११-१३।।

क्रोशार्धं गरपूर्णं च गरभोजिभिरन्वितम्। गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च॥१४॥
ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः। सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः॥१५॥

वहां आधा कोस का गरकुण्ड नरक है। वहां गरकीट (विषकीट) भरे हैं। यहां के पापी लोग विष खाते हैं। यह कुण्ड विष से भरा रहता है। यहां के कीट वज्र के समान डंक वाले सर्पाकृति होते हैं। जो सतत् इन पापी लोगों को डंक मारते हैं तथा मेरे दूत भी इन पापी लोगों को दारुण रूप से आहत करते रहते हैं। वे सूखे कण्ठ तथा तालु से चीत्कार करते रहते हैं।।१४-१५।।

नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम्।
पापिभिः सङ्कुलं शश्वद्द्रवद्भिः कीटभक्षितैः॥१६॥
वसारसेन पूर्णं च क्रोशतुर्यं सुदुःसहम्।
तद्भोजिभिः पातकिभिर्व्याप्तं दूतैश्च ताडितैः॥१७॥
शुक्रपूर्णं क्रोशतुर्यं शुक्रकीटैश्च भक्षितैः।
क्रन्दद्भिः पापिभिः शश्वत्सङ्कुलं व्याकुलैर्भिया॥१८॥

नेत्रमल कुण्ड नरक आधे कोस वाला तथा कीटों से भरा है। यहां पापी लोगों को सतत् कीट खाते रहते हैं। इसके कारण वे पापी यह कुण्ड नेत्रों के जल से भरा रहता है। यहां पापी सतत् कष्ट भोगते रहते हैं। वसा से पूर्ण ४ कोस वाला दुःसह वसाकुण्ड नरक सदा पापीगण से भरा है। यहां पापी सतत् यमदूतों के प्रहार से कष्ट पाते हैं। इसी प्रकार चार कोस वाला शुक्र से भरा शुक्रकुण्ड नरक है। यहां पापी लोगों को शुक्रकीट काटते रहते हैं। पापीगण यहां भय से व्याकुल होकर सदा रोते रहते हैं। चीत्कार करते रहते हैं।।१६-१८।।

दुर्गन्धिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम्।
तद्भोजिभिः पापिभिश्च सङ्कुलं कीटभक्षितैः॥१९॥

पूर्णं नेत्राश्रुभिर्नृणां वात्यर्धं पापिभिर्युतम्। ताडितैर्मम दूतैश्च तद्भक्ष्यै कीटभक्षितैः॥२०॥
नृणां गात्रमलैः पूर्णं तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम्। ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः॥२१॥

यहां दुर्गन्धित रक्त से भरा तथा वापी की माप तथा आकृति का विस्तार वाला गहरा रक्तकुण्ड रक्तभोजी पापी लोगों से पूर्ण रहता है। वहां के रक्तकीट उनका निरन्तर भक्षण करते हैं। यहां अश्रुकुण्ड अश्रु से पूर्ण तथा वापी से माप में आधा है। वहां पापी भरे हुए रहते हैं, जिनको यमदूतगण बराबर ताड़ना देते हैं। ये अश्रु का भक्षण करने वाले पापी लोग यहां सदा कीड़ों से खाये जाते रहते हैं। इस प्रकार यहां गात्रमल कुण्ड भी है। जो मनुष्यों के अंगों के मल से पूर्ण रहता है। यहां स्थित पातकी इसी मल का आहार करते हैं। ये मेरे दूतों से ताड़ित होते तथा यहां के कीटों से निरन्तर काटे जाते रहते हैं॥१९-२१॥

कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्ष्यै पापिभिर्युतम्। वापीतुर्यप्रमाणं रुदद्भिः कीटभक्षितैः॥२२॥
मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम्। महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम्॥२३॥
परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः। पापिभिः सङ्कुलं चैव वापीमानं भयानकम्॥२४॥
कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः।
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकम्॥२५॥

यह कर्णमल से भरा कर्णविट् कुण्ड पापीगण से तथा कान के मल से पूर्ण रहता है। इस मल का भोजन यहां पड़े पापी करते हैं। इस कुण्ड का माप वापी से चौथाई है। ये पापी यहां कीड़ों से काटे जाकर रुदन करते रहते हैं। यहां का मज्जाकुण्ड वापी से १/४ माप वाला महादुर्गन्धित, पापी लोगों से भरा रहता है। मांसकुण्ड सदा चिकने मांस से भरा, वापी के माप का है तथा इसमें पड़े पातकी लोगों की ताड़ना मेरे दूत करते हैं। कन्या विक्रेता इस कुण्ड में निरन्तर कीटों द्वारा काटे जाकर "रक्षा करो" कहते चीत्कार करते रहते हैं॥२२-२५॥

वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम्। पापिभिः सङ्कुलं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः॥२६॥
प्रतप्तताम्रकुण्डं ताम्रपर्युन्मुखान्वितम्। ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा॥२७॥
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम्।
गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः॥२८॥

यह वापी से चौथाई भाग वाला है, जो नखादि चन्द्रमा के मल से भरा है। यहां पापीगण मेरे दूतों द्वारा सदा ताड़ित किये जाते हैं। प्रतप्त ताम्रकुण्ड चतुर्दिक् ताम्र जटित है। यहां लाखों तप्त ताम्रमूर्त्तियां पड़ी हैं। यहां पर लाया पातकी प्रत्येक मूर्त्ति का आलिंगन करने को विवश है। उसे यहां मेरे गण असह्य ताड़ना देते हैं। यह कुण्ड २ क्रोश विस्तार वाला है॥२६-२८॥

प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदङ्गारसंयुतम्। लौहानां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा॥२९॥
प्रत्येकं सर्वसंश्लिष्टैः शश्वद्विचलितैर्भिया। रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः॥३०॥

महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्।
भयानकं ध्वान्तयुक्तं लौहकुण्डं प्रकीर्तितम्॥३१॥
घर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च।
तद्भोजिभिः पापिभिश्च व्याप्तं मद्दूतताडितैः॥३२॥

प्रतप्त लौहधार कुण्ड तो जलते अंगार से पूर्ण तथा लाखों लौह प्रतिमायुक्त है। यहां भी पातकी इन प्रतिमाओं के आलिंगन को विवश हैं। वे पातकी बारम्बार प्रयत्न करके भी तप्त प्रतिमा से अलग नहीं हो पाते। उन पर यमदूत प्रहार करते रहते हैं तथा ये पापी "रक्षा करो" कहते चीत्कार करते रहते हैं। बावली से अर्ध आकार वाले धर्मकुण्ड तथा तप्त सुराकुण्ड पातकियों से पूर्ण हैं। वहां ये पापी धर्मकुण्ड में पसीना तथा तप्त सुराकुण्ड में तप्त सुरा पीते, मेरे दूतों द्वारा आहत किये जाते कष्टपूर्ण स्थिति में रहते हैं।।२९-३२।।

अधः शाल्मलिवृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम्।
लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम्॥३३॥
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम्।
प्रत्येकं कण्टकैर्विद्धं महापातकिभिर्युतम्॥३४॥

वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः। जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः॥३५॥
महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डसंभिन्नमस्तकैः। प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैले जीविभिरेव च॥३६॥

विषौघैस्तक्षकादीनां पूर्णं च क्रोशमानकम्।
तद्भक्ष्यैः पापिभियुक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥३७॥

सेमल वृक्ष के नीचे एक कोस विस्तार वाला, लाखों पापियों को समा लेने वाला कण्टक कुण्ड नरक धनुष के बराबर तीखे कांटों से परिपूर्ण महादुःखदायी है। यहां प्रत्येक कांटों में पापी पिरोये रहते हैं। वे सेमल के पेड़ से फेंके जाते हैं। वे शुष्क तालु हो जल मांगते रहते हैं। उनके शिर पर यमदूत दण्ड प्रहार करते हैं। उबलते तैल में ये पापी दौड़ते तथा महाभय से व्यग्रता पूर्वक पापफल भोगते रहते हैं। तदनन्तर एक कोस विस्तार वाला तक्षक सर्पों से भरा पापीगण से पूर्ण एक कुण्ड है। वहां पापी लोगों पर मेरे दूत सदा प्रहार करते रहते हैं।।३३-३७।।

प्रतप्ततैलपूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं [1]दग्धगात्रैश्च वेष्टितैः॥३८॥
काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतताडितैः। महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥३९॥

शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम्।
शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैलौहशस्त्रैश्च वेष्टितम्॥४०॥

१. क. स्निग्ध०।

शस्त्रतल्पस्वरूपञ्च क्रोशतुर्यप्रमाणकम्। पातकिभिर्वेष्टितं च कुन्तविद्धैश्च वेष्टितम्॥४१॥
ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककंठौष्ठतालुकैः। कीटैः संपीड्यमानैश्च सर्पयानैर्भयङ्करैः॥४२॥
तीक्ष्णदन्तैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति। महापातकिभिर्युक्तं भीतैर्वा कीटभक्षितैः।
रुदद्भिः क्रोशमानं च मम दूतैश्च ताडितैः॥४३॥

४ कोस का प्रतप्त तैलकुण्ड उबलते तैल से पूर्ण कीट रहित है। पापी इसी तैल का भक्षण करते हैं। यमदूत यह तप्त तैल उन पापी लोगों पर लगाते, उन पर प्रहार करते रहते हैं। ये पापी चीत्कार करते दौड़ते रहते हैं। शस्त्रकुण्ड एक कोस वाला अन्धकार से पूर्ण शूलाकृति नुकीले लौह शस्त्र से पूर्ण है। कुन्त कुण्ड शस्त्र शैय्या जैसा ४ कोस वाला है, जो भालों से पूर्ण है। प्रत्येक भाले में भेदे गये पापी लटके हैं तथा वे सतत् मेरे दूतों से पीटे जाते हैं। उन पापी लोगों के कण्ठ-ओंठ-तालु शुष्क रहते हैं। तदनन्तर भयानक सर्पयान, तीक्ष्ण दन्त भयानक कीटपूर्ण १ क्रोश का घनान्धकार वाला कृमिकुण्ड है, जिसमें महापापी इन कीटों द्वारा सतत् खाये जाते हैं। यमदूतों से भी ताड़ित होकर ये पापी भयानक रुदन करते रहते हैं।।३८-४३।।

अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं क्रोशार्धं पूयसंयुतम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥४४॥
[1]द्विगव्यूतिप्रमाणं च हिमतोयप्रपूरितम्। तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम्॥४५॥
सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः। सङ्कुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः॥४६॥

पूयकुण्ड दुर्गन्धित पीब से भरा आधे कोस का नरक है। यहां पातकी यही पीब खाते तथा मेरे दूतों से पीटे जाते हैं। सर्पकुण्ड ४ कोस वाला, हिमजल से पूर्ण तथा ताड़ वृक्ष के बराबर सांपों से भरा है। यहां पापी लोगों को ये सर्प काटते रहते हैं। यमदूत उन पापी लोगों पर सतत् प्रहार करते रहते हैं। ये पापी इस पीड़ा से चीत्कार करते रहते हैं।।४४-४६।।

कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः।
सर्वं क्रोशार्धमात्रं च महापातकिभिर्युतम्॥४७॥
हस्तपादादिभिर्बद्धैः क्षत्रैः क्षतजलोहितैः।
हाहेति शब्दं कुर्वद्भिः प्रचलद्भिश्च संततम्॥४८॥
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम्।
वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः॥४९॥
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम्। तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः॥५०॥

यहां तीन कुण्ड मच्छर-डास आदि से भरे हैं। इनका प्रत्येक का विस्तार आधा-आधा कोस है। यहां महापापी हाथ-पैर बांध कर रक्ताक्त स्थिति में हाहाकार मचाते फेंके जाते हैं। ये पापी हाथ-

---
१. क. त्रिग०।

पैर बंधा होने पर भी घिसटते रहते हैं। वज्रकुण्ड तथा वृश्चिक कुण्ड नरक क्रमशः वज्र तथा बिच्छू से पूर्ण बावली से आधे माप वाले हैं। यहां पापी वज्र कीटों तथा वृश्चिकों से काटे जाते हैं। यहां बाण आदि तीन कुण्ड बावली से आधे-आधे आकार के तथा बाण आदि से भिद्य पापी लोगों से भरे, रुधिर से लाल परिलक्षित होते हैं।।४७-५०।।

तप्तपङ्कोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम्।
कीटैः संपीड्यमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्।।५१।।
वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः। दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम्।।५२।।

गोलकुण्ड नरक तप्त कीचड़ से पूर्ण तथा अंधकार पूर्ण है। यहां के पातकी कीटभक्षित अति पीड़ित स्थिति में रहते हैं। यह कुण्ड बावली से आधे आकार का है। नक्रकुण्ड नरक जल के कोटि कोटि मगर से भरा है। ये भीषणाकृति मगर वहां के पापियों को काटते खाते रहते हैं।।५१-५२।।

विण्मूत्रश्लेष्मभक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः।
काकैश्च विकृताकारैर्धनुर्लक्षं च पापिभिः।।५३।।
सञ्चालवाजयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम्।
भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम्।।५४।।
धनुः शतं वज्रयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा। शब्दकृद्भिर्वज्रदग्धैरन्तर्ध्वान्तमयं सदा।।५५।।

विण्मूत्र श्लेष्म कुण्ड नरक एक लाख धनुष के माप वाला है। यह मल-मूत्र-श्लेष्मा भोगी कीटों, काकों तथा पापी लोगों से भरा है, जो मल-मूत्र-श्लेष्मा खाते हैं। संचाल कुण्ड तथा बाजकुण्ड बाजों से भरा रहता है। वे यहां पड़े पातकियों को काटते खाते रहते हैं। वे पातकी चीखते रहते हैं। वज्रदग्ध कुण्ड सौ धनुष माप का अन्धकारपूर्ण नरक है। इसमें पड़े पापी वज्रदग्ध होकर चीत्कार करते रहते हैं।।५३-५५।।

वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम्। ज्वलदङ्गारसदृशं[१] चलद्भिः पापिभिर्युतम्।।५६।।
क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम्। महापातकिभिर्युक्तं क्षतं क्षतजलोहितैः।।५७।।
दुर्गन्धिलालापूर्णं च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम्।
क्रोशमानं गभीरं च मम दूतैश्च ताडितैः।।५८।।
[२]तप्ततोयेऽञ्जनाकारैः परिपूर्णं धनुः शतम्।
चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः।।५९।।

तप्त पाषाण कुण्ड नरक वापी से दूने माप का तथा तपाये गरम पाषाण से निर्मित है। इन अंगार के समान जलते पाषाणों पर पापियों को चलाया जाता है। तीक्ष्ण पाषाण कुण्ड नरक छूरे की धार के

१. क. ॰रसंभूतं च॰।
२. क. ॰तोयाञ्ज॰।

समान नुकीले पत्थरों से बना है। ये यहां के महापापियों के रुधिर से गीले हो गये हैं। पातकी लोगों का देह व्रणों से भरा रहता है। लालाकुण्ड दुर्गन्धित लार से भरा नरक है। यहां पड़े पापी इसी का भक्षण करते हैं। यह एक कोस विस्तृत नरक ऐसा है, जहां पापियों की ताड़ना यमदूत सतत् करते रहते हैं। तप्ततोयकुण्ड नरक १०० धनुष के आकार का कृष्णवर्ण जल से भरा है। यहां पापियों को यमदूत पीटते रहते हैं। अतः वे पातकी इसमें चलने को विवश रहते हैं।।५६-५९।।

पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम्।
तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः।।६०।।
कुण्डं कुलालचक्राभं घूर्णमानं[1] च संततम्।
सुतीक्ष्णषोडशारं च धूर्णितैः पापिभिर्युतम्।।६१।।
अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम्। कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदकसमन्वितम्।।६२।।
महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः।
प्रलचद्भिः शब्दकृद्भिर्ध्वान्तयुक्तं भयानकम्।।६३।।
कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः।
जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्।।६४।।

चूर्णकुण्ड नरक पिघले चूर्ण से भरा १ क्रोश वाला है। यहां पड़े पातकी यही उष्ण चूर्ण खाते, उससे जलते रहते तथा यमदूतों से पीटे जाते रहते हैं। चक्रकुण्ड नरक कुम्हारे के चक्के जैसा घूमता है। यह १६ तीक्ष्ण आरों वाला है। इस पर बैठाये पातकी चक्रवत् घूमते तथा आरों से कटते रहते हैं। वक्रकुण्ड ४ क्रोश का, अत्यन्त गहरा, वक्राकृति कन्दरावत् है, जहां उष्ण जलपूर्ण कुण्ड है। यह अत्यन्त भयानक तथा अन्धकाराच्छन्न है। यहां पड़े महापातकी जल जन्तुओं द्वारा भक्षित होकर महाचीत्कार करते हैं। वे उसी में चलने को बाध्य रहते हैं। भयानक, विकृत रूप अनगिनत कच्छपों से कूर्मकुण्ड नरक व्याप्त रहता है। यहां पड़े पातकी लोगों को ये कच्छप खाते रहते हैं।।६०-६४।।

ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितं क्रोशमानकम्।
शब्दकृद्भिः पापिभिश्च चलद्भिः संयुतं सदा।।६५।।
क्रोशमानं गभीरं च तप्तभस्मभिरन्वितम्।
शश्वच्चलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः।।६६।।
तप्तपाषाणलोष्टानां समूहैः परिपूरितम्। पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं वै शुष्कतालुकैः।।६७।।
क्रोशमानं ध्वान्तमयं गभीरमतिदारुणेः। ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम्।।६८।।
अत्यूर्मियुक्ततोयं च प्रतप्तक्षारसंयुतम्। नानाप्रकारविकृतं जलजन्तुसमन्वितम्।।६९।।

---
१. ख. घूर्ण्यमा०।

द्विगव्यूतिप्रमाणं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम्।
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः॥७०॥
चलद्भिः क्रन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम्।
उत्तप्तसूर्मिकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम्॥७१॥

ज्वालाकुण्ड नरक महाज्वाला से बना एक कोश विस्तृत है। यहां फेंके गये पातकी ज्वालापीड़ित हो भागते तथा चीत्कार करते रहते हैं। तप्त भस्मकुण्ड नरक गहरा तथा एक कोस विस्तार वाला है। वहां पापीगण यही तप्त भस्म खाते हैं। दग्धगुण्ड नरक १ कोस का गहरा अन्धकारपूर्ण है। यह तप्त पाषाण तथा तप्त मिट्टी से भरा है। पापी लोगों का यहां कण्ठ, तालु शुष्क रहता है, देह दग्ध रहती है, तथापि भयानक यमदूत उन पर प्रहार करते रहते हैं। उत्तप्त सूर्मिकुण्ड नरक चार कोस का, नाना तरंगों से पूर्ण तप्ततम क्षारजल से तथा जलजन्तुओं से व्यत गंभीर गहनान्धकारमय है। यहां पातकियों को ये जलजन्तु काटते-खाते हैं। अतः वे चीत्कार करते रहते हैं, तथापि ये पातकी एक-दूसरे को देख नहीं पाते॥६५-७१॥

असिपत्रवनस्यैवाप्युच्चैस्तालतरोरधः। क्रोशार्धमानकुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम्॥७२॥
पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां परम्। परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि॥७३॥
गभीरं ध्वान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम्। तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम्॥७४॥

असिपत्र वन के निम्न में स्थित अर्धक्रोश विस्तृत, तीक्ष्ण ताड़ पत्रों से युक्त नरक है, जहां इन तीक्ष्ण नुकीले पत्तों पर पातकी फेंके जाते हैं। यह स्थान रक्त से भरा है। रक्त वर्ण के कीट उनको काटते रहते हैं। यह अंधकारपूर्ण गहन नरक असिपत्र कुण्ड कहा जाता है।।७२-७४।।

धनुःशतप्रमाणं च क्षुराकारास्त्रसङ्कुलम्। पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम्॥७५॥
सूचीवाश्यास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम्।
पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं सूचिकामुखम्॥७६॥

क्षुरधार कुण्ड सौ धनुष विस्तृत, छूरे की धार जैसा नुकीला, पापीगण के रक्त से भरा है। सूचिका कुण्ड भी इसी प्रकार का ५० धनुष विस्तृत तथा भयानक है। वह सूई ऐसे नुकीले अस्त्रों से पूर्ण है। यह पापियों को छेदे जाने के कारण रक्त से भरा तथा भयानक दुःखप्रद है।।७५-७६।।

गोधाह्वजन्तुभेदस्य मुखाकृति भयानकम्। कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशतिमानकम्॥७७॥
महापातकिनां चैव महाक्लेशकरं परम्।
तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च संततम्॥७८॥
कुण्डं [1]नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम्। गभीरं कूपरूपं च पापिष्ठैः सङ्कुलं सदा॥७९॥

१. ख. नरमु०।

गजेन्द्राणां समूहेन व्याप्तं कुण्डाकृति स्थलम्।
गजदन्तहतानां च पापिनां रक्तपूरितम्॥८०॥
तत्कीटभक्षितानां च दीनशब्दकृतं सदा। धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम्॥८१॥

गोधामुख कुण्ड नरक गोधा जन्तु के मुख की आकृति का है। यह कुयें की तरह है। यह गहरा तथा बीस धनुष चौड़ा है। यहां पापी लोग महाक्लेश भोग करते हैं। यहां नीचे मुख किये पापियों को कीड़े हर क्षण खाते रहते हैं। नक्रकुण्ड जलजन्तु नक्राकृति, १६ धनुष चौड़ा गहरा कुएं की तरह तथा पातकियों से पूर्ण है। गजदंशन कुण्ड हाथियों से व्याप्त है। यहां उनके दांतों से चुटीले पातकियों के देह का रक्त भरा रहता है। कीटों द्वारा भक्षित ये पातकी दीनवत् चीखते रहते हैं। यह सौ धनुष विस्तृत नरक है।।७७-८१।।

धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं वै गोमुखाकृति।
पापिनां दुःखदं चैव गोमुखं परिकीर्तितम्॥८२॥
भ्रमितं कालचक्रेण संततं च भयानकम्।
कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥८३॥
लक्षमानवमानं च गभीरमतिविस्तृतम्। कुत्रचित्तप्ततैलं च कुण्डाभ्यन्तरमन्तिके॥८४॥
कुत्रचित्तप्तलौहादिकुण्डं ताम्रादिकं तथा। कुत्रचित्तप्तपाषाणकुण्डाभ्यन्तरमन्तिके॥८५॥
पापिनां च प्रधानैश्च महापातकिभिर्युतम्। परस्परं न पश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च संततम्॥८६॥
ताडितैर्मम दूतैश्च दण्डैश्च मुसलैस्तथा॥८७॥
घूर्णमानैः[1] पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मुहुः।
पातितैर्मम दूतैश्चाप्यत्यूर्ध्वात्पतितैः क्षणम्॥८८॥

गोमुखकुण्ड नरक ३० धनुष विस्तृत, गोमुखाकृति है। यहां पापी भयानक कष्ट पाते हैं। कुंभीपाक नरक कालरूपी आरों से चक्रों से भरा घटाकार सदा चक्रमण युक्त ४ क्रोश विस्तृत महाअंधकारमय कुंभीपाक नरक १ लाख पोरसा गहरा है। यही तप्ततैलकुण्ड, ताम्रादिकुंड तथा तप्तपाषाण कुंड भी हैं। यह महापातकी प्रधान जीवों से पूर्ण है। वे एक-दूसरे को नहीं देख पाते। हमारे यमदूत उन पर दण्ड-मुद्गर-मूसल का प्रहार करते हैं। वे पुनः-पुनः संज्ञाहीन होकर चक्कर खाकर भूपतित होते हैं। तभी यमगण उनको उठा कर ऊपर से जोरों से फेंकते रहते हैं।।९२-८८।।

यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि।
ततश्चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाके च दुस्तरे॥८९॥
सुचिरं[2] पतिताश्चैव भोगदेहविवर्जिताः। सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम्॥९०॥

१. ख. ०मानं प०।
२. क. रं पात्यमानाश्च भो०।

कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः। उत्थापिताश्च मद्दूतैः क्षणमेव निमज्जिताः॥९१॥

समस्त नरककुण्ड से चतुर्गुण पातकी कुंभीपाक में फेंके जाते हैं, जो महाभयानक है। यह सर्वप्रधान नरक है। कालसूत्र से बंधे पातकियों को यमदूत इसमें से निकाल कर अगले क्षण उनको उसी में फेंकते रहते हैं। डुबाते रहते हैं॥८९-९१॥

निःश्वासबन्धाः सुचिरं कुण्डानामन्तरे तथा।
अतीव क्लेशयुक्ताश्च भोगदेहा अनश्वराः॥९२॥

दण्डेन मुसलेनैव मम दूतैश्च ताडिताः। प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्तितम्॥९३॥
अवटः कूपभेदश्च यत्रोदं च तदाकृति। प्रतप्ततोयपूर्णं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम्॥९४॥
व्याप्तं महापापिभिश्च दग्धगात्रैश्च संततम्। मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम्॥९५॥
यत्तोयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम्। भवेदकस्मात्पततां यत्र कुण्डे धनुःशते॥९६॥
सर्वे रुद्धाः पापिनश्च व्यथन्ते यत्र संततम्। हाहेति शब्दं कुर्वन्तस्तदेवारुन्तुदं विदुः॥९७॥

ये सभी पातकी कुण्डों में फेंके जाते हैं। इनकी निःश्वास बन्द रहती है। अतः ये क्लेश भोग कर भी जीवित रहते हैं। इस भोगदेह का क्षय नहीं होता। ऊपर से मेरे दूत इन पातकी लोगों पर दण्डाघात तथा मूसलाघात सतत् करते रहते हैं। अवटोद नरककुण्ड कूप के समान है। उसमें अत्युष्ण जल सदा भरा रहता है। यह ८० हाथ चौड़ा है। दग्ध अंगों वाले तथा मेरे दूतों द्वारा ताड़ित पातकी यहां भरे होते हैं। इसमें गिरते ही यहां का जल स्पर्श होते ही पातकियों में सभी रोग अकस्मात् उत्पन्न हो जाते हैं तथा उनका मर्मभेद होता है। इससे वे पापी सदा चीत्कार तथा हाहाकार करते रहते हैं। सभी लोग ऐसे नरक को अरुन्तुद कहते हैं॥९२-९७॥

तप्तपांसुपराकीर्णं ज्वलद्भिस्तु सुदग्धकैः।
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजं धनुःशतम्॥९८॥

पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम्। पापमात्रेण पापी वै भवेत्शापेन वेष्टितः॥९९॥

क्रोशमाने च कुण्डे वै विदुस्तत्पाशवेष्टनम्।
धनुर्विंशतिमानं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम्॥१००॥

पातमात्रेण पापी च शूलेन ग्रथितो भवेत्। पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम्॥१०१॥

अतीव हिमतोये च क्रोशार्धं च प्रकम्पनम्।
ददत्येव हि मद्दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे॥१०२॥

तप्त धूलिकणों से व्याप्त दग्धप्रायः देह वाले पातकी से अरुन्तुद व्याप्त रहता है। वे पापी यह तप्त धूल भक्षण करते हैं। यह १०० धनुष विस्तार वाला है। जहां ये पातकी पाशबद्ध होकर कम्पायमान होते हैं, वह एक कोस विस्तृत नरक पाशवेष्ठन नामक है। बीस धनुष विस्तार वाला शूलप्रेत नरक ऐसा है, जहां गिराये जाते ही पापीगण का देह भिद्य-छिद्य हो जाता है। प्रकम्पन नरक हिम से भरा आधा

कोस का है। इसमें फेंके गये पापी सदा कांपते रहते हैं। यहां पापीगण के मुख में यमदूत ज्वलन्त काष्ठ भरते हैं।।९८-१०२।।

धनुर्विंशतिमानं च तदुल्काभिश्च सङ्कुलम्।
लक्षमानवमानं च गम्भीरं च धनुःशतम्।।१०३।।
नानाप्रकारक्रिमिभिः संयुक्तं च भयानकैः।
अत्यन्तधकारव्याप्तं यत्कूपाकारं च वर्तुलम्।।१०४।।
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं न पश्यद्भिः परस्परम्। तप्ततोयप्रदग्धैश्च चलद्भिः कीटभक्षितैः।
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपं प्रकीर्तितम्।।१०५।।
नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः। धनुर्विंशतिमानं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम्।।१०६।।
दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः।
धनुः षोडशमानं च तत्कुण्डं दण्डताडनम्।।१०७।।
निबद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः।
धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च जालबद्धं प्रकीर्तितम्।।१०८।।
पततां पापिनां[1] कुण्डे देहाश्चूर्णीभवन्ति च।
लौहवेदिनिबद्धान्तः कोटिमानवमानकम्।।१०९।।

उल्काओं से भरा यह स्थान २० धनुष वाला है। इस नरक में लाखों पुरुष एक साथ फेंके जाते हैं। यह ४०० हाथ गहरा है। सौ धनुष विस्तार वाला है तथा नाना प्रकार के भयंकर कीटों से पूर्ण है। अत्यन्त अन्धकारमय भी है। यह कूप के आकार में वर्त्तुल है। यहां के गाढ़ अन्धकार में पापी लोग एक-दूसरे को नहीं देख सकते। उनका यहां के तप्तोदक से अंग जल जाता है। कीटगण डंक मारते रहते हैं। जिस नरक में पातकीगण नाना प्रकार के शस्त्रों से बेधे जाते हैं, वह अस्सी हाथ विस्तार वाला नरकवेधन नरक कहा गया है। जिस नरककुण्ड में पापी लोग मेरे दूतों के दण्ड द्वारा सतत् प्रताड़ित होते हैं, जो ६४ हाथ चौड़ा है, उसे दण्डताडन नरक कहा है। जालबद्ध नरक १२० हाथ विस्तृत है। यहां पापीगण मछलियों के महाजाल में फंसे पड़े रहते हैं। देहचूर्ण नरक महान्धकाराच्छन्न तथा ८० हाथ चौड़ा है, गहराई में एक करोड़ पोरसा है। यहां फेंके जाते ही पापीगण लौह वेदी में बंध कर चूर्ण हो जाते हैं। वे मूर्च्छित तथा जड़ीभूत हो जाते हैं।।१०३-१०९।।

गभीरं ध्वान्तयुक्तं च धनुर्विंशतिमानकम्।
मूर्च्छितानां जडानां तद्देहचूर्णं प्रकीर्तितम्।।११०।।
दलिताः पापिनो यत्र मद्दूतैर्मुसलैः सदा।
धनुः षोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम्।।१११।।

---
१. क. ०नां दण्डैर्दें।

पातमात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः।
वालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम्॥११२॥
शतमानवमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम्। जलाहारैर्विरहितं शोषणं तत्प्रकीर्तितम्॥११३॥
नानाचर्मकषायोदैः परिपूर्णं धनुःशतम्। शतमानवमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम्।
दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलं महत्॥११४॥

दलनकुण्ड में पापीगण यमदूतों द्वारा मूषल से दलित किये जाते हैं। यह ६४ हाथ चौड़ा है। जो नरक विस्तार में १२० हाथ तथा गहराई में १०० परोसा है, गाढ़ अन्धकार से पूर्ण, जलशून्य तपी बालुका से भरा है, वहां फेंके जाते ही पापीगण के ओठ-तालु सूख जाते हैं। यह शोषक नामक नरक है। कष नरक में नाना प्रकार के चमड़े का कसैला जल रहता है, जो मलमूत्र पूर्ण होता है। यहां पापीगण यही खाते हैं। यह पापियों से भरा नरक है।।११०-११४।।

शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम्।
तप्तलोहवालुकाभिः पूर्णं पातकिभिर्युतम्॥११५॥
अन्तराग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा।
धनुर्विंशतिमानं च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि॥११६॥
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पाणिभिर्व्याप्तमेव यत्।
तन्महत्क्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम्॥११७॥
पातमात्राद्यत्र पापी मूर्च्छितो जिह्मितो[1] भवेत्।
तप्तेष्टकाभ्यन्तरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम्॥११८॥
धूमान्धकारयुक्तं च धूमान्धैः पापिभिर्युतम्।
धनुःशतं श्वासबद्धैर्धूमान्धं परिकीर्तितम्॥११९॥
पातमात्राद्यत्र पापी नागैः संवेष्टितो भवेत्। धनुःशतं नागपूर्णं नागवेष्टनकुण्डकम्॥१२०॥
षडशीतिश्च कुण्डानि मयोक्तानि निशामय।
लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१२१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्युपा० यमलोकस्थनरककुण्डलक्षणप्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

हे सुन्दरी! सूपमुख कुण्ड १२ धनुष चौड़ा, लौहवत् बालुका पूर्ण तथा ऐसे पापी लोगों से भरा है, जो यही बालू खाते हैं। ज्वालामुख कुण्ड अग्निढेर युक्त ज्वालामाला से आच्छन्न २० धनुष चौड़ा है। यहां ज्वालादग्ध पातकी सतत् क्लेश पाते हैं। जिह्मकुण्ड को सन्तप्त ईंटों से बनाया गया है। यह बावली

१. ख. व्यथितो०।

से अर्धभाग माप वाला है। इसमें फेंके जाते ही पापी संज्ञाहीन हो जाता है। धूम्रान्धकारपूर्ण धूम्रान्ध पातकियों से पूर्ण श्वासबद्ध, १०० धनुष चौड़ा नरक धूम्रान्ध नरक है। नागवेष्ठन कुण्ड में पापीगण को जब फेंका जाता है, वे नागों द्वारा लपेटे जाते हैं। यहां सर्प ही सर्प हैं। एवंविध मैंने प्रधान ८६ संख्यक नरक कुण्डों का वर्णन किया। अब और क्या श्रवणेच्छा है?।।११५-१२१।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण के माहात्म्य का वर्णन, सत्यवान को जीवनदान तथा सावित्री शब्द की व्युत्पत्ति का कथन

सावित्र्युवाच

हरिभक्तिं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम्। त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टो वरो मम॥१॥
किञ्चित्कथय मे धर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्। पुंसां लक्षोद्धारबीजं नरकार्णवतारकम्॥२॥
कारणं मुक्तिकार्याणां सर्वाशुभनिवारणम्। दारणं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारकम्॥३॥
मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासां च लक्षणम्।
हरिभक्तेर्मूर्तिभेदं निषेकस्यापि लक्षणम्॥४॥
तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता। किं तज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर॥५॥

सावित्री कहती हैं–हे देव! मैंने आपकी कृपा से सब सुन लिया तथा सब कुछ प्राप्त कर लिया। अब मैं कोई वर नहीं चाहती। अब आप केवल सर्वश्रेष्ठ, सुदुर्लभ हरिभक्ति प्रदान करिये। हे विभु! जो लाखों पीढ़ी के उद्धार का कारण है, जिससे नरकार्णव से छुटकारा प्राप्त होता है तथा कर्मरूपी वृक्ष का फल नहीं पाना पड़ता (जन्म-मरणरूप चक्र है कर्मवृक्ष का फल, वह नहीं पाना होता), जो सर्व अशुभ निवारक तथा संचित पापपुंज का नाशक है, जो मुक्तिरूपी सारवस्तु का कारण कहा गया है, वह श्रीकृष्ण का गुणकीर्त्तनरूप धर्म किंचित् मुझसे कहें।।१-५।।

सर्वदानं ह्यनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः। अज्ञाने ज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६॥
पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। मातुः शतगुणैः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो॥७॥

समस्त दान, अनशन, तीर्थस्नान, व्रत, तप का फल तो अज्ञानी को ज्ञान देने के फल की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं होता। हे प्रभो! अतः माता तो पिता की अपेक्षा शतगुण गौरवान्विता कही गयी हैं। उन माता से भी गुरु सौ गुना अधिक पूज्य हैं।।६-७।।

यम उवाच

पूर्वं[1] सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वाञ्छितः। अधुना हरिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात्॥८॥
श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्।
वक्तॄणां प्रश्नकर्तॄणां श्रोतॄणां कुलतारकम्॥९॥

यमदेव कहते हैं–हे पुत्री! इससे पहले ही मैंने तुम्हारा वांछित सभी वर तुमको दे दिया। अब कहता हूं कि मेरे वर के प्रभाव से तुम्हारे अन्तः में हरिभक्ति प्रतिष्ठित हो जाये। हे कल्याणी! तुम्हारी जो इच्छा श्रीकृष्ण का गुण–कीर्त्तन सुनने की है, वह तो वक्ता, जिज्ञासु तथा श्रोता के कुल हेतु उद्धारक है।।८-९।।

शेषो वक्त्रसहस्रेण नहि यद्वक्तुमीश्वरः। मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च॥१०॥
धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि।
ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित्॥११॥
कार्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम्।
न गणेशः समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥१२॥
सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च।
कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये॥१३॥

श्रीकृष्ण प्रभु के गुणों का वर्णन सहस्र मुख से शेषनाग, ५ मुखों से मृत्युञ्जय शिव भी करने में असमर्थ हैं। चतुर्वेद धारी तथा जगत् के विधाता चतुर्मुख ब्रह्मा तथा सर्वज्ञ विष्णु, षण्मुख कार्त्तिकेय भी उनके गुणों का वर्णन नहीं कर सकते। जो योगीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरु गणेश हैं, वे भी श्रीकृष्ण के गुणग्राम का वर्णन नहीं कर सकते। यह चारों वेद जो शास्त्रसमूह के सार हैं, वे भी प्रभु कृष्ण के गुणों का एक कला वर्णन नहीं कर सकते। अतः इन विद्वानों की तो बात ही क्या? जो वे प्रभु गुणवर्णन कर सकें!।।१०-१३।।

सरस्वती[2] जडीभूता नालं यद्गुणवर्णने। सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः॥१४॥
सनन्दः कपिलः सूर्यो ये चान्ये ब्रह्मणः सुताः।
विचक्षणा न यद्वक्तुं के वाऽन्ये जडबुद्धयः॥१५॥
न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनीन्द्रा योगिनस्तथा।
के वाऽन्ये च वयं के वा भगवद्गुणवर्णने॥१६॥

जिनके गुणों का प्रयत्नतः वर्णन सरस्वती तक नहीं कर सकतीं, सनत्कुमार, धर्मदेव, सनक,

१. क. अथ पूर्वं व०।
२. ख. ०ती च यत्ने ना०।

सनातन, सनन्दन, कपिल, सूर्य तथा अन्य ब्रह्मपुत्रगण करने में सदा असमर्थ हैं, तब अन्य जड़ बुद्धि वालों की क्या गणना? उन प्रभु के गुणों का वर्णन कर सकने में सिद्ध, मुनीन्द्र, योगीगण असमर्थ रहते हैं, तब उस भगवद्गुणों का वर्णन कर सकने में अन्य कौन समर्थ है?।।१४-१६।।

ध्यायन्ति यत्पदाम्भोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम्॥१७॥
कश्चित्किंचिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं महत्।
अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा [1]ब्रह्मविशारदः॥१८॥
ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः।
सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव च॥१९॥
तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना। अतीव निर्जने रम्ये गोलोके रासमण्डले॥२०॥

जिनके चरणकमलों का ध्यान ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि सदा करते हैं, वे प्रभु भक्तों हेतु सद्यः साध्य हैं। अन्य के लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं। उन देवदेव के महत् गुणों का वर्णन तनिक सा ही लोग कर पाते हैं, तथापि यह ब्रह्मविशारद् ब्रह्मा को ज्ञात है। ब्रह्मा के अतिरिक्त ज्ञानीगण के गुरु गणपति कुछ जानते हैं, तथापि प्रभु के गुणों के सबसे महान् ज्ञाता सर्वज्ञ शंभु ही हैं। प्राक् काल में परमात्मा कृष्ण ने गोलोकस्थ रासमण्डल के निभृत प्रदेश में शिव को यह ज्ञान दिया था।।१७-२०।।

तत्रैव कथितं किञ्चिद्यद्गुणोत्कीर्तनं पुनः।
धर्माय कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम्॥२१॥
धर्मस्तत्कथयामास पुष्करे भास्कराय च। पिता मम यमाराध्य मां प्राप तपसा सति॥२२॥
पूर्वं[2] स्वविषयं चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः। वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते॥२३॥
तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम्। यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम्॥२४॥

तदनन्तर उन्होंने अपने गुण को भी कुछ कहा था। तदनन्तर शिव ने शिवलोक में यह धर्म से कहा था। हे सती! तदनन्तर पुष्करतीर्थ में धर्मदेव ने मेरे पिता भास्कर से श्रीकृष्ण के गुण माहात्म्य का वर्णन किया था। तब सूर्यदेव ने तपस्या द्वारा कृष्ण की आराधना करके मुझे पुत्ररूप में प्राप्त किया। हे सुव्रते! जब मैं किसी भी प्रकार से यमलोक का कार्याधिकार ग्रहण नहीं करना चाह रहा था तथा तपस्यार्थ जाने को उद्यत था, तभी पिता भास्करदेव ने मुझसे श्रीकृष्ण के अत्यन्त दुर्ज्ञेय गुणों का वर्णन किया था। हे वरानने! हे सावित्री! मैं वही कहता हूं। श्रवण करो।।२१-२४।।

तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्य च का कथा।
यथाऽऽकाशो न जानाति स्वान्तमेव वरानने॥२५॥

---
१. ख. ०ह्मसुतादयः।
२. क. पूर्वं च विषयांश्चाहं।

सर्वान्तरात्मा भगवान्सर्वकारणकारणम्। सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्सर्वरूपधृक्॥२६॥

हे सुन्दरी! प्रभु श्रीकृष्ण को स्वयं अपने गुणों की सीमा उसी प्रकार से ज्ञात नहीं है, जैसे आकाश अपनी अंतिम सीमा नहीं जानता। वे प्रभु कृष्ण सबकी अन्तरात्मा, सभी कारणों के भी कारण, सबके ईश्वर, सबके आदि, सर्वज्ञ तथा सर्वरूपधारी हैं।।२५-२६।।

नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः।
निरङ्कुशश्च निःशङ्को निर्गुणश्च निराश्रयः॥२७॥
निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः।
प्रकृतिस्तद्विकारा च प्राकृतास्तद्विकारजाः॥२८॥

स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः। रूपं विधत्तेऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे॥२९॥
अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम्। नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम्॥३०॥
कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोषकलोचनम्॥३१॥

श्रीकृष्ण नित्यरूपी, नित्य देहधारी, नित्यानन्दमय, निराकृति (आकृतिहीन), निरंकुश अर्थात् स्वतन्त्र, शंका रहित, निर्गुण, निराश्रय, निर्लिप्त, सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर हैं। यह प्रकृति उनका ही विकार है। समस्त प्राकृतिक पदार्थ इन प्रकृति के ही विकार हैं। जो स्वयं ही पुरुष-प्रकृति तथा स्वयं प्रकृति से परे भी हैं, जो अरूप होकर भी भक्तों पर कृपालु होकर रूपधारी हैं, वे ही रूपधारी होने पर अतीव कमनीय, सुन्दर तथा मनोहर, किशोर वय वाले, गोपवेशधारी हो जाते हैं। उनका वर्ण नवजलधर के समान श्याम वर्ण है। वह मनोहर रूप करोड़ों कामदेव का आश्रय हैं। वे लीलाधाम, मनोहर हैं। शरद्कालीन मध्याह्न में खिले कमल को भी लज्जित करते उनके नेत्रद्वय हैं।।२७-३१।।

शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभासंशोभिताननम्। अमूल्यरत्नखचितं रत्नाभरणभूषितम्॥३२॥
सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा। परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥३३॥

सुखदृश्यं च शान्तं च राधाकान्तमनन्तकम्।
गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिः[1] समन्ततः॥३४॥
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम्।
वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम्॥३५॥

प्रभु का मुखकमल शरद्कालीन पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की शोभा को पराजित कर रहा है। वे अमूल्य रत्नों से निर्मित आभूषणों से भूषित हैं। ब्रह्मतेज से ज्वलित परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण के मुख पर मन्द मुस्कान तथा अंग पर अमूल्य पीतवर्ण वस्त्र शोभायमान हो रहा है। प्रभु की मूर्त्ति शान्त एवं देखने में सुखकारी है। कोई भी इन राधाकान्त का अन्त नहीं पा सकता। उनके चारों ओर मुस्कराती हुई

१. क. ०भिश्च शाश्वतम्।

गोपियां निरन्तर उनका दर्शन करती रहती हैं। प्रभु द्विभुज हैं। वे रासमण्डलस्थ रत्नसिंहासन पर आसीन, विशुद्ध वनमाला से भूषित हैं। इस प्रकार से सज्जित वेशधारी श्रीकृष्ण सतत् वंशीवादन कर रहे हैं।।३२-३५।।

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण सुन्दरं वक्षसोज्ज्वलम्। कुङ्कुमागरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम्।।३६।।
चारुचम्पकमालाब्जमालतीमाल्यमण्डितम्। चारुचम्पकशोभाढ्यचूडावक्रिमराजितम्।।३७।।
ध्यायन्ति चैवंभूतं वै भक्ता भक्तिपरिप्लुताः।
यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च।।३८।।
करोति लेखनं कर्मानुरूपं [१]सर्वकर्मणाम्। तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया।।३९।।
विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम्।
कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात्।।४०।।
शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः।
यज्ज्ञानदानात्सिद्धेशो योगीशः सर्ववित्स्वयम्।।४१।।
परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः। यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरः शीघ्रगामिनाम्।।४२।।

भगवान् के सुन्दर वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि शोभायमान है। इससे उनका वक्षःस्थल उज्ज्वल लग रहा है। उनका विग्रह कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी के द्वारा लिप्त है। इन प्रभु के घुंघराले केशपाश उत्तम चम्पा, कमल तथा मालती पुष्पों की माला से सुशोभित हैं। भक्तिरस से आप्लुत भक्तगण अत्यन्त भक्तिभाव के साथ श्रीकृष्ण का ऐसा ध्यान करते रहते हैं। जिनके शासन के भय से भीत विधाता इस जगत् की सृष्टि करते हैं तथा जिनकी आज्ञा के अनुसार लोगों को तपः का फल एवं कर्मफल ब्रह्मा प्रदान करते हैं, जिनके भय से विष्णु सतत् जगत् का रक्षण करते हैं, जिनकी आज्ञा से कालाग्नि रुद्र विश्वसंहार कार्य में नियुक्त रहते हैं, जिनसे ज्ञान पाकर शिव मृत्युंजय तथा ज्ञानीगण के गुरुओं के भी गुरु हैं तथा जिनकी कृपा से वे सिद्धेश्वर, योगीश्वर होकर सदा परमानन्द में निमग्न रहते हैं, सदा वैराग्य एवं भक्तिभाव में लीन रहते हैं, जिनकी कृपा से वायुदेव शीघ्रगामी लोगों के समूह में श्रेष्ठतम माने जाते हैं तथा सतत् गमनशील रहते हैं।।३६-४२।।

तपनश्च प्रतपति यद्भयात्संततं सति। यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु।।४३।।
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेव सुशीलतम्। दिशो रक्षन्ति दिक्पाला [२]महाभीता यदाज्ञया।।४४।।
भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहा वै यद्भयेन च।
भयात्फलन्ति वृक्षाश्च पुष्पन्त्यपि च यद्भयात्।।४५।।

---

१. ख. ०र्वदेहिनाम्।
२. क. मही पाति य०।

भयात्फलानि पक्वानि निष्फलास्तरवो भयात्।
यदाज्ञया स्थलस्थाश्च न जीवन्ति जलेषु च॥४६॥

हे सती! जिनके शासनभय के कारण सूर्यदेव सतत् जगत् को ताप प्रदान करते हैं, जिनकी आज्ञा से इन्द्र समयानुरूप वर्षा करते हैं तथा मृत्यु प्राणीगण में सतत् विचरण करती है, जिनकी आज्ञा से अग्नि में दाहिका शक्ति तथा जल में शीतलता है, जिनकी आज्ञा से भयभीत होकर दिक्पाल लोग सभी दिशा की रक्षा करते हैं, जिन परमेश्वर के भय से राशिचक्र तथा ग्रहगण सतत् भ्रमणरत रहते हैं तथा वृक्षगण फलित एवं पुष्पित होते रहते हैं, जिनके भय से फल पकते हैं तथा बहुत से वृक्ष फल रहित हो जाते हैं, जिनकी आज्ञा से थलचर जीवगण जल में जीवित नहीं रह पाते।।४३-४६।।

तथा स्थले जलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया।
अहं नियमकर्ता च धर्माधर्मे च यद्भयात्॥४७॥
कालश्च कलयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाज्ञया। अकाले न हरेत्कालो मृत्युर्वै यद्भयेन च॥४८॥
ज्वलदग्नौ पतन्तं च गभीरे च जलार्णवे।
वृक्षाग्रात्तीक्ष्णखड्गे च सर्पादीनां मुखेषु च॥४९॥
नानाशस्त्राविद्धं च रणेषु विषमेषु च। पुष्पचन्दनतल्पे च बन्धुर्वैश्च रक्षितम्॥५०॥
शयानं तन्त्रमन्त्रैश्च काले कालो हरेद्भयात्।
धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं यदाज्ञया॥५१॥

जिनकी आज्ञा से जलचर प्राणी स्थल पर आकर जीवन रहित हो जाते हैं, जिनके भय से मैं यम धर्माधर्म का नियमकर्त्ता हो गया हूं, जिन जगदीश्वर की आज्ञा से काल निरन्तर संचारित रहता संहार कार्य में नियुक्त रहता है, जिनके भय से काल तथा मृत्यु कदापि समयपूर्व किसी को आक्रान्त नहीं कर सकते, यहां तक कि जीवगण प्रज्वलन्त अग्नि में, गहरे सागर में, वृक्ष की चोंटी से गिरने पर, विषम भयानक रणांगण में शस्त्रास्त्रों से विद्ध होकर, तीक्ष्ण तलवार की धार पर गिर कर, सर्पादि द्वारा डसे जाकर भी अकाल में मृत्यु तथा काल से ग्रस्त नहीं होते। (यदि मृत्युकाल उस समय निश्चित नहीं है, तब इतने पर भी नहीं मरते) यह सब उन परमेश्वर के भय से ही संचालित होते हैं। जिन प्रभु के भय के कारण काल बन्धुगण द्वारा रक्षित, चन्दन पुष्प से सजी शैय्या पर तन्त्र-मन्त्र से रक्षित लेटे व्यक्ति को भी मरण काल आ जाने पर जीवित नहीं छोड़ता, जिनकी आज्ञा से वायु जल को धारण करता है तथा जल कूर्म (कच्छप) को धारण करते हैं।।४७-५१।।

कूर्मोऽनन्तं स च क्षोणीं समुद्रान्सप्त पर्वतान्।
[1]सर्वांश्चैव क्षमारूपो नानारूपं बिभर्ति सः॥५२॥

१. क. ०र्वांश्च रक्षमाणो यो ना०।

जिनकी आज्ञा से कूर्म अनन्त शेषनाग को धारण करते हैं, शेषनाग पृथिवी को धारण करते हैं, पृथिवी सप्त सागर, सप्त पर्वत तथा सभी को नाना रूप में धारण करती है।।५२।।

यतः सर्वाणि भूतानि लीयन्तेऽन्ते च तत्र वै।
इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः।।५३।।
अष्टाविंशच्छक्रपाते ब्रह्मणः स्यादहर्निशम्।
षष्ट्याऽधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ।।५४।।
युगे नराणां शक्रायुरेवं संख्याविदो विदुः।
एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यां ताभ्यामृतुः स्मृतः।।५५।।
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं शताब्दं ब्रह्मणो वयः। ब्रह्मणश्च निपाते वै चक्षुरुन्मीलनं हरेः।।५६।।
चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः। प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः।।५७।।

अन्त में उन प्रभु में ही सब कुछ प्रविलीन हो जाता है। इन्द्र की आयु ७१ दिव्ययुग कही गयी है। २८ इन्द्रों का जीवनकाल ब्रह्मा का एक अहोरात्र (१ दिन-रात) है। मनुष्यों के २५५६० युगकाल तक एक इन्द्र की आयु है। यह गणनाकारों का मत है। ३० दिन का १ मास, दो मास का १ ऋतु, छः ऋतु का एक वर्ष होता है। जिस मान से ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष कही गई है, वह १०० वर्ष (ब्रह्मा की आयुमान से) विष्णु का एक निमेष मात्र है। विद्वान् कहते हैं कि विष्णु का पलक झपकना ही प्राकृतिक लय है। इसमें देवादि सचराचर का लय हो जाता है।।५३-५७।।

लीना धातरि धाता च श्रीकृष्णे नाभिपङ्कजे।
विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः।।५८।।

अर्थात् विष्णु के पलक झपकते ही एक ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है। ब्रह्मा की पूर्ण आयु विष्णु का एक निमेष मात्र है। ब्रह्मा के लय के साथ ही सचराचर सृष्ट जगत् ब्रह्मा में लीन हो जाता है। तब ब्रह्मा भी श्रीकृष्ण के नाभिकमल में लीन हो जाते हैं। विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं। वे वैकुण्ठ में चतुर्भुज रहते हैं।।५८।।

विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः।
इन्द्राद्या[1] भैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः।।५९।।
शिवाधारे शिवे लीना ज्ञानानन्दे सनातने।
ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चाऽत्मनः।।६०।।
तस्य ज्ञाने विलीनश्च बभूवाथ क्षणं हरेः।
दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः।।६१।।

१. ख. रुद्रा०।

सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता।
नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च॥६२॥
श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः।
पद्मांशभूता पद्मायां सा राधायां च सुव्रते॥६३॥

वे भी परमात्मा कृष्ण के वाम पार्श्व में विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार रुद्र, भैरवादि शिव के समस्त अनुचर लोग मंगलाधार, ज्ञानानंदपूर्ण सनातन शिव में लीन हो जाते हैं। ये ज्ञानाधिष्ठाता महादेव भी परमात्मा कृष्ण के ज्ञान में लीन हो जाते हैं। इस समस्त घटनाचक्र का घटित होना कृष्ण के क्षणकाल में संभव होता है। इस समय विष्णुमाया भगवती दुर्गा में सभी शक्तियां विलीन हो जाती हैं तथा बुद्धि की अधिष्ठातृ देवी दुर्गा का लय श्रीकृष्ण की बुद्धि में हो जाता है। नारायण के अंश कार्त्तिकेय स्कन्द का लय उनके वक्ष में होता है। देवगण के अधीश्वर गणेश प्रभु की बाहु में लीन हो जाते हैं। हे सुव्रते! उस काल में पद्मा का अंश पद्मा में लीन होकर पद्मा का लय राधा में हो जाता है।।५९-६३।।

गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वा वै देवयोषितः।
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु सा स्थिता॥६४॥
सावित्री च सरस्वत्यां वेदशास्त्राणि यानि च।
स्थिता वाणी च जिह्वायां तस्यैव परमात्मनः॥६५॥
गोलोकस्थस्य गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु।
तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनः॥६६॥
जठराग्नौ विलीनश्च जलं तद्रसनाग्रतः। वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः॥६७॥

गोपीगण, समस्त देवस्त्रियां राधिका में लीन हो जाती हैं। अब श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी राधा भी कृष्ण के प्राण में लीन हो जाती हैं। सावित्री देवी, समस्त वेद-शास्त्र सरस्वती देवी में लीन होते हैं। सरस्वती देवी तब परमात्मा श्रीकृष्ण की जिह्वा में स्थित रहती हैं। गोलोक के जितने गोप हैं, वे कृष्ण की रोमावलि में लीन हो जाते हैं। सबकी प्राणवायु कृष्ण के प्राणों में, अग्निदेव कृष्ण की जठराग्नि में, जल कृष्ण के रसनाग्र भाग में विलीन हो जाता है। वैष्णवगण परम आनन्द के साथ भक्तिरसरूप अमृत का पान करते कृष्ण के चरणकमल में अवस्थान करने लगते हैं।।६४-६७।।

सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः। विराट्क्षुद्रश्च महति लीनः कृष्णे महान्विराट्॥६८॥
यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।
यस्य चक्षुर्निमेषेण महांश्च प्रलयो भवेत्॥६९॥
चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव परमात्मनः। यावन्निमेषे सृष्टिः स्यात्तावदुन्मीलने व्ययः॥७०॥

तत्पश्चात् क्षुद्रविराट् मूर्त्ति महान् कृष्ण में लीन हो जाती है। तब महान् विराट् कृष्ण के लोमकूपों में समग्र विश्व स्थित रहता है। भगवान् के पलक झपकते (बन्द होते ही) प्रलय तथा पलक

खुलते ही सृष्टि हो जाती है। इनका एक निमेष उन्मेष काल ही ब्रह्मा की पूर्ण आयु है। इस एक निमेष उन्मेष काल में ब्रह्मा के १०० वर्ष पूर्ण हो जाते हैं। तब सृष्टि लय दोनों इतने ही समय में हो जाता है, जो भगवान् का एक पलक झपकाने-खोलने का काल है! इस उन्मेष-निमेष में जब प्रभु की पलक बन्द होती है तभी महाप्रलय तथा जैसे ही पलक खुलती है सृष्टि हो जाती है। पलक बंद होते ही समस्त सृष्टि प्रभु में सुरक्षित हो जाती है। उनकी पलकें खुलते ही समस्त सृष्टि बहिर्गत् हो जाती है!।।६८-७०।।

ब्रह्मणश्च शताब्देन सृष्टिस्तत्र लयः पुनः। ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते।।७१।।
यथा भूरजसां चैव संख्यानं च निशामय। चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः।।७२।।
उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया। तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः।।७३।।

हे सुव्रते! ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु पूर्ण होते ही सृष्टिलय होता है। ब्रह्मसृष्टि तथा लय की संख्या की गणना हो नहीं सकती! जैसे भूमि के धूलिकण की कोई संख्या नहीं है, तदनुरूप सृष्टि तथा लय आदि असंख्य हैं। जिन सर्वान्तरात्मा प्रभु के पलकों के झपकते ही प्रलय तथा उनकी इच्छा से पलक खुलते ही सृष्टि होती है, ऐसे प्रभु के गुणों को समस्त ब्रह्माण्डों में भी कौन जान सकता है?।।७१-७३।।

यथा श्रुतं तातवक्त्रातथोक्तं च यथागमम्। मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः।।७४।।
तत्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी। सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदाऽपरा।।७५।।

हे सुव्रते! मैंने अपने पिता सूर्यदेव से जो हरि महिमा श्रवण किया था, वह कह दिया। सभी प्रकार की मुक्ति से जो चतुर्धा है, भक्ति ही अधिक श्रेष्ठ तथा गौरवयुक्त है। एक मुक्ति हरि सालोक्यप्रदा है, अन्य मुक्ति हरि का सारूप्य प्रदान करती है।।७४-७५।।

सामीप्यदा च निर्वाणदात्री चैवमिति स्मृतिः।
भक्तास्ता नहि वाञ्छन्ति विना तत्सेवनादिकम्।।७६।।
सिद्धत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया। जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डनम्।।७७।।
धारणं दिव्यरूपस्य विदुर्निर्वाणमोक्षदम्।
मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्द्धिनी।।७८।।

तृतीय मुक्ति में हरि का सामीप्य तो चतुर्थ मुक्ति में हरि का सायुज्य लाभ होता है, तथापि भक्तगण इन चारों मुक्ति की प्रार्थना नहीं करते। वे केवल हरि सेवा की ही याचना करते हैं। भक्तों द्वारा तो सिद्धत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व तक की भी अवहेलना, उपेक्षा कर दी जाती है। भक्तों का जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-भय-शोकादि सब कुछ नष्ट हो जाता है। वे सेवाबल से अनायास दिव्य रूप धारण करके निर्वाण मुक्ति तक प्राप्त कर लेते हैं। ये चारों मुक्ति जिनका उल्लेख मैंने किया, वे सभी सेवा रहित हैं। भक्ति तो सेवा की वृद्धि करने वाली है।।७६-७८।।

भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकलक्षणं शृणु। विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम्।।७९।।

तत्खण्डनं च शुभदं परं श्रीकृष्णसेवनम्।
तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारं वै लोकवेदयोः॥८०॥

यही मुक्ति तथा भक्ति के बीच का भेद है। अब निषेक लक्षण श्रवण करो। बुद्धिमान् लोगों ने कृतकर्म के भोग को ही निषेक कहा है। इस निषेक का खण्डन शुभप्रद हरि सेवा से ही होता है। हे साध्वी! हरि सेवा के प्रति जो अनुरक्ति है, वही वास्तविक तत्त्वज्ञान है। समस्त लौकिक तथा वैदिक कर्मों का वही सार पदार्थ है।।७९-८०।।

विघ्नघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम्।
इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम्॥८१॥
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः।
दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य च॥८२॥
रुरोद चरणे धृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः।
सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमः सोऽयं कृपानिधिः॥८३॥
तामित्युवाच संतुष्टस्त्वरोदीच्चापि नारद॥८४॥

"मैंने तुमसे यह सर्व विघ्नविनाशक प्रसंग कह दिया। यह शुभप्रद हरि महिमा कीर्त्तन है। हे पुत्री! अब तुम यहां से सुख पूर्वक जाओ।" यह कहकर सूर्यनन्दन यम ने सावित्री के पति को जीवनदान दे दिया। तदनन्तर जैसे ही वे शुभ आशीर्वाद देकर वहां से जाने लगे, तब सावित्री ने यम को प्रणाम किया तथा उनके चरणों को पकड़ कर रोने लगी। सज्जनों का वियोग अत्यन्त दुःखदायी होता है। हे नारद! कृपानिधान यम सावित्री का रोना देख कर स्वयं भी रोने लगे। यम ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा-।।८१-८४।।

यम उवाच

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते।
अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं शुभे॥८५॥
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु। द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम्॥८६॥
ज्येष्ठे शुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं कुरु।
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या व्रतं तथा॥८७॥
[1]द्व्यष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च। करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम्॥८८॥

यमदेव कहते हैं-हे शुभे! अब गृह जाकर सावित्री व्रत करो। तुम पुण्यभूमि भारत में १ लाख वर्ष तक सुखभोग करो। तदनन्तर गोलोक प्राप्त करोगी। नारीगण यह सावित्री व्रत १४ वर्ष तक करके

---

१. क. अष्ट०।

मोक्षलाभ करती हैं। ज्येष्ठमासीय कृष्णा चतुर्दशी के दिन सावित्री व्रत तथा भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन महालक्ष्मी व्रत करना चाहिये। जो नारी १६ वर्ष पर्यन्त प्रतिवर्ष इस तिथि पर शुक्लाष्टमी से लेकर पक्षान्त पर्यन्त महालक्ष्मी व्रताचरण करती है, वह वैकुण्ठगामिनी होती है। उसे हरिपद प्राप्त होता है।।८५-८८।।

प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलचण्डिकाम्।
प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिकाम्।।८९।।
तथा चाऽऽषाढसंक्रान्त्यां मनसा सर्वसिद्धिदाम्।
राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकां प्रियाम्।।९०।।
उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासे वरप्रदाम्।
विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।।९१।।
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीषु च। पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च।।९२।।
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसंतानहेतवे।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्।।९३।।

जो स्त्री धन तथा सन्तानकामिनी होकर प्रति मंगलवार को देवी मंगलचण्डिका का व्रत तथा प्रति मास की शुक्ला षष्ठी के दिन मंगलप्रदा षष्ठी का व्रत और आषाढ़ी संक्रान्ति के दिन सर्वसिद्धिप्रदा मनसा देवी का, कार्त्तिकमासीय संक्रान्ति तथा पूर्णिमा तिथि पर कृष्णप्राणाधिका राधा का व्रत करती है, प्रति मासीय शुक्लाष्टमी को उपवासी रहती विष्णुमाया देवी दुर्गा की भक्तिभाव से अर्चना करती है, वह देवी वरप्रदा, दुर्गतिनाशिनी, प्रकृति स्वरूपा जगत्जननी, पति-पुत्र समन्वित पतिव्रताओं के समूह में प्रथम अग्रगण्य सती हैं, इनकी प्रतिमा अथवा यन्त्र में पूजा करे। ऐसी नारी यावत् जीवन मृत्युलोक में सुखोपभोग करके सर्वान्त में श्रीहरिलोक जाती है।।८९-९३।।

इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम्।
गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम्।।९४।।
सावित्री सत्यवन्तं च वृत्तान्तं च यथाक्रमम्।
अन्यांश्च कथयामास बान्धवांश्चैव नारद।।९५।।
सावित्रीजनकः पुत्रान्स प्रापद्वै क्रमेण च। श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान्वरेण च।।९६।।

यह उपदेश देकर धर्मराज अपने लोक चले गये। सावित्री भी अपने पति के साथ स्वगृह चली गई! सावित्री ने स्वगृह जाकर समस्त घटनाक्रम बान्धवों से कहा। तत्पश्चात् सावित्री के पिता ने वांछित पुत्रलाभ किया। सावित्री के श्वसुर ने अपना नेत्र, अपना राज्य तथा १०० पुत्र प्राप्त किया।।९४-९६।।

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते।
जगाम स्वामिना सार्धं गोलोकं सा पतिव्रता।।९७।।

सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता।
सावित्री चापि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता॥९८॥
इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम्।
जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० सावित्र्या यमोपदेशसमाप्तिर्नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

सावित्री ने पति सहित एक लाख वर्ष पर्यन्त पुण्यभूमि भारत में सुखभोग किया तदनन्तर यह पतिव्रता स्वामी के साथ गोलोक चली गई। सावित्री देवी सूर्य के मन्त्रों की अधिष्ठातृ देवता हैं। वे सावित्री हैं। वे वेदों का प्रसव करने वाली हैं। इसी कारण इनका नाम सावित्री है। हे वत्स! मैंने तुमसे सावित्री देवी का उत्तम उपाख्यान तथा प्राणीगण का कर्मविपाक कहा। पुनः क्या श्रवणेच्छा है?।।९७-९९।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्मी का स्वरूप वर्णन, पूजनादि विधि का वर्णन

नारद उवाच

श्रीकृष्णस्याऽऽत्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः। सावित्रीयमसंवादे श्रुतं सुविमलं यशः॥१॥
तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मङ्गलानां च मङ्गलम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर[1]॥२॥
केनाऽऽदौ पूजिता साऽपि किंभूता केन[2] वा पुरा।
तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं वद वेदविदां वर॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मैंने सावित्री-यम संवादान्तर्गत् निराकार, निर्गुण, आत्मरूप, अति उत्तम विमल यश आपसे सुना। उनका गुणकीर्त्तन तो मंगलों का भी मंगल तथा सत्यरूप है। अब मैं लक्ष्मी का उपाख्यान सुनना चाहता हूं। हे प्रभो! आदिकाल में उनकी पूजा किसके द्वारा की गयी? उनका

१. क. ०नमुत्तमम्।
२. क. संस्तुता।

अवतरण किस रूप में हुआ था? हे वेदज्ञप्रवर! कृपया उनके गुणों का वर्णन करिये। क्योंकि जगत् में वही सत्यरूप हैं।।१-३।।

नारायण उवाच

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः। देवी वामांशसंभूता चाऽऽसीत्सा रासमण्डले।।४।।
अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला। यथा द्वादशवर्षीया रम्या सुस्थिरयौवना।।५।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पूर्व सृष्टिकाल में रासमण्डलस्थ परमात्मा कृष्ण के वाम भाग से लक्ष्मी देवी उत्पन्न हो गईं। वे अत्यन्त सुन्दरी, तप्त स्वर्णवर्ण वाली थीं। उनके अंग शीतकाल में सुखप्रद उष्ण तथा ग्रीष्मकाल में सुखप्रद शीतल रहा करते थे। उनका कटि प्रदेश क्षीण था। स्तनद्वय कठोर थे। नितम्ब अत्यन्त विशाल था। ये उस समय स्थिरयौवना एवं द्वादशवर्षीया लगती थीं।।४-५।।

श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा। शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभासंशोभिताननना।।६।।
शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभाशोभितलोचना। सा च देवी द्विधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया।।७।।
समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा। यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च।।८।।
स्मितेन वीक्षणेनैव वचसा गमनेन च। मधुरेण स्वरेणैव [1]नयेनानुनयेन च।।९।।

इन कामिनी भगवती की देहच्छवि श्वेत चम्पा पुष्प के समान, मुखमण्डल की छवि शारदीय पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा के समान थी, जो पूर्ण चन्द्र को भी लज्जित करने वाली थी। इन देवी के नेत्रद्वय शरत्कालीन मध्याह्न में खिले पद्म को भी तिरस्कृत करने वाले थे। ये देवी उत्पन्न होते ही पारमेश्वरी इच्छा के कारण भागद्वय में विभक्त हो गईं! ये दोनों मूर्त्ति रूप-वर्ण-तेज-गुण-वय-देखने में, वाणी से, चलने-फिरने में, भूषण, स्वर की मधुरता में, नीति एवं अनुनय (विनय) में समान ही थीं। (नीति-अनुनय = व्यवहार कौशल्य) वे कान्ति, यश, मुस्कान, आंखों के भाव में भी समान थीं।।६-९।।

तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशा च राधिका।
राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम्।।१०।।
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चक्रमे कमनीयकम्। कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह।।११।।

वाम भाग से प्रकटिता देवी थीं लक्ष्मी, दक्षिणांग सम्भूता थीं राधा। राधा ने आविर्भूत होते ही द्विभुज परमात्मा कृष्ण की कामना किया। तदनन्तर लक्ष्मी ने भी इन कमनीय कृष्ण की कामना किया। तब कृष्ण ने भी दोनों की अभिलाषा पूरणार्थ दो रूप धारण किया। इन दोनों के गौरवार्थ कृष्ण भी द्विधा प्रकट हो गये।।१०-११।।

दक्षिणांशो वै द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ [2]पुरा।।१२।।

---

१. क. प्रेम्णा चानु।
२. क. ०दौ मुदा।

लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययाऽनिशम्।
देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता॥१३॥

कृष्ण का दक्षिणांश द्विभुज तथा वामांश चतुर्भुज था। द्विभुज श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम महालक्ष्मी को चतुर्भुज विष्णु प्रदान कर दिया था। महालक्ष्मी स्निग्ध दृष्टि से समग्र विश्व का अवलोकन करती हैं। ये समस्त देवीगण में महान् महालक्ष्मी हैं।।१२-१३।।

द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः।
गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह। सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णानारायणौ परौ॥१५॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमाऽपरा॥१६॥

राधिकाकान्त द्विभुज हैं। लक्ष्मीकान्त चार भुजा वाले हैं। गोलोक में श्रीकृष्ण गोपीगण एवं गोपगण से घिरे हुए रहते हैं। तदनन्तर चतुर्भुज प्रभु ने लक्ष्मी (पद्मा) के साथ वैकुण्ठलोक प्रस्थान किया। कृष्ण तथा नारायण ये दोनों सर्वांश में समान ही हैं। अब महालक्ष्मी योग द्वारा नाना रूपा हो गईं। वे वैकुण्ठ में परिपूर्णतमा तथा परा रूपा (श्रेष्ठा) हैं।।१४-१६।।

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता।
प्रेम्णा सा वै प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च॥१७॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसंपत्स्वरूपिणी।
पातालेषु च मर्त्येषु राजलक्ष्मीश्च राजसु॥१८॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणी च कलांशया। संपत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला॥१९॥

देवी महालक्ष्मी शुद्ध सत्वरूपा तथा सर्व सौभाग्ययुता होकर वैकुण्ठ में स्थित हैं। वे प्रेमप्रधान तथा समस्त नारीगण में प्रधान हैं। वे स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी रूपा तथा इन्द्र की सम्पदारूपा हैं। वे पाताल एवं मर्त्यलोक में राजाओं की राज्यलक्ष्मी हैं। गृहस्थों में वे गृहलक्ष्मी तथा अपने कलांश से गृहिणी हैं। वे गृहस्थ लोगों की सम्पत्तिरूपा तथा सभी मंगल का भी मंगल करने वाली हैं।।१७-१९।।

गवां प्रसूः सा सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी।
क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च॥२०॥
शोभारूपा च चन्द्रे सा सूर्यमण्डलमण्डिता। विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु[१] जलजेषु च॥२१॥
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च। सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थाने सा संस्कृते तथा॥२२॥
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च। माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा॥२३॥

---

१. क. ०षु च जलेषु च।

मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरे वै चन्दनेषु च। वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु॥२४॥

वे ही महालक्ष्मी गौओं की माता सुरभि, यज्ञकामिनी दक्षिणा हैं। वे क्षीरसागर की पुत्री सिन्धुकन्या कमला हैं। वे ही पद्मिनियों में श्रीरूपा हैं। वे चन्द्र की शोभारूपा एवं सूर्यमण्डल मण्डिता हैं। वे ही भूषणों, रत्नों, फलों, जलज (कमल), राजा, राजपत्नी, दिव्य स्त्रियों, नाना गृहों, सभी फसलों, वस्त्रों, संस्कृत स्थलों, प्रतिमाओं, देवताओं, मंगलघटों, मणि-माणिक्यों, मुक्ताओं, मनोहर मालाओं, श्रेष्ठ मणियों, हार, क्षीर (दूध), चंदन, रम्य वृक्ष शाखाओं, नव मेघों तथा वस्तुओं में सुन्दरता (सौन्दर्य) रूप से अवस्थित रहती हैं।।२०-२४।।

वैकुण्ठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च।
द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शङ्करेण च॥२५॥

विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने। स्वायंभुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः॥२६॥
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे। गन्धर्वाद्यैश्च नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता॥२७॥

हे मुनिवर! सर्वाग्र में वैकुण्ठ में नारायण ने, दूसरी बार भक्ति पूर्वक ब्रह्मा ने, तीसरी बार शंकर ने इन देवी की पूजा किया था। हे मुनि! तदनन्तर क्षीरसागर में विष्णु ने, भारत में स्वायम्भुव मनु ने, ऋषियों-मुनियों ने, साधु गृहस्थगण ने, गन्धर्वादि सभी ने, पाताल में नागों ने यथाक्रमेण इनकी पूजा किया था।।२५-२७।।

शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे पूजा वै ब्रह्मणा कृता।
भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषु नारद॥२८॥
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे।
विष्णुना निर्मिता पूजा त्रिषु लोकेषु भक्तितः॥२९॥

भाद्रमासीय शुक्लाष्टमी को इनकी पूजा ब्रह्मा ने किया था। हे नारद! उन्होंने भक्ति पूर्वक एक पक्ष तक इनकी पूजा किया! चैत्र, पौष, भाद्रमासीय पुण्यमय मंगलवार के दिन इनकी भक्ति पूर्वक पूजा का परमोत्तम दिन भगवान् विष्णु ने त्रैलोक्य में कहा है।।२८-२९।।

वर्षान्ते पौषसंक्रान्त्यां मेध्यामावाह्य[1] चाङ्गणे।
मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये॥३०॥

राज्ञा संपूजिता सा वै मङ्गलेनैव मङ्गला। केदारेणैव नीलेन नलेन[2] सुबलेन च॥३१॥
ध्रुवेणौत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा। कश्यपेन च दक्षेण[3] मनुना च विवस्वता॥३२॥

---

१. आरोप्य इति वा पाठः।
२. वीरेण बलेनेति च पाठः।
३. क. ०ण कर्दमेन वि०।

प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना। यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता॥३३॥
एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दिता पूजिता सदा। सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० लक्ष्मीस्वरूपपूजादिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

मनु ने वर्षान्त में पौष मास की संक्रान्ति के दिन प्रांगण में इन देवी का आवाहन करके इनकी जो पूजा किया था, वही त्रैलोक्य में प्रचलित हो गई। तदनन्तर राजा मंगल ने इन मंगला भगवती की पूजा किया था। तदनन्तर केदार, नील, नल, सुबल, उत्तानपाद, ध्रुव, इन्द्र, बलिराज, कश्यप, दक्ष, वैवस्वत मनु, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि, वरुण ने इनकी पूजा किया। ये सर्वत्र सबके द्वारा वन्दनीया तथा पूजिता हैं। ये सर्वसम्पदारूप तथा समस्त ऐश्वर्य की अधिदेवता भी हैं॥३०-३४॥

॥पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्र को दुर्वासा का शाप, श्रीभ्रष्ट इन्द्र को दुर्वासा से ज्ञान एवं वर प्राप्ति

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी। वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी॥१॥
कथं बभूव स देवी पृथिव्यां सिन्धुकन्यका।
किं तद्ध्यानं च[१] कवचं सर्वं पूजाविधिक्रमम्॥२॥
पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वैकुण्ठ की अधिष्ठात्री देवी वैकुण्ठवासिनी सनातनी नारायणप्रिया महालक्ष्मी पृथिवी पर सिन्धुकन्या रूप में कैसे उत्पन्न हो गई? उनका ध्यान-कवच-पूजाविधि क्या है? किस प्रकार किसने उनका सर्वप्रथम स्तव किया था? कृपया यह सब कहिये॥१-३॥

नारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीकः पुरंदरः। बभूव देवसङ्घश्च मर्त्यलोकश्च नारद॥४॥

१. क. च स्तवनं स०।

लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिताः।
गत्वा लीना च वैकुण्ठे महालक्ष्म्यां च नारद॥५॥
तथा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणः सभाम्। ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च॥६॥
वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे। अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः॥७॥
तदा लक्ष्मीश्च कलया पुरा नारायणाज्ञया। बभूव सिन्धुकन्या सा शक्रसंपत्स्वरूपिणी॥८॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं– पूर्वकाल में दुर्वासा मुनि के शाप द्वारा देवराज, देवता लोग तथा मर्त्यलोक वासी मनुष्य सभी श्रीभ्रष्ट हो गये। भगवती लक्ष्मी भी अतीव रुष्ट होकर दुःखी मन से स्वर्गादि त्याग कर वैकुण्ठलोक गईं तथा वहां महालक्ष्मी में लीन हो गईं। उस समय शोकसन्तप्त हृदय से दुःखी देवता ब्रह्मसभा में गये और ब्रह्मा को आगे रख कर वे लोग वैकुण्ठ जाकर परात्पर प्रभु नारायण के शरणापन्न हो गये। तभी अतिशय कातरता के चलते देवताओं का कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गया था। तभी इन्द्र की सम्पत् स्वरूपा लक्ष्मी नारायणी आज्ञा के कारण अपने अंश से सिन्धु (सागर) कन्या के रूप में उत्पन्न हो गयीं।।४-८।।

तदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह। संप्रापुश्च वरं लक्ष्म्या ददृशुस्तां च तत्र हि॥९॥
सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे। ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने॥१०॥
देवाश्चाप्यसुराक्रान्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात्। तां संपूज्य च संस्तूय सर्वत्र च निरापदः॥११॥

उस समय देवगण ने दैत्यों के साथ क्षीरसागर का मंथन किया था। इस मंथन से देवगण को लक्ष्मी का दर्शन तथा वर भी मिला। लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर देवताओं को वर प्रदान किया तथा उन्होंने क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु का वरण प्रसन्नता के साथ वरमाला पहना कर किया। देवी लक्ष्मी के वरदान द्वारा देवगण को असुरों द्वारा अपहृत अपना स्वर्गराज्य पुनः मिला। उन देवताओं ने देवी लक्ष्मी की पूजा तथा स्तुति किया और पूर्णतः निरापद हो गये।।९-११।।

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरंदरम्। केन दोषेण वा ब्रह्मन्ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवित्पुरा॥१२॥
ममन्थे केन रूपेण जलधिस्तैः सुरादिभिः।
केन स्तोत्रेण सा देवी शक्रे साक्षाद्बभूव ह॥१३॥
को वा तयोश्च संवादो ह्यभवत्तद्वद प्रभो॥१४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे ब्रह्मन्! पूर्व में ब्रह्मज्ञ मुनिप्रवर दुर्वासा ने किस दोष से ब्राह्मणों के भक्त इन्द्र को क्यों शाप दिया था? हे प्रभो! देवगण ने किस प्रकार से समुद्रमन्थन करके किस स्तोत्र द्वारा स्तुति किया, जिससे वे लक्ष्मी का साक्षात् दर्शन पा सके? हे प्रभो! उन दोनों का क्या संवाद आपस में हुआ था? कृपया कहिये।।१२-१४।।

नारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा। क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः॥१५॥
कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतचेतनः।
तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः॥१६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–एक बार त्रैलोक्य के अधीश्वर इन्द्र देव मधुपान से प्रमत्त होकर अप्सरा रम्भा के साथ क्रीड़ारत थे। उस समय उनका चित्त रम्भा ने हर लिया था। वे काम से उन्मत्त तथा मथित चित्त द्वारा महान् अरण्य में अवस्थित थे।।१५-१६।।

कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठादृषिपुङ्गवम्। दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥१७॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम्। प्रतप्तकाञ्चनाभासं जटाभारमहोज्ज्वलम्॥१८॥
शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरं दण्डं कमण्डलुम्।
महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चन्द्रसंनिभम्॥१९॥
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। दृष्ट्वा ननाम शिरसा संभ्रमात्तं पुरंदरः॥२०॥
शिष्यवर्गं स भक्त्या वै तुष्टाव च मुदाऽन्वितः।
मुनिना च सशिष्येण तस्मै दत्ताः शुभाशिषः॥२१॥
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम्। मृत्युरोगजराशोकहरं मोक्षकरं ददौ॥२२॥

तभी इन्द्र ने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित ऋषिप्रवर दुर्वासा को वैकुण्ठ से कैलास शिखर जाते देखा। उन प्रभु की देहप्रभा मध्याह्नकालीन मार्त्तण्ड के समान थी। वे प्रतप्त स्वर्ण जैसे वर्ण के जटाभार से शोभायमान थे। उन्होंने शुक्लवर्ण का यज्ञोपवीत, चीरवस्त्र, दण्ड, कमण्डलु तथा अत्यन्त उज्ज्वल चन्द्राकृति तिलक धारण किया था। उनके साथ वेदवेदांग पारंगत एक लाख शिष्य भी जा रहे थे। यह देख कर देवराज ने तत्काल शिर नत करके उनको सहसा प्रणाम किया। तदनन्तर उनके शिष्यों का आनन्द पूर्वक भक्तिभाव से स्तव किया। मुनि दुर्वासा ने शिष्यों सहित देवराज को आशीर्वाद प्रदान किया तथा विष्णु द्वारा दिया मनोहर पारिजात पुष्प देवराज को प्रदान किया जो जरामृत्युनाशक-शोक-रोगनिवारक यहां तक कि मोक्ष प्रदायक भी था।।१७-२२।।

शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राजसंपदा। भ्रमेण स्थापयामास तत्र वै हस्तिमस्तके॥२३॥
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च।
तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुतुल्यो बभूव सः॥२४॥
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्चाप्यगच्छद् घोरकाननम्।
न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने॥२५॥
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः।
तं शशाप महातेजाः क्रोधसंरक्तलोचनः॥२६॥

तथापि राज ऐश्वर्य से प्रमत्त देवराज ने वह पुष्प अवहेलना के साथ अपने हाथी के मस्तक पर रख दिया। वह हाथी उस पुष्प के स्पर्शमात्र से रूप-गुण-तेज, कान्ति, अवस्था में विष्णुतुल्य हो गया। अब वह गजेन्द्र निःशंक होकर इन्द्र को त्याग कर अन्य वन में चला गया। हे मुनि! महेन्द्र उसे किसी भी तरह से रोकने में समर्थ नहीं हो सके। वे अपने तेज से भी उस हाथी को कदापि नहीं रोक सके। उधर मुनीश्वर ने जब इन्द्र को वह अपूर्व पुष्प त्याग करते देखा, तब उन महातेजस्वी के नेत्र क्रोध से रक्तवर्ण हो गये। उन्होंने इन्द्र को शाप प्रदान किया।।२३-२६।।

दुर्वासा उवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे। मद्दत्तपुष्पं गर्वेण त्यक्तवान्हस्तिमस्तके॥२७॥

विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलं जलम्।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः॥२८॥

महर्षि दुर्वासा कहते हैं–अरे! तुमने ऐश्वर्य प्रमत्त होकर अहंकार के कारण मेरे दिये पुष्प को हाथी के मस्तक पर रख कर मेरा अपमान किया है। विष्णु को निवेदित पुष्प, नैवेद्य, फल, जल यह सब मिलते ही भक्षण करना चाहिए। उसे त्यागने वाला तो ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।।२७-२८।।

भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो[1] भवेन्नरः। यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम्॥२९॥

प्राप्तिमात्रेण यो भुङ्क्ते भक्त्या विष्णुनिवेदितम्।
पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत्॥३०॥
विष्णुनैवेद्यभोजी यो नित्यं तु प्रणमेद्धरिम्।
पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत्॥३१॥

जो मनुष्य भाग्यबल से प्राप्त शुभप्रद विष्णुनैवेद्य त्याग देता है, वह श्रीभ्रष्ट, बुद्धिभ्रष्ट तथा ज्ञानभ्रष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति विष्णु निवेदित वस्तु का भक्ति पूर्वक भोजन करता है, वह अपनी सौ पीढ़ी का उद्धारक होकर जीवन्मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति नित्य विष्णु नैवेद्य भक्षण करता है, अथवा विष्णु को प्रणाम करता है, अथवा भक्तिभाव से उनका पूजन, स्तवादि पाठ करता है, वह भी विष्णुवत् हो जाता है।।२९-३१।।

तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुंधरा॥३२॥
पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च। यद्धरेरनिवेद्यं च वृथामांसमभक्षकम्॥३३॥

हे मूढ़! उस व्यक्ति को स्पर्श करके जो वायु बहती है, उसके स्पर्श से तीर्थ तक शुद्ध हो जाते हैं। उनके चरणरज से धरती पवित्र हो जाती है। व्यभिचारिणी का अन्न, विधवा स्त्री का अन्न, शूद्र के श्राद्ध का अन्न तथा वह अन्न जो विष्णु को निवेदित न हो, यह सब व्यर्थ हैं तथा मांसवत् हैं। अभक्ष्य हैं।।३२-३३।।

१. क. ष्टराज्यो भ०।

शिवलिङ्गप्रदत्तान्नं यदन्नं शूद्रयाजिनाम्। चिकित्सकद्विजानां च देवलान्नं तथैव च॥३४॥
कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम्।
अनुष्णान्नं पर्युषितं सर्वभक्ष्यावशेषितम्॥३५॥
शूद्रापतिद्विजान्नं च वृषवाहद्विजान्नकम्। अदीक्षितद्विजान्नं च यदन्नं शवदाहिनाम्॥३६॥
अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च। मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम्॥३७॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदानां च ब्राह्मणानां तथैव च।
एतत्सर्वं विशुद्ध्येत विष्णुनैवेद्यभक्षणात्॥३८॥

शिवलिंग पर चढ़े अन्न, शूद्रों को यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण का अन्न, चिकित्सक ब्राह्मण का अन्न, मन्दिर के पुजारी (देवल) का अन्न, कन्या विक्रयकर्त्ता का अन्न, स्त्री से व्यभिचार कराकर उस धन से जीविका चलाने वाले का अन्न, बासी अन्न, भुक्तशेष अन्न (खाने से बचा जूठा अन्न), शूद्रा नारी के पति ब्राह्मण का अन्न, बैलों पर बोझा ढुलाने वाले ब्राह्मण का अन्न, कृतघ्न-मित्रद्रोही का अन्न, विश्वासघाती तथा मिथ्या साक्ष्य प्रदाता का अन्न, अदीक्षित ब्राह्मणों का अन्न, शव जलाने वाले का अन्न, अगम्यागामी ब्राह्मण का अन्न, यह सब अन्न खाकर पतित हो गया व्यक्ति भी विष्णुनैवेद्य ग्रहण करने से (भक्षण करने से) शुद्धिलाभ करता है।।३४-३८।।

श्वपचो विष्णुसेवी च वंशानां कोटिमुद्धरेत्। हरेरभक्तो विप्रश्च स्वं च रक्षितुमक्षमः॥३९॥
अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च।
सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥४०॥
ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥४१॥

विष्णु की सेवा करने वाला श्वपच (अन्त्यज) भी अपनी करोड़ों पीढ़ी का उद्धारक हो जाता है। जो हरि का भक्त नहीं है, ऐसा विप्र तो अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता! जो कोई अनजाने में भी विष्णु का निर्माल्य ग्रहण कर लेता है, वह निःसंशय सात जन्मों में अर्जित पातकों से रहित हो जाता है। जो जान कर तथा भक्ति के साथ विष्णु नैवेद्य को ग्रहण कर लेता है, वह कोटि जन्मार्जित पातकों से मुक्त हो जाता है। यह निःसंशय है।।३९-४१।।

यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वाद्वै हस्तिमस्तके।
तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम्॥४२॥
नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमीश्वरं विधिम्।
कालं मृत्युं जरां चैव काननन्यान्गणयामि च॥४३॥

तुमने जिस ऐश्वर्य के अभिमान के कारण विष्णुनिर्माल्य पुष्प को हाथी के मस्तक पर रख

दिया, अतः लक्ष्मी तुम्हारा त्याग करके हरि के पास चली जायेगी। मैं तो नारायण का भक्त हूं। मैं ईश्वर, ब्रह्मा, काल, मृत्यु, जरा, इन सबसे भी नहीं भयभीत होता। तब अन्य की क्या बात?।।४२-४३।।

किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः। बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्य च मे हरेः॥४४॥

इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्य वै पूजनं पुरः।
मूर्ध्नि च्छिन्ने शिवशिशोश्छित्त्वेदं योजयिष्यति॥४५॥

मैं तो हरि से भी निःशंक रहता हूं। तब तुम्हारे पिता कश्यप, तुम्हारे गुरु बृहस्पति मेरा क्या करेंगे? वह पुष्प जिस हाथी के मस्तक पर है, वह सदा पूजित होगा। जब शिवपुत्र गणेश का शिर कट जायेगा, तब इसी हाथी का शिर गणेश के धड़ से युक्त होगा।।४४-४५।।

इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा तच्चरणद्वयम्। उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः॥४६॥

यह सुनकर शोकातुर इन्द्र ने दुर्वासा के चरणों को पकड़ लिया। वे भयभीत हो गये तथा उच्च स्वर से रोते हुए कहने लगे—४६।।

इन्द्र उवाच

दत्तः समुचितः शापो मह्यं मत्ताय हे प्रभो।
हृता त्वया चेत्संपत्तिः कियज्ज्ञानं च देहि मे॥४७॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे प्रभो! आपने मुझ मदमत्त को उचित शाप दिया है। आपने शाप द्वारा मेरी सम्पत्ति का हरण जब कर ही लिया तब मुझे कुछ ज्ञान प्रदान करिये।।४७।।

ऐश्वर्यं विपदां बीजं प्रच्छन्नज्ञानकारणम्।
मुक्तिमार्गार्गलं दार्ढ्याद्धरिभक्तिव्यपायकम्॥४८॥

जन्ममृत्युजरारोगशोकदुःखकरं[१] परम्। संपत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति॥४९॥

संपन्मत्तः सुमूढश्च सुरामत्तः सचेतनः। बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुद्वेषकरो मुने॥५०॥

हे प्रभो! ऐश्वर्य ही विपत्ति का कारण तथा बीज है। यह ज्ञान का आवरण, मुक्ति मार्ग के लिये अर्गला जैसा मार्गावरोधक, दृढ़ हरिभक्ति हेतु विघ्नकारी, जन्म-मृत्यु-जरा-रोग-शोक तथा भय का अंकुररूप है। जो मनुष्य सम्पत्तिरूपी अन्धकार के कारण अन्धा हो गया, वह कदापि मुक्तिमार्ग नहीं देख सकेगा। हे मुनिवर! सम्पत्ति से जो मदमत्त हैं, अतीव मूढ़ तथा मदमत्त हैं, वह भले ही चेतना युक्त क्यों न हो, बान्धवों का सहवासी भले ही हो, वह उनसे भी द्वेष करने लगता है।।४८-५०।।

संपन्मदप्रमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः। महाकामी साहसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति॥५१॥

द्विविधो विषयान्धश्च राजसस्तामसः स्मृतः।
अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः॥५२॥

---

१. क. कभीतिकरं प०।

शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुङ्गव। प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम्॥५३॥

जो सम्पत्ति के मद से प्रमत्त, विषयों से अन्ध, विह्वल, महाकामी है, वह तो रजोगुण का आधार रूप है। वह कभी भी सत्वमय मार्ग को देख ही नहीं सकता। विषयान्ध व्यक्ति राजस-तामस भेद से द्विविध होते हैं। जो शास्त्रज्ञान रहित विषयान्ध है, वह तामस बुद्धि है, जो शास्त्रज्ञ (विषयान्ध) व्यक्ति है, वह राजस बुद्धि है। हे मुनिप्रवर! शास्त्र में भी दो पथ कहे गये हैं। एक पथ है प्रवृत्ति कारण, अन्य पथ है निवृत्ति कारण।।५१-५३।।

चरन्ति जीविनश्चाऽऽदौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि।
स्वच्छन्दे चाप्रसन्ने च निर्विरोधे च संततम्॥५४॥
आपातमधुरे लोभात्क्लेशे च सुखमानिनः। परिणामोत्पत्तिबीजे जन्ममृत्युजराकरे॥५५॥
अनेकजन्मपर्यन्तं कृत्वां च भ्रमणं मुदा।
स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च॥५६॥

जीव प्रथमतः दुःख हेतुभूत प्रवृत्ति मार्ग में विचरता है। पहले प्रतीत होता है कि यह पथ स्वच्छन्दतामय तथा विरोधशून्य है। जीवगण इसे पहले मधुर मानते हैं। लोभ के कारण यह मार्ग सुखमय मानने लगते हैं, तथापि इसका परिणाम अन्त में है नाश। अर्थात् जन्म-मृत्यु-जरा आदि। यह दुःख की खान है। पहले मनुष्य यह विवेचना नहीं कर पाता। वह इसे प्रारम्भ में अच्छा मार्ग मानता जो है। यह प्रवृत्तिमार्ग आपाततः (प्रथमतः) भले ही उत्तम लगे, तथापि यह लोभवश अपना लेने पर क्लेशमय ही है। इसका परिणाम है संसार-चक्र में भ्रमण। अपने कर्मानुसार प्राणी नाना योनियों में घूमता रहता है।।५४-५६।।

ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः।
सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धेः पारकारणम्॥५७॥
साधुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत्। तदा करोति यत्नं च जीवी बन्धनखण्डने॥५८॥
अनेकजन्मयोगेन तपसाऽनशनेन च। तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम्॥५९॥
इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्रात्प्रसङ्गावसरेण च। नहि पृष्टमतोऽन्यच्च भवदुःखौघवेष्टितः॥६०॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण की कृपा से हजारों में से एक को सत्संग की प्राप्ति होती है। इससे वह भवसागर पार करने के एकमात्र कारण को पा लेता है। साधुजन सत्वरूपी प्रदीप द्वारा मुक्तिपथ का प्रदर्शन कर देते हैं। इसके द्वारा जीव भवबन्धन को खण्डित करने का प्रयत्न करता है। अनेक जन्म के योगाभ्यास, तप, उपवास से यह सुखमय परम मुक्तिमार्ग निर्विघ्न रूप से मिलता है। मैंने अन्य कथा प्रसंग क्रम में गुरुमुख से इतना सुना था, तथापि जगत् के अनेक दुःख जंजाल में पड़ा रहने के कारण इस सम्बन्ध में मैंने और कुछ जिज्ञासा गुरु से नहीं किया।।५७-६०।।

अधुना विधिना दत्तो विपत्तौ ज्ञानसागरः। संपद्रूपा विपदियं मम निस्तारकारिणी॥६१॥

ज्ञानसिन्धो दीनबन्धो मह्यं दीनाय सांप्रतम्।
देहि किञ्चिज्ज्ञानसारं भवपारं दयानिधे॥६२॥

हे प्रभो! अब विधाता ने इस विपत्ति के माध्यम से मुझे ज्ञानसागर ही दे दिया! मुझे तो यह विपत्ति अब सम्पत्तिरूपा लग रही है, जिससे मेरा उद्धार हो जायेगा। हे ज्ञानसिन्धु! दीनबन्धु! हे दयानिधि! मैं अत्यन्त दीन हूं। सम्प्रति भवनिस्तारकारक तनिक उत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करें।।६१-६२।।

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः। ज्ञानं कथितुमारेभे ह्यतितुष्टः सनातनः॥६३॥

इन्द्र का वचन सुनकर ज्ञानीगण के गुरु सनातन मुनि दुर्वासा अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। वे हंसकर ज्ञानमार्ग का उपदेश इन्द्र को देने लगे-।।६३।।

दुर्वासा उवाच

अहो महेन्द्र माङ्गल्यमात्मानं द्रष्टुमिच्छसि। आपाततो दुःखबीजं परिणामसुखावहम्॥६४॥
स्वगर्भयातनानाशपीडाखण्डनकारणम्। दुष्पारासारदुर्वारसंसारार्णवतारकम्॥६५॥
कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारकम्। संतोषसंततिकरं प्रवरं सर्ववर्त्मनाम्॥६६॥

मुनि दुर्वासा कहते हैं-हे महेन्द्र! यह अत्यन्त आनन्द का विषय है कि तुम मंगलमय आत्मकल्याण का मार्ग देखना चाहते हो। यह प्रारम्भ में भले ही दुःखपूर्ण प्रतीत हो, तथापि इसका परिणाम सुखदायक होता है। यह कर्मरूप वृक्ष के अंकुर के उच्छेद का कारण है तथा समस्त अशुभ से बचाने वाला है। इस पथ का जो अवलम्बन लेता है, उसे गर्भयन्त्रणा तथा जन्ममरण की पीड़ा का दुःख नहीं उठाना होगा। वह अनायास इस दुष्पार संसार-सागर को पार कर लेता है। समस्त मार्गों में से श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग से ही सन्तोष प्राप्त होता है। यह सभी मार्गों से श्रेष्ठ तथा प्रवर कहा गया है।।६४-६६।।

[1]दानेन तपसा वाऽपि व्रतेनानशनादिना।
कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम्॥६७॥
काम्यानां कर्मणां चैव मूलं संछिद्य यत्नतः। अधुनेदं मोक्षबीजं सङ्कल्पाभाव एव च॥६८॥
यत्कर्म सात्त्विकं कुर्यादसङ्कल्पितमेव च। सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परे ब्रह्मणि लीयते॥६९॥

दान, तप, अनशन आदि व्रताचरण करने से जीव को मात्र स्वर्गभोगादि सुख ही मिल पाता है, तथापि यह सुख ज्ञानीगण द्वारा अनित्य कहा गया है। अतः वे लोग यत्नतः पूर्व के काम्यकर्मों का मूलोच्छेदन करके प्रकृत सुखलाभार्थ ज्ञानमार्ग का सहारा लेते हैं। अब मैं जिस मोक्षकारण ज्ञानमार्ग का वर्णन करने जा रहा हूं, उसे प्राप्त करने हेतु मनुष्य में संकल्पों का अभाव होना चाहिए। प्राणीगण संकल्प रहित सात्विक कार्य का अनुष्ठान करके उस समस्त कार्य को श्रीकृष्णार्पित करते हुए परमब्रह्म में लीन हो जाते हैं!।।६७-६९।।

---

१. क. ज्ञाने०।

सांसारिकाणामेतत्तु निर्वाणं मोचकं विदुः।
नेच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकातराः॥७०॥
सेवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधायोत्तमदेहकम्।
गोलोके वाऽपि वैकुण्ठे तस्यैव परमात्मनः॥७१॥
हरिसेवादिरूपां च मुक्तिमिच्छन्ति वैष्णवाः।
जीवन्मुक्ताश्च ते शक्र स्वकुलोद्धारकारिणः॥७२॥

लेकिन वैष्णवगण उस निर्वाण मोक्ष को नहीं चाहते, जो संसारी लोगों को अभिप्रेत है। वैष्णवों के अनुसार यह तो विष्णु सेवा का वियोग है। निर्वाण में विष्णु सेवा कहां? वैष्णवगण उत्तम दिव्यरूपधारी होकर गोलोक अथवा वैकुण्ठ धाम में हरिसेवा करते हैं। हे इन्द्र! अपने कुल के उद्धारक जीवन्मुक्त वैष्णवगण केवल हरिसेवा युक्त मुक्ति की कामना करते हैं।।७०-७२।।

स्मरणं कीर्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम्। वन्दनं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यभक्षणम्॥७३॥
चरणोदकपानं च तन्मन्त्रजपनं परम्। इदं निस्तारबीजं च सर्वेषामीप्सितं भवेत्॥७४॥

श्री विष्णु का स्मरण, नाम-गुणकीर्त्तन, विष्णु की अर्चना, उनकी चरणसेवा, विष्णु (कृष्ण) की वन्दना, उनका स्तवन, भक्तिभाव से नैवेद्य भक्षण, चरणामृत पान, उनके मन्त्रों का जप ही संसार से पार होने का बीजरूप है। यही सबको वांछित है।।७३-७४।।

इदं मृत्युञ्जयज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे।
तच्छिष्योऽहं च निःशङ्कस्तत्प्रसादाच्च सर्वतः॥७५॥
स जन्मदाता स गुरुः स च बन्धुः सतां परः।
यो ददाति हरेर्भक्तिं त्रैलोक्ये च सुदुर्लभाम्॥७६॥

यह मृत्यु को जय करने वाला ज्ञान मुझे मृत्युंजय शिव से ही मिल सका है। मैं उनका शिष्य हूं तथा उनकी ही कृपा से मैं सर्वत्र निःशंक रहता हूं। जन्मदाता पिता वास्तव में वही हैं, वही गुरु तथा बन्धु हैं, वही श्रेष्ठ साधु है, जो त्रैलोक्य दुर्लभ हरिभक्ति प्रदान करता है।।७५-७६।।

दर्शयेदन्यमार्गं च विना श्रीकृष्णसेवनम्। स च तं नाशयत्येव ध्रुवं तद्वधभाग्भवेत्॥७७॥
संततं जगतां कृष्णनाम मङ्गलकारणम्। मङ्गलं वर्धते नित्यं न भवेदायुषो व्ययः॥७८॥
तेभ्योऽप्यपैति कालश्च मृत्युश्च रोग एव च। संतापश्चैव शोकश्च वैनतेयादिवोरगाः॥७९॥

जो व्यक्ति कृष्णसेवा के अतिरिक्त अन्य पथ का उपदेश देता है, अन्य मार्ग दिखलाता है, उसने निश्चय अपने उस शिष्य का नाश किया। वह तो उस शिष्य के वध का दोषी ही है। जो निरन्तर मंगलकारी कृष्ण का नाम जप करते हैं, नित्य उनके मंगल की वृद्धि होती है। उनकी आयु का क्षय नहीं होता। जैसे गरुड़ को देख कर सर्पगण पलायन कर जाते हैं, तदनुरूप ऐसे नामजप करने वाले को देखते ही काल-मृत्यु-रोग-सन्ताप-शोकादि दूर से ही भाग जाते हैं।।७७-७९।।

कृष्णमन्त्रोपासकश्च ब्राह्मणः श्वपचोऽपि वा।
ब्रह्मलोकं समुल्लङ्घ्य याति गोलोकमुत्तमम्॥८०॥
ब्रह्मणा पूजितः सोऽपि मधुपर्कादिना च यः।
स्तुतः सुरैश्च सिद्धैश्च परमानन्दभावनः॥८१॥

कृष्णमन्त्र का उपासक भले ही ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल, वह ब्रह्मलोक को भी पार करके उत्तम गोलोकधाम गमन करता है। परमानन्दमय कृष्ण का उपासक तो ब्रह्मा द्वारा भी मधुपर्क आदि से पूजित किया जाता है। वह देवताओं तथा सिद्धों से भी पूजित स्तुत होता है। उस परमानन्द मग्न भक्त की ये सभी अभ्यर्थना करते हैं।।८०-८१।।

ज्ञानसारं तपःसारं ब्रह्मसारं परं शिवम्। शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपदसेवनम्॥८२॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव स्वप्नवत्। भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं प्रकृतेः परम्॥८३॥
अतीव सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम्। सिद्धियोगप्रदं चैव दातारं सर्वसंपदाम्॥८४॥

श्रीकृष्ण की चरणसेवा ही ज्ञान का सार, तप, ब्रह्मज्ञान तथा योग का सार है। यह परम कल्याणकारी मार्ग है। शिव ने इस चरणसेवा को योग का साररूप कहा है। ब्रह्मा से लगा कर तृण तक सब कुछ स्वप्नवत् मिथ्या है। केवल प्रकृति से अतीत परब्रह्म राधा के ईश्वर कृष्ण ही परम सत्य हैं। उनका मनुष्य भजन करे। वे सबके सार, अत्यन्त सुखप्रद, भक्तिदाता, परम मुक्तिदाता, सिद्धि-योगदाता तथा सर्वसम्पत् प्रदाता हैं।।८२-८४।।

योगिनामपि सिद्धानां यतीनां[1] च तपस्विनाम्।
सर्वेषां कर्मभोगोऽस्ति न नारायणसेविनाम्॥८५॥
भस्मसाच्च भवेत्पापं यदुपस्पर्शमात्रतः।
ज्वलदग्नौ यातितं च यथा शुष्केन्धनं तथा॥८६॥

नियम यह है कि योगी, यती, तपस्वी–इन सबको कर्मभोग भोगना पड़ता है, तथापि नारायण सेवक को यह कर्मभोग नहीं भोगना पड़ता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि में सूखा काष्ठ भस्मीभूत हो जाता है, उसी प्रकार हरि सेवक के स्पर्शमात्र से व्यक्ति के सभी पातक दूर हो जाते हैं।।८५-८६।।

ततो रोगा हि वेपन्ते पापानि च भयानि च। दूरतश्च पलायन्ते यमदूतास्ततो भयात्॥८७॥
तावन्निबद्धः संसारे कारगारे विधेर्जनः। न यावत्कृष्णमन्त्रं च प्राप्नोति गुरुवक्त्रतः॥८८॥
कृतकर्मौघभोगाख्यनिगडच्छेदकारणम्। मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिकृन्तनम्॥८९॥
गोलोकमार्गसोपानं निस्तारे बीजकारणम्। भक्त्यङ्कुरस्वरूपं च नित्यं वृद्धमनश्वरम्॥९०॥

ऐसे हरिभक्त को देख कर रोग-पातक-भय कांपने लगते हैं तथा वे सभी दूर से ही पलायित

१. क. व्रती०।

हो जाते हैं। जीव जब तक गुरुमुख से कृष्णमन्त्र लाभ नहीं करता, तब तक वह विधाता के कारागृह संसार में बद्ध बना रहता है। हे पुरन्दर! कृष्णमन्त्र इस कृतकर्मरूपी भोग शृङ्खला का उच्छेदक है। मायाजाल तथा मायापाश का उच्छेदक है। यह गोलोक मार्ग का सोपानरूप है तथा उद्धाररूप बीज का कारण है। यह भक्ति का अंकुर स्वरूप, नित्य वर्द्धित होने वाला एवं अनश्वर भी है।।८७-९०।।

सारं च सर्वतपसां योगानां साधनं तथा।
सिद्धीनां वेदपाठानां व्रतादीनां च निश्चितम्॥९१॥

दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरंदर। [1]पूजानामुपवासानामित्याह कमलोद्भवः॥९२॥

पुंसां लक्षं पितॄणां च शतं मातामहस्य च। पूर्वं परं च तत्संख्यं पितरं मातरं गुरुम्॥९३॥

सहोदरं कलत्रं च बन्धुं शिष्यं च किङ्करम्।
समुद्धरेच्च श्वशुरं श्वश्रूकन्यां च तत्सुतम्॥९४॥

स्वात्मानं च सतीर्थ्यं च गुरुपत्नीं गुरोः सुतम्। उद्धरेद्बलवान्भक्तो मन्त्रग्रहणमात्रतः॥९५॥

हे पुरन्दर! यह समस्त तप-योग-साधन का साररूप है। यह वेदपाठ-सिद्धिलाभ तथा व्रतादि का निश्चित प्रकार का साधन भी है। हे इन्द्र! यह दान, तीर्थस्नान, यज्ञादि, विविध पूजा, उपवास का भी कारणरूप है। यह कमलोद्भव ब्रह्मा का वचन है। इस कृष्णमन्त्र के ग्रहणमात्र से वह कृष्णभक्त व्यक्ति पितृकुल की पूर्व की तथा भविष्य की एक लाख पीढ़ी का तथा मातामह कुल की १०० पीढ़ी का उद्धार करता है। साथ ही वह पिता-माता-गुरु-सहोदर-स्त्री-बन्धु-शिष्य-भृत्य-श्वसुर-सास-कन्या-कन्या की सन्तान दौहित्र, सतीर्थ, गुरुपत्नी, गुरुपुत्र तथा स्वयं का भी उद्धारकर्त्ता हो जाता है।।९१-९५।।

मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। तत्स्पर्शपूतस्तीर्थौघः सद्यः पूता वसुंधरा॥९६॥

अनेकजन्मपर्यन्तं दीक्षाहीनो भवेन्नरः। तदन्यदेवमन्त्रं च लभते पुण्यलेशतः॥९७॥

सप्तजन्मसु देवानां कृत्वा सेवां स्वकर्मतः।
लभते च रवेर्मन्त्रं साक्षिणः सर्वकर्मणाम्॥९८॥

किम्बहुना, व्यक्ति कृष्णमन्त्र ग्रहण करने मात्र से जीवन्मुक्त हो जाता है। उसके स्पर्शमात्र से तीर्थ समूह तथा धरती पावन हो जाती है। सामान्यतः मनुष्य पुण्य समाप्त होने पर नाना जन्म पर्यन्त दीक्षा रहित होकर भटकता रहता है। तदनन्तर उसे अन्य देवता का मन्त्र मिल पाता है। सात जन्म तक अपने कर्म से उस उपदेवता की सेवा करके सर्वकर्मसाक्षी सूर्य देवता का मन्त्र उसे मिलता है।।९६-९८।।

जन्मत्रयं भास्करं च सेवित्वा मानवः शुचिः। लभेद्गणेशमन्त्रं च सर्वविघ्नहरं परम्॥९९॥

---

१. जपाना०।

जन्मत्रयं तं निषेव्य निर्विघ्नश्च भवेन्नरः। विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः॥१००॥

तीन जन्म पर्यन्त भास्कर की सेवा द्वारा मनुष्य पवित्र होकर सर्वविघ्नहारी गणेश का परम मन्त्र प्राप्त करता है। तीन जन्म तक गणेशमन्त्र का जप तथा गणपति सेवा द्वारा मनुष्य बाधा-विघ्न रहित होकर विघ्नेश्वर देव की कृपा से दिव्य ज्ञान लाभ करता है॥९९-१००॥

तदा ज्ञानप्रदीपेन समालोच्य महामतिः।
अज्ञानान्धतमश्छित्त्वा महामायां भजेन्नरः॥१०१॥
प्रकृतिं विष्णुमायां च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
सिद्धिदां सिद्धिरूपां च परमां सिद्धियोगिनीम्[1]॥१०२॥
वाणीरूपां च[2] पद्मां च भद्रां कृष्णप्रियात्मिकाम्।
नानारूपां तां निषेव्य जन्मनां शतकं नरः॥१०३॥

तत्पश्चात् वह महामति मानव ज्ञानमय प्रदीप से अपने अज्ञानान्धकार का नाश करके सम्यक्कृतः विचार सहित महामाया की सेवा का अधिकार प्राप्त करता है। ये भगवती प्रकृति, विष्णुमाया, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, सिद्धिप्रदा-सिद्धिरूपा एवं परमा सिद्धयोगिनी हैं। ये ही वाणीरूपा (सरस्वती रूप), पद्मा (कमला) भद्रमूर्त्ति, कृष्णप्रिया लक्ष्मी हैं। इन नाना रूप वाली देवी की वह व्यक्ति सौ जन्म पर्यन्त सेवा करता है॥१०१-१०३॥

तत्प्रसादाद्भवेज्ज्ञानी ज्ञानानन्दं तदा भजेत्।
कृष्णं ज्ञानाधिदेवं च महादेवं सनातनम्॥१०४॥
शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम्। परमानन्दरूपं च परमानन्ददायिनम्॥१०५॥
सुखदं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसंपदाम्। अमरत्वपदं चैव दीर्घमायुष्यदं परम्॥१०६॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च दातुं शक्तं च लीलया।
राजेन्द्रत्वप्रदं चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम्॥१०७॥
जन्मत्रयं तमाराध्य चाऽऽशुतोषप्रसादतः। सर्वदस्य प्रसादेन शङ्करस्य महात्मनः॥१०८॥
वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
तदा तद्भक्तसंसर्गात्कृष्णमन्त्रं लभेद्ध्रुवम्॥१०९॥
निर्मलज्ञानदीपेन प्रदीप्तेन च तत्त्ववित्। ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पश्यति॥११०॥

तत्पश्चात् इस सेवा के फलस्वरूप देवी की कृपा से उसे ज्ञानानन्द प्राप्त होता है। तब वह कृष्णज्ञान के अधिदेवता, महाज्ञानस्वरूप, सनातन, मंगलस्वरूप, मंगलदाता, मंगल के भी कारण, परम आनन्दरूप, जिनसे समस्त सम्पदा-सुख-मोक्ष की प्राप्ति होती है, जो लीला में ही भक्त को

१. क. ०रूपिणाम्।
२. क. च प्रथमां भ०।

समस्त सम्पत्ति-सुख-दीर्घायु-अमरत्व-इन्द्रत्व-मनुत्व-राजाधिराजत्व प्रदान कर सकते हैं, ऐसे ज्ञान एवं हरिभक्ति प्रदाता भगवान् आशुतोष की उपासना वह तीन जन्म पर्यन्त करके उनकी कृपा से एवं उनके वर द्वारा निर्मल ज्ञान लाभ करता है। तदनन्तर वह तत्वज्ञ व्यक्ति निर्मल सुप्रदीप्त निर्मल ज्ञानदीप की प्रभा से द्योतित होकर ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त पदार्थ को मिथ्यारूप जान लेता है।।१०४-११०।।

दयानिधेः प्रसादेन निर्मलज्ञानमालभेत्। वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्॥१११॥
तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारां परात्पराम्। यत्र देहे लभेन्मन्त्रं तद्देहावधि भारते॥११२॥
तत्याञ्चभौतिकं त्यक्त्वा बिभर्ति दिव्यरूपकम्।
करोति दास्यं गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे॥११३॥

तब वह तत्त्वज्ञ पुरुष निश्चित रूप से दयासागर महात्मा वरदाता शंकर की कृपा से हरिभक्ति प्राप्त करता है। उसे समस्त सार की साररूपा परात्पर निवृत्ति प्राप्त होती है। वह भारत में जिस देह से हरिमन्त्र पा सका है, वह उसके आयुकाल तक भारत में सुख पूर्वक भक्ति करता अन्ततः पांचभौतिक देह त्यागोपरान्त दिव्यदेह लाभ करता है। वह इसके पश्चात् इस देह से गोलोक किंवा वैकुण्ठधाम में भगवान् का दास होकर सेवारत हो जाता है।।१११-११३।।

परमानन्दसंयुक्तो मोहादिषु विवर्जितः। न विद्यते पुनर्जन्म पुनरागमनं हरे॥११४॥
पुनश्च न पिबेत्क्षीरं धृत्वा मातृस्तनं परम्।
विष्णुमन्त्रोपासकानां गङ्गादितीर्थसेविनाम्॥११५॥
स्वधर्मिणां च भिक्षुणां पुनर्जन्म न विद्यते।
तीर्थे परित्यजेत्पापं क्रियां कृत्वा हरिं भजेत्॥११६॥
अयं निरूपितो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम्।
तन्नाममन्त्रं प्रजपेत्तत्सेवादिषु तत्परः॥११७॥
तद्व्रतोपवासरत इत्युक्तो विष्णुसेविनाम्।
सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्टे वा काञ्चने तथा॥११८॥

अब वह परमानन्दयुक्त एवं मोहादि से रहित हो जाता है। हे इन्द्र! वह पुनरागमन तथा पुनर्जन्म चक्र से रहित हो गया रहता है। उसे मातृस्तन पकड़ कर माता का दूध अब नहीं पीना है। विष्णु मन्त्रोपासक, गंगादितीर्थ का सेवन करने वाले, स्वधर्म पालक तथा भिक्षुगण का कदापि पुनर्जन्म नहीं होगा। तीर्थ जाकर वहां समस्त पाप कार्य त्याग करे। वहां नित्य हरिभजन करे। यही तीर्थसेवी लोगों का स्वधर्म पितामह ने कहा है। नित्य हरिमन्त्र तथा हरिनाम जप, उनके सेवादि कार्य में तत्परता, उनके उद्देश्य से व्रताचरण तथा उपवासों में अभिरुचि, यही विष्णुसेवकों का स्वधर्म है। वे उत्तम अन्न, कुत्सित अन्न, मिट्टी के ढेला, स्वर्ण को समान मानते हैं।।११४-११८।।

समबुद्धिर्यस्य शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः।
दण्डं कमण्डलुं रक्तवस्त्रमात्रं च धारयेत्॥११९॥
नित्यं प्रवासी नैकत्र स्यात्संन्यासीति कीर्तितः।
शुद्धाचारद्विजान्नं च भुङ्क्ते लोभादिवर्जितः॥१२०॥
किंतु किञ्चिन्न याचेत स संन्यासीति कीर्तितः।
न व्यापारी नाऽऽश्रमी च सर्वकर्मविवर्जितः[1]॥१२१॥
ध्यायेन्नारायणं शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः।
शश्वन्मौनी ब्रह्मचारी संभाषापरिवर्जितः॥१२२॥
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येत्स संन्यासीति कीर्तितः।
सर्वत्र समबुद्धिश्च हिंसामायाविवर्जितः॥१२३॥

जो इस प्रकार की समत्व बुद्धि वाला है, वही यथार्थ संन्यासी कहा गया है। वह दण्ड-कमण्डलु तथा गेरु रंग का वस्त्र धारण करे। नित्य यात्री रहे, वही संन्यासी है। जो द्विज का तथा शुद्धाचारी का भिक्षान्न खाये, लोभादि से रहित हो, तथापि किसी से याचना न करे, ऐसा ही व्यक्ति संन्यासी है। वह कोई व्यापार न करे, कहीं आश्रम बना कर न रहे, सर्व कर्म रहित होकर मात्र नारायण का ध्यान सतत् करे, वही संन्यासी कहा गया है। वह सदा मौनी, ब्रह्मचारी, बातचीत से रहित हो, सब कुछ ब्रह्ममय देखे, वही संन्यासी है। उसकी बुद्धि सर्वत्र समत्वमयी हो, वह हिंसा-माया से रहित हो॥११९-१२३॥

क्रोधाहङ्काररहितः स संन्यासीति कीर्तितः।
अयाचितोपस्थितं च मिष्टामिष्टं च भुक्तवान्॥१२४॥
न याचते भक्षणार्थी स संन्यासीति कीर्तितः।
न च पश्येन्मुखं स्त्रीणां न तिष्ठेत्तत्समीपतः॥१२५॥
दारवीमपि योषां च न स्पृशेद्यः स भिक्षुकः।
अयं संन्यासिनां धर्म इत्याह कमलोद्भवः॥१२६॥

वह क्रोध अहंकार से रहित हो। इन गुणयुक्त को ही संन्यासी कहते हैं। मिष्ठान्न हो किंवा मिष्ठान्न न हो, बिना याचना जो मिले, वही भोजन करे। भोजनार्थ कहीं किसी से प्रार्थना न करे। वही संन्यासी है। जो नारी का मुख न देखे, उसके निकट न रहे, काठ की बनी नारी मूर्त्ति तक का स्पर्श न करे, वही संन्यासी है! यह सन्यास धर्म पितामह ब्रह्मा ने कहा है॥१२४-१२६॥

विपर्यये विनाशश्च जन्म याम्यं भयं भवेत्।
जन्मदुःखं याम्यदुःखं जीविनामतिदारुणम्॥१२७॥

१. क. धर्म०।

सुरसूकरयोनौ वा गर्भे दुःखं समं सुर। योनौ व क्षुद्रजन्तूनां पश्वादीनां तथैव च॥१२८॥
गर्भे स्मरन्ति सर्वे ते कर्म जन्मशतोद्भवम्। विस्मरेन्निर्गतो जीवो गर्भाद्वै विष्णुमायया।
स्वदेहं पाति यत्नेन सुरो वा कीट एव वा॥१२९॥

जो संन्यासी यह नियम पालन नहीं करता, उसे यमभय तथा जन्म-मृत्यु चक्र झेलना होगा। यह जन्म जनित दुःख तथा यमयातना जीवगण के लिये अत्यन्त भयानक है। हे इन्द्र! प्राणीगण ही देवयोनि किंवा शूकर योनि जो भी पायें, सभी को गर्भवास का भयानक तथा समान दुःख भोगना पड़ जाता है। इसी प्रकार उसे क्षुद्र जन्तु योनि किंवा पश्वादि योनि में भी समान दुःख भोग करना होता है। प्राणीगण विष्णुमाया के द्वारा गर्भवास काल में सैकड़ों जन्मों के अपने कर्म का स्मरण करते हैं, परन्तु गर्भ से बाहर आते ही माया के कारण सब कुछ विस्मृत हो जाता है। चाहे देवता हो अथवा कीट, सभी अपने देह को यत्न से पालते हैं।।१२७-१२९।।

योनेरभ्यन्तरे शुक्रे पतिते पुरुषस्य च। शुक्रं शोणितयुक्तं च सहसा तत्क्षणं भवेत्॥१३०॥
रक्ताधिक्ये मातृसमश्चेतरे पितुराकृतिः। युग्माहे च भवेत्पुत्रः कन्यका तद्विपर्यये॥१३१॥
रविभौमगुरूणां च वारे चेत्तद्भवेत्सुतः। अयुग्माहे तदितरे वारे वै कन्यका भवेत्॥१३२॥

जब पुरुष नारी योनि में वीर्यपात करता है, वह सहसा नारी के रजः से युक्त हो जाता है। गर्भ में शोणित (रजः) अधिक होने पर शिशु मातृ के आकार का होता है, जब रजः कम हो शुक्र अधिक हो, तब सन्तान पिता के समान आकृति का होता है। युग्म दिवस में गर्भिणी की गई स्त्री पुत्र प्रसव करेगी। विषम दिनों में गर्भिणी की गई नारी कन्या प्रसव करती है। जब रवि-मंगल-गुरु के दिन गर्भाधान हो, तब पुत्र तथा अन्य वार में गर्भाधान द्वारा कन्योत्पत्ति होगी।।१३०-१३२।।

प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पायुरेव च। द्वितीये मध्यमश्चैव तृतीये तत्परो भवेत्॥१३३॥
चतुर्थे चिरजीवी स्यात्क्षणानामनुरूपकः।
दुःखी वाथ सुखी वाऽपि पूर्वकर्मानुरूपतः॥१३४॥

प्रथम प्रहर में उत्पन्न सन्तान अल्पायु, द्वितीय प्रहर में उत्पन्न मध्यायु, तृतीय प्रहर में उत्पन्न मध्यायु से कुछ अधिक आयु की सन्तान होगी। चतुर्थ प्रहर में जन्मी सन्तान जन्मक्षण के अनुरूप चिरायु होगी। जीव अपने पूर्वकृत कर्मानुरूप दुःखी किंवा सुखी होगा।।१३३-१३४।।

यादृशे च क्षणे जन्म प्रसवस्तादृशे भवेत्।
प्रसूतिक्षणचर्चां च कुर्वन्त्येवं विचक्षणाः॥१३५॥
कललं त्वेकरात्रेण प्रवृद्धः स्याद्दिने दिने।
सप्तमे बदराकारो मासे गण्डुसमो भवेत्॥१३६॥
मासत्रये मांसपिण्डो हस्तपादादिवर्जितः। सर्वावयवसंपन्नो देही मासे च पञ्चमे॥१३७॥

भवेत्तु जीवसञ्चारः षण्मासे सर्वतत्त्ववित्।
दुःखी स्वल्पस्थलस्थायी शकुन्त इव पञ्जरे॥१३८॥

विद्वानों के अनुसार जिस क्षण में सन्तान का जन्म होता है, उसे तदनुरूप सुख-दुःखादि की जीवन में प्राप्ति होगी। यही प्रसूति काल का महत्व विद्वानों द्वारा कहा गया है। एक ही रात में शुक्र-शोणित परस्परतः मिल कर दिनोंदिन बढ़ने लगता है। सातवें दिन वह वेर के फल के आकार का हो जाता है। एक मास में गांठ की तरह का, तृतीय मास में हाथ-पैर रहित मांसपिण्डवत् हो जाता है। पंचम मास में वह सभी अवयव सम्पन्न देहधारी होता है। छठे मास उस देह में जीवसंचार होता है। तब उस गर्भस्थ देह में स्थित देही सर्वतत्व जानने वाला होकर गर्भाशय रूपी (पिंजरे में बद्ध पक्षी की तरह) पिंजरे में आबद्ध-सा अशेष दुःखभोग करता रहता है। वह उस छोटे से स्थान में रहता दुःख भोगता है॥१३५-१३८॥

मातृजग्धान्नपानं च भुङ्क्तेऽमेध्यस्थले स्थितः।
हाहेति शब्दं कृत्वा च चिन्तयेदीश्वरं परम्॥१३९॥
एवं च चतुरो मासान्भुक्त्वा परमयातनाम्।
प्रेरितो वायुना काले गर्भाद्वै निर्गतो भवेत्॥१४०॥
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो विस्मृतो विष्णुमायया।
शश्वद्विण्मूत्रसंयुक्तः शिशुः स्याच्छैशवावधि॥१४१॥
परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे। कीटादिभुक्तो दुःखी च रौति तत्र पुनः पुनः॥१४२॥

जीवगण मातृगर्भ के अत्यन्त अपवित्र स्थान में रहते, माता द्वारा खाये अवशिष्ट अंश का ही भोजन करते हैं। वे कठोर जननी जठर में रहते यातनामय हाहाकार करते परात्पर परमेश्वर हरि का चिन्तन करते हैं। इस प्रकार ४ मास तक (छठे मास से लेकर प्रसवकाल तक) विषम यन्त्रणा का अनुभव करते जब प्रसव काल आ जाता है, तब गर्भस्थ शिशु प्रसव वायु द्वारा प्रेरित होकर जन्म लेता है। वह भूमिष्ठ होते ही चक्रधारी भगवान् के मायाचक्र से पूर्वजन्म की स्मृति को विस्मृत कर देता है। वह काल आदि दैहिक धर्म से अनभिज्ञ होकर मलमूत्रादि लिप्त स्थिति में शैशव काल व्यतीत करता है। वह इतना असमर्थ होता है कि वह रक्तपिपासु मशक आदि को भी हटा नहीं पाता। वह पराधीन प्राणी की तरह कीटों के काटे जाने पर बारम्बार रोता है॥१३९-१४२॥

स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याच्ञां कर्तुमभीप्सिताम्।
न वाणी निःसरेत्तस्य पौगण्डावधि सुस्फुटा॥१४३॥

प्राणीगण अपने पाप के फलस्वरूप पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करके मात्र दुग्ध से पालित होकर इतने असमर्थ रहते हैं कि वो जब तक पौगण्डावस्था में नहीं पहुंच जाते, तब तक वे अभिलषित वस्तु मांग भी नहीं पाते। उस समय उनकी वाणी स्पष्ट नहीं निकलती॥१४३॥

पौगण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नुते यौवनं पुनः।
न स्मरेन्मायया देही गर्भादेर्यातनां पुनः॥१४४॥

इस प्रकार पौगण्डावस्था (किशोरावस्था) व्यतीत करके वे क्रमशः नाना यातना भोगता युवावस्था में पहुंचते हैं। उस समय माया के कारण उस गर्भ में प्राप्त यातना की भी स्मृति नहीं रह जाती!॥१४३-१४४॥

आहारमैथुनार्तश्च नानामोहादिवेष्टितः। पुत्रं कलत्रमनुगं यत्नेन परिपालयेत्॥१४५॥
एवं यावत्समर्थश्च तावदेव हि पूजितः। असमर्थं च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा॥१४६॥

वह यौवनावस्था में आहार एवं मैथुनादि में आसक्त रहता है। इस अवस्था में नाना प्रकार से मोहित जीवगण (मनुष्य) पुत्र-स्त्री-भृत्य आदि के पालनार्थ व्यग्र हो जाते हैं। जब तक वह अपने उपार्जित धन द्वारा परिवार वर्ग का पालन कर पाता है, तभी तक उसके परिवारजन उसके मनोनुकूल कार्य करते हैं। तत्पश्चात् वह जीव जब वार्द्धक्य के कारण उपार्जन करने योग्य नहीं रहता, तब परिवार वाले उसका अनादर उसी प्रकार करते हैं, जैसे कृषक वृद्ध हो गये बैल का अनादर करता है॥१४५-१४६॥

यदाऽतीव जरायुक्तो जडोऽतिबधिरो भवेत्।
कफश्वासादियुक्तश्च परायत्तोऽतिमूढवत्॥१४७॥
तदन्तरेऽनुतापं च कुरुते संततं पुनः। न सेवितं हरेस्तीर्थं सत्सङ्गश्चेति तापनः॥१४९॥

जब वह प्रबल वार्द्धक्य के कारण जड़ीभूत होकर कर्णादि इन्द्रियों द्वारा निरूपित शब्दादि विषय सुन नहीं पाता, देख नहीं पाता, जब खांसी-श्वास रोग से उसक कण्ठावरोध हो जाता है, वह पूर्णतः अन्य पर आश्रित, पराधीन हो मूढ़वत् हो जाता है, तब वह अनुताप करता है कि मैंने अनेक पापकर्म किये हैं। मैं अनित्य दुःखों के प्रति आसक्त था। मैंने परमाराध्य हरि की आराधना नहीं किया। मैं पवित्र तीर्थों में नहीं गया, मैंने वहां परमाराध्य हरि की आराधना नहीं किया। मैंने हरिपरायण साधुदर्शन द्वारा स्वयं को कृतार्थ नहीं किया। यह कैसा दुर्दैव है? यदि मैं भाग्यवश पुनः भारत में मनुष्य जन्म पा सकूंगा, तब तीर्थाटन करूंगा तथा सर्वतीर्थमय कृष्णोपासना करूंगा॥१४७-१४९॥

इत्येवमादि मनसि कुर्वन्तं तं जडं सुर। गृह्णाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिदारुणः॥१५०॥
स पश्येद्यमदूतं च पाशहस्तं च दण्डिनम्।
अतीव कोपरक्ताक्षं विकृताकारमुल्बणम्॥१५१॥
दुर्निवार्यमुपायैश्च बलिष्ठं च भयङ्करम्। दुर्दृश्यं सर्वसिद्धिज्ञं सर्वादृष्टं पुरःस्थितम्॥१५२॥
दृष्टमात्रान्महाभीतो विण्मूत्रं च समुत्सृजेत्।
तदा प्राणांस्त्यजेत्सद्यो देहं वै पाञ्चभौतिकम्॥१५३॥

वह व्यक्ति इस प्रकार मन ही मन सोचता रह जाता है। दारुण अन्तकाल आते ही उसे यमदूत पकड़ लेते हैं। वह देखता है कि ये दूत दण्ड तथा पाशधारी हैं। वे अत्यन्त क्रोध के कारण रक्ताक्त नेत्र तथा अतीव भयानक हैं। किसी भी उपाय से उनको रोकना संभव नहीं है। वे अत्यन्त बली तथा भयानक हैं। उनका दर्शन ही अत्यन्त दुःखदायी है। वे सर्वसिद्धि ज्ञाता, सबसे अन्तर्हित् रहते सामने आ जाते हैं।।१५०-१५३।।

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं गृहीत्वा यमकिङ्करः।
विन्यस्य भोगदेहे च स्वस्थानं प्रापयेद्द्रुतम्।।१५४।।

उनको देखते ही वह व्यक्ति महाभयग्रस्त होकर मल-मूत्र त्यागने लगता है। इसी समय वह पांचभौतिक शरीर से प्राणों का त्याग करने लगता है। तभी उसके अंगुष्ठाकृति जीव को वे यमदूत पंचमहाभूतात्मक देह से बाहर खींच लेते हैं। उसे भोगदेह में स्थापित कर देते हैं। वे उसे शीघ्रता पूर्वक अपने स्थान यमलोक में ले जाते हैं।।१५४।।

जीवो गत्वा यमं पश्येत्सर्वधर्मज्ञमेव च।
रत्नसिंहासनस्थं च सस्मितं सुस्थिरं परम्।।१५५।।

प्राणी यमलोक लाया जाकर वह यमदेव को वहां देखता है। वे सर्वधर्म तत्वज्ञ, मुस्कानयुक्त मुख वाले सुस्थिर रूप से रत्नसिंहासनासीन रहते हैं।।१५५।।

धर्माधर्मविचारज्ञं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम्। विश्वेष्वेकाधिकारं च विधात्रा निर्मितं पुरा।।१५६।।
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्। वेष्टितं पार्षदगणैर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः।।१५७।।

वह धर्म-अधर्म का विचार करने वाले, सर्वज्ञ, समस्त जगत् पर एकाधिपत्य युक्त, विधाता द्वारा दीर्घकाल से परिपालित यमराज का मुख चतुर्दिक् देखता है। वे सर्वतोमुख हैं। उन्होंने अग्निवत् शुद्ध वस्त्र धारण किया है। वे नाना रत्न से भूषित तथा तीन करोड़ पार्षदगण एवं यमदूतों से घिरे रहते हैं।।१५६-१५७।।

जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फटिकमालया।
ध्यायमानं तत्पदाब्जं पुलकाङ्कितविग्रहम्।।१५८।।
सगद्गदं साश्रुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम्। अतीव कमनीयं च शश्वत्सुस्थिरयौवनम्।।१५९।।
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं सुखदृश्यं विचक्षणम्।
शरत्पार्वणचन्द्राभं[१] चित्रगुप्तपुरःस्थितम्।।१६०।।

वे शुद्ध स्फटिक माला पर श्रीकृष्ण का नाम जपते रहते हैं। कृष्ण के चरणकमलों के ध्यान मात्र से उनके अंग पुलकित रहते हैं। वे सर्वत्र समदर्शी, गद्गद् वाणी युक्त एवं कृष्ण प्रेम के कारण

१. क. ०न्द्रास्यं।

सर्वदा अश्रुपूर्ण नेत्र रहते हैं। वे अत्यन्त कमनीय तथा सदा स्थिर यौवन सम्पन्न हैं। वे अपने तेज से प्रज्वलन्त, देखने में सुखदायक, विद्वान् हैं। वे शरद्पूर्णिमा के समान चन्द्राभ हैं और चित्रगुप्त उनके समक्ष स्थिर रहा करते हैं।।१५८-१६०।।

पुण्यात्मनां शान्तरूपं पापिनां च भयङ्करम्।
तं दृष्ट्वा प्रणमेद्देही महाभीतश्च तिष्ठति।।१६१।।

चित्रगुप्तविचारेण येषां यदुचितं फलम्। शुभाशुभं च कुरुते तदेव रविनन्दनः।।१६२।।

एवं तेषां गतायाते निवृत्तिर्नास्ति जीविनाम्।
निवृत्तिहेतुरूपं च श्रीकृष्णपदसेवनम्।।१६३।।
इत्येवं कथितं सर्वं वरं प्रार्थय वाञ्छितम्।
सर्वं दास्यामि ते वत्स न मेऽसाध्यं च किञ्चन।।१६४।।

ये पुण्यात्मा, शान्तरूप, पापीगण हेतु भयंकर हैं। इन यम को देख कर प्राणीगण उनको प्रणाम करके परम भय पूर्वक उनके सामने स्थित हो जाते हैं। तब चित्रगुप्त विचार करके जिसे जैसा फल देना होता है, वैसा शुभ-अशुभ उनसे बताते हैं, तब उसी प्रकार का दण्ड उस प्राणी को यमदेव प्रदान करते हैं। इस प्रकार जन्म-मरणरूपी आवागमन चक्र के कारण प्राणी कभी उससे त्राण नहीं पाता। केवल श्रीकृष्ण के चरण की सेवा ही एकमात्र निवृत्ति लाभ का उपाय है। हे वत्स! जो कुछ भी सार रूप था, वह मैंने कह दिया। अब तुम वांछित वर मांगो। हे वत्स! जो कुछ मांगोगे, मैं प्रदान करूंगा। मेरे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है।।१६१-१६४।।

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किमैश्वर्ये प्रयोजनम्। कल्पवृक्ष मुनिश्रेष्ठ देहि मे परमं पदम्।।१६५।।

महेन्द्र कहते हैं-हे भद्र! मेरा इन्द्रत्व तो चला गया। अब उसका क्या प्रयोजन! हे मुनिश्रेष्ठ! आप तो कल्पवृक्ष हैं। मुझे परमपद प्रदान करिये।।१६५।।

महेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः। तमुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमेव च।।१६६।।

महेन्द्र का कथन सुन कर मुनिप्रवर हंस पड़े। उन्होंने वेदोक्त साररूप सत्य वचन कहा-।।१६६।।

दुर्वासा उवाच

परं पदं विषयिणां महेन्द्रातिसुदुर्लभम्।
मुक्तिर्युष्मद्विधानां च न लये प्राकृतेऽपि च।।१६७।।
आविर्भावः सृष्टिविधौ तिरोभावो लयेऽपि च।
यथा जागरणं सुप्तिर्भवत्येव क्रमेण च।।१६८।।

यथा भ्रमति कालश्च तथा विषयिणो ध्रुवम्।
चक्रनेमिक्रमेणैव नित्यमेवेश्वरेच्छया॥१६९॥
पलमेकं भवेदेव यथा विपलषष्टिभिः। षष्टिभिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्तो द्विगुणात्ततः॥१७०॥
त्रिंशद्भिश्च मुहूर्तैश्च भवेदेव दिवानिशम्। दश पञ्च दिवारात्रिः पक्षमेकं विदुर्बुधाः॥१७१॥
पक्षाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मास एव विधीयते।
ऋतुर्द्वाभ्यां च मासाभ्यां संख्याविद्भिः प्रकीर्तितः॥१७२॥

दुर्वासा कहते हैं—हे महेन्द्र! तुम्हारे समान विषयाकृष्ट चित्त के व्यक्ति के लिये प्राकृत प्रलय में भी परमपदरूप मुक्तिपद लाभ अत्यन्त दुर्लभ है। जिस प्रकार जीवगण निद्रा तथा जागरण रूप अवस्थाद्वय का अनुभव एक के बाद एक पर्याय क्रम से करते हैं, वैसे ही जीवगण की सृष्टि काल में उत्पत्ति होती है तथा प्रलय काल में उनका विनाश हो जाता है। अर्थात् जैसे यान में स्थित चक्र का प्रान्त भाग एक बार नत तो दूसरी भाग उन्नत होकर नीचे आकर पुनः ऊपर आकर घूमता है, (चक्र = पहिया) उसी प्रकार यह काल दिन-रात्रि रूप से सदा भ्रमण करता है। उसी तरह जीवगण भी ईश्वरेच्छावशात् सर्वदा भ्रमणरत रहते हैं। ज्योतिर्विद् विद्वान् लोग समय निरूपण करते समय ६० विपल का एक पल, ६० पल का एक दण्ड, दो दण्ड का एक मुहूर्त्त, ३० मुहूर्त्त का एक दिन-रात, १५ अहोरात्र का एक पक्ष (शुक्ल एवं कृष्णपक्ष), दो पक्ष का एक मास, दो मास का एक ऋतु कहते हैं॥१६७-१७२॥

ऋतुत्रयेणायनं च ताभ्यां द्वाभ्यां च वत्सरः।
त्रिंशत्सहस्राधिकैश्च त्रिचत्वारिंशलक्षकैः॥१७३॥
वत्सरैर्नरमानैश्च युगानां च चतुष्टयम्। षष्ट्याऽधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ॥१७४॥
युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्तितम्। दिग्लक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च॥१७५॥
निपातो ब्रह्मणस्तत्र भवत्प्राकृतिको लयः।
लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्य परमात्मनः॥१७६॥
चक्षुर्निमेषः सृष्टिश्च पुनरुन्मीलने तथा।
ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्ति श्रुतौ श्रुतम्॥१७७॥
यथा पृथिव्या रेणूनामित्यूचे चन्द्रशेखरः।
एतेषां मोक्षणं नास्ति कथितानि च याति तु॥१७८॥

तीन ऋतु (छः मास) का एक अयन तथा दो अयन का एक वर्ष कहा गया है। मनुष्यों के ४३ लाख तीस हज़ार वर्ष के चारों युग कहे गये हैं। मनुष्यों के २५ हजार पांच सौ साठ युग की इन्द्र एवं मनु की आयु कही गयी है। जब दस लाख आठ हजार इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तब ब्रह्मा की आयु समाप्त होती है। यही प्राकृत लय है। परमात्मा कृष्ण का एक बार पलक झपकना ही प्रलयकाल है।

उनका नेत्र उन्मीलन काल ही सृष्टिकाल है। उनके निमेष-उन्मेष काल में ही प्रलय तथा सृष्टि हो जाती है। वेद में तो ब्रह्मा कितने हुए तथा उनकी सृष्टि कितनी हो गई, यह संख्या ही नहीं कही गई, क्योंकि पृथिवी पर जड़े रेणुकण के समान यह संख्या भी अनन्त है। यह साक्षात् शिव चन्द्रशेखर का वचन है। ये जितने देवता वर्णित हैं, इनको कभी मोक्ष ही नहीं मिलता।।१७३-१७८।।

सृष्टिसूत्रस्वरूपं[1] हि चान्यद्वृणु वरं सुर।
मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा देवेन्द्रो विस्मितो मुने।।१७९।।

"हे देवता! यही सृष्टि का रूप है। अतः यह वर मत मांगो। तुम अन्य वर मांगो।" दुर्वासा का कथन सुनते ही इन्द्र आश्चर्य में पड़ गये।।१७९।।

आत्मनः पूर्वमैश्वर्यं वरयामास तत्र वै।
तत्प्राप्स्यस्यचिरेणैवेत्युक्त्वा स प्रत्ययौ गृहम्।
इन्द्रो ललाभ ज्ञानं च न संपदापदं विना।।१८०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्वासःसुरेन्द्रसं० लक्ष्म्युपा० इन्द्रं प्रति दुर्वासःशापादिकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

अन्ततः इन्द्र ने अपने पूर्व ऐश्वर्य का वर मांगा। तब मुनि दुर्वासा ने कहा–"वह तुमको यथाशीघ्र मिलेगा।" तदनन्तर मुनि दुर्वासा अपने आश्रम चले गये। इन्द्र को भी दुर्वासा से दिव्य ज्ञान मिल गया। जबतक विपत्ति काल में विवेक उदित नहीं होता, तब तक सम्पत्ति प्राप्ति ही नहीं होती!।।१८०।।

।।षट्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

१. क. ०रूपोऽसि चा०।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्र का बृहस्पति के पास जाना, इन्द्र को बृहस्पति द्वारा प्रबोध प्रदान किया जाना

नारद उवाच

हरेर्गुणं समाकर्ण्य ज्ञानं प्राप्य पुरंदरः। किं चकार गृहं गत्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं–जब पुरन्दर ने हरिगुण सुनकर ज्ञानलाभ किया, तब उन्होंने गृह जाकर क्या कार्य किया? कृपया कहिये॥१॥

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य गुणं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः। वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिने दिने॥२॥
मुनिस्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम्। दैत्यैरसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम्॥३॥
विषण्णबान्धवां चैव बन्धुहीनां च कुत्रचित्। पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचञ्चलाम्॥४॥
शत्रुग्रस्तां च दृष्ट्वा तामगमद्वाक्पतिं प्रति। शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम्॥५॥
ध्यायमानं परं ब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम्। सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं वै विश्वतोमुखम्॥६॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम्। वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं चेष्टसेविनम्॥७॥
श्रेष्ठं च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च मानिनाम्। ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणां नेष्टं च सुरवैरिणाम्॥८॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे देवर्षि! जब देवेन्द्र ने दुर्वासा से श्रीहरि के गुणों को सुना, वे माला-चन्दनादि नाना भोग विषयों के प्रति निःस्पृह हो गये। उनमें नित्य विपुल वैराग्य उत्पन्न होने लगा। देवेन्द्र जब दुर्वासा के सान्निध्य से वापस आये, तब वे दैत्य-दानवों से पूर्ण अमरावती के किसी स्थान पर दुःखी मन से बैठे बान्धवों को देखा, कहीं पर इन्द्र ने कुछ बन्धु वर्ग का गृह खाली देखा। उन सबके माता-पिता-पत्नी आदि रहित वे गृह थे। अपनी पुरी अमरावती को शत्रुग्रस्त देख कर वे अपने गुरु वाक्पति बृहस्पति के यहां गये, जो गंगाजलस्थ होकर परब्रह्म ध्यान में मग्न थे। वे पूर्व की ओर मुख करके सूर्य के समक्ष स्थित थे। उन विश्वतोमुख, अश्रुपूर्ण नेत्र वाले, पुलकित, परमानन्दमग्न, अत्यन्त वरिष्ठ, गौरवान्वित, धार्मिक इष्टसेवक, समस्त बन्धुवर्ग में अति प्रधान, मानी, भातृ वर्ग में ज्येष्ठ तथा देववैरीगण में अप्रिय माने गये हैं।।२-८।।

दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः। प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः॥९॥
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा॥१०॥
पुनर्वरो मया लब्धो ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम्। वैरिग्रस्तां स्वीयपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः॥११॥
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः। बृहस्पतिरुवाचेदं कोपरक्तान्तलोचनः॥१२॥

गुरु को इस अवस्था में देख कर वे वहीं खड़े रह गये। एक प्रहर प्रश्चात् गुरु जब उठे, तब देवराज ने गुरुदेव के चरणकमल पर प्रणाम किया। वे उच्च स्वर से बारम्बार रुदन करके दुर्वासा मुनि के शापान्त में दुर्लभ ज्ञानोपदेश तथा असुरगण द्वारा अमरावती के आक्रान्त होने तथा उसके द्वारा अपने देवसाम्राज्य के नाश प्रभृति दुःख का कारण कहने लगे। सुबुद्धि प्रधान बृहस्पति शिष्य इन्द्र का वाक्य सुन कर क्रोध से आरक्त नेत्र होकर कहने लगे—९-१२॥

बृहस्पतिरुवाच

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्वचनं शृणु। न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ स्यात्कदाचन॥१३॥
संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा स्वप्नरूपिणी। पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि॥१४॥
सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि। चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना॥१५॥

बृहस्पति कहते हैं—हे वत्स देवेन्द्र! मैंने सब सुना। तुम रुदन मत करो। मेरा कथन श्रवण करो। नीतिशास्त्रज्ञ बुद्धिमान पण्डितगण विपत्तिकाल होने पर कभी कातर नहीं होते। सम्पत्ति-विपत्ति, यह दोनों ही स्वप्नवत् क्षणिक हैं। यह दोनों पूर्वकृत कर्मफल से ही होता है। अतएव देहधारी लोग अपने पूर्व कर्म के फलस्वरूप सम्पत्ति-विपत्ति भोगरूप कर्तृत्त्वलाभ करते हैं। अर्थात् इन दोनों का कर्त्ता व्यक्ति स्वयं है। जिस प्रकार रथ के चक्र का प्रान्तभाग निरन्तर प्रत्येक जन्म में घेरे की तरह घूर्णित होता है, इसमें शोक क्या करना?॥१३-१५॥

भुङ्क्ते हि स्वकृतं कर्म सर्वत्रापि च भारते।
शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान्॥१६॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥१७॥
इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना।
साम्नि कौथुमशाखायां संबोध्य स्वकुलोद्भवम्॥१८॥
जन्म भोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम्। अनुरूपं च तेषां वै भारतेऽन्यत्र चैव हि॥१९॥
कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम्।
कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा॥२०॥

मनुष्य सर्वत्र अपने कृत कर्म का फल भारत में प्राप्त करता है। उसने जो कुछ भी शुभ-अशुभ किया है, उसे उसका फलभोग करना ही होगा। वेद में परमात्मा कृष्ण ने यही कहा है। उन्होंने सामवेदोक्त कौथुमीशाखा में अपने कुल के लोगों के लिये यही कहा था। सभी कृत कर्मों का यदि कुछ भोग बाकी रह जाता है, तब व्यक्ति भारत में उसी के अनुरूप भोगार्थ अथवा अन्यत्र जन्म लेता है। व्यक्ति अपने किये कर्मानुरूप ही ब्रह्मशील होता है। स्वकृत कर्मानुरूप शुभ आशीर्वाद लाभ करता है। वह कर्म से ही महालक्ष्मी लाभ करता है तथा स्वकृत कर्म से ही उसे दीनता भी प्राप्त होती है।॥१६-२०॥

कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति। न हि त्यजेद्विना भोगात्तं छायेव पुरंदर॥२१॥
कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम्।
न्यूनताऽधिकता वाऽपि भवेदेव हि कर्मणाम्॥२२॥
वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समं दिने। दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाऽधिकं ततः॥२३॥

हे पुरन्दर! कोटि जन्मार्जित संचित कर्मफल भी बिना भोग के क्षयीभूत नहीं होता। वह जब तक भोग द्वारा नष्ट नहीं होता, छाया की तरह उस व्यक्ति का अनुगमन करता रहता है। कदापि पीछा नहीं छोड़ता। सभी प्रकार के कर्म ही कालभेद, देशभेद तथा पात्रभेद से कभी कम तथा कभी अधिक परिलक्षित होते हैं। सामान्य दिनों में दान का फल भी समान फल होता है, तथापि जब वही दान शुभ नक्षत्र युक्त पुण्य तिथि पर किया जाता है, तब सामान्य दिवस की तुलना में अधिक फल की प्राप्ति होती है।।२१-२३।।

समदेशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं वृषन्। देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाऽधिकं ततः॥२४॥
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च। पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्॥२५॥
यथा फलन्ति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च।
कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा॥२६॥

इसी प्रकार सामान्य स्थान पर दान करने का फल भी सामान्य होता है, तथापि तीर्थादि पुण्यक्षेत्र में उसी दान का फल करोड़ों गुना अधिक कहा गया है। इसी प्रकार से सामान्य पात्र को दान देने का फल उस दान की गई वस्तु के तुल्य होता है। वही दान निर्धन, कुटुम्बी, वेदज्ञ विप्र को देने से शतसहस्रगुना फल मिलता है। यह उसी प्रकार है, जैसे उत्तम खेत में उसी बीज के बोने से फसल अधिक पुष्पित फलित होती है। इसी प्रकार पात्र आदि के भेद से दान फल सामान्य अथवा अधिक होता है।।२४-२६।।

सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत्। अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत्।
चातुर्मास्यां पौणमास्यामनन्तफलमेव च॥२७॥
ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च। सूर्यस्य ग्रहणे चापि ततो दशगुणं फलम्॥२८॥
अक्षयायामक्षयं चाप्यसंख्यफलमुच्यते। एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिह॥२९॥

शुभ तिथि आदि रहित सामान्य दिनों में ब्राह्मण को दान करने का फल सामान्य कहा गया है। अमावस्या, सूर्य संक्रान्ति आदि के समय ब्राह्मणों को दान का फल सौ गुना होता है। चातुर्मास्य तथा पूर्णिमा को दान का फल सौ गुना होता है। चातुर्मास्य तथा पूर्णिमा को दान का अनन्त गुणित फल है। चन्द्रग्रहण काल में दान का फल कोटि गुणित तथा सूर्यग्रहण काल में दान फल दस कोटि गुना प्राप्त होता है। अक्षय तृतीया के दिन दान का अक्षय (असंख्य) फंल कहते हैं। इसी क्रम से अन्य पुण्य तिथि का फल अधिक माना गया है।।२७-२९।।

यथा दाने तथा स्नाने जपे वै पुण्यकर्मसु।
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम्॥३०॥

सामान्यदेशे दानं च विप्रे समफलं भवेत्। तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम्॥३१॥

गङ्गायां वै कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽव्ययम्।
कुरुक्षेत्रे बदर्यां च काश्यां कोटिगुणं तथा॥३२॥

यथा च वै कोटिगुणं तथा वै विष्णुमन्दिरे। केदारे वै लक्षगुणं हरिद्वारे तथा फलम्॥३३॥

इसी प्रकार दान-स्नान-जपादि पुण्य कर्म में भी काल, स्थान, पात्रभेद से फल में विभिन्नता (कम अथवा अधिक फल) देखी जाती है। इसी नियमानुरूप मनुष्य के सभी कर्मों के फल में न्यूनता, अधिकता, स्थान, काल तथा पात्रभेद से जाने। जैसे सामान्य देश में दान का तथा स्नान का सामान्य फल है, तथापि प्रयाग, देवगृह, तीर्थादि में इनका फल शत-सहस्रगुणित हो जाता है। गंगा तट पर दान का फल है कोटिगुणित तथा नारायण क्षेत्र में दान का फल वह मिलता है, जो कभी समाप्त ही नहीं हो सकता। कुरुक्षेत्र, बदरीवन तथा काशी में यह फल कोटिगुणित कहा गया है। जैसे इन स्थान में कोटिगुणित फल की प्राप्ति होती है, वैसे ही विष्णुमंदिर में भी दानादि का फल कोटिगुणित ही होता है। केदार तथा हरिद्वार में स्नान-दान का फल एक लाख गुना कहते हैं।।३०-३३।।

पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं क्रमेण च॥३४॥

पुष्कर, भास्करक्षेत्र में इन कर्म का फल दस लाख गुना कहते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र फलाधिक्य क्रम को जाने।।३४।।

सामान्यब्राह्मणे दानं सममेव फलं लभेत्।
लक्षं त्रिसंध्यं पूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये॥३५॥
विष्णुमन्त्रोपासके च बुधे कोटिगुणं फलम्।
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं गुणाधिके॥३६॥

यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च। कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदा भुवि॥३७॥

तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च।
यस्याऽऽज्ञया सृष्टिविधौ तं च नारायणं भज॥३८॥

सामान्य ब्राह्मण को दान का फल समान होगा। सन्ध्योपासक, जितेन्द्रिय, विद्वान् को दान करने का फल एक लाख गुना होगा। विष्णुमन्त्रोपासक पण्डित को दान का फल एक कोटिगुणित होगा। इसी प्रकार से पात्रभेद से दान का फलाधिक्य जानना चाहिए। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी से अपनी इच्छा एवं आवश्यकतानुरूप दण्ड, सूत्र, कसोरा आदि का निर्माण मिट्टी तथा जल से करता है, तदनुरूप सृष्टि काल में ब्रह्मा जिनकी आज्ञा का पालन करते हुए प्राणीगण की सृष्टि करते तथा उनको कर्मफल देते हैं, उन नारायण का भजन करो।।३५-३८।।

स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये।
स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः॥३९॥
महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्। विपत्तौ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥४०॥
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम्। दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदाना० लक्ष्म्यु० बृहस्पतिमहेन्द्रसंवादे कर्मफलनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

वे ही विधाता, जगत्स्रष्टा, तीनों लोक के पालक, ब्रह्मा को जन्म देने वाले हैं। वे ही संहर्त्ता के भी विनाशक तथा काल हैं। संसार में महान् संकट के समय जो मधुसूदन का स्मरण करता है, उसके लिये विपत्तिकाल में भी सम्पत्ति की उत्पत्ति हो जाती है, यह महादेव का वचन है। हे नारद! बृहस्पति ने यह कहकर देवेन्द्र का आलिंगन करके उनको शुभाशीर्वाद तथा इष्ट-बोध प्रदान किया॥३९-४१॥

॥सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

देवगुरु तथा देवगण के साथ इन्द्र का ब्रह्मलोक जाना, वहां से ब्रह्मा के साथ सभी देवताओं का वैकुण्ठ गमन, नारायण द्वारा लक्ष्मी का निवास स्थान वर्णन, उनके आदेशानुसार समुद्र मन्थन और देवगण को पुनः लक्ष्मी प्राप्ति

नारायण उवाच

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम्। बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह॥१॥
शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम्। प्रणेमुर्देवताः सर्वा गुरुणा सह नारद॥२॥
वृत्तान्तं कथयामास सुराचार्यो विधिं विभुम्।
प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलोद्भवः॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! महेन्द्र ने तब हरि का ध्यान किया और बृहस्पति को आगे रख कर वे सभी देवगण के साथ ब्रह्मा की सभा में गये। वे शीघ्रता से ब्रह्मलोक गये और देवगण, इन्द्र ने और देवगुरु बृहस्पति ने वहां पद्मासनासीन पद्मयोनि पितामह को प्रणाम किया। वहां

देवगुरु बृहस्पति ने ब्रह्मा से समस्त वृत्तान्त कह दिया। तब पितामह ने तनिक हंसते हुए इन्द्र से कहा—।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः।
बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम्।।४।।
मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहंकृतो भवेत्।।५।।
माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः।
मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत्।।६।।
जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च। गुरोर्दोषान्नीतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम्।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं—तुम मेरे वंश में उत्पन्न मेरे पौत्र बृहस्पति के बुद्धिशाली शिष्य हो। साथ ही देवाधिपति भी हो। दक्ष प्रजापति तुम्हारे नाना हैं, तुम स्वयं विक्रमी और विष्णुभक्त भी हो। तुम्हारा तीनों कुल शुद्ध है। अतः ऐसे शुद्ध व्यक्ति को अहंकार कैसे हो सकता है? जिसकी माता साध्वी पतिव्रता हों, पिता शुद्ध एवं जितेन्द्रिय हों, मातामह एवं मातुल ऐसे गुणी हों, क्या वह अहंकार में मत्त होगा? कोई व्यक्ति पितृदोष, मातामह के दोष, गुरु के दोष तथा शिक्षा दोष से ही परमाराध्य हरि का विद्वेषी होता है। यह निश्चित है।।४-७।।

सर्वान्तरात्मा भगवान्सर्वदेहेष्ववस्थितः। यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत्।।८।।

सभी जीवों के अन्तःकरण में विद्यमान सर्वव्यापी श्रीहरि जिसके शरीर से जब बहिर्गत् हो जाते हैं, उसका देह उसी समय शव तथा अपवित्र हो जाता है।।८।।

मनोऽहमिन्द्रियेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्करः। असवः प्रकृतिर्विष्णुर्बुद्धिर्भगवती सती।।९।।
निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
आत्मनः प्रतिबिम्बं च जीवो भोगी शरीरभृत्।।१०।।

मैं इन्द्रियों का अधिष्ठाता मन होकर सभी प्राणीगण में स्थित रहता हूं। इन्द्रियों का अधीश्वर मन मुझे ही जानो। शंकर ज्ञानरूप हैं। विष्णु प्राणरूप हैं। सती भगवती प्रकृति हैं, वे हैं बुद्धिरूपा। वे बुद्धिरूपेण सर्व जीवसमूह में स्थित रहती हैं। निद्रादि सर्वशक्तिसमूह प्रकृति की एक-एक कला है। यह भोगदेहस्थ जीव तो हरि परमात्मा का प्रतिबिम्ब है।।९-१०।।

आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यान्ति ससंभ्रमात्। यथा वर्त्मनि गच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः।।११।।
अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महान्विराट्।
वयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया।।१२।।

जैसे राजा जब राजमार्ग पर चलता है, तब उसके सभी अनुचर उसका अनुगमन करते हैं, उसी प्रकार जब आत्मरूप परमात्मा हरि देह से बहिर्गत् होते हैं, तब देहस्थ इन्द्रियादि सभी वेग से उसका अनुगमन करते हैं। मैं, शिव, अनन्त, विष्णु, महान् विराट्, धर्म प्रभृति जिन प्रभु के भक्त हैं, तुमने उनके निर्माल्य पुष्प का अपमान किया।।११-१२।।

शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च। तच्च दुर्वाससा दत्तं दैवेनान्यकृतं सुर॥१३॥

तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जतश्च्युतम्।
सर्वेषां वै सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत्॥१४॥

देवेन वञ्चितस्त्वं च दैवं च बलवत्तरम्। भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः॥१५॥

हे इन्द्र! मुनि दुर्वासा ने तो तुमको वह पुष्प प्रदान किया था, जिससे स्वयं शिव ने प्रभु चरणकमल की पूजा किया था, तथापि दुर्भाग्य से तुमने उस परम पवित्र पुष्प का अपमान कर दिया। वह कृष्ण के चरण-कमल से लिया गया पुष्प जिसके भी मस्तक पर रहता है, वह सभी देवताओं द्वारा पूज्य हो जाता है। तुम दैवात् वंचित कर दिये गये। अतः दैव ही बलवत्तर है। जो दुर्भाग्यशाली अज्ञ व्यक्ति है, उसकी रक्षा कौन कर सकेगा?।।१३-१५।।

कृष्णं न मन्यते यो हि श्रीनाथं सर्ववन्दितम्।
प्रयाति रुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहाय तम्॥१६॥
शतयज्ञेन या लब्धा दीक्षितेन त्वया पुरा।
सा श्रीर्गताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात्॥१७॥

जो कोई लक्ष्मीनाथ तथा सर्वजनवन्दित कृष्ण का सम्मान नहीं करता, उस व्यक्ति को भगवान् की प्रेयसी महालक्ष्मी त्याग कर चली जाती हैं। तुमने पूर्वकाल में १०० अश्वमेध करके जो सम्पदा प्राप्त किया था, वे लक्ष्मी तुम्हारे द्वारा कृष्णनिर्माल्य पुष्प का अनादर करते देख कर तुमको त्याग कर चली गयीं!।।१६-१७।।

अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह।
निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरात्॥१८॥

अब तुम बृहस्पति तथा मेरे सहित वैकुण्ठ चल कर स्तव स्तुति द्वारा श्रीपति प्रभु को सन्तुष्ट करो। उनकी कृपा से तुम पूर्वलक्ष्मी लाभ कर सकोगे।।१८।।

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह। शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं यत्र श्रीशस्तया सह॥१९॥
तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्। दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा॥२०॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकोटिसमप्रभम्। शान्तं चानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम्॥२१॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या स्तुतं नतम्। भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिषेवितम्॥२२॥
तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः। भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्॥२३॥

वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः।
रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताश्च ताः॥२४॥

यह कहने के अनन्तर ब्रह्मा इन्द्र तथा समस्त देवगण के साथ उस वैकुण्ठ धाम में त्वरा पूर्वक गये जहां नारायण विराजमान रहते हैं। वहां जाकर उन्होंने (ब्रह्मा ने) स्वतेज से देदीप्यमान, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न काल के शतकोटि सूर्यवत् कान्तिमान् शान्तमूर्त्ति आदि-मध्य-अन्त रहित, चतुर्भुज पार्षदों एवं सरस्वती द्वारा सेवित, भक्ति देवी, चारों वेद एवं गंगा देवी से आराधित अनन्त स्वरूप सनातन तेजस्वी भगवान् परम ब्रह्म लक्ष्मीनारायण का दर्शन करके ने नतमस्तक प्रणाम किया तथा भक्ति का उद्रेक हो जाने के कारण प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्र होकर उन्होंने हाथ जोड़ कर उन ब्रह्मण्यदेव की स्तुति करके ब्रह्मा ने करबद्ध होकर समस्त वृत्तान्त पुरुषोत्तम देव से कहा। उस समय अपने स्वर्गाधिकार से च्युत देवता रो रहे थे।।१९-२४।।

स चापश्यत्सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम्। वस्त्रभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम्॥२५॥
शोभाशून्यं हतश्रीकं परिवारैरनावृतम्। उवाच कातरं दृष्ट्वा विपन्नभयभञ्जनः॥२६॥

विपन्न भक्तों का भय हरण करने वाले भगवान् ने उन विपत्तिग्रस्त, भय से स्तब्ध, देवगण को वस्त्राभूषण रहित एवं वाहन रहित, शोभाहीन श्रीहत कातर एवं प्रतिभाहीन देख कर कहा--।।२५-२६।।

नारायण उवाच

मा भैर्ब्रह्मन्हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते।
दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम्॥२७॥
किञ्च मद्वचनं किञ्चिच्छ्रूयतां समयोचितम्। हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम्॥२८॥

श्री नारायण कहते हैं--हे ब्रह्मन्! देवगण! आप सब क्यों भयभीत हैं? मेरे रहते क्या भय? मैं आप सबको परमैश्वर्य वर्द्धन करने वाली अचला लक्ष्मी प्रदान करूंगा, तथापि इतिपूर्व आप लोग मेरा भी कथन श्रवण करें। यह बात समयोचित, हितप्रद, सत्य, सारभूत तथा परिणाम में सुखावह है।।२७-२८।।

जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम्।
यथा तथाऽहं मद्भक्तैः पराधीनः स्वतन्त्रकः॥२९॥
यो यो रुष्टो हि मद्भक्ते मत्परे हि निरङ्कुशः।
तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम्॥३०॥
दुर्वासाः शङ्करांशश्च वैष्णवो मत्परायणः।
तच्छापादागतोऽहं च सश्रीको वो गृहादपि॥३१॥

पृथिवी के असंख्य प्राणी तथा असंख्य विश्व में अनगिनत लोग सदा मेरे ही अधीन भले ही हैं,

तथापि मैं सर्वथा स्वतन्त्र होकर भी अपने भक्तों के अधीन रहता हूं। जो कोई निरंकुश होकर मुझमें तत्पर भक्तों के प्रति रुष्ट रहता है, उसके गृह में मैं तथा लक्ष्मी कदापि नहीं रहते। यह निश्चित है। दुर्वासा शंकर के अंश तथा मेरे भक्त वैष्णव हैं। उनके शाप के कारण मैं तथा लक्ष्मी आप लोगों के यहां से चले आये।।२९-३१।।

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी च शिलार्चनम्।
न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति।।३२।।
मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र यत्र भवेत्सुराः।
महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवात्।।३३।।
मद्भक्तिहीनो यो मूढो यो भुङ्क्ते हरिवासरे।
मम जन्मदिने चापि याति श्रीस्तद्गृहादपि।।३४।।
मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम्।
यत्रातिथिर्न भुङ्क्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात्।।३५।।

जिस गृह में शंखध्वनि, तुलसी तथा शालग्राम शिला की पूजा नहीं होती, जहां विप्रगण को भोजन नहीं कराया जाता, वहां लक्ष्मी नहीं रुकती। हे देवताओं! जहां मेरे भक्तों की किंवा मेरी निन्दा होती है, उसे अपना अपमान मानती हुई महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर वहां से चली जाती हैं। जो मूढ़ मेरी भक्ति से रहित होकर एकादशी को भी भोजन करता है, मेरे जन्मदिन पर भोजन करता है, वहां से भी लक्ष्मी चली जाती हैं। जो मेरे नाम का, कन्या का विक्रय करता है, जहां अतिथि भोजन नहीं पाते, उस गृह से मेरी प्रिया लक्ष्मी देवी चली जाती हैं।।३२-३५।।

पापिनां यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजिनाम्।
महारुष्टा ततो याति मन्दिरात्कमलालया।।३६।।
शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनश्च वाडवः।
याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी।।३७।।
शूद्राणां सूपकारो यो ब्राह्मणो वृषवाहकः।
तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात्।।३८।।
विप्रो यवनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः।
ततोऽपमानभीता च वैष्णवी याति तद्गृहात्।।३९।।

जो शूद्रान्नभोजी पातकी लोगों के गृह में जाता है, उसके भी गृह से महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं। जो शूद्रों का शवदाह करता है, दरिद्रता, भाग्यहीनता के कारण यह अकार्य करता है, कमला क्रोध के साथ उसके गृह का त्याग कर देती हैं। जो ब्राह्मण होकर शूद्रों का भोजन पाक करता है, हल चलाता है, उसका पानी न पीना पड़े, इस भय से लक्ष्मी उसका गृह त्याग देती हैं। जो

ब्राह्मण यवन सेवक, मन्दिर से जीविका चलाने वाला देवल, शूद्रों का यज्ञ कराता है, ऐसे विप्र के गृह से अपमान भय से लक्ष्मी चली जाती हैं।।३६-३९।।

विश्वासघाती मित्रघ्नो नरघाती कृतघ्नकः।
अगम्यां याति यो विप्रो मद्भार्या याति तद्गृहात्॥४०॥
अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः।
ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च याति देवी च तद्गृहात्॥४१॥

जो विश्वासघाती, मित्रघाती, नरघाती, कृतघ्न है, जो अगम्या स्त्री से समागम करता है, ऐसे विप्र के गृह से मेरी पत्नी लक्ष्मी चली जाती हैं। जो ब्राह्मण निन्दक, हिंसक, क्रूर, अशुद्ध हृदय हैं, शूद्र द्वारा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हैं, उसके गृह से देवी चली जाती हैं।।४०-४१।।

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः।
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः॥४२॥

जो विप्र व्यभिचारिणी नारी का पुत्र है, जिस नारी का पति महापातकी है, उसका पुत्र है, ऐसे लोगों का अन्न खाने वाला, पतिपुत्र रहित स्त्री का अन्न खाने वाला है, उसके गृह से जगन्माता लक्ष्मी चली जाती हैं।।४२।।

तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम्।
जिह्मो वा मलवासाश्च सा प्रयाति च तद्गृहात्॥४३॥
सूर्योदये च द्विर्भोजी दिवाशायी च वाडवः।
दिवा मैथुनकारी च तस्माद्याति हरिप्रिया॥४४॥

जो नखों से तृण तोड़ता है, भूमि खनन करता है, कपटी है, नखों से भूमि पर लिखता है, कपटी तथा मलिन वस्त्र पहनता है, लक्ष्मी उसके गृह से चली जाती हैं। जो सूर्योदय काल में दो बार आहार ग्रहण करता है, दिन में शयन करने वाला, दिन में मैथुनरत रहने वाला ब्राह्मण है, उसके गृह से हरिप्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं।।४३-४४।।

आचारहीनो यो विप्रो यश्च शूद्रप्रतिग्रही।
अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माल्लोला प्रयाति च॥४५॥
स्निग्धपादश्च नग्नो वा यः शेते ज्ञानदुर्बलः।
शश्वद्धर्माऽतिवाचालो याति वै तद्गृहात्सती॥४६॥

जो ज्ञानहीन विप्र आचार रहित है, शूद्र से दान लेता है, अदीक्षित है, उस मूढ़ के गृह से चपला लक्ष्मी चली जाती हैं। जो ज्ञानहीन तैल चुपड़े पैर से तथा नग्न होकर शयन करते हैं, नित्य ही धर्म की बातों में वाचालता करते हैं, उसके गृह से सती लक्ष्मी चली जाती हैं।।४५-४६।।

शिरस्नातश्च तैलेन योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत्।
स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा याति च तद्गृहात्॥४७॥

जिसने शिर पर्यन्त स्नान कर लिया, तदनन्तर अन्य अंग में तैल लगाता है, जो अपने अंगों से वाद्य बजाता है, लक्ष्मी देवी उसके गृह से चली जाती हैं।।४७।।

व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः।
विष्णुभक्तिविहीनो यस्तस्माद्याति हरिप्रिया॥४८॥
ब्राह्मणान्निन्दयेद्यो हि तान्वै द्वेष्टि च संततम्।
हिंसाकारी दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः॥४९॥

जो द्विज व्रत, उपवास, सन्ध्यावन्दन रहित हैं, विष्णुभक्ति से भी रहित हैं, हरिप्रिया लक्ष्मी उसके यहां से चली जाती हैं। जो व्यक्ति ब्राह्मण की निन्दा करता है, सदा ब्राह्मण से द्वेष रखता है, हिंसक तथा दया रहित है, उनके यहां से सबको उत्पन्न करने वाली देवी लक्ष्मी चली जाती हैं।।४८-४९।।

यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं शुभम्। तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला॥५०॥

यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह।
सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम्॥५१॥
यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम्।
तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्र सा तिष्ठति स्वयम्॥५२॥

जहां-जहां पर हरि की आराधना तथा उनके गुणों का कीर्त्तन किया जाता है, सर्वमंगलकारिणी लक्ष्मी देवी उस स्थान में सदा विराजमान रहती हैं। हे लोकपितामह! ब्रह्मन्! जहां परम पुरुष श्रीकृष्ण अथवा उनके भक्तगण की प्रशंसा होती है, कृष्णप्रिया कमला देवी सदा वहीं विराजमान रहती हैं। जहां शंखध्वनि, शालग्राम शिला, तुलसीदल तथा जगत्पति श्रीहरि सेवा, वंदन, ध्यान से पूजित होते हैं, वहां लक्ष्मी देवी स्वयं विराजित रहती हैं।।५०-५२।।

शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम्। दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी॥५३॥
विप्राणां सेवनं यत्र तेषां वै भोजनं शुभम्। अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती॥५४॥

जहां पर शिवलिङ्गार्चन, शुभ शिवनाम कीर्त्तन, दुर्गा की आराधना, उनका गुणगान होता है, वहां कमल निवासिनी लक्ष्मी निवास करती हैं। जहां कहीं ब्राह्मणों की अर्चना, ब्राह्मण भोजन तथा सभी देवगण की पूजा होती है, वहां पद्ममुखी सती लक्ष्मी निवास करती हैं।।५३-५४।।

इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान्रमामाह रमापतिः। क्षीरोदसागरे जन्म लभस्व कलया रमे॥५५॥

इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च।
मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज॥५६॥

रमापति प्रभु ने अपने आश्रय में समागत देवताओं से यह कहा तथा अपनी प्रिया कमला को अपने एक अंश से क्षीरसागर में जन्म लेने का आदेश दिया। तदनन्तर उन्होंने पुनः ब्रह्मा से कहा कि "हे पद्मसंभव! आप समुद्रमन्थन करके देवगण को लक्ष्मी प्रदान करिये"।।५५-५६।।

इत्युत्त्वा कमलाकान्तो देवश्चान्तरधान्मुने। देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम्।।५७।।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा कर्मं कृत्वा च भाजनम्।
रज्जुं कृत्वा वासुकिं च ममन्थुश्चैव सागरम्।।५८।।

हे मुनिवर! कमलाकान्त देवगण से यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। इसके दीर्घकाल के उपरान्त देवता लोग क्षीरसागर के तट पर एकत्र हुए। उन्होंने मन्दर पर्वत को मंथन दण्ड (मथानी) बना कर कच्छप को पात्र तथा मथानी की रस्सी वासुकी नाग को बना कर सागर का मंथन किया।।५७-५८।।

धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम्।
नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं पुरातनीम्।।५९।।

वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने। सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती।।६०।।
देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च। ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचिकाम्।।६१।।
प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैन्यैर्ग्रस्तं भयङ्करैः। महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद।।६२।।

इसी मन्थन से धन्वन्तरी, अमृत, इच्छित उच्चैःश्रवा अश्व, नाना रत्न, हस्तिरत्न (ऐरावत) तथा पुरातन लक्ष्मी पुनः प्राप्त हो गईं। हे मुनिवर! विष्णुप्रिया, पतिपरायणा, सागरात्मजा ने क्षीरशायी सर्वेश्वर मनोहर आकृति वाले भगवान् के कण्ठ में वनमाला पहनाया। ब्रह्मा, शिव प्रभृति देवगण द्वारा अभिवन्दिता, पूजिता, लक्ष्मी ने इन्द्र के ब्रह्मशाप मोचनार्थ देवगण के गृह में दृष्टिपात किया। हे नारद! महालक्ष्मी ने कृपा पूर्वक देवगण को वर प्रदान किया। इससे देवगण ने दुरन्त दैत्यगण द्वारा अधीकृत अपनी लक्ष्मी पुनः प्राप्त कर लिया।।५९-६२।।

इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।६३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० समुद्रमथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

मैंने लक्ष्मी का परम मंगलमय, सुखप्रद सारभूत आख्यान कहा, जो अत्यन्त उत्तम है। अब क्या सुनने की इच्छा है।।६३।।

।।अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्र द्वारा लक्ष्मीपूजा करने में महालक्ष्मी का मन्त्र, ध्यान, पूजाविधि तथा स्तवों का कथन

नारद उवाच

हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम्। ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रादिकं वद॥१॥
हरिणा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा। शक्रेण भ्रष्टराज्येन सार्धं सुरगणेन च॥२॥
ध्यानेन पूजिता केन विधिना केन वा पुरा।
केन स्तुता वा स्तोत्रेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पुरुषोत्तम! ईश्वर ज्ञानमूलक, मंगलप्रद, अति श्रेष्ठ लक्ष्मी देवी के उपाख्यान के साथ अभीप्सित हरिगुण कीर्त्तन श्रवण किया। सम्प्रति लक्ष्मी का ध्यान तथा स्तव कहिये। पूर्वकाल में ब्रह्मादि देवगण तथा राज्यभ्रष्ट देवताओं के साथ देवराज इन्द्र ने किस ध्यान के द्वारा उनकी पूजा किया था? किस उपाय द्वारा, किस स्तव से उनको संतुष्ट किया था? यह वृत्तान्त मुझसे कहिये॥१-३॥

नारायण उवाच

स्नात्वा तीर्थे पुरा शुक्रो धृत्वा धौते च वाससी।
घटं संस्थाप्य क्षीरोदे देवषट्कमपूजयत्॥४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
एतान्भक्त्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिस्तथा॥५॥
तत्राऽऽवाह्य महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम्। पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे वत्स! पूर्वकाल में इन्द्र ने तीर्थ में स्नानोपरान्त धुले वस्त्र पहन कर क्षीरसागर के तट पर घट संस्थापित किया था और गणपति, दिनपति, भास्कर अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती, इन छह देवता की पूजा पुष्पचन्दनादि से किया। उन्होंने ब्रह्मा को पुरोहित बनाया तथा वहीं परमैश्वर्य स्वरूपा महालक्ष्मी की पूजा बृहस्पति के साथ आवाहनादि से किया था॥४-६॥

पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ तथा। देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने॥७॥
पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्।
ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणे पुरा। ध्यानेन हरिणा तेन तन्निबोध वदामि ते॥९॥

हे नारद! मुनिवर! उस समय इन्द्र, मुनिगण, पुरोहित, बृहस्पति, सभी ब्राह्मण, देवता तथा

देवाधिदेव परम ज्ञानी महादेव ने चन्दन युक्त पारिजात पुष्प लेकर महालक्ष्मी का ध्यान के साथ महालक्ष्मी की पूजा किया। पूर्वकाल में भगवान् द्वारा ब्रह्मदेव को जो ध्यान बतलाया था, वह कहता हूं। सावधानी पूर्वक श्रवण करो।।७-९।।

सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम्। शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकरां वराम्।।१०।।

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम्।
प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम्।।११।।
रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रम्यां सुस्थिरयौवनाम्।।१२।।
सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम्।
ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा चोपहारैः सुसंयुतः।।१३।।

ध्यान—भगवती सहस्रदलकमल की कर्णिका में सदा स्थित शरत्कालीन करोड़ों पूर्णचन्द्र की ज्योत्स्ना से शोभिता, स्वतेज से दीप्त, श्रेष्ठा, सुखदृश्या, मनोहरा, तप्त स्वर्णवत् शोभायमान, मूर्त्तिमती सती जो रत्न भूषणों से भूषिता हैं, पीतवस्त्रधारिणी, तनिक मुस्कराती हुई, रम्या, स्थिरयौवना, सभी सम्पत्ति प्रदान करने वाली जो महालक्ष्मी हैं, उन शुभा देवी का ध्यान करता हूं। यह ध्यान करके इन्द्र ने उनके समक्ष उपहार प्रस्तुत किया।।१०-१३।।

संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोडश।
ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं[1] मन्त्रपूर्वकम्।।१४।।

देवेन्द्र ने ध्यानोपरान्त नाना उपहार देकर ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट मन्त्र से देवी की पूजा भक्तिभाव से षोडशोपचार द्वारा किया।।१४।।

प्रशंस्यानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च। अमूल्यरत्नखचितं निर्मितं विश्वकर्मणा।
आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम्।।१५।।

उन्होंने इस मन्त्र से उपहार प्रदान किया था "हे महालक्ष्मी! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित परम यत्न से प्रस्तुत महामूल्य रत्नों से निर्मित पहला उपहार यह विचित्र आसन अर्पित कर रहा हूं। ग्रहण करिये।।१५।।

शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम्। पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये।।१६।।

हे कमलवासिनी! सबके द्वारा वन्दनीय यह वांछित पापरूपी काष्ठ को जलाने हेतु जाज्वल्यमान अग्निरूप यह गंगाजल ग्रहण करिये। यह स्नानार्थ ग्रहण करें।।१६।।

पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम्। शङ्खगर्भस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि।।१७।।

---

१. क. ०कं भक्तिपू०।

यह पुष्पचन्दन, दूर्वा आदि युक्त जाह्नवी जल शंख में रखा तथा अत्यन्त शुद्ध हैं, इसे ग्रहण करिये। आप कमलवासिनी इसे स्वीकार करिये।।१७।।

सुगन्धियुक्तं तैलं च सुगन्धामलकीजलम्। देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये॥१८॥

यह सुगन्धित तैल, सुगन्धित आंवला युक्त जल देह सौन्दर्य का मूल कारण है। हे श्रीहरिप्रिये! इसे आप ग्रहण करें।।१८।।

वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम्।
कृष्णकान्ते पवित्रो वै धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥१९॥

मलयाचलसंभूतं वृक्षसारं मनोहरम्। सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम्॥२०॥

हे कृष्णकान्ते! यह वृक्ष के गोंदरूप से निकला धूप गन्धद्रव्यों से मिश्रित तथा अतीव पवित्र है। इसे आप ग्रहण करें। हे देवी! मलयाचल में उगे चन्दन वृक्ष के उत्तम सार रूप सुगन्धित चन्दन को ग्रहण करें।।१९-२०।।

जगच्चक्षुःस्वरूपं च ध्वान्तप्रध्वंसकारणम्। प्रदीपं शुद्धरूपं च गृह्यतां परमेश्वरि॥२१॥

हे परमेश्वरी! जगत् के चक्षुरूप घोर रात्रि में पथ से भटके मनुष्यों की प्राणरक्षा के कारण, शुद्ध रूप दीपक को ग्रहण करिये।।२१।।

नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम्। नानास्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥२२॥

हे देवी! नाना भोज्य वस्तु युक्त, मिष्ठान्न आदि अनेक रस युक्त अत्यन्त स्वादप्रद नैवेद्य ग्रहण करिये।।२२।।

अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम्। तुष्टिदं पुष्टिदं चान्नं मधुरं प्रतिगृह्यताम्॥२३॥

हे भगवती! यह अन्न ब्रह्मस्वरूप तथा प्राणरक्षा का कारण, तुष्टि-पुष्टि प्रदाता तथा मधुर है। इसे ग्रहण करिये।।२३।।

शाल्यक्षतसुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम्। सुस्वादु रम्यं पद्मे च परमान्नं प्रगृह्यताम्॥२४॥

हे पद्मे! तण्डुल, शर्करा, दुग्ध, घृतयुक्त, उत्तम रूप से पकाया गया यह सुस्वादु परमान्न निवेदित है। इसे आप ग्रहण करें।।२४।।

शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम्।
मया निवेदितं लक्ष्मि स्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम्॥२५॥

हे देवी! शर्करा, दुग्ध, घृतादि द्वारा मनोहर, स्वादिष्ट यह (सेंवई) स्वस्तिक भक्ति के साथ अर्पित है। ग्रहण करें।।२५।।

नानाविधानि रम्याणि पक्वानि च फलानि तु।
स्वादुरस्यानि कमले गृह्यतां फलदानि च॥२६॥

हे कमले! यह स्वादु, रसपूर्ण, नाना प्रकार के रम्य पके फल आपको अर्पित करता हूं। ग्रहण करें।।२६।।

सुरभिस्तनसंभूतं सुस्वादु सुमनोहरम्। मर्त्यामृतं च गव्यं वै गृह्यतामच्युतप्रिये॥२७॥

हे देवी! सुरभि गौ के स्तन से निकला सुस्वादु मनोहर मनुष्यों के लिये अमृतस्वरूप स्वादिष्ट दुग्ध ग्रहण करिये।।२७।।

सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षरसोद्भवम्। अग्निपक्वमपक्वं वा गुडं वै देवि गृह्यताम्॥२८॥

हे देवी! गन्ने के पौधे से निकला स्वादिष्ट, रस युक्त पक्व, अपक्व गुड़ को ग्रहण करिये।।२८।।

यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम्। सुपक्वयुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम्॥२९॥

हे भगवती! जौ, गेहूं के आटे से युक्त (बना) मेरे द्वारा अर्पित स्वस्तिक युक्त इस मालपूआ को स्वीकार करें।।२९।।

सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम्।
मया निवेदितं देवि पिष्टकं प्रतिगृह्यताम्॥३०॥

हे देवी! चावल के चूर्ण को पका कर तथा स्वस्तिक युक्त रस मिष्ठान्न को स्वीकार करिये।।३०।।

पार्थिवं वृक्षभेदं च विविधैर्द्रव्यकारणम्। सुस्वादुरससंयुक्तमैक्षवं प्रतिगृह्यताम्॥३१॥

हे देवी! यह धरती पर उत्पन्न सभी प्रकार के मिष्ठान्न के कारण स्वादिष्ट मीठे रस से युक्त गन्ने को स्वीकार करिये।।३१।।

शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम्। कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम्॥३२॥

हे कमले! शीतल वायुवाहक, गर्मी से तप्त व्यक्ति हेतु सुखप्रद श्वेत चामर को स्वीकार करिये।।३२।।

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
जिह्वाजाड्यच्छेदकरं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्॥३३॥

हे भगवती! अब आप अति रमणीय, कर्पूर आदि से सुवासित, जिह्वा की जड़ता का नाशक ताम्बूल ग्रहण करिये।।३३।।

सुवासितं शीतलं च पिपासानाशकारणम्। जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम्॥३४॥

हे देवी! अब आप सुवासित, शीतल, पिपासा नाशक जगत् के जीवन जल को ग्रहण करिये।।३४।।

देहसौन्दर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम्। कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्॥३५॥

हे देवी! यह कपास तथा रेशम कीट से निर्मित सूती एवं रेशमी वस्त्र ग्रहण करें, जो देह सौन्दर्य का बीजरूप और इसकी शोभा बढ़ाने वाला है।।३५।।

रत्नस्वर्णविकारं च देहसौख्यविवर्धनम्।
शोभाधारं[1] श्रीकरं च भूषणं प्रतिगृह्यताम्[2]॥३६॥

हे देवी! रत्न-स्वर्ण से बने, शरीरसुख वर्द्धक, शोभा आधार रूप सौन्दर्यप्रद **आभूषणों** को ग्रहण करिये। जो श्रीप्रद हैं॥३६॥

नानाकुसुमनिर्माणं बहुशोभाप्रदं[3] परम्। सुरलोकप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम्॥३७॥

हे देवी! नाना पुष्पों से निर्मित अत्यन्त शोभाप्रद, सुरमण्डली को प्रिय लगने वाली शुद्ध **माला** को ग्रहण करें॥३७॥

शुद्धिदं शुद्धिरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम्॥३८॥

हे देवी! जितने प्रकार की मांगलिक वस्तु हैं, उनमें से सर्वश्रेष्ठ, शुद्धिप्रद, शुद्धस्वरूप, सुगन्धि द्रव्यों से उत्पन्न मनोहर **गन्ध** ग्रहण करिये॥३८॥

पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा।
गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम्॥३९॥

हे कृष्णकान्ते! पवित्र तीर्थों से एकत्रित, निर्मल, सदैव पवित्रताप्रद मनोरम **आचमनीय** जल ग्रहण करिये॥३९॥

रत्नसारैः संग्रथितं पुष्पचन्दनसंयुतम्। रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥४०॥

महामूल्यवान् रत्न निर्मित, पुष्प-चन्दनादि युक्त, रत्नभूषणभूषित **सुन्दर शय्या** ग्रहण करिये॥४०॥

यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामतिदुर्लभम्।
देवभूपाढ्यभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम्॥४१॥

हे देवी! जो-जो अपूर्व द्रव्य पृथिवी पर अत्यन्त दुर्लभ हैं, जिसे देवता तथा राजा लोग भी चाहते हैं, मेरे द्वारा ऐसी **सभी वस्तु** को आप ग्रहण करें॥४१॥

द्रव्याण्येतानि दत्त्वा वै मूलेन च पुरंदरः।
मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः॥४२॥

जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह। मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वदा॥४३॥

एवंविध इन्द्र ने सभी वस्तु उन-उन वस्तु के उपरोक्त मूलमन्त्रों द्वारा देवी को प्रणाम करके अर्पित किया। तत्पश्चात् सविधि भक्ति के साथ देवी के मूल मन्त्र का दस लक्ष जप किया। इससे उनको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो गई। ब्रह्मा ने उनको यह मन्त्र तथा कल्पवृक्ष भी सदा के लिये प्रदान किया॥४२-४३॥

१. ख. ०धानं।
२. श्रीः प्रगृह्यताम् इति क्वचित् पाठः।
३. शोभाश्रयमिति च पाठः।

लक्ष्मीर्माया कामवाणी ततः कमलवासिनी।
स्वाहान्तो वैदिको मन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः॥४४॥
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा। कुबेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान्॥४५॥

यह मन्त्रराज इस प्रकार है–लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), वाणी (ऐं) कह कर चतुर्थ्यन्त कमलवासिनी स्वाहा कहे। यह वैदिक द्वादशाक्षर मन्त्रराज हो जाता है। मन्त्रोद्धार है–"श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा।" इस मन्त्र का जप करके कुबेर ने सभी प्रकार का ऐश्वर्य लाभ कर लिया था॥४४-४५॥

राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च। मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपवतीपतिः॥४६॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च। एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद॥४७॥

इस मन्त्र के जप से कुबेर राजराजेश्वर, दक्ष, सावर्णि मनु, मंगल सप्तद्वीपा पृथिवी के अधिपति कहे गये। इसी मन्त्र बल से प्रियव्रत, उत्तानपाद, केदार आदि क्षत्रिय लोग राजा कहलाये। हे नारद! ये लोग इसी मन्त्र से सिद्धिलाभ कर सके थे॥४६-४७॥

सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीर्ददौ शक्राय दर्शनम्। रत्नेन्द्रव्यूहखचितविमानस्था वरप्रदा॥४८॥

इन्द्र ने दस लक्ष मन्त्र जप सम्पन्न कर लिया तब मन्त्रसिद्ध इन्द्र को महालक्ष्मी ने दर्शन दिया। वे रत्नों के द्वारा जड़ित विमान पर वरप्रदा होकर स्थित थीं॥४८॥

सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्ती त्विषा च सा। श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता॥४९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारिका। बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभा॥५०॥
दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तां तुष्टाव पुरंदरः।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः॥५१॥
ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः। सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च॥५२॥

उन भगवती के अपने प्रभापुंज से सप्तद्वीपा पृथिवी आच्छादित थी। उन श्वेत चम्पा के रंग की आभा से पूर्ण रत्नभूषण भूषिता, मृदु मंद मुस्कान से युक्त प्रसन्न मुख वाली, भक्तों पर अनुग्रहार्थ तत्परा, रत्नमालाधारिणी, कोटि चन्द्रवत् कान्तियुता, शान्तमूर्त्ति, जगज्जननी को प्रकट देख कर इन्द्र ने उनका स्तव करना प्रारम्भ कर दिया। वे इन्द्र पुलकित अंग वाले, अश्रुपूर्ण नेत्र युक्त हाथ जोड़े हुए थे। उन्होंने संयत होकर ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त सर्वाभीष्टदायक वैदिक स्तोत्रराज का पाठ किया॥४९-५२॥

इन्द्र उवाच

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः॥५३॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः। पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥५४॥

देवराज इन्द्र कहते हैं—ॐ मंगलप्रदा महालक्ष्मी माता आप कमलवासिनी नारायणी, कृष्णप्रिया, सर्वतत्व साररूप पद्मा हैं। आप पद्मपत्रवत् नेत्रों वाली, पद्ममुखी पद्मासनासीना, पद्मिनी वैष्णवी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम!।।५३-५४।।

सर्वसंपत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः॥५५॥

हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः॥५६॥

आप सर्वसम्पत्तिरूपा, सब कुछ देने वाली, सुखप्रदा, मोक्षप्रदा, सिद्धिप्रदा, हरिभक्तिप्रदा, हर्षप्रदा हैं। आप कृष्ण के वक्ष पर स्थिता, कृष्णस्वामिनी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम!।।५५-५६।।

कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नाढ्यायै नमो नमः। संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः॥५७॥
सस्याधिष्ठातृदेव्यै च सस्यलक्ष्म्यै नमो नमः। नमो बुद्धिस्वरूपायै[1] बुद्धिदायै[2] नमो नमः॥५८॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे। स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥५९॥

आप कृष्णशोभास्वरूपा, रत्नों से आभूषिता, सभी सम्पदा की अधिष्ठातृ देवी, महादेवी हैं। आप सत्य की अधिष्ठातृ देवी, सभी फसल की अधिष्ठातृ देवी, सस्यलक्ष्मी हैं। आप बुद्धिरूपा, बुद्धिप्रदा हैं। आप वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, क्षीरसागर में लक्ष्मी, इन्द्र के यहां स्वर्गलक्ष्मी, राजा के यहां राजलक्ष्मी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम!।।५७-५९।।

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गृहे च गृहदेवता। सुरभिः सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥६०॥

अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये।
स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥६१॥

आप गृहस्थों के यहां गृहलक्ष्मी, गृहदेवता हैं। आप गौवों में सुरभि हैं तथा यज्ञपत्नी दक्षिणा हैं। आप देवमाता अदिति तथा कमलवन में कमला हैं। आप हवि प्रदान काल में स्वाहा तथा कव्यदान काल में (पितरों को) स्वधा हैं।।६०-६१।।

त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुंधरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥६२॥
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा[3] च शुभानना। परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥६३॥

आप विष्णुस्वरूपा हैं। आप सबकी आधाररूपा वसुंधरा (पृथिवी) हैं। आप शुद्धसत्वरूपा तथा सदा नारायण परायणा हैं। आप शुभानन वाली, क्रोध-हिंसा रहित, वरप्रदा, परमार्थप्रदा हरि दासत्वप्रदा परा हैं।।६२-६३।।

---

१. क. वृद्धि०।
२. वृद्धि०।
३. क. ०दा शारदा शुभा।

यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्।
जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना॥६४॥
सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी।
यया विना नं संभाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा॥६५॥
त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥६६॥

आपके बिना तो समस्त जगत् सार रहित तथा भस्मवत् व्यर्थ प्रतीत होता है। आपके अभाव में व्यक्ति जीवन्मृत तथा यह विश्व शवतुल्य हो जाता है। आप सबसे महान् तथा सबकी बन्धु हैं। आपके बिना व्यक्ति बन्धुहीन हो जाता है। जिससे आप युक्त हैं (जिस पर आपकी कृपा है) वह बन्धु-बान्धवयुक्त हो जाता है। आपके अभाव में भाई अपने भाई से नहीं बोलता! आप ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की कारणरूपा हैं।।६४-६६।।

स्तनंधयानां त्वं माता शिशूनां शैशवे यथा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वविश्वतः॥६७॥
त्यक्तस्तनो मातृहीनः स चेज्जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥६८॥

समस्त विश्व में शैशवावस्था वाले स्तनपान कामना युक्त शिशु की आप माता हैं तथा उनका हित करने वाली हैं। इस प्रकार आप सभी जीवों की बाल्यादि सभी अवस्थाओं में सबकी मातृस्वरूपा हैं। कारण यह है कि माता का स्तन किसी प्रकार से न भी मिले, बालक मातृहीन हो जाये, तब भी वह बालक शिशु दैवात् (आपकी कृपा से) जीवित बच जाता है, तथापि आपकी कृपा से रहित होकर कोई भी जीवित नहीं रह सकता। यह निश्चित है।।६७-६८।।

सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मे प्रसन्ना भवाम्बिके। वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥६९॥
वयं यावत्त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः। सर्वसंपद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये॥७०॥

हे माता! आप सुप्रसन्न स्वरूपा हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। हे सनातनी! दुर्जय दैत्यों के वश में चला गया मेरा स्वर्गराज्य मुझे पुनः प्रदान करिये। हे हरिप्रिये! जब तक आपसे हम रहित हैं, तभी तक हम दीन, हीन, भिक्षुक, सर्वसम्पदा से वंचित एवं बंधुविहीन ही रहेंगे।।६९-७०।।

राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि। कीर्तिं देहि धनं देहि पुत्रान्मह्यं च देहि वै॥७१॥
कामं देहि मतिं देहि भोगान्देहि हरिप्रिये।
ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्॥७२॥

हे सुरेश्वरी! हे भगवती! आप हमें राज्य, श्री, बल, कीर्त्ति, धन तथा पुत्र दीजिये। आप हमारी

कामना पूर्ण करिये, मति तथा भोग प्रदान करिये। हे हरिप्रिये! आप हमें ज्ञान, धर्म तथा ईप्सित (इच्छित) सर्वसौभाग्य प्रदान करिये।।७१-७२।।

सर्वाधिकारमेवं वै प्रभावं च प्रतापकम्। जयं पराक्रमं [1]युद्धं परमैश्वर्यमेव च।।७३।।

आप हमें सर्वाधिकार, प्रभाव, प्रताप, जय, पराक्रम, युद्ध विजय तथा परमैश्वर्य प्रदान करिये।।७३।।

इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह। ननाम साश्रुनेत्रोऽयं मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः।।७४।।
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः। सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः।।७५।।

यह कहकर महेन्द्र ने देवताओं के साथ साश्रुनयन की स्थिति में शिर झुका कर पुनः-पुनः प्रणाम किया। ब्रह्मा-शिव-शेषनाग-धर्मराज-केशव आदि सभी प्रधान देवगण ने देवताओं के हितार्थ इन्द्र का अपराध क्षमा करने हेतु देवी से निवेदन किया।।७४-७५।।

देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्। केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि।।७६।।

इस प्रार्थना से भगवती लक्ष्मी प्रसन्न हो गईं। उन्होंने देवगण के हित के लिये देवगण को वांछित वर देकर केशव को उत्तम मनोहर माला प्रदान किया।।७६।।

ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद।
देवी ययौ हरेः क्रीडं हृष्टा क्षीरोदशायिनः।।७७।।
ययतुस्तौ स्वस्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद।
दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्।।७८।।

यहां वरलाभ करके सभी देवगण प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र अपने-अपने स्थान पर चले गये। भगवती लक्ष्मी भी सन्तुष्ट होकर भगवान् क्षीरसागर वासी विष्णु के क्रोड़ में स्थित हो गयीं। हे नारद! ब्रह्मा एवं शिव भी देवगण को शुभ आशीर्वाद देकर अपने-अपने लोक चले गये थे।।७७-७८।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान्।।७९।।
सिद्धस्तोत्रं[2] यदि पठेत्सोऽपि कल्पतरुर्नरः।
पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।।८०।।

यह स्तोत्र महापुण्यप्रद है। जो इसे तीनों सन्ध्याकाल में पढ़ेगा, वह कुबेर के समान महान् राजराजेश्वर हो जायेगा। यह सिद्ध स्तोत्र पाठकर्त्ता हेतु कल्पवृक्षवत् है। इसका पांच लाख जप करने से यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है।।७९-८०।।

सिद्धं स्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः।
महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः।।८१।।

---

१. क. बुद्धिं प०।
२. क. स्तोत्रं यदि भवेत्सो०।

इस सिद्ध स्तोत्र का पाठ एक मास तक संयत मन से करने वाला महासुखी तथा राजेन्द्र हो जाता है। यह निःसंशय है।।८१।।

नारद उवाच

पुष्पं दुर्वाससा दत्तमस्ति वै यस्य मस्तके।
तस्य सर्वा पुरः पूजेत्युक्तं पूर्वं त्वया प्रभो।।८२।।
तदेव स्थापितं पुष्पं गजेन्द्रस्यैव मस्तके। यतो जन्म गणेशस्य स च मत्तो वनं गतः।।८३।।
मूर्ध्नि च्छिन्ने गणपतेः शनेर्दृष्ट्या पुरा मुने।
तत्स्कन्धे योजयामास हस्तिमस्तं हरिः स्वयम्।।८४।।
अधुनोक्तं देवषट्कं संपूज्य च पुरंदरः। पूजयामास लक्ष्मीं च क्षीरोदे च सुरैः सह।।८५।।
अहो पुराणवक्तृणां दुर्बोधं वचनं नृणाम्। सुव्यक्तमस्य सिद्धान्तं वद वेदविदां वर।।८६।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! आपने कहा है कि दुर्वासा प्रदत्त हरिनिर्माल्य वाला वह पुष्प जो उन्होंने इन्द्र को दिया था, वह जिसके मस्तक पर रहेगा, वह सर्वदेव पूज्य होगा। वह पुष्प इन्द्र ने गजराज के मस्तक पर रख दिया, जो वन में भाग गया। उससे गणेश का जन्म कैसे सम्भव हो सका? हे मुनिवर! पूर्वकाल में शनि की कुटिल दृष्टि पड़ने से गणपति का मस्तक छिन्न हो गया था। श्रीहरि ने उस कन्धे पर स्वयं हाथी का मस्तक जोड़ा था। अब आप का कथन है कि इन्द्र ने पहले क्षीरसागर में छः देवगण की पूजा करके, तब देवगण के साथ एकत्र होकर लक्ष्मी पूजा किया था! हे वेदज्ञ! तभी पुराणवक्ता जो कहते हैं, वह सामान्य मनुष्य नहीं समझ पाता। हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! कृपया इसका स्पष्ट सिद्धान्त कहिये।।८२-८६।।

नारायण उवाच

यदा शशाप शक्रं च दुर्वासा मुनिपुङ्गवः।
तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले बभूव सः।।८७।।
सुचिरं दुःखिता देवा बभ्रमुर्ब्रह्मशापतः। पश्चात्प्रापुश्च तां लक्ष्मीं वरेण च हरेर्मुने।।८८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० लक्ष्मीपूजाविधानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब मुनिवर दुर्वासा ने इन्द्र को शापित किा था, तब गणेश का जन्म नहीं हुआ था। वह गणेश जन्म तो पूर्वकाल में हुआ था। हे मुनिवर! दुर्वासा के शाप के कारण दीर्घकाल तक देवता अत्यन्त दुःखी थे। तत्पश्चात् हे मुनिवर! प्रभु के वरदान से उनको लक्ष्मी प्राप्त हो सकी थी।।८७-८८।।

।।एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

स्वाहा का उपाख्यान वर्णन

नारद उवाच

नारायण महाभाग समश्चैव त्वया प्रभो। रूपेण च गुणैश्चैव यशसा तेजसा त्विषा॥१॥
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा। तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदां तथा।
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम्॥२॥
अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद सांप्रतम्। अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः।
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम्॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महात्मा नारायण! आप रूप, गुण, यश, तेज, कान्ति में, सर्वांश में, नारायण के समान हैं। हे ज्ञानीश्रेष्ठ! आप सिद्धों तथा योगियों में भी प्रधान हैं। आपकी कृपा से महालक्ष्मी का श्रेष्ठ उपाख्यान सुना। हे तपस्वीप्रवर! आप मुनियों तथा वेदज्ञों में भी श्रेष्ठ हैं। सम्प्रति आप अतीव गोपनीय तथा सभी प्रकार से शरण लेने योग्य, पुराणों में महाअद्भुत् अप्रकाशित एक उपाख्यान कहिये।।१-३।।

नारायण उवाच

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः। श्रुतौ कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम्॥४॥
तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि।
तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे द्विज! यह पुराणों में अप्रकाशित दुर्लभ, वेद में गुप्त रूप से कथित नाना प्रकार का उपाख्यान है। उन सबमें सारभूत जिस उपाख्यान को तुम सुनने को उत्सुक हो, वह कहो। मैं तुमसे वही उपाख्यान कहूंगा।।४-५।।

नारद उवाच

स्वाहा देवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु। पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा॥६॥
एतासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च।
श्रोतुमिच्छामि ते वक्त्राद्वद वेदविदां वर॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे वेदज्ञप्रवर! सभी कर्मों में हवि प्रदान में 'स्वाहा' की प्रधानता है। पितृगण को प्रदान करने में ''स्वधा'' प्रशस्त हैं। अन्य कर्म में 'दक्षिणा' को श्रेष्ठ माना गया है। आप कृपया इनका चरित्र, जन्म, इनका फल तथा इनकी प्रधानता का क्या कारण है, वह कहिये। मैं आपसे यह सब श्रवण करना चाहता हूं।।६-७।।

सौतिरुवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः। कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम्॥८॥

सौति (सूतपुत्र) कहते हैं—नारद का कथन सुनकर मुनिप्रवर नारायण हंस पड़े। तदनन्तर उन्होंने पुराणोक्त पुरातन कथा का कथन प्रारम्भ किया॥८॥

नारायण उवाच

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाऽऽहारार्थं ययुः पुरा। ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम्॥९॥
गत्वा निवेदनं चक्रुर्मुने त्वाहारहेतुकम्। ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिषेवे श्रीहरेः पदम्॥१०॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं— पूर्वकाल में सृष्टि के आदिकाल में देवता अगम्य, मनोहर, ब्रह्मलोकस्थ सभा में आहारार्थ गये। वहां जाकर सभी ने अपने आहारार्थ ब्रह्मा से प्रार्थना किया। तब यह निवेदन सुन कर ब्रह्मा ने उनको आहार देने की प्रतिज्ञा करके श्रीहरि के चरणकमल की प्रार्थना किया॥९-१०॥

यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव सः। यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च वेधसा॥११॥
हविर्ददति विप्राश्च [1]भक्ता च क्षत्रियादयः। सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव॥१२॥

भगवान् हरि ब्रह्मा की प्रार्थना से अपने अंश द्वारा यज्ञरूपेण अवतीर्ण हो गये। तब ब्रह्मा ने यज्ञ के उपलक्ष्य में प्रदत्त हविः को देवगण का आहार निश्चित किया। यज्ञ में ब्रह्मा ने सभी प्रकार की विहित हविः को प्रदान किया। हे मुनिप्रवर! तदनन्तर ब्राह्मण तथा क्षत्रियों ने तथा अन्य ने भक्ति पूर्वक हविः तो प्रदान किया, तथापि देवता प्राप्त ही नहीं कर सके!॥११-१२॥

देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च पुनर्ययुः। गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम्॥१३॥
ब्रह्मा श्रुत्वा तु मनसा श्रीकृष्णं शरणं ययौ। प्रकृतिं पूजयामास ध्यायन्नेव तदाज्ञया॥१४॥

तब देवता अत्यन्त खिन्नता के साथ पुनः ब्रह्मसभा में आये तथा ब्रह्मा से यह निवेदन किया कि उनको आहार नहीं मिला। यह सुन कर ब्रह्मा ने मानसिक रूप से श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण किया। तब कृष्ण की आज्ञा से उन्होंने ध्यानमग्न होकर प्रकृति का पूजन किया॥१३-१४॥

प्रकृतिः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
बभूव दाहिका शक्तिरग्नेः स्वाहास्वरूपिणी॥१५॥

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभान्यक्कारकारिणी। अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनोहरा॥१६॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारिणी। उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु॥१७॥

तदनन्तर सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृति देवी दाहिका शक्ति रूप होकर अपनी कलांश से उत्पन्न हो गयीं। यही स्वाहा स्वरूपा हैं। ये ग्रीष्मकालीन मध्याह्न काल के सूर्य की प्रभा को भी लज्जित कर देने

१. ख. भक्त्या।

वाली ज्योति से युक्त अतीव सुन्दरी रमणीय मनोहर मूर्त्तिमती थीं। इनका आनन स्मित मुस्कान से शोभित था। भक्तों पर कृपालु देवी ने ब्रह्मा से कहा–"हे पद्मयोनि! वर मांगिये"।।१५-१७।।

विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा संभ्रमात्समुवाच ताम्॥१८॥

भगवती का वचन सुन कर ब्रह्मा ने अत्यन्त संभ्रम सहित (घबराते हुए) कहा–।।१८।।

ब्रह्मोवाच

त्वमग्नेर्दाहिकाशक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी।
दग्धुं न शक्तः स्वहुतं हुताशश्च त्वया विना॥१९॥
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नरः।
सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम्॥२०॥
अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वरी।
देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे सुन्दरी! तुम अग्नि की दाहिका शक्ति होकर उनकी पत्नी बनो। तुम्हारे अभाव में ये हुताशन आहूत वस्तु को दग्ध नहीं कर पाते। "मनुष्यगण तुम्हारे नाम का उच्चारण मन्त्र के अन्त में करके देवगण को जो भी हविः प्रदान करेंगे, वह हविः देवता प्राप्त कर सकेंगे तथा वे परम आनंद का अनुभव करेंगे।" यह वर हमें प्रदान करो। हे अम्बिका! तुम अग्नि की सम्पदास्वरूपा, श्रीरूपा तथा उनकी गृहेश्वरी हो। तुम देवता तथा मानवगण की सदा पूज्या बनी रहो।।१९-२१।।

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह।
तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम्॥२२॥

ब्रह्मा का कथन सुन कर स्वाहा खिन्न हो गईं। तदनन्तर देवी स्वाहा ने अपना अभिप्राय स्वतः स्वयम्भु ब्रह्मदेव से कहा–।।२२।।

स्वाहोवाच

अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च।
ब्रह्मंस्तदन्यद्यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रम एव च॥२३॥
विधाता जगतां त्वं च शंभुर्मृत्युञ्जयः प्रभुः।
बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च देहिनाम्॥२४॥
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः। प्रकृतिः सर्वसूः सर्वैः पूजिता यत्प्रसादतः॥२५॥
ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यं निषेव्य च। तत्पादपद्मं ब्रह्मैक्यभावाद्वै चिन्तयाम्यहम्॥२६॥

देवी स्वाहा कहती हैं–हे ब्रह्मन्! मैं तपस्या द्वारा परमाराध्य कृष्ण की आराधना करूंगी। मैं इस मुख्य उद्देश्य में रुकावट डालने वाले (प्रतिबन्धक) अन्य कार्यों को भ्रान्तिपूर्ण स्वप्नवत् तुच्छ मानती

हूं। आप जिनकी कृपा पाकर जगत् सृष्टि करते हैं, महादेव जिनकी कृपा से अजेय मृत्यु पर विजय पाकर मृत्युंजय नाम पा चुके हैं, जिनकी कृपा से अनन्तदेव इस विश्व को धारण करते हैं तथा जिनकी कृपा से धर्मदेव लोगों के पुण्य-पापादि कर्मसमूह के साक्षी हो गये हैं, जिनकी कृपा से गणपति ने देवगण के बीच अग्रपूज्य स्थान पाया है तथा जिनकी कृपा से ये सर्वप्रसारिणी प्रकृति भी पूज्या हो गई हैं, ऋषि तथा देवता जिनकी पूजा से पूज्यपद लाभ कर लेते हैं, हे पद्मयोनि! उन परात्पर परमात्मा श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन मैं एकाग्रता के साथ ब्रह्मैक्यभाव से करती रहती हूं।।२३-२६।।

पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मलाभानुसारतः।
जगाम तपसे पाद्मे पद्मादीशस्य पद्मजा॥२७॥
तपस्तेपे लक्षवर्षमेकपादेन पद्मजा। तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥२८॥
अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च सुन्दरी।
मूर्च्छां संप्राप कामेन कामेशस्य च कामुकी॥२९॥
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच सः।
स्वक्रोडे च समुत्थाप्य क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम्॥३०॥

श्रीकृष्ण के चरण से उत्पन्न पद्ममुखी स्वाहा देवी ने पद्मसंभव ब्रह्मा से यह कहकर तप द्वारा पद्मनाभ प्रभु को पाने हेतु घोर तप किया। स्वाहा ने एक पैर पर खड़े रह कर एक लाख वर्ष पर्यन्त तप किया था। तदनन्तर प्रकृति से परे, निर्गुण श्रीकृष्ण का दर्शन मिल सका। सुन्दरी स्वाहा ने कृष्ण का अति सुन्दर रूप देखा, जो अतिशय कमनीय, कान्ति सम्पन्न तथा कामदेव को भी मोहित करने वाला था। उस रूप को देख कर स्वाहा कामवश में हो गईं। वे कामुकी होकर मूर्च्छित हो गईं, तथापि सर्वज्ञ भगवान् उनका अभिप्राय जान गये। चिरकाल तप द्वारा क्षीण हो गईं स्वाहा को प्रभु ने अपनी गोद में बैठा कर उनसे कहा-।।२७-३०।।

श्रीकृष्ण उवाच

वाराहे च त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि।
नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च॥३१॥
अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भाविनि।
मन्त्राङ्गरूपा पूता च मत्प्रसादाद्भविष्यसि॥३२॥
वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम्। रमिष्यते त्वया सार्धं रामया रमणीयया॥३३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं--हे कान्ते! जब मेरा वराह कल्प में कृष्णावतार होगा, तब उस काल में (श्वेत वराह कल्प में) तुम नग्नजित की कन्या नाग्नजीति नाम वाली मेरी स्त्री बनोगी। हे भाविनी! अभी तुम अग्नि की दाहिका पत्नी बनो। तुम मन्त्राङ्ग रूपा तथा पावन रहोगी। ऐसा मेरी कृपा से होगा। अग्नि भी

भक्तिभावेन तुम्हारी पूजा करके तुमको अपनी गृहेश्वरी (पत्नी) बनायेंगे। अग्नि तुम्हारे साथ आनन्द पूर्वक रमण करेंगे।।३१-३३।।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो देवीमाश्वास्य नारद।
तत्राऽऽजगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः॥३४॥
ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम्।
संपूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः॥३५॥

तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह। अतीव निर्जने रम्ये संभोगसुखदे सदा॥३६॥

हे नारद! इस प्रकार उन देवी को आश्वासन देकर देवदेव विष्णु वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। तभी ब्रह्माज्ञा से वहां पर सन्त्रस्त अग्नि पहुंच गये। उन्होंने वहां भगवती स्वाहा को देखा। उस समय इन अग्निदेव ने सामवेदोक्त ध्यान के द्वारा उन्होंने स्वाहा का ध्यान पूजा करके स्तव भी किया। इस स्तव के अनन्तर अग्निदेव ने मन्त्रों द्वारा स्वाहा का पाणिग्रहण भी कर लिया। तत्पश्चात् अग्निदेव उस समय सर्वदा निर्जन, विहार के लिये उपयुक्त, रम्य स्थान में गये तथा वहां उन्होंने १०० दैव वर्ष पर्यन्त अर्थात् ३६००० मानव वर्ष पर्यन्त स्वाहा के साथ रमण किया।।३४-३६।।

बभूव गर्भस्तस्याश्च हुताशस्यैव तेजसा। तद्दधार च सा देवीं दिव्यं द्वादशवत्सरम्॥३७॥
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्। दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान्क्रमेण च॥३८॥
ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः। स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यशः॥३९॥

इस रमण से स्वाहा देवी गर्भवती हो गई और अग्निदेव के तेजयुक्त गर्भ को उन्होंने १२ वर्ष तक धारण भी किया था। तत्पश्चात् स्वाहा देवी ने तीन मनोहर पुत्रों को जन्म दिया, जिनका नाम दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि एवं आहवनीय अग्नि था। उसी काल से मुनिगण, ऋषिवृन्द तथा ब्राह्मणादि वर्ण वाले वैदिक मन्त्रों के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करके नित्यप्रति हविः प्रदान करने लगे।।३७-३९।।

स्वाहायुक्तं च मन्त्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम्।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन्ग्रहणमात्रतः॥४०॥
विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः।
पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा नरः॥४१॥
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः।
स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतं फलदायकः॥४२॥

हे ब्राह्मणप्रवर! जो मनुष्य इस प्रशस्त स्वाहा शब्द को मन्त्रान्त में स्वाहा शब्द लगा कर मन्त्र का उच्चारण करता है, मन्त्र उच्चारण मात्र से उस मनुष्य की अभिलाषा पूर्ण हो जाती है। जैसे विष

रहित सर्प, वेदहीन ब्राह्मण, विद्याहीन मनुष्य, पतिसेवा रहित नारी तथा फलशाखा रहित वृक्ष निन्दनीय कहा जाता है, उसी प्रकार स्वाहान्त रहित मन्त्र द्रुत फलप्रद नहीं होता।।४०-४२।।

परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतिम्। स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च॥४३॥

इत्येवं वर्णितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४४॥

मन्त्रान्त में स्वाहा शब्द उच्चारण करने से ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं। देवता भी याज्ञिक प्रदत्त अपनी-अपनी आहुति प्राप्त कर लेते हैं। वांछित कर्म भी इस कारण से सुसम्पन्न हो जाता है। यह स्वाहा का उपाख्यान इहलोक में सुख देने वाला, परलोक के लिये मोक्षप्रद, सारभूत तथा उत्कृष्ट है। यह मैंने कह दिया। अब क्या श्रवण करने की इच्छा है?।।४३-४४।।

नारद उवाच

स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर। संपूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तां वद मे प्रभो॥४५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनीश्वर! प्रभो! स्वाहा का पूजा विधान, ध्यान, स्तोत्र कहिये। स्वयं स्वाहा का पूजन करने के अनन्तर अग्नि ने स्वाहा की जो स्तुति किया था, वह कृपा पूर्वक कहिये।।४५।।

नारायण उवाच

ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रं पूजाविधानकम्।
वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानं निशामय॥४६॥

सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा। स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये॥४७॥

स्वाहां मन्त्राङ्गभूतां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम्।
सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे॥४८॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! मैं सामवेदोक्त स्वाहा का ध्यान, स्तव, पूजाविधि का वर्णन करता हूं। हे ब्रह्मन्! सावधान होकर श्रवण करो। फललाभार्थ सभी यज्ञारम्भ में स्वाहा की पूजा शालग्राम शिला में अथवा कलश में करके तभी यज्ञ करे। ध्यान यह है—मन्त्र की अंगभूता मन्त्रसिद्ध स्वरूपा, सिद्धा, मनुष्यों के वांछित कर्मों में फलप्रदा स्वाहा का मैं भजन करता हूं!।।४६-४८।।

इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः।
सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलं स्तोत्रं मुने शृणु॥४९॥
ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च।
यः पूजयेच्च तां देवीं सर्वेष्टं लभते ध्रुवम्॥५०॥

यह ध्यान करके मूल मन्त्र से पाद्यादि प्रदान करे। इससे सर्वसिद्धिलाभ होता है। हे मुनिवर! अब उनका मूल स्तोत्र श्रवण करो। "ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा" यह स्वाहा देवी का पूजा

मन्त्र है। इससे स्वाहा देवी की पूजा करने वाला निश्चित रूप से सभी वांछित फल लाभ करता है।।४९-५०।।

वह्निरुवाच

स्वाहाऽऽद्या प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी।
मन्त्राणां फलदात्री च धात्री च जगतां सती।।५१।।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम्।
हुताशदाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ।।५२।।
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी। देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी।।५३।।

(स्वाहा स्तव)

अग्निदेव कहते हैं–स्वाहा आद्याप्रकृति की अंशभूता, मन्त्र एवं तन्त्र की अंगरूपा, मन्त्रसमूह का फल देने वाली, जगद्धात्री, सती, सिद्धिरूपा, सिद्धा, सर्वदा मनुष्यों को सिद्धि देने वाली, सर्वदहन सक्षम अग्नि की दाहिका शक्ति, वह्नि को प्राणों से भी अधिक प्रिय, संसार साररूपा, घोर संसार से पार कराने वाली हैं। वे देवताओं की जीवनरूपा, देवपालन कारिणी भी हैं।।५१-५३।।

षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य चेह लोके परत्र च।।५४।।
नाङ्गहीनो भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम्। अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम्।।५५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० स्वहोपा०स्वाहाजन्मादिकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

जो स्वाहा के इन १६ नामों का भक्ति पूर्वक पाठ करता है, उसे इहलोक तथा परलोक की सभी सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। उसके सभी कर्म अंगहीन होने पर भी शोभन (पूर्ण) हो जाते हैं। अपुत्र को पुत्र प्राप्ति होती है। पत्नीविहीन को प्रिय पत्नी का लाभ होता है।।५४-५५।।

चत्वाारिंश अध्याय समाप्त

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्वधा की उत्पत्ति आदि का वर्णन

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम्।
पितृणां वै तृप्तिकरं श्राद्धानां फलवर्धनम्॥१॥

सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः। चतुरो वै मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजः स्वरूपिणः॥२॥

सप्त दृष्ट्वा पितृगणान्सिद्धिरूपान्मनोहरान्। आहारं ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम्॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! पितृगण की तृप्ति बढ़ाने वाले, श्राद्धों के फल को बढ़ाने वाले, उत्तम स्वधा के उपाख्यान को कहता हूं। श्रवण करो। जगत्स्त्रष्टा ने सृष्टि पूर्व मूर्त्तिमान् चार पितृगण तथा तेजरूपी (अमूर्त्त) तीन पितृगण की सृष्टि किया था। ये सात सिद्धरूप मनोहर पितरों की सृष्टि करके इनका आहार ब्रह्मा ने निश्चित किया श्राद्ध में प्रदत्त वस्तु तथा तर्पण!॥१-३॥

स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धान्तं देवपूजनम्।
आह्निकं च त्रिसंध्यान्तं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम्॥४॥

हे नारद! श्रुति द्वारा सुना गया है कि जब तक तर्पण शेष नहीं हो जाता, तबतक स्नानजन्य फल नहीं मिलता। जब तक देवपूजन के प्रति श्रद्धा नहीं होती, तब तक देवपूजा का फल नहीं मिलता। जब तक ब्राह्मण त्रिकाल सन्ध्या सम्पन्न नहीं कर लेते, उनको आह्निक का फललाभ भी नहीं होता॥४॥

नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसंध्यं श्राद्धतर्पणम्।
बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः॥५॥

हरिसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक्। जन्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हः स नारद॥६॥

जो विप्र प्रतिदिन त्रिसन्ध्या, श्राद्ध, तर्पण, देवपूजा तथा वेदपाठ नहीं करता है, वह तो विषहीन सर्प जैसा व्यर्थ ही है। जो व्यक्ति धरती पर जन्म लेकर परमाराध्य हरि की आराधना नहीं करता तथा हरि को अर्पित किये बिना अन्न भक्षण की वासना को तृप्त करता है, उसका देह विहित कर्म के लिये अनुपयोगी होकर प्रसवकालीन अशौच से अपवित्र कहा गया है। हे नारद! उसका देह धार्मिक कार्य हेतु अनुपयोगी है॥५-६॥

ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे। न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः॥७॥

जब ब्रह्मा ने पितृगण के उद्देश्य से श्राद्धादि का विधान कर दिया, तब वे अपने धाम चले गये। तब से ब्राह्मणादि सभी वर्ण पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध दान तो करने लगे, तथापि वह सब पितरों के उद्देश्य से किया कर्म सुसम्पन्न होकर भी पितृगण अपना-अपना भाग नहीं प्राप्त कर सके॥७॥

सर्वे प्रजग्मुः क्षुधिता विषण्णा ब्रह्मणः सभाम्।
सर्वे निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम्॥८॥

ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे तां मनोहराम्। रूपयौवनसंपन्नां शरच्चन्द्रसमप्रभाम्॥९॥
विद्यावतीं गुणवतीमपि रूपवतीं सतीम्। श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्॥१०॥

तदनन्तर सभी पितृगण क्षुधा पीड़ित होकर, दुःख पूर्वक खिन्न होकर ब्रह्मसभा में आये तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा से समस्त वृत्तान्त वर्णन किया। ब्रह्मा ने पितृगण का दुःख सुना तथा उन्होंने अपने मन द्वारा एक मनोहरा कन्या की सृष्टि किया। वह रूप-यौवन सम्पन्ना, सैकड़ों पूर्णचन्द्र के समान कान्तिशालिनी, विदुषी, रूप-गुण-बुद्धि युक्त, पतिव्रता थी, जिसका देहवर्ण श्वेत चम्पा पुष्प जैसा था। वह रत्नभूषणों से विभूषित थी।।८-१०।।

विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम्।
स्वधाभिधानां सुदतीं लक्ष्मीं लक्षणसंयुताम्॥११॥

वह देवी प्रकृति की अंशरूपा, मन्द मधुर मुस्कान युक्त आनन वाली, विशुद्धा, वरप्रदा तथा शुभा थी। वह सुन्दर दन्तपंक्ति युक्त शुभमूर्त्ति लक्ष्मी के लक्षण से युक्त स्वधा नाम्नी कन्या थी।।११।।

शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम्।
पत्नीं पितृणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम्॥१२॥
पितृभ्यस्तां ददौ कन्यां तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम्।
ब्राह्मणनां चोपदेशं चक्रे वै गोपनीयकम्॥१३॥

उस कन्या के पैर के तलवे शतदल कमल चिह्नांकित थे। वह पितृगण की पत्नी, पद्म जैसे मुख वाली, पद्म से उत्पन्न तथा कमलनयनी थी। ब्रह्मा ने वह तुष्टिप्रदा कन्या पितृगण को प्रदान करके ब्राह्मणगण को गुप्त रूप से उपदेश भी दिया।।१२-१३।।

स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देहि चेति च।
क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा॥१४॥
स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा।
सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः॥१५॥

वह उपदेश यह था कि "हे ब्राह्मणों! मन्त्र के अन्त में स्वधा शब्द उच्चारण करके पितृगण को जो प्रदान किया जायेगा (वह उनको प्राप्त होगा)। ब्राह्मणगण भी ब्रह्मा के उपदेशानुरूप पितृगण को दान करते आ रहे हैं। जब देवों को देना हो, तब स्वाहा कहे। पितृगण को देते समय स्वधा कहे। बाकी सभी कार्य में दक्षिणा प्रदान करना प्रशस्त है। जो यज्ञ दक्षिणा विहीन है, वह नष्ट हो जाता है।।१४-१५।।

पितरो देवता विप्रा मुनयो मानवास्तथा।
पूजां चक्रुः स्वधां शान्तां तुष्टाव परमादरम्॥१६॥
देवादयश्च संतुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः। विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च॥१७॥
इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमुत्तमम्।
सर्वेषा वै तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१८॥

इसके बाद पितृगण, देवता, ब्राह्मण, मुनि, मनुष्यगण सभी शान्तमूर्त्ति स्वधा की अर्चना करने के अनन्तर अत्यन्त आदर पूर्वक्र उनका स्तव करने लगे। स्वधा देवी से वरलाभ करके देवता तथा ब्राह्मणों का मनोरथ पूर्ण हो गया। सभी परम आह्लादित हो गये। मैंने स्वधा देवी का परमोत्तम वृत्तान्त तुमको सुना दिया। यह सबको तुष्टि देने वाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो?।।१६-१८।।

नारद उवाच

स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने। श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदां वर॥१९॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महामुनि! आप कृपा पूर्वक स्वधा देवी का पूजाविधान, ध्यान तथा स्तोत्र कहिये। मैं इसे सुनना चाहता हूं। हे वेदज्ञ श्रेष्ठ! कृपया प्रयत्न पूर्वक कहिये।।१९।।

नारायण उवाच

तद्ध्यानं स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम्।
सर्वं जानासि वक्ष्ये वै ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये॥२०॥
शरत्कृष्णात्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे।
स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत्॥२१॥
स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः।
न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धतर्पणयोस्तथा॥२२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे ब्रह्मन्! तुम तो स्वयं स्वधा देवी का ध्यान उनका सर्वसम्मत वेदोक्त स्तव, आदि सब जानते हो, तथापि यदि विशेषतया बुद्धि वृद्धि हेतु जानने की इच्छा है, तब श्रवण करो। शरत्कालीन कृष्णा त्रयोदशी के दिन मघा नक्षत्र की युति वाले श्राद्ध दिवस में सर्वाग्र में स्वधा पूजा करके तब श्राद्ध करे। जो अहंकारी ब्राह्मण स्वधा पूजन किये बिना श्राद्ध सम्पन्न करता है, वस्तुतः वह श्राद्ध-तर्पण फल नहीं प्राप्त करता।।२०-२२।।

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
पूज्यां पितृणां देवानां फलदां भजे॥२३॥

मन्त्र है–जो ब्रह्मा की मानस कन्या सदा स्थिर यौवना, पितरों तथा देवताओं की पूज्या हैं, श्राद्धादि का फल देती हैं, उन स्वधादेवी का भजन करता हूं!।।२३।।

इति ध्यात्वा घटे रम्ये शालग्रामेऽथवा शुभे।
दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम्॥२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम्।
समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद्द्विजः॥२५॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद। सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा॥२६॥

इस प्रकार इस मन्त्र से ध्यान करके रम्य घट अथवा शुभ शालग्राम शिला में स्वधा का ध्यान करके नीचे लिखे मूल मन्त्र से उनको पाद्य-अर्घ्यादि प्रदान करे। यह श्रुति का कथन है। इनका महामन्त्र यह है—"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधा देव्यै स्वाहा।" इसका उच्चारण करके पूजन करे तथा स्तुति के उपरान्त विप्रगण को प्रणाम करे। हे मुनिप्रवर! विशारद! ब्रह्मपुत्र! अब वह स्तोत्र सुनो, जो पूर्वकाल में ब्रह्मा ने निर्मित किया था। यह मनुष्यों को सभी कामना प्रदान करता है।।२४-२६।।

ब्रह्मोवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफल लभेत्॥२७॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति [1]बलेश्च तर्पणस्य च॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—'स्वधा' इस शब्द का उच्चारण करने मात्र से मनुष्य को तीर्थस्थान का फल मिल जाता है। वह सभी पातकों से रहित होकर वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है। यदि कोई तीन बार 'स्वधा' शब्द का उच्चारण कर लेता है, तब उसे श्राद्ध एवं बलि, तर्पण का सम्यक् फल प्राप्त हो जाता है।।२७-२८।।

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
लभेच्छ्राद्धशतानां च पुण्यमेव न संशयः॥२९॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम्॥३०॥

जो समाहित चित्त होकर श्राद्धकाल में स्वधा स्तोत्र श्रवण करता है, उसे १०० श्राद्ध का पुण्य मिलता है। इसमें संशय नहीं। जो तीनों सन्ध्याकाल में 'स्वधा' शब्द का उच्चारण करता है, उसे प्रिय, विनीत, साध्वी पत्नी तथा गुणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होती है।।२९-३०।।

पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी।
श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥३१॥

१. क. ख. कालतर्पणयोतस्था।

बहिर्मन्मनसो गच्छ पितॄणां तुष्टिहेतवे। संप्रीतये द्विजातीनां गृहिणां [1]वृद्धिहेतवे॥३२॥
नित्यानित्यस्वरूपाऽसि गुणरूपाऽसि सुव्रते।
आविर्भावस्तिरोभावः सृष्टौ च प्रलये तव॥३३॥

आप पितृगण हेतु प्राणतुल्य हैं, द्विजगण की जीवनरूपा हैं तथा जो श्राद्ध की अधिष्ठातृ देवी हैं, श्राद्ध का फल देने वाली हैं। आप पितृगण की सन्तुष्टि हेतु हमारे मनस् से बाहर आगमन करिये। पितरों के सन्तोषार्थ तथा गृहीगण की वृद्धि हेतु ऐसा करिये। आप नित्य एवं अनित्य स्वरूपा गुणरूपा हैं। हे सुव्रते! सृष्टिकाल में आपका आविर्भाव तथा प्रलयकाल में आपका तिरोभाव हो जाता है।।३१-३३।।

ॐ स्वस्ति च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा।
निरूपिताश्चतुर्वेदे षट् प्रशस्ताश्च कर्मिणाम्॥३४॥
पुराऽऽसीस्त्वं स्वधागोपी गोलोके राधिकासखी।
धृता स्वोरसि कृष्णेन यतस्तेन स्वधा स्मृता॥३५॥

हे देवी! आप ॐ, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा तथा दक्षिणा इन छः नामों से चारों वेद में प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार आप सभी कर्म में आप शुभ करिये। पूर्वकाल में आप गोलोक में राधिका की सखी स्वधा नाम वाली गोपिका थीं। कृष्ण ने आपको अपने वक्ष से वृन्दावन में लगाया था। यही 'स्वधा' का अर्थ है।।३४-३५।।

ध्वस्ता त्वं राधिकाशापाद्गोलोकाद्विश्वमागता।
कृष्णाश्लिष्टा तया दृष्टा पुरा वृन्दावने वने॥३६॥
कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता।
अतृप्ता सुरते तेन चतुर्णां स्वामिनां प्रिया॥३७॥

राधा ने जब रम्य वृन्दावन के निकुंज में प्राणवल्लभ कृष्ण को आपका आलिंगन करते देखा, तब कृष्ण प्राणेश्वरी राधा ने आपको शाप दे दिया। इसी से आप सर्वलोकातीत गोलोक धाम से इस भूमण्डल पर आ गईं, तथापि कृष्ण के आलिंगन के पुण्य प्रभाव से आप मेरी मानस कन्या हैं। उस समय आप-रति से अतृप्त रह गईं। तभी आपको ४ पितृगण पतिरूपेण प्राप्त हैं (४ ही पितृगण मूर्त्त हैं, शेष ३ अमूर्त्त हैं)।।३६-३७।।

स्वाहा सा सुन्दरी गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी।
रतौ स्वयं कृष्णमाह तेन स्वाहा प्रकीर्तिता॥३८॥
कृष्णेन सार्धं सुचिरं वसन्ते रासमण्डले। प्रमत्ता सुरते श्लिष्टा दृष्टा सा राधया पुरा॥३९॥

---
१. क. बुद्धि०।

तस्याः शापेन सा ध्वस्ता गोलोकाद्विश्वमागता।
कृष्णालिङ्गनपुण्येन समभूद्वह्निकामिनी॥४०॥

पूर्वकाल में स्वाहा भी राधिका की सखी थीं। उन्होंने पूर्वकाल में रति हेतु कृष्ण से स्वयं कहा था। तभी उसका नाम स्वाहा हो गया। वे वसन्त ऋतु में मालती मण्डित रासमण्डल में श्रीकृष्ण के साथ रमण काल में रति रस से प्रमत्त हो गई थीं। रासेश्वरी राधा ने स्वाहा को जब कृष्ण के आलिंगन में देखा, तब उन्होंने स्वाहा को शाप दे दिया। उस शाप के कारण स्वाहा को गोलोक से भूमण्डल पर आना पड़ा। वह श्रीकृष्ण का आलिंगन होने के पुण्यफल से अग्निदेव की भार्या हो गयीं।।३८-४०।।

पवित्ररूपा परमा देवाद्यैर्वन्दिता नृभिः। यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पातकात्॥४१॥

या सुशीलाभिधा गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी।
उवास दक्षिणे क्रोडे कृष्णस्य च[1] महात्मनः॥४२॥
प्रध्वस्ता सा च तच्छापाद्गोलोकाद्विश्वमागता।
कृष्णालिङ्गनपुण्येन सा बभूव च दक्षिणा॥४३॥

जो पवित्ररूपा परमा तथा देवता एवं मनुष्यगण से वन्दित थीं, जिनके नामोच्चारण से मनुष्य पाप रहित हो जाता है, वे पूर्वकाल में सुशीला नामक गोपी तथा राधा की सखी थीं। वे कृष्ण के दाहिनी गोद में बैठी थीं। यह देख राधा ने उनको शाप दिया तथा उनको गोलोक से धरती पर आना पड़ा। कृष्णालिंगन पुण्य के कारण वे दक्षिणा कही गयीं।।४१-४३।।

सा प्रेयसी रतौ दक्षा प्रशस्ता सर्वकर्मसु। उवास दक्षिणे भर्तुर्दक्षिणा तेन कीर्तिता॥४४॥

ये कृष्ण प्रेयसी सुशीला रति में अत्यन्त निपुण एवं सभी कर्मों हेतु श्रेष्ठ हैं। ये कृष्ण के दक्षिण क्रोड़ (गोद) में बैठने के कारण दक्षिणा कही गयीं।।४४।।

गोप्यो बभूवुस्तिस्त्रो वै स्वधा स्वाहा च दक्षिणा।
कर्मिणां कर्मपूर्णार्थं पुरा चैवेश्वरेच्छया॥४५॥

इसी प्रकार ईश्वरेच्छा से श्रीकृष्ण प्रिया ये तीनों गोपियां कर्मीगण के कर्मों को सम्पन्न कराने हेतु राधा के शाप से स्वधा-स्वाहा-दक्षिणा रूप से प्रसिद्ध हैं।।४५।।

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि।
तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साऽऽविर्बभूव ह॥४६॥

तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम्। तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः॥४७॥

ब्रह्मलोक के संसद में यह कहकर ब्रह्मदेव मौन हो गये। तभी उन्होंने स्वधा को वहां आविर्भूत देखा। तब ब्रह्मा ने कमल के समान आनन वाली कन्या पितृगण को प्रदान किया। स्वधा को पाकर पितृगण हर्षित हो गये। वे स्वधाम चले गये।।४६-४७।।

---

१. क. ०स्य राधिकाग्रतः।

स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलं लभेत्॥४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० स्वधोपा० स्वधोत्पत्तितत्पूजादिकं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

यह पुण्यमय स्वधा स्तोत्र को जो कोई समाहित होकर सुनता है, उसने तो सभी तीर्थ में स्नानफल तथा वेदपाठ फल वहीं प्राप्त कर लिया॥४८॥

॥एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षिणा का उपाख्यान यज्ञकृत दक्षिणा स्तोत्र का कथन

नारायण उवाच

उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम्।
वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानं निशामय॥१॥
गोपी सुशीला गोलोके पुराऽऽसीत्प्रेयसी हरेः।
राधाप्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा।
अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती॥२॥
विद्यावती गुणवती सती रूपवती तथा। कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना॥३॥
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता॥४॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना। कामशास्त्रसुनिष्णाता कामिनी कलहंसगा॥५॥
भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी। रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका॥६॥
उवास दक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा। संबभूवाऽऽनम्रमुखो भयेन मधुसूदनः॥७॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! स्वाहा तथा स्वधा का उपाख्यान मैंने कह दिया। सम्प्रति गोलोक में श्रीहरि की प्रियतमा सुशीला गोपी का उपाख्यान सावधान होकर श्रवण करो। धन्या, मान्या, मनोहारिणी, अत्यन्त रूपवती, रामा, सुन्दर दन्तपंक्ति से शोभिता, साध्वी, विद्या-गुण-रूपयुता, नाना प्रकार की रतिक्रिया में निपुण, कोमल अंगों वाली, कमनीया, कमलनयनी, सुन्दर नितम्बों वाली, उत्तम

स्तनयुक्त, श्यामा, न्यग्रोधपरिमण्डला (जिसके कुचद्वय कठोर हों, स्थूल नितम्ब हों तथा कटिप्रदेश क्षीण हो), प्रसन्न मुख वाली, रत्नभूषण भूषिता, श्वेतवर्ण चम्पा के पुष्प के समान शुभ्रवर्णा, मृगनयनी, कामशास्त्र में निपुण, कामिनी, हंसगामिनी, कृष्णभाव में अनुरक्त, कृष्ण के भाव को जानने वाली, रासेश्वर की रासलीलारस से अभिज्ञा, रसिका, राधा की प्रधान सखी, पक्व बिम्बफल के वर्ण वाले होठों से शोभिता, रसज्ञा, रसिका, रासलीला में रासेश्वर कृष्ण के प्रति उनके रसपानार्थ उत्सुक यह सुशीला गोपी थी। पूर्वकाल की बात है, वह राधा को कृष्ण की दाहिनी गोद में बैठी दिखलाई दे गई। उस समय राधा को समागत देख कर मधुसूदन ने भय से अपना मुख नीचे कर लिया।।१-७।।

दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरां पराम्। मानिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम्॥८॥
कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपनां कोपदर्शनाम्। कोपेन निष्ठुरं वक्तुमुद्यतां स्फुरिताधराम्॥९॥
आगच्छन्तीं च वेगेन विज्ञाय तदनन्तरम्। विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं जगाम सः॥१०॥
पलायन्तं च तं शान्तं सत्त्वाधारं सुविग्रहम्।
विलोक्य कम्पिता गोपी सुशीलाऽन्तर्दधौ भिया॥११॥

गोपीगण से प्रवर, मानिनी, क्रोध से रक्तमुख, रक्तकमल के समान नेत्रों वाली, कोप से जिनके अंग कांप रहे थे, कोपरूप, कोपदर्शना, क्रोध पूर्वक निष्ठुर वचन कहने हेतु उद्यत, जिनके अधर क्रोध से कांप रहे थे, ऐसी राधा को वेग से अपनी ओर आते देख कर प्रभु मधुसूदन इस समय आसन्न विरोध भय के कारण वहां से अन्तर्हित् हो गये। जब सुशीला ने सत्वाधार, शान्त, मनोहर कृष्ण को पलायित देखा, तब वह भी भय से कांपती वहां से अन्तर्ध्यान हो गईं।।८-११।।

विलोक्य सङ्कटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः।
बद्धाञ्जलिपुटा भीता भक्तिनम्रात्मकंधरा॥१२॥
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनः पुनः। ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे॥१३॥

तदनन्तर लक्षकोटि गोपीगण श्री राधा का यह क्रोधरूपी संकट देख कर भक्ति तथा भय के साथ हाथ जोड़ कर भक्ति से झुके मस्तक से बारम्बार कहने लगीं—"हे देवी! रक्षा करो।" यह कहते-कहते उन सब ने बारम्बार देवी राधा के चरणकमल की शरण ग्रहण किया।।१२-१३।।

त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च। युयुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद॥१४॥
पलायन्तं च कान्तं वै विज्ञाय परमेश्वरी।
पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा॥१५॥
अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका।
सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति॥१६॥

हे नारद! तीन लाख करोड़ सुदामा प्रभृति गोपगण ने भी तभी भयभीत होकर राधा के चरणकमल की शरण ग्रहण किया। जब देवी राधा ने अपने प्रिय कृष्ण को भागते देखा, तब राधा ने

अपनी सखी सुशीला को जो भागी जा रही थी, यह शाप दिया "यदि यह सुशीला गोपी कभी भी गोलोक में आयेगी, तब वह तत्काल भस्मीभूत हो जायेगी"।।१४-१६।।

इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी रुषा। रासेश्वरी रासमध्ये रासेशं चाऽऽजुहाव ह।।१७।।

यह कहकर देवदेवीश्वरी रासेश्वरी यह शाप सुशीला को देकर रास में रासेश्वर कृष्ण को बुलाने लगीं।।१७।।

नाऽऽलोक्य पुरतः कृष्णं राधां विरहकातरा। युगकोटिसमं मेने क्षणं भेदेन सुव्रता।।१८।।

हे कृष्ण हे प्राणनाथाऽऽगच्छ प्राणाधिकप्रिय।
प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणा यान्ति त्वया विना।।१९।।
स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने।
सुस्त्री चेद्विभवो यस्मात्तं भजेद्धर्मतः सदा।।२०।।

तथापि जब विरहकातरा राधा ने वहां सामने कृष्ण को नहीं देखा, तब उन सुव्रता को एक क्षण का समय भी कोटि युग के समान प्रतीत होने लगा! वे कहने लगीं "हे कृष्ण! प्राणेश! आओ। आप तो मुझे प्राणों से भी १०० गुना प्रिय हैं। हे प्राणों के अधिष्ठातृ देवता! आपके विरह में मेरे प्राण जाने को उद्यत हैं। पति का सौभाग्य प्राप्त होने के ही कारण उसकी पत्नी का गर्व दिन-प्रतिदिन वर्द्धित होता है। उत्तम नारी वही है, जो उस व्यक्ति (पति) की सेवा करे, जिससे गृह में ऐश्वर्य बढ़ता है।।१८-२०।।

पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः। परं संपत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान्।।२१।।

धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शान्तिदः सदा।
संमानदो मानदश्च मान्यो वै मानमण्डनः।।२२।।

कुलीन स्त्री के लिये उसका पति ही उसका बन्धु, उसका अधिदेवता तथा उसकी गति है। वह मूर्त्तिमान सभी सम्पदा के समान तथा सुखरूप है। पति ही उसे धर्म देने वाला, सुखदाता, सदा प्रीति एवं शांतिदाता है। पति ही सम्मानदाता, मानप्रदाता, मान्य तथा मानविभूषण है।।२१-२२।।

सारात्सारतमः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः। न च भर्तृसमो बन्धुः सर्वबन्धुषु दृश्यते।।२३।।

भरणादेव भर्ताऽयं पालनात्पतिरुच्यते।
शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कान्त एव च।।२४।।
बन्धुश्च सुखबन्धाच्च प्रीतिदानात्प्रियः परः।
ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः।।२५।।
रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः।
पुत्रस्तु स्वामिनः [1]शुक्राज्जायते तेन स प्रियः।।२६।।

---

१. क॰ क्रोडाज्जा॰।

पति समस्त सार का भी सार है। संसार में जो कुछ भी सार वस्तु है, उनमें से बन्धुगण के सौहार्द्र का वर्धन करने वाला पति ही सार है। स्त्रियों के लिये समस्त बन्धुवर्ग में से पति ही सर्वापेक्षा उत्तम बन्धु है। यह कामिनीगण का (अपनी पत्नी का) भरण करने के कारण भर्त्ता है। पत्नी का पालन करने के कारण पति है। नारी शरीर का ईश्वर होने के कारण स्वामी है। नारी की अभिलाषा पूर्ण करने के कारण कान्त है। पत्नी का सुख बढ़ाने के कारण बन्धु है। प्रेम प्रदाता होने के कारण परम प्रिय है। ऐश्वर्य देने के कारण पत्नी के लिये ईश है। पत्नी के प्राण का नाथ होने के कारण प्राणनाथ है। पत्नी का रति (समागम) प्रदाता होने के कारण 'रमण' है। नारी के लिये पति से अधिक प्रिय कोई नहीं होता। स्वामी के शुक्र से पुत्रोत्पत्ति होती है। तभी वह प्रिय भी कहा गया है।।२३-२६।।

शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा।
असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा।।२७।।
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्।
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि वै।।२८।।
सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च।
उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानि च विश्वतः।।२९।।
गुरुसेवा विप्रसेवा देवसेवादिकं च यत्।
स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।३०।।

नारी के लिये अपने सौ पुत्रों की तुलना में पति ही अधिक प्रिय होता है। लेकिन असत् कुल में उत्पन्न नारी को पति की महत्ता का ज्ञान ही नहीं होता। तभी वह असत् पथ पर चल पड़ती है। जितने भी कृच्छसाध्य (कष्ट उठा कर सिद्ध होने वाले कर्म हैं), सर्वतीर्थ स्नान, सर्व यज्ञों में दीक्षा, पृथिवी प्रदक्षिणा, सभी प्रकार का तप, सभी प्रकार के व्रत, सभी प्रकार के महादान, जगत् में पुण्य तिथियों पर उपवास, गुरु-ब्राह्मण-देवता की सेवा इत्यादि कृच्छसाध्य कर्म हैं, ये स्वामी (पति) सेवा की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं हैं।।२७-३०।।

गुरुविप्रेष्टदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः। विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः।।३१।।

गोपीत्रिलक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च।
ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च।।३२।।
रमादिगोपकान्तानामीश्वरी यत्प्रसादतः।
अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः।।३३।।

गुरु, विप्र तथा इष्टदेव-इन तीनों की तुलना में नारी का गुरु उसका पति ही है। मनुष्यों को सभी गुरु की अपेक्षा विद्यादाता गुरु ही प्रिय होता है। अतः इसी प्रकार से जो उत्तम कुल की नारी हैं, उनके लिये गुरु-विप्र तथा इष्ट से भी बढ़ कर स्थान पति का होता है। मैंने तीन लाख कोटि गोपों, गोपियों,

असंख्य ब्रह्माण्डस्थ जीवों तथा गोलोक तक का अधीश्वरत्व पाया, तथापि मैं कृष्ण को जान ही नहीं सकी। अहो! इसीलिये स्त्री स्वभाव अत्यन्त दुर्ज्ञेय तथा विपरीत कहा गया है।।३१-३३।।

इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ सुभक्तितः।
आरात्संप्राप तं तेन विजहार च तत्र वै।।३४।।

यह दुःख प्रकट करती राधा ने अत्यन्त भक्तिभाव से श्रीकृष्ण का ध्यान किया। इसके फलस्वरूप कृष्ण तत्काल वहां आ गये तथा राधिका उनके साथ विहार करने लगीं।।३४।।

अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने।
सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ।।३५।।
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्।
न लभन्ते फलं तेषां विषण्णा प्रययुर्विधिम्।।३६।।

उधर दक्षिणा गोलोक से बाहर आकर दीर्घकाल पर्यन्त तपःश्चरण करने के पश्चात् कमला के शरीर में प्रविष्ट हो गईं। तदनन्तर जब देवगण ने अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करके भी तथा उसको उत्तम रूप से सम्पन्न होने पर भी कोई फललाभ होते नहीं देखा, तब सभी देवता निराश हो गये। वे ब्रह्मा के यहां गये।।३५-३६।।

विधिर्निर्वेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिः।
दध्यौ सुचिन्तितो भक्त्या तत्प्रत्यादेशमाप सः।।३७।।
नारायणश्च भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः।
मर्त्यलक्ष्मीं विनिष्कृत्य ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ।।३८।।

ब्रह्मा ने देवताओं का निवेदन सुन कर जगत्पति हरि का भक्ति पूर्वक स्मरण करते उनका ध्यान किया। इससे उनको भगवान् का प्रत्यादेश मिल गया। (भगवान् की कृपा हो गई)। उस समय भगवान् नारायण ने महालक्ष्मी के शरीर से मनुष्यगण की लक्ष्मी स्वरूपा दक्षिणा को बहिर्गत् करके ब्रह्मा को प्रदान कर दिया।।३७-३८।।

ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णार्थं कर्मणां सताम्।
यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव रमां मुदा।।३९।।

उस समय ब्रह्मा ने सत्कर्मसमूह को सम्पूर्णतः सम्पन्न होने के लिये यज्ञ के हाथों दक्षिणा को अर्पित कर दिया। यज्ञदेव ने भी दक्षिणा की पूजा सविधि करके आनन्द के साथ लक्ष्मीस्वरूपा दक्षिणा का स्तव किया।।३९।।

तप्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम्।।४०।।

कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम्।
कमलासनसंपूज्यां कमलाङ्गसमुद्भवाम्।।४१।।

वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम्।
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्॥४२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्।
सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्॥४३॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धं चन्दनैश्च सुगन्धिभिः।
सिन्दूरबिन्दुनाऽत्यन्तं मस्तकाधःस्थलोज्ज्वलाम्॥४४॥

स्तव–देवी दक्षिणा का देहवर्ण तप्त स्वर्ण के समान है। वे करोड़ों चन्द्रमा के समान अंगकान्ति वाली हैं। देवी अत्यन्त सुन्दरी, अत्यन्त कमनीया, मनोहर खिले कमल जैसे चेहरे वाली हैं। कमला के अंग से आविर्भूत पद्मयोनि ब्रह्मा द्वारा पूजिता, कमल जैसे विशाल नेत्रों वाली देवी का अंग अत्यन्त कोमल है। उन्होंने अग्नि में शुद्ध वस्त्रों को धारण किया है। उन सती के ओंठ पके बिम्बफल के वर्ण वाले हैं। उनकी दंतपंक्ति अत्यन्त सुन्दर है। वे मालती माला मण्डित केशपाश से शोभायमान, मन्द मधुर मुस्कान वाली, प्रसन्नानना, रत्नाभूषणों से अलंकृत, उत्तम वेष–भूषा वाली, उत्तम स्नान से सम्पन्न तथा मुनिगण के मन को मोहित करने वाली देवी हैं। उनके ललाट पर किसी कस्तूरी की बिन्दी के साथ ललाट का निचला भाग सुगन्धित सिन्दूर विन्दु शोभायमान है।।४०–४४।।

सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम्।
कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम्॥४५॥
तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह।
पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितमार्गतः॥४६॥

इनका नितम्ब देश सुविस्तृत है। श्रोणी भाग भी विशाल तथा कुचों से युक्त है। कामदेव की आधाररूपा कामबाण से व्यथिता इन सुन्दरी दक्षिणा को देख कर यज्ञदेव मूर्च्छित हो गये। जब ब्रह्मा ने यज्ञ को प्रबोधित करके समस्त वृत्तान्त बतलाया, तब उन्होंने दक्षिणा का पाणिग्रहण किया।।४५–४६।।

दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वाऽथ निर्जने। यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामया रमया सह॥४७॥
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम्। ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम्॥४८॥

कर्मणां [1]फलदाता च दक्षिणां कर्मणां सताम्।
परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः॥४९॥

यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च। कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः॥५०॥

तत्पश्चात् यज्ञदेव ने निर्जन स्थान में जाकर दिव्य १०० वर्ष तक (३६००० मानव वर्ष) परमानन्द पूर्वक दक्षिणा के साथ रमण किया। तदनन्तर दक्षिणा ने यज्ञदेव के वीर्य से १२ वर्ष तक गर्भ

१. क. पूर्णरूपा च।

धारण करके कर्मसमूह के फलरूप 'फल' नामक पुत्र को जन्म दिया। दक्षिणा सज्जनों को कर्मफल देती हैं। कर्म पूर्ण होने पर दक्षिणा का पुत्र फल प्रदान करता है। वेदज्ञगण कहते हैं कि यज्ञदेव अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ कर्मकर्त्ता व्यक्ति को फल देते हैं।।४७-५०।।

यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम्।
फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मठेभ्यो यदा मुने॥५१॥
तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः। स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥५२॥
कृत्वा कर्म च कर्ता तु तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।
तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने॥५३॥
कर्ता कर्मणि पूर्णेऽपि तत्क्षणाद्यदि दक्षिणाम्।
न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा॥५४॥
मुहूर्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम्। एकरात्रे व्यतीते तु भवेद्रसगुणा च सा॥५५॥
त्रिरात्रे वै दशगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः॥५६॥

हे मुनिप्रवर! यज्ञ तथा दक्षिणा ने फलरूपी पुत्र प्राप्त करके सभी कर्मों का फल देना प्रारम्भ कर दिया। तभी से देवता परिपूर्ण मनोरथ हो गये। वे सभी आनंदित होकर अपने स्थान चले गये। हे नारद! धर्म के मुख से यह वृत्तान्त सुना गया था। हे मुनिवर! वेद में कहा है कि कर्त्ता अपना कर्म सम्पन्न करके तत्काल दक्षिणा दान करे। उसे तत्काल कर्मफल मिल जाता है। यदि कर्मी व्यक्ति कर्म पूर्ण होने पर दैवात् अथवा भ्रम के कारण विप्र को तत्काल दक्षिणा नहीं देता, तब यदि एक मुहूर्त्त काल व्यतीत हो जाये, तब ब्राह्मण को द्विगुण दक्षिणा देना होगा। एक रात्रि व्यतीत होने पर चतुर्गुण, तीन रात व्यतीत होने पर दस गुना, एक सप्ताह व्यतीत होने पर बीस गुना दक्षिणा देना होगा।।५१-५६।।

मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते।
संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत्॥५७॥

एक मास बीतने पर एक लाख गुना दक्षिणा ब्राह्मण को देना होगा। वर्ष व्यतीत होने पर तो तीन कोटि गुना दक्षिणा देना होगा।।५७।।

कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत्।
स च ब्रह्मस्वापहारी न कर्मार्होऽशुचिर्नरः॥५८॥
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी।
तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम्॥५९॥
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्। एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तां पावकाहुतिम्॥६०॥

दक्षिणा प्रदान किये बिना यजमान का सभी कर्म निष्फल हो जाता है। वह यजमान ब्रह्मस्वहरण

का दोषी, कर्म के लिये अनधिकारी तथा अपवित्र माना गया है। वह इस पापफल से दरिद्र, व्याधियुक्त होता है। उसके घर से लक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर चली जाती हैं। उसके द्वारा प्रदत्त श्राद्धतर्पण पितर कदापि ग्रहण नहीं करते। देवताओं द्वारा उसकी की गई पूजा स्वीकार नहीं की जाती। अग्नि उसके द्वारा प्रदत्त आहुति को स्वीकार नहीं करते।।५८-६०।।

दाता ददाति नो दानं गृहीता तन्न याचते। उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः॥६१॥

नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितारं च दक्षिणाम्।
भवेद्ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम्॥६२॥

दाता ऐसे व्यक्ति को दान नहीं देते। भिक्षुक तक ऐसे व्यक्ति से याचना न करें। ब्रह्मस्वहरण करने वाले तथा दक्षिणा न देकर धोखा देने वाले दोनों अधोगामी होते हैं, जैसे रस्सी कटा घट कूप में चला जाता है। यदि याचक दक्षिणा मांगे तथा यजमान उसे दक्षिणा न दे, तब यजमान ब्रह्मस्वहरण पाप का भागी होगा। उसे निश्चित रूप से कुंभीपाक नरक मिलेगा।।६१-६२।।

वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः। ततो भवेत्स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः॥६३॥

पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वान्वै पूर्वजन्मनः। इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥६४॥

वहां वह १००००० वर्ष तक यमदूतों का प्रहार सहेगा। तदनन्तर उसे व्याधियुक्त दरिद्र चाण्डाल का जन्म मिलेगा। उसके पूर्वजन्म के (पूर्व पीढ़ी) तथा आगे की सात पीढ़ी के लोग भी नरकगामी होंगे। हे विप्र! मैंने यह सब कह दिया। अब तुम क्या श्रवण करना चाहते हो?।।६३-६४।।

नारद उवाच

यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुङ्क्ते तत्फलं मुने।
पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद॥६५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जिन कर्मों की दक्षिणा नहीं दी गई है, उस कर्मफल को कौन भोगता है? यज्ञों में किस विधि से दक्षिणा देवी की पूजा की जाये? यह कहिये।।६५।।

नारायण उवाच

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने। सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्धते॥६६॥

या या कर्मणि सामग्री बलिर्भुङ्क्ते च तां मुने। बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने॥६७॥

अश्रोत्रियं श्राद्धवस्तु चाश्राद्धं दानमेव च।
वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत्॥६८॥
ऋत्विजा न कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत्।
गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः॥६९॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे मुनिवर! दक्षिणा रहित कर्म का फल कैसे होगा? केवल

दक्षिणायुक्त कर्म का ही फल वर्द्धित होता है। हे मुनिवर! भगवान् वामन ने दक्षिणा रहित सभी कर्म तथा सामग्री को राजा बलि का भोज्य द्रव्य कहा है। जो श्रोत्रिय नहीं है, उसके द्वारा अनुष्ठित श्राद्ध की वस्तु, अनादर पूर्वक प्रदत्त दान, शूद्रा से संभोग करने वाले ब्राह्मण के पूजा द्रव्य तथा गुरुत्यागी का कर्म आदि का फल भोग दैत्यराज बलि करते हैं। इसमें सन्देह न करे।।६६-६९।।

दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम्।
तत्सर्वं काण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय।।७०।।

पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम्। मुमोह तस्या रूपेण तुष्टुवे कामकातरः।।७१।।

अब मैं काण्वशाखोक्त दक्षिणा देवी का ध्यान, स्तव, पूजाविधि सम्यक् रूप से कहता हूं। पूर्वकाल की बात है कि यज्ञदेव कर्मदक्षा दक्षिणा को पाकर मोहित हो गये और उन्होंने कामभाव से कातर होकर उनकी स्तुति किया।।७०-७१।।

यज्ञ उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा परा।
राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिये।।७२।।
कार्तिके पूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे।
आविर्भूता दक्षिणांशात्कृष्णस्यातो हि दक्षिणा।।७३।।
पुरा त्वं च सुशीलाख्या शीलेन सुशुभेन च।
कृष्णदक्षांशवासाच्च राधाशापाच्च दक्षिणा।।७४।।
गोलोकात्त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता।
कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये।।७५।।

यज्ञदेव कहते हैं–हे प्रिये! पूर्वकाल में तुम गोपियों में प्रधाना थीं। तुम सर्वप्रधान राधा देवी की सखी एवं गोलोक में राधा के ही समान कृष्णप्रिया भी थी। कार्त्तिक पूर्णिमा तिथि के दिन रासेश्वरी राधा के रासमहोत्सव काल में तुम्हारी उत्पत्ति भगवान् पुण्डरीकाक्ष के दक्षिणांग से होने के कारण तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ा। इससे पहले सुन्दर स्वभाव के कारण तुम्हारा नाम सुशीला था। तुम एक बार श्रीकृष्ण की दाहिनी गोद में बैठी थी। यह देख कर सौतिया डाह के कारण राधा रुष्ट हो गईं। राधा के शाप से तुम दक्षिणा कहलाई। हे प्रियतमे! गोलोक से तुम मेरे शुभ अदृष्ट (भाग्य) के कारण मेरे पास आई हो। अब मुझ पर प्रसन्न हो जाओ! हे प्रिये! मुझे अपने स्वामी रूप से स्वीकार करो! ऐसी कृपा करो।।७२-७५।।

कर्तृणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा।
त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम्।।७६।।

फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले।
त्वया विना तथा कर्म कर्तृणां च न शोभते॥७७॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाच्च दिक्पालादय एव च।
कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना॥७८॥
कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः। यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी॥७९॥

हे देवी! तुम कर्मी लोगों के कर्म का फल देती हो। तुम्हारे बिना सभी कर्मीगण के कर्म निष्फल हो जाते हैं। जैसे पृथिवी पर फल-शाखा रहित वृक्ष शोभायमान नहीं होते, उसी प्रकार दक्षिणा रूपी तुम्हारे बिना कर्त्तागण के कर्म शोभित (फलयुक्त) नहीं होते। तुम्हारे सहयोग के बिना तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, दिक्पाल भी कर्म का फल नहीं दे पाते। कर्मरूपी हैं ब्रह्मा, फलरूपी हैं महेश्वर, विष्णु हैं यज्ञरूप तथा मैं (यज्ञ) तुम इन सबके सार रूप हैं।।७६-७९।।

फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृते परः।
स्वयं कृष्णश्च भगवान्न च शक्तस्त्वया विना॥८०॥
त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि।
सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने॥८१॥

भले ही फलदाता तो निर्गुण एवं प्रकृति से परे एकमात्र परब्रह्म कहे जाते हैं, तथापि वे भगवान् कृष्ण भी तुम्हारे बिना यज्ञकर्मफल देने में समर्थ ही नहीं हैं! हे प्रिये! तुम जन्म-जन्मान्तर में सदा मेरी शक्तिरूपा हो। हे वरानने! तुम्हारे साथ रहने पर ही मैं सब कर्मों को कर पाता हूं।।८०-८१।।

इत्युक्त्वा तत्पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः।
तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला॥८२॥
इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत्। फलं च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः॥८३॥
राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके। अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे॥८४॥
धनदे भूमिदे [1]फल्गौ पुत्रेष्टौ गजमेधके। लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे [2]पटलव्याधिखण्डने॥८५॥
शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च [3]बन्धके। इष्टौ वरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने॥८६॥
शुचियागे धर्मयागे रेचने पापमोचने। [4]बन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके॥८७॥
एतेषां च समारम्भ इदं स्तोत्रं च यः पठेत्।
निर्विघ्नेना च तत्कर्म साङ्गं भवति निश्चितम्॥८८॥

---

१. क. फालौ।
२. क. पाटले व्या॰।
३. क. ॰बन्धुके।
४. क. वर्धने।

यज्ञदेव जो सभी यज्ञों के अधिष्ठातृ देवता हैं, इतना कह कर मौन हो गये। तदनन्तर यह स्तव सुन कर प्रसन्न हो गई कमला की कलांशरूपा दक्षिणा अब यज्ञदेव की सेवा अपना पति मान कर करने लगीं। इस दक्षिणा स्तोत्र का यज्ञकाल में पाठ करने वाला समस्त यज्ञफल प्राप्त करता है। यह निःसंशय जानें। जो कोई इस स्तोत्र का पाठ राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगल, यशोदायक, विष्णुयज्ञ, धनदायक, भूमिप्रद, फल्गुयज्ञ, पुत्रेष्ठि यज्ञ, गजमेध, लोहयज्ञ, नेत्ररोग नाशक स्वर्णयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, वरुणयज्ञ, कन्दुकवैरिमर्दन यज्ञ, शुचियाग, धर्मयाग, पापमोचन याग बन्धन, कर्मयाग, अति कल्याणप्रद मणियाग के प्रारम्भ में करता है, उसका वह याग सांगोपांग एवं विघ्न रहित सम्पन्न होगा।।८२-८८।।

इति स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
शालग्रामे घटे वाऽपि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः॥८९॥
लक्ष्मीदक्षांशसंभूतां दक्षिणां [1]कमलाकलाम्।
सर्वकर्मसु दक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम्॥९०॥
विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम्।
शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे॥९१॥

हे नारद! सुबुद्धिशाली व्यक्ति पूजा, ध्यान एवं इस स्तोत्र से शालग्राम शिला में अथवा घट में दक्षिणा पूजा करे। ध्यान-लक्ष्मी के दाहिने अंग से उत्पन्न एवं उनकी अंश रूप दक्षिणा सभी कर्म हेतु प्रशस्ता, सर्वकर्म फलप्रदा एवं विष्णुशक्तिस्वरूपा शुभप्रदा दक्षिणा की उपासना करे। यह ध्यान है।।८९-९१।।

ध्यात्वाऽनेनैव वरदां सुधीमूलेन पूजयेत्। दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेन च नारद॥९२॥
ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः।
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम्॥९३॥

यह ध्यान करके इन वरप्रदा दक्षिणा की पूजा विद्वान् पूजक मूल मन्त्र से करे। हे नारद! सर्वप्रथम भगवती को वेद में कहे नियम से पाद्यादि प्रदान करे। तदनन्तर विद्वान् पूजक भक्तिभाव से सर्वपूजित दक्षिणा की पूजा इस मन्त्र से करे "ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा"।।९२-९३।।

इत्येवं कथितं सर्वं दक्षिणाख्यानमुत्तमम्। सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम्॥९४॥
इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः। अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि॥९५॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम्।
भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम्॥९६॥

१. क. ०लाननाम्।

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम्।
पतिव्रतां सुव्रतां च शुद्धां च कुलजां वराम्॥९७॥
विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो धनं लभेत्।
भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाः॥९८॥
सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा। मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दक्षिणोपा० दक्षिणोत्पत्तितत्पूजादिविधानं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

हे नारद! मैंने एवंविध देवी दक्षिणा का उत्तम प्रसंग कहा। यह सुखप्रद, प्रीतिप्रद, सभी कर्म का फल देने वाला है। जो इस आख्यान को समाहित होकर सुनता है, भारत भूमि में उसके कर्म अंगहीन नहीं रह पाते। इसके प्रभाव से पुत्रहीन को गुणसम्पन्न पुत्र, स्त्रीहीन को सुशीला-सुन्दरी-उत्तम-अनुपम-पुत्रवती-विनयशील-प्रियभाषिणी, पतिप्राणा, उत्तम नियम वाली, शुद्ध, सत्कुलोत्पन्न, उत्तमोत्तम पत्नी मिलती है। विद्या रहित मनुष्य विद्या, धन रहित धन, भूमि रहित भूमि, प्रजा रहित को प्रजा (सन्तान) लाभ होगा। एक मास तक यह आख्यान श्रवण करने वाला सर्वसंकट, बन्धुवियोग, विपदा, बन्धनादि से मुक्त होगा। यह निःसंशय जाने॥९४-९९॥

॥द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

षष्ठी देवी का उपाख्यान, प्रियव्रत राजा द्वारा कृत षष्ठी पूजा एवं स्तोत्रादि का वर्णन

नारद उवाच

अनेकासां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम्। अन्यासां चरितं ब्रह्मन्वद वेदविदां वर॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं-हे वेदज्ञप्रवर! अनेक देवीगण के उत्तम उपाख्यान को सुना। सम्प्रति इनके अतिरिक्त अन्य देवी के चरित का वर्णन करिये॥१॥

नारायण उवाच

सर्वासां चरितं विप्र वेदेष्वस्ति पृथक्पृथक्। पूर्वोक्तानां च देवीनां त्वं कासां श्रोतुमिच्छसि॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे देवर्षि! सभी देवियों का चरित वेद में पृथकतः कहा गया है। मैंने तुम्हारे प्रश्नानुसार पूर्वोक्त कतिपय देवीगण का चरित तो कहा है। अब किस देवी के चरित को सुनना चाहते हो, उसके सम्बन्ध में प्रश्न करो।।२।।

नारद उवाच

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कला। उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।।३।।

देवर्षि नारद कहते हैं–मैं षष्ठी देवी, मंगलचण्डी तथा प्रकृति की कलारूपा मनसा देवी की उत्पत्ति एवं चरित तत्वतः सुनना चाहता हूं।।३।।

नारायण उवाच

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता।
बालकाधिष्ठातृदेवी विष्णुमाया च बालदा।।४।।
मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च सा।
प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता।।५।।
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी।
सततं शिशुपार्श्वस्था योगाद्वै सिद्धियोगिनी।।६।।

तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मान्नितिहासविधिं शृणु। यच्छ्रुतं धर्ममुखतो सुखदं पुत्रदं परम्।।७।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे देवर्षि! सभी बालकों की अधिष्ठातृ बालक प्रदान करने वाली ये देवी विष्णुमाया प्रकृति के षष्ठांश से उत्पन्न कला हैं। तभी इनको षष्ठी कहा है। ये मातृका प्रधान प्रसिद्धा "देवसेना" नाम वाली भी हैं, जो स्कन्ददेव की प्राणों से भी अधिक प्रिय पत्नी एवं सुव्रता-पतिव्रता षष्ठी देवी ही हैं। ये १६ मातृकाओं में देवसेना कही गयी हैं। ये सर्वदा माता की तरह सर्वदा बालकों की परमायु बढ़ाने हेतु तत्पर रहती हैं। ये योगसिद्धिस्वरूपा देवी सदा शिशुओं के समीप अवस्थित रहती हैं। हे ब्रह्मातनय नारद! इनका मैं एक इतिहास पूजा विधि प्रसंग में वर्णन करता हूं। यह सुखप्रद, पुण्यदायक इतिहास मैंने धर्म से सुना था।।४-७।।

राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायंभुवमनो सुतः। योगीन्द्रो नोद्वहेद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा।।८।।
ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव सः। सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने।।९।।
पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः। मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ।।१०।।
भुक्त्वा चरुं च तस्याश्च सद्यो गर्भे बभूव ह। दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम्।।११।।

पूर्वकाल में स्वायम्भुव मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत सदा तपस्यारत रहते थे। तभी उन योगीन्द्र ने विवाह ही नहीं किया। तदनन्तर ब्रह्मदेव की आज्ञा से उन्होंने येन-केन-प्रकारेण विवाह तो किया, तथापि दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी उनको पुत्र प्राप्ति नहीं हो सकी। हे मुनिवर! ऐसी स्थिति में

महर्षि कश्यप ने उनके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न कराया। यज्ञान्त में महर्षि ने प्रियव्रत पत्नी मालिनी को यज्ञ का चरु प्रदान किया। उस चरु के भोजन द्वारा मालिनी शीघ्र गर्भवती हो गई। उस देवी मालिनी ने उस गर्भ को देवताओं के १२ वर्ष पर्यन्त गर्भ में धारण किया था। (१ देववर्ष = ३६० मानव वर्ष)।।८-११।।

ततः सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम्। सर्वावयसंपन्नं मृतमुत्तारलोचनम्॥१२॥

तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यो वै बान्धवस्त्रियः।
मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन सुव्रता॥१३॥
श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने।
रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि॥१४॥

हे मुनिवर! तदनन्तर राजमहिषी मालिनी ने स्वर्णकान्ति सर्वलक्षण सम्पन्न एक मृत पुत्र को जन्म दिया। उसके नेत्रों के तारक बहिर्गत् से थे। अतः बन्धु-बान्धवादि तथा रानी प्रभृति अन्य नारीगण यह देख कर रोने लगीं। फलतः राजमहिषी ने पुत्र की यह अवस्था जब देखा, तब वे शोक मूर्च्छिता हो गईं। हे मुनिप्रवर! राजा इस पुत्र को वक्ष में लगा कर श्मशान ले गये तथा निकटस्थ वन में पुत्र को क्रोड़ में रख कर रोने लगे।।१२-१४।।

नीत्सृज्य बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः।
ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात्॥१५॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श ह। शुद्धस्फटिकसङ्काशं मणिराजविराजितम्॥१६॥

तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा।
नानाचित्रविचित्राढ्यं [1]पुष्पमालाविराजितम्॥१७॥

राजा मृत शव को छोड़ ही नहीं रहे थे। वह तो अपना प्राण त्याग करने हेतु उद्यत थे। पुत्रशोक इतना दारुण था कि वे अपना ज्ञान-योगादि सब विस्मृत कर चुके थे। तभी उन्होंने आकाश से आ रहा एक विमान देखा जो शुद्ध स्फटिकवत् तथा मणियों से जड़ित था। वह तेज से प्रज्वलित, रेशमी वस्त्रों से युक्त, नाना चित्र-विचित्र वस्तु से सज्जित एवं पुष्पमाला से सजाया गया था।।१५-१७।।

ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम्। श्वेतचम्पकवर्णाभां रम्यसुस्थिरयौवनाम्॥१८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकारिणीम्॥१९॥

दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात्।
चकार पूजनं तस्या विहाय भुवि बालकम्॥२०॥
पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्।
तेजसा ज्वलितं शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद॥२१॥

१. क. ०विनिर्मितम्।

राजा ने उस विमान में कमनीया मनोहरा श्वेत चम्पा के समान शुभ्र वर्ण वाली, निरन्तर स्थिरयौवना, मन्द-मन्द हास्य के कारण प्रसन्नवदना, रत्नभूषण भूषिता, दयामयी, भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु तत्पर देवी को जब देखा, तब वे विमान के अवतरण के साथ ही उन देवी के समक्ष बालक के शव को भूमि पर रख कर खड़े हो गये तथा परम आदर पूर्वक देवी का पूजन तथा उनका स्तव किया (यहां पूजन मानसिक किया होगा। क्योंकि अशौच में बाह्य पूजन संभव नहीं है)। हे नारद! उन स्कन्द पत्नी को राजा ने जब देखा वे ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य के समान तेज से दीप्त तथा शान्त थीं। तब राजा उनसे कहने लगे-।।१८-२१।।

प्रियव्रत उवाच

का त्वं सुशोभने कान्ते कस्य कान्ताऽसि सुव्रते।
कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम्॥२२॥

राजा प्रियव्रत कहते हैं-हे सुशोभने! वरारोहे! सुव्रते! आप किसकी पत्नी हैं? आपके यहां आगमन का क्या कारण है? आप स्त्रीगण में धन्या तथा मान्या प्रतीत हो रही हैं। आप किसकी पुत्री हैं?।।२२।।

नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी। उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी॥२३॥
देवानां [1]दैत्यभीतानां पुरा सेना बभूव सा। जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा॥२४॥

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाऽहमीश्वरी।
सृष्ट्वा मां मनसो धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप॥२५॥
मातृकासु च विख्याता [2]स्कन्दसेना च सुव्रता।
विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेर्यतः॥२६॥

पुत्रदाऽहमपुत्राय प्रियस्त्रीदा प्रियाय च। धनदा च दरिद्रेभ्यः कर्तृभ्यः शुभकर्मदा॥२७॥

राजा का कथन सुनकर जगत् को मंगल प्रदान करने वाली तथा देवगण का रक्षण करने वाली देवसेना ने कहा-(पूर्वकाल की बात है कि वे दैत्यत्रस्त देवगण की सेना रूपा थीं। तभी वे देवसेना कहलायीं)-"हे पृथिवीपति! मैं ब्रह्मा के मन से उत्पन्ना ईश्वररूपा देवसेना हूं। विधाता ने मेरी सृष्टि करके मुझे स्कन्ददेव कार्त्तिकेय को प्रदान कर दिया। मैं १६ मातृकाओं में से स्कन्दपत्नी सुव्रता देवसेना मातृका हूं। जगत् में मेरा नामान्तर है षष्ठी। मैं पुत्रहीनों को पुत्र प्रदान करती हूं। प्रियाविहीन को प्रिय स्त्री प्रदान करती हूं। मैं दरिद्रों को धन तथा शुभकर्मकर्त्ता को शुभ कर्मफल देती हूं"।।२३-२७।।

सुखं दुःखं भयं शोकं हर्षं मङ्गलमेव च। संपत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा॥२८॥
कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा। कर्मणा च दरिद्रश्च धनाढ्यश्च स्वकर्मणा।

१. क. ०त्यग्रस्तानां।
२. क. ०न्दभार्या च।

कर्मणा रूपवांश्चैव रोगी शश्वत्स्वकर्मणा॥२९॥

कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीविनः। कर्मणा गुणवन्तश्च कर्मणा चाङ्गहीनकाः॥३०॥

मनुष्य तथा प्राणीगण स्वकर्म से ही सुख-दुःख, भय-शोक, हर्ष-मंगल, सम्पदा-विपदा होती है। कर्म से ही व्यक्ति अनेक पुत्र प्राप्त करता है अथवा वंशहीन होता है। वह कर्म से ही दरिद्र अथवा धनाढ्य होता है। स्वकर्म से ही व्यक्ति रूपवान अथवा रोगी होता है। कर्म से ही उसका पुत्र मृत होता है। कर्म से ही व्यक्ति का पुत्र चिरजीवी होता है। कर्म से ही प्राणी गुणी होते हैं, कर्मफल से ही वे अंगहीन होते हैं।।२८-३०।।

तस्मात्कर्म परं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम्।
कर्मरूपी च भगवांस्तद्द्वारा फलदो हरिः॥३१॥

हे राजन्! कर्म सबसे प्रधान है। यह वेद का कथन है। कर्म द्वारा ही कर्मरूपी प्रभु विष्णु फल देते हैं।।३१।।

इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने। महाज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया॥३२॥

हे मुनिवर! यह कहने के अनन्तर देवी ने उस बालक को उठाया तथा अपने महाज्ञान द्वारा उसे लीला से जीवित कर दिया।।३२।।

राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम्। देवसेना च पश्यन्तं नृपमम्बरमेव च॥३३॥

गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता। पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः॥३४॥

नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह। उवाच तं नृपं ब्रह्मन्वेदोक्तं कर्मनिर्मितम्॥३५॥

राजा ने तब आकाश की ओर शिर उठा कर देखा वह कनककान्ति कुमार मन्द-मन्द हंस रहा था। राजा यह दृश्य देख ही रहा था कि देवी उस बालक को गगनपथ से लेकर जाने को उद्यत हो गईं। यह देखते ही राजा का तालु-कण्ठ-ओंठ शुष्क हो गया। उसने देवी स्तुति प्रारम्भ कर दिया। देवी देवसेना राजा के स्तव से प्रसन्न हो गयीं। तभी देवसेना ने राजा से वेदोक्त कर्मकाण्ड का वचन कहा-।।३३-३५।।

देवसेनोवाच

त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायंभुवमनोः सुतः।
मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु॥३६॥

तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम्। सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम्॥३७॥

देवसेना कहती हैं-तुम स्वायम्भुव मनु के पुत्र तथा त्रैलोक्याधिपति हो। तुम स्वयं मेरी पूजा करो तथा सर्वत्र इस पूजा का प्रचार कराओ। मैं तुमको यह कुलकमलरूप मनोहर पुत्र प्रदान करती हूं। यह सुव्रत नाम वाला पुत्र विख्यात गुणी एवं सुपण्डित होगा।।३६-३७।।

जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणपरायणम्। शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम्॥३८॥
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम्। धन्विनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च॥३९॥
[1]योगिनं ज्ञानिनं चैव सिद्धरूपं तपस्विनम्।
यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसंपदाम्॥४०॥

यह योगीन्द्र, नारायण का भक्त, पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त, सौ यज्ञ करने वाला श्रेष्ठ क्षत्रिय होगा तथा सभी द्वारा वन्दनीय होगा। यह एक लाख मत्त हाथियों के शुभ बल से युक्त, महाधनुर्द्धर, गुणी, शुद्ध, विद्वानों का प्रिय, योगी, ज्ञानी, सिद्धरूप, तपस्वी, यशस्वी, सभी लोकों में सर्वसम्पत्ति प्रदाता होगा।।३८–४०।।

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ।
राजा च तं स्वीचकार तत्पूजार्थं च सुव्रतः॥४१॥
जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम्। आजगाम महाराजः स्वगृहं हृष्टमानसः॥४२॥
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम्। तुष्टा बभूवुः संतुष्टा नरा नार्यश्च नारद॥४३॥
मङ्गलं कारयामास सर्वत्र सुतहेतुकम्। देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ॥४४॥

यह कहकर देवी ने वह बालक राजा को दे दिया। राजा ने देवी की पूजा करने तथा प्रचारित करना स्वीकार कर लिया। देवी ने राजा को शुभ वर देकर स्वधाम गमन किया। राजा भी आनन्दित होकर अपने पुर वापस आये तथा पुत्र का समस्त वृत्तान्त कहकर देवी की पूजा किया तथा ब्राह्मणों को प्रचुर धन प्रदान किया।।४१–४४।।

राजा च प्रतिमासेषु [2]शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम्।
षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः॥४५॥
बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम्। तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे॥४६॥
बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा। सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह॥४७॥

तभी से राजा भी प्रतिमास की शुक्ला षष्ठी के दिन षष्ठी देवी का महोत्सव यत्नतः सर्वत्र कराने लगा। बालकगण के सूतिकागृह में उनके जन्म के छठे दिन एवं जन्म के १२वें दिन अत्यन्त प्रयत्न से षष्ठीपूजा होने लगी। बालकों के शुभ कार्य के समय, अन्नप्राशनादि के उपलक्ष्य में सर्वत्र षष्ठी पूजा का आदेश राजा ने प्रसारित किया। स्वयं भी वे यह पूजा करने लगे।।४५–४७।।

ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय।
यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत॥४८॥

---

१. क. ०गिनां प्राणिनां चै०।
२. क. शुक्लाष्टम्यां।

शालग्रामे घटे वाऽथ वटमूलेऽथवा मुने।
भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः॥४९॥

हे सुव्रत नारद! कौथुमशाखा के अनुसार उपदिष्ट षष्ठी देवी का ध्यान, पूजाविधि, स्तोत्रादि मैंने धर्मदेव से जैसा सुना था, वह कह रहा हूं। हे मुनि! विद्वान् व्यक्ति शालग्राम शिला में, घट में अथवा वटवृक्ष की जड़ में षष्ठी पूजा करे। अथवा दीवाल पर उनकी प्रतिमा चित्रित करके इन देवी की पूजा करे।।४८-४९।।

षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठां च सुव्रताम्।
सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम्॥५०॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे॥५१॥

ध्यान—ये देवी भगवती प्रकृति के षष्ठांश से उत्पन्न, शुद्धा, सुप्रतिष्ठिता वाली, सुव्रता, उत्तम पुत्र तथा शुभप्रदा, दयारूपा, जगन्माता, श्वेत चम्पा के वर्ण वाली, रत्नभूषण भूषिता, पवित्र रूपा, सर्वश्रेष्ठ देवसेना हैं। मैं इनका भजन करता हूं।।५०-५१।।

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दद्यात् विचक्षणः।
पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम्॥५२॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धधूपप्रदीपकैः। नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन च शुभेन च॥५३॥
मूलमों ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम्। अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः॥५४॥

यह ध्यान करके बुद्धिमान साधक अपने शिर पर पुष्प रख कर एकाग्रता के साथ मूलमन्त्र से उनकी पूजा करे। तदनन्तर पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय-गन्ध-धूप-प्रदीप-विविध शुभ नैवेद्य से पूजनोपरान्त देवी के अष्टाक्षर मन्त्र का यथासाध्य जप करे। मन्त्र है "ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा"।।५२-५४।।

ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः।
स्तोत्रं च सामवेदोक्तं धनपुत्रफलप्रदम्॥५५॥
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने। स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः॥५६॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ[1] सर्वेषां च शुभावहम्।
वाञ्छाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदे च नारद॥५७॥

तदनन्तर स्तुति करके समाहित होकर भक्ति पूर्वक देवी को प्रणाम करे। तत्पश्चात् सामवेद में कहे गये धन एवं पुत्रप्रद स्तव का पाठ करे। हे मुनिवर! इस अष्टाक्षर मन्त्र का एक लक्ष जप करने वाला व्यक्ति निश्चित पुत्रलाभ करता है। यह ब्रह्मा ने कहा है। हे नारद! अब सबके लिये शुभप्रद, कामनाप्रद, वेदों में गुप्त स्तोत्र कह रहा हूं।।५५-५७।।

---

१. क. सर्वकामशु०।

प्रियव्रत उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः।
शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥५८॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥५९॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः।
मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६०॥

राजा प्रियव्रत कहते हैं—आप देवी को नमस्कार करता हूं! आप महादेवी, सिद्धि-शान्तिरूपा, सुखप्रदा, मोक्षप्रदा षष्ठी देवी को नमस्कार! आप शक्ति प्रकृति का छठा भाग हैं, आप सिद्धा, माया, सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी को पुनः-पुनः नमस्कार!॥५८-६०॥

पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः। सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम्॥६१॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्।
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६२॥

आप श्रेष्ठा, श्रेष्ठत्वप्रदा षष्ठी देवी हैं आपको नमस्कार! आप सार स्वरूप, सार प्रदात्री, सभी कर्म को सफल करने वाली हैं। हे षष्ठी देवी! आपको नमस्कार! आप बालकगण की अधिष्ठातृ देवी षष्ठी देवी कल्याणप्रदा, कल्याणमयी, कर्म का फल देने वाली, भक्तों को प्रत्यक्ष दर्शन देने वाली हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार!॥६१-६२॥

पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु। देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६३॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा। हिंसाक्रोधैर्वर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६४॥
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि। धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६५॥

आप पूज्या, स्कन्ददेव की प्रिया, सबके सर्व कर्म में पूज्या, देवगण की रक्षा करने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार! आप शुद्ध सत्त्वरूपा तथा मनुष्यों द्वारा सर्वदा वंदिता हैं। आप हिंसा, क्रोध रहित षष्ठी देवी को नमस्कार! आप धन, स्त्री, पुत्र दीजिये। हे सुरेश्वरी षष्ठीदेवी! आप धर्म तथा यश दीजिये। आपको नमस्कार करता हूं!॥६३-६५॥

भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते। कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥६६॥

हे षष्ठी देवी! आप भूमि, प्रजा, विद्या दीजिये! आप सुपूजिता हैं। आप कल्याण तथा यश दीजिये। आपको नमस्कार!॥६६॥

इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः। यशस्विनं च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः॥६७॥
षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्यः शृणोति च वत्सरम्। अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम्॥६८॥

वर्षमेकं च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च। सर्वपापाद्विनिर्मुक्ता महाबन्ध्या प्रसूयते॥६९॥

एवंविध देवी की स्तुति द्वारा प्रियव्रत ने पुत्रलाभ किया। वह पुत्र षष्ठीदेवी की कृपा से राजेन्द्र हो गया। हे ब्रह्मन्! जो एक वर्ष तक षष्ठीदेवी के इस स्तव का श्रवण करता है, वह अपुत्रक पुत्रलाभ करता है। वह चिरजीवी होता है, जो १ वर्ष संयत तथा भक्तिभाव से इसका श्रवण करता है, वह सर्वपातक रहित हो जाता है। वन्ध्या तक पुत्रवती हो जाती है।।६७-६९।।

वीरपुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्। सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः॥७०॥

वह गुणी, विद्यावान्, यशस्वी तथा वीरपुत्र प्राप्त करती है। यह सब माता षष्ठी देवी की कृपा से मिलता है।।७०।।

काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्।
वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवी प्रसादतः॥७१॥
रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च।
मासं च मुच्यते बालः षष्ठीदेवी प्रसादतः॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० षष्ठ्युपा० षष्ठीदेंव्युत्पत्तितत्पूजास्तोत्रादि-
कथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

काक वन्ध्या, मृतवत्सा नारी भी इसे एक वर्ष सुन कर षष्ठी देवी की कृपा से पुत्रलाभ करती है। यदि माता-पिता इसको एक मास सुनते हैं, तब उनका रोगी पुत्र शीघ्र रोग रहित हो जाता है।।७१-७२।।

।।त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

मंगल चण्डी उपाख्यान तथा उनकी पूजा विधि-ध्यान, मन्त्र तथा स्तोत्र का वर्णन

नारायण उवाच

कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्।
देवी मङ्गलचण्डी या तदाख्यानं निशामय॥१॥
तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम्। श्रुतिसंमतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि॥२॥
चण्डा या वर्तते चण्डी जाग्रती शत्रुमण्डले।
मङ्गलेषु च या दक्षा मङ्गला सैव चण्डिका॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! शास्त्रानुरूप षष्ठी देवी का उपाख्यान मैंने तुमसे कह दिया। अब मंगलचण्डी देवी का उपाख्यान तथा ध्यान श्रवण करो। इनकी पूजादि के सम्बन्ध में धर्मदेव से जो सुना था, उस वेदविहित, सभी विद्वानों को अभिलषित विषय का वर्णन करता हूं। शत्रु मण्डल में चण्डा (क्रोधयुक्त) चण्डी सतत् जाग्रता रहती हैं। जो मंगलकार्य में सदा दक्ष रहती हैं, वे ही मंगल चण्डिका हैं। (अर्थात् ये मंगल भी करती हैं तथा भक्त के शत्रुगण के प्रति सचेत जाग्रत रहती हैं)॥१-३॥

दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुतः।
मङ्गलाऽभीष्टदेवी या सा स्यान्मङ्गलचण्डिका॥४॥
मङ्गलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपावनीपतिः। तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका॥५॥
मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता॥६॥

पूज्यों में परिगणित होने के कारण ये चण्डी हैं तथा महीपुत्र मंगल की आराध्या होने के कारण मंगलचण्डी हैं। दुर्गा के सम्बन्ध में चण्डी शब्द प्रयुक्त करते हैं। अतः मंगल तथा मनोरथ सिद्ध करने के कारण ये ही मंगलचण्डिका भी हैं। मूर्त्तिभेद से कृपारूपा दुर्गा ही मूल प्रकृति, ईश्वरी, मंगलचण्डी रमणीगण के सामने प्रकट होकर उनको अभीष्ट प्रदान करती हैं। ये स्त्रीगण की इष्ट देवता हैं॥४-६॥

प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण पुरा परा।
त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च॥७॥
ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गप्रस्थे च सङ्कटे। आकाशात्पतिते याने रुषा दैत्येन पातिते॥८॥
ब्रह्मविष्णुपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शङ्करः। सा च मङ्गलचण्डीयमभवद्रूपभेदतः॥९॥

पूर्वकाल में परमेश्वर विष्णु से प्रेरणा पाकर त्रिपुरवधार्थ महादेव ने इनकी पूजा किया था। हे ब्रह्मपुत्र! पूर्व में जब दुर्ग पर संकट आते देखा, तब उस घोर त्रिपुर ने रुष्ट होकर शंकर का यान आकाश से भूपतित कर दिया। तब ब्रह्मा-विष्णु के उपदेशानुसार शंकर ने दुर्गा की स्तुति किया था। इसी कारण रूपभेद से वे मंगलचण्डी हो गईं।।७-९।।

उवाच पुरतः शंभोर्भयं नास्तीति ते प्रभो। भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह॥१०॥
युद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि तदाज्ञया।
मयाऽऽत्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज जहि दैत्यं च देवेश सुराणां पदघातकम्॥११॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी शंभोः शक्तिर्बभूव सा। विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः॥१२॥

उस समय मंगलचण्डीरूपा दुर्गा ने प्रकट होकर महादेव से कहा–"हे प्रभो! आपको भय नहीं है। सर्वाधीश्वर ही वृषरूपेण आपके वाहन हो गये। मैं उनकी आज्ञा से आपके युद्ध की शक्ति का रूप धारण करूंगी। हे देवेश! मेरी तथा हरि की सहायता से आप देवगण के पदों का हरण करने वाले दैत्यों का नाश करिये।" यह कहकर देवी वहां से अन्तर्हित् होकर शिव की शक्ति हो गईं। तब उमापति ने विष्णु द्वारा प्रदत्त शस्त्र से दैत्य संहार किया।।१०-१२।।

मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः। तुष्टुवुः शङ्करं देवा भक्तिनम्रात्मकंधराः॥१३॥
सद्यः शिरसि शंभोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह।
ब्रह्मा विष्णुश्च संतुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम्॥१४॥
ब्रह्मविष्णुपदिष्टश्च सुस्नातः शङ्करः शुचिः।
पूजयामास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम्॥१५॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च बलिभिर्विविधैरपि। पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने॥१६॥
छागैर्मेषैश्च महिषैर्गण्डैर्मायाविभिर्वरैः। वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि॥१७॥
मधुभिश्च सुधाभिश्च पक्वैर्नानाविधैः फलैः। सङ्गीतैर्नर्तनैर्वाद्यैरुत्सवैः कृष्णकीर्तनैः॥१८॥
ध्यात्वा माध्यंदिनोक्तेन ध्यानेन विधिपूर्वकम्।
ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद॥१९॥

असुर त्रिपुर का नाश हो जाने पर सभी देवताओं तथा महर्षियों ने नतशिर होकर भक्तिभाव के साथ महादेव का स्तवगान किया। तभी महादेव के शीश पर पुष्पवर्षा होने लगी। महादेव ने भी ब्रह्मा-विष्णु के कहने पर स्नान करके शुद्ध होकर मंगलचण्डिका की पूजा किया। उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, नाना पुष्प हार, पुष्प, चन्दन, भक्ति पूर्वक प्रदत्त नाना नैवेद्य से और बकरा, महिष आदि पशुबलि से, वस्त्रालंकार, माला, खीर, पिष्टक, मधु, सुधा, नाना प्रकार के पके फल किया। संकीर्त्तन, वाद्य से आनन्द पूर्वक कृष्णनाम कीर्त्तन किया तथा माध्यन्दिन शाखोक्त मन्त्रों से भक्ति पूर्वक ध्यान भी किया। हे नारद! उन्होंने मूल मन्त्र द्वारा विभिन्न द्रव्य भी समर्पित किया।।१३-१९।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके।
ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः॥२०॥

भगवती मंगल चण्डिका का इक्कीस अक्षरात्मक मन्त्र यह है–"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके ऐं क्रूं फट् स्वाहा"॥२०॥

पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः। दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥२१॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विष्णुः सर्वकामदः।
ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम्॥२२॥

यह मन्त्र भक्तों हेतु कल्पवृक्ष है। उपासकों को अभिलषित फल प्रदान करता है। मनुष्यगण १० लाख जप द्वारा इसे सिद्ध करें। जो व्यक्ति इस मन्त्र को सिद्ध कर लेता है, वह सर्वकामना साधक विष्णुरूप ही है। हे नारद! अब सर्ववेद सम्मत मंगल चण्डिका का ध्यान सुनो॥२१-२२॥

देवीं षोडशवर्षीयां रम्यां सुस्थिरयौवनाम्।
सर्वरूपगुणाढ्यां च कोमलाङ्गीं मनोहराम्॥२३॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥२४॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मल्लिकामाल्यभूषितम्।
बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम्॥२५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुनीलोत्पललोचनाम्।
जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसंपदाम्॥२६॥

ध्यान–ये भगवती १६ वर्षीया, स्थिर यौवन सम्पन्ना, सर्वगुणागार हैं। इनके अंग अतिशय कोमल हैं। इनका वर्ण श्वेत चम्पक पुष्प के समान शुभ्र है। इनकी अंगकान्ति के सामने तो करोड़ों चन्द्रमा भी मलिन ही लगते हैं। इन्होंने अग्निशुद्ध वस्त्र धारण किया है। ये बहुमूल्य अनेक रत्नाभूषण से भूषित हैं। इनका केशपाश मल्लिका की माला से मंडित है, जो पृष्ठदेश में लटक रही है। इनका शारदीय चन्द्रमा के समान शोभित आनन है, जिस पर बिम्बफल जैसे ओंठ तथा उत्तम दंतपंक्ति विराजित है। इनके किंचित् हास्ययुक्त मुखमण्डल पर नीलकमल जैसे दो नेत्र शोभायमान हैं। ये जगद्धात्री जागतिक लोगों को सर्व सम्पदा देती हैं॥२३-२६॥

संसारसागरे घोरे पोतरूपां वरां भजे॥२७॥

ये देवी संसार-सागर से पार उतारने वाली पोत (जहाज) रूपा हैं। इनका भजन करें॥२७॥

देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने। प्रयतः सङ्कटग्रस्तो येन तुष्टाव शङ्करः॥२८॥

हे मुनिवर! यही देवी का ध्यान है। अब वह स्तुति सुनो, जिससे संकट काल में शंकर ने देवी का स्तवन किया था॥२८॥

शङ्कर उवाच

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके। संहर्त्रि विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके॥२९॥
हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलचण्डिके। शुभे मङ्गलदक्षे च शुभमङ्गलचण्डिके॥३०॥

शंकर कहते हैं–हे जगन्माता देवी मंगलचण्डिके! आप रक्षा करिये। आप विपदाओं का संहार करने वाली एवं हर्ष और मंगल करने वाली हैं। आप हर्ष तथा मंगल करने में दक्ष हैं। हे मंगलचण्डिके! आप मंगल करने में दक्ष, शुभमंगलचण्डिका हैं।।२९-३०।।

मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले। सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये॥३१॥
पूज्या मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते। पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम्॥३२॥

आप मंगलरूप, मंगल के योग्य सभी मंगलों का भी मंगल करने वाली हैं। हे मंगलमय देवी! आप सदा सज्जनों को मंगल प्रदान करती हैं। आप सबके मंगल का आलय हैं। जो मंगल चाहते हैं, वे आपकी पूजा मंगलवार को करते हैं। आप अभीष्ट मंगल की देवता हैं। आप मनुवंशोत्पन्न मंगलमय राजाओं की भी सदा पूज्या हैं।।३१-३२।।

मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले। संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि॥३३॥
सारे च मङ्गलाधारे पारे त्वं सर्वकर्मणाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये त्वं मङ्गलप्रदे॥३४॥

आप मंगल की अधिष्ठातृ देवी हैं। मंगल का भी मंगल करने वाली हैं। समस्त संसार के मंगल की आधारभूत तथा मोक्षरूपी मंगल देने वाली हैं। आप मंगल की साररूपा, मंगलाधार, सर्वकर्म समूह के परे हैं। हे मंगलप्रदे! आपकी पूजा प्रति मंगलवार को होनी चाहिये।।३३-३४।।

स्तोत्रेणानेन शंभुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम्।
प्रतिमङ्गलवारे च पूजां कृत्वा गतः शिवः॥३५॥
देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः श्रृणोति समाहितः। तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत्तदमङ्गलम्॥३६॥

शंभु ने इस स्तोत्र से मंगलचण्डिका की स्तुति किया। उन्होंने प्रति मंगलवार को देवी की पूजा किया तथा चले गये। देवी के इस मंगल स्तव को जो समाहित होकर सुनता है, उसका सदा मंगल ही होगा। कदापि अमंगल नहीं होगा।।३५-३६।।

प्रथमे पूजिता देवी शंभुना सर्वमङ्गला। द्वितीये पूजिता देवी मङ्गलेन ग्रहेण च॥३७॥
तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च। चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिश्च पूजिता।
पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षैर्नरैर्मङ्गलचण्डिका॥३८॥

सर्वप्रथम शिव ने सर्वमंगला देवी का पूजन किया था। इनकी द्वितीय पूजा मंगल ग्रह ने किया। तृतीय बार इन भद्रा की पूजा राजा मंगल ने किया था। चतुर्थ बार मंगलवार को ही स्त्रियों ने मंगलचण्डी का पूजन किया था। पंचम बार मंगल के ही दिन इन महादेव पूजिता मंगलचण्डिका देवी की पूजा मंगल चाहने वाले मनुष्यों ने किया था।।३७-३८।।

पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशैः प्रतिमा सदा। ततः सर्वत्र संपूज्या सा बभूव सुरेश्वरी॥३९॥
देवादिभिश्च मुनिभिर्मनुभिर्मानवैर्मुने। देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः॥४०॥
तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत्तदमङ्गलम्। वर्धन्ते तत्पुत्रपौत्रा मङ्गलं च दिने दिने॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मङ्गलचण्डिकोपा तत्स्तोत्रादिकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

हे मुनिवर! तत्पश्चात् इन मंगलचण्डिका की पूजा त्रैलोक्य में देवता, मुनि, मनुगण तथा मानवों ने किया। तदनन्तर देवी सर्वत्र पूजिता होने लगीं। जो व्यक्ति एकाग्रता पूर्वक इस मंगलचण्डी देवी के स्तोत्र का श्रवण करता है, उसके पुत्र-पौत्रादि के मंगल की दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती है!॥३९-४१॥

॥चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

मनसा का उपाख्यान, मनसा के बारह नामों की व्युत्पत्ति

नारायण उवाच

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्। श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥१॥
कन्या भगवती सा च कश्यपस्य च मानसी तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीव्यति॥२॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम्। तेन सा मनसादेवी योगेनैतेन दीव्यति॥३॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी।
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—मैंने षष्ठी तथा मंगलचण्डी का उपाख्यान वर्णन कर दिया। सम्प्रति धर्म के द्वारा श्रुत मनसा का उपाख्यान कहता हूं। श्रवण करो। मनसा देवी कश्यप ऋषि के मन से उत्पन्न हैं। वे मनुष्यों के मन में क्रीड़ा करती हैं। इसीलिये भगवती मनसा नाम से प्रसिद्धा हैं। अथवा वे मन से परमेश्वर परमात्मा हरि की आराधना द्वारा मनसा कही गईं। अथवा उन्होंने योगबल से मन में हरि का ध्यान करके **मनसा** नाम से प्रसिद्धि पा लिया। आत्माराम स्थिति वाली वैष्णवी मनसा देवी ने तीन युगों तक परमात्मा कृष्ण की तपस्या किया। इससे वे योगबल द्वारा सिद्ध हो गईं।॥१-४॥

जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यां क्षणमीश्वरः। गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः॥५॥

वाञ्छितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः।
पूजां च कारयामास चकार च पुनः स्वयम्॥६॥
स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः। भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा।
जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती॥७॥
शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता।
विष्णुभक्ताऽतीव रम्या वैष्णवी तेन नारद॥८॥
नागानां प्राणरक्षित्री जनमेजययज्ञके[1]। नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनी तथा॥९॥
विषं संहर्तुमीशा सा तेन सा विषहारिणी।
सिद्धं योगं हरात्प्राप तेनासौ सिद्धयोगिनी॥१०॥

परमेश्वर गोपीनाथ कृष्ण ने मनसा को जरत्कारु काया (क्षीण शरीर) देख कर उनका नाम जरत्कारु रख दिया था। कृपानिधि श्रीकृष्ण ने कृपा पूर्वक उनकी अभिलाषा पूर्ण करके उनकी पूजा कराया तथा स्वयं भी पूजा किया। स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल तथा ब्रह्मलोकादि सभी लोकों में मनोहारिणी सुन्दरी गौरी इसी कारण से **जगत्गौरी** नाम से विख्यात होकर पूजा प्राप्त करती हैं। वे नागों की बहन हैं, अतः **नागभगिनी** कही जाती हैं। मनसा देवी शिव की शिष्या होने के कारण **शैवी** कही गई हैं। ये विष का हरण करती हैं, अतएव **विषहरी** कही जाती हैं। ये अतिशय विष्णुपरायणा होने के कारण **वैष्णवी** कही गयी हैं। इन्होंने जनमेजय के सर्पयज्ञ में सहोदर नागों की रक्षा किया था, इस कारण ये **नागेश्वरी** कही जाती हैं। इन्होंने हर से सिद्धयोग लाभ किया था, अतः इनको **सिद्धयोगिनी** कहा गया है॥५-१०॥

महाज्ञानं च गोप्यं च मृतसञ्जीविनीं पराम्। महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः॥११॥
आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा वै तपस्विनः।
आस्तीकमाता विख्याता जरत्कारुरिति स्मृता॥१२॥
प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः।
योगिनी विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रिया ततः॥१३॥
ॐ नमो मनसायै॥१४॥

ये देवी महाज्ञान तथा श्रेष्ठ मृतसंजीवनी विद्या जानती हैं। तभी मनीषीगण इनको **महाज्ञानी** कहते हैं। आस्तीक मुनि की माता तपस्विनी थी। आस्तीक की माता का प्रसिद्ध नाम है जरत्कारु। ये महात्मा मुनीन्द्र **जरत्कारु की प्रिया** थीं (यहां पति तथा पत्नी, दोनों का नाम जरत्कारु ही था)। जरत्कारु मुनि विश्वपूज्य योगी कहे गये हैं। इन देवी का मन्त्र है "ॐ नमो मनसायै"॥११-१४॥

---

१. "यज्ञे जन्मेजयस्य" इति पाठान्तरम्।

जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी। वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा॥१५॥

जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च।
महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता॥१६॥

इन महाज्ञानमयी विश्वपूज्या देवी के १२ नाम इस प्रकार हैं। यथा–१. जरत्कारु, २. जगद्गौरी, ३. मनसा, ४. सिद्धयोगिनी, ५. वैष्णवी, ६. नागभगिनी, ७. शैवी, ८. नागेश्वरी, ९. जरत्कारु प्रिया, १०. आस्तीक माता, ११. विषहरी, १२. महाज्ञानयुता॥१५-१६॥

द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले च यः पठेत्।
तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च॥१७॥

नागभीदे च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे। नागक्षते नागदुर्गे नागवेष्टितविग्रहे॥१८॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः। नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते॥१९॥

जो पूजा काल में इन १२ नामों का पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशोत्पन्न लोगों को नागभय नहीं होता। सर्पभययुक्त शय्या में, सर्पयुक्त मन्दिर में, सर्पदंश में, सर्प द्वारा शरीर लपेट लेने पर जो यह स्तवपाठ करता है, वह उक्त संकटों से तत्काल मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। जो इसका नित्य पाठ करता है, उसे देखते ही नागवर्ग पलायन कर जाते हैं॥१७-१९॥

दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।
स्तोत्रं सिद्धं भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः॥२०॥

नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः। नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः॥२१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० मनसास्तोत्रादिकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

मनुष्यों को यह स्तोत्र १० लक्ष जप द्वारा सिद्ध हो जाता है। जिसे यह स्तोत्र सिद्ध हो गया, वह विषभक्षण भी कर सकता है। वह नागों को आभूषण ऐसा पहनकर नागवाहन हो जाता है। वह महासिद्ध तो नागों का आसन तथा नागों की शय्या भी बना सकता है!॥२०-२१॥

॥पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

जरत्कारु मुनि के साथ मनसा का विवाह, आस्तीक जन्म, जनमेजय के नागयज्ञ में आस्तीक द्वारा नागकुल की रक्षा, महेन्द्र कृत मनसा के स्तोत्र आदि का वर्णन

नारायण उवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रूयतां मुनिपुङ्गव। ध्यानं च सामवेदोक्तं देवीपूजाविधानकम्॥१॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम्॥२॥
महाज्ञानयुतां चैव प्रवरां ज्ञानिनां सताम्। सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिप्रवर! मनसा देवी की पूजाविधि, सामवेदोक्त ध्यान प्रभृति पूजा के उपयोगी विषय का श्रवण करो।

ध्यान–उनका वर्ण श्वेत चम्पा के समान शुभ्रवर्ण है, उनके अंग में नाना प्रकार के बहुमूल्य स्वर्णाभूषण शोभायमान हैं। उनके वस्त्र अग्नि जैसे शुद्ध हैं। उन्होंने नाग का यज्ञोपवीत धारण किया है। वे देवी महाज्ञानी तथा ज्ञानियों में प्रधान हैं। वे पतिव्रता, सिद्धों की अधिष्ठातृ, सिद्धरूपा एवं सिद्धिप्रदा हैं। मैं उनका भजन करता हूं॥१–३॥

इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत्। नैवेद्यैर्विविधैर्दीपैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः॥४॥
मूलमन्त्रश्च वेदोक्तो भक्तानां वाञ्छितप्रदः। मूलकल्पतरुर्नाम प्रसिद्धो द्वादशाक्षरः॥५॥

इस प्रकार देवी का ध्यान करके उनकी पूजा मूल मन्त्र से करे। नैवेद्य, नाना दीपक, पुष्प, धूप, अनुलेप मूलमन्त्र से देवी को प्रदान करे। भक्तों को वांछित पदार्थ देने वाला वेदोक्त मन्त्र मूलकल्पतरु नामक १२ अक्षरों का कहा गया है॥४–५॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं[१] मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः।
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥६॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले। सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत्॥७॥
ब्रह्मन्नाषाढसंक्रान्त्यां गुडाशाखासु यत्नतः।
आवाह्य देवीं मासान्तं पूजयेद्यो हि भक्तितः॥८॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां देव्यै दद्याच्च यो बलिम्।
धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम्॥९॥

---

१. क्लीं मित्यत्रं क्रीमिति च पाठो दृश्यते।

यथा—"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा" यह मन्त्र ५ लाख जपने से सिद्ध हो जाता है। यह मन्त्रसिद्ध व्यक्ति ही जगत् में सिद्ध कहा जाता है। वह सिद्ध व्यक्ति धन्वन्तरि के समान हो जाता है। उसके लिये विष तक अमृत है। हे ब्रह्मन्! आषाढ़मासीय संक्रान्ति तिथि पर कपास की शाखा में मनसा का आवाहन करके भक्तिभाव सहित एक मास पर्यन्त पूजा करे तथा पंचमी के दिन बलि प्रदान करे। ऐसा साधक धनी, पुत्रयुक्त एवं यशस्वी होगा। यह निश्चित है।।६-९।।

पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय। कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥१०॥

हे महाभाग! मैंने तुमको मनसा देवी का पूजा विधान कह दिया। अब धर्मदेव से मैंने मनसा का जो आख्यान सुना था, वह यथावत् कह रहा हूं।।१०।।

पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि।
यान्यान्खादन्ति नागाश्च न ते जीवन्ति नारद॥११॥

मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणाऽर्थितः। वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन वेधसः॥१२॥

मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसां ससृजे ततः। तपसा मनसा तेन मनसा सा बभूव ह॥१३॥

कुमारी सा च संभूय चागमच्छङ्करालयम्।
भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टुवे चन्द्रशेखरम्॥१४॥

पूर्वकाल में पृथिवी पर अत्यन्त सर्पभय व्याप्त था। जिसे सर्प एक बार भी काटते, वह तत्क्षण मृत्युमुख में पतित हो जाता था। तब कश्यप मुनि ने प्रजा के हितार्थ प्रजापति ब्रह्मदेव के आदेश से वेदोक्त बीज के अनुसार मन्त्र सृष्टि किया। ये मनसा देवी इस मन्त्र की अधिष्ठातृ देवता हैं, जो ध्यानकाल में ब्रह्मा के मन से आविर्भूत हो गयी थीं। तभी वे मनसा कही गयीं। ये देवी उत्पन्न होते ही महादेव के यहां गईं तथा उनकी आराधना कैलास पर्वत पर अत्यन्त भक्ति के साथ किया। वहां पर जाकर देवी ने चन्द्रशेखर देव की पूजा तथा स्तुति किया था।।११-१४।।

दिव्यं वर्षसहस्त्रं च तं सिषेवे मुनेः सुता। आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह॥१५॥

महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च। कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने॥१६॥

हे मुनिवर! मनसा ने वहां दिव्य मान वाले १००० वर्ष (१ दिव्य वर्ष = ३६० मानव वर्ष) तक शिवाराधन किया, जिसके कारण आशुतोष महेश्वर उन पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने मनसा को महाज्ञान देकर सामवेद का अध्ययन कराया तथा श्रीकृष्ण का अष्टाक्षर मन्त्र भी प्रदान किया जो कल्पतरु के समान है।।१५-१६।।

लक्ष्मी माया कामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं तथा। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम्॥१७॥

स्तवनं सर्वपूज्यं च ध्यानं भुवनपावनम्। पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसंमतम्॥१८॥

प्रणव को आदि में रख कर लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), बीज कह कर चतुर्थ्यन्त कृष्णपद कह कर नमः कहे। यह अष्टाक्षर मन्त्र है। मन्त्रोद्धार यह है—"ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः।" शिव ने मनसा को यह अष्टाक्षर मन्त्र तथा त्रैलोक्यमंगल कवच प्रदान करने के अनन्तर उनको पूजाक्रम तथा लोकपावन पुनश्चर्या क्रम भी श्रवण कराया था। वह पूजा क्रम सर्वसम्मत तथा वेदोक्त है।।१७-१८।।

प्राप्य मृत्युञ्जयाज्ज्ञानं परं मृत्युञ्जयं सती। जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शङ्कराज्ञया।।१९।।

त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः।
सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम्।।२०।।
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालां च कृपया च कृपानिधिः।
पूजां च कारयामास चकार च हरिः स्वयम्।।२१।।

देवी ने भगवान् मृत्युंजय से मृत्युंजय ज्ञान भी प्राप्त किया और शिव मृत्युंजय की आज्ञा से वे तपस्या के लिये पुष्कर तीर्थ गयीं, जहां उन्होंने तीन युग ध्यानोपरान्त सिद्धत्व लाभ किया। उस समय देवी के समक्ष प्रभु ने अपना रूप भी प्रदर्शित किया। कृपानिधि श्रीहरि ने उन अत्यन्त दुर्बल देह वाली नवयौवना मनसा की पूजा अन्य लोगों से सम्पन्न कराने के उपरान्त स्वयं भी उनकी पूजा किया था।।१९-२१।।

वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव।
वरं दत्त्वा च कल्याण्यै सद्यश्चान्तर्दधे विभुः।।२२।।

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना। द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च।।२३।।

श्रीहरि ने यह वर भी मनसा को दिया था कि "हे भवे! तुम समग्र विश्व में पूजिता हो जाओगी।" उन कल्याणी को वर देकर विभु हरि अन्तर्ध्यान हो गये। अतः सबसे पहले इनकी पूजा परमात्मा कृष्ण ने किया था। इसके पश्चात् शंकर, कश्यप एवं देवगण ने इनकी पूजा किया।।२२-२३।।

मनुना मुनिना चैव ह्यहिना मानवादिना। बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु[१] सुव्रता।।२४।।
जरत्कारुमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा। अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया।।२५।।

कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिरम्।
सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे।।२६।।
निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम्।
जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थितः।।२७।।

मनु, मुनिगण, नाग तथा मनुष्यादि ने और त्रैलोक्य के लोगों ने इनकी पूजा किया। ये सभी

---

१. ख. सुश्रुता।

उनकी पूजा करने लगे। पूर्व में कश्यप ने जरत्कारु मुनि को यह कन्या प्रदान किया था। मुनि जरत्कारु को कन्या ग्रहण की इच्छा नहीं थी। उन्होंने याचना भी नहीं किया था, तथापि ब्राह्मण कश्यप की आज्ञा के कारण उन्होंने कन्या को स्वीकार किया। तदनन्तर मुनि ने अपनी तपस्या से श्रान्त होकर चिरकाल के लिये विश्राम करना चाहा। वे वटवृक्ष के नीचे सती मनसा की गोद में शिर रख कर सो गये। निद्राधीश्वर प्रभु का स्मरण करते ये मुनि गाढ़ निद्रा में मग्न थे। अन्ततः सूर्यास्त आसन्न होने के कारण सन्ध्या वंदन का समय हो गया।।२४-२७।।

संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता। धर्मलोपभयेनैव चकाराऽऽलोचनं सती॥२८॥

अकृत्वा पश्चिमां संध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम्।
ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम॥२९॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स सर्वदाऽशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत्॥३०॥
वेदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास तं मुनिम्।
स च बुद्ध्वा मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुनिः॥३१॥

यह देख कर पतिव्रता मनसा देवी ने यह विचार किया कि यह धर्मलोप का समय आ गया है। यदि द्विजों के लिये निश्चित् सायं सन्ध्या यदि मेरे पति नहीं करते, तब वे निश्चित रूप से ब्रह्महत्यादि पातक के भागी होंगे। जो द्विज पूर्वकालीन अर्थात् प्रातः सन्ध्या तथा सायं सन्ध्या सम्पन्न नहीं करता, वह तो सतत् अपवित्र है तथा ब्रह्महत्या पातक का भागी है। इस वेदोक्त नियम का विचार करके मनसा ने मुनि को प्रबोधित कर दिया, तथापि निद्रा से जाग्रत किये जाने के कारण वे मुनिप्रवर अत्यन्त कुपित हो गये तथा कहने लगे—।।२८-३१।।

जरत्कारुरुवाच

कथं मे सुव्रते साध्वि निद्राभङ्गः कृतस्त्वया।
व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी॥३२॥

तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत्। भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम्॥३३॥

यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया।
पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपी हरिः स्वयम्॥३४॥

ऋषि जरत्कारु कहते हैं—हे सुव्रते! तुमने साध्वी पतिव्रता होकर मेरी निद्रा भंग कर दिया? पति का यह अपकार करने वाली पत्नी का व्रतादि सब व्यर्थ हो जाता है। इस प्रकार से पति का अप्रिय करने वाली नारी का तप, उपवास, व्रत, दानादि सब निष्फल है। जिस नारी ने पतिपूजा कर लिया, उसने तो जगत्पति कमलापति कृष्ण की पूजा कर लिया। पतिव्रता के लिये तो उसके व्रत के फलस्वरूप भगवान् स्वयं पति रूप से प्राप्त होते हैं।।३२-३४।।

सर्वदानं सर्वयज्ञं सर्वतीर्थनिषेवणम्। सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकं च यत्॥३५॥

सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम्।
तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३६॥
सुपुण्ये भारते वर्षे पतिसेवां करोति या।
वैकुण्ठं स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः[1] शतम्॥३७॥

सभी दान, समस्त यज्ञ, सर्वतीर्थ सेवन, सभी तप, सभी व्रत-उपवास, समस्त धर्म, सत्य, समस्त देवों का पूजन इन सबका मूल्य पतिसेवा की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं है। जो नारी पुण्यमय भारतवर्ष में पतिसेवा करती है, वह १०० ब्रह्मा की आयु तक वैकुण्ठलोक में अपने पति के साथ रहती है॥३५-३७॥

विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम्। असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति॥३८॥

जो नारी पति को अप्रिय लगने वाला आचरण करती है, पति से अप्रिय वचन बोलती है, वह अकुलीना नारी जो कर्मफल पायेगी, उसे सुनो॥३८॥

कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जिता॥३९॥

जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य अपना-अपना कार्य निर्वहन करते स्थित रहते हैं, तब तक वह नारी कुंभीपाक नरक यन्त्रणा भोगती है। तदनन्तर वह पति-पुत्र रहिता होकर चाण्डाल योनि प्राप्त करती है॥३९॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः।
चकम्पे मनसा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम्॥४०॥

यह कहते-कहते उन मुनिप्रवर के अधर कोप के कारण फड़कने लगे। शापभय से साध्वी मनसा प्रकम्पित होकर पति से कहने लगीं-॥४०॥

मनसोवाच

संध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्तव। कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत॥४१॥
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति च। स व्रजेत्कालसूत्रं च स्वामिनश्च विशेषतः॥४२॥

देवी मनसा कहती हैं—हे सुव्रत! महात्मन्! आपका सन्ध्या वन्दन काल व्यतीत न हो जाये, इस सन्ध्यालोप के भय के कारण मैंने आपकी निद्रा भंग किया था। हे सुव्रत! महाभाग! आप मुझ दुष्टा के प्रति शान्त होने की कृपा करिये। नियम है कि जो कोई किसी का शृंगार, भोजन तथा निद्रा भंग करता है, उसे कालसूत्र नरक की प्राप्ति होती है॥४१-४२॥

---
१. ख. ॰णः पदम्।

इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे।
पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः॥४३॥
कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम्।
तत्राऽऽजगाम भगवान्संध्यया सह नारद॥४४॥
तत्राऽऽगत्य मुनिश्रेष्ठमवोचद्भास्करः स्वयम्।
विनयेन विनीतश्च तया सह यथोचितम्॥४५॥

यह कह कर मनसा देवी अपने पति के प्रति अत्यन्त भक्तिभाव से उनके चरणकमलों पर गिर पड़ीं तथा वे अत्यन्त भयभीत होकर रोने लगीं। हे नारद! जब सूर्य ने देखा कि ये क्रुद्ध मुनि मुझे शाप देने हेतु उद्यत हैं, तब सूर्यदेव अपनी पत्नी संध्या के साथ वहां आये। वे विनम्रता पूर्वक, विनयपूर्ण यथोचित बातें उन मुनिप्रवर से कहने लगे—॥४३-४५॥

श्रीसूर्य उवाच

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च। त्वां बोधयामास विप्र नाहमस्तं गतस्तदा॥४६॥
क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने। ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा॥४७॥

सूर्यदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवर! सूर्यास्त होने की आशंका से तथा धर्मलोप हो जाने के भय से मनसा ने आपको निद्रा से प्रबोधित किया था। उस समय मैं अस्त नहीं हुआ था। हे ब्रह्मन्! आप शान्त हों। मेरे प्रति आपका क्रोध कदापि उचित नहीं है। ब्राह्मण का हृदय सदैव नवनीत के समान होता है।॥४६-४७॥

तेषां क्षणार्धं क्रोधश्चेत्ततो भस्म भवेज्जगत्।
पुनः स्त्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः॥४८॥
[1]ब्रह्मणो वंशसंभूतः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।
श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योति सनातनम्॥४९॥

यदि ब्राह्मण क्षणमात्र भी क्रुद्ध हो जाये तब जगत् ही भस्म हो सकता है, तथापि ब्राह्मण पुनः जगत् सृष्टि कर सकते हैं। उनसे बढ़ कर तेजस्वी कोई नहीं है। अतः ब्राह्मण जो ब्रह्मकुल में उत्पन्न तथा ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त है, वह ब्रह्मज्योति सनातन कृष्ण की सदा भावना करते रहते हैं।॥४८-४९॥

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह।
सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम्॥५०॥
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च। रुदतीं शोकयुक्तां च हृदयेन विदूयता॥५१॥

सूर्य का वचन सुन कर ब्राह्मण जरत्कारु सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर सूर्यदेव इन ब्राह्मण का

१. क. ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्र०।

आशीर्वाद लेकर स्वस्थान चले गये, तथापि इन ब्राह्मण ने प्रतिज्ञा का पालन करने हेतु मनसा का त्याग कर दिया। वे अत्यन्त दुःख के साथ रोने लगीं। उनका हृदय इस वेदना से पूर्ण था।।५०-५१।।

सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं हरिं विधिम्। कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता॥५२॥

तत्राऽऽजगाम भगवान्गोपीशः शंभुरेव च।
विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः॥५३॥

विप्रो दृष्ट्वाऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम्। तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥५४॥

तदनन्तर देवी मनसा ने अपने गुरुदेव महेश्वर का, इष्ट प्रभु विष्णु का तथा ब्रह्मा का स्मरण करके इस विपत्तिभय से व्यथित होकर जन्मदाता पिता कश्यप का भी स्मरण किया। वहां भगवान् गोपीनाथ कृष्ण, शंभु, ब्रह्मा तथा कश्यप भी मनसा के प्रति चिन्तातुर होकर वहां आ गये। ब्राह्मण जरत्कारु ने भी जब अपने इष्टदेव निर्गुण प्रकृति से परे प्रभु को वहां समागत देखा, तब उन्होंने परम भक्ति के साथ उनकी स्तुति करके उनको बारम्बार प्रणाम किया।।५२-५४।।

नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा। कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः॥५५॥

ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम्। तमुवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्बुजम्॥५६॥

उन्होंने तत्पश्चात् शंभु-ब्रह्मा तथा महर्षि कश्यप को भी प्रणामोपरान्त उनके आगमन का कारण पूछा। तब ब्रह्मा ने जरत्कारु का वचन सुन कर हृषीकेश के चरणकमलों में मन ही मन प्रणाम करके सहसा ब्राह्मण से समयानुकूल वाक्य कहा-।।५५-५६।।

ब्रह्मोवाच

यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती।
कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं धर्मसंस्थापनाय वै॥५७॥
यतिर्वा ब्रह्मचारी वा भिक्षुर्वनचरोऽपि वा।
जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चाद्भवेन्मुनिः॥५८॥
अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम्।
स्रवेत्तपस्तत्पुण्यं च चालिन्यां च यथा जलम्॥५९॥

ब्रह्मदेव कहते हैं-यदि तुमने अपनी धर्मिष्ठा, धर्मपत्नी सती मनसा का त्याग किया ही है, तब तुम धर्मस्थापनार्थ उससे पुत्र उत्पन्न करो। यति, ब्रह्मचारी, भिक्षु (संन्यासी), वनेचर वानप्रस्थ अथवा मुनिगण धर्मपत्नी से पुत्रोत्पादन के उपरान्त ही यथार्थतः धर्म पालक कहे जाते हैं। जो वैराग्य लेकर बिना पुत्रोत्पत्ति किये पत्नी का त्याग करता है, उसे उसी प्रकार से पुण्यलाभ नहीं होता, जैसे चलनी में छोड़ा समस्त जल नीचे गिर जाता है।।५७-५९।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः। चक्रे तन्नाभिसंस्पर्शं योगाद्वै मन्त्रपूर्वकम्॥६०॥

तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा ययुर्देवा मुदाऽन्विताः।
मुदाऽन्विता च मनसा जरत्कारुर्मुदाऽन्वितः॥६१॥
मुनेः करस्पर्शमात्रात्सद्यो गर्भो बभूव ह। मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम्॥६२॥

ब्रह्मा का कथन सुन कर मुनीश्वर जरत्कारु ने मन्त्रोच्चारण किया तथा योगबल से युक्त होकर पत्नी का नाभिस्पर्श किया। तदनन्तर देवगण भी उनको आशीर्वाद देकर मुदित मन से चले गये। इससे मनसा तथा जरत्कारु भी प्रसन्न हो गये। हे मुनिप्रवर! मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु ऋषि के करस्पर्श मात्र से मनसा तत्काल गर्भवती हो गईं। उस समय उन मुनिप्रवर ने मनसा से कहा–॥६०-६२॥

जरत्कारुरुवाच

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति। जितेन्द्रियाणां प्रवरो धर्मिष्ठो वैष्णवाग्रणीः॥६३॥
तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः।
वरो वेदविदां चैव योगिनां ज्ञानिनां तथा॥६४॥
स च पुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत्।
नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा॥६५॥
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी।
धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलजा कुलपालिका॥६६॥

ऋषि जरत्कारु कहते हैं–हे मनसा! तुम्हारे गर्भ से वैष्णवकुल चूड़ामणि जितेन्द्रिय धार्मिकों में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। वह तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी तथा सर्व सद्गुण सम्पन्न होगा। मेरा पुत्र ज्ञानी-योगी तथा वेदज्ञों में प्रधान कहा जायेगा। वह मेरे वंश का उद्धारक होगा। वह विष्णुभक्त धार्मिक पुत्र जैसे ही जन्म लेगा, सभी पितृगण प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करेंगे। नियम है कि पतिव्रता तथा सुशीला पत्नी वही है, जो पति को प्रिय तथा प्रियवादिनी हो, धार्मिक पुत्र की माता हो, उत्तम कुलोत्पन्न हो तथा कुल का पालन करने वाली हो॥६३-६६॥

हरिभक्तिप्रदो बन्धुस्तदिष्टं यत्सुखप्रदम्। यो बन्धच्छित्स च पिता हरेर्वर्त्मप्रदर्शकः॥६७॥
सा गर्भधारिणी या च गर्भवासविमोचिनी।
दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचिनी॥६८॥

जो हरिभक्ति प्रदान करे, वही वास्तविक बन्धु है। वही इष्ट है, जो सुखदायक हो। वे ही वास्तविक पिता हैं, जो सन्तान को हरि प्राप्ति का पथ प्रदर्शित करें तथा उसको असार संसार-बन्धन के उच्छेद का उपदेश करें। गर्भधारिणी मां वही है, जो सन्तान के पुनः-पुनः गर्भ में आने के चक्र का दुःख नष्ट कर दे। दयापूर्ण बहन वही है, जो भाई को यमभय से मुक्त कराये॥६७-६८॥

विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः। गुरुश्च ज्ञानदाता च तज्ज्ञानं कृष्णभावनम्॥६९॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यतो विश्वं चराचरम्। आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः॥७०॥
वेदजं योगजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम्। तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडम्बनम्॥७१॥

विष्णुमन्त्र प्रदान करने के साथ भगवद्भक्ति प्रदाता ही यथार्थ गुरु है। गुरु ही यथार्थ ज्ञानदाता होता है। ज्ञान वह है, जो कृष्ण के प्रति भक्तिभाव उत्पन्न कर पाये। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त चराचरात्मक जगत् समूह जिससे आविर्भूत होकर जिसमें लीन हो जाता है, उन परात्पर परमेश्वर श्रीकृष्ण का चिन्तन ही परम ज्ञान है। उसकी अपेक्षा अन्य ज्ञान क्या हो सकता है? ऐसे ज्ञान का उपदेशक ही गुरु कहलाता है। वेद तथा योग में निर्दिष्ट जो कुछ विषय है, उनमें सबका सार है हरिसेवा। यही सर्वतत्व सार है। हरि के अतिरिक्त सब विडम्बना है।।६९-७१।।

दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः।
ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बन्धदः॥७२॥
विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं न ददाति हि योगतः।
स विप्रः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत्॥७३॥
जननीगर्भजात्क्लेशाद्यमताडनजात्तथा।
न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बान्धवः॥७४॥

मैंने तुमको निर्मल ज्ञान दे दिया। वही यथार्थ में स्वामी है, जो स्त्री को निर्मल ज्ञानोपदेश करता है। ज्ञान द्वारा ही जीव भवबन्धनमुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति स्त्री आदि को बन्धनभय कार्य में नियुक्त करता है, उससे बढ़ कर कोई शत्रु ही नहीं है। जो विष्णुभक्तिप्रद ज्ञानोपदेश करते हैं, वे ही गुरु हैं। वह गुरु शिष्यघाती है, जो शिष्य को बन्धनमुक्त नहीं करता। ऐसे असद्गुरु का उपदेश मान कर व्यक्ति को बारम्बार जननी गर्भ में निवास तथा यमदूतों का प्रहार सहन करना पड़ जाता है। ऐसा असद् उपदेश देने वाला जो जननी गर्भ तथा यमदूतों की ताड़ना से मुक्त न करा सके, वह कैसे गुरु-पिता तथा बन्धु है?।।७२-७४।।

परमानन्दरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम्। न दर्शयेद्यः स कथं कीदृशो बान्धवो नृणाम्॥७५॥

भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम्।
निर्मूलं च पुराकर्म भवेद्यत्सेवया ध्रुवम्॥७६॥
मया छलेन त्वं त्यक्ता दोषं मे क्षम्यतां प्रिये।
क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते॥७७॥
पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम्।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे ध्यानविच्छेदकातरः॥७८॥

हे साध्वी! इसलिये जो परमानन्दमय कृष्ण का अनश्वर पथ प्रदर्शित न कर सके, वह

मनुष्यगण का बंधु कैसे हो सकता है? हे देवी! तुम प्रभु कृष्ण का भजन करो, जो परब्रह्म, अच्युत तथा निर्गुण हैं। इस कृष्ण सेवा-भजन द्वारा तुम्हारा पूर्वजन्मार्जित सभी कर्म निर्मूल होगा। यह निश्चित है। हे देवी! मैं तो तुम्हारा त्याग कपट पूर्वक कर रहा हूं। हे प्रिये! मेरा वह दोष क्षमा करना। साध्वी नारी क्षमावान् होने तथा सत्वाधिक्य के कारण क्रोध रहित होती है। हे देवी! मैं तप हेतु पुष्कर तीर्थ जा रहा हूं। तुम भी सुख पूर्वक जाओ। श्रीकृष्ण के चरणकमल के ध्यान का विच्छेद हो जाने के कारण मैं कातर हो रहा हूं।।७५-७८।।

धनादिषु स्त्रियां प्रीतिः प्रवृत्तिपथगामिनाम्।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः।।७९।।

विशेषतः स्त्री जाति को मोक्षादि से अधिक प्रेम धन-पुत्र में रहता है। वे प्रवृत्तिपथगामी होती हैं। निःस्पृह लोग का सम्पूर्ण मनोरथ श्रीकृष्ण के चरणकमल में ही निहित है।।७९।।

जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा।
सा साश्रुनेत्रा विनयादुवाच प्राणबल्लभम्।।८०।।

जरत्कारु मुनि का वचन सुन कर मनसा देवी शोक से कातर हो गईं। उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे। उन्होंने विनय के साथ अपने पति से कहा-।।८०।।

मनसोवाच

दोषेणाहं त्वया त्यक्ता निद्राभङ्गेन ते प्रभो।
यत्र स्मरामि त्वां बन्धो तत्र मामागमिष्यसि।।८१।।
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परः। प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात् सर्वतः परः।।८२।।

मनसा देवी कहती हैं-हे प्रभो! मेरे द्वारा आपकी निद्रा भंग जनित जो दोष था, उससे ही आप मेरा त्याग कर तो रहे हैं, तथापि हे बन्धु! जब भी मैं आपका स्मरण करूं, आप अवश्य मेरे पास आयें। बन्धुविछोह तो क्लेशकर होता ही है, उससे बड़ा दुःख होता है पुत्र के वियोग से, तथापि प्राणेश्वर पति का विछोह तो नारी के लिये सर्वाधिक कष्टदायक वियोग है।।८१-८२।।

पतिः पतिव्रतानां च शतपुत्राधिकः प्रियः।
सर्वस्माच्च प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः।।८३।।
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ। नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले।।८४।।
क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां यथा स्त्रियाम्।
यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम्।।८५।।
विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा।
तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो।।८६।।

पतिव्रता के लिये तो उसका पति सौ पुत्रगण से भी अधिक प्रिय होता है। विद्वान् लोग पति को स्त्रियों का प्रिय कहते हैं, क्योंकि स्त्री के लिये पति सर्वाधिक प्रिय है। जैसे एकलौते पुत्र के पिता का मन उस पुत्र में लगा रहता है, वैष्णवों का मन हरि में लगा रहता है, जो काना है, उसका अपने एक बचे नेत्र में मन लगा रहता है, उसी प्रकार प्यासे का मन जल में, क्षुधापीड़ित का अन्न में, कामी का कामिनी में, चोर का पराये धन में, जार पुरुष का व्यभिचारी नारी में, विद्वानों का शास्त्र में, व्यवसायी का वाणिज्य में मन लगा रहता है। इसी प्रकार जो साध्वी पतिव्रता स्त्री है, उसका मन अहर्निश पति में ही लगा रहता है।।८३-८६।।

इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे।
क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः॥८७॥
नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः।
साऽश्रुणा च मुनेः क्रोडं सिषेवे भेदकातरा॥८८॥

यह कह कर मनसा देवी अपने पति के चरणों पर गिर पड़ीं। तब उन कृपानिधि मुनि ने मनसा को अपने क्रोड़ में उठा लिया। मुनि के नेत्रों से उस समय इतना अश्रुपात हुआ कि मनसा का वस्त्र आर्द्र हो उठा। मुनि के विछोह से कातर मनसा ने भी अपने अश्रु से मुनि की गोद को सिक्त कर दिया।।८७-८८।।

तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ च बभूवतुः।
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं कृष्णसस्य परमात्मनः॥८९॥
जगाम तपसे विप्रः स कान्तां सुप्रबोध्य च।
जगाम मनसा शंभोः कैलासं मन्दिरं गुरोः॥९०॥
पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम्।
शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालये॥९१॥
सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गले क्षणे।
नारायणांशं पुत्रं च ज्ञानिनां योगिनां गुरुम्॥९२॥

इसके पश्चात् ज्ञान प्रभाव से ये दम्पति शोक रहित हो गये। वे बारम्बार परमात्मा कृष्ण के चरणकमल का स्मरण करने लगे। अपनी पत्नी को सम्यक् रूप से प्रबोधित करने के पश्चात् वे विप्र तपःश्चरण करने चले गये। मनसा भी अपने गुरुगृह कैलास धाम चली गईं। शोक से सन्तप्त मनसा को देख कर भगवती पार्वती ने उसे प्रबोधित किया। तत्पश्चात् भगवान् शिव ने शिवालय में उसे ज्ञान प्रदान किया। इसके पश्चात् पतिव्रता देवी मनसा ने अत्युत्तम तिथि पर मंगलमयी घड़ी तथा क्षण में पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र नारायण का अंश था तथा ज्ञानीगण तथा योगीगण का गुरुस्वरूप था।।८९-९२।।

गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शङ्करवक्त्रतः। स बभूव महायोगी योगिनां ज्ञानिनां गुरुः॥९३॥

जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम्।
वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः॥९४॥
[1]मणिरत्नत्रिकोटिं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः।
पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च॥९५॥

जब यह बालक गर्भस्थ था, तभी जब शंकर ने उसकी माता को ज्ञान प्रदान किया था, वह उसने सुना था। इससे वह महायोगी बालक योगीगण एवं ज्ञानीगण का गुरु हो गया! महादेव ने उस शिशु के कल्याणार्थ उसका जातकर्म, मंगल वाचन कराया तथा वेदाध्ययन उस बालक को कराया। महादेव ने ब्राह्मणों को तीन लाख करोड़ रत्न प्रदान किया। उस समय पार्वती ने भी १ लाख गौओं तथा प्रचुर रत्नों का दान किया था॥९३-९५॥

शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा। बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम्॥९६॥
भक्तिरास्ते स्वकान्ते चाभीष्टे देवे हरौ गुरौ।
यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च॥९७॥

महादेव ने बालक को यत्नतः चतुर्वेद का अध्ययन उसके अंगों सहित सम्पन्न कराया। उन्होंने परम मृत्युंजय विद्या का ज्ञान भी इस बालक को प्रदान किया था। मनसा देवी की परम भक्ति अपने पति, इष्टदेव हरि तथा गुरु में थी। तभी वे अस्ति नाम से प्रसिद्ध हो गईं। अतः उनका पुत्र आस्तीक नाम से विख्यात हो गया॥९६-९७॥

जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शङ्कराज्ञया। संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मनः॥९८॥
दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः।
आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रसूम्॥९९॥

यह आस्तीक महादेव की आज्ञा से हरि की आराधना करने के लिये पुष्कर तीर्थ गया। महायोगी महातपस्वी आस्तीक ने महामन्त्र तथा परमात्मा हरि के तपःक्रम को पाकर दिव्य मान वाले तीन लाख वर्ष तक तप किया। तदनन्तर वह माता मनसा तथा शिव को प्रणाम निवेदन करने कैलास आया॥९८-९९॥

शङ्करं च नमस्कृत्य पुरः कृत्वा च बालकम्।
सा चाऽऽजगाम मनसा कश्यपस्याऽऽश्रमं पितुः॥१००॥
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः।
शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने॥१०१॥
ब्राह्मणान्भोजयामास त्वसंख्याञ्छ्रेयसे शिशोः।
अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्रापुः परं तथा॥१०२॥

---
१. ख. रत्नत्रिकोटिलक्षं च।

तत्पश्चात् देवी मनसा आस्तीक को साथ लेकर तथा उसे आगे करके अपने पिता कश्यप के आश्रम में आईं। प्रजापति पिता कश्यप अपनी कन्या को पुत्रवती देख कर अत्यन्त मुदित हो गये। हे मुनिवर! कश्यप ने शत लक्ष रत्न ब्राह्मणगण को प्रदान किया। उस शिशु के श्रेयार्थ कश्यप ने असंख्य ब्राह्मण को भोजन प्रदान किया। अदिति एवं दिति भी उस पुत्र को देख कर अत्यन्त मुदित हो गईं।।१००-१०२।।

सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये तदा।
तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्ये त्वं तन्निशामय।।१०३।।

माता मनसा ने पुत्र आस्तीक के साथ पितृगृह में दीर्घकाल निवास किया। अब मैं अन्य आख्यान भी कह रहा हूं, जो इसी आख्यान क्रम में ही है।।१०३।।

अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते। बभूव सहसा ब्रह्मन्दैवदोषेण कर्मणा।।१०४।।
सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च दङ्क्ष्यति।
शशाप शृङ्गीं कौशिक्या जलं संस्पृश्य चेति सः।।१०५।।
राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं गङ्गाद्वारं जगाम सः।
तत्र तस्थौ च सप्ताहं शुश्रुवे धर्मसंहिताम्।।१०६।।
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि। धन्वन्तरिर्मोचयितुमपश्यद्गन्तुको नृपम्।।१०७।।
तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम्। धन्वन्तरेर्मणिं श्रेष्ठं तक्षकः स्वेच्छया ददौ।।१०८।।
स ययौ तं गृहीत्वा तु तुष्टः संहृष्टमानसः।
तक्षको भक्षयामास नृपं मञ्चकसंस्थितम्।।१०९।।

हे ब्रह्मन्! अभिमन्यु पुत्र परीक्षित को दैवदोष से ब्राह्मण का शाप मिला था। हठात् महातेजस्वी श्रृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल स्पर्श करके यह दारुण शाप राजा को दिया कि "एक सप्ताह में तक्षक नाग तुमको डसेगा।" महाराज परीक्षित इन मुनि का शाप श्रवण करके गंगा तट पर आये। वहां एक सप्ताह रहते हुए धर्मसंहिता (संभवतः श्रीमद्भागवत् से तात्पर्य है) श्रवण किया। इसी सप्ताह के बीच धन्वन्तरि ने तक्षक को जाते देखा जो परीक्षित का दंशन करने वेग पूर्वक जा रहा था। धन्वन्तरि राजा को सर्पविष से बचाने जा रहे थे। मार्ग में तक्षक तथा धन्वन्तरि के बीच अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण वार्त्तालाप भी हुआ। दोनों इस वार्त्ता से आनंदित हो उठे। तदनन्तर धन्वन्तरि को सन्तुष्ट करने हेतु नाग ने एक महामूल्यवान् मणि भी दिया। जिसे लेकर धन्वन्तरि अत्यधिक प्रसन्नता के साथ अपने घर वापस चले गये। तदनन्तर तक्षक ने निःशंक होकर उच्च मंचस्थ राजा का दंश कर लिया।।१०४-१०९।।

राजा जगाम वैकुण्ठं स्मारं स्मारं हरिं गुरुम्।
संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः।।११०।।

राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्राभिधं मुने। प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा॥१११॥
स तक्षकश्च भीतश्च महेन्द्रं शरणं ययौ। सेन्द्रं च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः॥११२॥

सर्पदंश से मृत राजा बारम्बार नारायण का नामस्मरण करता वैकुण्ठ लोक चला गया। तब जनमेजय ने पिता परीक्षित की और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न किया। हे मुनिवर! तदनन्तर राजा ने सर्पसत्र प्रारम्भ कराया। ब्रह्मतेज के कारण सर्पों का समूह नष्ट हो रहा था। तक्षक भयभीत होकर महेन्द्र की शरण में गया। जब यह रहस्य यज्ञ में ब्राह्मणों ने जाना, तब वे इन्द्र सहित तक्षक की आहुति देने हेतु तत्पर हो गये॥११०-११२॥

अथ देवाश्च मुनयश्चाऽऽययुर्मनसान्तिकम्। तां तुष्टाव महेन्द्रश्च समक्षं भयकातरः॥११३॥

तत आस्तीक आगत्य मातुर्यज्ञमथाऽऽज्ञया।
महेन्द्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं वरम्॥११४॥
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया।
यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा॥११५॥

यह जान कर देवता तथा सभी मुनि देवी मनसा के पास आये। वहां आकर महेन्द्र ने भयकातर होकर व्याकुल चित्त से मनसा देवी का स्तव किया। तदनन्तर मुनिपुत्र आस्तीक जननी की आज्ञा से जनमेजय के यज्ञस्थल में आये। उन्होंने राजा से इन्द्र तथा तक्षक के प्राणरक्षार्थ प्रार्थना किया। यह सुन कर जनमेजय ने ब्राह्मणगण की आज्ञा द्वारा इन्द्र एवं तक्षक को प्राणरक्षा का वर दे दिया। उस राजा ने मुदित मन से यज्ञ सम्पन्न करके ब्राह्मणगण को दक्षिणा प्रदान किया॥११३-११५॥

विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम्।
मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक्पृथक्॥११६॥
शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः।
मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरात्॥११७॥

उपचारैः षोडशभिर्बलिं दत्त्वा प्रियं तदा। प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुसुराज्ञया॥११८॥

संपूज्य मनसादेवीं प्रययुः स्वालयं च ते।
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११९॥

तत्पश्चात् सभी मुनि एवं देवगण मनसा देवी के पास गये तथा सभी ने पृथक्-पृथक् मनसा की पूजा तथा स्तुति किया। सदैव पवित्र इन्द्रदेव ने भी नाना उपचार से मनसा देवी की पूजा करके भक्ति से उनका स्तव किया। १६ उपचारों से इन्द्रदेव ने देवी की पूजा करके ब्रह्मा तथा विष्णु की आज्ञा के अनुसार प्रियतर स्तोत्र से देवी की स्तुति किया था। इस प्रकार से वे लोग मनसा देवी की पूजा सम्पन्न करके अपने-अपने स्थान चले गये। यह मैंने मनसा का उपाख्यान कह दिया। अब क्या सुनना है?॥११६-११९॥

नारद उवाच

केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम्।
पूजाविधिं क्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥१२०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—देवेन्द्र ने जिस स्तव से मनसा देवी का स्तव करके उनकी पूजा किया था, उन सब का विशेषतया वर्णन करिये॥१२०॥

नारायण उवाच

सुस्नातः शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी।
रत्नसिंहासने देवीं सावयामास भक्तितः॥१२१॥
स्वर्गगङ्गाजलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च। स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः॥१२२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—इन्द्र ने शुद्ध रूप से स्नान करके शुद्ध वस्त्रद्वय परिधान किया तथा भक्ति के साथ आचमन करके रत्नसिंहासन पर देवी को बैठाया। इन्द्रदेव ने वेदमन्त्र का उच्चारण करके अनेक कलश भरे निर्मल गंगाजल से मनसा देवी को स्नान कराया॥१२१-१२२॥

वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोरमे।
सर्वाङ्गे चन्दनं लिप्त्वा पाद्यार्घ्यभक्तिसंयुतः॥१२३॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
संपूज्याऽऽदौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम्॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः।
दशाक्षरेण[1] मन्त्रेण ददौ सर्वान्यथोचितम्॥१२५॥

तदनन्तर इन्द्र ने अग्निवत् विशुद्ध मनोरम वस्त्र से देवी को सज्जित करके उनके सर्वांग पर चन्दन लिप्त किया तथा भक्तिभाव से देवी को पाद्य तथा अर्घ्य प्रदान किया। इन्द्र ने तदनन्तर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा इन छह देवगण की पूजा करके सती मनसा की दशाक्षर मन्त्र द्वारा यथोचित पूजन किया। मन्त्र है—"ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा"॥१२३-१२५॥

उपचारान्षोडशकान्भक्तितो दुर्लभान्हरिः।
पूजयामास भक्त्या च ब्रह्मणा प्रेरितो मुदा॥१२६॥
वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै। बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि॥१२७॥
देव विप्राज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया। तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः॥१२८॥

इन्द्र ने मुदित मन से तथा ब्रह्मा द्वारा प्रेरित होकर इन मनसा देवी का पूजन दुर्लभ १६ उपचारों से करके वहां अनेक वाद्यों का वादन कराया। तभी आकाश से मनसा देवी पर पुष्पवर्षा होने लगी।

---

१. क. मूलेन।

इसके पश्चात् इन्द्र ने विप्रों, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवाज्ञा के द्वारा साश्रुनेत्र एवं पुलकित होकर देवी की स्तुति किया।।१२६-१२८।।

महेन्द्र उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां पराम्।
परात्परां च परमां नहि स्तोतुं क्षमोऽधुना॥१२९॥
स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतः परम्।
न क्षमः प्रकृतिं वक्तुं गुणानां तव सुव्रते॥१३०॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता।
न च शप्तो मुनिस्तेन त्यक्त्या च त्वया यतः॥१३१॥
त्वं मया पूजिता साध्वी जननी च यथाऽदितिः।
दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः॥१३२॥

इन्द्र कहते हैं–हे देवी! आप पतिव्रता नारियों में प्रधान हैं। आप सर्वश्रेष्ठ मनसादेवी हैं। मैं आपका स्तव करना चाहता हूं, तथापि परापररूपा परमेश्वरीरूपा आपके स्तव की मेरी क्षमता ही नहीं है। वेद में स्तोत्र शब्द का अर्थ है स्वरूप कथन। हे सुव्रते! आपके असीम गुणों का वर्णन कर सकना मेरे लिये तो असाध्य है। हे शुद्ध सत्वरूपा! आपके शरीर में हिंसा-क्रोध का लेश भी नहीं है। मुनिवर जरत्कारु ने आप निरपराध का त्याग तो कर दिया, तथापि आपने पतिपरायणता की पराकाष्ठा व्यक्त करने के लिये उनको कोई भी शाप नहीं दिया। हे देवी! हे पतिव्रते! आपकी पूजा मैं अपनी जननी देवमाता अदिति की तरह ही कर रहा हूं। आप दया में तो भगिनी की तरह तथा क्षमा में माता की तरह हैं।।१२९-१३२।।

त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि।
अहं करोमि त्वां पूज्यां मम प्रीतिश्च वर्धते॥१३३॥
नित्यं यद्यपि पूज्या त्वं भवेऽत्र जगदम्बिके।
तथाऽपि तव पूजां वै वर्धयामि पुनः पुनः॥१३४॥
ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः।
पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने॥१३५॥
पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि च।
यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः॥१३६॥
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दत्यज्ञानतो जनाः।
लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा॥१३७॥

त्वं स्वर्गलक्ष्मीः स्वर्गे च वैकुण्ठे कमलाकला।
नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः॥१३८॥

हे देवदेवी! आपने हमारे प्राण, पुत्र, स्त्री आदि सभी की रक्षा किया है। मैंने भी आपकी पूजा द्वारा प्रीतिलाभ किया है। हे जगज्जननी! आप जगत् के लोगों द्वारा नित्य पूज्या हैं, तब भी मैं सर्वतोभावेन विशेषतया संसार में आपकी पूजा की वृद्धि करूंगा। हे देवी! जो कोई आषाढ़ीय संक्रान्ति तथा मनसा पंचमी से लगा कर आश्विन मास तक आपकी आराधना करेगा, वह यश, कीर्त्ति, विद्या तथा गुण लाभ करके पुत्र-पौत्रादि क्रम पर्यन्त अतुल ऐश्वर्य का आधिपत्य लाभ करेगा। अज्ञानवशात् जो कोई आपकी पूजा नहीं करके आपकी निन्दा करेगा, उसे सदा सर्पभय होगा तथा लक्ष्मी उसके गृह से चली जायेंगी। आप ही स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी तथा वैकुण्ठ में कमला कला हैं। ये भगवान् जरत्कारु मुनीश्वर तो नारायण के अंश हैं। ये आपके पति हैं।।१३३-१३८।।

तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता।
अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा॥१३९॥
मनसा देवितुं शक्ता चाऽऽत्मना सिद्धयोगिनी।
तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे॥१४०॥
यां भक्त्या मनसा देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम्।
तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति पुराविदः॥१४१॥

पिता कश्यप ऋषि ने अपनी तपस्या के तेज द्वारा हमारे रक्षार्थ अपने मन से आपकी सृष्टि किया तभी आपका नाम मनसा हो गया। आप अपने आत्मबल से सिद्ध योगिनी हैं। आप मन में क्रीड़ा करती हैं। अतः त्रैलोक्य में आपका नाम मनसा प्रसिद्ध है। आपकी देवगण सर्वतोभावेन भक्ति के साथ मन ही मन पूजा करते हैं। इसीलिये पूजावित् पण्डित लोग देवपूज्या आपका नाम मनसा कहते हैं।।१३९-१४१।।

सत्त्वरूपा च देवी त्वं शश्वत्सत्त्वनिषेवया।
यो हि यद्भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम्॥१४२॥

आप सतत् सत्व गुण का सेवन करने के कारण सत्वस्वरूपा देवी हैं। इस प्रकार की भावना जो व्यक्ति निरन्तर करता है, वह व्यक्ति उस भावना से जो कुछ आपको अर्पित करता है, उसे सौ गुना होकर वही प्राप्त हो जाता है।।१४२।।

इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम्।
निर्जगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम्॥१४३॥
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे।
भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः॥१४४॥

गोलोकात्सुरभी ब्रह्मंस्तत्राऽगत्य सुपूजिताम्।
तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम्॥१४५॥

इन्द्र ने इस प्रकार भगिनी मनसा देवी का स्तव किया तथा नाना प्रकार के आभूषणों से भगवती को भूषित करके उनके साथ अपने भवन चले गये। मनसा देवी ने मातृगण द्वारा निरन्तर माननीया तथा वन्दनीया होकर अपने पुत्र के साथ पितृगृह में चिरकाल निवास किया। स्वर्ग से देवी सुरभि (गौ) ने भी आकर मनसा देवी को अपने दुग्ध से स्नान कराया तथा उनकी पूजा आदर के साथ किया।।१४३-१४५।।

ज्ञानस्य कथयामास स्वरूपं सर्वदुर्लभम्।
तदा देवैः पूजिता सा स्वर्गलोकं पुनर्ययौ॥१४६॥

तब गो माता सुरभि ने मनसा देवी से अत्यन्त दुर्लभ ज्ञान का वर्णन किया था। मनसा देवी इस प्रकार सुरभि तथा देवताओं से पूजिता होकर पुनः स्वर्ग चली गयीं।।१४६।।

इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं तां संपूज्य च यः पठेत्।
तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च॥१४७॥
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रं यदा पठेत्। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः।
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः॥१४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० तदुत्पत्तिपूजास्तोत्रादिकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

जो व्यक्ति मनसा देवी की सविधि पूजा करने के पश्चात् पुण्यप्रद यह स्तव पाठ करता है, उसे सर्प तथा सर्पवंशीय अन्य जन्तु से भय नहीं होता। मनसा देवी के इस सिद्ध स्तव का पाठ करने वाले के लिये विष भी अमृत हो जाता है। मनुष्य को यह स्तोत्र पांच लाख पढ़ने से सिद्ध हो जायेगा। यह कहा गया है। ऐसा व्यक्ति निर्भय होकर सर्प के ऊपर शयन कर सकता है तथा सर्पासन पर निश्चिन्त होकर बैठ सकता है।।१४७-१४८।।

।।षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

सुरभि का उपाख्यान एवं स्तव

नारद उवाच

का वा सा सुरभी देवी गोलोकादागता च या।
तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिवर! गोलोक से आगता ये देवी सुरभि कौन हैं? उनका जन्म तथा चरित मैं सुनने की इच्छुक हूं। इसका वर्णन करें।।१।।

नारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गदामाद्या गवां प्रसूः। गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा॥२॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय। बभूव येन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने॥३॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात्। गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ॥४॥
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात्। बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छापरस्य च॥५॥
ससृजे सुरभीं देवी लीलया वामपार्श्वतः। वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानां च मनोरमाम्॥६॥

श्री नारायण मुनि कहते हैं—गौओं की अधिष्ठातृ देवी आद्या जननी तथा गौओं में प्रधाना सुरभि गोलोक में उत्पन्ना हो गई थीं। समस्त पदार्थों की सृष्टि के पूर्व वृन्दावनस्थ रम्य वन में सुरभि की उत्पत्ति हो गई थी। एक दिन राधानाथ गोपियों तथा राधिका के साथ वृन्दावन के पुण्यवन में गये। तदनन्तर रमणीय वृन्दावन में विहाररत रहते उनकी इच्छा दुग्धपान की हो गई। तब श्रीकृष्ण ने लीला द्वारा अपने वाम पार्श्व से दुग्धवती मनोहारिणी सवत्सा सुरभि धेनु को उत्पन्न कर दिया।।२-६।।

दृष्ट्वा सवत्सां सुरभीं रत्नभाण्डे दुदोह सः। क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम्॥७॥
तदुष्णं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम्।
सरो बभूव [1]पयसा भाण्डविस्रंसनेन च॥८॥

जब कृष्ण ने वत्सयुक्त सुरभि को देखा, तब उन्होंने रत्नमय पात्र में सुरभि का दुग्ध दोहन किया। वह दुग्ध अमृत के समान तथा जन्म, मृत्यु, जरा का हरण करने वाला था। उस उष्ण स्वादु दुग्ध का पान गोपीपति कृष्ण ने स्वयं किया। उस समय कुछ दुग्ध उस पात्र से धरती पर छलक गया जिससे वहां दुग्ध सरोवर बन गया।।७-८।।

दैर्घ्ये च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम्। गोलोकेषु प्रसिद्धं तद्रम्यं क्षीरसरोवरम्॥९॥
गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा।
रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया॥१०॥

---

१. क. सहसा।

बभूवुः कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः। तावत्यो हि सवत्साश्च सुरभीलोमकूपतः॥११॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संबभूवुरसंख्यकाः।
कथिता च गवां सृष्टिस्तया संपूरितं जगत्॥१२॥

वह दीर्घता में चतुर्दिक् से १०० योजन था। गोलोक में वह क्षीर सरोवर नाम से प्रसिद्ध हो गया। वह सरोवर गोपियों तथा राधा की क्रीड़ा बावली हो गया। वह वापी ईश्वर की इच्छा से शीघ्रता पूर्वक रत्न से शोभायमान रूप हो गई। तदनन्तर कामधेनु सुरभि के रोमकूपों से सहसा लक्ष कोटि सवत्सा गौएं उत्पन्न हो गईं। उन गौओं के पुत्र-पौत्र अनगिनत उत्पन्न हो गये, जिनसे समस्त सृष्टि गौओं से भर गई।।९-१२।।

पूजां चकार भगवान्सुरभ्याश्च पुरा मुने। ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा॥१३॥
दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया भवे।
बभूव सुरभीपूजा धर्मवक्त्रादिति श्रुतम्॥१४॥
ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम्।
वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते॥१५॥

हे मुनिवर! पूर्वकाल में सुरभि की पूजा भगवान् ने स्वयं किया था। तत्पश्चात् सुरभि की दुर्लभ पूजा त्रैलोक्य में होने लगी। दीपान्विता अमावस्या के अगले दिन श्रीकृष्ण के आदेश से संसार में सुरभि पूजा होने लगी। मैंने यह वृत्तान्त धर्मदेव से जैसे सुना था, वह कहा। अब मैं वेदोक्त ध्यान, पूजाविधि, स्तव तथा मूलमन्त्र का वर्णन करता हूं। उसे हे महाभाग! श्रवण करो।।१३-१५।।

ॐ सुरभ्यै नमः इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः।
सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः॥१६॥
स्थितं ध्यानं यजुर्वेदे पूजनं सर्वसंमतम्।
ऋद्धिदां वृद्धिदां चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम्॥१७॥

सुरभि देवी का षडक्षर मन्त्र यह है-"ॐ सुरभ्यै नमः" यह भक्तों के लिये कल्पस्वरूप जैसा मन्त्र एक लाख जप से सिद्ध हो जाता है। इनका सर्वसम्मत पूजन तथा ध्यान जैसे यजुर्वेद में कहा गया है, कहता हूं। श्रवण करो।।१६-१७।।

लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम्। गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम्॥१८॥
पवित्ररूपां पूज्यां च भक्तानां सर्वकामदाम्।
यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभीं भजे॥१९॥

ध्यान-जिन समृद्धिदायिनी की कृपा से मनुष्य की वृद्धि होती है, जो देवी ऋद्धि तथा मुक्ति एवं सभी कामना प्रदान करने वाली, लक्ष्मी स्वरूपा, सर्वश्रेष्ठ, राधा की सहचरी, गौवों की अधिष्ठात्री देवता, आद्या (गौवों की आदि) तथा गौवों की जननी हैं, जो पवित्ररूपा जगत्पूज्या हैं, जो भक्तों की

कामना पूर्ण कर देती हैं, जिनके द्वारा यह विश्वमण्डल पवित्र हो जाता है, मैं उन देवी सुरभि का भजन करता हूं।।१८-१९।।

घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवां च वा।
शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीं पूजयेद्द्विजः॥२०॥

दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः। यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि॥२१॥
एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया। क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः॥२२॥
ते गत्वा ब्रह्मणो लोकं ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा। तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टुवे पाकशासनः॥२३॥

द्विजगण घट, गौओं के मस्तक, गौओं के खूंटे पर, शालिग्राम शिला पर किंवा जल अथवा अग्नि में गौ की पूजा करें। जो व्यक्ति दीपावली के अगले दिन पूर्वाह्न में भक्ति पूर्वक सुरभि (गौ) पूजा करता है, वह जगत्पूज्य हो जाता है। वराह कल्प में प्रभु की माया ने हठात् दुग्ध (क्षीर) का हरण कर लिया। इससे देवगण ने चिन्तातुर होकर ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्मा की स्तुति किया। तब ब्रह्मा की आज्ञा से पाकशासन इन्द्र ने सुरभि की स्तुति किया था।।२१-२३।।

महेन्द्र उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥२४॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः।
नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥२५॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै प्रदात्र्यै सर्वसंपदाम्। श्रीदायै धनदायै च बुद्धिदायै नमो नमः॥२६॥
शुभदायै [1]प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै सौख्यदायै धर्मदायै नमो नमः॥२७॥
स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः। आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी॥२८॥
महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं सर्वदुर्लभम्। जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम्॥२९॥

महेन्द्र कहते हैं–"हे महादेवी सुरभि! आप देवी स्वरूपा सुरभि गौओं की बीजस्वरूप, महादेवी, जगदम्बा, राधाप्रिया, लक्ष्मी की अंशरूपा, कृष्ण की प्रिया एवं गौओं की माता हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप कल्पवृक्ष स्वरूपा तथा समस्त सम्पदा देने वाली, लक्ष्मी तथा श्रीप्रदा, धनप्रदा, बुद्धिप्रदा हैं। आप शुभप्रदा, प्रसन्नता प्रदात्री, गोप्रदा एवं जगन्माता हैं।" यह स्तव सुन कर वे सनातनी देवी ब्रह्मलोक में ही प्रकट हो गईं। उन्होंने महेन्द्र को वांछित तथा सर्वदुर्लभ वर प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवती सुरभि गोलोक चली गयीं।।२४-२९।।

बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद। दुग्धाद्घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च॥३०॥

हे नारद! तभी सहसा विश्व दुग्धपूर्ण हो गया। दुग्ध से घृत निकलने से यज्ञ होने लगे, जिससे देवगण में प्रसन्नता छा गई।।३०।।

१. क. ०यै सुभद्रायै गो०।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
स गोमान्धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुण्यवान्भवेत्॥३१॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्॥३२॥

यह स्तोत्र महापुण्यप्रद है। इसे जो व्यक्ति भक्तिभाव से पढ़ता है, वह गौ, धन, कीर्त्ति तथा पुण्य से युक्त हो जाता है। उसे सभी तीर्थों में उत्तम स्नान का तथा सभी यज्ञानुष्ठान का फललाभ हो जाता है। वह इहलोक में सुख भोग करके कृष्ण के धाम (गोलोक) गमन करता है।।३१-३२।।

सुचिरं निवसेत्तत्र कुरुते कृष्णसेवनम्। न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत्॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सुरभ्युपा० तदुत्पत्तितत्पूजादिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।४७।।

वहां वह व्यक्ति कृष्ण सेवारत होकर दीर्घकाल पर्यन्त निवास करता है। हे ब्रह्मपुत्र नारद! अब उसका संसार में कदापि जन्म नहीं होगा!।।३३।।

।।सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

राधा के उपाख्यान का वर्णन, महादेव का पार्वती से 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति का कथन

नारद उवाच

नारायण महाभाग नारायणपरायण। नारायणांश भगवन्ब्रूहि नारायणीं कथाम्॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम्। गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्भिः प्रशंसितम्॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम्।
तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं स्तोत्रं कवचमुत्तमम्॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नारायणपरायण! आप तो साक्षात् नारायण के ही अंश हैं। हे महात्मा! भगवान्! मुनि! कृपया नारायण का गुणगान करिये। अतीव मनोहर, अन्य पुराणों के लिये दुर्लभ, सुगोप्य, विद्वानों द्वारा प्रशंसित यह सुरभि का उपाख्यान आपने कहा। अब मुझे सर्वोत्तम श्री राधा का उपाख्यान सुनने की इच्छा है। कृपया उनकी उत्पत्ति-ध्यान-स्तोत्र तथा उत्तम कवच कहिये।।१-३।।

नारायण उवाच

पुरा कैलासशिखरे भगवन्तं सनातनम्। सिद्धेशं सिद्धिद्धं सर्वस्वरूपं शङ्करं परम्॥४॥
प्रफुल्लवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम्। कुमाराय प्ररोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः।
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम्॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं– पूर्वकाल में कैलास पर्वत पर भगवान् सनातन, सिद्धेश्वर, सिद्धिप्रद, सर्वरूप, सर्वप्रथम विकसित आनन वाले शंकर मुस्कान युक्त, मुनिगण वन्दित महादेव कुमार कार्त्तिकेय से परमात्मा कृष्ण की रासमण्डल में राधिका आदि के साथ की जा रही रासलीला का वर्णन कर रहे थे।।४-५।।

तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती। पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवल्लभम्॥६॥
स्तवनं कुर्वती भीता प्राणेशेन प्रसादिता। प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी॥७॥

उस समय दुर्गा देवी पार्वती ने महादेव प्राणवल्लभ शिव से इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। उस समय तनिक भयभीत होकर सुरेश्वरी ने अपने प्राणेश्वर शिव की स्तुति करके तथा उनको प्रसन्न करके उस समय महादेव से कहा–।।६-७।।

पार्वत्युवाच

अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम्। आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम्॥८॥
पाञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगं च योगिनाम्।
सिद्धानां सिद्धिशास्त्रं च नानातन्त्रं मनोहरम्॥९॥
भक्तानां भक्तिशास्त्रं च कृष्णस्य परमात्मनः।
देवीनामपि सर्वासां चरितं त्वन्मुखाम्बुजात्॥१०॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम्।
श्रुतौ श्रुतं प्रशस्तं च राधायाश्च समासतः॥११॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे देव! राधिका का उपाख्यान तो पुराणों में दुर्लभ है। हे नाथ! मैंने तो अत्युत्तम सभी आगम, पाञ्चरात्र आदि, नीतिशास्त्र, योगीगण के योग से सम्बन्धित शास्त्र, सिद्धगण के लिय उपयोगी सिद्धिशास्त्र, अनेक तन्त्रभक्तों के लिये मनोहर परमात्मा कृष्ण का भक्तिशास्त्र, सभी देवीगण का चरित आपके मुखकमल से सुना। अब मुझे राधिका का अत्युत्तम उपाख्यान सुनने की इच्छा है। मैंने आपसे यह सुना है कि वेदों में राधिका प्रशंसित हैं। यह भी आपने संक्षेप में मुझसे कहा था।।८-११।।

त्वन्मुखात्काण्वशाखायां व्यासेनोक्तं वदाधुना।
आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा॥१२॥

नहीश्वरव्याहतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति। तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं नाम्नो माहात्म्यमुत्तमम्॥१३॥
पूजाविधानं चरितं स्तोत्रं कवचमुत्तमम्। आराधनविधानं च पूजापद्धतिमीप्सिताम्॥१४॥
सांप्रतं ब्रूहि भगवन्मां भक्तां भक्तवत्सल। कथं न कथितं पूर्वमागमाख्यानकालतः॥१५॥

अब मैं आपसे प्रशंसित तथा कथित काण्वशाखोक्त व्यास प्रतिपादित राधा का अलौकिक प्रसंग श्रवण करना चाहती हूं। आपने आगम शास्त्रों का वर्णन करते समय यह कहना स्वीकार किया था। ईश्वर कथित उनकी व्याहति अर्थात् उनका वचन कदापि मिथ्या नहीं होता। हे प्रभो! आप कृपा पूर्वक राधा की उत्पत्ति, उनका ध्यान तथा उत्तम नाम माहात्म्य, पूजाविधि, चरित, स्तोत्र, उत्तम कवच, आराधना का विधान, पूजापद्धति कहिये। आप भगवान् भक्तवत्सल हैं। अतः यह कहिये! आपने आगम व्याख्यान के समय यह प्रसंग क्यों नहीं कहा? (क्यों टाल दिया?)॥१२-१५॥

पार्वतीवचनं श्रुत्वा नम्रवक्त्रो बभूव सः।
पञ्चवक्त्रश्च भगवाञ्छुष्ककण्ठोष्ठतालुकः[1]॥१६॥
स्वसत्यभङ्गभीतश्च मौनीभूय विचिन्तयन्।
सस्मार कृष्णं ध्यानेनाभीष्टदेवं कृपानिधिम्॥१७॥
तदनु ज्ञानं संप्राप्य स्वार्धाङ्गीं तामुवाच सः॥१८॥

पार्वती देवी का कथन सुन कर उन पंचमुख शिव का चेहरा लटक गया। उनके पांचों मुखों का कण्ठ-ओंठ-तालु सत्यभंग के भय से शुष्क हो चला। वे अन्ततः मौन होकर विचार करने लगे। उन्होंने ध्यान के द्वारा अपने इष्टदेवता कृपानिधि कृष्ण का तब ध्यान-स्मरण किया। तदनन्तर ध्यान में कृष्ण की आज्ञा प्राप्त होने पर शिव ने अपनी अर्द्धांगिनी पार्वती से कहा-॥१६-१८॥

महादेव उवाच

निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना। आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः॥१९॥
मदर्धाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना [2]स्वरूपतः।
अतोऽनुज्ञां ददौ कृष्णो मह्यं वक्तुं महेश्वरि॥२०॥
मदिष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति। अतीव गोपनीयं च सुखदं कृष्णभक्तिदम्॥२१॥

श्री महादेव कहते हैं-हे महेश्वरी! जब मैं आगम सम्बन्धित वर्णन कर रहा था, उस समय जब मैंने राधा का प्रसंग कहना चाहा, तब श्रीकृष्ण ने मुझे रोक दिया था। हे देवी! तुम तो मेरी अर्द्धांग स्वरूपा हो। स्वरूपतः मुझसे भिन्न नहीं हो! हे महेश्वरी! सम्प्रति कृष्ण ने श्रीराधा का गुण वर्णन करने की आज्ञा प्रदान कर दिया। राधादेवी मेरे इष्टदेव कृष्ण की प्रेयसी हैं। हे सती! राधा का चरित अत्यन्त गुप्त, भक्तों को सुख देने वाला तथा कृष्णभक्तिदायक है॥१९-२१॥

१. शुष्ककण्ठो जगत्पतिरिति वा पाठः।
२. क. जगत्प्रसुः।

जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं वरम्। यज्जानामि रहस्यं च न तद्ब्रह्मा फणीश्वरः॥२२॥

न तत्सनत्कुमारश्च न च धर्मः सनातनः।
न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः॥२३॥

हे दुर्गे! मैं वह चरित पूर्वापर क्रम से जानता हूं। इसे तो ब्रह्मा, शेषनाग, सनत्कुमार, धर्मदेव जो सनातन हैं, इन्द्र, प्रधान मुनिगण, सिद्धेन्द्र लोग तथा सिद्धेश्वर भी नहीं जानते।।२२-२३।।

मत्तो बलवती त्वं च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता।
अतस्त्वां गोपनीयं च कथयामि सुरेश्वरि॥२४॥

शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं च सुपुण्यदम्॥२५॥

हे सुरेश्वरी! तुम तो इस सम्बन्ध में प्राणत्याग तक करने जा रही थी (सुनने हेतु) अतः तुम मुझसे बढ़ कर हो (पूज्या हो)। मैं यह गोपनीय कथा तुमसे कह रहा हूं। हे दुर्गे! राधा का रहस्यमय परम अद्भुत् दुर्लभ, पुण्यप्रद चरित कहने जा रहा हूं। तुम श्रवण करो।।२४-२५।।

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले। शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने॥२६॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः। स्वेच्छामयश्च भगवान्बभूव रमणोत्सुकः॥२७॥

[1]रिरंसोस्तस्य जगतां पत्युस्तन्मल्लिकावने।
इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणाङ्गं च श्रीकृष्णो वामार्धाङ्गं च राधिका॥२९॥

पूर्वकाल की बात है, रम्य गोलोकस्थ वृन्दावन के रासमण्डल में शतशृङ्गपर्वत के एक ओर मालती पुष्प तथा बेला से सुगन्धित वनस्थल पर रत्नसिंहासनासीन पुरुषोत्तम जो सर्वस्वतन्त्र हैं, उनको रमण करने की इच्छा हो गई। उन प्रभु की इच्छा से ही जगत् में सब कुछ होता है। वे स्वेच्छामय हैं। हे दुर्गे! तदनन्तर वे प्रभु द्विधा विभक्त हो गये। उनका दक्षिण भाग (अंग) श्रीकृष्ण तथा वाम भाग राधा रूप हो गया।।२६-२९।।

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका। अमूल्यरत्नाभरणा रत्नसिंहासनस्थिता॥३०॥

वह्निशुद्धांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा राजिता च स्वतेजसा॥३१॥
सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिभानना।
बिभ्रती कबरीं रम्यां मालतीमाल्यमण्डिताम्॥३२॥

वे रमणीरूपी राधा अत्यन्त रम्या, रासेश्वरी, रमणोत्सुका, अमूल्य रत्नाभरण से सज्जिता

१. क. रमणीं कर्तुमिच्छामि तद्बभूव सुरेश्वरी। इ.।

रत्नसिंहासनासीन थीं। इन देवी का परिधान वस्त्र अग्निशुद्ध-सा लग रहा था। वे करोड़ों पूर्णिमा के चन्द्रमा की प्रभा से युक्त, तप्त कांचन वर्ण की आभा वाली, अपने तेज से शोभायमान, मुस्कान युक्त, उत्तम शुद्ध दन्तपंक्ति से युक्त, शरत्कालीन विकसित पद्म वाले आनन से शोभायमान थीं। उनके उत्तम केशपाश मालती माला से मण्डित थे।।३०-३२।।

रत्नमालां च दधती ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्। मुक्ताहारेण शुभ्रेण गङ्गाधारानिभेन च।।३३।।
सयुक्तं वर्तुलोत्तुङ्गं सुमेरुगिरिसंनिभम्। कठिनं सुन्दरं दृश्यं कस्तूरीपत्रचिह्नितम्।।३४।।
माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च स्तनयुग्मं च बिभ्रती। नितम्बश्रोणिभारार्ता नवयौवनसुन्दरी।।३५।।
कामातुरां सस्मितां तां ददर्श रसिकेश्वरः।
दृष्ट्वा कान्तां जगत्कान्तो बभूव रमणोत्सुकः।।३६।।

उनके कण्ठ में ग्रीष्मकालीन सूर्य की कान्ति झलकाती रत्नमाला थी। गंगाजल की धारा जैसी स्वच्छ मुक्ताहार से भगवती शोभायमान थीं। भगवती के स्तनद्वय परस्परतः सटे, गोलाकार, सुमेरु पर्वत जैसे उन्नत, कठोर, सुन्दर प्रतीत होने वाले थे। उस पर कस्तूरी पत्र की चित्रकारी वनी थी। वे मंगलमय, मंगल प्रदान योग्य प्रतीत हो रहे थे। ये देवी अपने नितम्ब एवं श्रोणी की पृथुलता के भार के कारण श्रान्त थीं। ये देवी नवयौवन सम्पन्ना, सुन्दरी, कामातुरा, मन्द मुस्कान वाली थीं। रसिकेश्वर जगत्कान्त श्रीकृष्ण इनको देख कर इनके साथ रमणार्थ उत्सुक हो उठे!।।३३-३६।।

दृष्ट्वा रिरंसुं कान्तं च सा दधार हरेः पुरः। तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि।।३७।।
राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च।।३८।।
भवनं [1]धावनं रासे स्मरत्यालिङ्गनं जपन्। तेन जल्पति संकेतं तत्र राधां स ईश्वरः।।३९।।

हे पार्वती! हरिप्रिया उस रमणी ने अपने कान्त कृष्ण को जब कामातुर देखा, तब वे उनकी ओर दौड़ पड़ीं। तभी विद्वानों ने उनका नाम राधा कहा है। श्रीराधा कृष्ण की तथा कृष्ण राधा की आराधना करने के कारण दोनों समान हैं। साधुगण का यह कहना है। रासमण्डल में राधिका तथा कृष्ण के परस्परतः आलिंगन के निमित्त दौड़ पड़ने पर कृष्ण के संकेत से राधा अभिसार करती हैं, यह चिन्तन मन में करते कृष्णभक्तगण तद्भाव से भावित होकर जगत्पति को अपना पति मानते हैं (वे भी राधाभावापन्न हो जाते हैं)। रासकाल में कृष्ण राधारूपी होकर साथ ही धावित होते हैं, उनका स्मरण करते हैं तथा रमणस्थल पर राधा को आने हेतु संकेत करते हैं!।।३७-३९।।

राशब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
धाशब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम्।।४०।।
कृष्णवामांशसंभूता राधा रासेश्वरी पुरा। तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः।।४१।।

१. क. धारयामास सा रत्याऽऽलिङ्गने जयात्। ते०।

रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता॥४२॥

हे दुर्गे! जो भक्त है, वह 'रा' का उच्चारण करते ही दुर्लभ मुक्तिलाभ करता है। हे दुर्गे! वह 'धा' का उच्चारण करते ही हरि के परमपद की ओर दौड़ पड़ता है। रासेश्वरी राधा पूर्वकाल में कृष्ण के वामांग से उत्पन्न हैं। सभी देवनारीगण उनका ही अंश तथा अंशकला हैं। 'रा' शब्द ग्रहणार्थक है। 'धा' शब्द निर्वाण वाचक है। जिसका नामोच्चारण मुक्तिप्रद है, वे ही राधा कही गयी हैं।।४०-४२।।

बभूव गोपीसङ्घश्च राधाया लोमकूपतः। श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यो बभूवुः सर्वबल्लवाः॥४३॥
राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा। तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा॥४४॥
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी।
तदंशा सिन्धुकन्या च श्वेतद्वीपनिवासिनी॥४५॥
क्षीरोदशायिनः पत्नी विष्णोर्विषयिणः शिवे।
तदंशा सा स्वर्गलक्ष्मीः शक्रसंपत्प्रदायिनी।
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसंपत्प्रदायिनी॥४६॥

श्रीराधा के ही रोमकूप से सभी गोपियां उत्पन्न हैं। श्रीकृष्ण के रोमकूपों से समस्त गोपगण आविर्भूत हो गये। राधा के वामांश से महालक्ष्मी का आविर्भाव हुआ है। वे ही अधिष्ठातृ देवीरूपा गृहलक्ष्मी हैं। चतुर्भुज विष्णु की पत्नी होकर वे ही वैकुण्ठवासिनी हैं। उनके अंश से उत्पन्ना सिन्धुकन्या लक्ष्मी श्वेतद्वीप निवासिनी हैं। वे ही क्षीरसागर में शयन करते विष्णु की पत्नी भी हैं। हे शिवे! उनके अंश से आविर्भूत ही स्वर्गलक्ष्मी हैं, जो इन्द्र को सम्पदा देती हैं। इनके अंश से ही राजाओं को सम्पत्ति देने वाली राजलक्ष्मी प्रादुर्भूत हैं।।४३-४६।।

तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणां च गृहे गृहे। [1]दीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता॥४७॥
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता।
प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः॥४८॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति। भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्॥४९॥
परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम्। सर्वाद्यं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतेः परम्॥५०॥
स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तद्भिन्नानां च देवानं प्राकृतं रूपमेव च॥५१॥

उनके ही अंश से मर्त्यलोक की लक्ष्मी गृहस्थों के घर-घर में (गृहलक्ष्मी) हैं। वे ही पृथिवी पर घर-घर में गृहदेवता होकर दीपकों की अधिष्ठात्री देवी हैं। राधा तो स्वयं कृष्णपत्नी हैं। वे कृष्ण के वक्षःस्थल पर स्थिता हैं। वे उन परमात्मा के प्राणों की अधिष्ठातृ देवता हैं। हे पार्वती! तृण से लेकर ब्रह्मा तक सब मिथ्या है। अतः त्रिगुणातीत सत्यरूप परम ब्रह्म राधेश्वर प्रभु का भजन करो। वे सबसे

१. क. सस्याधि०।

श्रेष्ठ, प्रधान परम, परमात्मा, ईश्वर, सबके आदि, सर्वपूज्य निरीह तथा प्रकृति से परे हैं। वे स्वेच्छामय, नित्यरूप हैं। वे भक्तों पर अनुग्रहार्थ सगुण रूप धारण करते हैं। उनके अतिरिक्त जितने भी देवरूप हैं, सभी प्राकृत (प्रकृति निर्मित) हैं। कोई भी उनके अतिरिक्त यथार्थ रूप नहीं है।।४७-५१।।

तस्य प्राणाधिका राधा बहुसौभाग्यसंयुता।
महाविष्णोः प्रसूः सा च मूलप्रकृतिरीश्वरी॥५२॥
मानिनीं राधिकां सन्तः सेवन्ते नित्यशः सदा।
सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम्॥५३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः।
स्वयं देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी॥५४॥
स च द्वादशगोपानां रायणः[1] प्रवरः प्रिये।
श्रीकृष्णांशश्च भगवान्विष्णुतुल्यपराक्रमः॥५५॥

अनन्त सौभाग्य सम्पन्न राधा उन प्रभु की प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। वे मूलप्रकृति-ईश्वरी तथा महाविष्णु की भी माता हैं। इन मानिनी राधा की सेवा सन्तगण नित्य करते रहते हैं। जो चरणकमल ब्रह्मादि के लिये भी दुर्लभ है, वह राधासेवक सन्तों के लिये अत्यन्त सुलभ है। गोपगण तक राधा के चरणकमलों को स्वप्न में भी नहीं देख सकते। कामिनी राधा भगवान् की गोद में उनकी छाया की तरह (अभिन्न) होकर रहती हैं। हे प्रिये! द्वादश प्रधान गोपगण में सबसे प्रवर (प्रधान) था रायण गोप। यह कृष्ण के अंश से उत्पन्न तथा भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी था।।५२-५५।।

सुदामाशापात्सा देवी गोलोकादागता महीम्।
वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती॥५६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधोपा० राधोत्पत्तिकथनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

सुदामा के शाप से गोलोक से च्युत होकर राधा ने पृथिवी पर वृषभानु के गृह में जन्म लिया। तब राधा की माता का नाम कलावती था।।५६।।

।।अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

१. क. रायाण इति।

अथैकोनपञ्चचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण के साथ विरजा गोपी का विहार, राधा के भय से कृष्ण का अन्तर्ध्यान होना, विरजा को नदी रूप मिलना, राधा-सुदामा के बीच विवाद, उनका एक-दूसरे को शाप देना

पार्वत्युवाच

कथं सुदामाशापं च सा च देवी ललाभ ह।
कथं शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम्॥१॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे प्रभो! देवी राधा को सुदामा का शाप कैसे मिला? उस सेवक ने अपनी इष्टदेवी स्वामिनी को कैसे शाप दे दिया?॥१॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदं भक्तिमुक्तिदम्॥२॥
एकदा राधिकेशश्च गोलोके रासमण्डले। शतशृङ्गाख्यगिर्येकदेशे वृन्दावने वने॥३॥
गृहीत्वा विरजां गोपीं सुभाग्यां राधिकासमाम्।
क्रीडां चकार भगवान्रत्नभूषणभूषितः॥४॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डपे। अमूल्यरत्नखचितमञ्चके पुष्पतल्पके॥५॥
कस्तूरीकुङ्कुमारक्ते [1]सुचन्दनसुधूपिते। सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिमण्डिते॥६॥
सुरताद्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ। तौ द्वौ परस्परासक्तौ सुखसंभोगतन्द्रितौ॥७॥

श्री महादेव कहते हैं–हे देवी! मैं तुमसे परम अद्भुत, गुप्त, जो सभी पुराणों में गोपनीय है, जो शुभप्रद एवं भक्ति तथा मुक्तिदायक है, वह प्रसंग कहता हूं। श्रवण करो। एक दिन राधानाथ गोलोकस्थ शतशृंग पर्वत के एक ओर सौभाग्य में राधा के समान विरजा नामक गोपी के साथ नाना भूषणभूषित होकर क्रीड़ा कर रहे थे। उस रत्ननिर्मित राजमण्डल में चारों ओर रत्नों के प्रदीप जल रहे थे। वे दोनों उस समय बहुमूल्य रत्न से बनी, चम्पा पुष्प शोभित, कस्तूरी-कुंकुमादि से लिप्त, सुगन्धित चन्दन से चर्चित मालती पुष्पमाला लिपटी सुखशय्या पर स्थित थे। वे वहां बिना विश्राम के रमणरत हो गये। (अर्थात् अविरत रमणरत थे)। ये दोनों रतिपण्डित दम्पति अनवरत सुरतक्रीड़ा में लीन थे। वे परस्परतः आसक्त सुख-संभोग में अविश्रान्त इस आनन्द सुरत का अनुभव कर रहे थे॥२-७॥

मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परिमितो गतः।
गोलोकस्य स्वल्पकाले जन्मादिरहितस्य च॥८॥

---

१. क. सुगन्धिचन्दनाञ्चिते।

दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वाऽथ जगदुस्तां तु राधिकाम्।
श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हरिमीश्वरी॥९॥

जन्म-जरा-मृत्यु रहित गोलोक धाम में इनको रमणरत रहते जागतिक लाखों मन्वन्तर व्यतीत हो गये, जो कालमान गोलोक का अत्यन्त अल्प समय होता है। इसी बीच चार दूतीगण ने इस रमणलीला को जान कर इसका समाचार राधा को दे दिया। वे ईश्वरी यह संवाद सुनकर परम रुष्ट सी हो गईं। उन्होंने श्रीकृष्ण का त्याग कर दिया।।८-९।।

प्रबोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना।
विहाय रत्नालङ्कारं वह्निशुद्धांशुके शुभे॥१०॥
क्रीडापद्मं च सद्रत्नामूल्यदर्पणमुज्ज्वलम्।
निर्मार्जयामास सती सिन्दूरं चित्रपत्रकम्॥११॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तकम्। विस्रस्तकबरीभारा मुक्तकेशी प्रकम्पिता॥१२॥

उस समय राधा के नेत्र क्रोधाधिक्य से रक्तवर्ण हो गये थे। यद्यपि सखियों ने उनको बहुत कुछ प्रबोधित भी किया, तथापि उन देवी ने रत्नालंकार, अग्नि जैसे शुद्ध वस्त्र, क्रीड़ाकमल, उत्तम रत्नों से निर्मित बहुमूल्य उज्ज्वल दर्पण तक का त्याग कर दिया। सिन्दूर तथा देह पर बने चित्रांकन को भी मिटा दिया। मुखराग तथा तलवों के महावर को भी अंजली पूर्ण जल द्वारा धो दिया। अपने जूड़े को खोल कर बालों को फैला दिया तथा क्रोध से कंपित होने लगीं।।१०-१२।।

शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षा वेषादिवर्जिता।
ययौ यानान्तिकं तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता॥१३॥
आजुहाव सखीसङ्घं रोषविस्फुरिताधरा।
शश्वत्कम्पान्विताङ्गी सा गोपीभिः परिवारिता॥१४॥
ताभिर्भक्त्या नताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता।
आरुरोह रथं दिव्यममूल्यं रत्ननिर्मितम्॥१५॥

उन्होंने उत्तम वस्त्राभूषणादि से रहित होकर श्वेत वस्त्र पहना। वे अब उत्तम वेष त्याग कर रूक्ष वेशधारिणी हो गयीं। यद्यपि उस समय उनकी सखियों ने उनको बहुत रोका, तथापि वे सबकी बातों को अनसुनी करके यान के पास आ गईं। वहीं पर उन्होंने अपनी सखीगण का आह्वान किया। उस समय देवी के अधर एवं ओष्ठ कम्पायमान थे। समस्त देह कम्पित था तथा उनके चतुर्दिक् उनकी सखी गोपियां खड़ी थीं। वे सखियां कातर होकर भक्ति पूर्वक नत होकर राधा की स्तुति कर रही थीं, तथापि उन सबकी बातों की उपेक्षा करके देवी राधा दिव्य अमूल्य रत्नों से निर्मित रथ पर बैठ गयीं।।१३-१५।।

दशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तच्छतयोजनम्। सहस्रचक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम्॥१६॥

नानाविचित्रवसनैः सूक्ष्मैः क्षौमैर्विराजितम्। अमूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैः परिशोभितम्॥१७॥
मणीन्द्रजालमालाभैः पुष्पमालासहस्रकैः। सद्रत्नकलशैर्युक्तं रम्यैर्मन्दिरकोटिभिः॥१८॥

वह रथ १० योजन विस्तीर्ण तथा लम्बाई में १०० योजन था। उसमें १००० पहिये लगे थे। वह अनेक प्रकार के चित्रों से शोभायमान था। वह उत्कृष्ट बहुमूल्य दर्पणयुक्त, नाना प्रकार के दिव्य वस्त्रों से वेष्टित, बहुमूल्य मणिमाला तथा पुष्पमाला से सजा, सुन्दर रत्नों से सुरचित, मनोहर रमणीय कलश युक्त कक्षों से युक्त था।।१६-१८।।

त्रिलक्षकोटिभिः सार्धं गोपीभिश्च प्रियालिभिः।
ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये॥१९॥
श्रुत्वा कोलाहलं गोपः सुदामा कृष्णपार्षदः।
कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्धं पलायितः॥२०॥
भयेन कृष्णः संत्रस्तो विहाय विरजां सतीम्।
स्वप्रेममग्नः कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः॥२१॥

इस रथ पर एक करोड़ तीन लाख प्रिय गोपीगण के साथ राधा ने आसन ग्रहण किया। हे प्रिय! उस रथ का नाम सुमनोमालि था। उसके चलने के कोलाहल को कृष्णपार्षद सुदामा ने सुना। वह गोपों के साथ कृष्ण के पास गया तथा उन लोगों ने कृष्ण को सावधान कर दिया। अब कृष्ण ने भय से त्रस्त होकर सती विरजा को वहीं छोड़ दिया तथा विरजा के प्रेम में मग्न कृष्ण वहां से तिरोहित हो गये।।१९-२१।।

सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य स्वहृदि क्रुधा।
राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम्॥२२॥
विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः। प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया॥२३॥
गोलोके सा सरिद्रूपा जाता वै शैलकन्यके।
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा॥२४॥
गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा। बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदाऽन्या गोप्य एव च॥२५॥

तब सती विरजा ने समयानुरूप क्रोध के साथ (कृष्ण के त्यागने के सम्बन्ध में) विचार तो किया, तथापि वे राधा के कोप से इतनी भयग्रस्त थीं कि उन्होंने तत्क्षण प्राण त्याग कर दिया। विरजा की सखीगण भी राधा के महान् क्रोध से कातर एवं भयविह्वल होकर तत्क्षण विरजा की शरण में गईं, लेकिन हे शैलकन्या पार्वती! उन सबने देखा कि विरजा ने तो गोलोक में नदीरूप धारण किया है तथा प्रवाहित हो रही हैं। वे एक करोड़ योजन चौड़ी तथा लम्बाई में इससे भी १०० गुणित थीं। उन्होंने नदीरूप होकर मनोहर खाई के रूप में गोलोक को घेर रखा था। यह देख कर वे गोपियां भी जो विरजा की ही सखी थीं, नाना क्षुद्र नदीरूपा होकर गुप्त हो गयीं।।२२-२५।।

सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि। इमे सप्त समुद्राश्च विरजानन्दना भुवि॥२६॥
अथाऽऽगत्य महाभागा राधा रासेश्वरी परा।
न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहं च पुनर्ययौ॥२७॥

हे सुन्दरी! हरेक विश्व में प्रवहमान सभी नदियां इन्हीं नदियों के अंश से उत्पन्न हैं। धरती स्थित समस्त समुद्र (७ समुद्र) इन विरजा नदी के ही पुत्र कहे गये हैं। इसके पश्चात् जब परम श्रेष्ठ महाभागा रासेश्वरी राधा का वहां आगमन हो गया, तब उन्होंने वहां विरजा अथवा कृष्ण को नहीं देखा। अन्ततः वे अपने गृह वापस आ गईं।।२६-२७।।

जगाम कृष्णस्तां राधां गोपालैरष्टभिः सह।
गोपीभिर्द्वारि युक्ताभिर्वारितोऽपि पुनः पुनः॥२८॥
दृष्ट्वा कृष्णं च सा देवी भर्त्सयामास तं तदा।
सुदामा भर्त्सयामास तां तथा कृष्णसंनिधौ॥२९॥
क्रुद्धा शशाप सा देवी सुदामानं सुरेश्वरी। गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छ दूरमतो द्रुतम्॥३०॥

इसके पश्चात् कृष्ण ने आठ गोपगण को साथ लिया तथा राधा के भवन में आये। उनको द्वारपाल गोपियों ने बारम्बार गृह में प्रवेश करने से रोका, तथापि वे गृह के अन्दर चले गये। राधा ने जैसे ही कृष्ण को वहां आते देखा वे उनकी अनेक प्रकार से भर्त्सना करने लगीं। कृष्ण के साथ आये सुदामा ने भी राधा की कुछ भर्त्सना कर दिया। इससे क्रोध में भर कर सुरेश्वरी राधा ने सुदामा को श्राप दिया "तुम शीघ्र यहां से दूर चले जाओ। तुमको आसुरी योनि मिले"।।२८-३०।।

शशापं तां सुदामा च त्वमितो गच्छ भारतम्।
भव गोपी गोपकन्या मुख्याभिः स्वाभिरेव च॥३१॥
तत्र ते कृष्णविच्छेदो भविष्यति शतं समाः। तत्र भारावतरणं भगवांश्च करिष्यति॥३२॥

शाप सुन कर सुदामा ने भी राधा को शाप दिया और कहा–"तुम यहां से दूर भारतवर्ष जाकर गोपकन्या हो जाओ। वहां तुमको असह्य कृष्णविरह १०० वर्ष तक भोगना होगा। भगवान् कृष्ण पृथिवी का भार हरण करने अवतीर्ण होकर तुमसे मिलेंगे।।३१-३२।।

इति ज्ञप्त्वा सुदामाऽसौ प्रणम्य जननीं हरिम्।
साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततो गन्तुं समुद्यतः॥३३॥
राधा जगाम तत्पश्चात्साश्रुनेत्राऽतिविह्वला।
वत्स क्व यासीत्युच्चार्य पुत्रविच्छेदकातरा॥३४॥

यह कहने के पश्चात् सुदामा ने जननी राधा तथा श्रीहरि को प्रणाम किया। उसकी नेत्रों में अश्रु भर गये थे। वह मोहयुक्त होकर वहां से जाने को उद्यत था। उधर राधा भी सुदामा को जाते देख कर

विह्वल हो गईं। उनके नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो गये। वह पुत्र सुदामा के विरह से कातर होकर उसके पीछे चलते कहने लगीं कि "हे पुत्र! कहां जा रहे हो? मत जाओ"।।३३-३४।।

कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया च कृपानिधिः।
शीघ्रं संप्राप्स्यसि सुतं मा रुदस्त्वं वरानने॥३५॥

स चासुरः शङ्खचूडो बभूव तुलसीपतिः। मच्छूलभिन्नकायेन गोलोकं वै जगाम सः॥३६॥

तब कृष्ण ने उनको विद्या द्वारा प्रबोधित करके कहा—"हे वरानने! तुम पुत्र सुदामा को शीघ्र प्राप्त करोगी। रुदन मत करो। यह सुदामा शंखचूड़ होकर तुलसी देवी का पति होगा। वह शंकर द्वारा मेरे प्रदत्त शूल से निहत होकर देह त्यागने के उपरान्त पुनः गोलोक लौट आयेगा"।।३५-३६।।

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती। वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥३७॥
अयोनिसंभवा देवी वायुगर्भा कलावती। सुषुवे मायया वायुं सा तत्राऽऽविर्बभूव ह॥३८॥

अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्।
सार्धं रायणवैश्येन तत्संबन्धं चकार सः॥३९॥
छायां संस्थाप्य तद्गेहे साऽन्तर्धानमवाप ह।
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह॥४०॥

वाराह कल्प (के द्वापर में) गोकुल ग्रामस्थ वृषभानु गोप की पुत्री होकर राधा का आविर्भाव हुआ। ये अयोनिजा कन्या थीं। माता कलावती के गर्भ में केवल वायु भरी थी। जब प्रसवकाल में वे मायामोहित-सी वायु का प्रसव कर रही थीं, तभी वहां राधा पुत्रीरूपेण प्रकट हो गईं। जब राधा १२ वर्ष की थीं, तब पिता ने रायण वैश्य से राधा का विवाह कराया। राधा विवाहकाल में अपनी छाया छोड़ कर अन्तर्हित् हो गयीं। इसी छायारूप राधा से रायण का विवाह किया गया। यह गुप्त ही रहा।।३७-४०।।

गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतेश्छलेन च। जगाम गोकुलं कृष्णः शिशुरूपी जगत्पतिः॥४१॥

कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोपकृष्णांशः संबन्धात्कृष्णमातुलः॥४२॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने।
[1]विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः॥४३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः।
स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायणमन्दिरे॥४४॥

इसके १४ वर्ष बाद तब कंस के भय से उन शिशुरूपी जगत्पति को छल पूर्वक गोकुल ग्राम

१. क. विहारं का०।

लाया गया। रायण कृष्ण की माता यशोदा का सगा भ्राता था। वह गोलोक में कृष्ण का अंश तथा लौकिक सम्बन्ध में कृष्ण का मामा था। कृष्ण के साथ पुण्यमय वृन्दावन में ब्रह्मा ने सविधि राधा का विवाह कराया। गोपगण तो स्वप्न में भी राधा के चरणकमल का दर्शनलाभ नहीं कर सकते थे। वास्तविक राधा तो हरि की गोद में विराजित थीं। उनका छायारूप रायण गोप के गृह में था।।४१-४४।।

षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः। राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थी च पुष्करे।।४५।।
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले। ददर्श तत्पदाम्भोजं तपसस्तत्फलेन च।।४६।।

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने ६०००० वर्ष पुष्कर में राधा के चरणकमल का दर्शन पाने के लिये कठोर तप किया था। तभी पृथिवी का भार उतारने हेतु नन्द के गोकुल में कृष्णावतार काल में ब्रह्मा को उनके महान् तप के फलस्वरूप राधा के चरणकमल का दर्शनलाभ हो सका!।।४५-४६।।

किञ्चित्कालं स वै कृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने।
रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते।।४७।।
ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह। तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः।।४८।।
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः। ददर्श कृष्णं सा राधा स च तां च परस्परम्।।४९।।
ततो जगाम गोलोकं राधया सह तत्त्ववित्। कलावती यशोदा च पर्यगाद्राधया सह।।५०।।
वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम्।
सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः।।५१।।
छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिं च संनिधौ। रेमिरे ताश्च तत्रैव सार्धं कृष्णेन पार्वति।।५२।।

गोलोकनाथ ने भारतवर्ष में स्थित पुण्यमय वृन्दावन में कुछ काल तक राधा के साथ रमण किया था। तभी सुदामा के पूर्व शाप के कारण राधा-कृष्ण का विछोह हो गया (कृष्ण ने वृन्दावन से मथुरा प्रयाण किया)। इसी बीच दुष्टों का नाश करके कृष्ण ने भूभार समाप्त किया। जब १०० वर्ष वियोग वाले व्यतीत हो गये, तब कृष्ण ने तीर्थयात्रा काल में राधा को देखा, राधा ने कृष्ण को देखा। तदनन्तर तत्वज्ञ कृष्ण राधा के साथ गोलोक चले गये। राधा का ही अनुगमन करते उनकी माता कलावती भी यशोदा सहित गोलोक चली गयीं। जो सब गोप-गोपी, वृषभानु, नन्द आदि गोलोक नामक परम उत्तम धाम से पृथिवी पर आये थे, सभी गोलोक चले गये। हे पार्वती! जितने छायारूप गोप-गोपियां कृष्ण के साथ थे, वे सभी मुक्त होकर (छायारूप से मुक्त होकर) उनके साथ गोलोक धाम चले गये।।४७-५२।।

षट्त्रिंशल्लक्षकोट्यश्च गोप्यो गोपाश्च तत्समाः।
गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्धं कृष्णेन राधया।।५३।।
द्रोणः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा। संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम्।।५४।।

वसुदेवः कश्यपश्च देवकी चादितिः सती। देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः॥५५॥

पितृणां मानसी कन्या राधामाता कलावती।
वसुदामाऽपि गोलोकाद् वृषभानुः समाययौ॥५६॥

राधा-कृष्ण के ही साथ ३६ करोड़ गोपियां तथा ३६ कोटि गोपगण कृष्ण-राधा के गोलोकगमन के समय मुक्त होकर गोलोक चले गये। धरती पर प्रजापति द्रोण ही नन्द रूप में जन्मे थे। उनकी पत्नी धरा ही यशोदा देवी थी। इन्होंने अपनी पूर्वकालीन तपस्या के फलस्वरूप परमात्मा ईश्वर को प्राप्त किया था। कश्यप ऋषि ही वसुदेव तथा देवी अदिति ही देवकी सती थीं। ये देवमाता तथा देवपिता कश्यप-अदिति प्रतिकल्प में जन्म लेते हैं। पितृगण की मानसी कन्या ही राधा की माता कलावती थीं। गोलोक के वसुदामा ही उनके पिता वृषभानु थे।।५३-५६।।

इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम्। संपत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥५७॥

श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥५८॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती।
गङ्गा च तुलसी चैव देव्यो नारायणप्रियाः॥५९॥

हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने तुमसे राधा का अत्युत्तम आख्यान कहा। यह सम्पदाप्रद, पापहारी, पुत्र-पौत्र वर्द्धक है। श्रीकृष्ण के दो रूप हैं। यथा-चतुर्भुज एवं द्विभुज। चतुर्भुज रूप वैकुण्ठ में है। वे द्विभुज रूप से स्वयं गोलोक में स्थित हैं। चतुर्भुज विष्णु की पत्नी हैं महालक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, तुलसी। ये चारों देवी नारायण की प्रिया हैं।।५७-५९।।

श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्धाङ्गसमुद्भवा।
तेजसा वयसा साध्वी रूपेण च गुणेन च॥६०॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं वदेद्बुधः।
व्यतिक्रमे ब्रह्महत्यां लभते नात्र संशयः॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च गोलोके रासमण्डले।
चकार पूजां राधायास्तत्संबन्धिमहोत्सवम्॥६२॥
[1]सद्रत्नगुटिकायाश्च कृत्वा तत्कवचं हरिः।
दधार कण्ठे बाहौ च दक्षिणे सह गोपकैः॥६३॥

कृष्ण के वामांग से आविर्भूत राधा ही कृष्णपत्नी हैं। ये साध्वी तेज, वय में, रूप-गुण में कृष्ण के ही समान कही गयी हैं। बुद्धिमान लोग पहले राधा कह कर, तब कृष्ण कहें। इससे उलटा कहने पर

---
१. ख. ॰घुटि॰।

ब्रह्महत्या पातक लगता है। इसमें संशय न करे। कार्त्तिकी पूर्णिमा को गोलोकस्थ रासमण्डल में भगवान् ने राधा की पूजा करके उनके सम्बन्ध में महोत्सव किया था। उत्तम रत्न की ताबीज में कृष्ण ने राधा कवच भरा तथा उस ताबीज को कण्ठ एवं भुजा में धारण किया। कृष्ण तथा गोपगण–सभी ने इसे कण्ठ एवं दाहिनी भुजा में पहना।।६०–६३।।

कृत्वा ध्यानं च पूजां च स्तोत्रमेतच्चार सः। राधाचर्विततताम्बूलं चखाद मधुसूदनः।।६४।।
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान्प्रभुः। परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत्।।६५।।

कृष्ण ने भक्तिभाव से राधा का ध्यान करते-करते इस स्तोत्र की रचना किया। तत्पश्चात् मधुसूदन देव ने राधा जी द्वारा चबाया गया ताम्बूल भक्षण किया। राधा के लिये कृष्ण पूज्य हैं। कृष्ण के लिये राधा पूज्या हैं। इन दोनों अभीष्ट देवताओं में भेदभाव रखने वाला नरकगामी होगा।।६४–६५।।

द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण ब्रह्मणा मया।
अनन्तवासुकिभ्यां च रविणा शशिना पुरा।।६६।।
महेन्द्रेण च रुद्रैश्च मनुना मानवेन च। सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सर्वविश्वैश्च पूजिता।।६७।।

(इस प्रकार इनकी प्रथम पूजा कृष्ण द्वारा की गई)। राधा की द्वितीय पूजा इसके अनन्तर धर्म, ब्रह्मा, शिव (मेरे द्वारा), अनन्त नाग, वासुकि, सूर्य, चन्द्र, महेन्द्र, एकादश रुद्र, मानव, मनु, सुरेन्द्र, मुनीन्द्रगण ने किया। ये देवी समस्त विश्व में पूजिता हैं।।६६–६७।।

तृतीये पूजिता सा च सप्तद्वीपेश्वरेण च। भारते च सुयज्ञेन पुत्रैर्मित्रैर्मुदाऽऽन्वितैः।।६८।।
ब्राह्मणेनाभिशप्तेन दैवदोषेण भूभृता। व्याधिग्रस्तेन हस्तेन दुःखिता च विदूयता।।६९।।
संप्राप राज्यं भ्रष्टश्रीः स च राधावरेण च। स्तोत्रेण ब्रह्मदत्तेन स्तुत्वा च परमेश्वरीम्।।७०।।
[१]अभेद्यं कवचं तस्याः कण्ठे बाहौ दधार सः।
ध्यात्वा चकार पूजां च पुष्करे शतवत्सरान्।।७१।।

इनकी तृतीय पूजा भारत में सप्तद्वीप के अधिपति सुयज्ञ ने अपने मित्रों एवं पुत्रों के साथ मुदित मन से किया। दैवात् यह राजा ब्रह्मशापग्रस्त हो गया। उसके हाथ में व्याधि हो गई। वह दुःखी होकर ब्रह्मा प्रदत्त स्तोत्र से राधा की स्तुति करने लगा। राधा के वर से उसने अपना खोया राज्य, श्री पुनः प्राप्त किया। उसने राधा का अभेद्य कवच बाहु–कण्ठ में धारण किया। तदनन्तर उस राजा ने १०० वर्ष तक पुष्कर में राधा की पूजा तथा ध्यान भी किया था।।६८–७१।।

अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः।
इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।७२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरिसं० राधोपा० राधायाः सुदामाशापादिकथनं तामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।

---

१. क. आद्यं च क०।

वह राजा सर्वान्त में रत्नयान पर बैठ कर गोलोक चला गया। यह सब प्रसंग मैंने कह दिया। अब क्या सुनने की इच्छा है?॥७२॥

॥एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुयज्ञ का उपाख्यान, सुयज्ञ को ब्राह्मण का शाप

पार्वत्युवाच

को वा सुयज्ञो नृपतिः कुत्र वंशे बभूव सः।
कथं विप्राभिशप्तश्च कथं संप्राप राधिकाम्॥१॥
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नीं श्रीकृष्णपूजिताम्।
कथं विण्मूत्रधारी च सिषेवे परमेश्वरीम्॥२॥
पष्टिवर्षसहस्त्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः। यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः॥३॥
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मीं पुरा[१] सतीम्।
दुर्वर्शामपि युष्माकं दृश्या साऽभूत्कथं नृणाम्॥४॥
कथं त्रिजगतां धाता तस्मै तत्कवचं ददौ।
ध्यानं पूजाविधिं स्तोत्रं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥५॥

देवी पार्वती कहती हैं—यह सुयज्ञ राजा कौन था? यह किस वंश में जन्मा था? इसे कब विप्रशाप मिला? इसने राधा का दर्शनलाभ कब किया? परमेश्वरी राधा सर्वात्मा श्रीकृष्ण की प्रियतमा तथा उनके द्वारा पूजनीया हैं। मलमूत्र युक्त अपवित्र देहधारी राजा सुयज्ञ ने कैसे उनकी आराधना किया? जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने भी राधा के चरणकमल की धूलि प्राप्त करने की कामना से पुष्कर तीर्थ में ६०००० वर्ष कठोर तप किया था। राजा को किस प्रकार महालक्ष्मी परमेश्वरी श्रीराधा का दर्शन मिल सका? विशेष करके आप जैसे योगीन्द्रों के लिये भी राधा अदृश्य रहती हैं। वे किसलिये मनुष्य को दृष्टिगोचर हो सकीं? जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने इन राजा को किसलिये राधाकवच दिया था? यह सब विशेष रूप से कहिये। ये देवी तो आप लोगों को अत्यन्त कठिनता से परिलक्षित हो पाती हैं? कृपया इनका ध्यान, पूजाविधि आदि कहिये॥१-५॥

१. क. परां।

महादेव उवाच

स्वायंभुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च। ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः॥६॥
उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो ध्रुव एव च। ध्रुवस्य कीर्तिर्विख्याता त्रैलोक्ये शैलकन्यके॥७॥
उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः। सहस्रं राजसूयानां पुष्करे स चकार ह॥८॥

श्रीमहादेव कहते हैं–हे देवी! मनुवंश में सबसे पूर्व में स्वायम्भुव मनु जन्मे। ये ब्रह्मपुत्र, तपःश्चरणरत, समर्थ तथा शतरूपा के पति थे। इनके पुत्र थे राजा उत्तानपाद। उनके पुत्र थे ध्रुव! हे पर्वतकन्या! ध्रुव की तो कीर्त्ति त्रैलोक्य प्रसिद्ध है। इनका पुत्र उत्कल तो भगवान् नारायण के प्रति सदा लीन रहता था। उसने सहस्र राजसूय यज्ञ पुष्कर क्षेत्र में किया था।।६-८।।

सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा। अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसाऽऽवृतम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे॥९॥

समस्त रत्नपात्रादि, अमूल्य रत्नराशि जो अतीव तेजयुक्त थी, वह राजा ने यज्ञान्त में अत्यन्त उत्सव के साथ मुदित मन से ब्राह्मणों को दिया था।।९।।

दृष्ट्वा तच्छोभनं यज्ञं विधाता जगतां प्रिये। सुयज्ञं नाम नृपतिं चकार सुरसंसदि॥१०॥
स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंशसमुद्भवः। अन्नदाता रत्नदाता दाता वै सर्वसंपदाम्॥११॥
दशलक्षं गवां चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम्।
नित्यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदा युक्तः सदक्षिणम्॥१२॥
गवां द्वादशलक्षाणां ददौ नित्यं मुदाऽन्वितः।
सुपक्वानि च मांसानि ब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति॥१३॥

हे प्रिये! जगत्विधाता ब्रह्मा ने उस अत्यन्त शोभन यज्ञ को देख कर देवसभा में राजा उत्कल का ही नाम सुयज्ञ रखा। यह मनु वंशोत्पन्न राजा नित्य अन्नदान, रत्नदान, सर्वसम्पत्तिदान, १० लाख गौयें जिनकी सींगें रत्न से मढ़ी गई थीं, दक्षिणा सहित नित्य ब्राह्मणगण को देता था। यह सब राजा प्रसन्न मन से दान करता था। यह नित्य १२ लाख गौयें मुदित होकर ब्राह्मणगण को देता था। हे पार्वती! वह उत्तम सुपक्व मांस भी ब्राह्मणगण को प्रदान करता था।।१०-१३।।

षट्कोटीर्ब्राह्मणानां च भोजयामास नित्यशः।
चोश्यैश्चर्व्यैर्लेह्यपेयैरतितृप्तं दिने दिने॥१४॥
विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम्। पूर्णमन्नं च सूपाक्तं सगव्यं मांसवर्जितम्॥१५॥
विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम्। न तुष्टुवुः सुयज्ञं च तुष्टुवुस्तत्पितृंश्च ते॥१६॥
दिने सुयज्ञयज्ञान्ते षट्त्रिंशल्लक्षकोटयः।
चक्रुः सुभोजनं विप्राश्चातितृप्ताश्च सुन्दरि॥१७॥

गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं वोढुमक्षमाः।
वृषलेभ्यो ददुः किञ्चित्किंचित्पथि च तत्यजुः॥१८॥

यह इस प्रकार नित्य छः कोटि ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराता था। एक लाख रसोईये निमन्त्रित ब्राह्मणों को चर्व, चोष्य, लेह्य तथा लेपरूप तृप्तिकर भोज्य प्रदान करते थे। गोघृत, दुग्ध-दधि से भोजन पूर्ण रहता था। वह अन्न मांसवर्जित रहता था। विप्रगण भोजनकाल में मनुवंशोत्पन्न सुयज्ञ की प्रशंसा न करके उसके पितरों की प्रशंसा करते थे। यज्ञ की पूर्णाहुति पर सुयज्ञ ने ३६ लक्ष कोटि ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान किया। हे सुन्दरी! वे सब उत्तम भोजन से अत्यन्त तृप्त हो गये। उनको जो रत्न मिला, वह इतना अधिक था कि ब्राह्मणों ने उसे स्वगृह न ले जाकर कुछ शूद्रों को दिया तथा कुछ मार्ग में ही उसी प्रकार छोड़ दिया!॥१४-१८॥

विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यौ ददौ नृपः।
तथाप्युर्वरितं तत्र चान्नराशिसहस्त्रकम्॥१९॥
कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि। रत्नेन्द्रसारसंक्लृप्तच्छत्रकोटिसमन्विते॥२०॥
रत्नसिंहासने रम्ये पट्टवस्त्रैः सुसंस्कृते। चन्दनादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः॥२१॥
शाखायुक्तैः पूर्णकुम्भै रम्भावृक्षैश्च शोभिते। चन्दनागुरुकस्तूरीघनसिन्दूरसंस्कृते॥२२॥
वसुवासवचन्द्रेन्द्ररुद्रादित्यसमन्विते। मुनिनारदमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते॥२३॥

विप्रों को भोजन कराने के पश्चात् राजा ने अन्य लोगों को भोजन कराया, तथापि इतने लोगों के भोजन करने के पश्चात् भी हजारों अन्न के ढेर ऐसे ही पड़े रह गये थे। राजा ने यज्ञान्त में महामूल्य श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित कोटि छत्रों से आवृत्त होकर मनोहर रेशमी वस्त्रों से सजे, चन्दन से लिप्त, चन्दन की शाखा पल्लवों से युक्त पूर्ण कलशों, कदली वृक्षों से सजे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कपूर तथा सिन्दूर से विभूषित रत्न सिंहासन पर आगमन किया। उस सिंहासन के पास वसुगण, इन्द्र, चन्द्रमा, रुद्रगण, सूर्य, नारद, मनु, ब्रह्मा, शिव विराजित थे।।१९-२३।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाययौ। रूक्षो मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः॥२४॥
रत्नसिंहासनस्थं च माल्यचन्दनचर्चितम्।
राजानमाशिषं चक्रे सस्मितः संपुटाञ्जलिः॥२५॥
प्रणनाम नृपस्तं च नोत्तस्थौ किञ्चिदेव हि। सभासदश्च नोत्तस्थुर्जहसुः स्वल्पमेव च॥२६॥
मुनिभ्योऽपि च देवेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमः।
शशाप नृपतिं क्रोधात्तत्रातिष्ठन्निरङ्कुशः॥२७॥

इसी समय राज्यसभा में रूक्ष, मलिन वस्त्रधारी, शुष्क कण्ठ, शुष्क ओष्ठ तथा शुष्क तालु वाला एक ब्राह्मण आया। उसने रत्नसिंहासनासीन माला-चन्दन आदि से चर्चित राजा को हाथ जोड़ कर तनिक हंसते हुए आशीर्वाद दिया। राजा सिंहासन से उठा नहीं, बैठा ही रहा। प्रणाम नहीं किया।

सभासदगण ने भी उन ब्राह्मण का उठ कर सम्मान नहीं किया तथा वे लोग उपेक्षा से तनिक हंसे भी। ब्राह्मण ने भी तब वेद एवं देवगण को प्रणाम करके राजा को शाप दिया। उस ब्राह्मण ने वहीं निर्भय खड़े रह कर क्रोध पूर्वक कहा—।।२४-२७।।

गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर। भवाचिरं गलत्कुण्ठी बुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः।।२८।।

इत्युक्त्वा कम्पितः क्रोधात्सभास्थाञ्छप्तुमुद्यतः।
ये तत्र जहसुः सर्वे समुत्तस्थुः सभासदः।।२९।।
सर्वे चक्रुः प्रणामं ते क्रोधं तत्याज वाडवः।।३०।।

(ब्राह्मण ने कहा)—हे पापी! तुम्हारी श्री भ्रष्ट हो जाये। तुम राज्य से दूर जाओ। शीघ्र गलित कुष्ठी हो जाओ। तुम बुद्धिहीन तथा उपद्रवी हो जाओ। यह कहकर क्रोध से कम्पित होता वह ब्राह्मण सभासदों को शाप देने हेतु उद्यत हो गया। तब वे सभी सभासद जो उसका उपहास कर रहे थे, उठे तथा ब्राह्मण को प्रणाम करने लगे। इससे उन ब्राह्मण ने क्रोध त्याग दिया।।२८-३०।।

प्रणम्याऽऽगत्य राजा तं रुरोद भयकातरः। निःससार सभामध्याद्ध्दयेन विदूयता।।३१।।
ब्राह्मणो गूढरूपी च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्भयकातराः।।३२।।
हे विप्र तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः। पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः।।३३।।
मरीचिः कश्यपश्चैव वसिष्ठः क्रतुरेव च। शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्वासा लोमशस्तथा।।३४।।

गौतमश्च कणादश्च कण्वः कात्यायनः कठः।
पाणिनिर्जाजलिश्चैव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः।।३५।।
तैत्तिरिश्चाऽऽप्यापिशलिर्मार्कण्डेयो महातपाः।
सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पैलः सनातनः।।३६।।

सनत्कुमारो भगवान्नरनारायणावृषी। पराशरो जरत्कारुः संवर्तः करभस्तथा।।३७।।

भरद्वाजश्च वाल्मीकिरौर्वश्च च्यवनस्तथा।
अगस्त्योऽत्रिरुतथ्यश्च सङ्कर्ताऽऽस्तीक आसुरिः।।३८।।
शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शाकल्यः शाकटायनः।
गर्गो वत्सः पञ्चशिखो जमदग्निश्च देवलः।।३९।।
जैगीषव्यो वामदेवो बालखिल्यादयस्तथा।
शक्तिर्दक्षः कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा।।४०।।
विश्वामित्रश्च कौत्सश्चाप्यृचीकोऽप्यघमर्षणः।
एते चान्ये च मुनयः पितरोऽग्निर्हरिप्रियाः[1]।।४१।।

---

१. क. ०हविःप्रियाः।

दिक्पाला देवताः सर्वा विप्रं पश्चात्समाययुः।
ब्राह्मणं बोधयामासुर्वासयामासुरीश्वरि॥४२॥
समूचुस्तं क्रमेणैव नीतिं नीतिविशारदाः॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

उधर भयकातर राजा ने भी रुदन करते हुए ब्राह्मण को प्रणाम किया। तदनन्तर ब्राह्मण भी दुःख करता सभा से बहिर्गत् हो गया। वह ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त ब्राह्मण गूढ़रूपधारी था। सभी उपस्थित मुनिगण भी भयकातर होकर ब्राह्मण को रोकने हेतु पुकारते उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। पुलह, पुलत्स्य, प्रचेत, भृगु, अंगीरा, मरीचि, कश्यप, वसिष्ठ, क्रतु, शुक्र, बृहस्पति, दुर्वासा, लोमश, गौतम, कणाद, कण्व, कात्यायन, कठ, पाणिनि, जाजलि, ऋष्यश्रृंग, विभाण्डक, तैत्तिरि, आपिशलि, वोढु, महातपा मार्कण्डेय, सनक, सनन्दन, पैल, सनातन, सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषिद्वय, पराशर, जरत्कारु, संवर्त्त, करभ, भरद्वाज, वाल्मीकि, और्व, च्यवन, अगत्स्य, अत्रि, उतथ्य, संकर्त्ता, आस्तीक, आसुरि, शिलालि, लांगलि, शाकल्य, शाकटायन, गर्ग, वत्स, पंचशिख, जमदग्नि, देव, जैगीषव्य, वामदेव, बालखिल्यादि, शक्ति, दक्ष, कर्दम, प्रस्कन्न, कपिल, विश्वामित्र, कौत्स, ऋचीक, अघमर्षण तथा अन्य मुनि, पितृगण, अग्नि, हरिप्रिया, दिक्पाल, सभी देवता वहां आये। वे नीतिकुशल उस ब्राह्मण को समझाते नीतिवार्त्ता कहने लगे-३१-४३॥

॥पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अतिथि ब्राह्मण के प्रति विनय प्रदर्शन के बहाने ऋषियों का राजा को उपदेश देना

पार्वत्युवाच

किमूचुर्ब्राह्मणं ब्रह्मन्ब्राह्मणा ब्रह्मणः सुताः।
नीतिज्ञा नीतिवचनं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

देवी पार्वती कहती हैं-हे नाथ! नीतिशास्त्रविद् ब्रह्मपुत्र ब्राह्मणों ने उन अतिथि ब्राह्मण को किस नीति का उपदेश दिया था? कृपया कहिये॥१॥

महादेव उवाच

संतोष्य तं ब्राह्मणं च स्तवेन विनयेन च।
क्रमेण वक्तुमारेभे मुनिसङ्घो वरानने॥२॥

श्रीमहादेव कहते हैं–हे वरानने! मुनिवृन्द ने विनय पूर्वक उन ब्राह्मण का स्तव किया तथा वे क्रमशः एक-एक नीतिपूर्ण वाक्य कहने लगे–२।।

सनत्कुमार उवाच

स्वत्पश्चादागता लक्ष्मीः कीर्तिः सत्त्वं यशस्तथा।
सुशीलं च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा॥३॥
आगता नृपगेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टश्रियं नृपम्। भव तुष्टो द्विजश्रेष्ठ चाऽऽशुतोषश्च वाडवः॥४॥
ब्राह्मणानां तु हृदयं कोमलं नवनीतवत्। शुद्धं सुनिर्मलं चैव मार्जितं तपसा मुने॥५॥
क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम्।
आशिषं कुरु तस्मै त्वं पवित्रपदरेणुना॥६॥

सनत्कुमार कहते हैं–आपके पीछे-पीछे अर्थात् जैसे ही आप शाप देकर जाने लगे, इन राजा की राजश्री, कीर्त्ति, यश, स्वस्थभाव, महैश्वर्य, नित्य तर्पणीय पितृगण तथा देवता भी राजा का त्याग करके आपके पीछे-पीछे राजगृह से चले गये। आप राजा पर प्रसन्न हो जायें। ब्राह्मण तो आशुतोष होते हैं। हे मुनिवर! ब्राह्मणों का चित्त नवनीत जैसा कोमल होता है। वह तपोबल से मार्जित निर्मल होता है। अतिशय शुद्ध कहा गया है। हे द्विजप्रवर! राजा का अपराध क्षमा करके राजभवन चलिये। राजा का आंगन पवित्र करिये। आप अपनी पवित्र चरण रज से राजगृह पवित्र करके उसे आशीर्वाद दीजिये।।३-६।।

भृगुरुवाच

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च॥७॥
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात्।
क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम्॥८॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः। तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः॥९॥

ऋषि भृगु कहते हैं–हे ब्राह्मणप्रवर! जिसके गृह से अतिथि निराश होकर वापस जाता है, इस पाप के कारण उस गृह से अतिथि की अवहेलना के कारण पितर, देवता एवं सर्वव्यापी अग्नि भी चले जाते हैं। आप शान्त हो जायें। राज्यभवन में पधार कर राजभवन को शुद्ध करिये। जो व्यक्ति गृहागत अतिथि का सत्कार नहीं करता, वह स्त्रीहत्या, गोहत्या, ब्रह्महत्या, कृतघ्नता, गुरुपत्नीहरण आदि पाप उस व्यक्ति में घर बना लेते हैं। वह इन पापों का भागी हो जाता है।।७-९।।

पुलस्त्य उवाच

पश्यन्ति ये वक्रदृष्ट्या चातिथिं गृहमागतम्।
दत्त्वा स्वपापं तस्मै तत्पुण्यमादाय गच्छति॥१०॥
क्षमस्व नृपदोषं च गच्छ वत्स यथासुखम्।
राजा स्वकर्मदोषेण नोत्तस्थौ तत्क्षमां कुरु॥११॥

ऋषि पुलत्स्य कहते हैं—जो गृह में आये अतिथि को वक्र दृष्टि से देखता है, वह अतिथि अपना समस्त पाप उस गृहस्थ को देता है तथा उसका पुण्य लेकर चला जाता है। हे वत्स! आप राजा का दोष क्षमा करके यथासुख अपने मार्ग पर जायें। ये राजा आपके आने पर स्वकर्मदोष के कारण उठ कर खड़े नहीं हो सके। आप उनका यह दोष क्षमा करें।।१०-११।।

पुलह उवाच

राजश्रिया विद्यया वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते।
विप्रस्त्रिसंध्यहीनो यः श्रीहीनः क्षत्रियो भवेत्॥१२॥
एकादशीविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः।
क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम्॥१३॥

ऋषि पुलह कहते हैं—जो कोई व्यक्ति राज एवं विद्या आदि के घमण्ड में ब्राह्मण की अवमानना करता है, वह यदि ब्राह्मण है, तब वह त्रिसन्ध्या द्वारा परित्यक्त हो जाता है। यदि वह क्षत्रिय है, तब लक्ष्मी देवी उसका त्याग कर देती हैं तथा उत्तम व्रती व्यक्ति एकादशी फल तथा देवदुर्लभ हरि नैवेद्य की प्राप्ति नहीं कर पाता। आप राजा का दोष क्षमा करके उनके गृह में अपने चरण रख कर पवित्र करें।।१२-१३।।

क्रतुरुवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव च।
दीक्षाहीनो भवेत्सोऽपि ब्राह्मणं योऽवमन्यते॥१४॥
धनहीनः पुत्रहीनो भार्याहीनो भवेद्ध्रुवम्।
क्षमस्वाऽऽगच्छ भगवञ्छुद्धं कुरु नृपालयम्॥१५॥

ऋषि क्रतु कहते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य किंवा शूद्र में से जो भी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह दीक्षाहीन हो जाता है। वह धनहीन, पुत्रहीन, भार्याहीन, निश्चित रूप से हो जाता है। हे प्रभो! राजा को क्षमा करके नृप का गृह वहां पधार कर शुद्ध करिये।।१४-१५।।

अङ्गिरा उवाच

ज्ञानवान्ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते। वृषवाहो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु॥१६॥

ऋषि अंगीरा कहते हैं–यदि ब्राह्मण ज्ञानी होने पर भी किसी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह सात जन्मों तक बैल को बैलगाड़ी में जोत कर अथवा उस बैल के माध्यम से आजीविका चलाता है।।१६।।

मरीचिरुवाच

पुण्यक्षेत्रे भारते च देवं च ब्राह्मणं गुरुम्।
विष्णुभक्तिविहीनश्च च भवेद्योऽवमन्यते।।१७।।

ऋषि मरीचि कहते हैं–इस पुण्यक्षेत्र भारत में आकर देवता, ब्राह्मण किंवा गुरु की निन्दा करता है, वह मानव जीवन को सार्थक बनाने वाली विष्णुभक्ति से सदा के लिये रहित हो जाता है।।१७।।

कश्यप उवाच

वैष्णवं ब्राह्मणं दृष्ट्वा यो हसत्यवमन्यते।
विष्णुमन्त्रविहीनश्च तत्पूजाविरतो भवेत्।।१८।।

कश्यप ऋषि कहते हैं–जो कोई वैष्णव ब्राह्मण को देख कर उसका उपहास करता है, वह विष्णुमन्त्र रहित तथा पूजा रहित हो जाता है।।१८।।

प्रचेता उवाच

अतिथिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः।
पितृमातृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि।।१९।।
प्राप्नोति [1]कौञ्जरीं योनिं स मूढः सप्तजन्मसु।
शीघ्रं गच्छ द्विजश्रेष्ठ राज्ञे देह्याशिषः शुभाः।।२०।।

प्रचेता ऋषिगण कहते हैं–जो अतिथि को देख कर उनके सत्कार में उठता नहीं, वह भूमण्डल पर पिता-माता की भक्ति से रहित हो जाता है। वह अपने अहंकार के कारण सात जन्म तक मत्त हाथी की योनि प्राप्त करता है। हे द्विजप्रवर! आप शीघ्र राजा के यहां जाकर उनको शुभाशीर्वाद दीजिये।।१९-२०।।

दुर्वासा उवाच

गुरुं वा ब्राह्मणं वाऽपि देवताप्रतिमामपि। दृष्ट्वा शीघ्रं न प्रणमेत्स भवेत्सूकरो भुवि।।२१।।
मिथ्यासाक्षी च भवति तथा विश्वासघातकः।
क्षमस्व सर्वमस्माकमातिथ्यग्रहणं कुरु।।२२।।

---

१. क. सौकरीं।

दुर्वासा मुनि कहते हैं–गुरु, ब्राह्मण किंवा देवमूर्त्ति देख कर जो नतमस्तक नहीं होता, वह अपने महापातक के कारण पृथिवी पर शूकर योनि में जन्म लेता है। उसे झूठी गवाही तथा विश्वासघात वाला घोर पातक लगता है। पृथिवी पर उसे शूकर योनि मिलती है। यह निश्चित है। आप हम सबका दोष क्षमा करके राजगृह में आतिथ्य स्वीकार करें!।।२१-२२।।

राजोवाच

छलेन कथितो धर्मो युष्माभिर्मुनिपुङ्गवैः।
सर्वं कृत्वा च विस्पष्टं मां मूढं बोधयन्त्वहो।।२३।।
स्त्रीघ्नगोघ्नकृतघ्नानां गुरुस्त्रीगामिनां तथा।
ब्रह्मघ्नानां च को दोषो ब्रूत मां योगिनां वराः।।२४।।

राजा कहता है–हे मुनिवरगण! आप सबने छल पूर्वक ही सही धर्ममार्ग दिखलाया है। मैं अति अज्ञानी हूं। अतः स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, गुरुपत्नी गामी तथा ब्रह्महत्यारे को जो पातक लगता है, वह सब कृपया विस्तार पूर्वक कहिये।।२३-२४।।

वसिष्ठ उवाच

कामतो गोवधे राजन्वर्षं तीर्थं भ्रमेन्नरः। यवयावकभोजी च करेण च जलं पिबेत्।।२५।।
तदा धेनुशतं दिव्यं ब्राह्मणेभ्यः सदक्षिणम्।
दत्त्वा मुञ्चति पापाच्च भोजयित्वा शतं द्विजान्।।२६।।
प्रायश्चित्ते तु वै चीर्णे सर्वपापान्न मुच्यते।
पापावशेषाद्भवति दुःखी चाण्डाल एव च।।२७।।

वसिष्ठ मुनि कहते हैं–हे राजन्! यदि किसी ने जानबूझ कर गोहत्या किया है, तब वह गोघातक १०० वर्ष तीर्थ में रहे तथा मात्र यावक का भोजन करे। (यावक = जौ की लपसी)। हाथ से जल पीये। तदनन्तर दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को १०० गौ दान करे। तत्पश्चात् १०० ब्राह्मणों को भोजन कराने पर वह पातक रहित हो जाता है, तथापि इतना प्रायश्चित्त करके भी वह पूर्णपातक मुक्त नहीं होता। शेष पापनाशार्थ उसे चाण्डाल योनि में जन्म लेकर कष्ट सहना पड़ेगा।।२५-२७।।

आतिदेशिकहत्यायां तदर्धं फलमश्नुते। प्रायश्चित्तानुकल्पेन सर्वपापान्न मुच्यते।।२८।।

जिससे अनजाने में गोहत्या हो गई है, उसे आधा पापफल मिलता है। वह भी प्रायश्चित्त करके पूर्णतः पातक मुक्त नहीं हो पाता।२२।।

शुक्र उवाच

गोहत्याद्विगुणं पापं स्त्रीहत्यायां भवेद्ध्रुवम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि कालसूत्रे वसेद्ध्रुवम्।।२९।।

ततो भवेन्महापापी सूकरः सप्तजन्मसु। ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः॥३०॥

इन्द्र कहते हैं–गोहत्या से द्विगुणित पातक नारीहत्या का निश्चित मिलता है। उसे ६०००० वर्ष तक कालसूत्र में निवास करना पड़ता है। तदनन्तर सात जन्म तक उसे शूकर योनि में जन्म लेना पड़ता है। तदनन्तर ७ जन्म तक सर्पयोनि भोग कर वह शुद्ध होगा॥२९-३०॥

बृहस्पतिरुवाच

स्त्रीहत्याद्विगुणं पापं ब्रह्महत्याकृतो भवेत्।
लक्षवर्षं महाघोरे कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम्॥३१॥
ततो भवेन्महापापी विष्ठाकीटः शताब्दकम्।
ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः॥३२॥

बृहस्पति ऋषि कहते हैं–स्त्री हत्या से दूना पातक ब्रह्महत्या से होता है। वह व्यक्ति एक लाख वर्ष तक कुंभीपाक नरक में कष्ट भोगता है। तदनन्तर १०० वर्ष पर्यन्त वह महापातकी विष्ठाकीट हो जाता है। तदनन्तर ७ जन्मों तक सर्पयोनि पाकर, तब पवित्र होता है॥३१-३२॥

गौतम उवाच

दोषः कृतघ्ने राजेन्द्र ब्रह्महत्याचतुर्गुणः।
निष्कृतिर्नास्ति वेदोक्ता कृतघ्नानां च निश्चितम्॥३३॥

महर्षि गौतम कहते हैं–हे राजेन्द्र! जो कृतघ्न है, वह ब्रह्महत्या से भी चार गुना पापग्रस्त होता है। वेद का कथन है कि कृतघ्नों का उद्धार नहीं होता॥३३॥

राजोवाच

लक्षणं च कृतघ्नानां वद वेदविदां वर।
कृतघ्नः कतिधा प्रोक्तः केषु को दोष एव च॥३४॥

राजा कहता है–वेदज्ञों में श्रेष्ठ! कृपया कृतघ्न का लक्षण, उसका भेद कहिये। इसमें किसे कौन-सा दोष मिलता है, वह कहिये॥३४॥

ऋष्यशृङ्ग उवाच

कृतघ्नाः षोडशविधाः सामवेदे निरूपिताः। सर्वः प्रत्येकदोषेण प्रत्येकं फलमश्नुते॥३५॥

कृते सत्ये च पुण्ये च स्वधर्मे तपसि स्थिते।
प्रतिज्ञायां च दाने च स्वगोष्ठीपरिपालने॥३६॥

गुरुकृत्ये देवकृत्ये काम्यकृत्ये द्विजार्चने। नित्यकृत्ये च विश्वासे परधर्मप्रदानयोः॥३७॥

एतान्यो हन्ति पापिष्ठः स कृतघ्न इति स्मृतः।
एतेषां सन्ति लोकाश्च तज्जन्म भिन्नयोनिषु॥३८॥

ऋषि ऋष्यशृङ्ग कहते हैं–हे राजन्! कृतघ्न १६ प्रकार के सामवेद में कहे गये हैं। इन सबमें से सभी को प्रत्येक दोष का फल भोगना ही होगा। १. सत्य, २. पुण्य, ३. स्वधर्म, ४. तप, ५. मर्यादा, ६. प्रतिज्ञा, ७. दान, ८. पोष्यगण (आश्रितों) का पालन, ९. गुरुकृत्य, १०. देवकृत्य, ११. कामकृत्य, १२. द्विजसेवा, १३. नित्यकृत्य, १४. विश्वास, १५. अन्य को दान धर्म तथा १६. प्रदान, ये १६ कृत कहे गये हैं। इन सबका जो नाश करता है, वही पातकी कृतघ्न है। कृतघ्नगण भिन्न-भिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न योनि में जन्म लेते हैं।।३५-३८।।

यान्यांश्च नरकांस्ते च यान्ति राजेन्द्र पापिनः।
ते ते च नरकाः सन्ति यमलोके सुनिश्चितम्॥३९॥

हे राजेन्द्र! ये पातकी उन नरकों में गमन करते हैं, जो यमलोक में सुनिश्चित हैं।।३९।।

सुयज्ञ उवाच

के किं कृत्वा कृतघ्नाश्च कान्कान्गच्छन्ति रौरवान्।
प्रत्येकं श्रोतुमिच्छामि वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥४०॥

सुयज्ञ राजा कहता है–हे मुनिगण! कृतघ्न लोग किस पाप को करने के कारण किस नरक में जाते हैं? उसे भिन्न-भिन्न रूप से सुनने की इच्छा है। कृपया कहिये।।४०।।

कात्यायन उवाच

कृत्वा शपथरूपं च सत्यं हन्ति न पालयेत्। स कृतघ्नः कालसूत्रे वसेदेव चतुर्युगम्॥४१॥
सप्तजन्मसु काकश्च सप्तजन्मसु पेचकः।
ततः शूद्रो महाव्याधिः सप्तजन्मस्वतः शुचिः॥४२॥

कात्यायन ऋषि कहते हैं–जो व्यक्ति प्रतिज्ञा लेकर इस सम्बन्ध में सत्य का पालन नहीं करता, वही कृतघ्न है। वह कालसूत्र नरक में ४ युग पर्यन्त निवास करता है। तदनन्तर वह ७ जन्म तक निकृष्ट काकयोनि, ७ जन्म उलूक योनि में जन्म लेकर ७ जन्म तक महाव्याधियुक्त शूद्र योनि भोग कर, तब शुद्ध होता है।।४१-४२।।

सनन्दन उवाच

पुण्यं कृत्वा वदत्येव कीर्तिवर्धनहेतुना। स कृतघ्नस्तप्तसूर्म्यां वसत्येव युगत्रयम्॥४३॥
पञ्चजन्मसु मण्डूकस्त्रिषु जन्मसु कर्कटः। तदा मूको महाव्याधिर्दरिद्रश्च ततः शुचिः॥४४॥

सनन्दन ऋषि कहते हैं–जो पुण्य कार्य करके अपनी कीर्त्तिवर्धनार्थ स्वयं कहता है, वह कृतघ्न तीन युग तक घोर नरक तप्तसूर्मि में निवास करता है। वह ५ जन्म तक मेढ़क का जन्म भोग कर तीन जन्म तक केकड़ा होता है। तदनन्तर मनुष्य योनि में मूक, महारोगी तथा दरिद्र होकर, तब उसे पवित्रता मिलती है।।४३-४४।।

सनातन उवाच

स्वधर्मं हन्ति यो विप्रः संध्यात्रयविवर्जितः।
अतर्पयंश्च यत्स्नाति विष्णुनैवेद्यवर्जितः॥४५॥
विष्णुपूजाविष्णुभक्तिविष्णुमन्त्रविहीनकः। एकादशीविहीनः श्रीकृष्णजन्मदिने तथा॥४६॥
शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते श्रीरामनवमीदिने।
पितृकृत्यादिहीनो यः स कृतघ्न इति स्मृतः॥४७॥

सनातन ऋषि कहते हैं–जो विप्र त्रिकाल सन्ध्या रहित होकर अपने धर्म का नाश करता है, तर्पण रहित स्नान करता है, बिना विष्णु को अर्पित किये आहार करता है, कृष्ण जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी को भोजन करता है, पितृकृत्य नहीं करता, वह कृतघ्न है।।४५–४७।।

कुम्भीपाके वसत्येव [1]यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
ततश्चाण्डालतां याति सप्तजन्मसु निश्चितम्॥४८॥
शतजन्मनि गृध्रश्च शतजन्मनि सूकरः। ततो भवेद्ब्राह्मणश्च शूद्राणां सूपकारकः॥४९॥

ऐसा व्यक्ति १४ इन्द्रों के जीवनकाल पर्यन्त कुंभीपाक नरक में रहने के अनन्तर वह ७ जन्मों तक चाण्डाल योनि प्राप्त करता है। यह निश्चित है। तत्पश्चात् वह १०० जन्म गृध्रयोनि तथा १०० जन्म शूकरयोनि लाभ करके शूद्रों का रसोईया ब्राह्मण होकर जन्म लेता है।।४८–४९।।

ततो भवेज्जन्मसप्त ब्राह्मणो वृषवाहकः। शूद्राणां शवदाही च भवेत्सप्तसु जन्मसु॥५०॥
द्विजो भूत्वा सप्तजनौ भारते वृषलीपतिः।
भुक्त्वा स्वभोगलेशं च भ्रमित्वा याति रौरवम्॥५१॥
पुनः पुनः पापयोनिं नरकं च पुनः पुनः। ततो भवेद्गर्दभश्च मार्जारः पञ्चजन्मसु॥५२॥
पञ्चजन्मसु मण्डूको भवेच्छुद्धस्ततः क्रमात्॥५३॥

तदनन्तर वह ७ जन्म पर्यन्त वृषवाहक ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। तदनन्तर वह शूद्रों का शवदाहकर्त्ता ७ जन्म तक होता है। तदनन्तर वह ७ जन्मों तक भारत में शूद्रा का पति ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। तदनन्तर उसको जो भोग तनिक भी बचा रहता है, उसको भोगते हुए वह रौरव नरक में जाने के पश्चात् वहां का भोग पूर्ण करके ५ जन्म तक वह गर्दभ, मार्जार ५ जन्मों तक तथा ५ जन्म तक मेढ़क होकर, तब क्रमशः शुद्ध हो जाता है।।५०–५३।।

सुयज्ञ उवाच

शूद्राणां सूपकारणे शूद्राणां शवदाहने।
शूद्रान्नभोजने वाऽपि शूद्रस्त्रीगमनेऽपि च॥५४॥

---
१. क. ०वच्चन्द्रदिवाकरौ।

ब्राह्मणानां च को दोषो वृषाणां वाहने तथा।
एतान्सर्वान्समालोच्य ब्रूहि मां निश्चितं मुने॥५५॥

राजा सुयज्ञ कहता है–हे मुनिवर! शूद्रों का रसोईया, शूद्र शवदाहकर्त्ता, शूद्रान्न भोजन, शूद्रा स्त्री से समागम तथा वृषवाहक होने पर ब्राह्मणों को क्या दोष लगता है? यह सब बताने की कृपा करें।।५४-५५।।

पराशर उवाच

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो ज्ञानदुर्बलः। असिपत्रे वसत्येव [१]युगानामेकसप्ततिः॥५६॥
ततो भवेद्गर्दभश्च मूषकः सप्तजन्मसु। तैलकीटः सप्तजन्मस्वतः शुद्धो भवेन्नरः॥५७॥

ऋषि पराशर कहते हैं–जो ब्राह्मण जानबूझ कर शूद्रों का अन्न पाक करता है, वह ब्राह्मणाधम ७१ युग तक असिपत्र नरक में रहता है। तदनन्तर ७ जन्म तक मूषक एवं गर्दभ होकर सात जन्म तक तेल का कीट होकर, तब शुद्ध होगा।।५६-५७।।

जरत्कारुरुवाच

भृत्यद्वारा स्वयं वाऽपि यो विप्रो वृषवाहकः।
स कृतघ्न इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप॥५८॥
ब्रह्महत्यासमं पापं तन्नित्यं वृषताडने। वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्द्विगुणं भवेत्॥५९॥

ऋषि जरत्कारु कहते हैं–जो विप्र स्वयं किंवा भृत्य से वृषवाहक का कार्य करता-कराता है, हे राजन्! वह व्यक्ति भारत में कृतघ्न कहा जायेगा। वृषवाहक नित्य दण्ड से वृष पर प्रहार करने के कारण ब्रह्महत्या के समान पापग्रस्त होता है। वह व्यक्ति वृष की पीठ पर भार ढुलाने के कारण दूने पातक का भागी हो जाता है।।५८-५९।।

सूर्यातपे वाहयेद्यः क्षुधितं तृषितं वृषम्। ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः॥६०॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तेषां श्राद्धं च तर्पणम्॥६१॥
देवता नहि गृह्णन्ति तेषां पुष्पं फलं जलम्। ददाति यदि दम्भेन विपाताय प्रकल्पते॥६२॥
यो भुङ्क्ते कामतोऽन्नं च ब्राह्मणो वृषवाहिनाम्।
नाधिकारो भवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप॥६३॥
[२]लालाकुण्डे वसत्येव [३]यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
विष्ठा भक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्य भवेद्ध्रुवम्॥६४॥

---

१. क. ॰कविंशतिः।
२. क. ॰लाभक्षे व॰।
३. क. ॰वदिन्द्राश्चतुर्दश।

त्रिसंध्यं ताडयेत्तं च शूलेन यमकिङ्करः।
उल्कां ददाति मुखतः सूच्या कृन्तति संततम्।।६५।।

जो व्यक्ति प्रखर सूर्यताप से पिपासा तथा क्षुधापीड़ित वृषभ से हल चलाने का तथा अन्य कार्य लेता है, वह निश्चित रूप से १०० ब्रह्महत्या पातक का भागी हो जाता है। हे राजन्! वृषवाहक व्यक्ति का अन्न मल के समान है, उसका जल मूत्र के समान है। वह पापी व्यक्ति पितृ अर्चन, देवार्चन आदि कर्म का अधिकारी नहीं है। वह लालाकुण्ड नामक नरक में तब तक पड़ा रहता है, जब तक चन्द्र तथा सूर्य की स्थिति संसार में है। वह उस नरक में मल भोजन तथा मूत्रपान करता है। यम सेवकगण तीनों सन्ध्या काल में उसे शूल से भेदते हैं, उसके मुख में जलती लकड़ी ठूंसते हैं तथा उसके देह को निरन्तर सुई से छेदते रहते हैं।।६०-६५।।

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्। ततः काकः पञ्चजन्मस्वथैवं बक एव च।।६६।।
पञ्चजन्मसु गृध्रश्च शृगालः सप्तजन्मसु। ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः।।६७।।

तदनन्तर नरक भोग कर वह ६०००० वर्ष तक मल का कृमि होता है। तदनन्तर पांच जन्मों तक काक-बगुला की योनि में रहने के पश्चात् पांच जन्म पर्यन्त गृध्र योनि भोग कर सात जन्म तक शृगाल होता है। इसके पश्चात् वह दरिद्र-महाव्याधियुक्त शूद्र योनि में कष्ट भोग कर शुद्ध होगा।।६६-६७।।

भरद्वाज उवाच

शूद्राणां शवदाही यः स कृतघ्न इति स्मृतः। [1]वयःप्रमाणां राजेन्द्र ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्।
तत्तुल्ययोनिभ्रमणात्तत्तुल्यनरकाच्छुचिः।।६८।।
यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्राणां शवदाहने। तावदेव भवेद्दोषः शूद्रश्राद्धान्नभोजने।।६९।।

ऋषि भरद्वाज कहते हैं–जो शूद्रों का शवदाह करता है, वह कृतघ्न कहा गया है। हे राजेन्द्र! वह अपनी आयु के अनुसार ब्रह्महत्या पातक का भागी होगा। यह निश्चित है। तदनन्तर वह इस पाप के कारण मिलने वाली नाना योनियों में जन्म लेता है और तदनुरूप नरकों में यातना भोगने के पश्चात् तब शुद्ध हो पाता है। शूद्रों का शवदाह करने वाले ब्राह्मण को जो दोष एवं पाप लगता है, वही दोष ब्राह्मण द्वारा शूद्रान्न भोजन किये जाने पर उस ब्राह्मण को लगेगा, यह निश्चित है।।६८-६९।।

विभाण्डक उवाच

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः।
सुरापीती ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनाद्बहिः।।७०।।

ऋषि विभाण्डक कहते हैं–जो अधम ब्राह्मण शूद्रों के पितृश्राद्ध में भोजन करता है, वह मद्यप

१. क. ०शवप्र०।

तथा ब्रह्महत्यारे व्यक्ति की ही तरह देवतार्चन तथा पितृ अर्चन कार्य से सदा के लिये बहिष्कृत माना गया है।।७०।।

मार्कण्डेय उवाच

यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्रस्त्रीगमने नृप। अहं वक्ष्यामि वेदोक्तं सावधानं निशामय।।७१।।
कृतघ्नानां प्रधानश्च यो विप्रो वृषलीपतिः। कृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।७२।।
कृमिभक्ष्यो भवेद्विप्रो विद्धश्च यमकिङ्करैः।
प्रतिमायां तप्तलौह्यामाश्लेष्यति नित्यशः।।७३।।
ततश्च पुंश्चलीयोनौ कृमिर्भवति निश्चितम्। एवं वर्षसहस्त्रं च ततः शूद्रस्ततः शुचिः।।७४।।

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं–हे राजन्! शूद्रा नारी से समागम करने पर जो दोष ब्राह्मण को लगता है, वह वेदोक्त उक्ति कहता हूं। सावधानी से श्रवण करें। ऐसा ब्राह्मण कृतघ्नों में प्रधान कहा गया है। वह कृमिदंष्ट्र नरक में १४ इन्द्रों के आयुकाल पर्यन्त कष्ट भोगता है। उसे कीटगण काटते तथा उसे खाते रहते हैं। साथ ही यमदूतों के आघात से वह पीड़ित होता रहता है। इसके पश्चात् वह व्यभिचारिणी नारी की योनि में कीट होकर जन्म लेता है। यह निश्चित है। तदनन्तर १०० वर्ष के उपरान्त शूद्र योनि में जन्म लेकर पापभोग भोग कर शुद्ध हो जाता है।।७१-७४।।

सुयज्ञ उवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां वद कर्मफलं मुने।
श्लाघ्यो मे ब्रह्मशापश्च कस्य संपद्विनाऽऽपदम्।।७५।।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम।
आगतास्तु यतो मुक्ता मद्गेहे मुनयः सुराः।।७६।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० नृपमुनिसं० राधोपा० कर्मविपाको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

राजा सुयज्ञ कहता है–हे मुनिवरगण! अब आप अन्य प्रकार के कृतघ्नों का कर्मफल कहें। हे मुनिप्रवर! मुझे तो यह ब्रह्मशाप भी श्रेयस्कर लग रहा है, क्योंकि विपत्ति झेले बिना सम्पदा लाभ नहीं होता। मैं तो धन्य हो गया। मेरा सभी कार्य सम्पूर्णतः सम्पन्न हो गया। मेरा जन्म सार्थक है। इसका कारण है कि मुक्त पुरुष, देवता एवं मुनिगण का मेरे गृह में पदार्पण जो हो गया है!।।७५-७६।।

।।एकपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्मफल कथन

श्रीपार्वत्युवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां यद्यत्कर्मफलं प्रभो। तेषां किमूचुर्मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः॥१॥

श्री पार्वती देवी कहती हैं—हे प्रभो! अन्य प्रकार के कृतघ्नों को जो कर्मफल मिलता है, उस सम्बन्ध में उन वेद-वेदांग-पारंगत ऋषियों ने क्या कहा?॥१॥

श्रीमहेश्वर उवाच

प्रश्नं कुर्वति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये। तत्र प्रवक्तुमारेभे ऋषिर्नारायणो महान्॥२॥

श्री महेश्वर कहते हैं—हे प्रिये! जब मुनिवृन्द से राजा सुयज्ञ ने प्रश्न किया, तब सबसे पहले महर्षि नारायण ने उनको उत्तर दिया था॥२॥

श्रीनारायण उवाच

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। स कृतघ्न इति ज्ञेयः फलं शृणु च भूमिप॥३॥
यावन्तो रेणवः सिक्ता विप्राणां नेत्रबिंदुभिः। तावद्वर्षसहस्रं च शूलपोते स तिष्ठति॥४॥
तप्ताङ्गारं च तद्भक्ष्यं पानं वै तप्तमूत्रकम्। तप्ताङ्गारे च शयनं ताडितो यमकिङ्करैः॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—स्वयं प्रदत्त अथवा अन्य द्वारा प्रदत्त ब्रह्मवृत्ति का हरण करने वाला भी कृतघ्न कहलाता है। हे राजन्! उसके इस दुष्कर्म का फल श्रवण करो। उस पीड़ित हो गये ब्राह्मण के जितने अश्रुविन्दु धरती पर गिर कर जितने धूलिकण को सिक्त कर देते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह दुष्ट कृतघ्न शूलपोत नरक में रहता है। उसे तप्त अंगार खाना पड़ता है तथा वह तप्तमूत्र पानार्थ विवश रहता है। वह तप्त अंगारों पर लिटाया जाता है। यमकिंकर सर्वदा उसे प्रताड़ित करते रहते हैं॥३-५॥

तदन्ते च महापापी विष्ठायां जायते कृमिः। षष्टिवर्षसहस्राणि देवमानेन भारते॥६॥
ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजाहीनश्च मानवः। दरिद्रः कृपणो रोगी शूद्रो निन्द्यस्ततः शुचिः॥७॥

भारत में इसके पश्चात् वह पातकी विष्ठा का कृमि ६०००० दिव्य वर्षों तक के लिये होता है। इसके अनन्तर वह भूमिहीन एवं सन्तानहीन, दरिद्र, कृपण, रोगी तथा शूद्र की निन्दनीय मनुष्य योनि में कष्ट उठा कर शुद्ध होता है॥६-७॥

नारद उवाच

हन्ति यः परकीर्तिं च स्वकीर्तिं वा नराधमः।
स कृतघ्न इति ख्यातस्तत्फलं च निशामय॥८॥

अन्धकूपे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। कीटैर्नकुलगृध्रैश्च भक्षितः सततं नृप॥९॥

देवर्षि नारद कहते हैं–जो अधम व्यक्ति अपनी किंवा अन्य की कीर्त्ति का नाश करता है, वह कृतघ्न कहा गया है। उसका फल कहता हूं। श्रवण करो। हे राजन्! वह १४ इन्द्रों के जीवन काल तक अन्धकूप नरक में पड़ा रहता है। वहां उसको कीट, नकुल, गृध्र सदा खाते रहते हैं।।८-९।।

तप्तक्षारोदकं पापी नित्यं वै ततः। सप्तजन्मस्वतः सर्प काकः पञ्चस्वतः शुचिः॥१०॥

उसे नित्यप्रति अति उष्ण क्षारजल पीना पड़ता है। तदनन्तर वह सात जन्म तक सर्पयोनि, पांच जन्म पर्यन्त काक योनि में जन्म लेकर शुद्ध होगा।।१०।।

देवल उवाच

ब्रह्मस्वं वा गुरुस्वं वा देवस्वं वाऽपि यो हरेत्।
स कृतघ्न इति ज्ञेयो महापापी च भारते॥११॥
अवटोदे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
ताते भवेत्सुरापी स ततः शूद्रस्ततः शुचिः॥१२॥

ऋषि देवल कहते हैं–जो ब्राह्मण का धन, गुरु का धन, देवार्पित धन हरण करता है, वह भारतवर्ष में महापातकी कृतघ्न कहा गया है। वह अवटोद नरक में फेंका जाता है। उस नरक में वह १४ इन्द्रों के आयुकाल पर्यन्त कष्ट पाता है। तदनन्तर मद्यप व्यक्ति होकर एवं शूद्र योनि में जन्म लेकर, तब शुद्धि प्राप्त करता है।।११-१२।।

जैगीषव्य उवाच

पितृमातृगुरूंश्चापि भक्तिहीनो न पालयेत्।
वाचाऽपि ताडयेत्तांश्च स कृतघ्न इति स्मृतः॥१३॥
वाचा च ताडयेन्नित्यं स्वामिनं कुलटा च या।
सा कृतघ्नीति विख्याता भारते पापिनी वरा॥१४॥
वह्निकुण्डं महाघोरं तौ प्रयातः सुनिश्चितम्। तत्र वह्नौ वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
ततो भवेज्जलौकाश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः॥१५॥

ऋषि जैगीषव्य कहते हैं–जो भक्तिहीन व्यक्ति पिता-माता-गुरु का पालन-पोषण नहीं करता तथा कटु वाक्यों से उनको दुःख प्रदान करता है, वह कृतघ्न है। जो कुलटा नारी अपने पति पर वाक्बाणों का प्रहार करके उसे दुःखी करती है, वह भारत में प्रधान पापिनी कही गयी है। वह कृतघ्ना है। वह महाभयानक वह्निकुण्ड नरक में फेंकी जाती है। कृतघ्न व्यक्ति भी उसी नरक में फेंका जाता है। यह निश्चित है कि वे वहां तब तक कष्ट पाते हैं, जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य की स्थिति है। तदनन्तर ७ जन्मों तक जोंक योनि का कष्ट पाकर वे शुद्ध हो पाते हैं।।१३-१५।।

वाल्मीकिरुवाच

यथा तरुषु वृक्षत्वं सर्वत्र न जहाति च। तथा कृतघ्नता राजन्सर्वपापेषु वर्तते॥१६॥

मिथ्यासाक्ष्यं यो ददाति कामात्क्रोधात्तथा भयात्।
सभायां पाक्षिकं वक्ति स कृतघ्न इति स्मृतः॥१७॥
पुण्यमात्रं चापि राजन्यो हन्ति स कृतघ्नकः।
सर्वत्रापि च सर्वेषां पुण्यहानौ कृतघ्नता॥१८॥
मिथ्यासाक्ष्यं पाक्षिकं वा भारते वक्ति यो नृप।
यावदिन्द्रसहस्त्रं च सर्पकुण्डे वसेद्ध्रुवम्॥१९॥

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—जैसे सभी वृक्षों में वृक्षत्व रहता है, तदनुरूप प्रत्येक पातकों में कृतघ्नता विद्यमान है। हे राजन्! जो झूठी गवाही, काम-क्रोध अथवा भय के कारण अथवा पक्षपात से देता है, वह कृतघ्न है। पुण्यनाशक ही कृतघ्न है। हे नृप! पुण्य की हानि करना ही कृतघ्नता है। जो किसी का पक्ष लेकर मिथ्या साक्ष्य भारत में देता है, वह १००० इन्द्रों के जीवनकाल पर्यन्त सर्पकुण्ड नरक में रहेगा। यह निश्चित है।।१६-१९।।

संततं वेष्टितः सर्पैर्भीतो वै भक्षितस्तथा। भुङ्क्ते च सर्पविण्मूत्रं यमदूतेन ताडितः॥२०॥
कृकलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिः सह॥२१॥
ततो भवेद्वै वृक्षश्च महारण्ये तु शाल्मलिः। ततो भवेन्नरो मूकस्ततः शूद्रस्ततः शुचिः॥२२॥

वहां पातकी के शरीर से सर्प लिपटते रहते हैं। वह सर्प से भयभीत रहता तथा खाया जाता है। वह उन सर्पों का मलमूत्र खाता है तथा यमदूत उसे प्रताड़ित करते रहते हैं। तदनन्तर अपनी सात पीढ़ी के साथ वह भारत में सात जन्म तक गिरगिट, ७ जन्म तक मेढ़क की योनि में जन्म लेता है। अन्त में महान् वन में वह सेमल का वृक्ष होने के पश्चात् मनुष्य योनि में मूक शूद्र होकर, तब शुद्ध होता है।।२०-२२।।

आस्तीक उवाच

गुर्वङ्गनानां गमने मातृगामी भवेन्नरः। नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते॥२३॥
भारते च नृपश्रेष्ठ यो दोषो मातृगामिनाम्। ब्राह्मणीगमने चैव शूद्राणां तावदेव हि॥२४॥
ब्राह्मण्यास्तावदेव स्याद्दोषः शूद्रेण मैथुने। कन्यानां पुत्रपत्नीनां श्वश्रूणां गमने तथा॥२५॥
सगर्भभ्रातृपत्नीनां भगिनीनां तथैव च। दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भवः॥२६॥

यः करोति महापापी चैताभिः सह मैथुनम्।
जीवन्मृतो भवेत्सोऽपि चण्डालोऽस्पृश्य एव च॥२७॥

नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने। शालग्रामं तज्जलं च तुलस्याश्च दलं जलम्॥२८॥

सर्वतीर्थजलं चैव विप्रपादोदकं तथा। स्प्रष्टुं च नैव शक्नोति विट्तुल्यः पातकी नरः॥२९॥

ऋषि आस्तीक कहते हैं–मनुष्य गुरुपत्नी गमन करने पर मातृगमन के पातक से लिप्त हो जाते हैं। मातृगमन पातक का प्रायश्चित्त ही नहीं है। हे राजन्! मातृगमन का जो पाप है, वही पाप शूद्र को ब्राह्मणी के साथ समागम पर लगता है। कन्या, पुत्रवधू, सास, गर्भवती नारी, भाई की पत्नी तथा बहन के साथ संगमजनित जो पातक होता है, शूद्र लोग ब्राह्मणी नारी से समागम द्वारा उसी पातक के भागी होते हैं। इन सभी अगम्यागमन का जो दोष ब्रह्मा ने कहा है, वह कह रहा हूं। वह व्यक्ति जीते जी मृत के समान है। उसका स्पर्श करने से चाण्डाल भी बचते हैं। सूर्य की किरणें भी उसे अपने स्पर्श का अधिकारी नहीं मानतीं। उसे शालग्राम चरणामृत, तुलसीदल का जल, सर्वतीर्थ जल तथा विप्रगण का चरणोदक स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है। वह पातकी तो विष्ठा के समान है।।२३-२९।।

देवं गुरुं ब्राह्मणं च नमस्कर्तुं न चार्हति। विष्ठाधिकं तदन्नं च जलं मूत्राधिकं तथा॥३०॥
देवताः पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते। भवेत्तदङ्गवातेन तीर्थमङ्गारवाहनम्॥३१॥

वह गुरु, देवता तथा ब्राह्मण को नमस्कार करने का भी अधिकारी नहीं रह जाता। भारत में देवगण, पितृगण एवं ब्राह्मणगण उसके अन्न को मल से भी दूषित तथा उसके जल को मूत्र से भी अशुद्ध मान कर ग्रहण नहीं करते। देवता, पितर तथा ब्राह्मण उसकी कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते। उसके शरीर से स्पर्श की गई वायु से तीर्थ तक अंगार के समान (अपावन) हो जाते हैं।।३०-३१।।

सप्तरात्रं ह्यपवसेद्दैवस्पर्शात्तथा द्विजः। भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं वोढुमक्षमा॥३२॥

तत्पापात्पतितो देशः कन्याविक्रयिणो यथा।
तत्स्पर्शाच्च तदालापाच्छयनाश्रयभोजनात्॥३३॥
नृणां च तत्समं पापं भवत्येव न संशयः।
कुम्भीपाके वत्सेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥३४॥

ऐसे पातकी के भार को धरती भी सहन नहीं कर पाती। ऐसे पातकी का यदि दैवात् स्पर्श हो जाये, तब द्विजों, ब्राह्मणों को सात रात्रि उपवास करना होगा। कन्या विक्रयी के पाप की ही तरह वह देश भी पतित हो जाता है, जहां ऐसा पातकी है। जो कोई ऐसे पातकी का स्पर्श, उससे वार्त्तालाप, उसके साथ शयन, आसन ग्रहण, भोजन करेगा, उसे भी उस पातकी जैसा ही पातक लगेगा, यह निःसंदिग्ध है। तदनन्तर वह पापी १०० ब्रह्माओं के जीवन काल पर्यन्त कुंभीपाक नरक में पापफल भोगता है।।३२-३४।।

दिवानिशं भ्रमेत्तत्र चक्रावर्तं निरन्तरम्।
दग्धो वाऽग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताडितः॥३५॥
एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम्।
विष्ठाहारश्च[१] सर्वत्र कुम्भीपाकेऽथ पातितः॥३६॥

१. क. आहारश्चास्ति सर्वत्र कुम्भीपाके विवर्जिते।

गते प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा। पुनः सृष्टेः समारम्भे तद्विधो वा भवेत्पुनः॥३७॥

(षष्टिवर्षसहस्राणि कृमिश्च पुंश्चलीभगे।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्)॥३८॥
ततो भवति चण्डालो भार्याहीनो नपुंसकः।
(सप्तजन्म गलत्कुष्ठी चाण्डालोऽस्पृश्य एव च॥३९॥
ततस्तीर्थे भवेद्वृक्षः क्षुधितः सप्तजन्मसु।
सप्तजन्मसु सर्पश्च भार्याहीनो नपुंसकः)॥४०॥

सप्तजन्मसु शूद्रश्च गलत्कुष्ठी नपुंसकः। ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुष्ठी नपुंसकः॥४१॥

लब्ध्वैवं सप्त जन्मानि महापापी भवेच्छुचिः॥४२॥

उसे वहां दिन-रात चक्र की तरह निरन्तर घुमाया जाता है। तदनन्तर यमदूतगण उस पर विषम प्रहार करते हैं तथा अग्निशिखा के ताप से उसे अभूतपूर्व क्लेश भोगना पड़ जाता है। वह महापापी कुंभीपाक में असहनीय यातना भोग करता है। यद्यपि अन्य नारकीयों हेतु नारकीय आहार निश्चित है, परन्तु इन नारकीयों हेतु कुछ भी आहार नहीं मिलता। जब विषम प्राकृत महाप्रलय व्यतीत होकर पुनः सृष्टिकाल आता है, तब इनका निवास निर्दिष्ट होता है। तब ये ६०००० वर्ष तक मल के कृमि होकर मनुष्य योनि प्राप्त करते हैं, जहां ये भार्याहीन नपुंसक चाण्डाल रूपेण जन्म लेते हैं। सात जन्म तक गलित कुष्ठरोगी अस्पृश्य चाण्डाल योनि में क्लेश भोग कर किसी तीर्थ में वृक्ष हो जाते हैं। तदनन्तर ७ जन्म तक भूखे काक योनि में पड़े रह कर सात जन्म तक सर्प होते हैं। तदनन्तर पत्नी रहित नपुंसक मनुष्य होते हैं। पुनः सात जन्म तक गलित कुष्ठी शूद्र, नपुंसक, अंधा, कुष्ठरोगी एवं तब नपुंसक ब्राह्मण होते हैं। तदनन्तर यह महायातना भोग कर वह महापापी शुद्ध होंगे।।३५-४२।।

मुनय ऊचुः

इत्येवं कथितं सर्वमस्माभिर्वो यथागमम्।
एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिथीनां पराभवे॥४३॥
प्रणामं कुरु विप्रेन्द्रं गृहं प्रापय निश्चितम्।
संपूज्य ब्राह्मणं यत्नाद्गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम्॥४४॥

वनं गच्छ महाराज तपस्यां कुरु सत्वरम्। ब्रह्मशापैर्विनिर्मुक्तः पुनरेवाऽऽगमिष्यसि॥४५॥

मुनिगण कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार शास्त्रानुमोदित पापीगण का वृत्तान्त कहा। अतिथि को लौटाने का जो पाप होता है, वह भी पूर्वोक्त पाप के ही समान है। उन ब्राह्मण को आप भक्ति पूर्वक प्रणाम करके अपने गृह ले जायें। ब्राह्मण की यत्नतः पूजा करके शीघ्र वनगमन करें तथा वहां तप करें। इस प्रकार उन ब्राह्मण के आशीर्वाद से ब्रह्मशाप से मुक्त होकर पुनः अपने राज्य में वापस आ सकते हैं।।४३-४५।।

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे ययुस्तूर्णं स्वमन्दिरम्।
सुराश्चापि च राजानो बन्धुवर्गाश्च पार्वति॥४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा० कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

हे पार्वती! यह कहकर वे सभी मुनिगण शीघ्रता के साथ अपने-अपने आश्रम वापस चले गये। तदनन्तर देवता, अन्य राजा और बन्धु-बान्धव भी चले गये॥४६॥

॥द्विपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अतिथि का उपदेश

पार्वत्युवाच

गतेषु मुनिंसघेषु श्रुत्वा कर्मफलं नृणाम्। किं चकार नृपश्रेष्ठो ब्रह्मशापेन विह्वलः॥१॥
अतिथिर्ब्राह्मणो वाऽपि किं चकार तदा प्रभो। जगाम नृपगेहं वा न वा तद्वक्तुमर्हसि॥२॥

देवी पार्वती कहती हैं-जब मुनिगण वहां से स्वस्थान चले गये, तब ब्रह्मशाप से विह्वल उस श्रेष्ठ राजा ने क्या किया? हे प्रभो! उन अतिथि ब्राह्मण ने क्या किया? क्या वे राजा के गृह गये अथवा नहीं? कृपया कहिये॥१-२॥

महेश्वर उवाच

गतेषु मुनिसङ्घेषु चिन्ताग्रस्तो नराधिपः। प्रेरितश्च वसिष्ठेन धर्मिष्ठेन पुरोधसा॥३॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादयोर्ब्राह्मणस्य च।
त्यक्त्वा मन्युं द्विजश्रेष्ठो ददौ तस्मै शुभाषिषम्॥४॥
सस्मितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा त्यक्तमन्युं कृपामयम्।
उवाच नृपतिश्रेष्ठः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः॥५॥

महेश्वर कहते हैं-जब मुनिवृन्द वहां से चले गये, तब राजा चिन्ताग्रस्त हो गया। वह राजा धार्मिक पुरोहित वसिष्ठ देव द्वारा प्रेरित होकर उन ब्राह्मण के पैरों पर दण्डवत् भूमि पर गिर पड़ा। तब उन ब्राह्मणदेव ने भी क्रोध त्याग करके राजा को शुभाशीर्वाद प्रदान किया। राजा ने भी जब ब्राह्मण को

क्रोध त्याग करके कुछ प्रसन्न तथा मुस्कानयुक्त देखा, तब उसने हाथ जोड़ कर तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त स्थिति में उनसे पूछा।।३-५।।

राजोवाच

कुत्र वंशे भवाञ्जातः किं नाम भवतः प्रभो।
किं नाम वा पितुर्ब्रूहि क्व वासः कथमागतः॥६॥
विप्ररूपी स्वयं विष्णुर्गूढः कपटमानुषः। साक्षात्स मूर्तिमानग्निः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥७॥
को वा गुरुस्ते भगवन्निष्टदेवश्च भारते। तव वेषः कथमयं ज्ञानपूर्णस्य सांप्रतम्॥८॥

राजा कहता है—हे प्रभो! आपने किस वंश में जन्म लिया है? आपका तथा आपके पिता का नाम क्या है? आपका निवास कहां है, आप कहां से आ रहे हैं? कहीं आप स्वयं छद्म वेषधारी विष्णु तो नहीं हैं, जो ब्राह्मण रूप में यहां आये हैं? आप कहीं तेजःपुंज जाज्वल्यमान साक्षात् अग्नि तो नहीं हैं? हे देव! इस भारत में आपका गुरु तथा इष्टदेव कौन है? अथवा स्वयं पूर्णज्ञान ही आपके वेष में सम्प्रति यहां आये हैं?।।६-८।।

गृहाण राज्यं निखिलमैश्वर्यं कोशमेव च। स्वभृत्यं कुरु मे पुत्रं मां च दासीं स्त्रियं मुने॥९॥
सप्तसागरसंयुक्तां सप्तद्वीपां वसुंधराम्। [1]अष्टादशोपद्वीपाढ्यां सशैलवनशोभिताम्॥१०॥
मया भृत्येन शाधि त्वं राजेन्द्रो भव भारते। रत्नेन्द्रसारखचिते तिष्ठ सिंहासने वरे॥११॥

हे प्रभो! आप मेरा राज्य, कोश, समस्त ऐश्वर्य ग्रहण कर लीजिये। मैं पुत्र सहित आपका दास हूं। मेरी स्त्री आपकी दासी है। हे मुनिवर! सप्तसागरा, सप्तद्वीपा, अष्टादश उपद्वीपों से युक्त, वन-पर्वतादि से सम्पन्न धरती का शासन मुझ भृत्य द्वारा करिये। आप भारत में राजेन्द्र रूप से उत्तम रत्नों के सार से निर्मित इस परमोत्तम सिंहासन पर आसीन रहिये।।९-११।।

नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः। उवाच परमं तत्त्वमज्ञातं सर्वदुर्लभम्॥१२॥

राजा का यह विनय वाक्य सुन कर वे मुनिप्रवर हंस पड़े। तब उन्होंने सबके लिये दुर्लभ तथा सबके लिये अज्ञात तत्वज्ञान को कहा—।।१२।।

अतिथिरुवाच

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तत्पुत्रः कश्यपः स्वयम्।
कश्यपस्य सुताः सर्वे प्राप्ता देवत्समीप्सितम्॥१३॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमं तपः। दिव्यं वर्षसहस्रं च पुष्करे दुष्करं तपः॥१४॥
सिषेवे ब्राह्मणार्थं च देवदेवं हरिं परम्। नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम्॥१५॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः। पुरोधसं चकारेन्द्रो वाक्पतौ तं क्रुधा गते॥१६॥

---

१. क. नवद्वीपोपद्वीपां तां स०।

अतिथि ब्राह्मण कहते हैं—जगत्स्रष्टा ब्रह्मा के पुत्र मरीचि हैं। उनके पुत्र हैं कश्यप। इनके सभी पुत्रों ने देवत्व लाभ किया। उनमें से महाज्ञानी त्वष्टा ने १००० दैव वर्ष पर्यन्त पुष्कर तीर्थ में दुष्कर तप किया था। त्वष्टा ने ब्राह्मणों के हितार्थ परम तेजस्वी ब्राह्मण पुत्रलाभार्थ देवदेव परमेश्वर हरि की तपस्या किया तथा उनकी कृपा से इच्छित वरलाभ भी किया। त्वष्टा के पुत्र महातेजस्वी विश्वरूप थे। जब बृहस्पति ने क्रोधित होकर इन्द्र का पौरोहित्व त्याग दिया था, तब विश्वरूप इन्द्र के पुरोहित हो गये।।१३-१६।।

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम्।
चिच्छेद तं शुनासीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया॥१७॥
विश्वरूपस्य तनयो विरूपो मत्पिता नृप।
अहं च सुतपा नाम विरागी काश्यपो द्विजः॥१८॥
महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः। अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः॥१९॥
तच्चिन्तयामि पादाब्जं न मे वाञ्छाऽस्ति संपदि।
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यं राधिकापतेः॥२०॥
तेन दत्तं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलबिन्दुवत्॥२१॥

विश्वरूप जब अपने मातामह दैत्यों को घृताहुति दे रहे थे, तब माता के आदेश से इन्द्र ने ब्राह्मण विश्वरूप का शिर काट दिया था। हे राजन्! उन विश्वरूप के पुत्र ही मेरे पिता थे। मेरा नाम है सुतपा। मैं वैरागी तथा काश्यप गोत्र का ब्राह्मण हूं। महादेव ही मेरे विद्यादाता एवं मन्त्रदाता गुरु हैं। प्रकृति से परे सर्वात्मा श्रीकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं। मुझे किसी सम्पदा की कामना नहीं है। मैं सदा श्रीकृष्ण के चरणकमल का चिन्तन करता हूं। राधिकापति कृष्ण द्वारा प्रदत्त सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य मुक्ति दी जा रही थी, तथापि मैंने यह सब ग्रहण नहीं किया। मुझे तो सर्वशुभप्रद कृष्ण चरणचिन्तन के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिये। मैं ब्रह्मत्व तथा अमरत्व को जल के बुलबुले के समान नश्वर मानता हूं।।१७-२१।।

भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्रममेव तु नश्वरम्। इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप॥२२॥
न मन्ये जलरेखेति नृपत्वं केन गण्यते।
श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे ते मुनीनां गमनं नृप। लालसां विष्णुभक्तिं ते संप्रापयितुमागतः॥२३॥

हे राजन्! ये सभी मिथ्या, भ्रमपूर्ण, क्षणभंगुर, भक्तिगन्ध रहित हैं तथा भक्ति मार्ग के बाधक हैं। इन्द्रत्व, मनुत्व, सूर्यत्व तक जल में उंगली से खींची गई रेखा की ही तरह नश्वर पद हैं। तब राज्यत्व की क्या गणना? हे राजन्! मैं इस यज्ञ में मुनिगण का आगमन सुन कर तुमको विष्णुभक्ति प्रदान करने की लालसा से आया था।।२२-२३।।

केवलानुगृहीतस्त्वं नहि शप्तो मयाऽधुना। समुद्धृतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे॥२४॥

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात्॥२५॥
राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं सुताय च।
पुत्रे न्यस्त प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनं द्रुतम्॥२६॥

यह मैंने तुमको शाप नहीं दिया है। अपितु तुम्हारे प्रति अनुग्रह किया है। तुम घोरतम संसार-सागर में गिरे जा रहे थे। यह सब तुम्हारे उद्धारार्थ ही किया है। तीर्थ जलमय नहीं हैं। देवता भी प्रस्तर शिला किंवा मृण्मय (मिट्टी) के नहीं हैं, तथापि ये व्यक्ति को दीर्घकाल में पवित्र करते हैं, जबकि व्यक्ति कृष्णभक्त के दर्शन मात्र से पावन हो जाता है। हे राजा सुयज्ञ! तुम राज्यभार पुत्र को देकर गृहत्याग करो। हे राजन्! वत्स! अपनी पत्नी तथा राज्य पुत्र को सौंपो। तपार्थ शीघ्र वनगमन करो।।२४-२६।।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव भूमिप। श्रीकृष्णं भज राधेशं परमात्मानमीश्वरम्॥२७॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।
आविर्भूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृतेः परम्॥२८॥

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब कुछ मिथ्या है। हे राजन्! तुम परमात्मा ईश्वर राधापति श्रीकृष्ण का भजन करो। वे ध्यान से ही साध्य हैं। अन्यथा ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि प्रकट होने वाले तथा अन्तर्हित् हो जाने वाले (अर्थात् उत्पन्न होने वाले तथा अन्त में लय हो जाने वाले) हैं। कृष्ण प्राकृत जनों हेतु दुराराध्य एवं प्रकृति से परे हैं।।२७-२८।।

ब्रह्मा स्त्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः।
दिक्पालाश्च दिगीशाच्च भ्रमन्त्येवास्य मायया॥२९॥
यदाज्ञया वाति वायुः सूर्यो दिनपतिः सदा।
निशापतिः शशी शश्वत्सस्यसुस्निग्धताकरः॥३०॥
कालेन मृत्युः सर्वेषां सर्वविश्वेषु वै भवेत्।
काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः॥३१॥
भीतवद्विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः।
कालः संहरते काले काले सृजति पाति च॥३२॥

उनकी माया से ब्रह्मा स्त्रष्टा हैं। हरि पालनहार हैं। हर संहारक हैं। दिक्पाल एवं दिशाओं के स्वामी उनकी ही माया से चक्रमण करते रहते हैं। उनकी आज्ञा से वायु प्रवाहित है, उनकी आज्ञा से दिवाकर दिवा के स्वामी, चन्द्र रात्रिपति हैं। ये चन्द्र प्रभु की आज्ञा से फसल को स्निग्धता प्रदान करते हैं। काल आने पर सब मृत्युग्रस्त होते हैं। समग्र विश्व में काल आने पर ही सबका शरीरान्त होता है। कालानुरूप इन्द्र वर्षण करते हैं। कालानुरूप अग्नि दग्ध करते हैं। यमराज तक काल द्वारा भयभीत से

होकर प्रजासंयमन तथा विश्व शासन कार्य करते हैं। काल आने पर ही संहार होता है। काल आने पर ही सृष्टि तथा पालन कार्य होता है।।२९-३२।।

स्वदेशे वै समुद्रश्च स्वदेशे वै वसुंधरा। स्वदेशे पर्वताश्चैव स्वाः पातालाः स्वदेशतः॥३३॥

स्वर्लोकाः सप्त राजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुंधरा।
शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त चैव हि॥३४॥
ब्रह्माण्डमेभिर्लोकैश्च [1]डिम्बाकारं जलप्लुतम्।
सन्त्येव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥३५॥

स्वदेश में समुद्र हैं, स्वदेश में ही वसुन्धरा है, स्वदेश में पर्वत हैं, पाताल भी समस्त पातालादि लोक हैं। हे राजेन्द्र! सात स्वर्ग, सप्तद्वीपा, सपर्वता, ससागरा धरती, सप्त पाताल–इन सबसे युक्त त्रैलोक्य डिम्ब (अण्ड) के समान जल में रहता है। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, जहां उन-उन ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि देवता निवास करते हैं।।३३-३५।।

सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः।
आपातालाद्ब्रह्मलोकपर्यन्तं डिम्बरूपकम्॥३६॥
इदमेव तु विध्यण्डमुत्तमं कृत्रिमं नृप।
नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशालिनः॥३७॥
स्थितं यथा पद्मबीजं कर्णिकायां च पङ्कजे।
एवं सोऽपि शयानः स्याज्जलतल्पे सुविप्लुते॥३८॥
ध्यायत्येव महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम्।
कालभीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम्॥३९॥
महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्ति विस्तृते।
कूपेषु लोम्नां प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै॥४०॥

देवता, मनुष्य, नाग, गन्धर्व, राक्षसादि प्राणीगण इनमें रहते हैं। पाताल से लेकर ब्रह्मलोक तक व्याप्त एक-एक ब्रह्माण्ड डिम्बरूपी है। हे राजन्! इस अत्युत्तम ब्रह्माण्डों को कृत्रिम जानो। विष्णु जल में शयन करते हैं। वे ही क्षुद्र विराट् हैं। (महत् विराट् अलग हैं) इनके नाभिकमल पर कमल पुष्प की कर्णिका स्थित कमल बीज की तरह ब्रह्मा स्थित हैं। महान् जलशय्या पर शयनरत महायोगी विष्णु भी प्रकृति से ही उत्पन्न हैं। वे प्रकृति से परे स्थित प्रभु कृष्ण के ध्यान में सतत् तल्लीन रहते हैं। परमेश्वर भगवान् कृष्ण ही सबके स्वामी तथा सबकी आत्मा हैं। उनसे सभी ऐसे भयभीत रहते हैं, जैसे काल से प्राणीगण डरते रहते हैं। इन महाविष्णु के रोमकूप में ही सबका आधार है। इन विष्णु के प्रत्येक रोमकूप में एक-एक विश्व अवस्थित रहता है।।३६-४०।।

---

१. क. बिम्बा०।

महाविष्णोर्गात्रलोम्नां ब्रह्माण्डानां च भूमिप।
संख्यां कर्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य काकथा॥४१॥
महाविष्णुः प्राकृतिकः सोऽपि डिम्बोद्भवः सदा।
भवेत्कृष्णेच्छया डिम्बः प्रकृतेर्गर्भसंभवः॥४२॥

हे राजन्! इनके रोमकूपों में स्थित ब्रह्माण्ड संख्या तथा रोम की संख्या गणना स्वयं कृष्ण नहीं कर सकते। अन्य की क्या बिसात? ये महाविष्णु भी उसी प्राकृतिक (प्रकृतिजनित) डिम्ब से उत्पन्न होते हैं। जब कृष्ण की इच्छा होती है प्रकृति डिम्ब प्रसव करती है॥४१-४२॥

सर्वाधारो महाविष्णुः कालभीतः स शङ्कितः।
कालेशं ध्यायति स्वैरं कृष्णमात्मानमीश्वरम्॥४३॥
एवं च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
महान्विराट् क्षुद्रविराट् सर्वे प्राकृतिकाः सदा॥४४॥

परमाश्चर्य यह है कि ये महाविष्णु जो सर्वाधार हैं, ये भी काल से भयभीत रहा करते हैं। वे काल से शंकित रह कर काल के स्वामी स्वतन्त्र सर्वात्मा कृष्ण के ध्यान में तल्लीन रहा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक विश्व में एक-एक ब्रह्मा-विष्णु-शिव प्रभृति देवता, महाविराट् एवं क्षुद्रविराट् जो भी हैं, वे सभी प्रकृति से उत्पन्न होते हैं॥४३-४४॥

सा सर्वबीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी। काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायति स्म सा॥४५॥
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा। आविर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि॥४६॥

वे मूलप्रकृति ही ईश्वरी, सर्वबीजरूपा हैं। यह काल होने पर काल के अधीश्वर कृष्ण में लीन हो जाती हैं। नित्य कृष्ण का ध्यान करती रहती हैं। सभी लोग सृष्टि में काल से भयभीत रहते हैं। वे सभी प्रकृति से ही उत्पन्न हैं, अतः वे सभी प्राकृत हैं। ये सब कालानुसार परमात्मा से आविर्भूत होकर उनमें ही प्रविलीन हो जाते हैं॥४५-४६॥

इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम्। शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना०हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा० सुयज्ञं
प्रत्यतिथ्युपदेशोनाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

हे राजन्! मैंने यह गुरु शिव द्वारा उपदिष्ट महाज्ञान तुमसे कहा, जो अत्यन्त दुर्लभ है। अब क्या सुनने की इच्छा है?॥४७॥

॥त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण स्वरूप वर्णन प्रसंग में कालमान कथन, विप्रचरणामृत की प्रशंसा, तप द्वारा राजा सुयज्ञ द्वारा राधा-कृष्ण दर्शन लाभ होना

राजोवाच

कुत्राऽऽधारो महाविष्णोः सर्वाधारस्य तस्य च।
कालभीतस्य कतिचित्कालमायुर्मुनीश्वरः॥१॥
क्षुद्रस्य कतिचित्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा।
मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्याऽऽयुस्तथैव च॥२॥
अन्येषां वै जनानां च प्राकृतानां परं वयः। वेदोक्तं सुविचार्यं च वद वेदविदां वर॥३॥
विश्वानामूर्ध्वभागे च कः स्याद्वा लोक एव सः। कथयस्व महाभाग संदेहच्छेदनं कुरु॥४॥

राजा सुयज्ञ कहता है–हे मुनिप्रवर! जगदाधार महाविष्णु का आधार कौन है? काल से भयभीत उनका आयुकाल क्या है? क्षुद्रविराट्, विराट् विष्णु, ब्रह्मा, प्रकृति, मनु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य तथा अन्य प्राकृत लोगों का परमायुकाल वेदों में किस तरह से निर्दिष्ट है? हे वेदविद् श्रेष्ठ मुनिवर! सभी विश्वसंघ के ऊर्ध्व में कौन लोक है? है अथवा नहीं है? हे महाभाग! कृपया मेरा संदेहछेदन करिये॥१-४॥

मुनिरुवाच

गोलोको नृप विश्वानां विस्तृतश्च नभः समः।
तथा नित्यं डिम्बरूपः श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवः॥५॥

मुनि सुतपा कहते हैं–सर्व विश्वमण्डल के ऊर्ध्व में आकाश के समान विस्तृत गोलोकधाम जगत्कर्त्ता कृष्ण की इच्छा से आविर्भूत तथा डिम्ब (अण्ड) रूप से विद्यमान है॥५॥

जलेन परिपूर्णश्च कृष्णस्य मुखबिन्दुना।
सृष्ट्युन्मुखस्याऽऽदिसर्गे परिश्रान्तस्य खेलतः॥६॥
प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप।
तत्राऽऽधारो महाविष्णोर्विश्वाधारस्य विस्तृतः॥७॥
प्रकृतेगर्भसंभूतडिम्बोद्भूतस्य भूमिप। सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट्॥८॥
राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोडशांशः प्रकीर्तितः। दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुजः॥९॥

वनमालाधरः श्रीमान्शोभितः पीतवाससा।
ऊर्ध्वं नभसि तद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठ एव च॥१०॥

जब आदिसृष्टि काल में प्रभु सृष्टि हेतु उन्मुख थे, तब क्रीड़ा से श्रान्त प्रभु कृष्ण के मुखविन्दु से टपके जल से यह गोलोक परिपूर्ण है। हे नृप! यह गोलोक भी प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न अण्ड से निर्मित है। यह जगदाधार महाविष्णु का आधार है। हे राजन्! वे महाविराट् विस्तृत जलाशय में शयन करते हैं। ये जगन्नाथ राधानाथ के अंशरूप ही महाविराट् हैं। ये दूर्वादलवत् श्याम, मुस्कानयुक्त मुख वाले, चतुर्भुज, वनमालाधारी, श्रीमान्, अत्यन्त शोभित पीतवस्त्रधारी हैं। आकाश में ऊर्ध्व में विष्णु का धाम नित्य स्थायी वैकुण्ठ है।।६-१०।।

आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत्।
ईश्वरेच्छासमुद्भूतो निर्लक्ष्यश्च निराश्रयः॥११॥
आकाशवत्सुविस्तारो रत्नौघैश्च विनिर्मितः।
तत्र नारायणः श्रीमान्वनमाली चतुर्भुजः॥१२॥
लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गातुलसीपतिरीश्वरः। सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः॥१३॥

यह आत्मा तथा आकाशवत् नित्य विस्तृत चन्द्रबिम्बवत् है। यह धाम ईश्वरेच्छा से उद्भूत तथा निर्लक्ष्य (जिसे देखा न जा सके) तथा बिना किसी आश्रय के स्थित है। यह रत्नों से बना आकाश के समान अत्यन्त विस्तार वाला है। यहां नारायण, वनमाला धारी, चतुर्भुज, जो लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, तुलसी के ईश्वर हैं, सुनन्द, नन्द, कुमुद आदि पार्षदों से घिरे स्थित हैं।।११-१३।।

सर्वेशः सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः। श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्।
ऊर्ध्वं वैकुण्ठलोकाच्च पञ्चाशत्कोटियोजनात्॥१५॥
गोलोको वर्तुलाकारो वरिष्ठः सर्वलोकतः। अमूल्यरत्नखचितैर्मन्दिरैश्च विभूषितः॥१६॥

ये प्रभु ही समस्त सिद्धगण के अधीश्वर, सबके ईश्वर, भक्तों पर कृपा करने के लिये विग्रह धारण करते हैं। कृष्ण ने स्वयं को द्विधा विभक्त करके द्विभुज एवं चतुर्भुज रूप धारण किया। वे स्वयं द्विभुज रूप से गोलोकवासी तथा चतुर्भुज रूप से वैकुण्ठवासी हैं। गोलोक वर्तुलाकृति, सर्वश्रेष्ठ लोकरूपी, अमूल्य मणियों से जड़ित, असंख्य गृहों से युक्त है। यह गोलोक वैकुण्ठ से ५० करोड़ योजन ऊर्ध्व में है।।१४-१६।।

रत्नेन्द्रसारखचितैः स्तम्भसोपानचित्रितैः। मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कपाटैः कलशोज्ज्वलैः॥१७॥
नानाचित्रविचित्रैश्च शिबिरैश्च विराजितः।
कोटियोजनविस्तीर्णो दैर्घ्ये शतगुणस्तथा॥१८॥
विरजासरिदाकीर्णैः शतशृङ्गैः सुवेष्टितः। सरिदर्धप्रमाणेन दैर्घ्येण च ततेन च॥१९॥

शैलार्धपरिमाणेन युक्तो वृन्दावनेन च। तदर्धमानविलसद्रासमण्डलमण्डितः॥२०॥
सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोक एव च। यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिका सुमनोहरा॥२१॥

यहां रत्नों के साररूप अत्युत्तम रत्नों से जड़ित नाना स्तम्भ तथा सोपान हैं। उन पर विचित्र चित्रकारी भी की गई है। वहां मणिजटित कपाट, मणियों के दर्पण तथा उज्ज्वल कलश, नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से चित्रित शिविर भी हैं। यह एक करोड़ योजन चौड़ा तथा उससे सौ गुना लम्बाई वाला है। यह विरजा नदी तथा शतशृंग पर्वत से आवेष्ठित है। यह पर्वत विरजा नदी से लम्बाई-चौड़ाई में आधा है तथा अपने से आधा ऊंचे वृन्दावन से युक्त भी है। वृन्दावन से रासमण्डल आधे माप वाला है। इस रासमण्डल से युक्त यह गोलोक धाम नदी-पर्वत, वनों के मध्य में अत्यन्त शोभायमान है। प्रतीत होता है मानों कमल पुष्प के मध्य में कमल की मनोहर कर्णिका विराजमान है।।१७-२१।।

तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले। रासेश्वर्या राधिकया संयुक्तः संततं नृप॥२२॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुर्गोपालरूपधृत्। वह्निशुद्धांशुकाधानो रत्नभूषणभूषितः॥२३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजितः। रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण शोभितः॥२४॥
तथा स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः।
भूषिताभिश्च गोपीभिर्मालाचन्दनचर्चितः॥२५॥

यह रासमण्डल गोप-गोपीगण तथा गोपीश्वर प्रभु कृष्ण से शोभायमान है। हे राजन्! यहां रासेश्वरी राधा सदा कृष्ण से युक्त (साथ) रहती हैं। यहां श्रीकृष्ण द्विभुज, मुरलीधारी, शिशु, गोपालक का रूप धारण करके विराजमान रहते हैं। उनका परिधान अग्निशुद्ध वस्त्र का है। वे रत्नाभूषणों से भूषित हैं। उनके अंग चन्दनलेप से सिक्त हैं। उन्होंने रत्नमाला धारण किया है। वे रत्नछत्रयुक्त रत्नसिंहासन पर आसीन हैं। उनके प्रिय गोप बालक उनको श्वेत चामर झल रहे हैं। उत्तम वेश-भूषण वस्त्रधारिणी गोपीगण उनको माला तथा चन्दन से शोभित कर रही हैं।।२२-२५।।

सस्मितः सकटाक्षाभिः सुवेषाभिश्च वीक्षितः।
कथितो लोकविस्तारो यथाशक्ति यथागमम्॥२६॥

उस समय वे गोपीगण प्रभु को कटाक्षयुक्त दृष्टि से देखती तथा मुस्कराती रहती हैं। इस प्रकार मैंने गोलोक सम्बन्धित विस्तार यथाशक्ति शास्त्रानुरूप कह दिया।।२६।।

यथाश्रुतं शंभुवक्त्रात्कालमानं निशामय। पात्रं षट्पलसंभूतं गंभीरं चतुरङ्गुलम्॥२७॥
स्वर्णमाषकृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरङ्गुलैः। यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च॥२८॥
दण्डद्वयं मुहूर्तं च यामस्तस्य चतुष्टयम्। वासरश्चाष्टभिर्यामैः पक्षस्तैर्दशपञ्चभिः॥२९॥
मासो द्वाभ्यां च पक्षाभ्यां वर्षं द्वादशमासकैः। मासेन वै नराणां च पितॄणां तदहर्निशम्॥३०॥
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्तिता।
वत्सरेण नराणां च देवानां च दिवानिशम्॥३१॥

अयनं ह्युत्तरमहो रात्रिर्वै दक्षिणायनम्। युगकर्मानुरूपं च नरादीनां वयो नृप॥३२॥

अब काल का जो मान मैंने गुरु शंकर से श्रवण किया था, वह यथावत् कहता हूं। ६ पल स्वर्ण निर्मित एक पात्र बनाये जो ४ अंगुल गहरा हो। एक कील स्वर्ण का एक मासे का बनाये जो चार अंगुल का हो। इससे इस पात्र में छिद्र करके जल पर रखे। जितनी देर में वह पात्र इस छिद्र से आये जल से भरे, वह एक दण्ड काल होगा। दो दण्ड = १ मुहूर्त्त (घटी)। ४ घटी = १ याम (प्रहर)। ८ याम का एक दिन-रात होगा। १५ दिन का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, १२ मास का एक वर्ष होगा। मनुष्य का एक मास पितृगण का एक दिन-रात होगा। पितृगण का दिन कृष्णपक्ष का होगा। रात्रि शुक्लपक्ष की होगी। एक मनुष्य वर्ष देवगण का एक दिन-रात है। उत्तरायण उनका दिन है। दक्षिणायन उनकी रात्रि है। हे नृप! युग कर्म के अनुरूप मनुष्य आदि की आयु मानी गयी है।।२७-३२।।

प्रकृतेः प्राकृतानां च ब्रह्मादीनां निशामय। कृतं त्रेता द्वापरं च कालश्चेति चतुर्युगम्॥३३॥

दिव्यैर्द्वादशसाहस्त्रैः सावधानं निशामय।
चत्वारि त्रीणि च द्व्येकं सहस्त्राणि कृतादिकम्॥३४॥
तेषां च संध्यासंध्यांशौ द्वे सहस्त्रे प्रकीर्तिते।
त्रिचत्वारिंशकैर्लक्षैः सविंशतिसहस्त्रकैः॥३५॥

तदनन्तर प्रकृति तथा प्राकृत ब्रह्मादि की परमायु कहा जा रहा है। श्रवण करो। चार युग हैं कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। ये चारों मिल कर देववर्ष के अनुसार १२००० दिव्य वर्ष होते हैं। कृतयुग ४ हजार दिव्य वर्ष का, त्रेता ३ हजार दिव्य वर्ष का, द्वापर २ हजार दिव्य वर्ष का तथा कलि १ हजार दिव्य वर्ष का होता है (१ दिव्य वर्ष = ३६० मानुष वर्ष)। इस प्रकार इनके सन्ध्या तथा सन्ध्यांश भी २००० दिव्य वर्ष के होते हैं। सब मिला कर चारों युग = ४३२०००० मानुष वर्ष होते हैं।।३३-३५।।

चतुर्युगं परिमितं नरमानक्रमेण च। लक्षैश्च सप्तदशभिः साष्टविंशसहस्त्रकैः॥३६॥
कृतं युगं नृमानेन संख्याविद्भिः प्रकीर्तितम्॥३७॥

सहस्त्रैः षण्णवतिभिर्लक्षैर्द्वादशभिः सह। त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्तितम्॥३८॥

अष्टलक्षैः सह मितं चतुःषष्टिसहस्त्रकम्। परिमाणं द्वापरस्य संख्याविद्भिरितीरितम्॥३९॥

सद्वात्रिंशत्सहस्त्रैश्च चतुर्लक्षैश्च वत्सरैः। नृमानाद्वै कलियुगं विदुः कालविदो बुधाः॥४०॥

अब चारों युग को मनुष्य वर्ष के अनुसार अलग-अलग कहता हूं। सत्ययुग = सत्रह लाख अठाईस हजार मनुष्य वर्ष। त्रेता = बारह लाख छानबे हजार मनुष्य वर्ष, द्वापर = आठ लाख चौंसठ हजार मनुष्य वर्ष। कलिकाल = चार लाख बत्तीस हजार मनुष्य वर्ष। यह संज्ञावेत्ता तथा काल पण्डितों का मत है।।३६-४०।।

यथा सप्त च वारा वै तिथयः षोडश स्मृताः। दिवारात्र्यश्च पक्षौ द्वौ मासो वर्षं च निर्मितम्॥४१॥

यथा भ्रमति तच्चक्रमेवमेव चतुर्युगम्। यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च॥४२॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। एवं क्रमाद्भ्रमन्त्येव मनवश्च चतुर्दश॥४३॥
पञ्चविंशतिसाहस्रं षष्ट्यन्तशतपञ्चकम्। नरमानयुगं चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम्॥४४॥
आख्यानं च मनूनां च धर्मिष्ठानां नराधिप।
यच्छ्रुतं शिववक्त्रेण तत्त्वं मत्तो निशामय॥४५॥

इसी प्रकार सात वार, १६ तिथियां, दिवा-रात्रि, शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष से निर्मित मास एवं वत्सर सदा भ्रमण करते रहते हैं। इसी प्रकार चारों युग भी संचरण करते हैं। हे नृपप्रवर! जैसे सभी युगचक्र चलता है, उसी प्रकार मन्वन्तर चक्र भी घूर्णित रहता है। ७१ दिव्ययुग = १ मन्वन्तर। इसी तरह १४ मन्वन्तर चक्र घूमता है। मनुष्य मान से पचीस हजार पांच सौ साठ युग = १ मन्वन्तर। हे राजन्! अब तुम धार्मिक मनुष्यों का आख्यान सुनो, जो मैंने शिव से सुना था, उसे उसी प्रकार कहता हूं।॥४१-४५॥

आद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्रः शतरूपा पतिव्रता। धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभुः॥४६॥
स्वायंभुवः शंभुशिष्यो विष्णुव्रतपरायणः। जीवन्मुक्तो महाज्ञानी भवतः प्रपितामहः॥४७॥
राजसूयसहस्रं च चक्रे वै नर्मदातटे। त्रिलक्षमश्वमेधं च त्रिलक्षं नरमेधकम्॥४८॥
गोमेध च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम्।
ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः॥४९॥

आदि मनु ब्रह्मपुत्र तथा शतरूपा के पति, धार्मिकों में वरिष्ठ, गौरवयुक्त तथा मनुगण के प्रभु हैं। ये स्वायम्भुव मनु शंकर शिष्य तथा विष्णुव्रत परायण हैं। ये जीवन्मुक्त, महाज्ञानी तथा तुम्हारे प्रपितामह हैं। इन्होंने नर्मदा तट पर १००० राजसूय यज्ञ, तीन लाख अश्वमेध यज्ञ तथा तीन लाख नरमेध यज्ञ, ४ लाख गोमेध यज्ञ किया, जो महायज्ञ नियमानुसार सम्पन्न किया। ये नित्य तीन करोड़ ब्राह्मणगण को नित्य भोजन कराते थे।॥४६-४९॥

पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैघृतसंस्कृतैः। चर्व्यैश्चोष्यैर्लेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः॥५०॥
[1]अमूल्यरत्नलक्षं च दशकोटिसुवर्णकम्। स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम्॥५१॥
वह्निशुद्धानि वस्त्राणि मणीन्द्राणां च लक्षकम्।
भूमिं च सर्वसस्याढ्यां गजेन्द्राणां च लक्षकम्॥५२॥
त्रिलक्षमश्वरत्नं च शातकुम्भविभूषितम्। सहस्त्ररथरत्नं च शिबिकालक्षमेव च॥५३॥
त्रिकोटिस्वर्णपात्रं च सान्नं सजलमीप्सितम्।
त्रिकोटिस्वर्णभूषाश्च कर्पूरादिसुवासितम्॥५४॥
ताम्बूलं सुविचित्रं च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम्। रत्नेन्द्रखचितैर्मञ्चै रचितैर्विश्वकर्मणा॥५५॥

१. क. ०त्नपात्रं च।

वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रै राजितं माल्यजालकैः।
नित्यं ददौ ब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्यै शिवाज्ञया॥५६॥

घृत से सुन्दर रूप से पक्व संस्कृत मांस (गोमांस पांच लाख गौ का मूल में अंकित है। इस पाठ पर संदेह है। विद्वान् लोग विचार करके व्यवस्था दें) तथा चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय आदि सुमिष्ट भोजन द्वारा ब्राह्मण सम्यक्तः सन्तुष्ट एवं तृप्त हो गये। महादेव के आदेश से विष्णु के सन्तोषार्थ प्रतिदिन अमूल्य लाखों रत्न, १० कोटि स्वर्ण, स्वर्णशृंग मढ़ी एक लाख गौ, अग्निशुद्ध वस्त्र, उत्तम मणि, सभी फसलों वाली भूमि, एक लाख उत्तम हाथी, स्वर्ण से बने तीन लाख अश्व, उत्तम रथ, सहस्र लक्ष पालकी, कर्पूरादि से सुवासित जलभरे तीन लाख कोटि स्वर्णपात्र, अन्न भरे तीन लाख कोटि स्वर्णपात्र, विश्वकर्मा निर्मित महामूल्य मणि से वर्ण स्वर्णपात्र भरे ताम्बूल, अग्निशुद्ध वस्त्र, मुक्तामाला नित्य ब्राह्मणों को दिया गया। यह कार्य नित्य विष्णु को प्रसन्न करने के उद्देश्य से शिवाज्ञा से किया गया!।।५०-५६।।

संप्राप्य शङ्कराज्ज्ञानं कृष्णमन्त्रं सुदुर्लभम्।
संप्राप्य कृष्णदास्यं च गोलोकं वै जगाम सः॥५७॥
दृष्ट्वा मुक्तं स्वपुत्रं च प्रहृष्टोऽभूत्प्रजापतिः।
तुष्टाव शङ्करं तुष्टः ससृजेऽन्यं मनुं विधिः॥५८॥

शंकर से ज्ञान तथा दुर्लभ कृष्णमन्त्र प्राप्त करके वह राजा मनु कृष्ण के दास होकर गोलोक चले गये। तब प्रजापति ब्रह्मा ने अपने पुत्र मनु को मुक्त होते देख अत्यन्त हर्षित होकर शंकर की स्तुति करके अन्य मनु का सृजन किया।।५७-५८।।

यतः स्वयंभुपुत्रोऽयमतः स्वायंभुवो मनुः। स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितीयो वह्निनन्दनः॥५९॥
राजा वदान्यो धर्मिष्ठः स्वायंभुवसमो महान्।
प्रियव्रतसुतावन्यौ द्वौ मनू धर्मिणां वरौ॥६०॥
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौ तापसोत्तमौ।
तौ च शङ्करशिष्यौ च कृष्णभक्तिपरायणौ॥६१॥

ये प्रथम स्वयंभू (ब्रह्मा) के पुत्र थे, तभी इनका नाम स्वायम्भुव मनु पड़ा था। द्वितीय थे अग्निनन्दन स्वारोचिष मनु। ये महादानी, धार्मिक राजा तथा स्वायम्भुव मनु के समान महान् थे। धार्मिक प्रवर प्रियव्रत के दोनों पुत्र दो मनु हो गये। ये वैष्णव महातपस्वी तृतीय एवं चतुर्थ मनु थे। ये भी शंकर के शिष्य तथा कृष्णभक्ति परायण थे।।५९-६१।।

धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः। षष्ठश्च चाक्षुषो ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायणः॥६२॥
श्राद्धदेवः सूर्यसुतो वैष्णवः सप्तमो मनुः। सावर्णिः सूर्यतनयो वैष्णवो मनुरष्टमः॥६३॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः। दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः॥६४॥

ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः। धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवव्रततत्परः॥६५॥
ज्ञानी च रुद्रसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः। धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवं त्रयोदशः॥६६॥

धार्मिक प्रवर रैवत **पंचम** मनु थे। **षष्ठ** मनु थे चाक्षुष जो विष्णुभक्ति परायण थे। सूर्यपुत्र वैष्णव श्राद्धदेव **सप्तम** मनु हुए। सावर्णि सूर्यपुत्र थे। ये वैष्णव श्रेष्ठ **अष्टम** मनु कहलाये। **नवम** मनु थे विष्णुव्रत परायण दक्ष सावर्णि। **दसवें** मनु थे ब्रह्मज्ञान विशारद ब्रह्मसावर्णि। धर्मसावर्णि **ग्यारहवें** मनु कहे गये हैं। ये धार्मिक श्रेष्ठ वैष्णवव्रत तत्पर थे। रुद्रसावर्णि ज्ञानी थे, ये **बारहवें** मनु हैं। **तेरहवें** मनु हैं देवसावर्णि।।६२-६६।।

चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च। यावदायुर्मनूनां स्यादिन्द्राणां तावदेव हि॥६७॥

चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
तावती ब्रह्मणो रात्रिः सा च ब्राह्मी निशा नृप॥६८॥

चौदहवें मनु हैं महाज्ञानी चन्द्रसावर्णि। मनुगण की आयु तथा इन्द्रगण की आयु समान कही गयी है। जब १४ इन्द्रों का जीवन समाप्त हो जाता है, वह ब्रह्मा का दिवा काल है। इसी प्रकार १४ इन्द्रों की समाप्ति हो जाने पर वह काल ब्रह्मा की रात्रि कहा गया है। (इस प्रकार ब्रह्मा का एक अहोरात्र २८ इन्द्रों की आयु के बराबर है)।।६७-६८।।

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्तिता। ब्रह्मणो वासरं राजन्क्षुद्रकल्पः प्रकीर्तितः॥६९॥

सप्तकल्पे चिरञ्जीवी मार्कण्डेयो महातपाः।
ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका दग्धाश्च तत्र वै॥७०॥

उत्थितेनैव सहसा सङ्कर्षणमुखाग्निना। चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम्॥७१॥

हे राजन्! वेदों में इसे (ब्रह्मा की रात्रि को) कालरात्रि कहते हैं। ब्रह्मा के एक दिन को क्षुद्र कल्प कहा गया है। महात्मा महातपा मार्कण्डेय को ७ कल्प की आयु मिली है। जब संकर्षण देव हठात् उठते हैं, तब उनकी मुखाग्नि से ब्रह्मलोक के नीचे स्थित समस्त लोक दग्ध हो जाते हैं। यह निश्चित है।।६९-७१।।

ब्रह्मरात्रिव्यतीते तु पुनश्च ससृजे विधिः। तस्यां ब्रह्मनिशायां च क्षुद्रः प्रलय उच्यते॥७२॥
देवाश्च मनवश्चैव[1] तत्र दग्धा नरादयः। एवं त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च॥७३॥
वर्ष द्वादशमासैश्च ब्रह्मसंबन्धि चैव हि। एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप॥७४॥

दैनंदिनस्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्तितः॥७५॥

ब्रह्मरात्रि व्यतीत हो जाने पर विधाता पुनः सृष्टि करते हैं। ब्रह्मरात्रि को क्षुद्र-प्रलय कहते हैं। उस क्षुद्र-प्रलय में देवता, मनु तथा मनुष्य दग्ध हो जाते हैं। ऐसे तीस दिन-रात का ब्रह्मा का एक मास

---

१. क. मुनयश्चै०।

होता है। ऐसे १२ मास का उनका एक वर्ष कहा गया है। हे राजन्! ब्रह्मा का ऐसा १५ वर्ष गत हो जाने पर जो प्रलय होता है, उसे वेद में दैनन्दिन प्रलय कहा गया है।।७२-७५।।

मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः।
तत्र सर्वे प्रणष्टाः स्युश्चन्द्रार्कादिदिगीश्वराः।।७६।।

आदित्या वसवो रुद्रा मनवो मानवादयः। ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः।।७७।।
मार्कण्डेयो लोमशश्च पेचकश्चिरजीविनः। इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्च कच्छपः।।७८।।

नाडीजङ्घो बकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्र वै।
ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा।।७९।।

प्राचीन वेदज्ञगण के मत से यही है। इस रात्रि को ही मोहरात्रि कहा गया है। तदनन्तर चन्द्र-सूर्य-दिक्पाल-आदित्य-वसु-रुद्र-मुनिगण-मानव-ऋषि-मनु-गन्धर्व-राक्षस-मार्कण्डेय-लोमशादि दीर्घजीवी मुनिगण, इन्द्रद्युम्न राजा, पेचक, अकुपार, कच्छप, नाड़ीजंघ तथा महादीर्घजीवी बक (बगुला) तक नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मलोक के नीचे वाले सभी लोक, नागलोक (पाताल तक) दग्धीभूत हो जाते हैं।।७६-७९।।

ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा। गते दैनंदिने ब्रह्मा लोकांश्च ससृजे पुनः।।८०।।
एवं शताब्दपर्यन्तं परमायुः प्रजापतेः। ब्रह्मणश्च निपाते च महाकल्पो भवेन्नृप।।८१।।
प्रकीर्तिता महारात्रिः सैव चेह पुरातनैः। ब्रह्मणश्च निपाते च ब्रह्माण्डौघो जलप्लुतः।।८२।।
वेदमाता च सावित्री वेदा धर्मादयस्तथा। सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्च प्रकृतिं च शिवं विना।।८३।।

उस समय सभी ब्रह्मपुत्र ब्रह्मलोक गमन करते हैं। यह दैनन्दिन प्रलय बीतने पर ब्रह्मा उन लोकों का पुनः सृजन कर देते हैं। इसी मान से (कालमान से) ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु कही जाती है। ब्रह्मा की आयु की समाप्ति होते ही महाप्रलय होता है। यही है महारात्रि, जिसे प्राचीन विद्वानों ने कहा है। ब्रह्मा का जैसे ही अन्त होता है, ब्रह्माण्ड समूह जलमग्न हो जाते हैं। ऐसे समय वेदमाता सावित्री, वेद, धर्मादि तथा मृत्यु भी उस प्रलय में नष्ट हो जाते हैं, तथापि मूल प्रकृति एवं शिव का नाश नहीं होता!।।८०-८३।।

नारायणे प्रलीनाश्च विश्वस्था वैष्णवास्तथा। कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वरुद्रगणैः सह।।८४।।
मृत्युञ्जये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः। ब्रह्मणश्च निपातेन निमेषः प्रकृतेर्भवेत्।।८५।।

नारायणस्य शंभोश्च महाविष्णोश्च निश्चितम्।
निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्भवेत्कृष्णेच्छया नृप।।८६।।

विश्व में स्थित समस्त वैष्णवगण नारायण में लीन हो जाते हैं। उस समय समस्त रुद्रगण तथा संहारक रूप कालाग्निरुद्र भी मृत्युंजय महादेव में लीन हो जाते हैं, क्योंकि वे तमोगुण हैं। इस प्रकार ब्रह्मा की पूर्ण आयुकाल प्रकृति का मात्र एक निमेष है (जितने में पलक झपके मात्र उतना समय है)।

इस प्रकार प्रकृति का निमेष समाप्त होते ही प्रभु कृष्ण की इच्छामात्र से पुनः विष्णु, शिव, महाविष्णु प्रभृति की सृष्टि प्रारम्भ होती है।।८४-८६।।

कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृते परः। सगुणानां निमेषश्च कालसंख्यावयोमितः।।८७।।

निर्गुणस्य च नित्यस्य चाऽऽद्यन्तरहितस्य च।
निमेषाणां सहस्रेण प्रकृतेर्दण्ड उच्यते।।८८।।

षष्टिदण्डात्मकस्तस्य वासरश्च प्रकीर्तितः। त्रिंशद्रात्रिदनैर्मासो वर्षं द्वादशमासकैः।।८९।।

एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः।
प्रकृत्यां च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतो लयः।।९०।।

प्रभु श्रीकृष्ण निमेष रहित, निर्गुण, प्रकृति से परे हैं, तथापि इनके सगुण रूप में निमेष, कालसंख्या एवं आयु अपरिमित न होकर परिमित ही होती है। निर्गुण, नित्य, आदि-अन्त रहित श्रीकृष्ण में ये सब लक्षण नहीं होते। वे इन धर्मों से युक्त नहीं हैं। ऐसे जब प्रकृति का १००० निमेष होता है, वह प्रकृति का एक दण्ड काल ही है। ऐसे ६० दण्ड का प्रकृति का १ दिन है। ऐसे ३० दिवा-रात्र का उसका एक मास तथा ऐसे परिमाण वाले १२ मास का एक वर्ष होता है। ऐसे परिमाण वाले १०० वर्ष के उपरान्त प्रकृति कृष्ण में लीन हो जाती है। प्रकृति का यह लीन होना ही प्राकृत प्रलय कहा जाता है।।८७-९०।।

सर्वान्संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या।
कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी।।९१।।
सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम्।
सर्वशक्तिस्वरूपां च परां नारायणीं सतीम्।।९२।।

ये महाविष्णु की जननी प्रकृति ही ईश्वरी तथा मूल प्रकृति है। सबका संहार करके कृष्ण के वक्षःस्थल में ये मूलप्रकृति ईश्वरी लीन हो जाती हैं। इन भगवती को महात्मा तथा सन्तगण दुर्गा, विष्णुमाया, सनातनी, सर्वशक्तिरूपा तथा सर्वश्रेष्ठ सती नारायणी कहते हैं।।९१-९२।।

बुद्ध्यधिष्ठातृदेवीं च[१] कृष्णस्य त्रिगुणात्मिकाम्।
यन्मायामोहिताश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः।।९३।।
वैष्णवास्तां महालक्ष्मीं परां राधां वदन्ति ते।
यदर्धाङ्गा महालक्ष्मीः प्रिया नारायणस्य च।।९४।।
प्राणाधिष्ठातृदेवीं च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम्।
स्थिरप्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च।।९५।।

१. क. च श्रीकृष्णस्यैव निर्गुणम्।

इनको कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठातृ देवी, निर्गुणात्मिका दुर्गा कहते हैं। इनकी माया से ब्रह्मा-विष्णु-शिव तक मोहित हो जाते हैं। जो विष्णुमन्त्र के उपासक हैं। वे इनको परमा महालक्ष्मी स्वरूपा तथा राधा कहते हैं। निर्गुणात्मक कृष्ण देव की प्राणाधिका प्रियतमा, प्रिया, प्राणाधिष्ठातृ देवी प्रेममयी शक्ति स्वरूपा राधा तो कृष्ण के अर्द्धांग से ही उत्पन्न कही गयी हैं। महालक्ष्मी नारायण की पत्नी हैं।।९३-९५।।

नारायणश्च शंभुश्च संहृत्य स्वगणान्बहून्।
शुद्धसत्त्वस्वरूपी श्रीकृष्णे लीनश्च निर्गुणे।।९६।।

गोपा गोप्यश्च गावश्च सवत्साश्च नराधिप। सर्वे लीनाः प्रकृत्यां च प्रकृतिः परमेश्वरे।।९७।।

महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः।
महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि।।९८।।

इस प्राकृत प्रलय में नारायण तथा शम्भु अपने-अपने गणों का संहार करके शुद्धसत्त्वरूप धारण करके निर्गुण श्रीकृष्ण में लीन होते हैं। हे राजन्! तब गोप, गोपी, वत्स, गौयें भी प्रकृति में लीन हो जाती हैं। तब प्रकृति परमेश्वर में लीन हो जाती है। सभी छुद्र विष्णु महाविष्णु में लीन हो जाते हैं। महाविष्णु प्रकृति में लीन हो जाते हैं, तब प्रकृति भी परमात्मा में लीन हो जाती हैं।।९६-९८।।

प्रकृतिर्योगनिद्रा च श्रीकृष्णनयनद्वये। अधिष्ठानं चकारैवं मायया: चेश्वरेच्छया।।९९।।

प्रकृतेर्वासरो यावन्मितः कालः प्रकीर्तितः।
तावद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः।।१००।।

अमूल्यरत्नतल्पे च वह्निशुद्धांशुकार्चिते। गन्धचन्दनमाल्यौघवाय्वादिसुरभीकृते।।१०१।।

पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत्पुनः। एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना।।१०२।।

तद्वन्दनं तत्स्मरणं तस्य ध्यानं तदर्चनम्। कीर्तनं तद्गुणानां च महापातकनाशनम्।।१०३।।

एतत्ते कथितं सर्वं यद्यन्मृत्युञ्जयाच्छुतम्।
यथागमं महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।१०४।।

प्रकृति तथा देवी योगनिद्रा कृष्ण के नेत्रद्वय में ईश्वर की इच्छा तथा उनकी माया से अधिष्ठित हो गईं। इस प्रकार से जब तक प्रकृति का दिवाकाल (दिन) रहता है, तब तक परमात्मा वृन्दावन में निद्रित रहते हैं। कृष्ण की शय्या नाना बहुमूल्य रत्न तथा अग्निशुद्ध वस्त्र से आवृत रहती है। वह गन्ध, चन्दन तथा माला की सुगन्धित वायु से सुवासित रहती है। श्रीकृष्ण के जागरित होने पर पुनः सृष्टि होती है। यह सब प्रकृति द्वारा उत्पन्न होते हैं। मात्र कृष्ण प्रकृति से उत्पन्न नहीं होते। वे निर्गुण जो हैं। उन प्रभु की वन्दना, ध्यान, अर्चना, उनके गुणों का कीर्त्तन महापातक नाशक है। मैंने जो कुछ मृत्युंजय से तथा आगम से सुना था, वह सब कहा। हे महाराज! अब क्या सुनने की इच्छा है?।।९९-१०४।।

सुयज्ञ उवाच

कालाग्निरुद्रो विश्वानां संहर्ता च तमोगुणः।
ब्रह्मणोऽन्ते विलीनश्च सत्त्वं मृत्युञ्जये शिवे॥१०५॥
शिवो लीनो निर्गुणे च श्रीकृष्णे प्राकृते लये।
कथं तव गुरोर्नाम मृत्युञ्जय इति श्रुतम्॥१०६॥
कथं प्रसूर्महाविष्णोर्मूलप्रकृतिरीश्वरी।
असंख्यानि च विश्वानि सन्ति वै यस्य लोमसु॥१०७॥

राजा सुयज्ञ कहते हैं—हे मुनिवर! विश्वसंहर्त्ता तमोगुणात्मक कालाग्निरुद्र ब्रह्मा का नाश हो जाने पर सत्वरूप मृत्युंजय शिव आपके गुरु देवाधिदेव महादेव भी प्राकृतलय होने पर यद्यपि श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं, तब उनको इहलोक में मृत्युंजय क्यों कहते हैं? जब विष्णु के रोमकूप में असंख्य ब्रह्माण्डमण्डल अवस्थान करते हैं, तब मूलप्रकृति कैसे महाविष्णु की माता हो गईं?॥१०५-१०७॥

सुतपा उवाच

ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रणष्टा जलबिन्दुवत्।
संहर्त्री सर्वलोकानां ब्रह्मादीनां नराधिप॥१०८॥
कतिधा मृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये।
कालेन लीनः शंभुश्च सत्त्वरूपे च निर्गुणे॥१०९॥
मृत्युकन्या जिता शश्वच्छिवेन गुरुणा मम।
न मृत्युना जितः शंभुः कल्पे कल्पे श्रुतौ श्रुतम्॥११०॥

सुतपा ब्राह्मण कहते हैं—हे राजन्! ब्रह्मा आदि सर्व लोक संहारिणी मृत्युकन्या ब्रह्मा का अन्त होते ही जल के बुलबुले की तरह स्वतः नष्ट हो जाती हैं। करोड़ों ब्रह्मा का लय होने पर तथा मृत्युकन्याओं का लय होते ही शिव भी सत्वमय निर्गुण कृष्ण में लीन हो जाते हैं। यह कल्प तथा वेद में सुना गया है कि मृत्यु ने शंकर को कदापि नहीं जीता, अपितु मेरे गुरु शिव ने मृत्युकन्या को जीत लिया है॥१०८-११०॥

शंभुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप।
नित्यानां लीनता नित्ये तन्माया न तु वास्तवी॥१११॥
स्वयं पुमान्निर्गुणश्च कालेन सगुणः स्वयम्।
स्वयं नारायणः शंभुर्मायया प्रकृतिः स्वयम्॥११२॥

हे राजन्! शिव-नारायण तथा प्रकृति नित्यरूप हैं। शिव प्रकृति नारायण भी नित्य होकर भी नित्य में ही (कृष्ण में) लीन होते हैं। यह सब उनकी माया है। यह वास्तविकता नहीं है। जो निर्गुण

परमपुरुष हैं, वे ही समय होने पर सगुण हो जाते हैं। नारायण ही शंभु हैं। यह माया स्वयं प्रकृति है।।१११-११२।।

तदंशस्तत्समः शश्वद्यथा वह्नेः स्फुलिङ्गवत्।
ये ये च ब्रह्मणा सृष्टा रुद्रादित्यादयस्तथा॥११३॥
कल्पे कल्पे जितास्ते ते नश्वरा मृत्युकन्यया।
न शिवो ब्रह्मणा सृष्टः सत्यो नित्यः सनातनः॥११४॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि की स्फुलिंग (चिनगारी) तो अग्नि ही है, उससे पृथक् नहीं है। यहां भी ऐसा ही समझे। कल्प-कल्प में जिन ब्रह्मा-रुद्र-आदित्य आदि की सृष्टि होती है, वे सभी मृत्युकन्या द्वारा जीत लिये जाते हैं। अतएव वे सभी नश्वर हैं। परन्तु शिव की सृष्टि ब्रह्मा ने नहीं किया है, वे तो सत्य-नित्य-सनातन जो हैं!।।११३-११४।।

कतिधा ब्रह्मणां पातो यन्निमेषेण भूमिप।
अथाऽऽदिसर्गे श्रीकृष्णः प्रकृत्यां च जगद्गुरुः॥११५॥
चकार वीर्याधानं च पुण्ये वृन्दावने वने। तद्वामांशसमुद्भूता रासे रासेश्वरी परा॥११६॥
गर्भं दधार सा राधा यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
ततः सुषाव सा डिम्भं गोलोके रासमण्डले॥११७॥

हे भूमिपति! जिनके निमेष मात्र में अनगिनत ब्रह्मा की समाप्ति हो जाती है (उनकी आयु समाप्त हो जाती है), ऐसे जगद्गुरु कृष्ण सृष्टि के आदिकाल में प्रकृति में वीर्य स्थापित करते हैं। वे यह कार्य पुण्यस्थल वृन्दावन में करते हैं। उन कृष्ण के वामांश से रासेश्वरी परा राधा का आविर्भाव होता है। वे कृष्ण द्वारा वीर्य स्थापित किये जाने पर ब्रह्मा की आयु पर्यन्त उस वीर्य को गर्भ में धारण करती हैं। तदनन्तर गोलोकस्थ रासमण्डल में वे डिम्ब (अंड) उत्पन्न करती हैं।।११५-११७।।

चुकोप डिम्भं सा दृष्ट्वा हृदयेन विदूयता। तड्डिम्भं प्रेरयामास तदधो विश्वगोलके॥११८॥

तथापि राधा ने जब यह अण्ड देखा तो उनका हृदय अत्यन्त दुःखी हो गया। उन्होंने उस अण्ड को नीचे विश्वगोलक में फेंक दिया।।११८।।

त्यक्त्वाऽपत्यं महादेवी रुरोद च मुहुर्मुहुः।
कृष्णस्तां बोधयामास महायोगेन योगवित्॥११९॥
बभूव तस्माड्डिम्भाच्च सर्वाधारो महाविराट्॥१२०॥

अपने उस सन्तान को त्याग कर वे महादेवी बारम्बार रुदन करने लगीं। तब योगज्ञ भगवान् कृष्ण ने महायोग द्वारा उनको प्रबोधित किया। इसी डिम्ब (अंड से) से सर्वाधार महाविराट् का जन्म हुआ।।११९-१२०।।

सुयज्ञ उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम। शापो मे वररूपश्चाप्यभवद्भक्तिकारणम्॥१२१॥
सुदुर्लभा हरेर्भक्तिः सर्वमङ्गलमङ्गला। न तस्याश्च समं विप्र वेदोक्तं भक्तिपञ्चकम्॥१२२॥
यथा भक्तिर्मम भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि। सुदुर्लभा च सर्वेषां तत्कुरुष्व महामुने॥१२३॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात्॥१२४॥

राजा सुयज्ञ कहता है—आज मेरा जीवन तथा मनुष्य जन्म सफल हो गया। यह ब्रह्मशाप भी मेरे लिये वरप्रद हो गया है। सर्व मंगल के भी मंगलस्वरूप श्रीहरि की भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। वेद में जिन ५ प्रकार की भक्ति का नाम कहा गया है, वे भी भगवान् की इस भक्ति के तुल्य नहीं हैं। हे महामुनि! जिस उपाय से परमात्मा कृष्ण की भक्ति मुझमें उत्पन्न हो, जो सर्वातिदुर्लभ है, वह कहिये। जलपूर्ण तीर्थ, मृत्तिका तथा शिला से बने देवता दीर्घकाल उपासना से व्यक्ति को पावन करते हैं, परन्तु कृष्णभक्त का तो दर्शन ही मनुष्य को पवित्र कर देता है।।१२१-१२४।।

सर्वेषामाश्रमाणां च द्विजातेर्जातिरुत्तमा। स्वधर्मनिरतश्चैव तेषु श्रेष्ठश्च भारते॥१२५॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्च कृष्णभक्तिपरायणः।
नित्यं नैवेद्यभोजी च ततः श्रेष्ठो महाञ्छुचिः॥१२६॥

समस्त आश्रमों (जातियों) में द्विजाति ही उत्तमा है। उसमें भी भारत में जो मनुष्य स्वधर्म पालनरत रहता है, वह श्रेष्ठ है, जो कृष्णमन्त्र का उपासक तथा कृष्णभक्ति तत्पर है, नित्य श्रीकृष्ण के नैवेद्य का भक्षण करता है, वही श्रेष्ठ तथा परम पवित्र है।।१२५-१२६।।

त्वां वैष्णवं द्विजश्रेष्ठं महाज्ञानार्णवं परम्।
संप्राप्य शिवशिष्यं च कं यामि शरणं मुने॥१२७॥
अधुनाऽहं गलत्कुण्ठी तव शापान्महामुने।
कथं तपस्यामशुचिर्नाधिकारी करोमि च॥१२८॥

हे प्रभो! द्विजप्रवर! आप तो महाज्ञान के सागर हैं। हे मुनिवर! साक्षात् शिव के शिष्य को पाकर मैं अब किसकी शरण ग्रहण करूं? हे महामुनि! मुझे आपके शाप से गलित कुष्ठ हो गया है। अब मैं अपवित्र हूं तथा तपस्या का अधिकारी नहीं रह गया। मैं तप नहीं कर सकता।।१२७-१२८।।

सुतपा उवाच

हरिभक्तिप्रदात्री सा विष्णुमाया सनातनी।
सा च याननुगृह्णाति तेभ्यो भक्तिं ददाति च॥१२९॥
यांश्च माया मोहयति तेभ्यस्तां न ददाति च। करोति वञ्चनां तेषां नश्वरेण धनेन च॥१३०॥

सुतपा ब्राह्मण कहते हैं—सनातनी विष्णुमाया ही हरिभक्तिप्रदा है। उन विष्णुमाया का अनुग्रह जिसके प्रति हो जाता है, उसे ही विष्णुभक्ति प्राप्त होती है। जो कोई विष्णुमाया से मुग्ध हो जाता है, वह भक्तिलाभ नहीं कर पाता। उसे नश्वर धनादि देकर विष्णुमाया ठग लेती है।।१२९-१३०।।

कृष्णप्रेममयीं शक्तिं प्राणाधिष्ठातृदेवताम्।
भज राधां निर्गुणां तां प्रदात्रीं सर्वसंपदाम्।।१३१।।
शीघ्रं यास्यसि गोलोकं तदनुग्रहसेवया।
या सेविता श्रीकृष्णेन सर्वाराध्येन पूजिता।।१३२।।
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं भक्ताः संसेव्य निर्गुणम्।
सुचिरेण च गोलोकं प्रयान्ति बहुजन्मतः।।१३३।।

श्रीकृष्ण की प्रेममयी प्राणाधिका तथा उनके प्राणों की अधिष्ठातृ देवता निर्गुणा राधा सर्वसम्पत्प्रदा हैं। उनका भजन करो। उनकी कृपा प्राप्त होने पर गोलोकधाम गमन कर सकोगे। किम्बहुना जगत्पूज्य कृष्ण ने भी राधा की पूजा किया था। भक्तगण ध्यानसाध्य, दुराराध्य, निर्गुण कृष्ण की सेवा करके दीर्घकाल में अनेक जन्मों में गोलोक गमन कर पाते हैं।।१३१-१३३।।

कृपामयीं च संसेव्य भक्ता यान्त्यचिरेण वै।
सा प्रसूश्च महाविष्णोः [१]सर्वसंपत्स्वरूपिणी।।१३४।।
विप्रपादोदकं भुङ्क्ष्व वर्षं च संयतः शुचिः।
कामदेवस्वरूपश्च रोगहीनो भविष्यसि।।१३५।।

तथापि कृपामयी राधा की सेवा करने वाले भक्तगण उन सर्वसम्पत्स्वरूपा कृपामयी की भक्ति द्वारा शीघ्र गोलोक चले जाते हैं। जो एक वर्ष पर्यन्त संयत एवं पवित्र होकर नित्य विप्र चरणोदक पान करता है, वह कामदेव जैसा रूपवान् तथा रोग रहित हो जाता है।।१३४-१३५।।

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम्।।१३६।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
सागरे यानि तीर्थानि विप्रप्रादेषु तानि च।।१३७।।

विप्रपादोदकं चैव पापव्याधिविनाशनम्। सर्वतीर्थोदकसमं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्।।१३८।।

जब तक विप्र के चरणामृत से पृथिवी आर्द्र बनी रहती है, तब तक उसके पितृगण कमलपत्र में जल पीते हैं। पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी सागर में निवास करते हैं। सागर स्थित तीर्थ ब्राह्मण के दाहिने चरण में स्थित रहते हैं। सभी प्रकार की व्याधि तथा पातक नाशक सर्वतीर्थ जल के समान शुभप्रद विप्र पादोदक पान से व्यक्ति भक्ति तथा मोक्षलाभ करता है।।१३६-१३८।।

---

१. क. ॰र्वशक्तिस्व॰।

विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जनार्दनः। विप्रेण दत्तं द्रव्यं च भुञ्जते सर्वदेवताः॥१३९॥

ब्राह्मण तो मनुष्यरूपी देवदेव जनार्दन ही हैं। विप्र को जो द्रव्य दिया जाता है, उसका उपभोग देवता करते हैं॥१३९॥

इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च गृहीत्वा तस्य पूजनम्।
जगाम गृहमित्युक्त्वा त्वायास्ये वत्सरान्तरे॥१४०॥
भक्त्या च बुभुजे राजा विप्रपादोदकं शिवे।
विप्रांश्च पूजयामास भोजयामास वत्सरम्॥१४१॥
संवत्सरे व्यतीते तु निर्मुक्तो व्याधितो नृपः।
आजगाम मुनिश्रेष्ठः सुतपाः कश्यपाग्रणीः॥१४२॥

राजा सुयज्ञ से यह कह कर वे ब्राह्मण सुतपा राजा का पूजन ग्रहण करके अपने गृह यह कहते चले गये कि "मैं एक वर्ष व्यतीत होने पर पुनः आगमन करूंगा।" हे शिव! पार्वती! उस दिन से वह राजा भक्ति के साथ नित्य ब्राह्मणों का चरणजल पान करने लगा तथा उनका पूजन करने लगा। वर्ष पर्यन्त राजा ने ब्राह्मण भोजन भी कराया। एक वर्ष व्यतीत होने पर राजा व्याधिमुक्त हो गया। तभी कश्यप गोत्रों में अग्रणी मुनिवर सुतपा वहां आ गये॥१४०-१४२॥

राधापूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं मनुम्।
ध्यानं च सामवेदोक्तं ददौ तस्मै नृपाय सः॥१४३॥
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा तपसे मुनिः।
जगाम स्वालयाद्दुर्गं निर्जगामत्वरन्नृपः॥१४४॥

उन मुनि ने वहां आकर राधा पूजाविधान, राधास्तोत्र, राधा कवच एवं मन्त्र तथा सामवेदोक्त ध्यान राजा को प्रदान किया। तदनन्तर मुनि ने राजा को शीघ्र तप के लिये जाने का आदेश प्रदान किया। यह कह कर जब मुनि चले गये, तब राजा भी अपने दुर्ग से तपःश्चरण करने निकल पड़ा॥१४३-१४४॥

रुरुदुर्बान्धवाः सर्वे त्रिरात्रं शोकमूर्च्छिताः।
भार्याश्च तत्यजुः प्राणान्पुत्रो राजा बभूव ह॥१४५॥

राजा के चले जाने पर उसके बन्धु-बांधव तीन रात तक शोक से मूर्च्छित से पड़े थे। उसकी पत्नी ने तो प्राण त्याग दिया। तदनन्तर सुयज्ञ का पुत्र वहां का राजा बना॥१४५॥

सुयज्ञः पुष्करं गत्वा चक्रे वै दुष्करं तपः। दिव्यं वर्षशतं राजा जजाप परमं मनुम्॥१४६॥
तदा ददर्श गगने रथस्थां परमेश्वरीम्। स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च बभूव ह॥१४७॥

राजा सुयज्ञ पुष्कर क्षेत्र गया। वहां जाकर उसने दुष्कर तप किया। राजा ने दिव्य मान वाले

१०० वर्ष तक उस परम मन्त्र का वहां जप किया। तदनन्तर राजा ने रथारूढ़ परमेश्वरी राधा का दर्शन गगन में किया। उनका दर्शन मिलते ही राजा निष्पाप हो गया।।१४६-१४७।।

तत्याज मानुषं देहं दिव्यां मूर्तिं दधार ह। सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रैर्निर्मितेन च।१४८।।

नृपं नीत्वा च गोलोकं तत्र चैषा ययौ तदा।
राजा ददर्श गोलोकं नद्या विरजयाऽऽवृतम्।।१४९।।

वेष्टितं पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारुणा। श्रीवृन्दावनसंयुक्तं रासमण्डलमण्डितम्।।१५०।।

उस समय राजा ने मनुष्य देह त्याग दिया तथा उसने दिव्य देह धारण किया। देवी ने उस श्रेष्ठ रत्नों से बने अपने यान में राजा को भी बैठाया। तदनन्तर रथारूढ़ राजा गोलोक चला गया, वहां राजा ने विरजा नदीयुक्त गोलोक का दर्शन किया। वह उत्तम शतशृंग पर्वत से घिरा था। वह गोलोक श्रीवृन्दावन से युक्त तथा रासमण्डल से शोभायमान था।।१४८-१५०।।

गोगोपगोपीनिकरैः शोभितं परिसेवितैः। रत्नेन्द्रसारखचितैर्मन्दिरैः सुमनोहरैः।।१५१।।

नानाचित्रविचित्रैश्च राजितं परिशोभितम्।
सप्तत्रिंशद्विराक्रीडैः कल्पवृक्षसमन्वितैः।।१५२।।
पारिजातद्रुमाकीर्णैर्वेष्टितं कामधेनुभिः।
आकाशवत्सुविस्तीर्णं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत्।।१५३।।

वहां गोप-गोपियां राधा-कृष्ण की सेवा कर रहे थे। वह स्थान उत्तम रत्नों के सार भाग से जड़ित गृहयुक्त तथा अत्यन्त मनोहर था। वहां सभी भवन नाना चित्रों से सजे शोभायमान हो रहे थे। वहां का क्रीड़ास्थल ३७ कल्पवृक्षयुक्त पारिजात की छाया युक्त कामधेनुओं से परिपूर्ण था। वह आकाश के समान विस्तीर्ण गोलाकार तथा चन्द्रबिम्बवत् था।।१५१-१५३।।

अत्यूर्ध्वमपि वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
शून्ये स्थितं निराधारं ध्रुवमेवेश्वरेच्छया।।१५४।।
आत्माकाशसमं नित्यमस्माकं च सुदुर्लभम्।
अहं नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट्।।१५५।।
धर्मक्षुद्रविराट्सङ्घो गङ्गा लक्ष्मी सरस्वती।
त्वं विष्णुमाया सावित्री तुलसी च गणेश्वरः।।१५६।।
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी।
कपिलो दक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्च योगिनः।।१५७।।
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः।
कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्च वैष्णवाः।।१५८।।

एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टः कादाचन। निरामये च तत्रैव रत्नसिंहासन स्थितम्॥१५९॥

यह गोलोक वैकुण्ठ से भी ५० कोटि योजन ऊर्ध्वस्थ था तथा शून्य प्रदेश में निराधार ईश्वरेच्छा से स्थित था तथा ध्रुव की तरह वहां अचल था। वह लोक आत्मा तथा आकाश की तरह था। वह हमारे लिये भी दुर्लभ था। मैंने, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, धर्म, क्षुद्रविराट् (विष्णु) वृन्द, गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुमने, विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश्वर, सनत्कुमार, स्कन्ददेव, नर ऋषि, नारायण ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञदेव, ब्रह्मा के योगी पुत्रगण, वायु, वरुणदेव, चन्द्र, सूर्य, रुद्र, अग्निदेव, भारतवासी भगवान् कृष्ण के मन्त्रों के आराधक वैष्णवगण ने ही गोलोक का दर्शन किया है। अन्य ने नहीं किया है। वहां निरामय रत्नसिंहासन पर कृष्ण विराजमान हैं।।१५४-१५९।।

रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः। सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैर्वह्निशुद्धैर्विराजितम्॥१६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम्। नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम्॥१६१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥१६२॥

वे प्रभु उत्तम रत्नमाला, किरीट तथा रत्नाभूषणों से भूषित हैं। उन्होंने निर्मल अग्निशुद्ध पीतवस्त्र धारण किया है। उनका सर्वाङ्ग चन्दन चर्चित है। वे किशोर वय वाले गोप के रूप वाले हैं। उनका वर्ण नवजलधर के समान श्याम वर्ण है। उनके नेत्र श्वेत कमल की तरह मनोहर हैं। उनका आनन शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी कान्तिवाला है। वे प्रभु मन्द मुस्कान युक्त मनोहर, द्विभुज, मुरलीधारी हैं। उन्होंने भक्तों पर अनुग्रह हेतु विग्रह धारण किया है।।१६०-१६२।।

स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
ध्यानसाध्यं दुराराध्यमस्माकं च सुदुर्लभम्॥१६३॥

प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः। वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः॥१६४॥
पीडितैः कामबाणैश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनैः। वह्निशुद्धांशुकाधानै रत्नभूषणभूषितैः॥१६५॥
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णं च परात्परम्। ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितं तदा॥१६६॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्तिमद्भिर्मनोहरैः। रागिणीनां च रागाणामतीव सुमनोहरम्॥१६७॥

ये प्रभु स्वेच्छामय परब्रह्म निर्गुण तथा प्रकृति से परे, ध्यानसाध्य हैं। नहीं तो ये परम दुराराध्य हैं तथा अत्यन्त दुर्लभ हैं। ये कामबाण से पीड़ित, सदा स्थिर यौवन सम्पन्न परात्पर कृष्ण अग्निशुद्ध वस्त्रों से शोभायमान रत्नाभूषण भूषित प्रभु हैं। भगवती राधा ने उन रासमण्डलमध्य स्थित कृष्ण का दर्शन राधा ने कराया। वे प्रभु परात्पर कृष्ण रत्नसिंहासन पर आसीन राजा को दिखलाई पड़े। वे मनोहर मूर्त्ति थे। चारों वेद उनकी स्तुति कर रहे थे। वे प्रभु राग-रागिनियों से घिरे अत्यन्त मनोहर थे।।१६३-१६७।।

श्रुतवन्तं च सङ्गीतं यन्त्रवक्त्रोत्थितं शिवे।
नित्यया च सनातन्या प्रकृत्या च सह त्वया॥१६८॥

शश्वत्पूजितपादाब्जमखण्डतुलसीदलैः। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः॥१६९॥
दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः। निर्मलैर्विरजातोयैर्दत्तार्घ्यैरतिशोभितम्॥१७०॥

हे शिवे! वे नाना वाद्य यन्त्र के मुख से निःश्रित शब्दयुक्त राग-रागिनीयुक्त संगीत भगवान् सुन रहे थे। तुम्हारे ही स्वरूप वाली नित्या सनातनी प्रकृति नित्य कस्तूरीकुंकुम युक्त सुगन्ध चन्दन चर्चित तुलसीदल तथा दूर्वा, अक्षत, पारिजात पुष्प एवं निर्मल विरजा नदी के जल द्वारा बने अर्घ्य प्रभृति से उनकी पूजा कर रही थीं।।१६८-१७०।।

सुप्रसन्नं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम्। सर्वेषां चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम्॥१७१॥

सर्वाधारं परं[1] पूज्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
सर्वसंपत्स्वरूपं च दातारं सर्वसंपदाम्॥१७२॥

सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानां च मङ्गलम्॥१७३॥

वे प्रभु स्वयं सुप्रसन्न, स्वतन्त्र, सर्व कारणों के कारण, सबकी अन्तरात्मा, सर्वेश, सबके जीवन, सर्वाधार, परम पूज्य, सनातन ब्रह्मज्योति, सर्वसम्पदास्वरूप, सर्वसम्पदा प्रदाता, सर्वमंगलरूप, सर्वमंगलकारण, सर्वमंगलदाता, सभी मंगलों के भी मंगल रूप हैं।।१७१-१७३।।

तं दृष्ट्वा नृपतिस्त्रस्तो ह्यवरुह्य रथात्त्वरन्।
साश्रुनेत्रः पुलकितो मूर्ध्ना स प्रणनाम च॥१७४॥
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यं च शुभाशिषम्।
स्वभक्तिं निश्चलां सत्यामस्माकं च सुदुर्लभाम्॥१७५॥

उन प्रभु को देख कर राजा शंकित चित्त से रथ से उतरा तथा सजल नयन होकर एवं प्रेम से रोमांचित होकर उसने नतशिर होकर प्रभु को प्रणाम किया। परमात्मा ने राजा को शुभ आशीर्वाद देकर अपना दास बनाया तथा अपनी निश्चला भक्ति जो सत्य स्वरूपा एवं दुर्लभा है, राजा को प्रदान कर दिया।।१७४-१७५।।

राधाऽवरुह्य स्वरथात्कृष्णवक्षस्युवास सा।
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेविता श्वेतचामरैः॥१७६॥
संभाषिता श्रीकृष्णेन सस्मितेन च पूजिता।
समुत्थितेन सहसा भक्त्या वै संभ्रमेण च॥१७७॥

अब राधा भी रथ से उतरीं तथा कृष्ण के वक्षःस्थल पर विराजमान हो गयीं। उस समय उनकी प्रिय गोपीगण उनको श्वेत चामर झलने लगीं। तब श्रीकृष्ण भी हंसते हुए राधा से कुछ आलाप तथा उनकी पूजा करके हठात् उठ गये तथा भक्तिभाव से राधा का आदर किया।।१७६-१७७।।

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं च माधवम्।
प्रवदन्ति च वेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः॥१७८॥

---

१. क. ०रं ज्योतिर्ब्र।

विपर्ययं ये वदन्ति ये निन्दन्ति जगत्प्रसूम्।
कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिं च राधिकाम्॥१७९॥
ते पच्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
भवन्ति स्त्रीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु॥१८०॥

अतः लोग पहले राधा का उच्चारण करके, तब कृष्ण अथवा माधव कहें। यह वेदों में प्राचीन वेदज्ञों का कथन है। जो कोई पहले कृष्ण कह कर राधा कहता है, उसने तो मानों श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रिया तथा उनकी प्रेममयी शक्ति की निन्दा ही कर दिया। जो राधा की निन्दा करते हैं, वे उस समय तक कालसूत्र नरक में रहेंगे, जब तक सृष्टि में चन्द्र तथा सूर्य स्थित हैं। तदनन्तर वे स्त्री-पुत्र रहित एवं रोगी होकर १०० जन्म व्यतीत करते हैं।।१७८-१८०।।

इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम्।
सा त्वं सती भगवती वैष्णवी च सनातनी॥१८१॥
नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी।
मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी॥१८२॥
स्त्रीजातिष्वधिदेवी च परा जातिस्मरा वरा।
कथितं राधिकाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१८३॥

श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधाख्या० सुयज्ञाख्या० सुयज्ञगोलोकगमनं नाम
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५४।।

यह मैंने अत्युत्तम राधिका उपाख्यान कहा। तुम स्वयं सती, भगवती, परमेश्वरी, वैष्णवी, मूलप्रकृति, नारायणी, सर्वरूपा हो। तुम सर्वज्ञा होकर भी माया पूर्वक मुझसे यह सब पूछ रही हो। परमा जातिस्मर स्वरूपा तुम स्त्रीजाति की अधिदेवता हो। मैंने तुमसे राधा का उत्तम उपाख्यान कह दिया। अब क्या सुनना चाहती हो?।।१८१-१८३।।

।।पञ्चचत्वारिंशत्तम अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधा की पूजाविधि तथा श्रीकृष्ण द्वारा स्तुत राधिका स्तव

पार्वत्युवाच

श्रीकृष्णस्य स्थिते मन्त्रे चान्येषामीश्वरस्य वः।
कथं जग्राह राधाया मन्त्रं वै वैष्णवो नृपः॥१॥
किं विधानं च किं ध्यानं किं स्तोत्रं कवचं च किम्।
कं मन्त्रं च ददौ राज्ञे तां पूजापद्धतिं वद॥२॥

देवी पार्वती कहती हैं—हे नाथ! आपका तथा देव श्रीकृष्ण के मन्त्र के रहते वैष्णव राजा ने किस कारण से राधा का मन्त्र ग्रहण किया? मुनिप्रवर ने राजा को श्रीराधा की किस पूजाविधि का, ध्यान तथा स्तव कवच का उपदेश देकर कौन-सा मन्त्र प्रदान किया था? वह कहिये।।१-२।।

महेश्वर उवाच

हे विप्र कं भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि।
शीघ्रं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याऽऽराधनतो मुने॥३॥
इत्युक्तवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः। तत्सेवया च तल्लोकं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः॥४॥
तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम्। कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोषि तत्पदम्॥५॥

महेश्वर कहते हैं—जब सुयज्ञ राजा ने प्रश्न किया था कि "मैं किसकी आराधना करूं, जिससे मुझे गोलोक शीघ्र मिलेगा?" तब मुनि सुतपा ने राजा से कहा—"हे राजन्! कृष्ण की सेवा से तो दीर्घकाल में यह कृष्णलोक (गोलोक) मिलेगा। इसलिये तुम गोलोक की शीघ्र प्राप्ति के लिये कृष्ण के प्राण की अधिष्ठातृ श्रीराधा की आराधना करो। परात्परा कृपामयी श्रीराधा के अनुग्रह से श्रीकृष्ण का सामीप्य शीघ्र प्राप्त हो जाता है। तुमको यथाशीघ्र गोलोक प्राप्त होगा"।।३-५।।

इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षडक्षरम्। ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥६॥
प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च। कराङ्गन्यासमेवं च ध्यानं सर्वसुदुर्लभम्॥७॥
स्तोत्रं च कवचं तं च शिक्षयामास भक्तितः। राजा तेन क्रमेणैव जजाप परमं मनुम्॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं मङ्गलानां च मङ्गलम्।
कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च॥९॥

यह कह कर ब्राह्मण सुतपा ने सुयज्ञ को राधा का षडक्षर मन्त्र प्रदान किया। "ॐ राधायै स्वाहा" यह मन्त्र है। उन्होंने प्राणायाम, भूतशुद्धि, मन्त्र न्यास, कराङ्ग न्यास तथा सर्वसुदुर्लभ ध्यान, स्तोत्र, कवच भी भक्तिपूर्ण शिक्षा के साथ राजा को दे दिया। राजा ने भी इसी क्रम से इस परम मन्त्र

का जप किया। यह ध्यान सामवेदोक्त था तथा मंगलसमूह के भी मंगल का भी मंगल था। उसी ध्यान से श्रीकृष्ण ने पूर्वकाल में राधा का पूजन किया था।।६-९।।

श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्॥१०॥

सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधरां वराम्।
मुक्तापङ्क्तिप्रतिनिधिदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥११॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम्॥१२॥
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम्॥१३॥
सूर्यप्रभाप्रतिकृतिगण्डस्थलविराजिताम्। अमूल्यरत्नखचितग्रैवेयकविभूषिताम्॥१४॥
सद्रत्नसारखचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम्। रत्नाङ्गुलीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम्॥१५॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम्। रूपाधिष्ठातृदेवीं च मत्तवारणगामिनीम्॥१६॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना॥१७॥

वह ध्यान इस प्रकार से करे—देवी राधा श्वेत चम्पक के समान वर्ण वाली तथा करोड़ों चन्द्रमा की आभा के युक्त हैं। उनका आनन (चेहरा) शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान है। उनके नेत्र भी शारदीय कमल जैसे शोभायमान हो रहे हैं। उनका श्रोणीभाग तथा नितम्ब अत्यन्त सुन्दर है। देवी का अधर तथा ओष्ठ पके बिम्बफल के समान श्रेष्ठ हैं, उनकी मनोहर दंतपंक्ति मुक्तापंक्ति के समान मनोहर है। उनका मुख मन्द मुस्कान से युक्त है। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले देवी अग्निशुद्ध वस्त्रधारिणी तथा रत्नमाला से विभूषिता हैं। उन्होंने रत्नयुक्त बाजूबन्द, रत्न मंजीर, रत्नयुक्त नूपुर तथा विचित्र रत्नों से जड़ित कुण्डलद्वय भी धारण किया है। उन देवी का कपोल सूर्यप्रभा के समान कान्तियुक्त है। अमूल्य रत्नों से बना हार उनकी शोभा वृद्धि कर रहा है। वे उत्तम रत्नों के सार से जड़ित किरीट-मुकुट से दीप्तिमान् हैं। वे रत्नों से बनी अंगूठियों तथा पाशकादि आभूषणों से भूषित हैं। वे मालती माला से सुशोभित केशपाश धारिणी, रूप की अधिष्ठातृ देवी हैं। मदमत्त हाथी की तरह उनकी चाल है। ऐसी राधा देवी की सेवा गोपियों श्वेत चामर झलती कर रही हैं। उनके ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी लगी है। उसके कुछ नीचे चन्दन की विन्दी शोभावृद्धि कर रही है।।१०-१७।।

सिन्दूरबिन्दुना चारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम्।
नित्यं सुपूजितां भक्त्या कृष्णेन परमात्मना॥१८॥
कृष्णसौभाग्यसंयुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम्।
कृष्णप्राणाधिदेवीं च निर्गुणां च परात्पराम्॥१९॥

उनके मांग के अधोभाग में सिन्दूर की बिन्दी लगी है। इससे वह स्थान समुज्ज्वल लग रहा है। ये देवी परमात्मा कृष्ण द्वारा नित्य भक्तिभाव से पूजिता, कृष्ण सौभाग्य से युक्त, कृष्ण को प्राणों से भी प्रिय लगने वाली, उनके प्राणों की अधिष्ठातृ देवी, निर्गुणा तथा परात्परा हैं।।१८-१९।।

महाविष्णुविधात्रीं च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम्।
कृष्णभक्तिप्रदां शान्तां मूलप्रकृतिमीश्वरीम्॥२०॥
वैष्णवीं विष्णुमायां च कृष्णप्रेममयीं शुभाम्।
रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थिताम्॥२१॥
रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे॥२२॥

ये देवी महाविष्णु की माता, सर्वसम्पदा प्रदायिनी, कृष्णभक्ति देने वाली, शान्ता, मूलप्रकृति तथा ईश्वरी हैं। वे देवी वैष्णवी, विष्णुमाया, कृष्णप्रेममयी शुभा हैं। वे रासमण्डल के मध्य में रत्नसिंहासनासीन रास में रासेश्वर कृष्ण के साथ रहने वाली राधा रासेश्वरी का मैं भजन करता हूं।।२०-२२।।

ध्यात्वा पुष्पं मूर्ध्नि दत्त्वा पुनर्ध्यायेज्जगत्प्रसूम्।
दद्यात्पुष्पं पुनर्ध्यात्वा चोपचाराणि षोडश॥२३॥

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम्। धूपं दीपं सुपुष्पं च स्नानीयं रत्नभूषणम्॥२४॥
नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम्। मधपर्कं रत्नतल्पमुचाराणि षोडश॥२५॥

कृष्ण निर्मित इस ध्यान द्वारा जगज्जननी राधा का ध्यान करके अपने मस्तक पर पुष्प रखे। पुनः ध्यान करके पुष्प प्रदान करना चाहिए। इस पुनर्ध्यानोपरान्त षोडशोपचार से भगवती की पूजा करे। वे १६ उपचार हैं–आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, सुगन्धित लेप, धूप, दीप, श्रेष्ठ पुष्प, स्नानार्थ स्नानीय जल, रत्नाभूषण धारण कराना, नाना नैवेद्य, सुगन्धयुक्त ताम्बूल, जल, मधुपर्क, रत्नजटित शय्या प्रदान करना। ये १६ उपचार हैं।।२३-२५।।

प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता। मन्त्रांश्च श्रूयतां दुर्गे वेदोक्तान्सर्वसंमतान्॥२६॥

हे राजन्! प्रत्येक वस्तु वेदमन्त्रों से भक्ति पूर्वक प्रदान करे। हे दुर्गे! अब वे मन्त्र सुनो जो वेदोक्त तथा सर्वसम्मत कहे गये हैं।।२६।।

रत्नसारविकारं च निर्मितं विश्वकर्मणा। वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम्॥२७॥

आसन–हे राधिके! यह रत्नों के सार से निर्मित श्रीविश्वकर्मा द्वारा बनाया गया श्रेष्ठ रत्न सिंहासन पूजा में ग्रहण करिये, जो मनोहर है।।२७।।

अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च। वह्निशुद्धं निर्मलं च वसनं देवि गृह्यताम्॥२८॥

वस्त्र–हे देवी! अमूल्य रत्नजड़ित, अमूल्य, महीन, निर्मल अग्निशुद्ध वस्त्र ग्रहण करिये।।२८।।

सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम्। पादप्रक्षालनार्थं च राधे पाद्यं च गृह्यताम्॥२९॥

पाद्य (चरण धोने का जल)–उत्तम रत्नपात्रस्थ सर्वतीर्थ जल जो अत्यन्त शुभ है, उस चरण धोने वाले पाद्य को ग्रहण करिये।।२९।।

दक्षिणावर्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम्। पूतं युक्तं तीर्थतोये राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम्॥३०॥

शंखजल–हे देवी! दक्षिणावर्त्त शंख में दूर्वा, चन्दन, पुष्प के साथ रक्षित पवित्र तीर्थजल को आप ग्रहण करें।।३०।।

पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीव सुरभीकृतम्। मङ्गलार्हं पवित्रं च राधे गन्धं गृहाण मे॥३१॥

गंधार्पण–हे देवी! पार्थिव द्रव्यों से निर्मित, अतीव सुगंधित, मंगलपूर्ण पवित्र यह गन्ध ग्रहण करिये।।३१।।

श्रीखण्डचूर्णं सस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्।
सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम्॥३२॥

लेप अर्पण–हे देवी! चन्दन चूर्ण से निर्मित तथा कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित सुगन्धयुक्त यह लेप ग्रहण करिये।।३२।।

वृक्षनिर्यासंसंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम्। [१]अग्निखण्डशिखाजातं धूपं देवि गृहाण मे॥३३॥

धूप अर्पण–हे देवी! वृक्ष के रिसाव (गोंद) तथा पार्थिव द्रव्य से मिश्रित, अग्निशिखा से सम्बन्ध (धूपदानी की अग्नि में ये द्रव्य छोड़ने पर जो सुगन्ध धूम होती है, उससे तात्पर्य है) यह धूप आप ग्रहण करें।।३३।।

अन्धकारे भयहरममूल्यमणिशोभितम्। रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि॥३४॥

दीपार्पण–हे परमेश्वरी! अंधकार के कारण अनुभूत होने वाले भय का नाश करने वाले, महामूल्यवान मणियों से शोभित रत्नदीप ग्रहण करिये।।३४।।

पारिजातप्रसूनं च गन्धचन्दनचर्चितम्। अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि॥३५॥

पुष्पार्पण–हे परमेश्वरी! यह पारिजात पुष्प से जो गन्ध चन्दनादि से लिप्त अत्यन्त रम्य तथा शोभायमान है, ग्रहण करिये।।३५।।

सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम्।
विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम्॥३६॥

स्नानीयार्पण–हे देवी! सुगन्धित आमलकी चूर्ण युक्त स्निग्ध जल, विष्णुतैल के साथ आपको अर्पित है। कृपया ग्रहण करें।।३६।।

अमूल्यरत्नखचितं केयूरवलादिकम्। शश्वत्सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम॥३७॥

आभूषणार्पण–हे देवी! अमूल्य रत्नजड़ित केयूर, कंकण प्रभृति सौन्दर्यमय आभूषण आपको अर्पित हैं। कृपया ग्रहण करें।।३७।।

कालदेशोद्भवं पक्वफलं वै लड्डुकादिकम्।
परमान्नं च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम्॥३८॥

---

१. क. ज्वलदग्निशि।

नैवेद्यार्पण–हे परमेश्वरी देवी! देशकाल के अनुरूप पके फल, लड्डू आदि मिष्ठान्न तथा परमान्नादि का नैवेद्य ग्रहण करिये।।३८।।

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
सर्वभोगाधिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम्।।३९।।

ताम्बूलार्पण–हे देवी! उत्तम रम्य कर्पूर से सुवासित सभी भोगों में उत्तम स्वादिष्ट ताम्बूल ग्रहण करिये।।३९।।

अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि।।४०।।

मधु अर्पण–हे देवी! यह मधु रत्नपात्र में स्थित सुस्वादु तथा अतीव मनोहर है। मैं इसे भक्ति के साथ अर्पित कर रहा हूं। कृपया ग्रहण करें।।४०।।

रत्नेन्द्रसारखचितं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्। पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्यङ्कं देवि गृह्यताम्।।४१।।

पर्यङ्कार्पण–हे परमेश्वरी! उत्तम रत्नों के सार से जड़ी, अग्निशुद्ध वस्त्रों से आवृत एवं सज्जित, पुष्प एवं चन्दन लगी यह उत्तम पलंग आपको अर्पित है। इसे शयन हेतु स्वीकार करिये।।४१।।

एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम्। यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाश्च व्रते व्रती।।४२।।
प्रागादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्ततः प्रिये। भक्त्या पञ्चोपचारेण सुप्रियाः परिचारिकाः।।४३।।

मालावतीं पूर्वकोणे वह्निकोणे च माधवीम्।
दक्षिणे रत्नमालां च सुशीलां नैर्ऋते सतीम्।।४४।।

पश्चिमे वै शशिकलां पारिजातां च मारुते। पद्मावतीमुत्तरे चाथैशान्यां सुन्दरीं तथा।।४५।।

एवंविध देवी की पूजा करके उनको तीन पुष्पांजलि प्रदान करे। तदनन्तर व्रती राजा (व्यक्ति) यत्नतः अष्टनायिका की पूजा करे। हे प्रिये! दक्षिणावर्त्त से प्रारम्भ करके पूर्वादि कोण क्रम से श्रीराधिका की इन प्रिय परिचारिकाओं की पूजा पंचोपचार से करनी चाहिए। अर्थात् पूर्व कोण में मालावती की, अग्निकोण में माधवी की, दक्षिण में रत्नमाला की, नैर्ऋत्कोण में सुशीला की, पश्चिम में शशिकला की, वायुकोण में पारिजात की, उत्तर दिक् में पद्मावती की तथा ईशान में सुन्दरी की पूजा करनी चाहिए।।४२–४५।।

यूथिकामालतीपद्ममाला दद्याद्व्रते व्रती। परीहारं च कुरुते सामवेदोक्तमेव च।।४६।।

श्री राधा का व्रती व्यक्ति देवी को व्रतकाल में यूथिका, मालती, पद्ममाला प्रदान करके सामवेदोक्त परीहार (क्षमा प्रार्थना) स्तुति करे।।४६।।

त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी।
कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा।।४७।।

कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णे सौभाग्यरूपिणी। कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे।।४८।।

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम।
पूजिताऽसि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता॥४९॥

क्षमा प्रार्थना–हे देवी! आप जगत् जननी, विष्णुमाया, सनातनी, कृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिय, कृष्ण के प्राणों की अधिदेवता तथा शुभा हैं। आप कृष्ण की प्रेममयी शक्ति तथा कृष्ण के सौभाग्य की स्वरूपिणी हैं। आप कृष्णभक्तिप्रदा मंगलप्रदा राधा को प्रणाम करता हूं! आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सार्थक हो गया, क्योंकि मैंने तो कृष्णप्रिय राधा की पूजा जो किया है।।४७-४९।।

कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता। रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने॥५०॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसीकानने तुला[1]।
चम्पावती कृष्णसङ्गे क्रीडा चम्पककानने॥५१॥
[2]चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च। विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने॥५२॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे। भद्रो कुञ्जकुटीरे च काम्या वै काम्यके वने॥५३॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि।
क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया॥५४॥

स्तव–राधा ही कृष्ण के वक्ष पर स्थित सौभाग्यरूपा हैं, जो रास में रासेश्वरी रूप से तथा वृन्दावन में वृन्दारूप से, गोलोक में कृष्णप्रिया होकर, तुलसीवन में जो चम्पावती होकर तथा चम्पावन में कृष्ण की क्रीड़ासंगिनी होकर, पद्मवन में पद्मावती होकर, कृष्ण सरोवर में कृष्णारूपिणी होकर, कुंज कुटीर में भद्रारूप से, काम्यक वन में काम्या रूप से, वैकुण्ठ में महालक्ष्मी रूप से, नारायण के हृदय में वाणी सरस्वती रूप में, क्षीरसागर में सिन्धुकन्या रूप से तथा मनुष्य लोक में वे राधा ही लक्ष्मी स्वरूपा हैं।।५०-५४।।

सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी। सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शङ्करवक्षसि॥५५॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि। कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रभोः॥५६॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी।
लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः॥५७॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः।
अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया॥५८॥

वे ही देवी सभी स्वर्गों में देवों का दुःखनाश करने वाली स्वर्गलक्ष्मी हैं। वे सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकर के वक्षःस्थल पर विहार करती हैं। वे सावित्री अपनी कला से वेदमाता होकर ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर विराजमान हैं। आप अपनी अंशकला से भगवान् प्रभु नर-नारायण की धर्मपत्नी हैं।

---

१. ख. तु या।
२. क. चन्द्रावती।

आपकी अपनी ही कला से तुलसी तथा जगत्पावनी गंगा उत्पन्न हैं। आपके ही रोमकूपों से गोपियां, रोहिणी, रति आदि आपके ही कलांश से प्रादुर्भूत हो गई हैं। देवी शतरूपा, शची, दिति, देवमाता अदिति आदि आपके ही कलांश से उत्पन्न हैं। हरिप्रिया (लक्ष्मी) भी आपकी अंशकला हैं।।५५-५८।।

देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे।
कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते।।५९।।

हे शुभे! हे देवी! देवियां तथा मुनिपत्नियां भी आपकी कला के कलांश से उत्पन्न हैं। हे कृष्णपूजिते देवी! मुझे कृपा करके कृष्ण की भक्ति तथा उनका दासत्व दीजिये।।५९।।

एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत्।
पुरा कृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम्।।६०।।
एवं नित्यं पूजयेद्यो विष्णुतुल्यः स भारते।
जीवन्मुक्तश्च पूतश्च गोलोकं याति निश्चितम्।।६१।।

इस प्रकार परीहार (क्षमा) प्रार्थना करके तब कवच पढ़े। यह शुभ स्तव-कवच पूर्वकाल में भक्ति तथा दासत्व प्रदानार्थ रचा गया था। यह अत्यन्त शुभ है। जो भारत में नित्य यह राधा पूजन करता है, वह विष्णुतुल्य, जीवन्मुक्त तथा पवित्र होकर निश्चितरूपेण गोलोक गमन करता है।।६०-६१।।

कार्तिके पूर्णिमायां च राधां यः पूजयेच्छिवे।
एवं क्रमेण प्रत्यब्दं राजसूयफलं लभेत्।।६२।।
परमैश्वर्ययुक्तः स्यादिह लोके स पुण्यवान्।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्।।६३।।

हे शिवे! कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन जो राधापूजन तथा प्रति वर्ष करते हैं, उनको राजसूय यज्ञफल अवश्य मिलता है। इहलोक में वह पुण्यात्मा एवं समस्त ऐश्वर्ययुक्त होकर सर्वपातक रहित हो जाता है। तदनन्तर अन्तकाल में उसे विष्णुमन्दिर की प्राप्ति होती है।।६२-६३।।

आदावेवं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने। स्तुता सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुरा सती।।६४।।
संपूजिता द्वितीये च धात्रा त्वेवं क्रमेण च। स्वद्वरेण च संप्राप्य विधात वेदमातरम्।।६५।।

नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम्।
गङ्गां च तुलसीं चैव परां भुवनपावनीम्।।६६।।

पूर्वकाल की बात है, पतिव्रता राधा रासकाल में वृन्दावन वन में इसी क्रम के द्वारा प्रभु से पूजित तथा स्तुत हो गई थीं। इसी क्रम में इनकी द्वितीय पूजा इसी क्रमानुसार ब्रह्मदेव द्वारा की गई। उस समय उनको तुम्हारे ही वर द्वारा वेदमाता सावित्री प्राप्त हो सकीं। नारायण ने भी इसी अर्चना के फलस्वरूप महालक्ष्मी, सरस्वती, लोकों को पवित्र करने वाली गंगा तथा तुलसी को पाया था।।६४-६६।।

विष्णुःक्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुसुतां तथा।
मृतायां दक्षकन्यायां मया कृष्णाज्ञया पुरा॥६७॥
त्वमेव दुर्गा संप्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा।
अदितिं कश्यपः प्राप चन्द्रः संप्राप रोहिणीम्॥६८॥
कामो रतिं च संप्राप धर्मो मूर्तिं पतिव्रताम्। देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम्॥६९॥
संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम्। एवं पूजाविधानं च कथितं च स्तवं शृणु॥७०॥

इसी राधापूजन के फल से क्षीरसागरशायी विष्णु ने सिन्धुसुता लक्ष्मी को प्राप्त किया। पूर्वकाल में दक्षकन्या सती के मृत हो जाने पर कृष्ण की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर पुष्कर क्षेत्र में राधा की अर्चना करके मैंने तुम दुर्गा को प्राप्त किया। इसी पूजा द्वारा अदिति ने कश्यप को, चन्द्रमा ने रोहिणी को, कामदेव ने रति को तथा धर्म ने पतिव्रता मूर्त्तिदेवी को प्राप्त किया। इसी प्रकार पतिव्रता राधा की सम्यक्तः पूजा करके उनके वर से सभी ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्षलाभ किया। मैंने इनका पूजाविधान कहा। अब स्तव कहता हूं। श्रवण करो।।६७-७०।।

महेश्वर उवाच

एकदा मानिनी राधा बभूवागोचरा प्रभोः।
संसक्तस्य तुलस्यां च गोप्यां च तुलसीवने॥७१॥
सा संहत्य स्वमूर्तीश्च कलाः सर्वाश्च लीलया।
सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥७२॥
भ्रष्टैश्वर्याश्च निःश्रीका भार्याहीना ह्युपद्रुताः।
ते च सर्वे समालोच्य श्रीकृष्णं शरणं ययुः॥७३॥
तेषां स्तोत्रेण संतुष्टः स्नात्वा संपूज्य तां शुचिः।
तुष्टाव परमात्मा स सर्वेषां राधिकां सतीम्॥७४॥

महेश्वर कहते हैं–एक दिन तुलसी वन में गोपी तुलसी के साथ श्रीकृष्ण को विहाररत देख कर मानिनी राधा ने स्वयं को गोपित कर लिया। उन्होंने स्वयं से उत्पन्न अपनी कलांश रूपा समस्त नारीगण को स्वयं में लीलारूपेण अन्तर्हित् कर लिया था। इस कारण ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि पत्नी रहित, ऐश्वर्यभ्रष्ट तथा श्री रहित होने के कारण अत्यन्त दुःखी हो गये। अन्त में विचारोपरान्त वे सभी श्रीकृष्ण की शरण में आ गये। उन्होंने आकर श्रीकृष्ण की स्तुति किया, जिससे सन्तुष्ट होकर परमात्मा ने स्नानोपरान्त पवित्र होकर सर्वहित की कामना से सती राधा का स्तव किया।।७१-७४।।

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेव प्रियोऽहं ते प्रमोदश्चैव ते मयि। सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनं ते वरानने॥७५॥

हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च संततम्।
यद्ब्रूहि नित्यं प्रेम्णा त्वं सांप्रतं तत्कुतो गतम्॥७६॥
तस्मात्सर्वमलीकं ते वचनं जगदम्बिके। क्षुरधारं च हृदयं स्त्रीजातीनां च सर्वतः॥७७॥

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे वरानने! मैं तो तुम्हारा ही प्रिय हूं। मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम अलौकिक है, यह तुम पहले कहती थी, तथापि अब तुम्हारा कर्म (व्यवहार) देख कर यह स्पष्ट हो गया कि वह सब कपट ही था। तुम पहले यह निरन्तर कहती थी कि "हे प्राणाधिक प्रिय कृष्ण! तुम मेरे प्राण, जीवन तथा आत्मा हो।" सम्प्रति अब तो इस वाक्य के अनुरूप कुछ नहीं करती प्रतीत हो रही हो। हे जगदम्बे! इससे प्रतीत हो रहा है कि तुम्हारा वह सब पूर्वकथन मिथ्या ही था। वास्तव में नारी का हृदय छूरे की धार की तरह सब ओर से अत्यन्त तीक्ष्ण होता है।।७५-७७।।

अस्माकं वचनं सत्यं यद्ब्रवीमि च तद्ध्रुवम्।
पञ्चप्राणाधिदेवी त्वं राधा प्राणाधिकेति मे॥७८॥
शक्तो न रक्षितुं त्वां च यान्ति प्राणास्त्वया विना।
विनाऽधिष्ठातृदेवी च को वा कुत्र च जीवति॥७९॥
महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी। सगुणा त्वं च कलया निर्गुणा स्वयमेव तु॥८०॥
ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा।
भक्तानां रुचिवैचित्र्यान्नानामूर्तीश्च बिभ्रती॥८१॥

तथापि मेरा वचन सत्य है। मैं जो कुछ कहता हूं, वह अटल है। हे राधा! तुम मेरे लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम मेरे पंचप्राणों की अधिदेवता हो। हे देवी! मैं तुमको रोक नहीं पा रहा हूं (यहां 'रक्षितु' का यही तात्पर्य लगता है)। तुम्हारे बिना प्राण चले जायेंगे। क्योंकि प्राणों की अधिष्ठातृ देवी के अभाव में कौन जीवित रह पायेगा? तुम महाविष्णु की माता, मूलप्रकृति, ईश्वरी हो। तुम ही सगुणा, तुम ही कला हो, तुम ही स्वयं निर्गुणा भी हो। तुम ज्योतिरूपा, निराकारा, भक्तों पर अनुग्रहार्थ देह धारण करती हो। भक्तों की रुचिगत विचित्रता के कारण तुमने तदनुरूप अनेक मूर्त्ति धारण किया है।।७८-८१।।

महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च गिरां प्रसूः।
पुण्यक्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा॥८२॥
तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी। ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुंधरा॥८३॥
गोलोके राधिका त्वं च सर्वगोपालकेश्वरी।
त्वया विनाऽहं निर्जीवो ह्यशक्तः सर्वकर्मसु॥८४॥

तुम वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, पुण्यमय भारत में पाण्डित्य जननी भारती हो। सती सावित्री, पुण्यरूपा लक्ष्मी, भुवनपावनी गंगा, ब्रह्मलोक में सावित्री, कलारूपेण वसुन्धरा तथा गोलोक में सभी

गोपों की ईश्वरी होकर राधिकारूपेण तुम अधिष्ठान करो। तुम्हारे अभाव में जीवन शून्य के समान हो जायेगा। मैं कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो गया! निर्जीव-सा हो गया हूं। सभी कर्म में अयोग्य हो गया।।८२-८४।।

शिवः शक्तस्त्वया शक्त्या शवाकारस्त्वया विना।
वेदकर्ता स्वयं ब्रह्मा वेदमाता त्वया सह॥८५॥
नारायणस्त्वया लक्ष्म्या जगत्पाता जगत्पतिः।
फलं ददाति यज्ञश्च त्वया दक्षिणया सह॥८६॥
बिभर्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके भुवम्।
बिभर्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्ध्नि गङ्गाधरः शिवः॥८७॥
शक्तिमच्च जगत्सर्वं शवरूपं त्वया विना।
वक्ता सर्वस्त्वया वाण्या मृतो मूकस्त्वया विना॥८८॥

शिव तो तुम्हारी शक्ति से ही अपनी शक्ति पा सके। वे तुम शक्तिस्वरूपा को पाकर ही शक्तिमान् हैं। जब तुम नहीं तब वे शवतुल्य हैं। तुम्हारे ही साथ रहने के कारण ब्रह्मा वेदकर्त्ता कहे गये। जगत्पति नारायण लक्ष्मीस्वरूपा तुम्हारे ही कारण जगत्पालक हैं। यज्ञदेव दक्षिणारूपा तुम्हारे बल से ही यज्ञफलदाता हो सके। शेष अनन्त देव भी धरती रूपी तुमको मस्तक पर धारण करके ही सृष्टिधारण में समर्थ हो सके। तुम वाणीरूपा सरस्वती के ही कारण जगत् में लोग बोलने में समर्थ हो सके हैं। अन्यथा तुम्हारे अभाव में तो सभी मूक हो जाते!।।८५-८८।।

यथा मृदा घटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान्सदा।
सृष्टिं स्त्रष्टुं तथाऽहं च प्रकृत्या च त्वया सह॥८९॥
त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान्।
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं त्वमागच्छममान्तिकम्॥९०॥

जैसे कुम्हार सतत् घट निर्माणार्थ उद्यत तथा शक्तियुक्त रहता है, तदनुरूप मैं, तुम प्रकृति के साथ सृष्टिरचनार्थ सदा उद्यत रहता हूं, तथापि तुम्हारे बिना मैं कहीं शक्तिमान् नहीं रह जाता। सर्वत्र जड़ हो गया हूं। हे देवी! गंगा रूप से तुमको धारण करने के ही कारण शिव गंगाधर हैं। अतः तुम तो सर्वशक्तिरूपा हो। तुम्हारे अभाव में मैं शक्तिहीन हो रहा हूं। तुम शीघ्र मेरे पास आओ।।८९-९०।।

वह्नौ त्वं दाहिका शक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना।
शोभास्वरूपा चन्द्रे त्वं त्वां विना न स सुन्दरः॥९१॥
प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान्।
न कामः कामिनीबन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये॥९२॥

अग्नि में जो दाहिका शक्ति है, वह तुम ही हो। तुम दाहिका शक्ति के अभाव में अग्नि कुछ भी दग्ध नहीं कर सकेंगे। वे अशक्त हो जायेंगे! तुम ही चन्द्र की शोभा (ज्योत्स्ना) हो। तुम्हारे अभाव में चन्द्रमा की सुन्दरता नहीं रह जाती! तुम तो सूर्य की प्रभा हो। तुम्हारे अभाव में सूर्य प्रभायुक्त नहीं रह सकते। हे प्रिये! तुम रतिरूपा भी हो। तुम्हारे अभाव में कामदेव नारीगण के बन्धु कैसे हो सकते हैं?।।९१-९२।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तां संप्राप जगत्प्रभुः।
देवा बभूवुः सश्रीकाः सभार्याः शक्तिसंयुताः।।९३।।
सस्त्रीकं च जगत्सर्वं समभूच्छैलकन्यके। गोपीपूर्णश्च गोलोको ह्यभवत्तत्प्रसादतः।।९४।।
राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम्।
श्रीकृष्णेन कृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः।।९५।।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार राधा का स्तव किया, तब उन्होंने राधा को प्राप्त कर लिया था। तब देवता भी श्री एवं शक्तियुक्त हो गये। हे पर्वतपुत्री! उस समय समस्त जगत् पत्नीयुक्त हो गया तथा राधिका की कृपा से गोलोकधाम भी गोपीमय हो गया! उस सुयज्ञ राजा ने इस प्रकार से हरिप्रिया लक्ष्मी का स्तव करके गोलोक प्राप्त किया था। श्रीकृष्णकृत यह राधास्तोत्र जो कोई पढ़ेगा-।।९३-९५।।

कृष्णभक्तिं च तद्दास्यं संप्राप्नोति न संशयः।
स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः।।९६।।
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्।
भार्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः।।९७।।
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्।
पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति।।९८।।
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः। स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सावित्री ब्रह्मणा पुरा।।९९।।

वह अवश्य कृष्णभक्ति तथा कृष्णदासत्व लाभ करेगा, इसमें संशय न करे। जो स्त्री विरह होने पर एक मास पवित्रता पूर्वक यह राधास्तोत्र पाठ करेगा, वह शीघ्र सुशीला, सुन्दरी, सती पत्नी प्राप्त करेगा। जो कोई भार्याहीन-भाग्यहीन व्यक्ति इसे एक वर्ष श्रवण करता है, वह शीघ्र सुशीला, सुन्दरी, सती पत्नीलाभ करता है। हे पार्वती! पूर्वकाल में मैंने इसी स्तवपाठ से तुमको प्राप्त किया था। हे पार्वती! दक्षकन्या के मृत होने पर परमात्मा की आज्ञा से यही स्तोत्र पाठ करके तुमको पाया था। इसी स्तोत्र पाठ द्वारा पूर्वकाल में ब्रह्मा ने सावित्री को प्राप्त किया था।।९६-९९।।

पुरा दुर्वाससः शापान्निःश्रीके देवतागणे।
स्तोत्रेणानेन देवैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभा।।१००।।

शृणोति वर्षमेकं च पुत्रार्थी लभते सुतम्।
महाव्याधी रोगमुक्तो भवेत्स्तोत्रप्रसादतः॥१०१॥
कार्तिके पूर्णिमायां तु तां संपूज्य पठेत्तु यः।
अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत्॥१०२॥
नारी शृणोति चेत्स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यसंयुता।
भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्॥१०३॥

पूर्वकाल में दुर्वासा के शाप से देवता श्री रहित, श्रीहीन हो गये थे। इसी स्तोत्र के पाठ द्वारा देवगण ने सुदुर्लभा श्री प्राप्त किया था। पुत्रार्थी व्यक्ति इसे एक वर्ष पाठ करके पुत्रलाभ करता है। इसी स्तोत्र की कृपा से महारोगी रोगरहित हो जाता है। जो कोई कार्त्तिकी पूर्णिमा को राधा की पूजा करके यह स्तवपाठ करेगा, उसे राजसूय यज्ञफल तथा अचला लक्ष्मी प्राप्त होगी। इसे सुनने वाली स्त्री शीघ्र स्वामी सौभाग्यशाली होगी। जो भक्तिभाव से इसका श्रवण करेगा, वह बंधन मुक्त हो जायेगा। यह निश्चित है।।१००-१०३।।

नित्यं पठति यो भक्त्या राधां संपूज्य भक्तितः।
स प्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात्॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधिकोपा० राधापूजास्तोत्रादिकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

इस स्तव का नित्य पाठ तथा भक्ति पूर्वक राधा की पूजा करने वाला मनुष्य भवबन्धन मुक्त होकर गोलोक गमन करता है।।१०४।।

।।पञ्चपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधा के मन्त्र आदि का निरूपण

पार्वत्युवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रुतमत्यद्भुतं मया। अधुना कवचं ब्रूहि श्रोष्यामि त्वत्प्रसादतः॥१॥

पार्वती कहती हैं–मैंने आपसे अद्भुत यह पूजाविधि सुना। स्तव भी सुन लिया। अब आप कृपा पूर्वक कवच कहिये।।१।।

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम्। पुरा मह्यं निगदितं गोलोके परमात्मना॥२॥
अतिगुह्यं परं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा संप्राप्तो वेदमातरम्॥३॥
यद्धृत्वाऽहं तव स्वामी सर्वमाता सुरेश्वरी। नारायणश्च यद्धृत्वा महालक्ष्मीमवाप सः॥४॥

यद्धृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः।
बभूव शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिं कर्तुं पुरा विभुः॥५॥
विष्णुः पाता च यद्धृत्वा संप्राप्तः सिन्धुकन्यकाम्।
शेषो बिभर्ति ब्रह्माण्डं मूर्ध्नि सर्षपवद्यतः॥६॥

महेश्वर कहते हैं–हे दुर्गा! मैं परम अद्भुद् कवच कहता हूं। पूर्वकाल में मुझसे यह कवच गोलोक में परमात्मा ने कहा था। यह अत्यन्त गुप्त परतत्त्वात्मक तथा सर्वमन्त्रविग्रहरूप है। इसे धारण करके तथा पढ़ कर ब्रह्मा ने वेदमाता सावित्री को प्राप्त किया। इसे धारण करके नारायण ने सुरेश्वरी महालक्ष्मी को पाया था। इसे धारण करके सुरेश्वरी सर्वमाता तुम्हारा मैं (शिव) पति हो गया। इस कवच को धारण करके परमात्मा, निर्गुण, प्रकृति से परे, विभु श्रीकृष्ण सृष्टि की शक्ति से युक्त हो गये। इसे धारण करके विष्णु जगत्पालक हो गये तथा उन्होंने सिन्धुकन्या को प्राप्त किया। इसे धारण करके शेषनाग समग्र ब्रह्माण्ड को शिर पर सरसों के दाने की तरह धारण करते हैं।।२-६।।

यद्धृत्वा पठनादग्निर्जगत्पूतं करोति च। यद्धृत्वा वाति वातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम्॥७॥

यद्धृत्वा च स्वतन्त्रो हि मृत्युश्चरति जन्तुषु।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्त्रां चकार च वसुन्धराम्॥८॥

इसे धारण करके अग्नि लोकों को पावन करते हैं। इसे धारण करके वायुदेव समस्त ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं। इसे धारण करने के फलस्वरूप मृत्यु सभी प्राणीगण में स्वतन्त्रता के साथ विचरती है। इसी को धारण करके तथा पाठ करके परशुराम ने २१ बार पृथिवी को क्षत्रियविहीन कर दिया।।७-८।।

जामदग्न्यश्च रामश्च पठनाद्धारणात्प्रभुः। ययौ समुद्रं यद्धृत्वा राजसूयं चकार सः।
पपौ समुद्रं यद्धृत्वा पठनात्कुम्भसंभवः॥९॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां गुरुः।
जीवन्मुक्तौ च सिद्धौ च नरनारायणावृषी॥१०॥
यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः।
सिद्धेशः कपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षः प्रजापतिः॥११॥
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कर्मःशेषं बिभर्ति च।
सर्वाधारो यतो वायुर्वरुणः पवनो यतः॥१२॥
ईशानो दिक्पतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे।
कालः कालाग्निरुद्रश्च संहर्ता जगतां यतः॥१३॥
यद्धृत्वा गौतमः सिद्धः कश्यपश्च प्रजापतिः।
वसुदेवसुतां प्राप चैकांशेन तु तत्कलाम्॥१४॥
पुरा स्वजायाविच्छेदे दुर्वासा मुनिपुङ्गवः। संप्राप रामः सीतां च रावणेन हृतां पुरा॥१५॥
पुरा नलश्च संप्राप दमयन्तीं यतःसतीम्। शङ्खचूडो महावीरो दैत्यानामीश्वरो यतः॥१६॥
वृषो वहति मां दुर्गे यतो हि गरुडो हरिम्।
एवं संप्राप्य संसिद्धिं सिद्धाश्च मुनयः सुराः॥१७॥
यद्धृत्वा च महालक्ष्मीः प्रदात्री सर्वसंपदाम्।
सरस्वती सतां श्रेष्ठा यतः क्रीडावती रतिः॥१८॥
सावित्री वेदमाता च यतः सिद्धिमवाप्नुयात्।
सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीर्यतो विष्णुमवाप सा॥१९॥
यद्धृत्वा तुलसी पूता गङ्गा भुवनपावनी।
यद्धृत्वा सर्वसस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा॥२०॥

इसे धारण करके ही कुम्भज अगस्त्य ने समुद्रपान किया था। इस कवच को धारण करके सनत्कुमार ज्ञानीगण के गुरु हो गये। इसे धारण करने से नर तथा नारायण ऋषिगण जीवन्मुक्त तथा सिद्ध बन गये। इसके पाठ से ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ सिद्ध हो गये। इसी कवच के प्रभाव से कपिल सिद्ध हो गये। इसी के प्रभाव से दक्ष प्रजापति तथा भृगु ऋषि मुझसे द्वेष मानते हैं। इसी के प्रभाव से कच्छप शेषनाग को धारण करते हैं तथा इसी के प्रभाव से ईशान दिक्पति हो गये तथा वायु एवं वरुण सबके आधार हो गये। हे शिवे! इसी कवच को धारण करके यम शासक हो गये तथा काल, कालाग्निरुद्र जगत् के संहर्त्ता हो गये। इसे धारण करके गौतम सिद्ध बने तथा कश्यप मुनि प्रजापति बने। पूर्वकाल

में दुर्वासा मुनि पत्नी वियोग होने पर इसी पाठ के द्वारा पत्नीलाभ कर सके तथा राम ने रावण द्वारा अपहृत देवी सीता को इसी पाठ के द्वारा प्राप्त किया। इसी कवच पाठ के द्वारा पुण्यात्मा राजा नल ने महापुण्यवती दमयन्ती को पुनः प्राप्त किया और शंखचूड़ ने दैत्यों का आधिपत्य लाभ किया था। मैंने इसी कवच के बल से वृष को वाहनरूपेण प्राप्त किया था और हे दुर्गे! इसी के पाठ द्वारा हरि का वहन गरुड़ कर रहे हैं। इसी के पाठ से सिद्ध मुनिगणों ने सिद्धि लाभ किया था। इसी पाठ को पाकर महालक्ष्मी भी समस्त सम्पदा प्रदान कर पाती हैं तथा सरस्वती साधुगण की मान्या तथा रतिक्रीड़ा परायणा हो गईं। वेदमाता सावित्री ने इसे धारण करके सिद्धिलाभ किया था, मर्त्यलक्ष्मी सिन्धुकन्या ने इसी के बल से विष्णु को पतिरूप पाया था। इसी को धारण करके गंगा भुवनपावनी तथा तुलसी पवित्र हो गयी। इसी के कारण धरती सभी फसल से पूर्वा तथा सबकी आधार हैं।।९-२०।।

यद्धृत्वा मनसा देवी सिद्धा वै विश्वपूजिता।
यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुं पुत्रमवाप सा॥२१॥

इसी कवच को धारण करके मनसा देवी सर्वपूजिता तथा सिद्धा हो गईं। इसे धारण करके ही देवमाता अदिति ने विष्णु को (वामनावतार) में) पुत्ररूपेण प्राप्त किया था।।२१।।

पतिव्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राऽप्यरुन्धती। लेभे च कपिलं पुत्रं देवहूती यतः सती॥२२॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ प्राप च तत्प्रसूः।
त्वन्माता चापि संप्राप[1] त्वां देवीं गिरिजां यतः॥२३॥

एवं सर्वे सिद्धगणाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः। श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः॥२४॥

इसे ही धारण करने से लोपामुद्रा तथा अरुन्धती देवी पतिव्रताओं में प्रशंसनीय हो गईं। सती देवहूति ने इसी कवच के प्रभाव से कपिल को पुत्ररूप से प्राप्त किया था। इसी कवच के प्रभाव से शतरूपा ने उत्तानपाद तथा प्रियव्रत जैसे पुत्र पाये, तुम्हारी माता मेना ने तुम गिरिजा जैसी पुत्री को प्राप्त किया। इसी के प्रभाव से सभी सिद्धों ने सभी प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त किया था। विनियोग—जगन्मंगल नामक कवच के ऋषि हैं प्रजापति।।२१-२४।।

ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी[2] रासेश्वरी स्वयम्।
श्रीकृष्णभक्तिसंप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः॥२५॥
शिष्याय कृष्णभक्ताय ब्राह्मणाय प्रकाशयेत्।
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्॥२६॥
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं प्रिये।
कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना॥२७॥

---

१. क. त्वामेव प्रकृतिं सुताम्।
२. क. देवो रासेश्वरः स्व०।

मया दृष्टं च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा।
ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥२८॥
कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं राधिकां ङेन्तं वह्निजायान्तमेव च॥२९॥
कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदाऽवतु।
अं ऐं ह्रीं श्रीं राधिकायै वह्निजायान्तमेव च॥३०॥
मस्तकं केशसङ्घांश्च मन्त्रराजः सदाऽवतु।
ॐ रां राधां चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥३१॥
सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम्।
क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियां ङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम्॥३२॥

छन्दः है गायत्री, इसकी देवी रासेश्वरी स्वयं हैं। इसका प्रयोग (विनियोग) कृष्णभक्ति हेतु होता है। यह कवच ब्राह्मण शिष्य से ही कहना चाहिए, जो ब्राह्मणभक्त हो। अन्य के शिष्य तथा शठ से जो इसे व्यक्त करता है, उसे तो मृत्युमुख में ही जाना होगा। भले राज्य तथा प्राण तक चला जाये, तथापि यह कवच जिस किसी को कदापि प्रदान न करे। मैंने, ब्रह्मा ने तथा विष्णु ने यह प्रत्यक्ष देखा है कि परमात्मा कृष्ण ने भी भक्ति पूर्वक यह कवच कण्ठ में धारण किया है। (अब कवच कहते हैं)–कृष्ण द्वारा उपासित कल्पवृक्ष जैसा मन्त्र "ॐ राधायै स्वाहा" मेरे शिर की रक्षा करें। "ॐ ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा" मेरे कपाल की, नेत्रद्वय तथा कर्णद्वय की रक्षा करे। "ॐ ऐं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा" यह मन्त्रराज मेरे मस्तक के केशसमूह की रक्षा करें। "ॐ रां राधायै स्वाहा" यह सर्वसिद्धिदायक मन्त्र मेरे कपोल, नासिका तथा मुख की रक्षा करे। "ॐ क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियायै नमः" मेरे कण्ठ की रक्षा करें।।२५-३२।।

ॐ रां रासेश्वरीं ङेन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम्।
ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा[1] पृष्ठं सदाऽवतु॥३३॥
वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु।
तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥३४॥

ॐ रां रासेश्वर्यै नमः, स्कन्ध की, "ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा" मेरे पृष्ठ की, "ॐ वृन्दावन विलासिन्यै स्वाहा" मेरे वक्ष की, "ॐ तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा" मेरे नितम्बों की रक्षा करे।।३३-३४।।

कृष्णप्राणाधिका ङेन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम्।
पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः॥३५॥

"ॐ कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा" यह दोनों पैरों की तथा सर्वाङ्ग की सदैव रक्षा करे।।३५।।

१. क. बाहू।

प्राच्यां रक्षतु सा राधा वह्नौ कृष्णप्रियाऽवतु।
दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु॥३६॥
पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता। उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी॥३७॥
सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा॥३८॥
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम्। कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम्॥३९॥

पूर्व में राधा, अग्निकोण में कृष्णप्रिया, दक्षिण में रासेश्वरी, नैर्ऋत् कोण में गोपीशा, पश्चिम में निर्गुणा, वायव्य में कृष्णपूजिता, उत्तर में ईश्वरी मूल प्रकृति, ईशान कोण में सर्वेश्वरी, जल-स्थल-अन्तरिक्ष में, स्वप्न, जागरण में सर्वपूजिता तथा चतुर्दिक् महाविष्णु जननी सतत् मेरी रक्षा करें। हे दुर्गे! यह मैंने श्री जगन्मंगल परम उत्तम कवच कह दिया।।३६-३९।।

यस्मै कस्मै न दातव्यं गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥४०॥

यह तो गुह्य से भी गुप्ततर कवच है। इसे जिस किसी को कदापि प्रदान न करे। इसे तुमसे मैंने तुम्हारे स्नेह के ही कारण कह दिया। यह कवच किसी से कहना वर्जित है।।४४।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत्॥४१॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता।
तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता॥४२॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता॥४३॥

सर्वप्रथम वस्त्र-अलंकार-चन्दनादि से सविधि गुरु की अर्चना करके इसे कण्ठ अथवा दक्षिण बाहु में बांधने वाला विष्णु के समान हो जाता है। विशेष महोत्सवों के अवसर को 'पर्वन्' कहा गया है। उसकी जो अधिष्ठातृ देवी है, वे ही पार्वती हैं। इसके अतिरिक्त वे पर्वत में उत्पन्न होने के कारण पर्वत की अधिष्ठातृ देवी होकर पार्वती हैं।।४५-४७।।

सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनीति च।
सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी॥४४॥
शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत्।
यदि स्यात्सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत्॥४५॥
एतस्मात्कवचाद्दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा।
विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम्॥४६॥

'सना' शब्द सर्वकाल द्योतक है। ''तनी'' विस्तारवाचक है। तभी ये देवी सर्वकाल में विद्यमान

हैं। तभी इनको सनातनी कहा गया। जो इसका जप १०० लाख करेगा, उसे यह कवच सिद्ध हो गया जाने। वह कदापि अग्नि में दग्ध नहीं होगा। हे देवी दुर्गे! पूर्वकाल में दुर्योधन कौरव ने निश्चित रूप से इसी कवच को सिद्ध करके अग्नि तथा जल स्तम्भन किया था।।४८-५०।।

मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे। सूर्यपर्वणि मेरौ च स सांदीपनये ददौ॥४७॥
[1]बल्लाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः। कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥४८॥

पूर्वकाल में यह कवच मैंने ऋषि सनत्कुमार को प्रदान किया था तथा मेरु पर्वत पर सूर्यग्रहण काल में यही कवच सनत्कुमार ने मुनि सान्दीपनि को प्रदान किया था। उन सान्दीपनी मुनि ने यही कवच बलराम को दिया था तथा बलराम ने अपने शिष्य दुर्योधन कौरव को यही कवच प्रदान किया था। इस कवच के प्रभाव से मानवगण जीवन्मुक्त हो जाते हैं।।५१-५२।।

नित्यं पठति भक्त्येदं तन्मन्त्रोपासकश्च यः।
विष्णुतुल्यो भवेन्नित्यं राजसूयफलं लभेत्॥४९॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम्। सर्वव्रतोपवासेन पृथिव्याश्च प्रदक्षिणैः॥५०॥
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यं वै सत्यरक्षणे। नित्यं श्रीकृष्णसेवायां कृष्णनैवेद्यभक्षणे॥५१॥
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं च लभेन्नरः। तत्फलं लभते नूनं पठनात्कवचस्य च॥५२॥

जो मनुष्य राधामन्त्रोपासक होकर इस कवच का भक्तिपूर्ण चित्त से पाठ करेगा, वह तो विष्णु के समान होकर राजसूय यज्ञफल प्राप्त करेगा। सभी तीर्थों में स्नान-दानादि का, सभी व्रत-उपवास का, सर्वयज्ञानुष्ठान का, पृथिवी प्रदक्षिणा का, सत्य रक्षण का जो फल मनुष्य को प्राप्त होता है तथा जो फल नित्य कृष्णसेवा तथा उनके नैवेद्य भक्षण का, चारों वेदों के पाठ का मनुष्य को मिलता है, वही फल उसे मात्र इस कवच पाठ से ही मिल जायेगा।।४९-५२।।

राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने। दावाग्नौ सङ्कटे चैव दस्युचौरान्विते भये॥५३॥
कारागारे [2]विपद्ग्रस्ते घोरे च दृढबन्धने।
व्याधियुक्तो भवेन्मुक्तो धारणात्कवचस्य च॥५४॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि। त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया॥५५॥

राजद्वार, श्मशान, सिंह-व्याघ्राक्रान्त वन में, दावाग्नि भय होने पर, संकट उत्पन्न होने पर, चोर-डाकू से भय होने पर, कारागार रूपी विपत्तिग्रस्तता में, घोर दृढ़ बन्धन से बद्ध होने में, व्याधि होने पर वह व्यक्ति इस कवच धारण मात्र से मुक्त हो जाता है। हे महेश्वरी! यह सब जो कुछ भी मैंने कहा है, सब तुम्हारी ही वस्तु है। तब सबकी ज्ञाता, सर्वरूपा हो। तुम मायारूपा हो। अतः माया के द्वारा यह सब पूछ रही हो। यह सब तुम्हारी माया ही है।।५३-५५।।

१. क. बालाय।
२. क. रिपुग्रस्ते।

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकाख्यानं स्मारं स्मारं च माधवम्।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो बभूव सः॥५६॥
न कृष्णसदृशो देवो न गङ्गासदृशी सरित्। न पुष्करात्परं तीर्थं न वर्णो ब्राह्मणात्परः॥५७॥
परमाणोः परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान्।
नभः परं च विस्तीर्णं यथा नास्त्येव नारद॥५८॥
तथा न वैष्णवाज्ज्ञानी योगीन्द्रः शङ्करात्परः।
कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद॥५९॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—यह राधिकोपाख्यान कहने के कारण तथा पुनः-पुनः श्रीकृष्ण का स्मरण होने के कारण शिव का सर्वाङ्ग रोमांचित हो उठा। उनके नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो गये। श्रीकृष्ण के समान देवता, गंगा के समान नदी, पुष्कर के समान तीर्थ, ब्राह्मण के समान वर्ण है ही नहीं। इसी प्रकार परमाणु से सूक्ष्म, महाविष्णु से परम महान्, आकाश के समान विस्तृत कुछ भी नहीं है। हे नारद! वैष्णव से श्रेष्ठ कोई ज्ञानी नहीं होता। ये प्रभु वैष्णव योगीन्द्र हैं। इनसे श्रेष्ठ वैष्णव तथा योगी है ही नहीं! हे नारद! शिव ने काम-क्रोध-लोभ-मोह पर विजयलाभ कर लिया है।॥५६-५९॥

स्वप्ने जागरणे शश्वत्कृष्णध्यानरतः शिवः।
यथा कृष्णस्तथा शंभुर्न भेदो माधवेशयोः॥६०॥
यथा शंभुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः। तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम्॥६१॥

प्रभु शंकर तो स्वप्न काल में जागरण तथा शयन काल में भी सतत् कृष्णध्यानरत रहते हैं। जो शंभु हैं, वे ही कृष्ण हैं। इन दोनों में भेद है ही नहीं। हे वत्स! शंभु जिस प्रकार वैष्णवों में प्रधान हैं, देवताओं में माधव जिस प्रकार प्रधान हैं, तदनुरूप यह कवच समस्त कवच में प्रधान है।॥६०-६१॥

शिशब्दो मङ्गलार्थश्च वकारो दातृवाचकः।
मङ्गलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः॥६२॥
नराणां संततं विश्वेशं कल्याणं करोति यः।
कल्याणं मोक्ष इत्युक्तं स एव शङ्करः स्मृतः॥६३॥
ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां वेदवादिनाम्। तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः॥६४॥

'शि' का तात्पर्य है मंगल। 'व' दाता का अर्थ वाचक है। अतः सर्वमंगल प्रदाता जो देव हैं, वे ही "शिव" कहे गये हैं। मंगलप्रदाता को शिव कहा जाता है। जो विश्व के ईश्वर मनुष्यों (प्राणीगण) का सतत् कल्याण करते हैं, वे ही शंकर हैं। कल्याण ही मोक्ष है। जो ब्रह्मादि देवता तथा वेदवादी मुनियों में श्रेष्ठ हैं, वही महान् देवता ही महादेव हैं।॥६२-६४॥

महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी। तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः॥६५॥
विश्वस्थानां च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः॥६६॥

समस्त विश्व में जिन मूलप्रकृति ईश्वरी की पूजा की जाती है, वे जिनकी पूजा में तत्पर हैं, वे ही महादेव कहे गये हैं। वे विश्व में स्थित सभी के महत् ईश्वर स्वयं हैं। तभी मनीषी लोग उनको महेश्वर कहते हैं।।६५-६६।।

हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुश्च महेश्वरः।
श्रीकृष्णभक्तिदाता यो भवान्पृच्छति मां च किम्॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधिकोपा० तन्मन्त्रादिकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

हे ब्रह्मपुत्र नारद! तुम तो इसलिये धन्य हो कि कृष्ण की भक्ति देने वाले महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं। तुम मुझसे सभी बात क्यों पूछते रहते हो?।।६७।।

षट्पंचाशत्तम अध्याय समाप्त

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्गा उपाख्यान, दुर्गा के सोलह नामों की व्युत्पत्ति

नारद उवाच

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्॥१॥
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमाया शिवा सती।
नित्या सत्या भगवती शर्वाणी सर्वमङ्गला॥२॥
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वती च सनातनी।
नामानि कौथुमोक्तानि सर्वेषां शुभदानि च॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैंने आपसे देवी का अतिशय विस्मयकारी उपाख्यान सुना। सम्प्रति अति उत्तम श्री दुर्गा का उपाख्यान कहिये, जो दुर्गा, नारायणी, ईशानी, विष्णुमाया, शिवा, सती, नित्या, सत्या, भगवती, सर्वाणी, सर्वमंगला, अम्बिका, वैष्णवी, गौरी, पार्वती, सनातनी इन १६ नामों वाली हैं, जिनके ये सभी नाम वेद के कौथुमशाखा में कहे गये तथा अत्यन्त शुभ हैं।।१-३।।

अर्थं षोडशनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम्। ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तं सर्वसंमतम्॥४॥

केन वा पूजिता साऽऽदौ द्वितीये केन वा पुरा।
तृतीये वा चतुर्थे वा केन सर्वत्र पूजिता॥५॥

हे वेदज्ञप्रवर! इन १६ नामों का ईप्सित अर्थ जो वेदों में सर्वसम्मतभाव से निर्दिष्ट है, उसे विशेष रूप से मुझसे कहिये। ये देवी सर्वप्रथम किसके द्वारा पूजित की गईं? द्वितीय बार इनकी पूजा किसने किया था? तृतीय एवं चतुर्थ बार इन्होंने किसके द्वारा पूजित होकर सर्वत्र पूजा प्राप्त किया? (अर्थात् सर्वत्र पूजित होने लगीं?)॥४-५॥

नारायण उवाच

अर्थं षोडशनाम्नां च विष्णुर्वेदे चकार सः।
ज्ञात्वा पुनः पृच्छसि त्वं कथयामि यथागमम्॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! दुर्गा देवी के ये १६ नाम वेद में विष्णु द्वारा पहले कहे गये हैं। इनसे अवगत होकर भी तुम पूछ रहे हो? तुमको तो यह अर्थ ज्ञात होना चाहिए!, तथापि मैं यथाशास्त्र वर्णन कर रहा हूं। श्रवण करो॥६॥

दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे च कर्मणि। शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि॥७॥

महाभयेऽतिरोगे चाप्याशब्दो हन्तृवाचकः।
एतान्हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्तिता॥८॥

१. दुर्गा—दैत्य, महाविघ्न, संसारबन्धन, शुभ-अशुभ कर्म, शोक-दुःख, नरक, यमदण्ड, पुनः-पुनः जन्म, महाभय, रोग, यह "दुर्ग" शब्द का अर्थ है। "आ" शब्द का अर्थ है, जो इन सब दुर्ग का हनन करे। वे देवी दुर्गा हैं॥७-८॥

यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता॥९॥

ईशानः सर्वसिद्ध्यर्थे चाशब्दो दातृवाचकः।
सर्वसिद्धिप्रदात्री या साऽपीशाना प्रकीर्तिता॥१०॥
सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना।
मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्तिता॥११॥
शिवे कल्यणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया।
प्रिये दातरि चाऽऽशब्दो शिवा तेन प्रकीर्तिता॥१२॥

सद्बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे। पतिव्रता सुशीला च सा सती प्रकीर्तिता॥१३॥

२. नारायणी—यश, तेज, रूप, गुण द्वारा जो नारायण के समान गुण वाली हैं, जो नारायण की शक्ति हैं, वे नारायणी कही गई हैं।

३. ईशानी–यह सर्वसिद्धि वाचक शब्द है। इसमें 'आ' शब्द दातृ वाचक है। जो सर्वदा सर्वसिद्धि प्रदाता हैं। वे ही ईशान हैं। तभी देवी ईशाना हैं।

४. विष्णुमाया– पूर्वकाल में विष्णु ने सृष्टिकाल में माया की सृष्टि करके उसके द्वारा समग्र विश्व को मोहित किया था। तभी दुर्गा को विष्णुमाया कहा गया।

५. शिवा–शिव शब्द कल्याणवाचक है। "आ" शब्द दाता अथवा प्रिय अर्थात्मक है। तभी कल्याणप्रदा जो हैं, वे ही शिवा हैं।

६. सती–जो पतिव्रता तथा सुशीला, प्रति युग में सम्यक् ज्ञान की अधिष्ठात्री के रूप में वर्त्तमान हैं, वे ही पतिव्रता तथा सतत् स्वभाव हैं। तभी वे ही सती कही गईं।।९-१३।।

यथा नित्यो हि भगवान्नित्या भगवती तथा।
स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृते लये।।१४।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम्।
दुर्गा सत्यस्वरूपा सा प्रकृतिर्भगवान्यथा।।१५।।
सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे।
सिद्धादिके भगो ज्ञेयस्तेन सा भगवती स्मृता।।१६।।
सर्वान्मोक्षं प्रापयति जन्ममृत्युजरादिकम्।
चराचरांशच विश्वस्थाञ्छर्वाणी तेन कीर्तिता।।१७।।
मङ्गलं मोक्षवचनं चाऽऽशब्दो दातृवाचकः।
सर्वान्भोक्षान्या ददाति चैव स्यात्सर्वमङ्गला।।१८।।

७. नित्या–जैसे भगवान् नित्य हैं, वैसे ही देवी भी नित्या हैं। प्राकृतलय होने पर ये स्वमाया द्वारा कृष्ण में लीन हो जाती हैं।

८. सत्या–तृण से लेकर ब्रह्मा तक सब मिथ्या है। केवल भगवान् तथा मूलप्रकृति देवी दुर्गा ही सत्य हैं। तभी ये सत्या कही गईं।

९. भगवती–सिद्धि आदि ऐश्वर्य सभी युगों में देवी में ही अधिष्ठित रहता है। भग = सिद्धि। समस्त सिद्धि इनमें स्थित है। तभी ये भगवती कही गईं।

१०. शर्वाणी–ये विश्वव्यापी सचराचर सब को जन्म-मृत्यु-जरा से मुक्त करती हैं। तभी ये शर्वाणी कही गई हैं।

११. सर्वमंगला–"मंगल" का अर्थ है मोक्ष। "आ" का अर्थ है प्रदान। जो मंगल प्रदान सबको करे। तभी ये देवी सर्वमंगला कही गईं।।१४-१८।।

हर्षे संपदि कल्याणे मङ्गलं परिकीर्तितम्। तान्ददाति च सर्वेभ्यस्तेन सा सर्वमङ्गला।।१९।।

मंगल शब्द का प्रयोग हर्ष, सम्पदा तथा कल्याण के लिये भी किया गया है। इसे जो प्राणीगण को प्रदान करे, वही सर्वमंगला है। तभी दुर्गा देवी सर्वमंगला कही गईं।।१९।।

अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा।
पूजिता वन्दिता माता जगतां तेन साऽम्बिका।।२०।।
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णोः शक्तिस्वरूपिणी।
सृष्टौ च विष्णुना सृष्टा वैष्णवी तेन कीर्तिता।।२१।।
गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले।
तस्याऽऽत्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्तिता।।२२।।
गुरुः शंभुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती।
गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्तिता।।२३।।
तिथिभेदे पर्वभेदे कल्पभेदेऽन्यभेदके।
ख्यातौ तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्तिता।।२४।।
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तितां तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता।।२५।।
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता।।२६।।

१२. **अम्बा**–अम्बा शब्द मातृवन्दना तथा पूजनार्थ प्रयोग होता है। अतः जो जगन्माता पूज्या-वन्दनीया हैं, वे दुर्गा ही अम्बा हैं।

१३. **वैष्णवी**–जो विष्णुभक्ता, विष्णुप्राणस्वरूपा, विष्णु की शक्तिरूपा हैं, जो विष्णु द्वारा रचित सृष्टि में जन्मी हैं। वे दुर्गा ही वैष्णवी हैं। विष्णुभक्तगण इन दुर्गा को ही वैष्णवी कहते हैं।

१४. **गौरी**–गौर शब्द का अर्थ पीतवर्ण, अनासक्त तथा निर्मल परब्रह्म। यह परमात्म शक्ति ही गौरी कही गई हैं, जो दुर्गा का नाम है। शंभु सभी के गुरु रूप हैं। उनकी पतिव्रता प्रियतमा शक्ति तथा जगद्गुरु कृष्ण की माया होने के कारण वे गौरी हैं।

१५. **पार्वती**–जो तिथिभेद, पर्वभेद, कल्पभेद तथा अन्य भेद के कारण विख्यात हैं, वे ही पार्वती हैं। पर्व का तात्पर्य है "महोत्सव की तिथि"। जो उनकी अधिष्ठातृ देवी पार्वती हैं, वे ही दुर्गा भी हैं। ये देवी पर्वतकन्या होकर जन्मी थीं, तभी पर्वताधिष्ठातृ होने के कारण वे पार्वती हैं।।२०-२६।।

सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनीति च।
सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी।।२७।।

१६. **सनातनी**–"सना" का अर्थ है सर्वकाल। विस्तारार्थक है "तनी।" जो सर्वकाल में विद्यमान हैं, वे सनातनी ही दुर्गा हैं।।२७।।

अर्थः षोडशनाम्नां च कीर्तितश्च महामुने। यथागमं त्वं वेदोक्तोपाख्यानं च निशामय।।२८।।

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना। वृन्दावने च सृष्ट्यादौ गोलोके रासमण्डले॥२९॥
मधुकैटभभीतेन ब्रह्मणा सा द्वितीयतः। त्रिपुरप्रेरितेनैव तृतीये त्रिपुरारिणा॥३०॥

हे महामुने! दुर्गा के इन षोडश नाम का अर्थ मैंने कह दिया। अब इनका वेदोक्त उपाख्यान भी कहता हूं। श्रवण करो। सबसे पहले गोलोक में वृन्दावनस्थ रासमण्डल में दुर्गा की (सर्वप्रथम) पूजा परमात्मा कृष्ण द्वारा सम्पन्न की गई। द्वितीय बार मधु-कैटभ दानवों से भयभीत ब्रह्मा ने इनकी पूजा किया। तृतीय बार त्रिपुरवधार्थ त्रिपुरारि शिव ने इनकी पूजा किया।।२८-३०।।

भ्रष्टश्रिया महेन्द्रेण शापाद्दुर्वाससः पुरा। चतुर्थे पूजिता देवी भक्त्या भगवती सती॥३१॥
तदा मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुङ्गवैः। पूजिता सर्वविश्वेषु समभूत्सर्वतः सदा॥३२॥

तीसरी बार दुर्गा की पूजा सम्पन्न होने के पश्चात् इनकी चतुर्थ बार पूजा इन्द्र ने किया जो दुर्वासा के शाप के कारण श्रीभ्रष्ट तथा अधिकार भ्रष्ट हो गये थे। इसी कारण परम भक्ति पूर्वक इन्द्र ने इनका पूजन किया। इसके पश्चात् मुनिगण, देवगण, सिद्धगण तथा ऋषिवृन्द आदि द्वारा तथा अन्य मनुष्यों द्वारा समस्त विश्व में दुर्गा की पूजा होने लगी!।।३१-३२।।

तेजः सु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता पुरा मुने।
सर्वे देवा ददुस्तस्यै शस्त्राण्याभरणानि च॥३३॥

दुर्गादयश्च दैत्याश्च निहिता दुर्गया तथा। दत्तं स्वराज्यं देवेभ्यो वरं च यदभीप्सितम्॥३४॥
कल्पान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना। राज्ञा च मेधशिष्येण मृन्मय्यां च सरित्तटे॥३५॥

मेषादिभिश्च महिषैः कृष्णसारैश्च गण्डकैः।
छागैरिक्षुसुकूष्माण्डैः पक्षिभिर्बलिभिर्मुने॥३६॥
वेदोक्तांश्चैव दत्त्वैवमुपचारांस्तु षोडश।
ध्यात्वा च कवचं धृत्वा संपूज्य च विधानतः॥३७॥

हे मुनिवर! पहले देवी दुर्गा देवगण के तेज से आविर्भूत हो गई थीं। देवगण ने उनको तब अस्त्र एवं आभूषण अर्पित किया था। भगवती दुर्गा ने दुर्गप्रभृति प्रबल पराक्रमी दैत्यों को परास्त करके देवताओं को उनका-उनका पद तथा अनेक वर भी दिया था। कल्पान्तर काल में महात्मा मेधा के शिष्य सुरथ द्वारा नदी तीर पर दुर्गा की मृण्मयी मूर्त्ति की पूजा की गई। उक्त राजा ने मेष, महिष, कृष्णसार मृग, गैंडा, बकरा, कोहड़ा तथा पक्षी आदि की बलि प्रदान किया था। तदनन्तर वेदोक्त १६ उपचारों से सविधि दुर्गा की पूजा भी किया। इन्होंने ध्यान तथा कवच धारण करके सविधि दुर्गापूजन किया।।३३-३७।।

राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम्। मुक्तिं संप्राय वैश्यश्च संपूज्य च सरित्तटे॥३८॥

तदनन्तर राजा ने दुर्गा की स्तुति करके मनोभिलषित वर भी पाया था। देवीपूजक समाधि वैश्य ने भी उसी नदी तट पर देवी की आराधना करके मोक्ष प्राप्त किया था।।३८।।

तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः।
ससर्ज मृन्मयीं तां वै गभीरे निर्मले जले॥३९॥
मृन्मयीं तामदृष्ट्वा च जलधौतां नराधिपः।
रुरोद च तदा वैश्यस्ततः स्थानान्तरं ययौ॥४०॥

तदनन्तर राजा एवं उस वैश्य ने सजल नेत्र की स्थिति में उस प्रतिमा का विसर्जन गहरे निर्मल जल में किया था। उस समय जल में विलीन हो गई मिट्टी की प्रतिमा जल में घुली देख कर राजा रोने लगा। तभी वैश्य भी वहां से पुष्कर तीर्थ चला गया।।३९-४०।।

त्यक्त्वा देहं च वैश्यस्तु पुष्करे दुष्करं तपः।
कृत्वा जगाम गोलोकं दुर्गादेवीवरेण सः॥४१॥
राजा ययौ स्वराज्यं च पूज्यो निष्कण्टकं बली।
भोगं च बुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम्॥४२॥
भार्यां स्वराज्यं संन्यस्य पुत्रे वै कालयोगतः।
मनुर्बभूव सावर्णिस्तप्त्वा वै पुष्करे तपः॥४३॥

पुष्कर तीर्थ में दुस्तर तपःश्चरण द्वारा सुरथ वैश्य ने देह त्याग दिया तथा दुर्गा के वर के द्वारा उसने गोलोक लाभ किया। बली राजा ने अपना निष्कण्टक राज्यलाभ किया, जहां उसने राज्य का सुख भोग ६०००० वर्ष पर्यन्त किया था। सर्वान्त में उसने स्त्री तथा राज्य पुत्र के संरक्षण में दे दिया। उसने पुष्कर में तप करके कालयोग से सावर्णि मनु होकर जन्म लिया था।।४१-४३।।

इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम्।
दुर्गाख्यानं मुनिश्रेष्ठ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० दुर्गोपा० दुर्गादिनामव्युत्पत्त्यादि-
कथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५७।।

हे नारद! मुनिप्रवर! यह मैंने शास्त्रोक्त दुर्गा का उपाख्यान तुमसे कह दिया। अब क्या सुनने की कामना है?।।४४।।

।।सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुरथ के वंश का वर्णन, तारा हरण वृत्तान्त वर्णन, शुक्राचार्य द्वारा चन्द्रमा का पापनाश

नारद उवाच

कस्य वंशोद्भवो राजा सुरथो धर्मिणां वरः। कथं संप्राप वै ज्ञानं मेधसो ज्ञानिनां वरात्॥१॥
कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्मेधसो मुनिसत्तम। बभूव कुत्र संवादो नृपस्य मुनिना सह॥२॥
सख्यं बभूव कुत्रास्य वा प्रभो नृपवैश्ययोः। व्यासेन श्रोतुमिच्छामि वद वेदविदां वर॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—धार्मिक प्रवर सुरथ राजा किसके वंश में उत्पन्न हुए थे? उन्होंने किस प्रकार ज्ञानीप्रवर मेधस ऋषि से ज्ञानलाभ किया था? मुनिवर मेधस किस वंश के थे? किस स्थान पर राजा तथा मुनि मेधस का वार्त्तालाप हुआ था? हे मुनिवर! कहां पर राजा का तथा वैश्य का परस्परतः मिलन हुआ था? यह सब सविस्तृत रूपेण कहिये। हे वेदज्ञप्रवर! कृपया वर्णन करिये!॥१-३॥

नारायण उवाच

अत्रिश्च ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य पुत्रो निशाकरः। स च कृत्वा राजसूयं द्विजराजो बभूव ह॥४॥
गुरुपत्न्यां च तारायां तस्याभूच्च बुधः सुतः। बुधपुत्रस्तु चैत्रश्च तत्पुत्रः सुरथः स्मृतः॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—ब्रह्मा के पुत्र थे अत्रि। अत्रिपुत्र थे चन्द्रमा। इन्होंने राजसूय यज्ञ सविधि सम्पन्न किया था। तभी उनको द्विजराज कहा गया है। उन्होंने गुरुपत्नी तारा से बुध नामक सन्तान उत्पन्न किया था। बुध के पुत्र थे चैत्र, उनके पुत्र थे सुरथ॥४-५॥

नारद उवाच

गुरुपत्न्यां च तारायां समभूत्तत्सुतः कथम्। अहो व्यतिक्रमं ब्रूहि देवस्य च महामुने॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महामुनि! यह तो विचित्र व्यतिक्रम की बात है कि चन्द्रमा ने गुरुपत्नी तारा से कैसे पुत्र उत्पन्न किया? कृपया कहिये॥६॥

नारायण उवाच

संपन्मत्तो महाकामी[1] ददर्श जाह्नवीतटे। तारां सुरगुरोः पत्नीं धर्मिष्ठां च पतिव्रताम्॥७॥
सुस्नातां सुन्दरीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
सुश्रोणीं सुनितम्बाढ्यां मध्यक्षीणां मनोहराम्॥८॥
सुदतीं कोमलाङ्गीं च नवयौवनसंयुताम्। सूक्ष्मवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥९॥

१. ख. व्यचरज्जा०।

कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना।
सिन्दूरबिन्दुना चारुफालमध्यस्थलोज्ज्वलाम्॥१०॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—सम्पदा से उन्मत्त, महाकामी चन्द्रमा ने जाह्नवी तट पर सुरगुरु की पत्नी को देखा, जिन्होंने तत्काल स्नान किया था। वे सुन्दरी, रम्या, धर्मिष्ठा, पतिव्रता, स्थूल उन्नत स्तनों वाली, उत्तम जंघा वाली, अति सुन्दर नितम्बयुक्त, क्षीण कटि, उत्तम दन्तपंक्ति से शोभायमान, कोमल अंगों वाली, नवयौवना, महीन वस्त्रधारिणी, रत्नाभूषण भूषिता थीं। उनके ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी लगी थी। उसके नीचे चन्दन की बिन्दी लगी थी। उनकी उज्ज्वल तथा सुन्दर मांग में सिन्दूर लगा था॥७-१०॥

वायुनाऽधोवस्त्रहीनां सकामां [1]रक्तलोचनाम्।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां पक्वबिम्बाधरां वराम्॥११॥
सुस्मितां नम्रवक्त्रां च लज्जया चन्द्रदर्शनात्।
गच्छन्तीं स्वगृहं हर्षान्मत्तवरणगामिनीम्॥१२॥

तभी वायु के प्रवाह के कारण उनका अधोवस्त्र हट गया था। वह रक्तवर्ण नेत्र वाली, कामभावयुक्त, शरद् पूर्णिमा के चन्द्र जैसे आनन वाली, पक्व बिम्बफल जैसे अधर एवं ओष्ठ वाली, मन्द मुस्कान युक्त, शिर झुकाये, सलज्जभाव से चन्द्र को देखती अत्यन्त हर्षित होकर मत्त हाथी की तरह चाल से गृह जाने लगी॥११-१२॥

तां दृष्ट्वा मन्मथाक्रान्तश्चन्द्रो लज्जां जहौ मुने।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः सकामस्तामुवाच सः॥१३॥

हे मुनिवर! उस रमणी को देख कर कामभाव से आक्रान्त चन्द्रमा को रोमांच हो आया तथा उन्होंने लज्जा को तिलांजलि देकर कामुकतापूर्ण वाक्य उस स्त्री से कहा—॥१३॥

चन्द्र उवाच

योषिच्छ्रेष्ठे क्षणं तिष्ठ वरिष्ठे रसिकासु च। सुविदग्धे विदग्धानां मनो हरसि संततम्॥१४॥
निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्त्रं कामसागरे। तपःफलेन त्वां प्राप बृहच्छ्रोणीं बृहस्पतिः॥१५॥
अहो तपस्विना सार्धमविदग्धेन वेधसा। योजिता त्वं रसवती शश्वत्कामातुरा वरा॥१६॥

चन्द्र कहते हैं—हे स्त्रियों में श्रेष्ठ! रसिक नारीगण में तुम सर्वश्रेष्ठ हो। तुम तो चतुर लोगों के मन को भी सतत् हरण करने वाली हो। हे कामसागरे! कुछ समय रुक जाओ। तुमने मेरे चित्त का हरण कर लिया है। बृहस्पति ने सहस्त्र वर्षों तक तपस्या के फल से बृहद् श्रोणि वाली तुमको प्राप्त किया है। हे सर्वोत्तमे! तुम रसवती रमणीगण में प्रधान हो। विधाता की यह कैसी विडम्बना है, जो तुम्हारी जैसी सदा कामबाण से पीड़िता नारी का सम्बन्ध संघटन एक तपस्वी के साथ करा दिया॥१४-१६॥

१. क. वक्रलो०।

किं वा सुखं च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे। विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमः सुखसागरः॥१७॥
कामेन कामिनी त्वं च दग्धाऽसि व्यर्थमीश्वरि।
कर्मणा वाऽऽत्मदोषाद्वा को जानाति मनः स्त्रियाः॥१८॥

तुम जैसी विज्ञ नारी को अज्ञ तपस्वी के साथ संगम होने से क्या सुख मिलेगा? चतुर नारी का जब चतुर वर के साथ संगम होता है, तब सुख का सागर उमड़ पड़ता है। हे ईश्वरी! कामिनी! तुम कर्मदोष से अथवा अपने दोष से काम द्वारा क्यों दग्धा हो रही हो? अथवा स्त्री का मर्म कौन जान सकता है?॥१७-१८॥

दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम्। नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव॥१९॥
शश्वत्तपस्यायुक्तश्च [1]कृष्णमात्मानमीप्सितम्।
स्वप्ने जागरणे वाऽपि ध्यायन्नास्ते बृहस्पतिः॥२०॥
सर्वकामरसज्ञां त्वं निष्कामं काममीप्सितम्।
ध्यायन्ती कामुकी शश्वद्यूनां शृङ्गारमात्मनि॥२१॥
अन्यश्च त्वन्मनः कामो भिन्नं त्वद्भर्तुरीप्सितम्।
ययोश्च भिन्नौ विषयौ का प्रीतिःसङ्गमे तयोः॥२२॥

तुम नवयौवना हो। तुम्हारे पति वृद्ध हैं। तुम्हारा दुर्लभ यौवन दिन-प्रतिदिन व्यर्थ हो रहा है। बृहस्पति तो निरन्तर तपस्या में लगे रहते हैं। वे तो जाग्रतावस्था में तथा स्वप्नावस्था तक में सदा परमेश्वर कृष्ण का ही ध्यान करते रहते हैं। तुम कामुकी तथा सभी कामकला में पटु हो। तुम अपनी अभिलाषा के अनुरूप युवक के साथ अतिशय शृंगार रस की कामना करती रहती हो। हे कान्ते! तुम्हारी मनोकामना अन्य प्रकार की है, जबकि तुम्हारे पति की मनोकामना पूर्णतः अन्य प्रकार की है! भिन्न-भिन्न रुचि वाले नायक-नायिका का संगम कैसे सम्भव है? वह कैसे प्रीतिप्रद हो सकता है?॥१९-२२॥

वसन्ती पुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते। मोदस्व मां गृहीत्वा त्वं वसन्ते माधवीवने॥२३॥
सुगन्ध्युत्फुल्लकुसुमे निर्जने चन्दने वने। भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम्॥२४॥

अतः अतिमनोरम आसन्न वसन्तकालीन माधवी वन में गन्ध-चन्दनादि से चर्चित वसन्तकालीन पुष्पों से सज्जित शय्या पर मेरे साथ सुखभोग करो। हे भाग्यवान युवतीश्रेष्ठ! तुम सुगन्धित निर्जन में सुगन्ध युक्त खिले पुष्पों से परिपूर्ण चन्दन वन में मेरे साथ आनन्द करो॥२३-२४॥

चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना। रम्ये चम्पकतल्पे च क्रीडां कुरु मया सह॥२५॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां मन्दचन्दवायुना। रामे रम मया सार्धमवीत निर्जने वने॥२६॥

---
१. क. ०मीश्वरम्।

वहां चम्पा तथा चन्दन के वन में चम्पा आदि की सुगन्धित सुरभित वायु बहती है। वहां रम्य चम्पक शय्या पर मेरे साथ क्रीड़ा करो। हे सुन्दरी! रमणीय मलयाचल की कन्दरा में जो मन्द चन्दन वायु से युक्त है, वहां निर्जन वन में मेरे साथ रमण करो।।२५-२६।।

स्वर्णरेखातटवने नर्मदापुलिने शुभे। सुराणां वाञ्छितस्थाने रतिं कुरु मया सह।।२७।।

स्वर्णरेखा नदी तट पर स्थित पुलिन में, नर्मदा के निकटवर्त्ती शुभ वनों में, देवों के वांछित स्थान में मेरे साथ रति करो।।२७।।

इत्युक्त्वा मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः। पपात चरणे देव्या मन्दो मन्दाकिनीतटे।।२८।।

निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। अभीतोवाच कोपेन रक्तपङ्कजलोचना।।२९।।

मन्दबुद्धि चन्द्रमा काम से भी सुन्दर कामोन्मत्त थे। यह कहने के अनन्तर वे तारा के चरणों पर गिर पड़े। जब चन्द्र ने पथरोध कर लिया (मार्ग रोक लिया) तब बृहस्पति की पत्नी तारा के नेत्रद्वय क्रोध से रक्तवर्ण हो गयी। उन्होंने निर्भयता के साथ क्रोध पूर्वक चन्द्रमा से कहा—।।२८-२९।।

तारोवाच

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मन्ये परस्त्रीलम्पटं शठम्।
अत्रेरभाग्यात्त्वं पुत्रौ व्यर्थं ते जन्म जीवनम्।।३०।।

अरे कृत्वा राजसूयमात्मानं मन्यसे बली। बभूव पुण्यं ते व्यर्थं विप्रस्त्रीषु च यन्मनः।।३१।।

यस्य चित्तं परस्त्रीषु सोऽशुचिः सर्वकर्मसु।
न कर्मफलभाक्पापी निन्द्यो विश्वेषु सर्वतः।।३२।।

तारा कहती हैं—हे चन्द्र! तुमको धिक्कार है। तुमको मैं तृणवत् समझ रही हूं। तुम परस्त्री लम्पट तथा दुष्ट हो। यह अत्रि ऋषि का दुर्भाग्य है कि तुम जैसा पुत्र उनको मिला! तुम्हारा जन्म तथा जीवन नष्ट है। हे चन्द्र! तुम राजसूय यज्ञ करके अपने को बली मानते हो? ब्राह्मण की पत्नी के प्रति यह भावना रखने के कारण तुम्हारे सभी पुण्यकर्म व्यर्थ हो गये हैं। जिसका मन परनारी के प्रति अनुरक्त है, वह सभी कर्म हेतु अपवित्र है। वह विश्व में सभी स्थानों में निन्दित होता है। उसे शुभ कर्मफल प्राप्त ही नहीं होता।।३०-३२।।

सतीत्वं मे नाशयसि यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि।
अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोतीति श्रुतौ श्रुतम्।।३३।।

दुष्टानां दर्पहा कृष्णो दर्पं ते निहनिष्यति। त्यज मां मातरं वत्स सत्यं ते शं भविष्यति।।३४।।

तुम मेरा सतीत्व नष्ट करके यक्ष्मा रोगी हो जाओगे। यह वेदवाक्य है कि जो बहुत उच्चारोहण करता है, वह वहां से नीचे अवश्य भूपतित होता है। जो कृष्ण दुष्टों का दर्प नष्ट करते हैं, वे तुम्हारा दर्प भी नष्ट करेंगे। हे वत्स! मैं गुरुपत्नी तुम्हारी माता हूं। मुझे छोड़ने पर ही तुम्हारा कल्याण संभव हो सकेगा!।।३३-३४।।

इत्युक्त्वा तारका साध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः।
चकार साक्षिणं धर्मं सूर्यं वायुं हुताशनम्॥३५॥
ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम्। दिनं रात्रिं च संध्यां च सर्वं सुरगणं मुने॥३६॥

हे मुनि! पतिव्रता तारा देवी यह कहकर बारम्बार रुदन करने लगीं। उन्होंने धर्म, सूर्य, वायुदेव, अग्नि, ब्रह्मा, आकाश, परमात्मा, धरती, दिन-रात, सन्ध्या तथा सभी देवताओं की शपथ भी चन्द्रमा को दिया (कि ऐसा पापकार्य मत करो)।।३५-३६।।

तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोप ह।
करे धृत्वा रथे तूर्णं स्थापयामास सुन्दरीम्॥३७॥
रथं च चालयामास मनोयायी मनोहरम्। मनोहरां गृहीत्वा तां स च रमे मनोहरः॥३८॥

तथापि तारा का वचन सुन कर चन्द्रमा भयभीत नहीं थे। उन्होंने कोप के साथ उन सुन्दरी का हाथ पकड़ा तथा अपने रथ पर शीघ्र उनको बैठा दिया। मन के वेग से चलने वाले मनोहर रथ को इच्छानुसार चला कर (मन से चलाते हुए) वह मनोहारिणी तारा के साथ बलात् रमणरत हो गये।।३७-३८।।

विस्पन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके। पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने॥३९॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना। निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते॥४०॥
शैले शैले नदे नद्यां शृङ्गारं कुर्वतोस्तयोः। गतं वर्षशतं[1] हर्षान्मुहूर्तमिव नारद॥४१॥

पुष्पभद्रा के तट पर स्थित देवगण के विस्पन्दक नाम वाले देववन में, पुष्कर के किनारे, नदी तट पर, पुष्पित बागों में, सुगन्धित पुष्प शैय्या पर, पुष्प-चन्दन की सुगन्धित वायु वाली निर्जन मलयाचल की गुफाओं में, चन्दन युक्त पर्वत-नदी-नदों में क्रीड़ारत चन्द्रमा तथा तारा का सौ वर्ष दो घड़ी जैसा व्यतीत हो गया।।३९-४१।।

बभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः। तेजस्विनि तथा शुक्रे तेषां च बलिनां गुरौ॥४२॥
अभयं च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः। गुरुं जहास देवानां स्वविपक्षं बृहस्पतिम्॥४३॥

तब देवगण के प्रकोप से भयग्रस्त चन्द्रमा दैत्यगण तथा दैत्यगुरु परम तेजस्वी शुक्राचार्य की शरण में गये। तब शुक्राचार्य ने कृपा पूर्वक चन्द्र को अभयदान दिया। वे अपने शत्रु देवगुरु बृहस्पति का उपहास करने लगे।।४२-४३।।

सभायां जहसुर्हृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः। अभयं च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने॥४४॥
सतीसतीत्वध्वंसेन पापिष्ठे चन्द्रमण्डले। बभूव शशरूपं च कलङ्कं निर्मले मलम्॥४५॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदां वरः। हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिणामसुखावहम्॥४६॥

---

१. क. ०सहस्रं तन्मु०।

उस समय दिति के पुत्र दैत्यों ने भी सभा में आनन्द के साथ बृहस्पति का उपहास किया तथा चन्द्रमा को अभय प्रदान किया जो भयभीत एवं कलंकयुक्त हो गये थे। चन्द्रमा ने पापिष्ठ होकर सती के सतीत्व का ध्वंस किया था। तभी निर्मल चन्द्रमण्डल में कलंकरूप मल स्वरूप खरगोश (शशक) की आकृति हो गई। तदनन्तर वेदज्ञप्रवर गुरु शुक्राचार्य ने महाभयभीत चन्द्रमा से हितकर वेदसम्मत तथा परिणाम में सुख देने वाला तथ्य कहा–।।४४-४६।।

शुक्र उवाच

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः। दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवन्न यशस्करम्।।४७।।
राजसूयस्य सुफले निर्मले कीर्तिमण्डले। सुधाराशौ सुराबिन्दुरूपमङ्कमुपार्जितम्।।४८।।
त्यज देवगुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम्। धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः।।४९।।
शंभोः सुराणामीशस्य गुरुपुत्रस्य वेधसः।
पौत्रस्याऽऽङ्गिरसो नित्यं ज्वलतो ब्रह्मतेजसा।।५०।।

शुक्राचार्य कहते हैं–अहो चन्द्र! तुम तो ब्रह्मा के पौत्र एवं महर्षि अत्रि के पुत्र हो। हे वत्स! तुमने नीच व्यक्ति के समान ऐसा नीतिविरुद्ध कार्य किया, जिससे अपयश के भागी हो गये। तुमने राजसूय यज्ञ के फलस्वरूप अपने निर्मल कीर्त्तिमण्डल को पाकर उस अमृतराशि पर मद्य की बूंद जैसा कलंक लगा दिया। देवगुरु धर्मात्मा श्रेष्ठ द्विजवर बृहस्पति की साध्वी पत्नी तुम्हारी माता जैसी हैं। उनका त्याग करो। वे महासती हैं। शंभु देवगण के अधीश्वर हैं। उनके गुरुपुत्र हैं ब्रह्मा। उनके पौत्र तथा अंगीरा के पुत्र हैं बृहस्पति। वे निरन्तर ब्रह्मतेज से ज्वलन्त रूप हैं।।४७-५०।।

शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।
इति सद्वंशजातानां स्वभावं च सतामपि।।५१।।
स शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विश्वे निशाकर। तथाऽपि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि।।५२।।
यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।।५३।।

नियम है कि यदि शत्रु गुणी है, तब उसके गुण का वर्णन करो। यदि गुरु दोषपूर्ण है, तब उनके दोष को भी कहो। जो लोग उत्तम वंश में जन्म लेते हैं, उन सत्पुरुषों का यही स्वभाव होता है। इस विश्व में देवगुरु बृहस्पति मेरे प्रधान शत्रु भले ही हैं, तथापि यह धर्म संसद है। इसमें उचित बात ही कहना चाहिए। जहां धार्मिक लोग हैं, वहीं-वहीं कृष्ण हैं। जहां कृष्ण हैं, वहीं जय भी है।।५१-५३।।

गौरेकं पञ्च च व्याघ्री सिंही सप्त प्रसूयते।
हिंसका प्रलयं यान्ति धर्मो रक्षति धार्मिकम्।।५४।।
देवाश्च गुरवो विप्राः शक्ता यद्यपि रक्षितुम्। तथाऽपि नहि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम्।।५५।।

कुलटाविप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः। ब्रह्महत्याषोडशांशपातकं च भवेद्ध्रुवम्॥५६॥
तासामुपस्थितानां च गमने तच्चतुर्थकम्।
त्यागे धर्मो नास्ति पापमित्याह कमलोद्भवः॥५७॥

गौ एक वत्स को, व्याघ्री ५ शावकों को, सिंहनी ७ शावकों को जन्म देती है, तथापि जो हिंस्र पशु व्याघ्र, सिंह हैं, वे शीघ्र नष्ट होते हैं। धार्मिक गोवत्स धर्म द्वारा रक्षित होता है। यद्यपि देवता, गुरु, ब्राह्मण सभी की रक्षा कर सकने में समर्थ भले ही हों, तथापि वे धर्मनाशक महापापी की रक्षा नहीं करते! यदि कुलटा ब्राह्मणी से देवता अथवा ब्राह्मण समागम करते हैं, तब वे ब्रह्महत्या के मात्र १/१६ भाग के पापभागी होते हैं। जब कुलटा ब्राह्मणी स्वयं समागम की इच्छा से आती है, तब ब्रह्महत्या पातक का १/४ भाग लगता है। ब्रह्मा ने कहा है कि ऐसी कुलटा का यदि बिना समागम किये त्याग कर दिया जाये, तब उलटा धर्मलाभ होगा तथा कोई पाप नहीं लगेगा।।५४-५७।।

विप्रपत्नीसतीनां च गमनं वै बलेन चेत्। ब्रह्महत्याशतं पापं भवेदेव श्रुतौ श्रुतम्॥५८॥
धर्मं चर महाभाग ब्राह्मणीं त्यज सांप्रतम्।
कृत्वाऽऽनुतापं पापाच्च निवृत्तिस्तु महाफला॥५९॥
उपायेन च ते पापं दूरीभूतं[1] भवेन्ननु। शरणागतभीतस्य मयि देवस्य धर्मतः॥६०॥
शस्त्रहीनं च भीतं च दीनं च शरणार्थिनम्।
यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम्॥६१॥
राजसूयशतानां च रक्षिता लभते फलम्। परमेश्वरयुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह॥६२॥

जो सती विप्रपत्नी से बल पूर्वक समागम करता है, वेद का कथन है कि उसे निश्चित रूप से १०० ब्रह्महत्या का पातक लगेगा। हे महाभाग! तुम धर्म का पालन करके उस ब्राह्मणी का शीघ्र त्याग करो। पाप हो जाने पर उसका पश्चात्ताप करने से वह पाप निवृत्त होकर महाफल लाभ होगा। मैं अपनी शरण में आये तुम भयभीत देवता के पाप को धर्मविहित उपाय से अवश्य दूर करूंगा। जो धार्मिक व्यक्ति होकर भी शस्त्रहीन, भयभीत, दीन तथा शरणागत की रक्षा नहीं करता, वह १ युगकाल तक कुंभीपाक नरक में कष्ट पाता है। जो व्यक्ति प्राणीगण की रक्षा करता है, उसे १०० राजसूय यज्ञफल की प्राप्ति होती है। वह अपने धर्मबल द्वारा इस लोक में परमैश्वर्य सम्पन्न हो जाता है।।५८-६२।।

इत्युक्त्वा वै दैत्यगुरुः स्वर्गे मन्दाकिनीतटे।
स्नात्वा तं स्नापयामास विष्णुपूजां चकार सः॥६३॥
विष्णुपादाब्जजातेन तन्नैवेद्यं शुभप्रदम्। गङ्गोदकेन पुण्येन भोजयामास चन्द्रकम्॥६४॥
क्रोडे कृत्वा तु तं भीतं लज्जितं पापकर्मणा। कुशहस्तस्तमित्यूचे[2] स्मारंस्मारं हरिं मुने॥६५॥

१. क. ०तं करोम्यहम्।
२. ईषद्धास्य इत्युवाच इति पाठान्तरम्।

स्वर्ग में स्थित मन्दाकिनी तट पर दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने स्वयं स्नान किया तथा चन्द्रमा को भी स्नान कराया। तदनन्तर उन्होंने विष्णुपूजन भी सम्पन्न किया था। उन्होंने विष्णु के चरण से निर्गत गंगाजल का पान तथा भगवान् के पावन नैवेद्य का भोजन चन्द्रमा को कराया। हे मुनिवर! उस लज्जित पापकर्मा चन्द्रमा को शुक्र ने अपनी गोद में बैठा, कर उसके हाथ में कुश रखा तथा बारम्बार हरिस्मरण भी किया।।६३-६५।।

शुक्र उवाच

यद्यस्ति मे तपः सत्यं सत्यं पूजाफलं हरेः।
सत्यं व्रतफलं चैव सत्यं सत्यवचः फलम्।।६६।।
तीर्थस्नानफलं सत्यं सत्यं दानफलं यदि।
उपवासफल सत्यं पापान्मुक्तो भवान्भवेत्।।६७।।
विप्रं त्रिसंध्यहीनं च विष्णुपूजाविहीनकम्। तदाप्नोतु महाघोरं चन्द्रपापं सुदारुणम्।।६८।।

शुक्राचार्य कहते हैं—यदि आज मेरा तपःफल, हरिपूजाफल, व्रतफल, तीर्थसेवनफल, दानफल, उपवासफल सत्य है, तब तुम पापमुक्त हो जाओ। त्रिसन्ध्या रहित, हरिसेवा रहित जो ब्राह्मण हो, उस ब्राह्मण के पास चन्द्र का यह दारुण अत्यन्त भयानक शाप जाये।।६६-६८।।

स्वभार्यावञ्चनं कृत्वा यः प्रयाति परस्त्रियम्। स यातु नरकं घोरं चन्द्रपापेन पातकी।।६९।।
वाचा वा ताडत्येकान्तं दुःशीला दुर्मुखा च या।
सा युगं चन्द्रपापेन यातु लालामुखं ध्रुवम्।।७०।।
अनैवेद्यं वृथान्नं च यश्च भुङ्क्ते हरेर्द्विजः।
स यातु कालसूत्रं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्।।७१।।
अम्बुवीच्यां भूखननं यः करोति नराधमः। चन्द्रपापाद्युगशतं कालसूत्रं स गच्छतु।।७२।।

जो व्यक्ति अपनी पत्नी को धोखा देकर परस्त्रीगमन करता है, वह पापी चन्द्रमा के पाप से लिप्त होकर घोर नरकगामी हो जाय। जो दुश्चरित्रा दुर्मुखा नारी पति को वाणी से ताड़ित करती है, वह पापिनी चन्द्रमा के पाप को ग्रहण करके १ युग तक लालामुख नरक में निवास करे। जो ब्राह्मण हरि को निवेदित किये बिना व्यर्थ अन्न भक्षण करता है, वह चन्द्रमा के पाप का भागी होकर ४ युग तक कालसूत्र नरक में पड़ा रहे। जो मानव अम्बुवाची के दिन मिट्टी खोदता है, वह चन्द्रमा के पातक से युक्त होकर १०० युगों तक कालसूत्र नरक में पड़ा रहे।।६९-७२।।

स्वकान्तं वञ्चयित्वा च या याति परपूरुषम्।
सा यातु वह्निकुण्डं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्।।७३।।
कीर्तिं करोति रजसा परकीर्तिं विलुप्य च। स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकं च गच्छतु।।७४।।

पितरं मातरं भार्यां यो न पुष्णाति पातकी।
स्वगुरुं चन्द्रपापेन यातु चण्डालतां ध्रुवम्॥७५॥

जो नारी अपने पति को धोखा देकर परपुरुष के पास जाती है, वह चन्द्रमा के पातक से युक्त होकर चार युगों तक अग्निकुण्ड नरक भोगे। जो व्यक्ति लोभ के कारण अन्य की कीर्त्ति का हनन करके अपनी कीर्त्ति वर्द्धित करता है, वह एक युग तक चन्द्रमा के पाप से युक्त होकर कुंभीपाक में निवास करे। अपने माता-पिता-पत्नी-गुरु का पोषण-पालन नहीं करता, वह पातकी चन्द्रमा के पातक को ढोता हुआ चाण्डाल होगा। यह निश्चित है।।७३-७५।।

कुलटान्नमवीरान्नमृतुस्नातान्नमेव च। योऽश्नाति चन्द्रपापं च यातु तं पापिनं ध्रुवम्॥७६॥
स यातु तेन पापेन कुम्भीपाकं चतुर्युगम्।
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी॥७७॥
दिवसे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च।
यो गच्छेत्कामतः कामी गुर्विणीं वा रजस्वलाम्॥७८॥
तं यातु चन्द्रपापं च महाघोरं च पापिनम्। स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्युगम्॥७९॥
मुखं श्रोणीं स्तनं योनिं यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामतः कामदग्धश्च यातु तं चन्द्रकल्मषम्॥८०॥
स यातु लालाभक्ष्यं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्।
तस्मादुत्तीर्य भवतु चाण्डालोऽन्धो नपुंसकः॥८१॥

जो पातकी होकर कुलटा, पतिपुत्र रहिता, रजस्वला का अन्न भोजन करता है, वह चन्द्रपातक का भागी होकर कई जन्म पर्यन्त चाण्डाल होगा। दिवाकाल में मैथुन करने वाला, गर्भिणी, रजस्वला से समागम करने वाला महाघोर चन्द्रपातक का भागी होकर कालसूत्र नरक ४ युगों तक भोगता है। जो कामी कामभावना से पराई नारी का मुख, श्रोणीभाग तथा स्तन की ओर देखता है, वह चन्द्रपाप का भागी होकर ४ युग तक लालाभक्ष्य नरक में रहने के बाद चाण्डाल, अन्ध, नपुंसक मनुष्य होगा।।७६-८१।।

कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च। मांसं मसूरं लकुचं यश्च भुङ्क्ते [1]हरेर्दिने॥८२॥
कुरुते ग्राम्यधर्मं च यातु तं चन्द्रकिल्विषम्। चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु॥८३॥
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी।
सप्तजन्म महारोगी दरिद्रः कुब्ज एव च॥८४॥

जो मनुष्य चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा तथा संक्रान्ति, अष्टमी, एकादशी को अथवा रविवार

१. ख. रवे०।

को बढ़हर फल, मांस तथा मसूर खाता है तथा नारी समागम करता है, उसे चन्द्रपाप का भागी होकर ४ युग तक कालसूत्र नरकगामी होना निश्चित है। तदनन्तर वह पापपूर्ण चाण्डाल होगा। तदनन्तर ७ जन्म तक रोगी, दरिद्र तथा कुब्ज होगा।।८२-८४।।

एकादश्यां च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने।
शिवरात्रौ महापापी यातु तं चन्द्रपातकम्।।८५।।
स यातु कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तेन पापेन चाऽऽप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च।।८६।।

ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टं घृतमेव च। नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं सलवणं तथा।।८७।।
पीतशेषजलं चैव भुक्तशेषं तथौदनम्। असकृच्चौदनं भुङ्क्ते सूर्ये नारतङ्गते द्विजः।।८८।।
तं यातु चन्द्रपापं च दुर्निवारं च दारुणम्। स यातु तेन पापेन चान्धकूपं चतुर्युगम्।।८९।।

एकादशी, कृष्ण जन्माष्टमी, शिवरात्रि को भोजन करने वाला महापातकी चन्द्रशाप का भागी होकर १४ इन्द्रों के आयुकाल तक कुंभीपाक नरकगामी होकर तदनन्तर चाण्डाल योनि में जन्म लेगा। ताम्रपात्र में दुग्धपान, महुए की शराब का पान, जूठा घृत, कांस्य पात्र में नारिकेल जल, नमकयुक्त दुग्ध, पीने से बचा जूठा जल, भोजन से बचा भात तथा सूर्यास्त के बाद अथवा पूर्व एक से अधिक बार भोजन करता है, (दिन-रात के समय एक-एक बार से अधिक भोजन करता है) वह भयानक दुर्निवार चन्द्रपाप का भागी होकर ४ युग अन्धकूप नरकगामी होगा।।८५-८९।।

स्वकन्याविक्रयी विप्रो देवलो वृषवाहकः। शूद्राणां शवदाही च तेषां वै सूपकारकः।।९०।।
अश्वत्थतरुघाती च विष्णुवैष्णवनिन्दकः। तं यातु चन्द्रपापं च दारुणं पापिनं भृशम्।।९१।।
स यातु तस्मात्पापाच्च तप्तसूर्मीं च पातकी। शश्वद्दग्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।९२।।

कन्या विक्रेता ब्राह्मण, मन्दिर का देवल, बैल पर बैठने वाला, शूद्र का शवदाह करने वाला, उसका भोजन पकाने वाला, पीपल वृक्ष काटने वाला, वैष्णव-शैवगण का निन्दक, ये पातकी दारुण चन्द्रपाप के भागी होकर तप्तसूर्मि नरक में १४ इन्द्रों के जीवनकाल तक दग्ध किये जाते हैं।।९०-९२।।

तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी।
सप्तजन्मसु चाण्डालो [१]वृषभः पञ्चजन्मसु।।९३।।
गर्दभो जन्मशतकं सूकरः सप्तजन्मसु। तीर्थध्वाङ्क्षः सप्तसु वै विट्कृमिः पञ्चजन्मसु।
जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम्।।९४।।

तदनन्तर सात जन्म तक चाण्डाल, ५ जन्म तक वृष, सौ जन्म तक गर्दभ, ७ जन्म तक शूकर, ७ जन्म तक तीर्थ में काक, ५ जन्म तक मल के कीट, १०० जन्म तक जोंक होकर, तब शुद्ध होते हैं।।९३-९४।।

---

१. क. वृषलः।

वृथामांसं च यो भुङ्क्ते स्वार्थं पाकान्नमेव च।
तददत्तं महापापी प्राप्नुयाच्चन्द्रपातकम्॥९५॥
स यातु चन्द्रपापेन चासिपत्रं चतुर्युगम्। ततो भवतु सर्पश्च पशुः स्यात्सप्तजन्मसु॥९६॥

व्यर्थ मांस खाने वाला, अन्य को बिना दिये स्वयं के लिये अन्न बना कर खाने वाला महापापी चन्द्रपातक का भागी होगा। वह ४ युग तक असिपत्र वन में रह कर ७ जन्म तक सर्प तथा पशु होगा॥९५-९६॥

विप्रो वार्धुषिको यो हि योनिजीवी चिकित्सकः।
हरेर्नाम्नां च विक्रेता यश्च वा [१]स्वाङ्गविक्रयी॥९७॥
स्वधर्मकथकश्चैव यश्च स्वात्मप्रशंसकः। मषीजीवी धावकश्च कुलटापोष्य एव च॥९८॥
तं यातु चन्द्रपापं च चन्द्रो भवतु विज्वरः। न यातु तेन पापेन शूलप्रोतं सुदारुणम्॥९९॥
तत्र विद्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः॥१००॥

जो ब्राह्मण सूद-व्याज लेता है, योनिजीवी है (स्त्रियों से व्यभिचार द्वारा धनार्जन करता है), चिकित्सक है, हरिनाम विक्रेता है, अपना अंग बेचता है, अपना किया धर्म बखानता है, स्याही से जीविका चलाने वाला, हरकारा (दूत) का काम करने वाला, कुलटा द्वारा पाला जाने वाला-ये सभी चन्द्रपाप के भागी हो जायें। अब चन्द्रमा पाप रहित हो जायें। ये पातकी १४ इन्द्रों के जीवन काल तक शूलप्रोत नरक में शूल से छेदे जाकर टंगे रहें। तदनन्तर इनको दरिद्र-रोगी तथा दीक्षा रहित नरपशु का जन्म मिलेगा॥९७-१००॥

लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च।
अश्वानां चैव लोहानां विक्रेता नरघातकः॥१०१॥
विप्रः कुलालः चौरश्च यातु तं चन्द्रपातकम्।
स यातु तेन पापेन क्षुरधारं सुदुःसहम्॥१०२॥
तत्र च्छिन्नो भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम्।
तस्मादुत्तीर्य स भवेत्सृगालः सप्तजन्मसु॥१०३॥
सप्तजन्मसु मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम्।
सप्तजन्मसु भल्लूकः कुक्कुरः सप्तजन्मसु॥१०४॥
[२]मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम्।
गोधिका जन्मशतकं [३]गर्दभः सप्तजन्मसु॥१०५॥

१. क. यज्ञवि॰।
२. क. आखुश्च जन्मशतकं कुक्कुटी।
३. क. ॰गृध्रश्च स॰।

सप्तजन्मसु मण्डूकस्ततः स्यान्मानवोऽधमः।
चर्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वर्धकिः॥१०६॥
नाविकः शवजीवी च व्याधश्च स्वर्णकारकः।
कुम्भकारो लोहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः॥१०७॥

जो ब्राह्मण लाख-मांस-रस-तिल-लवण-अश्व-लौह बेचने वाला है तथा मनुष्यघाती, कुम्हार ब्राह्मण ये सभी एवं चोर ब्राह्मण चन्द्रपातक भागी हो जायें। वे अत्यन्त कष्टकारी क्षुरधार नरक में पड़ें। १००० इन्द्र के जीवनकाल तक वहां इनका देह छिन्न-भिन्न होता रहे। वे तदनन्तर ७ जन्म तक शृगाल, ७ जन्म तक बिलाड़, ५ जन्म तक महिष, ७ जन्म तक भालू, ७ जन्म तक श्वान, १०० जन्म तक मत्स्य, ५ जन्म तक केकड़ा, १०० जन्म तक गोह, ७ जन्म तक गधा, ७ जन्म तक मेढ़क होकर, तब नीच मनुष्य जन्म लें। वे चर्मकार, तेली, धोबी, नाऊ, बढ़ई, नाविक, शवजीवी, व्याध, कुम्हार, सोनार, लोहार की योनि के अनन्तर क्षत्रिय जन्म के उपरान्त ब्राह्मण होंगे।।१०१-१०७।।

इति चन्द्रं शुचिं कृत्वा समुवाच स तारकाम्।
त्यक्त्वा चन्द्रं महासाध्वि गच्छ कान्तमिति द्विजः॥१०८॥
प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेवं शुद्धमानसा।
अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारण दुष्यति॥१०९॥
इत्येवमुक्त्वा शुक्रश्च चन्द्रं वा तारकां सतीम्।
सस्मितां सस्मितं चैव चकार च शुभाशिषः॥११०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ताराचन्द्रयोर्दोषनिवारणं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।

इस प्रकार शुक्र ने चन्द्र की पवित्रता को सम्पन्न करके तारा से कहा-"हे महासाध्वी ! तुम चन्द्र को त्याग कर पति के पास जाओ। तुम शुद्ध मन हो। अतः बिना प्रायश्चित्त तुम शुद्ध ही हो। कामवासनाहीन बलात्कारकारी जार से दूषित होकर भी नारी पवित्र ही रहती है। इस प्रकार हंसते हुए शुक्र ने चन्द्रमा तथा तारा को प्रबोधित किया तथा दोनों को शुभाशीष प्रदान किया।।१०८-११०।।

।।अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

युद्धार्थ सन्नद्ध देवगण का नर्मदा तट पर एकत्र होना तथा बृहस्पति का कैलास जाना

नारद उवाच

बृहस्पतिः किं चकार तारकाहरणान्तरे। कथं संप्राप तां साध्वीं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं–जब चन्द्रमा ने तारा का हरण कर लिया, तब बृहस्पति ने क्या किया था? उन्होंने साध्वी तारा को पुनः कैसे पाया, यह विशेषतया कहिये।।१।।

नारायण उवाच

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः स्नान्त्याश्चापि गुरुःस्वयम्।
प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषार्थं च जाह्नवीम्॥२॥
शिष्यो गत्वा च तद्वृत्तं ज्ञात्वा वै लोकवक्त्रतः। रुद्रन्नुवाच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–जब बृहस्पति ने देखा कि विलम्ब अधिक हो गया, तारा अभी तक स्नान करके नहीं आईं, तब उनको खोजने के लिए अपने शिष्य को गंगा तट पर स्वयं भेजा। वहां शिष्य ने जाकर लोगों से जो कुछ वृत्तान्त सुना, उसने आकर रोते हुए समस्त वृत्तान्त अपने गुरु से कहा–हे मुनि! उसने कहा कि तारा का हरण हो गया।।२-३।।

श्रुत्वा सुरगुरुर्वार्तां शशिना च प्रियां हताम्।
मुहूर्तं प्राप मूर्च्छां च ततः संप्राप्य चेतनाम्॥४॥
रुरोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता। शोकेन लज्जयाऽऽविष्टो[1] विललाप मुहुर्मुहुः॥५॥
उवाच शिष्यान्संबोध्य नीतिं च श्रुतिसंमताम्।
साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्राञ्छोकार्तः शोककर्शितान्॥६॥

जब देवगुरु बृहस्पति ने यह सुना कि चन्द्रमा ने उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया तब वे शोक से मूर्च्छित हो गये। तदनन्तर एक घड़ी के उपरान्त चेतना लौटने पर, वे तथा उनका शिष्य उच्च स्वर से रुदन करने लगे। वे अब पत्नीहरण जनित लज्जा तथा शोक के कारण पुनः-पुनः विलाप करते जा रहे थे। तदनन्तर शोकार्त्त बृहस्पति ने साश्रुनयन, शोकसन्तप्त शिष्यों से वेदसम्मत नीतिमय वाक्य कहने लगे–४-६।।

बृहस्पतिरुवाच

हे वत्साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम्। दुःखं धर्मविरुद्धो यः स प्राप्नोति न संशयः॥७॥

१. क. विप्रो।

यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं[1] यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥८॥

बृहस्पति कहते हैं–हे वत्सगण! मैं किसी व्यक्ति द्वारा शापित हूं, तथापि मुझे उसका कारण ज्ञात नहीं है। अधार्मिक व्यक्ति, धर्मविरुद्ध व्यक्ति अवश्य दुःख ही पाता है। जिनके घर में प्रियवादिनी सती भार्या नहीं है, उसको तो वन में चला जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिये वन तथा घर समान ही है।।७-८।।

भावानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥९॥
सुशीला सुन्दरी भार्या गता यस्य गृहादहो।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥१०॥

जिसकी मनभाविनी भार्या शत्रु द्वारा अपहत कर ली जाती है, वह तो वन में चला जाये। उसके लिये गृह तथा वन बराबर है। जिसके घर से सुशीला सुन्दरी भार्या चली जाती है, वह तो वन में चला जाये, यही उचित है। उसके लिये जैसा वन है, वैसा ही गृह है।।९-१०।।

दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्या पतिव्रता। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥११॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥१२॥

जिसके घर में माता तथा सुशासित नारी नहीं है, जिसकी पतिप्राणा, पतिपरायणा भार्या अपहृत हो जाये, उसके लिये तो जैसा वन है, वैसा ही गृह है।।११-१२।।

प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः। अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥१३॥
भार्याशून्या वनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः। गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते॥१४॥
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥१५॥

जिसका गृह धन तथा बन्धुजन से पूर्ण हो, यदि वह प्रियाविहीन है, तब उसके लिये जैसा अरण्य है, वैसा ही घर है। जिसके गृह में भार्या है, वही है यथार्थ गृह। जो गृह भार्याशून्य है, वह तो वन के समान है। जब गृहिणी है, तभी उसे गृह कहते हैं, अन्यथा उसे गृह नहीं कहते। बिना गृहिणी के व्यक्ति का देव-पितृकार्य सभी अशुचि-अपवित्र हैं। दिन भर किये गये किसी भी कर्म का उसे फल नहीं मिलता।।१३-१५।।

दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः।
प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी॥१६॥

---

१. क. व्यं तयाऽरण्यं गृहाद्वरम्।

शक्तिहीनो यथा जीवो यथा चाऽऽत्मा तनुं विना।
विनाऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिं विना॥१७॥
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणां विना।
कर्मणां च फलं दातुं सामग्री मूलमेव च॥१८॥
विना स्वर्णं स्वर्णकारो यथाऽशक्तः स्वकर्मणि।
यथाऽशक्तः कुलालश्च मृत्तिकां च विना द्विज॥१९॥
तथा गृही न शक्तश्च संततं सर्वकर्मणि। गृहाधिष्ठातृदेवीं च स्वशक्तिगृहिणीं विना॥२०॥

जैसे दाहिका शक्ति रहित होने पर अग्नि मन्द हो जाता है, जैसे प्रभा रहित सूर्य, शोभा रहित चन्द्र, शक्तिहीन प्राणी, देह बिना आत्मा, आधार बिना आधेय, प्रकृति बिना ईश्वर, सामग्री तथा दक्षिणा रहित यज्ञ—ये सब कर्मफल प्रदान करने में व्यर्थ होते हैं, जैसे सोनार स्वर्ण के बिना अपना कार्य नहीं कर पाता, जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता, उसी प्रकार पत्नी के बिना गृहस्थ सभी कार्य हेतु अधिकारी नहीं है। सभी कार्य की मूल है भार्या। वह गृह की भी मूल है। संसार तथा गौरव की मूल भी भार्या ही है। व्यक्ति गृह की अधिष्ठातृ देवी तथा अपनी शक्ति गृहणी के बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकता॥१६-२०॥

भार्यामूलाः[१] क्रियाः सर्वा भार्यामूला गृहास्तथा।
भार्यामूलं सुखं सर्वं गृहस्थानां गृहे सदा॥२१॥
भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलं च मङ्गलम्।
भार्यामूलश्च संसारो भार्यामूलं च [२]सौरभम्॥२२॥
यथा रथश्च रथिनां गृहिणां च तथा गृहम्।
सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणां च तथा प्रिया॥२३॥

भार्या समस्त क्रिया की तथा गृह की मूल रूप है। वह सभी गृहस्थों के सुख की भी मूल है। व्यक्ति के समस्त हर्ष की मूल भी भार्या ही है। समस्त मंगल की मूल रूप भी भार्या है। जैसे रथ का संचालन सारथी करता है, उसी प्रकार गृहस्थगण के गृहरूपी रथ का संचालन उसकी पत्नी के ही द्वारा होता है॥२१-२३॥

सर्वरत्नप्रधानं च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि। गृहीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः॥२४॥
यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभां विना यथा।
तथैव पुंसां स्वगृहं गृहिणां गृहिणीं विना॥२५॥

समस्त रत्नों में से स्त्रीरत्न प्रधान है, भले वह दुष्कुल की क्यों न हो। यह ब्रह्मा का कथन है।

१. क. ०लाश्च पुत्राश्च भा०।
२. क. यौवनम्।

जैसे कमल बिना जल शोभित नहीं होता, उसी प्रकार जल बिना कमल की शोभा नहीं होती। इसी प्रकार गृही लोगों के लिये गृहिणी के बिना गृह में कोई सुख ही नहीं होता।।२४-२५।।

इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः। गृहाद्बहिर्निःससार भूयो भूयः शुचाऽन्वितः।।२६।।
मुहुर्मुहुश्च मूर्च्छां च चेतनां समवाप सः।
भूयो भूयो रुरोदोच्चैः स्मारंस्मारं प्रियागुणान्।।२७।।
अथान्तरे महाज्ञानी ज्ञानिभिश्च प्रबोधितः। सच्छिष्यैर्मुनिभिश्चान्यैः पुरंदरगृहं ययौ।।२८।।
स गुरुः पूजितस्तेन चाऽऽतिथ्येन मरुत्वता।
तमुवाच स्ववृत्तान्तं हृदि शल्यमिवाप्रियम्।।२९।।
बृहस्पतिवचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः। तमुवाच महेन्द्रश्च कोपप्रस्फुरिताधरः।।३०।।

बृहस्पति इसी प्रकार विलाप करते कभी गृह में जाते, पुनः उसमें से बाहर आ जाते। शोकग्रस्त बृहस्पति बारम्बार यही कर रहे थे। तदनन्तर कुछ क्षण मूर्च्छित रह कर जब उनकी चेतना (संज्ञा) वापस आई, तब वे अपनी पत्नी के गुणों का स्मरण करते पुनः-पुनः उच्च स्वर से रुदन करने लगे। तदनन्तर महाज्ञानी बृहस्पति अपने साधुमति शिष्यों तथा अन्य ज्ञानी मुनिगण द्वारा प्रबोधित किये जाने पर इन्द्र की सभा में गये। वहां बृहस्पति ने अतिथि संस्कार कुशल इन्द्र द्वारा पूजित होकर अपने हृदय में शूल की तरह गड़ रहे उस अप्रिय वृत्तान्त का वर्णन इन्द्र से किया। बृहस्पति का कथन सुनकर इन्द्र के नयनकमल रक्तवर्ण हो गये। उनके अधर क्रोध से फड़क रहे थे। तदनन्तर इन्द्र ने कहा-।।२६-३०।।

महेन्द्र उवाच

दूतानां वै सहस्त्रं च चारकर्मणि गच्छतु। अतीव निपुणं दक्षं तत्त्वप्रापितनिमित्तकम्।।३१।।
यत्रास्ति पातकी चन्द्रो मन्मात्रा[1] तारया सह।
गच्छामि तत्र संनद्धः सर्वैर्देवगणैः सह।।३२।।
त्यज चिन्तां महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति। भद्रबीजं दुर्गमिदं कस्य संपद्विपद्विना।।३३।।

महेन्द्र कहते हैं-मैं दूतकार्य में पारंगत तथा दक्ष १ हजार दूत तारा के अन्वेषणार्थ भेज रहा हूं। जहां कहीं भी यह पापी चन्द्रमा मेरी गुरुमाता को ले गया है, मैं वहां (पता लगते ही) समस्त देवगण के साथ सन्नद्ध होकर चल रहा हूं। हे महाभाग! गुरुवर! चिन्ता त्याग करें। सब मंगल होगा। इस दुष्कर अशुभ की पृष्ठभूमि में अवश्य कोई शुभ कारण है। विपत्ति आये बिना किसे सम्पदा मिली है?।।३१-३३।।

इत्युक्त्वा च शुनासीरो दूतानां च सहस्त्रकम्। तूर्णं प्रस्थापयामास तत्कर्मनिपुणं मुने।।३४।।

---

१. चन्द्रस्तमात्रेति क्वचित् पाठः।

ते दूता वै वर्षशतं ययुर्निर्जिनमेव च। [१]सुदुर्लङ्घ्यं च विश्वेषु भ्रमित्वा शक्रमाययुः॥३५॥
चन्द्रं च शुक्रभवने तं प्रपन्नं च विज्वरम्। दृष्ट्वा सतारकं भीतं कथयामासुरीश्वरम्॥३६॥

हे नारद! यह कह कर इन्द्र ने अन्वेषण कार्यकुशल १००० दूत तारा की खोज के लिये शीघ्र भेजा। ये सभी दूतगण संसार के अत्यन्त अनतिक्रमणीय दुर्लंघ्य एवं अत्यन्त जनशून्य स्थान में १०० वर्ष खोज कर इन्द्र के पास आये। उन्होंने अन्ततः तारा कहां है, इस रहस्य का ज्ञान कर लिया था। उन्होंने इन्द्र से कहा–"चन्द्रमा तो आचार्य शुक्र के यहां प्रसन्न तथा भय रहित होकर निवास कर रहे हैं। तारा भी भयभीत-सी शुक्र की ही शरण में हैं।।३४-३६।।

इति श्रुत्वा शुनासीरो नतवक्त्रो बृहस्पतिम्। उवाच शोकसंतप्तो हृदयेन विदूयता॥३७॥

यह समाचार सुन कर इन्द्र का शिर नत हो गया। वे शोक में भर गये तथा शोकतप्त हृदय से उन्होंने बृहस्पति से कहा–।।३७।।

महेन्द्र उवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम्। भयं त्यज महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति॥३८॥

त्वया नहि जितः शुक्रो न मया दितिनन्दनः।
एतदालोच्य चन्द्रश्च जगाम शरणं कविम्॥३९॥

महेन्द्र कहते हैं–हे प्रभो! मैं आपसे परिणाम में सुख देने वाला वाक्य कहता हूं। श्रवण करिये। हे महाभाग! भय का त्याग करें। सब मंगल होगा। "आपने शुक्र पर कभी जय प्राप्त नहीं किया तथा मेरे द्वारा दैत्य पराजित नहीं हो सके।" यह सोच कर चन्द्रमा ने शुक्र का आश्रय लिया है!।।३८-३९।।

गच्छ शीघ्रं ब्रह्मलोकमस्माभिः सार्धमेव च।
ब्रह्मणा सह यास्यामः [२]कैलासे शङ्करं वयम्॥४०॥

अतः आप हम सबको लेकर ब्रह्मलोक चलिये। वहां से ब्रह्मा के साथ हम सब कैलास शिव के यहां चलें।।४०।।

इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च संतप्तो गुरुणा सह। जगाम ब्रह्मलोकं च सुखदृश्यं निरामयम्॥४१॥
तत्र दृष्ट्वा च ब्रह्माणं ननाम गुरुणा सह। प्रोवाच सर्ववृत्तान्तं देवानामीश्वरं परम्॥४२॥
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा हासित्वा कमलोद्भवः। हितं तथ्यं नीतिसारमुवाच विनयान्वितः॥४३॥

यह कह कर महेन्द्र अपने सन्तप्त गुरु बृहस्पति के साथ ब्रह्मलोक गये जो देखने में सुखदायक तथा रोगादि से रहित था। वहां ब्रह्मा को देख कर इन्द्र तथा बृहस्पति आदि सभी ने उनको प्रणाम करके उन देवेश्वर से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया। महेन्द्र का वचन सुन कर भगवान् कमलोत्पन्न ब्रह्मा ने हंसते हुए हितप्रद, नीति का साररूप वाक्य उन सबसे विनय के साथ कहा–।।४१-४३।।

१. क. ०र्लभं च।
२. क. कैलासं शंकरालयम्।

ब्रह्मोवाच

योददाति परस्मै च दुःखमेव च सर्वतः।
तस्मै ददाति दुःखं च शास्ता कृष्णः सनातनः॥४४॥
अहं स्त्रष्टा च सृष्टेश्च पाता विष्णुः सनातनः।
यथा रुद्रश्च संहर्ता ददाति च शिवं शिवः॥४५॥
निरन्तरं सर्वसाक्षी धर्मो वै सर्वकारणम्। सर्वे देवा विषयिणः कृष्णाज्ञापरिपालकाः॥४६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च जितेन्द्रियः। त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः॥४७॥

ब्रह्मा कहते हैं–अन्य को दुःख देने वाले को सनातन शासक कृष्ण स्वयं दुःख प्रदान करते हैं। मैं विश्वस्त्रष्टा हूं। विष्णु जगत्पालक तथा रुद्र संहर्त्ता हैं। भगवान् शिव सतत् शिवप्रद (कल्याणप्रद हैं)। धर्म सर्वकारण तथा सर्वसाक्षी हैं। समस्त देवगण अपने-अपने क्षेत्र में कृष्णाज्ञा पालक हैं। ऋषि अङ्गीरा के तीन पुत्र हैं, जो वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गत कहे जाते हैं। ये हैं बृहस्पति, उतथ्य तथा जितेन्द्रिय संवर्त्त।।४४-४७।।

संवर्ताय[1] कनिष्ठाय न च किञ्चिद्ददौ गुरुः।
स बभूव तपस्वी च कृष्णं ध्यायति चेश्वरम्॥४८॥
मध्यमस्योतथ्यकस्य सतीं भार्यां च गुर्विणीम्।
जहार कामतस्तां च भ्रातृजायामकामुकीम्॥४९॥
यो हरेद्भ्रातृजायां च कामी कामादकामुकीम्।
ब्रह्महत्यासहस्त्रं च लभते नात्र संशयः॥५०॥
स याति कुम्भीपाकं यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः॥५१॥
तस्मादुत्तीर्य पापी च विष्ठायां जायते कृमिः।
वर्षकोटिसहस्त्राणि तत्र स्थित्वा च पातकी॥५२॥
ततो भवेन्महापापी वर्षकोटिसहस्त्रकम्। पुंश्चलीयोनिगर्ते च कृमिश्चैव पुरंदर॥५३॥

संवर्त्त कनिष्ठ हैं। उनको गुरु (बृहस्पति) ने कुछ पैतृक वस्तु भी प्रदान नहीं किया था। इस कारण वे तपस्वी होकर सतत् परमेश्वर कृष्ण के ध्यान में निरत रहते हैं। मध्यम भाई उतथ्य की गर्भिणी साध्वी कामभाव रहित पत्नी का हरण बृहस्पति ने काम के कारण कर लिया। जो व्यक्ति भाई की पत्नी का हरण करता है, वह उस समय तक कुंभीपाक नरक में पड़ा रहता है, जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य विद्यमान हैं। उसे १००० ब्रह्महत्या का पाप लगता है तथा वह माता के साथ समागम करने वाले पाप का भागी हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। हे इन्द्र! इससे वह पातकी मल का कृमि होकर उसमें

१. क. कुशिष्याय।

हजारों-करोड़ वर्षों तक रहने के बाद सहस्र कोटि वर्षों तक व्यभिचार रत नारियों की योनि गह्वर में कीट होता है!।।४८-५३।।

गृध्रःकोटिसहस्त्राणि शतजन्मानि कुक्कुरः। भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि सूकरः।।५४।।

(भाई की पत्नी का अपहरण करने के पाप का यहीं अन्त नहीं है) तदनन्तर वह पापी सहस्र कोटि जन्म पर्यन्त गृध्र, सौ जन्म तक श्वान, १०० जन्म तक शूकर की योनि में रहता है।।५४।।

ददाति यो न दायं च बलिष्ठो दुर्बलाय च।
स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।५५।।

जो अपने बल के कारण अपने दुर्बल भ्राता को उसका दाय भाग (पैतृक सम्पत्ति में उसका हिस्सा) नहीं देता, उसे जब तक चन्द्र-सूर्य सृष्टि में स्थित हैं, तब तक कुंभीपाक नरक में कष्टभोग करना ही होगा।।५५।।

ना ऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।५६।।

जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः। ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमीश्वरं बलिनां वरम्।।५७।।

हे इन्द्र! अपने कृतकर्म का भोग किये बिना वह शतकोटि कल्पों में भी नष्ट नहीं हो पाता! कृत कर्म का जो भी शुभ-अशुभ फल है, उसका भोग करना निश्चित है। ये बृहस्पति जगत्गुरु शिव के गुरुपुत्र हैं। अतः उन महाबलियों में श्रेष्ठ शिव से यह प्रसंग कहना ही होगा।।५६-५७।।

सर्वे समूहा देवानां संनद्धश्च सवाहनाः। मध्यस्था मुनयश्चैव सन्तु वे नर्मदातटे।।५८।।

पश्चादहं च यास्यामि पुण्यं तं नर्मदातटम्।
गुरुस्तद्गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालयम्।।५९।।

सभी देवता अपने-अपने वाहनों के साथ सज्जित होकर नर्मदा तट पर चलें। साथ में मुनिगण भी मध्यस्थ के रूप में वहां रहें। मैं भी शीघ्र पुण्यप्रद नर्मदा तट पर आ जाऊंगा। ये गुरुपुत्र बृहस्पति शीघ्र कैलास गमन करें।।५८-५९।।

महेन्द्र उवाच

कथं वा वेदकर्तुश्च सिद्धानां योगिनां गुरोः।
मृत्युञ्जयस्य शंभोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः।।६०।।
अङ्गिरास्तव पुत्रश्च तत्पुत्रश्च बृहस्पतिः।
त्वत्तो ज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोः पितुः।।६१।।

इन्द्र (महेन्द्र) कहते हैं–हे प्रभो! वेद प्रणेता, सिद्धगण तथा योगीगण के गुरुस्वरूप मृत्युंजय शिव के गुरुपुत्र ये बृहस्पति कैसे कहे गये? अंगीरा तो आप ब्रह्मा के पुत्र हैं। उनके पुत्र बृहस्पति तो

आपके पौत्र हैं। महादेव भी आपसे भी श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। ऐसी स्थिति में बृहस्पति गुरुपुत्र कैसे हो गये?।।६०-६१।।

ब्रह्मोवाच

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरंदर। इमां पुराप्रवृत्तिं च कथयामि निशामय।।६२।।
मृतवत्सा कर्मदोषाद्भार्या चाङ्गिरसः पुरा। व्रतं चकार मद्वाक्यात्कृष्णस्य परमात्मनः।।६३।।
व्रतं पुंसवनं नाम वर्षमेकं चकार सा। सनत्कुमारो भगवान्कारयामास तां व्रतम्।।६४।।
तदाऽऽगत्य च गोलोकात्परमात्मा कृपामयः।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः।।६५।।
सुव्रतां च सलक्ष्मीकां तामुवाच कृपानिधिः।
प्रणतां साश्रुनेत्रां च विनीतां च तया स्तुतः।।६६।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे इन्द्र! यह प्रसंग पुराणों में अत्यन्त गोपनीय रूप में वर्णित है। यह पूर्वतन वृत्तान्त कहता हूं। सुनो। पूर्वकाल में अंगीरा की पत्नी ने कर्मदोष के कारण मृत सन्तान को जन्म दिया। वे मृतवत्सा हो गई थीं। तब मेरे कहने पर उसने परमात्मा श्रीकृष्ण का व्रत किया था। यह पुंसवन नामक कृष्णव्रत था। यह व्रत उनको देवर्षि सनत्कुमार ने कराया था। उस समय दयामय, भक्तों पर कृपा करने के लिये सगुण देहधारी, स्वेच्छामय, परम ज्योतिरूप परमात्मा गोलोकधाम से आये। उनकी स्तुति उस समय सनत्कुमार ने किया। उस समय अनशन के कष्ट को सह कर दुर्बल शरीर हो गई व्रती विनीत तथा प्रणाम कर रही साश्रुनयना अंगीरापत्नी से भगवान् ने कहा—।।६२-६६।।

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाणेदं [1]व्रतफलं मम तेजः समन्वितम्। भुङ्क्ष्व मद्वरतः पुत्रो भविष्यति मदंशतः।।६७।।
पतिर्गुरुश्च देवानां महतां ज्ञानिनां वरः। पुत्रस्ते भविता साध्वि मद्वरेण बृहस्पतिः।।६८।।
मद्वरेण भवेद्यो हि स च मद्वरपुत्रकः। त्वद्गर्भे मम पुत्रोऽयं चिरजीवी भविष्यति।।६९।।
वरजो वीर्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा। विद्यामन्त्रसुतौ चैव गृहीतः सप्तमः सुतः।।७०।।
इत्युक्त्वा राधिकानाथः स्वलोकं च जगाम सः।
श्रीकृष्णवरपुत्रोऽयं ज्ञानी सुरगुरुः स्वयम्।।७१।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे देवी! तुम व्रत के फलस्वरूप मेरे द्वारा प्रदत्त तेजयुक्त यह फल ग्रहण करो। इसके भक्षण से मेरे अंश से उत्पन्न श्रेष्ठ पुत्र की तुमको प्राप्ति होगी। हे साध्वी! मेरे वर के प्रभाव से वह देवगण का गुरु, ज्ञानीगण में अग्रगण्य बृहस्पति नामक पुत्र तुमको प्राप्त होगा। मेरे वर से तुमको जो यह पुत्र उत्पन्न होगा, वह दीर्घजीवी होगा। पुत्रगण सात प्रकार के होते हैं—वर से प्राप्त, पति के वीर्य

१. क. यज्ञफ.।

से प्राप्त, क्षेत्रज, पालित, विद्याजनित, मन्त्र द्वारा प्राप्त, दत्तक (गोद लिया), ये सात प्रकार के पुत्र होते हैं। यह कह कर राधिकापति कृष्ण गोलोक चले गये। अतः ये वर से प्राप्त बृहस्पति कृष्ण के पुत्र, महाज्ञानी तथा देवगण के गुरु कहे गये।।६७-७१।।

मृत्युञ्जयं महाज्ञानं शिवाय प्रददौ पुरा। दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपश्चक्रे हिमालये।।७२।।

स्वयोगं ज्ञानमखिलं तेजः स्वात्मसमं परम्।
स्वशक्तिं विष्णुमायां च स्वांशं वै वाहनं वृषम्।।७३।।

पूर्वकाल में शिव को ही श्रीकृष्णदेव ने मृत्युंजय महाज्ञान प्रदान किया था। इससे पूर्व शिव ने हिमवान् पर्वत पर तीन लाख दिव्य वर्ष तक तप किया था (१ दिव्य वर्ष = ३६० मानव वर्ष) इसे देख कर कृष्ण ने प्रसन्न होकर शिव को अपना योग, सम्पूर्ण ज्ञान, अपने जैसी शक्ति तथा तेज, विष्णुमाया तथा अपने ही अंशरूप वृष को भी वाहन हेतु प्रदान किया।।७२-७३।।

स्वशूलं च स्वकवचं स्वमन्त्रं द्वादशाक्षरम्।
कृपामयः स्तुतस्तेन श्रीकृष्णश्च परात्परः।।७४।।
शिवलोके शिवा सा च विष्णुमाया शिवप्रिया।
शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता।।७५।।

तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता सनातनी। जघान दैत्यनिकरं देवेभ्यः प्रददौ पदम्।।७६।।

श्रीकृष्ण देव ने शंकर को उस समय अपना त्रिशूल, कवच, द्वादशाक्षर मन्त्र भी प्रदान किया। तदनन्तर शिव ने कृपामय परात्पर प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति भी किया था। विष्णुमाया ही शिवलोक में शिवप्रिया शिवा कही गयी हैं। ये नारायण की शक्ति हैं। तभी इनको नारायणी भी कहते हैं। इनका आविर्भाव समस्त देवताओं के तेज से ही हो सका था। तदनन्तर इन्होंने समस्त असुरों का संहार करके देवगण को उनके अपने-अपने पदों पर स्थापित किया था!।।७४-७६।।

कल्पान्ते दक्षकन्या च सा मूलप्रकृतिः सती।
पितृयज्ञे तनुं त्यक्त्वा योगाद्वै सिद्धयोगिनी।।७७।।

बभूव शैलकन्या सा साध्वी वै भर्तृनिन्दया। कालेन कृष्णतपसा शङ्करं प्राप शङ्करी।।७८।।

ये आदि प्रकृति साध्वी सिद्धयोगिनी विष्णुमाया कल्पान्त में दक्षकन्या सतीरूपा आविर्भूत हो गई थीं। इन्होंने पिता दक्ष के यज्ञ में अपने स्वामी की निन्दा सुन कर वहीं देहत्याग कर दिया। तदनन्तर वे हिमालय पर्वत की पुत्री होकर आविर्भूत हो गईं। उन्होंने दीर्घकालीन घोर तप करके शंकर को पतिरूपेण प्राप्त कर लिया था।।७७-७८।।

श्रीकृष्णो हि गुरुः शंभोः परमात्मा परात्परः।
कृष्णस्य वरपुत्रोऽयं स्वयमेव बृहस्पतिः।।७९।।

अतो हेतोः सुरगुरुर्गुरुपुत्रः शिवस्य च। इत्येवं कथितं सर्वमतिगुह्यं पुरातनम्।।८०।।
इति प्रधानसंबन्धः श्रुतश्च कथितो मया। पारम्परिकमन्यं च कथयामि निशामय।।८१।।

इसी कारण परात्पर परमात्मा श्रीकृष्ण ही शंकर के गुरु हैं। ये बृहस्पति कृष्ण के वरद पुत्र हैं। इसी कारण बृहस्पति शंकर के गुरु भाई (गुरुपुत्र) तथा देवगुरु हो गये। यह मैंने अत्यन्त गुप्त पुरातन प्रसंग कहा है। यह इनका वह सम्बन्ध है, जो मैंने सुना था। इन दोनों के बीच का एक अन्य पारस्परिक सम्बन्ध भी कहता हूं, उसे सुनो।।७९-८१।।

दुर्वासा गरुडश्चैव शङ्करांशः प्रतापवान्।
शिष्यौ चाङ्गिरसस्तौ द्वौ गुरुपुत्रोऽथवा ततः।।८२।।
प्राणाधिकायां सत्यां च मृतायां दक्षशापतः।
स्वज्ञानं स्वं च भगवान्विसस्मार स्वमोहतः।।८३।।
स्मरणं कारयामास कृष्णेन प्रेरितोऽङ्गिराः।
अतो हेतोर्गुरुश्चैवं[1] मत्सुतः स्याच्छिवस्य सः।।८४।।

ये प्रतापी दुर्वासा ऋषि तथा कृष्णवाहन गरुड़ दोनों ही शंकर के ही अंश हैं। ये दोनों अंगीरा के शिष्य हैं। इस प्रकार भी बृहस्पति शिव के गुरुपुत्र हो गये। दक्ष के शाप के कारण शिव अपना ज्ञान तथा स्वयं को सती के देहत्याग के समय भूल गये। प्रभु कृष्ण के आदेश से प्रेरित अंगीरा ने उनको प्रबोधित करके यह स्मरण कराया। अतः मेरे पुत्र अंगीरा शिव के गुरु सिद्ध हैं।।८२-८४।।

शीघ्रं गच्छतु कैलासं स्वयमेव बृहस्पतिः। त्वं गच्छ तत्र संनद्धः सदेवो नर्मदातटम्।।८५।।
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च नारद। गुरुर्ययौ च कैलासं महेन्द्रो नर्मदातटम्।।८६।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० बृहस्पतेः कैलासगमनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

"अब बृहस्पति शीघ्र स्वयमेव कैलास जायें। हे इन्द्र! तुम समस्त देवगण के साथ सन्नद्ध होकर नर्मदा तट पर चलो।" हे नारद! यह कह कर विधाता पितामह मौन हो गये। तब बृहस्पति कैलास चले गये और महेन्द्र नर्मदा तट पर गये।।८५-८६।।

।।एकोनषष्टितम अध्याय समाप्त।।

---

१. क. ०रुरिव शिवस्य मत्सुतस्य च।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

शिव तथा बृहस्पति का वार्त्तालाप, नर्मदा तट पर जाना, विष्णु के दूत बन कर ब्रह्मा का शुक्राचार्य के पास गमन

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः। निपीतं च सुधाख्यानं त्वन्मुखेन्दुविनिःसृतम्॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि किमुवाच बृहस्पतिः।
शिवं च गत्वा कैलासं दातारं सर्वसंपदाम्॥२॥
जगत्कर्ता विधाता च किंवा तं प्रत्युवाच सः। एतत्सर्वं समालोच्य वद वेदविदां वर॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे वेद-वेदांग पारदर्शी महात्मा ऋषिप्रवर नारायण! आज मैंने आपके मुखचन्द्र से निःसृत अमृततुल्य वाक्यों का श्रवण एवं पान किया। अब बृहस्पति ने कैलास जाकर सर्वसिद्धिदायक महादेव से क्या कहा, उसका श्रवणाभिलाषी हूं। जगत्कर्त्ता शिव ने तब क्या प्रत्युत्तर प्रदान किया? हे वेदज्ञप्रवर! यह सब आप विस्तार के साथ कहिये।।१-३।।

नारायण उवाच

शीघ्रं गत्वा च कैलासं भ्रष्टश्रीः शङ्करं गुरुः। प्रणम्य तस्थौ पुरतो [1]लज्जामलिनविग्रहः॥४॥
दृष्ट्वा गुरुसुतं शंभुरुदतिष्ठत्कुशासनात्। आलिङ्गनं ददौ तस्मै शीघ्रं माङ्गलिकाशिषः॥५॥
स्वासने वासयित्वा वै पप्रच्छ कुशलं वचः।
उवाच मधुरं वाक्यं भीतं तं लज्जितं शिवः॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—जिनकी श्री नष्ट हो गई है, ऐसे गुरु बृहस्पति ने कैलास जाकर पहले शंकर को प्रणाम किया। वे लज्जा से मलिन मुख तथा शोभाहीन भी हो रहे थे। वे शीघ्रता के साथ उनके ही समक्ष जाकर खड़े हो गये। जब वहां शिव ने गुरुपुत्र बृहस्पति को आया देखा, वे अपने कुशासन से तत्काल उठे तथा बृहस्पति का आलिंगन करके उनको मांगलिक आशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् महादेव ने बृहस्पति को आसनासीन कराया तथा भयभीत एवं लज्जित हो रहे बृहस्पति से मधुर वाणी में कहा—।।४-६।।

कथमेवंविधस्त्वं च दुःखी मलिनविग्रहः। साश्रुनेत्रो लज्जितश्च भ्रातस्तत्कारणं वद॥७॥
किंवा तपस्या हीना ते संध्या हीनाऽथवा मुने।
किंवा श्रीकृष्णसेवा सा विहीना दैवदोषतः॥८॥

---

१. ख. ज्जावनतकन्धरः।

किंवा गुरौ भक्तिहीनोऽभीष्टदेवेऽथवा हरौ। किंवा न रक्षितुं शक्तः प्रपन्नं शरणागतम्॥९॥

किंवाऽतिथिस्ते विमुखः किंवा पोष्या बुभुक्षिताः।
किंवा स्वतन्त्रा स्त्री वाते किंवा पुत्रोऽवचस्करः॥१०॥

श्री शंकर कहते हैं—हे भाई! तुम इस प्रकार से दुःखी, मलीन देह तथा अश्रुपूरित नेत्रों की स्थिति में क्यों हो? अपनी लज्जा का कारण भी मुझसे कहो? क्या तुम तपोहीन तथा सन्ध्याहीन हो गये, अथवा दैवदोष से श्रीकृष्ण सेवा से रहित हो गये? अथवा क्या तुम अपने इष्टदेव तथा गुरु की भक्ति से रहित हो गये हो? क्या तुम अपने शरणागत की रक्षा नहीं कर सके? अथवा तुमसे आज अतिथिदेव विमुख हो गये, किंवा तुम्हारे आश्रित लोग आज भूखे हैं? अथवा क्या तुम्हारी पत्नी आज तुमसे स्वतन्त्र हो गई किंवा पुत्रगण तुम्हारी आज्ञा का पालन नहीं कर रहे हैं?॥७-१०॥

सुशासितो न शिष्यो वा किं भृत्याश्चोत्तरप्रदाः।
किंवा ते विमुखा लक्ष्मीः किंवा रुष्टो गुरुस्तव॥११॥

गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च शश्वत्संतुष्टमानसः। गुरुस्तव वसिष्ठश्च प्रेष्ठः श्रेष्ठः सतामहो॥१२॥

किंवा रुष्टोऽभीष्टदेवः किंवा रुष्टाश्च वाडवाः।
किंवा रुष्टा [1]वैष्णवाश्च किंवा ते प्रबलो रिपुः॥१३॥

क्या तुम्हारे शिष्य अब तुम्हारे शासन को नहीं मान रहे हैं? क्या भृत्यगण ने तुमको उत्तर तो नहीं दे दिया (कि काम नहीं करेंगे?) क्या लक्ष्मी तुमसे विमुख हो गई अथवा गुरु तुम्हारे प्रति रुष्ट हैं? सदा सन्तोष युक्त, श्रेष्ठ, गौरवयुक्त, साधुगणाग्रणी वसिष्ठ तो क्रोध कर ही नहीं सकते! क्या तुम्हारे ऊपर इष्टदेव अथवा ब्राह्मणों का क्रोध टूट पड़ा है, अथवा तुम्हारा प्रबल शत्रु किंवा वैष्णवगण तुम्हारे प्रति रुष्ट हो गये?॥११-१३॥

किंवा ते बन्धुविच्छेदो विग्रहो बलिना सह।
किंवा पदं परग्रस्तं किंवा बन्धुधनं च वा॥१४॥
केन ते वा कृता निन्दा खलैर्वा पापिभिर्मुने।
केन वा त्वं परित्यक्तो बान्धवेन प्रियेण वा॥१५॥

अथवा बन्धुगण से तुम्हारा विच्छेद हो गया अथवा किसी बलवान् के साथ तुम्हारा विरोध हो गया? अथवा तुम्हारा पद, बन्धुवर्ग एवं धन अन्य के द्वारा हर लिया गया? हे बृहस्पति! क्या किसी पातकी किंवा क्रूर ने तुम्हारी निन्दा कर दिया? अथवा प्रियतम बन्धुओं ने तुम्हारा त्याग कर दिया?॥१४-१५॥

बन्धुस्त्यक्तस्त्वया किंवा वैराग्येण क्रुधाऽथवा।
किंवा तीर्थे नहि स्नातं न दत्तं पुण्यवासरे॥१६॥

१. क. बान्धवा०।

गुरुनिन्दा बन्धुनिन्दा खलवक्त्राच्छ्रुताऽथवा।
गुरुनिन्दा हि साधूनां मरणादतिरिच्यते॥१७॥

अथवा तुमने ही वैराग्य तथा क्रोध पूर्वक अपने बन्धु को त्याग दिया, किंवा तुमने तीर्थ स्नान नहीं किया तथा पुण्य पर्व पर दान नहीं दिया? क्या तुमने दुष्टों द्वारा गुरुनिन्दा, साधुनिन्दा, बन्धुनिन्दा तो नहीं सुना। क्योंकि गुरु तथा साधु की निन्दा श्रवण तो मरण से बढ़ कर दुःख है।।१६-१७।।

असद्वंशप्रजातानां खलानां निन्दनं तथा। दौःशील्यमेवमसतां शश्वन्नारकिणामिह॥१८॥

जो नीच कुल तथा असत् कुल में उत्पन्न हैं, उन खलगण का काम तो सतत् निन्दा करना ही है। ऐसे लोगों को तो शाश्वत नरकवास ही मिलता है।।१८।।

परप्रशंसकाः सन्तः पुण्यवन्तो हि भारते। शश्वन्मङ्गलयुक्ताश्च राजन्तेऽमलमानसाः॥१९॥
पुत्रे यशसि तोये च समृद्धे च पराक्रमे। ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च॥२०॥
वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः। आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम्॥२१॥

जो पुण्यवन्त सन्त हैं, वे भारत में अन्य के प्रशंसक होते हैं। वे निर्मल मनयुक्त, सदा मंगलयुक्त, पुत्र-यश-जल-धन-समृद्धि-पराक्रम-ऐश्वर्य-प्रजा (सन्तति)-प्रताप-भूमि सम्पन्न होते हैं। वे वाणी-बुद्धि-स्वभाव-चरित्र, आचार-व्यवहार युक्त हृदय वाले होते हैं।।१९-२१।।

यादृग्येषां च हृदयं तादृक्तेषां च मङ्गलम्। यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृवतेषां च मानसम्॥२२॥

जिसका हृदय जितना ही स्वच्छ होता है, उसका उतना ही मंगल होता है। जिसका पूर्वकृत कर्म जैसा है, वैसा ही उसका मन होगा।।२२।।

इत्युक्त्वा च महादेवो विरराम स्वसंसदि। तमुवाच महावक्ता स्वयमेव बृहस्पतिः॥२३॥

यह कह कर अपनी सभा में महादेव मौन हो गये। तब महावक्ता बृहस्पति स्वयं कहने लगे—२३।।

बृहस्पतिरुवाच

अकथ्यमेव वृत्तान्तं कथयामि किमीश्वर।
लोकाः कर्मवशा नित्यं नानाजन्मसु यत्कृतम्॥२४॥
स्वकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुजर्मनि जन्मनि।
नहि नष्टं च तत्कर्म विना भोगाच्च भारते॥२५॥
सुखं दुःखं भयं शोको नराणां यत्कृतं प्रभो।
केचिद्वदन्ति हि भवेत्स्वकृतेन च कर्मणा॥२६॥
केचिद्वदन्ति दैवेन स्वभावेनेति केचन। त्रिविधा गतयो ह्यस्य वेदवेदाङ्गपारग॥२७॥

गुरु बृहस्पति कहते हैं—हे ईश्वर! वह वृत्तान्त कहने योग्य न होने पर भी कहना ही होगा। सभी

लोग पूर्वकृत कर्मों के ही अधीन रहते हैं। जीवगण जन्म-जन्मान्तर में अपने कृत कर्म का ही फलभोग करते हैं। बिना कृतकर्म का फल भोगे कर्मक्षय नहीं होता। हे प्रभो! किसी विद्वान् का कथन है कि भारतवर्ष में मनुष्य के सुख, दुःख, भय, शोक की प्राप्ति स्वकृत कर्मानुरूप ही होती है। किसी का यह मत है कि यह दैवाधीन है। कुछ का कथन है कि यह सब स्वभावतः घटित होते हैं। यहां वेदवेदांग पारंगत इस प्रकार की तीन गति कहते हैं।।२४-२७।।

स्वयं च कर्मजनकः कर्म वै दैवकारणम्।
स्वभावो जायते नृणां स्वात्मनः पूर्वकर्मणः॥२८॥
स्वकर्मणा च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि।
सुखं दुःखं भयं शोकः स्वात्मनश्च प्रजायते॥२९॥

हे वेदज्ञ! वेद में तीन प्रकार के ये ही मत कहे गये हैं। जीव स्वयं कर्म के जनक हैं। वह कर्म दैवसापेक्ष है। अर्थात् कर्म ही दैव का कारण हो जाता है। मनुष्य का इस जन्म का स्वभाव पूर्व जन्म के कर्मानुरूप होता है। इस तरह से सभी प्राणीगण के प्रति जन्म में अपने पूर्वजन्मार्जित कर्म के कारण उनमें सुख-दुःख-भय-शोक- उनके साथ ही उत्पन्न हो जाता है।।२८-२९।।

स्वकर्मफलभोक्ता च जीवो हि सगुणः सदा।
आत्मा भोजयिता साक्षी निर्गुणः प्रकृतेः परः॥३०॥
स एवाऽऽत्मा सर्वसेव्यः सर्वेषां च फलप्रदः।
स वै सृजति दैवं च स्वभावं कर्म चैव हि॥३१॥

भोक्ता जीव कर्मफल भोगार्थ सदैव सगुण (देहयुक्त) है। आत्मा साक्षी है। वह भोग करने वाला (भोजयिता) है। वह निर्गुण प्रकृति से परे है। यह आत्मा सबके लिये फलप्रद एवं सर्वसेव्य है। यही कर्मफल देता है तथा यही स्वभाव एवं कर्म का सृजन करता है।।३०-३१।।

कर्मणा च नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रफुल्लता।
लज्जाबीजं च वृत्तान्तं तथाऽपि कथयामि ते॥३२॥

यही कारण है कि जीवगण को प्रत्येक जन्म में कृत कर्म के ही कारण लज्जा, प्रशंसा तथा प्रफुल्लता की प्राप्ति होती है। यद्यपि मेरा समाचार लज्जामय है, तथापि आपसे कहता हूं।।३२।।

इत्युक्त्वा सर्ववृत्तान्तमवोचतं बृहस्पतिः।
श्रुत्वा बभूव नम्रास्यो गौरीशो लज्जया तदा॥३३॥
जपमाला कराद्भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः। बभूव सद्यः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचने॥३४॥
संहर्तुरीशो रुद्रस्य विष्णोः पातुः सखा शिवः।
स्रष्टुः स्तुत्यश्च मान्यश्च स्वात्मनः परमा गतिः॥३५॥

निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारद। कोपात्प्रवक्तुमारेभे शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः॥३६॥

हे नारद! यह कह कर बृहस्पति ने अपना समस्त वृत्तान्त शिव से कह दिया। इसे सुन कर गौरीश ने लज्जा से अपना शिर नत कर लिया। भगवान् शूलपाणि इतने क्रोधित हो गये कि उनके हाथों से उनकी जपमाला गिर गई, नेत्र रक्तकमल के समान लाल हो गये। उनका शरीर क्रोधाधिक्य से कांपने लगा। ये प्रभु शिव संहर्त्ता रुद्र के ईश्वर, विष्णु के सखा, ब्रह्मा द्वारा स्तुत तथा मान्य हैं। वे स्वात्मा की परमगति, निर्गुण प्रभु, प्रकृति के ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्ण के आत्मरूप हैं। ऐसे शिव का कण्ठ, ओंठ, तालु शुष्क हो गया। वे इसी स्थिति में कहने लगे—३३-३६।।

शिव उवाच

शिवमस्तु च साधूनां वैष्णवानां सतामिह। अवैष्णवानामसतामशिवं च पदे पदे॥३७॥

ददाति वैष्णवेभ्यश्च यो दुःखं सुस्थितो जनः।
श्रीकृष्णस्तस्य संहर्ता विघ्नस्तस्य पदे पदे॥३८॥

अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम्। श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनैर्मल्यकारणम्॥३९॥

शिव कहते हैं—इस लोक में विष्णुभक्त साधुओं का मंगल हो, जो अवैष्णव दुर्दान्त व्यक्ति विष्णुभक्ति रहित असाधु हैं, उनका पग-पग पर अमंगल हो। जो वैष्णवगण को दुःख देता है, कृष्ण उनका संहार स्वयं करते हैं। जो लोग अवैष्णव हैं, वे अशुद्ध हृदय हैं। उनका मन सदा मलपूर्ण रहता है। श्रीकृष्ण के मन्त्र का स्मरण ही मन की निर्मलता का कारणरूप है।।३७-३९।।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम्॥४०॥

अहो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः।
हृतभार्यं मूर्च्छितश्च न शशाप रिपुं गुरुः॥४१॥

गुरुर्यस्य वरिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः। शतपुत्रघ्नमप्येन न शशाप रिपुं मुनिः॥४२॥

निःश्वासाद्वै सुरगुरोर्भ्रातुर्मम बृहस्पतेः। भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद्ध्रुवम्॥४३॥

विष्णु के मन्त्र की उपासना से हृदयग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो जाती है। उसके समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं। उसके समस्त कर्म क्षयीभूत हो जाते हैं। अहो! श्रीकृष्ण के भक्तों का कैसा निर्मल स्वभाव होता है कि उन्होंने कुमार्गगामी, भार्या के अपहर्त्ता शत्रु चन्द्र को शाप तक नहीं दिया! हे मुनि! इसी तरह बृहस्पति के गुरु क्रोध रहित धार्मिक मुनि वसिष्ठदेव ने अपने १०० पुत्रों की हत्या करने वाले शत्रु को भी शाप तक नहीं दिया! मेरे भ्राता देवगुरु बृहस्पति के मात्र निःश्वास छोड़ने से ही एक क्षण में सैकड़ों चन्द्रमा तक दग्ध हो सकते हैं।।४०-४३।।

तथाऽपि तं नो शशाप धर्मभङ्गभयेन च।
तपस्या हीयते शप्तुः कोपाविष्टस्य नित्यशः॥४४॥

अहो ह्यत्रेरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः। तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः॥४५॥

तथापि धर्मभंग एवं तपनाश के भय से शाप नहीं दिया। कोपयुक्त होकर शाप देने से उनका धर्म नष्ट होता तथा तपः शक्ति समाप्त हो जाती! यह अत्याश्चर्यमय वृत्तान्त है कि तपःशील, परम वैष्णव, ब्रह्मपुत्र, बुद्धिमान अत्रि को चन्द्र ऐसा परस्त्रीलोभी शठ पुत्र उत्पन्न हो जाये?॥४४-४५॥

धर्मिष्ठा ब्रह्मणः पुत्रा वैष्णवा ब्राह्मणास्तथा।
केचिद्देवा द्विजा दैत्याः पौत्राश्च त्रिविधा मताः॥४६॥
ये सात्त्विका ब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा।
दैत्यास्तामसिका रौद्रा बलिष्ठाश्चोद्धताः सदा॥४७॥

धर्मात्मा ब्रह्मा के पुत्र वैष्णव तथा ब्राह्मण हैं। ब्रह्मा के पौत्रगण में से कुछ ब्राह्मण, कुछ देवता तथा कुछ दैत्य भी हैं। जो सात्विक हैं, वे ब्राह्मण हैं। जो राजस हैं, वे देवता हैं तथा तमोगुणी पौत्र दैत्य हैं, जो बली, भीषण तथा उद्दण्ड हैं॥४६-४७॥

स्वधर्मनिरता विप्रा नारायणपरायणाः।
शैवाःशाक्ताश्च ते देवाः दैत्याः पूजाविवर्जिताः॥४८॥
मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः।
ऐश्वर्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा॥४९॥
ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कृष्णस्यार्चनमीप्सितम्।
निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य प्रकृतेरपि॥५०॥
ये ब्राह्मणा वैष्णवाश्च स्वतन्त्राः परमं पदम्।
यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैः सार्धं च प्राकृते लये॥५१॥

जो ब्राह्मण हैं–वे स्वधर्मतत्पर तथा नारायण परायण हैं। जो देवता हैं–वे शिव-शक्ति के उपासक हैं। असुरगण को पूजा रहित कहा गया है। ब्राह्मण की कामना होती है मुमुक्षत्व तथा प्रभु विष्णु का सेवक होकर विष्णुदासत्व लाभ करना। देवता ऐश्वर्य के अभिलाषी होते हैं। असुर तामसिक होते हैं। ब्राह्मणगण स्वधर्म रत रह कर कृष्णार्चन की कामना करते हैं। निष्काम ब्राह्मण गुणातीत, प्रकृति से परे इष्टदेव के गुणों की चर्चा तथा अर्चना ही स्वधर्म मानते हैं। विष्णुभक्त ब्राह्मण तो सभी बन्धनों से स्वतन्त्र होकर परमपद लाभ करते हैं। जो अन्य देवता के उपासक हैं, वे अन्य के साथ प्राकृत लय के समय अन्य (अपने-अपने इष्ट) के साथ लयीभूत हो जाते हैं॥४८-५१॥

वर्णानां ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः साधवो वैष्णवा यदि।
विष्णुमन्त्रविहीनेभ्यो द्विजेभ्यः श्वपचो वरः॥५२॥
परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते।
सततं पाति तांश्चैव विष्णुचक्रं सुदर्शनम्॥५३॥

यथा वह्नौ शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेत्सदा। तथा पापं वैष्णवेषु तेजस्विषु हुताशनात्॥५४॥

सभी वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, तथापि यदि वे साधु तथा वैष्णव हों तभी श्रेष्ठ हैं। क्योंकि विष्णुमन्त्र रहित ब्राह्मण से तो चाण्डाल ही श्रेष्ठ है। यदि वैष्णव, साधु ब्राह्मण भक्तिमार्ग में पक्व हो अथवा अपक्व क्यों न हों, उनकी सतत् रक्षा भगवान् का सुदर्शन चक्र करता है। जैसे अग्नि में सभी सूखा तृण भस्म हो जाता है, उसी प्रकार विष्णुभक्तगण के सभी पातक भस्मीभूत हो जाते हैं।।५२-५४।।

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः॥५५॥
पुंसां शतं पितृणां च शतं मातामहस्य च। स्वसोदरांश्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः॥५६॥

गुरु के मुख से कहा गया विष्णु मन्त्र जिसके कानों में प्रविष्ट हो गया, उसे मनीषिगण महापवित्र वैष्णव कहते हैं। ऐसा वैष्णव अपनी पूर्व की १०० पीढ़ी, नाना की सौ पीढ़ी का तथा अपनी माता एवं सहोदरों का उद्धारकर्त्ता कहा गया है।।५५-५६।।

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनः।
समुद्धरन्ति पुंसां च वैष्णवाश्च शतं शतम्॥५७॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। यमस्तस्मान्महाभीतो वैनतेयादिवोरगः॥५८॥

गया में पिण्डदान करने वाला पिण्डदान करके केवल अपने कुल के पिण्डभोजी का ही उद्धार करते हैं, परन्तु वैष्णवगण तो सैकड़ों पीढ़ी का उद्धारकार्य कर देते हैं। मनुष्य विष्णुमन्त्र ग्रहण करते ही जीवन्मुक्त हो जाता है। जैसे गरुड़ को देखते ही सर्प भयभीत होकर पलायन करते हैं, वैसे ही वैष्णव को देखते ही यम भयभीत हो जाते हैं।।५७-५८।।

पुनन्त्येव हि तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते।
कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते॥५९॥
पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च।
नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः॥६०॥

तीर्थों में वहां पर पापीगण का पापभार जितना भी उन तीर्थों से संलग्न हो जाता है, वे समस्त पातक वैष्णव के स्पर्श मात्र से नष्ट हो जाते हैं। भारत में गंगा आदि तीर्थ नदी व्यक्ति को स्नान से पावन करती हैं, तथापि कृष्ण के मन्त्रोपासक तो स्पर्शमात्र से सभी को पावन कर देते हैं।।५९-६०।।

कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः।
सद्यो मुक्ताः पातकेभ्यः कृत्स्ना पूता वसुंधरा॥६१॥
वायुश्च पवनो वह्निः सूर्यः सर्वं पुनाति च। एते पूता वैष्णवानां स्पर्शमात्रेण लीलया॥६२॥
अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्।
एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम्॥६३॥

कृष्ण के मन्त्रोपासकों के चरणरज मात्र से वसुन्धरा पातकों से मुक्त होकर पवित्र हो जाती है। कहा गया है कि वायु, पवन, अग्नि, सूर्य सबको पावन कर देते हैं, तथापि यदि इनको लीला से भी वैष्णव स्पर्श कर ले, तब उसके स्पर्शमात्र से इनकी तक शुद्धि हो जाती है। मैं ब्रह्मा, शेष तथा धर्म सदा कर्मसाक्षी हैं। ये सभी नित्य वैष्णव समागम की आशा संजोये रहते हैं। ये प्रसन्न होकर वैष्णव समागम करते हैं।।६१-६३।।

फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत्।
न भवेत्तद्वैष्णवे च [1]स्विन्नधान्ये यथाऽङ्कुरम्।।६४।।
हन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः।
कृपया स्वपदं तेभ्यो ददात्येव कृपानिधिः।।६५।।
तेजस्विनां च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम्। स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रं च शरणं ययौ।।६६।।

भारत में सभी को कर्मानुरूप फल मिलता है, तथापि जैसे जो धान्य पका दिया गया उसमें अंकुरण नहीं होता, उसी प्रकार वैष्णव को कर्मफल (रूप बन्धन) नहीं होता। भक्तवत्सल भगवान् वैष्णवों के पूर्वकृत् कर्म का नाश करके कृपा पूर्वक उनको स्वपद प्रदान करते हैं। अब वह दुर्बल भयभीत चन्द्रमा तेजस्वी, श्रेष्ठ वैष्णव भृगुपुत्र शुक्राचार्य की शरण में गया है।।६४-६६।।

सुदर्शनो बलिष्ठं च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान्।
तथाऽपि चोद्धरिष्यामि तारां मन्त्रेण यद्गुरोः।।६७।।
भज सत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। सुप्रसन्ने भगवति पत्नीं प्राप्स्यसि लीलया।।६८।।

विष्णु का सुदर्शन चक्र भी बली शुक्राचार्य को नहीं जीत सकता, तथापि मैं शिव अपने गुरु कृष्णप्रदत्त मन्त्र से तारा का उद्धार करूंगा। अब तुम सत्यरूप परंब्रह्म ईश्वर श्रीकृष्ण का भजन करो। उनकी प्रसन्नता होते ही लीलामात्र से तुम्हारी भगवती पत्नी पुनः प्राप्त हो जायेगी।।६७-६८।।

मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम्।
कोटिजन्माघनिघ्नं च सर्वमङ्गलकारणम्।।६९।।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं नश्वरं जलबिन्दुवत्। शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्वरम्।।७०।।
तावद्भवेच्छज्ञ भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह।
यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः।।७१।।

हे भाई! मैं उन कृष्ण का परम कल्पतरु मन्त्र तुमको प्रदान करता हूं। यह करोड़ों जन्मों के पाप, विघ्न का नाशक है तथा समस्त मंगल का कारण है। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सब कुछ पानी के बुलबुले जैसा नश्वर है। अतः परमात्मा ईश्वर गोविन्द की शरण ग्रहण करो। मनुष्य में तभी तक संसार

---

१. ख. सिद्धधा०।

की, भोग की तथा नारीसुख की कामना बनी रहती है, जब तक उसको गुरुमुखकमल से हरि का मन्त्र नहीं मिल जाता।।६९-७१।।

संप्राप्य दुर्लभं मन्त्रं वितृष्णो हि भवेन्नरः। इन्द्रत्वममरत्वं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः।।७२।।

नहि वाञ्छन्ति मोक्षं च दास्यभक्तिं विना हरेः।
भक्तिनिर्मथनं भक्तो मोक्षं नो वाञ्छति प्रभोः।।७३।।

मनुष्य कृष्ण का दुर्लभ मन्त्र पाकर सांसारिक तृष्णा रहित हो जाता है। वैष्णवगण इन्द्रत्व तथा अमरत्व तक की कामना नहीं करते। वे तो मोक्ष तक की कामना नहीं करते। वे कृष्ण की दास्यभक्ति के अतिरिक्त यह सब नहीं चाहते। भक्त की दृष्टि में मोक्ष तो भगवद् भक्ति का नाशक है, तभी उनको मोक्षकामना नहीं रहती।।७२-७३।।

ज्ञानं मृत्युञ्जयत्वं च सर्वसिद्धिं तदीप्सितम्।
वाक्सिद्धिं चैव धातृत्वं भक्तानां नहि वाञ्छितम्।।७४।।
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति।
विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया।।७५।।

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः। कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृषी।।७६।।
स्वायंभुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः। भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः।।७७।।

बलिश्च बालखिल्याश्च वरुणश्च हुताशनः।
वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम्।।७८।।

भक्तगण तो तत्वज्ञान, मृत्युंजयत्व, लोगों को वांछित सर्वसिद्धि, वाक्सिद्धि, ब्रह्मत्व तक नहीं चाहते। जो कोई कृष्णभक्ति छोड़ कर विषयों की कामना करता है, वह विष्णुमाया के वश में होकर सुधा अमृत त्याग कर विष मांगता है। मुझे, ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, अनन्त, कश्यप, कपिल, सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषिद्वय, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, पराशर, भृगु, शुक्र, दुर्वासा, वसिष्ठ, क्रतु, अंगीरा, बलि, बालखिल्य, वरुण, अग्नि, वायु, सूर्य, गरुड़, दक्ष, गणपति को परमात्मा कृष्ण का श्रेष्ठ भक्त कहा गया है।।७४-७८।।

एते परा भक्तवराः कृष्णस्य परमात्मनः।
ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः।।७९।।
इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्मै ददौ कल्पतरुं मनुम्।
लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने।।८०।।

"उन कृष्ण की श्रेष्ठ कला से अंशरूपेण उत्पन्न लोग सदा उनकी भक्ति में तल्लीन रहते हैं।" यह कह कर शंकर ने वह कल्पतरु के समान कृष्णमन्त्र बृहस्पति को प्रदान किया। वह लक्ष्मी

(श्रीं), माया (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) तथा चतुर्थी विभक्तियुक्त कृष्णपद युक्त मन्त्र उनको प्रदान किया।।७९-८०।।

परं पूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा। तत्पुरश्चरणं ध्यानं शुद्धे मन्दाकिनीतटे॥८१॥
गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्च जगद्गुरोः।
वितृष्णो हि भवाब्धौ च बभूव तमुवाच ह॥८२॥

(इसका मन्त्रोद्धार है "ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः") तदनन्तर शिव ने बृहस्पति को इसका पूजाविधान, कृष्णस्तोत्र तथा कृष्णकवच उसके पुरश्चरण तथा ध्यान सहित शुद्ध मन्दाकिनी तट पर प्रदान किया। जगद्गुरु शंकर से मन्त्रलाभ तथा गुरुदीक्षा पाकर बृहस्पति संसार-सागर से वितृष्ण (तृष्णा रहित) हो गये। तब उन्होंने शंकर से कहा-।।८१-८२।।

बृहस्पतिरुवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तप्तुं हरेस्तपः। तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम्॥८३॥
पश्यामि विषतुल्यं च सर्वं नश्वरमीश्वर।
श्रीकृष्णं शरणं यामि सत्यं नित्यं च निर्गुणम्॥८४॥

देवगुरु बृहस्पति कहते हैं-हे जगन्नाथ! अनुमति दीजिये। मैं हरि के निमित्त तपार्थ जाऊंगा। जहां तारा है, वहीं रहे। अब मुझे उससे कोई प्रयोजन नहीं है। हे ईश्वर! अब मुझे सब कुछ विषवत् अनश्वर प्रतीत हो रहा है। मैं सत्य, नित्य, निर्गुण कृष्ण की शरण में जाऊंगा।।८३-८४।।

महादेव उवाच

परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने। संभावितस्य दुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते॥८५॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेतं नर्मदातटम्। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम्॥८६॥

महादेव कहते हैं-हे मुनिप्रवर! पराये व्यक्ति द्वारा अपहृता पत्नी की उपेक्षा करके तप करना प्रशंसनीय कार्य नहीं है। मानी व्यक्ति द्वारा किया ऐसा आचरण तो उसके लिये मरणतुल्य जाने। हे महाभाग! अब पहले तुम नर्मदा तट पर जाओ। वहां ब्रह्मादि देवता स्थित हैं। वहां मैं भी शीघ्र आ रहा हूं।।८५-८६।।

शिवस्य वचनं श्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम्।
आययौ च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम्॥८७॥
सगणं शकरं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्। प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा॥८८॥
ननाम शंभुः शिरसा विष्णुं च कमलोद्भवम्।
ददतुस्तौ महेशाय [१]प्रेम्णाऽऽलिङ्गनमासनम्॥८९॥

१. क. ०म्णा मङ्गलमाशिषम्।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः। प्रणनाम महादेवं विष्णुं च कमलोद्भवम्॥९०॥
सूर्यं धर्ममनन्तं च नरं मां च मुनीश्वरान्। स्वगुरुं पितरं भक्त्या चावसत्तत्र संसदि॥९१॥

देवगुरु बृहस्पति ने शिव का यह कथन सुन कर स्वयं नर्मदा तट की ओर प्रस्थान किया। भगवान् शंकर भी वहां आ गये। वहां प्रफुल्ल मुद्रा में शिव को गणों के साथ समागत देख कर देवता, मनुगण तथा मुनिगण ने शिव को प्रणाम किया। महादेव ने स्वयं भी विष्णु एवं ब्रह्मा को प्रणाम किया। तब विष्णु एवं ब्रह्मा ने प्रेम पूर्वक शिव का आलिंगन भी किया तथा उनको आशीर्वाद भी दिया। इस समय तक वहां बृहस्पति भी आ गये। उन्होंने वहां महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, धर्म, अनन्त, मनुष्य, मुझे अपने गुरु तथा पिता को भक्तिभावेन प्रणाम किया तथा वहीं आसनासीन हो गये।।८७-९१।।

संचिन्त्य मनसा युक्तिमूचे तत्र च संसदि।
स्वयं विष्णुश्च भगवान्ब्रह्माणं चन्द्रशेखरम्॥९२॥

तब भगवान् विष्णु ने विचार से युक्ति निश्चित कर लिया तथा उन्होंने ब्रह्मा-शिव से स्वयं कहा-।।९२।।

विष्णुरुवाच

युवां[1] च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं द्रुतम्। शुक्रं[2] कविं च मध्यस्थं प्रस्थापयितुमर्हथ॥९३॥
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः। मदाशिषा सुरगुरुस्तारां प्राप्स्यति निश्चितम्॥९४॥

सुरैः स्तुतश्च संतुष्टः शुक्राचार्यो भविष्यति।
सुरैः शुक्रो हि न जितः कृष्णचक्रेण रक्षितः॥९५॥
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युवयोः स्तवनेन च।
श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टः स्तवेन च॥९६॥

[3]शुक्राश्रमसमीपं तु सर्वा गच्छन्तु देवताः। रिपुर्बलिष्ठः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः॥९७॥

विष्णुदेव कहते हैं-आप दोनों तथा मुनिगण शीघ्र समुद्र तट पर चलें। शुक्र के यहां एक मध्यस्थ व्यक्ति भेजना उचित है। यदि विग्रह घटित हो गया, तब विपत्ति आयेगी इसमें संशय नहीं है, तथापि मेरे आशीर्वाद के कारण बृहस्पति अवश्य देवी तारा को प्राप्त करेंगे। देवगण द्वारा स्तुत होकर शुक्र प्रसन्न होंगे। देवता लोग शुक्राचार्य से विग्रह न करें। मेरा सुदर्शन चक्र उनकी सदा (शुक्र की) रक्षा करता है। बली शत्रु भी स्तव से वशीभूत हो जाते हैं। यह वेदवाणी है। अतः सभी देवता

१. युवाभ्यां प्रार्थ्यमानो हि युवयोश्च स्तवेन च।
श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टः स्तवेन च॥
शुक्राश्रमसमीपन्तु सर्वा गच्छन्तु देवताः।
इतः पूर्वमत्यधिकः पाठः क्वाचित्कः॥
२. क. ०क्रं कंचिच्च म०।
३. ख. ०ममसीपर्णं स०।

शुक्र के पास जायें। मैं आप लोगों की प्रार्थना तथा स्तव से सन्तुष्ट होकर ही श्वेत द्वीप से यहां आया हूं।।९३-९७।।

इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तत्रैवान्तरधीयत। स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः।।९८।।
गते च जगतां नाथे श्वेतद्वीपं च नारद। चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमनसस्तथा।।९९।।

यह कहने के पश्चात् ब्रह्मादि देवों ने विष्णु को प्रणाम करके उनकी पूजा किया। तदनन्तर जगन्नाथ विष्णु वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। हे नारद! जगन्नाथ के श्वेतद्वीप चले जाने पर सभी देवता चिन्तित तथा खिन्न हो गये।।९८-९९।।

मुनीन्द्रेवांश्च संबोध्य ब्रह्मा वै तत्र संसदि। उवाच नीतिसारं तत्संमतं शङ्करस्य सः।।१००।।

तब उस सभा में ब्रह्मा ने मुनिगण तथा देवताओं को संबोधित करके शंकर सम्मत नीतिसार युक्त वचन उस सभा में कहा—।।१००।।

ब्रह्मोवाच

मम शंभोश्च धर्मस्य विष्णोर्वा सर्वसाक्षिणः।
अस्माकं च समः स्नेहो दैत्ये देवे च पुत्रकाः।।१०१।।
दैत्यानां च गुरुं शुक्रं प्रपन्नश्च निशाकरः।
न जितश्च सुरैः शुक्रः पूजितो दितिनन्दनैः।।१०२।।
ताराहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवनं सुराः। सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः।।१०३।।
इत्युक्त्वा जगतां धाता चागमच्छुक्रसंनिधिम्।
प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने।।१०४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० श्रीकृष्णोपदिष्टतारोद्धरणोपायज्ञानं नाम षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—"मैं, शंभु, धर्म तथा विष्णु सबके साक्षी हैं। हमारा देवता तथा दैत्यों के प्रति एक जैसा स्नेह रहा है। हे पुत्रगण! चन्द्रमा दैत्यगुरु शुक्र का शरणागत है। वे शुक्र दैत्यपूजित होने के कारण जीते नहीं जा सकते। तारा को प्राप्त करने मैं एकाकी शुक्र के निवास में जा रहा हूं।" यह सुन कर विष्णु के निर्देशनानुसार देवता तथा मुनिगण समुद्र तट पर गये। हे नारद! जगत्विधाता यह कह कर शुक्र के पास गये।।१०१-१०४।।

।।षष्टितम अध्याय समाप्त।।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

शुक्र द्वारा ब्रह्मा को तारा का समर्पण, बुध जन्म, बृहस्पति को तारा की प्राप्ति, सुरथ तथा समाधि वैश्य का वंश परिचय

नारद उवाच

ततः परं किं रहस्यं बभूवासुरदेवयोः। श्रोतुमिच्छामि भगवन्परं कौतूहलं मम॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे प्रभो! तदनन्तर देवता एवं असुरों के बीच क्या घटना घटित हो गई? मुझे सुनने हेतु अत्यन्त कौतुक हो रहा है?।।१।।

नारायण उवाच

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः। नानादैत्यगणाकीर्णं रत्नमण्डपभूषितम्॥२॥

पञ्चाशत्कोटिभिःशिष्यैः परीतं ब्रह्मवादिभिः।
सप्तभिः परिखाभिश्च वेष्टितं दुर्गमेव च॥३॥

रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिभिः। पद्मरागैर्विरचितैः प्रावारैः परिशोभितम्॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—तब ब्रह्मा अनेक दैत्यगण से भरे, रत्नगृह सुशोभित, पचास करोड़ वेदोच्चारण करने वाले शिष्यों से घिरे, सात खाईयों से घिरे, दुर्गयुक्त, सौ करोड़ रक्षक असुरों से रक्षित पद्मराग की दीवारों से शोभायमान महात्मा शुक्र के भवन में गये।।२-४।।

ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम्। स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम्॥५॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। कोटिसूर्यप्रभं शश्वज्जलन्तं ब्रह्मतेजसा॥६॥

वहां जाकर जगद्धाता ब्रह्मा ने उस सभा में रत्नसिंहासन पर आसीन भृगुनन्दन शुक्र को देखा जो मुनिगण, दैत्यगण से स्तुत हो रहे थे। वे कोटिसूर्यसमप्रभ तथा ब्रह्मतेज से दीप्त होकर परम ब्रह्म परमात्मा ईश्वर कृष्ण का नाम जप रहे थे।।५-६।।

दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः। आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रं च नारद॥७॥
दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम्। उत्थाय सहसा भीतः प्रणनाम कृताञ्जलिः॥८॥

अपने पौत्र को प्रभासम्पन्न देख कर विधाता प्रसन्न मन हो गये। उन्होंने स्वयं को, अपने पुत्र अंगीरा को तथा उनके पुत्र शुक्र को कृतार्थ माना। जब जगत्प्रभु तथा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को शुक्राचार्य ने समागत देखा, तब वे सहसा भय पूर्वक उठे तथा उन्होंने हाथ जोड़ कर परम भक्ति से ब्रह्मा को प्रणाम किया।।७-८।।

आदाय पूजयामास चोपचारांस्तु षोडश। तुष्टाव परया भक्त्या संभ्रमेण यथागमम्॥९॥

विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। स्वकर्मणां च फलदं सर्वेषां विश्वतो वरम्॥१०॥

तदनन्तर उन्होंने आसनादि १६ उपचारों से ब्रह्मा की पूजा किया। तदनन्तर शुक्र ने विद्या-मन्त्रादि प्रदाता, सर्व सम्पत्ति देने वाले कर्मफलदाता विश्व में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा की स्तुति भी किया॥९-१०॥

शुक्रस्य स्तवनेनैव संतुष्टो जगतां पतिः। अवरुह्य [1]रथात्तूर्णमवसत्तत्र संसदि॥११॥
शुक्रेण शिरसो दत्तरत्नसिंहासने वरे। तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्मणा॥१२॥

शुक्रः प्रणम्य ब्रह्माणं कुमारं सनकं क्रतुम्।
वसिष्ठं च मरीचिं च सनन्दं च सनातनम्॥१३॥

कपिलं वै पञ्चशिखं वोढुमङ्गिरसं मुने। धर्मं मां च नरं भक्त्या प्रणनाम कृताञ्जलिः॥१४॥

शुक्र कृत स्तुति से ब्रह्मदेव जो जगत्पति हैं, सन्तुष्ट हो गये। वे शीघ्र रथ से नीचे उतरे और वहां पर शुक्र की सभा में आये। शुक्र ने शिर झुका कर ब्रह्मा को श्रेष्ठ रत्नसिंहासन प्रदान किया। वह रम्य, तेजपूर्ण तथा विश्वकर्मा निर्मित था। तदनन्तर शुक्राचार्य ने जब ब्रह्मा को प्रणाम कर लिया, उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्मा के साथ समागत सनत्कुमार, सनक, क्रतु, वसिष्ठ, मरीचि, सनन्दन, सनातन, कपिल, पंचशिख, वोढु, अंगीरस, धर्म, मुझे (नारायण ऋषि) तथा नर ऋषि को भक्तिभाव से करबद्ध प्रणाम किया॥११-१४॥

प्रत्येकं पूजयामास सादरं च यथोचितम्। सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास धार्मिकः॥१५॥
प्रहृष्टवदना सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः। ऋषिसङ्घाश्च धातारं तुष्टुवुश्च यथागमम्॥१६॥

तदनन्तर शुक्र ने प्रत्येक ऋषि की पूजा सादर तथा यथोचित रूप से सम्पन्न किया था। उन धार्मिक शुक्र ने सभी को रम्य सिंहासन पर सादर आसीन कराया। इसके पश्चात् शुक्र के यहां स्थित ऋषिगण तथा दितिपुत्र दैत्यों ने भी प्रसन्नता के साथ ब्रह्मदेव को प्रणाम किया॥१५-१६॥

सर्वान्संस्तूय स कविरवोचत्संपुटाञ्जलिः। साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः॥१७॥

तत्पश्चात् इस स्वागत के पश्चात् कवि (आचार्य शुक्र) ने हाथ जोड़ कर साश्रुनेत्र से पुलकित होकर विनय पूर्वक प्रणाम करके ब्रह्मा से कहा–॥१७॥

शुक्र उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टः स्वमन्दिरे॥१८॥
साक्षाद्दृष्टाश्च तत्पुत्रा भगवन्तः सनातनाः।
तुष्टः कृष्णोऽद्य मामेव परमात्मा परात्परः॥१९॥

कृतार्थं कर्तुमीशा मां युष्माकं स्वागतं शिशुम्। स्वात्मारामेषु कुशलं प्रश्नमेवं विडम्बनम्॥२०॥

१. क. ॰र्णमुवास स्वात्मजैः सह।

पवित्रं कर्तुमीशा मां हेतुरागमनेऽत्र वः।
अपरं ब्रूथ किंवाऽपि शास्त नः करवाणि किम्॥२१॥

शुक्राचार्य कहते हैं—हे प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरा जीवन उत्तम जीवन हो गया, क्योंकि आज इस गृह में साक्षात् भगवान् विधाता ने दर्शन दिया है। साथ ही आज उनके पुत्र भगवान् सनातन आदि ऋषियों ने भी दर्शन दिया है। प्रतीत हो रहा है कि आज परात्पर प्रभु सनातन देव श्रीकृष्ण भी मेरे प्रति सन्तुष्ट हैं। हे प्रभुगण! आप लोग ब्रह्मानन्द का भोग करने वाले हैं। आप लोगों से कुशलता पूछना तो एक विडम्बना होगी, मैं तो आप लोगों का शिशु हूं। आप लोगों का आगमन मुझे कृतार्थ करने हेतु ही हो सका है। आप सबके आने का कारण है मुझे पवित्र करना। अथवा यदि आप सबके आगमन का कोई अन्य कारण है, तब कहिये कि मुझे क्या करना है। वह आदेश दीजिये।।१८-२१।।

ब्रह्मोवाच

उद्विग्नश्चिरविच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः। विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिच्यते॥२२॥
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः।
कुशलं ते स्वधर्माणां काम्यानां तपसामपि॥२३॥
दिने दिनेऽपरिच्छन्नं श्रीकृष्णार्चनमीप्सितम्।
स्वगुरोः सेवनं नित्यमविच्छिन्नं भवेत्तव॥२४॥
गुर्विष्टयोः पूजनं च सर्वमङ्गलकारणम्। पापाधिरोगशोकघ्नं पुण्यं हर्षप्रदं शुभम्॥२५॥
अभीष्टदेवः संतुष्टो गुरौ तुष्टे नृणामिह। इष्टदेवे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे शुक्र! तुम मेरे पौत्र हो। दीर्घकाल से मैंने तुमको देखा ही नहीं था। तभी तुमको देखने आ गया। पुत्र-पौत्रादि का विछोह मरण से भी अधिक क्लेशप्रद होता है! हे मुनिप्रवर! तुम्हारा अपना, तुम्हारे दोनों पुत्रों का तथा तुम्हारी पत्नी का शरीर कुशल पूर्वक तो है न? तुम अपनी वांछित कृष्णपूजा नित्य सम्पन्न तो कर रहे हो? अपने गुरु की नित्य सेवा करते हो? गुरु तथा इष्ट की पूजा सर्वमंगलप्रद होती है। यह पाप-रोग-शोकनाशक, पुण्यप्रद तथा आनन्दजनक है। जब मनुष्य के गुरु प्रसन्न रहते हैं, तब इष्टदेवता भी उस पर प्रसन्न रहते हैं।।२२-२६।।

गुरुर्विप्रः सुरो रुष्टो येषां पातकिनामिह। तेषां च कुशलं नास्ति विघ्नस्तस्य पदे पदे॥२७॥
तुष्टश्च सततं वत्स श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
सर्वान्तरात्मा भगवांस्तव भक्त्या च निर्गुणः॥२८॥
तव तुष्टो गुरुरहं विधाता जगतामपि। मयि तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे तु देवताः॥२९॥

इस जगत् में पापी लोगों के प्रति गुरुदेव, ब्राह्मण, देवता कुपित हो जाते हैं। उनका मंगल नहीं

होता, वह पद-पद पर विघ्नग्रस्त हो जाते हैं। हे वत्स! प्रकृति नियन्ता गुणातीत सर्वान्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे भक्तिगुण के कारण सदा सन्तुष्ट हैं। मैं जगद्विधाता तुम्हारा गुरु हूं। मैं तुमसे सन्तुष्ट हो गया। मेरे प्रसन्न होने के कारण इष्टदेव हरि भी तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हैं। जब वे सन्तुष्ट हैं, तब समस्त देवता भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं!।।२७-२९।।

सांप्रतं शृणु मे धीमन्नत्राऽऽगमनकारणम्। प्रेषितस्य सुराणां च विश्वसंहर्तुरेव च।।३०।।
शिवस्य गुरुपुत्रस्य साध्वीं तारां बृहस्पतेः। अपहृत्य निशानाथस्तवैव शरणागतः।।३१।।

शंभुर्धर्मश्च सूर्यश्च शक्रोऽनन्तश्च पुत्रक।
आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाश्च दिगीश्वराः।।३२।।
युद्धायाऽऽयान्ति संनद्धास्तिस्रः कोट्यश्च देवताः।
नागाः किंपुरुषाश्चैव यक्षराक्षसगुह्यकाः।।३३।।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः।
किराताश्चैव गन्धर्वाः समुद्रपुलिनेऽधुना।।३४।।
तारकामयसंग्रामे मध्यस्थोऽहं सुतैः सह।
देहि तारां रणं किंवा त्यज चन्द्रं च कामिनम्।।३५।।

हे धीमान् शुक्र! मेरे यहां आगमन का अन्य कारण है। मुझे विश्व संहारकर्त्ता शिव तथा देवगण ने भेजा है। मैं जिस कारण से आया हूं, उसे श्रवण करो। चन्द्रमा ने शिव के गुरुपुत्र बृहस्पति की साध्वी भार्या का हरण करके तुम्हारी शरण ग्रहण किया है। इस समय शिव, धर्म, सूर्य, इन्द्र, अनन्त मेरे पुत्रगण, आठों वसु, बारहों आदित्य, रुद्रगण, सभी दिक्पाल, दिशाओं के स्वामी, तीन करोड़ देवता, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षसगण, नागगण, किम्पुरुषगण, यक्ष-राक्षस-गुह्यक वर्ग, भूत-प्रेत-पिशाच, किरात, गन्धर्वादि युद्धार्थ तैयार होकर समुद्र के किनारे खड़े हैं। इस देवी तारा के निमित्त किये जाने वाले युद्ध में मैं अपने पुत्रों सहित मध्यस्थ बना हूं। तुम तारा को वापस करो अथवा युद्ध करो। अन्यथा कामी चन्द्र का त्याग करो।।३०-३५।।

शुक्र उवाच

आगच्छन्तु सुराः सर्वे संनद्धा रणदुर्मदाः।
योत्स्ये विना महेशं च सर्वेषां च गुरुं परम्।।३६।।

शुक्र कहते हैं—ऐसी स्थिति में रणदुर्मद सभी देवता सन्नद्ध होकर युद्ध करने आयें। मैं सबके परमगुरु महेश के अतिरिक्त सभी से युद्ध करूंगा।।३६।।

दैत्या ऊचुः

उभयेषां गुरुः शंभुर्मान्यो वन्द्यश्च सर्वदा। धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव च पितामह।।३७।।

अन्यांश्च तृणतुल्यांश्च नहि मन्यामहे वयम्।
आगच्छन्तु च योत्स्यामो व्रज ब्रूहि जगद्गुरो॥३८॥
कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यायाति महेश्वरः।
आग्नेयास्त्रं प्रयोक्ष्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्रभो॥३९॥

दैत्यगण कहते हैं–हे पितामह! दोनों पक्ष दैत्य-देवता के मान्य, सर्वदा वन्दित गुरु तो शम्भु हैं। आप तथा धर्म इस बात के साक्षी हैं कि शिव के अतिरिक्त हम लोग सभी देवगण को तृणवत् ही समझते हैं। हे जगद्गुरु! आप जाकर कहिये कि देवगण आयें। हम युद्ध करेंगे। यदि स्वयं महेश्वर भी अपने गुरुपुत्र बृहस्पति पर कृपा करके युद्ध में भाग लेते हैं, हम पहले उन पर अस्त्र नहीं छोड़ सकते। हे प्रभो! तथापि यदि शिव हमारे ऊपर अस्त्र छोड़ते हैं, तब हम उसका प्रतिकार करके उस अस्त्र को व्यर्थ करके रहेंगे। अतः पहले हम पर आग्नेयास्त्रादि वे छोड़ें, तदनन्तर हम प्रतिकार करेंगे।।३७-३९।।

कालाग्निरुद्रः संहर्ता विश्वस्य बलिनां वरः।
हे वत्सास्तेन सार्धं च को वा युद्धं करिष्यति॥४०॥
भद्रकाली जगन्माता खड्गखर्परधारिणी।
तया दुर्धर्षया सार्धं को वा युद्धं करिष्यति॥४१॥
सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमालाविभूषणा। योजनायतवक्त्रा च दशयोजनविस्तृता॥४२॥
सप्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः। क्रोशप्रमाणजिह्वा च महालोला भयङ्करी॥४३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे पुत्रों! महाप्रबल अग्नितुल्य ये रुद्र विश्वसंहारक तथा बलवानों में अग्रगण्य हैं। उनके साथ कौन युद्ध कर सकेगा? इसमें जगन्माता भद्रकाली खड्ग-खप्पर लेकर स्थित हैं। इन दुर्दान्त काल के साथ कौन युद्ध कर सकेगा? ये देवी एक हजार हाथ तथा मुण्डमाला विभूषिता हैं। इनका मुख एक योजन विस्तार वाला है। इनका आकार १० योजन विस्तृत है। इनके दांत ताड़ वृक्ष के माप के अत्यन्त भयंकर हैं। इनकी लपलपाती भयानक जिह्वा एक कोस लम्बी है।।४०-४३।।

अतीवरौद्राः संनद्धा भीमाः शङ्करकिङ्कराः। अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी चरणकर्कशः॥४४॥
शिवस्य पार्षदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः। वीरभद्रादयः शूराः कोटिसूर्यसमप्रभाः॥४५॥
सहस्रमूर्ध्नः शेषस्य फधामण्डलभूषणम्।
विश्वं सर्षपतुल्यं च को वा योद्धा च तत्समः॥४६॥

अत्यन्त भयंकर आरक्त मूर्त्ति वाले शिव के किंकर, भयानक भैरव एवं युद्धदुर्मद नन्दी एवं महाबली-पराक्रमी शिव के पार्षदगण यहां युद्धार्थ सन्नद्ध हैं। सहस्रमस्तक अनन्त देव के एक ही फण पर स्थित यह विश्व जिनके लिये एक सरसों का दाना मात्र है, ऐसे रुद्र के समान कौन योद्धा हो सकता है? ये प्रलयाग्नि के समान विश्व-संहारक रुद्र जिन शंभु के सामान्य किंकर मात्र हैं, उन ब्रह्मतेज से शोभित-त्रिपुरघाती शूलपाणि शंभु जैसा योद्धा कौन हो सकता है?।।४४-४६।।

कालाग्निरुद्रः संहर्ता यस्य शंभोश्च किङ्कराः।
शूलिनस्त्रिपुरघ्नस्य ज्वलतो ब्रह्मतेजसा॥४७॥
यस्य पाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्येण पुत्रकाः।
भस्मीभूतं भवेद्विश्वं दैत्यानां चैव का कथा॥४८॥

यस्य शूलेन भिन्नश्च शङ्खचूडः प्रतापवान्। सुदामा पार्षदवरः कृष्णस्य परमात्मनः॥४९॥
त्रिकोटिसूर्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः। राधाकवचकण्ठश्च सर्वदैत्यजनेश्वरः॥५०॥

जगत् संहारक कालाग्नि रुद्र जिसके भृत्य हैं, वे त्रिपुरनाशक शूलपाणि अपने तेज से जाज्वल्यमान हैं। हे वत्सगण! जिनके दुर्निवार (जिनका निवारण न हो) पाशुपतास्त्र से विश्व-संसार भस्म हो जाता है, जिनके शूल के आघात से प्रतापी शंखचूड़ रूप से जन्मा परमात्मा कृष्ण का पार्श्वचर सुदामा विनष्ट हो गया, उनके लिये तो सामान्य असुरों को नष्ट करना सामान्य बात होगी। यह सुदामा तीन कोटि सूर्य के समान तेजपूर्ण परम अद्भुत था। वह समस्त दैत्यों का ईश्वर तथा कण्ठ में राधाकवच धारण करता था॥४७-५०॥

मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यशिपोश्च यः। स च विष्णुः समायाति श्वेतद्वीपात्स्वयं प्रभुः॥५१॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च संसदि। प्रहस्योवाच दैतेयो दानवानामधीश्वरः॥५२॥

"जो मधु-कैटभ का वध करने वाले, हिरण्यकशिपु के नाशकर्त्ता हैं, वे विष्णु स्वयं श्वेतद्वीप से आ रहे हैं।" यह कह कर जगत् के प्रपितामह उस सभा में मौन हो गये। तदनन्तर दानवों के अधीश्वर ने अहंकार में भर कर हंसते हुए कहा-॥५१-५२॥

प्रह्लाद उवाच

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर। सर्वपूज्यः सर्वनाथः किं वक्ष्यामि तवाग्रतः॥५३॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः। सा कला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च॥५४॥

सर्वान्तरात्मनस्तस्य चक्रं नाम सुदर्शनम्।
अस्माकं लोकमस्मांश्च शश्वद्रक्ष्यति दुःसहम्॥५५॥

ततो न बलवाञ्छंभुर्न च पाशुपतं विधे। न च काली न शेषश्च न च रुद्रादयः सुराः॥५६॥

यस्य लोमसु विश्वानि निखिलानि जगत्पते।
सर्वाधारस्य च विभोः स्थूलात्स्थूलतरस्य च॥५७॥
षोडशांशो भगवतः स चैव हि महान्विराट्।
अनन्तो न हि तत्स्थूलो न काली न बृहती ततः॥५८॥

प्रह्लाद कहते हैं-हे सृष्टिकर्त्ता! हे सभी के पूर्वतम ईश्वर! सर्वपूज्य, नाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूं! हे जगत् की सृष्टि करने वाले! हे सबके पूर्वकालीन ईश्वर! आप परिपूर्णतम तथा सभी के

अन्तरात्मा कृष्ण हैं। कृष्ण के दुःसह सुदर्शन चक्र हमारे इस लोक की तथा हम दोनों की रक्षा करेंगे। हमारे लोकधर्म के ये रक्षक रहेंगे। इनसे बलवान् शंभु भी नहीं हैं। पाशुपत विधि इससे कहीं भी वली परिलक्षित नहीं हो रही है! उनसे बढ़ कर बली काली, शेष तथा रुद्र आदि देवता भी नहीं हैं। हे जगत्पते! जो सर्वाधार, स्थूल से भी स्थूलतर हैं, जिन ईश्वर के रोम-रोम में एक-एक विश्व सन्निहित है, उन भगवान् की तुलना में यह महाविराट् उनका १/१६ भाग ही है। उतने स्थूल (विशाल) अनन्त भी नहीं हैं। काली भी उनसे बृहद् नहीं हैं।।५३-५८।।

आगच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धं कुर्वन्तु सांप्रतम्।
न बिभेमि [1]शरेभ्यश्च न च पाशुपताद्धरात्।।५९।।
नमस्तुभ्यं भगवते शिवाय शिवरूपिणे।
नमोऽनन्ताय साधुभ्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते।।६०।।
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन निर्भयोऽहं निरामयः।
न मे स्वात्मबलं ब्रह्मंस्तद्बलं यत्प्रभोर्बलम्।।६१।।

हे देवताओं! आप सभी आकर युद्ध करें। मुझे शिव के बाणों तथा पाशुपतास्त्र का भी भय नहीं है। हे प्रजापति! शिव (कल्याणरूप) रूप शिव को, अनन्त को, साधु एवं वैष्णवों को मेरा नमस्कार! श्रीकृष्ण की कृपा से मैं निर्भय तथा रोग रहित स्वस्थ हूं। मुझमें अपना बल तनिक भी नहीं है। मुझमें जो कुछ बल आदि है, वह सब प्रभु कृष्ण का ही है।।५९-६१।।

स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया। निर्बन्धाच्छङ्खचूडश्च दर्पाच्च मधुकैटभौ।।६२।।
त्रिपुरः किङ्करोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते। तथाऽपि प्रेरितस्तेन सरथश्च महेश्वरः।।६३।।

पूर्वकाल की बात है, मेरे पिता हिरण्यकशिपु की मृत्यु विष्णुनिन्दा के कारण हो गई थी। अपने हठ के कारण तथा दुराग्रह के कारण शंखचूड़ निहत हो गया। अपने महान् दर्प के कारण मधु-कैटभ मारे गये। त्रिपुर तो हम लोगों का सेवक था, उसकी वीरों में मैं गणना ही नहीं करता, तथापि देवगण से प्रेरित होकर रथारूढ़ महेश्वर ने उसका संहार किया था।।६२-६३।।

इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठो विरराम च संसदि। उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद।।६४।।

उस सभा में इतना कह कर दानवप्रवर प्रह्लाद मौन हो गये। हे नारद! तब जगत् विधाता ब्रह्मा ने पुनः कहा-।।६४।।

ब्रह्मोवाच

विनाशकारणं युद्धमुभयोर्दैत्यदेवयोः। सुप्रीत्याचरणं वत्स सर्वमङ्गलकारणम्।।६५।।
तारां भिक्षां देहि मह्यं भिक्षुकाय च वेधसे।
विमुखे भिक्षुके राजन्गृहस्थः सर्वपापभाक्।।६६।।

१. क. सुरे०।

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे वत्स! देव-दानव का यह युद्ध केवल विनाश का कारण होगा। उत्तम आचरण से समस्त मंगल होता है। मैं भिक्षुक ब्राह्मण हूं। मुझे अब देवी तारा को भिक्षारूप में प्रदान करो। भिक्षुक को निराश वापस भेज देने से गृहस्थ सर्वपातक भागी हो जाते हैं।।६५-६६।।

सनत्कुमार उवाच

स्वकीर्तिं रक्ष राजेन्द्र सिंहस्त्वं सुरदैत्ययोः।
यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्य कीर्तेश्च का कथा।।६७।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं–हे राजन्! तुम तो देवता तथा दानवों में श्रेष्ठ हो। अपनी कीर्त्तिरक्षा स्वयं करो। जिसके यहां जगत् के विधाता भिक्षुरूप से आये हों, उसकी कीर्त्ति को कौन कह सकता है?।।६७।।

सनातन उवाच

न जितस्त्वं सुरेन्द्रैश्च ब्रह्मेशानपुरोगमैः।
रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवाञ्छुचिः।।६८।।

ऋषि सनातन कहते हैं–हे राजेन्द्र! ब्रह्मा, शिव आदि देवता तुमको कदापि जीत नहीं सकते। तुम पवित्र वैष्णव सदा कृष्ण के चक्र से रक्षित हो।।६८।।

सनन्दन उवाच

यस्येष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
गुरुश्च वैष्णवः शुक्रः स च केन जितो महान्।।६९।।

ऋषि सनन्दन कहते हैं–प्रकृति से परे सर्वात्मा कृष्ण जिसके इष्टदेव हों, गुरु परम वैष्णव शुक्र हों, उस महान् व्यक्ति पर कौन विजय पा सकेगा?।।६९।।

सनक उवाच

पुण्यवान्न जितः केन जितः पापी स्वपातकैः।
पुण्यदीपो न निर्वाति पाषण्डेनैव वायुना।।७०।।

ऋषि सनक कहते हैं--पापी अपने पापों से ही जीता जाता तथा पराजित होता है। पुण्यवान् सदा अविजित् है। पाषण्ड रूप वायु से पुण्यमय प्रदीप कदापि नहीं बुझ सकता।।७०।।

ऋषय ऊचुः

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः।
स्वकीर्तिं रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुनः पुनः।।७१।।

ऋषिगण कहते हैं–हे महाभाग! बृहस्पति की प्राणाधिका तारा तथा दोषी चन्द्रमा उनको दे दो। हम पुनः-पुनः प्रार्थना करते हैं कि अपनी कीर्त्तिरक्षा दीर्घकाल के लिये करो।।७१।।

प्रह्लाद उवाच

स्थिते मदीश्वरे साक्षान्नहि भृत्यो विराजते। कर्तारं ब्रूहि मन्त्राथं गुरुं शुक्रं सतां वरम्॥७२॥
शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुरीश्वरः। गुरौ समर्पितं पूर्वं[१] सर्वैश्वर्य मुनीश्वरे॥७३॥

वयं भृत्याश्च पोष्याश्च स्वगुरोः परिचारकाः।
ते च शिष्याः कुशलिनः गुर्वाज्ञां पालयन्ति ये॥७४॥

प्रह्लाद कहते हैं—हमारे स्वामी शुक्र के यहां रहते हम सब उनके भृत्य अपने मन से कुछ नहीं कर सकते। इस समय साधुश्रेष्ठ हमारे ईश्वर सर्वकर्त्ता गुरुदेव शुक्र से ही जो कहना हो आप लोग कहिये। साधु शिष्यों के अधिपति गुरु ही होते हैं, जो हमारे ईश्वर हैं। हे मुनीश्वरों! मैंने अपना समस्त ऐश्वर्य पूर्वकाल में श्री गुरु को ही समर्पित कर दिया था। हम सब गुरु शुक्र के भृत्य तथा उनके पोष्य (उनके द्वारा पाले जा रहे हैं) तथा हम अपने गुरु के परिचारक हैं। वे ही शिष्य कुशल कहे गये हैं, जो गुरु आज्ञा का पालन करते हैं।।७२-७४।।

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कविम्।
ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रं च मलिनं मुने॥७५॥
दत्त्वा तारां विधुं शुक्रः प्रणनाम विधेः पदे।
नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्वपुरं ययौ॥७६॥

हे मुनिवर! ब्रह्मा ने प्रह्लाद का यह निवेदन सुनकर कवि शुक्राचार्य से प्रार्थना किया। शुक्र ने तत्काल तारा तथा मलिनरूपी चन्द्रमा को ब्रह्मा को दे दिया। अब शुक्र ने तारा एवं चन्द्र को अर्पित करने के उपरान्त ब्रह्मा के चरण में नतमस्तक होकर प्रणाम किया। उन्होंने वहां समागत मुनिगण को भी विनय के साथ प्रणाम किया तथा स्वगृह चले गये। प्रह्लाद भी ब्रह्मा को तथा मुनिगण को प्रणाम करके स्वगृह चले गये।।७५-७६।।

प्रह्लादः सगणो भक्त्या नमस्कृत्य विधेः पदे।
प्रत्येकं वै मुनिगणान्प्रणतः स्वगृहं ययौ॥७७॥
ब्रह्मा ददर्श तारां च प्रणतां स्वपदे सतीम्।
लज्जया नम्रवक्त्रां च रुदतीं गुर्विणीं मुने॥७८॥
चन्द्रं च प्रणतं धाता क्रोडे संस्थाप्य मायया।
उवाच मलिनां तारां कातरां च कृपामयः॥७९॥
तारे त्यज भयं मत्तो भयं किं ते मयि स्थिते।
सौभाग्ययुक्ता स्वपतौ भविष्यसि वरेण मे॥८०॥

१. क. पूर्णं।

हे नारद! इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने चरणों पर प्रणत, रुदन करती तथा लज्जा से अवनत चन्द्रमा के सहवास से गर्भवती हो गई साध्वी तारा को देखा। कृपालु ब्रह्मा ने चन्द्रमा को माया से अपने क्रोड़ में बैठाया (माया से = वात्सल्य से) तथा उन्होंने मलिन वेषधारिणी भीतिग्रस्ता तारा से कहा कि "हे देवी तारा! भय मत करो। मेरे विद्यमान रहते तुमको भय क्यों? मेरे वर के प्रभाव से तुम पुनः अपने पति के साथ सौभाग्य प्राप्त करो।।७७-८०।।

दुर्बला बलिना ग्रस्ता निष्कामा न च्युता भवेत्।
प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति॥८१॥
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च।
प्रायश्चित्तान्न शद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता॥८२॥
कुम्भीपाके पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं स्पर्शनं सर्वपापदम्॥८३॥
पापीयस्याश्च तस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम्॥८४॥

बिना अपनी इच्छा के यदि दुर्बल नारी बली पुरुष द्वारा पकड़ ली जाती है, उसे पतिता नहीं मानते। वह उस बलात्कारी के संसर्ग से दूषिता नहीं होती। उसकी शुद्धि प्रायश्चित्त से हो जाती है, तथापि जो स्त्री स्वयं काम के वशीभूत होकर अपने मन से तथा संभोगसुख पाने के लिए उपपति से संसर्ग करती है, वह किसी भी प्रायश्चित्त से शुद्ध न होकर अपने पति द्वारा त्यक्त कर दी जाती है। वह नारी कुंभीपाक नरक में तब तक यातना भोगती है, जब तक सृष्टि में चन्द्र-सूर्य की स्थिति है। ऐसी नारी का अन्न विष्ठा के समान जाने। उसके द्वारा प्रदत्त जल तो मूत्र के समान है। उसका स्पर्श तक समस्त पातक प्रदायक कहा गया है। ऐसी पापिनी का अन्न तथा जल साधुगणों द्वारा वर्जित माना गया है।।८१-८४।।

कस्य गर्भं वद शुभे गच्छ वत्से गुरोर्गृहम्।
त्यज लज्जां महाभागे सर्वं च प्राक्तनाद्भवेत्॥८५॥

"हे पुत्री! अब यह कहो कि तुम्हारे उदर में स्थित यह गर्भ किसका है? हे महाभागे! लज्जा त्याग करके यह कहो। इसका कारण यह है कि सब कुछ जो घटित होता है, वह सब पूर्व कर्म का ही फल जाने"।।८५।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच सती तदा। चन्द्रस्य गर्भं हे तात बिभर्म्यद्य स्वकर्मणा॥८६॥
सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते। त जग्राह चन्द्रो मां दयाहीनश्च दुर्मतिः॥८७॥
इत्युक्त्वा तारकादेवी सुषाव कनकप्रभम्। कुमारं सुन्दरं तत्र ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥८८॥

गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा ब्रह्माणमीश्वरम्।
जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ॥८९॥

ब्रह्मदेव का वचन सुन कर उस सती ने कहा–"हे तात! यह गर्भ चन्द्रमा द्वारा स्थापित है। मैं अपने कर्मानुसार इसका उदर में पालन कर रही हूं। हे प्रजापति! जब इस दुर्मति दयाहीन चन्द्र ने मुझे बलात् पकड़ लिया था, तब मुझ दुर्बल की विवशता के साक्षी सभी लोग हैं।" तदनन्तर तारा ने स्वर्ण समप्रभ एक कुमार को वहां जन्म दिया। उस ब्रह्मतेज से दीप्त सुन्दर कुमार को देख कर चन्द्रमा ने उसे उठाया तथा ईश्वर ब्रह्मा को प्रणामोपरान्त स्वगृह चले गये। उसके अनन्तर ब्रह्मा सिन्धुतट पर आये।।८६-८९।।

साध्वीं तारां च गुरवे देवेभ्योऽप्यभयं ददौ।
आशिषं शंभुधर्माभ्यां दत्त्वा लोकं ययौ विधिः।।९०।।
देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहं च बृहस्पतिः।

वहां ब्रह्मदेव ने तारा को बृहस्पति को प्रदान किया तथा उन्होंने देवगण को अभय भी प्रदान किया। उन्होंने तदनन्तर शिव एवं धर्मदेव को आशीर्वाद दिया और अपने लोक चले गये। इसके पश्चात् सभी देवता और बृहस्पति भी स्वगृह चले गये।।९०।।

भावानुरक्तवनितां प्राप्य संहृष्टमानसः।।९१।।
तारकागर्भसंभूतः स एव च बुधः स्वयम्।
तेजस्वी सद्ग्रहो ब्रह्मंश्चन्द्रस्य तनयो महान्।।९२।।
स एव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने। घृताच्या गर्भसंभूतां कुबेरस्य च रेतसा।।९३।।
दृष्ट्वा च निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम्।
अतीव यौवनस्थां च बालां षोडशवार्षिकीम्।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह विधोः सुतः।।९४।।
तस्यामथायं रहसि वीर्याधानं चकार सः। बभूव राजा चित्रायां चैत्रो वै मण्डलेश्वरः।।९५।।
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं शास्ति वै धार्मिको बली।
शतं नद्यो घृतानां च दध्नां नद्यः शतानि च।।९६।।
शतानि नद्यो दुग्धानां मधुनद्यश्च षोडश। दश नद्यश्च तैलानां शर्करालक्षराशयः।।९७।।
मिष्टान्नानां स्वस्तिकानां लक्षराश्यश्च नित्यशः।
पञ्चकोटिगवां मांसं सापूपं स्वन्नमेव च।।९८।।
एतेषां च नदीराशीर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने। गवां लक्षं च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च।।९९।।

ऋषि बृहस्पति अपनी भावानुरक्ता पत्नी को पाकर प्रसन्न मन हो गये। तारा के गर्भ से उत्पन्न बालक का नाम था बुध। वह चन्द्रपुत्र परम तेजस्वी, उत्तम शुभग्रह हो गया। इस बुध ने कुबेर के औरस से अप्सरा घृताची के गर्भ से उत्पन्न चित्रा नामक नारी को जब नन्दनकानन में देखा, तब इस चन्द्रपुत्र

ने उस सुन्दरी षोडश वर्षीया अति युवती नारी को गान्धर्व विवाह द्वारा ग्रहण कर लिया था। बुध ने अत्यन्त निर्जन स्थान में चित्रा का उपभोग करके गर्भाधान किया। इससे चित्रा के गर्भ से मण्डलेश्वर राजा चैत्र उत्पन्न हो गया था। उस बलवान् धर्मात्मा ने सप्तद्वीपा पृथिवी का निष्कंटक राज किया। उसके राजत्वकाल में घृत की १००, दधि की १००, दुग्ध की १००, मधु की १६, तैल की दस नदी बहती थीं। उसके राज्य में सर्वत्र शर्करा के एक लाख, लड्डु-पूआ-मिष्ठान्न के एक लाख, भात के ५ करोड़ ढेर लगे रहते हैं। हे नारद! इन सभी द्रव्यों की नदियों तथा ढेरों का द्रव्य ब्राह्मणगण भोजन करते थे। राजा एक लाख गौ तथा लाखों मणियां तथा रत्न-।।९१-९९।।

शतलक्षं सुवर्णानां लक्षं वै सूक्ष्मवाससाम्। रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम्॥१००॥

ददौ द्विजातये राजा नित्यं वै जीवितावधि।
तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाऽधिरथ एव च॥१०१॥

तस्य पुत्रश्च सुरथश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः। महाज्ञानं च संप्राप्य मेधसो मुनिसत्तमात्॥१०२॥

भेजे पुरा विष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते। शरत्काले महापूजां चकार स सरित्तटे॥१०३॥

वैश्येन सार्धं स महाज्ञानिनां मुनिसत्तम।
राजा कलिङ्गदेशस्य विराधश्च विशां वरः॥१०४॥

कोटि स्वर्ण, १ लाख महीन वस्त्र, अति सुन्दर रत्नाभूषण तथा रत्नपात्र नित्य तथा आजीवन ब्राह्मणगण को दान करता रहता था। इस राजा चैत्र का पुत्र था अधिरथ। उसका पुत्र था महाज्ञानी साम्राट् बृहच्छ्रवा सुरथ। इसी ने मुनि मेधस से (भगवती सम्बन्धित) महाज्ञान पाकर पवित्र स्थल भारत में विष्णुमाया दुर्गा की उपासना किया था। हे नारद! ज्ञानी समाधि वैश्य के साथ इस राजा सुरथ ने शरत्काल में नदी तट पर भगवती की महापूजा सम्पन्न किया था। कलिंगराज विराध वैश्यगण में श्रेष्ठ कहा गया है।।१००-१०४।।

तस्य पुत्रो महायोगी द्रुमिणो ज्ञानिनां वरः।
द्रुमिणो वैष्णवः प्राज्ञः पुष्करे दुष्करं तपः॥१०५॥

कृत्वा समाधिं संप्राप ज्ञानिनां वैष्णवाग्रणीः। पुत्रैर्दारैर्निरस्तश्च धनलोभाद्दुरात्मभिः॥१०६॥

स च कोटिसुवर्णं च नित्यं दत्त्वा जलं पपौ।
मुक्तिं संप्राप संसेव्य विष्णुमायां सनातनीम्॥१०७॥

उसका पुत्र ज्ञानीगण में प्रधान महायोगी द्रुमिण था। इस प्राज्ञ वैष्णव द्रुमिण ने पुष्कर क्षेत्र में दुष्कर तप किया था। उससे समाधि नामक ज्ञानी एवं वैष्णवों में प्रधान पुत्र उत्पन्न हुआ। समाधि के दुष्ट पुत्र तथा पत्नी ने धनलोभी होकर समाधि को गृह से बहिर्गत् कर दिया। यह समाधि वैश्य अपने गृह में नित्यप्रति एक कोटि स्वर्णमुद्रा दान देकर तभी जलपान करता था। इस सुरथ ने सनातनी विष्णुमाया दुर्गा की उपासना करके मुक्तिलाभ किया।।१०५-१०७।।

राजा लेभे मनुत्वं च राज्यं निष्कण्टकं मुने।
उवाच मधुरं वाक्यं धाता त्रिजगतां पतिः॥१०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० गुरोस्ताराप्राप्तिबुधोत्पत्त्यादिवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

हे मुनिवर! देवी की कृपा से सुरथ ने दीर्घकाल तक निष्कंटक राज्य करके मनुपद प्राप्त किया। त्रैलोक्यपति विधाता ने मधुर वाक्य में समस्त प्रसंग कहा था॥१०८॥

॥एकषष्टितम अध्याय समाप्त॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

सुरथ का मेधस मुनि से संवाद

नारद उवाच

कथं राजा महाज्ञानं संप्राप मुनिसत्तमात्। वैश्यो मुक्तिं मेधसश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मुनिप्रवर मेधस् से राजा को महाज्ञान लाभ तथा वैश्य को मुक्ति किस प्रकार प्राप्त हो सकी, कृपया इसकी व्याख्या करें॥१॥

नारायण उवाच

ध्रुवस्य पौत्रो बलवान्नन्दिरुत्कलनन्दनः। स्वायंभुवमनोर्वश्यः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥२॥
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेव च। कोलां च वेष्टयामास सुरथस्य महामतेः॥३॥
युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दं च नारद। चिरञ्जीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः। निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—ध्रुव का पौत्र राजा नन्दि अत्यन्त बली था तथा यह उत्कल का पुत्र था। यह स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न सत्यवादी, जितेन्द्रिय था। इसने १०० अक्षौहिणी सेना के साथ राजा सुरथ की राजधानी कोला को चारों ओर से घेर लिया था। यह युद्ध लगातार एक वर्ष तक चला। तदनन्तर चिरजीवी वैष्णव राजा नन्दि ने राजा सुरथ पर विजय पा लिया तथा भयभीत सुरथ नन्दि द्वारा देश से निष्कासित किये जाने के कारण अर्द्धरात्रि में अश्वारूढ़ होकर घोर वनप्रान्तर में चला गया!॥२-५॥

ददर्श तत्र वैश्यं च पुष्पभद्रानदीतटे। तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतबान्धवयोर्मुने॥६॥
वैश्येन सार्धं नृपतिरगछन्मेधसाश्रमम्। पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रं वै भारते सताम्॥७॥
ददर्श तत्र नृपतिर्मुनीन्द्रं तीव्रतेजसम्। शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्तं ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम्॥८॥
राजा ननाम वैश्यश्च शिरसा मुनिपुंगवम्।
मुनिस्तौ पूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम्॥९॥
प्रश्नं चकार कुशलं जातिनाम पृथक्पृथक्। ददौ प्रत्युत्तरं राजा क्रमेण मुनिपुङ्गवम्॥१०॥

उस बन्धुहीन स्थिति में उसने पुष्पभद्रा के तट पर एकाकी वैश्य को देखा। हे मुनिवर! उन दोनों में अत्यन्त प्रगाढ़ बन्धुत्व तथा प्रेम भी हो गया। राजा सुरथ उस वैश्य के साथ भारत में सज्जनों को भी कठिनता से प्राप्त होने वाले पुष्कर क्षेत्रस्थ महर्षि मेधस के आश्रम में गया। वहां राजा ने तीव्र तेज सम्पन्न मुनीन्द्र को देखा जो शिष्यों को दुर्लभ ब्रह्मतत्व का उपदेश प्रदान कर रहे थे। राजा तथा वैश्य ने नतशिर होकर मुनिवर को प्रणाम किया। मुनि ने भी इन दोनों को शुभ आशीर्वाद देकर उनका स्वागत किया। तदनन्तर इन दोनों आगन्तुकों से मुनि ने उनकी जाति तथा नाम पूछ कर कुशल प्रश्न भी किया। तब राजा ने क्रमशः उन मुनिप्रवर को उनके प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया॥६-१०॥

सुरथ उवाच

राजाऽहं सुरथो [1]ब्रह्मंश्चैत्रवंशसमुद्भवः।
बहिष्कृतः स्वराज्याश्च नन्दिना बलिनाऽधुना॥११॥
कमुपायं करिष्यामि कथं राज्यं भवेन्मम। तन्मां ब्रूहि महाभाग त्वामेव शरणागतम्॥१२॥

राजा सुरथ कहता है—हे ब्रह्मन्! मैं चैत्रवंशोत्पन्न सुरथ राजा हूं। बलवान् राजा नन्दिवर्द्धन द्वारा मुझे राज्य से निकाल दिया गया है। हे महाभाग! मैं क्या उपाय करूं कि यह राज्य मुझे प्राप्त हो जाये। यह कहिये। मैं आपकी शरण में आया हूं॥११-१२॥

अयं वैश्य समाधिश्च स्वगृहाच्च बहिष्कृतः। पुत्रैः कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः॥१३॥
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने। निषिध्यमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्बान्धवैरयम्॥१४॥
कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा।
अयं गृहं च न ययौ विरक्तो ज्ञानवाञ्छुचिः॥१५॥
पुत्राश्च पितृशोकेन गृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम्।
दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यो विरक्ताः सर्वकर्मसु॥१६॥
सुदुर्लभं हरेर्दास्यं वैश्यस्यास्य च वाञ्छितम्।
कथं प्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१७॥

---
१. क. ०नाम चै०।

यह समाधि वैश्य अपने गृह से निकाला गया है। इस धार्मिक को धनलोभ के कारण पुत्र तथा स्त्री ने निकाल दिया। यह वैश्य नित्यप्रति ब्राह्मणगण को एक करोड़ रत्न दान करता था। यही देख कर पुत्र-स्त्री क्रोधित हो गये तथा इसे गृह से निकाल दिया। तदनन्तर क्रोध शान्त हो जाने पर वे लोग इस वैश्य को खोजने लगे, तथापि यह ज्ञानी विरक्त होने के कारण गृह नहीं गया। अन्ततः इसके पुत्र भी विरक्त होकर पितृशोक के कारण गृहत्याग करके वन में चले गये। उन्होंने सर्वकर्म सन्यस्त होकर, विरक्त होकर समस्त धन ब्राह्मणगण को दे दिया। अब यह वैश्य केवल दुर्लभ हरिदासत्व पाना चाहता है। यह निष्काम वैश्य, यह दासत्व कैसे पाये? यह कहिये।।१३-१७।।

मेधा उवाच

करोति मायया छन्नं विष्णुमाया दुरत्यया।
निर्गुणस्य च कृष्णस्य त्रिगुणा विश्वमाज्ञया॥१८॥
कृपां करोति येषां सा धर्मिणां च कृपामयी।
तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम्॥१९॥
येषां मायाविनां माया न करोति कृपां नृप।
मायया तान्निबध्नाति मोहजालेन दुर्गतान्॥२०॥
नश्वरे नित्यसंसारे भ्रामयेद्बर्बरा सदा। कुर्वती नित्यबुद्धिं च विहाय परमेश्वरम्॥२१॥

ऋषिप्रवर मेधस कहते हैं—अविनाशिनी सत्व-रजः-तमः मयी देवी विष्णुमाया प्रभु श्रीकृष्ण की आज्ञा से विश्वसंसार को मायाच्छन्न किये रहती हैं। ये कृपामयी धर्मपालन करने वालों के ऊपर कृपालु बनी रहती हैं। वे लोग इनकी कृपा से अत्यन्त दुर्लभ विष्णुभक्ति लाभ कर लेते हैं। हे राजन्! ये विष्णुमाया भगवती जिस पर कृपा नहीं करतीं, वे उस माया के बन्धन से बद्ध पड़े रहते हैं। (वे जागतिक भोगादि में बद्ध रह जाते हैं)। ये विष्णुमाया उनको मोहजाल में आबद्ध रख कर इस क्षणभंगुर नश्वर विश्व में चक्कर खिलाती रहती हैं। वे परमेश्वर को भूल कर संसार को ही नित्य मानने लगते हैं। यह भी विष्णुमाया का प्रभाव है।।१८-२१।।

देवमन्यं निषेवन्ते तन्मन्त्रं च जपन्ति च।
मिथ्या किञ्चिन्निमित्तं च कृत्वा मनसि लोभतः॥२२॥
सप्तजन्मसु संसेव्य देवताश्च हरेः कलाः। तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं सदा॥२३॥
सप्तजन्मसु संसेव्य विष्णुमायां कृपामयीम्।
शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने॥२४॥

वह व्यक्ति लोभवशात् मन में मिथ्या लक्ष्य बना लेता है। वह अन्य देवता की उपासना तथा उसका मन्त्र जप करने लग जाता है। वह हरि के अंश से आविर्भूत अन्य देवगण की उपासना करके उनकी सात जन्मों तक सेवा करता है। तभी वह इन देवी का अनुग्रह पाकर इन देवी की सेवा का

अधिकारी हो पाता है। अब पुनः सात जन्मों तक इन देवी की पूजा द्वारा कृपामयी विष्णुमाया के अनुग्रह से ही वह नित्य सनातन, ज्ञानमय, आनन्दमय शिव की भक्ति प्राप्त कर लेता है।।२३-२४।।

ज्ञानाधिष्ठातृदेवं च हरेः संसेव्य शङ्करम्। अचिराद्विष्णुभक्तिं च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात्॥२५॥

सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विषयिणं तदा।
सत्त्वज्ञानाच्च पश्यन्ति ज्ञानं वै निर्मलं नराः॥२६॥

तदनन्तर इन ज्ञान के अधिष्ठातृ देवता शंकर की सेवा के फलस्वरूप शंकर की कृपा से उनके ही द्वारा उस व्यक्ति को शीघ्र विष्णुभक्ति की प्राप्ति हो पाती है। अब सगुण रूप सत्वमय विष्णु की सेवा करके सत्वज्ञान के माध्यम से ज्ञान तथा निर्मलत्व लाभ हो जाता है।।२५-२६।।

निषेव्यं सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः।
लभन्ते निर्गुणे भक्तिं श्रीकृष्णे प्रकृतेः परे॥२७॥
गृह्णन्ति सन्तस्तद्भक्ता मन्त्रं तस्य निरामयम्।
निषेव्य निर्गुणं देवं ते भवन्ति च निर्गुणाः॥२८॥
असंख्यब्रह्मणां पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः।
दास्यं कुर्वन्ति सततं गोलोके च निरामये॥२९॥

यह सात्विक वैष्णव व्यक्ति अब सगुण विष्णु की उपासना द्वारा प्रकृति से परे स्थित निर्गुण कृष्ण की भक्ति प्राप्त करता है। जो प्रभुभक्त सन्त हैं, वे श्रीकृष्ण के विकारशून्य मन्त्र को प्राप्त करके उससे निर्गुणदेव कृष्ण की सेवा द्वारा स्वयं गुण रहित निर्गुण हो जाते हैं। ऐसे वैष्णवजन निरामय गोलोक में जाकर प्रभु की दास्यभक्ति करते हुए असंख्य ब्रह्मा के पतनकाल तक वहां सेवारत रहता है।।२७-२९।।

कृष्णभक्तात्कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः।
पुरुषाणां सहस्रं च स्वपितृणां समुद्धरेत्॥३०॥

मातामहानां साहस्रमुद्धरेन्मातरं तथा। दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च॥३१॥

जो व्यक्ति कृष्णभक्त द्वारा कृष्णमन्त्र ग्रहण करता है, उसकी हजारों पीढ़ी, नाना की एक हजार पीढ़ी तथा माता और भृत्य तक का उद्धार हो जाता है। वह स्वयं भी सर्वान्त में गोलोक गमन करता है।।३०-३१।।

भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी। दीनान्पारयते नित्यं कृष्णभक्त्या च नौकया॥३२॥

स्वकर्मबन्धनं छेत्तुं वैष्णवानां च वैष्णवी।
तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥३३॥

विवेचिका चाऽऽवरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप। पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परात्परा॥३४॥

सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तमात्सर्वं च नश्वरम्।
बुद्धिर्विवेचिकेत्येवं वैष्णवानां सतामपि॥३५॥

इस भयानक भवसागर में देवी दुर्गा नाविक रूपा होकर भक्त जीव को कृष्णभक्तिरूपी नौका द्वारा पार उतार देती हैं। ये वैष्णवी विष्णुमाया वैष्णवगण के कर्मबन्धन का छेदन हेतु परमात्मा कृष्ण के तीक्ष्ण अस्त्र के समान हैं। हे राजन्! ये शक्तिरूपा दुर्गा दो प्रकार से प्रकाशिता हैं। अर्थात् ये विवेचिका तथा आवरणी, इन दो प्रकार से स्वात्मप्रकाश करती हैं। ये भक्तों को विवेचना शक्ति देती हैं तथा अभक्तगण में आवरणी शक्ति द्वारा मोह उत्पादन करती हैं। ये भक्तगण को यह विवेचिका शक्ति देती हैं कि श्रीकृष्ण ही सत्यस्वरूप हैं। अन्य सब कुछ नश्वर है। यह विवेचनामयी शक्ति वे सनातनी देवी वैष्णवगण को देती हैं।।३२-३५।।

नित्यरूपा ममेयं श्रीरिति चाऽऽवरणी च धीः।
अवैष्णवानामसतां कर्मभोगभुजामहो॥३६॥

जो कर्मभोगरत अवैष्णव हैं, उनको यह आवरणमयी बुद्धि देती हैं कि "यह श्री (लक्ष्मी) जो मुझे मिली है, यह स्थायी तथा मेरी है।" यह आवरणी शक्ति उनमें सतत् मोह प्रदान करने हेतु बनी रहती है। यही आश्चर्य है।।३६।।

अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप।
भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शङ्करात्॥३७॥
गच्छ राजन्नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम्। बुद्धिमावरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने॥३८॥

(मुनि मेधस कहते हैं)—हे राजन्! मैं ब्रह्मा का पौत्र तथा वरुण पुत्र हूं। मुझे शिव से ज्ञानलाभ हुआ है। तभी से मैं आत्मरूप श्रीकृष्ण का भजन यहां रह कर करता हूं। हे राजन्! तुम नदी तट पर सनातनी देवी विष्णुमाया दुर्गा की अर्चना करो। तुम कामनायुक्त हो। तभी तुम आवरणी बुद्धि लाभ करोगे।।३७-३८।।

निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवाय च वैष्णवी।
बुद्धिं विवेचिकां शुद्धां दास्यत्येव कृपामयी॥३९॥

"वे भगवती कृपामयी देवी वैष्णवी (विष्णुमाया) इस निष्काम वैश्य समाधि को शुद्ध विवेचिका बुद्धि कृष्णदासत्व हेतु प्रदान करेंगी"।।३९।।

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठौ ददौ ताभ्यां कृपानिधिः।
पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रं च कवचं मनुम्॥४०॥
वैश्यो मुक्तिं च संप्राप तां निषेव्य कृपामयीम्।
राजा राज्यं मनुत्वं च परमैश्वर्यमीप्सितम्॥४१॥

यह कह कर उन मुनिप्रवर कृपानिधि मेधस ने इन दोनों को दुर्गा का पूजा विधान, स्तोत्र, कवच तथा मन्त्र दिया। तदनन्तर कृपामयी भगवती की सेवा द्वारा वैश्य ने मुक्तिलाभ किया। राजा ने यथा वांछित राज्य तथा परमैश्वर्यमय मनुपद लाभ किया।।४०-४१।।

इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।४२।।

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथमेधःसं० सुरथवैश्ययोरभिलषित-
सिद्धिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।

यह सुखप्रद, मोक्षदायक, शास्त्रों का सारभूत दुर्गा उपाख्यान मैंने कहा। अब क्या सुनने की इच्छा है?।।४२।।

।।द्विषष्टितम अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

समाधि वैश्य द्वारा प्रकृति देवी का साक्षात्कार, दुर्गा-वैश्य संवाद तथा मुक्तिलाभ

नारद उवाच

नारायण महाभाग वद वेदविदां वर। राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृतिं पराम्।।१।।
समाधिर्नाम वैश्यो वा निष्कामं निर्गुणं विभुम्। भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः।।२।।

किं वा पूजाविधानं च ध्यानं वा मनुमेव च।
किं स्तोत्रं कवचं किं वा ददौ राज्ञे महामुनिः।।३।।
वैश्याय प्रकृतिस्तस्मै किं वा ज्ञानं ददौ परम्।
साक्षाद्बभूव [1]तपसा केन वा प्रकृतिस्तयोः।।४।।
ज्ञानं संप्राप्य वैश्यश्च किं पदं प्राप दुर्लभम्।
गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा तां च शृणोम्यहम्।।५।।

१. ख. सहसा।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे नारायण महर्षि महाभाग! आप तो वेदज्ञों में प्रधान हैं। यह कहिये कि राजा सुरथ ने किस विधि से देवी की आराधना किया था? समाधि वैश्य ने किस प्रकार प्रकृति देवी का उपदेश पाकर निष्काम गुणातीत ईश्वर का भजन किया? मुनिश्रेष्ठ मेधस ने राजा को किस प्रकार की पूजाविधि, ध्यान, मन्त्र, स्तव, कवच प्रदान किया था? देवी प्रकृति ने समाधि वैश्य को क्या परम ज्ञान प्रदान किया था? किस उपाय का अवलम्बन लेने पर भगवती ने उन दोनों को अपना साक्षात् दर्शन प्रदान किया? वैश्य समाधि ने ज्ञान पाकर किस दुर्लभ पद को प्राप्त किया था? तदनन्तर राजा ने किस गति को पाया था? यह सब मैं सुनना चाहता हूं।।१-५।।

नारायण उवाच

राजा वैश्यश्च संप्राप्य मन्त्रं वै मेधसो मुनेः।
स्तोत्रं च कवचं देव्या ध्यानं चैव पुरस्क्रियाम्।।६।।
जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे।
स्नात्वा त्रिकालं वर्षं च ततः सिद्धो बभूव सः।।७।।
साक्षाद्बभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्वरी। राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम्।।८।।
ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभम्। यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना।।९।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य, इन दोनों ने मेधस मुनि से देवी का मन्त्र, स्तव, कवच, ध्यान, पुरश्चरण विधि प्राप्त किया तथा पुष्कर तीर्थ में एक वर्ष तक त्रिकाल स्नान करके यह परम मन्त्र जपने लगे। इस प्रकार राजा तथा वैश्य ने सिद्धिलाभ किया। उस समय आदि प्रकृति ईश्वर ने उन दोनों को प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान कर दिया था। उन्होंने राजा को राज्य, मनुपद तथा इच्छित सुखभोग का वर प्रदान किया था। उन्होंने उस समाधि वैश्य को दुर्लभतम निगूढ ज्ञान प्रदान किया था। यह ज्ञान पूर्वकाल में परमात्मा कृष्ण ने शूलपाणि शिव को दिया था।।६-९।।

निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी। रुरोद कृत्वा क्रोडे तमचेष्टं श्वासवर्जितम्।।१०।।
चेतनां कुरु भो वत्सेत्युच्चार्य च पुनः पुनः।
चेतनां च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी।।११।।
संप्राप्य चेतनां वैश्यो रुरोद प्रकृतेः पुरः। तमुवाच प्रसन्नाऽसौ कृपयाऽतिकृपामयी।।१२।।

जब कृपामयी दुर्गा ने वैश्य को श्वास रहित, आहारवर्जित, अत्यन्त तपःक्लेशयुक्त देखा, तब वे उसे गोद में लेकर रोने लगीं। वे बारम्बार कह रही थीं–"हे पुत्र! तुम सचेतन हो जाओ।" अन्ततः चैतन्यमयी दुर्गा ने उसे स्वयं चेतना प्रदान किया। वैश्य चैतन्य लाभ होते ही उन प्रकृति देवी के समक्ष रुदनरत हो गया। उस समय परम कृपालु देवी ने उससे कृपापरवश होकर प्रसन्न मन से कहा–।।१०-१२।।

प्रकृतिरुवाच

वरं वृणुष्व हे वत्स यत्ते मनसि वर्तते। ब्रह्मत्वममरत्वं वा ततो वाऽतिसुदुर्लभम्॥१३॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सर्वसिद्धत्वमेव च।
तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरं बालवञ्चनम्॥१४॥

प्रकृति देवी कहती हैं—हे वत्स! तुम ब्रह्मत्व, देवत्व, अथवा उससे भी दुर्लभ पद मांगो। अथवा इन्द्रत्व, मनुत्व, सर्वसिद्धित्व, जो कुछ चाहो, मुझसे वही वर ग्रहण करो। मैं तुमको तुच्छ बालकों को बहलाने जैसा नश्वर वर नहीं दूंगी॥१३-१४॥

वैश्य उवाच

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम्।
ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जाने तदभीप्सितम्॥१५॥
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव। अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि॥१६॥

वैश्य कहता है—हे माता! मुझो तो ब्रह्मत्व, अमरत्व की कामना नहीं है। इससे दुर्लभ वर क्या हो सकता है, वह नहीं पता! आप जो चाहें, वही वर दीजिये। मुझे आप जिस वर को सर्वश्रेष्ठ मानें, वही प्रदान करिये॥१५-१६॥

प्रकृतिरुवाच

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामि मम वाञ्छितम्।
यतो यास्यसि गोलोकं पदमेव सुदुर्लभम्॥१७॥
सर्वसारं च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम्। सद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्॥१८॥

देवी प्रकृति (दुर्गा) कहती हैं—हे वत्स! ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मैं तुमको नहीं दे सकूं, तथापि तुमने मेरी इच्छा से वर देने को कहा है। अतः मैं अपना अभीष्ट वर यह देती हूं कि तुमको अत्यन्त दुर्लभ गोलोक पद मिले। हे वत्स! मैं तुमको ऐसा ज्ञान देती हूं जो कि देवर्षियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ तथा समस्त ज्ञान का सार है। हे पुत्र! महाभाग! वह ग्रहण करके तुम हरिपद गमन करो॥१७-१८॥

स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्। श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥१९॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम्। जन्ममृत्युजराव्याधिमताडनखण्डनम्॥२०॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि संततम्। नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि॥२१॥
भक्तास्तद्व्रतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः।
जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः॥२२॥

श्रीकृष्ण का स्मरण, वन्दन, ध्यान, अर्चन, गुणगान, उनका गुण तथा कथा श्रवण, मनन, सेवा

तथा सर्व निवेदन, यही है भक्तों का नवधा भक्तिलक्षण। यह जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-यमदण्ड का खण्डन करने वाला है। जो नवधा भक्ति रहित सतत् पातकी हैं, उनकी आयु का सूर्य सतत् तथा प्रतिक्षण हरण करते रहते हैं। भगवान् के चरण-कमल के चिन्तन में रत भक्तगण, वैष्णवगण, सदा चिरजीवी, जीवन्मुक्त, निष्पाप तथा जन्मादि से रहित हो जाते हैं।।१९-२२।।

शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट्।
सनत्कुमारः कपिलः सनकश्च सनन्दनः॥२३॥
वोढुः पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः।
भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः॥२४॥
मेधावी लोमशः शुक्रो वसिष्ठः क्रतुरेव च। बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः॥२५॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः। यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः॥२६॥
अकूपार उलूकश्च नाडीजङ्घश्च वायुजः।
नरनारायणौ कूर्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः॥२७॥
नवधाभक्तियुक्ताश्च कृष्णस्य परमात्मनः। एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा॥२८॥

शिव, शेषनाग, धर्म, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, सनत्कुमार, कपिल, सनक, सनन्दन, वोढु, पंचशिख, दक्ष, नारद, सनातन, भृगु, मरीचि, दुर्वासा, कश्यप, पुलह, अंगीरा, मेधावी लोमश, शुक्र, वसिष्ठ, बृहस्पति, कर्दम, शक्ति, अत्रि, पराशर, मार्कण्डेय, बलि, प्रह्लाद, गणेश्वरगण, यम, सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्र, अग्नि, अकूपार, उलूक, नाड़ीजंघ, हनुमान्, नर, नारायण ऋषि, इन्द्रद्युम्न, विभीषण-ये सभी महात्मा कृष्ण की नवधा भक्ति से युक्त हैं। इन सभी को महाधार्मिक तथा श्रेष्ठ भक्त कहा गया है।।२३-२८।।

ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च संततम्।
पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशां पते॥२९॥
ऊर्ध्वं च सप्त स्वर्गाश्च सप्तद्वीपा वसुंधरा।
अधः सप्त च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेव च॥३०॥
एवंविधानां विश्वानां संख्या नास्त्येव पुत्रक।
एवं च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः। सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति बद्धाश्च मायया॥३२॥
महाविष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च।
स षोडशांशः कृष्णस्य चाऽऽत्मनश्च महान्विराट्॥३३॥

जो इनके भक्त तथा अंश हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। वे तो धरती के सभी तीर्थों के पातक का हरण

कर लेते हैं। ऊर्ध्वस्थ सप्तलोक, मध्य के (मृत्युलोक के) सप्तद्वीप तथा अधः स्थित पाताल के सप्त तल से १ ब्रह्माण्ड निर्मित है। हे पुत्र! इनकी संख्या ही नहीं है। ये कितने हैं, कोई गणना नहीं है। प्रत्येक ऐसे विश्व में (ब्रह्माण्ड में) अलग-अलग ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि सभी देवताओं की स्थिति रहती है, तथापि सभी विश्वों के देवता-ऋषि, मनुगण तथा मानव तथा सभी आश्रम-ये सब माया से बद्ध हैं। जिन महाविष्णु के एक-एक रोमकूप में एक-एक विश्व स्थित हैं, वे भी महाविराट् कृष्ण के १/१६ भाग ही हैं!।।२९-३३।।

भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम्।
प्रकृतेः परमीशानं कृष्णमात्मानमीश्वरम्।।३४।।
निरीहं च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम्।
निष्कामं निर्विरोधं च नित्यानन्दं सनातनम्।।३५।।
स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तेजः स्वरूपं परमं दातारं सर्वसंपदाम्।।३६।।
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं शिवादीनां च योगिनाम्।
सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वेषां सर्वकामदम्।।३७।।
सर्वाधारं च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम्। सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वज्ञं प्राणरूपिणम्।।३८।।
सर्वधर्मस्वरूपं च सर्वकारणकारणम्। सुखदं मोक्षदं सारं पररूपं च भक्तिदम्।।३९।।
दास्यदं धर्मदं चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम्। सर्वं तदतिरिक्तं च नश्वरं कृत्रिमं सदा।।४०।।
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम्। यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम्।।४१।।

अतः सत्यमय, परमब्रह्म, नित्य, निर्गुण, अच्युत प्रकृति से परे, ईशान, परमात्मा ईश्वर का भजन करो। ये प्रभु निरीह, निराकार, निर्विकार, निरंजन, निष्काम, निर्विरोध तथा सनातन तथा नित्यानंद, स्वेच्छामय, सर्वरूप और भक्तों पर कृपा करने के लिए साकार विग्रह धारण करते हैं। ये प्रभु तेजरूप, परम सर्वसम्पदा दाता, ध्यान से असाध्य, दुराराध्य, सर्वेश्वर, सर्वपूजित, सर्वकामना देने वाले, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सर्वानन्दप्रद, सबसे परे, सर्वधर्मप्रदायक, भक्ति देने वाले, साधुगण को कृष्ण का दासत्व धर्म तथा समस्त सिद्धिप्रदाता हैं। इनका ध्यान-भजन करो। इनके अतिरिक्त सब कुछ नश्वर है तथा सब कुछ कृत्रिम है। हे वत्स! परात्पर, परिपूर्णतम, कल्याणमय तथा शुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करके उनकी प्राप्ति करो। वे परम कल्याणरूप हैं।।३४-४१।।

कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं गृहीत्वा कृष्णदास्यदम्।
पुष्करं दुष्करं गत्वा दशलक्षमिमं जप।।४२।।

तुम जानकर 'कृष्ण' इन दो अक्षर वाले मन्त्र का दस लाख जप पुष्कर तीर्थ में करो। इस दो अक्षर मन्त्र को पाओ जो दास्य भक्तिप्रद है।।४२।।

दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिभवेत्तव। इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत।।४३।।

वैश्यो नत्वा च तां भक्त्या चागमत्पुष्करं मुने।
पुष्करे दुस्तरे तप्त्वा स लेभे कृष्णमीश्वरम्।
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथसमाधिमेधः सं० प्रकृतिवैश्यसंवाद-
कथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

"तुम दस लाख इस दो अक्षर के मन्त्रों का जप करो। तुमको मन्त्र सिद्ध हो जायेगा।" यह कहने के अनन्तर भगवती प्रकृति दुर्गा वहीं अन्तर्हित् हो गईं। हे मुनिवर! वैश्य ने उनको भक्ति के साथ प्रणाम किया तथा वह पुष्कर आ गया। उसने पुष्कर में दुस्तर तप करके वहां ईश्वर कृष्ण को भक्ति पूर्वक प्राप्त किया। भगवती की कृपा से वह कृष्ण का दास हो गया॥४३-४४॥

॥त्रिषष्टितम अध्याय समाप्त॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

राजा सुरथ कृत प्रकृति (दुर्गा) देवी की पूजा का क्रम वर्णन

नारायण उवाच

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम्। तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च॥१॥
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजः कृत्वा न्यासत्रयं तदा।
स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणां भूतशुद्धिं चकार सः॥२॥
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च स्वाङ्गशोधनम्।
ध्यात्वा देवीं च मृन्मय्यां चकाराऽऽवाहनं तदा॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—राजा सुरथ ने जिस क्रम से परा प्रकृति का भजन किया था, हे महाभाग! मैं उस वेदोक्त क्रम को कहता हूं। श्रवण करो। उन महाराज ने पहले स्नान, आचमन सम्पन्न करके तीन न्यास किया। अर्थात् कराङ्गन्यास, हृदयन्यास तथा अंगन्यास मन्त्रों से करके, तब भूतशुद्धि सम्पन्न किया। तदनन्तर प्राणायाम, अंगशोधन करने के उपरान्त ध्यान किया तथा देवी का मृत्तिका से बनी मूर्त्ति में आवाहन सम्पन्न किया॥१-३॥

पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तितः।
देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम्॥४॥
संपूज्य भक्तिभावेन भक्त्या परमधार्मिकः। देवषट्कं समावाह्य देव्याश्च पुरतो घटे॥५॥
भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वं च नारद।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥६॥

उन्होंने पुनः भक्तिभावेन ध्यान तथा भक्ति पूर्वक देवीपूजा करके देवी के दक्षिण भाग में लक्ष्मी की स्थापना किया। तदनन्तर परम धार्मिक राजा ने भक्तिभाव के साथ देवी के समक्ष स्थापित घट में छह देवगण का आवाहन किया। हे नारद! तदनन्तर राजा ने भक्तिभाव से सविधि गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती, इन छह देवगण की पूजा किया था॥४-६॥

देवषट्कं च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः। तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तितः॥७॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने। ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिरीश्वरीम्॥८॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्।
नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम्॥९॥
सर्वस्वरूपां सर्वेषां सर्वाधारां परात्पराम्। सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम्॥१०॥
सगुणां निर्गुणां सत्यां वरां स्वेच्छामयीं सतीम्।
महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्धाङ्गसंभवाम्॥११॥

इन छह देवगण की पूजा करके उन विद्वान् राजा ने उनको प्रणाम करने के अनन्तर अत्यन्त भक्ति के साथ महादेवी का ध्यान इस प्रकार किया था। हे मुनि! यह ध्यान सामवेदोक्त तथा परम कल्पतरु के समान है। यथा–मैं मूलप्रकृति ईश्वरी महादेवी का नित्य ध्यान करता हूं। वे ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि से पूज्या, वन्दनीया तथा सनातनी, नारायणी, विष्णुमाया, वैष्णवी तथा विष्णुभक्तिप्रदा हैं। ये सर्वस्वरूपा, सर्वाधारा, परात्परा, सर्वविद्या-सर्वमन्त्र-सर्वशक्ति स्वरूपा हैं। ये सगुणा होकर भी निर्गुणा, सत्या, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी तथा सती हैं। ये महाविष्णु की जननी तथा कृष्ण के आधे अंग से आविर्भूत हैं॥७-११॥

कृष्णप्रियां कृष्णशक्तिं कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम्।
कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यांकृष्णवन्द्यां कृपामयीम्॥१२॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां कोटिसूर्यसमप्रभाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम्॥१३॥
दुर्गां शतभुजां देवीं महद्दुर्गतिनाशिनीम्।
त्रिलोचनप्रियां साध्वीं त्रिगुणां च त्रिलोचनाम्॥१४॥
त्रिलोचनप्राणरूपां शुद्धार्धचन्द्रशेखराम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम्॥१५॥

ये कृष्णप्रिया, कृष्णशक्ति, कृष्ण की बुद्धि की अधिदेवता हैं। ये कृष्ण द्वारा स्तुता, कृष्णपूज्या, कृष्ण द्वारा वन्दनीया कृपामयी देवी हैं। इनका देहवर्ण तप्त स्वर्ण के समान आभा वाला है। ये कोटिसूर्य के समान प्रभा वाली हैं। इनके चेहरे पर मंद मुस्कान झलकती रहती है। ये भक्तों के प्रति कृपा करने वाली हैं। दुर्गा सौ भुजाओं वाली महान् दुर्गति का नाश करने वाली, त्रिलोचन शिव की प्रिया, साध्वी, त्रिगुणा, त्रिलोचना हैं। ये त्रिलोचन शिव की प्राणरूपा, शुद्ध अर्द्धचन्द्रधारिणी, केशपाश को धारण करने वाली (जूड़ा से युक्त केशों वाली) हैं, जो मालती माला से मंडित है।।१२-१५।।

वर्तुलं वामवक्त्रं च शंभोर्मानसमोहिनीम्।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्॥१६॥
नासादक्षिणभागेन बिभ्रतीं गजमौक्तिकम्। अमूल्यरत्नं बहुलं बिभ्रतीं श्रवणोपरि॥१७॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिसुशोभिताम्। पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च सुप्रसन्नां सुमङ्गलाम्॥१८॥

इनका सुन्दर गोलाकृति मुख है। ये शंभु के मन को मोहने वाली रत्नकुण्डल की जोड़ी से भूषित कपोल वाली हैं। इनकी दाहिनी नासिका में गजमुक्ता की नथ शोभायमान है। इनके कानों पर अमूल्य रत्नजड़ित आभूषण विराजमान हैं। इनकी दन्तपंक्ति मुक्तापंक्ति की शोभा को मात कर देने वाली है। ये पके बिम्बफल के समान अधर-ओष्ठ वाली सुप्रसन्ना तथा सुमंगला हैं।।१६-१८।।

चित्रपत्रावलीरम्यकपोलयुगलोज्ज्वलाम्। रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जिताम्॥१९॥
रत्नकङ्कणभूषाढ्यां रत्नपाशकशोभिताम्।
रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिचयोज्ज्वलाम्॥२०॥
पदाङ्गुलिनखासक्तालक्तारेखासुशोभनाम्। वह्निशुद्धांसुकाधानां गन्धचन्दनचर्चिताम्॥२१॥

इनके दोनों कपोल चित्र-विचित्र पत्रावलियों के चित्रित होने के कारण रमणीक एवं उज्ज्वल लग रहे हैं। इन्होंने रत्नों का केयूर (बाजूबंद), कड़ा तथा रत्ननूपुर धारण किया है। ये रत्न कंकणादि भूषणों से भूषिता, रत्न चूड़ामणि से शोभिता हैं। इनकी उंगलियां तथा अंगूठे रत्न की अंगूठियों से दीप्त हैं। नख आलते की रेखा से सुन्दर लग रहे हैं। अग्नि जैसे शुद्ध वस्त्र को देवी ने धारण किया है, जिनके अंग चन्दन चर्चित हैं।।१९-२१।।

बिभ्रतीं स्तनयुग्मं च कस्तूरीबिन्दुशोभिताम्। सर्वरूपगुणवतीं गजेन्द्रमन्दगामिनीम्॥२२॥
अतीव कान्तां शान्तां च नितान्तां योगसिद्धिषु।
विधातुश्च विधात्रीं च सर्वधात्रीं च शङ्करीम्॥२३॥

इनके स्तनों पर कस्तूरी की बिन्दी लगी है। ये देवी सर्वरूपमयी,सर्वगुण समन्वित तथा हाथी की तरह मन्द चाल वाली हैं। ये अतीव कमनीय रूप वाली, शान्त, योगसिद्धियों हेतु नितान्त तत्पर, ब्रह्मा की भी विधात्री, सबका पालन करने वाली, सबको धारण करने वाली देवी शंकरी हैं।।२२-२३।।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यामतीव सुमनोहराम्। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना॥२४॥

इनका आनन शरद्पूर्णिमा के चन्द्र के समान मनोहर है। इनके मस्तक पर कस्तूरी की बिन्दी लगी है, जिसके ठीक नीचे (अधः में) चन्दन विन्दु लगा है।।२४।।

सिन्दूरबिन्दुना शश्वद्भालमध्यस्थलोज्ज्वलाम्। शरन्मध्याह्नकमलप्रभामोचनलोचनाम्।।२५।।
चारुकज्जलरेखाभ्यां सर्वतश्च समुज्ज्वलाम्। कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दतविग्रहाम्।।२६।।
रत्नसिंहासनस्थां च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलाम्।
सृष्टौ स्त्रष्टुः शिल्परूपां दयां पातुश्च पालने।।२७।।
संहारकाले संहर्तुः परां संहाररूपिणीम्। निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम्।।२८।।

इनकी मांग सिन्दूर बिन्दु से उज्ज्वल है। इससे भाल (ललाट का मध्य भाग) अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत हो रहा है। इनके नेत्र शरत्कालीन मध्याह्न में खिले कमल कें समान प्रभावान् हैं। वे नेत्र चतुर्दिक् कज्जल की सुन्दर रेखा लगने से समुज्ज्वल हैं। इनकी लावण्यलीला कोटि कन्दर्प की लावण्यलीला को भी तिरस्कृत करने वाली है। भगवती रत्नसिंहासनासीना हैं। ये उत्तम रत्नमुकुट से दीप्त, ब्रह्मा की सृष्टि में साक्षात् शिल्प अर्थात् सृष्टिरूपा हैं। ये विष्णु द्वारा सृष्टिपालन कार्य में दया रूपा हैं। संहर्त्ता शिव के संहार काल में ये ही महासंहाररूपा हो जाती हैं। ये शुंभ-निशुंभ को मथ देने वाली तथा महिषासुरमर्दिनी भी हैं।।२५-२८।।

पुरा त्रिपुरायुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा। मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम्।।२९।।
सर्वदैत्यनिहन्त्रीं च रक्तबीजविनाशिनीम्। नृसिंहशक्तिरूपां च हिरण्यकशिपोर्वधे।।३०।।
वराहशक्तिं वाराहे हिरण्याक्षवधे तथा। परब्रह्मस्वरूपां च सर्वशक्तिं सदा भजे।।३१।।

पूर्वकाल में जब शिव का त्रिपुरासुर से युद्ध हो रहा था, तब शिव ने इनकी स्तुति किया था। ये देवी ही मधु-कैटभ युद्धकाल की विष्णुशक्तिरूपा हैं। ये सभी दैत्यों का वध करने वाली, रक्तबीज विनाशक हैं। हिरण्यकश्यप के वधकाल में ये ही नारसिंही शक्तिरूप से नृसिंह देव की शक्ति रही हैं। हिरण्याक्ष वध में ये ही वराहदेव की वाराही शक्ति थीं। ये परब्रह्मस्वरूपा तथा सर्वशक्त्यात्मिका हैं। मैं इनका भजन करता हूं।।२९-३१।।

इति [१]ध्यात्वा च दुर्गायै पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः।
पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्यादावादनं ततः।।३२।।
प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः। जीवन्यासं ततः कुर्यान्मनुनाऽनेन यत्नतः।।३३।।
एह्येहि भगवत्यम्ब शिवलोकात्सनातनि। गृहाण मम पूजां च शारदीयां सुरेश्वरि।।३४।।
इहाऽऽगच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि। हे मातरस्यामर्चायां संनिरुद्धा भवाम्बिके।।३५।।

दुर्गा का यह ध्यान करके बुद्धिमान साधक अपने शिर पर पुष्प चढ़ाये। तत्पश्चात् भक्ति के साथ

१. ख. ०त्वा स्वशिरसि पु०।

पुनः ध्यानोपरान्त दुर्गा का आवाहन करना चाहिए। प्रकृति देवी (दुर्गा की) की प्रतिमा उठा कर अथवा उसका स्पर्श करते हुए यह नीचे अंकित मन्त्र पढ़े तथा इसी मन्त्र से यत्नतः जीवन्यास भी करे। मन्त्र यह है–"हे भगवती अम्बा! सनातनी! सुरेश्वरी! आप यहां शिवलोक से कृपा पूर्वक आकर मेरी शारदीया पूजा ग्रहण करिये। आप यहां आयें। हे जगत्पूज्ये! महेश्वरी! आप यहां स्थित रहें। हे माता अम्बिका! जब तक मैं आपका पूजन कर रहा हूं, आप यहीं रुकी रहें।।३२-३५।।

इहाऽऽगच्छन्तु त्वत्प्राणाश्चाऽऽधिप्राणैः सहाच्युते।
इहाऽऽगच्छन्तु त्वरितं तवैव सर्वशक्तयः॥३६॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं च दुर्गायै वह्निजायान्तमेव च।
समुच्चार्योरसि प्राणाः संतिष्ठन्तु सदा शिवे॥३७॥

"हे अच्युते! आप आइये। इस पूजन में अधिप्राण तथा आपके प्राण आयें। आपकी सर्व शक्तियां यहां आयें। शीघ्र आइये।" तदनन्तर "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गायै स्वाहा" कह कर कहे "हे शिवे! मेरे हृदय में प्राण सदा स्थित रहे"।।३६-३७।।

सर्वेन्द्रियाधिदेवास्त इहाऽऽगच्छन्तु चण्डिके।
ते शक्तयोऽत्रागच्छन्तु इहाऽऽगच्छन्तु ईश्वराः॥३८॥

हे चण्डिके! सर्वेन्द्रिय समूह के अधिदेवता यहां आगमन करें। हे देवी चण्डिके! आपकी सभी शक्तिदेवियां तथा ईश्वर यहां आगमन करें।।३८।।

इत्यावाह्य महादेवीं परीहारं करोति च। मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र तच्छृणुष्व समाहितः॥३९॥

स्वागतं भगवत्यम्ब शिवलोकाच्छिवप्रिये।
प्रसादं कुरु मां भद्रे भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥४०॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम।
आगताऽसि यतो दुर्गे माहेश्वरि मदालयम्॥४१॥

इस प्रकार से आवाहन करके परिहार करना चाहिए। उसका यह मन्त्र है। समाहित होकर श्रवण करे। "हे भगवती! अम्बिका! शिवप्रिये! आप शिवलोक से आयें। आपका स्वागत है। यहां कृपा करें। मा भद्रे! भद्रकाली! आपको नमस्कार करता हूं! आज मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया। मेरा जीवन सफल है। क्योंकि आज माहेश्वरी दुर्गा का आगमन मेरे गृह में हो गया!"।।३९-४१।।

अद्य मे सफलं जन्म सार्थकं जीवनं मम। पूजयामि यतो दुर्गां पुण्यक्षेत्रे च भारते॥४२॥

"आज मेरा जन्म सफल है। जीवन भी सार्थक है। क्योंकि आज मैं पुण्यभूमि भारत में दुर्गा की पूजा कर रहा हूं"।।४२।।

भारते भवतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेद्बुधः। सोऽन्ते याति च गोलोकं परमैश्वर्यवानिह॥४३॥

कृत्वा च वैष्णवीपूजां विष्णुलोकं व्रजेत्सुधीः।
माहेश्वरीं च संपूज्य शिवलोकं च गच्छति॥४४॥
सात्त्विकी राजसी चैव त्रिधा पूजा च तामसी।
भगवत्याश्च वेदोक्ता चोत्तमा मध्यमाऽधमा॥४५॥

जो बुद्धिमान मनुष्य भारत में पूज्यनीया दुर्गा की पूजा करता है, वह परमैश्वर्यसम्पन्न रह कर अन्ततः गोलोकगामी होता है। वैष्णवी पूजन के फलस्वरूप उस सुधी व्यक्ति को विष्णुलोक मिलता है। माहेश्वरी की पूजा से वह शिवलोक गमन करता है। देवी की वेद में वर्णित पूजा सात्विकी, राजसी तथा तामसी रूपी भेदत्रयमयी कही गयी है। सात्विकी पूजा उत्तम, राजसी मध्यम तथा तामसी पूजा अधम कही गयी है।।४३-४५।।

सात्त्विकी वैष्णवानां च शाक्तादीनां च राजसी।
अदीक्षितानामसतामन्येषां तामसी स्मृता॥४६॥
जीवहत्याविहीना या वरा पूजा तु वैष्णवी।
वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीबलिदानतः॥४७॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता।
शाक्तादयो राजसाश्च कैलासं यान्ति ते तथा॥४८॥
किरातास्त्रिदिवं यान्ति तामस्या पूजया तया।
त्वमेव जगतां माता चतुर्वर्गफलप्रदा सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः॥४९॥

सात्विकी पूजा वैष्णव करते हैं, शाक्तजन राजसी पूजा भागी होते हैं। दीक्षाहीन असज्जन लोगों की पूजा तामसी कही गयी है। जीवहत्या रहित परा पूजा वैष्णवी पूजा है। वैष्णवी बलि (हत्या रहित बलि) देकर वैष्णव गोलोक जाते हैं। बलिदान युक्त पूजा राजसी है। शाक्तादि लोग इसे करके कैलास धाम जाते हैं। किरात लोग तामसी पूजा करके स्वर्गलाभ करते हैं। स्तोत्र कहते हैं--आप जगन्माता तथा चतुर्वर्ग फलप्रदा हैं तथा आप ही कृष्ण परमात्मा की सर्वशक्तिरूपा भी हैं।।४६-४९।।

जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वं च परात्परा। सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा॥५०॥
नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह॥५१॥

आप परात्परा हैं। आप जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि का हरण करने वाली, मोक्षप्रदा, सुखप्रदा तथा कृष्णभक्तिप्रदा हैं। आप नारायणी, महामाया तथा दुर्गतिनाशिनी दुर्गा हैं। दुर्गा की स्मृति मात्र से मनुष्यों का संकट नष्ट हो जाता है।।५०-५१।।

इति कृत्वा परीहारं देव्या वामे च साधकैः। त्रिपद्या उपरिष्टात्तु शङ्खं संस्थापयेत्तु सः॥५२॥
तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पं च मङ्गलम्। धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः॥५३॥

यह परिहार करके साधक देवी के वाम भाग में धातु की तिपाई पर शंख स्थापना करे। यह दूर्व, पुष्प, चन्दन, जल युक्त हो। शंख को दाहिने हाथ में लेकर यह मन्त्रोच्चार करे।।५२-५३।।

पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
प्रभूतः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः।।५४।।

शंखमन्त्र–हे शंख! तुम पुण्य के भी पुण्यरूप तथा मंगलों का भी मंगल करने वाले, पवित्र हो तथा पूर्व कल्प में शंखचूड़ की अस्थि से उत्पन्न हो।।५४।।

ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनाऽनेन पण्डितः।
दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोडश।।५५।।

त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च। कूर्मं शेषं धरित्रीं च पूजयेत्तत्र धार्मिकः।।५६।।

तत्पश्चात् साधक विद्वान् व्यक्ति अर्घ्यस्थापना करके देवी की पूजा १६ उपचार से करे। त्रिकोण मंडल बना कर उसमें कुश जल से कूर्म, शेष तथा धरती का पूजन धार्मिक व्यक्ति करे।।५५-५६।।

त्रिपदीं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च। शङ्खे त्रिभागतोयं च दत्त्वा संपूजयेत्ततः।।५७।।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि।।५८।।
स्वर्गरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि। श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति।।५९।।
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे। शतह्रदे चेलगङ्गे[1] जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु।।६०।।

वहां तिपाई रख कर उस पर शंख रखे। वह शंख ३/४ ही जल से भरा हो। तब प्रार्थना करे–हे गंगे! यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, चन्द्रभागा, कौशिकी, स्वर्णरेखा, कनखला, पारिभद्रा, गण्डकी, श्वेतगंगा, चन्द्ररेखा, पम्पा, चम्पा नदी, गोमती, पद्मावती, त्रिपर्णांशे, विपाशे, विरजे, प्रभे, शतह्रदे, चेलगंगे, आप सब इस जल में निवास करिये।।५७-६०।।

दह्निं सूर्यं च चन्द्रं च विष्णुं च वरुणं शिवम्।
पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च।।६१।।

नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च। प्रत्येकं वै ततो दद्यादुपचारांश्च षोडश।।६२।।

इस जल में चंदन, तुलसी छोड़े तथा इससे अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विष्णु, वरुण, शिव की पूजा करके सभी नैवेद्य पर छिड़के। तदनन्तर सभी देवता की १६ उपचारों से अर्चना करे।।६१-६२।।

आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम्।
मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम्।।६३।।

पुनराचमनीयं च ताम्बूलं रत्नभूषणम्। धूपं प्रदीपं तल्पं चेत्युपचारास्तु षोडश।।६४।।

तत्पश्चात् षोडशोपचार पूजन के समय सभी को आसन, वस्त्र, पाद्य, स्नानीय जल, अनुलेप,

---

१. मन्दाकिनि इति क्वचित् पाठः।

मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, इच्छित नैवेद्य, आचमनीय जल, ताम्बूल, रत्नाभूषण, धूप, प्रदीप, शय्या ये १६ उपचार हैं।।६३-६४।।

अमूल्यरत्नसंक्लृप्तं नानाचित्रविराजितम्। वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शङ्करप्रिये।।६५।।
अतन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम्। ज्वलदग्निविशुद्धं वसनं गृह्यतां शिवे।।६६।।
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम्। पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे देवि प्रगृह्यताम्।।६७।।

हे शंकरप्रिये! आप अमूल्य रत्न जड़ित तथा अनेक चित्रों से शोभित यह उत्तम सुन्दर सिंहासन ग्रहण करें। हे शिवे! अनन्त सूत्र रचित, ईश्वरेच्छा से निर्मित ज्वलित अग्नि जैसे विशुद्ध वस्त्र को ग्रहण करिये। यह जाह्नवी का जल अनमोल रत्नपात्र में रखा है। हे दुर्गे देवि! इसे चरण प्रक्षालन के लिये ग्रहण करिये।।६५-६७।।

सुगन्धामलकीस्निग्धद्रवमेतत्सुदुर्लभम्। सुपक्वं विष्णुतैलं च गृह्यतां परमेश्वरि।।६८।।
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धिद्रुतचन्दनम्। सुवासितं जगत्मातर्गृह्यतामनुलेपनम्।।६९।।

हे परमेश्वरी! यह विष्णुतैल सुगन्धयुक्त तथा आंवला के रस से पका कर बना है, जो अत्यन्त दुर्लभ है। इसे ग्रहण करिये। हे जगन्माता! यह अनुलेप कस्तूरी, कुंकुम, मिला आर्द्र सुगन्धित चन्दन से सुवासित है। कृपया इसे ग्रहण करिये।।६८-६९।।

माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम्। मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्।।७०।।
सुगन्धमूलचूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंयुतम्। सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहण मे।।७१।।
पवित्रं शङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्।
स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे।।७२।।
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठं च पारिजाततरूद्भवम्। नानापुष्पादिमाल्यानि गृह्यतां जगदम्बिके।।७३।।

हे महादेवी! मधु से निर्मित पवित्र मंगलमय तथा रत्न के पात्र में रखा गया यह मधुपर्क आप प्रीति पूर्वक ग्रहण करें। हे देवी! सुगन्धमूल का चूर्ण तथा सुगन्धद्रव्य युक्त अत्यन्त पावन मंगलप्रद गंध को आप ग्रहण करें। हे चण्डिके! यह दूर्वा-पुष्प-अक्षत समन्वित स्वर्गमन्दाकिनी का जल जो शंख में रखा है, यह अर्घ्य हेतु ग्रहण करिये। हे जगदम्बे! यह उत्तम सुगन्धिपुष्प जो पारिजात वृक्ष से उत्पन्न हैं, ऐसे अनेक पुष्पों से निर्मित पुष्पमाला को ग्रहण करिये।।७०-७३।।

दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं पिष्टकं पायसादिकम्। मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे।।७४।।
सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके।।७५।।
गुवाकपर्णचूर्णं च कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्।।७६।।

हे शिवे! यह दिव्य सिद्ध किया (पकाया) अन्न, पिष्टक, पायस आदि, मिष्ठान्न, लड्डू, फल, नैवेद्य ग्रहण करिये। हे शैलकन्ये! सुवासित ठंडा जल जो कर्पूर आदि से सुवासित है, इसे मैं भक्ति पूर्वक निवेदित कर रहा हूं। कृपया स्वीकार करिये। हे देवी! मैं सुपारी के पत्ते का चूर्ण कर्पूर आदि से

सुवासित करके उसे सर्वभोग वस्तु में श्रेष्ठ ताम्बूल में भक्ति से रख कर दे रहा हूं। कृपया ग्रहण करिये।।७४-७६।।

अमूल्यरत्नसारैश्च खचितं चेश्वरेच्छया। सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम्॥७७॥

हे देवी! अमूल्य रत्नों के सार तत्व से ईश्वरेच्छा से रचित तथा स्वर्ण में जड़े सर्वाङ्ग को शोभायमान करने वाला यह स्वर्णाभरण आपको अर्पित कर रहा हूं। कृपया ग्रहण करें।।७७।।

तरुनिर्यासचूर्णं च गन्धवस्तुसमन्वितम्। हुताशनशिखाशुद्धं धूपं च देवि गृह्यताम्॥७८॥
दिव्यरत्नविशेषं च यान्द्रध्वान्तनिवारकम्। सुपवित्रं प्रदीपं च गृह्यतां परमेश्वरि॥७९॥

हे देवी! वृक्षों के निर्यास (गोंद) का चूर्ण गन्धवस्तु से युक्त करके तथा धूपदानी में अग्नि दग्ध करने से जो यह धूप अग्निशिखा से शुद्ध हो गया है, उस धूप को आप ग्रहण करिये। हे परमेश्वरी! यह दिव्य तथा रत्नविशेष के द्वारा निर्मित जो अंधकार का नाश करने वाला अत्यन्त पावन है, वह दीप ग्रहण करें।।७८-७९।।

रत्नसारगणाकीर्णं दिव्यं पर्यङ्कमुत्तमम्। सूक्ष्मवस्त्रैश्च संस्यूतं देवि तल्पं प्रगृह्यताम्॥८०॥

हे देवी! रत्न के सारभाग से जड़े इस दिव्य परम उत्तम शय्या को जो सूक्ष्म वस्त्रों से सिली है, ग्रहण करिये।।८०।।

एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं मुने। ततोऽष्टनायिकादेवीर्यत्नतः परिपूजयेत्॥८१॥
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्।
अतिचण्डां च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा॥८२॥

हे मुनिवर! इस प्रकार से दुर्गा को पूजित करके अन्त में पुष्पांजलि समर्पित करे। तदनन्तर यत्न पूर्वक देवी की आठों नायिकाओं की पूजा करनी चाहिए। ये अष्टनायिकायें हैं--उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, अतिचण्डा, चामुण्डा, चण्डा तथा चण्डवती।।८१-८२।।

पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिक्रमतस्तथा। पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः॥८३॥
आदौ महाभैरवं च तथा संहारभैरवम्। असिताङ्गं भैरवं च रुरुभैरवमेव च॥८४॥
कालभैरवमप्येवं क्रोधभैरवमेव च। ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते वै भैरवद्वयम्॥८५॥
एतान्संपूज्य मध्ये वै नवशक्तीश्च पूजयेत्। तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये वै भक्तिपूर्वकम्॥८६॥
ब्रह्माणीं वैष्णवीं चैव रौद्रीं माहेश्वरीं तथा।
नारसिंहीं च वाराहीमिन्द्राणीं कार्तिकीं[1] तथा॥८७॥

एक अष्टदल कमल में पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके क्रमशः आठ दलों में पञ्चोपचार द्वारा अष्ट नायिकाओं की पूजा करके मध्य में अष्टभैरव की पूजा करे। ये भैरव हैं–महाभैरव, संहारभैरव,

१. क. शक्तिकीं।

असितांग भैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड़ भैरव, चन्द्रचूड़ भैरव। तदनन्तर अष्टदल के मध्य में नव शक्तिगण की पूजा करनी चाहिए। ये हैं–ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्त्तिकी तथा सर्वशक्तिस्वरूपा प्रधाना सर्वमंगला शक्ति। इन ९ शक्तियों के पूजनोपरान्त घट में देवगण की पूजा की जाये।।८३-८८।।

शङ्करं कार्तिकेयं च सूर्यं सोमं हुताशनम्। वायुं च वरुणं चैव देव्याश्चेष्टीं वटुं तथा।।८९।।

चतुःष्टिं योगिनीनां संपूज्य विधिपूर्वकम्।
यथाशक्ति बलिं दत्त्वा करोति स्तवनं बुधः।।९०।।
कवचं च गले बध्वा पठित्वा भक्तिपूर्वकम्।
ततः कृत्वा परीहारं नमस्कुर्याद्विचक्षणः।।९१।।

ये देवता हैं–शंकर, कार्त्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण, देवी की दासी, बटुक, ६४ योगिनी। इनकी सविधि पूजा करके यथासंभव वहां बलि प्रदान करे। यथाशक्ति बलि देकर बुद्धिमान लोग स्तवन करें। कवच को गले में बांध कर उसका भक्ति पूर्वक पाठ करके परिहार सम्पन्न करने के अनन्तर बुद्धिमान साधक नमस्कार करे।।८९-९१।।

बलिदानविधानं च श्रूयतां मुनिसत्तम। मायातिं महिषं छागं दद्यान्मेषादिकं शुभम्।।९२।।
सहस्त्रवर्षं सुप्रीता दुर्गा मायातिदानतः। महिषाच्छतवर्षं च दशवर्षं च च्छागलात्।।९३।।
वर्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा। दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दं च गण्डकैः।।९४।।
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा। मासं [1]सुपक्वादिफलैरक्षतैरिति नारद।।९५।।

हे मुनिसत्तम! तदनन्तर मेरे द्वारा कहा बलिविधान श्रवण करो। खरीदा मनुष्य, महिष, बकरा, भेड़ आदि की शुभ बलि देकर (देवी को) उनको अर्पित करे (मनुष्य बलि वर्त्तमान कानून से अपराध तथा वर्जित है, मूल में होने के कारण उसका उल्लेख कर दिया। पाठक इसे त्याज्य समझें)। क्रीत मनुष्य की बलि से १००० वर्ष, महिष बलिदान से १०० वर्ष, बकरे के बलिदान से १० वर्ष, भेड़ के बलिदान से एक वर्ष, कोहड़ा-पक्षी-हिरण के बलिदान से एक वर्ष, कृष्णसार मृग बलिदान से १० वर्ष, गैण्डे के बलिदान से १००० वर्ष, आटे के बने कृत्रिम पशु के बलिदान से ६ मास, उत्तम पक्व फल की बलि से १ मास तक देवी दुर्गा प्रसन्न रहती हैं। (यहां पाठक यह स्मरण रखें कि मनुष्य बलि, मृग बलि, कृष्णसार मृग बलि, हिरण बलि तथा गैण्डा बलि कानूनन पूर्णतः वर्जित है)।।९२-९५।।

युवकं व्याधिहीनं च सश्रृङ्गं लक्षणान्वितम्। विशुद्धमविकाराङ्गं सुवर्णं पुष्टमेव च।।९६।।

शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रं च चण्डिका।
वृद्धेन वै गुरुजनं कृशेनापीष्टबान्धवान्।।९७।।

---

१. क. सुखाद्यादिफ.।

हे नारद! बलि हेतु लाया पशु युवा हो, जिस पशु की सींग होती है, वह सींग वाला हो। उत्तम लक्षण, विशुद्ध हो। उसके अंग विकृत न हों। उसका वर्ण उत्तम हो। वह पुष्ट हो। जो शिशु पशु की बलि देता है, देवी चण्डी उसके पुत्र का वध कर देती हैं। जो वृद्ध पशु की बलि देता है, देवी उसके गुरुजनों का वध कर देती हैं। जो कृश पशु की बलि देता है, देवी उसके बान्धवों का नाश कर देती हैं।।९६-९७।।

धनं चैवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्राजास्तथा। कामिनीं शृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरं तथा।।९८।।
घुटिकेन भवेन्मृत्युर्विघ्नं स्याच्चित्रमस्तकैः। हन्ति मित्रं ताम्रपृष्ठैर्भ्रष्टश्रीः पुच्छहीनतः।।९९।।

अधिक अंग वाले पशु के वध से धननाश, हीन अंग वाले की बलि देने से प्रजानाश, भग्न शृंग पशुबलि से स्त्रीनाश, एक आंख वाले पशु की बलि देने से भ्राता का नाश होता है। यदि पशु की घुटिक (एड़ी के ऊपर वाली गांठ) भग्न हो, तब उसकी बलि से यजमान ही मृत होगा। चित्रविचित्र वर्ण वाला मस्तक जिस पशु का हो, उसकी बलि द्वारा विघ्न होगा। ताम्रवर्ण पीठ वाले पशु की बलि के फलस्वरूप व्यक्ति मित्रहानि झेलेगा। पूंछ कटे पशु की बलि से व्यक्ति श्री रहित हो जाता है।।९८-९९।।

मायातीनां स्वरूपं च श्रूयतां मुनिसत्तम। वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे।।१००।।
पितृमातृविहीनं च युवकं व्याधिवर्जितम्। विवाहितं दीक्षितं च परदारविहीनकम्।।१०१।।
अजारसं विशुद्धं च सच्छूद्रपरिपोषितम्।
तद्बन्धुभ्यो धनं दत्त्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः।।१०२।।
स्नापयित्वा च तं कर्ता पूजयेद्वस्त्रचन्दनैः। माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभिः।।१०३।।
तं च वर्षं भ्रामयित्वा भृत्यद्वारेण यत्नतः।
वर्षान्ते च समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत्।।१०४।।

हे मुनिसत्तम! अब अथर्ववेद में कहे गये मायाति (जिस पुरुष को बलिदान हेतु क्रय किया गया) का स्वरूप श्रवण करो। इसमें कोई भी नियम विपर्यय न हो। अन्यथा हानि होगी। जो पुरुष माता-पिता रहित, रोग रहित, विवाहित, दीक्षित, परस्त्री दोष रहित हो, किसी का जारज पुत्र न हो, शुद्ध हो, किसी सत् शूद्र द्वारा पाला गया हो, युवक हो, उसे उसके बन्धुगण से धन देकर क्रय करे। उसे स्नान करा कर वस्त्र-चन्दन लेप, माला-धूप-सिन्दूर, दधि-गोरोचन से उसकी पूजा करे। सेवकगण उसे वर्ष पर्यन्त भ्रमण करायें। वर्षान्त में उस पुरुष की बलि देवी के समक्ष देना चाहिए। (पाठकगण वर्त्तमान कानून को याद करके यह कार्य कदापि न करें। केवल प्रसंगवश अनुवाद लिख दिया है)।।१००-१०४।।

अष्टमीनवमीसंधौ दद्यान्मायातिमेव च।
इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः।।१०५।।

बलिं दत्त्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कवचं बुधः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्॥१०६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० पूजाविधिबलिपशुलक्षणविशेषो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

ऐसी नरबलि अष्टमी-नवमी की सन्धि में देनी चाहिए। प्रसंगानुसार सभी बलिदान प्रक्रिया को कह दिया। बलि देकर भगवती की स्तुति करे तथा कवच धारण करे। तत्पश्चात् भूमि पर नत होकर देवी को प्रणाम करें तथा विप्रों को दक्षिणा प्रदान करे॥१०५-१०६॥

चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

प्रकृति पूजा का फल तथा काल निरूपण

नारद उवाच

श्रुतं सर्व महाभाग सुधारसपरं वरम्। स्तोत्रं च कवचं पूजाफलं कालं वद प्रभो॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाभाग! मैंने आपसे अमृतरस से भी उत्कृष्ट समस्त विषयों को सुना। हे प्रभो! अब कृपया देवी का स्तव, कवच, पूजा तथा फल एवं पूजा करने का उचित समय भी कहिये॥१॥

नारायण उवाच

आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत्। उत्तरेणार्चयित्वां तां श्रवणायां विसर्जयेत्॥२॥
आर्द्रायुक्तनवम्यां तु कृत्वा देव्याश्च [1]बोधनम्।
पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः॥३॥
मूलायां तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत्। उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत्॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—आर्द्रा नक्षत्र में देवी का बोधन (जागरण) करके उनको मूल नक्षत्र में गृह प्रवेश कराये। उनकी पूजा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में करके श्रवणा नक्षत्र में विसर्जन कराये। मनुष्य आर्द्रा नक्षत्रयुक्त नवमी के दिन देवी का बोधन करने से देवी की १०० वर्ष पर्यन्त की पूजा का

१. क. पूजनम्।

फल लाभ कर लेता है। मूला नक्षत्र में भगवती का गृह प्रवेश कराने से नरमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में भगवती की पूजा द्वारा पूजक को वाजपेय यज्ञफल मिलता है।।२-४।।

कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायां च मानवः।
लक्ष्मीं च पुत्रपौत्रांश्च लभते नात्र संशयः।।५।।
भुवः प्रदक्षिणापुण्यं पूजायां लभते नरः। नक्षत्रयोगाभावे तु पार्वत्याश्चैव नारद।।६।।
नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्य मानवः। अश्वमेधफलावाप्त्यै दशम्यां च विसर्जयेत्।।७।।
सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विचक्षणः। अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविवर्जितम्।।८।।

मनुष्य श्रवण नक्षत्र में देवी का विसर्जन करके लक्ष्मी, पुत्र, पौत्रादि प्राप्त करता है। यह निःसंदिग्ध है। भगवती की पूजा से पृथिवी-प्रदक्षिणा का पुण्य मिलता है। हे नारद! जब नक्षत्र योग न मिले, तब नवमी को देव का बोधन कराये तथा १ पक्ष तक पूजन करके दशमी को देवी का विसर्जन करने से अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होगी। सप्तमी पूजन करके बुद्धिमान मनुष्य बलि प्रदान करे। अष्टमी पूजा प्रशस्त है। इस दिन बलि कदापि नहीं देनी चाहिए।।५-८।।

अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम्।
दद्याद्विचक्षणो भक्त्या नवम्यां विधिवदबलिम्।।९।।
बलिदानेन विप्रेन्द्र दुर्गाप्रीतिर्भवेन्नृणाम्। हिंसाजन्यं न पापं च लभते यज्ञकर्मणि।।१०।।
उत्सर्गकर्ता दाता च च्छेत्ता पोष्टा च रक्षकः।
अग्रे पश्चान्निबद्धा च सप्तैतेऽवधकारिणः।।११।।
यो यं हन्ति स तं हन्ति नेति वेदोक्तमेव च।
कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना।।१२।।

अष्टमी को बलि देने से मनुष्य विपत्तिग्रस्त होता है। बुद्धिमान मनुष्य नवमी को सविधि बलिदान करे। हे विप्रेन्द्र! बलि देने से दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं। यज्ञ-पूजादि प्रसंग में बलिदान करने वाले को हिंसाजनित पातक नहीं लगता। बलिकार्य में ये सात लोग लगते हैं, तथापि वे हिंसा पातक के भागी नहीं होते। ये हैं-उत्सर्गकर्त्ता, दाता, वधकर्त्ता, पालने वाला, रक्षक, उसे बलिकाल में आगे-पीछे से बांधने वाला (यहां सात का उल्लेख है, परन्तु छह का ही वर्णन किया गया है)। वेद का यह कथन यहां पर प्रभावी नहीं होता कि जो जिसका वध करेगा, वही (अगले जन्म में) वधकर्त्ता का वध करेगा, तथापि वैष्णवगण केवल वैष्णवी पूजा ही करते हैं।।९-१२।।

एवं संपूज्य सुरथः पूर्णं वर्षं च भक्तितः। कवचं च गले बध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम्।।१३।।
स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्बभूव ह। स ददर्श पुरो देवीं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्।।१४।।
तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम्।
दृष्ट्वा तां कमनीयां च तेजोमण्डलेमध्यतः।।१५।।

स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहकारिणीम्।
पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः॥१६॥

स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता स्नेहपूर्वकम्। उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका॥१७॥

इस नियम से सुरथ राजा ने वर्ष पर्यन्त भक्तिभाव से देवीपूजन करके गले में देवीकवच बांधने के अनन्तर भगवती की स्तुति किया था। इससे देवी ने उन पर प्रसन्न होकर उन राजा को साक्षात् अपना दर्शन प्रदान किया। राजा ने देखा कि उनके समक्ष तेजोमण्डल के मध्य में कमनीय, तेजमयी, परमा, सगुणा होकर भी निर्गुणा, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी, कृपारूपा, भक्तों के प्रति अनुग्रह करने वाली भगवती विराजमान हैं। यह देख कर राजेन्द्र सुरथ ने भक्ति के साथ नत होकर उनकी स्तुति पुनः किया। उस स्तव पाठ से सन्तुष्ट होकर भगवती जगदम्बा ने राजेन्द्र पर कृपा करते हुए मन्द मुस्कान के साथ परम स्नेह पूर्वक राजा से कहा–॥१३-१७॥

प्रकृतिरुवाच

साक्षात्संप्राप्य मां राजन्वृणोषि विभवं वरम्।
ददामि तुभ्यं विभवं सांप्रतं वाञ्छितं तव॥१८॥
निर्जित्य सर्वाञ्छत्रूंश्च लब्ध्वा राज्यमकण्टकम्।
भविष्यसि महाराज सावर्णिर्मनुरष्टमः॥१९॥
दास्यामि तुभ्यं ज्ञानं च परिणाम नराधिप।
भक्तिं दास्यं च परमे श्रीकृष्णे परमात्मनि॥२०॥
वृणोति विभवं यो हि साक्षान्मां प्राप्य मन्दधीः।
मायया वञ्चितः सोऽपि विषमत्त्यमृतं त्यजन्॥२१॥

देवी प्रकृति (दुर्गा) कहती हैं–हे राजन्! तुमने मेरा साक्षात् दर्शन पाकर ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रार्थना किया है। अतः मैं तुम्हारे द्वारा प्रार्थित ऐश्वर्यलाभ रूपी वर देती हूं। हे महाराज! तुम सभी शत्रुओं पर विजय पाकर निष्कण्टक राज्य करो। तदनन्तर (पर जन्म में) तुम सावर्णि नामक आठवें मनु का पदलाभ करोगे। हे राजन्! मैं तुमको ज्ञान तथा परम पदार्थरूप परमात्मा कृष्ण की भक्ति तथा उनका दासत्व भी प्रदान करती हूं, जो उस ज्ञान से तुमको समय पर प्राप्त होगा। मेरा दर्शन पाकर भी जो मन्दबुद्धि वैभव-ऐश्वर्य मांगता है, वह माया से ठगा जाकर अमृत को छोड़ कर विष ग्रहण करने वाला कहा जायेगा॥१८-२१॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च। नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च॥२२॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनामहमाद्या परात्परा।
सगुणा निर्गुणा चापि वरा स्वेच्छामयी सदा॥२३॥

नित्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणम्। बीजरूपा च सर्वेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी॥२४॥

ब्रह्मा से लगाकर तृण तक सब कुछ नश्वर है। केवल नित्य, परमब्रह्म, निर्गुण कृष्ण ही सत्यरूप (शाश्वत) हैं। मैं ही ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि की आद्या परात्परा शक्ति हूं। मैं ही सदा श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी, सगुणा तथा निर्गुणा रहती हूं। मैं ही नित्य-अनित्य समस्त रूपमयी, सभी कारणों की भी कारण ही हूं। मैं ही मूलप्रकृति, ईश्वरी तथा सब कुछ की बीजरूपा हूं।।२२-२४।।

पुण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले।
राधा प्राणाधिकाऽहं च कृष्णस्य परमात्मनः॥२५॥

मैं ही गोलोक के पुण्यमय वृन्दावन में स्थित रम्य रासमण्डल में परमात्मा कृष्ण की प्राणाधिका प्रिय राधा हूं।।२५।।

अहं दुर्गा विष्णुमाया बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता।
अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती॥२६॥

सावित्री वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः। अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा वसुंधरा॥२७॥

नानाविधाऽहं कलया मायया सर्वयोषितः।
साऽहं कृष्णेन संसृष्टा नृप भ्रूभङ्गलीलया॥२८॥
भ्रूभङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान्विराट्।
लोम्नां कूपेषु विश्वानि यस्य सन्ति हि नित्यशः॥२९॥
असंख्यानि च तान्येव कृत्रिमाणि च मायया।
अनित्ये नित्यबुद्धिं च सर्वे कुर्वन्ति संततम्॥३०॥

मैं ही दुर्गा, विष्णुमाया तथा बुद्धि की अधिष्ठातृ देवता हूं। मैं ही वैकुण्ठ में लक्ष्मी तथा देवी सरस्वती हूं। मैं ही वेदमाता सावित्री ब्रह्मलोकस्थ ब्रह्माणी हूं। मैं ही गंगा, तुलसी तथा सबकी आधाररूपिणी पृथिवी हूं। मैं ही नाना प्रकार की अपनी कला तथा माया द्वारा समस्त स्त्री रूपा हूं। हे राजन्! कृष्ण ने अपनी भौहों की क्रीड़ा लीला मात्र से मेरी सृष्टि किया था। उन पुरुष (कृष्ण) ने मात्र भ्रूभंगिमा से ही महाविराट् की सृष्टि कर दिया था, जिनके रोमकूप में सदा अनन्त विश्व (ब्रह्माण्ड) स्थित रहते हैं, जो असंख्य कृत्रिम हैं तथा माया से निर्मित हैं। मनुष्य अपनी मूढ़ बुद्धि के कारण इन सब अनित्य को ही नित्य मानने लगता है।।२६-३०।।

सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुंधरा। तदधः सप्त पातालाः स्वर्लोकाश्चैव सप्त च॥३१॥

एवं विश्वं बहुविधं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम्।
प्रत्येकं सर्वविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥३२॥

यह वसुन्धरा सप्तसागर तथा सप्तद्वीपों से युक्त है। उसके नीचे पाताल प्रभृति सप्त अधोलोक

हैं। पृथिवी से ऊर्ध्व में स्वर्गादि सप्तलोक हैं। यह रचना प्रति विश्व ब्रह्माण्ड में (वहां-वहां के) ब्रह्मा करते हैं। प्रति ब्रह्माण्ड में वहां के ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा अन्य देवता रहते हैं।।३१-३२।।

सर्वेषामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम्। वेदानां च व्रतानां च तीर्थानां तपसां तथा।।३३।।
देवानां चैव पुण्यानां सारः कृष्ण इति स्मृतः।
तद्भक्तिहीनो यो मूढः स च जीवन्मुक्तो ध्रुवम्।।३४।।
पवित्राणि च तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शवायुना।
तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मृत इति स्मृतः।।३५।।

तथापि समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी ईश्वर परात्पर भगवान् कृष्ण को ही जानो। श्रीकृष्ण ही समस्त वेद, व्रत, तीर्थ, तप, देवता तथा पुण्य के सार रूप हैं। जो मूढ़ उनकी भक्ति से विहीन है, वह तो निश्चित रूप से जीवन्मृत ही है। कृष्ण भक्त को स्पर्श करके बहती वायु उस-उस तीर्थ को पवित्र कर देती है। कृष्ण मन्त्रोपासक जीवन्मुक्त होता है।।३३-३५।।

मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया।।३६।।
मातामहानां शतकं पितॄणां च सहस्रकम्।
पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं च स गच्छति।।३७।।

कृष्णमन्त्र ग्रहण करते ही नर सद्यः नारायण हो जाता है। वह जप किये बिना तपःश्चरण, तीर्थभ्रमण, पूजन के बिना ही मन्त्र ग्रहण करते ही नारायण हो जाता है। उसके नाना के कुल की १०० पीढ़ी, पिता के कुल की १००० पीढ़ी का उद्धार हो जाता है। वह स्वयं भी गोलोक गमन करता है।।३६-३७।।

इदं ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप। मन्वन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामि ते हरौ।।३८।।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।३९।।
अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम्।
निश्चलां सुदृढां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मनि।।४०।।

हे राजन्! यह सब कुछ का साररूप ज्ञान मैंने तुमको दे दिया। एक मन्वन्तर व्यतीत हो जाने पर जब तुम्हारे भोग समाप्त हो जायेंगे (सावर्णि मनु बन कर मन्वन्तर के अवसान काल में), तब मैं तुमको स्वयं हरिभक्ति प्रदान करूंगी। नियम यह है कि भले कोटि-कोटि कल्प व्यतीत क्यों न हो जायें, कृतकर्म जब तक भोग नहीं लिया जाता, तब तक वह नष्ट नहीं हो सकता। कृतकर्म का शुभाशुभ फल तो भोगना ही होता है। मैं जिस पर भी कृपा करती हूं, उसे श्रीकृष्ण के प्रति निश्चला भक्ति प्रदान कर देती हूं।।३८-४०।।

करोमि वञ्चनां यं यं तेभ्यो दास्यामि संपदम्।
प्रातः स्वप्नस्वरूपां च मिथ्येति भ्रमरूपिणीम्॥४१॥
इति ते कथितं ज्ञानं गच्छ वत्स यथासुखम्। इत्युक्त्वा च महादेवी तत्रैवान्तरधीयत॥४२॥

"मैं जिसे प्रताड़ित करती हूं, उनको स्वप्नतुल्य मिथ्या भ्रमरूपा सम्पदा प्रदान कर देती हूं। हे वत्स! मैंने तुमसे समस्त ज्ञानविषय कहा। अब तुम यथासुख जाओ।" यह कह कर महादेवी वहां से अन्तर्हित् हो गईं।।४१-४२।।

राजा संप्राप्य राज्यं च नत्वा तां प्रययौ गृहम्।
इति ते कथितं वत्स दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गासुरथसं० ज्ञानकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

राजा ने भी देवी को प्रणाम करके राज्यलाभ करके गृह की ओर प्रस्थान किया। हे नारद! यह दुर्गा-देवी का उत्तम उपाख्यान मैंने तुमसे कह दिया।।४३।।

पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

भगवती दुर्गा के स्तोत्र तथा कवच का वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं किञ्चिदेव हि निश्चितम्। प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं-हे मुनिप्रवर! यह निश्चित है कि मैंने सब कुछ श्रवण कर लिया। कुछ भी बाकी नहीं है, तथापि कृपा पूर्वक देवी दुर्गा का स्तव एवं कवच कहिये।।१।।

नारायण उवाच

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना। संपूज्य मधुमासे च संप्रीते रासमण्डले॥२॥
मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा। तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसङ्कटे॥३॥
चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्या च त्रिपुरारिणा। पुरा त्रिपुरयुद्धे च महाघोरतरे मुने॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं- पूर्वकाल में गोलोक में इन परमात्मा कृष्ण ने मधुमास चैत्र में

प्रेम पूर्वक वहां के रासमण्डल में देवी प्रकृति की स्तुति तथा पूजा किया था। द्वितीय बार मधु-कैटभ युद्ध के समय विष्णु ने तथा तभी आसन्न प्राणसंकट काल में ब्रह्मा ने दुर्गाराधन किया था। यह द्वितीय तथा तृतीय पूजा थी। हे मुनि! चतुर्थ बार त्रिपुरारि ने महाघोर त्रिपुर युद्धकाल में भक्ति पूर्वक देवी की स्तुति किया।।२-४।।

पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा। शक्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसङ्कटे।।५।।
तदा मुनीन्द्रैर्मुनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः। संस्तुता पूजिता सा च कल्पे कल्पे परात्परा।।६।।

पंचम बार वृत्रासुर वधकाल में देवगण ने तथा इन्द्र ने घोर प्राणसंकट उत्पन्न होने पर देवी स्तुति किया था। इसके पश्चात् मुनिगण, मनुगण, राजा सुरथ आदि कल्प-कल्प में (अवसर आने पर) परात्पर देवी की स्तुति तथा पूजा करने लगे।।५-६।।

स्तोत्रं च श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वविघ्नविनाशकम्। सुखदं मोक्षदं सारं भवसंतारकारणम्।।७।।

हे ब्रह्मन्! अब मैं सर्वविघ्न विनाशक, सुखप्रद, मोक्षप्रद, भवसंसार तारक सारभूत स्तोत्र कहता हूं। श्रवण करो (यह श्रीकृष्ण ने कहा था)।।७।।

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी। त्वमेवाऽऽद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।।८।।

कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या[1] सनातनी।।९।।

श्रीकृष्ण कहते हैं--हे देवी! आप सबकी जननी तथा मूल प्रकृति ईश्वरी हैं। आप सृष्टि विधान में आद्या हैं तथा स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका होती हैं। सृष्टि तथा जगत् कार्य हेतु आप सगुणा हो जाती हैं, तथापि आप स्वयं निर्गुणा हैं। आप परब्रह्मस्वरूपिणी, सत्या, नित्या, सनातनी भी हैं।।८-९।।

तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा। सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा।।१०।।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया। सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला।।११।।
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी।।१२।।

आप तेजरूपा, सर्वश्रेष्ठ परमा, भक्तों पर अनुग्रहार्थ देहरूपी विग्रह धारण करने वाली, सर्वस्वरूपा, सर्वेशा, सर्वाधारा, परात्परा हैं। आप सर्वबीजरूपा, सर्वपूज्या, निराश्रया, सर्वज्ञा, सर्वतोभद्ररूपा, सर्वमंगलमंगला, सर्वबुद्धिरूपा, सर्वशक्तिरूपा, सर्वज्ञानप्रदा हैं। हे देवी! आप सर्वज्ञा तथा सर्वभाविनी भी हैं।।१०-१२।।

त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम्।
दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी।।१३।।

---

१. क. ०त्याऽऽनन्दस्वरूपिणी।

निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चाऽऽत्मनः प्रिया।
क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिस्तुष्टिश्च शाश्वती॥१४॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा प्रभा तथा।
सतां संपत्स्वरूपा श्रीर्विपत्तिरसतामिह॥१५॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा।
शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम्॥१६॥
देवेभ्यः स्वपदं दात्री धातुर्धात्री कृपामयी। हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी॥१७॥

आप देवगण को आहुति प्रदान कार्य में स्वाहा हैं, पितृगण को प्रदान करते समय आप ही स्वधा हैं। आप समस्त दानों के समय दक्षिणा तथा सर्वशक्तिस्वरूप हैं। आप निद्रा, दया, तृष्णा तथा आत्मप्रिया हैं। आप ही क्षुधा की शान्तिरूपा, ईश्वरी, सर्वशान्तिमयी, कान्तिमयी, शाश्वती तथा तुष्टिरूपा हैं। आप ही श्रद्धा, पुष्टि, तन्द्रा, लज्जा, शोभा, प्रभा, सत्पुरुषों की सम्पत्तिरूपा श्री हैं तथा आप ही असत् लोगों हेतु विपत्तिरूपा हो। आप पुण्यवान् लोगों में प्रीतिरूप से तथा पापीगण में कलह रूप से विद्यमान रहती हैं। आप सतत् कर्ममयी शक्ति के रूप से सभी प्राणीगण में स्थित हैं। आप देवगण को उनका पद प्रदान करती हैं। आप विधाता की कृपामयी धात्री तथा सभी देवगण का हित करने वाली, सभी असुरों का विनाश करने वाली हैं॥१३-१७॥

योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम्।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी॥१८॥
माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी। भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयङ्करी॥१९॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे। सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा॥२०॥

आप योगीगण की योगनिद्रा हैं। आप योगरूपिणी, योगीगण के लिये योगप्रदा हैं। आप सिद्धों के लिये सिद्धिस्वरूपा हैं। आप सिद्धिदात्री तथा सिद्धयोगिनी भी हैं। आप माहेश्वरी, ब्रह्माणी, विष्णुमाया, वैष्णवी, शुभदा, भद्रकाली तथा समस्त लोकों के लिये भयंकरा (संहार काल में) हैं। आप ग्रामों में ग्रामदेवी, गृहों में गृहदेवी, सज्जनों की कीर्त्ति-प्रतिष्ठारूपा हैं। जो असज्जन हैं, उनके लिये आप निन्दारूपिणी हैं॥१८-२०॥

महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी। रक्षास्वरूपा शिष्टानां[१] मातेव हितकारिणी॥२१॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा।
ब्रह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम्॥२२॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्।
मेधा स्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम्॥२३॥

१. क. शिष्या।

आप महायुद्ध में महामारीरूपा, दुष्टसंहारिणी हैं। आप शिष्टजन की रक्षिणी तथा माता के समान हित करने वाली हैं। सर्वदा आप ब्रह्मादि की वन्द्या (जिनकी वन्दना की जाये), पूज्या तथा स्तुता हैं। आप ब्राह्मणों में ब्रह्मण्यरूपिणी होकर एवं तपस्वियों में तपस्या रूप से स्थित रहती हैं। आप विद्वानों में विद्या तथा सत् बुद्धि वालों में बुद्धिरूप से अवस्थान करती हैं। आप प्रतिभावानों की प्रतिभारूपा हैं। आप मेधावी लोगों की स्मृतिरूपा हैं।।।२१-२३।।

राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी।
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने॥२४॥
तथाऽन्ते त्वं महामारी विश्वे विश्वैश्च पूजिते। कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी॥२५॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया संमोहितं जगत्।
यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति॥२६॥

आप राजाओं की प्रतापरूपिणी, व्यवसाईयों का व्यापार, सृष्टिकार्य में सृष्टिरूपिणी, पालन कार्य में रक्षारूपा हैं। आप ही सर्वान्त में महामारीरूपा हैं। आप विश्व समूह में प्रत्येक विश्व के निवासी लोगों द्वारा पूजिता हैं। आप कालरात्रि, महारात्रि हैं तथा मोहरात्रि रूप से सबका मोहन करती हैं। आपकी माया तो ऐसी है, जिसे कोई पार नहीं कर सकता। इस माया से आप समस्त जगत् को सम्मोहित किये रहती हैं। इससे मुग्ध होकर विद्वान् भी मोक्षमार्ग नहीं देख पाते।।२४-२६।।

इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गाया [1]दुर्गनाशनम्।
पूजाकाले पठेद्यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता॥२७॥
वन्ध्या च काकबन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा।
श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम्॥२८॥
कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्॥२९॥

जो इस प्रभु कृष्ण द्वारा निर्मित दुर्गा स्तोत्र दुर्गा की पूजा करते समय पाठ करेगा, उसे वांछित सिद्धिलाभ होगा। वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा, दुर्भाग्यशालिनी भी इसे वर्ष पर्यन्त सुन कर निश्चित रूप से उत्तम सन्तान लाभ कर लेती हैं। यह निश्चित है। महाघोर कारागार में दृढ़ बन्धनबद्ध होने पर, यह स्तोत्र श्रवण करने वाला एक मास में ही निश्चित रूप से बन्धन रहित हो जाता है।।२७-२९।।

यक्ष्मग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी।
श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात्प्रमुच्यते॥३०॥
पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्र संशयः॥३१॥

यक्ष्माग्रस्त, गलित कुष्ठी, महान् शूल (पीड़ा) ग्रस्त, महान् ज्वरग्रस्त यह स्तोत्र वर्ष पर्यन्त

१. क. स्वर्गकारणम्।

सुनने से रोग रहित हो जायेगा। जब कभी पुत्र-प्रजा तथा पत्नी से विरोध हो, तब मास पर्यन्त यह स्तोत्र श्रवण करे। वह विरोध निश्चित रूप से नष्ट होगा। इसमें संशय नहीं है।।३०-३१।।

राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले। हिंस्त्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते॥३२॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते[१]। स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः॥३३॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः। विद्याबान्धनवांश्चैव स भवेन्नात्र संशयः॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गास्तोत्रं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः।।६६।।

राजद्वार, श्मशान, महान् वन, युद्धभूमि, हिंस्त्र जन्तु के पास यह स्तोत्र पढ़ कर व्यक्ति संकट रहित होगा। गृहदाह होने पर दावाग्नि के समय, दस्यु-चोरों के सैन्य से आक्रान्त होने पर स्तोत्र श्रवण मात्र से व्यक्ति संकट मुक्त होगा। यह निश्चित है। महादरिद्र तथा मूर्ख भी यदि एक वर्ष यह स्तोत्रपाठ करेगा, वह विद्या, बन्धुयुक्त होगा। इसमें संशय न करे।।३२-३४।।

।।षट्षष्टितम अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्माण्ड मोहन कवच वर्णन

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद। ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे सर्वधर्मज्ञ भगवान्! आप सर्वज्ञान विशारद हैं। कृपया प्रकृति देवी का यह ब्रह्माण्डमोहन कवच कहिये।।१।।

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं च सुदुर्लभाम्। श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा॥२॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं धर्माय जाह्नवीतटे। धर्मेण दत्तं मह्यं च कृपया पुष्करे पुरा॥३॥
त्रिपुरारिश्च यद्धृत्वा जघान त्रिपुरं पुरा। मुमोच धाता यद्धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम्॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे वत्स! श्रवण करो। मैं यह दुर्लभ कवच कहता हूं। पूर्वकाल में

१. दस्युशत्रु इति पाठान्तरम्।

इसे कृष्ण ने ब्रह्मा से कहा था। तदनन्तर जाह्नवी तट पर इसे ब्रह्मा ने धर्म से कहा था। तब इसे कृपा पूर्वक धर्म ने पुष्कर में मुझे प्रदान किया था। इसी कवच को धारण करके त्रिपुरारि शिव ने पूर्वकाल में त्रिपुरवध किया था। इसे धारण करके ही विधाता ब्रह्मा पूर्वकाल में मधु-कैटभ के भय से मुक्त हो गये।।२-४।।

जघान रक्तबीजं तं यद्धृत्वा भद्रकालिका।
यद्धृत्वा तु महेन्द्रश्च संप्राप कमलालयाम्।।५।।
यद्धृत्वा च महाकालश्चिरजीवी च धार्मिकः।
यद्धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम्।।६।।
यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः[1] शत्रुभयङ्करः।
यद्धृत्वा शिवतुल्यश्च दुर्वासा ज्ञानिनां वरः।।७।।

भद्रकाली ने इसे धारण करके रक्तबीज का वध किया था तथा इसे ही धारण करके महेन्द्र ने स्वर्गलक्ष्मी की प्राप्ति किया था। इसे धारण करके महाकाल चिरजीवी तथा धार्मिक हो गये तथा महाज्ञानी नन्दी आनन्द पूर्वक ज्ञानलाभ कर सके। इसे धारण करने वाले परशुराम महायोद्धा तथा शत्रुपक्ष हेतु महाभयंकर हो गये। इसे धारण करके दुर्वासा शिवतुल्य तथा ज्ञानीगण में प्रधान हो गये।।५-७।।

ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तः स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु।
मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः।।८।।
विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणेऽस्य मनोर्मुने। मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः।।९।।
मम वक्त्रं सदा पातु ओं दुर्गायै नमोन्ततः। ॐ दुर्गे रक्षयति च कण्ठं पातु सदा मम।।१०।।
ॐ ह्रीं श्रीमिति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लींमिति[2] पृष्ठं पातु मे सर्वतः सदा।।११।।
ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम्।
[3]ॐ श्रीं ह्रीं[4] क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा।।१२।।

कवच–"ॐ दुर्गायै स्वाहा" यह षडक्षर मन्त्र भक्तगण हेतु कल्पवृक्ष है। यह षडक्षर मन्त्र मेरे शिर की रक्षा करें। हे मुनि! इस मन्त्रग्रहण के विषय में वेद में विचार इसलिये नहीं किया गया है, क्योंकि इस मन्त्र के ग्रहण करते ही मनुष्य साक्षात् विष्णु के समान हो जाता है। "ॐ दुर्गायै नमः" मेरे

१. क. बाणः।
२. श्रीं श्रीं क्लीं इति पाठान्तरम्।
३. क. ऐं।
४. ऐं ह्रीं श्रीं इति क्वचित् पठ्यते। यहां अन्य गुरु परम्परा वाले "श्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं" भी कहते हैं।

मुख की सदा रक्षा करें। "ॐ दुर्गे" मेरे कण्ठ की, "ॐ ह्रीं श्रीं" मेरे कन्धे की, "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं" मेरे पृष्ठभाग की, "ह्रीं" मेरे वक्षःस्थल की, "श्रीं" बाहु की सदा रक्षा करें। "ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं" स्वप्नावस्था तथा जागरणावस्था में सर्वांग की सदा रक्षा करें।।८-१२।।

प्राच्यां मां प्रकृतिः पातुः पातु वह्नौ च चण्डिका।
दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋत्यां च महेश्वरी॥१३॥
वारुण्यां पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला। उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया॥१४॥
जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका।
इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम्॥१५॥

"पूर्व में प्रकृति, अग्निकोण में चण्डिका, दक्षिण में भद्रकाली, नैर्ऋत्य में माहेश्वरी, पश्चिम में वाराही, वायव्य कोण में सर्वमंगला, उत्तर में वैष्णवी, ईशान में शिवप्रिया, जल-स्थल-अन्तरिक्ष में जगदम्बा रक्षा करें।" हे वत्स! मैंने यह अतीव दुर्लभ कवच तुमसे कहा।।१३-१५।।

यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्।
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः॥१६॥
कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः।
स्नाने च सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे॥१७॥
यत्फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणान्मुने। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद्ध्रुवम्॥१८॥
लोके च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे।
न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विषे ज्वरे॥१९॥
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरेश्वरः।
यदि स्यासिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥२०॥

इसे जिस-किसी को न तो देना चाहिए तथा कहना भी नहीं चाहिए। गुरु की पूजा वस्त्र-अलंकारादि देकर इसे धारण करने वाला साक्षात् विष्णु हो जाता है। यह संशय रहित है। सभी तीर्थ में स्नान, पृथिवी प्रदक्षिणा द्वारा जो लाभ होता है, वह फल इस कवच को धारण करने मात्र से मिल जाता है। यह कवच ५ लाख जप द्वारा निश्चय सिद्ध होता है। जो इसे सिद्ध करता है, उसका संकट काल में अस्त्र भी भेदन नहीं कर सकते। उसकी मृत्यु जल-अग्नि-विष तथा ज्वर से भी नहीं होती। वह जीवन्मुक्त तथा सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। जिसने भी यह कवच सिद्ध कर लिया, वह तो साक्षात् विष्णुतुल्य है।।१६-२०।।

कथितं प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डात्परं मुने। या चैव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्रो गणेश्वरः॥२१॥
कृत्वा कृष्णव्रतं सा च लेभे गणपतिं सुतम्।
स्वांशेन कृष्णो भगवान्बभूव च गणेश्वरः॥२२॥

हे मुनिवर! मैंने यह सुधाखण्ड से भी अत्युत्तम प्रकृति खण्ड कहा। मूलप्रकृति के ही पुत्र गणपति हैं। उन मूलप्रकृति (दुर्गा) ने भगवान् कृष्ण का यह व्रत पहले सम्पन्न करके ही गणपति को पुत्ररूप में प्राप्त किया। ये गणेश कृष्ण के ही अंश से उत्पन्न गणेश्वर हैं।।२१-२२।।

श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्राव्यं च सुधोपमम्।
भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम्॥२३॥

सवत्सां सूरभिं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्। वासोऽलङ्काररत्नैश्च तोषयेद्वाचकं मुने॥२४॥
पुष्पालङ्कारवसनैरुपहारगणैस्तथा। पुस्तकं पूजयेदेवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः॥२५॥

जब श्रोता सम्यक्तः श्रवण योग्य, अमृतवत् मधुर प्रकृति खण्ड का श्रवण कर ले, तब वह ब्राह्मण को दधि-अन्न का भोजन कराये। स्वर्ण दक्षिणा प्रदान करे। भक्तिभाव से सवत्सा गौ प्रदान करे। हे मुनिवर! वस्त्र-रत्न-अलंकार से श्रोता सदा वक्ता को प्रसन्न करके उनको पुष्प, अलंकार, वस्त्र, उपहार दान करके भक्ति पूर्वक रत्नादि से तृप्त करे। सुन्दर वतसयुक्त दुग्धवती गौ भी उसे भक्ति पूर्वक प्रदान करे। साथ ही भक्ति-श्रद्धायुक्त होकर पुस्तक की पूजा करनी चाहिए।।२३-२५।।

एवं कृत्वा यः शृणोति तस्य विष्णुः प्रसीदति।
वर्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः॥२६॥
लक्ष्मीर्वसति तद्गेहे ह्यन्ते गोलोकमाप्नुयात्।
लभेत्कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम्॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ब्रह्माण्डमोहनकवचं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

समाप्तमिदं श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्।।

ऐसे विधि पूर्वक जो प्रकृतिखण्ड श्रवण करता है, उस पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। उसके पुत्र-पौत्रादि बढ़ते हैं। वह विष्णु की कृपा से यशस्वी हो जाता है। उसके गृह में सदा लक्ष्मी का निवास रहेगा। अन्त में वह गोलोक जाकर कृष्ण का दास्य तथा भक्तिलाभ करेगा। यह निश्चित है।।२६-२७।।

।।सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त।।

।।ब्रह्मवैवर्त पुराण का द्वितीय खण्ड प्रकृतिखण्ड समाप्त।।

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र तृतीयं गणपतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

पार्वती जन्म, हर-पार्वती का संभोग-भंग, कार्तिकेय का जन्म

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

नरोत्तम नर तथा नारायण को नमस्कार करके देवी सरस्वती तथा व्यास को प्रणाम करके यह जय (पुराण) कहता हूं।।१।।

नारद उवाच

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम्। सर्वोत्कृष्टमभीष्टं च मूढानां ज्ञानवर्धनम्॥२॥
अधुना[1] श्रीगणेशस्य खण्डं श्रोतुमिहाऽऽगतः। तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥३॥
कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे। देवी केन प्रकारेण चालभत्तादृशं सुतम्॥४॥
स चांशः कस्य देवस्य कथं जन्म ललाभ सः।
अयोनिसंभवः किंवा किंवाऽसौ योनिसंभवः॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं–इससे पहले मैंने आपसे प्रकृत खण्ड सुना जो अमृत सागर के समान श्रेष्ठ है। यह सर्वोत्कृष्ट, अभीष्ट तथा मूढ़ों का ज्ञान बढ़ाने वाला है। अब मैं श्रीगणेश का खण्ड सुनना चाहता हूं। उनका जन्म चरित्र मनुष्यगण के लिये समस्त मंगल का भी मंगल करने वाला है। ये सुरश्रेष्ठ गणेश पार्वती के शुभ उदर से कैसे उत्पन्न हो गये? देवी ने किस प्रकार से ऐसा पुत्र प्राप्त किया था? वे किस देवता के अंश हैं? उन्होंने किस प्रकार जन्मलाभ किया, अर्थात् क्या वे अयोनिज थे अथवा योनि से उनका जन्म हुआ था?।।२-५।।

किंवा तद्ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः।
का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः॥६॥
कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु च। स्थिते नारायणे शंभौ जगदीशे च धातरि॥७॥

---

१. क. ०ना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं खण्डमीश्वर। त०।

पुराणेषु निगूढं च तज्जन्म परिकीर्तितम्। कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः॥८॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम। सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम्॥९॥

इन गणपति का ब्रह्मतेज, पराक्रम, तप, निर्मल यश, ज्ञान किस प्रकार का है? नारायण, शंभु, जगदीश्वर विधाता के रहते उनकी अग्रपूजा समस्त विश्व में क्यों की जाती है? उनका जन्म पुराणों में अत्यन्त गूढ़तत्त्वमय कहा गया है? वे महोदर, एकदन्त तथा गजमुख कब हो गये? मुझे यह सब सुनने का अत्यन्त कुतूहल है। हे महाभाग! कृपया विस्तार से यह मनोहर चरित कहिये॥६-९॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम्॥१०॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! मैं परम तथा अद्भुत रहस्य वर्णन करता हूं। यह प्रसंग पाप-सन्ताप हरण करने वाला तथा सर्वविघ्न नाशक है॥१०॥

सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम्। सुखदं मोक्षबीजं च [1]पापमूलनिकृन्तनम्॥११॥
दैन्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा। देवी संहृत्य दैत्यौघान्दक्षकन्या बभूव ह॥१२॥
सा च नाम्ना सती देवी स्वामिनो निन्दया पुरा।
देहं संत्यज्य योगेन जाता शैलप्रियोदरे॥१३॥

यह प्रसंग समस्त मंगल का सार तथा सभी के लिये सुनने में मनोहर, सुखद, मोक्ष का बीज तथा पापरूपी वृक्ष की जड़ को काटने वाला कुठार है। दैत्यों द्वारा मर्दित देवों की तेजराशि से समुद्भूता देवी ने दैत्यों का संहार किया तथा वे दक्षकन्या के रूप में आविर्भूत हो गईं। उन सती नामक देवी ने अपने पति की निन्दा जब सुना, उन्होंने योग द्वारा देहत्याग किया तथा शैलपत्नी मेना के गर्भ से उत्पन्न हो गईं॥११-१३॥

शङ्कराय ददौ तां च पार्वतीं पर्वतो मुदा। तां गृहीत्वा महादेवो जगाम विजनं वनम्॥१४॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्। स रेमे नर्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह॥१५॥
सहस्त्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन नारद। तयोर्बभूव शृङ्गारो विपरीतादिको महान्॥१६॥

पर्वत हिमालय ने मुदित होकर उस कन्या पार्वती को शंकर को प्रदान किया। उनको लेकर महादेव निर्जन वन में चले गये। हे नारद! वहां उन्होंने रतिक्रीड़ा हेतु पुष्प-चन्दन चर्चित एक मनोहर शय्या बनाया तथा पार्वती के साथ नर्मदातटस्थ पुष्पोद्यान में पार्वती के साथ रमण किया। देवगण के १००० वर्ष तक (१ दैववर्ष = ३६० मानव वर्ष) तक शिव ने पार्वती के साथ विपरीत आदि अनेक प्रकार की श्रृंगारात्मक रति (रमण) किया॥१४-१६॥

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण मदनान्मूर्च्छितः शिवः।
मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम्॥१७॥

---

१. क. कर्म०।

तब शिव दुर्गा के अंग का स्पर्श होते ही कामवेग से मूर्च्छित हो गये।।१७।।

हंसकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुताकुले। नानापुष्पविकासाढ्ये भ्रमरध्वनिगुञ्जिते॥१८॥
सुगन्धिकुसुमाश्लेषिवायुना सुरभीकृते। अतीव सुखदे रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते॥१९॥

दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तां प्रापुः सुराः पराम्।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम्॥२०॥
तं नत्वा कथयामास ब्रह्मा वृत्तान्तमीप्सितम्।
संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका यथा॥२१॥

जलचर हंस, कारण्डव आदि पक्षियों से पूर्ण, नरकोकिल की कूजन से निनादित, नाना खिले पुष्पों से शोभायमान, भ्रमरमण्डल से सुरंजित सुगन्धि कुसुमों से स्पर्शित वायु द्वारा सुरभित, अत्यन्त शुभदायक सर्व प्रकार के जन्तु रहित (अर्थात् थलचर प्राणी तथा मानवों से रहित) निर्जन रम्य स्थान में हो रहे इन दम्पति के सुरतोत्सव को देख कर देवगण अभूतपूर्व रूप से चिन्तित हो गये। वे ब्रह्मा को आगे करके नारायण के यहां गये। ब्रह्मा ने नारायण को प्रणाम किया तथा अपना इच्छित वृत्तान्त नारायण से कहा। उस समय देवगण निःस्पन्द कठपुतली की तरह वहां खड़े थे।।१८-२१।।

ब्रह्मोवाच

सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन शङ्करः। रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह॥२२॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर। किंभूतं भविताऽपत्यं तन्नः कथितुमर्हसि॥२३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—दिव्य सहस्र वर्ष से शंकर रमणरत हैं। वे योगीराज तनिक नहीं रुक रहे हैं। (अन्य कार्य से) चेष्टा रहित हो गये हैं। हे जगदीश्वर! इन दम्पति का मैथुन से विराम होने पर इनकी सन्तान किस प्रकार की उत्पन्न होगी, कृपा पूर्वक कहिये।।२२-२३।।

श्रीभगवानुवाच

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति।
मयि ये शरणापन्नस्तेषां दुःखं कुतो विधे॥२४॥

येनोपायेन तद्वीर्यं भूमौ पतति निश्चितम्। तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सार्धं देवगणेन च॥२५॥
यदा च शंभोर्वीर्यं तत्पार्वत्या उदरे पतेत्। ततोऽपत्यं च भविता सुरासुरविमर्दकम्॥२६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे विधाता! चिन्ता न करें। सब कुछ शुभ ही होगा। हे विधि! जो मेरी शरण में आते हैं, उनको क्या दुःख? जिस भी उपाय से भगवान् शिव का वीर्य भूमि पर गिरे, देवगण के साथ वही उपाय करें। यदि शम्भुवीर्य किसी प्रकार पार्वती के उदर में पड़ जायेगा, तब देवता तथा राक्षस, दोनों का नाशक पुत्र उत्पन्न हो जायेगा (तब देवता भी नहीं बचेंगे, यह तात्पर्य है)।।२४-२६।।

ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया। प्रययुर्नर्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम्॥२७॥

तत्रैव पर्वतद्रोणीबहिर्देशे सुराः पराः। विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः॥२८॥

यह सुन कर इन्द्रादि सभी देवता नारायण की आज्ञा लेकर नर्मदा तट पर गये तथा ब्रह्मा स्वगृह वापस आ गये। अब सभी देवता भय से कातर हो गये (कहीं पार्वती के उदर में वीर्य गिर कर देवता तथा राक्षसनाशक सन्तान उत्पन्न न हो)। अब वे सभी देवता अत्यन्त खिन्न होकर वहीं पर्वत गुफा के बाहर रुक गये॥२७-२८॥

शक्रः कुबेरमवदत्कुबेरो वरुणं तथा। समीरणं च वरुणो यमं चैव समीरणः॥२९॥
हुताशनं यमश्चैव भास्करं च हुताशनः। चन्द्रं तथा भास्करश्च त्वीशानं चन्द्र एव च॥३०॥
एवं देवाः प्रेरयन्ति देवांश्च रतिभञ्जने। हरशृङ्गारभङ्गं च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम्॥३१॥
द्वारि स्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम्॥३२॥

तब देवराज इन्द्र ने कुबेर से, कुबेर ने वरुण से, वरुण ने वायु से, वायु ने यमराज से, यम ने अग्नि से, अग्नि ने सूर्य से, सूर्य ने चन्द्र से तथा चन्द्रमा ने ईशान से कहा (कि शिव-पार्वती की इस सुरत क्रीड़ा को भंग करो)। इस प्रकार देवता एक-दूसरे से यह कार्य करने को कहने लगे। (तथापि किसी को यह करने का साहस नहीं हो रहा था। तब इन्द्र द्वार पर गये तथा मुंह दूसरी ओर फेर कर (मुंह दूसरी ओर फेरा ताकि रतिक्रीड़ा न दिखाई पड़े) कहा-॥२९-३२॥

इन्द्र उवाच

किं करोषि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते। जगदीश जगद्बीज भक्तानां भयभञ्जन॥३३॥
हरिर्जगामेत्युक्त्वा तमाजगाम च भास्करः। उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्तो वक्रचक्षुषा॥३४॥

इन्द्र कहते हैं-"हे महादेव! योगीश्वर! यह क्या कर रहे हैं? आप जगदीश्वर हैं, आप तो जगद्बीज हैं। आप भक्त के भय का निवारण करने वाले हैं।" यह कहकर इन्द्र वहां से हट गये तथा उनके स्थान पर वहां सूर्यदेव आ गये। वे भी भयग्रस्त होकर दूसरी ओर मुंह फेर कर कहने लगे-॥३३-३४॥

सूर्य उवाच

किं करोषि महादेव जगतां परिपालक। सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तु ते॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः स जगाम भयात्ततः।
आजगाम तथा चन्द्र [1]अवोचद्वक्रकंधरः॥३६॥

सूर्यदेव कहते हैं-"हे महादेव! आप जगत् पालक हैं। हे देवप्रवर! आप यह क्या कर रहे हैं? हे महाभाग! पार्वतीपति आपको प्रणाम!" भयाक्रान्त सूर्य यह कह कर चले गये। तदनन्तर चन्द्रमा ने भी वहां आकर अपने कंधों को अन्य दिशा की ओर घुमा कर कहा-॥३५-३६॥

---

१. क. चन्नतकंधरः।

चन्द्र उवाच

किं करोषि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तु ते।
स्वात्माराम स्वयंपूर्ण पुण्यश्रवणकीर्तन॥३७॥

चन्द्रदेव कहते हैं—हे त्रिलोकेश! त्रिलोचन! आपको प्रणाम! आप तो स्वात्माराम हैं। आपकी कीर्त्ति सुनने से कान पवित्र हो जाते हैं। आप यह क्या कर रहे हैं?॥३७॥

इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः।
समीरणोऽपि द्वारस्थः संवीक्ष्योवाच सादरम्॥३८॥

यह कर निशापति चन्द्र भय के कारण मौन हो गये। तब वायुदेव द्वारस्थ होकर (शिर घुमा कर) कहने लगे—३८॥

पवन उवाच

किं करोषि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते। धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजरूप सनातन॥३९॥

पवनदेव कहते हैं—हे जगद्बन्धु जगन्नाथ! आपको प्रणाम करता हूं! आप धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के सनातन बीज हैं। आप यह क्या कर रहे हैं?॥३९॥

इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः।
त्यक्तुकामो न तत्याज शृङ्गारं पार्वतीभयात्॥४०॥
दृष्ट्वा सुरान्भयार्तांश्च पुनः स्तोतुं समुद्यतान्।
विजहौ सुखसंभोगं कण्ठलग्नां च पार्वतीम्॥४१॥
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रासलज्जायुतस्य च। भूमो पपात तद्वीर्यं ततः स्कन्दो बभूव ह॥४२॥
पश्चात्तां कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम्। स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च साम्प्रतं वाञ्छितं शृणु॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० प्रथमोऽध्यायः॥१॥

योगज्ञान विशारद शंकर ने यह सब स्तुति तो सुना, तथापि वे पार्वती के भय के कारण अपनी श्रृंगार क्रीड़ा (रमणक्रीड़ा) नहीं त्याग सके। तभी देवदेव शिव ने देवगण को पुनः भयग्रस्त होकर स्तुति करते देखा, तब शिव ने पार्वती के साथ वह सुखपूर्ण संभोग त्याग दिया तथा कण्ठ से सटी पार्वती को भी पृथक् कर दिया और त्रास एवं लज्जायुक्त महेश उठे। तभी उनका वीर्य भूपतित हो गया, जिससे स्कन्ददेव उत्पन्न हुए। वह मनोहर कथानक कालान्तर में कहूंगा। सम्प्रति कार्त्तिक जन्म सम्बन्धित वांछित कथा को सुनो॥४०-४३॥

॥प्रथम अध्याय समाप्त॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शंकर से पार्वती का खेद प्रकट करना तथा उनके द्वारा देवगण को शाप देना

नारायण उवाच

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान्। पलायध्वमिति प्राह कृपया पार्वतीभयात्॥१॥
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना। सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता चकम्पे पार्वतीभयात्॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—महादेव ने जब सुरत क्रीड़ा त्याग कर सामने देवगण को खड़े देखा, तब उन्होंने पार्वती से भयभीत होकर तथा देवगण के प्रति दयालु होकर उनसे कहा—"तुम लोग यहां से अभी पलायित हो जाओ।" तदनन्तर पार्वती का शाप मिलेगा, यह सोच कर वहां से देवता तत्काल पलायन कर गये। उस समय ब्रह्माण्ड के संहारक महादेव भी पार्वती के भय से कांप रहे थे।।१-२।।

तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान्।
समुत्थितं कोपवह्निं स्तम्भयामास देहतः॥३॥

अद्यप्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्या भवन्त्विति। शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह॥४॥

तभी देवी दुर्गा (पार्वती) शय्या से उठीं तथा जब देखा कि यहां कोई देवता नहीं है, तब उन्होंने स्वदेह निर्गत क्रोधाग्नि को तत्काल स्तंभित कर दिया, तथापि अत्यन्त रोष में भर कर भगवती ने देवगण को शाप दिया—"आज से समस्त देवतागण का वीर्य निष्फल तथा सन्तानोत्पत्ति शक्ति रहित हो जाये"।।३-४।।

ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम्।
रुदतीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम्॥५॥
शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम्।
हस्ते गृहीत्वा देवेशो वासयामास वक्षसि॥६॥
अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः॥७॥

देवदेव महेश्वर ने जब देवी पार्वती को क्रोध के कारण आरक्तनेत्रा, दुःखिता तथा अवनत-मस्तक होकर रुदन करते तथा पृथिवी पर कुछ अंकित करते देखा, तब देवेश्वर शिव ने देवी का हाथ पकड़ कर उठाया तथा उनको अपने वक्ष से लगा कर अत्यन्त भयभीत अवस्था में मधुर वचन उनसे कहने लगे—५-७।।

शङ्कर उवाच

कथं रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे। मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते॥८॥

किं तेऽभीष्टं करिष्यामि वद मां जगदम्बिके।
ब्रह्माण्डसङ्घे निखिले किमसाध्यमिहाऽऽवयोः॥९॥

अहो निरपराधं मां प्रसन्ना भवसुन्दरि। दैवादज्ञातदोषस्य शान्तिं मे कर्तुमर्हसि॥१०॥

श्री शंकर कहते हैं–हे गिरिराजनन्दिनी! तुम क्रोधित क्यों हो? तुम धन्य हो, मनोहर स्वरूप वाली, मेरे सौभाग्य की मूर्त्तिरूपा तथा मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री हो। हे जगदम्बे! मैं तुम्हारा क्या अभीष्ट साधन करूं? वह कहो। इस समग्र ब्रह्माण्डों में हम दोनों के लिये क्या असम्भव है? हे देवी! सुन्दरी! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। यदि अनजाने में मुझसे कोई त्रुटि अथवा दोष तुम्हारे प्रति हो गया हो, तब तुम्हारे द्वारा क्षमा प्रदान करना ही उचित है!।।८-१०।।

त्वया युक्तः शिवोऽहं च सर्वेषां शिवदायकः। त्वया विना हीश्वरश्च शवतुल्योऽशिवः सदा॥११॥

प्रकृतिस्त्वं च बुद्धिस्त्वं शक्तिस्त्वं च क्षमा दया।
तुष्टिस्त्वं च तथा पुष्टिः शान्तिस्त्वं क्षान्तिरेव च॥१२॥
क्षुत्त्वं छाया तथा निद्रा तन्द्रा श्रद्धा सुरेश्वरि।
सर्वाधारस्वरूपा त्वं सर्वबीजस्वरूपिणी॥१३॥

तुम्हारे संयोग के ही कारण मैं शिव हूं। जगत् का मंगल कर पाता हूं। यद्यपि मैं ईश्वर हूं, तथापि तुम्हारे साथ के बिना मैं सर्वदा शवतुल्य हूं तथा अकल्याण करने वाला हो जाता हूं। हे देवी! तुम ही प्रकृति, बुद्धि, क्षमा, दया हो। तुम ही तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा, श्रद्धा हो। तुम सर्वाधार तथा सबकी बीजरूपा हो। तनिक मुस्कान के साथ सरस वाणी में मुझसे बात करो।।११-१३।।

स्मितपूर्वं वद वचः सांप्रतं सरसं शिवे। त्वत्कोपविषसंदग्धं द्रुतं जीवय मां मृतम्॥१४॥

हे देवी! तुम्हारा जो कोपरूप विष है, उसकी ज्वाला से दग्ध मैं मृत्युतुल्य हो रहा हूं। शीघ्र जीवन प्रदान करो।।१४।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा क्षमायुक्ता च पार्वती। उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता॥१५॥

कोपयुता देवी ने महेश्वर का कथन सुन कर हृदय के दुःख को कुछ क्षण हृदय में ही दबा कर शंकर से मधुर वाणी में क्षमायुक्त होकर कहा–।।१५।।

पार्वत्युवाच

किं त्वाऽहं कथयिष्यामि[१] सर्वज्ञं सर्वरूपिणम्।
स्वात्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहष्ववस्थितम्॥१६॥

१. किन्त्वहं कथयिष्यामेति बहुषु पाठः।

कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत्। सर्वेषां हृदयज्ञं च हृदीष्टं कथयामि किम्॥१७॥
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजननकारणम्। अकथ्यमपि सर्वासां महेश कथयामि ते॥१८॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे प्रभो! आप सर्वज्ञ, सर्वरूप, आत्माराम, पूर्णकाम तथा सभी शरीर में अवस्थित रहते हैं। मैं क्या कह सकती हूं? रमणीगण अज्ञ होती हैं। वह स्वामी से ही मनोवांछित इच्छा प्रकट करती हैं, तथापि जब आप सबके अन्तर के ज्ञाता (अन्तर्यामी), सबके हृदय में निवास करने वाले हैं, तब आपसे क्या कहूं? सभी स्त्रियां अपने लिये लज्जामय बात को अत्यन्त गुप्त रखती हैं! यह प्रसंग स्त्री के लिये कहने योग्य नहीं है, तथापि मैं आपसे अवश्य कहूंगी।।१६-१८।।

सुखेषु मध्ये स्त्रीणां च विभवेषु सुरेश्वर। सत्पुंसा सह संभोगो निर्जनेषु परं सुखम्॥१९॥

तद्भङ्गेन च यद्दुःखं तत्समं नास्ति च स्त्रिया।
कान्तानां कान्तविच्छेदशोकः परमदारुणः॥२०॥
कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने।
तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे॥२१॥

हे देवदेव! सुरेश्वर! स्त्रियों का समस्त सुख तथा विभव है निर्जन स्थान में सत्पुरुष के साथ संभोग। इस संभोग के समाप्त होने के ही पूर्व भंग होने का जो दुःख होता है, स्त्रीगण हेतु उससे बढ़ कर कोई दुःख नहीं है। स्त्रियों को पति विच्छेद का जो दुःख होता है, वह अत्यन्त असह्य है। जिस प्रकार से चन्द्र दिनोंदिन क्षीण होता जाता है, उसी प्रकार पति का विच्छेद होने पर स्त्रीगण क्षण-प्रतिक्षण क्षीण होती जाती हैं।।१९-२१।।

चिन्ता ज्वरश्च सर्वेषा[१]मुपतापश्च वाससाम्।
साध्वीनां कान्तविच्छेदस्तुरगानां च मैथुनम्॥२२॥

रतिभङ्गो दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम्। दुःखातिरेकि दुःखं च तृतीयमनपत्यता॥२३॥

त्रैलोक्यकान्तं कान्तं त्वां लब्ध्वाऽपि न च मे सुतः।
या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम्॥२४॥

जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्। सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः॥२५॥

सुपुत्रः स्वामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः।
कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापाय केवलम्॥२६॥

चिन्ता मनुष्यों का ज्वर है, अर्थात् वह क्षय का कारण है। वस्त्र हेतु धूप क्षय का कारण है। पतिव्रता नारी हेतु पति का वियोग दुःख का कारण है। अश्व के लिये मैथुन कर्म दुःखदायी होता है। मेरा प्रथम दुःख है रतिभंग। गर्भ न होना द्वितीय दुःख है। तीसरा दुःख है सन्तान न होना। स्त्रियों के लिये

१. ज्वरो मनुष्याणामिति कृते तु साधु स्यात्।

कमनीय आप मेरे पति हैं, तथापि आपके द्वारा पुत्रलाभ नहीं हो सका। पुत्रहीना नारी का जन्म निष्फल है। तप तथा दान से जो पुण्यलाभ होता है, वह केवल परलोक में सुखप्रद है। विशुद्ध वंशोत्पन्न पुत्र इहलोक तथा परलोक में सुख का कारण होता है। कुपुत्र तो कुलनाशक कुलांगार (कुल के लिये अग्निरूप) होता है। वह पिता-माता को मनस्ताप देने के लिये जन्म लेता है।।२२-२६।।

स्वामी स्वांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद् ध्रुवम्।
साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी॥२७॥
असाध्वी वैरितुल्या च शश्वत्संतापदायिनी।
मुखदुष्टा योनिदुष्टा चासाध्वीति त्रिधा स्मृता॥२८॥
कमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर। उपायसिन्धो तपसां सर्वेषां च फलप्रद॥२९॥

स्वामी अपनी भार्या के गर्भ में अपने अंशरूपेण जन्म ग्रहण करता है। पतिव्रता रमणी माता के समान होती है। वह सर्वदा हितकारिणी होती है। असाध्वी पत्नी शत्रु के समान सर्वदा दुःखप्रदा होती है। कटुभाषिणी तथा व्यभिचारिणी भार्या को असाध्वी कहा गया है। हे योगीश्वरों के भी ईश्वर! मैं (पुत्रार्थ) क्या उपाय अवलम्बन करूं? आप उपाय के समुद्र हैं, सभी प्रकार के तप के फलदाता हैं!।।२७-२९।।

इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह[१]।
प्रहस्य शङ्करो देवो बोधयामास पार्वतीम्॥३०॥
सत्पुत्रबीजं सुखदं तापनाशनकारणम्। मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

यह कह कर पार्वती ने शिर नत कर लिया। तब शंकर हंसते हुए पार्वती को प्रबोधित करने लगे। तदनन्तर शिव ने सत्पुत्रलाभ प्राप्ति हेतु सुखकर, सन्तापहारी, परिमित, मनोहर और रुचिकर वाक्य कहा-।।३०-३१।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

१. रुरोद ह इति च बहुषु पाठः।

अथ तृतीयोऽध्यायः

पार्वती को महादेव द्वारा पुण्यक व्रत का उपदेश तथा गंगा तट पर हरिमन्त्रदान

महादेव उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति। उपायतः कार्यसिद्धिर्भवत्येव जगत्त्रये॥१॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम्। मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने। व्रतं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि॥३॥

श्रीमहादेव कहते हैं–हे पार्वती! मेरा कथन सुनो। वह तुम्हारे लिये कल्याणप्रद होगा। इस उपाय के अवलम्बन द्वारा तीनों लोक में कार्यसिद्धि होगी। जो मंगलमय उपाय सभी वांछित की सिद्धि हेतु बीजरूप (कारणरूप) तथा मन में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला है, वह कहता हूं। हे वरानने! हरि की आराधना करके व्रत करो। यह व्रत पुण्यक नाम का है। इसे एक वर्ष करना होगा।।१-३।।

महाकठोरबीजं च वाञ्छाकल्पतरुं परम्। सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसौख्यदम्[1]॥४॥

भले ही यह व्रत अत्यन्त कठोर है, तथापि वांछित कामना की प्राप्ति हेतु कल्पवृक्ष के समान सुखदायक, पुण्यप्रद, सबका सार रूप, पुत्रप्रद तथा सर्वसुखप्रद है।।४।।

नदीनां च यथा गङ्गा देवानां च हरिर्यथा। वैष्णवानां यथाऽहं च देवीनां त्वं यथा प्रिये॥५॥
[2]वर्णानां च यथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करं यथा।
पुष्पाणां पारिजातं च पत्राणां तुलसी यथा॥६॥
यथा पुण्यप्रदानां च तिथिरेकादशी स्मृता। रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे॥७॥
मासानां मार्गशीर्षश्चाप्यृतूनां माधवो यथा। संवत्सरो वत्सराणां युगानां च कृतं यथा॥८॥
विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा।
साध्वी पत्नी यथाऽऽप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा॥९॥
यथा धनानां रत्नं च प्रियाणां च यथा पतिः।
यथा पुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पादपः॥१०॥

जिस प्रकार से नदियों में गंगा तथा देवता में श्रीहरि श्रेष्ठ हैं, जैसे मैं वैष्णवों में श्रेष्ठ हूं, वैसे ही हे प्रिये! देवीगण में तुम प्रधान हो। सभी वर्णों में ब्राह्मण, सभी तीर्थों में पुष्कर, पुष्पों में पारिजात, पत्तों में तुलसी, पुण्यप्रदा तिथियों में एकादशी, वारों में रविवार, मासों में मार्गशीर्ष, ऋतुओं में वसन्त, वर्षों

---

१. सर्वसम्पदमिति पाठः क्वाचित्कः।
२. क. आश्रमाणां यथा भिक्षुस्ती०।

में संवत्सर, युगों में कृतयुग, पूज्य में विद्याप्रदाता, गुरुगण में माता, आप्तगण में पत्नी, विश्वस्त में मन, धनों में रत्न, प्रियगण में पति, बन्धुओं में पुत्र, वृक्षों में कल्पवृक्ष श्रेष्ठ माना गया है।।५-१०।।

फलानां वै चूतफलं वर्षाणां भारतं यथा।
वृन्दावनं वनानां च शतरूपा च योषिताम्॥११॥
यथा काशी पुरीणां च सूर्यस्तेजस्विनां यथा।
[1]यथा शशी खगानां च सुन्दराणां च मन्मथः॥१२॥
शास्त्राणां च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा।
हनूमान्वानराणां च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम्॥१३॥
यशोदानां यथा विद्या कविता च मनोहरा।
[2]आकाशो व्यापकानां च ह्यङ्गानां लोचनं यथा॥१४॥
विभवानां हरिकथा सुखानां हरिचिन्तनम्।
स्पर्शानां पुत्रसंस्पर्शो हिंस्राणां च यथा खलः॥१५॥

फलों में आम्रफल, वर्षों में भारतवर्ष, वनों में वृन्दावन, स्त्रियों में शतरूपा, पुरियों में काशी, तेजस्वियों में सूर्य, आकाश गमनकारी में चन्द्र, सुन्दरों में कामदेव, शास्त्रों में वेद, सिद्धों में कपिल मुनि, वानरों में हनुमान, क्षेत्रों में ब्राह्मण का मुख, यशप्रदों में विद्या, मनोहरों में कपिला, व्यापकत्व में आकाश, अंगों में नेत्र, वैभवों में हरिकथा, सुख में हरिचिन्तन, स्पर्श में पुत्रस्पर्श, हिंसकों में खल (दुष्ट) को प्रधान कहा गया है।।११-१५।।

पापानां च यथा मिथ्या पापिनां पुंश्चली यथा।
पुण्यानां च यथा सत्यं तपसां हरिसेवनम्॥१६॥
यथा घृतं च गव्यानां यथा ब्रह्मा तपस्विनाम्।
अमृतं भक्ष्यवस्तूनां सस्यानां धान्यकं यथा॥१७॥
पुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानां च हुताशनः।
सुवर्णं तैजसानां च मिष्टानां प्रियभाषणम्॥१८॥
गरुडः पक्षिणां चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनम्। योगिनां च कुमारश्च देवर्षीणां च नारदः॥१९॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा।
सुकवीनां यथा शुक्रः काव्यानां च पुराणकम्॥२०॥

पापों में झूठ, पापियों में व्यभिचारिणी नारी, पुण्य में सत्य वचन, तपों में हरिसेवा, घृतों में

१. ख. थेयन्दुः सुखदानां च।
२. क. आत्मा कालो व्या०।

गोघृत, तपस्वीगण में ब्रह्मा, भक्ष्य वस्तुओं में अमृत, फसल में धान्य, पुण्यप्रद में जल, शुद्ध में अग्नि, तैजस (धातु) में स्वर्ण, मिठाई में मिष्ट (मधुर) भाषण, पक्षिगण में वैनतेय गरुड़, हस्ति में ऐरावत, योगीगण में सनत्कुमार, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ गन्धर्व, बुद्धिमानों में बृहस्पति, सुकविगण में शुक्र तथा काव्यों में पुराण श्रेष्ठ है।।१९-२०।।

स्रोतस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम्।
लाभानां च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च संपदाम्।।२१।।
पवित्राणां वैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवो यथा।
विष्णुमन्त्रश्च मन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथा।।२२।।
विदुषां च यथा वाणी गायत्री छन्दसां यथा।
यथा कुबेरो यक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा।।२३।।
यथा पिता ते शैलानां गवां च सुरभिर्यथा।
वेदानां सामवेदश्च तृणानां च यथा कुशः।।२४।।
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनो वै शीघ्रगामिनाम्।
अक्षराणामकारश्च यथा तातो हितैषिणाम्।।२५।।
शालग्रामश्च मूर्तीनां पर्शूनां विष्णुपञ्जरः।
चतुष्पदानां पञ्चास्यो मानवो जीविनां यथा।।२६।।
यथा स्वान्तं चेन्द्रियाणां मन्दाग्निश्च रुजां यथा।
बलिनां [1]च यथा शक्तिरहं शक्तिमतां यथा।।२७।।
महान्विराट् च स्थूलानां सूक्ष्माणां परमाणुकः।
यथेन्द्र आदितेयानां दैत्यानां च बलिर्यथा।।२८।।

स्रोतों में समुद्र, क्षमा में पृथिवी, समस्त लाभ में मुक्तिलाभ, समस्त सम्पदा में हरिभक्ति, पवित्र लोगों में वैष्णव, वर्ण में ओंकार, मन्त्रों में विष्णुमन्त्र, यक्षों में कुबेर, सर्पों में वासुकि, पर्वतों में तुम्हारे पिता हिमालय, गौओं में सुरभि गौ, वेदों में सामवेद, तृणों में कुश, सुखों में लक्ष्मी, शीघ्रगामी लोगों में मन, अक्षरों में अकार, हितैषीगण में पिता, मूर्त्तियों में शालग्राम, 'पर्शु' (?) में विष्णुपंजर, आयुधों में सुदर्शन चक्र, चार पैरों वालों में सिंह, जीवों में (प्राणियों में) मनुष्य, इन्द्रियों में अन्तःकरण को श्रेष्ठ कहा गया है। इसी प्रकार रोगों में मन्दाग्नि, शक्तिमानों में मैं महादेव, स्थूलों में महाविराट्, सूक्ष्म में परमाणु, अदितिपुत्रों में इन्द्र, दैत्यों में बलि को प्रधान कहा गया है।।२१-२८।।

यथा दधीचिर्दातॄणां प्रह्लादश्चैव साधुषु।
ब्रह्मास्त्रं च यथाऽऽस्त्राणां चक्राणां च सुदर्शनम्।।२९।।

---

१. बलानाञ्च इति क्वचित् पाठः।

नृणां राजा रामचन्द्रो धन्विनां[१] लक्ष्मणो यथा। सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वबीजं च सर्वदः सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा॥३०॥

जैसे दाताओं में दधीचि, साधुगण में प्रह्लाद, अस्त्रों में ब्रह्मास्त्र, चक्रों में सुदर्शन, मनुष्यों में राजा, धनुर्धारीगण में राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार उपरोक्त जितने भी श्रेष्ठ कहे गये हैं, उन सबका आधार सर्वसेव्य, सबका बीज (कारण), सर्वप्रद, सर्वसार रूप श्रीकृष्ण तत्त्व हैं। इसी प्रकार सभी व्रतों में श्रेष्ठ तथा सभी व्रतों का आधार यह पुण्यक व्रत है।।२९-३०।।

व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सर्वश्रेष्ठश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति॥३१॥

व्रताराध्यश्च वै कृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः।
जनो यत्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह॥३२॥
हरिमन्त्रं गृहीत्वा च हरिसेवां करोति यः।
भारते जन्म सफलं स्वात्मनः स करोति च॥३३॥

हे महाभाग! तुम त्रैलोक्य दुर्लभ यह व्रत करो। इस व्रत के प्रभाव से सर्वश्रेष्ठ पुत्रलाभ होगा। इस व्रत के आराध्यदेव सबको सभी वांछित को प्रदान करने वाले कृष्ण हैं। व्यक्ति इनकी सेवा करके अपनी करोड़ों पीढ़ी सहित मुक्त हो जाता है। जो भारत में जन्म लेकर हरिमन्त्र पाकर हरिसेवा करता है, उसने तो अपना जन्म सफल कर लिया।।३१-३३।।

उद्धृत्य कोटिपुरुषान्वैकुण्ठं याति निश्चितम्।
श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखं तत्रैव मोदते॥३४॥
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वबन्धून्सहचारिणः।
स्वस्त्रियश्च समुद्धृत्य भक्तो याति हरेः पदम्॥३५॥

वह अपनी कोटि पीढ़ी का उद्धार करके निश्चित रूप से वैकुण्ठ गमन करता है। वह वहां श्रीकृष्ण का पार्षद होकर सुखी तथा मुदित हो जाता है। वह भक्त अपने सहोदर भ्राताओं, भृत्यों, बन्धुगण तथा सहचारियों तथा अपनी स्त्रियों का उद्धार करके हरिपद लाभ करता है।।३४-३५।।

तस्माद्गृहाण गिरजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। जप मन्त्रं व्रते तत्र पितृणां मुक्तिकारणम्॥३६॥

हे गिरिजे! तुम यह दुर्लभ मन्त्र ग्रहण करके इसका जप व्रतकाल में करो।।३६।।

इत्युक्त्वा शङ्करो देवो गत्वा गिरिजया सह। शीघ्रं च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम्॥३७॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम्। पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुने॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० तृतीयोऽध्यायः।।३।।

---

१. नृणानां रामचन्द्रश्च वीराणामिति वा पाठः।

हे मुनि! यह कह कर शंकर ने गिरिजा को नदी तट पर ले जाकर उनको कृष्ण का मनोहर मन्त्र प्रदान किया। हे मुनिवर! तदनन्तर शिव ने भगवती को कवच, स्तोत्र तथा पूजाविधान एवं व्रतनियम भी कहा।।३७-३८।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

पुण्यक व्रत विधान का वर्णन

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। सर्वं व्रतविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे।।१।।

श्री नारायण मुनि कहते हैं—देवी पार्वती इस व्रत का वर्णन सुन कर अत्यन्त आह्लादित हो गईं। उन्होंने व्रत का समस्त नियम पूछते हुए कहा—।।१।।

पार्वत्युवाच

सर्वं व्रतविधानं मां वद वेदविदां वर। हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो परात्पर।।२।।

कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च।
समयं नियमं भक्ष्यं विधानं तत्फलं प्रभो।।३।।

देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तं सत्पुरोहितम्। पुष्पोपहारान्विप्रांश्च द्रव्याहरणकिङ्करान्।।४।।

अन्यानि चोपयुक्तानि मयाऽज्ञातानि यानि च।
संनियोजय तत्सर्वं स्त्रीणां स्वामी च सर्वदः।।५।।

देवी पार्वती कहती हैं—हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! हे नाथ! करुणासागर! परात्पर! दीनबन्धु! आप सभी व्रतविधान मुझसे कहिये। हे प्रभो! इस व्रत के लिये कौन-सा फल तथा द्रव्य विहित है? व्रत का काल, नियम, आहार, अनुष्ठान पद्धति तथा व्रत का फल मुझसे कहिये। हे देव! मैं विनीत भाव से आपसे प्रार्थना कर रही हूं। मुझे एक उत्तम पुरोहित, पुष्प चयन करने वाले ब्राह्मण तथा व्रत के द्रव्यों के ले आने वाला भृत्य नियुक्त कर दीजिये और भी जो विषय मुझे ज्ञात नहीं है, उन सबका भी आप आयोजन कर दीजिये। स्वामी ही स्त्रियों का सर्वतोभावेन स्वामी होता है। वह नारी के लिये सर्वप्रद है।।२-५।।

पिता कौमारकाले च सदा पालनकारकः।
भर्ता मध्ये सुतः शेषे त्रिधाऽवस्था सुयोषिताम्।।६।।

तातोऽशोकः प्राणतुल्यां दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम्।
स्वामी निवृत्तिमाप्नोति संन्यस्य स्वसुते प्रियाम्॥७॥
बन्धुत्रययुता या स्त्री सा च भाग्यवती परा।
किञ्चिद्विहीना मध्या च सर्वहीनाऽधमा भुवि॥८॥
एतेषां च समीपस्था प्रशंस्या सा जगत्त्रये।
निन्दिताऽन्येषु संन्यस्ता सर्वमेवच्छ्रुतौ श्रुतम्॥९॥

नारी की तीन अवस्था होती है। कुमारावस्था में उसका पालन पिता करते हैं। मध्यायु (युवावस्था) में उसका समस्त कार्य पति करता है। वृद्धावस्था में उसका पालन पुत्र करता है। यह उत्तम नारी की तीन अवस्था कही गई है। पिता अपनी प्राणतुल्य कन्या को उसके सत् स्वामी को सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है। पति अपनी प्रिया को पुत्र को सौंप कर परम सुखी हो जाता है। जो नारी यथाक्रमेण पूर्वोक्त बन्धुत्रय द्वारा पालित होती है, वही पूर्णतः भाग्यशाली होती है। इस स्थिति में जो कुछ ही हीन है, उसे मध्यमा भाग्यवती कहा गया है। जिसे इन तीनों बन्धुगण का अभाव है, वह अधमा (भाग्यहीना) कही गई है। अपने इन बन्धुत्रय के पास (पिता, पति, पुत्र) क्रमशः रहने वाली त्रैलोक्य में प्रशंसित होती है। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य के आश्रय में रहने वाली को श्रुति में निन्दिता कहते हैं॥६-९॥

सर्वात्मा भगवांस्त्वं च सर्वसाक्षी च सर्ववित्।
देहि मह्यं पुत्रवरं स्वात्मनिर्वृतिहेतुकम्॥१०॥
स्वात्मबोधानुमानेन महात्मनि निवेदितम्।
सर्वान्तराभिप्रायज्ञं[1] भवन्तं बोधयामि किम्॥११॥

आप सर्वात्मा, भगवान्, सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ हैं। आप मुझे स्वसुखार्थ पुत्र हेतु वर दीजिये। मैंने अपने बोध तथा अनुमान के आधार पर आप महात्मा से अपनी कामना निवेदित कर दिया। आप सबकी अन्तरात्मा के अभिप्राय के ज्ञाता हैं। आपसे मैं क्या कह सकती हूं?॥१०-१२॥

इत्युक्त्वा पार्वती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे। कृपासिन्धुश्च भगवान्प्रवक्तुमुपचक्रमे॥१२॥

यह कह कर पार्वती अत्यन्त प्रेमभाव से पति के चरणकमल पर गिर पड़ीं। तदनन्तर कृपानिधि शिव कहने लगे-॥१२॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम्।
फलानि चैव द्रव्याणि व्रतयोग्यानि यानि च॥१३॥

---

१. ख. ज्ञं बोधज्ञं वो०।

विप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम्। किङ्कराणां च शतकं द्रव्याहरणकारकम्॥१४॥
दासीनां शतकं लक्षं नियुक्तं च पुरोहितम्। सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम्॥१५॥
प्रवरं हरिभक्तानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम्। सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे॥१६॥

श्री महादेव कहते हैं—मैं इस व्रतानुष्ठान की पद्धति, नियम, फल, उसके लिये उपयोगी द्रव्य तथा इस व्रत का फल कहता हूं। श्रवण करो! इस व्रत के लिये पुष्प-फल चयन करने के लिये १०० ब्राह्मण, द्रव्य ले आने के लिये १०० भृत्य तथा १ शतलक्ष दासी, वेद-वेदांग-पारंगत, समस्त व्रतानुष्ठान में निपुण, हरिभक्तों में अग्रगण्य, सर्वज्ञ, ज्ञानी प्रवर तथा सर्वांश में मेरे ही समान सनत्कुमार को पुरोहित के रूप में नियुक्त करो।।१३-१६।।

देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम्।
माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये॥१७॥
गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम्।
उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं संशोध्य यत्नतः॥१८॥

अरुणोदयवेलायां तल्पादुत्थाय सुव्रती। मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वा वै निर्मले जले॥१९॥

हे प्रिये! देवी! यह व्रत शुद्धकाल में नियम के साथ करे। यह व्रतारंभ माघमासीय शुक्ला त्रयोदशी के दिन नियमतः करे। यह अत्यन्त शुभप्रद है। इससे पहले दिन में मस्तक का केश संस्कार करके सर्वांग स्नानादि से निर्मल करे। वह उपवासी रहे तथा यत्नतः वस्त्र धोकर रक्खे। जो व्रती इस व्रतानुष्ठान के प्रति श्रद्धावान् है, वह व्यक्ति अगले दिन अरुणोदय बेला में शय्या से उठ कर मुख प्रक्षालन करे तथा निर्मल जल से स्नान करे।।१७-१९।।

आचम्य यत्नपूतो[1] हि हरिस्मरणपूर्वकम्।
दत्त्वाऽर्घ्यं हरये भक्त्या गृहमागत्य सत्वरम्॥२०॥
धौते च वाससी धृत्वा ह्युपविश्याऽऽसने[2] शुचौ।
आचम्य तिलकं धृत्वा समाप्य स्वाह्निकं पुनः॥२१॥

घटं संस्थाप्य विधिवत्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। पुरोहितस्य वरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः॥२२॥
सङ्कल्प्य वेदविहितं व्रतमेतत्समाचरेत्[3]। व्रते द्रव्याणि नित्यानि चोपचारास्तु षोडश।
देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने॥२३॥

हे देवेशी! तत्पश्चात् वह हरिस्मरण करके यत्नतः पवित्र होकर आचमन करे। तदनन्तर वह व्यक्ति भक्ति पूर्वक अर्घ्य प्रदान करके शीघ्रता से स्वगृह आये। तदनन्तर दो धुला वस्त्र पहन कर पवित्र

१. यत्नपूतः इति क्वचित् पाठः।
२. क. ०ने कुशे।
३. समारभेदिति पाठान्तरम्।

आसन पर वह आसनासीन हो जाये। वह आचमन करे, चन्दन, तिलक लगाये तथा नित्यकर्म सम्पन्न करे। प्रथमतः पुरोहित का वरण करके स्वस्तिवाचन, घटस्थापन एवं संकल्प करके वेदोक्त व्रतानुष्ठान करे। व्रत के द्रव्यों को नित्य १६ उपचारों युक्त परमात्मा कृष्ण को प्रदान करें।।२०-२३।।

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
स्नानीयं मधुपर्कं च वस्त्राण्याभरणानि च॥२४॥
सुगन्धिपुष्पधूपं च दीपनैवेदचन्दनम्। यज्ञसूत्रं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम्॥२५॥
द्रव्याण्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि।
देवि किञ्चिद्विहीनेन चाङ्गहानिः प्रजायते॥२६॥

आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, मधुपर्क, वस्त्राभरण, सुगन्धित पुष्प, दीप, नैवेद्य, चंदन, यज्ञसूत्र, कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल, ये सब द्रव्य पूजा के अंगरूप हैं। हे सुन्दरी! देवी! इनमें से कोई द्रव्य न हो, तब पूजा अंगहीन हो जाती है।।२४-२६।।

अङ्गहीनं च यत्कर्म चाङ्गहीनो यथा नरः। अङ्गहीने च कार्ये च फलहानिः प्रजायते॥२७॥
अष्टोत्तरशतं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे। देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे॥२८॥
श्वेतचम्पकपुष्पाणां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या वर्णसौन्दर्यहेतवे॥२९॥
सहस्रपद्मानामक्षतं लक्षकं तथा। भक्त्या देयं च हरये मुखसौन्दर्यहेतवे॥३०॥

अंगहीन कर्म तो अंगहीन मनुष्य के समान कहा गया है। अंगहीन कार्य करने से फलहानि होती है। हे दुर्गे! प्रतिदिन १०८ पारिजात पुष्प विष्णु को तुम अपने रूप लाभ के लिये प्रदान करना। श्वेत अक्षत, चम्पक पुष्प एक लक्ष भक्तिभावेन भगवान् विष्णु को अर्पित करो। यह हरि को परम भक्ति के साथ अपने वर्ण तथा सौन्दर्य के लिये अर्पित करो। अक्षत, कमल पुष्प एक लाख हरि को भक्ति के साथ अपने मुखसौन्दर्य हेतु प्रदान करो।।२७-३०।।

अमूल्यरत्नरचितं दर्पणानां सहस्रकम्। देयं नारायणायैव [१]नेत्रयोर्दीप्तिहेतवे॥३१॥
नीलोत्पलानां लक्षं च देयं कृष्णाय भक्तितः। व्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे॥३२॥
हिमालयोद्भवं लक्षं रुचिरं श्वेतचामरम्। प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्यहेतवे॥३३॥
अमूल्यरत्नरचितं पुटकानां सहस्रकम्। प्रदेयं गोपिकेशाय नासासौन्दर्यहेतवे॥३४॥
बन्धूकपुष्पलक्षं च देयं राधेश्वराय च। [२]सौम्यौष्ठाधरयोश्चैवं [३]वर्णसौन्दर्यहेतवे॥३५॥
मुक्ताफलानां लक्षं च दन्तसौन्दर्यहेतवे। देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम्॥३६॥

व्रतीनारी एक सहस्र अमूल्य रत्न जड़े दर्पण नारायण को अपनी नेत्रदीप्ति हेतु प्रदान करे। हे

१. क. ०व भालसौन्दर्यहे०।
२. क. स्पष्टौष्ठा०।
३. क. बहुसो०।

देवेशी! कृष्ण को भक्ति के साथ एक लाख नीलकमल देना चाहिए। इससे नेत्र का रूप सुन्दर होता है। प्रभु को केश सौन्दर्य पाने हेतु हिमालय पर्वत पर उद्भूत एक लाख सफेद चामर के केशव को प्रदान करे। नासिका के सौन्दर्यवर्द्धनार्थ भगवान् गोपीश्व को अमूल्य रत्न से बने एक हजार पुटक प्रदान करे। अपने सौम्य ओष्ठ तथा अधरों की वर्ण सुन्दरता के लिये राधेश्वर को एक लाख बन्धूक पुष्प प्रदान करे। हे पार्वती! दांतों के सौन्दर्य हेतु गोलोकनाथ को एक लाख मोती देना चाहिए। हे शैलपुत्री! यह सब भक्ति के साथ देना होगा।।३१-३६।।

रत्नगेन्दुकलक्षं च गण्डसौन्दर्यहेतवे। महेश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके।।३७।।
रत्नपाशकलक्षं च देयं ब्रह्मेश्वराय च। ओष्ठाधः स्थलरूपाय व्रती प्राणेशि भक्तितः।।३८।।

हे शैलकन्ये! भगवान् से कपोलों के सौन्दर्यलाभ हेतु व्रत-अनुष्ठान काल में परमेश्वर को एक लाख रत्नपूर्ण गेंद प्रदान करे। हे प्राणेशी! कृष्ण को ओष्ठ के निचले भाग के सौन्दर्य हेतु व्रतकाल में इन ब्रह्मेश्वर को भक्ति सहित १ लाख रत्न पाशक प्रदान करे।।३७-३८।।

कर्णभूषणलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्यहेतवे।।३९।।
माध्वीककलशानां च लक्षं रत्नविनिर्मितम्। देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्यहेतवे।।४०।।
सुधापूर्णं च कुम्भानां सहस्त्रं रत्ननिर्मितम्। देयं कृष्णाय देवेशि वाक्यसौन्दर्यहेतवे।।४१।।
रत्नप्रदीपलक्षं च गोपवेषविधायिने। देयं किशोरवेषाय दृष्टिसौन्दर्यहेतवे।।४२।।

भगवान् से कानों की सौन्दर्यवृद्धि हेतु इन सर्वेश्वर को रत्नों के सारभाग से निर्मित एक लाख कर्णाभूषण देना चाहिए। इनसे स्वर सौन्दर्य लाभार्थ इनको रत्नों के बने एक लाख कलशों में महुए का आसव (माध्वीक) भर कर प्रदान करे। इससे इन विश्वेश्वर से स्वर सौन्दर्य लाभ होगा। हे देवेशी! कृष्ण से वाक्य सौन्दर्य पाने हेतु इनको एक हजार रत्नों के बने सुधा भरे घटों को प्रदान करे। किशोर वेशधारी कृष्ण से दृष्टि सौन्दर्य पाने हेतु गोपवेश में शोभायमान इन प्रभु को एक लाख रत्नप्रदीप प्रदान करे।।३९-४२।।

धत्तूरकुसुमाकारं रत्नपात्रसहस्त्रकम्। देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्यहेतवे।।४३।।
सद्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्त्रकम्। देयं [१]चण्डकपालाय बाहुसौन्दर्यहेतवे।।४४।।
लक्षं च रक्तपद्मानां करसौन्दर्यहेतवे। देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिव्रते।।४५।।
अङ्गुलीयकलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। अङ्गलीनां च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च।।४६।।
मणीन्द्रसारलक्षं च श्वेतवर्णं मनोहरम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय नखसौन्दर्यहेतवे।।४७।।
सद्रत्नसारहाराणां लक्षं चातिमनोहरम्। देयं मदनमोहाय वक्षःसौन्दर्यहेतवे।।४८।।

इन गोरक्षक प्रभु से गले की सुन्दरता पाने के लिये धतूरा पुष्प के आकार वाले रत्नपात्र एक

१. क. तन्तुक॰ क. स्वर्णक॰।

लाख की संख्या में इनको प्रदान करना चाहिए। भगवान् से बाहुसौन्दर्य पाने हेतु उत्तम रत्नों के सार से निर्मित एक हजार कमलनाल चण्डकपाल को अर्पित करे। हे नारायणी! इस हरि को प्रीतिकर लगने वाले व्रतानुष्ठान काल में हाथ के सौन्दर्य हेतु इन गोपांगनाओं के अधिपति को एक लाख रक्तपद्म प्रदान करे। इन देवेश्वर से उंगलियों के सौन्दर्य पाने हेतु रत्नों के सारभाग से बनी एक लाख अंगूठियां प्रदान करे। नखसौन्दर्य वर्द्धनार्थ एक लाख श्वेतवर्ण सर्वोत्कृष्ट श्वेत मणि इन मुनीन्द्रनाथ को प्रदान करे। वक्षःस्थल के सौन्दर्यलाभार्थ उत्कृष्ट रत्नसार से निर्मित एक लाख हार मदनमोहन श्रीकृष्ण को प्रदान करे।।४३-४८।।

सुपक्वश्रीफलानां च लक्षं च सुमनोहरम्। देयं [1]सिद्धेन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्यहेतवे।।४९।।
सद्रत्नवर्तुलाकारपत्रलक्षं मनोहरम्। देयं पद्मालयेशाय देहसौन्दर्यहेतवे।।५०।।
सद्रत्नसाररचितं नाभीनां च सहस्रकम्। प्रदेयं [2]पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्यहेतवे।।५१।।
सद्रत्नसाररचितं रथचक्रसहस्रकम्। नितम्बसौन्दर्यार्थं च देयं वै चक्रपाणये।।५२।।

इन सिद्धेन्द्रनाथ से स्तनभाग के सौन्दर्यलाभ हेतु मनोहर एक लाख सुपक्व बेल के फल प्रदान करे। इन पद्मालया लक्ष्मी के ईश्वर कृष्ण से देह की रूप वृद्धि हेतु एक लाख वर्त्तुलाकार मनोहर रत्ननिर्मित पात्र श्रीकृष्ण को प्रदान करना चाहिए। पद्मनाभ देव से नाभि के सौन्दर्य हेतु उत्तम रत्नसार से निर्मित एक हजार नाभि इनको प्रदान करे। चक्रपाणि प्रभु से नितम्बों के सौन्दर्य पाने हेतु उत्तम रत्ननिर्मित एक हजार रथचक्र देना चाहिए।।४९-५२।।

[3]सुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षं च सुमनोहरम्। प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्यहेतवे।।५३।।
शतपत्रस्थलाब्जानां लक्षमम्लानमक्षतम्[4]। प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्यहेतवे।।५४।।
सुवर्णरचितानां च खञ्जनानां सहस्रकम्। गतिसौन्दर्यहेत्वर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च।।५५।।
राजहंससहस्रं च गजेन्द्राणां सहस्रकम्। सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे।।५६।।
सुवर्णच्छत्रलक्षं च देयं नारायणाय च। विचित्रं रत्नसारेण मूर्धसौन्दर्यहेतवे।।५७।।

इन प्रभु श्रीनिवास को जघन (जंघा) की शोभा हेतु स्वर्ण के बने १ लाख कदली स्तम्भ प्रदान करे। भगवान् पद्मनेत्र से चरण सौन्दर्य लाभार्थ हेतु बिना टूटे अखण्डित एक लाख निर्मल स्थलकमल इनको प्रदान करे। भगवान् लक्ष्मीश्वर से गति की सुन्दरता लाभ हेतु इनको स्वर्ण के बने एक हजार खंजन पक्षी प्रदान करे। हरि से तीव्र गति प्राप्ति हेतु स्वर्ण के बने १००० राजहंस तथा एक हजार हाथी प्रदान करे। नारायण से शिर के सौन्दर्य पाने हेतु इनको विचित्र रत्नों के सारभाग (सार भाग अर्थात्

---

१. क. सौन्दर्येना०।
२. क. रत्ननाभा०।
३. क. रत्नस्तः।
४. क. मस्तकम्।

खान से निकले रत्नों की कटाई-छंटाई-तराशने से तात्पर्य है) से निर्मित एक लाख छत्र प्रदान करना होगा।।५३-५७।।

मालतीनां च कुसुममक्षतं लक्ष्मीश्वरि। देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्यहेतवे।।५८।।
अमूल्यरत्नलक्षं च देयं नारायणाय वै। सुव्रते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्यहेतवे।।५९।।
स्वच्छस्फटिकसङ्काशं मणीन्द्रश्रेष्ठलक्षकम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्यहेतवे।।६०।।
प्रवालसारसङ्काशं मणिसारसहस्रकम्। देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियरागविवृद्धये।।६१।।
माणिक्यसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः।
जन्मनः कोटिपर्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे।।६२।।
कूष्माण्डं नारिकेलं च जम्बीरं श्रीफलं तथा। फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे।।६३।।
रत्नेन्द्रसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। असंख्यजन्मपर्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये।।६४।।

हे ईश्वरी! इन ईश्वर से हास्यजनित सौन्दर्य वृद्धि पाने हेतु मालती का एक लाख अक्षत पुष्प इन वृन्दावनेश्वर को प्रदान करे। हे सुव्रते! नारायण से शील सौन्दर्य पाने हेतु तथा व्रत को पूर्ण करने के लिये एक लक्ष अमूल्य रत्नों को इन्हें अर्पित करे। इन मुनीन्द्रनाथ से मनः सौन्दर्य पाने के लिये एक लाख स्फटिकवत् निर्मल उत्तम मणि प्रदान करे। कृष्णप्रभु के प्रति अनुराग वृद्धि हेतु इनको भक्ति के साथ प्रवाल के सारभाग के समान एक हजार मणियों के सारभाग को प्रदान करे। नारी को कोटि जन्म पर्यन्त स्वामी सान्निध्य मिलता रहे, इसके लिये पति सौभाग्य लाभ होता रहे, एतदर्थ नारी १ लक्ष उत्तम माणिक्य भगवान् कृष्ण को प्रयत्नतः प्रदान करे। नारीगण पुत्रकामी होने पर कोहड़ा, नारियल, जम्बीरी नींबू, बेल प्रभु को प्रदान करें। स्वामी की असंख्य जन्म पर्यन्त धनवृद्धि होती रहे, इसलिये एक लाख उत्तम तराशे रत्न कृष्ण को यत्नतः प्रदान करे।।५८-६४।।

वाद्यं नानाप्रकारं च कांस्यतालादिकं परम्।
व्रते संपत्तिवृद्ध्यर्थं श्रीहरिं श्रावयेद्व्रती।।६५।।
पायसं पिष्टकं सर्पिः शर्करात्कं मनोहरम्। प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये[1]।।६६।।
सुगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिविवृद्धये।।६७।।
नैवेद्यानि च देयानि स्वादूनि मधुराणि च।
श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानि च।।६८।।
नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च।
श्रीकृष्णप्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते।।६९।।

नारी व्रत द्वारा सम्पदा वृद्धि हेतु श्रीहरि के समक्ष नाना प्रकार के वाद्य, झांझ, कांसे का मजीरा

१. स्वामिनो भोगवृद्धये इत्यादिकं चरण चतुष्टयं क्वचिन्नास्ति।

वाद्य, ताली आदि बजाये। स्वामी की भोग वृद्धि हेतु पत्नी पायस, मालपूआ, बड़ा, घृत शक्कर मिली खीर भक्तिभाव से हरि को प्रदान करे। हरिभक्ति वर्द्धनार्थ हरि को भक्ति के साथ सुगन्धित पुष्पमाला जो क्षतिपूर्ण न हो एक लाख प्रदान करे। हे दुर्गे! श्रीकृष्ण की प्रीति पाने के लिये नाना प्रकार के नैवेद्य, जो स्वादिष्ट तथा मधुर हों, उनको प्रदान करना चाहिए। हे सुव्रते! कृष्ण को प्रीति के साथ भक्ति पूर्वक अनेक प्रकार का तुलसीयुक्त पुष्प देना चाहिए।।६५-६९।।

ब्राह्मणानां सहस्त्रं च प्रत्यहं भोजयेद्व्रती।
स्वात्मनः सस्यवृद्ध्यर्थं व्रते जन्मनि जन्मनि॥७०॥
पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णं च पूजने। प्रणामशतकं देवि कर्तव्यं भक्तिवृद्धये॥७१॥

व्रती को चाहिए कि वह नित्य एक सहस्र ब्राह्मणगण को भोजन कराये। इससे जन्म-जन्म में उसकी फसल की वृद्धि होगी। हे देवी! कृष्णभक्ति की वृद्धि हेतु तीन पुष्पांजलि पूजा की पूर्णता के लिये देकर १०० बार भगवान् को प्रणाम करें।।७०-७१।।

षण्मासांश्च हविष्यान्नं मासान्पञ्च फलादिकम्।
हविः पक्षं जलं पक्षं व्रते भक्षेच्च सुव्रते॥७२॥
रत्नप्रदीपशतकं वह्निं दद्याद्दिवानिशम्। रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते॥७३॥
ज्ञानवृद्धिर्जागरणे सुबुद्धिर्मूलभोजने। लोभमोहकामक्रोधभयशोकविवादकम्॥७४॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च [1]क्रियानिर्वृत्तिरित्यपि॥७५॥
विविधं मैथुनं त्याज्यं व्रतिना व्रतशुद्धये। कलहश्च परित्याज्यो व्रते क्रीडाविवृद्धये॥७६॥

क्रमशः व्रती नारी छः मास तक हविष्यान्न, ५ मास तक फल, १ पक्ष पर्यन्त हवि तथा एक पक्ष तक मात्र जल पान करके रहे। व्रतकाल में नित्य रत्न के १०० दीपक सतत् जलाये रहे। रात्रि में कुशासनासीन होकर व्रतकाल पर्यन्त रात्रि जागरण करना होगा। जागरण से व्रती को ज्ञानवृद्धि होती है। फलमूल भोजन से सुबुद्धि लाभ होता है। व्रतकाल में व्रती को चाहिए कि वह लोभ-मोह-काम-क्रोध-भय-शोक-विवाद का त्याग करे। हे देवी! व्रतशुद्धि हेतु कामभावना-कामक्रीड़ा का स्मरण, उसका वर्णन, कामक्रीड़ा करना अथवा उसे देखना-यह त्यागे। गोपनीयता से बातचीत, वक्तव्य देना (अर्थात् काम सम्बन्धित बात वक्तव्य आदि का त्याग करे), काम सम्बन्धित संकल्प, उसके सम्बन्धित प्रयत्न, संभोगादि-इन सब प्रकार के मैथुनांग का कलह का त्याग करके शुद्ध रहे। इन सबको त्यागने से व्रत वृद्धि होगी।।७२-७६।।

संपूर्णे च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं रल्लकं वस्त्रसंयुतम्॥७७॥

---

१. क. ०यानिष्पत्तिरेव च।

सभोज्यं सोपवीतं च सोपहारं ददात्वयम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकसहस्त्रं विप्रभोजनम्॥७८॥
[1]त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं सहस्त्रं तिलहोमकम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं सहस्त्रं स्वर्णमेव च॥७९॥
देया व्रतसमाप्तौ च दक्षिणा विधिबोधिता।
अन्यां समाप्तिदिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम्॥८०॥
एतद्व्रतफलं देवि दृढा भक्तिर्हरौ भवेत्। हरितुल्यो भवेत्पुत्रो विख्यातो भुवनत्रये॥८१॥

हे देवी! व्रत पूर्ण हो जाने पर प्रतिष्ठा करे। अर्थात् ३६० वस्त्रयुक्त कम्बल, भोजन, यज्ञोपवीत तथा उपहार ब्राह्मणों को देना चाहिए। ३६० ब्राह्मणों को भोजन, ३६०००० तिलाहुति, ३६०००० स्वर्णदान करके दक्षिणा प्रदान करे। यह ब्रह्मा का आदेश है। हे देवी! अब व्रत समाप्ति के अवसर पर प्रदान करने वाली अन्य दक्षिणा कहता हूं। इस प्रकार सम्पन्न व्रत के फलस्वरूप प्रभु के प्रति दृढ़ भक्ति उन्मिषित होती है। (उस स्त्री को) उसको त्रैलोक्य विख्यात पुत्र प्राप्त होता है।।७७-८१।।

सौन्दर्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्यं विपुलं धनम्।
सर्ववाञ्छितसिद्धीनां बीजं जन्मनि जन्मनि॥८२॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेश्वरि। पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह॥८३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

"उसे सौन्दर्य, पति सौभाग्य, ऐश्वर्य, प्रभूत धन, सर्व अभीष्टसिद्धि रूपी बीज की जन्म-जन्म में प्राप्ति होती है। हे देवी! महेश्वरी! मैंने यह व्रत कह दिया। हे साध्वी! इसे सम्पन्न करो। तुमको पुत्रलाभ अवश्य होगा।" यह कह कर शिव मौन हो गये।।८२-८३।।

(**विशेष**—यह व्रत पार्वती देवी के लिये ही कहा गया है। इसका साधन पृथिवी पर के सम्राट् भी नहीं करा सकते। समग्र धरती पर इतना धन-रत्न ही नहीं है। जो पुष्प जिस मात्रा में कहे गये, उनका उस मात्रा में मिलना असंभव है। अतः यह व्रत मात्र देवी हेतु ही है)।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

१. ख. स्वप्नमैथुनकं त्या०।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पुण्यक व्रत कथा वर्णन तथा माहात्म्य

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा।
पुनः प्रपच्छ कान्तं सा दिव्यां व्रतकथां शुभाम्॥१॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—दुर्गा ने यह व्रतविधान प्रसन्न मन से सुन कर अपने पति से पुनः यह दिव्य व्रतकथा पूछा, जो शुभप्रदा है।।१।।

पार्वत्युवाच

किमद्भुतं[१] व्रतं नाथ विधानं फलमस्य[२] च।
अधिकां तत्कथां ब्रूहि व्रतं केन प्रकाशितम्॥२॥

देवी पार्वती कहती हैं—हे नाथ! यह तो अत्यन्त अद्‌भुत् व्रत है! इसका विधान, फल क्या है? इसके सम्बन्ध में और क्या कहा गया है? इसे सबसे पहले किसने प्रकट किया था? यह कहिये।।२।।

महादेव उवाच

शतरूपा मनोः पत्नी पुत्रदुःखेन दुःखिता। ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह॥३॥

श्री महादेव कहते हैं—मनुपत्नी शतरूपा पुत्र न होने के कारण दुःखी थी। उन्होंने ब्रह्मा के यहां आकर उनसे कहा—।।३।।

शतरूपोवाच

ब्रह्मन्केन प्रकारेण बन्ध्यायाश्च सुतो भवेत्। तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण॥४॥
तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्यं धनमेव च। किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम्॥५॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखावहम्। सुखदो मोक्षदः प्रीतिदाता पुत्रश्च पुत्रिणाम्॥६॥
पुत्री पुत्रमुखं दृष्ट्वा चाश्वमेधशतोद्भवम्। फलं पुंनामनरकत्राणहेतुं लभेद्ध्रुवम्॥७॥
पुत्रोत्पत्तेरुपायं वै वद मां तापसंयुताम्। तदा भद्रं न चेद्भर्त्रा सह यास्यामि काननम्॥८॥
गृहाण राज्यमैश्वर्यं धनं पृथ्वीं प्रजावहाम्। किमेतेनाऽवयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः॥९॥

देवी शतरूपा कहती हैं—हे ब्रह्मन्! किस उपाय से वन्ध्या को पुत्र हो सकता है? आप समस्त जगत् के धाता तथा सृष्टि के कारणरूप हैं। जिस गृहस्थ के गृह में पुत्र नहीं है, हे ब्रह्मन्! उसका जन्म,

---

१. श्रुतं पाठः क्वचित्कः।
२. फलमेव च चेति वा पाठः।

ऐश्वर्य, धन निष्फल हैं। पुत्र के बिना ऐश्वर्यवान् के घर में भी कोई शोभा नहीं रहती। तप तथा दान से जो पुण्योत्पत्ति होती है, वह अन्य जन्म में सुख देती है। लेकिन पुत्र तो पुत्रवान् व्यक्ति को मोक्ष तथा प्रीति प्रदान करता है। पुत्रवान् को पुत्र का मुख दर्शन करने से अश्वमेध यज्ञफल मिलता है तथा वह "पुं" नामक नरक से बचता है। यह पुत्र मुखदर्शन का फल है। आप मुझ दुःख तापयुक्त को पुत्रोत्पत्ति का उपाय कहिये अन्यथा पति के साथ वनगमन करूंगी। हे प्रभो! आप मेरा राज्य, गृह, ऐश्वर्य, धन, भूमि, प्रजा, यह सब ले लीजिये। हे तात! हम पुत्र रहित रहते यह सब लेकर क्या करेंगे?।।४-९।।

अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहतेऽशिवम्।
मुंखं दर्शयितुं लज्जां समवाप्नोत्यपुत्रकः॥१०॥
अथवा गरलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
अपुत्रपौत्रमशिवं गृहं स्यात्स्त्रीविहीनकम्॥११॥
इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद्ब्रह्मणोऽग्रे रुरोद ह।
कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥१२॥

विद्वान् लोग पुत्रहीन व्यक्ति का अमंगलमय मुख नहीं देखना चाहते। अपुत्रक व्यक्ति अन्य को अपना मुखदर्शन कराते लज्जा का बोध करता है। मैं विषभोजन करूंगी, किंवा अग्नि में प्रवेश करूंगी। विद्वानों का कथन है कि पुत्र-पौत्र रहित तथा स्त्री रहित गृह अमंगलमय है। यह कह कर शतरूपा ब्रह्मा के सामने रुदनरत हो गईं। कृपानिधि ब्रह्मा ने तब शतरूपा की यह स्थिति देख कर कहा-।।१०-१२।।

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम्।
सर्वैश्वर्यादिबीजं च सर्ववाञ्छाप्रदं शुभम्॥१३॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत्सुपुण्यकम्।
कर्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम्॥१४॥
संवत्सरं च कर्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम्। द्रव्याणि वेदैरुक्तानि व्रते देयानि सुव्रते॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं-हे पुत्री! सुनो! मैं सुखप्रद पुत्रलाभ का उपाय कहता हूं। यह उपाय सभी ऐश्वर्य का बीज (कारण) रूप तथा सभी कामनाओं को देने वाला तथा शुभ है। इसे सुपुण्यक व्रत कहते हैं। यह शुद्धकाल में माघमासीय शुक्ला त्रयोदशी को प्रारम्भ करे। इसमें सदा कृष्ण ही आराध्य देव हैं। इस सर्वविघ्ननाशक व्रत को १ वर्ष करना होगा। हे सुव्रते! इस व्रत में वेदोक्त द्रव्यों को ही प्रदान करे।।१३-१५।।

व्रतं च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम्।
कृत्वा पुत्रं लभ शुभे विष्णुतुल्यपराक्रमम्॥१६॥

यह सर्व वांछित सिद्ध करने वाला व्रत काण्वशाखोक्त है। हे शुभे! इसे सम्पन्न करके तुम विष्णु के समान पराक्रमी पुत्रलाभ करोगी।।१६।।

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा कृत्वा व्रतमुत्तमम्। प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रौ मनोहरौ॥१७॥

व्रतं कृत्वा देवहूतिर्लेभे सिद्धेश्वरं सुतम्।
नारायणांशं कपिलं पुण्यकं[1] सिद्धिदं शुभम्॥१८॥
अरुन्धतीदं कृत्वा तु लेभे[2] शक्तिसुतं शुभा।
शक्तिकान्ता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम्॥१९॥

ब्रह्मा का कथन सुन कर शतरूपा ने यह व्रत किया और इस व्रत के प्रभाव से उसने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र उत्पन्न किये। देवहूति ने भी व्रत करके सिद्धेश्वर कपिल को पुत्र रूप से प्राप्त किया, जो नारायण के अंश थे। इस प्रकार इस पुण्यप्रद पुण्यक व्रताचरण करके वसिष्ठपत्नी अरुंधती ने शक्ति ऋषि को पुत्ररूप से प्राप्त किया था। शक्ति ऋषि की पत्नी ने इसी व्रत के प्रभाव से महर्षि पराशर को पुत्ररूपेण जन्म दिया।।१७-१९।।

अदितिश्च व्रतं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम्। शची जयन्तं पुत्रं च लेभे कृत्वेदमीश्वरी॥२०॥
उत्तानपादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम्। कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूबरम्॥२१॥
सूर्यपत्नी मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम्॥२२॥
लेभे चाङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। बृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः॥२३॥

देवमाता अदिति ने यही व्रत करके भगवान् वामन को पुत्र रूप में पाया। इन्द्रपत्नी शची देवी ने भी इसी व्रत द्वारा जयन्त को पुत्र रूप में प्राप्त किया। सूर्य की पत्नी संज्ञा ने इसी उत्तम व्रत द्वारा मनु को, उत्तानपाद की पत्नी ने (सुरुचि ने) इसी व्रत द्वारा ध्रुव को, कुबेर की पत्नी ने नलकूबर को, अत्रिपत्नी अनुसूया ने चन्द्रमा को तथा अंगीरा की पत्नी ने इसी व्रत द्वारा सुरगुरु बृहस्पति को पुत्ररूपेण प्राप्त किया, यह इसी व्रत का प्रभाव था।।२०-२३।।

भृगोर्भार्या व्रतं कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम्।
शुक्रं नारायणांशं च सर्वतेजस्विनां वरम्॥२४॥

भृगु ऋषि की पत्नी ने इसी उत्तम व्रत से दैत्यगुरु शुक्र को पुत्ररूप से प्राप्त किया जो सभी तेजस्वी लोगों में श्रेष्ठ तथा नारायण के अंश थे।।२४।।

इत्येवं कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। त्वमेवं कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे॥२५॥

साध्यं राजेन्द्रपत्नीनां देवीनां च सुखावहम्।
व्रतमेतन्महासाध्वि साध्वीनां प्राणतः प्रियम्॥२६॥

१. ख. पुण्यदं शु.।
२. क. सिद्धेश्वरं सुतम्।

व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः। ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भविष्यति॥२७॥

हे देवी! मैंने यह उत्तमोत्तम व्रत का वर्णन कर दिया। हे हिमाचलनन्दिनी! शुभे! कल्याणी! तुम भी इस व्रत को करो। यह सुखप्रद व्रत राजपत्नियां तथा देवीगण ही कर सकती हैं। हे महासाध्वी! यह व्रत पतिव्रताओं को प्राण से बढ़ कर प्रिय है। इस व्रत के प्रभाव से गोपीगण के स्वामी सर्वदेवेश्वर नारायण स्वयं तुम्हारे पुत्र होकर उत्पन्न होंगे।।२५-२७।।

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद। व्रतं चकार सा देवी प्रहृष्टा शङ्कराज्ञया॥२८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजनिकारणम्॥२९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

हे नारद! इतना कह कर शंकर मौन हो गये। देवी पार्वती ने शंकर की आज्ञा के अनुरूप प्रसन्न मन से इस व्रत का अनुष्ठान किया। यह सुखदायक, मोक्षदायक तथा संसार का साररूप है। इसी को गणपति के जन्म का कारण कहते हैं। इस व्रत को विस्तार से कहिये अव और क्या श्रवणेच्छा है?।।२८-२९।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

व्रत महोत्सव, व्रताज्ञा लेना

शौनक उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन॥१॥

ऋषि शौनक कहते हैं–नारायण ऋषि का कथन सुन कर जब नारद प्रसन्न हो गये, हे तपोधन, हे साधु! तब उन्होंने क्या प्रश्न किया, वह कहिये।।१।।

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। व्रतारम्भविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे॥२॥

सूतजी कहते हैं–नारायण ऋषि का कथन सुन कर नारद का मन हर्षित हो उठा। उन्होंने नारायण ऋषि से व्रतारम्भ विधान पूछा।।२।।

नारद उवाच

कृतं केन प्रकारेण व्रतमेतच्छुभावहम्। तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भर्तुराज्ञया॥३॥
ललाभ जन्म [1]गोपीशः कृते सुव्रतया व्रते। ब्रह्मन्केन प्रकारेण तन्नः शंसितुमर्हसि॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे मुनिप्रवर! पार्वती ने स्वामी के आज्ञाक्रमेण किस प्रकार से शुभावह व्रत का अनुष्ठान किया था, वह कहिये। हे ब्रह्मन्! सुव्रता पार्वती के व्रत का अनुष्ठान करने के पश्चात् गोपीश कृष्ण ने किस प्रकार से पार्वती के उदर से जन्मलाभ किया था? वह कहिये।।३-४।।

नारायण उवाच

कथयित्वा कथां दिव्यां विधानं च व्रतस्य च।
स्वयं विधाता तपसां जगाम तपसे शिवः॥५॥

हरेराराधनव्यग्रो मूर्तिभेदधरो हरिः। हरिभावनशीलश्च[2] हरिध्यानपरायणः[3]॥६॥
परमानन्दपूर्णश्च ज्ञानानन्दः सनातनः। दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं बहिः स्मरन्॥७॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—महादेव ने इस अपूर्व व्रत का प्रसंग तथा विधि कहकर स्वयं तप का फलदाता होकर भी तपस्याचरण करने चले गये। महादेव सदा हरि की आराधना हेतु व्यग्र रहने वाले, मूर्त्तिभेद के कारण हरि ही हैं। ये प्रभु हरिभावना से युक्त, हरिध्यान परायण हैं। ये परमानन्दपूर्ण, ज्ञानानन्द तथा सनातन हैं। ये हरिमन्त्र स्मरण में इतने तल्लीन हैं कि उनको दिन-रात्रि की याद नहीं रहती।।५-७।।

प्रहृष्टमनसा देवी पार्वती भर्तुराज्ञया। किङ्करान्प्रेरयामास विप्रांश्च व्रतहेतवे॥८॥
आनीय सर्वद्रव्याणि व्रते योग्यानि यानि च। व्रतं कर्तुं समारेभे शुभद्रा सा शुभे क्षणे॥९॥
सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेः सुतः। मूर्तिमांस्तेजसां राशिः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥१०॥

इधर देवी पार्वती प्रसन्न अन्तःकरण से पति की आज्ञा से अपने सेवकों तथा ब्राह्मणों को व्रतोपयोगी सामग्री एकत्र करने हेतु नियुक्त किया। वे लोग इस शुभ व्रत के लिये उपयोगी समस्त द्रव्य एकत्र करके लाये। इस प्रकार शुभ क्षण में व्रत आरम्भ हो गया। तभी ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान मूर्त्तिमान तेजोराशि भगवान् सनत्कुमार स्वयं वहां आ गये।।८-१०।।

ब्रह्मा जगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात्सभार्यकः। अतित्रस्तो हि भगवानाजगाम सुरेश्वरः॥११॥

विष्णुः क्षीरोदशायी च सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः।
भगवाञ्जगतां पाता शास्ता भर्ता सपार्षदः॥१२॥

वनमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणैः। तथा संभृतसंभारो रत्नयानेन नारद॥१३॥

१. क. भूतेशः।
२. हरिराधनशीलस्य इति क्वचित् पाठः।
३. हरिस्मृतिपरायणः इति वा पाठः।

ब्रह्मा अतिशय प्रसन्नचित्त होकर सपत्नीक ब्रह्मलोक से वहां आये। भगवान् महेश्वर भी अत्यन्त त्रस्त होकर वहां आये थे। हे नारद! सभी जगत् के पालनकर्त्ता, शासक, पोषण करने वाले क्षीरसागर निवासी चतुर्भुज विष्णु, लक्ष्मी तथा पार्षदों के साथ विपुल सामग्री लेकर उत्तम यान पर बैठे हुए वहां आये।।११-१३।।

सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः। आसुरिश्च क्रतुर्हंसो वोढुः पञ्चशिखोऽरुणिः॥१४॥
यतिश्च सुमतिश्चैव वसिष्ठश्च सहानुगः। पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यत्रिश्च भृगुरङ्गिराः॥१५॥
अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा।
मरीचिः कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः॥१६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तः सौभरिस्तथा। जाबालिर्जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः॥१७॥
[1]गोकामुखे वक्ररथः [2]पारिभद्रः पराशरः।
विश्वामित्रो वामदेव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः॥१८॥
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च [3]पुष्करो लोमशस्तथा।
कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च [4]बालाग्निरघमर्षणः॥१९॥
कात्यायनः कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः।
शङ्कुरापिशलिश्चैव शाकल्यः शङ्ख एव च॥२०॥

वहां सनक, सनंदन, कपिल, सनातन, आसुरी, क्रतु, हंस, वोढु, पंचशिख, आरुणि, यति, सुमति, वसिष्ठ शिष्यों के साथ, पुलह, पुलत्स्य, अत्रि, भृगु, अंगिरा, अगत्स्य, प्रचेता, दुर्वासा, च्यवन, मरीचि, कश्यप, कण्व, जरत्कारु, गौतम, बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त्त, सौभरि, पराशर, विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, गोकामुख, वक्ररथ, पारिभद्र, पराशर, वामदेव, ऋष्यशृंग, विभाण्डक, मार्कण्डेय, मृकण्डु, पुष्कर, लोमश, कौत्स, वत्स, दक्ष, बालाग्नि, अघमर्षण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, शाकटायन, शंकु, आपिशालि, शाकल्य तथा शंख मुनिगण वहां आ गये।।१४-२०।।

एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने।
आवां च धर्मपुत्रौ च नरनारायणौ समौ॥२१॥
दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः।
आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते॥२२॥
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च सभार्यकः। सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः॥२३॥

१. क. ०मुखश्चक्रकरः० पा।
२ चक्ररथः इति वा पाठः।
३. क. प्रस्कण्वो।
४. क. काला०।

तथा संभृतसंभारो नानाद्रव्यसमन्वितः।
मणिमाणिक्यरत्नानि व्रते योग्यानि यानि च॥२४॥
नानाप्रकारवस्तूनि जगत्यां दुर्लभानि च। लक्षं च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम्॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम्। रुचकानां हीरकाणां स्पर्शानां च तथैव च॥२६॥

हे मुनि! इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से मुनिगण अपने शिष्यों के साथ वहां आये। वहां हम दोनों धर्मपुत्र नर-नारायण भी साथ आये। उस स्थान पर सभी दिक्पाल, देवता, यक्ष-गन्धर्व-किन्नर, अपने गणों के साथ पर्वत भी आ गये। वहां शैलराज हिमालय अपने पुत्रों, पत्नियों, गणों, सेवकों के साथ रत्नाभूषण भूषित होकर आये। वे प्रचुर सामग्री, नाना प्रकार की वस्तु, मणि, माणिक्य, रत्न तथा व्रत के योग्य सामग्री लेकर आये। ये नाना प्रकार की वस्तु तो जगत् में दुर्लभ थीं। वे एक लाख गजराज, तीन लाख उत्तम अश्व, दस लाख गौ, १०० लाख स्वर्ण, उतना ही रत्न, स्वर्ण की मुद्रायें (सिक्के), हीरा, स्पर्शमणि लेकर आये॥२१-२६॥

मुक्तानां च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम्।
सुस्वादुनानाद्रव्याणां लक्षभाराणि कौतुकी।
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुताव्रते॥२७॥
ब्राह्मणा मनवः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा।
संन्यासिनो भिक्षुकाश्च बन्दिनः पार्वतीव्रते॥२८॥
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाप्सरसां गणाः।
नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम्॥२९॥
कैलासराजमार्गं च चन्दनेन सुसंस्कृतम्।आम्रपल्लवसूत्राढ्यं कदलीस्तम्भशोभितम्॥३०॥
दूर्वाधान्यफलैः पर्णलाजपुष्पैर्विभूषितम्। निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा॥३१॥

४ लाख मोती, एक हजार कौस्तुभमणि, नाना सुस्वादु द्रव्य जो एक लाख भार वाला था, अनन्त रत्न लेकर वे कौतुकी प्रभु पार्वती के व्रत में आये। पार्वती के व्रत में ब्राह्मण, मनु, सिद्ध, अनेक विद्याधर, यति, भिक्षुक तथा बन्दीगण भी आये थे। उस समय महादेव के गृह में विद्याधारी, नर्तकी, नर्तक, अप्सरायें तथा अनेक लोग वाद्यवादनकारी भी शिवगृह आये थे। कैलासपुरी के पद्मराग के बने सभी राजमार्ग चन्दन से सुवासित जल द्वारा अभिषिक्त थे। वह गृह आम्रपल्लव के वन्दनवार तथा कदली के खम्भों से शोभित हो रहे थे। वह गृह स्थान दूर्वा, धान्य, फल-पत्ते, लावा से एवं पुष्पों से विभूषित था। वह गृह पद्मरागमणि से निर्मित था। वह स्थान ऐसा था कि अभ्यागत वर्ण उसका अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अवलोकन कर रहे थे॥२७-३१॥

उच्चैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शङ्करेण च। कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः॥३२॥
दानाध्यक्षः शुनाशीरः कुबेरः कोशरक्षकः। आदेष्टा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः॥३३॥

दध्नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानां च तथैव च।
सहस्राणि घृतानां च गुडानां च शतानि च॥३४॥
माध्वीकानां सहस्राणि तैलानां च शतानि च।
लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते॥३५॥

उस समय कैलास स्थित समस्त लोग भगवान् शंकर द्वारा पूजित किये गये। भगवान् ने सभी को परमानंद के साथ उच्च सिंहासन पर आसीन कराया। इस व्रत में वहां इ्द्र दानाध्यक्ष बने। कुवेर कोषाध्यक्ष, सूर्यदेव आदेश देने वाले कि क्या किया जाये, क्या नहीं किया जाये, वरुण भोजन परोसने वाले थे। वहां व्रत में दधि की सहस्रों, दुग्ध की भी सहस्रों, घृत की सहस्रों, गुड़ की सैकड़ों, माध्वीक की हजारों, तैलों की सैकड़ों, मट्ठे की लाखों नदियां बनी थीं।।३२-३५।।

पीयूषाणां च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद। मिष्टान्नानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः॥३६॥
यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानां च नारद।
स्वस्तिकानां च पूपानां बभूवुर्लक्षराशयः। गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोटिराशयः॥३७॥
शालीनां पृथुकानां च राशीनां दशकोटयः। वरतण्डुलराशीनां मुने संख्या न विद्यते॥३८॥
स्वर्णरौप्यप्रवालानां मणीनां च महामुने। बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते॥३९॥

हे नारद! इस व्रत में सौ लाख अमृतकुण्ड तथा मिष्ठान्न एवं चीनी के लाखों ढेर स्थापित किये गये। हे नारद! घृतयुक्त जौ तथा गेहूं के चूर्ण का मालपूआ एक लाख ढेर थे। गुड़ में पकाये गये धान के लावा का तो वहां करोड़ों ढेर लगा था। शालि चावल, चिवड़ा के दस करोड़ ढेर लगे थे। हे मुनिवर! श्रेष्ठ उन्नत चावल के अनगिनत ढेर भी वहां थे। देवी पार्वती के इस व्रत में कैलास पुरी के अन्दर स्वर्ण, चांदी, प्रवाल तथा मणियों के पर्वत बने थे।।३६-३९।।

पायसं पिष्टकं चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम्।
चकार लक्ष्मीः पाकं च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्॥४०॥
बुभुजे देवर्षिगणैः शिवो नारायणेन च। बभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेषणकारकाः॥४१॥
ताम्बूलं च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम्।
रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः॥४२॥

लक्ष्मी वहां पायस, पिष्टक, उत्तम भात, घृताक्त व्यंजनादि पाक करने लगीं। तब देवर्षिगण के साथ नारायण तथा शिव स्वयं भोजन करने बैठे। उस समय एक लाख ब्राह्मण उनको भोजन परोस रहे थे। एक लाख दक्ष ब्राह्मणगण उन भोजन करने वालों को (भोजनोपरांत) कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल तथा विश्रामार्थ रत्नसिंहासन प्रदान कर रहे थे।।४०-४२।।

रत्नसिंहासनस्थं च विष्णुं क्षीरोदशायिनम्। सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः॥४३॥

ऋषिभिः स्तूयमानं च सिद्धैर्देवगणैस्तथा।
विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥४४॥
गन्धर्वाणां च सङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्। पप्रच्छ शङ्करो ब्रह्मन्ब्रह्मेशं प्रीतिपूर्वकम्॥४५॥
ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्तव्यमीप्सितम्। देवर्षिगणपूर्णायां सभायां संपुटाञ्जलिः॥४६॥

भोजन के उपरान्त क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु को पार्षदगण प्रसन्न मुद्रा में श्वेत चामर झल रहे थे तथा वे ऋषि, सिद्ध एवं देववृन्द द्वारा स्तुत होकर रत्न सिंहासन पर आसीन होकर मुस्कान के साथ आनन्द पूर्वक विद्याधरी नारियों द्वारा किये जा रहे नृत्य को देखते हुए गन्धर्वों के मनोहर संगीत का श्रवण कर रहे थे। उसी समय महादेव ने उस देवर्षियों से भरी सभा में ब्रह्मा से प्रेरणा पाकर हाथ जोड़ा तथा भक्ति के साथ ब्रह्मेश विष्णु से सप्रेम इस व्रत के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया।।४३-४६।।

महादेव उवाच

मदीयं वचनं नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो। तपःस्वरूप तपसां कर्मणां च फलप्रद॥४७॥
व्रतानां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित। सर्वेषां बीजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे॥४८॥

श्री महादेव कहते हैं—हे प्रभो! श्रीनिवास! कृपया मेरा वाक्य सुनिये। आप तपस्या के स्वरूपभूत हैं। आप ही तपःश्चरण एवं अन्य कर्म के फलदाता भी हैं। आप व्रत, जप, यज्ञ, पूजन में सबसे पहले पूजित होते हैं। हे हरि! आप सबके बीज स्वरूप तथा कामनाप्रदाता कल्पवृक्ष भी हैं!।।४७-४८।।

सुपुण्यकव्रतं कर्तुं ब्रह्मान्निच्छति पार्वती। पुत्रार्थिनी सा शोकार्ता हृदयेन विदूयता॥४९॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्व्यर्थवीर्यशुचाऽर्दिता। प्रबोधिता मया साध्वी विविधैर्वचनामृतैः॥५०॥
सत्पुत्रं स्वामिसौभाग्यं सुव्रता याचते व्रते।
ताभ्यां विना न संतुष्टा स्वप्राणांस्त्यक्तुमिच्छति॥५१॥

हे ब्रह्मन्! दुःखित हृदया, शोकसन्तप्ता पार्वती ने पुत्रकामी होकर सुपुण्यक व्रताचरण सम्पन्न करने का विचार किया है। देवगण ने उनके रतिकार्य में विघ्न किया, जिससे मेरा वीर्य (पृथिवी पर गिर कर) निष्फल हो गया। इससे वे अत्यन्त शोकपीड़िता हो गईं। तब मैंने अनेक प्रकार के वाक्यों द्वारा उन साध्वी को प्रबुद्ध किया। सुव्रता पार्वती इस व्रत द्वारा सत्पुत्र की तथा पति सौभाग्य की कामना कर रही हैं। इन दो की प्राप्ति के बिना ये सन्तुष्ट होने वाली ही नहीं हैं। ये तो अपने प्राणत्यागार्थ भी उद्यत हैं।।४९-५१।।

पुरा त्यक्त्वा स्वदेहं च पितृयज्ञे च मानिनी।
मन्निन्दया हिमवति पुनर्जन्म ललाभ सा॥५२॥

सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वज्ञं त्वां वदामि किम्।
काऽऽज्ञा तां वद तत्त्वज्ञ परिणामशुभप्रदाम्॥५३॥

पूर्वकाल में पिता के यज्ञ में इन मानिनी ने मेरी निन्दा सुन कर देहत्याग किया था। इनको हिमालय के यहां यह पुनर्जन्म मिला है। आप तो सर्वज्ञ हैं। समस्त वृत्तान्त जानते हैं। अतः आपसे क्या कहना? अब जो आज्ञा है कहिये? क्योंकि आपकी शुभ आज्ञा का परिणाम शुभ ही होता है।।५२-५३।।

दुर्निवार्यश्च [1]सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः।
दुस्त्याज्यं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः॥५४॥
जितेन्द्रियैर्जितक्रोधैः स्त्रीरूपं मोहकारणम्।
सर्वमायाकरण्डं च कामवर्धनकारणम्[2]॥५५॥

हे तत्वज्ञ! चंचल नारीस्वभाव का निवारण कौन कर सकता है? वह चपल होता है, उसे रोका नहीं जा सकता। हे सर्वेश्वर! रमणी की रूपराशि मोह का कारण है। जितेन्द्रिय, क्रोधजित् सिद्धयोगी तथा तपस्वी के लिये भी उससे बच पाना कठिन है। वह समस्त माया का करण्ड (अर्थात् बक्सा, सन्दूक) है, वह मोहकारक एवं कामवासना बढ़ाने का मूल कारण भी है।।५४-५५।।

ब्रह्मास्त्रं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम्।
सुनिर्मितं च विधिना सर्वाद्यं विधिपूर्वकम्॥५६॥
मोक्षद्वारकपाटं च हरिभक्तिनिरोधनम्। संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमकृन्तनम्॥५७॥

सबसे पहले ब्रह्मा ने सविधि इस कामदेव के सर्वत्र विजयी होने के कारण रूप स्त्रीरूपी ब्रह्मास्त्र का निर्माण किया था। यह दुर्भेद्य अस्त्र है। यह मोक्षपुरी को जाने से रोकने वाला दरवाजा है तथा हरिभक्ति में अवरोध उत्पत्तिकारक है। यह संसार-बन्धनरूपी खंभे में प्राणी को बांधने वाली रस्सी है।।५६-५७।।

वैराग्यनाशबीजं च शश्वद्रागविवर्धनम्। पत्तनं साहसानां च दोषाणामालयं सदा॥५८॥
अप्रत्यायानां क्षेत्रं च स्वयं कपटमूर्तिमत्। अहङ्काराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुधामुखम्[3]॥५९॥

यह वैराग्यनाशक बीज (कारण रूप) रूप है। यह सतत् राग आदि को बढ़ाने वाला, साहस का नगर रूप है। (साहस अर्थात् सांसारिक सम्पूर्ण कार्य)। यह सर्वत्र दोष का आलय (गृह) है। यह अविश्वसनीय बातों का क्षेत्र है। साक्षात् मूर्तिमान कपट है। यह अहंकार का आश्रयस्वरूप है। यह अमृत प्रतीत होने वाले विष से भरा घट है।।५८-५९।।

सर्वैरसाध्यमानं च दुराराध्यं च सर्वदा। स्वकार्यसाध्याचाराढ्यं कलहाङ्कुरकारणम्॥६०॥

१. क. र्वेषां स्त्री०।
२. सर्वकारणमिति पाठान्तरम्।
३. पयोमुखमित्यपि पाठः।

मनुष्य द्वारा इससे बच पाना सदा असाध्य है, तथापि अपना मतलब साधने में यह अत्यन्त निपुण है। यह कलह का कारण है।।६०।।

सर्वं निवेदितं नाथ कर्तव्यं वक्तुमर्हसि। कार्यं सर्वं परामर्शे परिणामसुखावहम्।।६१।।

हे नाथ! मैंने आपसे सब कुछ कह दिया। अब वह परामर्श दीजिये, जिस कार्य को करने से परिणाम सुखद हो।।६१।।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणो मुखम्।
विरराम सभामध्ये स्तुत्वा च कमलापतिम्।।६२।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। हितं[1] च नीतिवचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे।।६३।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—महादेव ने यह कहने के पश्चात् ब्रह्मा की ओर देखा और उस सभा में कमलापति हरि की स्तुति करने के अनन्तर मौन हो गये। शंकर का यह सब कथन सुन कर जगदीश्वर विष्णु ने हंस कर हितप्रद तथा नीतिप्रद वचन उनसे कहा—।।६२-६३।।

विष्णुरुवाच

सुपुण्यकव्रतं सारं सतीसंतानहेतवे। स्वामिसौभाग्यबीजं च पत्नी ते कर्तुमिच्छति।।६४।।

सर्वासाध्यं दुराराध्यं सर्वकामफलप्रदम्। सुखदं सुखसारं च मोक्षदं पार्वतीश्वर।।६५।।

सर्वेश्वरो व्रतपरो व्रताराध्यो गुणात्परः। गोलोकनाथो भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः।।६६।।

आत्मा साक्षिस्वरूपश्च ज्योतीरूपः सनातनः।
निराश्रयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः।।६७।।
भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः।
दुराराध्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः।।६८।।

श्री विष्णु कहते हैं—आपकी सती पत्नी ने जिस सुपुण्यक व्रताचरण का संकल्प सन्तान कामना से किया है, वह संसार के सभी व्रतों का साररूप तथा सौभाग्य बीज है। हे पार्वतीपति शंभु! यह व्रत तो सबका आराध्य है तथा इसे कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। यह सभी कामनाओं को देने वाला, सुखदायक, मोक्ष का साररूप है। साथ ही यह मोक्षदायक भी है। यह आत्मा ही साक्षीरूप, ज्योतिरूप, सनातन, निराश्रय, निर्लिप्त, निरुपाधि, निरामय, भक्त का प्राण, भक्तों पर अनुग्रह करने वाला, भक्त का ईश्वर है। यह भक्तों हेतु अत्यन्त साध्य है तथा अभक्त हेतु अत्यन्त दुराराध्य है।।६४-६८।।

भक्त्यधीनो हि भगवान्सर्वसिद्धो हि निष्कलः।
ते यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।६९।।

महान्विराडयदंशश्च निर्लिप्त प्रकृतेः परः। [2]अव्ययो निग्रहश्चोग्रो भक्तानुग्रहविग्रहः।।७०।।

१. ख. तं मितं च क०।
२. क. व्यग्रो नि०।

उग्रग्रहो ग्रहाणां च ग्रहनिग्रहकारकः। त्रिकोटिजन्ममध्ये[1] च न साध्यो भवता विना।।७१।।
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्तिं लभेन्नरः। सेवनं क्षुद्रदेवानां कृत्वा सप्तसु जन्मसु।
सूर्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिषा।।७२।।

भगवान् सदा भक्त के अधीन, सर्वसिद्ध एवं निष्कल कहे गये हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर तो उनकी कला मात्र हैं। वे महाविराट् उनका अंशमात्र हैं। वे निर्लिप्त तथा प्रकृति से अतीत हैं। वे अव्यय, निग्रह, उग्र हैं। उन्होंने मात्र भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये (आकार) विग्रह धारण किया है। ये ग्रहों में उग्रग्रह रूप हो कर भी ग्रह का निग्रह करते हैं। व्यक्ति ७ जन्मों तक छोटे देवगण की सेवा करके मेरे आशीर्वाद से मात्र सूर्य मन्त्रलाभ कर पाता है।।६९-७२।।

सूर्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते। प्राप्नोति शैवं मन्त्रं च सर्वदं मानवो मुदा।।७३।।
संसेव्य परया भक्त्या त्वामेवं सप्तजन्मसु।
प्राप्नोति मायामन्त्रं च त्वत्पादाब्जप्रसादतः।।७४।।

तदनन्तर वह व्यक्ति भारत में तीन जन्मों तक सूर्यमन्त्र की आराधना द्वारा सर्वप्रदाता शैवमन्त्र पाकर मुदित होता है। उसे सात जन्म तक पराभक्ति के साथ आप शिव की सेवा करके आपके चरणों की कृपा से मायामन्त्र की प्राप्ति हो पाती है।।७३-७४।।

शतजन्मसु चाऽऽराध्य मायां नारायणीं पराम्।
नारायणकलां सेव्यां समवाप्नोति मानवः।।७५।।
कलां निषेव्य वर्षेऽत्र पुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे। कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तसंसर्गहैतुकीम्।।७६।।
संप्राप्य भक्तिं निष्पक्वां भ्रामंभ्रामं च भारते।
प्राप्नोति परिपक्वां च भक्तिं भक्तनिषेवया।।७७।।

उन परा नारायणी माया की अर्चना १०० जन्मों तक करके मनुष्य सर्वसेव्या नारायणी कला प्राप्त कर पाता है। दुर्लभ पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में उस कला की सेवा द्वारा मनुष्य भक्तसंसर्ग हेतुरूप कृष्णभक्ति प्राप्त करता है। यह अपक्व भक्ति पाकर वह व्यक्ति अब भारतवर्ष में पुनः-पुनः भ्रमण करके भक्तों की सेवा द्वारा अब परिपक्व भक्तिलाभ कर लेता है। हे शिव! उसके पश्चात् भक्तों की कृपा तथा देवताओं के आशीर्वाद के फलस्वरूप उसे कृष्णमन्त्र मिल जाता है।।७५-७७।।

तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिषा शिव। श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम्।।७८।।
कृष्णव्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्। कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिरं कृष्णनिषेवया।।७९।।
महति प्रलये पातः सर्वेषां वै सुनिश्चितम्।
न पातः कृष्णभक्तानां साधूनामविनाशिनाम्।।८०।।

---

१. क. ०न्मसाध्यश्च न साध्यो भारतं वि०।

कृष्णव्रत तथा कृष्णमन्त्र सभी वांछित फल प्रदान करता है। चिरकालीन कृष्ण सेवा करने वाला कृष्णभक्त कृष्णतुल्य कहा गया है। महाप्रलय में सबका संहार होना निश्चित है, परन्तु जो कृष्णभक्त साधु प्रवृत्ति हैं, उसका पतन (नाश) महाप्रलय में भी नहीं होता। कृष्णभक्त तो सदा अविनाशी है!।।७८-८०।।

अविनाशिनि गोलोके मोदन्ते कृष्णकिङ्कराः।
हसन्ति ते सुनिश्चिन्ता देवान्ब्रह्मादिकाञ्छिव॥८१॥

त्वं संहर्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर। माया मोहयते सर्वान्भक्तान्न कृपया मम॥८२॥

हे शिव! कृष्ण के किंकर (सेवक) अक्षय गोलोक में सतत् आनन्दानुभव करते हैं। वे तो निश्चिन्त होकर (नाशवान्) ब्रह्मादि देवताओं का भी उपहास करते हैं। हे महेश्वर! आप तो सबके संहारक हैं, तथापि आप मेरे भक्तों का संहार नहीं कर पाते। माया तो सबको मोहित करती है, तथापि मेरी कृपा से वह मेरे भक्तगण को मोहित नहीं कर सकती।।८१-८२।।

माया नारायणी माता सर्वेषां कृष्णभक्तितदा।
न कृष्णभक्तिं प्राप्नोति विना मायानिषेवणम्॥८३॥
सा च नारायणी माया मूलप्रकृतिरीश्वरी।
कृष्णप्रिया कृष्णभक्ता कृष्णतुल्याऽविनाशिनी[१]॥८४॥

नारायणी माया सबकी माता तथा कृष्णभक्तिप्रदा हैं। माया की सेवा किये बिना कृष्णभक्ति नहीं मिलती। वह माया नारायणी है। वही मूलप्रकृति ईश्वरी तथा कृष्णप्रिया, कृष्ण की भक्त, कृष्ण के समान अविनाशिनी है।।८३-८४।।

सा च तेजः स्वरूपा च स्वेच्छाविग्रहधारिणी।
आविर्भूता च देवानां तेजसाऽसुरनिग्रहे॥८५॥

वह स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाली तेजरूपा है। वह असुरों का दमन करने हेतु देवगण के तेज से आविर्भूता है।।८५।।

निहत्य दैत्यसङ्घांश्च दक्षपत्न्यां च भारते। ललाभ दक्षतपसा जन्म चानेकजन्मनः॥८६॥

त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे सा सती तव निन्दया।
जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिः सनातनी॥८७॥

गृहीत्वा विग्रहं तस्या गुणरूपाश्रयं परम्। भ्रामंभ्रामं भारते त्वं विषण्णोऽभूः पुरा हर॥८८॥

उन्होंने दैत्यों का नाश करके दक्ष की जन्म-जन्मान्तरीण तपस्या के फलस्वरूप भारत में दक्षपत्नी के उदर से जन्म लिया था। वे सती सनातनी कृष्णशक्ति माया पिता के यज्ञ में आपकी निन्दा

१. कृष्णतुल्यारिनाशिनीति पाठान्तरम्।

सुन कर देहत्याग करने के अनन्तर गोलोक में आ गईं। हे शिव! आप भी सती का रूपगुण सम्पन्न सुन्दर शरीर उठाये भारत में दुःखी होकर नाना तीर्थों में भ्रमण कर रहे थे।।८६-८८।।

प्रबोधितो मया त्वं च श्रीशैलेषु सरित्तटे।
ललाभ जन्म सा शैलकान्तायामचिरेण च॥८९॥
करोतु पुण्यकं साध्वी सुव्रता सुव्रतं शिवा। राजसूयसहस्राणां पुण्यं शङ्कर पुण्यके॥९०॥
राजसूयसहस्राणां व्रते यत्र धनव्ययः। न साध्यं सर्वसाध्वीनां व्रतमेतत्त्रिलोचन॥९१॥
स्वयं गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः। पार्वतीगर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति॥९२॥
स्वयं देवगणानां स यस्मादीशः कृपानिधिः।
गणेश इति विख्यातो भविष्यति जगत्त्रये॥९३॥

श्री पर्वत नदी के किनारे मैंने आपको प्रबोधित किया था। तभी शीघ्र सती ने हिमालय की पत्नी के उदर से जन्मलाभ किया था। साध्वी सुव्रता शिवा ने पुण्यक नामक शोभन व्रत का अनुष्ठान किया था। हे शंकर! पुण्यक व्रतानुष्ठान का पुण्यफल एक सहस्र राजसूय यज्ञ के समतुल्य है। हे त्रिलोचन! इसमें १००० राजसूय यज्ञ के बराबर धन व्यय होता है, अतः सभी साध्वी इसे नहीं कर सकेंगी। इस पुण्यक व्रत के प्रभाव से स्वयं गोलोकपति कृष्ण पार्वती के गर्भ से आपके पुत्ररूप में जन्म लेंगे। वे कृपानिधि देव स्वयं समस्त देवताओं के ईश्वर हैं। वे तीनों लोक में **गणेश** नाम से प्रख्यात रहेंगे।।८९-९३।।

यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननाशो भवेद्ध्रुवम्।
जगतां हेतुनाऽनेन विघ्ननिघ्नाभिधो विभुः॥९४॥
नानाविधानि द्रव्याणि यस्माद्देयानि पुण्यके।
भुक्त्वा लम्बोदरत्वं च तेन लम्बोदरः स्मृतः॥९५॥
शनिदृष्ट्या शिरश्छेदाद्गजवक्त्रेण योजितः। गजाननः शिशुस्तेन सर्वेषां सर्वसिद्धिदः॥९६॥

वे स्मरण मात्र से निश्चय जगत् के समस्त विघ्नों का नाश करेंगे। तभी उन विभु का नाम **विघ्नहन्ता** प्रसिद्ध होगा। इस पुण्यक व्रत में नाना प्रकार का द्रव्य दिया जायेगा तथा उसका भोजन करके लोगों का उदर बढ़ जायेगा, इसी कारण उनका एक नाम **लम्बोदर** होगा। शनि दृष्टि के कारण उनके मुख के छिन्न हो जाने के कारण वहां गजमुख युक्त किया जायेगा तथा उनका नाम **गजानन** प्रसिद्ध होगा। ये सर्वसिद्धिप्रद होंगे।।९४-९६।।

दन्तभङ्ग परशुना पर्शुरामस्य वै यतः। हेतुना तेन विख्यातचैकदन्ताभिधः शिशुः॥९७॥
पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः। सर्वाग्रे पूजनं तस्य भविता मद्वरेण वै॥९८॥

परशुराम के फरसे का प्रहार होने के कारण उनका एक दांत भग्न होगा। तभी इन शिशु का नाम होगा **एकदन्त**। यह शिशु समस्त देवताओं का तथा मेरा पूज्य होगा। मेरे वर के प्रभाव से इसकी

अग्रपूजा होगी। मनुष्य देवपूजन के पहले इनकी पूजा करके ही विघ्न रहित पूजाफल लाभ करेगा। अन्यथा की गई सभी पूजा व्यर्थ ही सिद्ध होगी।।९७-९८।।

पूजासु सर्वदेवानामग्रे संपूज्य तं जनः। पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा॥९९॥
गणेशं च दिनेशं च विष्णुं शम्भु हुताशनम्। दुर्गामेतान्संनिषेव्य पूजयेद्देवान्तरम्॥१००॥

गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्।
निर्व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने॥१०१॥

मोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्यमुत्तमम्। तत्त्वज्ञानं सुतत्त्वानां बीजं शङ्करपूजानात्॥१०२॥

स्वबुद्धिशुद्धिजननं कीर्तितं वह्निपूजनम्।
विधिसंस्कृतवह्नेस्तु पूजातो ज्ञानतो मृतिः॥१०३॥
दाता भोक्ता च भवति शङ्कराग्निनिषेवणात्।
हरिभक्तिपदं चैव परं दुर्गार्चनं शिवम्॥१०४॥

मनुष्य सभी प्रकार की पूजा के पूर्व में गणेश की पूजा करके निर्विघ्न पूजाफल लाभ करेंगे। अन्यथा उनकी पूजा विफल होगी। गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, अग्नि तथा दुर्गा की पूजा (इसी क्रम से) करके, तब अन्य देवगण की पूजा करनी चाहिए। गणेश पूजा फल से जगत् के सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं। सूर्यपूजा से आरोग्य, विष्णुपूजा से पवित्रता, मोक्ष-पापनाश होता है। यश-ऐश्वर्य बढ़ता है। शिव-पूजा तो तत्वज्ञान तथा सर्व तत्व का बीज है। अग्निपूजा से बुद्धि शुद्ध होती है। जो सविधि संस्कृत अग्निपूजा करता है, वह ज्ञानावस्था तथा बोधयुक्त स्थिति में मृत होता है। शिव तथा अग्नि का पूजक दाता भोक्ता हो जाता है। हे शिव! मंगलमयी दुर्गापूजा करने वाले को भगवद्भक्ति प्राप्त होती है।।९९-१०४।।

विपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना।
एवं क्रमो महादेव कल्पे कल्पेऽस्ति निश्चितम्॥१०५॥
एते शश्वद्विद्यमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः।
आविर्भावतिरोभावौ चैतेषामीश्वरेच्छया॥१०६॥

त्रैलोक्य में इन देवगण की पूजा किये बिना अन्य देव की पूजा न करे। महादेव इस प्रकार कल्प-कल्प में पूजाविधि निश्चित करते हैं। ये देवता कृष्ण नित्य सृष्टिपरायण हैं। ये सदा विद्यमान हैं। सृष्टि का आविर्भाव-तिरोभाव इन प्रभु की इच्छा से होता है।।१०५-१०६।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम सभातले। प्रहृष्टा देवता विप्राः पार्वत्या सह शङ्करः॥१०७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० पुण्यकव्रताज्ञाग्रहणं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

उस देवसभा में यह कह कर श्रीहरि मौन हो गये। सभी देवता, ब्राह्मण, पार्वती, शिव इसे सुन कर हर्षित हो गये।।१०७।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तमोऽध्यायः

व्रतानुष्ठान, श्रीकृष्ण की आज्ञा से पार्वती द्वारा पति को ही दक्षिणारूपेण सनत्कुमार को देना, पुनः पतिलाभार्थ पार्वतीकृत श्रीकृष्ण स्तव

नारायण उवाच

हरेराज्ञां समादाय हरः संहृष्टमानसः। उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम्।।१।।
शिवाज्ञां च समादाय शिवा संहृष्टमानसा। वाद्यं च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते।।२।।
सुस्नाता सुदती शुद्धां बिभ्रती धौतवाससी।
संस्थाप्य रत्नकलशं शुक्लधान्योपरि स्थिरम्।।३।।
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम्।।४।।
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता[1] सती। रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्य मुनिपुङ्गवान्।।५।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हरि की आज्ञा पाकर महादेव ने प्रसन्न मन से पार्वती से भगवान् द्वारा कथित समस्त मंगलमय विषय कह दिया। तदनन्तर महादेव की आज्ञा से भगवती पार्वती ने प्रसन्न अन्तःकरण द्वारा इस मांगलिक व्रतार्थ मंगलवाद्यों का वादन कराया। इसके अनन्तर उत्तम दन्तपंक्ति वाली पार्वती ने उत्तम रूप से स्नान करके शुद्ध होकर धुले वस्त्रद्वय धारण किया। उन्होंने श्वेत धान्य के ऊपर आम्रपल्लव युक्त, फल तथा अक्षत से शोभायमान चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम लिप्त रत्नमय घट स्थापित किया। उसके पश्चात् रत्नों के उत्पत्ति स्थल हिमवान् की पुत्री पार्वती ने नानारत्नभूषिता होकर रत्नमय आसनासीन होकर रत्नसिंहासनों पर बैठे मुनिप्रवरगण का पूजन सम्पन्न किया।।१-५।।

रत्नसिंहासनस्थं च संपूज्य सुपुरोहितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम्।।६।।

---

१. रत्नोदरसुतेति पाठान्तरम्।

संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान्रत्नभूषितान्।
देवान्नरांश्च[१] नागांश्च समर्च्य विधिबोधितम्॥७॥

इसके पश्चात् पार्वती ने रत्नभूषण से भूषित करके पुरोहित की सम्यक् रूप से पूजा किया। उन्होंने रत्नभूषित दिक्पालों को भक्तिभाव से आगे स्थापित करके समागत अन्य देवगण की भी पूजा सम्यक् विधि से किया था। उन्होंने समागत मनुष्यों तथा नागों की भी इसी प्रकार पूजा किया॥६-७॥

समर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितान्॥८॥
वह्निशुद्धैः सुवस्त्रैश्च सद्रत्नैर्भूषणैस्तथा। पूजाद्रव्यैश्च विविधैः पूजितान्पुण्यके मुने॥९॥
समारेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे॥१०॥

हे मुनिवर! तदनन्तर अग्नि जैसे शुद्ध उज्ज्वल वस्त्र, उत्तम रत्न निर्मित भूषण तथा अनेक पूजार्ह द्रव्यों से चन्दन-अगुरु, कुंकुम-कस्तूरी से पार्वती ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की अत्यन्त भक्तिभाव के साथ इस पुण्यक व्रत में पूजन किया। इसके पश्चात् पार्वती ने स्वस्तिवाचन के उपरान्त व्रतारम्भ किया। उस स्थापित मंगल घट में देवी ने अपने इष्टदेवता श्रीकृष्ण का आवाहन किया॥८-१०॥

भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचारांस्तु षोडश।
यानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च॥११॥
प्रददौ तानि सर्वाणि प्रत्येकं फलदानि च। व्रतोक्तमुपहारं च दुर्लभं भुवनत्रये॥१२॥
तच्च सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती।
दत्त्वा द्रव्याणि सर्वाणि वेदमन्त्रेण सा सती॥१३॥
होमं च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषाः।
ब्राह्मणान्भोजयामास पूजयित्वाऽतिथींस्तथा॥१४॥
भोजयामास सा देवी सुव्रते सुव्रता सती। प्रत्यहं सविधानं च चक्रे सा पूर्णवत्सरम्॥१५॥

देवी ने तदनन्तर भक्ति पूर्वक यथाक्रमेण कृष्ण को १६ उपचार प्रदान किया। जो सब वस्तु व्रत के नियमानुसार दी जाती है, देवी ने एक के बाद एक उन फलदायक वस्तुओं को प्रदान किया। सुव्रता भगवती ने इस व्रत में त्रैलोक्य दुर्लभ व्रतोक्त उपहारों को भक्ति के साथ अर्पित किया था। उन्होंने वेदोक्त मन्त्रों से सभी वस्तुओं को निवेदित किया था। तत्पश्चात् तिलयुक्त घृत से तीन लाख होम करा कर पूजित देवताओं, अतिथि एवं ब्राह्मणगण को भोजन भी कराया। उन्होंने अतिथि पूजा भी किया। अर्थात् व्रतकाल में सुव्रता देवी पार्वती ने ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त कराने के पश्चात् अतिथिगण का सत्कार करके उनको भोजन कराया। देवी ने इस प्रकार नित्य एक वर्ष तक विधिवत् यह व्रत किया था॥११-१५॥

२. देवान्तरानागतांश्चेति पाठः क्वाचित्कः।

समाप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः। सुव्रते सुव्रते मह्यं देहि त्वं पतिदक्षिणाम्॥१६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा विलप्य सुरसंसदि। मूर्च्छां प्राप महामाया मायामोहितचेतसा॥१७॥

व्रत समाप्ति के दिन पुरोहित विप्र ने पार्वती से कहा–"हे उत्तम व्रत करने वाली! इस मंगलप्रद व्रत में तुम दक्षिणा रूप से अपने पति को प्रदान करो।" यह सुन कर पार्वती उस देवसभा में विलाप करने लगीं। वे मायामोहित चित्त वाली महामाया उस समय मूर्च्छित हो गईं!॥१६-१७॥

तां च ते मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवाः। शङ्करं प्रेषयामासुर्ब्रह्मा विष्णुश्च नारद॥१८॥
संप्रार्थितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा। शिवः समुद्यमं चक्रे प्रवक्तुं वदतां वरः॥१९॥

हे नारद! उनको मूर्च्छित देख कर मुनिप्रवरगण ने हंसते हुए शंकर, ब्रह्मा तथा विष्णु को देवी के पास भेजा। उस अवसर पर सभी सभासदों ने शिव से कहा कि आप शिवा को प्रबोधित करें। तदनन्तर श्रेष्ठ वक्ता शिव ने पार्वती को प्रबोधित करते हुए कहा–॥१८-१९॥

महादेव उवाच

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः। सांप्रतं चेतनं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु॥२०॥

श्री महादेव कहते हैं–हे भद्रे! उठो। तुम्हारा मंगल होगा। इसमें संशय मत करो। सम्प्रति चैतन्य प्राप्त करके मेरा कथन सुनो॥२०॥

शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाम्।
वक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम्॥२१॥

महादेव ने उन शिवा से यह कह कर जिनके कंठ, ओष्ठ तथा तालु सूख गये थे, उनको अपने वक्ष से सटा लिया। इस प्रकार भगवती को शिव ने चैतन्य किया॥२१॥

हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम्। यशस्करं च फलदं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥२२॥

तदनन्तर शिव भगवती से हितप्रद, सत्य, संक्षेप में वह कहने लगे–जिसका परिणाम सुखदायक होता है। जो यशप्रद तथा फलप्रद है, ऐसा उपदेश पार्वती को देने लगे–॥२२॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्वेदेन निरूपितम्। सर्वसंमतमिष्टं च धर्मार्थं धर्मसंसदि॥२३॥
सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूता च दक्षिणा। यशोदा फलदा नित्यं धर्मिष्ठे धर्मकर्मणि॥२४॥

दैवं वा पैतृकं वाऽपि नित्यं नैमित्तिकं प्रिये।
यत्कर्म दक्षिणाहीनं तत्सर्व निष्फलं भवेत्॥२५॥
दाता च कर्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्।
देहान्ते दैन्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः॥२६॥

(शिव कहते हैं)–हे देवी! वेदों में निरूपित जो कुछ है, वह कहता हूं। वह सर्वसम्मत, प्रिय, नियम धर्म हेतु इस धर्म संसद में कहता हूं। उसे सुनो। हे धर्मिष्ठे! दक्षिणा सभी कर्म का सार है। वह

धर्मकर्म में नित्य यशदायक तथा फलप्रद भी है। हे प्रिये! दैव, पैतृक, नित्य, नैमित्तिक–इनमें से जो भी कार्य क्यों न किया जाये, ये सभी दक्षिणा रहित होने से निष्फल हो जाते हैं। इस प्रकार दक्षिणा रहित कार्य करने वाला कालसूत्र नरकगामी होता है। यह निश्चित जानो। अन्ततः वह दीन होकर शत्रुपीड़ित होता है।।२३-२६।।

दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्कालं तु न दीयते।
तन्मुहूर्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत्॥२७॥
चतुर्गुणा दिनातीते पक्षे शतगुणा भवेत्।
मासे पञ्चशतघ्ना स्यात्षण्मासे तच्चतुर्गुणा॥२८॥

संवत्सरे व्यतीते तु कर्म तन्निष्फलं भवेत्। दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम्[१]॥२९॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं क्षयमाप्नोति पातकात्। धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि॥३०॥

यदि ब्राह्मण को तत्काल दक्षिणा नहीं दी जाती, तब एक मुहूर्त्त व्यतीत हो जाने पर वह दूनी हो जाती है। दिन व्यतीत होने पर चौगुनी तथा १५ दिन बीतने पर सौ गुनी हो जाती है। १ मास व्यतीत होने पर वह दक्षिणा ५०० गुनी, ६ः मास बीतने पर २००० गुनी हो जाती है। १ वर्ष तक यदि दक्षिणा नहीं दी जाती, तब वह कर्म ही निष्फल है तथा वह दाता भी १००० वर्ष नरकगामी होता है। इस पातक से उसके पुत्र-पौत्र-धन-ऐश्वर्य का नाश हो जाता है। वह कर्म धर्मविहीन हो जाने के कारण उस व्यक्ति का धर्म भी नष्ट कहा गया है।।२७-३०।।

विष्णुरुवाच

रक्षस्व धर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि। सर्वेषां च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने॥३१॥

विष्णु कहते हैं–हे धर्मिष्ठे! धर्मज्ञे! पार्वती! इसी धर्मकार्य में तुम अपने स्वधर्म की रक्षा करो। स्वधर्म की रक्षा से ही सब कुछ रक्षित हो जाता है।।३१।।

ब्रह्मोवाच

यश्च केन निमित्तेन न धर्मं परिरक्षति। धर्मे नष्टे च धर्मज्ञे तस्य[२] कर्ता विनश्यति॥३२॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–जो व्यक्ति किसी कारण से धर्मपालन नहीं करता, हे धर्मज्ञे! वह धर्मनष्ट होने के कारण स्वयं भी नष्ट हो जाता है।।३२।।

धर्म उवाच

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय पतिदक्षिणाम्।
मयि स्थिते महासाध्वि सर्वं भद्रं भविष्यति॥३३॥

१. क. ॰र्षशतं शुभे।
२. क. ॰स्य सर्वं वि॰।

धर्मदेव कहते हैं—हे धर्मज्ञे! हे साध्वी! पति को दक्षिणा में देकर मुझ धर्म की रक्षा करो। हे साध्वी! मेरी स्थिति रहने पर सभी शुभ हो जाता है।।३३।।

देवा ऊचुः

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति। वयं तव व्रते पूर्णे कुर्मस्त्वां पूर्णमानसाम्।।३४।।

देवता कहते हैं—हे महासाध्वी! धर्मरक्षा करके व्रत पूर्ण करें। आपका व्रत पूर्ण होने पर हमारा तथा आपका मनोरथ पूरा होगा।।३४।।

मुनय ऊचुः

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम्।
स्थितेष्वस्मासु [१]भुवि ते किमभद्रं भविष्यति।।३५।।

मुनिगण कहते हैं—हे साध्वी! पूर्ण होम (पूर्णाहुति) के अनन्तर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करो। हमारे रहते तुम्हारा अमंगल कैसे हो सकता है?।।३५।।

सनत्कुमार उवाच

शिवे शिवं दहि मह्यं न चेद्व्रतफलं त्यज।
सुचिरं संचितस्यापि स्वात्मनस्तपसः फलम्।।३६।।
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहं तु तत्फलम्।
प्राप्स्यामि यजमानस्य संपूर्णं कर्मणः फलम्।।३७।।

सनत्कुमार कहते हैं—हे शिवे! इस व्रत में दक्षिणा के रूप में मुझे शिव प्रदान करो। यदि ऐसा नहीं कर सकती, तब मुझे इस व्रत का फल तथा दीर्घकाल में संचित अपनी तपस्या का सम्पूर्ण फल प्रदान करो। हे साध्वी! इससे कर्म की दक्षिणा रहित स्थिति में भी इस याग का तथा यजमान का सम्पूर्ण फल अपने आप मुझे मिल जायेगा।।३६-३७।।

पार्वत्युवाच

किं कर्मणा मे देवेशः किं मे दक्षिणया मुने।
किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्ता च दक्षिणा।।३८।।
वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भुमिर्न चार्च्यते।
गते च कारणे कार्यं कुतः सस्यं कुतः फलम्।।३९।।

देवी पार्वती कहती हैं—हे देवेश! हे मुनि! मैं पुत्र तथा धर्म को लेकर क्या करूंगी? कर्म-धर्म से तब क्या प्रयोजन जब पति को दक्षिणा में देना पड़ेगा! यदि भूमि की पूजा न हो पाये, तब वृक्ष पूजा

---

१. ख. धर्मज्ञे कि०।

का क्या प्रयोजन? यदि मैं भूमि का त्याग कर दूं अथवा वृक्ष का त्याग कर दूं, तब शस्य अथवा फल कैसे होगा? (भूमि बिना फसल तथा वृक्ष बिना फल कैसे उत्पन्न होगा?)। कारण ही जब नष्ट हो जाये, तब क्या कार्य हो सकता है?।।३८-३९।।

प्राणास्त्यक्ताः स्वेच्छया चेद्देहैः स्यात्किं प्रयोजनम्।
दृष्टिशक्तिविहीनेन चक्षुषा किं प्रयोजनम्॥४०॥
शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनां च सुरेश्वराः। यदि भर्ता व्रते देयं किं व्रतेन सुतेन वा॥४१॥
भर्तुरंशश्च तनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यं च निष्फलम्॥४२॥

यदि स्वेच्छा से प्राण छोड़ दिया जाये, तब देह का क्या प्रयोजन? दृष्टिशक्ति रहित नेत्र का क्या प्रयोजन? हे सुरेश्वर! साध्वी पत्नी के लिये तो १०० पुत्रों से भी बढ़ कर स्वामी होता है। यदि व्रती दक्षिणा में स्वामी को प्रदान करना है, तब व्रत तथा पुत्र की क्या आवश्यकता? पुत्र का कारण तो नारी का पति होता है। पुत्र तो पति का अंश मात्र है। जहां मूल पूंजी ही नष्ट हो जाये, वहां वाणिज्य तो नष्ट हो जायेगा।।४०-४२।।

विष्णुरुवाच

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः।
नष्टे धर्मे च धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेन वा॥४३॥

विष्णुदेव कहते हैं—यद्यपि स्वामी स्त्री के लिये पुत्र से बढ़ कर माना गया है, तथापि धर्म तो स्वामी से भी श्रेष्ठ है। जब धर्म ही नष्ट हो गया, तब पति-पुत्र का क्या प्रयोजन रह गया?।।४३।।

ब्रह्मोवाच

स्वामिनश्च परो धर्मो धर्मात्सत्यं च सुव्रते।
सत्यं सङ्कल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम्॥४४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे सुव्रते! स्वामी से श्रेष्ठ है धर्म तथा धर्म से भी श्रेष्ठ है सत्य। तुमने जो व्रत किया है, वह तो सत्यसंकल्पित कर्म है। इसे भ्रष्ट मत करो।।४४।।

पार्वत्युवाच

निरूपितश्च वेदेषु स्वशब्दो धनवाचकः।
तद्यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञ शृणु मद्वचः॥४५॥
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामितां लभेत्।
अहोऽव्यवस्था भवतां वेदज्ञानामबोधतः[1]॥४६॥

पार्वती कहती हैं—वेद में 'स्व' शब्द धनवाचक निरूपित किया गया है। वह धन जिसका है,

१. क. ०ज्ञानमबोधताम्।

वही स्वामी है। हे वेदज्ञ! मेरा कथन सुने। स्वामी ही धनदाता है। धन कदापि स्वामी दाता नहीं है। आप लोग की कैसी विचित्र अव्यवस्था है, यह कैसी अज्ञानता है, जो आप सब कह रहे हैं?।।४५-४६।।

धर्म उवाच

पत्नी विनाऽन्यं स्वं साध्वि स्वामिनं दातुमक्षमा।
दम्पती ध्रुवमेकाङ्गौ द्वयोर्दाने द्वकौ समौ॥४७॥

धर्म कहते हैं—हे साध्वी! पत्नी अन्य धन को भले ही दे सकती है, परन्तु पति देने में असमर्थ है। दम्पति (पति-पत्नी) मिल कर एक अंग हैं। दोनों के दान में दोनों की स्थिति एक जैसी ही है।।४७।।

पार्वत्युवाच

पिता ददाति जामात्रे स च गृह्णाति तत्सुताम्।
न श्रुतं विपरीतं च श्रुतौ श्रुतिपरायणाः॥४८॥

देवी पार्वती कहती हैं—हे श्रुतिपरायण विद्वानों! पिता तो कन्या को जामाता दान देते हैं। वह जामाता उस पिता की कन्या को ग्रहण करता है। इसके विपरीत कदापि नहीं सुना गया।।४८।।

देवा ऊचुः

बुद्धिस्वरूपा त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वयं त्वया। वेदज्ञे वेदवादेषु के वा त्वां जेतुमीश्वराः॥४९॥
निरूपिता पुण्यके तु व्रते स्वामी च दक्षिणा।
श्रुतौ श्रुतो यः स धर्मो विपरीतो ह्यधर्मकः॥५०॥

देवगण कहते हैं—हे दुर्गे! आप बुद्धिरूपा हैं। हम तो आपसे बुद्धिलाभ करते हैं। हे वेदज्ञे! आपको वेदवाद में कौन पराजित कर सकता है? इस पुण्यक व्रत में स्वामी की दक्षिणा मांगी गयी है। वेद में जो सुना गया, वही धर्म है। उससे विपरीत जो कुछ है, वह अधर्म है।।४९-५०।।

पार्वत्युवाच

केवलं वेदमाश्रित्यः कः करोति विनिर्णयम्।
बलवाँल्लौकिको वेदाल्लोकाचारं च कस्त्यजेत्॥५१॥
वेदे प्रकृतिपुंसोश्च गरीयान्पुरुषो ध्रुवम्।
निबोधत सुराः प्राज्ञा बालाऽहं कथयामि किम्॥५२॥

देवी पार्वती कहती हैं—केवल वेद का आश्रय लेकर कौन निर्णय कर सकेगा? वेद से लोकाचार बली है। लोकाचार का त्याग कौन कर सकेगा? वेद में निश्चित रूप से प्रकृति से पुरुष को श्रेष्ठ कहते हैं। हे देवताओं! आप लोग स्वयं विचार करिये। मैं बालिका क्या कह सकती हूं?।।५१-५२।।

बृहस्पतिरुवाच

न पुमांसं विना सृष्टिर्न साध्वि प्रकृतिं विना।
श्रीकृष्णश्च द्वयोः स्त्रष्टा समौ प्रकृतिपूरुषौ॥५३॥

बृहस्पति कहते हैं–हे साध्वी! पुरुष के बिना सृष्टि नहीं हो सकती। उसी प्रकार प्रकृति के बिना भी सृष्टि केवल पुरुष नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण तो प्रकृति तथा पुरुष, इन दोनों के स्त्रष्टा हैं। अतः ये दोनों समान हैं।।५३।।

पार्वत्युवाच

[१]सर्वस्त्रष्टा च यः कृष्णः सोंऽशेन सगुणः पुमान्।
पुनान्नारीयान्प्रकृतेस्तथैव न ततश्च सा॥५४॥

देवी पार्वती कहती हैं–जो कृष्ण सबके स्त्रष्टा हैं, वे अपने अंश से सगुण पुरुषरूपेण आविर्भूत होते हैं। पुरुष प्रकृति से तुलनात्मकरूपेण श्रेष्ठ कहा गया, तथापि पुरुष से प्रकृति श्रेष्ठ नहीं होती।।५४।।

एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयस्तत्र संसदि। रत्नेन्द्रसाररचितमाकाशे ददृशू रथम्॥५५॥
पार्षदैः संपरिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भुजैः। वनमालापरिवृतै रत्नभूषणभूषितैः॥५६॥
अवरुह्य ततो[२] यानादाजगाम सभातलम्। तुष्टुवुस्तं सुरेन्द्रास्ते देवं वैकुण्ठवासिनम्॥५७॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशं चतुर्भुजम्। लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम्॥५८॥
सुखदृश्यमभक्तानामदृश्यं कोटिजन्मभिः।
कोटिकन्दर्पलावण्यं कोटिचन्द्रसमप्रभम्॥५९॥
अमूल्यरत्नचितचारुभूषणभूषितम्। सेव्यं ब्रह्मादिदेवैश्च सेवकैः सततं स्तुतम्॥६०॥

तभी उस सभा के देवता तथा मुनिगण ने आकाश पद में श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित एक रथ देखा, जो श्यामवर्ण, वनमालाधारी, रत्नाभूषणभूषित पार्षदों से घिरा था। तभी नारायण आनंद के साथ उस रथ से उतरे तथा वहां सभास्थल पर आये। तभी वहां स्थित देवगण उन वैकुण्ठस्वामी शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज परमेश्वर का स्तव करने लगे। वे प्रभु लक्ष्मी तथा सरस्वती के पति, शान्त, मनोहर, देखने में सुखप्रद होने पर भी अभक्तों हेतु अदृश्य, करोड़ों कामदेव के तुल्य रूपधारी, श्यामवर्ण, कोटि चन्द्र के समान प्रभाशाली, अमूल्य रत्नों से रचित, उत्तम भूषणों से भूषित, ब्रह्मादि देवगण से सेवित सर्वदा सेवकों द्वारा स्तुत थे।।५५-६०।।

तद्वासा संपरिच्छन्नैर्वेष्टितं च सुरर्षिभिः। वासयामास तं ते च रत्नसिंहासने वरे॥६१॥
तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मशक्तिशिवादयः। संपुटाञ्जलयः सर्वे पुलकाङ्गाश्रुलोचनाः॥६२॥

---

१. क. यः कृष्णः प्रकृतेः स्त्रष्टा सो०।
२. ख. मुदा।

सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरया गिरा। प्रबोधितः सुबोधज्ञः प्रवक्तुमुपचक्रमे॥६३॥

उनको देवर्षिगण घेरे हुए थे, जो इन प्रभु की ही कान्ति से चारों ओर से आच्छन्न थे। वहां ब्रह्मा, शक्ति, शिवादि ने शिर नत करके उनको प्रणाम किया तथा श्रेष्ठ रत्नसिंहासनासीन कराने के अनन्तर उनको प्रणाम करने लगे। सभी हाथ जोड़ कर उनके समक्ष पुलकित तथा अश्रुपूर्ण नेत्र हो रहे थे। उस समय मुस्कान के साथ मधुर वाणी से प्रभु ने समस्त वृत्तान्त पूछा तथा वे सुबोधयुक्त नारायण देव सभी तथ्य से अवगत होकर कहने लगे–६१-६३।।

नारायण उवाच

सह बुद्ध्या बुद्धिमन्तो न वक्तुमुचितं सुराः।
सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तो हि जीविनः॥६४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत्।
सत्यं सत्यं विना मां च मया शक्तिः प्रकाशिता॥६५॥
आविर्भूता च सा मत्तः सृष्टौ देवी मदिच्छया।
तिरोहिता च साऽशेषे सृष्टिसंहरणे मयि॥६६॥

श्री नारायण प्रभु कहते हैं–हे देवताओं! बुद्धिमान लोग तुल्य बुद्धि वालों द्वारा उपदिष्ट नहीं हो पाते। इस विश्व में सभी जीव शक्ति द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। यह निश्चित कहता हूं कि ब्रह्मा से तृण पर्यन्त समस्त जगत् प्रकृति ने उत्पन्न किया है। यह तृण से ब्रह्मा तक का जगत् प्राकृतिक है। यह सत्य है, सत्य है कि बिना पुरुष के ही यह शक्ति प्रकाशिता है। ऐसी यह मायारूपा शक्ति देवी सृष्टिकाल में मेरी इच्छा से मुझसे ही आविर्भूत हो गई। अन्ततः यह संहारकाल में मुझमें ही लीन हो जाती है।।६४-६६।।

प्रकृतिः सृष्टिकर्त्री च सर्वेषां जननी परा।
मम तुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता॥६७॥
सुचिरं तपसा तप्तं शंभुना ध्यायता च माम्।
तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी॥६८॥

यही प्रकृति सृष्टि करने वाली तथा सबकी जननी तथा परा है। यह मेरी माया मेरे ही समान होने के कारण नारायणी कही गई है। श्री शंभु ने मेरा ध्यान करते हुए दीर्घकालीन तप किया था। तभी तप के फलस्वरूप मैंने इस नारायणी माया को उनको दे दिया था।।६७-६८।।

व्रतं च लोकशिक्षार्थमस्या न स्वार्थमेव च। स्वयं व्रतानां तपसां फलदात्री जगत्त्रये॥६९॥

मायया मोहिताः सर्वे किमस्या वास्तवं व्रतम्।
साध्यमस्या व्रतफलं कल्पे कल्पे पुनः पुनः॥७०॥

सुरेश्वरा मदंशाश्च ब्रह्मशक्तिमहेश्वराः। कलाः कलांशरूपाश्च जीविनश्च सुरादयः॥७१॥

देवी दुर्गा ने जिस व्रत का अनुष्ठान किया है, वह उन्होंने लोकहित के ही लिये किया है। भगवती दुर्गा का इसमें तनिक भी स्वार्थ नहीं है। ये तो स्वयं त्रैलोक्य में तप का फल देने वाली हैं। इनकी माया से सभी मोहित हैं। आप सब भी मोहित हैं। क्या यह इनका अपना वास्तविक व्रत है? ये तो कल्प-कल्प में आविर्भूत होकर केवल व्रत का बाह्यतः अनुष्ठान करती हैं। हे सुरेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर साक्षात् मेरे अंश हैं। अन्य देवता तथा जीवगण कोई तो मेरे अंश हैं, कुछ अंश के भी अंश हैं, वे भी मेरे ही अंशरूप हैं।।६९-७१।।

मृदा विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाऽक्षमः।
विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः॥७२॥
विना शक्त्या तथाऽहं च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः। शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसंमता॥७३॥

कुम्हार जिस प्रकार मिट्टी के बिना घट नहीं बना सकता, स्वर्णकार स्वर्ण बिना कुण्डल आदि आभूषण निर्माण नहीं कर सकता, उसी प्रकार शक्ति के बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता। सृष्टिकार्यार्थ शक्ति ही प्रधान है। यह समस्त दर्शनशास्त्र का मत है।।७२-७३।।

अहमात्मा हि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षी च देहिनाम्।
देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराः पञ्चभौतिकाः॥७४॥
अहं नित्यं शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः[१]।
सर्वाधारा सा प्रकृतिः सर्वात्माऽहं जगत्सु च॥७५॥
अहमात्मा मनो ब्रह्मा ज्ञानरूपो महेश्वरः।
पञ्चप्राणाः स्वयं विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीसूवरी॥७६॥

मैं आत्मा, निर्लिप्त, अदृश्य तथा देहधारियों का साक्षी हूं। सभी देह नश्वर, पांचभौतिक, प्राकृतिक है। मैं नित्य देह का अधिष्ठाता हूं तथा भक्तों के प्रति कृपा हेतु देह धारण करता हूं। इस त्रैलोक्य में प्रकृति सबका आधार है। मैं सबका आत्मा हूं। ब्रह्मा मन हैं। महेश्वर ज्ञानरूप हैं। विष्णु स्वयं पंचप्राण हैं। ईश्वरी प्रकृति ही बुद्धिरूपा है।।७४-७६।।

[२]मेधानिद्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः।
सा च शैलेन्द्रकन्यैषात्विति वेदे निरूपितम्॥७७॥
अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातनः। गोपीगोपैः परिवृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम्।
चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मीशः पार्षदैर्वृतः॥७८॥

---

१. भक्तानुग्रहविग्रह इति क्वचित् पाठः।
२. क. शक्ति०।

प्रकृति की कलायें हैं—मेधा, निद्रा आदि। यह प्रकृति हिमालय की पुत्री हैं। यह वेद में निरूपित है। मैं वैकुण्ठति, गोलोकनाथ सनातन हूं। मैं गोलोक में द्विभुज तथा गोप-गोपीगण से घिरा रहता हूं। लक्ष्मीपति चतुर्भुज रूप हैं, जो पार्षदों से घिरे रहते हैं।।७७-७८।।

ऊर्ध्वं परश्च वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनात्।
ममाऽऽश्रयश्च गोलोको यत्राहं[१] गोपिकापतिः।।७९।।
व्रताराध्यः स द्विभुजः स च तत्फलदायकः।
यद्रूपं चिन्तयेद्यो हि तच्च तत्फलदायकः।।८०।।
व्रतं पूर्णं कुरु शिवे शिवां दत्त्वा च दक्षिणाम्।
पुनः समुचितं मूल्यं दत्त्वा नाथं ग्रहीष्यसि।।८१।।
विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः।
द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे।।८२।।
यज्ञपत्नीं यथा दातुं क्षमः स्वामी सदैव तु।
तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम्।।८३।।

गोलोक मेरा धाम है, जो वैकुण्ठ से ५० कोटि योजन ऊर्ध्व में स्थित है। वहां मैं ही गोपीनाथ रूप से रहता हूं। इस व्रत की आधाररूपा है मेरी द्विभुज मूर्त्ति। मैं तद्रूप फल व्रती लोगों को देता हूं। जो जैसे फल की कामना करता है, उसे वैसा ही फल प्रदान कर देता हूं। हे शिवे! ब्राह्मण को दक्षिणा देकर व्रत पूर्ण कर दो। पुनः समुचित मूल्य देकर उनको प्राप्त करो। गौयें विष्णु की देह ही हैं। शिव भी विष्णु की देह हैं। अतः ब्राह्मण को गौ मूल्यरूपेण देकर स्वयं अपने स्वामी को पुनः प्राप्त करो। श्रुति का मत है कि जिस प्रकार से स्वामी यज्ञ में पत्नी को दान कर सकता है, उसी प्रकार पत्नी भी यज्ञ में स्वामी दान कर सकती है।।७९-८३।।

इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत। हृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यता।।८४।।

कृत्वा शिवा पूर्णहोमं सा शिवं दक्षिणां ददौ।
स्वस्तीत्युक्त्वा च जगाह कुमारो देवसंसदि।।८५।।

यह सभा में कह कर नारायण वहां से अन्तर्हित् हो गये। सभी देवता, सभासद भी हर्षित हो गये और देवी भगवती दुर्गा भी प्रसन्न होकर दक्षिणा देने हेतु उद्यत हो गयीं। उस समय देवसभा में शिवा ने पूर्णाहुति देकर शिव को दक्षिणारूपेण प्रदान कर दिया। उसी देवसभा में सनत्कुमार ने भी "स्वस्ति" कह कर शिव को दानरूपेण ग्रहण कर लिया!।।८४-८५।।

उवाच दुर्गा संत्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। कृताञ्जलिपुटा विप्रं हृदयेन विदूयता।।८६।।

---

१. क. कमलाप०।

तभी दुर्गा संत्रस्त हो गईं। उनका कण्ठ-तालु-ओष्ठ शुष्क हो गया। उन्होंने अत्यन्त दुःख हृदय से प्रकट करते हुए ब्राह्मण से कहा-।।८६।।

पार्वत्युवाच

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्।
गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज।।८७।।
तदा दास्यामि विप्रेभ्यो दानानि विविधानि च।
आत्महीनो हि देहश्च कर्म किं कर्तुमीश्वरः।।८८।।

देवी पार्वती कहती हैं-हे द्विज! गौ मूल्य तथा मेरे पति का मूल्य वेद में समान कहा गया है। आप एक लाख गौ लेकर मेरे स्वामी को दे दीजिये। तब मैं ब्राह्मणों को विविध दान दे सकूंगी। आत्मा रहित देह से क्या कोई कार्य हो सकेगा?।।८७-८८।।

सनत्कुमार उवाच

गवां लक्षेण मे देवि[1] विप्रस्य किं प्रयोजनम्।
[2]दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च।।८९।।
स्वस्य स्वस्य स्वयं दाता लोकः सर्वो जगत्त्रये।
कर्तुरेवेप्सितं कर्म भवेत्किं वा परेच्छया।।९०।।
दिगम्बरं पुरः कृत्वा भ्रमिष्यामि जगत्त्रयम्।
बालकानां बालिकानां समूहस्मितकारणम्।।९१।।

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं-हे देवी! मैं ब्राह्मण हूं। एक लाख गौ लेकर क्या करूंगा? क्या कोई व्यक्ति कुछ गौयें लेकर अमूल्य रत्न वापस कर देता है? इस तीनों लोक में सभी लोग अपने-अपने धन को देने वाले स्वयं होते हैं (अर्थात् अपने धन के स्वामी स्वयं होते हैं, अपने धन का जो चाहे, वही करते हैं)। क्या व्यक्ति का अपना इच्छित कर्म दूसरे की इच्छा से होता है? (अर्थात् मैं इन दान में मिले का चाहे जो करूं)। मैं इन नग्न शिव को आगे करके तीनों लोकों का भ्रमण करूंगा, इससे बालक-बालिकायें इनको देख कर हंसेंगे। यह उनके हास्यरूपी मनोरंजन के कारण हो जायेंगे।।८९-९१।।

इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीत्वा शङ्करं मुने। संनिधौ वासयामास तेजस्वी देवसंसदि।।९२।।

हे मुनिवर! यह कह कर ब्रह्मा के पुत्र तेजस्वी सनत्कुमार ने उस देवसंसद में यह कहा तथा शिव को अपने निकट बैठा लिया।।९२।।

दृष्ट्वा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती। समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठौष्ठतालुका।।९३।।

१. ख. वल्गुना।
२. क. ददाति विद्रोऽमूल्यं च गवां प्रत्यर्पणेन कः।

विचिन्त्य मनसा साध्वीत्येवमेव दुरत्ययम्।
न दृष्टोऽभीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं व्रते[१]॥९४॥

सनत्कुमार को जब देवी पार्वती ने शिव को पकड़ कर निकट बैठाते देखा, तभी देवी पार्वती का कंठ, ओंठ, तालु दुःख के कारण शुष्क हो उठा। उन भगवती ने विचार किया कि यह क्या हो गया? न तो इष्टदेव कृष्ण का दर्शन मिला, न तो व्रतफल ही मिला, उलटे ऐसी दुर्गति हो रही है। भगवती ने देहत्याग का निर्णय ले लिया था।।९३-९४।।

एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा। सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम्॥९५॥
कोटिसूर्यप्रभोर्ध्वं च प्रज्वलन्तं दिशो दश। कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम्॥९६॥
सर्वाश्रयं गणाच्छन्नं विस्तीर्णं मण्डलाकृतिम्।
तच्च दृष्ट्वा भगवतस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च॥९७॥

तभी पार्वती सहित समस्त देवगण को आकाश में एक उज्ज्वल तेजराशि दृष्टिगोचर होने लगी! वह तेजराशि ऊर्ध्वगामी, कोटिसूर्यसमप्रभ थी। वह तेज दसों दिशाओं को उज्ज्वल कर रहा था। वह तेज तो देवगण युक्त, सर्वाश्रय स्वरूप, गणों के द्वारा आच्छन्न कैलास पर्वत के समक्ष विस्तीर्ण तथा मण्डलाकार स्थित हो गया। भगवान् को इस प्रकार प्रकट देखकर देवगण उनकी क्रमशः स्तुति करने लगे।।९५-९७।।

विष्णुरुवाच

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यल्लोमविवरेषु च।
सोऽयं ते षोडशांशश्च के वयं यो महाविराट्॥९८॥

श्रीविष्णु कहते हैं–जिनके रोम के छिद्रों में समस्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं, वह महाविराट् तो आपका मात्र १/१६वां भाग है।।९८।।

ब्रह्मोवाच

वेदापयुक्तं दृश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर। स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः॥९९॥

श्री ब्रह्मा कहते हैं–हे ईश्वर! वेदोक्त दृश्य पदार्थ है, मैं तो मात्र उसी की स्तुति कर सकने में समर्थ हूं। उससे परे जो आपका रूप है (जो दृष्टिगोचर ही नहीं होता) उसकी स्तुति करने की शक्ति मुझमें नहीं है। कैसे मैं आपकी स्तुति करूं?।।९९।।

महादेव उवाच

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरं च किम्।
सर्वानिर्वचनीयं तं त्वां च स्वेच्छामयं विभुम्॥१००॥

---

१. न प्राप्तफलं व्रतम् इति वा पाठः।

महादेव कहते हैं–मैं तो मात्र ज्ञान का अधिष्ठातृ देवता मात्र हूं। जो ज्ञान के परे अनिर्वचनीय, स्वेच्छामय प्रभु व्यापक रूप हैं, मैं उनकी कैसे स्तुति कर सकूंगा?।।१००।।

धर्म उवाच

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः।
किं स्तौमि तेजोरूपं तद्भक्तानुग्रहविग्रहम्।।१०१।।

धर्मदेव कहते हैं–आप अदृश्य रूप का दर्शन प्राणीगण आपका अवतार होने पर ही देख सकते हैं। आप तेजरूप तथा भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु मूर्त्ति धारण करते हैं, ऐसे देवता की क्या स्तुति करूं?।।१०१।।

देवा ऊचुः

के वयं त्वत्कलांशाश्च किं वा त्वां स्तोतुमीश्वराः।
स्तोतुं न शक्ता वेदा यं न शक्ता सरस्वती।।१०२।।

सभी देवता कहते हैं–हम तो आपके कलांश रूप मात्र हैं। आपकी स्तुति कर सकने में वेद तथा सरस्वती भी समर्थ नहीं हैं। अतः हम आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकेंगे?।।१०२।।

मुनय ऊचुः

वेदान्पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम्।
स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां वाङ्मनसयोःपरम्।।१०३।।

मुनिगण कहते हैं–हम तो मात्र वेद के अध्ययन से विद्वान् बन सके हैं। आप तो वेद के कारण हैं, मन-वाणी से परे हैं। हम आपका स्तव किस प्रकार से कर सकते हैं? भगवती वाणी भी आपकी स्तुति नहीं कर सकतीं। मात्र वेद पढ़ कर हम कैसे आपकी स्तुति कर सकेंगे?।।१०३।।

सरस्वत्युवाच

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ते वेदवादिनः।
किञ्चिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोः परम्।।१०४।।

देवी सरस्वती कहती हैं–वेदज्ञगण मुझे वाक् की अधिष्ठात्री देवी कहते हैं! आप तो मन-वाणी से अतीत हैं, अतः मुझे आपकी स्तुति कर सकने की शक्ति ही नहीं है।।१०४।।

सावित्र्युवाच

वदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा।
किं स्तोमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम्।।१०५।।

देवी सावित्री कहती हैं–हे नाथ! भले ही मैं वेदमाता हूं, तथापि पूर्वकाल में आपकी ही कला से मेरी सृष्टि हुई थी! मैं स्त्री स्वभाव आप जैसे सभी कारणों के भी कारण की स्तुति कैसे करूं?१०५।।

लक्ष्मीरुवाच

त्वदंशविष्णुकान्ताऽहं जगत्पोषणकारिणी।
किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां बीजकारणम्॥१०६॥

श्री लक्ष्मी कहती हैं—मैं आपके अंशभूत विष्णु की पत्नी हूं। आपकी कला से सृष्ट मैं जगत् का पोषण करती हूं। मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकती हूं?॥१०६॥

हिमालय उवाच

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम्।
स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमुक्षमः॥१०७॥

हिमाचल कहते हैं—हे प्रभु! मैं तो कर्मणा अत्यन्त स्थावर हूं। लोग मुझ पर हंसते हैं। मैं क्षुद्र पाषाण होकर भी आपकी स्तुति अपनी असमर्थता के कारण इच्छा होने पर भी नहीं कर पा रहा हूं। समझ में नहीं आता कि क्या स्तुति करूं?॥१०७॥

क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विररमुर्मुने। देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यताः॥१०८॥
धौतवस्त्रा जटाभारं बिभ्रती सुव्रता व्रते। प्रेरिताः परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च॥१०९॥
ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्तिमती सती।
तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम्॥११०॥

हे मुनिवर! एवंविध एक-एक लोग स्तव करके विरत हो गये। तत्पश्चात् व्रत के कारण से धुले वस्त्रधारिणी, जटायुता, ज्वलन्त दीपशिखा के समान, मूर्त्तिमती, तेजः रूपा, तपस्या का फल प्रदान करने वाली सती पार्वती महादेव द्वारा प्रेरित होकर उन सर्वकारण व्रताराध्य परमात्मा का स्तव करने लगीं॥१०८-११०॥

पार्वत्युवाच

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी।
के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः॥१११॥
त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति ते कलाः।
त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः॥११२॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात्स्थूलतमो महान्।
विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातनः॥११३॥

देवी पार्वती कहती हैं—हे कृष्ण! आप तो मुझसे अवगत हैं, तथापि मैं आपको जान सकने में समर्थ नहीं हूं। समस्त वेद, वेदज्ञ, वेदकर्त्ता भी क्या आपको जानते हैं? जो साक्षात् आपके अंशस्वरूप हैं, वे तक आपको नहीं जान पाते, मैं तो आपके अंश की अंश हूं, मैं आपको कैसे जान सकती हूं?

अपना तत्व मात्र आप ही जानते हैं। उसे अन्य कोई कैसे जान सकेगा? आप तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। आप अव्यक्त, स्थूल से भी स्थूलतर तथा महान् हैं। आप ही विश्व हैं, आप विश्वरूप, विश्वबीज तथा सनातन हैं।।१११-११३।।

कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम्।
तेजःस्वरूपो भगवान्निर्विकारो निराश्रयः॥११४॥
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामः परात्परः।
प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च॥११५॥
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे।
प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च त्वदन्यो न क्वचिद्भवेत्॥११६॥

आप कार्य, कारण, कारण के भी कारण, तेजरूप, प्रभु, निर्विकार, निराश्रय, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, स्वात्माराम, परात्पर, प्रकृति के ईश्वर, विराट् के बीजरूप तथा स्वयं विराट्रूप भी हैं। आप अपनी ही कला द्वारा सृष्टि करने के लिये प्राकृतिक एवं सगुण हो जाते हैं। आप ही प्रकृति, पुरुष हैं। आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है!।।११४-११६।।

जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकम्।
कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः॥११७॥
ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरि यत्।
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्॥११८॥

आप ही जीव हैं। आप ही साक्षी, भागी भी हैं। आप तो अपने ही प्रतिबिम्ब हैं। आप ही कर्म हैं, आप ही कर्मबीज तथा कर्मफलदाता भी हैं। योगी लोग आपके अमूर्त्त तेज का ध्यान करते हैं। कोई-कोई आपके चतुर्भुज शान्त मनोहर लक्ष्मीपति रूप का चिन्तन करते हैं।।११७-११८।।

वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्॥११९॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं [1]श्यामसुन्दरम्।
शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम्॥१२०॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते संततं मुदा।
ध्यायन्ति योगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनं विना॥१२१॥

वैष्णव लोग आपके साकार, कमनीय, मनोहर, शंख-चक्र-गदाधारी पीताम्बर रूप का चिन्तन करते हैं। द्विभुज, कमनीय, किशोर, श्यामसुन्दर, शान्त, गोपांगनाकान्त, रत्नाभूषणभूषित अथच तेजस्वीरूप आपकी सेवा आपके भक्तगण आनन्द के साथ सर्वदा करते हैं। योगीगण जिनका सदा चिन्तन करते हैं, वह परम तेजस्वी दूसरा और कौन हो सकता है (अर्थात् वह आप ही हैं)।।११९-१२१।।

१. कामं।

तत्तेजो विभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा।
आविर्भूता सुराणां च वधाय ब्रह्मणा स्तुता॥१२२॥
नित्या तेजः स्वरूपाऽहं धृत्वा वै विग्रहं विभो।
स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता॥१२३॥
मायया तव मायाऽहं मोहयित्वाऽसुरान्पुरा।
निहत्य सर्वाञ्छैलैन्द्रमगमं तं हिमालयम्॥१२४॥

मैं पूर्वकाल में असुरवधार्थ ब्रह्मा द्वारा स्तुत होकर आपका तेज धारण करने वाले देवगण के तेज से आविर्भूत हो गई थी। हे विभु! इसके पश्चात् मैंने नित्या, आपकी तेजस्वरूपा होकर मनोहर स्त्री रूप धारण किया। इस प्रकार मैं सुन्दर रमणीरूपेण आविर्भूत हो गई। मैं आपकी माया स्वरूपा हूं। मैंने माया द्वारा इन असुरों को मोहित किया तथा उनका वध करके हिमालय पर्वत चली गई।।१२२-१२४।।

ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः।
अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री पूर्वजन्मनि॥१२५॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाऽहं शिवनिन्दया।
अभवं शैलजायायां [1]शैलाधीशस्य कर्मणा॥१२६॥

तदनन्तर तारक द्वारा पीड़ित होने पर देवगण ने मेरी स्तुति किया। अतः मैं पूर्वजन्म में दक्षपुत्री होकर जन्म लेकर शिवपत्नी हो गई। तदनन्तर जब मैंने दक्षयज्ञ में पति की निन्दा श्रवण किया, तब मैंने देहत्याग किया और कर्मवशात् मैंने हिमालय की पत्नी के उदर से जन्मलाभ किया।।१२५-१२६।।

अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि।
पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः॥१२७॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं देवमायया। स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता॥१२८॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि सांप्रतम्।
देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा॥१२९॥

इस जन्म में मैंने दीर्घकालीन कठोर तप करके शिव को प्राप्त किया है। महायोगी विभु शिव ने ब्रह्मा की प्रार्थना सुन कर मेरा पाणिग्रहण किया था, तथापि देवगण की माया से मैं महादेव का संभोगजनित वीर्य प्राप्त नहीं कर सकी। हे देवेश! अतएव पुत्र के अभाव के कारण दुःखी होकर मैं आपकी स्तुति कर रही हूं। इस व्रत द्वारा मैंने आप जैसा पुत्र पाने की इच्छा किया है। उधर देवगण ने अंगों सहित वेद के अनुसार इस व्रत में अपने पति की ही दक्षिणा देना विहित कर दिया।।१२७-१२९।।

श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मे कर्तुमर्हसि।
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद॥१३०॥

१. क. शैलजा च स्वक॰।

भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः। सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम्॥१३१॥

हे प्रभो! आप कृपासागर हैं। यह सुन कर मेरे ऊपर कृपा करिये। हे नारद! पार्वती इतना कह कर मौन हो गईं। जो व्यक्ति इस भारत में संयत होकर पार्वती कृत इस स्तव का श्रवण करेगा, वह निश्चय ही विष्णुतुल्य परम पराक्रमी सत्पुत्र लाभ करता है।।।१३०-१३१।।

संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः। सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः॥१३२॥

एक वर्ष तक हविष्यान्न भोजी रह कर भक्ति पूर्वक हरि की अर्चना करे। वह इस पुण्यमय व्रत का फल लाभ करता है। इसमें कोई संशय ही नहीं है।।१३२।।

कृष्णस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्सर्वसंपत्तिवर्धनम्।
सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम्॥१३३॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम्। हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिसुखप्रदम्॥१३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रते पतिदाने पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

हे ब्रह्मन्! यह कृष्ण स्तव सर्वसम्पत्तिवर्द्धक है। यह सुखप्रद, मोक्षप्रद साररूप तथा नारी के लिये पति सौभाग्य बढ़ाने वाला भी है। यह समस्त प्रकार के सौन्दर्य का बीज रूप, यशवर्द्धक है। यह हरिभक्तिप्रदाता, तत्वज्ञान प्रदाता तथा बुद्धि बढ़ाने वाला भी है।।१३३-१३४।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अथाष्टमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण द्वारा पार्वती को वर प्राप्ति, सनत्कुमार से पार्वती को पति प्राप्ति तथा गणेश जन्म

नारायण उवाच

पार्वत्याः स्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः।
स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम्॥१॥
स्तुत्वा देवी ध्यानपरा कृष्णसंलग्नमानसा। ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सर्वमोहनम्[1]॥२॥

१. रूपं संसारमोहनम् इति क्वचित् पाठः।

सद्रत्नसाररचिते हीरकेण परिष्कृते। युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरमे॥३॥
पीतांशुकं वह्निशुद्धं वरं वंशकरं परम्। वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम्॥४॥
किशोरवयसं चित्रवेषं वै चन्दनाङ्कितम्। चारुस्मितास्यमीड्यं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥५॥

मालतीमाल्यसंयुक्तं केकिपिच्छावचूडकम्।
गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम्॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–पार्वती का स्तव सुन कर भगवान् करुणानिधि श्रीकृष्ण ने सबके लिये अदृश्य दुर्लभ अपना रूप पार्वती को दिखलाया। कृष्ण के प्रति एकाग्रचित्ता देवी पार्वती ने ध्यान निमग्ना होकर उस तेजराशि में संसार के विमोहन रूप को श्रेष्ठ रत्नसार निर्मित हीरा जड़े माणिक्य मालायुक्त रत्नमय रथ पर आसीन देखा था। वह कृष्ण मूर्त्ति अग्निशुद्ध, पीताम्बरधारी, हाथों में वंशी लिये हुए, गले में वनमाला पहने, श्यामवर्ण तथा रत्नाभूषण भूषित थे। उनका शरीर किशोर वयस वाला, शरीर विचित्र वेषसज्जा से सज्जित, चंदन चर्चित था। मुख पर मनोहर मुस्कान झलक रही थी। उनका आनन शरत्कालीन चन्द्रमा की भी शोभा को लज्जित करने वाला था। उनके मस्तक पर मालती मालायुक्त मयूरपुच्छ का चूड़ा रचित था। वे प्रभु गोपबालाओं से घिरे थे तथा वे राधा को वक्षःस्थल से लगाने के कारण उज्ज्वल थे॥१-६॥

कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम्॥७॥
दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तदनुरूपकम्। मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम्॥८॥

वे कोटि कन्दर्प के समान शोभाधाम, मनोहर, अतीव हर्षित, सबके इष्टरूप तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाले थे। तब रूपमयी पार्वती ने कृष्ण के उस रूप को देख कर तदनुरूप पुत्र की कामना मन में तत्क्षण कर लिया। वह अभिलाषा पार्वती के मन में प्रकट होते ही तत्क्षण उनको यह वरलाभ भी हो गया!॥७-८॥

वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम्। दत्त्वाऽभीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरधीयत॥९॥
कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम्। ददुर्निरूपमं तत्र प्रहृष्टायै कृपान्विताः॥१०॥

वे सर्वेश्वर कृष्ण जो तेजरूप थे, उन्होंने पार्वती को मनोनुरूप वर दे दिया तथा देवगण को भी उनका-उनका वांछित वर प्रदान किया तथा वे तेजोरूप प्रभु वहीं अन्तर्हित् हो गये। तदनन्तर देवगण ने सनत्कुमार को अत्यन्त विनय पूर्वक समझाया। इससे उन्होंने आनन्दित होकर हर्षित पार्वती को उनके पति दिगम्बर शिव को वापस पार्वती के पास भेज दिया। यह कृपा सनत्कुमार ने उस समय किया था॥९-१०॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ दुर्गा रत्नानि विविधानि च।
सुवर्णानि च भिक्षुभ्यो बन्दिभ्यो विश्ववन्दिता॥११॥

ब्राह्मणान्भोजयामास देवान्वै पर्वतांस्तथा। शङ्करं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः॥१२॥

दुन्दुभिं वादयामास कारयामास मङ्गलम्। सङ्गीतं गाययामास हरिसंबन्धि सुन्दरम्॥१३॥

तब विश्ववन्दिता दुर्गा ने भिक्षुगण, बन्दीगण तथा ब्राह्मणगण को अनेक प्रकार के रत्न तथा स्वर्ण का दान किया। देवी ने पर्वतों, देवताओं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराया। सर्वोत्तम उपहारों से शंकर की पूजा किया। उन्होंने वहां पर दुन्दुभिवादन का आदेश भी दिया था। उन्होंने वहां मंगलगान तथा हरिसंबंधित सुन्दर संगीत का गायन कराया!॥११-१३॥

व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता।
सर्वांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह॥१४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
क्रमात्प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे तेन कौतुकात्॥१५॥

पयःफेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्नमञ्चके। पुष्पचन्दनसंयुक्तां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्।
रहसि स्वामिना सार्धं सुष्वाप परमेश्वरी॥१६॥

कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने। सुगन्धिकुसुमाढ्येन वायुना सुरभीकृते॥१७॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुताश्रये। व्यहार्षीत्सा सुरसिका तत्र तेन सहाम्बिका॥१८॥

इस प्रकार दुर्गा ने व्रत समापन करके सस्मित होकर प्रभूत दान देकर सबको भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भी पति महेश्वर के साथ आहार ग्रहण किया। उन्होंने सभी समागत लोगों को कर्पूरादि मिश्रित मनोहर ताम्बूल भी प्रदान किया। तत्पश्चात् परमेश्वरी दुर्गा ने पुष्पचन्दनयुक्त, कस्तूरी-कुंकुम लिप्त, सद्रत्नों से निर्मित दुग्ध के फेन जैसी रम्य शय्या पर अपने पति के साथ शयन किया। सुरसिका देवी अंबिका ने सुगन्धित पुष्पयुक्त वायु से सुरभीकृत, भ्रमर ध्वनिसंयुक्त, कोकिल की कूजन से गुंजरित, कैलास पर्वत के एक ओर स्थित चन्दन वन में स्वामी के साथ विहार किया॥१४-१८॥

रेतःपतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया। विधाय विप्ररूपं तदाजगाम रतेर्गृहम्॥१९॥
जटावन्तं विना तैलं कुचैलं भिक्षुकं मुने। अतीव शुक्लदशनं तृष्णाया परिपीडितम्॥२०॥
अतीव कृशगात्रं च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्।
बहुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्तिमत्॥२१॥
आजुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः। दण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः॥२२॥

तभी जैसे ही इस विहार के कारण शंभु का वीर्यपात होने ही जा रहा था तभी विष्णुमाया द्वारा भगवान् विष्णु ब्राह्मणरूप धारण करके उस केलिगृह के द्वार पर आये। हे मुनिवर! वे बिना तैल की जटा वाले, भिक्षुक रूप कुत्सित, तृष्णा के कारण कातर, अत्यन्त कृश शरीर, ललाट पर उज्ज्वल तिलक लगाये दीनता की मूर्ति थे। उनका स्वर अत्यन्त शोक से भरा था। वे अन्न के याचक अत्यन्त दुर्बल वृद्ध ब्राह्मण उस रतिगृह के द्वार पर अपनी लाठी टेकते पहुंचे तथा उन्होंने महादेव को वहीं से पुकारा॥१९-२२॥

ब्राह्मण उवाच

किं [1]करोषि महादेव रक्ष मां शरणागतम्।
सप्तरात्रिव्रतेऽतीते पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा॥२३॥

किं [2]करोषि महादेव हे तात करुणानिधे। पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृषया परिपीडितम्॥२४॥
मातरुत्तिष्ठ मेऽन्नं त्वं प्रयच्छाद्य शिवं जलम्। अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम्॥२५॥
मातर्मातर्जगन्मातरेहि नाहं जगद्बहिः। सीदामि तृषया कस्मात्स्थितायामात्ममातरि॥२६॥

ब्राह्मण ने कहा–हे महादेव! आप क्या कर रहे हैं? मैं शरण में आया हूं। मेरी रक्षा करिये। मैंने ७ रात्रि पर्यन्त व्रतोपवास किया है। अब क्षुधार्त्त होकर व्रत का पारण कराने की प्रार्थना कर रहा हूं। हे करुणानिधान पिता महादेव! आप क्या कर रहे हैं? इस जराग्रस्त, प्यास से पीड़ित वृद्ध की ओर एक बार तो देखिये! हे अनन्त रत्नोद्भव की (हिमालय) पुत्री! माता दुर्गा! उठिये। मुझे अन्न के साथ सुगन्धित जल प्रदान करिये। आप तो जगत् की माता हैं। मैं संसार से परे नहीं हूं। मैं तब अपनी माता के रहते पिपासा से अवसन्न हो रहा हूं!॥२३-२६॥

इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतो मुने।
पपाात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा॥२७॥
उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं पिधाय च।
आजगाम [3]बहिर्द्वारं पार्वत्या सह शङ्करः॥२८॥

ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम्। वृद्धं लुलितगात्रं च बिभ्रतं दण्डमानतम्॥२९॥

तपस्विनमशान्तं च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्।
कुर्वन्तं परया भक्त्या प्रणामं स्तवनं तयोः॥३०॥

श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुधोपमम्। उवाच परया [4]प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च॥३१॥

यह करुण स्वर सुन कर शिव जैसे ही उठ रहे थे, तभी उनका वीर्य पार्वती की योनि में न गिर कर शय्या पर गिर पड़ा। पार्वती ने त्रस्त होकर सूक्ष्म परिधान धारण किया तथा वे शंकर के साथ कक्ष के बाहर द्वार पर आईं। उन्होंने वहां हिलते हुए अंगों वाले, लाठी के सहारे खड़े, अशान्त, शुष्क कण्ठ, शुष्क ओष्ठ तथा तालु वाले, तपस्वी, दीन वृद्ध ब्राह्मण को देखा जो परम भक्ति के साथ (शिव-पार्वती को) उनको प्रणाम करके स्तवन कर रहा था। उसकी सुधा के समान वाणी को सुन कर भगवान् नीलकंठ ने हंसते हुए परम प्रीति के साथ उससे कहा–॥२७-३१॥

१. क. ०रोमि।
२. क. ०रोमि।
३. क. रतिद्वा०।
४. क. भक्त्या प्र०।

शङ्कर उवाच

गृहं ते कुत्र विप्रर्षे वद वेदविदां वर।
किं नाम भवतः क्षिप्रं ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतम्॥३२॥

श्री शंकर कहते हैं—हे विप्रर्षि! वेदज्ञों में श्रेष्ठ! तुम्हारा गृह कहां है? तुम्हारा नाम क्या है? शीघ्र कहो!॥३२॥

पार्वत्युवाच

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः।
अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः॥३३॥
अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम्। तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विज॥३४॥
तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम्।
तत्पादधौततोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही॥३५॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
अतिथिः पूजितो येन स्वात्मशक्त्या यथोचितम्॥३६॥
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले। अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम्॥३७॥

देवी पार्वती कहती हैं—हे विप्र! आज मेरा सौभाग्य है, जो आज ब्राह्मण अतिथि मेरे यहां आये हैं? आपका आगमन कहां से हो रहा है? जो व्यक्ति अतिथि पूजा करता है, उसने तो मानों त्रैलोक्य पूजन कर लिया। हे द्विज! अतिथि में ही देवता, ब्राह्मण तथा गुरुजन स्थित रहते हैं। अतिथि के चरण में समस्त तीर्थ स्थित रहते हैं। गृहस्थ व्यक्ति अतिथि का चरण धोकर समस्त तीर्थों को प्राप्त कर लेता है। जिस गृहस्थ ने अपनी शक्ति के अनुसार अतिथि की यथोचित पूजा कर लिया, उसने समस्त तीर्थस्नान का तथा सभी यज्ञदीक्षा का फल पा लिया। जो पुरुष भारतवर्ष में भक्ति के साथ अतिथिपूजन करता है, उसने तो समस्त पृथिवी के महादान का फललाभ कर लिया।॥३३-३७॥

नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानि च यानि वै।
तानि वैऽतिथिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३८॥
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते। पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः॥३९॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि सर्वाणि[1] लभते नाभ्यर्च्यातिथिमीप्सितम्॥४०॥

वेदों में जो नाना प्रकार के पुण्यों को कहा गया है, वे अतिथि सेवा का १/१६ भाग भी नहीं हैं। जिसके गृह से बिना सेवा प्राप्त किये तथा सत्कृत हुए बिना अतिथि निराश होकर चला जाता है, उस

१. क. ॰णि नश्यन्ते नाभ्यर्च्यातिथिपूजनात्।

व्यक्ति के पितृगण, देवता, अग्नि तथा अन्त में उसके गुरु भी अपूजित वहां से चले जाते हैं। वह गृहस्थ अब ब्रह्महत्यादि पातक भागी होगा।।३८-४०।।

ब्राह्मण उवाच

जानासि वेदान्वेदज्ञे वेदोक्तं कुरु पूजनम्।
क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वचनं च श्रुतौ श्रुतम्।।४१।।
व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रती। मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः।।४२।।

ब्राह्मण कहता है-हे वेदज्ञे! तुम तो वेद जानती हो, अतः वेदोक्त (अतिथि) पूजन करो। हे माता! मैं क्षुधा-पिपासा से पीड़ित हूं। श्रुति वचन है कि रुग्ण, निराहार, अनशनव्रती मानव की इच्छा मनोवांछित भोजन करने की होती है।।४१-४२।।

पार्वत्युवाच

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये यत्सुदुर्लभम्।
दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु।।४३।।

देवी पार्वती कहती हैं-हे विप्र! तुम त्रैलोक्य दुर्लभ क्या भोजन करना चाहते हो? मैं वही भोजन प्रदान करूंगी। वह ग्रहण करके मेरा जन्म सफल करो।।४३।।

ब्राह्मण उवाच

व्रते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम्। नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः।।४४।।
सव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजयिष्यसि।
दत्त्वा मिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च।।४५।।
ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः।
पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः।।४६।।

ब्राह्मण कहता है-हे सुव्रते! तुमने व्रत काल में सभी प्रकार का भोजन बनाया है। मैंने वह सुना, तब अनेक प्रकार के ईप्सित दुर्लभ मिष्ठान्न खाना चाहता हूं। मैं तुम्हारा पुत्र हूं। पहले मुझे त्रैलोक्य में दुर्लभ मीठी वस्तु देकर मेरा सत्कार करो। हे साध्वी! वेदज्ञ पण्डितों ने ५ प्रकार के पिता, अनेक प्रकार की माता तथा ५ प्रकार के पुत्रों का निर्देश दिया है।।४४-४६।।

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः।।४७।।

पिता = विद्यादाता, अन्नदाता, भय से रक्षा करने वाला, जन्मदाता तथा कन्यादाता-ये मनुष्यों के वेदोक्त पिता हैं।।४७।।

गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुःस्वसा।
स्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्याऽन्नदायिका॥४८॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः।
धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति॥४९॥

माता = गुरुपत्नी, गर्भधारिणी मां, स्तनपान कराने वाली धाय, पिता की बहन (बूआ), मां की बहन (मौसी), सौतेली मां, पुत्रवधू, भोजनदायिनी–ये सब मां हैं।

पुत्र = सेवक, शिष्य, पाले गये, अपने वीर्य से उत्पन्न तथा शरण में आये, ये पांचों पुत्र हैं॥४८-४९॥

क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः।
सांप्रतं तव वन्ध्याया अनाथः पुत्र एव च॥५०॥
पिष्टकं परमान्नं च सुपक्वानि फलानि च।
नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानि च॥५१॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम्।
घृतं दधि च शाल्यन्नं घृतपक्वं च व्यञ्जनम्॥५२॥
लड्डुकानि तिलानां च मिष्टान्नैः सगुडानि च।
ममज्ञातानि वस्तूनि सुधया तुल्यकानि च॥५३॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिवासितम्। जलं सुनिर्मलं स्वादु द्रव्याण्येतानि वासितम्॥५४॥

हे माता! मैं क्षुधा-तृष्णा से पीड़ित वृद्ध तथा शरणागत हूं। आप वन्ध्या का मैं अनाथ पुत्र हूं। मुझे पूरी, पायस, पक्वफल, गेहूं के चूर्ण से बने नाना पदार्थ, देशकालानुरूप वस्तु, पकाया अन्न, मालपूआ, बड़ा, दुग्ध तथा ऊंख का रस तथा उससे निर्मित खाद्य वस्तु, घृत-दधि, साठी के चावल का भात, घी में पके व्यंजन, लड्डू, तिल के पदार्थ, गुड़ से बने मिष्ठान्न तथा ऐसी वस्तु जो आहारार्थ हैं, तथापि मुझे उनका ज्ञान नहीं है, अन्य अमृतोपम आहार, कर्पूरादि से सुवासित उत्तम ताम्बूल, सुनिर्मल सुगंधित स्वादिष्ट जल मुझे दो॥५०-५४॥

द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदरं भवेत्।
अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि॥५५॥
स्वामी ते त्रिजगत्कर्ता प्रदाता सर्वसंपदाम्। महालक्ष्मीस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यप्रदायिनी॥५६॥

हे शैलजे! कृपया ऐसे उत्तम द्रव्य आहारार्थ दो, जिनका भोजन करके मैं उत्तम लम्बोदर हो सकूं। हे अनन्त रत्नोद्भव हिमालय नन्दिनी! मुझे यह सब प्रदान करो। तुम्हारे स्वामी तो त्रैलोक्यकर्त्ता तथा सभी सम्पदा को देने वाले हैं। तुम भी महालक्ष्मी रूपा तथा समस्त ऐश्वर्य देने वाली हो॥५५-५६॥

रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम्। वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यामि सुदुर्लभम्॥५७॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढां सति। हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सवैदा स्थिता॥५८॥
ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम्। सर्वसिद्धिं च किं मातरदेयं स्वसुताय च॥५९॥
मनः सूनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि संततम्। श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके॥६०॥

तुम मुझे रम्य रत्न सिंहासन, अमूल्य रत्नाभूषण, अत्यन्त दुर्लभ अग्निशुद्ध वस्त्र प्रदान करो। तुम मुझे दुर्लभ हरिमन्त्र, दृढ़ हरिभक्ति प्रदान करो। तुम हरिप्रिया, हरिशक्ति तथा सदैव स्थिता हो। हे माता! मुझे मृत्युंजय नामक ज्ञान, सुखप्रदा दातृशक्ति, सर्वविषयक सिद्धि, यह सब प्रदान करो। माता के लिये अपने पुत्र को क्या अदेय है? हे सर्वश्रेष्ठ देवी! मेरा मन निर्मल करके उसे सर्वदा धर्म तथा तपःश्चरण तत्पर कर दो। मेरे मन को तुम कदापि कामासक्त मत कर देना! मैं जन्म के कारणरूप कामना के वशीभूत नहीं होना चाहता!॥५७-६०॥

स्वकामात्कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च।
भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः॥६१॥
दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके।
सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः॥६२॥

मनुष्य अपनी कामना के वश में होकर कर्म करता है। जिसके कारण वह कर्म का फलभोग जो करता है! यह भोग शुभ-अशुभ दो प्रकार का मिलता है। यही सुख-दुःख का कारण भी है। हे जगदम्बा! किसी अन्य द्वारा न तो सुख मिलता है, न अन्य द्वारा दुःख प्राप्ति ही होती है। यह सब अपने कर्म का भोग है। तभी बुद्धिमान लोग कामना से विरत रहते हैं।॥६१-६२॥

कर्म निमूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा। हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः॥६३॥

तभी पण्डित लोग आनन्द के साथ कर्म को निर्मूल कर देते हैं। वे लोग हरि में भावना दृढ़ करते हैं तथा वे तपःश्चरण तथा भक्तों के संसर्ग से कर्म निर्मूल कर देते हैं।॥६३॥

इन्द्रियद्रव्यसंयोगसुखं विध्वंसनाबधि। हरिसंलापरूपं च सुखं तत्सार्वकालिकम्॥६४॥
हरिस्मरणशीलानां नाऽऽयुर्याति सतां सति।
न तेषामीश्वरः कालो न च मृत्युञ्जयो ध्रुवम्॥६५॥

इन्द्रियों तथा सांसारिक द्रव्य के तथा विषय के संयोग का सुख क्षणिक है। अर्थात् जब तक उस द्रव्य का ध्वंस नहीं हो जाता, तभी तक ही उसका सुखबोध होता है। तदनन्तर नहीं रहता। परन्तु हरिकथा तथा हरिकीर्त्तन जनित सुख सदा विद्यमान रहता है। हे सती! जो सदा हरि का स्मरण करते हैं, उनकी आयु का क्षय नहीं होता। काल का उन पर कोई प्रभाव नहीं होता। मृत्यु उसे जय नहीं कर सकती। यह निश्चित है।॥६४-६५॥

चिरं जीवन्ति ते भक्ता भारते चिरजीविनः।
सर्वसिद्धिं च विज्ञाय स्वच्छन्दं सर्वगामिनः॥६६॥
जातिस्मरा हरेर्भक्ता जानते कोटिजन्मनः।
कथयन्ति कथां जन्म लभन्ते स्वेच्छया मुदा॥६७॥

वे भक्त भारत में चिरकाल तक जीवित रहते हैं। वे सर्वसिद्धि लाभ करके स्वच्छन्दता पूर्वक सर्वत्र गमन करते हैं। हरिभक्तों को पूर्वजन्म का सब वृत्तान्त ज्ञात रहता है। वे तो कोटि जन्मों का भी वृत्तान्त जानते हैं। वे उन जन्मों की बातों को कहते रहते हैं तथा मुदित होकर स्वेच्छा से जन्म ग्रहण करते हैं।।६६-६७।।

परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वीयलीलया। पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थं च भ्रमन्ति ते॥६८॥
वैष्णवानां पदस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा। कालं गोदोहमात्रं तु तीर्थे यत्र वसन्ति ते॥६९॥
गुरोरास्याद्विष्णुमन्त्रः श्रुतौ यस्य प्रविश्यति। तं वैष्णवं तीर्थपूतं प्रवदन्ति पुराविदः॥७०॥

वे स्वयमेव पवित्र हैं तथा उनके संचरण से तो तीर्थ पवित्र हो जाता है। वैष्णवों के चरणस्पर्श मात्र से धरती तत्क्षण पावन हो जाती है। वे गौ दुहे जाने तक समय भी (जितनी देर में गौ दुही जाती है) जहां रुक जाते हैं, वही स्थल तीर्थ हो जाता है। जिन्होंने अपने कानों में गुरुप्रदत्त विष्णुमन्त्र सुन लिया, पुराने लोग (विद्वान्) उनको तीर्थ में पवित्र हो गया बतलाते हैं।।६८-७०।।

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम्। लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा॥७१॥
मातामहानां पुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान्। मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणाद्यमताडनात्॥७२॥
भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये। ते स्नाताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः॥७३॥

न लिप्ताः पातकैर्भक्ताः संततं हरिमानसाः।
यथाऽग्नयः सर्वभक्ष्या यथा द्रव्येषु वायवः॥७४॥

ऐसे लोगों के पुण्य से उनकी पूर्व की १०० पीढ़ी तथा बाद की १०० पीढ़ी के लोगों का तथा सहोदर भ्राताओं की, माता, मातामह के कुल की पूर्व की १० पीढ़ी एवं बाद की १० पीढ़ी का भीषण यमयातना से उद्धार हो जाता है। जिसने भक्त का दर्शनलाभ कर लिया, उसने सर्वतीर्थ पर्यटन तथा सर्वयज्ञ दीक्षा का फललाभ कर लिया। जैसे अग्नि सभी द्रव्यों का भक्षण करके भी अपवित्र नहीं होता, वायु सभी द्रव्य का स्पर्श करके भी अपवित्र नहीं होता, उसी प्रकार भक्त को कोई पाप स्पर्श नहीं कर पाता। क्योंकि वह तो अपने मन को सतत् हरिचिन्ता निरत रखता है।।७१-७४।।

त्रिकोटिजन्मनामन्ते प्राप्नोति जन्म मानवम्।
प्राप्नोति भक्तसङ्गं स मानुषे कोटिजन्मतः॥७५॥
भक्तसङ्गाद्भवेद्भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति।
अभक्तदर्शनादेव स च प्राप्नोति शुष्कताम्॥७६॥

पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः। अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्धते प्रतिजन्मनि॥७७॥
तत्तरोर्वर्धमानस्य हरिदास्यं फलं सति। परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरेः॥७८॥

यह मानव जन्म तो तीन करोड़ जन्मों के पश्चात् मिलता है। ऐसे एक करोड़ मानव जन्म मिलने पर तब कहीं भक्त का साथ मिल पाता है। हे सती! जीवगण में भक्तों के साथ द्वारा भक्ति का अंकुर उत्पन्न होता है। वैष्णव लोगों के साथ वार्त्ता मात्र से यह अंकुर प्रस्फुटित होता है तथा यह अविनाशी होकर प्रत्येक जन्म में बढ़ता जाता है, परन्तु अभक्त के दर्शन मात्र से यह अंकुर सूखने लगता है। जब यह भक्ति अंकुर बढ़ते-बढ़ते वृक्षरूपी हो जायेगा, तभी इसमें हरि की दासता रूप फल लगेगा। उस भक्ति फल के पक्व हो जाने पर वह मनुष्य हरिपार्षद होगा।।७५-७८।।

महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम्। सर्वसृष्टिरेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य वेधसः॥७९॥

तस्मान्नारायणे भक्तिं देहि मामाम्बिके सदा।
न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वया विना॥८०॥

तद्व्रतं लोकशिक्षार्थं तत्तपस्तव पूजनम्। सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी॥८१॥

गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवाऽऽमजः।
त्वत्क्रोडमागतः शिप्रमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत॥८२॥

महाप्रलय में भी उसका नाश नहीं होगा। यह निश्चित है। हे अम्बिके! तुम सदा मुझे भगवद्भक्ति देने की कृपा करो। हे विष्णुमाया! तुम्हारी कृपा के अभाव में कदापि विष्णुभक्ति नहीं मिलती। तुमने जो यह व्रत किया, यह तो लोकशिक्षा मात्र ही है। तुम्हारा तप तथा तुम्हारी की गई पूजा भी लोक में शिक्षा प्रदानार्थ ही है। तुम सभी कर्मों का फल देने वाली, नित्यरूपा, सनातनी हो। यह भगवान् श्रीकृष्ण ही गणपति रूप में प्रति कल्प में तुम्हारे पुत्र होते हैं। वे शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र होकर तुम्हारी गोद में आने वाले हैं। यह कह कर वे ब्राह्मण अन्तर्हित् हो गये।।७९-८२।।

कृत्वाऽन्तर्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः।
जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्॥८३॥

तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स बभूव ह। ददर्श गेहशिखरं प्रसूते बालके यथा॥८४॥

ईश्वर ने इस प्रकार अन्तर्हित् होकर बालक रूप धारण किया। वे उस कक्ष में पार्वती की शय्या के पास गये। उन्होंने शय्यातल पर गिरे शिववीर्य में स्वयं को मिलित कर लिया और तत्काल जन्मे बालक की तरह गृह शिखर की ओर ताकने लगे।।८३-८४।।

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः। सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धकः॥८५॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः। मुखं निरूपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥८६॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके। ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत्पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥८७॥

यह बालक शुद्ध चम्पा के वर्ण की आभा वाले, करोड़ों चन्द्रमा की तरह प्रभाशाली, देखने में सुखप्रद (सुखदायक) तथा देखने पर सबकी नेत्रज्योति वर्द्धन करने वाले, अतीव सुन्दर शरीर जो कामदेव को भी मोहित कर दे, शरदकालीन चन्द्र को भी लज्जित कर दे, ऐसे निरूपम मुख वाले, रम्य दोनों नेत्र कमल को भी निन्दित करें ऐसे नेत्रों वाले उस बालक का ओष्ठ-अधर पके बिम्बफल को भी लज्जित करने वाला था।।८५-८७।।

कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्। नासाग्रं रुचिरं बिभ्रद्वीन्द्रचञ्चुविनिन्दकम्।।८८।।
त्रैलोक्ये वै निरूपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्। शयानः शयने रम्ये प्रेरयन्हस्तपादकम्।।८९।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः।।८।।

उनका कपाल तथा कपोल अत्यन्त मनोहारी था। उनकी मनोहर नासिक शुक की चोंच को भी शोभा में पीछे छोड़ देने वाली थी। इस त्रैलोक्य में वह बालकरूपी प्रभु निरूपम अंगों वाले उस रम्य शय्या पर पड़े सद्यः उत्पन्न शिशु की तरह हाथ-पैर संचालित कर रहे थे।८८-८९।।

अष्टम अध्याय समाप्त

नवमोऽध्यायः

हर-पार्वती द्वारा बालक गणेश को देखना

नारायण उवाच

हरौ तिरोहिते शर्वाणी दुर्गा शङ्करस्तदा। ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने।।१।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं-हे मुनिवर! जब भगवान् श्रीहरि अन्तर्हित् हो गये, तब शर्वाणी दुर्गा एवं शंकर उन ब्राह्मण को इधर-उधर खोजने लगे!।।१।।

पार्वत्युवाच

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः। हे तात दर्शनं देहि प्राणान्वै रक्ष मे विभो।।२।।
शिव शीघ्र समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु। क्षणमुन्मनसोरेष गतः प्रत्यक्षमावयोः।।३।।
अगृहीत्वा गृहात्पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वरः।
यदि याति क्षुधार्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा।।४।।

देवी पार्वती कहती हैं—हे विप्रेन्द्र! आप अत्यन्त वृद्ध तथा क्षुधार्त्त थे। आप कहां गये? हे तात! एक बार दर्शन देकर मेरे प्राणों की रक्षा करिये। हे शिव! आप शीघ्र उठ कर ब्राह्मण का अन्वेषण करिये। मेरे तनिक अन्यमनस्क होते ही मेरे सामने से चले गये। अतिथि ईश्वर रूप होता है। यदि क्षुधायुक्त अतिथि गृहस्थ के यहां से क्षुधार्त्त ही चला जाये, तब उस गृहस्थ का जीवन व्यर्थ है।।२-४।।

पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानं च तर्पणम्।
तस्याऽऽहूतिं न गृह्णाति वह्निः पुष्पं जलं सुराः।।५।।
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम्। अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम्।।६।।

उसके यहां पितर उसका पिण्ड-तर्पण ग्रहण नहीं करते। अग्नि उसकी आहुति ग्रहण नहीं करते तथा देवता उसका पुष्प तथा जल ग्रहण नहीं करते। उसका प्रदत्त हव्य-पुष्प-जल तथा द्रव्य सब मद्य के समान अपवित्र कहा गया है। उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड अभेद्य है तथा उसके स्पर्श से पुण्यनाश होगा।।५-६।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचाऽऽतुरा।।७।।
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे। कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम्।।८।।

तदनन्तर वहां कैवल्य युक्ता शोकातुरा दुर्गा ने अशरीरी वाणी श्रवण किया कि हे जगन्माता! शान्त हो जायें। आप अपना पुत्र गृह में जाकर देखिये। वह पुत्र साक्षात् गोलोकनाथ परिपूर्णतम परम प्रभु कृष्ण का ही रूप है।।७-८।।

सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम्। यत्तेजो योगिनः शश्वद्ध्यायन्ति संततं मुदा।।९।।
ध्यायन्ति वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्।।१०।।

आपने जो पुण्यक व्रत किया था उसका ही सनातन फलरूप यह शिशु है। इन प्रभु के तेज का योगीगण मुदित मन से सदा ध्यान करते रहते हैं। वैष्णवगण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि के पूजन के पहले प्रति कल्प में इनकी (शिशु रूप गणेश का) ही पूजा होती है।।९-१०।।

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति। पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे।।११।।
कल्पे कल्पे ध्यायसि यं ज्योतीरूपं सनातनम्।
पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्।।१२।।

इनके स्मरणमात्र से सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं। ऐसे पुण्यराशि स्वरूप अपने पुत्र का दर्शन अपने गृह में जाकर करिये। जिन ज्योतिरूप सनातन का ध्यान प्रति कल्प में किया जाता है, जैसे अपने मुक्तिदाता पुत्र को देखिये जो भक्तों पर कृपा करने हेतु रूप धारण करते हैं।।११-१२।।

तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः जनार्दनः।
सुन्दरं स्वसुतं पश्च कोटिकन्दर्पनिन्दकम्।।१३।।

नायं विप्रः क्षुधार्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः।
किंवा विलापं कुरुषे क्व वा वृद्धः क्व चातिथिः।
सरस्वती त्वेवमुक्त्वा विरराम च नारद॥१४॥

ये आपकी कामना पूर्ति के कारण (बीज) रूप हैं। ये तपःरूपी कल्पवृक्ष के फल स्वरूप हैं। ये करोड़ों कामदेव की सुन्दरता का गर्व हरण करने वाले हैं। ऐसे अपने पुत्र का दर्शन करिये। वे ब्राह्मण क्षुधार्त्त विप्ररूपधारी स्वयं जनार्दन थे। कौन वह वृद्ध, कौन वह अतिथि? (वे तो नारायण थे)। आप व्यर्थ विलाप क्यों कर रही हैं। यह कह कर वाणी सरस्वती (अशरीरी वाणी) मौन हो गई॥१३-१४॥

त्रस्ता श्रुत्वाऽऽकाशवाणीं जगाम स्वालयं सती।
ददर्श बालं पर्यङ्के शयानं सस्मितं मुदा॥१५॥
पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम्। स्वप्रभावपटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम्॥१६॥
कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा।
उमेति शब्दं कुर्वन्तं रुदन्तं तं स्तनार्थिनम्॥१७॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं त्रस्ता शङ्करसंनिधिम्। गत्वा सोवाच गिरिशं सर्वमङ्गलमङ्गला॥१८॥

यह आकाशवाणी सुन कर त्रस्त दुर्गा अपने गृह में गईं। उन्होंने मुस्कराते हुए बालक को पलंग पर लेटे मुदित होकर देखा। वह सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रभाशाली बालक गृह के शिखर (छत-पाटन) को देख रहा था। वह अपनी कान्ति द्वारा पृथिवी को द्योतित कर रहा था। वह पलंग पर लुढ़कता हुआ स्तन दुग्धपानार्थ रुदन कर रहा था। प्रतीत हो रहा था कि वह रुदन करते-करते उमा-उमा कह रहा है। यह देख कर त्रस्त मन से वे सर्वमंगलमंगला उमा शंकर के पास जाकर उनसे कहने लगीं-॥१५-१८॥

पार्वत्युवाच

गृहमागच्छ सर्वेश तपसां फलदायकम्।
कल्पे कल्पे ध्यायसि यं तं पश्याऽऽगत्य मन्दिरे॥१९॥
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम्। पुंनामनरकत्राणं कारणं भवतारणम्॥२०॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। पुत्रसंदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२१॥
सर्वदानेन यत्पुण्यं क्ष्माप्रदक्षिणतश्च यत्। पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२२॥
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यदेवानशनैर्व्रतैः। सत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२३॥
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः। सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥२४॥

देवी पार्वती कहती हैं-हे प्राणेश्वर! एक बार गृह में आयें। आप कल्प-कल्प में जिन तपःफलदाता का मन में चिन्तन करते रहते हैं, उनका अपने गृह में ही दर्शन करिये। पूत नामक नारक से छुटकारा

देने वाले, संसारतारण, पुण्यबीज, महोत्सवरूप पुत्र का मुखदर्शन शीघ्र करिये। सभी तीर्थ में स्नान का फल तथा समस्त यज्ञों में दीक्षा लेने का जो फल है, वह दोनों इस पुत्रदर्शन का १/१६वां भाग भी नहीं है। समस्त पृथिवी प्रदक्षिणा का, समस्त दानों से जो पुण्यलाभ होता है, अनशन व्रताचरण का जो फल कहा गया है, ये दोनों पुण्य भी सत्पुत्र मुख दर्शन की तुलना में १/१६वां भाग भी नहीं हैं। सभी तपःश्चरण का जो पुण्य कहा गया, जो विप्र भोजनजनित पुण्य है, जो समस्त देवसेवा का पुण्य है, वह सब सत्पुत्र प्राप्तिजनित पुण्य की तुलना में १/१६वां भाग भी नहीं है।।१९-२४।।

पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शिवः संहृष्टमानसः। अजगाम स्वभवनं क्षिप्रं वै कान्तया सह॥२५॥
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसंनिभम्। हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवातिमनोहरम्॥२६॥

पार्वती का वचन सुन कर शंकर हर्षित हो उठे। वे अपनी पत्नी पार्वती के साथ शीघ्रता से अपने भवन आये। उन्होंने शय्या पर अपने पुत्र को देखा जो तपाये गये स्वर्ण के समान कान्तियुक्त था। वह उनके अपने हृदय में स्थित प्रभु के रूप से भी अधिक मनोहर था।।२५-२६।।

दुर्गा तल्पात्समादाय कृत्वा वक्षसि तं सुतम्।
चुचुम्बाऽऽनन्दजलधौ निमग्ना सेत्युवाचतम्॥२७॥
संप्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्। यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥२८॥

दुर्गा ने पलंग पर से उटा कर अपने पुत्र को वक्ष से लगा कर आनन्दाप्लुत स्थिति में उसका मुखचुम्बन लेकर बालक शिशु से कहा–"जैसे दरिद्र उत्तम सत् धन को सहसा पाकर प्रसन्न होता है, तदनुरूप मैंने वह अमूल्य रत्नरूप तुमको पा लिया। तुम सनातन तथा पूर्ण प्रभु हो"।।२७-२८।।

कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा। मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥२९॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम्।
दृष्ट्वा तुष्टा यथा वत्स तथाऽहमपि सांप्रतम्॥३०॥

चिरकाल तक परदेस से वापस आगत पति को प्राप्त करके नारी का मन आनन्दमग्न हो जाता है, वैसे ही मेरे मन की स्थिति तुमको पाकर हो रही है। जैसे एकलौते पुत्र की माता अपने चिरकाल से परदेस गये पुत्र के वापस आने पर प्रसन्न होती है, उसी प्रकार आज मैं प्रसन्न हूं।।२९-३०।।

सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः। अनावृष्टौ सुवृष्टिं च संप्राप्याहं तथा सुतम्॥३१॥
यथा सुचिरमन्धानां स्थितानां च निराश्रये। चक्षुःसुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैव मे॥३२॥
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च सङ्कटे। अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम॥३३॥
तृष्णया शुष्कण्ठानां सुचिराच्च सुशीतलम्।
सुवासितं जलं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम॥३४॥
दावाग्निपतितानां च स्थितानां च निराश्रये।
निरग्निमाश्रयं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम॥३५॥

जैसे दीर्घकाल से खो गया रत्न पाकर मनुष्य प्रसन्न होता है, जैसे अनावृष्टि के पश्चात् उत्तम वृष्टि से लोग प्रसन्न होते हैं, जैसे चिरकाल से आश्रय रहित अन्धे को उत्तम नेत्र पाकर प्रसन्नता का अनुभव होता है, घोर अपार-सागर में पतित नौकाहीन व्यक्ति को नौका मिलने पर जो प्रसन्नता मिलती है, जैसे प्यास से अत्यन्त पीड़ित को सुशीतल-सुवासित जल लाभ से जो तृप्ति मिलती है, दावाग्नि से घिरे निराश्रित मानव को उत्तम अग्नि रहित आश्रय लाभ होने पर जो आनन्द होता है। आज यह पुत्र पाकर तदनुरूप आनन्द मुझे प्राप्त हो रहा है।।३१-३५।।

चिरं बुभुक्षितानां च व्रतोपोषणकारिणाम्। सदन्नं पुरतो दृष्ट्वा मनः॥३६॥

व्रतोपवास युक्त व्यक्ति चिरकाल से क्षुधार्त्त व्यक्ति को समक्ष उत्तम आहार देख कर जो प्रसन्नता होती है, तदनुरूप मेरा मन आज आनन्दित है।।३६।।

इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोडे कृत्वा स्वबालकम्।
प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा॥३७॥
क्रोडे चकार भगवान्बालकं हृष्टमानसः।
चचुम्ब गण्डे वेदोक्तं युयुजे चाऽऽशिषं मुदा॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० बालगणेशदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः।।९।।

यह कह कर पार्वती ने उस बालक को गोद में ले लिया तथा परमानन्दमग्न स्थिति में उसे स्तनपान कराने लगीं। तदनन्तर भगवान् शिव ने भी हर्षित होकर वह बालक गोद में लिया तथा उसका कपोल चुम्बन करके उसे मुदित मन से आशीर्वाद प्रदान किया।।३७-३८।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

दशमोऽध्यायः

गणेश के मंगल हेतु मंगलाचरण, गणेश जन्मोत्सव

तौ दम्पती बहिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे। विविधानि च रत्नानि द्विजेभ्यो ददतुर्मुदा॥१॥

बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च।
नानाविधानि वाद्यानि वादयामास शङ्करः॥२॥

हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजातये। सहस्त्रं च गजेन्द्राणामश्वानां च त्रिलक्षकम्॥३॥

दशलक्षं गवां चैव पञ्चलक्षं सुवर्णकम्। मुक्तामाणिक्यरत्नानि मणिश्रेष्ठानि यानि च॥४॥
अन्यान्यपि च दानानि वस्त्राण्याभरणानि च।
सर्वाण्यमूल्यरत्नानि क्षीरोदोत्पत्तिकानि च॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–शिव-पार्वती ने गृह से बाहर आकर पुत्र के मंगलार्थ आनंदित होकर नाना रत्न ब्राह्मणगण को दान किया। शंकर ने बंदीगण तथा भिक्षुकों को अनेक द्रव्य दान किया तथा नाना प्रकार के वाद्यों का वादन भी कराया। हिमालय ने ब्राह्मणों को एक लाख रत्न, १००० उत्तम हाथी, तीन लाख घोड़े, १० लाख गौ, पांच लाख स्वर्ण, श्रेष्ठ मुक्ता-माणिक तथा मणि आदि अन्य वस्तु, वस्त्र-भूषण तथा क्षीरसागरोत्पन्न सभी प्रकार के रत्नों का दान दिया!॥१-५॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः।
ब्रह्मा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च।
सुदुर्लभानि सृष्टौ च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥६॥

उस समय कृष्ण ने कौतुक के कारण कौस्तुभ मणि ब्राह्मणों को दे दिया। ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को उनके द्वारा मांगे गये विशिष्ट दान प्रदान किया। यह सब ब्रह्मा की सृष्टि में भी दुर्लभ था। ऐसा दान ब्राह्मणों को मुदित मन से ब्रह्मा ने दिया॥६॥

धर्मः सूर्यश्च शक्रश्च देवाश्च मुनयस्तथा। गन्धर्वाः पर्वतो देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च॥७॥
पारसानां सहस्राणि रुचकानां शतानि च। शतानि गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च नारद॥८॥
माणिक्यानां सहस्राणि रत्नानां च शतानि च।
शतानि कौस्तुभानां च हीरकाणां शतानि च।
हरिद्वर्णमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदाऽन्विताः॥९॥

इसी प्रकार का दान धर्म, सूर्य, इन्द्रादि देवता, मुनियों, गन्धर्वों, पर्वतों तथा देवीगण ने एक के बाद एक करके ब्राह्मणों को प्रदान किया। १००० पारस, १०० रुचक, १०० गन्धसार, सौ हीरा, हरित मणि (पन्ना) एक सहस्र यह सब मुदित होकर ब्राह्मणगण को प्रदान किया॥७-९॥

गवां रत्नानि लक्षाणि गजरत्नसहस्रकम्।
अमूल्यान्यश्वरत्नानि श्वेतवर्णानि कौतुकात्॥१०॥
शतलक्षं सुवर्णानां वह्निशुद्धांशुकानि च। ब्राह्मणेभ्यो ददौ ब्रह्मा तत्र क्षीरोदधिर्मुदा॥११॥
हारं चामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। अतीव निर्मलं सारं सूर्यभानुविनिन्दकम्॥१२॥
परिष्कृतं च माणिक्यैर्हीरकैश्च विराजितम्।
रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती॥१३॥
त्रैलोक्यसारं हारं च सद्रत्नगणनिर्मितम्। भूषणानि च सर्वाणि सावित्री च ददौ मुदा॥१४॥

गौ रत्न एक लाख, गजरत्न १०००, दस हजार श्वेत वर्ण अमूल्य अश्व, सौ लक्ष स्वर्ण, अग्निशुद्ध वस्त्र ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने दिया। क्षीरसमुद्र ने ब्राह्मणगण को वहां अमूल्य तथा त्रैलोक्य दुर्लभ रत्नहार, सारभूत, सूर्यकिरणों से भी अधिक प्रभास्वर, शुद्ध माणिक्य तथा हीरों से शोभित हार प्रदान किया। देवी सरस्वती ने ब्राह्मणों को रम्य कौस्तुभ मणि बीच में लगा हार प्रदान किया जो उत्तम रत्न वाला था। सावित्री ने सभी आभूषण मुदित मन से प्रदान किया।।१०-१४।।

लक्षं सुवर्णलोष्टानां धनानि विविधानि च। शतान्ममूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा॥१५॥

दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ददृशुः शिशुम्। परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने॥१६॥

भारं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा बन्दिस्तथा।
स्थायंस्थायं च गच्छन्तो धनानि पथि कातराः॥१७॥

कुबेर ने आनन्दित होकर एक लाख स्वर्ण की ईंटें, नाना प्रकार का धन एवं सौ अमूल्य रत्न प्रदान किया। हे मुनिवर! शिव पूजनोत्सव में सभी ने ब्राह्मणगण को नाना प्रकार का दान देकर परमानन्द में मग्न होकर बालक का दर्शन किया। ब्राह्मण, बन्दीगण को इतना धनरत्न तथा वस्तुभार मिला कि वे यह बोझ उठाने में स्वयं को असमर्थ पाकर बहुत कातर होकर मार्ग पर चल रहे थे। वे अत्यन्त मन्द गति से पथ पार कर रहे थे।।१५-१७।।

कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम्।
वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने॥१८॥

विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम्। सङ्गीतं गोपयामास कारयामास नर्तनम्॥१९॥

वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद। मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान्मुदा॥२०॥

आशिषं दापयामास कारयामास मङ्गलम्। सार्धं देवैश्च देवीभिर्ददौ तस्मै शुभाशिषः॥२१॥

जब मार्ग में थक कर विश्राम करते तब वृद्धगण पूर्व दाताओं का प्रसंग भी कह रहे थे। वे पूर्वकाल के दातागण का भी वर्णन कर रहे थे, जिस प्रसंग को वृद्ध-युवा प्रत्येक आयु के भिक्षुक श्रवण कर रहे थे। विष्णु ने वहां प्रसन्न होकर दुन्दुभि वादन कराया। वहां नृत्य-संगीत का भी आयोजन होने लगा। हे नारद! वहां वेद-पुराणों का पाठ कराया गया तथा मुदित मन से मुनिगण की पूजा भी सम्पन्न की गई। मुनिगण ने शिशु को मांगलिक आशीर्वाद प्रदान किया। साथ ही देवी-देवताओं ने भी शुभाशीष प्रदान किया।।१८-२१।।

विष्णुरुवाच

शिवेन तुल्यं ज्ञानं ते परमायुश्च बालक। पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव॥२२॥

विष्णु कहते हैं—हे बालक! तुमको शिवतुल्य ज्ञान तथा परमायु मिले। तुम मेरे समान पराक्रमी हो जाओ। तुमको समस्त सिद्धिरूप ऐश्वर्यलाभ हो।।२२।।

ब्रह्मोवाच

यशसा ते जगत्पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम्। सर्वेषां पुरतः पूजा भवत्वतिसुदुर्लभा॥२३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे बालक! तुम्हारा यश जगत् में व्याप्त रहे। तुम शीघ्र सर्वपूज्य हो जाओ। तुम्हारी अग्रपूजा होगी।।२३।।

धर्म उवाच

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान्भवतु दुर्लभः। सर्वज्ञश्च दयायुक्तो हरिभक्तो हरेः समः॥२४॥

धर्मदेव कहते हैं—तुम मेरे समान धार्मिक, सर्वज्ञ, दयालु, हरिभक्त एवं हरि के समान हो जाओ।।२४।।

महादेव उवाच

दाता भव मया तुल्यो हरिभक्तश्च बुद्धिमान्।
विद्यावान्पुण्यवाञ्छान्तो दान्तश्च प्राणबल्लभ॥२५॥

महादेव कहते हैं—तुम मेरे समान दाता, हरिभक्त, विद्यायुक्त, बुद्धिमान्, पुण्यवान्, शान्त तथा दान्त (इन्द्रिय दमन युक्त) तथा मेरे प्राणप्रिय हो जाओ।।२५।।

लक्ष्मीरुवाच

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती।
पतिव्रता मया तुल्या शान्ता कान्ता मनोहरा॥२६॥

श्री लक्ष्मी कहती हैं—तुम्हारे गृह तथा शरीर में मेरी नित्य अवस्थिति रहे। तुम मेरे समान मनोहरा, शान्त स्वभावा तथा पत्नी प्राप्त करो।।२६।।

सरस्वत्युवाच

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च। स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवत्वतितरां सुत॥२७॥

सरस्वती कहती हैं—हे पुत्र! तुमको मेरे समान उत्तम कवित्त्व, धारणा शक्ति, स्मृति, अतिशय विवेचना शक्ति प्राप्त हो।।२७।।

सावित्र्युवाच

वत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवाचिरम्। मन्मजन्त्रजपशीलश्च प्रवरो वेदवादिनाम्॥२८॥

सावित्री कहती हैं—हे पुत्र! मैं वेदमाता हूं। तुम शीघ्र वेदज्ञ हो जाओ। मेरे मन्त्र जप में निरत रहो तथा तुम वेदवादी लोगों में श्रेष्ठ रहो।।२८।।

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णे ते मतिः शश्वद्भक्तिर्भवतु शाश्वती।
श्रीकृष्णतुल्यो गुणवान्भव कृष्णपरायणः॥२९॥

हिमालय कहते हैं–तुम्हारी मति कृष्ण के प्रति सदैव लगी हो। तुम उनकी शाश्वती भक्तिलाभ करो। तुम कृष्णपरायण तथा कृष्ण के समान गुणी हो जाओ।।२९।।

मेनकोवाच

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्ये कामतुल्यश्च रूपवान्।
श्रीयुक्तः श्रीपतिसमो धर्मे धर्मसमो भव।।३०।।

मेनका (हिमालय पत्नी) कहती हैं–तुम गंभीरता में समुद्रतुल्य, रूप में कामदेव तुल्य, श्रीयुक्त, श्रीपति विष्णु के समान तथा देवदेव धर्म के समान धार्मिक बनोगे।।३०।।

वसुंधरोवाच

क्षमाशीलो मया तुल्यः शरण्यः सर्वरत्नवान्।
निर्विघ्नो विघ्ननिघ्नश्च भव वत्स शुभाश्रयः।।३१।।

धरती वसुन्धरा कहती हैं–हे पुत्र! तुम मेरे समान क्षमावान्, शरण देने वाले, समस्त रत्नसम्पन्न, निर्विघ्न, विघ्ननाशक तथा शुभाश्रयरूप हो जाओ।।३१।।

पार्वत्युवाच

ताततुल्यो महायोगी सिद्धः सिद्धिप्रदः शुभः।
मृत्युञ्जयश्च भगवान्भवत्वतिविशारदः।।३२।।

देवी पार्वती कहती हैं–तुम अपने पिता के समान महायोगी, सिद्ध, सिद्धिदायक, शुभ, मृत्युंजय, ऐश्वर्यमय तथा सर्वशास्त्र के विद्वान् हो जाओ।।३२।।

ऋषयो मुनयः सिद्धा सर्वे युयुजुराशिषः। ब्राह्मणा बन्दिनश्चैव युयुजुः सर्वमङ्गलम्।।३३।।
सर्वं ते कथितं वत्स सर्वमङ्गलमङ्गलम्। गणेशजन्मकथनं सर्वविघ्नविनाशनम्।।३४।।
इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः। सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः।।३५।।
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। कृपणो लभते सत्त्वं शश्वत्संपत्प्रदायि च।।३६।।

(श्री नारायण ऋषि कहते हैं)–तदनन्तर ऋषिगण, मुनिगण तथा सिद्धगण ने उनको शुभाशीष प्रदान किया। उनको ब्राह्मणगण तथा बन्दीगण ने सर्वमंगल दान किया। हे वत्स! नारद! मैंने तुमको यह सर्वमंगलयुक्त सर्वविघ्ननाशक यह गणेश जन्म कह दिया। इस समस्त प्रसंग का वर्णन कर दिया। जो व्यक्ति संयत होकर इस मंगलदायक अध्याय का श्रवण करता है, वह सर्वमंगल युक्त होकर मंगलधाम हो जाता है। अपुत्र को पुत्र, निर्धन धनलाभ, दुर्बल कृपण सम्पत्तिवर्द्धक सत्त्व प्राप्त करता है।।३३-३६।।

भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम्।
आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगा लभेत्।।३७।।

भ्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितं च प्रियं लभेत्। शोकाविष्टः सदाऽऽनन्दं लभते नात्र संशयः॥३८॥
यत्पुण्यं लभते मर्त्यो गणेशाख्यानकश्रुतौ। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणान्मुने॥३९॥

भार्यार्थी पत्नी लाभ करता है। प्रजार्थी को प्रजालाभ होता है। रोगी आरोग्य लाभ करता है। जो दुर्भाग्यशाली है, उसे सौभाग्य की प्राप्ति होती है। जिसका पुत्र खो गया है, उसे पुत्र मिल जाता है। नष्ट धन प्राप्त होता है। जो प्रिय व्यक्ति प्रवास में चला गया है, उसकी पुनः प्राप्ति हो जाती है। शोकग्रस्त मनुष्य सदा आनन्दमय हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। गणेश का सम्पूर्ण आख्यान सुन कर मानव को जो पुण्य मिलता है, वह मात्र इस अध्याय के श्रवण मात्र से मिल जाता है। इसमें सन्देह न करे॥३७-३९॥

अयं च मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति। सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः॥४०॥

यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः।
सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोद्भवमङ्गलं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

यह मंगलमय अध्याय जिसके गृह में सदा रहता है, वह सदा मंगलयुक्त होता है। इसमें तनिक संदेह नहीं है। जो यात्राकाल में तथा पुण्य तिथियों पर यह अध्याय समाहित होकर सुनता है, श्रीगणेश की कृपा से उसे सभी वांछित की प्राप्ति हो जाती है॥४०-४१॥

॥दशम अध्याय समाप्त॥

अथैकादशोऽध्यायः

शनैश्चर के साथ पार्वती देवी का वार्त्तालाप

नारायण उवाच

हरिस्तमाशिषं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे। देवैश्च मुनिभिः सार्धमवसत्तत्र संसदि॥१॥
दक्षिणे शङ्करस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः। पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—भगवान् विष्णु बालक को शुभ आशीर्वाद देकर देवगण-मुनिगण सहित उस सभा में उत्तम रत्नसिंहासन पर आसीन हो गये। उनके दाहिनी ओर शंकर तथा वाम में प्रजापति ब्रह्मा बैठे। सामने जगत्साक्षी धार्मिकगण में सर्वश्रेष्ठ धर्म ने आसन ग्रहण किया॥१-२॥

तथा धर्मसमीपे च सूर्यः शक्रः कलानिधिः। देवाश्च मुनयो ब्रह्मन्नृषुः शैलाः सुखासने॥३॥
ननर्त नर्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिंनराः। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम्॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः॥५॥

उन धर्मदेव के निकट सूर्य, इन्द्र, कलानिधि चन्द्र, देवता, मुनि, हम दोनों (नर-नारायण ऋषि), पर्वतगण सुखासनासीन हो गये। नर्त्तकियां नृत्य करने लगीं। गन्धर्व-किन्नरगण गायन करने लगे। वेद भी श्रुति के साररूप हरि का कर्णसुखकर वचनों से स्तवगान करने लगे। इस समय शंकर के पुत्र का दर्शन करने हेतु महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर वहां आये।।३-५।।

अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः। अन्तर्बहिः स्मरन्कृष्णं कृष्णैकगतमानसः॥६॥
तपःफलाशी[1] तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः। अतीव सुन्दरः श्यामः पीताम्बरधरो वरः॥७॥
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान्। मुनीन्द्रान्बालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया॥८॥

उन्होंने अपना मुख अत्यन्त नीचे झुकाया था। नेत्र को भी उन्होंने कुछ बन्द कर लिया था। उनका मन कृष्ण से युक्त था। वे बाह्यतः तथा आभ्यन्तर रूप से कृष्ण स्मरण में निरत थे। वे तपःफलभागी, तेजस्वी, प्रज्वलित अग्निशिखा के समान अत्यन्त सुन्दर श्यामवर्ण वाले तथा पीतवस्त्रधारी थे। तदनन्तर शनैश्चर ने पहले विष्णु-ब्रह्मा-शिव-धर्म-सूर्य-देवता तथा मुनियों को प्रणाम किया, तब इनकी आज्ञा से शिशु को देखने गये।।६-८।।

प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम्। द्वाःस्थं वै शूलहस्तं च विशालाक्षमुवाच ह॥९॥

वे पहले प्रधान द्वार पर गये तथा वहां शिव के समान पराक्रमी शूलपाणि द्वारपाल विशालाक्ष से कहा-।।९।।

शनैश्चर उवाच

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर। विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः॥१०॥
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसंनिधिं बुध। पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः॥११॥

शनैश्चर कहते हैं-हे शंकर सेवक! मैं शिव की आज्ञा से शिशु को देखने जा रहा हूं। साथ ही विष्णु आदि देवता तथा मुनिगण का भी इस सम्बन्ध में मुझसे अनुरोध था। हे बुद्धिमान्! मुझे पार्वती देवी के पास जाने की आज्ञा प्रदान करो। मैं बालक को देख कर पुनः शीघ्र वापस आऊंगा, क्योंकि मेरा मन नाना कार्य में लगा रहता है।।१०-११।।

विशालाक्ष उवाच

आज्ञावहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्करः। मार्गं दातुं न शक्तोऽहं बिना मन्मातुराज्ञया॥१२॥

---

१. क. ०लानि संयम्य ज्व०।

द्वारपाल विशालाक्ष कहता है–मैं देवगण का आज्ञापालक नहीं हूं, साथ ही शिव का किंकर भी नहीं हूं। बिना माता पार्वती की आज्ञा के मैं आपको मार्ग नहीं दे सकता।।१२।।

इत्युक्त्वाऽभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया।
ददौ मार्गं ग्रहेशाय विशालाक्षी मुदा ततः।।१३।।

यह कह कर विशालाक्ष भीतर पार्वती के पास गया। जब पार्वती की आज्ञा मिली, उसने ग्रहेश शनि को भीतर जाने का मार्ग दे दिया।।१३।।

शनिरभ्यन्तरं गत्वा चानमन्नम्रकंधरः। रत्नसिंहासनस्थां च पार्वतीं सस्मितां मुदा।।१४।।
सखिभिः पञ्चभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः।
सखिदत्तं च ताम्बूलमुपभुज्य सुवासितम्।।१५।।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषितम्। पश्यन्तीं नर्तकीनृत्यं पुत्रं धृत्वा च वक्षसि।।१६।।
नतं सूर्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गा संभाष्य सत्वरम्।
शुभाशिषं ददौ तस्मै पृष्ट्वा तन्मङ्गलं शुभम्।।१७।।

शनिदेव ने मस्तक नीचे किये आनन्दित होकर रत्नसिंहासनासीन पार्वती देवी को प्रणाम किया। तब देवी को ५ सखियां अनवरत श्वेत चामर झल रही थीं। पार्वती सखियों द्वारा प्रदत्त सुवासित ताम्बूल चबा रही थीं। वे रत्नाभूषणभूषिता थीं तथा उन्होंने अग्निशुद्ध वस्त्र पहना था तथा पुत्र को वक्षःस्थल से लगाकर नर्त्तकी समूह को नृत्य करते देख रही थीं। जब शुभलक्षणा दुर्गा ने सूर्यपुत्र शनिदेव को देखा, तब उन्होंने सादर बात करते हुए शनिदेव से उनकी कुशलता पूछ कर उनको आशीर्वाद प्रदान किया।।१४–१७।।

पार्वत्युवाच

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्।
किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ग्रहेश्वर।।१८।।

देवी पार्वती कहती हैं–हे साधु! ग्रहेश्वर! तुमने अपना मुख अवनत क्यों किया है? मेरे पुत्र का मुख क्यों नहीं देखते हो।।१८।।

शनिरुवाच

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम्।
शुभाशुभं च यत्कर्म कोटिकल्पैर्न लुप्यते।।१९।।

शनि कहते हैं–हे साध्वी! सभी अपने कृत कर्म का फलभोग करते हैं। स्वयं शुभाशुभ किया हुआ कर्म कोटि कल्प में भी व्यर्थ नहीं होता।।१९।।

कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रार्यममन्दिरे। कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा।।२०।।

कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा।
स्वकर्मणा च राजेन्द्रो भृत्यश्चापि स्वकर्मणा॥२१॥
कर्मणा सुन्दरःशश्वद्व्याधियुक्तः स्वकर्मणा।
कर्मणा विषयी मातनिर्लिप्तश्च स्वकर्मणा॥२२॥

कर्म के कारण ही जीव ब्रह्मा, इन्द्र तथा सूर्य के गृह में जन्म लेता है। अपने कर्म के कारण हर मनुष्य अथवा पशु आदि योनि में प्राणी जन्म लेता है। अपने कर्म से ही प्राणी वैकुण्ठ लोक में अथवा नरक में जाता है। स्वकर्म से ही वह राजा अथवा भृत्य होता है। कर्म से ही प्राणी सुन्दर होता है तथा कर्म से ही वह निरन्तर व्याधिग्रस्त होता है। वह अपने ही कर्म के कारण विषयी होता है अथवा निर्लिप्त वैरागी हो जाता है।।२०-२२।।

कर्मणा धनवाँल्लोको दैन्ययुक्तः स्वकर्मणा।
कर्मणा सत्कुटुम्बी च कर्मणा बन्धुकण्टकः॥२३॥
सुभार्यश्च सुपुत्रश्च सुखी शश्वत्स्वकर्मणा।
अपुत्रकश्च कुस्त्रीको निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा॥२४॥
इतिहासं चातिगोप्यं शृणु शङ्करवल्लभे। अकथ्यं जननीपार्श्वे लज्जाजननकारणम्॥२५॥

अपने ही कर्म से व्यक्ति धनी अथवा दीन होता है, वह अपने कर्म के द्वारा ही उत्तम कुटुम्बी अथवा बन्धुजन तथा कुटुम्ब के लिये कण्टक हो जाता है। वह अपने उत्तम कर्मों द्वारा उत्तम भार्या, उत्तम पुत्रयुक्त तथा सुखी होता है। वह अपने दुष्ट कर्मों के फलस्वरूप पुत्रहीन, कुभार्या युक्त अथवा भार्याविहीन भी हो जाता है। हे शंकरवल्लभे! एक ऐसा इतिहास कहता हूं, जो गोपनीय, लज्जाकारी है तथा माता के सामने भी कहने योग्य नहीं है। उसे श्रवण करें।।२३-२५।।

आबाल्यात्कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः।
तपस्यासु रतः शश्वद्विषयेऽपि रतः सदा॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्यां चित्ररथस्य च। अतितेजस्विनी शश्वत्तपस्यासु रतः सदा॥२७॥
एकदा सा त्वृतुस्नाता सुवेषं स्वं विधाय च। रत्नालङ्कारसंयुक्ता [1]मुनिमानसमोहिनी॥२८॥
हरेः पादं ध्यायमानं मां मां पश्येत्युवाच ह।
मत्समीपं समागत्य सस्मिता लोललोचना॥२९॥
शशाप मामपश्यन्तमृतुनाशाश्च कोपतः। बाह्यज्ञानविहीनं च ध्यायसंलग्नमानसम्॥३०॥

(शनि कहते हैं)—मैं बाल्यकाल से ही कृष्ण का ध्यान करता था। मेरा मन सदा उनके प्रति एकाग्र रहता था। मैं अनवरत तपस्यारत तथा विषय से अनासक्त ही रहता था। पिता सूर्यदेव ने चित्ररथ

१. क. पश्यन्ती मदमोहिता।

की पुत्री के साथ मेरा विवाह कर दिया। मेरी पत्नी पतिव्रता, अत्यन्त तेजस्विनी तथा सदा तपस्यारत रहती थी। किसी समय मुनिगण के मन को मोहित करने वाली, चंचलनयना, ऋतुस्नान करके सज्जित वेश, रत्नालंकारभूषिता वह मेरी पत्नी मेरे पास आई तथा जब उसने मुझे प्रसन्न मुख होकर हरिचरण चिन्तन में लीन देखा, तब अपना मनोभाव मुझसे कहा कि मेरा अवलोकन करो, तथापि मैं तो उस समय बाह्यज्ञान रहित तथा ध्यान में लीन था। मैंने उसका कथन सुना ही नहीं। तब अपना ऋतुकाल निष्फल जाते देख कर उसने क्रोध पूर्वक मुझे शाप दे दिया!।।२६-३०।।

न दृष्टाऽहं त्वया येन न कृतं ह्यृतुरक्षणम्। त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति।।३१।।

उसने कहा–हे मूढ़! तुमने न तो मुझे देखा, न तो (समागम द्वारा) मेरे ऋतुकाल की रक्षा ही किया। आज से जो कुछ भी तुम देखोगे, वह नष्ट हो जायेगा।।३१।।

अहं च विरतो ध्यानात्तोषयंस्तां तदा सतीम्।
शापं मोक्तुं न शक्ता सा पश्चात्तापमवाप ह।।३२।।
तेन मातर्न पश्यामि किञ्चिद्वस्तु स्वचक्षुषा।
ततः[1] प्रकृतिनम्रास्यः प्राणिहिंसाभयादहम्।।३३।।

तदनन्तर ध्यान से व्युत्थित होने पर भले ही मैंने उसकी मनोकामना के अनुसार सन्तुष्ट कर दिया, तथापि वह सती मुझे शाप से मुक्त कर ही नहीं पा रही थी। वह पश्चात्ताप करने लगी। हे माता! तभी से मैं जो कुछ भी देख लेता हूं (आंखें उठा कर देख लेता हूं) वह नष्ट न हो तथा प्राणिहिंसा न हो, मेरा स्वभाव नतशिर रहने का हो गया है।।३२-३३।।

शनैश्चरवचः श्रुत्वा चाहसत्पार्वती मुने। उच्चैः प्रजहसुः सर्वा नर्तकीकिंनरीगणाः।।३४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिपार्वतीसं० शनेरधोदृष्टौ कारणकथनं नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

हे मुनिवर! शनैश्चर का कथन सुन कर पार्वती तथा सभी किन्नरियां एवं नर्त्तकी उच्च स्वर से हंसने लगीं।।३४।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

१. क. ०तः प्रभृति।

अथ द्वादशोऽध्यायः

शनि की दृष्टि पड़ते ही गणेश का शिर गिरना, पुनः शिव द्वारा शिरयुक्त करना

नारायण उवाच

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम्। ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेवेत्युवाच ह॥१॥

सा च देवी दैववशात् शनिं प्रोवाच कौतुकात्।
पश्य मां मच्छिशुमिति निषेकः केन वार्यते॥२॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम्।
पश्यामि किं न पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो॥३॥
यदि बालो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद्ध्रुवम्।
अन्यथा सुप्रशस्तं च पुरतः स्वात्मरक्षणम्॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—दुर्गा ने शनि का कथन सुन कर ईश्वर हरि का स्मरण किया तथा कहा कि "यह समस्त जगत् ईश्वरेच्छा के वश में है।" तत्पश्चात् उन्होंने कौतुक पूर्वक शनैश्चर से कहा कि "तुम मुझे तथा मेरे बालक की ओर दृष्टिपात् करो। होनी को कौन टाल सकता है?" पार्वती का कथन सुन कर शनि ने विचार किया कि मैं पार्वती के पुत्र को देखूं अथवा न देखूं? यदि बालक को देखता हूं, तब तो निश्चय ही उसका विघ्न होगा। अथवा सामने रह कर अपनी आत्मरक्षा करूं?॥१-४॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न तु तन्मातरं शनिः॥५॥
विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः। सव्यलोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम्॥६॥
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छिदे मस्तकं मुने। चक्षुर्निमीलयामास तस्थौ नम्राननः शनिः॥७॥

तस्थौ च पार्वतीक्रोडे तत्सर्वाङ्गं सलोहितम्।
विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम्॥८॥
मूर्च्छां संप्राप सा देवी विलप्य च भृशं मुहुः।
मृतेव च पृथिव्यां तु कृत्वा वक्षसि बालकम्॥९॥

तब धार्मिक शनि ने धर्म को साक्षी मान कर शिशु को देखने का निश्चय किया। माता पार्वती को देखने का निश्चय नहीं किया। उस समय उनका मन खिन्न हो गया था। पहले से ही उनके ओष्ठ-अधर, कण्ठ, तालु शुष्क हो चले थे, तथापि उन्होंने दाहिने नेत्र के कोण से शिशु की ओर देखा। हे मुनिप्रवर! जैसे ही शनि ने बालक को देखा, उसका शिर विच्छिन्न हो गया। उस समय शनि नेत्र बन्द

करके वहीं स्थित हो गये। पार्वती की क्रोड़ में ही कटे शिर बालक के रक्त द्वारा उसका सर्वांग रक्त से लिप्त हो गया। वह छिन्न शिर गोलोक चला गया। तब भगवती रोते-रोते मूर्च्छाग्रस्त हो गयीं। वे बालक को वक्ष से लिपटाये मृतक के समान पृथिवी पर गिर पड़ीं।।५-९।।

विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा।
देव्यश्च शैला गन्धर्वाः सर्वे कैलासवासिनः।।१०।।
तान्सर्वान्मूर्च्छितान्दृष्ट्वैवाऽऽरुह्य गरुडं हरिः।
जगाम पुष्पभद्रां स चोत्तरस्यां दिशि स्थिताम्।।११।।

पुष्पभद्रानदीतीरे ह्यपश्यत्कानने स्थितम्। गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम्।।१२।।
तथोदक्छिरसं रम्यं मूर्च्छितं सुरतश्रमात्। परितः शावकान्कृत्वा परमानन्दमानसम्।।१३।।

उस समय उपस्थित देवता विस्मित हो गये, वे कठपुतली की तरह अवाक् खड़े रह गये। सभी उपस्थित देवीवर्ग, पर्वतगण, गन्धर्ववृन्द तथा कैलासवासियों की भी यही स्थिति हो गई थी। वहां सबको मूर्च्छित देख कर विष्णु गरुड़ पर बैठ कर उत्तर दिशा में पुष्पभद्रा नदीतट पर गये। वहां के महान् वन में उन्होंने हथिनियों के साथ निद्रित गजराज को देखा। वह हथिनियों के साथ समागम के श्रम से थक कर अपने बच्चों से घिरा शयनरत था। वह परमानन्द में मग्न सो रहा था।।१०-१३।।

शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छिदे तच्छिरो मुदा। स्थापयामास गरुडे रुधिराक्तं मनोहरम्।।१४।।

गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात्प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी।
शावकान्बोधयामास चाशुभं वदती तदा।।१५।।
रुरोद शावकैः सार्धं सा विलप्य शुचाऽऽतुरा।
तुष्टाव कमलाकान्तं शान्तं सस्मितमीश्वरम्।।१६।।

शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्। गरुडस्थं जगत्कान्तं भ्रामयन्तं सुदर्शनम्।।१७।।

विष्णु ने मुदित होकर सुदर्शन द्वारा तत्काल उसका शिर काट कर वह रुधिराक्त शिर गरुड़ पर रखा। इसी समय गजमस्तक उच्छिन्न होने के शब्द से हथिनी जाग्रत होकर अपने बच्चों के साथ विलाप करती भगवान् कमलाकान्त की स्तुति करने लगी जो शान्त, मन्द मुस्कान वाले, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, परम प्रभु पीताम्बर धारण करने वाले जगत्पति गरुड़ पर बैठे थे। उनके हाथ में चक्र सुदर्शन घूर्णित हो रहा था।।१४-१७।।

निषेकं खण्डितुं शक्तं निषेकजनकं विभुम्। निषेकभोगदातारं भोगनिस्तारकारणम्।।१८।।

प्रभुस्तत्स्तवनात्तुष्टस्तस्यै विप्र वरं ददौ।
मुण्डात्तुण्डं पृथक्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्य च।।१९।।

जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन सर्ववित्। सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम्।।२०।।

त्वं जीवाऽकल्पपर्यन्तं परिवारैः समं गज।
इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासं ह्याजगाम सः॥२१॥

दैवबल तथा जन्म को भी खण्डित कर देने की शक्ति वाले, दैव घटनाओं तथा जन्म के भी जनक सुदर्शन चक्र घुमाने वाले दैवभोगदाता, भोगों से छुटकारा दिलाने वाले कमलाकान्त का स्तव वह हथिनी करने लगी। हे विप्र! प्रभु नारायण उस हथिनी के स्तव से प्रसन्न हो गये। उन्होंने हथिनी को वर प्रदान किया तथा आनन्दित होकर नारायण ने उस हाथी के कटे शिर से ही अन्य एक हस्तिमुण्ड का आकर्षण करके उस मुण्ड को मुण्डहीन हाथी के धड़ पर जोड़ दिया। ब्रह्मज्ञ नारायण ने उस गजराज के सर्वांग पर अपना चरण रखा तथा ब्रह्मज्ञान द्वारा उस गज को जीवित करते हुए प्रभु ने कहा—"तुम कल्पान्त तक अपने परिवार सहित जीवित रहो।" यह कह कर विष्णु मनोवेग से चल कर कैलास आ गये।।१८-२१।।

आहृत्य[१] पार्वतीहस्ताद्बालं कृत्वा स्ववक्षसि।
रुचिरं तच्छिरः सम्यग्योजयामास बालके॥२२॥
ब्रह्मस्वरूपो भगवान्ब्रह्मज्ञानेन लीलया। जीवयामास तं शीघ्रं हुङ्कारोच्चारणेन च॥२३॥
पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च तं शिशुम्।
बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैः॥२४॥

वहां आकर विष्णु ने पार्वती से उस बालक को अपनी गोद में रखा तथा वह सुन्दर गजमस्तक बालक के धड़ से युक्त करके ब्रह्मस्वरूप प्रभु ने ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से हुंकारोच्चारण द्वारा गणेश को जीवित कर दिया। तदनन्तर उन्होंने पार्वती को नाना प्रकार से प्रबोधित किया तथा शिशु गणेश को उनकी गोद में रख कर अनेक आध्यात्मिक चर्चा से पार्वती को बोधन प्रदान किया।।२२-२४।।

विष्णुरुवाच

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं फलं भुङ्क्ते स्वकर्मणः।
जगद्बुद्धिस्वरूपाऽसि त्वं न जानासि किं शिवे॥२५॥
कल्पकोटिशतं भोगी जीविनां तत्स्वकर्मणा।
उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभः॥२६॥
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत्सति। कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै॥२७॥
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना।
मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च॥२८॥
सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥२९॥

१. क. आगत्य पार्वतीस्थानं बोधयित्वा तु तं शिशुम्। बो०।

श्रीविष्णु कहते हैं—हे शिवे! ब्रह्मा से लगाकर कीट तक समस्त जगत्वासी अपने-अपने कर्म का भोग करते हैं। तुम तो स्वयं बुद्धिस्वरूपा हो। तुमसे कुछ अज्ञात है क्या? शतकोटि कल्प तक जीवगण स्वकर्म का भोग प्राप्त करते हैं। प्रत्येक जन्म में प्राणी को शुभ-अशुभ कर्मफल मिलता है। हे सती! इन्द्रादि भी स्वकर्मफलानुरूप कीट योनि तक प्राप्त करते हैं तथा कीट भी पूर्वकर्मफल से इन्द्रत्व लाभ करते हैं। पूर्वतन कर्मफल के बिना एक सिंह तो एक मक्खी तक का वध नहीं कर सकता। दूसरी ओर अपने प्राक्तन कर्मों के फल द्वारा एक मच्छर भी हाथी का हनन कर देता है। सुख, दुःख, भय, शोक, आनन्द-ये सभी प्राणी के कर्म के फल हैं। सुकर्म का फल है सुख-हर्ष, इसके विपरीत सब कुछ पापकर्म का ही फल जानना चाहिए।।२५-२९।।

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभः। कर्मोपार्जनयोग्यं च पुण्यक्षेत्रं च भारतम्।।३०।।

कर्मणः फलदाता च विधाता च विधेरपि।
मृत्योर्मृत्युः कालकालो निषेकस्य निषेककृत।।३१।।

संहर्तुरपि संहर्ता पातुः पाता परात्परः। गोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम्।।३२।।

शुभ-अशुभ कर्मभोग इहलोक तथा परलोक में मिलता है। भारतवर्ष ही कर्म उपार्जन योग्य पुण्यभूमि है। स्वयं पूर्णतम गोलोकपति कृष्ण कर्मफलदाता हैं। वे तो विधाता के भी विधाता, मृत्यु की भी मृत्यु, काल के भी काल, दैव के भी दैव, संहारकारी के भी संहारक तथा पालनकारी का भी पालन करने वाले प्रभु हैं। वे परात्पर गोलोकपति श्रीकृष्ण स्वयं परिपूर्णतम भी हैं।।३०-३२।।

वयं यस्य कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। महाविराड्यदंशश्च यल्लोमविवरे जगत्।।३३।।

कलांशाः केऽपि तद्दुर्गे कलांशांशाश्च केचन।
चराचरं जगत्सर्वं तत्र तस्थौ विनायकः।।३४।।

हम तीनों, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, इन पुरुष कृष्ण के कला स्वरूप हैं। जिनके प्रत्येक रोमछिद्र में एक-एक जगत् स्थित रहता है, वह महाविराट् तो उनके अंशमात्र ही हैं। हे दुर्गे! इस चराचर समस्त जगत् में कोई-कोई उनका कलांश है, कोई-कोई इस अंश का भी अंश ही है। तभी वे विनायक कहे गये हैं।।३३-३४।।

श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती। स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम्।।३५।।

तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शङ्करेण च।
कृताञ्जलिपुटा भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम्।।३६।।

श्री विष्णु का कथन सुन कर पार्वती ने सन्तुष्ट होकर गदाधारी विष्णु को तथा कृष्ण को प्रणाम करके बालक को स्तनपान कराया। तब सन्तुष्ट मन हो गयीं पार्वती ने शंकर से प्रेरित होकर हाथ जोड़े हुये कमलापति विष्णु का भक्तिभावेन स्तव किया।।३५-३६।।

आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुं च शिशुमातरम्। ददौ गले बालकस्य कौस्तुभं च स्वभूषणम्।।३७।।

ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मो वै रत्नभूषणम्।
क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम्॥३८॥

उस समय विष्णु ने शिशु को तथा शिशु की माता (शिवा) को आशीर्वाद देकर बालक के गले में अपनी कौस्तुभ मणि धारण करा दिया। ब्रह्मा ने बालक को अपना मुकुट, धर्म ने रत्नाभूषण प्रदान किया। क्रमशः समस्त देवीगण ने भी बालक को अनेक यथोचित रत्न धारण करा दिया।।३७-३८।।

तुष्टाव तं महादेवश्चात्यन्तं हृष्टमानसः। देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः॥३९॥

दृष्ट्वा शिवः शिवा चैव बालकं मृतजीवितम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद॥४०॥

अश्वानां च गजानां सहस्राणि शतानि च। बन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते॥४१॥
हिमालयश्च संतुष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै। ददुर्दानानि विप्रेभ्यो बन्दिभ्यः सर्वयोषितः॥४२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः॥४३॥

तदनन्तर महादेव ने अत्यन्त हर्षित होकर भगवान् की स्तुति किया था। इसी प्रकार से देवता, मुनिवृन्द, पर्वत, गन्धर्वगण तथा उपस्थित सभी नारियों ने भी भगवान् की स्तुति किया था। शिव-शिवा ने मृत बालक को जीवित देख कर ब्राह्मणगण को करोड़ों रत्न भी प्रदान किया। हे नारद! उन्होंने बालक के जीवित हो जाने के उपलक्ष्य में बन्दीगण को १००० अश्व तथा १०० गजेन्द्र भी प्रदान किया। रमानाथ विष्णु ने भी बालक के जीवित होने के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन, मंगलगान, वेदपाठ, पुराण पाठ कराया।।३९-४३।।

शनिं संलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी।
शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च॥४४॥
दृष्ट्वा शप्तं शनिं सूर्यः कश्यपश्च यमस्तथा।
तेऽतिरुष्टाः समुत्तस्थुर्गामुकाः शङ्करालयात्॥४५॥
रक्ताक्षास्ते रक्तमखाः कोपप्रस्फुरिताधराः।
तां धर्मसाक्षिणं कृत्वा विष्णुं संशप्तुमुद्यताः॥४६॥
ब्रह्मा तान्बोधयामास विष्णुना प्रेरितः सुरैः।
रक्तास्यां पार्वतीं चैव कोपप्रस्फुरिताधराम्॥४७॥

ब्रह्माणमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम्। भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा॥४८॥

तब शनिदेव को जब लज्जित देखा, पार्वती ने क्रोध पूर्वक शाप दिया "हे शनि! तुम अंगहीन हो जाओ।" शनि को शापित देख कर सूर्य, कश्यप, यम अत्यन्त क्रोधित हो गये। वे उठने के लिये उद्यत हो गये जिससे महादेव का गृह त्याग कर सकें। क्रोध से इनके मुख तथा नेत्र लाल हो गये। होंठ

कांपने लगे। वे धर्म तथा विष्णु को साक्षी मान कर पार्वती को शाप देने हेतु तत्पर हो गये। यह देख कर विष्णु तथा अन्य देवगण से प्रेरित होकर ब्रह्मदेव ने सूर्यादि देवगण तथा पार्वती को सान्त्वना देना चाहा, जिनके मुख क्रोध से लाल हो गये थे तथा अधर फड़क रहे थे। तब ब्रह्मा से उन लोगों ने समयोचित वाक्य क्रमशः कहा कि पर्वत, देवता तथा मुनिगण ये भीरु स्वभाव होते हैं।।४४-४८।।

कश्यप उवाच

दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा। बालं ददर्श यत्नेन तस्य वै मातुराज्ञया।।४९।।

कश्यप कहते हैं–यह शनि तो पहले से ही पत्नी के शाप के कारण अशुभ दृष्टि हो गये हैं। इन्होंने बालक की माता पार्वती की ही आज्ञा से बालक को देखा था।।४९।।

सूर्य उवाच

तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा सूनोर्वै मातुराज्ञया। मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ह्यपश्यत्पार्वतीसुतम्।।५०।।
यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह। तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः।।५१।।

सूर्यदेव कहते हैं–बालक की माता की आज्ञा से तथा धर्म को साक्षी करके शनि ने बालक की ओर देखा था। तभी पार्वती के पुत्र का अंग-भंग हो गया, तथापि पार्वती ने मेरे निर्दोष पुत्र को शाप दिया है। अतः पार्वती पुत्र का अंग भंग निश्चय होगा।।५०-५१।।

यम उवाच

प्रदाय स्वयमाज्ञां च शशापेयं स्वयं कथम्।
वयं शापमः कोऽधर्मो जिघांसोश्च विहिंसने।।५२।।

यमदेव कहते हैं–आपने बालक की ओर देखने की आज्ञा शनि को दिया था। तब आप शाप क्यों दे रही हैं? मैं भी आपको शाप दूंगा। जो हिंसा करे, उसकी हिंसा करना कदापि अधर्म नहीं है।।५२।।

ब्रह्मोवाच

शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात्।
सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः।।५३।।

दुर्गे दत्त्वा त्वमाज्ञां च पुत्रदर्शनहेतवे। कथं शापसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम्।।५४।।

ब्रह्मदेव कहते हैं–पार्वती ने नारीजनित चपलता (जल्दबाजी) के कारण शाप दे दिया। यह क्रोध का फल है। हे दुर्गे! तुमने तो पुत्र को देखने हेतु शनि को स्वयं आज्ञा दिया था। तुमने अपने घर आये निर्दोष अतिथि को क्यों शाप दे दिया? साधु क्षमावान् होते हैं। सबके कहने से तुम शनि को क्षमा कर दो।।५३-५४।।

इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा च पार्वतीम्। तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे।।५५।।

बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने। शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः॥५६॥
उवाच पार्वती तत्र संतुष्टा[१] तं शनैश्चरम्। प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता॥५७॥

यह कह कर ब्रह्मा ने पार्वती को समझा कर शापमोचनार्थ शनि का हाथ पार्वती के हाथों में दे दिया। अर्थात् शनि को पार्वती की शरण में दे दिया। हे मुनिवर! ब्रह्मा का कथन सुन कर पार्वती प्रसन्न हो गईं। तदनन्तर सूर्य-यम-कश्यप का भी क्रोध शान्त हो गया। इसके पश्चात् शिव द्वारा प्रसन्न किये जाने पर तथा ब्रह्मा द्वारा सेवित पार्वती शनिश्चर से कहने लगीं-॥५५-५७॥

पार्वत्युवाच

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः। चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तश्य का विपत्॥५८॥

अद्यप्रभृति निर्विघ्ना हरौ भक्तिर्दृढाऽस्तु ते।
शापोऽमोघस्ततो मेऽद्य किञ्चित्खञ्जो भविष्यसि॥५९॥

देवी पार्वती कहती हैं-हे शनि! आज से तुम ग्रहराज, हरि को प्रिय, चिरजीवी, योगीन्द्र होगे। हरिभक्ति करने वाले भक्त पर कभी विपत्ति नहीं आ सकती। मेरा शाप व्यर्थ नहीं होता। जीवन पर्यन्त तुम कुछ लंगड़ाते चलोगे।।५८-५९।।

इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा बालं धृत्वा[२] च वक्षसि।
उवास योषितां मध्ये तस्मै दत्त्वा शुभाशिषः॥६०॥

यह कह कर पार्वती ने प्रसन्न होकर शिशु को वक्ष से लगा लिया तथा शनि को शुभाशीर्वाद प्रदान करके स्त्रियों के बीच बैठ गईं।।६०।।

शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः।
प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्बिकां जगदम्बिकाम्॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिकृतगणेशदर्शनतज्जातगणेशशिरःपतनविष्णुकृतगणेशशिरो-योजनशनिशापादिकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

इसके अनन्तर शनि ने भी जगदम्बा को भक्तिभाव से प्रणाम किया तथा देवगण के पास आ गये।।६१।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

१. क. ०तुष्टं तं।
२. क. कृत्वा।

त्रयोदशोऽध्यायः

गणेश का नामकरण, उनका कवच वर्णन, गणेश पूजा तथा स्तुति वर्णन

नारायण उवाच

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह। पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः॥१॥
सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम। सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥२॥

तदनन्तर शुभकाल में देवता तथा मुनिगण सहित विष्णु ने बालक का पूजन सर्वोत्तम उपहार से किया तथा उससे कहा–"हे वत्स! तुम देवताओं तथा योगीन्द्रों में श्रेष्ठ हो। मैंने तुम्हारी पूजा सबसे पहले किया है। अतः तुम सबके अग्रपूज्य हो जाओ।।१-२।।

वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानं च मुक्तिदम्। सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकाराऽऽत्मसमं हरिः॥३॥

ददौ द्रव्याणि चारूणि चोपचारांश्च षोडश।
नामभिः[1] स्तवनं चक्रे मुनिभिश्च समं सुरैः॥४॥

यह कह कर विष्णु ने बालक को वनमाला तथा मुक्तिदायक ब्रह्मज्ञान प्रदान किया। अनन्तदेव ने बालक को अपने समान बना कर सभी सिद्धियां प्रदान कीं। उनको मनोहर द्रव्य तथा षोडशोपचार पूजा भी प्रदान किया। इसके पश्चात् देवताओं एवं मुनिगण के द्वारा गणेश का नामकरण किया गया। देवता तथा मुनि उनके नामों का स्तवन करने लगे।।३-४।।

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः। लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः॥५॥

एतान्यष्टौ च नामानि सर्वसिद्धिप्रदानि च।
आशिषं दापयामास चाऽऽनयामास तन्मुनीन्॥६॥

उनके नाम का स्तव इस प्रकार किया गया–विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण, विनायक। ये गणेश के ८ नाम सर्वसिद्धिप्रद हैं। तदनन्तर विष्णु ने वहां पर मुनिगण को बुला कर उनसे गणेश को आशीर्वाद दिलवाया।।५-६।।

सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम्। शङ्करो योगपट्टं च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्॥७॥
रत्नसिंहासनं शक्रः सूर्यश्च मणिकुण्डले। माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुबेरश्च किरीटकम्॥८॥
वह्निशुद्धं च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः। रत्नच्छत्रं च वरुणो वायु रत्नाङ्गुलीयकम्॥९॥
क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम्। मञ्जीरं चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने॥१०॥
कण्ठभूषां च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम्। क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः॥११॥

---

१. ०तन्नामकरणं च०।

गणेश को धर्म ने सिंहासन, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शंकर ने योगपट्ट तथा दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्रदान किया। इन्द्र ने रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणिकुण्डल, चन्द्र ने माणिक्य माला, कुबेर ने किरीट, अग्नि ने अग्निशुद्ध वस्त्र, वरुण ने रत्न का छत्र, वायु ने रत्नों की अंगूठी, लक्ष्मी ने क्षीरसागरस्थ श्रेष्ठ रत्न निर्मित वलय नूपुर तथा बाजूबन्द दिया। सावित्री ने कण्ठ का आभूषण, सरस्वती ने उत्तम हार प्रदान किया। इस प्रकार क्रमानुरूप सभी देवता तथा देवीगण ने उनको नाना उपहार प्रदान किया था।।७-११।।

मुनयः पर्वताश्चैव रत्नानि विविधानि च। वसुंधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम्।।१२।।
क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्वतादयः। गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनवो मानवास्तथा।।१३।।
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि मधुराणि च।
पूजां चक्रुश्च ते सर्वे क्रमाद्वै भक्तिपूर्वकम्।।१४।।
पार्वती जगतां माता स्मेराननसरोरुहा। रत्नसिंहासने पुत्रं वासयामास नारद।।१५।।
सर्वतीर्थोदकै रत्नकलशावर्जितैस्तु तैः। स्नापयामास वेदोक्तमन्त्रेण मुनिभिः सह।।१६।।

इसके अनन्तर मुनिगण तथा पर्वतों द्वारा उनको अनेक प्रकार के रत्न तथा वसुन्धरा ने उनको वाहन हेतु मूषक प्रदान किया था। क्रमशः देवता-देवियों-मुनिगण-पर्वत-गन्धर्व-किन्नर-यक्ष-मनुगण-मानवों ने नाना द्रव्य तथा स्वादिष्ट एवं मधुर वस्तु देकर भक्ति पूर्वक उनका पूजन किया। देवी पार्वती ने किंचित् मुस्कराते हुए पुत्र को रत्नमय सिंहासन पर बैठाया। इसके पश्चात् सभी प्रकार के तीर्थ जल से भरे रत्नकलशों से वेदमन्त्र का उच्चारण करते हुए मुनिगण ने इस पुत्र को स्नान कराया।।१२-१६।।

अग्निशुद्धे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा। गोदावर्युदकैः पाद्यमर्घ्यं गङ्गोदकेन च।।१७।।
दूर्वाभिरक्षतापुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम्। पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम्।।१८।।
मधुपर्कं रत्नपात्रैरासवं शर्करान्वितम्।
स्नानीयं विष्णुतैलं च स्ववैद्याभ्यां विनिर्मितम्।।१९।।

हे नारद! उस समय देवी सती ने गणेश को अग्निशुद्ध दो वस्त्र मुदित मन से प्रदान किया। उनको गोदावरी के जल का पाद्य तथा दूर्वा, अक्षत, पुष्प, चन्दन युक्त गंगाजल का अर्घ्य भी प्रदान किया। आचमनार्थ गणेश को पुष्कर का जल देकर रत्ननिर्मित पात्र में शर्करा तथा आसवयुक्त मधुपर्क दिया गया। अश्विनीकुमार द्वय ने इनके लिये स्नानीय विष्णुतैल बनाया।।१७-१९।।

अमूल्यरत्नरचितचारुभूषाकदम्बकम्। पारिजातप्रसूनानामन्येषां शतकानि च।।२०।।
मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानि च।
पूजार्हाणि च पत्राणि तुलसी[1] सहितानि च।।२१।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम्। रत्नप्रदीपनिकरं धूपं च परितो ददौ।।२२।।

---

१. क. ०वर्जिता०।

नैवेद्यं तत्प्रियं चैव तिललड्डुकपर्वतान्। यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकानां च पर्वतान्॥२३॥

पक्वान्नानां पर्वतांश्च सुस्वादुसुमनोहरान्।
पर्वतान्स्वस्तिकानां च सुस्वादुशर्करान्वितान्॥२४॥
गुडाक्तानां च लाजानां पृथुकानां च पर्वतान्।
शाल्यन्नानां पिष्टकानां पर्वतान्व्यञ्जनैः सह॥२५॥
पयोभृत्कलशानां च लक्षाणि प्रददौ मुदा।
लक्षाणि दधिपूर्णानां कलशानां च पूजने॥२६॥
मधुभृत्कलशानां च त्रिलक्षाणि च सुन्दरी।
सर्पिःसुवर्णकुम्भानां पञ्च लक्षाणि सादरम्॥२७॥

अमूल्य रत्न द्वारा निर्मित मनोहर भूषण, पारिजात पुष्प द्वारा रचित सैकड़ों मालाएं, मालती-चम्प आदि नाना प्रकार के पुष्प, तुलसी को छोड़ कर पूजा में विहित अन्य पत्ते, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, रत्नों के प्रदीप धूप उनके चारों ओर स्थापित करके प्रदान किया गया। उनका प्रिय नैवेद्य, पर्वताकार तिल के लड्डू के ढेर, स्वादिष्ट पर्वताकार मालपूआ, गुड़युक्त लावा, चूड़ा का पर्वत, अन्य व्यंजनों के साथ शालिधान्य का भात, पिष्टक का पर्वत तथा लाखों दुग्ध भरे कलश, यह सब आनन्द के साथ भगवती ने आनन्द पूर्वक गणेश को प्रदान किया। लाखों दधिपूर्ण कलश भी तीन लाख मधुपूर्ण कलश के साथ सुन्दरी पार्वती ने अर्पित करके घृतपूर्ण ५ लाख स्वर्णकलश भी सादर दिया।।२०-२७।।

दाडिमानां श्रीफलानामसंख्यानि फलानि च।
खर्जूराणां कपित्थानां जम्बूनां विविधानि च॥२८॥
आम्राणां पनसानां च कदलीनां च नारद।
फलानि नारिकेलानामसंख्यानि ददौ मुदा॥२९॥
अन्यानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च।
ददौ तानि महाभाग स्वादूनि मधुराणि च॥३०॥

स्वच्छं सुनिर्मलं चैव कर्पूरादिसुवासितम्। गङ्गाजलं च पानार्थं पुनराचमनीयकम्॥३१॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। सुवर्णपात्रशतकं भक्ष्यपूर्णं च नारद॥३२॥

शैलेश्वरी शैलराजः शैलजः शैलराजजः।
शैलराजप्रियात्मात्याः पुपूजुः शैलजात्मजम्॥३३॥

हे नारद! वहां गणेश को कदली-नारिकेल के अनगिनत फल, देशकाल में प्राप्त असंख्य अन्य मधु स्वादु फल हर्ष के साथ गणेश को प्रदान किया गया। उनको आचमन के लिये निर्मल, कर्पूर से सुवासित गंगाजल (पुनराचमनार्थ) प्रदान किया गया। गणेश को उत्तम, मनोहर, श्रेष्ठ, कर्पूरादि से

सुवासित ताम्बूल, भक्ष्य पदार्थ भरे सैकड़ों स्वर्णपात्र भी प्रदान किया गया। हे नारद! हिमवान्, उनकी पत्नी मेनका, पुत्र-प्रिय आमात्यगण ने भी पार्वतीनन्दन की पूजा किया था।।२८-३३।।

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः।।३४।।

इत्येनैव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्तितः। सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादयः।।३५।।
द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः।।३६।।

"ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः" इस मन्त्र को पढ़ते हुए प्रमुदित ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवगण ने उनको यह सब द्रव्य भक्तिभाव से अर्पित किया। यह ३२ अक्षर वाला मालामन्त्र सभी कामनाओं को प्रदान करता है। यह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप फलप्रद, स्वर्गसिद्धिदायक है।।३४-३६।।

पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः। मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते।।३७।।

विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च।
महावाग्मी महासिद्धिः [1]सर्वसिद्धिसमन्वितः।।३८।।
वाक्पतिर्गुरुतां याति तस्य साक्षात्सुनिश्चितम्।
महाकवीन्द्रो गुणवान्विदुषां च गुरोर्गुरुः।।३९।।

संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा आनन्दसंप्लुताः। नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरुत्सवे।।४०।।

यह मन्त्र ५ लक्ष जप से सिद्ध होता है। भारत में जिसने भी यह मन्त्र सिद्ध कर लिया, वह तो विष्णु ही है। उस व्यक्ति का नाम स्मरण करते ही सभी विघ्न पलायन कर जाते हैं। वह महान् वक्ता, महासिद्ध हो जाता है। वह सभी सिद्धियों से युक्त होता है। वह बृहस्पति के समान विद्वान् निश्चित रूप से हो जायेगा। वह महाकवि, गुणी, वैदुष्य युक्त तथा गुरुगण का भी गुरु होगा। देवगण गणेश की पूजा इसी मन्त्र से आनन्दयुक्त होकर करने लगे। उस उत्सव में नाना प्रकार के वाद्यों का उन लोगों ने वादन भी किया।।३७-४०।।

ब्राह्मणान्भोजयामासुः कारयामासुरुत्सवम्।
ददुर्दानानि तेभ्यश्च वन्दिभ्यश्च विशेषतः।।४१।।

सभी ने ब्राह्मण भोजन, उत्सव समारोह किया तथा वन्दीगण एवं ब्राह्मणों को प्रभूत दान भी दिया गया।।४१।।

नारायण उवाच

अथ विष्णुः सभामध्ये तं संपूज्य गणेश्वरम्।
तुष्टाव परया भक्त्या सर्वविघ्नविनाशकम्।।४२।।

१. क. ०र्व संपत्स०।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–तत्पश्चात् विष्णु ने सभा में गणेश की पूजा करके परम भक्ति के साथ सर्वविघ्ननाशक गणेश का स्तव किया।।४२।।

विष्णुरुवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
नैव वर्णयितुं शक्तोऽस्म्यनुरूपनीहकम्।।४३।।
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम्। सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम्।।४४।।
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम्।
वायुतुल्यं च निर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम्।।४५।।
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे। कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्।।४६।।

श्री विष्णु कहते हैं–हे ईश्वर! आपका स्वरूप तर्क से परे है। उसका निरूपण करने में मैं असमर्थ हूं। आप सभी देवगण से प्रवर, सिद्ध-योगीगण के गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश, ज्ञानराशिमय हैं। आप अव्यक्त, अक्षर, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायुतुल्य, निर्लिप्त, अक्षत तथा सर्वसाक्षी हैं। संसार-सागर को पार कराने हेतु आप मायारूप जहाज के अत्यन्त कुशल नाविक हैं, जो जीवों के दुर्लभ कर्णधार और भक्तों पर कृपालु हैं।।४३-४६।।

वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम्। सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम्।।४७।।
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम्।
धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम्।।४८।।

आप श्रेष्ठ, वरेण्य, वरप्रद, वरदाताओं के भी ईश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता तथा सिद्धि के साधन हैं। आप ध्यान से अतीत, ध्येय, ध्यानसाध्य, धार्मिक, धर्मरूप, धर्मज्ञ, धर्म-अधर्म का फल देने वाले हैं।।४७-४८।।

बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम्। स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम्।।४९।।
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम्।
स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं स्वेच्छया पुनः।।५०।।
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्। त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्त्रवदनैरपि।।५१।।
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः। सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ।।५२।।
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः।।५३।।

आप संसार वृक्ष के कारण (बीज) तथा उसके आश्रित अंकुर हैं। आप स्त्री-पुरुष-नपुंसक स्वरूप तथा अतीन्द्रिय भी हैं। आप सभी के आद्य (आदि), अग्रपूज्य, सर्वपूज्य, गुणसागर हैं। आप स्वेच्छा से सगुण तथा पुनः स्वेच्छा से निर्गुण ब्रह्म हो जाते हैं। आप स्वयं प्रकृति, प्राकृत होकर भी

प्रकृति से अतीत भी हैं। आपकी स्तुति अपने १००० मुखों से अनन्त भी नहीं कर सकते। पंचमुख शिव, चतुर्मुख ब्रह्मा भी इसमें अक्षम हैं। मैं अथवा सरस्वती भी आपकी स्तुति कर सकने के सामर्थ्य से रहित हैं। चारों वेद भी इस कार्य में समर्थ नहीं हैं। तब अन्य वेदज्ञों की बात क्या?।।४९-५३।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा मुनीशसुरसंसदि। सुरेशश्च सुरैः सार्धं विरराम रमापतिः॥५४॥

सुरेश्वर रमापति ने देवों के साथ इस प्रकार उस मुनियों तथा देवताओं की सभा में गणेश का स्तव किया तथा मौन हो गये।।५४।।

इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत्।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः॥५५॥

तद्विघ्ननाशं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने। वर्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा॥५६॥

यात्राकाले पठित्वा यो याति तद्भक्तिपूर्वकम्।
तस्य सर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः॥५७॥

हे मुनि! विष्णु कृत इस गणपति स्तव को जो समाहित होकर भक्ति के साथ प्रातः-मध्याह्न तथा सायंकाल करता है, गणेश उसके सभी विघ्नों का सतत् नाश कर देते हैं। उसके सभी कल्याण की वृद्धि हो जाती है। वह व्यक्ति कल्याणजनक हो जाता है। जो इस स्तव को भक्ति पूर्वक यात्राकाल में पढ़ता है, उसके सभी अभीष्ट की सिद्धि हो जाती है, यह निःसंशय है।।५५-५७।।

तेन दृष्टं च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते। कदाऽपि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा॥५८॥

भवेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनां च विवर्धनम्।
शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत्सम्पद्विवर्धनम्॥५९॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धनम्।
सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत्॥६०॥

फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद्ध्रुवम्। महतां सर्वदानानां तद्गणेशप्रसादतः॥६१॥

उसका देखा दुःस्वप्न भी सुस्वप्नफलदायी हो जाता है। उसे कदापि दारुण ग्रहपीड़ा नहीं होती। उसके बन्धु बढ़ते हैं तथा शत्रु नष्ट हो जाते हैं। सतत् उसके विघ्नों का नाश होता है तथा सतत् उसकी सम्पदा बढ़ती जाती है। उसके गृह में लक्ष्मी अचला हो जाती है। उसके पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती रहती है। जीवन में वह सभी ऐश्वर्य लाभ करके अन्त में विष्णुपद लाभ कर लेता है। तीर्थ तथा महान् यज्ञ एवं दान का जो फल है, वह उसे इस स्तोत्रपाठ द्वारा गणपति की कृपा से मिल जाता है।।५८-६१।।

नारद उवाच

श्रुतं स्तोत्रं गणेशस्य पूजनं च मनोहरम्।
कवचं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं भवतारणम्॥६२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मैंने गणेश का मनोहर पूजन तथा स्तोत्र सुन लिया। अब उनका भवसागर से पार कराने वाला कवच सुनने की इच्छा है।।६२।।

नारायण उवाच

पूजायां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः। उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकं जगतां गुरुम्।।६३।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—गणपति पूजा जब सम्पन्न हो गई तब सभा में शनि ने जगद्गुरु विष्णु से कहा—।।६३।।

शनैश्चर उवाच

सर्वदुःखविनाशाय पापप्रशमनाय च। कवचं विघ्ननिघ्नस्य वद वेदविदां वर।।६४।।
बभूव नो विवादश्च शक्त्या वै मायया सह। तद्विघ्नप्रशमार्थं च कवचं धारयाम्यहम्।।६५।।

शनैश्चर कहते हैं—हे वेदज्ञप्रवर विष्णु! सभी दुःखों के नाशार्थ तथा शान्ति हेतु विघ्नहारी गणेश का कवच कहिये। पूर्व में महामाया शक्ति के साथ मेरा महान् विवाद हो गया था। उस विघ्न का नाश करने हेतु यह कवच धारणार्थ मेरी इच्छा है।।६४-६५।।

विष्णु उवाच

विनायकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
सुगोप्यं च पुराणेषु दुर्लभं चाऽऽगमेषु च।।६६।।
उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम्। कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम्।।६७।।
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्यज। एवं भूतं च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे।।६८।।

श्री विष्णु कहते हैं—यह विनायक कवच त्रैलोक्य दुर्लभ है। यह पुराणों में गुप्त है तथा शास्त्रों में भी दुर्लभ है। इसे सामवेद के अन्तर्गत् कौथुमशाखा में मनोहर रूप से कहा गया है। यह विघ्ननाथ का परम कवच सभी विघ्नों का हरण करने वाला है। राज्य, शिर, प्राण भले ही दे देना, तथापि हे सूर्यपुत्र! यह कवच प्राण का संकट आने पर भी किसी को प्रदान न करे।।६६-६८।।

आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया यस्य मायया।
नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक।।६९।।
पूजाऽस्य नित्या स्तोत्रं च कल्पे कल्पेऽस्ति संततम्।
अस्य[1] वै जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे।।७०।।
यथा मदवतारेषु जन्म विग्रहधारणम्। तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसतोदरे।।७१।।

हे वत्स! जिनकी माया से तथा स्वेच्छा से आविर्भाव-तिरोभाव की लीला चलती है, वे देवदेव एकदन्त नित्य हैं। यह उनका ही कवच जानो। इस कवच की पूजा तथा स्तोत्र नित्य है। यह प्रत्येक

१. क. यस्यास्य ज०।

कल्प में विद्यमान रहता है। इन गणेश के इस जन्म के पहले से ही सभी मुनि गणेश सेवा करते रहे हैं। जैसे अवतार काल में मेरा आविर्भाव होता है तथा मैं शरीर धारण करता हूं, उसी प्रकार गणेश ने भी हिमालयनन्दिनी के गर्भ से जन्म लिया है।।६९-७१।।

यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते।
निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः।।७२।।
कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न भिया याति संनिधिम्।
नाऽऽयर्व्ययो नाशुभं च ब्रह्माण्डे न पराजयः।।७३।।
दशलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यो भवेत्सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः।।७४।।
सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरञ्जीवी महीतले। सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः।।७५।।

इस भारत के मुनिगण ने इस कवच को धारण करके जीवन्मुक्त अवस्था लाभ किया है तथा इसे ही धारण करके देवगण ने भय रहित होकर शत्रुक्षय किया है। इस कवच को धारण करने वाले के निकट मृत्यु भयभीत होकर नहीं आती! इस कवचधारी का आयुक्षय, अमंगल नहीं होता तथा समस्त ब्रह्माण्ड में कदापि पराजय नहीं होती। यह कवच दस लाख जप द्वारा सिद्ध हो जाता है। जिसे यह कवच सिद्ध हो गया, वह तो मृत्युजयी हो गया। जिसने यह कवच सिद्ध नहीं भी किया है, तथापि वह यह कवच धारण करने मात्र से धरती पर वक्ता, चिरजीवी, पूज्य एवं विजयी हो जाता है।।७२-७५।।

मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचं मङ्गलं शुभम्।
बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम्।।७६।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। डाकिनीयोगिनीयक्षवेताला भैरवादयः।।७७।।
बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादयस्तथा। वर्मणः शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः।।७८।।

यह पवित्र कवच मालामन्त्र से निर्मित है। इसे धारण मात्र से सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्डगण, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, भैरवादि, वेतालादि अपदेवता, बालकों के पीड़ादायक ग्रह, क्षेत्रपाल प्रभृति सभी कवचधारी की आहट मिलते ही भय से भाग जाते हैं।।७६-७८।।

आधयो व्याधयश्चैव शोकाश्चैव भयावहाः।
न यान्ति संनिधिं तेषां गरुडस्य यथोरगाः।।७९।।
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्।
खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्यमवाप्नुयात्।।८०।।

जिस प्रकार गरुड़ के निकट आते ही वहां सर्प नहीं आते, उसी प्रकार यह कवचधारी के पास आधि-व्याधि-भयावह शोक नहीं आते। यह कवच सरल स्वभावयुक्त अपने शिष्य को ही बतलाये। यदि कोई व्यक्ति यह कवच खल स्वभाव व्यक्ति को अथवा अन्य गुरु के शिष्य को प्रदान करेगा, तब उसकी मृत्यु होगी।।७९-८०।।

संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री[1] देवो लम्बोदरः स्वयम्॥८१॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने॥८२॥

कवच प्रारम्भ

विनियोग–इस संसारमोहन कवच के ऋषि हैं प्रजापति, छन्दः है बृहती, देवता हैं स्वयं लम्बोदर देव। इसका विनियोग (प्रयोग) धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति हेतु करे। हे मुनिवर! यह समस्त कवचों का सारभूत है।।८१-८२।।

ॐ[2] गं हुं श्री गणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदाऽवतु॥८३॥
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति वै सततं पातु लोचनम्।
तारकां पातु विघ्नेशः सततं धरणीतले॥८४॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं संततं पातु नासिकाम्।
ॐ गौं गं शर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम॥८५॥
दन्तांश्च तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः।
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु॥८६॥
ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्ण सदाऽवतु।
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्ध सदाऽवतु॥८७॥

"ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा"–यह मेरे मस्तक की रक्षा करें। ३२ अक्षर वाला गणेश मन्त्र सदा मेरे ललाट की, "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गं स्वाहा" मेरे नेत्र की रक्षा करें। पृथिवी पर विघ्नेश नेत्र की पुतली की रक्षा करें। "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा" निरन्तर नासिका की रक्षा करें। "ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा" अधर की रक्षा करें। गणेश का १६ अक्षर वाला मन्त्र मेरे दन्त, तालु, जिह्वा की रक्षा करें। "ॐ लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा" सदा कपोल की रक्षा, "ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा" कर्ण की रक्षा, "ॐ गं गजाननाय स्वाहा" सदा कंधे की रक्षा करें। "ॐ ह्रीं विनायकाय स्वाहा" सदा पीठ की रक्षा करें।।८३-८७।।

ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठ सदाऽवतु।
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं परम्॥८८॥
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननाशकृत्।
प्राच्यां लम्बोदरः पातु चाऽऽग्नेय्यां विघ्ननायकः॥८९॥

---

१. ख. बृहती।
२. क. ॐ गो गं श्री०।

दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः।
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शङ्करात्मजः॥९०॥

कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च। ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः॥९१॥
अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः। स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः॥९२॥

"ॐ क्लीं ह्रीं स्वाहा" मेरे कंकाल तथा वक्ष की रक्षा करें। विघ्ननाशक मन्त्र हाथ-पैर-सर्वाङ्ग की रक्षा करें। पूर्व में लम्बोदर, अग्निकोण में विघ्ननाशक, दक्षिण में विघ्नेश, नैर्ऋत्य में गजानन, पश्चिम में पार्वतीनन्दन, वायव्य में शंकरात्मज, उत्तर में परिपूर्ण कृष्णांश, ईशान में एकदन्त, ऊर्ध्व में हेरम्ब, अधः में गणाधिप, चतुर्दिक् सर्वपूज्य तथा स्वप्न-जागरण में योगीगुरु मेरी रक्षा करें।।८८-९२।।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥९३॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले। वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज॥९४॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि। परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटतारणम्॥९५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥९६॥

हे वत्स! सभी प्रकार के मन्त्रसमूह से गठित यह संसारमोहन नामक अद्‌भुत् कवच मैंने तुमसे कहा। हे दिनकरनन्दन! पूर्व में गोलोक स्थित वृन्दावन में रासमण्डलस्थ कृष्ण ने मुझे विनयावनत देख कर यह प्रदान किया था। यही मैंने तुमको दे दिया। तुम इसे कदापि अन्य को मत देना। यह अत्यन्त श्रेष्ठ, सर्वपूज्य तथा सभी संकटों से रक्षा करने वाला है। जो मानव सविधि गुरुपूजा करके यह कवच कण्ठ में पहनता है, उसे विष्णु से अभिन्न मानो। इसमें सन्देह नहीं है।।९३-९६।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥९७॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भवेच्छङ्करात्मजम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥९८॥

हे ग्रहपति! एक सहस्र अश्वमेध, १०० वाजपेय का जो फल है, वह इस कवच की तुलना में १/१६ भी नहीं है। इस कवच को बिना जाने जो शिवनन्दन गणपति का भजन करता है, वह सौ लाख जप भले करे, उसका मन्त्र सिद्धि प्रदान नहीं करता।।९७-९८।।

दत्त्वेदं सूर्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः। परमानन्दसंयुक्ता देवास्तस्थुः समीपतः॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशपूजास्तवककवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

सुरेश्वर विष्णु सूर्यपुत्र से यह कह कर मौन हो गये। उन्होंने सूर्यपुत्र शनि को यह कवच प्रदान कर दिया। तब सभी देवता भी परमानन्द पूर्वक उनके समीप आसीन हो गये।।९९।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

चतुर्दशोऽध्यायः

कार्त्तिकेय के जन्म का वर्णन

नारायण उवाच

देवास्तस्यां सभायां ते सर्वे संहृष्टमानसाः।
गन्धर्वा मुनयः शैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम्॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा। उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं तत्र संसदि॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–उसी सभा में देवता, गन्धर्व, मुनिगण विष्णु का महोत्सव देख कर हर्षित हो गये। तभी वहां भगवती दुर्गा ने तनिक हास्य के साथ देवसभा में प्रणत होकर देवदेव ईश्वर विष्णु से कहा–।।१-२।।

पार्वत्युवाच

त्वं पाता सर्वजगतां नाथ नाहं जगद्बहिः। कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं रक्षितं प्रभो॥३॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया। भूमौ निपतितं वीर्यं केन देवेन वै हृतम्॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तदन्विष्यन्तु सादरम्। अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि॥५॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे प्रभो! आप समस्त जगत् के रक्षक हैं। मैं जगत् से पृथक् नहीं हूं। हे प्रभो! आपने मेरे स्वामी के अमोघ वीर्य की रक्षा नहीं किया। आपकी ही प्रेरणा से आकर देवगण ने तथा ब्रह्मा ने मेरा रतिकार्य भंग कर दिया तथा स्वामी का वीर्य धरती पर पतित हो गया। किसने उसका हरण किया है? सभी देवता सादर उसको खोजें। आप जैसे राजा के रहते यह अराजकता कहां तक उचित है?।।३-५।।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। उवाच देववर्गे च मुनिवर्गे च तिष्ठति॥६॥

पार्वती का वचन सुन कर जगदीश्वर हंसने लगे। तब वहां स्थित देवगण तथा मुनियों से विष्णु ने कहा–।।६।।

विष्णुरुवाच

देवाः श‍ृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम्। शिवस्यामोघवीर्यं यत्तत्पुरा केन निर्हृतम्॥७॥
सभामानयत क्षिप्रं न चेद्दण्डमिहार्हथ।
स किंराजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च पाक्षिकः॥८॥

श्री विष्णु कहते हैं–हे देवगण! आपने पार्वती का कथन सुना। अब मेरी बात सुनें। शिव के अमोघ वीर्य का किसने हरण किया है? उसे शीघ्र सभा में लायें। अन्यथा उसे उचित दण्ड मिलेगा। ऐसा राजा किस काम का जो सम्यक् शासन नहीं करता तथा प्रजा को कष्ट होने पर पक्षपात करता है।।७-८।।

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम्।
ऊचुः सर्वे शिवावाक्यैस्त्रासिताः पुरतो हरेः॥९॥

विष्णु का यह कथन सुन कर सभी लोगों ने आपस में समालोचन किया तथा पार्वती के कथन से भयभीत होकर भगवान् के समक्ष क्रमशः कहने लगे–९॥

ब्रह्मोवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं–जिस किसी ने भी वह वीर्य छिपाया है, वह भारतवर्ष में, इस पुण्यक्षेत्र में, पुण्यदिन में भी पुण्यकार्य से वंचित ही रहे॥१०॥

महादेव उवाच

मद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र सेवने पूजने तव॥११॥

महादेव कहते हैं–जिसने भी मेरा वीर्य छिपाया है, वह पुण्यभूमि भारत में आपकी सेवा पूजा से वंचित रहे॥११॥

यम उवाच

स वञ्चितो भवत्वत्र शरणागतरक्षणे। एकादशीव्रते चैव तद्वीर्यं येन निर्हृतम्॥१२॥

यमदेव कहते हैं–जिस व्यक्ति ने वह वीर्य चुराया है, वह इहलोक में शरणागत रक्षा तथा एकादशी व्रत से वंचित रहे॥१२॥

इन्द्र उवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पापिनां पापमोचने। भवत्वत्र यशो लुप्तं तत्पुण्यं कर्म संततम्॥१३॥

इन्द्रदेव कहते हैं–हे पापमोचन देव! जिस व्यक्ति ने वह वीर्य छिपाया है, उसका जगत् से पुण्यकर्म जनित यश लुप्त हो जाये॥१३॥

वरुण उवाच

भवत्वत्र कलौ जन्म[1] वर्षे स्याद्भारत हरे। शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद्येन निर्हृतम्॥१४॥

वरुणदेव कहते हैं–जिसने भी महादेव के वीर्य का हरण किया है, वह भारतवर्ष की जगह अन्य वर्ष में शूद्र का यज्ञ करने वाले ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न होगा॥१४॥

कुबेर उवाच

न्यासहारी स भवतु विश्वासघ्नश्च मित्रहा। सत्यघ्नश्च कृतघ्नश्च तद्वीर्यं येन निर्हृतम्॥१५॥

कुबेर कहते हैं–जिसने भी शिववीर्य हरण किया है, वह धरोहर का हरण करने वाला, विश्वासघाती, मित्र का हत्यारा, सत्यनाशक तथा कृतघ्न हो जाये॥१५॥

ईशान उवाच

१. क. ०न्म संन्यासी वा भवान्तरे।

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते। नरघाती गुरुद्रोही तद्वीर्यं येन निर्हृतम्॥१६॥

ईशानदेव कहते हैं—जिस व्यक्ति ने यह वीर्य छिपाया है, वह भारतवर्ष में परद्रव्य हरण करने वाला, नरघाती, गुरुद्रोही होकर जन्म ग्रहण करे॥१६॥

रुद्रा ऊचुः

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः। गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्यं यैश्च निर्हृतम्॥१७॥

रुद्रगण कहते हैं—जिसने भी वीर्यहरण किया हो, वे भारत में मिथ्यावादी, परस्त्रीहारी तथा सर्वदा गुरुनिन्दक होकर जन्म ग्रहण करें॥१७॥

कामदेव उवाच

कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो न संपालयते भ्रमात्।
भाजनं तस्य पापस्य स भवेद्येन तद्धतम्॥१८॥

कामदेव कहते हैं—जिसने भी शिववीर्य हरण किया है, वह प्रतिज्ञा भंग जनित पातक का भागी हो॥१८॥

स्ववैद्यावूचतुः

मातुःपितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणां च पोषणे।
भवेतां वञ्चितौ तौ च याम्यां वीर्यं च तद्धतम्॥१९॥

स्वर्गवैद्य अश्विनीकुमारद्वय कहते हैं—जिस किसी ने भी शिववीर्य हरण किया हे, वे माता-पिता, गुरु, स्त्री, पुत्र के पालन-पोषण से रहित हो जायें॥१९॥

सर्वे देवा ऊचुः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्र च भारते।
अपुत्रिणो दरिद्राश्च यैश्च वीर्यं हि तद्धतम्॥२०॥

सभी देवता कहते हैं—जिसने भी शिववीर्य हरण किया है, वह झूठी गवाही देने वाला, पुत्र रहित होकर भारत में दरिद्र रहे॥२०॥

देवपत्न्या ऊचुः

ता निन्दन्तु स्वभर्तारं गच्छन्तु परपुरुषम्। सन्तु बुद्धिहीनाश्च याभिर्वीर्यं हि तद्धतम्॥२१॥

देवपत्नीगण कहती हैं—यदि किसी नारी ने शिववीर्य का हरण किया है, वह नारी पतिनिन्दाकारी, परपुरुषगामिनी, बन्धु रहित हो जाये॥२१॥

देवानां वचनं श्रुत्वा देवीनां च हरिः स्वयम्।
कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रं हुताशनम्॥२२॥

पवनं पृथिवीं तोयं संध्ये रात्रिंदिवं मुने। उवाच जगतां कर्ता पाता शास्ता जगत्त्रये॥२३॥

हे मुनिवर! देवता तथा देवीगण का यह कथन सुन कर जगत्कर्त्ता त्रैलोक्य के शासक विष्णु ने सर्वकर्मसाक्षी धर्म-चन्द्र-सूर्य-अग्नि-वायु-जल-उभयसन्ध्या-दिवा तथा रात्रि से कहा-॥२२-२३॥

विष्णुरुवाच

देवैर्न निर्हृतं वीर्यं तदेतत्केन निर्हृतम्। तदमोघं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः॥२४॥

यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम्।
युष्माभिर्निर्हृतं किंवा किं भूतं वक्तुमर्हथ॥२५॥

श्री विष्णु कहते हैं-भगवान् जगद्गुरु महादेव के अमोघ वीर्य का हरण यदि देवगण ने नहीं किया, तब किसने किया? आप लोग तो विश्व के सभी कर्म के साक्षी हैं। उस वीर्य का हरण क्या आप लोगों ने किया है, अथवा उसके साथ क्या हो गया? यह आप लोग कहिये॥२४-२५॥

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते।
परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरो हरेः॥२६॥

जगदीश्वर का वचन सुन कर वे सभी सभा में भय से कंपित हो गये। वे आपस में परस्परतः विचार करके हरि के सामने कहने लगे-२६॥

धर्म उवाच

रतेरुत्तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले। मया ज्ञातममोघं तच्छङ्करस्य प्रकोपतः॥२७॥

धर्मदेव कहते हैं-जब शंकर ने क्रोधित होकर रतिक्रिया का त्याग कर दिया तथा शय्या से उठे, तब उनका जो वीर्य पृथिवीतल पर गिरा था, यह मैं जानता हूं॥२७॥

क्षितिरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्ताऽहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा। अतीव दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि॥२८॥

क्षति (पृथिवी) कहती हैं-हे ब्रह्मन्! मैं अबला हूं। मैं उस गुरुभार युक्त वीर्य को धारण नहीं कर सकी। मैंने उसे अग्नि में छोड़ दिया था। मेरा अपराध क्षमा करिये॥२८॥

अग्निरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने।
दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किं च पौरुषम्॥२९॥

अग्निदेव कहते हैं-हे जगन्नाथ! मैं उस वीर्य का भार उठाने में अक्षम हो गया। मैंने उसे सरकण्डों में फेंक दिया। दुर्बल के लिये यश तथा पौरुष कुछ भी नहीं है॥२९॥

वायुरुवाच

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह। अतीव सुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे॥३०॥

वायुदेव कहते हैं—हे विष्णु! सरकण्डों पर जब वह वीर्य गिरा, तब वह तत्काल बालक हो गया।।३०।।

सूर्य उवाच

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वाऽगममस्ताचलं प्रति।
प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थातुमक्षमः॥३१॥

सूर्य कहते हैं—रुदनरत बालक को देख कर जब मैं अस्ताचल गया, तब वह सुन्दर बालक स्वर्णरेखा नदी तट पर विराजित था।।३१।।

चन्द्र उवाच

रुदन्तं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः।
जगाम स्वालयं विष्णो गच्छन्बदरिकाश्रमात्॥३२॥

चन्द्रदेव कहते हैं—उस रोते बालक को बदरिकाश्रम से समागत कृत्तिकाओं ने गोद में लिया तथा उसे लेकर अपने गृह चली गईं।।३२।।

जलमुवाच

अमुं रुदन्तमानीय स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने।
वर्धयामासुरीशस्य तं ताः सूर्याधिकप्रभम्॥३३॥

जल कहते हैं—उस रोते बालक को जब रोते देखा, तब कृत्तिकाओं ने उसे स्तन दिया। कृत्तिकागण ने दुग्धपान कराया। वह बालक सूर्यसमप्रभ था। वे कृत्तिका उसका पालन-पोषण कर रही थीं।।३३।।

संध्ये ऊचतुः

अधुना कृत्तिकानां च षण्णां तत्पोष्यपुत्रकः।
तन्नाम चक्रस्ताः प्रेम्णा कार्तिकेय इति स्वयम्॥३४॥

सन्ध्या कहती हैं—यह पुत्र छह कृत्तिकागण द्वारा पाला गया है। उन सबने प्रेम पूर्वक इस बालक को स्वयं कार्त्तिकेय नाम प्रदान किया।।३४।।

रात्रिरुवाच

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम्।
प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः॥३५॥

रात्रि देवी कहती हैं—ये कृत्तिकायें उस बालक को कभी अपनी आंखों से ओझल नहीं करतीं। वह उनके लिये प्राणों से बढ़ कर प्रेम पात्र है। जिस बालक को जिसने पाला है, वह उसी का पुत्र माना जाता है।।३५।।

दिनमुवाच

यानि यानि च वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च।
प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासदेव तम्॥३६॥

दिन (दिवा) कहता है–इस त्रैलोक्य में जो सब वस्तु दुर्लभ है, स्वादिष्ट तथा प्रशंसनीय है, कृत्तिकायें वही वस्तु लाकर बालक को भोजन कराती हैं।।३६।।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टो मधुसूदनः। ते सर्वे हरिमित्युचुः सभायां हृष्टमानसाः॥३७॥
पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा। कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च॥३८॥
ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च॥३९॥
लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः।
विष्णुश्च सर्वदेवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम्॥४०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० कार्तिकेयजन्मकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

इन लोगों का कथन सुन कर मधुसूदन प्रसन्न हो गये। पार्वती ने भी पुत्र का यह संवाद पाकर ब्राह्मणों को करोड़ों रत्न तथा अनेक प्रकार के वस्त्र भी दिया। तदनन्तर लक्ष्मी, सरस्वती, मेनका, सावित्री तथा सभी नारीगण, देवताओं तथा विष्णु आदि ने भी ब्राह्मणों को धन प्रदान किया।।३७-४०।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

पञ्चदशोऽध्यायः

कार्त्तिकेय को लेने आने के लिये नन्दी आदि शिवदूतों का कृत्तिकाओं के स्थान पर जाना, नन्दी-कार्त्तिक संवाद का वर्णन

नारायण उवाच

पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वत्या सह शङ्करः। प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने॥१॥
दूतान्प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान्। वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं[1] कबन्धकम्॥२॥

१. क. करक्रमम्।

नन्दीश्वरं[1] महाकालं वज्रदन्तं [2]भगन्दरम्। गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम्॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनि! भगवान् शंकर तथा पार्वती ने पुत्र का संवाद जब सुना, तब उन्होंने विष्णु, देवता, मुनिगण तथा पर्वतों से प्रेरित होकर अपने महाबली, पराक्रमी दूतगण को कार्त्तिकेय को ले आने हेतु भेजा। वे थे–वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कबन्ध, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदन्त, भगन्दर, गोधामुख, दधिमुख। ये सभी प्रज्वलित अग्निशिखा जैसे तेजस्वी थे॥१-३॥

लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम्।
वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम्॥४॥
कूष्माण्डानां चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम्।
डाकिनीनां चतुर्लक्षं योगिनीनां त्रिलक्षकम्॥५॥

रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान्। [3]अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः। कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुज्ज्वलम्॥७॥

दृष्ट्वा तान्कृत्तिकाः सर्वा[4] भयविह्वलमानसाः।
कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥८॥

इनके साथ ही एक लाख क्षेत्रपाल, तीन लाख भूत, चार लाख वेताल, पांच लाख यक्ष, चार लाख कूष्माण्ड, तीन लाख ब्रह्मराक्षस, चार लाख डाकिनी, तीन लाख योगिनी, शिव के समान पराक्रमी रुद्र–भैरवगण, अन्य विकृताकृति असंख्यगण भी भेजे गये। ये सभी शिवदूत नाना शस्त्रास्त्रधारी थे। इन्होंने उन कृत्तिकागण के उज्ज्वल भवन को चारों ओर से घेर लिया। यह देख कर वे सभी छह कृत्तिकायें भय से विह्वल हो गयीं। उन्होंने सभी वृत्तान्त ब्रह्मतेज से ज्वलित रूप कार्त्तिकेय से कहा–॥४-८॥

कृत्तिका ऊचुः

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम्।
न जानीमो वयं कस्य करालानि[5] च बालक॥९॥

कृत्तिका कहती हैं–हे वत्स! असंख्य सैन्य ने आकर हमारे गृह को सभी ओर से घेर रखा है। अब क्या करना है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है!॥९॥

१. क. ०कायं व०।
२. क. भलन्दनम्।
३. क. भूतानां च पिशाचानामसं०।
४. क. ०र्वान्भ०।
५. करवाम च इति क्वचित् पाठः।

कार्तिकेय उवाच

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वो मयि स्थिते।
दुर्निवार्यः कर्मपाको मातरः केन वार्यते॥१०॥

कार्त्तिकेय कहते हैं–हे कल्याणी माताओं! भय त्याग करें। मेरे रहते आपको भय नहीं करना चाहिए। हे मातृगण! दुर्निवार दैवयोग का निवारण कौन कर सकता है?।।१०।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सेनानीर्नन्दिकेश्वरः। पुरतः कार्तिकेयस्य तिष्ठंस्तासामुवाच ह॥११॥

तदनन्तर शिव सेना के सेनानी नन्दिकेश्वर ने कार्त्तिकेय के समक्ष आकर उनसे कहा–।।११।।

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातुश्चापि शुभावहम्। प्रेषितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शङ्करस्य च॥१२॥
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गले॥१३॥
शैलेन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम्। संबोध्य कथयामास तवान्वेषणकारणम्॥१४॥
पप्रच्छ देवान्विष्णुस्तान्क्रमेणाऽऽवाप्तिहेतवे।
प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम्॥१५॥

श्री नन्दिकेश्वर कहते हैं–हे भ्राता कार्त्तिकेय! लोकसंहारक देवप्रवर शंकर ने हमें भेजा है। उनका शुभ संदेश सुनो। कैलास पर्वत पर गणेश जन्म के मंगलोत्सव में ब्रह्मा-विष्णु-शिव प्रभृति देवता सभा में स्थित हैं। इस सभा में हिमालयनन्दिनी पार्वती ने जगत्पालक विष्णु से तुम्हारा अन्वेषण करने के लिये कहा था। इसी क्रम में विष्णु ने तुम्हें पाने के लिये समस्त देवगण से एक के बाद एक से पूछा। देवताओं ने भी उनको यथोचित उत्तर प्रदान किया।।१२-१५।।

त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम्। सर्वे धर्मादयो देवा धर्माधर्मस्य साक्षिणः॥१६॥
या बभूव रहः क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा। दृष्टस्य च सुरैः शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह॥१७॥

हे ईश्वर! तुम कृत्तिकाओं के यहां निवास कर रहे हो, यह धर्म-अधर्म के साक्षी धर्म ने तथा देवगण ने विष्णु को बतलाया। पूर्व में पार्वती तथा महादेव ने निर्जन स्थान में रतिक्रीड़ा किया था। तभी देवगण महादेव के दर्शनार्थ वहां आये, जिससे शिववीर्य धरती पर गिर गया।।१६-१७।।

भूमिस्तदक्षिणपद्वह्नौ वह्निश्च शरकानने।
ततो लब्धः कृत्तिकाभिरभूमिर्गच्छ सांप्रतम्॥१८॥
तवाभिषेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह।
शस्त्रं लब्ध्वाऽखिलं देव तारकं संहनिष्यसि॥१९॥
पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तुस्त्वां गोप्तुं न क्षमा इमाः।
नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे॥२०॥

दीप्तिमांस्त्वं च विश्वेषु तासां गेहे न शोभसे। यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते॥२१॥

उस समय भूमि ने वह वीर्य अग्नि में छोड़ दिया। अग्नि ने उसे सरकण्डे के वन में छोड़ा, जहां से कृत्तिकाओं ने तुमको प्राप्त किया था। अब तुम हमारे साथ चलो। विष्णु तथा सभी देवता तुमको देव सेनापति के पद पर अभिषिक्त करेंगे। तुम तारकासुर का वध करोगे तथा सभी दिव्यास्त्र भी प्राप्त करोगे। तुम विश्वसंहारक महादेव के पुत्र हो। ये कृत्तिकायें तुमको कैसे छिपा सकती हैं? सूखा वृक्ष क्या अपने कोटर में अग्नि को गुप्त रख सकता है? इस विश्व में तुम सबसे अधिक दीप्त हो। क्या तुम इनके गृह में पड़े रहोगे? क्या यह गृह तुम्हारे योग्य है? क्या महाकूप में झलकते चन्द्रबिम्ब की कोई शोभा होती है?॥१८-२१॥

करोषि जगदालोकं नाच्छन्नोऽस्यङ्गतेजसा[१]।
यथा सूर्यः कराच्छन्नो न भवेत्पूरुषस्य च॥२२॥
विष्णुस्त्वं च जगद्व्यापी नाऽऽसां व्याप्योऽसि शांभव।
यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः॥२३॥

तुम्हारी देह प्रभा से यह विश्व आलोकित हो रहा है। क्या अन्य के देह की प्रभा तुमको आच्छन्न कर सकेगी? हे शंभुनन्दन! तुम जगत् को व्याप्त करने वाले विष्णु स्वरूप हो। आकाश किसी का व्याप्य नहीं है। वह तो सर्व व्यापक है। क्या सूर्य को कोई हाथों से ढंक सकेगा? तुम भी आकाश की तरह व्यापक हो। इन कृत्तिकाओं द्वारा व्याप्य नहीं हो॥२२-२३॥

योगीन्द्रो नानुलिप्तस्त्वं भोगी च परिपोषणे।
नैव लिप्तो यथाऽऽत्मा च कर्मभोगेषु जीविनाम्॥२४॥
विश्वाधारस्त्वमीशश्च नामृते संभवेत्स्थितिः।
सागरस्य यथा नद्यां सरितामाश्रयस्य च॥२५॥

नहि सर्वेश्वरावासः संभवेत्कृत्तिकालये। गरुडस्य यथा वासः क्षुद्रे च चटकोदरे॥२६॥

जिस प्रकार से आत्मा जीवों के कर्मभोग में लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम योगीराज हो। तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है कि माया के वशीभूत हो जाओ! तुम जगदीश्वर तथा विश्वाधार रूप हो। जिस प्रकार सभी नदियों का आश्रयरूप समुद्र एक नदी में आकर नहीं रह सकता, उसी प्रकार तुम भी इस सामान्य स्थान में रहो, यह संभव नहीं है। जिस प्रकार से गौरैया पक्षी के पेट में गरुड़ नहीं समा सकते, तदनुरूप तुम सर्वाधीश्वर का स्थान कृत्तिकागृह कदापि नहीं है। ऐसा होना असंभव है॥२४-२६॥

त्वां च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम्।
गुणानां तेजसां राशिं यथाऽत्मानमयोगिनः॥२७॥

---

१. नाच्छन्नोऽन्याङ्गतेजसां इति नाच्छन्नः स्याः सुतेजसा इति च पाठः क्वाचित्कः।

त्वामनिर्वचनीयं च कथं जानन्ति कृत्तिकाः। यथा परां हरेर्भक्तिमभक्ता मूढचेतसः॥२८॥

भ्रातर्ये यं न जानन्ति ते तं कुर्वन्त्यनादरम्।
नाऽऽद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकावासं च पङ्कजम्॥२९॥

तुमको तो देवगण भी नहीं जान सकते। भक्तों पर कृपा करके तुमने देह रूपी विग्रह धारण किया है। अयोगीगण आत्मरूप तुमको जान ही नहीं सकते। तुम गुणों तथा तेज की राशि हो। जिस प्रकार से मूढ़चित्त भक्तिहीन व्यक्ति हरि की उत्कृष्ट भक्ति को समझ नहीं सकते, उसी प्रकार तुम्हारे जैसे अनिर्वचनीय को ये कृत्तिकायें कैसे जान सकती हैं? हे भ्राता! जो जिसको पहचान नहीं सकता, वह उसका अनादर करता है। मेढ़क सरोवर में कमल के साथ रह कर भी कमल का महत्व न जान कर उसका आदर नहीं कर पाते!॥२७-२९॥

कार्तिकेय उवाच

भ्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत्।
ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युञ्जयाश्रितः॥३०॥
कर्मणा जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु।
तासु ते निर्वृतिं भ्रातर्नाऽऽप्नुवन्ति च संततम्॥३१॥
ये यत्र सन्ति सन्तो वा मूढा वा कर्मभोगतः।
तेऽपि तं बहु मन्यन्ते मोहिता विष्णुमायया॥३२॥

कार्त्तिकेय कहते हैं–हे भ्राता! आपने जो सब कहा मैं सब जानता हूं। मुझे त्रिकाल ज्ञान है। आप भी ज्ञानी तथा भगवान् मृत्युंजय के आश्रित हैं। आपकी कितनी प्रशंसा की जाये। जिसने अपने कर्मानुरूप जिस योनि में जन्म लिया है, वे उसी योनि में परम निर्वृत्ति लाभ करते हैं। (उसी में सुखानुभव करते हैं)। अतः वे मूढ़ वहीं कर्मभोग करते हैं। कोई भी मूढ़ अथवा महात्मा जिस योनि में जन्म लेता है, वह उस योनि को ही विष्णुमाया के कारण उत्तम मानता है।॥३०-३२॥

सांप्रतं जगतां माता विष्णुमाया सनातनी। सर्वाद्या सर्वरूपा च सर्वदा सर्वमङ्गला॥३३॥

शैलेन्द्रपत्नी गर्भे सा चालभज्जन्म भारते।
दारुणं च तपस्तप्त्वा संप्राप च्छङ्करं पतिम्॥३४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम्।
सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनास्तत्र केवलम्॥३५॥

सम्प्रति सनातनी, सर्वाद्या, विष्णुमाया, जगत्जननी सर्वप्रदा विष्णुमंगला देवी ने भारत में पर्वतराज की पत्नी के गर्भ से जन्म लेकर दारुण तपःश्चरण किया। उसके फलस्वरूप उन्होंने शंकर को पतिरूपेण प्राप्त किया। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब कृत्रिम है, क्योंकि सृष्ट है। यह मिथ्या है। यह

सब कृष्ण से उत्पन्न है। अन्ततः समय आने पर यह सब कृष्ण में लीन हो जाता है। (तब केवल कृष्ण रह जाते हैं)।।३३-३५।।

कल्पे कल्पे जगन्माता माता मे प्रतिजन्मनि।
यज्जन्ममायया बद्धो नित्यः सृष्टिविधावहम्।।३६।।
प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्यां सर्वयोषितः।
काश्चिदंशाः कलाः काश्चित्कलांशांशेन काश्चन।।३७।।
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः।
स्तन्येनाऽऽभिर्वर्धितोऽहमुपहारेण संततम्।।३८।।

कल्प-कल्प में मेरा जन्म होता है। वे ही जगन्माता मेरे उन जन्मों में मेरी माता होती हैं। उनकी माया के प्रभाव से ही मैं मायाबद्ध होकर प्रति कल्पों में उनसे ही उत्पन्न होता रहता हूं। तीनों लोक में स्त्री मात्र ही प्रकृति से उत्पन्न हैं। कोई-कोई उनका अंश है, कोई उनकी कला है, कोई-कोई अंशांश की भी कलारूपा है। यह ज्ञानवती योगरता कृत्तिकायें साक्षात् प्रकृति की कला हैं। ये सर्वदा मुझे स्तनपान करा कर मुझ पर उपकार करती रही हैं। इन्होंने स्तनपान द्वारा मेरा पोषण तथा वर्द्धन किया है।।३६-३८।।

तासामहं पोष्यपुत्रो मदम्बाः पोषणादिमाः।
तस्याश्च प्रकृतेः पुत्रो गतस्त्वत्स्वामिवीर्यतः।।३९।।
न गर्भजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर। सा च मे धर्मतो माता तथेमा सर्वसंमताः।।४०।।

मैं इनका पोष्य पुत्र हूं। इसलिये ये मेरी माता हैं तथा इन प्रकृतिरूपा जगन्माता के स्वामी के वीर्य से मेरा जन्म हुआ। तभी मैं उनका भी पुत्र हूं। हे नन्दिकेश्वर! मैंने भगवती शैलपुत्री पार्वती के गर्भ से जन्म नहीं लिया है। जैसे कृत्तिकायें मेरी धर्ममाता हैं, उसी प्रकार भगवती भी मेरी धर्ममाता हैं। यह सर्वशास्त्रोक्त नियम है।।३९-४०।।

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः।।४१।।
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा।।४२।।
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः।।४३।।

१. स्तनपान कराने वाली, २. गर्भ में धारण करने वाली, ३. भोजन देने वाली, ४. गुरुपत्नी, ५. इष्टदेव की पत्नी, ६. पिता की पत्नी, ७. पुत्री, ८. गर्भिणी, ९. कन्या, १०. बहन, ११. पुत्रवधू, १२. सास, १३. नानी, १४. दादी, १५. भाई की पत्नी, १६. अपनी माता-मौसी-बूआ-मामी, ये सभी स्त्रियां वेदोक्त माता मानी गयी हैं।।४१-४३।।

इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमैश्वर्यसंयुताः।
न क्षुद्रा ब्रह्मणः कन्यास्त्रिषु लोकेषु पूजिताः॥४४॥
विष्णुना प्रेरितस्त्वं च शंभोः पुत्रसमो महान्।
गच्छ यामि त्वया सार्धं द्रक्ष्यामि सुरसञ्चयम्॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० नन्दिकार्तिकेयसंवादो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

अतः ये कृत्तिकायें सर्वसिद्धिज्ञाता, परमैश्वर्य सम्पन्ना तथा ब्रह्मपुत्री हैं। ये सामान्य नारी नहीं हैं। आपको विष्णु ने भेजा है। आप स्वयं भी महान् हैं। आप महादेव के पुत्रवत् हैं। चलिये। मैं आपके साथ जाकर देवगण का दर्शन करूंगा!।।४४-४५।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

कार्त्तिकेय का कैलास धाम में आगमन

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं बोधयित्वा च कृत्तिकाः।
उवाच नीतियुक्तं च वचनं शङ्करात्मजः॥१॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—शिवपुत्र कार्त्तिकेय ने नन्दी से यह कह कर नीतियुक्त वचनों से कृत्तिकाओं को भी प्रबोधित करते कहा—।।१।।

कार्तिकेय उवाच

यास्यामि शङ्करस्थानं द्रक्ष्यामि सुरसञ्चयम्।
मातरं बन्धुवर्गांश्चाप्याऽऽज्ञां मे दत्त मातरः॥२॥
दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभाशुभम्। संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम्॥३॥
कृष्णायत्तं च तद्दैवं स च दैवात्परस्ततः। भजन्ति सततं सन्तः परमात्मनमीश्वरम्॥४॥

कार्त्तिकेय कहते हैं—हे मातृगण! मैं शंकर के गृह जाकर वहां सभी देवता, माता पार्वती तथा बन्धुवर्ग का दर्शन करूंगा। मुझे विदा दीजिये। यह समस्त जगत्, शुभकर्म, जन्म, संयोग-वियोग-यह

सब दैव के अधीन है। यहां दैव की अपेक्षा अन्य कुछ नहीं है। वही सर्वापेक्षा प्रबल बल है, तथापि यह दैवबल प्रभु कृष्ण के अधीन है। वे दैव से अतीत तथा परे स्थित रहते हैं। सन्तगण सतत् उन परमात्मा ईश्वर का भजन करते रहते हैं।।२-४।।

दैवं वर्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया। न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशीति निर्णयः।।५।।
तस्माद्भजत गोविन्दं मोहं त्यजत दुःखदम्। सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युभयापहम्।।६।।
परमानन्दजनकं मोहजालनिकृन्तनम्। शश्वद्भजन्ति यत्सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः।।७।।
कोऽहं भवाब्धौ युष्माकं का वा यूयं ममाम्बिकाः।
तत्कर्मस्त्रोतसां सर्वं पुञ्जीभूतं च फेनवत्।।८।।
संश्लेषं वा वियोगं वा सर्वमीश्वरचिन्तया। ब्रह्माण्डमीश्वराधीनं न स्वतन्त्रं विदुर्बुधाः।।९।।

श्रीकृष्ण प्रभु लीलामात्र से दैव की वृद्धि तथा नाश, दोनों कर सकते हैं। कृष्णभक्त कदापि दैव से बद्ध नहीं रहते। शास्त्र का मत है कि तभी कृष्णभक्त का विनाश नहीं होता। आप लोग इन सुखदाता, मोक्षदाता, सारभूत, जन्म तथा मृत्युभय का हरण करने वाले गोविन्द का भजन करें। इस दुःखदायक मोह का त्याग करें। इस मोहजाल को छिन्न-भिन्न करने वाले परमानन्द कृष्ण की सेवा ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि सतत् करते रहते हैं। इस संसार-सागर में मैं आप लोगों का कौन होता हूं? आप लोग मेरी कौन होती हैं? जैसे जलवेग से समुद्र में फेन एकत्र हो जाता है, उसी प्रकार से हम कर्मस्त्रोत से एकत्र हो जाते हैं। (तदनन्तर जलवेग से समुद्रफेन भंग हो जाता है, उसी प्रकार हमारा एकत्रीकरण भी भंग हो जाता है)। यह पारस्परिक संयोग तथा वियोग ईश्वरेच्छा ही है। यह ब्रह्माण्ड ईश्वर के ही अधीन है। यह तथ्य बुद्धिमानों को ज्ञात है। यह स्वतन्त्र नहीं है।।५-९।।

जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं च जगत्त्रयम्। मायामनित्ये कुर्वन्ति मायया मूढचेतसः।।१०।।
सन्तस्तत्र न लिप्यन्ते वायुवत्कृष्णचेतसः।
तस्मान्मोहं परित्यज्य चाऽज्ञप्तिं दत्त मातरः।।११।।

यह त्रैलोक्य जल के बुलबुले जैसा अनित्य है। मूढ़ बुद्धि वाले माया के प्रभाव द्वारा इस अनित्य के प्रति ममत्व रखते हैं। जिनका चित्त सदा कृष्ण के प्रति आसक्त रहता है, वे विद्वान् लोग संसार में वायु के समान निर्लिप्त होकर रहते हैं। हे मातृगण! आप लोग मोह त्याग करके मुझे विदा दीजिये।।१०-११।।

इत्येवमुक्त्वा ता नत्वा सार्धं शङ्करपार्षदैः।
यात्रां चकार भगवान्मनसा श्रीहरिं स्मरन्।।१२।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम्। विश्वकर्मकृतं रम्यं हीरकेण विराजितम्।।१३।।
सद्रत्नसाररचितं माणिक्येन विराजितम्।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैश्च शोभितम्।।१४।।

मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरैरतिदीपितम्। क्रीडार्हमन्दिरैरम्यैश्चित्रितैश्चित्रितं वरम्॥१५॥
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम्। प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः॥१६॥

इस प्रकार से मातृगण को प्रबोधित करने के पश्चात् उनको प्रणाम करके कार्त्तिकेय ने मन ही मन श्रीहरि का स्मरण करते हुए शिवपार्षदगण के साथ कैलास यात्रा किया। इसी समय वहां विश्वकर्मा निर्मित हीरों से परिष्कृत, श्रेष्ठ रत्नों के सारभूत भाग से रचित, माणिक्य जड़ित, पारिजात पुष्पों की माला से सुशोभित, मणिमय दर्पणों तथा श्वेत चामरों से अलंकृत, नाना चित्रों से चित्रित, क्रीड़ा हेतु बने कक्षों से उपशोभित, सौ पहियों से युक्त सुविस्तीर्ण, मनोगति से चलने वाले मनोहर, शिव के श्रेष्ठ पार्षदों से घिरे तथा पार्वती द्वारा भेजे गये एक उत्तम रथ को सबने देखा।।१२-१६।।

तमारुहन्तं यानं ता हृदयेन विदूयता। सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेश्यः शुचाऽऽतुराः॥१७॥
दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिताश्चातिशोकतः।
उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे भिया॥१८॥

उस रथ पर कार्त्तिकेय को आरोहण करते देख कर वे कृत्तिकायें मनोदुःख से सन्तप्त होकर मूर्च्छाग्रस्त हो गयीं। तदनन्तर उन्होंने सहसा चेतना पाकर जब सामने स्थित कार्त्तिकेय को देखा, तब वे लोग अपने बिखरे केश से युक्त शोकवेग से कुछ काल तक स्तम्भित-सी हो गईं। तत्पश्चात् वे उन्मत्तवत् होकर भय पूर्वक कहने लगीं-।।१७-१८।।

कृत्तिका ऊचुः

किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं वत्स त्वदाश्रयाः।
विहायास्मान्क्व यासि त्वं नायं धर्मस्तवाधुना॥१९॥
स्नेहेन वर्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं स्वधर्मतः।
नायं धर्मो मातृवर्गाननुरक्तः सुतस्त्यजेत्॥२०॥

कृत्तिकागण कहती हैं-अब हम क्या करें? कहां जायें? हे पुत्र! तुम ही हम लोगों के आश्रय हो? हमें त्याग कर तुम कहां जा रहे हो? यह तुम्हारा धर्मानुमोदित कार्य कदापि नहीं कहा जा सकेगा! हमने तुम्हारा पालन-पोषण स्नेह के साथ किया है। तुम तो धर्मतः हमारे पुत्र हो। इस प्रकार से पुत्र माता का त्याग करे, यह धर्म कदापि नहीं है।।१९-२०।।

इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि तं सुतम्।
पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणम्॥२१॥
कुमारो बोधयित्वा ता अध्यात्मवचनेन वै। ताभिश्च पार्षदैः सार्धमारुरोह रथं मुने॥२२॥

यह कह कर कृत्तिकाओं ने पुत्र कार्त्तिकेय को अपने वक्ष से लगा लिया। तदनन्तर सुतविच्छेद के दारुण दुःख के कारण वे सभी पुनः मूर्च्छित हो गयीं। तब कुमार ने उनको आध्यात्मिक वचन सुना

कर पुनः प्रबोधित किया। तत्पश्चात् वे भी कृत्तिकाओं को रथारूढ़ कराने के अनन्तर स्वयं भी पार्षदगण के साथ रथ पर आरूढ़ हो गये!॥२१-२२॥

पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यानि दर्पणम्।
दध्याज्यं मधु लाजांश्च पुष्पं दूर्वाक्षतान्सितान्॥२३॥

वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्निं सुवर्णकम्। पूर्णं च परिपक्वानि फलानि विविधानि च॥२४॥
पतिपुत्रवतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम्। मुक्तां प्रसूनमालां च सद्योमांसं च चन्दनम्॥२५॥
ददर्शतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने। शृगालं नकुलं कुम्भ[१] शवं वामे शुभावहम्॥२६॥

इस यात्राकाल में सभी ने तथा कुमार ने मार्ग में अपने सामने पूर्णकुंभ, ब्राह्मण, वेश्या, श्वेतधान्य, दर्पण, दधि, घृत, मधु, लावा, पुष्प, दूर्वा, श्वेत अक्षत, वृषभ, गजेन्द्र, अश्व, जलती अग्नि, स्वर्ण, ताम्बूल, नाना प्रकार के फल जो पके थे, पतिपुत्रयुता नारी, उत्तम मणिप्रदीप, मुक्ता, पुष्पमाला, ताजा मांस, चन्दनादि मांगलिक वस्तुओं को देखा। हे मुनिवर! उन्होंने शृगाल, नकुल, घट तथा शव को वाम ओर देखा, जो शुभ शकुन माना गया है।।२३-२६।।

राजहंसं मयूरं च खञ्जनं च शुकं पिकम्। पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकं च मङ्गलम्॥२७॥

कृष्णसारं च सुरभिं चमरीं श्वेतचामरम्।
धेनुं च वत्ससयुंक्तां पताकां दक्षिणे शुभाम्॥२८॥
नानाप्रकारवाद्यं चाप्यश्रौषीन्मङ्गलध्वनिम्।
[२]मनोहरं च सङ्गीतं घण्टाशङ्खध्वनिं तथा॥२९॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स ह्यगमत्तातमन्दिरम्। क्षणेनाऽऽनन्दयुक्तश्च मनोयायिरथेन च॥३०॥

राजहंस, मोर, खंजन पक्षी, तोता, कोयल, कपोत, शंखचील, चक्रवाक, कृष्णसार मृग, सुरभि गौ, चमरी गौ, श्वेत चामर, बछड़े सहित गौ, पताका रूप मांगलिक दर्शन भी मार्ग में किया। इसके अतिरिक्त मार्ग में अनेक वाद्यवादन, मंगलध्वनि, हरिनामकीर्त्तन, शंख-घंटा ध्वनि भी सुनाई पड़ी। ऐसा मांगलिक शकुन देख कर तथा सुन कर आनंदित कार्त्तिकेय ने उस मनोवेग से चलने वाले रथ पर आसीन होकर पितृगृह गमन किया।।२७-३०।।

कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके। क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह॥३१॥
पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम्। पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम्॥३२॥

रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रांशुकैस्तथा।
श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम्॥३३॥

पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः। असंख्यरत्नदीपैश्च मणिराजैर्विराजितम्॥३४॥

१. चाषमिति वा पाठः।
२. क. हरिशब्दस्य सं॰।

नटनर्तकवेश्यानामुत्सवैः सङ्कुलं सदा। वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम्॥३५॥

पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिश्च समन्वितम्।
लक्ष्मीं सरस्वतीं गङ्गां सावित्रीं तुलसीं रतिम्॥३६॥

तत्पश्चात् कुमार कार्त्तिकेय कैलास पर्वत गये। वहां उन्होंने पूर्वोक्त वटवृक्ष के नीचे पूर्वोक्त कृत्तिकाओं तथा पार्षदों के साथ कुछ समय अवस्थान किया। पार्वती ने पुरी के चारों ओर मनोहर राजमार्ग को पद्मरागमणि तथा नीलम से संस्कृत कराया था (सज्जित कराया था)। नाना रेशमी वस्त्रों, केले के खम्भों, बन्दनवारों एवं पूर्ण कलशों से सुशोभित कराया था। वह स्थान फलों से व्याप्त था, चन्दन जल से सुगन्धित-अभिषिक्त था। असंख्य रत्नदीप तथा मणियां वहां विराजमान थीं। वहां निरन्तर नट-नर्त्तक-अप्सरायें उत्सव कर रही थीं। वहां हाथों में दूर्वा तथा पुष्प धारण किये बन्दीगण एवं ब्राह्मणवर्ग, पतिपुत्र युक्त नारीगण तथा पतिव्रतायें, ये सभी विराजित थे। वहां देवी लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, सावित्री, तुलसी तथा देवी रति भी विराजमान थीं॥३१-३६॥

अरुन्धतीमहल्यां च दितिं तारां मनोरमाम्।
अदितिं शतरूपां च शचीं संध्यां च रोहिणीम्॥३७॥
अनसूयां तथा स्वाहां संज्ञां वरुणकामिनीम्।
आकूतिं च प्रसूतिं च देवहूतिं च मेनकाम्॥३८॥

तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम्। वसुन्धरां च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ॥३९॥

वहां अरुन्धती, अहल्या, दिति, मनोरमा, तारा, अदिति, शतरूपा, शची, संध्या, रोहिणी, अनसूया, स्वाहा, संज्ञा, सुन्दरी वरुण पत्नी, आकूति, प्रसूति, देवहूति, मेनका, एकपाटला, एकपर्णा, मैनाक की दो स्त्रियां, वसुन्धरा तथा मनसा, इनको आगे करके पार्वती आईं॥३७-३९॥

रम्भा तिलोत्तमा मेना धृताची मोहिनी शुभा।
उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला॥४०॥

कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी। एताश्चान्याश्च बहवो विप्रेन्द्राप्सरसां गणाः॥४१॥
सङ्गीतनर्तनपराः सस्मिता वेषसंयुताः। करतालकराः सर्वा जग्मुरानन्दपूर्वकम्॥४२॥

रम्भा, तिलोत्तमा, मेना, घृताची, शुभा, मोहिनी, उर्वशी, रत्नमाला, सुशीला, ललिता, कला, कदम्बमाला, सुरसा, सुन्दरी वनमाला तथा अनेक इसी प्रकार की अप्सराओं का समूह दिव्य वेशभूषा से युक्त होकर मन्द हास्य के साथ नृत्यगायन में मग्न थी। सभी उपस्थित लोग तालियां तथा करताल बजाते आनन्दित हो रहे थे॥४०-४२॥

देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा। सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने॥४३॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च रुद्रैर्वा पार्षदैः सह। भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सार्धं महेश्वरः॥४४॥

देवता, मुनिगण, पर्वत, गन्धर्व, किन्नर, पर्वत, अत्यन्त प्रसन्न होकर कुमार का स्वागत करने

गये। उस समय अनेक प्रकार के वाद्यों का वादन करते रुद्रगण, शिवपार्षदगण, भैरव, क्षेत्रपाल भी महेश्वर के साथ कुमार की अभ्यर्थना करने जाने लगे।।४३-४४।।

अथ शक्तिधरो हृष्टो दृष्ट्वाऽऽरात्पार्वतीं तदा। अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह।।४५।।

तं पद्माप्रमुखं देवीगणं च मुनिकामिनीः।
शिवं च परया भक्त्या सर्वान्संभाष्य यत्नतः।।४६।।
कार्तिकेयं शिवा दृष्ट्वा क्रोडे कृत्वा चुचुम्ब च।
शङ्करश्च सुराः शैला देव्यो वै शैलयोषितः।।४७।।

पार्वतीप्रमुखा देव्यस्तथा देवश्च शङ्करः। शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तमै शुभाशिषः।।४८।।

कुमारः सगणैः सार्धमागत्य च शिवालयम्।
ददर्श तं सभामध्ये विष्णुं क्षीरोदशायिनम्।।४९।।

तदनन्तर शक्ति अस्त्रधारी कार्त्तिकेय ने जैसे ही माता पार्वती को निकट में देखा, वे शीघ्रता से रथ से उतरे। उन्होंने मस्तक से पृथिवी को स्पर्श करते हुए भगवती के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने सादर लक्ष्मी आदि देवीगण, मुनिपत्नीगण तथा अत्यन्त भक्ति सहित शिव आदि श्रेष्ठ देवताओं को प्रणाम करके कुछ बात किया। पार्वती ने भी कार्त्तिकेय का सानन्द चित्त से मुखदर्शन किया तथा क्रोड में उनको लेकर उनका चुम्बन वात्सल्य पूर्वक किया। शंकर प्रभृति देवगण ने, पर्वतों तथा प्रमुख देवियों ने, पर्वतपत्नियों ने, पार्वती ने, मुनिगण ने उस समय कुमार को शुभ आशीष प्रदान किया। तदनन्तर कुमार कार्त्तिकेय भी शिवभवन में आये, जहां उन्होंने सभा में स्थित क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु का दर्शन किया।।४५-४९।।

रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। धर्मब्रह्मेन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाय्वादिभिर्युतम्।।५०।।
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्[१]। स्तुतं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः।।५१।।

वे सर्वरत्नभूषणभूषित होकर सुख पूर्वक रत्नसिंहासनासीन थे। वे प्रभु विष्णु वहां धर्म, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु से घिरे थे। वे प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रहकारी, मुनिगण तथा देवताओं से स्तुत, श्वेत चामर व्यजन से शोभायमान थे।।५०-५१।।

तं दृष्ट्वा जगतां नाथ भक्तिनम्रात्मकंधरः। पुलकान्वितसर्वाङ्गः शिरसा प्रणनाम ह।।५२।।

विधिं धर्मं च देवांश्च मुनीन्द्रांश्च मुदाऽन्वितान्।
प्रणनाम पृथक्तत्र प्राप तेभ्यः शुभाशिषः।।५३।।
पृथक्संभाष्य सर्वांश्चाप्युवास कनकासने।
ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्या सह शङ्करः।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कार्तिकेयागमनं नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

---

१. क. ०हविग्रहम्।

कार्त्तिकेय ने जब जगत्स्वामी विष्णु का वहां दर्शन किया। तब उन्होंने पुलकित होकर उनको नतशिर होकर साष्टांग प्रणाम भी किया। तदनन्तर ब्रह्मा, धर्मदेव, देवता, मुनि सभी को कुमार ने प्रणाम किया। इन सबने कुमार को पृथक्तः आशीर्वाद और प्रणाम किया। कुमार कार्त्तिकेय ने भी सबसे अलग-अलग क्रमशः बात करके स्वर्ण सिंहासन पर आसन ग्रहण कर लिया। उस समय शिव-पार्वती ने ब्राह्मणगण को प्रचुर धन दान किया था।।५२-५४।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

कार्त्तिकेय का अभिषेक, कार्त्तिक तथा गणेश विवाह का वर्णन

नारायण उवाच

अथ विष्णुर्जगत्कान्तो हृष्टः कृत्वा शुभेक्षणम्।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास षण्मुखम्।।१।।
नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालादिकानि च।
नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात्।।२।।

वेदमन्त्राभिषिक्तैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः। सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा।।३।।
सद्रत्नसारखचितं किरीटं मङ्गलाङ्गदे। अमूल्यरत्नखचितभूषणानि बहूनि च।।४।।
वह्निशुद्धांशुके दिव्ये क्षीरोदार्णवसंभवम्। कौस्तुभं वनमालां च तस्मै चक्रं ददौ मुदा।।५।।
ब्रह्मा ददौ यज्ञसूत्रं वेदा वै वेदमातरम्। संध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रं च कवचं हरेः।।६।।
कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां वै वैरिमर्दिनीम्। धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ।।७।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—तदनन्तर जगतपति विष्णु ने हर्षित अन्तःकरण की स्थिति में शुभ क्षण देख कर रम्य सिंहासन पर कुमार कार्त्तिकेय को आसीन कराया। उस समय कौतुक के साथ कांसे का झांझ-मंजीरा प्रभृति वाद्य और अनेक प्रकार के यन्त्र बजाये जाने लगे। आनन्द के साथ वेदमन्त्र उच्चारण के साथ सभी तीर्थों के जल से भरे श्रेष्ठ रत्नों से बने घटों द्वारा कुमार को स्नान कराया गया। श्रेष्ठ रत्नों के सारभाग से बना किरीट, मुकुट, बाजूबन्द, अमूल्य रत्नों से निर्मित नाना आभूषण, दिव्य अग्निशुद्ध वस्त्रद्वय, क्षीरसागर से उत्पन्न कौस्तुभ मणि, वनमाला तथा चक्र आनन्दमय मन से कार्त्तिकेय को प्रदान किया गया। ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत, गायत्री मन्त्र, कृष्ण मन्त्र, भगवत् स्तोत्र, कवच, कमण्डलु,

ब्रह्मास्त्र विद्या दिया, जो शत्रुमर्दक है। धर्म ने दिव्य धर्ममति तथा सभी प्राणी के प्रति दया भावना प्रदान किया।।१-७।।

परं मृत्युञ्जयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम्। शश्वत्सुखप्रदं तत्त्वज्ञानं च सुमनोहरम्।।८।।
योगतत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्। शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः।।९।।
संहारास्त्रविनिक्षेपं तत्संहारं ददौ शिवः। श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः।।१०।।
गजेन्द्रं च हयेन्द्रं य सुधाकुम्भं सुधानिधिः। मनोयायिरथं सूर्यः संनाहं च मनोरमम्।।११।।
यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः। नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा।।१२।।
कामशास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मै मुदाऽन्वितः।
क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टे रत्ननूपुरे।।१३।।

शिव ने परम मृत्युंजय मन्त्रज्ञान, सर्वशास्त्र अभिज्ञाता, नित्य सुखदायक मनोहर तत्त्वज्ञान, योगतत्त्व, सिद्धितत्त्व, दुर्लभ ब्रह्मज्ञान, त्रिशूल, पिनाक धनुष, परशु, शक्ति अस्त्र, पाशुपतास्त्र, संहारकारक अस्त्र प्रयोग तथा उसके द्वारा संहार कौशल प्रदान किया। वरुण ने इनको श्वेत छत्र तथा रत्नमाला प्रदान किया। इन्द्र ने श्रेष्ठ गज तथा सुधानिधि चन्द्र ने सुधाघट प्रदान किया। सूर्य ने मन की गति से चलने वाला रथ तथा मनोहर कवच, यम ने यमदण्ड, अग्नि ने महाशक्ति प्रदान किया। इस प्रकार देवगण ने आनंदित होकर नाना अस्त्र कार्त्तिकेय को प्रदान किया। कामदेव ने प्रफुल्लित होकर इनको कामशास्त्र दे दिया। क्षीरसागर ने कार्त्तिकेय को अमूल्य रत्न तथा विशेष रत्ननूपुर प्रदान किया।।८-१३।।

सावित्री सिद्धिविद्यां च सर्वास्ताः कौतुकाद्ददुः।
हिमालयो मयूरं च वाहनार्थं च मुकुटम्।।१४।।
लक्ष्मीश्च परमैश्वर्यं भारती हारमुत्तमम्। पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा।।१५।।
महाविद्यां सुशीलां च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम्।
बुद्धिं सुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम्।।१६।।
सुदृढां च हरौ भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा। प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम्।।१७।।
सुविनीतां सुशीलां च सुन्दरीं सुमनोहराम्।
ददौ तस्मै वेदमन्त्रैर्विवाहविधिना स्वयम्।।१८।।

स्कन्ददेव कार्त्तिकेय को देवीगण ने सभी प्रकार के कौतुक तथा सावित्री ने सिद्धविद्या प्रदान किया। हिमालय ने मयूर वाहन हेतु तथा मुकुट दिया। लक्ष्मी ने परम ऐश्वर्य, भारती ने उत्तम हार दिया। उस समय पार्वती ने मुस्कराते हुए परमानन्द भाव से भावित होकर कुमार को महाविद्या, सुशीला विद्या, मेधा, दया, स्मृति, निर्मल मति, शान्ति, तुष्टि, क्षमा, धैर्य, सुदृढ़ा हरिभक्ति तथा हरि का दासत्व (सेवकत्व) प्रदान किया। प्रजापति ने रत्नाभूषण भूषिता, सुविनीता, सुशीला, सुन्दरी, मनोहरा देवसेना नामक कन्या को स्वयं वैदिक मन्त्रमय विवाह विधि से प्रदान किया।।१४-१८।।

यां वदन्ति महाषष्ठीं पण्डिताः शिशुपालिकाम्।
अभिषिच्य कुमारं च सर्वे देवा ययुर्गृहम्॥१९॥

विद्वान् लोग इनको शिशुपालिनी महाषष्ठी देवी कहते हैं। इस प्रकार देवगण ने कुमार कार्त्तिकेय का अभिषेक करके अपने-अपने गृह की ओर प्रस्थान किया।।१९।।

मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान्। नारायणं च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाव शङ्करः॥२०॥
प्रणनाम हरिं तात धर्ममालिङ्ग्य नारद। प्रीत्या ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शङ्करार्चितः॥२१॥
ये ये तत्राऽऽगताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम्। परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः॥२२॥
कालान्तरे च तान्सर्वान्पुनरानीय शङ्करः। पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने॥२३॥

हे तात! उस समय सभी देवता, मुनि, गन्धर्व आदि जब चले गये, तब महादेव ने नारायण-ब्रह्मा-धर्म का स्तव किया। धर्म ने आलिंगन करके पितृतुल्य हरि को प्रणाम किया। महादेव से अर्चित होकर शैलराज हिमालय अपने गणों सहित प्रसन्न मन से स्वगृह चले गये। इसी प्रकार जो लोग जहां से आये थे, वे आनन्दित होकर वहीं चले गये। कालान्तर में देवी के साथ महेश्वर ने पुनः आनन्दित होकर सभी देवता तथा मुनिगण को स्वगृह पुनः बुलाया। तब महादेव ने देवी पुष्टि के साथ महा समारोह पूर्वक गणेश का विवाह करा दिया।।२०-२३।।

सुताभ्यां सगणैः सार्धं पार्वती हृष्टमानसा।
सिषेवे स्वामिनः पादपद्मं सा सर्वकामदम्॥२४॥

इस प्रकार देवी पार्वती अत्यन्त हर्षित होकर पुत्रद्वय तथा परिवार के साथ प्रभु के सर्वकामप्रद चरणद्वय की सेवा करते कालयापन करने लगीं।।२४।।

इत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याभिषेचनम्। विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम्॥२५॥
पार्वतीपुत्रलाभश्च देवानां च समागमः।
का ते मनसि वाञ्छाऽस्ति किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कुमारगणेशविवाहकुमाराभिषेककथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

मैंने कार्त्तिकेय का अभिषेक, विवाह, पूजाविधि तथा गणेश का विवाह प्रसंग कहा। पार्वती को पुत्रलाभ तथा देवगण का सम्मिलन भी कहा। अब क्या श्रवण करने की इच्छा है?।।२५-२६।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

अष्टादशोऽध्यायः

गणेश के मस्तक रहित होने का कारण कहे जाने के साथ शंकर को कश्यप शाप प्रसंग का वर्णन

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग। पृच्छामि त्वामहं किञ्चिदतिसंदेहवान्यतः॥१॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शङ्करस्य महात्मनः। विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान्परमात्मा परात्परः। गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम्॥३॥
अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो। ग्रहदृष्ट्या ग्रहेशस्य कथं मे वक्तुमर्हसि॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महाभाग! वेद-वेदांग पारंगत ईश्वर रूपी नारायण! मुझे एक प्रबल सन्देह है। वही आपसे मेरी जिज्ञासा है। हे प्रभो! गणेश महात्मा शिव के पुत्र तथा देवताओं के अधिपति हैं। वे स्वयं विघ्नहारी तथा ईश्वर के साक्षात् अवतार हैं। उनको विघ्न कैसे हो गया? परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा श्रीमान् गोलोकनाथ ने अपने अंश से पार्वती के पुत्ररूप में जन्म लिया था। हे विभु! उन साक्षात् भगवान् का शनि की दृष्टिमात्र से जो शिरच्छेद हो गया, उसका क्या कारण है? कृपया कहिये। ग्रहाधीश्वर प्रभु गणेश का ग्रहदृष्टि से कैसे मस्तक कट गया?॥१-४॥

नारायण उवाच

सावधानं शृणु ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम्। विघ्नेशस्य बभूवेदं विघ्नं येन च नारद॥५॥
एकदा शङ्करः सूर्यं जघान परमक्रुधा। सुमालिमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः॥६॥
श्रीसूर्योऽमोघशूलेनाशनितुल्येन तेजसा। जहौ स चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम्। कृत्वा वक्षसि तं शोकाद्विललाप भृशं मुहुः॥८॥
हाहाकारं सुराश्चक्रुर्विलेपुर्भयकातराः। अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसाऽऽवृतम्॥९॥

श्री नारायण देव कहते हैं–हे ब्रह्मन्! नारद! मैं तुमसे प्राचीन इतिहास इस सम्बन्ध में कहता हूं कि इन विघ्नेश्वर को विघ्न कैसे हो गया? सावधानी से श्रवण करो। जब माली तथा सुमाली नामक दो भक्तों का हनन करने को सूर्यदेव उद्यत थे, तब भक्तवत्सल महेश्वर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सूर्य पर शूलाघात किया। सूर्यदेव शिवतुल्य अव्यर्थ जाने वाले शूल से आहत होकर चेतना रहित हो गये। वे अपने रथ से भूतल पर गिर गये! जब सूर्य के पिता कश्यप ने अपने पुत्र को उल्टे नेत्रों वाला तथा मृतवत् देखा, तब वे उनको वक्ष से लगाकर शोकावेग से पुनः-पुनः अतिशय रुदन करने लगे। तब सूर्य के अभाव में समस्त जगत् अन्धकाराच्छन्न होकर अन्धवत् हो गया। सब कुछ तमसाच्छन्न लग रहा था॥५-९॥

निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा चाशपत्कश्यपः शिवम्।
तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥१०॥
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य वै।
त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नं भविष्यति न संशयः॥११॥
शिवश्च गलितक्रोधः क्षणेनैवाऽशुतोषकः।
ब्रह्मज्ञानेन तं सूर्यं जीवयामास तत्क्षणात्॥१२॥

कश्यप मुनि ब्रह्मा के पौत्र तथा ब्रह्मतेज से देदीप्यमान थे। जब उन्होंने पुत्र को निष्प्रभ देखा, तब उन्होंने शिव को शाप दे दिया कि जैसे आपने मेरे पुत्र का वक्षःस्थल अपने शूल से विदीर्ण किया है, उसी प्रकार से आपके पुत्र का भी शिर छिन्न होगा, यह निःसंशय है। आशुतोष शिव अगले ही क्षण क्रोध रहित हो गये। उन्होंने तत्क्षण ब्रह्मज्ञान से सूर्य को जीवित कर दिया॥१०-१२॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः। सूर्यश्च चेतनां प्राप्य समत्तस्थौ पितुः पुरः॥१३॥
ननाम पितरं भक्त्या शङ्करं भक्तवत्सलम्।
विज्ञाय शंभोः शापं च कश्यपं स चुकोप ह॥१४॥
विषयान्नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह। विषयांश्च परित्यज्य भजे श्रीकृष्णमीश्वरम्॥१५॥
सर्वं तुच्छमनित्यं च नश्वरं चेश्वरं विना। विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्नेच्छेदमङ्गलम्॥१६॥

प्रभु सूर्य त्रिगुण रूप तथा ब्रह्मा-विष्णु-शिव के अंश हैं। जब सूर्य चेतनायुक्त हो गये, तब पिता कश्यप के समक्ष वे उठ कर बैठ गये। तदनन्तर सूर्यदेव ने भक्ति पूर्वक पिता को तथा भक्तवत्सल शंकर को प्रणाम किया तथा यह जान कर कि पिता ने शंकर को शाप दिया है, वे कुपित हो गये। तभी क्रोधित सूर्यदेव ने कहा—"अब मैं विषयसुख त्याग कर परमेश्वर श्रीकृष्ण का भजन करूंगा। ईश्वर के अतिरिक्त सब कुछ तुच्छ अनित्य है। विद्वान् लोग मंगलमय सत्यरूप परमेश्वर का परित्याग करके अमंगलमय विषयसुख के अभिलाषी नहीं होते॥१३-१६॥

देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससंभ्रमः। बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषयेष्वजः॥१७॥
तस्मै दत्वाऽऽशिषः शंभुर्ब्रह्मा च स्वालयं मुदा।
जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च॥१८॥
अथ माली सुमाली च व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः।
श्वित्रौ गलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ॥१९॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवां च भजतां रविम्। सूर्यकोपेन गलितौ युवामेवं हतप्रभौ॥२०॥

जब ब्रह्मा ने सूर्य को इतना क्रोधित देखा, तब वे देवगण से प्रेरित होकर सहसा वहां आये। उन्होंने सूर्य को सान्त्वना देकर उनको पुनः उनके विषयों में (कार्य में) लगा दिया। तत्पश्चात् शिव,

ब्रह्मा तथा कश्यप ने सूर्य को आशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर माली तथा सुमाली कुष्ठ रोग से ग्रस्त होकर तथा सभी अंग गलित हो जाने के कारण तथा श्वेतकुष्ठ भी साथ हो जाने के कारण शक्तिहीन हो गये। उनकी प्रभा नष्ट हो गयी। तब ब्रह्मा ने स्वयं उनसे कहा–"तुम लोग सूर्य के कोप के कारण गलित तथा हतप्रभ हो गये हो। अतः सूर्य की आराधना करो"।।१७-२०।।

सूर्यस्य कवचं स्तोत्रं सर्वं पूजाविधिं विधिः।
जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकं सनातनः॥२१॥
ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने।
स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम्॥२२॥
ततः सूर्याद्वरं प्राप्य निजरूपौ बभूवतुः। इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नेशविघ्नकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

ब्रह्मा ने माली-सुमाली को सूर्य का कवच, स्तोत्र तथा पूजाविधि प्रदान किया। तदनन्तर वे अपने सनातन ब्रह्मलोक चले गये। हे मुनिवर! इसके पश्चात् माली-सुमाली ने पुष्कर तीर्थ जाकर वहां नित्य त्रिकाल स्नान करके भक्तिभाव से उत्तम सूर्यमन्त्र का जप करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने सूर्य से व्रत पाकर अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लिया। तुमने जो कुछ सुनना चाहा था, वह सब मैंने कह दिया। अब और क्या सुनने की कामना है?।।२१-२३।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

एकोनविंशोऽध्यायः

सूर्यदेव का स्तव-कवच

नारद उवाच

किं स्तोत्रं कवचं नाथ ब्रह्मणा लोकसाक्षिणा।
दानवाभ्यां पुरा दत्तं सूर्यस्य परमात्मनः॥१॥
किं वा पूजाविधानं वा कं मन्त्रं व्याधिनाशनम्।
सर्वं चास्य महाभाग तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! दयालु ब्रह्मा ने पूर्वकाल में उन दानवों को परमात्मा सूर्य का किस प्रकार का स्तोत्र तथा कवच दिया था? हे महाभाग! उनकी पूजाविधि किस प्रकार की है तथा वह व्याधिनाशक मन्त्र क्या है? आप यह सब कहिये।।१-२।।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्करुणानिधिः। स्तोत्रं च कवचं मन्त्रमूचे तत्पूजनक्रमम्।।३।।

सूतजी कहते हैं—नारद का कथन सुन कर करुणानिधि प्रभु ने (नारायण ऋषि ने) नारद को सूर्य का स्तोत्र, कवच, मन्त्र तथा पूजाक्रम कहा—।।३।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि सूर्यपूजाविधेः क्रमम्।
स्तोत्रं च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचकम्।।४।।
सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः।
विधिं सस्मरतुः स्तोतुं शिवमन्त्रप्रदायकम्।।५।।
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम्। शिवं तत्रैव संपश्यन्वसन्तं हरिसंनिधौ।।६।।

श्री नारायण मुनि कहते हैं—हे नारद! श्रवण करो। मैं क्रमशः सूर्यपूजाविधि कहता हूं। इनका स्तोत्र-कवच पाप और रोगनाशक है। व्याधिपीड़ित दैत्य सुमाली-माली ने शिवमन्त्रप्रदायक ब्रह्मा का स्मरण एवं उनकी स्तुति किया। तब ब्रह्मदेव वैकुण्ठ गये तथा उन्होंने विष्णु के साथ शिव को वहां देख कर कमलापति से प्रश्न किया।।४-६।।

ब्रह्मोवाच

सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः। क उपायो वद हरे तयोर्व्याधिविनाशने।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे हरि! माली-सुमाली दैत्य व्याधिग्रस्त हो गये हैं। उनके व्याधि का नाश किस उपाय से हो, वह कहिये।।७।।

विष्णुरुवाच

कृत्वा सूर्यस्य सेवां च पुष्करे पूर्णवत्सरम्।
व्याधिहन्तुर्मदंशस्य तौ च मुक्तौ भविष्यतः।।८।।

श्री विष्णु कहते हैं—पुष्कर क्षेत्र में १ वर्ष सूर्य की पूजा करनी होगी। सूर्य मेरे ही अंश से उत्पन्न हैं, वे ही व्याधिनाशक हैं। उनकी सेवा से वे दोनों रोगमुक्त हो जायेंगे।।८।।

शङ्कर उवाच

सूर्यस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं कल्पतरुं परम्। देहि ताभ्यां जगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः।।९।।

आवां संपत्प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम्।
व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे॥१०॥

श्री शंकर कहते हैं–यह सूर्यस्तव तथा कवच एवं मन्त्र परम कल्पतरु रूप है। हे विप्र! मैं तथा ब्रह्मा मात्र सम्पदा प्रदान कर सकते हैं, तथापि श्रीहरि सर्वदाता हैं। व्याधिनाशक एकमात्र सूर्य है। जिसका जो विषय होता है, वही उसे सम्पन्न करता है।।९-१०।।

तयोरनुमतिं प्राप्य ययौ दैत्यगृहं विधिः। तदा प्रणम्य तं दृष्ट्वा तस्मै ददतुरासनम्॥११॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा रोगग्रस्तौ दयानिधिः। स्तब्धावाहाररहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ॥१२॥

तदनन्तर हरि, शिव की अनुमति लेकर ब्रह्मा दैत्यों के गृह में गये। जब माली-सुमाली ने उनको देखा, तत्काल उन्होंने ब्रह्मा को आसन तथा प्रणाम निवेदित किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने उन मवाद से दुर्गन्धयुक्त, स्तब्ध, आहार रहित रोगपीड़ित माली-सुमाली से कहा–।।११-१२।।

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा कवचं स्तोत्रं मन्त्रं पूजाविधिक्रमम्।
गत्वा हि पुष्करं वत्सौ भजथः प्रणतौ रविम्॥१३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं–हे वत्स! यह कवच, स्तोत्र, मन्त्र, पूजाविधि लेकर तुम पुष्कर तीर्थ में सूर्य को नमस्कार करके सूर्यदेव का भजन करो।।१३।।

तावूचतुः

भजावः केन विधिना केन मन्त्रेण वा विधे।
किं स्तोत्रं कवचं किं वा तदावाभ्यां वदाधुना॥१४॥

दोनों दैत्य कहते हैं–हे विधाता! किस विधान तथा मन्त्र से सूर्यदेव की उपासना करनी चाहिए? उनका स्तोत्र-कवच क्या है? मुझे वही दीजिये।।१४।।

ब्रह्मोवाच

कृत्वा त्रिकालं स्नानं च मन्त्रेणानेन भास्करम्।
संसेव्य भास्करं भक्त्या नीरुजौ च भविष्यथः॥१५॥
ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने। स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण सावधानं दिवाकरम्॥१६॥
संपूज्य दत्त्वा भक्त्या वै चोपहारांस्तु षोडश।
एवं संवत्सरं यावद्ध्रुवं मुक्तौ भविष्यथः॥१७॥
अपूर्वं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रददाम्यहम्। यद्दत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम्॥१८॥
तत्सहस्रभगाङ्गाय शापेन गौतमस्य च। अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय सङ्कटे॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं–त्रिसन्ध्या स्नान करके इस मन्त्र द्वारा भक्ति के साथ भास्कर की सेवा करके

तुम निरोग हो जाओगे। मन्त्र है–"ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा।" यह मन्त्र पाठ करके सावधानी से भगवान् सूर्य की पूजा षोडशोपचार द्वारा एक वर्ष तक तुम्हें करना चाहिए। इससे तुम्हारे रोग का निश्चित नाश होगा। यह अपूर्व सूर्यकवच मैं तुम लोगों से कहता हूं। पूर्वकाल में बृहस्पति ने यही कवच प्रीति के साथ इन्द्र को दिया था, जब गौतम के शाप के कारण इन्द्र को १००० भग प्राप्त हो गये थे, तब बृहस्पति ने अहल्या हरण करने से पापयुक्त संकटापन्न इन्द्र को प्रबोधित किया था।।१५-१९।।

बृहस्पतिरुवाच

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्।
यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते॥२०॥
कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न भियाऽऽयाति संनिधिम्।
यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजङ्गमाः॥२१॥
शुद्धाय गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्।
खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्॥२२॥

बृहस्पति कहते हैं–हे इन्द्र! मैं परम अद्भुत कवच कहता हूं। उसका श्रवण करो। भारत में इसी कवच को धारण करने वाले मुनिगण पवित्र हो गये। इसे केवल अपने गुरुभक्त शुद्ध शिष्य से ही कहना चाहिए। जिस प्रकार गरुड़ को देखते ही सर्प भाग जाते हैं, उसी प्रकार जो इस कवच को धारण करता है, व्याधि-रोग उस व्यक्ति के पास नहीं आते। इसे अन्य के शिष्य तथा दुष्टों को देने वाला मृत्युग्रस्त हो जायेगा।।२०-२२।।

जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम्॥२३॥
व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः। सद्यो रोगहरं सारं सर्वपापप्रणाशनम्॥२४॥

विनियोग–यह जगद्विलक्षण कवच है, जिसके ऋषि प्रजापति हैं। छन्दः है गायत्री, देवता हैं स्वयं दिवाकर। इसका प्रयोग (विनियोग) व्याधिनाश तथा सौन्दर्यलाभार्थ करना चाहिए। यह तत्काल रोगहारी, साररूप तथा सर्वपापनाशक है।।२३-२४।।

ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कपालं मे सदाऽवतु॥२५॥

कवच–"ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा" मस्तक की रक्षा करें। अष्टादश अक्षरों वाला सूर्यमन्त्र कपाल की रक्षा करें।।२५।।

ॐ ह्रीं[१] ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा मे पातु नासिकाम्।
चक्षुर्मे पातु सूर्यश्च तारकं च विकर्तनः॥२६॥

१. क. ह्रीं क्लीं श्रीं सू॰।

भास्करो मेऽधरं पातु दन्तान्दिनकरः सदा।
प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्तण्डः कर्णमेव च।
मिहिरश्च सदा स्कन्धे जङ्घे पूषा सदाऽवतु॥२७॥

"ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा" नासिका की रक्षा करें। सूर्य नेत्रों की, विकर्त्तन देव आंखों के तारकों की, भास्कर अधर की, दिनकर दांतों की, प्रचण्ड कपोल की, मार्त्तण्ड कानों की, मिहिर कन्धे की तथा पूषा जांघों की सदा रक्षा करें।।२६-२७।।

वक्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदा पातु सर्वदेवनमस्कृतः॥२८॥
कर्णौ पातु सदा ब्रध्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु संततमीश्वरः॥२९॥

रवि वक्ष की, स्वयं सूर्य नाभि की, सर्वदेव नमस्कृत मेरे कंकाल की, ब्रह्म करद्वय की, प्रभाकर पदद्वय की तथा विभाकर ईश्वर सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करें।।२८-२९।।

इति ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम्॥३०॥
पुरा दत्तं च मनवे पुलस्त्येन तु पुष्करे। मया दत्तं च तुभ्यं तद्यस्मै कस्मै न देहि भोः॥३१॥

हे वत्स! यह मैंने सुमनोहर कवच कह दिया। यह जगद्‌विलक्षण नाम वाला कवच त्रैलोक्य दुर्लभ है। पूर्वकाल में पुष्कर में यही कवच पुलत्स्य मुनि ने मनु को प्रदान किया था। वही कवच मैं तुमको प्रदान कर रहा हूं। मैं इसे जिस किसी को प्रदान नहीं करता।।३०-३१।।

व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः।
भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशयः॥३२॥

लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात्॥३३॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं यजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते॥३४॥

इस कवच की कृपा से तुम व्याधि रहित हो जाओगे। तुम दोनों निरोग तथा श्रीमान् हो जाओगे। एक लाख वर्ष तक हविष्य से जो फललाभ करता है, इस कवच को मात्र धारण करने का वही फल है। इसमें सन्देह न करे। जो मूढ़ इस कवच को बिना जाने सूर्योपासना करता है, उसे उसका सूर्यमन्त्र १० लाख जप करने से भी फलदायक नहीं होता।।३२-३४।।

ब्रह्मोवाच

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः।
युवां व्याधिविनिर्मुक्तौ निश्चितं तु भविष्यथः॥३५॥

स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं धनारोग्यकरं परम्॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं–हे वत्स! तुम दोनों यह कवच धारण करके सूर्य का स्तवपाठ करो। इसके फलस्वरूप तुम दोनों व्याधि रहित हो जाओगे। यह निश्चित है। यह व्याधिमोचक सूर्यस्तव सामवेदोक्त है, जो सर्वपाप नाशक, साररूप तथा धन एवं परम आरोग्य प्रदायक है।।३५-३६।।

ब्रह्मोवाच

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्।
त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम्॥३७॥
त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापविमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा॥३८॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम्॥३९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्।
व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम्।
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम्॥४०॥

सूर्य स्तव–ब्रह्मदेव कहते हैं–यह व्याधिमोचनकारी स्तुति सुनो। मैं उन व्याधिमोचन करने वाले सर्वपातक हरणकर्त्ता, सारभूत, सर्वोत्तम, प्रीति आरोग्यप्रद प्रभु सूर्य की स्तुति करता हूं, जो परम धाम, ज्योतिरूप, सनातन, भक्तानुग्रहकारी हैं। वे त्रैलोक्य के नेत्ररूप, लोकनाथ, पापमोचक, तपःफलदाता, पापीगण को दुःख देने वाले, सबको कर्मानुरूप फलदाता, कर्मबीज, दयानिधि, कर्मरूप, क्रियारूप, अरूप, ब्रह्मा-विष्णु-महेश के अंश, त्रिगुणरूप, दुष्ट को व्याधिप्रद होकर भी भक्तों की व्याधि के नाशक, शोक-मोह तथा भय को दूर करने वाले, सुखद, मोक्षप्रद, सारतत्व, भक्ति तथा सभी कामना प्रदायक हैं।।३७-४०।।

सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम्॥४१॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम्। सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम्॥४२॥

वे सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वकर्मसाक्षी, (भक्तों को) प्रत्यक्ष होकर भी सबके लिये अप्रत्यक्ष तथा मनोहर रूप हैं। सूर्यदेव सदैव पृथिवी से रस (जल) हरण करते हैं, तदनन्तर वर्षारूपेण रसदान भी करते हैं। ये सर्वसिद्धिदायक, सर्वसिद्धिरूप, सिद्धेश, सिद्धों के परमगुरु हैं।।४१-४२।।

स्तवराजमिमं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं व्याधिभ्यः स प्रमुच्यते॥४३॥

मैंने यह गोपनीय से भी अति गोपनीय यह परम स्तवराज तुमको प्रदान कर दिया। जो तीनों सन्ध्याकाल में इसका पाठ करेगा, वह व्याधि रहित हो जायेगा।।४३।।

आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगः शोको भयं कलिः।
तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्यकृपया ध्रुवम्॥४४॥
महाकुष्ठी च गलितो चक्षुर्हीनो महाव्रणी।
यक्ष्मग्रस्तो महाशूली नानाव्याधियुतोऽपि वा॥४५॥
मासं कृत्वा हविष्यान्नं श्रुत्वाऽतो मुच्यते ध्रुवम्।
स्नानं च सर्वतीर्थानां लभते नात्र संशयः॥४६॥

ऐसे व्यक्ति का अन्धत्व, कुष्ठ, दरिद्रता, रोग, शोक, कलिप्रकोप इन विश्वेश्वर दिवाकर की कृपा से नष्ट होगा। यह ध्रुव सत्य है। महाकुष्ठी, गलित कुष्ठी, चक्षु रहित, महान् व्रणों वाला, यक्ष्माग्रस्त, महान् शूल पीड़ित, नाना रोगों से युक्त व्यक्ति एक मास हविष्यान्नभोजी रह कर यह स्तव श्रवण करता रहे। वह अवश्य रोग रहित होगा। साथ ही उसे निश्चित रूप से सर्वतीर्थ स्नानफल भी प्राप्त होगा।।४४-४६।।

पुष्करं गच्छतं शीघ्रं भास्करं भजतं सुतौ।
इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालयं मुदा॥४७॥
तौ निषेव्य दिनेशं तं नीरुजौ संबभूवतुः।
इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४८॥
सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशं विघ्ननाशनम्[१]।
स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥४९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नकारणकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

"हे पुत्रों! तुम दोनों शीघ्र पुष्कर तीर्थ जाकर वहां सूर्य का भजन करो।" यह कह कर मुदित मन से ब्रह्मा स्वगृह चले गये। हे वत्स! वे वहां दिनेश दिवाकर सूर्य की आराधना से निरोग हो गये। हे वत्स! यह प्रसंग मैंने कह दिया। अब क्या श्रवणेच्छा है? सर्वविघ्नहारी विघ्नेश का यह विघ्ननाशक सारभाग रूप सूर्यस्तोत्र है। इससे सूर्यदेव की स्तुति करने वाला रोगमुक्त होगा, यह निःसंदिग्ध है।।४७-४९।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।

विंशोऽध्यायः

गणेश के गजानन होने का कारण

नारद उवाच

हरेरंशसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान्धिया। तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि॥१॥
विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम्। तद्विघ्नकारणं चैव विश्वकारणवक्त्रतः॥२॥

१. विघ्नेशविघ्नकारणम्।

अधुना श्रोतुमिच्छामि स्वात्मसंदेहभञ्जनम्। त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनार्थकम्॥३॥
स्थितेष्वन्येषु बहुषु जन्तुष्वब्जभुवः पते। सुप्राणिनां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम्॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आप हरि के अंश से उत्पन्न हैं। आप बुद्धि, तेज, विक्रम में हरि तुल्य हैं। आप मेरा प्रश्न सुनिये। विघ्नहारी गणेश को जिस लिये विघ्न हुआ था, वह परम अद्भुत कथा तथा उस विघ्न का कारण मैंने विश्वकारण भगवान् से सुन लिया। त्रैलोक्यपति शंकर के पुत्र को हस्तिमुख युक्त किया गया, यह सन्देह उत्पन्न कर रहा है। अब मैं इस संदेह के भंजन का प्रसंग सुनना चाहता हूं। हे ब्रह्मपति! अब यह कहिये कि संसार में नाना प्रकार के उत्तम प्राणीगण के अनेक उत्तम रूपों के रहते यही हस्तिमुख गणेश की देह पर क्यों योजित किया गया?।।१-४।।

नारायण उवाच

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद। गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुदुर्लभम्॥५॥
तारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसंपदाम्। हारणं विपदां चैव रहस्यं पापमोचनम्॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! गणेश के धड़ पर इस गज मुख को जोड़ने का कारण सुनो, जो सभी पुराण तथा वेद में दुर्लभ है। यह सभी दुःखों से उत्तीर्ण करने वाला तथा सभी सम्पदा का कारण है। यह विपत्तिहारी तथा रहस्यमय एवं पापनाशक भी है।।५-६।।

महालक्ष्म्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। सुखदं मोक्षदं चैव चतुर्वर्गफलप्रदम्॥७॥
शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम्॥८॥

महालक्ष्मी का यह चरित्र सभी मंगलों को मंगलमय करने वाला, सुखद, मोक्षप्रद तथा चतुर्वर्ग फलदायक है। हे तात! मैं प्राचीन इतिहास कहता हूं। उसे सुनो। मैं तुमको पाद्मकल्प का यह इतिहास बतला रहा हूं, जो मैंने अपने पिता से सुना था।।७-८।।

एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदीं ययौ। महासंपन्मदोन्मत्तः कामी राजश्रियाऽन्वितः॥९॥
तत्तीरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे। अतीव दुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते॥१०॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रवे। सुगंधिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते॥११॥
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात्समागताम्।
सुरतश्रमविश्रान्तिकामुकीं कामकामुकीम्॥१२॥

एक बार महेन्द्र (इन्द्र) पुष्पभद्रा नदी गये थे। वे कामी, राजश्री से परिपूर्ण तथा महान् सम्पत्तिशाली होने के कारण मदोन्मत्त थे। उसके तट पर सभी प्रकार के जीवजन्तु से रहित दुर्गम वन के मध्य में अत्यन्त निर्जन पुष्पोद्यान था। वहां भ्रमर गुंजार शब्द तथा नर कोकिल के कूजन का मनोहर शब्द गूंज रहा था। वहां की वायु सुगन्ध पुष्पों के स्पर्श के कारण उत्तम गंध वाली थी। वहां इन्द्र ने कामदेव के प्रति अनुरागमय चित्त वाली अप्सरा रंभा को देखा। वह चन्द्रलोक से अपने रतिजनित श्रम से विश्रान्त होने आई थी तथा कामभाव युक्त भी थी।।९-१२।।

इच्छन्तीमीप्सितां क्रीडां गच्छन्तीं मदनाश्रमम्।
एकाकिनीमुन्मुनस्कां मन्मथोगतमानसाम्॥१३॥
सुश्रोणीं सुदतीं श्यामां बिम्बाधरसरोरुहाम्। बृहन्नितम्बभारार्तां मत्तवारणगामिनीम्॥१४॥

वह इच्छानुरूप क्रीड़ा हेतु कामदेव के यहां जा रही थी। वह एकाकिनी, अमनस्क तथा मन्मथ से मथित मन वाली थी। उसके जंघा अत्यन्त उत्तम थे। वह उत्तम दंतपंक्तियों से शोभिता थी। उसके अधर बिम्बफल के वर्ण के कमल के समान थे। वह अपने बृहद् नितंबों के भार को उठाने में थकती जा रही थी उसकी चाल मत्त गज के समान थी।।१३-१४।।

सस्मितास्यशरच्चन्द्रां सुकटाक्षं च बिभ्रतीम्।
बिभ्रतीं कबरीं रम्यां मालतीमाल्यशोभिताम्॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकधरां रत्नभूषणभूषिताम्। कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरं बिभ्रतीं मुदा॥१६॥
नीलोत्पलदलश्यामकज्जलोज्ज्वललोचनाम्।
मणिकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजिताम्॥१७॥
अत्युन्नतं सुकठिनं पत्रराजिविराजितम्। सुखदं रसिकानां च स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम्॥१८॥

वह मुस्करा रही थी। उसका आनन शारदीय चन्द्रमा के समान था। नेत्र कटाक्षपात कर रही थी। मस्तक पर सुरम्य केशपाश सज्जित था। गले में मालती पुष्पमाला शोभायमान थी। उसने अग्निशुद्ध वस्त्रद्वय धारण कर रखा था। उसके सर्वाङ्ग में रत्नमय आभूषण शोभायमान हो रहे थे। कपाल पर छोटी सिन्दूर की बिन्दी लगी थी, जिसके नीचे कस्तूरी की बिन्दी शोभायमान थी। उसके दोनों नेत्र नीलकमल के समान थे, साथ ही वे उज्ज्वल कज्जल से रंजित थे। उसका गण्डस्थल मणियों के दो कुण्डलों से दोनों ओर शोभायमान था। उसके स्तनद्वय अत्यन्त उन्नत, कठोर थे। ये स्तनद्वय रसिकों हेतु सुखप्रद थे। उन पर अतीव कुशलता से पत्रावलि अंकित थी!।।१५-१८।।

सर्वसौभाग्यवेषाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम्।
प्राणाधिकां च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम्॥१९॥
वरामप्सरसां रम्यामतीव स्थिरयौवनाम्। गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम्॥२०॥
दृष्ट्वा तामतिवेषाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः। इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात्प्रवक्तुमुपचक्रमे॥२१॥

उसका केशविन्यास सभी प्रकार से शोभा वर्द्धन करने वाला था। वह सुभग तथा सुरतक्रीड़ार्थ उत्सुक थी। वह देवगणों को प्राणों से भी प्रिय तथा स्वच्छ एवं इच्छा के अनुसार स्वतन्त्र विचरण करती थी। वह अप्सराओं में श्रेष्ठ, अत्यन्त रम्य, स्थिरयौवना, गुण तथा रूप से पूर्ण, शान्त और मुनिगण के मन को भी मोहित करने वाली थी। उसके वेश तथा रूप को देख कर और उसके कटाक्षपात द्वारा इन्द्र कामपीड़ित हो गये। अब इन्द्र अपनी इन्द्रियों की चपलता और अधिक नहीं रोक पाये तथा कहने लगे-१९-२१।।

इन्द्र उवाच

क्व गच्छसि वरारोहे क्व गताऽसि मनोहरे[1]।
मया दृष्टा हि सुचिरात्कल्याणि सुभगेऽधुना[2]॥२२॥
तवान्वेषणकर्ताऽहं श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः।
त्वक्यासक्तमनाश्चास्मि नान्यां वै गणयामि च॥२३॥
सुवासितजलार्थी यः किमिच्छेत्पङ्किलं जलम्।
पङ्कं नेच्छेच्चन्दनार्थी पङ्कजार्थी न चोत्पलम्॥२४॥
सुधार्थी न सुरामिच्छेद्दुग्धार्थी नाऽऽविलं जलम्।
सुगन्धिपुष्पशायी यो ह्यस्त्रतल्पं न चेच्छति॥२५॥

इन्द्र कहते हैं–हे वरारोहे! तुम कहां जा रही हो? कहां से आई हो? मैंने बहुत काल के उपरान्त तुमको देखा है। आजकल तुम्हारा प्रिय पात्र कौन है? मैंने दूतों से सुना है कि तुम यहां हो, तभी तुमको खोजते मैं भी यहां आ गया! तुमको ज्ञात है कि मैं सदा तुम्हारे प्रति अनुरक्त रहता हूं। तुम्हारे अतिरिक्त किसी नारी का मन में चिन्तन नहीं करता! जो सुवासित जल का अभिलाषी है, क्या वह कभी गंदले जल का पान करेगा? जिसे चंदन चाहिये क्या वह कीचड़ ग्रहण करेगा? इसी प्रकार कमल की अभिलाषा करने वाला कदापि कल्हार पुष्प (उत्पल) की चाह नहीं करता। जो व्यक्ति अमृतेच्छु है, वह कभी भी मद्य की कामना नहीं करेगा। दुग्धकामी कदापि मिट्टी मिला जल ग्रहण नहीं करेगा। सुगन्धित पुष्पों की शय्या पर शयन करने वाला कदापि अस्त्र शय्या पर शयन नहीं करेगा!॥२२-२५॥

स्वर्गी च नरकं नेच्छेत्सुभोगी दुष्टभोजनम्।
पण्डितैः सह संवासी नेच्छेत्स्त्रीसंनिधिं नरः।
विहाय रत्नाभरणं कोऽपीच्छेल्लोहभूषणम्॥२६॥
त्वां नाऽऽश्लिष्य महाविज्ञाङ्को मूढो गन्तुमिच्छति।
विहाय गङ्गां को विज्ञो नदीमन्यां च वाञ्छति॥२७॥

स्वर्ग की कामना करने वाला कदापि नरक नहीं चाहता। उत्तम खाद्य भोगी कदापि कुत्सित भोजन की कामना नहीं करता। जिसने दीर्घकाल तक विद्वानों का साथ किया है, वह कभी भी मूर्ख संगति नहीं चाहता। रत्ननिर्मित आभरण त्याग करके ऐसा कौन मूढ़ होगा जो लौहमय भूषण धारण करना चाहे? इस त्रैलोक्य में ऐसा मूर्ख कौन है, जो तुम जैसी नारी का आलिंगन करके अन्य नारी की कामना करेगा? कौन बुद्धिमान् गंगा का त्याग करके अन्य नदी में स्नान की अभिलाषा करेगा?॥२६-२७॥

१. कुतो वागमनं तव इति क्वचित् पाठः।
२. मया दृष्टापि सुचिरमप्रियेण तथाधुनेति क्वचित् पाठः।

इन्द्रियैश्चेन्द्रियरतिं वर्धयन्तीं पदे पदे। वरं प्रार्थयितारश्च प्राणिनश्च सुखार्थिनः॥२८॥

इस संसार में अपने सौन्दर्य के कारण तुम सुखकामी लोगों की इन्द्रियसुख के प्रति इच्छावृद्धि करने वाली नारी हो।।२८।।

इत्येवमुक्त्वा मघवानवरुह्य गजेश्वरात्। कामयुक्तश्च पुरतस्तस्थौ तस्याश्च नारद॥२९॥
श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाशृङ्गारलोलुपा। जहासाऽऽनम्रवदना पुलकाञ्चितविग्रहा॥३०॥
स्मेराननकटाक्षेण स्तनोर्वोर्दर्शनेन च। [1]नर्मोक्तिगर्भवाक्येन चाहरत्तस्य चेतनाम्॥३१॥
मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम्। पुरुषायत्तबीजं च प्रवक्तुमुपचक्रमे॥३२॥

हे नारद! यह कह कर महेन्द्र गजराज से नीचे उतरे वे कामभावना युक्त होकर रम्भा के समक्ष खड़े हो गये। महान् शृंगार क्रीड़ा की लोलुप रम्भा इन्द्र का वचन सुन कर नतशिर होकर मुस्कराने लगी। उसका शरीर पुलकित हो उठा। उसने अपनी मुस्कानयुक्त कटाक्षपात से तथा अपने स्तनों तथा उरु भाग को झलकाते हुए, परिहास युक्त वाक्यों से इन्द्र के चित्त को वशीभूत कर लिया। तदनन्तर अल्प परन्तु सारयुक्त सुमधुर, स्निग्ध एवं कोमल प्रिय साथ ही मनुष्यों को अपने अधीन करने वाले वाक्य कहने लगी–।।२९-३२।।

रम्भोवाच

यास्यामि वाञ्छितं यत्र प्रश्नेन तव किं फलम्।
नाहं संतोषजननी धूर्तानां दुष्टमित्रता॥३३॥

यथा मधुकरो लोभात्सर्वपुष्पासवं लभेत्। स्वादु यत्रातिरिक्तं स तत्र तिष्ठति संततम्॥३४॥

रम्भा कहती है–मेरी जहां जाने की अभिलाषा है, वहीं जा रही हूं। इसे आप जानना चाहते हैं, इसका क्या कारण है? क्या फल है? मैं मिथ्या कहने वाले धूर्त दुष्टों से मित्रता नहीं कर सकती। अतः आपको सन्तोष प्रदान नहीं कर सकती। धूर्त्त से मित्रता उचित कार्य नहीं है। भ्रमर घूम-घूम कर लोभ द्वारा अनेक-अनेक पुष्पों का रस प्रदान करता है, तथापि जहां कहीं अधिक रसास्वाद मिलता है, वहीं सतत् स्थिर ही रह जाता है।।३३-३४।।

तथैव कामुकी लोके भ्रमेद्भ्रमरवत्सदा। चाञ्चल्यात्स हि कास्वेव वायुवद्रसमाहरेत्॥३५॥

सुपुमानङ्गवत्स्त्रीणां यथा शाखाश्च शाखिषु।
कामुकी काकवल्लोलः फलं भुक्त्वा प्रयाति च॥३६॥

स्वकार्यमुद्धरेद्यावत्तावद्वासप्रयोजनम्। स्थितिः कार्यानुरोधेन यथा काष्ठे हुताशनः॥३७॥

यावत्तडागे तोयानि तावद्यादांसि तेषु च।
शोषारम्भे च तोयानि (नां) यान्ति स्थानान्तरं पुनः॥३८॥

१. क. कामाग्न्याहुतिवा०।

कामुकी स्त्री भ्रमर के समान सर्वदा भ्रमण करती है। जिस प्रकार से वायु एक ही स्थान पर नहीं रहता, (लम्पट) स्त्री भी उसी प्रकार किसी स्थान पर आबद्ध नहीं रहती। वह जहां रस प्राप्त होते देखती है, वही रस पान करती है। जिस प्रकार वृक्ष का अंग है शाखा, तदनुरूप रमणीगण का अंग है उत्तम पुरुष। जैसे कौआ वृक्ष के पक्व फल ही खाता है तदनन्तर उड़ जाता है, उस वृक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, लम्पट पुरुष के साथ स्त्री भी ऐसा ही व्यवहार करती है। जब तक उस रमणी का उससे कार्य सिद्ध नहीं हो जाता, तभी तक उसके पास निवास करती है। काष्ठ में अग्नि की स्थिति तभी तक है, जब तक कि काष्ठ जल कर समाप्त नहीं हो जाता। वहां अग्नि की स्थिति दहन कार्य सम्पन्न होने तक ही रहती है। तालाब में जल जब तक है, तभी तक तालाब पर आश्रित जन्तु वहां रहते हैं। उसके शुष्क होते ही सभी अन्यत्र गमन करते हैं।।३५-३८।।

त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनां च वाञ्छितः।
पुमांसं रसिकं शश्वद्वाञ्छन्ति रसिकाः सुखात्।।३९।।
युवानं रसिकं शान्तं सुवेषं सुन्दरं प्रियम्।
गुणिनं धनिनं स्वच्छं कान्तमिच्छति कामिनी।।४०।।
दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिवियोजितम्।
अदातारमदिज्ञं च नैव वाञ्छन्ति योषितः।।४१।।

आप देवगण के अधिपति हैं। आप तो स्त्रियों के लिये परम वांछित हैं। रसिका नारी सदैव रसिक पुरुष की ही अभिलाषा करती है। कामिनी नारीगण युवा, रसिक, शान्त, उत्तम वेषधारी, सुन्दर, प्रिय, गुणी, धनी तथा स्वच्छ पुरुष की कामना करती हैं। वे रोगी, दुःशील, वृद्ध, कामशक्ति रहित, अदाता तथा मूर्ख व्यक्ति की कामना कदापि नहीं करतीं।।३९-४१।।

का मूढा न च वाञ्छन्ति त्वामेव गुणसागरम्।
तवाऽऽज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथा सुखम्।।४२।।

कौन-सी नारी ऐसी मूर्खा होगी जो आपकी कामना न करे। इस समय मैं आपकी आज्ञाकारिणी दासी ही हूं। मुझे अपनी इच्छानुरूप सेवा लीजिये।।४२।।

इत्युक्त्वा सस्मिता सा च तं पपौ वक्रचक्षुषा।
कामाग्निदग्धा विगलल्लज्जा तस्थौ समीपतः।।४३।।

यह कह कर रम्भा ने मुस्कराते हुए कटाक्ष से इन्द्र की ओर देखा। वह कामाग्नि से दग्ध, लज्जा रहित होकर इन्द्र के पास गई।।४३।।

ज्ञात्वा भावं स्मरार्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः।
गृहीत्वा तां पुष्पतल्पे विजहार तया सह।।४४।।

चुचुम्ब रहसि प्रौढां नग्नां च सुभगां वराम्।
पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च सुदत्या चुम्बितस्तया॥४५॥

कामशास्त्र में निपुण इन्द्र उस कामार्त्ता रम्भा का मनोभाव जान कर उसे पकड़ कर पुष्पशय्या पर ले गये तथा वे रम्भा के साथ विहार करने लगे। वहां के एकान्त स्थल में वे उस वस्त्र रहित श्रेष्ठ सुभगा नारी का जो पके बिम्ब फल के समान अधरोष्ठ वाली थी तथा यौवन में प्रौढ़ा थी, इन्द्र ने उसका चुम्बन लिया। वह उत्तम दन्तपंक्ति वाली रम्भा भी इन्द्र का चुम्बन लेने लगी!॥४४-४५॥

नानाप्रकारशृङ्गारान्विपरीतादिकान्मुने। चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्तिमानिव॥४६॥
तौ कामाहितचित्तौ नो बुबुधाते दिवानिशम्।
अन्योन्यगतचित्तौ च कामातौ ज्ञानवर्जितौ॥४७॥
स च कृत्वा स्थले क्रीडां तया सह सुरेश्वरः। ययौ जलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम्॥४८॥
स चकार जलक्रीडां तया सह मुदा क्षणम्।
जलात्स्थले स्थलात्तोये विजहार पुनः पुनः॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुङ्गवः।
सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छङ्करालयम्॥५०॥
तं च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं च देवेन्द्रः स्तब्धमानसः।
ननामाऽऽगत्य सहसा ददौ तस्मै स चाऽऽशिषः॥५१॥

हे मुनिवर! वे विपरीत रति आदि अनेक रति क्रीड़ा से तथा शृंगार रस के आचरण से अत्यन्त सुखी हो गये। वे उस समय साक्षात् शृंगारमूर्त्ति रूप द्योतित होने लगे। वे इतने कामार्त्त थे कि उनको दिन-रात तक का भान नहीं था। वे एक-दूसरे के प्रति अन्योन्य चित्त थे। अन्ततः इस प्रकार रंभा के साथ स्थल (शय्या) पर क्रीड़ा करके वे दोनों जलविहारार्थ पुष्पभद्रा नदी तट पर गये। वे बारंबार कभी जल पर तो कभी स्थल पर विहार क्रीड़ा करने लगे। इसी बीच वैकुण्ठलोक से शिवलोक जाते समय उस स्थान पर दुर्वासा मुनि अपने शिष्यगण के साथ पहुंच गये। उन मुनिप्रवर को देखते ही इन्द्र स्तब्ध हो उठे तथा सहसा मुनि के समक्ष आकर इन्द्र ने उनको प्रणाम किया। तदनन्तर मुनि ने उनको आशीर्वाद भी प्रदान किया॥४६-५१॥

पारिजातप्रसूनं यद्दत्तं नारायणेन वै। तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना॥५२॥
दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाच कृपानिधिः।
माहात्म्यं तस्य यत्किंचिदपूर्वं मुनिसत्तमः॥५३॥

उस समय महात्मा मुनीन्द्र दुर्वासा ने इन्द्र को वह पारिजात पुष्प दिया जो उनको नारायण से प्राप्त हो गया था। उन महाभाग्यवान् एवं कृपासागर महामुनि ने वह पुष्प इन्द्र को देते समय उस पुष्प की अपूर्व महिमा का भी वर्णन किया॥५२-५३॥

दुर्वासा उवाच

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम्। मूर्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः॥५४॥
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत्। तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदाऽपि तम्॥५५॥
ज्ञानेन तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च। सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः॥५६॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहङ्कारेण पामरः।
नैवेद्यं च हरेरेव स भ्रष्टश्रीः स्वजातिभिः॥५७॥

महर्षि दुर्वासा कहते हैं–यह पुष्प सर्वविघ्ननाशक है। इसे नारायण को अर्पित किया गया था। जिसके भी मस्तक पर यह पुष्प रहेगा, उसे सर्वत्र जयलाभ होगा। वह देवताओं का अग्रणी तथा सर्वपूज्य होगा। महालक्ष्मी देवी सदा छाया जैसी उसके पास रहेंगी, वे कदापि उससे दूर नहीं रहेंगी। उसका त्याग नहीं करेंगी। वह व्यक्ति ज्ञान-तेज-बुद्धि-बल में देवगण से भी श्रेष्ठ रहेगा। वह श्रीमान् हरि की तरह पराक्रमी होगा। जो पापी अहंकार के कारण हरि को निवेदित यह पुष्प भक्ति के साथ मस्तक पर धारण नहीं करेगा, वह अपने जाति के गणों के सहित श्रीभ्रष्ट भी हो जायेगा।।५४-५७।।

इत्युक्त्वा शङ्करांशश्च ह्यगमच्छङ्करालयम्। तत्स रम्भान्तिके तिष्ठञ्चिक्षेप गजमस्तके॥५८॥
तेन भ्रष्टश्रियं दृष्ट्वा सा जगाम सुरालयम्। पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाऽधमा॥५९॥
देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली। प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा॥६०॥
तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तः संबुभुजे बलात्।
साऽतो बभूव वशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी॥६१॥
तयोर्बभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने। हरिस्तन्मस्तकं छित्त्वा योजयामास बालके॥६२॥

यह कह कर शंकर के अंशरूप महर्षि दुर्वासा शिवलोक चले गये। तभी इन्द्र ने रम्भा के निकट विहारादि रत रहते उस पुष्प को अपने मस्तक पर न रख कर गजमस्तक पर फेंक दिया! इससे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हो गये और उनको श्रीभ्रष्ट देख कर रम्भा जो व्यभिचारिणी, चंचल तथा अधम नारी थी, उनको त्याग कर स्वर्ग चली गईं। देवराज इन्द्र को उनके महाबली हाथी तक ने त्याग दिया। उसने पुष्प से प्राप्त तेज द्वारा इन्द्र को नीचे गिरा दिया तथा वह महारण्य में प्रविष्ट हो गया। वह मदमत्त होकर उस महावन में एक हथिनी का बलात् उपभोग करने लगा। वह हथिनी भी सुखार्थिनी होने के कारण उस गजराज के वशीभूत हो गयी। उस वन में उनको कई सन्तान भी हो गईं। उस समय श्रीहरि वहां आये तथा उस हाथी का मस्तक काट कर उसे गणेश के शिर की जगह योजित कर दिया।।५८-६२।।

इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतमिच्छसि।
गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम्॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा०गणपतिख० गजास्यायोजनहेतु कथनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

हे वत्स! मैंने इस गजशिर योजन का कारण कहा। इसका श्रवण पापनाशक है। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो, वह कहो।।६३।।

विंश अध्याय समाप्त

❖❖❖

एकविंशोऽध्यायः

इन्द्र को पुनः लक्ष्मीलाभ

नारद उवाच

ते देवा ब्रह्मशापेन निश्रीःका केन वा प्रभो।
वभूवुस्तद्रहस्यञ्च गोपनीयं सुदुर्लभम्॥१॥
कथं वा प्रापूरते तां कमलां जगतां प्रसूम्।
किं चकार महेन्द्रश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! ये देवता ब्रह्मशाप से क्यों श्रीभ्रष्ट हो गये? उन्होंने कैसे जगत्प्रसवा कमला (लक्ष्मी) को पुनः प्राप्त किया? तब इन्द्र ने क्या कहा? यह सभी दुर्लभ रहस्य प्रकट करने की कृपा करिये।।१-२।।

नारायण उवाच

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः।
भ्रष्ट श्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम्॥३॥
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने।
दैन्यग्रस्तां बन्धुहीनां घोरवर्गैः समाकुलम्॥४॥
सर्वं श्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम मन्दिरं गुरोः।
तेन देवगणैः सार्द्धं जगाम् ब्रह्मणः सभाम्॥५॥
गत्वा न नाम तं शक्रः सुरैः सार्द्धं यथा गुरुम्।
तुष्टाव वेदविधिना स्तोत्रेण भक्तिसंयुतः।
प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्।
श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रवक्त्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—मन्दबुद्धि इन्द्र श्रीभ्रष्ट होकर अपने वाहन गजेन्द्र तथा रम्भा द्वारा परित्यक्त हो गये। तब वे दीनता के साथ अमरावती गये। हे मुनिवर! उन निरानन्द इन्द्र ने अमरावती जाकर देखा कि समस्त पुरी आनन्द रहित है। वह शत्रुओं से भरी है। इन्द्र अब दीनभावयुक्त तथा बन्धु रहित हो गये। तदनन्तर उन्होंने दूत से सभी वृत्तान्त सुन कर गुरु के पास जाकर उनको तथा अन्य देवगण को साथ लिया। इसके पश्चात् इन्द्र सबके साथ ब्रह्मा की सभा में गये। वहां सबने गुरुवत् ब्रह्मा को प्रणाम करके उनकी वेदविहित स्तुति भक्ति से किया। वहां पर गुरु बृहस्पति ने प्रजापति ब्रह्मदेव से समस्त वृत्तान्त निवेदित किया। तदनन्तर देवराज इन्द्र का समस्त वृत्तान्त सुन कर ब्रह्मा ने मुख नीचे करके इन्द्र से कहा–।।३-६।।

ब्रह्मोवाच

मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद् राजन् श्रिया ज्वलन्।
लक्ष्मीसमाशचीभर्त्ता परस्त्रीलोलुपः सदा।।७।।
गौतमस्याभिशापेन भगाङ्गः सुरसंसदि।
पुनर्लज्जविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः।।८।।
यः परस्त्रीषु निरतस्तस्य श्रीर्वा कुतो यशः।
स य निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत् सर्व सभासु च।।९।।
नैवेद्यं श्रीहरेरेव दत्तं दुर्वाससा च ते।
गजमूर्द्धि त्वया न्यस्तं रम्भया हृतचेतसा।।१०।।
क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रियो हतः।
पद्मा त्यक्ता यन्निमित्ताद्गता त्वत्तःक्षणेन सा।।११।।
वेश्या स श्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला।
नवं नवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम्।।१२।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेन्द्र! हे राजन्! तुम मेरे प्रपौत्र हो। तुमने सदा श्री का आश्रय लेकर उज्ज्वला दीप्ति धारण किया था। तुम लक्ष्मी जैसी शची के पति हो, तब भी तुमको परायी नारी का लोभ हो गया। इससे पहले तुम गौतम के अभिशाप के कारण सुरसमाज में भगयुक्त अंगों वाले हो गये थे। पुनः तुमने लज्जाविहीन होकर परस्त्रीरमण किया है। जो परस्त्रीरमण करता है, उसकी श्री तथा यश नष्ट हो जाता है। ऐसा मनुष्य तो पापयुक्त होकर निरन्तर सभी सभाओं में निन्दित होता है। दुर्वासा ने तुमको श्रीहरि को निवेदित पारिजात पुष्प दिया था। तुम्हारा मन तो रम्भा में आसक्त था, अतः तुमने वह पुष्प ऐरावत के शिर पर फेंक दिया। अब सर्वसाधारण की भोग्या रंभा कहां है? तुम श्रीहत् होकर कहां पड़े हो? वेश्याएं श्रीयुक्त धनी पुरुष की कामना करती हैं। उधर लक्ष्मी ने उस पाप के कारण एक ही क्षण में तुमको त्याग दिया। तभी रंभा भी तुम्हारे पास से प्रस्थान कर गई। अतः वेश्या निर्धन की कदापि

कामना नहीं करती। वह पुराने व्यक्ति को छोड़ कर नित्य नये व्यक्ति की कामना करती है। हे वत्स! जो होनी थी, वह हो गई। अदृष्ट खण्डन कोई नहीं कर सकता।।७-१२।।

यद्गतं तद्गतं वत्स निषेकं न निवर्त्तते।
भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे।।१३।।
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टुः स्तोत्रञ्च कवचं ददौः। नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः।।१४।।

"हे वत्स! जो हो गया, वह समय वापस नहीं आ सकता। अब तुम पद्मा की प्राप्ति हेतु भक्तिभाव से नारायण का भजन करो।" यह कह कर जगत्स्रष्टा ने जो स्वयं नारायण-परायण हैं, नारायण का स्तव, कवच तथा मन्त्र इन्द्र को प्रदान किया।।१३-१४।।

स तैः सार्द्धञ्च गुरुणा जगाम मन्त्रभीप्सितम्।
गृहीत्वा कवचं ते न तुष्टाव पुष्करे हरिम्।।१५।।
वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे। सिषवे कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतव।।१६।।

देवराज इन्द्र ने देवगण तथा गुरु के साथ वांछित मन्त्र तथा कवच लेकर पुष्कर तीर्थ जाकर वहां हरि की स्तुति में लीन हो गये। उन्होंने १ वर्ष तक भारत नामक शुभ पुण्यतीर्थ में निराहार रह कर श्री प्राप्ति हेतु कमलाकान्त की सेवा किया।।१५-१६।।

आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितञ्च वरं ददौ।
लक्ष्मीस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमैश्वर्यविवर्द्धनम्।।१७।।
दत्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च।
गृहीत्वाकवचं जप्त्वा प्राप पद्मालयां मुने।।१८।।
स्ववैरिणं विजित्वा च स लालाभमरावतीम्।
प्रत्येकञ्च सुराः सर्वे स्वालये प्रापुरीप्सितम्।।१९।।

इति श्री ब्रह्म०महा० गणपति खण्ड नारदना: शक्रलक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः।।२०।।

तदनन्तर श्रीहरि ने आविर्भूत होकर इन्द्र को वांछित वर दिया तथा ऐश्वर्य वृद्धि हेतु लक्ष्मीस्तव, कवच तथा मन्त्र प्रदान किया। तदनन्तर प्रभु वैकुण्ठ चले गये। हे मुनिवर! दैवराज ने भी क्षीरसागर जाकर कवच धारण किया तथा वहां लक्ष्मी का स्तव करके श्री प्राप्त किया। तब उन्होंने सभी शत्रुओं को जीत कर पुनः अमरावती पुरी को प्राप्त किया था। उस समय सभी देवताओं ने अपने-अपने इच्छित गृह भी प्राप्त किया था।।१७-१९।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

हरि से इन्द्र को महालक्ष्मी स्तव-कवचादि की प्राप्ति

नारद उवाच

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ।
महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे तपोधन! लक्ष्मीपति हरि ने आविर्भूत होकर इन्द्र को कौन-सा स्तोत्र-कवच दिया था? कृपया कहिये॥१॥

नारायण उवाच

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः। आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम्॥२॥
तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा॥३॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे। हितं सत्यं च सारं च परिणामसुखावहम्॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे तपोधन! लक्ष्मीपति हरि के आविर्भूत होने के पश्चात् सुरेश्वर इन्द्र ने तप करके जहां विश्राम किया था, वहीं हृषीकेश ने उनको जब दुःखी देखा, तब वे स्वयं वहां आविर्भूत हो गये। उन्होंने इन्द्र से कहा कि तुम मनोभिलषित वर मांगो। तब देवेन्द्र ने भगवान् हरि से लक्ष्मीरूप वर मांगा। इससे ईश्वर ने हर्षित होकर उनको वही वर प्रदान किया। तदनन्तर वर प्रदान करने के उपरान्त हृषीकेश ने इन्द्र से हितप्रद, सत्य, सारयुक्त तथा परिणाम में सुखद वाक्य कहा—॥२-४॥

मधुसूदन उवाच

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम्॥५॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं विष्टपे च जलप्लुते। यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः॥६॥
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः॥७॥

पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया वरा।
सिद्ध्यैश्वर्यसुखेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः॥८॥
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी [1]भवेत्।
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया॥९॥
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचने।
केशन्केशवकान्ता च कपालं कमलालया॥१०॥

---

१. क. सुखी।

जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं संपत्प्रदा सदा।
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु॥११॥

मधुसूदन कहते हैं—हे इन्द्र! समस्त दुःखनाशक, परम ऐश्वर्यदायक, समस्त शत्रु विमर्दक यह कवच ग्रहण करो। पूर्वकाल में संसार जब जलप्लावित हो गया था, तब यह कवच ब्रह्मा को मैंने दिया था। इसे धारण करने वाले विधाता जगत् में श्रेष्ठ तथा समस्त ऐश्वर्ययुक्त हो गये। मुनिगण को इससे ही ऐश्वर्य लाभ हुआ था। हे सुरेन्द्र! सर्वैश्वर्यप्रद इस कवच के ऋषि हैं विधाता ब्रह्मा। छन्दः है पंक्ति, देवता हैं स्वयं पद्मालया लक्ष्मी। सिद्धि, ऐश्वर्य तथा जय हेतु इसका विनियोग कहा गया। इसे धारण करके व्यक्ति सभी लोकों, सभी स्थानों पर विजय लाभ करता है। तुम भी यही कवच ग्रहण करो।

कवच—मेरे मस्तक की रक्षा पद्मा, कण्ठ की हरिप्रिया, नासिका की लक्ष्मी, नेत्रों की कमला, केशों की केशवकान्ता, कपाल की कमलालया, कपोलों की जगत्प्रसु, कंधे की सम्पत्प्रिया रक्षा करें। "ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा" यह सदा पृष्ठ की रक्षा करें।।५-११।।

ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु।
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च[1] ते नमः॥१२॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै[2] नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्।
ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥१३॥
ॐ श्रीं[3] महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः॥१४॥

इति ते कथितं वत्स सर्वसंपत्करं परम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥१५॥

"ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा" सदा वक्ष की रक्षा करें। "श्रीं" मेरे कंकाल की तथा मेरे बाहुद्वय की रक्षा करें। "ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः" यह सदा मेरे पैरों की रक्षा करें। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा मेरी रक्षा सब ओर करें। हे वत्स! यह मैंने सर्वसम्पत्तिप्रद परम तथा सर्वैश्वर्यप्रद अत्यन्त अद्भुत कवच कह दिया।।१२-१५।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्॥१६॥

महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य च्छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि॥१७॥

इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं स मन्दधीः।
शतलक्षप्रजापेऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥१८॥

१. क. च श्रीं न॰।
२. श्रीं क्रीं इति क्वचित् पाठः।
३. क. ह्रीं।

जो सविधि गुरु की अर्चना करके कण्ठ में अथवा दाहिनी भुजा में कवच धारण करेगा, वह सर्वत्र विजयी होगा। उसके गृह से देवी महालक्ष्मी कदापि नहीं जायेगी। लक्ष्मी उस व्यक्ति के यहां जन्म-जन्मान्तर में छाया बन कर रहती हैं। जो मन्दबुद्धि इस कवच के बिना महालक्ष्मी का जपादि करता है, उसे एक लाख बार जप करने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती।।१६-१८।।

नारायण उवाच

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रं वै षोडशाक्षरम्।
संतुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम्।।१९।।
ॐ ह्रीं[1] श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा। ददौ तस्मै च कृपया चेन्द्राय च महामुने।।२०।।
ध्यानं च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम्।
सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम्।।२१।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे मुनिवर! तदनन्तर जगन्नाथ ने जगत् के हितार्थ इन्द्र को यह कवच देने के पश्चात् १६ अक्षर का मन्त्र कृपा पूर्वक प्रदान किया। इसका ध्यान सामवेदोक्त तथा गोपनीय और दुर्लभ है। यह सिद्ध-मुनिगण को दुष्प्राप्य है तथा शीघ्र शुभ सिद्धिदायक है।।१९-२१।।

श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्।।२२।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम्। कस्तूरीबिन्दुमध्यस्थं सिन्दूरं भूषणं तथा।।२३।।
अमूल्यरत्नरचितकुण्डलोज्ज्वलभूषणम्। बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम्।।२४।।
सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थां च सुमनोहराम्।
शान्तां च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम्।।२५।।

ध्यान–देवी लक्ष्मी श्वेत चम्पक की प्रभा से युक्त सैकड़ों चन्द्र की प्रभा वाली हैं। इन्होंने अग्निशुद्ध वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण किया है। इनका आनन तनिक मन्द मुस्कान से युक्त है। ये देवी भक्तों के प्रति अनुग्रहकारिणी हैं। देवी ने कस्तूरी की विन्दी के मध्य में सिन्दूर लगाया है, जो आभूषण स्वरूप प्रतीत हो रहा है। इन देवी पर मालती का जूड़ा माला से शोभायमान है। ये सहस्रदल कमल के ऊपर सुखासीन हैं। ये देवी स्वस्थ (आत्मस्थ) तथा मनोहर हैं। ये श्रीहरि की कान्ता शान्त जगत्माता हैं। मैं इनका भक्ति के साथ भजन कर रहा हूं।।२२-२५।।

ध्यानेनानेन देवेन्द्र ध्यात्वा लक्ष्मीं मनोहराम्।
भक्त्या संपूज्य तस्यै च चोपचारांस्तु षोडश।।२६।।
स्तुत्वाऽनेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव।
नत्वा वरं गृहीत्वा च लभिष्यसि च निर्वृतिम्।।२७।।

१. क. श्री महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वा०।

स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम्।
कथयामि सुगोप्यं च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।२८।।

हे देवेन्द्र! इस प्रकार इस विधि से मनोहरा लक्ष्मी का भजन करके उनका पूजन भक्तिभाव से षोडशोपचार से करे। इसी स्तोत्र से उनकी स्तुति करे। हे इन्द्र! तदनन्तर उनको प्रणाम करने से वरलाभ होगा। इससे निर्वृत्तिरूप सुख लाभ होगा। हे देवेन्द्र! अब तुम लक्ष्मी का परम सुखप्रद स्तोत्र सुनो। यह महालक्ष्मी का स्तव गोपनीय तथा त्रैलोक्य दुर्लभ है।।२६-२८।।

नारायण उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न क्षमाः[१] स्तोतुमीश्वराः।
बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम्।
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः।।२९।।
स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम्।
स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किंदाऽहं जगदम्बिके।।३०।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं-(स्तव यह है)-हे देवी! तुम्हारा मैं स्तव करना चाहता हूं, तथापि स्तव करने में अक्षम हूं। तुम ईश्वरी हो, बुद्धि से अगोचरा, सूक्ष्मा, तेजःस्वरूपा, नित्या तथा अत्यन्त अनिर्वचनीय हो। तुम्हारा वर्णन कौन कर सकता है। हे जगदम्बिके! तुम स्वेच्छामयी, आकार रहिता होकर भी भक्त के प्रति अनुग्रहार्थ ही देह धारण करती हो। तुम वाक्य तथा मन से अगोचर हो, ऐसी तुम्हारी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूं?।।२९-३०।।

परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे। [२]सर्वसस्याधिदेवीं च सर्वासामपि संपदाम्।।३१।।
योगिनां[३] चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा।
वेदानां वै वेदविदां जननीं वर्णयामि किम्।।३२।।
यया विना जगत्सर्वमबीजं[४] निष्फलं ध्रुवम्।
यथा स्तनंधयानां च विना मात्रा सुखं भवेत्।।३३।।
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान्।
वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः।।३४।।

तुम चारों वेद से परे, संसार-सागर से पार होने में कारणरूपा हो। तुम सभी फसल की अधीश्वरी तथा समस्त सम्पदा की भी अधीश्वरी हो। तुम योगियों, योगसमूह, ज्ञान, ज्ञानियों, सभी वेदों

१. क. क्षमः स्तोतुमीश्वरीम्।
२. क. सर्वेशस्या०।
३. क. गोपीनां चैव गोपानां ज्ञा०।
४. क. भवस्तु।

एवं वेदज्ञों की माता हो। तुम्हारा वर्णन मैं कैसे कर सकता हूं? जैसे स्तनपायी शिशु के लिये जननी के अतिरिक्त सभी वस्तु व्यर्थ है, उसी प्रकार तुम्हारे बिना समस्त जगत् तथा वस्तुसमूह अवस्तु लगता है। आपके स्थित रहने पर सब कुछ उचित वस्तु तथा उपयोगी लगती है। तुम जगन्माता हो। प्रसन्न हो जाओ। हम सब अत्यन्त दुःखी हैं। हमारी रक्षा करो। हम तुम्हारे चरण-कमल की शरण में आये हैं।।३१-३४।।

नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः। ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः।।३५।।
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः। सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः।।३६।।
कुपुत्राः कुत्रचित्सन्ति न कुत्रापि कुमातरः।
कुत्र माता पुत्रदोषं तं विहाय च गच्छति।।३७।।

आप शक्तिस्वरूपा तथा जगन्माता हैं। आप ज्ञानप्रदा, बुद्धिप्रदा, सर्वप्रदा हैं। आपको नमस्कार करता हूं! आप हरिभक्तिदायिनी तथा मुक्तिप्रदा हैं। आप सर्वज्ञ, सर्वप्रदा महालक्ष्मी को नमस्कार! पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाये, तथापि माता कदापि कुमाता नहीं हो सकती। जो पुत्र दोषी है, उसे भी क्या माता त्याग कर कहीं जाती हैं।।३५-३७।।

स्तनंधयेभ्य इव मे हे मातर्देहि दर्शनम्। कृपां कुरु कृपासिन्धो त्वमस्मान्भक्तवत्सले।।३८।।

हे माता! मैं स्तनपायी शिशु के समान हूं, मुझे दर्शन देने की कृपा करें। हे भक्तवत्सले! कृपासिन्धु मुझ पर कृपा करिये।।३८।।

इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम्। सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं संपदः प्रदम्।।३९।।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत्। महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन।।४०।।
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत। देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया।।४१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० लक्ष्मीस्तवकवचपूजाकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।२२।।

हे वत्स! मैंने तुमको लक्ष्मी का यह शुभावह प्रसंग सुनाया। यह सुखद, मोक्षप्रद, सारमय, महापुण्यमय, शुभप्रद तथा सम्पत्तिप्रदाता है। इसे पूजाकाल में जो पढता है, महालक्ष्मी उसके यहां से कभी नहीं जातीं। यह कह कर श्रीहरि वहीं अन्तर्हित् हो गये। तदनन्तर देवराज भी उनकी आज्ञा लेकर देवगण के साथ क्षीरसागर चले गये।।३९-४१।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

लक्ष्मी-ब्राह्मण विरोधात्मक लक्ष्मी चरित्र वर्णन

नारायण उवाच

इन्द्रश्च गुरुणा सार्धं सुरैः संहृष्टमानसः। जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः॥१॥

कवचं च गले बद्ध्वा सद्रत्नगुटिकान्वितम्।
मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–तब इन्द्र ने भी प्रसन्न अन्तःकरण से उस रत्नगुटिका को ताबीज में रख कर गले में बांध लिया तथा वे उस मनोहर स्तव का स्मरण मन ही मन करते हुए गुरु एवं देवगण सहित क्षीरसमुद्र के तट पर लक्ष्मी को प्राप्त करने हेतु गये॥१-२॥

ते सर्वे भक्तियुक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम्। साश्रुनेत्राश्च दीनाश्च भक्तिनम्रात्मकंधराः॥३॥
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा सद्यः साक्षाद्बभूव ह। सहस्रदलपद्मस्था शतचन्द्रसमप्रभा॥४॥
जगद्व्याप्तं सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने। तानुवाच जगद्धात्री हितं सारं यथोचितम्॥५॥

सभी देवगण सजल नेत्र से अतिशय दीनता पूर्वक भक्तिभाव से अपना शिर नत करके तथा अपने कन्धे झुका कर कमलालया लक्ष्मी का स्तव करने लगे। हे मुनिवर! जगन्माता की प्रभा सैकड़ों चन्द्रमा के समान समस्त जगत् को व्याप्त करके स्थित थी। उन जगद्धात्री महालक्ष्मी ने उनका स्तव सुन कर वहां आकर उन लोगों से यथोचित साररूप हितप्रद वाक्य कहा–॥३-५॥

महालक्ष्मीरुवाच

वत्सा नेच्छामि वो गेहान्गन्तुं नैवं क्षमाऽधुना।
भ्रष्टान्दृष्ट्वा ब्रह्मशापाद्बिभेमि ब्रह्मशापतः॥६॥

श्री महालक्ष्मी कहती हैं–हे वत्स! तुम ब्राह्मण के शाप से श्री भ्रष्ट हो। मैं तुम्हारे गृह जाने की इच्छा नहीं करती। ब्राह्मण शापग्रस्त लोगों से सम्पर्क में मुझे भय लगता है॥६॥

प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत्पुत्राधिकं प्रियाः।
विप्रदत्तं च यत्किंचिदुपजीव्यं सदैव च॥७॥
विप्रा ब्रुवन्तु मां तुष्टा यास्यामि भवदाज्ञया।
न मे पूजां ध्रुवं कर्तुं क्षमास्ते च तपस्विनः॥८॥

गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिक्षुभिर्वैष्णवैस्तथा। [1]यदभाव्यं भवेद्दैवात्ते शप्ताः सन्ति तैः सदा॥९॥

---

१. ख. यद्यभाव्यं।

मुझे तो ब्राह्मणगण अपने प्राण तथा सन्तान से भी अधिक प्रिय लगते हैं। ब्राह्मण जो कुछ हमें प्रदान करते हैं, उसी से हमारा जीवन चलता है। जब ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर तुमको आज्ञा प्रदान करें, तभी मैं चल सकूंगी। ये तपस्वी ब्राह्मण अवश्य मुझे आज्ञा दे सकते हैं। जिस व्यक्ति का दुर्भाग्य उपस्थित होता है, वही गुरु, ब्राह्मण, देवता, भिक्षु तथा वैष्णवों से निरन्तर अभिशप्त होता है।।७-९।।

नारायणश्च भगवान्बिभेति ब्रह्मशापतः। सर्पबीजं च भगवान्सर्वेशश्च सनातनः।।१०।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ब्राह्मणा हृष्टमानसाः।
आजग्मुः सस्मिताः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा।।११।।

अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च [1]भृगुरेव च। पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिश्चात्रिरेव च।।१२।।

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान्साक्षान्नारायणात्मकः।।१३।।

कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
दुर्वासाः कश्यपोऽगस्त्यो गौतमः कण्व एव च।।१४।।
और्वः कात्यायनश्चैव कणादः पाणिनिस्तथा।
मार्कण्डेयो लोमशश्च वसिष्ठो भगवान्स्वयम्।।१५।।

ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम्। देवाश्चारण्यनैवेद्यैरुपहारेण भक्तितः।।१६।।

स्तुत्वा मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा।
आगच्छ देवभवनं मर्त्यं च जगदम्बिके।।१७।।

"सबके कारण, सर्वेश्वर, सनातन भगवान् नारायण भी ब्रह्मशाप से भय करते हैं।" हे ब्रह्मन्! इसी समय ब्रह्मतेज से उज्ज्वल ब्राह्मणगण प्रसन्न मन से हंसते हुए वहां आये। अंगीरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह, पुलत्स्य, मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, साक्षात् नारायण रूपी भगवान् कपिल, आसुरि, वोढु, पंचशिख, दुर्वासा, कश्यप, अगत्स्य, गौतम, कर्ण, हम दोनों भाई अर्थात् नर-नारायण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, मार्कण्डेय, लोमश, स्वयं वसिष्ठदेव तथा अन्य ब्राह्मणों ने वहां आकर नाना द्रव्य से भगवती लक्ष्मी की पूजा किया। उस समय देवगण ने भी अन्य नैवेद्यादि उनको भक्तिभाव से प्रदान किया। उस समय मुनीन्द्रगण ने भक्तिभाव से लक्ष्मी की आराधना किया। तदनन्तर मुनिगण ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"हे जगदम्बिके! तुम देवों के तथा मनुष्यों के गृह में आने की कृपा करो"।।१०-१७।।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः। परितुष्टा गामुकी च निर्भया ब्राह्मणाज्ञया।।१८।।

उनका निवेदन सुन कर जगत्जननी महालक्ष्मी ने ब्राह्मणों की आज्ञा से भय रहित तथा प्रसन्न होकर भूमण्डल में आने हेतु ब्राह्मणों से कहा—।।१८।।

---

१. क. ०गुनन्दनः।

महालक्ष्मीरुवाच

गृहान्यास्यामि देवानां युष्माकं चाऽऽज्ञया द्विजाः।
येषां गेहं न गच्छामि शृणुध्वं भारतेषु च॥१९॥
स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्।
गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्॥२०॥
यं यं रुष्टो गुरुर्देवो माता तातश्च बान्धवाः।
अतिथिः पितुलोकश्च यामि तस्य न मन्दिरम्॥२१॥
मिथ्यावादी च यः [1]शश्वदनध्यायी च यः सदा।
सत्त्वहीनश्च दुःशीलो न गेहं तस्य याम्यहम्॥२२॥

श्री महालक्ष्मी कहती हैं—मैं ब्राह्मणों की अनुमति लेकर निर्भयता से देवगण के गृह जा रही हूं, तथापि हे ब्राह्मणों! भारत में मेरा आगमन जिनके यहां होगा, वह सुनें। मैं सुनीतिज्ञ गृहस्थों तथा राजाओं के गृह में स्थिरता से रह कर उनका पुत्रवत् पालन करूंगी। गुरु, देवता, माता, पिता, बन्धु, अतिथि तथा पितर जिसके प्रति रुष्ट रहते हैं, मैं उनके यहां आगमन नहीं करूंगी। जो मिथ्यावादी है, जो कहता है कि ईश्वर नहीं है, जिनमें सत्वगुण नहीं है, जो दुःशील है, उसके गृह में मेरा आगमन नहीं होगा।।१९-२२।।

सत्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः।
विश्वासघ्नः कृतघ्नो यो यामि तस्य न मन्दिरम्॥२३॥
चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी।
ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम्॥२४॥
दीक्षाहीनश्च शोकार्तो मन्दधीः स्त्रीजितः सदा।
न याम्यपि कदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयोः॥२५॥

जो सत्य से रहित, धरोहर हड़पने वाले, झूठी गवाही देने वाले, विश्वासघातक, कृतघ्न हैं, उनके यहां मैं नहीं जाती हूं। जो चिन्तातुर, भयभीत, शत्रुग्रस्त तथा अत्यन्त पापी है, ऋणग्रस्त, अत्यन्त कंजूस है, दीक्षा रहित, शोकाकुल, मन्दबुद्धि, स्त्री से जीता हुआ तथा जो व्यभिचारिणी के पति-पुत्र हैं, मैं उनके यहां कदापि नहीं जाती!।।२३-२५।।

पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं यो भुङ्क्ते कामदः सदा।
शूद्रान्नभोजी तद्याजी तद्गेहं नैव याम्यहम्॥२६॥
यो दुर्वाक्कलहाविष्टः कलिः शश्वद्यदालये।
स्त्री प्रधाना गृहे यस्य यामि तस्य न मन्दिरम्॥२७॥

---

१. क. ०श्वन्नास्तीति वाचकः सदा।

यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्तनम्।
नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां यामि तस्य न मन्दिरम्॥२८॥
[1]कन्यान्नवेदविक्रेता नरघाती च हिंसकः। नरकागारसदृशं यामि तस्य न मन्दिरम्॥२९॥

जो दुर्वाक्य बोलने वाला, कलही है, जिसके यहां सदा कलिकाल छाया है, जो गृह स्त्री प्रधान है, मैं वहां नहीं जाती। जहां हरिपूजा तथा हरिगुणकीर्त्तन नहीं होता, जहां हरि की प्रशंसा के प्रति लोग उत्सुक नहीं रहते, जहां कन्या-वेद-अन्न विक्रय होता है, जो नरघाती तथा हिंसक है तथा जिसका गृह नरककुण्डवत् है, मैं उस गृह में नहीं जाती।।२६-२९।।

मातरं पितरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरोः[2] सुताम्।
अनाथां भगिनीं कन्यामनन्याश्रयबान्धवान्॥३०॥
कार्पण्याद्यो न पुष्णाति सञ्चयं कुरुते सदा। तद्देहान्नरकागारान्यामि तान्न मुनीश्वराः॥३१॥

वह घर नर्क समान है, जहां माता-पिता, स्त्री, गुरुपत्नी, गुरुपुत्री, अनाथ बहन, कन्या तथा आश्रय रहित बन्धुओं का कृपणता के कारण पोषण नहीं किया जाता। ऐसे गृह में मेरा आगमन ही नहीं होता।।३०-३१।।

दशनं वसनं यस्य समलं रूक्षमस्तकम्।
विकृतौ ग्रासहासौ[3] च यामि तस्य न मन्दिरम्॥३२॥
मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः।
यः शेते स्निग्धपादेन यामि तस्य न मन्दिरम्॥३३॥
अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः।
संध्याशायी दिवाशायी यामि तस्य न मन्दिरम्॥३४॥

जिसके दांत गन्दे हैं, वस्त्र अस्वच्छ हैं, मस्तक रूखा है, जिसका मुख हंसते समय तथा भोजन करते समय विकृत लगे, जो मूढ़ बुद्धि मलमूत्र त्याग कर उसे देखता है, आर्द्र पैर शयन करता है, बिना पैर धोये सो जाता है, मैं उसके गृह नहीं जाती। जो नग्न शयन करता है, जो सन्ध्या काल में सोता रहता है, जो दिन में सोता है, मैं उसके गृह नहीं जाती। अत्यन्त निद्रारत रहने वाले के यहां भी मैं नहीं जाती।।३२-३४।।

मूर्ध्नि तैलं पुरो दत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत्।
ददाति पश्चाद्गात्रे वा यामि तस्य न मन्दिरम्॥३५॥
दत्त्वा तैलं मूर्ध्नि गात्रे विण्मूत्रं समुत्सृजेत्। प्रणमेदाहरेत्पुष्पं यामि तस्य न मन्दिरम्॥३६॥

१. क. ०न्यात्मवे०।
२. ख. गुरुं सुतम्।
३. क. ग्रान०।

तृणं छिनत्ति नखरैर्नखरैर्विलिखेन्महीम्।
गात्रे पादे मलो यस्य यामि तस्य न मन्दिरम्॥३७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं सुरस्य च।
यो हरेज्ज्ञानशीलश्च[1] यामि तस्य न मन्दिरम्॥३८॥

जो पहले शिर में तैल लगा कर, तब अन्य अंग अथवा पूरे शरीर में तैल लगाते हैं, उसके गृह में मैं नहीं जाती। जो शिर में तथा शरीर में तैल मर्दनोपरान्त मल-मूत्र त्यागार्थ जाते हैं, इस स्थिति में प्रणाम करते अथवा पुष्प तोड़ते हैं, मैं उनके गृह नहीं जाती। जो नाखून से तिनका तोड़ते हैं, नाखून से भूमि पर रेखा खींचते हैं, जिनके पैर तथा शरीर मलिन हैं, जो जानबूझ कर भी अन्य प्रदत्त, स्व प्रदत्त ब्राह्मण वृत्ति अथवा देवता की सम्पत्ति का हरण करता है, मैं उसके यहां कभी नहीं जाती।।३५-३८।।

यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीः शठः।
स पापी पुण्यहीनश्च यामि तस्य न मन्दिरम्॥३९॥
मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः।
सूपकृद्देवलश्चैव यामि तस्य न मन्दिरम्॥४०॥
विवाहं धर्मकार्यं वा यो निहन्ति च कोपतः।
दिवा मैथुनकारी यो यामि तस्य न मन्दिरम्॥४१॥

जो मूढ़तावश अथवा दुष्ट प्रवृत्ति के कारण दक्षिणाहीन कर्म करता है, उस पुण्य रहित पातकी के यहां मेरा गमन कदापि नहीं होता। जो मन्त्रविद्या से जीवनोपार्जन करता है, गांव-गांव घूमता यज्ञ कराता है, चिकित्सक है, अन्न-भोजन का भण्डारी है, मन्दिर का पुजारी है, उसके गृह मैं नहीं जाती। जो क्रोध-वैर के कारण किसी के विवाह कार्य अथवा धार्मिक कार्य का नाश करता है, जो दिवाकाल में मैथुन करता है, मैं उसके घर नहीं जाती।।३९-४१।।

इत्युक्त्वा सा महालक्ष्मीरन्तर्धानं जगाम ह। ददौ दृष्टिं च देवानां गृहे मर्त्ये च नारद॥४२॥
तां प्रणम्य सुराः सर्वे मुनयश्च मुदाऽन्विताः।
प्रजग्मुः स्वालयं शीघ्रं शत्रुत्यक्तं सुहृद्युतम्॥४३॥
नेदुर्दुन्दुभ्यः स्वर्गे बभूवुः पुष्पवृष्टयः। प्रापुर्देवाः स्वराज्यं च निश्चलां कमलां मुने॥४४॥

महालक्ष्मी यह कह कर अन्तर्ध्यान हो गईं। हे नारद! तब से उन्होंने देवताओं तथा मनुष्यों के गृह पर दृष्टि निःक्षेप किया। सभी मुनि तथा देवताओं ने मुदित मन से उनको प्रणाम किया तथा अपने घरों में गये जो लक्ष्मी की दृष्टि के कारण शत्रु रहित तथा सुहृद्गण से युक्त था। हे मुनि! उस समय देवगण अपना राज्य तथा निश्चला श्री पाकर स्वर्ग में दुन्दुभि बजाने लगे और पुष्पवर्षा करने लगे।।४२-४४।।

१. क. ०नहीनश्च।

इत्येवं कथितं वत्स लक्ष्मीचरितमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्यत्वकारणलक्ष्मीब्राह्मणविरोधादि-
लक्ष्मीचरित्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

हे वत्स! मैंने तुमसे उत्तम लक्ष्मीचरित कह दिया। यह सारभूत, सुखप्रद, मोक्षप्रद है। अब क्या सुनने की इच्छा है?॥४५॥

॥त्रयोविंश अध्याय समाप्त॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

जमदग्नि कार्त्तवीर्य युद्ध तथा गणेश के एकदन्त होने का वर्णन

नारद उवाच

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव। सर्वं श्रुतं त्वत्प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम्॥१॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके। विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः॥२॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति।
सर्वेश्वरस्त्वं सर्वज्ञः कृपावान्भक्तवत्सलः॥३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नारायण! महाभाग! आप हरि के अंश से उत्पन्न हैं। आपकी कृपा से मैंने सर्वमंगलमय गणपति चरित श्रवण कर लिया। हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने शिशु के कन्धे पर दो दांतों वाला गजराज का मुख युक्त किया था। वह शिशु कालान्तर में एकदन्त कैसे हो गया? वह एक भग्न दांत कहा गया? आप सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, भक्तवत्सल हैं। कृपा पूर्वक यह व्यक्त करिये॥१-३॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः। एकदन्तस्य चरितं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥४॥

सूतजी कहते हैं—नारद का वाक्य सुन कर मन्द मुस्कान युक्त ऋषि नारायण ने एकदन्त का चरित वर्णन किया॥४॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥५॥
एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने। मृगान्निहत्य बहुलान्परिश्रान्तो बभूव सः॥६॥
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः। जमदग्न्याश्रमाभ्याशे चोपोष्यानीकसंयुतः॥७॥
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः। दत्तात्रयेण दत्तं च ह्यजपद्भक्तितो मनुम्॥८॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्। प्रीत्याऽऽदरेण मृदुलं पप्रच्छ कुशलं मुनिः॥९॥
ननाम संभ्रमाद्राजा मुनिं सूर्यसमप्रभम्। स च तस्मै ददौ प्रीत्या प्रणताय शुभाशिषः॥१०॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! सर्वमंगल समूह का भी मंगल करने वाला यह पुरातन इतिहासरूपी एकदन्त प्रसंग है। इसका वर्णन करता हूं। श्रवण करो। हे मुनिवर! एक बार कार्त्तवीर्य राजा आखेट (शिकार) के लिये गये। वहां उन्होंने अनेक मृगों का हनन किया, जिससे वे अत्यन्त थक गये। इसके पश्चात् राजा ने सन्ध्याकाल में उसी वन में जमदग्नि के आश्रम के पास ससैन्य विवश होकर उपवास किया। अगले दिन प्रातःकाल राजा ने सरोवर में स्नान किया तथा पवित्र एवं अलंकृत होकर भक्तिभाव से भगवान् दत्तात्रेय द्वारा प्राप्त मन्त्र जप किया। तभी ऋषि जमदग्नि ने राजा को जब शुष्क कण्ठ तथा सूखे तालु एवं ओष्ठ की स्थिति में देखा, तब उन्होंने प्रेम पूर्वक राजा से कुशलता का प्रश्न किया। उन्होंने प्रीति पूर्वक उस प्रणत राजा को शुभ आशीर्वाद भी प्रदान किया था। वे मुनि सूर्य के समान प्रभाशाली थे।।४-१०।।

वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम्।
संभ्रमेणैव मुनिना त्रस्तो राजा निमन्त्रितः॥११॥
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा। [१]एतद्वृत्तं कामधेनुं कथयामास भीतवत्॥१२॥
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते।
जगद्भजयितुं शक्तस्त्वं मया को नृपा मुने॥१३॥
राजभोजनयोग्यार्हं यद्यद्द्रव्यं प्रयाचसे। सर्वं तुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥१४॥

तदनन्तर राजा ने अपने उपवास आदि का वृत्तान्त मुनि से जब निवेदित किया, तब मुनि ने राजा को तत्काल अपने यहां आने का आमन्त्रण दे दिया। तब मुनिप्रवर ने राजा को आने हेतु कहा तथा अपने आश्रम में चले गये। उन्होंने अपने आश्रम में सहर्ष लक्ष्मी के समान माता कामधेनु से समस्त वृत्तान्त कहा। भयभीत मुनि से कामधेनु ने कहा—"मेरे उपस्थित रहते आप भय न करें। आप मेरे माध्यम से समस्त जगत् को आहार प्रदान कर सकते हैं। हे मुनिवर! राजा के भोजन हेतु आप जो कुछ याचना करेंगे, मैं वह सब पदार्थ भोजनार्थ प्रदान कर दूंगी, जो त्रैलोक्य दुर्लभ है"।।११-१४।।

१. क. लक्ष्मीसमां।

सौवर्णानि च रौप्याणि पात्राणि विविधानि च।
भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च॥१५॥
शुद्धरत्नविकाराणि पानपात्राणि यानि च।
पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा॥१६॥
नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च।
पनसाम्रश्रीफलानि नारिकेलादिकानि च॥१७॥
राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादुलड्डुकराशयः।
यवगोधूमचूर्णानां भक्ष्याणि विविधानि च॥१८॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च परमान्नस्य कन्दरान्।
दुग्धानां च घृतानां च नदीर्दध्नां ददौ मुदा॥१९॥
शर्कराणां तथा राशिं मोदकानां च पर्वतान्।
पृथुकानां सुशीलानां पर्वतान्प्रददौ मुदा॥२०॥
ताम्बूलं च ददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम्। नृपयोग्यं कौतुकाच्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम्॥२१॥
मुनिःसंभृतसंभारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम्। भोजयामास राजानं ससैन्यमपि लीलया॥२२॥

उन कामधेनु ने स्वर्णमय, रजतमय नाना पात्र, जो स्वादिष्ट व्यंजनों से भरे थे, असंख्य पाक पात्र तथा भोजन योग्य पात्र प्रदान किया। हे नारद! नाना प्रकार के पके फल जैसे आम, कटहल, नारियल, बेल, लड्डुओं के ढेर, जौ-गोधूम युक्त पिष्टक, साठी धान का बना चिवड़ा आदि के पर्वत प्रदान किया। उन्होंने कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल भी दिया। इन महान् वस्तुओं के ढेर के साथ मुनि ने कौतुकमय राजा के योग्य वस्त्र, आभूषण, उत्तम द्रव्य, भोजनादि से राजा को खेल-खेल में ससैन्य भोजन कराया।।१५-२२।।

यद्यत्सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः। जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्राण्युवाच ह॥२३॥

उन राजा को वहां प्राप्त अपूर्व दुर्लभ वस्तु मिली। राजा ने विस्मय पूर्वक उन पात्रों को देख कर सचिव से कहा-।।२३।।

राजोवाच

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च।
ममासाध्यानि सहसा क्वऽऽगतान्यवलोकय॥२४॥

राजा कहते हैं-हे सचिव! ये सभी दुर्लभतम वस्तु हैं। मैंने इनके बारे में सुना तक नहीं। ये सब मेरे लिये तो अप्राप्य ही हैं। ये सब सामान सहसा कहां से आ गये? तुम पता लगाओ।।२४।।

नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहम्। राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम्॥२५॥

राजा की आज्ञा से सचिव ने मुनि के गृह में सब देख कर राजा के पास आकर अत्यन्त आश्चर्यमय वृत्तान्त कहा–।।२५।।

सचिव उवाच

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरम्। वह्निकुण्डं यज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम्॥२६॥
कृष्णचर्मस्रुवस्त्रुग्भिः शिष्यसङ्घैश्च सङ्कुलम्। तैजसाधारसस्यादिसर्वसंपद्विवर्जितम्॥२७॥
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे[1] जटाधराः। गृहैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा।
चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना॥२८॥
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा। सर्वसंपद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया॥२९॥

सचिव कहता है–हे महाराज! मैंने मुनि के यहां यह सब जो देखा, वह कहता हूं। सुनिये! मुनि का आश्रम तो अग्निकुण्ड, यज्ञकाष्ठ, कुश, पुष्प, फूल, कृष्णसार मृगचर्म, अनेक स्रुक्–स्रुव तथा शिष्यों से भरा है। उनकी स्त्री के शरीर पर कोई आभूषण नहीं है। इनके आश्रम में स्वर्णादि के पात्र, फसल, धन आदि कुछ भी नहीं है। मुनिपत्नी केवल वृक्ष की छाल पहनती हैं। पुत्रगण भी वृक्ष की छाल पहनते हैं तथा जटाधारी हैं। उनके घर के (आश्रम के) एक ओर एक मनोहर कपिला गौ हमने देखा जो सुन्दर अंगों वाली, चन्द्रमा के वर्ण की आभा वाली तथा लाल कमल के समान नेत्रों वाली है। वह स्वतेज से समुज्ज्वल, पूर्ण चन्द्रसमप्रभ, समस्त सम्पदा तथा गुणाधार रूपा साक्षात् लक्ष्मी ही है।।२६–२९।।

इत्येवं बोधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाज्ञया।
मुनिं ययाचे तां धेनुं निबद्धः कालपाशतः॥३०॥
किं वा पुण्यं च का वुद्धिः कः कालः सर्वतो बलि।
पुण्यवान्वुद्धिमान्दैवाद्राजेन्द्रोऽयाचत द्विजम्॥३१॥
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपं च भारते। पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं भयावहम्॥३२॥
पुण्यात्कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम्।
पापाद्भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम्॥३३॥

एवंविध सचिव ने उस दुर्बुद्धि राजा से समस्त वृत्तान्त कह दिया। उस कालपाशबद्ध राजा ने सचिव से सब हाल जान कर मुनि से उस धेनु की याचना किया। हे नारद! संसार में पुण्य, बुद्धि आदि सबसे बढ़ कर दैव बली है। अतः पुण्यात्मा तथा बुद्धिमान नृपति ने ब्राह्मण से धेनु मांग लिया। भारतवर्ष में पूर्वपुण्य से पवित्र कर्म की इच्छा होती है तथा पूर्व पातकों से भयजनक पापकर्म करने के लिये प्रवृत्ति होती है। मानव समस्त पुण्यबल से पहले स्वर्गभोग करके तब पुण्य स्थान में जन्म लाभ होता है तथा वहां पाप करने पर नरकभोग के उपरान्त कुत्सित कुल में जन्म मिलता है।।३०–३३।।

१. पुत्रा इति च पाठः।

जीविनां निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणि नारद।
तेन कुर्वन्ति सन्तश्च संततं कर्मणः क्षयम्॥३४॥
सा विद्या ततपो ज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः।
सा माता स पिता पुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः॥३५॥
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः।
भक्तिवैद्यस्तं निहन्ति कृष्णभक्तिरसायनात्॥३६॥
माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता।
परितुष्टा जगद्धात्री भक्तेभ्यो बुद्धिदायिनी॥३७॥
परा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च। मायां तस्मै मोहयितुं न विवेकं कदाचन॥३८॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः।
उवाच विनयाद्भक्त्या कृताञ्जलिपुटो मुदा॥३९॥

जब तक कर्म (शुभ-अशुभ) विद्यमान है, तब तक जीव को छुटकारा ही नहीं है। तभी पण्डितगण सर्वदा कर्म क्षयार्थ ही उपक्रम करते हैं। जो विद्या, तप, ज्ञान, गुरु, बन्धु-बान्धव, माता-पिता-पुत्र जीव का कर्मक्षय कराये, वही विद्या है, वही तप है। वही ज्ञान है, वही गुरु है, वही बन्धु है, वही माता-पिता है तथा वही यथार्थ पुत्र है। प्राणीगण को शुभाशुभ कर्मफल भोग से दारुण रोगोत्पत्ति होती है। तदनन्तर विष्णुभक्त सत्संगरूपी वैद्य, कृष्णभक्ति रूप औषध इस रोग को नष्ट कर पाते हैं। जो जीव जन्म-जन्मान्तर में बुद्धिप्रदा, जगद्धात्री परमा माया की सेवा करता है, उससे महामाया प्रसन्न होकर उसे माया तथा मोह प्रदान नहीं करतीं। वे उसे विवेक देती हैं तथा परमा प्रकृतिरूपा विष्णुभक्ति प्रदान कर देती हैं। मायामोहित राजा ने यत्नतः मुनि को भक्ति के साथ हाथ जोड़ कर विनय के साथ प्रार्थना किया॥३४-३९॥

राजोवाच

देहि भिक्षां कल्पतरो कामधेनुं च कामदाम्।
मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकारक॥४०॥
युष्मद्विधानां दातॄणामदेयं नास्ति भारते।
दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुरा श्रुतम्॥४१॥
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन। समूहं कामधेनूनां स्त्रष्टं शक्तोऽसि भारते॥४२॥

राजा कहता है—हे कामना देने वाले मुनिवर! मुझे भिक्षा में कामधेनु दीजिये। हे कल्पतरु! भक्तेश! आप भक्तों पर कृपा करने वाले हैं। मैं आपका भक्त हूं। मुझे कामनाप्रदा यह कामधेनु प्रदान करें। हे मुनिवर! आप जैसे दाता के लिये संसार में कुछ भी अदेय नहीं है। यह पहले सुना गया है कि

दधीचि ऋषि ने देवगण को अपनी अस्थि तक दे दिया था। हे तपोधन! आप तो तपोराशि हैं। आप अपने भौंहों के संकेत मात्र से जगत् में अनेक कामधेनुओं का सृजन कर सकते हैं।।४०-४२।।

मुनिरुवाच

अहो व्यतिक्रमं राजन्ब्रवीषि शठ वञ्चक।
दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियाय[1] कथं नृप।।४३।।

कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना। कामधेनुरियं यज्ञे न देया प्राणतः प्रिया।।४४।।
ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप। मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम।।४५।।
गोलोकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये। लीलामात्रात्कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः।।४६।।

नाहं रे हालिको मूढ स्तुल्या नोत्थापितो बुधः।
क्षणेन भसमसात्कर्तुं क्षमोऽहमतिथिं विना।।४७।।

मुनि कहते हैं—हे शठ! हे नृपाधम वंचक! तुम तो उल्टी बातों को कह रहे हो। क्या मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को दान करूंगा? परमात्मा कृष्ण ने यह कामधेनु गोलोक में ब्रह्मा को दिया था। हे भूपति! ब्रह्मा ने अपने प्रिय पुत्र भृगु को यह प्रदान कर दिया था। भृगु ने यह कपिला मुझे दिया है। यह मेरी पैतृक सम्पत्ति तथा प्राणाधिक प्रिय है। इसे कदापि मैं नहीं दे सकूंगा! हे मूढ़! यह गोलोकोत्पन्न कामधेनु त्रैलोक्यदुर्लभ है। मैं ऐसी कामधेनु लीलामात्र से कैसे सृष्ट कर सकूंगा? हे मूर्ख! मैं हल चलाने वाला नहीं हूं, जो तुम प्रशंसा से वश में कर लोगे। इससे तुम मुझे मोहग्रस्त नहीं कर सकते। मैंने तुम्हारा मन्तव्य जान लिया। यदि तुम अतिथि न होते, तब क्षण में भस्म कर देता! अतिथि हो, तभी क्षमा कर दिया।।४३-४७।।

गृहं गच्छ गृहं गच्छ मे कोपं नैव वर्धय। पुत्रदारादिकं पश्य दैवबाधित पामर।।४८।।

अब उचित है कि तुम घर जाओ। मेरा क्रोध मत बढ़ाओ। हे पापी! जाकर अपने पुत्र-पौत्रादि को देखो। क्योंकि दैव तुम्हारे विपरीत है।।४८।।

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः। नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिवाधितः।।४९।।
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः। किङ्करान्प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात्।।५०।।
कपिलासंनिधिं गत्वा रुरोद मुनिपुङ्गवः। कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः।।५१।।

रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह।
साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपा सा भक्तानुग्रहकारिका।।५२।।

मुनि का वचन सुन कर राजा क्रोधित हो उठा। उसने दैव दुर्विपाक से मुनि को प्रणाम किया तथा वहां से चला गया। तब उसने अपनी सेना में जाकर राग भावना से अपना मुखमण्डल कंपित

१. क. ०य नृपाधम।

करके बलात् गौ हरणार्थ अपने सैनिक भेजे। उस समय क्रोध से राजा के अधर कंपित हो रहे थे। उधर वे मुनिप्रवर कपिला के पास जाकर रुदन करने लगे। उन्होंने शोक के कारण हतबुद्धि होकर समस्त वृत्तान्त उन कपिला से कहा। तब मुनि को रुदनरत देख कर साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा तथा भक्तों पर कृपा करने वाली सुरभि कहने लगीं–।।४९-५२।।

सुरभिरुवाच

इन्द्रो वा हालिको वाऽपि वस्तु स्वं दातुमीश्वरः।
शास्ता पालयिता दाता स्ववस्तूनां च संततम्।।५३।।
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मां ददासि तपोधन।
तेन सार्धं गमिष्यामि स्वेच्छया च तवाऽऽज्ञया।।५४।।
अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात्।
मत्तो दत्तेन सैन्येन दूरी कुरु नृपं द्विषम्।।५५।।

सुरभिदेवी कहती हैं–इन्द्र से लेकर क्षुद्र लोग तक सभी को अपनी वस्तु का दान, पालन, उस पर शासन करने का अधिकार है। हे तपोधन! यदि आप स्वेच्छा से मुझे राजा को देते हैं, तब मैं आपकी आज्ञा से राजा के पास चली जाऊंगी। यदि आप मुझे नहीं देना चाहते, तब आपके गृह से मैं कदापि नहीं जा सकती। आप मेरे द्वारा प्रदत्त सैन्य द्वारा राजा को दूर करें।।५३-५५।।

कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः।
संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो न घाऽऽत्मनः।।५६।।
त्वं वा को मे तवाहं का संबन्धः कालयोजितः।
यावदेव हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि।।५७।।

हे सर्वज्ञ मुनिवर! आप रुदन क्यों करते हैं? आपका चित्त मायामोहित क्यों हो गया? संयोग-वियोग होना तो काल के कारण होता है। उसमें कदापि किसी का वश नहीं रहता। आप कौन हैं? मैं कौन हूं? यह मेरे आपके बीच का सम्बन्ध काल जोड़ता है। तभी तक ममता रहती है, जब तक यह सम्बन्ध है।।५६-५७।।

मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मीयं चेति केवलम्।
दुःखं च तस्य विच्छेदाद्यावत्स्वत्वं च तत्र वै।।५८।।

जब तक मन जिस किसी वस्तु को अपनी मानता रहता है, तभी तक उस पर उसका स्वत्व रहता है। जब तक किसी वस्तु को अपनी, अपने स्वत्व के अन्तर्गत् हम मानते हैं, तभी तक उसे वस्तु के विच्छेद के दुःख का अनुभव होगा।।५८।।

इत्युक्त्वा कामधेनुश्च सुषाव विविधानि च।
शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानि सूर्यतुल्यप्रभाणि च।।५९।।

निर्गताः कपिलावक्त्रात्त्रिकोट्यः खड्गधारिणाम्।
विनिःसृता नासिकायाः शूलिनः पञ्चकोटयः॥६०॥
विनिःसृता लोचनाभ्यां शतकोटिधनुर्धराः।
कपलान्निःसृता वीरास्त्रिकोट्यो दण्डधारिणाम्॥६१॥
वक्षःस्थलान्निःसृताश्च त्रिकोट्यः शक्तिधारिणाम्।
शतकोट्यो गदाहस्ताः पृष्ठदेशाद्विनिर्गताः॥६२॥

भगवती सुरभि कामधेनु ने सूर्य के समान प्रभावशाली नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का तथा सैन्य समूह को उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। कपिला के मुख से तीन करोड़ खड्गहस्त पुरुष, नासिका से शतकोटि शूलधारी पुरुष, कपाल से तीन कोटि दण्डधारी पुरुष, दोनों नेत्र से शतकोटि धनुर्धारी पुरुष, वक्षःस्थल से तीन कोटि शक्ति अस्त्रधारी वीर, पृष्ठदेश से शतकोटि गदाधारी पुरुष निर्गत हो गये।।५९-६२।।

विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाः सहस्रशः।
जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोट्यो राजपुत्रकाः॥६३॥
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटिम्लेच्छजातयः।
दत्त्व सैन्यानि कपिला मुनये चाभयं ददौ॥६४॥

कामधेनु के पदतल से हजारों-हजार वाद्यभाण्ड निकले। (वाद्यभाण्ड = वाद्यवादक)। उनके जांघ से तीन करोड़ राजपुत्र निर्गत हो गये। कामधेनु के गुह्यप्रदेश से तीन कोटि म्लेच्छ जाति वाले निकले। कपिला ने यह सैन्य मुनि को देकर उनको अभय प्रदान किया।।६३-६४।।

युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न याहीत्युवाच ह। मुनिः संभृतसंभारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह॥६५॥
नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह। कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम्॥६६॥
तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः। दूतान्संप्रेष्य सैन्यानि चाऽऽजहार स्वदेशतः॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० एकदन्तत्वहेतुप्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धारम्भ-वर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

कामधेनु ने ऋषि से कहा—समस्त सेना युद्ध करेगी। आप वहां न जायें। जमदग्नि इस सैन्य संभार से युक्त होकर अत्यन्त हर्षित हो गये। उधर राजा के दूतों ने राजा से कामधेनु द्वारा उत्पन्न सैन्य का समस्त वृत्तान्त वर्णित किया। इससे राजा ने उन दूतों से अपनी पराजय की आशंका को जान लिया। तब राजाओं में प्रधान कार्त्तवीर्य ने कातर होकर अपने देश में दूतों को भेज कर वहां से अपनी विशाल सेना को भी बुला लिया!।।६५-६७।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

कामधेनु से प्रादुर्भूत सैन्य द्वारा कार्त्तवीर्य की पराजय

नारायण उवाच

हरिं स्मरन्कार्तवीर्यो हृदयेन विदूयता। दूतं प्रस्थापयामास कुपितो मुनिसंनिधिम्॥१॥
युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किंवा धेनुं च वाञ्छिताम्।
मह्यं भृत्यायातिथये सुविचार्य यथोचितम्॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–राजा कार्त्तवीर्य ने उत्तप्त हृदय से हरि का स्मरण किया तथा क्रोध पूर्वक मुनि के पास अपना दूत भेजा कि दूत तुम मुनि के पास जाकर कहना कि "मेरे स्वामी की आज्ञा सुनिये। उन्होंने कहा है हे मुनिप्रवर! मैं आपका सेवक हूं। विशेषतः अतिथि हूं। मुझे मेरी वांछित कामधेनु प्रदान करिये अथवा मेरे साथ युद्ध करिये। जैसा आपको उचित लगे, वह उत्तर प्रदान करें"॥१-२॥

दूतस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। हितं सत्यं नीतिसारं सर्वं दूतमुवाच ह॥३॥

दूत का वचन सुन कर मुनिपुंगव ने दूत से हंसते हुए हितप्रद, सत्यपूर्ण, नीतियुक्त वाक्य कहा–॥३॥

मुनिरुवाच

दृष्टो[१] नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम्।
विविधं च यथाशक्त्या भोजितश्च यथोचितम्॥४॥
कपिलां याचते राजा मम प्राणाधिकां बलात्।
तां दातुमक्षमो दूत युद्धं दास्यामि निश्चितम्॥५॥

मुनि कहते हैं–मैंने राजा को उपवासी तथा कष्ट में देख कर उसे अपने गृह में बुलाया तथा उसे यथोचित भोजन यथाशक्ति प्रदान भी किया, तथापि बदले में वह राजा मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय कपिला को बलात् मांग रहा है। यह मैं उसे प्रदान नहीं कर सकता। अतः राजा युद्ध करे।॥४-५॥

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा दूतः सर्वमुवाच ह। नृपेन्द्रं च सभामध्ये संनाहैः संयुतं भिया॥६॥
मुनिश्च कपिलामाह सांप्रतं किं करोम्यहम्।
कर्णधारं विना नौका तथा सैन्यं विना मया॥७॥

दूत ने ऋषि का यह कथन सुन कर सभा में जाकर राजा से मुनि ने जो कहा था, वह सब

---

१. दृष्टेति पाठान्तरम्।

धर्मधारी राजा से यथावत् कह दिया। उधर मुनि जमदग्नि ने भी कपिला से कहा–"अब मुझे क्या करना होगा? जैसे कर्णधार केवट के बिना नौका की स्थिति होती है, उसी प्रकार मेरे बिना समस्त सैन्य की स्थिति है"।।६-७।।

कपिला च ददौ तस्मै शस्त्राणि विविधानि च।
युद्धशास्त्रोपदेशं च संधानं चौपयोगिकम्।।८।।
जयो भवतु ते विप्र युद्धे जेष्यसि निश्चितम्। तव मृत्युर्न भविता सत्यमस्त्रं विना मुने।।९।।
नृपेण सार्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च। दत्तात्रेयस्य शिष्येण व्यर्थं वै शक्तिधारिणा।
इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन्विरराम मनस्विनी।।१०।।

कपिला ने मुनि का कथन सुन कर मुनि को नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। उनको कपिला ने युद्धशास्त्र का उपदेश तथा युद्धोपयोगी अन्य तथ्य भी कहा। गौ ने उनसे कहा "हे विप्र! युद्ध में आपकी विजय होना तय है। अमोघ अस्त्र बिना आपकी मृत्यु नहीं होगी। हे ब्रह्मन्!, तथापि राजा मुनि दत्तात्रेय का शिष्य शक्तिधारी है। आप ब्राह्मण हैं। उसका आपके साथ युद्ध करना उचित नहीं है। हे ब्रह्मन्! कपिला अत्यन्त मनस्विनी थीं। वे यह कह कर मौन हो गईं।।८-१०।।

मुनिर्मनस्वी सैन्यं च सज्जीकृत्य ततो मुने।
गृहीत्वा सर्वसैन्यं च स जगाम रणाजितम्।।११।।
राजा जगाम युद्धाय ननाम मनिपुङ्गवम्। उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहुदुष्करम्।।१२।।
राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात्। विचित्रं च रथं राज्ञो बभञ्जे लीलया रणे।।१३।।
धनुश्चिच्छेद संनाहं सा सेना कापिली मुदा।
नृपेन्द्रः कापिलेयानि जेतुं सैन्यानि चाक्षमः।।१४।।
सैन्यान्वितं शस्त्रवृष्ट्या न्यस्तशस्त्रं चकार सा।
शरवृष्ट्या शस्त्रवृष्ट्या राजा मूर्च्छामवाप ह।।१५।।

तदनन्तर उन मनस्वी मुनि ने सैन्य को सज्जीकृत कराया वे समस्त सेना के साथ रणभूमि में चले गये। राजा ने युद्धभूमि में जाकर मुनि को प्रणाम किया। इसके पश्चात् दोनों सेना में दुष्कर युद्ध छिड़ गया। कपिला की सेना ने बलात् राजा की सेना को पराजित कर दिया। कपिला के सैन्य ने लीलामात्र से राजा के विचित्र रथ को भग्न कर दिया। राजा के धनुष तथा कवच को कपिला की सेना ने छिन्न-भिन्न कर दिया। राजा कदापि कपिला की सैन्य को जीत नहीं सका। कपिला की सेना ने बाणों की वर्षा द्वारा राजा को अस्त्र रहित कर दिया। तदनन्तर राजा भी इस शरवर्षा से कातर हो गया। वह मूर्च्छित हो गया।।११-१५।।

किञ्चिच्छिष्टं बलं राज्ञः किञ्चिदेव पलायितम्।
मुनीन्द्रो मूर्च्छितं दृष्ट्वा नृपेन्द्रमतिथिं मुने।।१६।।

कृपानिधिश्च कृपया सत्सैन्यं सञ्जहार च।
गत्वा सैन्यं विलीनं च कपिलायां च कृत्रिमम्॥१७॥

हे मुनि! उस समय उसकी कुछ सेना मृत हो गई, कुछ सेना भाग गई। हे मुनिवर! कृपानिधि मुनिप्रवर अतिथि राजा को मूर्च्छित देख कर दया में भर गये तथा उन्होंने समस्त कपिला सैन्य को विसर्जित कर दिया। कपिला की कृत्रिम सेना कपिला में ही लीन हो गई!।।१६-१७।।

नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्ताश्चरणरेणवः। आशीर्वादं प्रदत्तं च जयोऽस्त्विति कृपालुना॥१८॥
कमण्डलुजलं प्रोक्ष्य जीवयामास तं नृपम्।
स राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरात्॥१९॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिः।
मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा राजानं त्वालिलिङ्ग सः॥२०॥
पुनस्तं स्नापयित्वा च भोजयामास यत्नतः। नवनीतं हि हृदयं ब्राह्मणानां तु संततम्॥२१॥

तदनन्तर उन मुनि ने राजा को अपना चरणरज प्रदान किया (चरण स्पर्श कराया)। उन मुनि ने राजा को शुभाशीर्वाद दिया कि तुम्हारी जय हो। तदनन्तर अपने कमण्डल का जल छिड़कर कर राजा को पुनर्जीवित कर दिया। मुनि की ऐसी कृपालुता थी। वह राजा अब चैतन्य होकर रणभूमि से बहिर्गत् हो गया। उसने मुनिप्रवर को भक्ति पूर्वक हाथ जोड़ कर तथा नतशिर होकर प्रणाम किया। तब राजा का मुनि ने आलिंगन किया तथा उनको शुभ आशीर्वाद भी प्रदान किया। तत्पश्चात् राजा को स्नान कराने के पश्चात् उसे यत्नतः भोजन कराया। ब्राह्मण का हृदय नवनीत के समान कोमल कहा गया है।।१८-२१।।

अन्येषां क्षुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा। उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ धराधिप॥२२॥

अन्य लोगों का हृदय छूरे की धार की तरह तीक्ष्ण एवं अन्य के लिये असाध्य होता है। तदनन्तर मुनिप्रवर ने राजा से कहा–"हे राजन्! तुम स्वगृह जाओ"।।२२।।

राजोवाच

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम्॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

राजा कहता है–हे महाबाहु! मुझे आप युद्ध दीजिये, अथवा मुझे वांछित धेनु प्रदान करें।।२३।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षड्विंशोऽध्यायः

जमदग्नि तथा कार्त्तवीर्य के बीच का युद्ध तथा ब्रह्मा द्वारा युद्ध शान्त करना

नारद उवाच

हरिं स्मरन्मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः। हितं सत्यं नीतिसारं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं–राजा कार्त्तवीर्य का वचन सुन कर महामुनि जमदग्नि ने हरि का स्मरण किया। उन्होंने राजा को उत्तर प्रदान करते-करते हितपूर्ण, सत्य तथा नीतियुक्त साररूप उत्तर दिया॥१॥

मुनिरुवाच

गृहं गच्छ महाभाग रक्ष धर्मं सनातनम्। सर्वसंपत्स्थिरा शश्वत्स्थिते धर्मे सुनिश्चितम्॥२॥
त्वां च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप। तव पूजामकरवं यथाशक्ति विधानतः॥३॥
सांप्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिषम्। अददां चेतयांचक्रे वक्तुमेवोचितं न च॥४॥

मुनि कहते हैं–हे महाभाग! घर जाकर सनातन धर्म की रक्षा करिये। यह निश्चित जानें कि जो व्यक्ति सतत् धर्म में स्थिर रहता है, उसे निश्चित रूप से समस्त सम्पदा स्थिर रूप में प्राप्त होती है। जो व्यक्ति सदा धर्म में स्थिर रहता है, उसमें निश्चित ही समस्त सम्पत्ति स्थिर रूप से स्थित रहती है। मैंने जब आपको अनाहार से कातर देखा, तब गृह में लाकर यथाशक्ति तथा यथाविधि आपकी पूजा किया। इसी कारण मैंने जब आपको मूर्च्छित देखा, तब अपनी चरणरज तथा शुभाशीर्वाद प्रदान किया था। अब चैतन्यता मिलने पर आपका ऐसा कहना अनुचित है॥२-४॥

नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्। रथमन्यं त्वारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह॥५॥

जब राजा ने मुनिप्रवर जमदग्नि का यह कथन सुना, तब वह मुनि को प्रणाम करके अन्य रथ पर जा बैठा और कहा कि आप मुझे युद्ध प्रदान करें॥५॥

मुनिः कृत्वा च संनाहं तं योद्धुमुपचक्रमे। राजा तं युयुधे तत्र कोपेन हतचेतनः॥६॥
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम्। कपिलादत्तया शक्त्या पुनर्मूर्च्छामवाप च॥७॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः। मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च॥८॥
आग्नेयं योजयामास समरे नृपपुङ्गवः। मुनिर्निर्वापयामास वारुणेन च लीलया॥९॥

नृपेन्द्रो वारुणास्त्रं च चिक्षेप समरे मुनौ।
वायव्यास्त्रेण स मुनिः शमयामास लीलया॥१०॥

यह सुन कर मुनि ने कवच पहन कर युद्धारंभ कर दिया। राजा भी क्रोध से पागल-सा होकर मुनि से युद्धरत हो गया। कपिला गौ से मिले अस्त्रों से जमदग्नि ने राजा को अस्त्र रहित कर दिया था।

राजा इन अस्त्रों के प्रहार से कुछ समय मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर कमलनयन राजा ने चैतन्य होने पर क्रोधाविष्ट चित्त से पुनः युद्धारंभ कर दिया। राजा ने समरांगण में मुनिप्रवर को लक्ष्य करके आग्नेयास्त्र छोड़ा। मुनि ने वरुणास्त्र का संधान करके इस आग्नेयास्त्र को शान्त कर दिया। जब राजा ने मुनि के विरुद्ध वरुणास्त्र का संधान किया, तब मुनि ने वायव्यास्त्र के प्रयोग से वरुणास्त्र को शान्त कर दिया!॥६-१०॥

वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा। गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठः शमयामास तत्क्षणम्॥११॥
नागास्त्रं च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्धनि। गारुडेन मुनिश्रेष्ठो निजघान क्षणान्मुने॥१२॥
माहेश्वरं महास्त्रं च शतसूर्यसमप्रभम्। चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयान्तं दिशो दश॥१३॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च। मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद॥१४॥

जब राजा ने मुनि के विरुद्ध उस युद्धभूमि में वायव्यास्त्र छोड़ा, तब मनि ने गांधर्वास्त्र से उसका निवारण कर दिया। जब राजा ने वहां मुनि पर नागपाशास्त्र का प्रहार किया, तब मुनि ने तत्क्षण गारुड़ास्त्र से इस नागपाशास्त्र को छिन्न तथा निवृत्त कर दिया। हे नारद! जब राजा ने तत्काल मुनि के विरुद्ध अनेक सूर्यसमप्रभ महास्त्र शैवास्त्र का संधान किया, तब मुनि ने भी अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक असाधारण शक्तिशाली त्रिभुवनव्यापी वैष्णवास्त्र को छोड़ कर शैवास्त्र का निवारण कर दिया!॥११-१४॥

मुनिर्नारायणास्त्रं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्।
शस्त्रं त्यक्त्वा[1] महाराजा नमाम शरणं ययौ॥१५॥

ऊर्ध्वं च भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशो दश। प्रलयाग्निसमं तत्र स्वयमन्तरधीयत॥१६॥

तत्पश्चात् मुनि ने मन्त्रोच्चार करके राजा के विरुद्ध महान् नारायणास्त्र को छोड़ा। राजा ने तत्काल अपने शस्त्र रख कर नारायणास्त्र को प्रणाम किया तथा शरणागत हो गया। इससे वह अस्त्र क्षण पर्यन्त ऊर्ध्व में चक्रमण करता तथा दसों दिशाओं को प्रलयाग्नि के समान दीप्त करता स्वयं अन्तर्हित् हो गया!॥१५-१६॥

जृम्भणास्त्रं च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्धनि। निद्रां प्रापत्तेन राजा सुष्वाप च मृतो यथा॥१७॥

जब मुनि ने नारायणास्त्र को इस प्रकार विफल होते देखा, तब उन्होंने रणभूमि में राजा पर जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया। राजा इस अस्त्र के प्रभाव से निद्राग्रस्त होकर रणभूमि में मृतवत् शयनरत हो गया॥१७॥

दृष्ट्वा नृपं निद्रितं तं चार्धचन्द्रेण तत्क्षणम्।
चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्बाणं मुनिस्तदा॥१८॥

मुकुटं च क्षुरप्रेण च्छत्रं संनाहमेव च। अस्त्रं तूणं वाजिगणं विविधेन च भूभृतः॥१९॥

१. ख. दृष्ट्वा।

मुनिस्तत्सचिवान्सर्वान्नागास्त्रेणैव लीलया।
निबध्य स्थापयामास प्रहस्य समरस्थले॥२०॥

मुनिस्तं बोधयामास सुमन्त्रेणैव लीलया। निबद्धसर्वामात्यानां दर्शयामास भूमिपम्॥२१॥

तभी राजा को निद्रित देख कर मुनिप्रवर ने अर्द्धचन्द्राकृति बाण से राजा के सारथि-रथ-धनुष-बाण को काट दिया। मुनि ने नाना प्रकार के बाणों के प्रहार से राजा का मुकुट-छत्र-कवच-अस्त्र-बाण के तूणीर (तरकश) तथा अश्वों को भी बेध दिया। तब उस रणक्षेत्र में मुनि ने हंसते-हंसते ही नागास्त्र से राजा के सचिवों को बांध दिया। तदनन्तर मन्त्र प्रयोग द्वारा मुनि ने राजा को संज्ञायुक्त करके उनको उन पाशबद्ध मन्त्रीगण की हालत प्रदर्शित किया।।१८-२१।।

दर्शयित्वा नृपं तांश्च मोचयामास तत्क्षणम्।
नृपेन्द्रमाशिषं कृत्वा गृहं गच्छेत्युवाच ह॥२२॥
राजा कोपात्समुत्थाय शूलमुद्यम्य यत्नतः।
चिक्षेप तं मुनिश्रेष्ठं मुनिः शक्त्या जघान तम्॥२३॥

राजा को यह सब दिखलाने के पश्चात् मुनि ने राजा को तत्काल बन्धनमुक्त करके उनको आशीर्वाद प्रदान करके कहा-"आप अब गृह चले जायें।" इतने पर भी क्रोधित राजा ने मुनि पर त्रिशूलाघात किया जिसे उन मुनि ने शक्ति अस्त्र के प्रहार से नष्ट कर दिया।।२२-२३।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम्। सुप्रीतिं जनयामास सुनीत्या च परस्परम्॥२४॥
मुनिर्ननाम ब्रह्माणं तुष्टाव च रणस्थले। राजा नत्वा विधिं चर्षिं स्वपुरं प्रययौ तदा॥२५॥
मुनिर्ययौ स्वाश्रमं च स्वलोकं कमलोद्भवः। इत्येवं कथितं किञ्चिदपरं कथयामि ते॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धोपशमवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

तदनन्तर वहां भगवान् ब्रह्मा ने आकर प्रीति पूर्वक ऋषि तथा राजा को उत्तम नीति वाक्य से युद्ध से निवृत्त किया तथा परस्पर प्रेमभाव स्थापित कर दिया। उस समय हर्षित होकर मुनि ने ब्रह्मा को प्रणाम किया। तभी राजा भी महर्षि को तथा ब्रह्मदेव को प्रणाम करके अपनी पुरी वापस आ गया। मुनिप्रवर जमदग्नि अपने आश्रम चले आये तथा ब्रह्मा भी अपने ब्रह्मलोक प्रस्थान कर गये। यहां तक यह प्रसंग कह कर अब आगे का वृत्तान्त कह रहा हूं।।२४-२६।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कार्त्तवीर्य से युद्ध करते हुए जमदग्नि का प्राणान्त तथा इस सम्बन्ध में परशुराम की प्रतिज्ञा

नारायण उवाच

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः। आजगाम महारण्ये जमदग्न्याश्रमं पुनः॥१॥
रथानां च चतुर्लक्षं रथिनां दशलक्षकम्। अश्वेन्द्राणां गजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम्॥२॥
राजेन्द्राणां सहस्त्रं च महाबलपराक्रमम्। महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः॥३॥
सर्वतो वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं मुने। रथस्थो वर्मयुक्तश्च कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं– राजा कार्त्तवीर्य ने गृह वापस जाकर ऋषि के विक्रम का स्मरण किया तथा विस्मित होकर उन्होंने कुछ काल व्यतीत भी किया, तथापि वे पराजयजनित अपमान सहन नहीं कर पा रहे थे। तब हरि का स्मरण करते हुए राजा ने पुनः जमदग्नि आश्रम के लिये प्रस्थान किया। उसके साथ चार लाख हाथी, दस लाख रथी, असंख्य उत्तम अश्व, प्रधान-प्रधान विख्यात गजराज, पैदल सेना तथा हजारों-हजार उत्तम बलवीर्य युक्त राजाओं के साथ सानन्द चित्त पूर्वक प्रभूत आडम्बर के साथ त्रैलोक्य विजय के इस सामर्थ्य सहित उन्होंने जमदग्नि के आश्रम को घेर लिया। स्वयं राजा कार्त्तवीर्य कवचधारी होकर एक रथ पर आसीन था॥१-४॥

सैन्यशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैर्मुने। जगदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च॥५॥
कुटीं प्रविश्य बलवान्गृहीत्वा कपिलां शुभाम्।
पुरं गन्तुं मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाशयः॥६॥

हे मुनि! उस सेना का शब्द, युद्धवाद्यों का शब्द वहां महा-कोलाहल उत्पन्न कर हा था। भेरी प्रभृति रणवाद्यों के भयानक शब्दों से भयभीत होकर जमदग्नि आश्रमस्थ सभी लोग भय से मूर्च्छित से हो गये। तब उस दुर्बुद्धि वाले तथा बली राजा ने जो कुबुद्धि लोगों का आश्रयरूप था, आश्रम में प्रवेश करके बलात् शुभा कपिला को पकड़ लिया तथा उसे गृह ले जाने लगा॥५-६॥

समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः। एकाकी मुक्तगात्रश्च धेनुं नत्वा हरिं स्मरन्॥७॥
आश्रमस्थाञ्जनान्सर्वानाश्वास्य च यत्नतः।
आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः॥८॥

यह देख कर मुनि आसन से उठे तथा उन्होंने धनुष-बाण उठा कर अपने ही उद्योग से मन्त्रोच्चारण के प्रभाव से अपनी आश्रम भूमि को बाणों से आच्छादित कर दिया। उन अनाच्छादित

(कवच रहित) शरीर वाले मुनि ने धेनु को तथा हरि को प्रणाम किया। उन्होंने अब आश्रमस्थ आश्रितों को यत्नतः आश्वस्त किया तथा वे निःशंक होकर रणस्थली में राजा के समक्ष आ गये।।७-८।।

निर्ममे शरजालं च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम्। आच्छायत्स्वाश्रमं तैर्मानवं वर्मणा यथा।।९।।
अपरं शरजालं च निर्ममे मुनिपुंगवः। तैरेवाऽऽवरणं चक्रे सर्वसैन्यं यथाक्रमम्।।१०।।
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम्। तानि सर्वाणि गुप्तानि यथा पत्राणि पञ्जरे।।११।।
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात्पुरः। सार्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम कृताञ्जलिः।।१२।।
नत्वाऽऽरुरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषः।
आरुह्य च नृपश्रेष्ठः स्वयानं हृष्टमानसः।।१३।।

इसके पश्चात् मुनि ने अन्य अस्त्रों का प्रहार करके क्रमशः राजा की सेना को पराजित कर दिया। जिस प्रकार पिंजड़े में पक्षीगण आबद्ध किये जाते हैं, तदनुरूप मुनि के बाणों से राजा की सेना के लोग आबद्ध से हो गये। जब राजा ने सेना को इस प्रकार आबद्ध देखा, वह रथ से उतरा। उसने अपने साथ के राजाओं सहित हाथ जोड़ कर मुनि को प्रणाम किया। तब राजा मुनि से आशीर्वाद पाकर तथा उनको प्रणाम करके प्रसन्न चित्त के साथ अपने रथ पर बैठ गया। उसके अनुयायी राजा भी अपने-अपने रथों पर बैठ गये।।९-१३।।

नृपैः सार्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुंगवे। अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघान क्रीडया मुनिः।।१४।।
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छिदे लीलया नृपः।
शूलं विक्षेप नृपतिस्तं जघान तदा मुनिः।।१५।।
अपरं शरजालं च निर्ममे मुनिपुङ्गवः। शस्त्रौघैर्दुर्निवार्यैश्च खण्डं खण्डं चकार सः।।१६।।

तत्पश्चात् राजा ने मुनि का आशीर्वाद लेकर अपने अनुयायी राजाओं के साथ मुनिवर को लक्ष्य करके खड्ग, बाण, गदा, शक्ति आदि अस्त्र छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। मुनि ने भी खेल-खेल में राजा द्वारा छोड़े अस्त्रों को काट दिया। राजा ने भी अनायास मुनि द्वारा अपने ऊपर छोड़े गये अस्त्रों को काट दिया। तदनन्तर राजा ने शूलास्त्र फेंक कर आघात पहुंचाना चाहा, परन्तु मुनि ने उसको भी तत्काल काट दिया। साथ ही मुनि ने भी अनेक बाणों को उन राजाओं पर तथा कार्त्तवीर्य पर छोड़ा। इसके पश्चात् मुनि ने जिस बाणजाल का निर्माण किया था, राजा ने उनको अपने दुर्निवार शस्त्रों से खण्डित कर दिया।।१५-१६।।

निबद्धाः शरजालेन न च शक्ताः पलायितुम्।
जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते च सर्वे विजृम्भिताः।।१७।।
हस्त्यश्वरथपादातसहितं सर्वसैन्यकम्। राजानं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः।।१८।।
गृहीत्वा कपिलं हृष्टो रुदन्तीं शोकमूर्च्छिताम्।
बोधयित्वा पुरः कृत्वा स्वाश्रमं गन्तुमुद्यतः।।१९।।

तथापि जो राजा उस शरजाल में आबद्ध हो गये थे, वे विवश थे तथा युद्धक्षेत्र से भाग नहीं सके। तदनन्तर मुनि जमदग्नि ने जृम्भणास्त्र के प्रभाव से समस्त सैन्य, अश्व, रथारूढ़ योद्धाओं, हाथी, पदाति सैन्य को घोर निद्रित कर दिया। लेकिन धर्मात्मा मुनीश्वर ने राजा को निद्रित देख कर भी उसका वध नहीं किया। वे रोती हुई शोकमूर्च्छित सुरभि गौ को लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने आश्रम जाने लगे। गौ को बारम्बार सान्त्वना देकर प्रसन्न किया।१७-१९।।

एतस्मिन्नन्तरे राजा चेतनां प्राप्य नारद। निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः॥२०॥

जगाम कपिला त्रस्ता स्वस्थानं च रणाजिरात्।
मुनिश्च तस्थौ निःशङ्को गृहीत्वा सशरं धनुः॥२१॥
ब्रह्मास्त्रं च नृपश्रेष्ठः स चिक्षेप मुनौ तदा।
ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतां गतम्॥२२॥

दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव चिच्छिदे वर्म दुर्वहम्॥२३॥
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपतः। दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपूरुषघातिनीम्॥२४॥
जग्राह नत्वा दत्तं तं स नत्वा शक्तिमुल्बणाम्। चूर्णयामास तत्रैव शतसूर्यसमप्रभाम्॥२५॥

हे नारद! कुछ समय के पश्चात् जब राजा को संज्ञालाभ हुआ, तब उसने धनुष-बाण के द्वारा मुनि तथा गौ को आश्रम जाने से रोका, तथापि त्रस्ता सुरभि रणस्थल से भाग कर आश्रम चली गई तथा मुनि निःशंक मन से धनुष-बाण लेकर रणभूमि में आ गये। जब राजा ने मुनि पर ब्रह्मास्त्र प्रहार किया, तब तत्काल मुनि ने स्वयं ब्रह्मास्त्र छोड़ कर उसे विफल कर दिया। तब मुनि ने दिव्यास्त्र प्रहार से राजा का तरकस, धनुष, रथ, सारथि तथा दुर्वह कवच छिन्न-भिन्न कर दिया। इससे राजा क्रोध में भर गया और दत्तात्रेय मुनि प्रदत्त मात्र एक पुरुष का नाश करने वाला शक्ति अस्त्र उठाया। दत्त मुनि को प्रणाम करके राजा ने उत्सुक चित्त से सैकड़ों सूर्य के समान दीप्तिमान् शक्ति लेकर उसे घुमाने लगा।।२०-२५।

यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च। शंभोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद॥२६॥
तत्रैवाऽऽवाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम्। तेजसा द्योतयामास गगनं च दिशो दश॥२७॥

दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारेण चुक्रुशुः।
आकाशस्थाश्च समरं पश्यन्तो दुःखिता हृदा॥२८॥

हे नारद! उस योगी राजा ने सभी देवों का तेज, नारायण-शंभु-ब्रह्मा-माया का तेज आवाहन मन्त्रों से उस शक्ति में समाहित कराया। इससे आकाश तथा दसों दिशायें उस तेज से द्योतित हो उठीं। उस शक्ति का प्रहार राजा को मुनि पर करते देख कर समस्त देवता हाहाकार करने लगे। वे दुःखी हृदय के साथ आकाशस्थ होकर उस महायुद्ध को देख रहे थे।।२६-२८।।

चिक्षेप तां चूर्णयित्वा कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। सद्यः पपात सा शक्तिर्ज्वलन्ती मुनिवक्षसि॥२९॥

जब कार्त्तवीर्य ने वेग पूर्वक घुमा कर उस शक्ति का प्रहार मुनि पर किया, तब दीप्तमान शक्ति मुनि के वक्ष पर जा गिरी!।।२९।।

विदार्योरो मुनेः शक्तिर्जगाम हरिसंनिधिम्।
दत्ताय[1] हरिणा दत्ता शस्त्रास्त्रनिधये तदा।।३०।।
मूर्च्छां संप्राप्य स मुनिः प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम्।
तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह।।३१।।
युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः।
हे तात तातेत्युच्चार्य गोलोकं सा जगाम ह।।३२।।

सर्वं सा कथयामास गोलोके कृष्णमीश्वरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं गोपैर्गोपीभिरावृतम्।।३३।।

मुनि का वक्षःस्थल विदीर्ण करती वह शक्ति तत्काल वहां से श्रीहरि के पास चली गई, जो शक्ति पूर्वकाल में श्रीहरि ने शस्त्रों के निधिस्वरूप महर्षि दत्त को दिया था। तत्क्षण प्रहार से मूर्च्छित उन मुनि ने अपना प्राण त्याग दिया। वे अपने तेज से गगन को उद्भासित करते ब्रह्मलोक चले गये। युद्ध में मुनि को मृत देख कपिला रोने लगी। वह "हे तात! हे तात!" कहती गोलोक चली गयी तथा वहां जाकर उसने ईश्वर कृष्ण से समस्त वृत्तान्त कहा जो प्रभु वहां रत्नसिंहासनासीन थे तथा गोपीगण से घिरे थे।।३०-३३।।

कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा। सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन्भृगुणा जमदग्नये।।३४।।
नत्वा च कामधेनुनां समूहं सा जगाम ह। तदश्रुबिन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो बभूव ह।।३५।।

हे ब्रह्मन्! सर्वाग्र में कृष्ण द्वारा सुरभि ब्रह्मा को प्रदान की गयी थी, जिन्होंने भृगु को, भृगु ऋषि ने परम प्रेम के कारण जमदग्नि को पुष्कर तीर्थ में प्रदान किया था। वह धरती पर गौओं के समूह का नमन करके गोलोक गयी। उसके अश्रुपात से पृथिवी लोक में नाना रत्न उत्पन्न हो गये।।३४-३५।।

अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम्।
प्रायश्चित्तं विनिर्वर्त्य जगाम स्वपुरं मुदा।।३६।।
प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुका सती।
मुनिं वक्षसि संस्थाप्य क्षणं मूर्च्छामवाप सा।।३७।।

राजा ने जब मुनि का वध कर दिया, तब वह अपनी सेना से कह कर प्रायश्चित्तार्थ गया। प्रायश्चित्त करके वह मुदित मन से पुनः अपनी नगरी लौट आया। जब ऋषिपत्नी रेणुका ने पति का मरण समाचार सुना, वह सती नारी पति के पास आई तथा मुनि के शव को गोद में रख कर मूर्च्छित हो गई।।३६-३७।।

---

१. ०त्ता दत्तेनैव नृपाय सा।

ततः सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता। एहि वत्सभृगो राम राम रामेत्युवाच ह॥३८॥

आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणाद्वै पुष्करादहो।
ननाम मातरं भक्त्या मनोयायी च योगवित्॥३९॥

तथापि संज्ञालाभ होने पर वह पतिव्रता रुदन न करके हे वत्स! हे भृगु! हे राम! कह कर पुकारने लगी। परशुराम मनोवेगगामी थे। वे माता का आह्वान सुन कर तत्काल पुष्कर से वहां आये तथा उन योगज्ञ ने माता को प्रणाम किया॥३८-३९॥

दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्तां जननीं सतीम्।
आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा[1]॥४०॥

विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च। चितां चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम्॥४१॥
रेणुका राममादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि। चुचुम्ब गण्डे शिरसि रुरोदोच्चैर्भृशं मुने॥४२॥

राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च।
वत्स वत्सेति कृत्वैवं विललाप भृशं मुहुः॥४३॥
मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृणु।
पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा याया युद्धं न पुत्रक॥४४॥
गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम्।
समरं[2] नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैः सह॥४५॥

तभी राम ने मृत पिता को तथा सती माता को शोकार्त्त देखा। उन्होंने कपिला को गोलोक जाते देखा तथा माता से समस्त युद्ध वृत्तान्त भी श्रवण किया। वे भी "हे माता! हे पिता!" कहते हुए उन योगीन्द्र ने चन्दनकाष्ठ को घृतयुक्त करके चिता निर्माण किया। तदनन्तर रेणुका ने राम को हृदय से लगा कर उनके मस्तक तथा कपोलों का चुम्बन लिया तथा बारम्बार यह कहते रुदन करने लगीं "हे महाबाहो राम! हे वत्स! तुमको छोड़ कर कहां जाऊं?" वह सती रेणुका यह कहती बारम्बार विलाप करने लगीं। सती रेणुका अब देहत्याग के लिये कृतसंकल्पा हो गईं। उन्होंने कहा "हे वत्स! मेरा कथन सुनो। पिता-माता की और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके तुम कदापि युद्धार्थ मत जाना। हे वत्स! तुम सुख पूर्वक घर में रहना, तुम चिरस्थायी तपस्याकार्य में निरत रह कर कदापि असुखप्रद युद्धकार्य में प्रवृत्त मत होना। भीषण क्षत्रियों के साथ युद्ध करना कदापि सुखदायक कार्य नहीं है॥४०-४५॥

मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञां तां चकार ह।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि ध्रुवं महीम्॥४६॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम्।
पितृंश्च तर्पयिष्यामि क्षत्रियक्षतजैस्तथा॥४७॥

---

१. क. शुभाम्।
२. रं ते नैव शुभ्रं दा०।

इत्युदीर्य पुरो मातुर्विललाप मुहुर्मुहुः। हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम्॥४८॥

भृगुकुलोद्भव परशुराम ने माता का वह निषेधवाक्य तो सुना, तथापि उन्होंने माता के कथन पर विशेष मनोयोग न देकर यह प्रण किया कि मैं २१ बार पृथिवी को क्षत्रिय रहित कर दूंगा। मैं खेल-खेल में उस अधम क्षत्रिय कार्त्तवीर्य का वध करके क्षत्रिय रक्त द्वारा पितृतर्पण करूंगा। परशुराम माता के समक्ष कह कर पुनः-पुनः रोने लगे। उन्होंने माता से हितप्रद नीतियुक्त तथ्य कहा-।।४६-४८।।

राम उवाच

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रुवम्॥४९॥

(परशु) राम कहते हैं-जो पुत्र पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता तथा पिता-माता के घातक का मस्तक नहीं काटता, वह मूर्ख पुत्र देहान्त होने पर निश्चित ही रौरव नरक जाता है।।४९।।

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः[1]॥५०॥
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुजल्पकः। एकादशैते पापिष्ठा बधार्हा वेदसंमताः॥५१॥

जो गृह को जलाता है, विष देता है, शस्त्रधारी होकर वधार्थ उद्यत रहता है, सर्वस्व हरण करता है, भूमि तथा पत्नी हरण करता है, किसी के पिता तथा बन्धुगण की हिंसा करता है, सदा अनिष्ट चिन्तन करता है, लोगों की पीठ पीछे निन्दा करता है, किसी की जीविका की हानि करता है अथवा कटु वाक्य बोल कर लोगों का अपमान करता है, ये सभी ११ प्रकार के अनिष्टकारी व्यक्तिगण अत्यन्त पापी हैं। ये सभी वध योग्य हैं। यह वेदसम्मत मत है।।५०-५१।।

द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनं चैव वधमाहूर्मनीषिणः॥५२॥

हे माता! साध्वी! यदि ब्राह्मण भी इन सब कार्य में लिप्त होते हैं, तब उनका धन राजा लेकर उसका मस्तक मुण्डन करके राज्य से निष्कासित करे। यह पण्डितों द्वारा कथित व्यवस्था है। अथवा उनको बेतों से ताड़ित करे। ब्राह्मण के लिये यह मृत्युतुल्य है। ऐसा विद्वान् कहते हैं।।५२।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजगाम भृगुः स्वयम्।
अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेन विदूयता॥५३॥
दृष्ट्वा तं रेणुकारामौ विनतौ संबभूवतुः। स तावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च॥५४॥

तभी वहां स्वयं महर्षि भृगु आये। वे मनस्वी अत्यन्त त्रस्त थे। उनका हृदय अत्यन्त दुःखी था। जब उन्होंने रेणुका तथा परशुराम को प्रणत तथा विनयावनत देखा, तब मुनिप्रवर भृगुदेव उनसे परलोक के लिये हितकारी तथा वेदोक्त वचन कहने लगे-।।५३-५४।।

भृगुरुवाच

मद्वंशजातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसे सुत। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारे च चराचरम्॥५५॥

१. षड़ेते आततायिनः इति वा पाठः।

ऋषि भृगु कहते हैं–हे पुत्र! तुम मेरे वंश में जन्मे हो। तुम स्वयं ज्ञानी हो। तब क्यों यह अनर्थक प्रलाप कर रहे हो? इस संसार में स्थावर-अस्थावर जो देख रहे हो, सभी पानी के बुलबुले जैसा क्षण स्थायी ही है।।५५।।

सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक। यद्गतं तद्गतं वत्स गतं नैवाऽऽगमिष्यति॥५६॥
यद्भवेतद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति। पूर्वार्जितं स्वीयकर्मफलं केन निवार्यते॥५७॥

हे पुत्र! तुम सत्य के साररूप, सत्य के बीजरूप श्रीकृष्ण का चिन्तन करो। हे वत्स! जो चला गया, वह लौट कर नहीं आता। जो एक बार गया, वह पुनः प्रत्यागत नहीं होता। अतः उसके लिये चिन्ता मत करो। इस संसार में जो कुछ वर्त्तमान में हो रहा है, उसका कोई भी निवारण नहीं कर सकता। जो कुछ भविष्य में होगा, उसे भविष्य में कोई निवारित नहीं कर पायेगा। वह अवश्य घटित होगा। जीवगण के अदृष्ट से सम्भूत जो कुछ होता है, उसका निवारण कर सकने में कोई संभव ही नहीं है।।५६-५७।।

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्कृष्णेन निरूपितम्।
निरूपितं यत्तत्कर्म केन वत्स निवार्यते॥५८॥
मायाबीजं मायिनां च शरीरं पाञ्चभौतिकम्। संकेतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत॥५९॥
क्षुधा[१] निद्रा दया शान्तिः क्षमा कान्त्यादयस्तथा।
यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि॥६०॥

हे वत्स! भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान को जगदीश्वर निर्धारित करते हैं। उनके द्वारा निरूपित कार्य समूह का कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। हे पुत्र! पंचभूतों से निर्मित देह तो मायीय लोगों का मायाबीज है। यह अनित्य है। ये सभी घट-पटादि नाम तो संकेत मात्र हैं। यह भी प्रातःकालीन स्वप्नवत् अलीक है। इस पंचभूतात्मक देह से शरीर से जब आत्मा बहिर्गत् हो जाता है, तब क्षुधा, निद्रा, शान्ति, क्षमा, कान्ति तथा मन एवं ज्ञान सहित प्राण भी देह से निर्गत हो जाते हैं।।५८-६०।।

बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किङ्कराः।
सर्वे तमनुगच्छन्ति तं कृष्णं भज यत्नतः॥६१॥

जिस प्रकार सेवकगण राजा का अनुगमन करते हैं, तदनुरूप बुद्धि एवं क्षमता आदि सभी पदार्थ देहस्थ परमात्मा का ही अनुगमन करते हैं। अतः तुम परमात्मारूपी कृष्ण की उपासना करो।।६१।।

के वा केषां च पितरः के वा केषां सुताः सुत।
कर्मभिः प्रेरिताः सर्वे भवाब्धौ दुस्तरे परम्॥६२॥

हे पुत्र! इस जगत् में कोई किसी का पिता नहीं है, कोई किसी की सन्तान नहीं है। यह सब भ्रम

१. क. क्षुन्निद्रातृड्द०।

मात्र है। जीवगण अतीव भयानक दुष्पार संसार-सागर में अपने सुकृत तथा दुष्कृत कार्यस्वरूप तरंगमाला द्वारा आलोड़ित होकर इतस्ततः परिभ्रमण करते हैं। यह संसार-सागर अत्यन्त दुष्पार है।।६२।।

ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र सांप्रतम्। रोदनाश्रुप्रपतानान्मृतानां नरकं ध्रुवम्।।६३।।

सङ्कताख्योच्चारणेन यद्वदन्ति च बान्धवाः।
शतवर्ष रुदित्वा तं प्राप्नुवन्ति न निश्चितम्।।६४।।

जो लोग बुद्धिमान हैं, वे आत्मीयगण के विरह में कदापि रोदन नहीं करते। हे पुत्र! तुम भी अपने पिता हेतु शोक से अभिभूत होकर रुदन मत करो। शास्त्रों में कहा गया है कि जब पुत्र-पत्नी आदि रोते हैं, तब परलोकगत व्यक्ति का अधःपतन होता है। आत्मीय की मृत्यु होने पर बन्धुवर्ग उसका नामोच्चार करके जो रोदन करते हैं, वह केवल मोह मात्र ही है। १०० वर्ष भी रुदनरत रहने पर उस मृतक को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता! यह निश्चित है।।६३-६४।।

पार्थिवांशं च पृथिवी गृह्णात्यस्थित्वचादिकम्।
तोयांशं च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा।।६५।।
वाय्वंशं च तथा वायुस्तेजस्तेजांशकं तथा।
सर्वे विलीनाः सर्वेषु को वाऽऽयास्यति रोदनात्।।६६।।

जब लोगों के देह में स्थित परमात्मा देहत्याग कर देते हैं, तब देहनिर्वाहक पृथिवी तत्व का अंश पृथिवी में, जलांश जल में, आकाशभाग महाकाश में, वायुभाग प्रबल वायु में तथा तेजभाग तेजोराशि में मिश्रित हो जाता है। वह बन्धुवर्ग के रुदन तथा शोक करने से पुनः वापस लौट कर नहीं आ जाता! जब सब कुछ विलीन हो गया, तब रुदन से कौन आयेगा?।।६५-६६।।

नामश्रुतियशःकर्मकथामात्रावशेषितः। वेदोक्तं चैव यत्कर्म कुरु तत्पारलौकिकम्।।६७।।

स च बन्धुः सुपुत्रश्च परलोकहिताय यः।
भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज तत्क्षणम्।
रेणुका च महासाध्वी तं वक्तुमुपचक्रमे।।६८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निसंहारपरशुरामप्रतिज्ञादिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

तब प्राणी का नाम, यश, उसके कर्म की कथामात्र बचना कहा गया है। इसलिये वेद में निर्धारित और्ध्वदैहिक क्रियादि पारलौकिक कर्म को अवश्य सम्पन्न करो। जो परलोकगत व्यक्ति के लिये पारलौकिक कर्म करे, वही उसका हितैषी, पुत्र तथा बन्धु ही है। भृगु का यह वचन सुन कर महासाध्वी रेणुका शोक रहित होकर कहने लगीं-।।६७-६८।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

भृगु-रेणुका संवाद, परशुराम का ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्मा के साथ परशुराम की वार्त्ता

रेणुकोवाच

ब्रह्मन्ननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य सांप्रतम्। ऋतोश्चतुर्थदिवसे मृतोऽयं चाद्य मानवः॥१॥
कर्तव्या का व्यवस्थाऽत्र वद वेदविदां वर। त्वमागतो मे सहसा पुण्येन कतिजन्मनाम्॥२॥

देवी रेणुका कहती हैं–हे ब्रह्मन्! मैं इसी समय अपने प्राणपति के साथ सहगमन करूंगी। यही मेरी कामना है, तथापि हे गुरु! इस समय मेरा ऋतुकाल हो गया। आज चौथा दिन है। मेरे पूज्य पति मेरा त्याग करके परलोकगत हो गये। मैं अशुद्ध हूं, क्या करूं? आप वेदशास्त्रज्ञ तथा पण्डितों में श्रेष्ठतम हैं। इस सम्बन्ध में जो शास्त्रोक्त व्यवस्था हो वह कहिये। मैं आपके आदेशानुरूप कार्य करूंगी। मेरा दीर्घकाल का पुण्य संचित रहा होगा जिसके पुण्यबल से आप आ गये।।१–२।।

भृगुरुवाच

अहो पुण्यवतो भर्तुरनुगच्छ महासति। चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु॥३॥
शुद्धा भर्तुश्चर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपित्र्ययोः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽह्नि विशुध्यति॥४॥
व्यालग्राही यथा व्यालं विलादुद्धरते बलात्।
तद्वस्त्वामिनमादाय साध्वी स्वर्गं प्रयाति च॥५॥

भृगु ऋषि कहते हैं–हे महासती! तुम अभी अपने पुण्यात्मा पति का अनुगमन करो। नारीगण ऋतु के चौथे दिन अपने स्वामी के समस्त कार्य के लिये शुद्ध हो जाती है। केवल दैव एवं पितृकर्म हेतु पंचम दिन शुद्ध होती हैं। जैसे सपेरा व्यक्ति बलात् बिल में से सर्प निकाल लेता है, वैसे ही पतिव्रता नारी स्वकृत सत्कर्म से उसे लेकर स्वर्ग जाती है, भले ही पति पातकी क्यों न हो।।३–५।।

मोदते स्वामिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
अत ऊर्ध्वं कर्मभोगं भुङ्क्ष्व साध्वि शुभाशुभम्॥६॥
स पुत्रो भक्तिदाता यः सा च स्त्री याऽनुगच्छति।
स बन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥७॥

इस प्रकार वह पतिव्रता नारी पति के साथ स्वर्ग जाकर वहां चौदह इन्द्रों के आयुकाल पर्यन्त स्वामी सहित आनन्द मग्न रह कर तदनन्तर शुभाशुभ कर्म भोग करती है। तुम भी यही करो। यथार्थ पुत्र वह है, जो मातृ तथा पितृभक्त हो। जो नारी पतिव्रतधर्मतत्परा है, वही यथार्थ नारी है। जो व्यक्ति असमय में सहायता करके जीवन रक्षा करे, वही यथार्थ बन्धु है। जो शिष्य गुरुसेवाकार्य में रत है, वही यथार्थ शिष्य है।।६–७।।

सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत्स राजा पालयेत्प्रजाः। स च स्वामी प्रियां धर्ममतिं दातुमिहेश्वरः॥८॥

इष्टदेव वही है, जो अर्चक की रक्षा करे। जो प्रजापालक हो, वही यथार्थ राजा है, पति वही है, जो पत्नी को धर्मतत्पर बनाये॥८॥

स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या पुराणेषु च निश्चितम्॥९॥

गुरु उसे ही कहते हैं, जो धर्म तथा हरिभक्ति प्रदान करे। यही लोग वेद-पुराण में प्रशंसनीय कहे गये हैं। यह निश्चित है॥९॥

रेणुकोवाच

गन्तुं स्वस्वामिना सार्धं का शक्ता भारते मुने।
का वाऽप्यशक्ता नारीषु तन्मे ब्रूहि तपोधन॥१०॥

रेणुका कहती हैं—हे मुनिवर! भारतवर्ष में कौन-कौन रमणी स्वामी के साथ सहगमन की अधिकारिणी होती है तथा कौन नहीं होती? हे तपोधन! यह मुझसे विशेषतया कहिये॥१०॥

भृगुरुवाच

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता॥११॥

पतिसेवा विहीना या ह्यभक्ता कटुभाषिणी।
एता गच्छन्ति चेद्दैवात्र कान्तं प्राप्नुवन्ति ताः॥१२॥

भृगु कहते हैं—जिस नारी का पुत्र अभी बालक है, जो गर्भावस्था में है, जिसका अभी तक ऋतुकाल नहीं हुआ है, जो ऋतुमती है, जो व्यभिचारिणी है, जो गलितकुष्ठादि महारोगी है, जो पहले से ही पति की सेवा से विमुख थी, जो पतिभक्ति रहित है, जो स्वामी से सदा कटु वाक्य बोलती थी, ये नारी यदि परलोक में सुखलाभार्थ कदाचित् पति के साथ सहगमन करती है, ये परलोकगत होकर भी परलोकगति पति के पास नहीं जा सकतीं। इनको स्वामी सहित सहगमन का अधिकार नहीं होता॥११-१२॥

संस्कृताग्निं पुरो दत्त्वा चितासु शयितं पतिम्।
कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत्प्राप्नुवन्ति ताः॥१३॥
अनुगच्छन्ति याः कान्तं तमेव प्राप्नुवन्ति ताः।
सार्धं कृत्वा पुण्यभोगं दिवि जन्मनि जन्मनि॥१४॥
इयं ते कथिता साध्वि व्यवस्था गृहिणां ध्रुवम्।
तीर्थे ज्ञानमृतानां च वैष्णवानां गतिं शृणु॥१५॥
या साध्वी वैष्णवं कान्तं यत्र यत्रानुगच्छति।
प्रयाति स्वामिना सार्धं वैकुण्ठे हरिसंनिधिम्॥१६॥

नारी को चाहिए कि वह चिता पर पति को लिटा कर उसके सामने संस्कृत अग्नि प्रदान करके (अग्नि लगाकर) पति का अनुगमन करे। ये (उपरोक्त सुलक्षणा) नारीगण ही परलोक में अपने पति को प्राप्त कर लेती हैं। हे पतिव्रते! मैंने तुमसे गृहस्थ पति की सहगामिनी साध्वी स्त्रीगण के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की नियमावली कह दिया। अब तीर्थ में जो अपनी इच्छा से रह कर मृत होते हैं, उन वैष्णवगण की गति सुनो। पतिव्रता नारी का वैष्णव पति जहां जाता है, वे नारीगण पति के साथ जाती हैं। वे पति के साथ वैकुण्ठ जाती हैं।।१३-१६।।

विशेषे नास्ति भक्तानां तीर्थे वाऽन्यत्र नारद।
मरणेन फलं तुल्यं मुक्तानां कृष्णभाविताम्॥१७॥
तयोः पातो नास्ति तस्मान्महति प्रलये सति।
नारायणं तं भजेत पुमांस्त्री कमलालयाम्॥१८॥

हे नारद! कृष्णभक्त यदि तीर्थ में मृत होता है, इसमें उसके लिये कोई विशेषता नहीं है। वह तो चाहे तीर्थ में किंवा कहीं भी प्राण त्याग करे, वह तो जीवन्मुक्त है। ऐसा भक्त तो महाप्रलय में भी पतनग्रस्त-स्वपद से च्युत नहीं होता। तभी पति-पत्नी सदा नारायण तथा लक्ष्मी की सेवा (भजन) करें।।१७-१८।।

तीर्थे ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम्।
सभार्यो मोदते तत्र यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥१९॥

जो व्यक्ति तीर्थ में रहता हुआ ज्ञानतः वहां रह कर मृत होता है, जब तक १४ भुवनों में १०० ब्रह्मा का जीवन काल एक के बाद एक व्यतीत नहीं हो जाता, तब तक वह वैकुण्ठ लोक में सपत्नीक आनन्द पूर्वक कालयापन करता रहता है।।१९।।

इत्युक्त्वा रेणुकां तत्र जामदग्न्यमुवाच ह।
वेदोक्तं वचनं [1]सर्वं स भृगुः समयोचितम्॥२०॥

महर्षि भृगु ने इस प्रकार देवी रेणुका को उपदेश देकर परशुराम से कहा। उनका उपदेश समयोचित तथा वेद सम्मत था।।२०।।

एहि वत्स महाभाग त्यज शोकममङ्गलम्। उत्तानं कुरु तातं च दक्षिणाशिरसं भृगो॥२१॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च नूतनं परिधापय। अनश्रुनयनो भूत्वा संतिष्ठन्दक्षिणामुखः॥२२॥

अरणीसंभवाग्निं च गृहाण प्रीतिपूर्वकम्।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वेषां स्मरणं कुरु॥२३॥

(भृगु कहते हैं)-हे वत्स! महाभाग! अमंगलकारी शोक का त्याग करके श्मशान में चलो। हे

---

१. क. सत्यं।

भृगुवंशावतंस! तुम पिता के शव का शिर दक्षिण की ओर करके उत्तान लिटाओ। उसे नव वस्त्र तथा यज्ञोपवीत धारण कराओ। लेकिन तुम उस समय अश्रुपात कदापि मत करना तथा दक्षिण मुख रहना। उस समय अरणि से उत्पन्न अग्नि को लेना। धरती पर जितने तीर्थ हैं, उनका स्मरण करना।।२१-२३।।

गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः।
कुरुक्षेत्रं च गङ्गां च यमुनां च सरिद्वराम्॥२४॥
कौशिकीं चन्द्रभागां च सर्वपापप्रणाशिनीम्।
गण्डकीमथ काशीं च पनसां सरयूं तथा॥२५॥
पुष्पभद्रां च भद्रां च नर्मदां च सरस्वतीम्।
गोदावरीं च कावेरीं स्वर्णरेखां च पुष्करम्॥२६॥

रैवतं च वराहं च श्रीशैलं गन्धमादनम्। हिमालयं च कैलासं सुमेरुं रत्नपूर्वकम्॥२७॥
वाराणसीं प्रयागं च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। हरिद्वारं च बदरीं स्मारंस्मारं पुनः पुनः॥२८॥

यथा—गया आदि तीर्थ, पुण्यपर्वत, कुरुक्षेत्र, गंगा, नदियों में श्रेष्ठा यमुना, कौशिकी, सर्वपातक नाशिनी चन्द्रभागा, गण्डकी, अवकाशी, पनसा, सरयु, पनसा, पुष्पभद्रा, भद्रा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, स्वर्णरेखा, पुष्कर, रैवत, वराह, श्रीशैल, गंधमादन, हिमवान्, कैलास, रत्नशैल, सुमेरु, वाराणसी, प्रयाग, पुण्यमय वृन्दावन, हरिद्वार, बदरीक्षेत्र का पुनः-पुनः स्मरण करना।।२४-२८।।

चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमं तथा। प्रदाय वाससाऽऽच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि॥२९॥

कर्णाक्षिनासिकास्ये त्वं शलाकां च हिरण्मयीम्।
कृत्वा निर्मन्थनं तात विप्रेभ्यो देहि सादरम्॥३०॥

सतिलं ताम्रपात्रं च धेनुं च रजतं तथा। सदक्षिणं सुवर्णं च दत्त्वाऽग्निं देह्यकातरः॥३१॥

चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, सुगंधित पुष्प को पिता के शव पर रखना। दो वस्त्र धारण कराने के पश्चात् चिता सज्जित करना। (शव रखना)। तदनन्तर कान, नेत्र, नाक तथा मुख आदि नवों द्वार में स्वर्णखण्ड रख कर आवृत करना। हे तात! तिलपूर्ण ताम्रपात्र, सवत्सा गौ, रजत तथा दक्षिणा स्वर्ण बिना कातर मन हुए आदर के साथ ब्राह्मण को देकर अव्याकुल चित्त से पिता के शव पर अग्नि प्रदान करना।।२९-३१।।

ॐ कृत्वा दुष्कृतं कर्म जानता वाऽप्यजानता।
मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥३२॥
धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्।
दह सर्वाणि गात्राणि दिव्यांल्लोकान्स गच्छतु॥३३॥

तब यह मन्त्र कहे—ॐ ज्ञानतः किंवा अज्ञानतः दुष्कर्मादि करके मनुष्य मनुष्य मृत हो गया।

हे अग्नि! अब धर्माधर्म युक्त एवं लोभ-मोह से आच्छन्न इसके सभी अंगों पर मैं अग्नि प्रदान करता हूं। इसे दग्ध करो। यह दिव्यलोक गमन करे।।३२-३३।।

इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्।
मन्त्रेणानेन देह्यग्निं जनकाय हरिं स्मरन्।।३४।।
ॐ अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयो जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति वद सांप्रतम्।।३५।।

यह चिता का प्रदक्षिणा मन्त्र है। इससे चिता पर लेटे पिता के शव की प्रदक्षिणा करके हरिनाम स्मरण करना, तब अग्निसंस्कार करते हुए अपने भ्रातागण के साथ कहना "ॐ तुम हमारे कुल में उत्पन्न हुए हो। तुमसे हम उत्पन्न हैं। अब हे अग्नि! ये स्वर्गलोक गमन करें। स्वाहा"।।३४-३५।

अग्निं देहि शिरःस्थानं हे भृगो भ्रातृभिः सह।
तच्चकार भृगुः सर्वं सगोत्रैराज्ञया भृगोः।।३६।।

हे परशुराम! तब भ्रातागण के साथ शव के शिरोभाग में अग्नि स्पर्श कराओ। भृगुमुनि के उपदेशानुरूप परशुराम ने सगोत्रीगण के साथ समस्त कार्य सम्पन्न किया।।३६।।

अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि। उवाच किञ्चिद्वचनं परिणामसुखावहम्।।३७।।

तदनन्तर रेणुका ने परशुराम को वक्ष से लगाया तथा परिणाम से सुखप्रद कुछ उपदेश उनको प्रदान किया।।३७।।

अविरोधो भवाब्धौ च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विरोधो नाशबीजं च सर्वोपद्रवकारणम्।।३८।।
अकर्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह। प्रतिज्ञा चैषा कर्तव्या मदीयं वचनं शृणु।।३९।।

आलोच्य ब्रह्मणा सार्धं भृगुणा दिव्यमन्त्रिणा।
यथोचितं च कर्तव्यं सद्भिरालोचनं शुभम्।।४०।।

(रेणुका कहती है)-तुम लोगों से विवाद मत करना। यह संसार में अत्यन्त मंगल प्रदान करेगा। हे वत्स! लोगों से विवाद करने पर असंख्य उपद्रव झेलना पड़ता है। अपना विनाश पर्यन्त हो जाता है। हे वत्स! इन निर्भीक क्षत्रियों से विवाद करना उचित नहीं होगा। प्रतिज्ञा करने से भी विरोध शान्ति नहीं होगी। अतः जो कहती हूं श्रवण करो। यह प्रतिज्ञा करो कि क्षत्रियों से विवाद नहीं करोगे! सभी कार्य ब्रह्मा तथा दिव्य मंत्रणा देने वाले भृगु से विचार करके करना, जो परामर्श सज्जनगण प्रदान करते हैं, वही शुभप्रद है।।३८-४०।।

इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि।
सा सुष्वाप चितायां च पश्यन्ती तं हरिस्मृतिः।।४१।।
वह्निं ददौ चितायां च स रामो भ्रातृभिः सह।
भ्रातृभिः पितृशिष्यैश्च सार्धं स विललाप च।।४२।।

राम रामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य सा सती।
पुरस्ताज्जामदग्न्यस्य भस्मीभूता बभूव सा॥४३॥
भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राऽऽजग्मुर्हरेश्चराः।
रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः॥४४॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः॥४५॥

यह कह कर रेणुका ने परशुराम को वक्ष से अलग किया तथा पति को क्रोड़ में लेकर प्रभुस्मरण करते वे पति को देखते चिता पर लेट गयीं। तदनन्तर परशुराम ने भ्राताओं सहित चिताग्नि प्रदान किया। वे भाईयों तथा जमदग्नि के शिष्यों के साथ विलाप करने लगे। उधर रेणुका भी हे राम! हे राम! कहती परशुराम के समक्ष भस्मीभूत हो गयीं। तदनन्तर प्रभु का नाम सुन कर वहां विष्णुदूत पहुंच गये। वे सभी रथारूढ़, श्यामवर्ण, चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाला पहने हुए, किरीट-कुण्डल तथा पीत वस्त्र से शोभित हो रहे थे।।४१-४५।।

रथे कृत्वा रेणुकां तां गत्वा ते ब्रह्मणः पदम्।
जमदग्निं समादाय प्रजग्मुर्हरिसंनिधिम्॥४६॥
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थतुर्हरिसंनिधौ। कृत्वा दास्यं हरेः शश्वत्सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥४७॥

उन विष्णु पार्षदगण ने जमदग्नि एवं रेणुका को रथारूढ़ कराया तथा ब्रह्मलोक होते उनको वैकुण्ठ धाम पहुंचा दिया। वे अब प्रभु के समीप रहने लगे। मंगल का भी मंगल करने वाले प्रभु की वे दास्यभक्ति में निरत रहने लगे।।४६-४७।।

अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद।
पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ॥४८॥
गोभूहिरण्यवासांसि दिव्यशय्यां मनोरमाम्। सुवर्णाधारसहितां जलमन्नं च चन्दनम्॥४९॥
रत्नदीपं रौप्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम्। सुवर्णाधारसहितं ताम्बूलं च सुवासितम्॥५०॥
छत्रं च पादुके चैव फलं माल्यं मनोहरम्। फलं मूलादिकं चैव मिष्टान्नं च मनोहरम्।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः॥५१॥

हे नारद! परशुराम ने पिता-माता का दाहकार्य करके परलोकगत पिता-माता का आद्य श्राद्धादि कार्य निर्वाह करने के अनन्तर असंख्य ब्राह्मणगण को प्रचुर धन, असंख्य गौ, स्वर्ण, नाना वस्त्र, मनोहर उत्तम शय्या, स्वर्णपात्र सहित चार प्रकार का अन्न, शीतल जल, सुगन्धित चन्दन, रत्नमय दीप, चांदी का पर्वत, महामूल्य स्वर्णासन, सुगन्धित ताम्बूल, छत्र, पादुका, नाना फल, पुष्पमाला, मूल-फल प्रभृति खाद्य द्रव्य, स्वादिष्ट उत्तम मिष्ठान्न तथा दक्षिणा हेतु प्रभूत धनराशि प्रदान किया। तदनन्तर परशुराम ब्रह्मलोक चले गये।।४८-५१।।

ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम्।
स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम्॥५२॥

ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। रत्नसिंहानस्थं च रत्नभूषणभूषितम्॥५३॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च ऋषीन्द्रैः परिवेष्टितम्।
विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥५४॥
सङ्गीतमुपशृण्वन्तं गीयमानं च गायकैः। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम्॥५५॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। धातरं सर्वजगतां कर्तारं चेश्वरं परम्॥५६॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम्। गुह्ययोगं प्रवोचन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम्॥५७॥

परशुराम ने वहां देखा कि ब्रह्मलोक स्वर्णमय है। उसकी दीवार भी स्वर्ण की ईंटों से निर्मित है। बहिर्द्वार स्वर्ण कुम्भ से शोभायमान होकर दीप्ति प्रदान कर रहा है। वहां ब्रह्मा अपने तेज से उज्ज्वल प्रभायुक्त होकर तथा रत्नमय अलंकार धारण करके रत्नसिंहासनासीन थे। उनके चतुर्दिक् सिद्ध, देवर्षि, विप्रर्षि खड़े थे। वहां विद्याधरियां नृत्यरत थीं। भगवान् सर्वलोक पितामह ब्रह्मदेव सानन्द चित्त से हंसते हुए वह देख रहे थे। वहां किन्नरों का गायन हो रहा था। ब्रह्मा वह भी सुन रहे थे। चन्दन-अगुरु-कस्तूरी तथा कुंकुम आदि सुगन्धद्रव्य से उनका शरीर शोभायमान होकर असाधारण श्रीयुक्त था। वे तपस्वियों को उनके कर्मानुरूप फल प्रदान कर रहे थे। वे सर्व सम्पत्तिप्रदाता, जगत्कर्त्ता, पालनकर्त्ता ब्रह्मा परब्रह्म परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण का नाम जप कर रहे थे। शिष्यों की जिज्ञासा पर उनको गुह्ययोग का उपदेश दे रहे थे।॥५२-५७॥

दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः।
उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह॥५८॥

उन अव्यय प्रभु को देख कर परशुराम ने आगे बढ़ कर ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा उच्च स्वर से रुदन करते उनको अपना आने का प्रयोजन बतलाया।॥५८॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मंस्त्वद्वंशजोऽहं जमदग्निसुतो विधे। पितामहस्त्वमस्माकं सर्वज्ञं कथयामि किम्॥५९॥
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम्। पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुभिः॥६०॥
स राजा [1]कपिलालोभात्कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्।
घातयामास मत्तातमित्युक्त्वोच्चै रुरोद सः॥६१॥

(यहां परशुराम को ही भृगु कहा गया है)-भृगु कहते हैं-"हे ब्रह्मन्! विधि! हमने आपके कुल में जन्म लिया है। जमदग्नि मुनि मेरे पिता हैं। आप मेरे पितामह हैं। अपना दुःख अन्य किसी से नहीं कह सकता। राजा कार्त्तवीर्य अर्जुन आखेट करते वन में आया था। वह वन में आहार न मिलने से उपवास रह गया। तब पिता ने कपिला प्रदत्त वस्तु से उसे भोजन प्रदान किया। उस राजा ने कपिला

१. क. मोहा॰।

को प्राप्त करने की लालच में मेरे पिता का वध कर दिया!" यह कह कर परशुराम उच्च स्वर से रोने लगे।।५९-६१।।

निरुध्य वाष्पं स पुनरुवाच करुणानिधिः।
माता मेऽनुगता साध्वी मां विहाय जगद्गुरो॥६२॥
अधुनाऽहमनाथश्च त्वं मे माता पिता गुरुः।
कर्ता पालयिता दाता पाहि मां शरणागतम्॥६३॥
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया। उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिहननं कुरु॥६४॥
स राजा स च धर्मिष्ठः स दयालुर्यशस्करः।
स पूज्यः स स्थिरश्रीश्च यो दीनं परिपालयेत्॥६५॥

तदनन्तर करुणानिधि विधाता से कुछ रुक कर तथा अपने अश्रुओं को रोक कर परशुराम ने कहा—"हे जगत्पिता! पतिव्रताओं में श्रेष्ठ मेरी माता रेणुका ने मेरे प्रति अपने स्नेह-ममत्व को त्याग कर मेरे पिता के साथ सहगमन किया। हे देव! अब मैं अनाथ हूं। आप ही मेरे माता-पिता-गुरु-कर्त्ता-पालयिता-दाता हैं। मैं शरणागत हूं। कृपया रक्षा करिये। मैं आपकी सभा में माता की आज्ञा से आया हूं। हे जगन्नाथ! आप मेरे वैरीगण के नाश का उपाय कहिये। वही राजा है, वही धार्मिक है, वही दयालु तथा यशस्वी है, वही पूज्यनीय है, उसी की श्री स्थिर रहती है, जो दीनों का पालन करता है।।६२-६५।।

धनिदीनौ समं दृष्ट्वा यः प्रजां न च पालयेत्।
[1]तद्गेहाद्याति रुष्टा श्रीः स भवेद्भ्रष्टराज्यकः॥६६॥

जो किसी को धनी (प्रधान), किसी को दीन (अप्रधान) देख कर यथानियम प्रजापालन नहीं करता, लक्ष्मी क्रोधित होकर उसके गृह से चली जाती हैं। वह राज्य तथा सम्पत्ति से विहीन हो जाता है।।६६।।

श्रुत्वा विप्रबटोर्वाक्यं करुणासागरो विधिः।
दत्त्वा शुभाशिषं तस्मै वासयामास वक्षसि॥६७॥
श्रुत्वाा भृगोः प्रतिज्ञां च विस्मितश्चतुराननः।
अतीव दुष्करां घोरां बहुजीवविघातिनीम्॥६८॥
कर्मणा तद्भवेत्सर्वमिति कृत्वा तु मानसे। उवाच जामदग्न्यं तं परिणामसुखावहम्॥६९॥

कृपामय ब्रह्मा ने ब्राह्मण बालक परशुराम का कथन सुन कर उनको हृदय से लगा कर शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने परशुराम से अत्यन्त दुष्कर, भयानक तथा प्राणीविनाशक उनकी प्रतिज्ञा को भी सुना। ब्रह्मा ने विचार किया कि यह सब भवितव्यतानुरूप तो घटित होना ही है।

---

१. ख. तद्देहा०।

इस सम्बन्ध में मेरी चिन्ता व्यर्थ है। तब परिणाम के मंगलदायक वाक्यों को ब्रह्मा ने परशुराम से कहा—।।६७-६९।।

ब्रह्मोवाच

प्रतिज्ञा दुष्करा वत्स बहुजीवविघातिनी। सृष्टिरेषा भगवतः संभवेदीश्वरेच्छया।।७०।।
सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैवेश्वराज्ञया। सृष्टिलुप्तौ प्रतिज्ञा ते दारुणाऽकरुणा परा।।७१।।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम्।
एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि।।७२।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे वत्स! तुम्हारी प्रतिज्ञा दुष्कर तथा बहुत प्राणीगण का विनाश करने वाली है। यह जगत् तो परमेश्वर की इच्छा से निर्मित होता है। हे पुत्र! परमेश्वरी आज्ञा से ही मैंने क्लेश स्वीकार किया तथा जगत् की सृष्टि करता हूं। तुम्हारी प्रतिज्ञा अत्यन्त दारुण तथा करुणा रहित है, जिससे सृष्टि का लोप होगा। तुम धरती को २१ बार क्षत्रिय रहित करना चाहते हो। मात्र एक क्षत्रिय के दोष करने के कारण तुम समस्त जाति का ही हनन करने पर उद्यत हो!।।७०-७२।।

ब्रह्मक्षत्रियविट्छूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः। आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः।।७३।।
अन्यथा त्वत्प्रतिज्ञा च भविता प्राक्तनेन ते। बह्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति[1]।।७४।।
शिवलोकं गच्छ वत्स शङ्करं शरणं व्रज। पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शङ्करकिङ्कराः।।७५।।
विनाऽऽज्ञया महेशस्य को वा तान्हन्तुमीश्वरः।
बिभ्रतः कवचं दिव्यं शवतेर्वै शङ्करस्य च।।७६।।

यह सृष्टि हरि द्वारा प्रदत्त तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र भेद से चतुर्विध है। इसका आविर्भाव-तिरोभाव पुनः-पुनः होता है। अपने प्राक्तन अदृष्ट के द्वारा तुम यह प्रतिज्ञा सफल नहीं कर सकोगे। भले ही अत्यधिक प्रयास से यह सफल हो जाये। इसलिये तुम शिवलोक जाकर शंकर की शरण ग्रहण करो। क्योंकि पृथिवी के बहुसंख्यक राजा शिव के सेवक हैं। महेश्वर की आज्ञा बिना कौन उनका हनन कर सकेगा? उन लोगों में से अनेक ने दिव्य शक्ति कवच तथा शंकर कवच धारण किया है।।७३-७६।।

उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम्। उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः।।७७।।
श्रीकृष्णमन्त्रकवचग्रहणं कुरु शङ्करात्। दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति।।७८।।
गुरुस्ते जगतां नाथः शिवो जन्मनि जन्मनि।
मन्त्रो मत्तो न युक्तस्ते यो युक्तः स भवेद्विधिः।।७९।।
कर्मणा लभ्यते मन्त्रः कर्मणा लभ्यते गुरुः।
स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेषु ते ध्रुवम्।।८०।।

१. क. ०र्भवतु शाश्वती।

त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं वरम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं भृगो॥८१॥

हे परशुराम! तुम यत्नतः मंगलकर क्षत्रिय पराजयरूप जय साधक उपाय का आश्रय लो। उचित उपक्रम का अवलम्बन लेने पर ही कर्मारंभ करना उचित तथा सफलता प्रदाता हो जाता है। तुम शंकर से श्रीकृष्ण का मन्त्र तथा उनका कवच ग्रहण करो। जगत् में अत्यन्त दुष्प्राप्य वैष्णवतेज, शैवतेज किंवा शक्ति का तेज कौन पराभूत कर सकता है? हे राम! जगदीश्वर महादेव तुम्हारे सभी जन्मों के मन्त्रदाता गुरु हैं। अतः तुम्हारा मुझसे मन्त्र ग्रहण करना कदापि युक्तिसंगत नहीं है। भूतभावन भगवान् भव शिव से तुम मन्त्र ग्रहण करो। जो कार्य युक्तिसंगत हो, वही करे। पूर्व जन्मार्जित कर्मानुरूप ही मन्त्र, पति, पत्नी, गुरु तथा इष्टदेवता की प्राप्ति होती है। ये वस्तु पूर्वजन्म में जो जिसके पास रहती हैं, वे अगले जन्म में उसके पास स्वतः आ जाती हैं। इसमें सन्देह न करे। हे भूतभावन राम! तुम महादेव के पास से उत्तम त्रैलोक्यविजय कवच प्राप्त करके इस धरती को २१ बार क्षत्रिय रहित कर सकोगे।।७७-८१।।

दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शङ्करः। तेन दत्तेन शस्त्रेण[1] क्षत्त्रसङ्घं विजेष्यसि॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगोर्ब्रह्मलोकगमने ब्रह्मोक्तोपायवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

हे भृगुवंशी! दाता शंकर तुमको दिव्य पाशुपतास्त्र प्रदान करेंगे। उनके द्वारा प्रदत्त शस्त्र से तुम समस्त क्षत्रिय संघ पर विजय प्राप्त करोगे।।८२।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मा से वर पाकर परशुराम का शिवलोक गमन तथा वहां शिवस्तोत्र पाठ करना

नारायण उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रणम्य च जगद्गुरुम्।
स्फीतस्तस्माद्वरं प्राप्य शिवलोकं जगाम सः॥१॥

लक्षयोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम्। अनिर्वाच्यसुशोभाढ्यं वाय्वाधारं मनोहरम्॥२॥

१. ख. मन्त्रेण।

वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकश्च वामतः। यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात्परः स्मृतः॥३॥
तेषामूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः।
अत ऊर्ध्वं न लोकश्च सर्वोपरि च स स्मृतः॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—भृगुवंशावतंस परशुराम ने विधाता का उपदेश वाक्य सुन कर जगत्पिता ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे वरलाभ किया तथा पुलकित होकर शिवलोक जाने लगे। यह शिवलोक ब्रह्मलोक से भी एक लाख योजन ऊर्ध्व में है। वह ब्रह्मलोक की तुलना में प्रभूत विलक्षणता पूर्ण परिलक्षित होता है। वह इतना मनोहर है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह लोक शून्य में वायु का आधार तथा मनोहर है। इसके दाहिने वैकुण्ठ तथा बायीं ओर गौरी लोक है। इसके अधः भाग में ध्रुवलोक है। यह सभी लोकों से सर्वोपरि कहा गया है। इस सब लोकों के ५० कोटि योजन ऊर्ध्व में गोलोकपुरी विराजित है। गोलोक के ऊपर कोई लोक नहीं है। यह सबके ऊपर स्थित है।।१-४।।

मनोयायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह। उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महदद्भुतम्॥५॥
योगीन्द्राणां वरेण्यैश्च सिद्धविद्याविशारदैः। कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम्॥६॥
वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः। समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम्॥७॥
पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम्। मधुलुब्धमधूम्राणां मधुरध्वनिमोहितम्॥८॥
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम्। योगेन योगिनां सृष्टं स्वेच्छया शङ्करेण च॥९॥

वे मनोगामी योगीप्रवर परशुराम इस प्रकार शिवलोक आये। इस लोक की उपमा देने के लिये कोई उपमेय वस्तु है ही नहीं। यह अत्यन्त अद्भुत लोक है। परशुराम देखते हैं कि यह लोक सिद्धविद्या द्वारा कोटि कल्प तपःश्चरण करने वाले तथा उस तपःतेज से पवित्र होने वाले पुण्यजन से पूर्ण है। यह अनेक मनोरथ प्रदाता, कल्पवृक्षों से व्याप्त, अनगिनत कामधेनु समूह विराजित, पारिजात वृक्षों की वन पंक्तियों से सम्पन्न, मधुलोभी भ्रमर समूह की मधुर ध्वनि से विमोहित, नवपल्लव युक्त वृक्षों से पूर्ण था। यहां नर कोकिलों की कूजन गूंज रही थी। यह लोक योगीगण के योग हेतु शंकर ने स्वेच्छा से सृष्ट किया था।।५-९।।

शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा। जन्तुभिर्वेष्टितं ब्रह्मन्योगदुष्टैर्निरामयैः॥१०॥
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मराजीविराजितैः। पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदा चातिसुशोभितम्॥११॥
मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः। राजमार्गशतैर्दिव्यैः[1] सर्वतः परिभूषितम्॥१२॥
मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम्। नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलशोज्ज्वलैः॥१३॥

यहां जैसा अलौकिक निर्माण तो शिल्पीगण के गुरु विश्वकर्मा ने तो स्वप्न में भी अवलोकन नहीं किया होगा। यह लोक निरामय योग से उत्पन्न जीवगण द्वारा घिरा था। यहां कमलों से शोभित मनोहर असंख्य सरोवर शोभायमान थे। यह लोक पुष्प वाटिकाओं से सदा युक्त रहता था। यह उत्तम

१. क. ०व्यैरभ्यन्तरविभू०।

मणियों के सारभाग से बनी वेदियों से अलंकृत सैकड़ों दिव्य राजमार्गों से यह लोक सर्वत्र परिभूषित था। यह चतुर्दिक् से सुभूषित मणियों के सार से निर्मित सैकड़ों गृहों से युक्त था। वह स्थल उत्तम मणि निर्मित नाना चित्र-विचित्र कलश समूह से समुज्ज्वल था।।१०-१३।।

तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शङ्करालयम्। मणीन्द्रसाररचितप्राकारं सुमनोहरम्।।१४।।
अत्यूर्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम्। षोडशद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः।।१५।।
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः। रत्नस्तम्भकपाटैश्च हीरकेण परिष्कृतैः।।१६।।

परशुराम ने उसके मध्यस्थल में रम्य शंकर गृह को देखा। वह मणियों के सार से निर्मित दीवारों (परकोटों) से अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहा था। वहां का अत्युच्च गगनस्पर्शी क्षीर तथा नीर के समान वर्ण वाला स्थान असाधारण शुक्लवर्ण था। उसके १६ द्वार थे। वे सभी द्वार महामूल्यवान् रत्नों से बने, रत्नमय सीढ़ियों से शोभित, रत्नजटित स्तम्भ तथा रत्नमय कपाटों से युक्त, हीरों के खण्ड से जड़ित स्तम्भों से युक्त था।।१४-१६।।

माणिक्यजालमालाभिः सद्रत्नकलशोज्ज्वलैः।
[1]नानाविचित्रचित्रेण चित्रितैः सुमनोहरैः।।१७।।
आलयस्य पुरस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः। रत्नेन्द्रसारखचितकपाटैश्च विराजितम्।।१८।।
शोभितं वेदिकाभिश्च बाह्याभ्यन्तरतः सदा। रचिताभिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम्।।१९।।
नानाप्रकारचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम्। करालरूपावद्राक्षीद्द्वारपालौ भयङ्करौ।।२०।।

वह माणिक्यों से निर्मित माला से अलंकृत, रत्नमय कलशों से तथा नाना विचित्र उत्तम चित्रांकन से शोभायमान था। ऐसे हजारों गृह शिवभवन की शोभावृद्धि कर रहे थे। परशुराम ने वहां रत्नों के सार (श्रेष्ठ रत्नों) से निर्मित कपाटों से भूषित सिंहद्वार को देखा। वह द्वार महेश्वर के गृह से सामने वाले भाग में देदीप्यमान था। इस परम अद्भुत गृह के अन्दर तथा बाहर मरकत तथा पद्मराग मणि निर्मित वेदी गृह को शोभित कर रही थी। वह स्थान भी अनेक चित्रांकन से शोभित था। वहां पर परशुराम ने अत्यन्त कराल रूप वाले भयानक दो द्वारपालों को देखा।।१७-२०।।

महाकरालदन्तास्यौ विकृतौ रक्तलोचनौ। दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ।।२१।।
विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरौ वरौ।
पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौ जटिलौ च त्रिलोचनौ।।२२।।
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा।
तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्तः किञ्चिदुवाच ह।।२३।।

इन द्वारपालों का दांत तथा मुख भयानक था। इनका आकार अतीव विकृत था। इनके दोनों नेत्र रक्तवर्ण थे तथा ये दोनों दग्ध पर्वत की तरह लग रहे थे, जो महाबली, पराक्रमी थे। इनके पूरे शरीर पर

१. क. ॰मालावि॰।

विभूति लगी थी। इन्होंने श्रेष्ठ व्याघ्र चर्म धारण किया था। इनका नेत्र पिंगलवर्ण तथा विशाल था। इनकी जटा थी तथा ये त्रिनेत्र थे। इन्होंने त्रिशूल तथा पट्टिश अस्त्र धारण किया था। ये ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त थे। इनको देख कर भयभीत तथा त्रस्त परशुराम ने कुछ कहना चाहा।।२१-२३।।

विनयेन विनीतश्च दुर्विनीतौ महाबलौ।[1] आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुरः॥२४॥

विप्रस्य वचनं श्रुत्वा कृपायुक्तौ बभूवतुः।
गृहीत्वाऽऽज्ञां चरद्वारा शङ्करस्य महात्मनः॥२५॥

प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ वरौ। भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिं स्मरन्॥२६॥

प्रत्येकं षोडश द्वारो ददर्श सुमनोहराः। द्वारपालैर्नियुक्ताश्च नानाचित्रविचित्रिताः॥२७॥

दृष्ट्वा तां महदाश्चर्यादपश्यच्छूलिनः सभाम्।
नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम्॥२८॥

परशुराम ने विनीत होकर तथा झुक कर उन विनय रहित महाबली द्वारपाल द्वय से अपना समस्त वृत्तान्त कहा। ब्राह्मण का वचन सुन कर वे दोनों द्वारपाल कृपालु हो गये। उनकी आज्ञा पाकर परशुराम ने हरि स्मरण करते हुए शिवालय में प्रवेश किया। वे भीतर जाकर देखते हैं कि वहां १६ द्वार हैं। वे परम मनोहर द्वार थे तथा वे नाना चित्रों से चित्रित थे। प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल नियुक्त थे। तदनन्तर परशुराम ने परम आश्चर्यमयी शिवसभा को देखा। वह नाना सिद्धों से समाकीर्ण तथा महर्षिगण से सुसेवित थी।।२४-२८।।

पारिजातसुगन्धाढ्यवायुना सुरभीकृताम्। ददर्श तत्र देवेशं शङ्करं चन्द्रशेखरम्॥२९॥

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतिनम्।
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्॥३०॥

वह स्थान पारिजात की सुगन्धित सुरभित वायु से पूर्ण था। परशुराम ने वहां पर चन्द्रशेखर देवेश शंकर को देखा। वे त्रिशूल-पट्टिशधारी व्याघ्रचर्माम्बर पहने, भस्म से लिप्त सर्वांग वाले तथा नाग यज्ञोपवीतधारी थे। वे रत्नाभूषण भूषित होकर रत्नसिंहासनासीन थे।।२९-३०।।

महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाश्रयम्। आत्मारामं पूर्णकामं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥३१॥

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्।
शश्वज्ज्योतिः स्वरूपं च लोकानुग्रहविग्रहम्॥३२॥

धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्या समन्वितम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्॥३३॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।
गुह्यं ब्रह्म प्रवोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया॥३४॥

---

१. महोल्वणौ इति वा पाठः।

स्तूयमानं च योगीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम्। पार्षदप्रवरैः शश्वत्सेवितं श्वेतचामरैः॥३५॥
ज्योतीरूपं च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्।
ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितविग्रहम्॥३६॥

ये महाशिव कल्याण करने वाले, कल्याण के बीज (कारण), कल्याणकामी लोगों के आश्रयरूप, आत्माराम, पूर्णकाम, कोटि सूर्य के समान, मन्द मुस्कान वाले प्रसन्नानन, भक्तों के प्रति कृपावर्षण तत्पर, सतत् ज्योतिमान् स्वरूप वाले, लोक कल्याणार्थ देहधारी, जटाजाल मण्डित, भगवती दक्षकन्या से युक्त, तप का फल देने वाले, सर्वसम्पत्तिप्रदाता, शुद्ध स्फटिकवत् वर्ण वाले, पंचमुख, प्रत्येक मुख पर त्रिनेत्रधारी, शिष्यगण को तत्वमुद्रा द्वारा अति गुप्त परम ब्रह्मतत्त्व का उपदेश देते हुए, नारदादि महायोगीगण द्वारा सतत् स्तुत, चारों ओर कपिलादि सिद्ध ऋषिगण से सेवित, नंदी आदि पार्षद जिनको अनवरत श्वेत चामर झलते रहते हैं, ज्योतिरूप, सबके आदि प्रकृति से परे कृष्ण का सतत् ध्यान करते रहते हैं, जो प्रकृति से परे हैं। इस ध्यान में वे परमानन्दमग्न तथा रोमांचित शरीर वाले होकर स्थित हैं।।३१-३६।।

सुस्वरं[१] साश्रुनेत्रंतमुदूगायन्तं गुणार्णवम्। भूतेन्द्रैर्वै[२] रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च वेष्टितम्॥३७॥

वे प्रभु शिव अत्यन्त सुस्वर से श्रीकृष्ण का गुणगान कर रहे थे। उनके नेत्र प्रेम तथा भाव के कारण अश्रुपूर्ण थे। वे वहां भूतगण, रुद्रगण तथा क्षेत्रपालों से चारों ओर से घिरे थे।।३७।।

मूर्ध्ना ननाम परशुरामो दृष्ट्वा तमादरात्। तद्वामे कार्तिकेयं च दक्षिणे च गणेश्वरम्॥३८॥
नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः।
अङ्के ददर्श कान्तां तां गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम्॥३९॥
ननाम सर्वान्मूर्ध्ना च भक्त्या च परया मुदा। दृष्ट्वा हरं परं तोषात्स्तोतुं समुपचक्रमे॥४०॥
सगद्गदपदं दीनः साश्रुनेत्रोऽतिकातरः।
कृताञ्जलिपुटः शान्तः शोकार्तः शोकनाशनम्॥४१॥

इस प्रकार प्रभु का दर्शन करके परम आदर पूर्वक परशुराम ने नतशिर हो शिव को प्रणाम किया। उनके वाम भाग में कार्त्तिकेय तथा दक्षिण भाग में गणपति आसीन थे। शिव के समक्ष नन्दीश्वर, महाकाल तथा वीरभद्र विराजमान थे। उन्होंने शिव के अंग में शैलेन्द्र कन्या गौरी को देखा। परशुराम ने परम भक्ति के साथ शिर नत करके मुदित मन से सबको प्रणाम करके तथा शिवदर्शन पाकर अत्यन्त सन्तोष के साथ शिवस्तुति प्रारम्भ किया। उनकी वाणी स्तोत्र पढ़ते समय गद्गद् थी, नेत्र अत्यन्त अश्रुपूर्ण थे। परशुराम अत्यन्त कातर, शान्त, शोकार्त्त होकर तथा करबद्ध होकर शोकनाशक शिव की स्तुति करने लगे।।३८-४१।।

१. विह्वलं इति वा पाठः।
२. भैरेवेन्द्रै इति पाठः क्वाचित्कः।

परशुराम उवाच

ईश त्वां स्तातुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमः।
[१]अक्षराक्षयबीजं च किंवा स्तौमि निरीहकम्॥४२॥
न योजनां कर्तुमीशो देवेशं स्तौमि मूढधोः[२]।
[३]वेदा न शक्ता यं स्तोतुं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥४३॥
वाग्बुद्धिमनसां दूरं सारात्सारं परात्परम्।
[४]ज्ञानमात्रेण साध्यं च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम्॥४४॥

परशुराम कहते हैं–हे जगदीश्वर! मैं आपका स्तव करने हेतु प्रवृत्त तो हो रहा हूं, परन्तु मेरी क्षमता नहीं है कि आपका स्तव कर सकूं। आप तो सभी अक्षरों के उत्पत्तिस्थान हैं। आप किसी कार्य हेतु चेष्टा नहीं करते। आप इच्छा रहित (निरीह) हैं। आपकी स्तुति मैं मूढ़बुद्धि कैसे करूं? मैं तो आपकी स्तुति हेतु अक्षरयोजना भी नहीं कर सकता। चारों वेद जिनका स्तव कर सकने में समर्थ नहीं हैं, उन देवदेव महादेव का स्तव करने में कौन सक्षम होगा? हे परमेश्वर! आप बुद्धि, वाक् तथा मन से अगोचर हैं। आप ज्ञानमात्र से ही साध्य हैं। सिद्धरूप आप सिद्धों से सेवित हैं॥४२-४४॥

यमाकाशमिवाऽद्यन्तमध्यहीनं तथाऽव्ययम्।
विश्वतन्त्रमतन्त्रं च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम्॥४५॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्।
त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम्॥४६॥

जैसे आकाश आदि-अन्त-मध्य रहित है, उसी प्रकार आप भी आदि-मध्य-अन्त रहित हैं। आपका विनाश नहीं है। आप स्वेच्छा से कभी तो जगत् के अधीन रहते हैं, कभी सब प्रकार की अधीनता शून्य रहते हैं। कभी आप स्वाधीन रूप से द्योतित होते हैं। आप ही तन्त्रशास्त्र के उत्पत्तिस्थल हैं। आपको ध्यान से साध्य माना गया है। आपकी आराधना कर सकना अत्यन्त दुरूह है। आप अत्यन्त आराधना से साध्य तथा कृपा समुद्र भी हैं। हे करुणासागर! दीनबन्धु! इस अति दीन की रक्षा करिये॥४५-४६॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
स्वप्नेऽप्यदृष्टं भक्तैश्चाधुना पश्यामि चक्षुषा॥४७॥

१. क. ॰क्षरक्षरवी॰।
२. स्तोतुमीप्सितम् इति पाठः क्वाचित्कः।
३. क. देवा।
४. क. ॰नबुद्ध्यवसा॰।

शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्म्य संभवाः।
चराचराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम्॥४८॥

आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा जीवन धारण करना आज सार्थक हो गया। भक्तगण जिनका स्वप्न तक में दर्शन नहीं कर पाते, आज मैं मनुष्य देह के अपने नेत्रों से उनका दर्शन कर रहा हूं। इससे बढ़ कर क्या भाग्य हो सकता है? हे देव! जिन देवाधिदेव के अंश से इन्द्रादि लोकपाल की उत्पत्ति होती है तथा स्थावर-जंगमात्मक समस्त जगत् जिनकी कला का अंश मात्र है, मैं उन जगदीश्वर महादेव को प्रणाम करता हूं!॥४७-४८॥

स्त्रीरूपं क्लीवरूपं च पौरुषं च विभर्ति यः। सर्वाधारं सर्वरूपं तं नमामि महेश्वरम्॥४९॥
यं भास्करस्वरूपं च शशिरूपं हुताशनम्। जलरूपं वायुरूपं तं नमामि महेश्वरम्॥५०॥
इनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्तारं भयङ्करम्। क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम्॥५१॥

जो देवदेव पुरुषरूप, नुंसकरूप तथा नारीरूपी होकर सृष्टि विस्तार कार्य करते हैं, मैं सर्ववस्तु आधार स्वरूप, सर्वरूप उन परमेश्वर को प्रणाम करता हूं! जो प्रभु महादेव भास्कर रूप, शशिरूप, अग्निरूप, जलरूप, वायुरूप हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं! जो इस अनन्त विश्वसृष्टि में संहारक भय रूप हैं तथा क्षण मात्र में लीलामात्र से सृष्टि संहार कर देते हैं, मैं उन महेश्वर को प्रणाम करता हूं!॥४९-५१॥

इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे। आशिषं च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो बभूव सः॥५२॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति॥५३॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख०नारदना० परशुरामस्य कैलाशगमनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

यह कह कर भार्गव परशुराम शिव के चरणकमलों पर गिर पड़े। भगवान् ने तब प्रसन्न होकर उनको आशीर्वाद प्रदान किया। इस जमदग्नि के पुत्र परशुराम कृत स्तोत्र का जो कोई मनुष्य पाठ करेगा, वह सभी पातकों से रहित होकर शिवलोक गमन करेगा॥५२-५३॥

॥एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

शंकर-परशुराम संवाद का वर्णन

शङ्कर उवाच

कस्त्वं बटो कस्य पुत्रः क्व वासः स्तवनं कथम्।
किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद सांप्रतम्॥१॥

श्री शंकर कहते हैं–हे बटुक! तुम किसके पुत्र हो, तुम्हारा निवास कहां है? तुमने मेरी स्तुति किस उद्देश्य से किया है? अपनी कामना कहो।।१।।

पार्वत्युवाच

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम्।
वयसाऽतिशिशुं [1]शान्तं गुणेन गुणिनां वरम्॥२॥

देवी पार्वती कहती हैं–हे बालक! मैं तुमको अत्यन्त शोकाकुल देख रही हूं। तुम अत्यन्त उदास हो, तुम क्यों इस प्रकार अत्यन्त विस्मित हो? तुम तो अत्यन्त बालक वय के हो, तथापि तुम अत्यन्त शान्त एवं गुणयुक्त हो। अतः प्रतीत हो रहा है कि तुम गुणीगण में अग्रगण्य भी हो।।२।।

भृगुरुवाच

जमदग्निसुतोऽहं च भृगुवंशसमुद्भवः। रेणुकाऽम्बा मे परशुरामोऽहं नामतः प्रभो॥३॥
क्रीणीहि मां दयासिन्धो विद्यापण्येन किङ्करम्।
त्वामीश शरणापन्नं रक्ष मां दीनवत्सल॥४॥

भार्गव परशुराम कहते हैं–हे प्रभो! मैं भृगुवंशोत्पन्न जमदग्नि ऋषि का पुत्र हूं। मेरी माता का नाम रेणुका है। मेरा नाम परशुराम है। मैं आपका दास हूं। आप मुझे विद्यारूपी पण (मूल्य) देकर अपना किंकर बनायें। हे दीनवत्सल! आप ही मेरे स्वामी हैं। मैं आपकी शरण में आया हूं। आप मेरी रक्षा करें।।३-४।।

मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम्।
चकाराऽऽतिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुभिः॥५॥
राजा तं कपिला लोभाद्घातयामास मन्दधीः।
कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकं च जगाम सा॥६॥
माताऽनुगमनं चक्रे ह्यनाथोऽहं च सांप्रतम्।
त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत्प्रभो॥७॥

---

१. क. दान्तं।

राजा वन में आखेट करने आया था। उसे उपवासी देख कर पिता ने कपिला गौ प्रदत्त वस्तु से उसका स्वागत किया था। वह मन्दबुद्धि राजा लोभ के कारण कपिला का हरण करने पर उद्यत हो गया तथा उसने मेरे पिता का वध कर दिया। यह देख कर कपिला गोलोक चली गई। माता ने भी पिता के शव के साथ प्राण त्यागने हेतु स्वयं चितारोहण कर लिया। हे प्रभो! अब मैं अनाथ हूं। आप अब से मेरे पिता हैं। भगवती मेरी माता हैं। हे देव! अब पुत्रवत् मेरी रक्षा करिये।।५-७।।

मया कृता प्रतिज्ञा च शोकेनैवातिदुष्करा।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति॥८॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम्। इत्येतत्परिपूर्णं मे भगवान्कर्तुमर्हति॥९॥

मैंने शोक के कारण अत्यन्त दुष्कर प्रण कर लिया है कि मैं २१ बार सम्पूर्ण पृथिवी को क्षत्रिय रहित करूंगा। मैं पितृहत्यारे कार्त्तवीर्य का वध युद्ध में करूंगा। हे भगवान्! आप मेरी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करिये।।८-९।।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः।
बभूवाऽऽनम्रवक्त्रश्च सा च शुष्कौष्ठतालुका॥१०॥

ब्राह्मण का यह कथन सुन कर शिव ने पार्वती की ओर देख कर अपना शिर नत कर लिया। भगवती ने भी जब परशुराम का प्रण सुना, तब उनके भी कण्ठ-ओष्ठ-तालु शुष्क हो गये!।।१०।।

पार्वत्युवाच

तपस्विन्विप्रपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्तुमिच्छसि।
त्रिःसप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्बटो॥११॥
हन्तुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्रार्जुनमीश्वरम्। भ्रूभङ्गलीलया यस्य रावणस्य पराजयः॥१२॥
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं बटो। शक्तिरव्यर्थरूपा च यया ते हिंसितः पिता॥१३॥
हरेर्मन्त्रं संस्तवनं ध्यायते च दिवानिशम्।
को वा शक्नोति तं हन्तु न पश्यामीह भूतले॥१४॥

देवी पार्वती कहती हैं-हे ब्राह्मण बालक! तपस्वी विप्र के पुत्र! तुम क्रोध के वशीभूत होकर इस धरती को २१ बार क्षत्रिय शून्य करने के लिये उद्यत हो। हे बटुक! यह तो तुम्हारा दुरूह साहस प्रतीत हो रहा है। हे बालक! तुम तप करते हो। तुम्हारे पास अस्त्रादि नहीं है। शस्त्र भी नहीं है। तब भी कार्त्तवीर्य का तथा उसके साथी हजारों राजाओं का विनाश करना चाहते हो? इस राजा के भ्रूभंग मात्र से (भौंहें टेढ़ी करने मात्र से) रावण की पराजय हो गई। हे बटु! राजा को दत्तात्रेय ने कवच दिया है। उनके द्वारा प्रदत्त शक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती। उसके द्वारा ही राजा ने तुम्हारे पिता का वध किया। जो दिन-रात हरि के मन्त्र का जप, उनकी स्तुति तथा ध्यान करता है, ऐसे व्यक्ति को कोई मार सके ऐसा किसी को मैं नहीं देखती!।।११-१४।।

अये विप्र गृहं गच्छ किं करिष्यति शङ्करः।
अन्ये भूपाश्च मद्भृत्त्याः का भीस्तेषां मयि स्थिते॥१५॥

हे ब्राह्मण! अब तुम घर जाओ। इस सम्बन्ध में शंकर क्या कर सकते हैं? बाकी सभी राजा तो मेरे सेवक हैं। मेरे रहते उन राजाओं को भय कैसा?।।१५।।

भद्रकाल्युवाच

अये विप्रबटो जाल्म निर्भूपां कर्तुमिच्छसि।
दया हि वामनश्चन्द्रं करेणाऽहर्तुमिच्छति॥१६॥
कृतयज्ञान्महापुण्यान्महाबलपराक्रमान्। दिगम्बरसहायेन मद्भृत्यान्हन्तुमिच्छसि॥१७॥

देवी भद्रकाली कहती हैं–हे मूर्ख ब्राह्मण बालक! तुमने पृथिवी को राजाओं से रहित करने की इच्छा किया है। जैसे एक बौना व्यक्ति आकाश में स्थित पुष्प को हाथों से तोड़ना चाहे, उसी प्रकार तुम्हारी यह इच्छा प्रतीत हो रही है। अत: इस विचार को त्याग दो। हे मूर्ख! तुम अनेक यागयज्ञ कर्म में निरत, पुण्यकर्म तत्पर महाबली-पराक्रमी मेरे भृत्यों को शंकर की सहायता लेकर नाश करना चाहते हो?।।१६-१७।।

स तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः। सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः॥१८॥
विप्रस्य रोदनं श्रुत्वा शङ्करः करुणानिधिः।
पश्यन्दुर्गां च कालीं च ज्ञात्वाऽऽशयमथो विभुः॥१९॥
तयोरनुमतिं प्राप्य सर्वेशो भक्तवत्सलः। जमदग्निसुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे॥२०॥

परशुराम देवी पार्वती तथा भद्रकाली का कथन सुन कर शोकग्रस्त हो गये। वे उच्च स्वर से रुदन करने लगे तथा भगवती एवं शंकर के समक्ष प्राणत्यागार्थ उद्यत हो गये। विप्र का रुदन सुन कर करुणानिधि शिव भद्रकाली तथा पार्वती की ओर देखने लगे। तदनन्तर उनकी अनुमति पाकर भक्तवत्सल सर्वेश शिव ने परशुराम से तत्काल कहा–।।१८-२०।।

शङ्कर उवाच

अद्यप्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान्।
दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२१॥
एवंभूतं च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम्। लीलया मत्प्रसादेन कार्तवीर्यं हनिष्यसि॥२२॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं द्विज।
जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः॥२३॥

प्रभु शंकर कहते हैं–हे वत्स! आज से तुम मेरे प्रधान पुत्र के समान हो गये, यह निश्चित है। इस त्रैलोक्य में अत्यन्त दुर्लभ सर्वतोभावेन गोपनीय जो मन्त्र है तथा अत्याश्चर्य कवच मैं तुमको दे रहा

हूं। तुम मेरी प्रसन्नता द्वारा अनायास कार्त्तवीर्य का वध कर सकोगे। साथ ही तुम २१ बार इस अखण्ड धरामण्डल को क्षत्रिय रहित कर सकते हो। हे ब्राह्मण बालक! तुम्हारा अद्भुत कार्य देख कर तुम्हारी यशराशि सर्वत्र व्याप्त होगी। यह निश्चित जानो!।।२१-२३।।

इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्।।२४।।
स्तवं पूजाविधानं च पुरश्चरणपूर्वकम्। मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम्।।२५।।
सिद्धिस्थानं कालसंख्यां कथयामास नारद। वेदवेदाङ्गादिकं च पाठयामास तत्क्षणम्।।२६।।

शंकर ने यह कह कर परशुराम को सुदुर्लभ मन्त्र, परम अद्भुत त्रैलोक्यविजय कवच, स्तव, पूजाविधान तथा पुरश्चरण का नियम, मन्त्रसिद्धि हेतु अनुष्ठान प्रक्रिया सभी नियमक्रमेण प्रदान कर दिया। प्रभु ने सिद्धि हेतु स्थान, काल (कब कहां अनुष्ठान करना है) इन सबका उपदेश देकर उसी समय, उसी क्षण कृपा पूर्वक समस्त वेद-वेदांगादि का भी परशुराम को अध्ययन करा दिया।।२४-२६।।

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्लभम्। नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा।।२७।।
गान्धर्वं गारुडं चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च। गदां शक्तिं च परशुं शूलमव्यर्थमुत्तमम्।।२८।।
नानाप्रकारशस्त्रास्त्रं मन्त्रं च विधिपूर्वकम्।
शस्त्रास्त्राणां च संहारं तूणी चाक्षयसायकौ।।२९।।

इसी के साथ महेश्वर ने परशुराम को नागपाश, पाशुपत, ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र आदि दुर्लभ दिव्यास्त्र का तथा आग्नेय-वायव्य-वारुण-गान्धर्व-गारुड़ एवं जृम्भणास्त्र का ज्ञान भी प्रदान किया। नाना शस्त्रास्त्र के मन्त्र भी विधिवत् परशुराम को प्रदान किया। उन्होंने शस्त्रास्त्र संहार प्रक्रिया तथा अक्षय तरकश भी उनको दे दिया।।२७-२९।।

आत्मरक्षणसंधानं संग्रामविजयक्रमम्। मायायुद्धं च विविधं हुङ्कारं मन्त्रपूर्वकम्।।३०।।
रक्षणं च स्वसैन्यानां परसैन्यविमर्दनम्। नानाप्रकारमतुलमुपायं [1]रणसङ्कटं।
संहारे मोहिनीं विद्यां ददौ मृत्युहरां हरः।।३१।।

शंकर ने आत्मरक्षा का उपाय, संग्राम में विजय प्राप्त करने का क्रम, मायायुद्ध तथा विविध मन्त्रयुक्त हुंकार विधि भी परशुराम को बतला दिया। अपने सैन्य की रक्षा, शत्रु सैन्य का मर्दन, नाना प्रकार के वे अतुलित उपाय जो युद्ध संकट में प्रभावी होते हैं, संहारक मोहिनी विद्या तथा मृत्युहारिणी विद्या भी शिव ने परशुराम को प्रदान कर दिया।।३०-३१।।

स्थित्वा चिरं गुरोर्वासे सर्वविद्यां विबोध्य सः।
तीर्थे कृत्वा मन्त्रसिद्धिं तांश्च नत्वा जगाम सः।।३२।।

इति० श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० परशुरामस्य शिवदत्तास्त्रशस्त्रादिप्राप्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

---

१. क. प्राणं।

परशुराम ने चिरकाल तक गुरु महेश्वर के यहां रह कर इन सभी विद्याओं की शिक्षा लिया, तदनन्तर तीर्थ में जाकर मन्त्र भी सिद्ध करके परशुराम ने वहां सबको प्रणाम किया तथा स्वस्थान वापस आ गये।।३२।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

भार्गव (परशुराम) को शंकर द्वारा त्रैलोक्यविजय कवच देना

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कं मन्त्रं भगवान्हरः। कृपया परशुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ।।१।।
को वाऽस्य मन्त्रस्याऽऽराध्यः किं फलं कवचस्य च।
स्तषनस्य फलं किं वा तद्भवान्वक्तुमर्हति।।२।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे प्रभो! भगवान् हर ने कृपापरवश होकर परशुराम को कौन–सा मन्त्र–स्तोत्र तथा कवच प्रदान किया था, यह कहिये। परशुराम ने मन्त्र प्राप्त करके किस देवता की आराधना किया? उस स्तव तथा मन्त्रपाठ से उनको क्या फल मिला? यह भी सुनने की इच्छा है।।१–२।।

नारायण उवाच

मन्त्राराध्यो हि भगवान्परिपूर्णतमः स्वयम्।
गोलोकनाथः श्रीकृष्णो गोपगोपीश्वरः प्रभुः।।३।।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्। स्तवराजं महापुण्यं भूतियोगसमुद्भवम्।।४।।
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलप्रदम्। ददौ परशुरामाय रत्नपर्वतसंनिधौ।।५।।
स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातवनान्तरे। आश्रमे देवलोकस्य माधवस्य च संनिधौ।।६।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–गोपों, गोपियों तथा गोलोक के नाथ स्वयं परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण ही शिवप्रदत्त मन्त्र के उपास्य देवता हैं। अति अद्भुत क्षमतावान्, त्रैलोक्यविजय कवच तथा महादेव के अपने विभूतियोग द्वारा सम्भूत अत्यन्त पवित्र श्रेष्ठ स्तव महादेव ने परशुराम को प्रदान किया था। स्वयम्प्रभा नदी के तट पर रत्नपर्वत की उपत्यका में पारिजात वृक्षों के वन में एक आश्रम में महादेव ने परशुराम को त्रिलोकाधीश गोलोकपति श्रीकृष्ण के समक्ष अभिलषित फल प्रदाता कल्पतरु नाम से प्रसिद्ध यह मन्त्र प्रदान किया था।।३–६।।

महादेव उवाच

वत्साऽऽगच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भव। पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणं कुरु॥७॥

शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम्।
त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णस्य जयावहम्॥८॥

श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे। रासमण्डलमध्ये च मह्यं वृन्दावने वने॥९॥
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। पुण्यात्पुण्यतरं चैव परं स्नेहाद्वदामि ते॥१०॥

श्री महादेव कहते हैं–हे वत्स! हे भृगुवंशावतंस महाभाग! तुम आओ तथा तुम्हारे प्रति मेरा पुत्र से अधिक प्रेम है। यह कवच ग्रहण करो। हे राम! सुनो! ब्रह्माण्ड में जितने भी कवच हैं, उन सभी से यह अत्यन्त श्रेष्ठ शक्तिसम्पन्न त्रैलोक्यविजय कवच है। इसके उपास्य देव हैं श्रीकृष्ण। इसके पाठ द्वारा युद्ध में जयलाभ होता है। इस कवच को स्वयं श्रीकृष्ण ने गोलोकधामस्थ वृन्दावन में जहां राधा का निकुंज है, वहां मुझे प्रदान किया था। यह अतीव गोपनीय तत्व है। यह सभी मन्त्रों का मूर्त्त रूप है। यह पुण्यमय से भी पुण्यतर कवच मैं तुमको प्रेम के कारण देता हूं।।७-१०।।

यद्धृत्वा पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघान ह॥११॥
यद्धृत्वाऽहं च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित्। अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमपि लीलया॥१२॥

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम्।
यद्धृत्वा भगवाञ्छेषो विधत्ते विश्वमेव च॥१३॥
यद्धृत्वा कूर्मराजश्च शेषं धत्ते हि लीलया।
यद्धृत्वा भगवान्वायुर्विश्वाधारो विभुः स्वयम्॥१४॥

इसका पाठ करके तथा कण्ठ में बांधकर मूलप्रकृति ईश्वरी भगवती ने शुम्भ-निशुम्भ-महिषासुर तथा रक्तबीज का वध किया था। इसको धारण करके ही मैं जगत् का संहारक तथा सर्वतत्वज्ञ हो गया। इसके ही प्रभाव से मैंने अवध्य दुरन्त त्रिपुर का पूर्वकाल में लीलामात्र से वध कर दिया था। इसे धारण करके तथा इसका पाठ करने के कारण ब्रह्मदेव उत्तम सृष्टि का सृजन करते हैं। इसे धारण करने के ही कारण भग्वान् शेषनाग समग्र ब्रह्माण्ड को शिर पर धारण कर पाते हैं। कूर्मदेव इस कवच को ही धारण करने के कारण खेल-खेल में शेषनाग को धारण कर पाते हैं। इसे धारण करने के प्रभाव से ही वायुदेव सर्वाधार एवं व्यापक रूप हैं।।११-१४।।

यद्धृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः।
यद्धृत्वा पठनादिन्द्रो देवानामधिपः स्वयम्॥१५॥
यद्धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः।
यद्धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः॥१६॥

अगस्त्यः सागरान्सप्त यद्धृत्वा पठनात्पपौ।
चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम्॥१७॥

इसको धारण करके वरुण सिद्ध हो गये, कुबेर धनेश्वर हो सके तथा इन्द्र देवराज हो गये। इसको धारण करने से ही स्वयं रवि समस्त भुवनों में तेजराशि रूप हैं। इसे धारण करके चन्द्र महाबली पराक्रमी हैं। इसके पाठ प्रभाव से ही अगत्स्य ने सप्तसागर पान किया तथा वातापी राक्षस को इसी कवच के तेज द्वारा उदर में पचा लिया।।१५-१७।।

यद्धृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुन्धरा। यद्धृत्वा पठनात्पूता गङ्गा भुवनपावनी॥१८॥
यद्धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः।
सर्वविद्याधिदेवी सा यच्च धृत्वा सरस्वती॥१९॥
यद्धृत्वा जगतां लक्ष्मीरत्नदात्री परात्परा।
यद्धृत्वा पठनाद्वेदान्सावित्री सा सुषाव च॥२०॥

इसके पाठ एवं धारण करने के कारण वसुन्धरा पृथिवी सबकी आधार हैं। इसे धारण तथा पठन से गंगा भुवनयावनी हो गयीं। इसे धारण करके ही धार्मिकों के प्रवर धर्म सबके साक्षी हैं। इसे धारण करके ही सरस्वती सभी विद्या की अधिष्ठातृ हो गईं। इसके धारण प्रभाव से परात्परा लक्ष्मी रत्नादायिनी हो सकी। इसको धारण करने तथा पाठ करने से देवी सावित्री ने वेदों को जन्म दिया।।१८-२०।।

वेदाश्च धर्मवक्तारो यद्धृत्वा पठनाद्भृगो।
यद्धृत्वा पठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः।
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां वरः॥२१॥

इस कवच को धारण करके ही वेदगण धर्मवक्ता कहलाये। इसको धारण करके तथा पाठ करने से अग्नि अत्यन्त तेजवान् हो गये। भगवान् सनत्कुमार इस कवच को धारण करके महाज्ञानी हो गये।।२१।।

दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने।
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुवात्॥२२॥

यह कवच कृष्णभक्त को, साधु प्रवृत्ति महात्मा को ही देना चाहिये। शठ को तथा अन्य के शिष्य को देने वाला मृत्युमुख में जाता है।।२२।।

त्रलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो रासेश्वरः स्वयम्॥२३॥
त्रलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः।
परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२४॥

विनियोग–इस त्रैलोक्यविजय कवच के ऋषि हैं प्रजापति। गायत्री छन्दः है तथा इसके रासेश्वर कृष्ण स्वयं देवता हैं। इसका प्रयोग (विनियोग) त्रैलोक्य विजयार्थ करें। यह कवच परात्पर तथा त्रैलोक्य दुर्लभ है।।२३-२४।।

प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा।
पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहा पञ्चाक्षरः स्मृतः॥२५॥
कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्ण स्वाहेति तारकम्। हरये नमः इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा॥२६॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम्।
गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा॥२७॥

कवच–"ॐ श्रीकृष्णाय नमः" सदा शिर की, "ॐ कृष्णाय स्वाहा" यह पंचाक्षर कपाल की, "ॐ कृष्ण" नेत्रद्वय की, "ॐ कृष्ण स्वाहा" यह नेत्रतारकों की, "ॐ हरये नमः" भौहों की, "ॐ गोविन्दाय स्वाहा" नासिका की, "ॐ गोपालाय नमः" उभय कपोलों की सदा रक्षा करें।।२५-२७।।

ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम।
ॐ कृष्णाय नमः शश्वत्पातु मेऽधरयुग्मकम्॥२८॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तौघं मे सदाऽवतु।
पातु कृष्णाय दन्ताधो दन्तोर्ध्वं क्लीं सदाऽवतु॥२९॥
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा।
रासेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा॥३०॥
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम। नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम॥३१॥
ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम।
नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु॥३२॥
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय[1] नमः सदा।
ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पातु सदा मम॥३३॥

"ॐ नमः गोपाङ्गनेशाय" सदा मेरे कान की, "ॐ कृष्णाय नमः" अधर-ओष्ठ की, "ॐ गोविन्दाय स्वाहा" दन्तपंक्तियों की, "ॐ कृष्णाय स्वाहा" जिह्वा की, "ॐ रासेश्वराय स्वाहा" तालु की, "ॐ राधिकेशाय स्वाहा" कण्ठ की, "ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय" वक्ष की, "ॐ गोपेशाय स्वाहा" स्कन्ध की, "ॐ नमः किशोरवेशाय" वक्ष की, "ॐ मुकुन्दाय नमः" उदर की, "ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहा" हाथों की सदा रक्षा करें।।२८-३३।।

ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम। ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा॥३४॥

---
१. क. मुक्तिदाय नमो नमः।

ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदाऽवतु।
ॐ श्रीं[१] क्लीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम॥३५॥
ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा।
ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा॥३६॥

"ॐ विष्णवे नमः" दोनों बाहु की, "ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा" नखों की, "ॐ नमो नारायणाय" नखरन्ध्र की, "ॐ श्रीं क्लीं पद्मनाभाय" नाभि की, "ॐ सर्वेशाय स्वाहा" सदा कंकाल की रक्षा करें, "ॐ गोपी रमणाय स्वाहा" नितम्बों की रक्षा करें।।३४-३६।।

ॐ गोपीनां प्राणनाथाय पादौ पातु सदा मम॥३७॥
ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान्सदाऽवतु।
नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदाऽवतु॥३८॥
ॐ माधवाय स्वाहेति मे लोमानि सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदाऽवतु॥३९॥
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु।
स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु॥४०॥

"ॐ गोपीनां प्राणनाथाय" सदा पैरों की, "ॐ केशवाय स्वाहा" केश की, "ॐ नमः कृष्णाय स्वाहा" ब्रह्मरन्ध्र की, "ॐ माधवाय स्वाहा" रोमों की, "ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा" सब ओर से रक्षा करें। परिपूर्णतम कृष्ण मेरे पूर्व दिशा की, गोलोकनाथ स्वयं मेरी रक्षा अग्निकोण में करें।।३७-४०।।

पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदाऽवतु।
नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः॥४१॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद्वायव्यां दिशि नित्यशः।
उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः॥४२॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत्। वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः॥४३॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः। जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा॥४४॥

पूर्ण ब्रह्मरूप दक्षिण दिक् में, नैर्ऋत् कोण में कृष्ण, पश्चिम में हरि, वायुकोण में गोविन्द, उत्तर दिक् में रसिक शिरोमणि, ऐशान्य कोण में वृन्दावनविहारी मेरी रक्षा करें। मेरे ऊर्ध्व देश में वृन्दावनी प्राणनाथ रक्षा करें। बलिहारी तथा महाभाग्यवान् बली माधव मेरी रक्षा करें। जल-स्थल-आकाश में नृसिंह सदैव रक्षा करें।।४१-४४।।

---

१. ख. ह्रीं ह्रीं।

स्वप्ने जागरणे शश्वत्पातु मां माधवः सदा।
सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः॥४५॥

स्वप्न, जागरण, स्थिति में माधव सदैव रक्षा करें। जो निर्लिप्त सर्वान्तरात्मा प्रभु हैं, वे सदा सब ओर से रक्षा करें।।४५।।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥४६॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात्प्रवक्तव्यं न कस्यचित्।
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः॥४७॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः।
स च भक्तो वसेद्यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः॥४८॥

हे वत्स! समस्त मन्त्र समूह का विग्रह स्वरूप, अत्याश्चर्यमय यह त्रैलोक्य विजय कवच मैंने कहा। मैंने इसे श्रीकृष्ण के मुखकमल से श्रवण किया था। यह किसी से भी प्रकाशित मत कर देना। जो पुरुष यथानियम कृष्णपूजा करके यह कवच गले में अथवा दाहिने बाहु में धारण करता है, वह विष्णु के सदृश हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। यह कवचधारी व्यक्ति जहां भी निवास करता है, वहां लक्ष्मी, सरस्वती (आपसी विवाद त्याग कर) निवास करती हैं।।४६-४८।।

यदि स्यात्सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः।
निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥४९॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च। अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च॥५०॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥५१॥

यह कवच सिद्ध करने वाला जीवन्मुक्त हो जाता है। वह कोटि वर्ष जनित पूजा का फल लाभ करता है। इसमें संशय नहीं है। १००० राजसूय, १०० वाजपेय, १०००० अश्वमेध, १०००० नरमेध, समस्त महादान तथा निखिल पृथिवी की प्रदक्षिणा का जो फल होता है, वह त्रैलोक्यविजय कवच के पाठ फल का १/१६ भी नहीं है।।४९-५१।।

व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्ययनं तपः[१]।
स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हति कलामपि॥५२॥
सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि।
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम्॥५३॥
स भवेत्सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः।
यो भवेत्सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद्ध्रुवम्॥५४॥

---

१. तथेति च क्वचित् पाठः।

व्रत, उपवास, नियम, स्वाध्याय, अध्ययन, तप सभी तीर्थों में स्नान, यह इस कवच के एक कला इतना भी फलप्रद नहीं है। जो कोई व्यक्ति इस कवच को सिद्ध कर लेता है, वह निश्चित रूप से सिद्ध पुरुष हो जायेगा। वह देवत्व, श्रीहरि का दासत्व इत्यादि जो कुछ भी कामना करेगा, वह उसे प्राप्त होना निश्चित है। जो मनुष्य इस कवच का दस लाख पाठ करेगा, उसे कवच सिद्धि होगी। फलस्वरूप वह सर्वज्ञ होगा, उसके ज्ञान नेत्र के सामने समस्त पदार्थ उदित हो जायेंगे।।५२-५४।।

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कृष्णं सुमन्दधीः।
कोटिकल्पं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः।।५५।।
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्त्रियां कुरु।
त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दो हि लीलया।।५६।।
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक। एवं भूतं व कवचं न देयं प्राणसङ्कटे।।५७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामाय श्रीकृष्णकवचप्रदानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

जो मन्दबुद्धि इस कवच को जाने बिना कृष्णोपासना करता है, वह करोड़ों कल्प तक भले ही जप करे, उसे मन्त्र की सिद्धि नहीं होगी। हे वत्स! हे परशुराम! यह कवच ग्रहण करके सर्वदा हर्षित होकर निर्भीक भाव से अनायास इस धरती को २१ बार क्षत्रिय रहित कर देना। हे पुत्र! भले राज्य त्याग दें, अपना मस्तक कट जाने दे, जीवन विसर्जित कर दे, तथापि जीवन का भय किसी के द्वारा दिखलाये जाने पर भी यह कवच किसी को मत देना।।५५-५७।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

शंकर द्वारा परशुराम को भगवान् का मन्त्र तथा स्तोत्र प्रदान करना

भृगुरुवाच

संप्राप्तं कवचं नाथ शश्वत्सर्वाङ्गरक्षणम्। सुखदं मोक्षदं सारं शत्रुसंहारकारणम्।।१।।
अधुना भगवन्मन्त्रं स्तोत्रं पूजाविधिं प्रभो। देहि मह्यमनाथाय शरणागतपालक।।२।।

भृगुनन्दन परशुराम कहते हैं—हे नाथ! मैंने सतत् सर्वाङ्गरक्षण करने वाला कवच लाभ कर लिया। यह सुखदायक, मोक्षप्रद, सबका साररूप तथा शत्रुसंहार कारणरूप है। हे प्रभो! अब कृपा पूर्वक भगवान् का स्तोत्र तथा मन्त्र एवं पूजाविधि दीजिये। मैं अनाथ हूं। आप तो शरणागत पालक हैं।।१-२।।

महादेव उवाच

ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च। स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण भज गोपीश्वरं प्रभुम्।।३।।
मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽयं महान्सप्तदशाक्षरः। सिद्धोऽयं पञ्चलक्षणे जपेन मुनिपुंगव।।४।।
तद्दशांशं च हवनं तद्दशांशा[१] भिषेचनम्। तर्पणं तद्दशांशं च मार्जनम्।।५।।
सुवर्णानां च शतकं पुरश्चरणदक्षिणा। मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतले मुने।।६।।

श्री महादेव कहते हैं—"ॐ श्री नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा" इस मन्त्र से गोपीगण के ईश्वर जगत्प्रभु कृष्ण की उपासना करो। इस १७ अक्षर वाले मन्त्र को सभी मन्त्रों में प्रधान "मन्त्रराज" कहा गया है। हे मुनिप्रवर! इसका ५ लाख जप करके ५० हजार होम करे। तदनन्तर ५००० अभिषेचन, ५०० तर्पण करके ५० मार्जन करे। तब १०० सुवर्ण मुद्रा पुरश्चरणार्थ दक्षिणा हेतु प्रदान करे। हे मुनि! इस प्रकार जिसने मन्त्र सिद्ध कर लिया, विश्व उसकी मुट्ठी में है।।३-६।।

शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः। पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः।।७।।
तस्य संस्पर्शमात्रेण पदपङ्कजरेणुना। पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुंधरा।।८।।

वह व्यक्ति चारों समुद्र का जल पी सकता है, वह जगत् का संहार कर सकता है। वह इस पांचभौतिक देह से ही वैकुण्ठगामी हो सकता है। उसकी चरणधूलि का स्पर्श होने मात्र से पृथिवी तो तत्काल पवित्र हो जाती है और सभी तीर्थ पावन हो जाते हैं।।७-८।।

ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु मन्मुखतो मुने। सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च।।९।।

हे मुनिवर! अब तुम सामवेदोक्त ध्यान मुझसे सुनो। यह सर्वेश्वर कृष्ण का ध्यान भक्ति-मुक्ति प्रदाता है।।९।।

नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्।।१०।।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम्।।११।।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरं वरम्।
वीक्ष्यमाणं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम्।।१२।।
प्रफुल्लमालतीमालावनमालाविभूषितम्। दधतं कुन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचर्चिताम्।।१३।।

ध्यान—वे नवजलधर के समान कृष्णवर्ण हैं। उनके नेत्रद्वय नीलकमल के समान हैं। शारदीय

---

१. क. भोजनम्।

पूर्णिमा के चन्द्र के समान उनका मुखमण्डल अनवरत मन्द मुस्कान युक्त रहता है। वे अत्यन्त मनोहर हैं। कोटि कामदेव के तुल्य उनकी देहकान्ति है। वे लीला के आधार हैं। वे जनगण के मन का हरण कर रहे हैं। वे रत्नजड़ित सिंहासन पर आसीन हैं। उनका शरीर रत्नालंकार से शोभित है। उनकी देह श्वेत चन्दन से लिप्त है। उन्होंने पीत वस्त्र धारण किया है। वे अतिशय सुरूप हैं। वे हंसती हुई गोपीगण के द्वारा सदा देखे जाते हैं। वे खिले मालती पुष्पों की माला से शोभायमान हैं। उनका मस्तक कुन्दपुष्पयुक्त है। उनका चूड़ा मयूर पुच्छ से निर्मित है।।१०-१३।।

प्रभां क्षिपन्तीं नभसश्चन्द्रतारान्वितस्य च। रत्नभूषितसर्वाङ्गं राधावक्षःस्थलस्थितम्।।१४।।
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे।।१५।।

इससे वे तारामण्डल तथा चन्द्रमण्डल मण्डित नभोमण्डल जैसे प्रतीत हो रहे हैं। वे रत्नालंकार भूषित श्री राधा के हृदय में स्थित हैं। वे सिद्धप्रवरों, मुनिपुंगव तथा प्रधान देवगण द्वारा सर्वतोभावेन सेवित हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर वेदवाक्यों से उनकी स्तुति कर रहे हैं। उन कृष्ण का मैं ध्यान करता हूं।।१४-१५।।

ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचारांस्तु षोडश।
दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत्पुमान्।।१६।।

इस प्रकार ध्यान करके षोडश उपचारों को भक्ति पूर्वक प्रदान करे और इस पूजा द्वारा वह व्यक्ति सर्वज्ञत्व लाभ करता है।।१६।।

अर्घ्यं पाद्यं चाऽसनं च वसनं भूषणं तथा। गामर्घ्यं मधुपर्कं च यज्ञसूत्रमनुत्तमम्।।१७।।
धूपदीपौ च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम्। नानाप्रकारपुष्पाणि ताम्बूलं च सुवासितम्।।१८।।
मनोहरं दिव्यतल्पं कस्तूर्यगुरुचन्दनैः। भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम्।।१९।।
ततः षडङ्गं संपूज्य पश्चात्संपूजयेद्गणम्। श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च।।२०।।
हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं सुभानुकम्। पार्षदप्रवरान्सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः।।२१।।

साधक अर्घ्य, पाद्य, आसन, वस्त्र, भूषण, गौ, मधुपर्क, परमोत्तम यज्ञोपवीत, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय, नाना प्रकार के पुष्प, सुवासित ताम्बूल, मनोहर दिव्य शय्या जो कस्तूरी, अगुरु, चन्दन युक्त हो, माला, यह सब अर्पित करे तथा तीन पुष्पांजलि प्रदान करे। तदनन्तर षडङ्ग पूजा करके गणपूजा करे। तब श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, हरिभानु, चन्द्रभानु, सूर्यभानु इन ७ श्रेष्ठ पार्षदों की पूजा भक्तिभाव से करें।।१७-२१।।

गोपीश्वरीं राधिकां च मूलप्रकृतिमीश्वरीम्।
कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्।।२२।।
गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणं च पार्वतीम्।
लक्ष्मीं सरस्वतीं पृथ्वीं सर्वदेवं सपार्षदम्।।२३।।

देवषट्कं समभ्यर्च्य पुनः पञ्चोपचारतः। पश्चादेवंक्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत्सुधीः॥२४॥

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
देवषट्कं समभ्यर्च्य चेष्टदेवं च पूजयेत्॥२५॥

तदनन्तर भक्तिभाव से गोपेश्वरी, मूलप्रकृति, ईश्वरी, कृष्णशक्ति, कृष्णपूजा राधिका की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् गोप, गोपी, शान्तगुणावलम्बी महादेव, चतुरानन ब्रह्मा, हिमालयनन्दिनी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, पृथिवी, सभी देवता, आदित्यादि नवग्रह, गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा की पूजा उत्तम रूप से करके परमेष्ठि देवता श्रीकृष्ण की पूजा पंचोपचार से सम्पन्न करें। गणेश, दिनेश, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा ये देवषट्क हैं। इन षट्देवों की पूजा करके, तब अपने इष्टदेव का पूजन करे।।२२-२५।।

गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम्।
आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे॥२६॥
ज्ञानाय शङ्करं दुर्गां परमैश्वर्यहेतवे। संपूजने फलमिदं विपरीतमपूजने॥२७॥
ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवं च भक्तितः।
स्तोत्रं च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु॥२८॥

विघ्ननाशार्थ गणेश की, रोगनाशार्थ सूर्य की, आत्मशुद्धि हेतु अग्नि की, मुक्ति हेतु विष्णु की, ज्ञान हेतु शंकर की, परमैश्वर्य हेतु दुर्गा की पूजा करें। इनकी पूजा करने पर ही ऊपर कही गई फल प्राप्ति होगी। यह पूजा न करने पर इससे विपरीत फल मिलेगा। पूजा समाप्त हो जाने पर इष्टदेव से भक्तिभावेन क्षमा याचना करनी होगी। तदनन्तर सामवेदोक्त यह स्तुति पाठ करे। यह पाठ भक्ति के साथ करना चाहिए। वह कह रहा हूं। श्रवण करो।।२६-२८।।

महादेव उवाच

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं परमात्मानं नमाम्यखिलकारणम्॥२९॥

स्थूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम्।
सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम्॥३०॥

स्तव–श्रीमहादेव कहते हैं–मैं परंब्रह्म, परंधाम, परंज्योतिः, सनातन, निर्लिप्त, परमात्मा अखिल कारण प्रभु को प्रणाम करता हूं! जो देव स्थूल से भी महासूक्ष्म, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम, सर्वदृश्यरूप होकर भी अदृश्य, यथेच्छ आचाररत हैं, उनको प्रणाम!।।२९-३०।।

साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं [1]प्रभुम्।
सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्॥३१॥

१. क. परम्।

अतीव कमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम्। करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम्॥३२॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम्॥३३॥

प्रभु आप साकार, निराकार, सगुण-निर्गुण, सर्वाधार, सर्वमय तथा स्वेच्छारूप हैं। आपको नमस्कार! आप अतीव, कमनीय रूप हैं। निरुपम कान्तियुक्त होकर भी आपने हिरण्यकशिपु दैत्य के नाशार्थ अत्यन्त भयानक नृसिंह मूर्त्ति धारण किया था। मैं ऐसे व्यापक प्रभु श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूं! आप कर्मी के कर्मरूप, सभी कर्मों के साक्षी, कर्मों के फल, सभी कर्म का अभीष्ट फल देने वाले सर्वरूपी भगवान् को मैं नमस्कार कर रहा हूं!॥३१-३३॥

स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः।
नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम्॥३४॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान्।
तयोः परः स्वयं शश्वत्तं नमामि परात्परम्॥३५॥
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया।
स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम्॥३६॥

आप ही सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता तथा संहारक मूर्त्ति भेद से तथा अपनी कला से हो जाते हैं। आप अपने कलांश से नाना मूर्त्तिधारी हैं। ऐसे पुरुष को मैं प्रणाम करता हूं! आप अपनी माया से स्वयं प्रकृति तथा स्वयं पुरुषरूपी हो जाते हैं। आप ही माया हैं, आप ही माया करने वाले हैं। ऐसे देवता को नमस्कार!॥३४-३६॥

तारकं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम्। धारकं[1] सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम्॥३७॥

तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु वाडवः।
नक्षत्राणां च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम्॥३८॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शङ्करः।
नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम्॥३९॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम्।
सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम्॥४०॥

आप सभी कारणों के कारण तथा सभी दुःखों से तारने वाले हैं। आप सर्वविश्वधारक, सर्वबीज हैं। आपको प्रणाम! आप ही समस्त तेजस्वी श्रेष्ठ सूर्य हैं, आप ही सभी जाति में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। आप नक्षत्रों में चन्द्र हैं। आप जगत्प्रभु को मेरा प्रणाम! आप रुद्रों-वैष्णवगण तथा ज्ञानगण में शंकर हैं, आप ही नक्षत्रों में चन्द्र हैं, नागों में शेषनाग हैं, उन जगद्गुरु, जगत्पति को प्रणाम! जो प्रजापति में ब्रह्मा, सिद्धों में कपिल, मुनिगण में सनत्कुमार हैं, उन जगद्गुरु को प्रणाम!॥३७-४०॥

१. क. ०रणं सर्वबीजानां सर्वरूपं न०।

देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम्।
स्वायंभुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः।
नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम्॥४१॥

आप स्वयं देवगण में विष्णु तथा देवियों में प्रकृति हैं। मनुगण में आप ही स्वायम्भुव मनु हैं। आप ही मनुष्यों में वैष्णव हैं। आप स्त्रियों में शतरूपा हैं। आपके अनेक-अनेक रूप हैं। आपको नमस्कार!॥४१॥

ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः।
एकादशी तिथीनां च नमाम्यखिलरूपिणम्॥४२॥

सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः। वसुंधरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम्॥४३॥

पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम्।
वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम्॥४४॥
पुष्पाणां पारिजातश्च सस्यानां धान्यमेव च।
अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम्॥४५॥

आप ऋतुओं में वसन्त, मासों में मार्गशीर्ष, तिथियों में एकादशी हैं। आप निखिल रूपधारी को नमस्कार! आप सरिताओं में सागर, पर्वतों में हिमालय, सहिष्णुओं में वसुन्धरा हैं। आप सर्वमय को प्रणाम! आप ही पत्रों में तुलसीपत्र हैं। काष्ठ में चन्दन, वृक्षों में कल्पवृक्ष हैं। आप जगत्पति को प्रणाम! आप पुष्पों में पारिजात पुष्प, फसल में धान्य, भक्ष्य वस्तुओं में अमृत हैं। आप नाना रूप को नमस्कार करता हूं!॥४२-४५॥

ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम्। कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम्॥४६॥
तैजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च। यः केसरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम्॥४७॥

आप गजेन्द्रों में ऐरावत हैं, पक्षियों में गरुड़ हैं, धेनुओं में आप कामधेनु हैं, आप सर्वरूप को नमस्कार! आप धातुओं में स्वर्ण तथा धान्य में जौ हैं। आप पशुओं में सिंह हैं। आप वररूप को नमस्कार!॥४६-४७॥

यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः।
दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम्॥४८॥

वेदसङ्घश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती। अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम्॥४९॥

मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम्।
इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम्॥५०॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः।
तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम्॥५१॥

जो यक्षों में कुबेर हैं, ग्रहों में बृहस्पति हैं, दिक्पालों में जो महेन्द्र हैं, उन परम श्रेष्ठ को प्रणाम! आप शास्त्रों में वेद हैं, विद्वानों में सरस्वती हैं, अक्षरों में आप अकार हैं। आप प्रधान देव को नमस्कार! आप मन्त्रों में विष्णुमन्त्र हैं, तीर्थों में आप स्वयं जाह्नवी हैं। आप ही इन्द्रियों में मन हैं। आप सर्वश्रेष्ठ को प्रणाम! आप शस्त्रों में सुदर्शन हैं, व्याधियों में आप ही वैष्णव ज्वर हैं। तेजों में आप ब्रह्मतेज हैं। आप वरेण्य प्रभु को प्रणाम!॥४८-५१॥

बलं यो वै बलवतां मनो वै शीघ्रगामिनाम्।
कालः कलयतां यो हि तं नमामि विचक्षणम्॥५२॥

ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु। मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम्॥५३॥

शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम्।
पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम्॥५४॥

प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च। शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम्॥५५॥

धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः।
धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम्॥५६॥

आप ही बलवानों में बल, शीघ्रगामियों में मन, कलना किये जाने वालों में काल हैं। आप परम बुद्धिमान् को प्रणाम! आप ज्ञानदाताओं में गुरु हैं, बन्धुजनों में (सर्वश्रेष्ठ बन्धु) माता हैं। आप मित्रों में से श्रेष्ठ जन्मदाता हैं, आप साररूप को प्रणाम! आप शिल्पियों में विश्वकर्मा, सुरूपी लोगों में कामदेव, पत्नियों में पतिव्रता आप ही हैं। आप ऐसे नमस्कार योग्य को नमस्कार! आप प्रियगण में पुत्ररूप हैं, मनुष्यों में राजा हैं, यन्त्रों में आप ही शालग्राम हैं। ऐसे आप विशिष्ट को प्रणाम! सभी कल्याण बीजों में आप ही धर्म हैं। आप वेदों में सामवेद हैं। आप धर्मों में सत्यरूप हैं। ऐसे विशिष्ट नमस्य आपको नमस्कार!॥५२-५६॥

जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु। शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम्॥५७॥

क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः।
गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम्॥५८॥

क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः।
पुण्यदानां च यः [1]स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम्॥५९॥

तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम्।
गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्॥६०॥

आप जल में शीतलता हैं, भूमि में गन्ध हैं, आकाश में शब्दरूप हैं। मैं नमस्य रूप आपको

१. क. स्तोयस्तं।

प्रणाम करता हूं! आप यज्ञों में राजसूय, छन्दों में गायत्री, गन्धर्वों में चित्ररथ हैं। आप ऐसे गरिष्ठ को प्रणाम! आप गौओं में दुग्धरूप तथा पवित्रों में अग्नि हैं। आप पुण्यप्रदों में स्तोत्र रूप हैं। ऐसे शुभप्रद आपको प्रणाम! आप तृणों में कुश रूप, वैरीगण में व्याधिरूप, गुणों में शान्तरूप हैं। ऐसे आप चित्र-विचित्र रूपी को प्रणाम!।।५७-६०।।

तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान्।
सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम्॥६१॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथाऽऽत्मा नित्यरूपिणाम्।
आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम्॥६२॥

जो तेजरूप, ज्ञानरूप, सर्वरूप महान् हैं, जो सबसे अनिर्वचनीय हैं, उन विभु को प्रणाम! जो देव सर्वाधार में श्रेष्ठ वायु हैं, जो नित्यरूपीगण में आत्मा हैं, जो व्यापकों में आकाश हैं, ऐसे व्यापक प्रभु को मैं प्रणाम करता हूं!।।६१-६२।।

वेदानिवर्चनीयं यं न स्तोतुं पण्डितः क्षमः।
यदनिर्वचनीयं च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः॥६३॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती।
तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान्स्तोतुमीश्वरः॥६४॥

चारों वेद जिनकी अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन करते हैं। पण्डितगण भी जिनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पाते, उनकी स्तुति कर सकने में कौन समर्थ हो सकता है? जिन प्रभु की स्तुति की शक्ति वेदों में नहीं है, जिनकी स्तुति करने में सरस्वती तक जड़ीभूत हो जाती हैं, जो वाणी तथा मन से परे हैं, जिनका यथार्थतः निरूपण किया ही नहीं जा सकता, उनका स्तव कर सकने में कौन समर्थ हो सकेगा?।।६३-६४।।

शुद्धतेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्। अतीव कमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम्॥६५॥

द्विभुजं [१]मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा।
शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वक्ष्यमाणं नमाम्यहम्॥६६॥

जो शुद्धतेज स्वरूप हैं तथा जो भक्तों पर कृपा करने हेतु देह धारण करते हैं, उन अतीव कमनीय श्यामरूप देव की मैं वन्दना करता हूं। जो द्विभुज हैं, जिनके मुख पर मुरली शोभायमान है, जो किशोर वय वाले तथा मुदित होकर मुस्कराते रहते हैं, जिनका सतत् गोपियां अवलोकन करती रहती हैं, उन प्रभु को मैं प्रणाम करता हूं!।।६५-६६।।

राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम्। रत्नसिंहानस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम्॥६७॥

---

१. क. हस्तं०।

रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः। पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम्॥६८॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम्। रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्॥६९॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते। विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम्॥७०॥

श्री राधिका द्वारा प्रदत्त उत्तम ताम्बूल चबाने वाले, अत्यन्त मनोहर रत्नमय सिंहासनासीन जगदीश्वर कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूं! जो रत्ननिर्मित अलंकारों द्वारा भूषित हैं, अनवरत सहचर गोप पार्षद जिनको सतत् श्वेत चामर झलते रहते हैं, उन परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हूं! अति रम्य वृन्दावन के मध्य में रासलीला कार्य में आसक्त चित्त वाले, रासमण्डल के मध्य में सर्वदा गोपबालाओं के साथ विराजित उन रसिकेश्वर को मैं प्रणाम करता हूं! जो गोलोकस्थ शतश्रृंग महापर्वत पर जो रत्नयुक्त है, कभी विरजा नदी के तट पर विहार करते रहते हैं, उन देवदेव को मैं प्रणाम करता हूं!॥६७-७०॥

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्।
सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्॥७१॥

परिपूर्णतम, शान्तगुणावलम्बी, राधा के प्रियतम, अत्यन्त मनोहर मूर्त्तिधारी, सत्यरूपेण जगत् में अवतीर्ण, ब्रह्म से अभिन्न सनातन कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूं!॥७१॥

श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत्॥७२॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत्स्तोत्रप्रसादतः।
इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥७३॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्।
तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले॥७४॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः।
अरोगी गुणवान्विद्वान्पुत्रवान्धनवान्सदा॥७५॥

इस कृष्णस्तव का पाठ जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकाल में करता है, वह भारत देश में धर्म-अर्थ-काम-मोक्षप्रदाता तक हो जाता है। इस स्तोत्र की कृपा से उसे हरि का दासत्व, हरि की भक्ति प्राप्त होती है। वह इहलोक में जगत्पूज्य, विष्णुतुल्य होगा। यह निश्चित है। वह सिद्धीश्वर होकर अन्त में हरिपद लाभ करता है। जब तक वह पृथिवी पर रहता है, उसका तेज-यश उसी प्रकार धरती पर प्रकाशित होता है, जैसे सूर्य का तेज। वह निःसंशय रूप से जीवन्मुक्त, कृष्णभक्त, रोग रहित, गुणी, विद्वान्, पुत्रवान् तथा बन्धुजनयुक्त सदैव रहेगा॥७२-७५॥

षडभिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसंपदाम्॥७६॥

कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेत्कृष्णप्रसादतः।
इत्येवं कथितं स्तोत्रं वत्स त्वं गच्छ पुष्करम्॥७७॥

तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात्प्राप्स्यसि वाञ्छितम्।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्।
ममाऽशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः॥७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० स्तवप्रदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

वह कृष्णभक्त न्याय प्रभृति षड्दर्शन का ज्ञानी हो जाता है। वह मनोगति द्वारा सर्वत्र जा सकता है। सर्वदा सभी विषयों का ज्ञाता होकर कृष्णभक्ति की कृपा से कल्पवृक्ष की ही तरह सभी सम्पदा अन्य को देने वाला भी हो जाता है। यह निश्चित जानो। हे वत्स! यह स्तोत्र मैंने तुमसे कह दिया। अब तुम पुष्करतीर्थ जाओ। वहां मन्त्रसिद्धि प्राप्त करने के अनन्तर तुम अपनी कामना की प्राप्ति करोगे। अर्थात् तुम सुख पूर्वक पृथिवी को २१ बार राजाओं से रहित कर सकोगे। हे मुनिवर! श्रीकृष्ण की कृपा तथा मेरे आशीर्वाद से इस कार्य में तुम सफल हो जाओगे।।७६-७८।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

परशुराम की युद्ध यात्रा, स्वप्न में शुभ-शकुनादि दृश्य देखना

नारायण उवाच

शिवं प्रणम्य स भृगुर्दुर्गां कालीं मुदाऽन्वितः।
गत्वा पुष्करतीर्थं च मन्त्रसिद्धिं चकार ह॥१॥

स बभूव निराहारो मासं भक्तिसमन्वितः। ध्यायन्कृष्णपदाम्भोजं वायुरोधं चकार सः॥२॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य गगनं तेजसाऽऽवृतम्। दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम्॥३॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह। ददर्श तत्र पुरुषमत्यन्तं सुन्दरं वरम्॥४॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। प्रणम्य दण्डवन्मूर्ध्ना वरं वव्रे तमीश्वरम्॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! वे भृगुवंशावतंस परशुराम ने शिव एवं पार्वती को प्रणाम किया तथा प्रसन्न मन से पुष्कर तीर्थ जाकर उन्होंने मन्त्रसिद्धि किया। परशुराम ने वहां श्रीकृष्ण के चरणकमल के ध्यान में लगा कर पहले एक मास निराहार रह कर वायुशुद्धि (वायुरोध) किया। इसके

पश्चात् दोनों नेत्र खोल कर देखते हैं कि आकाश तेज से आवृत्त है। दसों दिशाओं तथा सूर्य को समाच्छादित करता एक तेजोमण्डल वहां प्रकाशित है। उस मण्डल में उन्होंने एक रत्न का यान देखा। उसमें उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ पुरुष को देखा। वह भक्तों के प्रति अनुग्रह करने वाला तथा तनिक मुस्कानयुक्त चेहरे वाला था। परशुराम ने उनको पृथिवी पर दण्डवत् होकर प्रणाम करके वर मांगा।।१-५।।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति।
पादारविन्दे सुदृढां तां भक्तिमनपायिनीम्।।६।।
दास्यं सुदुर्लभं शश्वत्त्वत्पादाब्जे च देहि मे। कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत।।७।।
भृगुः प्रणम्य भवनं तज्जगाम परात्परम्। पस्पन्द दक्षिणाङ्गं च परं मङ्गलसूचकम्।।८।।

(परशुराम ने कहा)–हे जगदीश्वर! मैं पृथिवीमण्डल को इक्कीस बार क्षत्रियशून्य करूं। आपके चरणों के प्रति मेरी दृढ़ तथा चिरस्थायी भक्ति बनी रहे। आप मुझे अपने चरणों का दास चिरकाल हेतु बनायें। यह अति दुर्लभ है। तब प्रभु कृष्ण ने उनको यह वर दिया तथा वहां से अन्तर्हित् हो गये। परशुराम उन परात्पर को प्रणाम करके स्वगृह चले गये। उस समय अत्यन्त मंगल की सूचना देने वाला शकुन रूप उनका दक्षिणांग फड़कने लगा।।६-८।।

वाञ्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नं च ददर्श ह। मनः प्रसन्नं स्फीतं च तदबभूव दिवानिशम्।
संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदाऽन्वितः।।९।।

तदनन्तर उन्होंने रात्रि में मनोरथ सिद्धिसूचक सुस्वप्न देखा। तभी से उनका मन प्रसन्न एवं ऊर्जावान् रहने लगा। उन्होंने मुदित होकर अपने गृह में स्वजनों को भी यह समाचार सुनाया।।९।।

स्वचशिष्यान्पितृशिष्यांश्च भ्रातृवर्गांश्च बान्धवान्।
आनीयाऽऽनीय विविधान्मन्त्रांश्च स चकार ह।।१०।।
पौर्वापर्य स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे। तैरेव सार्धं बलवान्बभूव गमनोन्मुखः।।११।।

इसके पश्चात् उन्होंने अपने तथा पिता के शिष्यों, भाईयों तथा बन्धुजन को बुलाया। वे उनको अनेक विविध मन्त्रों की शिक्षा देने लगे। शुभ-क्षण में उन्होंने सभी से आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त कहा तथा उन सभी के साथ अनेक मन्त्रणा करके युद्धयात्रार्थ निर्णीत शुभ काल में बलिष्ठ हृदय से शिष्यों एवं भाईयों के साथ युद्धार्थ निकल पड़े।।१०-११।।

ददर्श मङ्गलं रामः शुश्राव जयसूचकम्। बुबुधे मनसा सर्वं स्वजयं वैरिसंक्षयम्।।१२।।
यात्राकाले च पुरतः शुश्राव सहसा मुनिः। हरिशब्दं शङ्खरवं घण्टादुन्दुभिवादनम्।।१३।।
आकाशवाणीसङ्गीतं जयस्ते भतितेति च।
नवेङ्गितं च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम्।।१४।।

चकार यात्रां भगवाञ्छ्रुत्वैवं विविधं शुभम्। ददर्श पुरतो विप्रवह्निदैवज्ञभिक्षुकान्॥१५॥
ज्वलत्प्रदीपं दधतीं पतिपुत्रवतीं सतीम्। पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम्॥१६॥
शिवं शिवां पूर्णकुम्भं चाषं च नकुल तथा। गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम्॥१७॥
कृष्णसारं गजं सिंहं तुरङ्गं गण्डकं द्विपम्। चमरीं राजहंसं च चक्रवाकं शुकं पिकम्॥१८॥
मयूरं खञ्जनं चैव शङ्खचिल्लं चकोरकम्। पारावतं बलाकं च कारण्डं चातकं चटम्॥१९॥
सौदामनीं शक्रचापं सूर्यं सूर्यप्रभां शुभाम्। सद्योमांसं सजीवं च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम्॥२०॥

माणिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रं च प्रवालकम्।
दधि लाजाञ्छुक्लधान्यं शुक्लपुष्पं च कुङ्कुमम्॥२१॥

परशुराम ने चलते समय मंगल शकुन देखा तथा जयसूचक शब्दों को भी सुना। इससे उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि ये सभी मेरी विजय के लक्षण ही हैं। मुनिकुमार परशुराम ने यात्रा करते समय हठात् हरिध्वनि, शंखवादन, घंटा वादन तथा दुन्दुभि निनाद सुना। उन्होंने आकाशीय दैववाणी भी सुना "भृगुपुत्र तुम्हारी विजय हो।" इसी प्रकार उन्होंने कल्याणकर शकुन संकेत देखा, जयसूचक मेघ शब्द सुना। उस यात्रा प्रारम्भ काल में ब्राह्मण, बन्दीगण, दैवज्ञ, जलता प्रदीप लिये पति-पुत्रवती स्त्रियां, नाना अलंकार भूषित सती नारीगण को उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में खड़े देखा। परशुराम के जाते समय मार्ग में शवदेह, शृगाली, जलपूर्ण घट, (नीलकंठ) चाष पक्षी, नेवला तथा सभी शुभ-शकुन परशुराम को दिखलाई पड़े थे। मार्ग में उन्होंने कृष्णसार मृग, हाथी, सिंह, अश्व, गैंडा, चामरी गौ, राजहंस, चक्रवाक, तोता, कोयल, मयूर, खंजन पक्षी, शंखचिल्ल, चकोर, कबूतर, बगुला, हारिल पक्षी, चातक, गौरैया, आकाशीय विद्युत्, इन्द्रधनुष, सूर्य, सूर्यप्रभा, जो अत्यन्त शुद्ध होती है, ताजा कटा मांस, जीवित मछली, शंख, स्वर्ण, माणिक, चांदी, मोती, मणीन्द्र, प्रवाल, दधि, लावा, श्वेत धान्य, श्वेत पुष्प, कुंकुम देखा।।१२-२१।।

पर्णं पताकां छत्रं च दर्पणं श्वेतचामरम्। धेनुं वत्सप्रयुक्तां च रथस्थं भूमिपं तथा॥२२॥

[1]दुग्धमाज्यं तथा पूगममृतं पायसं तथा।
शालग्रामं [2]पक्वफलं स्वस्तिकं शर्करां[3] मधु॥२३॥

मार्जारं च वृषेन्द्रं च मेषं पर्वतमूषिकाम्। मेघाच्छन्नस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम्॥२४॥

कस्तूरीं व्यजनं[4] तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकाम्।
सिद्धार्थं[5] सर्षपं दूर्वां विप्रबालं च बालिकाम्॥२५॥

१. क. ०ग्धं च रोचनामाल्यम०।
२. क. ०कङ्कक०।
३. क. ०कैरान्विता।
४. क. कज्जलं०।
५. क. ०द्धान्नं।

मृगं वेश्यां षट्पदं च कर्पूरं पीतवाससम्। गोमूत्रं गोपुरीषं च गोधूलिं गोपदाङ्कितम्॥२६॥
गोष्ठं गवां वर्त्म रम्यां गोशालां गोगतिं शुभम्।
भूषणं देवमूर्तिं च ज्वलदग्निं महोत्सवम्॥२७॥

परशुराम ने मार्ग में पलाश, पताका, छत्र, दर्पण, श्वेत चामर, वत्स सहित गौ, रथारूढ़ राजा, दूध-घृत, पायस, शालग्राम शिला, पके फल, स्वस्तिक, शर्करा, शहद, विडाल, सांड, मेष, पर्वतीय मूषक, मेघाच्छन्न सूर्योदय, चन्द्रमण्डल, कस्तूरी, पंखा, जल, हल्दी, तीर्थ की मिट्टी, राई, सरसों, दूर्वा, बालक ब्राह्मण, ब्राह्मण बालिका, मृग-वेश्या, भ्रमर, कर्पूर, पीतवस्त्र, गोमूत्र-गोबर, गौ के खुर की धूलि, गोपद चिह्न, गोशाला, गौओं की शुभ देखभाल करते हुए, गौओं का समूह, शुभ गोगति, भूषण, देवता प्रतिमा, प्रज्वलित अग्नि तथा महोत्सव क्रमशः दाहिने देखा!॥२२-२७॥

ताम्रं च स्फटिकं [1]वन्द्यं सिन्दूरं माल्यचन्दनम्।
गन्धं च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम्॥२८॥
सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभाम्॥२९॥

परशुराम ने मार्ग में ताम्र, स्फटिक, वन्दनीय सिन्दूर, माला-चन्दन-उत्तम गन्ध, हीरे, रत्न यह सब दाहिनी ओर देखा। उन्होंने ब्राह्मणों का शुभ आशीर्वाद पाया तथा सुगन्धित वायु का मार्ग में आघ्राण (सूंघा) किया॥२८-२९॥

इत्येवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदाऽन्वितः। अस्तं गते दिनकरे नर्मदातीरसंनिधौ॥३०॥
तत्राक्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम्। अत्यूर्ध्वं विस्तृतमतिपुण्याश्रमपदं परम्॥३१॥
पौलस्त्यतपसः स्थानं सुगन्धिमरुदन्वितम्।
कार्तवीर्यार्जुनाभ्याशे तत्र तस्थौ गणैः सह॥३२॥
सुष्वाप पुष्पशय्यायां किङ्करैः परिसेवितः। निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः॥३३॥

इन मंगलों को समझ कर वे मुदित होकर चल रहे थे। सूर्यास्त काल तक वे नर्मदा तट तक पहुंच गये। यह स्थान अत्यन्त मनोरम था। वहां एक उत्कृष्ट अत्युच्च चिरस्थायी वटवृक्ष उन्होंने देखा। उसके नीचे ऋषि पुलत्स्य का श्रेष्ठतम आश्रम सुगन्धित वायुयुक्त तथा शीतल था। यहीं पुलत्स्य ने पूर्वकाल में उत्कट तप किया था। यह कार्त्तवीर्य अर्जुन के राज्य से अति निक़ट था। मुनिवर परशुराम यहां अपने गणों सहित विश्राम करने लगे। वे अपने किंकरों से सेवित होकर पुष्पशय्या पर शयन करने लगे। वे मार्गश्रम से अत्यन्त श्रान्त होने के कारण निद्रित हो गये॥३०-३३॥

निशातीते च स भृगुश्चारु स्वप्नं ददर्श ह। न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफं विना॥३४॥
गजाश्वशैलप्रासादगोवृक्षफलितेषु च। आरुह्यमाणमात्मानं रुदन्तं कृमिभक्षितम्॥३५॥

१. क. रैत्थं सि०।

आरुह्यमाणमात्मानं नौकायां चन्दनोक्षितम्।
धृतवन्तं पुष्पमालां शोभितं पीतवाससा॥३६॥

विण्मूत्रोक्षितसर्वाङ्गं वसापूयसमन्वितम्। वीणां वरां वादयन्तमात्मानं च ददर्श ह॥३७॥

रात्रि का अवसान होते-होते उन भृगुवंशी ने एक उत्तम स्वप्न दर्शन किया। यह स्वप्न उन्होंने चिन्ता रहित स्थिति में देखा था। उस समय परशुराम को वात-पित्त किंवा कफजनित कोई विकार नहीं था। उन्होंने स्वप्न में हाथी, अश्व, पर्वत, अट्टालिका, गौ को तथा फलयुक्त वृक्ष पर स्वयं को आरूढ़ देखा। उनको उस समय कीट खा रहे थे तथा वे स्वयं रुदनरत थे। उन्होंने स्वयं को नौकारूढ़ देखा। उनका अपनी देह का सर्वांग चन्दन चर्चित, पुष्पमाला-पीताम्बर भूषित था। वे मल-मूत्र-वसा (चर्बी) से लिप्त थे। समस्त अंगों में मवाद लगा था तथा उत्तम वीणा वादन भी करते जा रहे थे।।३४-३७।।

विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तटे। दध्याज्यमधुसंयुक्तं भुक्तवन्तं च पायसम्॥३८॥

भुक्तवन्तं च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिषम्।
फलपुष्पप्रदीपं च पश्यन्तं स्व ददर्श ह॥३९॥
परिपक्वफलं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम्।
स्वस्तिकं भुक्तवन्तं स्वं ददर्श च पुनः पुनः॥४०॥

जलौकसा वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च। भक्षितं भीतमात्मानं पलायन्तं ददर्श सः॥४१॥

वे स्वयं नदी के किनारे विशाल कमल पत्र पर दधि-घृत तथा मधुयुक्त खीर भक्षण कर रहे थे। उन्होंने स्वयं को ताम्बूल चबाते तथा ब्राह्मणों का आशीर्वाद पाते देखा! उन्होंने अपने समक्ष पक्व फल, दुग्ध, उष्ण अन्न, शर्करा, खांड, बड़ा आदि रखे देखा, जिसे वे बारम्बार भक्षण कर रहे थे। उन्होंने जोंक, बिच्छू, मछली तथा सर्प को अपना भक्षण करने के लिये स्वप्न में उद्यत देखा, जिससे डर कर परशुराम स्वयं भागते जा रहे थे।।३८-४१।।

ततो ददर्श चाऽऽत्मानं मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः।
पतिपुत्रवतीं नारीं पश्यन्तं सस्मितं द्विजम्॥४२॥

तदनन्तर परशुराम स्वप्न में देखते हैं कि वे चन्द्र तथा सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हो गये हैं। वहां उन्होंने पति-पुत्र युक्त स्त्रियों तथा हंसते प्रसन्न ब्राह्मणों को भी देखा!।।४२।।

सुवेषया कन्यकया सस्मितेन द्विजेन च। ददर्श श्लिष्टमात्मानं तुष्टेन परितुष्टया॥४३॥
फलितं पुष्पितं वृक्षं देवताप्रतिमां नृपम्। गजस्थं च रथस्थं च पश्यन्तं स्वं ददर्श सः॥४४॥

पीतवस्त्रपरिधानां रत्नालङ्कारभूषिताम्।
विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः॥४५॥
शङ्खं च स्फटिकं श्वेतमालां मुक्तां च चन्दनम्।
सुवर्णं रजतं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः॥४६॥

गजं वृषं च सर्पं च श्वेतं च श्वेतचामरम्। नीलोत्पलं दर्पणं च भार्गवो वै ददर्श सः॥४७॥

रथस्थं नवरत्नाढ्यं मालतीमाल्यभूषितम्।
रत्नसिंहासनस्थं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥४८॥

वहां इन ब्राह्मण ने साज-सज्जा युक्त तथा सन्तुष्ट खड़ी हैं तथा वहां परम सन्तुष्ट प्रसन्न द्विजगण उनका आलिंगन कर रहे हैं। पुनः वे स्वप्न में देखते हैं कि फलभार से झुके तथा खिले पुष्पों वाले वृक्ष, देवता प्रतिमा तथा राजागण भी सामने हैं। वे स्वयं कभी हाथी तो कभी रथ पर बैठे हैं। उन्होंने स्वप्न देखा कि कोई रत्नालंकार भूषिता नारी उनके गृह में प्रवेश कर रही है। उन्होंने शंख-स्फटिक निर्मित पात्र, श्वेत पुष्पमाला, मुक्ता-चन्दन-स्वर्ण-रजत तथा रत्न भी देखा। हाथी, वृष, सफेद सरसों, श्वेत वामर, नीलकमल तथा दर्पण भी स्वप्न में देखा। उन भृगुनंदन ने स्वप्न में देखा कि वे स्वयं कभी रथ पर बैठे तो कभी नवरत्नभूषित स्वयं को देखा। कभी मालती माला युक्त एवं रत्नसिंहासनारूढ़ भी अपने को देखा।।४३-४८।।

पद्मश्रेणीं[1] पूर्णकुम्भं दधिलाजान्घृतं मधु।
पर्णच्छत्रं छत्रिणं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥४९॥
बकपङ्क्तिं हंसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं व्रतान्विताम्।
पूजयन्तीं घटं शुभ्रं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५०॥

उन्होंने पद्मश्रेणी, पूर्णकुंभ, दधि, लावा, घृत, मधु, पत्ते का छाता तथा स्वयं को छत्र लगाये स्वप्न में देखा। उन्होंने स्वप्न में बगुलों की पंक्ति, हंस की पंक्ति, व्रती कन्याओं की पंक्ति देखा, जो शुभ्र कलश पूजनरत थीं।।४९-५०।।

मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन्तं हरं हरिम्।
जयोऽस्त्वित्युक्तवन्तं तं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५१॥

सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिं च शाश्वतीम्। पुष्पचन्दनवृष्टिं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५२॥

सद्योमांसं जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतखञ्जनम्। सरोवरं च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५३॥

वे स्वप्न में देखते हैं कि मण्डप में ब्राह्मण शिव-विष्णु की पूजा करते जय प्राप्त होने का आशीर्वाद दे रहे हैं। उन्होंने स्वप्न में सुधावृष्टि, पत्तों की वृष्टि, फलवृष्टि निरन्तर होते देखा। उन्होंने पुष्प-चन्दन वृष्टि भी होते देखा। उन्होंने ताजा मांस, जीवित मछली, मयूर, सफेद खंजन पक्षी, सरोवर तथा तीर्थ भी स्वप्न में देखा।।५१-५३।।

पारावतं शुकं चाषं शङ्खं चिल्लं च चातकम्।
व्याघ्रं सिंहं च सुरभीं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५४॥

---

१. पद्म श्रेणीं पूर्णकुम्भामिति क्वचित् पाठः।

गोरोचनां हरिद्रां च शुक्लधान्याचलं वरम्।
ज्वलदग्निं तथा दूर्वां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५५॥
देवालयसमूहं च शिवलिङ्गं च पूजितम्।
अर्चितां मृण्मयीं शैवां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः॥५६॥
यवगोधूमचूर्णानां [1]भक्ष्याणि विविधानि च।
भृगुर्ददर्श स्वप्ने च बुभुजे च पुनः पुनः॥५७॥
दिव्यवस्त्रपरिधानो रत्नभूषणभूषितः। अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः॥५८॥

उन्होंने कपोत, तोता, नीलकण्ठ, शंखचील, चातक, बाघ, सिंह, सुरभि गौ को, गोरोचन, हल्दी, श्वेत वर्ण का श्रेष्ठ धान्य, ज्वलित अग्नि तथा दूर्वा भी स्वप्न में देखा। परशुराम ने देवमंदिर समूह, पूजित शिवलिंग, पूजित मृण्मयी दुर्गा प्रतिमा देखा। जौ-गेहूं के चूर्ण निर्मित नाना पदार्थ तथा उनको स्वयं को भोजन करते स्वप्न में पुनः-पुनः देखा। दिव्य वस्त्रधारी, रत्नभूषित अगम्या स्त्री से स्वयं को संभोग करते भृगुनन्दन ने स्वप्न में देखा॥५४-५८॥

ददर्श नर्तकीं वेश्यां रुधिरं च सुरां पपौ। रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने च भृगुनन्दनः॥५९॥
पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणां च नारद। मांसानि बुभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोदये॥६०॥
अकस्मान्निगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं पुनः।
दृष्ट्वा च बुबुधे प्रातः समुत्तस्थौ हरिं स्मरन्॥६१॥

उन्होंने स्वप्न में नृत्यरत वेश्या देखा। स्वयं रक्त तथा मद्य का स्वप्न में पान किया। रुधिर से लिप्त अपने अंगों को स्वप्न में देखा। उन्होंने स्वप्न में अरुणोदय के समय पीतवर्ण के पक्षी तथा मनुष्य का मांस स्वयं प्रसन्नता से भक्षण किया। उन्होंने स्वयं को जंजीर से बद्ध तथा अपने अंगों को अस्त्राघात से क्षत देखा। यह सब देख कर परशुराम प्रातःकाल हरिस्मरण करते उठ गये॥५९-६१॥

अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यं चकार सः।
मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुवम्॥६२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

स्वप्न संकेत को जान कर वे अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हो उठे। उनको मन में यह बोध हो गया कि मैं युद्ध अवश्य जीत लूंगा!॥६२॥

॥त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त॥

१. क. पिष्टानि लड्डुकानि च।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कार्त्तवीर्य के यहां परशुराम द्वारा दूत भेजना, कार्त्तवीर्य का अपनी पत्नी मनोरमा से अपने द्वारा देखे गये स्वप्न वृत्तान्त का कथन

नारायण उवाच

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह। दूतं प्रस्थापयामास कार्तवीर्याश्रमं भृगुः॥१॥
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि। वेष्टितं सचिवैः सार्धमुवाच नृपतीश्वरम्॥२॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—भृगु पुत्र परशुराम ने अब प्रातःकालीन सन्ध्या-वन्दनादि कृत्य का निर्वाह करके बन्धु-बान्धवों से परामर्श लेकर कार्त्तवीर्य के यहां अपना दूत भेजा। उस दूत ने यथाशीघ्र कार्त्तवीर्य की सभा में आकर मन्त्रियों से घिरे कार्त्तवीर्य से कहा—॥१-२॥

रामदूत उवाच

नर्मदातीरसांनिध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके। स भृगुर्भ्रातृभिः सार्धं त्वं तत्राऽऽगन्तुमर्हसि॥३॥
युद्धं कुरु महाराज जातिभिर्ज्ञातिभिः सह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति॥४॥

परशुराम का दूत कहता है—हे महाराज! नर्मदा नदी के तट पर जो अक्षयवट है, उसके नीचे भृगुनन्दन परशुराम भाईयों के साथ स्थित हैं। आप अपने गोत्र बन्धुगण के साथ उनसे युद्ध करिये। उन्होंने प्रण किया है कि वे २१ बार पृथिवी को राजाओं से रहित करेंगे।॥३-४॥

इत्युक्त्वा रामदूतश्चाप्यगच्छद्रामसंनिधिम्। राजा विधाय संनाहं समरं गन्तुमुद्यतः॥५॥
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा। तमेव वारयामास वासयामास संनिधौ॥६॥
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः। तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने॥७॥

हे मुनि! यह कहकर रामदूत भी राम के पास आ गया। राजा भी युद्धसज्जा करके युद्धक्षेत्र में जाने का उपक्रम करने लगा। उस समय राजा की पत्नी मनोरमा भी अपने पति कार्त्तवीर्य के पास आकर उसे बारम्बार युद्ध में जाने से मना करने लगी। जब राजा ने मनोरमा को देखा वह प्रसन्न हो उठा। उसके नेत्र खिल उठे। उसने पत्नी से अपना मनोभाव उस सभा में ही कहना प्रारम्भ कर दिया।॥५-७॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान्। स तिष्ठन्नर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह॥८॥
संप्राप्य शङ्कराच्छस्त्रं मन्त्रं च कवचं हरेः।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छति मेदिनीम्॥९॥

कार्त्तवीर्य अर्जुन कहता है—हे प्रिये! जमदग्नि ऋषि का महान् पुत्र परशुराम भाईयों के साथ नर्मदा तट पर आकर तथा शंकर से शस्त्र, मन्त्र तथा कवच पाकर स्थित है। वह २१ बार पृथिवी को क्षत्रिय रहित करना चाहता है।।८-९।।

आन्दोलयन्ति मे प्राणा मनः संक्षुभितं मुहुः।
शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टं स्वप्नं शृणु प्रिये।।१०।।

तैलाभ्यङ्गितमात्मानपपश्यं गर्दभोपरि। ओण्ढपुष्पस्य माल्यं च बिभ्रतं रक्तचन्दनम्।।११।।
रक्तवस्त्रपरीधानं लोहालङ्कारभूषितम्। क्रीडन्तं च हसन्तं च निर्वाणाङ्गारराशिना।।१२।।

परशुराम की प्रतिज्ञा सुन कर मेरे प्राण आन्दोलित हो उठे हैं। मन बारम्बार क्षुब्ध हो रहा है। (अशुभ सूचक) वामांग सतत् फड़क रहे हैं। मैंने जो स्वप्न देखा है, हे प्रिये! श्रवण करो। मैंने देखा कि मैं देह में तेल लगाये हुए, जवा पुष्पमाला धारण किये, सर्वांग में लाल चन्दन का लेप करके तथा लाल वस्त्र पहन कर, लौह के बने अलंकारों से भूषित देह से बुझे कोयलों से खेलते हुए हास्य करते-करते एक गर्दभ पर आरूढ़ हो गया हूं।।१०-१२।।

भस्माच्छन्नां च पृथिवीं जपापुष्पान्वितां सति।
रहितं चन्द्रसूर्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः।।१३।।
मुक्तकेशां च नृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम्।
रक्तवस्त्रपरीधानामपश्यं चाट्टहासिनीम्।।१४।।

सशरामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम्। भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमग्निवृष्टिमपीश्वरि।।१५।।

पक्वतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम्।
अपश्यं कर्परौधं च च्छिन्नकेशनखान्वितम्।।१६।।

पर्वतं लवणानां च राशीभूतं कपर्दकम्। चूर्णानां चैव तैलानामदृशं कन्दरं निशि।।१७।।
अदृशं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः। तालवृक्षं च फलितं तत्र चैव पतत्फलम्।।१८।।
स्वकरात्पूर्णकलशः पपात च बभञ्ज च। इत्यपश्यं च गगनात्संपतच्चन्द्रमण्डलम्।।१९।।
अपश्यमम्बरात्सूर्यमण्डलं संपतद्भुवि। उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः।।२०।।

मैंने स्वप्न में देखा कि समग्र धरती भस्माच्छन्न है तथा जवापुष्प माला से आवृत है। नभ में सूर्य-चन्द्र उदित ही नहीं है। केवल सन्ध्या जैसा दृश्य सर्वत्र आकाश में परिलक्षित हो रहा है। एक विधवा नारी लाल वस्त्र पहने, कटी नासिका वाली, अट्टहास करती, बाल बिखेरे नृत्य कर रही है। पुनः स्वप्न में देखा कि श्मशान भूमि में चिता पर शवदेह है। उसमें अग्नि नहीं है, तथापि वह चिता भस्म से पूर्ण है। हे प्राणेश्वरी! तब देखा कि भस्मवर्षा, रक्तवर्षा, अंगारवर्षा हो रही है। पुनः स्वप्न देखा कि पृथिवी पर पके ताल के फल पड़े हैं। अस्थिखण्ड बिखरे हैं। पुनः रात्रि में स्वप्न देखा कि कहीं नमक का पर्वत है। कहीं कटे बाल तथा नखयुक्त खोपड़ियां पड़ी हैं। कौड़ी का ढेर पड़ा था, कहीं पर चूर्ण

एवं तैल की गुफायें थीं। अन्य स्वप्न के अशोक-कनेर के पुष्पयुक्त वृक्ष, ताड़ वृक्ष, जिससे तालफल भूपतित हो रहे थे, देखा। यह देखा कि मेरे हाथ से जलपूर्ण कलश गिर गया। उल्का गिरना, धूमकेतु तथा चन्द्र-सूर्य ग्रहण भी देखा। सूर्य-चन्द्र को धरती पर गिरते देखा।।१३-२०।।

विकृताकारपुरुषं विकटास्यं दिगम्बरम्। आगच्छन्तं चाग्रतस्तमपश्यं च भयानकम्।।२१।।
बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता। संरुष्टा याति मद्गेहादित्यपश्यमहं निशि।।२२।।
आज्ञां त्वं देहि राजेन्द्र त्वद्गेहाद्यामि काननम्।
वदसि त्वं मामिति च निश्यपश्यमहं शुचा।।२३।।
रुष्टो विप्रो मां शपते संन्यासी च तथा गुरुः।
भित्तौ पुत्तेलिकाश्चित्रा नृत्यन्तीश्च ददर्श ह।।२४।।
चञ्चलानां च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा।
पीडितं महिषाणां च स्वमपश्यमहं निशि।।२५।।
पीडितं तैलयन्त्रेण भ्रामितं तैलकारिणा। दिगम्बरान्पाशहस्तानपश्यमहमीश्वरि।।२६।।

मैंने स्वप्न में विकृताकृति, विकटमुख, नग्न पुरुष को देखा, जो सामने से आ रहा था। मैंने स्वप्न में १२ वर्ष की वस्त्राभरण भूषिता बाला को रुष्ट होकर अपने गृह से बहिर्गत् होते देखा। वह मुझसे कह रही थी "हे राजन्! आज्ञा दो। मैं तुम्हारे घर से बहिर्गत् होना चाहती हूं।" इस प्रकार के स्वप्न देख शोकाकुल होकर तुमसे कह रहा हूं। स्वप्न में क्रोधित होकर विप्र, संन्यासी तथा गुरु मुझे शापित कर रहे थे। दीवार पर बनी पुतलियां एक स्वप्न में नृत्य कर रही थीं। चंचल गृध्र, काक, महिष समूह मुझे पीड़ित कर रहे थे। हे ईश्वरी मनोरमा! मैं तेली द्वारा कोल्हू में घुमाया जा रहा था। नग्न व्यक्ति हाथों में पाश लिये खड़े थे।।२१-२६।।

नृत्यन्ति गायकाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे। विवाहं परमानन्दमित्यपश्यमहं निशि।।२७।।
रमणं कुर्वतो लोकान्केशाकेशि च कुर्वतः। अदृशं समरं रात्रौ काकानां च शुनामपि।।२८।।
मोटकानि च पिण्डानि श्मशानं शवसंयुतम्।
रक्तवस्त्रं शुक्लवस्त्रमपश्यं निशि कामिनि।।२९।।
कृष्णाम्बरा कृष्णवर्णा नग्ना वै मुक्तकेशिनी।
विधवा श्लिष्यति च मामपश्यं निशि शोभने।।३०।।
नापितो मुण्डते मुण्डं श्मश्रुश्रेणीं च मे प्रिये।
वक्षःस्थलं च नखरमित्यपश्यमहं निशि।।३१।।

स्वप्न में मेरे गृह में गायक गायन कर रहे थे। नर्त्तक नृत्य कर रहे थे। मैंने रात में स्वप्न में परमानन्दात्मक विवाह देखा। उसमें लोग एक-दूसरे के बालों को पकड़ कर क्रीड़ा कर रहे थे। कुछ लोग रमणरत थे। अन्य स्वप्न में देखा कि काक एवं श्वान परस्पर झगड़ रहे थे। हे प्रिये! पुनः स्वप्न

देखा कि मोटक, पिण्ड, शवयुक्त श्मशान, रक्तवस्त्र तथा श्वेत वस्त्र पड़े हैं। हे सुन्दरी! रात में पुनः स्वप्न देखा कि काला कपड़ा पहने एक विधवा मेरे पास आकर नग्न हो गई तथा मेरा आलिंगन करना चाह रही है। हे प्रिये! एक रात्रि में यह स्वप्न देखा कि नाई आकर मेरा मस्तक, दाढ़ी-मूंछ, कांख के बाल, वक्ष के बाल का मुण्डन कर रहा है तथा नख काट रहा है!।।२७-३१।।

पादुकाचर्मरज्जूनामपश्यं राशिमुल्बणम्।
चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि॥३२॥
वात्यया घूर्णमानं च शुष्कवृक्षं तमुत्थितम्।
पूर्णमानं कबन्धं वै चापश्यं निशि शोभने॥३३॥
ग्रथितां मुण्डमालां च चू (घू) र्णमानां च वात्यया।
अतीव घोरदशनामप्यपश्यमहं वरे॥३४॥

भूतप्रेता मुक्तकेशा वमन्तश्च हुताशनम्। मां भीषयन्ति सततमित्यपश्यमहं निशि॥३५॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिग्रस्तं नरं परम्। अङ्गहीनं च वृषलमप्यपश्यमहं निशि॥३६॥

हे सुन्दरी! स्वप्न में मैंने पादुका, चर्मरज्जु का ढेर, भूमि पर कुम्हार के चक्र को घूर्णन करता देखा। हे सुव्रते! पुनः स्वप्न देखता हूं कि भयानक दांतों वाले दन्तयुक्त शवमुण्ड द्वारा गूंथी गई माला झंझावात जैसी वायु द्वारा उड़ायी जा रही है। रात में स्वप्न देखा कि भूतगण-प्रेतगण बिखरे केशयुक्त होकर मुख से अग्नि निकालते मुझे सतत् भयभीत कर रहे हैं। पुनः रात्रि में स्वप्न देखा कि कुछ प्राणी भग्नदेह हैं, वृक्षों की शाखा-प्रशाखा जल रही है। कुछ लोग रोगी पीड़ित देह वाले हैं तथा अंगहीन शूद्र भी हैं। यह स्वप्न में देखा।।३२-३६।।

गोहपर्वतवृक्षाणां सहसा पततं परम्। मुहुर्मुहुर्वज्रपातमप्यपश्यमहं निशि॥३७॥
कुक्कुराणां शृगालानां रोदनं च मुहुर्मुहुः। गृहे गृहे च नियतमपश्यं सर्वतो निशि॥३८॥

सहसा वृक्ष, गृह, पर्वत सहसा गिर रहे हैं। पुनः-पुनः वज्रपात हो रहा है, ऐसा स्वप्न मैंने देखा। बारम्बार श्वान, शृगाल रुदन कर रहे हैं। यह कार्य वे घर-घर जाकर कर रहे थे।।३७-३८।।

अधःशिरस्तूर्ध्वपादं मुक्तकेशं दिगम्बरम्। भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तं चाप्यपश्यमहं नरम्॥३९॥
विकृताकारशब्दं च ग्रामादौ देवरोदनम्। प्रातः श्रुत्वैवावबुद्धः क उपायो वदाधुना॥४०॥

मैंने रात्रि में स्वप्न देखा कि कोई नीचे मुण्ड तथा ऊपर पैर किये, खुले केश, नग्न होकर भूमि पर चक्रमण कर रहा है। ग्राम में विकृताकार प्राणी तथा देवता भी रुदनरत हैं। यह सुन कर मैं निद्रा से उठ गया। अब तुम ही कहो, इसका निराकरण करने का क्या उपाय है?।।३९-४०।।

नृपतेर्वचनं श्रुत्वा हृदयेन विदूयता। सगद्गदं च रुदती तमुवाच नृपेश्वरम्॥४१॥

राजा का वचन सुन कर मनोरमा का हृदय अत्यन्त दुःखी हो गया। उसने रोते हुए भर्राये स्वर में राजा से कहा-।।४१।।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम्। प्राणातिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम्॥४२॥

नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबली।
सृष्टिसंहर्तुरीशस्य शिष्योऽयं जगतः प्रभोः॥४३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति।
प्रतिज्ञा यस्य रामस्य तेन सार्धं रणं त्यज॥४४॥

हे रमण करने वालों में श्रेष्ठ! नाथ! आप समस्त राजाओं में श्रेष्ठ हैं। मुझे आप मेरे प्राणों से भी प्रिय तथा मेरे प्राणेश हैं। महाबली परशुराम नारायणांश हैं। वे जगत्स्वामी, सृष्टिसंहारक शंकर के शिष्य हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा लिया है कि मैं २१ बार धरती को क्षत्रिय रहित करूंगा। आप उन राम से युद्ध करने की इच्छा का त्याग करिये।।४२-४४।।

पापिनं रावणं जित्वा शूरं त्वमपि मन्यसे।
स त्वया न जितो नाथ स्वपापेन पराजितः॥४५॥
यो न रक्षित धर्मं च तस्य को रक्षिता भुवि।
स नश्यति स्वयं मूढो जीवन्नपि मृतो हि सः॥४६॥
शुभाशुभस्य सततं साक्षी धर्मस्य कर्मणः।
आत्मारामः स्थितः स्वान्तो मूढस्त्वं नहि पश्यसि॥४७॥

आप पापी रावण को जीत कर स्वयं को शूर मानने लगे। हे नाथ! आपने उसे नहीं जीता, वह अपने पापों से स्वयं पराजित हो गया। जिसने पृथिवी पर धर्म की रक्षा नहीं किया, उसकी रक्षा कौन कर सकता है? वह तो जीते जी मृत है। वह मूढ़ तो स्वयं नष्ट होगा। जो प्रभु शुभ-अशुभ धर्म तथा कर्म के साक्षी हैं, वे आत्माराम तथा अन्तःकरणस्थ हैं। आप मूढ़त्वग्रस्त होने के कारण उनको नहीं देख पाये!।।४५-४७।।

पुत्रदारादिकं यद्यत्सर्वैश्वर्यं सुधर्मिणाम्। जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं नश्वरं नृप॥४८॥

संसारं स्वप्नसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते।
ध्यायन्ति सततं धर्मं तपः कुर्वन्ति भक्तितः॥४९॥
दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत्सर्वं विस्मृतं त्वया।
अस्ति चेद्विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वन्मनः कथम्॥५०॥

हे राजन्! पुत्र-पत्नी आदि परिवार एवं समस्त ऐश्वर्य, यह जल के बुलबुले जैसा नश्वर है। इसका विनाश कोई खण्डित नहीं कर सकता। यह संसार स्वप्न में देखे पदार्थ जैसा मिथ्या जान कर साधुगण सर्वदा धर्मचिन्तन एवं भक्तिभावेन तपःश्चरण करते रहते हैं। हे नाथ! उन भगवान् दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त ज्ञानोपदेश आप भूल गये! अन्यथा आप ब्राह्मण हिंसा रूपी कुबुद्धि में अपना मन नहीं लगा सकते थे।।४८-५०।।

सुखार्थे मृगयां गत्वा तत्रोपोष्य द्विजाश्रमे।
भुक्त्वा मिष्टमपूर्वं च हतो विप्रो निरर्थकम्॥५१॥
गुरुविप्रसुराणां च यः करोति पराभवम्। अभीष्टदेवस्तं रुष्टो विपत्तिस्तस्य संनिधौ॥५२॥

आप मनोरंजन सुख हेतु आखेट पर गये। वहां जब आप उपवासी थे, तब आपने उन ब्राह्मण के आश्रम में अपूर्व मिष्ठान्नादि का भोजन किया और निरर्थक रूप से ब्राह्मणवध कर दिया। जो गुरु, ब्राह्मण, देवता का पराभव आदि अपमान करता है, उसके इष्टदेव उससे रुष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति नाना विपत्तियों से आक्रान्त होता है।।५१-५२।।

स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम्। गुरौ भक्तिश्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी॥५३॥
गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं व्रज। विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्रियाणां नहि क्षतिः॥५४॥
विप्रस्य किङ्करो भूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप।
सर्वेषां किङ्कराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः॥५५॥

हे राजेन्द्र! अब आप महर्षि दत्तात्रेय के चरणकमलों का स्मरण करें। गुरुभक्ति सबके विघ्न का विनाश करने वाली है। आप गुरु की अर्चना करके परशुराम के शरणागत हो जायें। जब ब्राह्मण तथा देवता प्रसन्न हो जाते हैं, तब क्षत्रियों की कोई क्षति नहीं होती। ब्राह्मण का सेवक है राजा, राजा का सेवक है वैश्य तथा शूद्र इन तीनों का सेवक है।।५३-५५।।

अयशः शरणं शश्वत्क्षत्रियस्य च क्षत्रिये। महद्यशस्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च॥५६॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि। ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः॥५७॥

यदि क्षत्रिय अन्य क्षत्रिय की शरण में जाये, यह तो उसके लिये महाअपयशकारी कृत्य होगा, तथापि यदि क्षत्रिय गुरु, ब्राह्मण तथा देवता की शरण लेता है, तब तो यह उसके लिये महान् यश का कार्य है। हे राजेन्द्र! आप देवगण से भी श्रेष्ठ ब्राह्मण की शरण लीजिये। ब्राह्मण के सन्तुष्ट होते ही सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं।।५६-५७।।

इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोडे कृत्वा महासती। मुहुर्मुहुर्मुखं दृष्ट्वा विललाप रुरोद च॥५८॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा। स्नानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि वाञ्छितम्॥५९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैः कुङ्कुमैर्युतम्। अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दर॥६०॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वक्षसि मे प्रभो।
सभायां [१]पुष्परचिते तल्पे पश्यामि शोभनम्॥६१॥
शतपुत्राधिकः प्रेम्णा सतीनां वै पतिर्नृप। निरूपितो भगवता वेदेषु हरिणा स्वयम्॥६२॥

यह कह कर वह महासती मनोरमा राजा से सब नीतिवाक्य कह कर उनका आलिंगन

---

१. क. रतितल्पे च पश्यामि जन्म शो०।

करती तथा बारम्बार राजा का मुंह देख कर रुदनरत हो गई। तदनन्तर कुछ क्षण के उपरान्त राजा से कहा–हे राजन्! क्षणमात्र रुकें। स्नान करें। मैं वांछित भोजन प्रदान करूंगी। हे सुन्दर राजन्! मैं चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर, कुंकुम मिश्रित लेप आपके सर्वांग में लिप्त करूंगी। हे प्रभो! सिंहासनासीन होकर क्षणमात्र मेरे वक्ष से लगें। मैं सभा में आपको पुष्प रचित आसन पर देखना चाहती हूं। हे नृप! सती नारी के लिये उसका पति तो सौ पुत्रों से बढ़ कर होता है। श्रीहरि ने वेदों में यह स्वयं कहा है।।५८-६२।।

मनोरमावचः श्रुत्वा राजा परमपण्डितः। वोधयामास तां राज्ञीं ददौ प्रत्युत्तरं पुनः।।६३।।

परम विद्वान् राजा ने मनोरमा का वचन सुन कर रानी को प्रबोधित किया तथा उसे उत्तर देने लगा–।।६३।।

कार्तवीर्याजुन उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम्।
शोकार्तानां च वचनं न प्रशंस्यं सभासु च।।६४।।
सुखं दुःखं भयं शोकः कलहः प्रीतिरेव च। कर्मभोगार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि।।६५।।
कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम्।
कालः सृजति संसारं कालः संहरते पुनः।।६६।।
करोति पालनं कालः कालरूपी जनार्दनः।
कालस्य कालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेव च।।६७।।
संहर्तुर्वाऽपि संहर्ता पातुः पाता च कर्मकृत्।
स कर्मणां कर्मरूपी ददाति तपसां फलम्।।६८।।

कार्त्तवीर्य अर्जुन कहता है–हे कान्ते! मैं जो कह रहा हूं, उसे एकाग्रता पूर्वक श्रवण करो। मैंने तुम्हारा समस्त कथन सुना। शोकार्त्त का कथन सभा में मान्य नहीं होता। हे सुन्दरी! सुख-दुःख-शोक-विवाद-लाभ, ये सभी मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों के भोगकाल में उपस्थित होते हैं। यह काल ही कभी लोगों को राज्य देता है तो कभी मृत्यु घटित कर देता है। यह काल ही व्यक्ति को संसार में पुनः जन्म प्रदान कर देता है। सृष्टिकाल में काल ही जगत् सृजन करता है तथा प्रलय के समय वही समस्त जगत् का विलोप कर देता है। काल ही विष्णुरूप धारण करके समस्त जगत् का पालन करता है। भगवान् सर्वशक्तिमान् कृष्ण काल का भी लय कर लेते हैं। कृष्ण तो विधाता की भी सृष्टि करने वाले, जगत्संहारक के भी संहारक, जगत्पालक के भी पालनकर्त्ता तथा लोकों का कर्म करने वाले हैं। वे ही कर्मों का कर्मरूपी होकर तपःफल प्रदान करने वाले हैं।।६४-६८।।

कः केन हन्यते जन्तुः कर्मणा वै विना सति।
स्रष्टा सृजति सृष्टिं च संहर्ता संहरेत्पुनः।।६९।।

पाता पाति च भूतानि यस्याऽऽज्ञां परिपालयेत्।
यस्याऽऽज्ञया वाति वातः संततं भयविह्वलः॥७०॥

हे सती! बिना कर्म के कौन किसका संहार कर सकता है? उनकी आज्ञा से ही स्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। उनकी ही आज्ञा से संहर्त्ता रुद्र इसका संहार करते हैं। उनकी ही आज्ञा का परिपालन करते हुए सबके पालनकर्त्ता विष्णु पालनकार्य करते हैं। उनकी ही आज्ञा से भयभीत वायु सदा बहता रहता है!॥६९-७०॥

शश्वत्सञ्चरते मृत्युः सूर्यस्तपति संततम्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत्॥७१॥

उनकी ही आज्ञा से मृत्यु सतत् भयभीत होकर लोगों की मृत्युकाल का पता लगा कर संचरन करती रहती है। सूर्य उनकी ही आज्ञा से सतत् तप्त रहते हैं, इन्द्र वर्षण करते, अग्नि दहन करते हैं तथा उनकी आज्ञा से ही काल भयभीत होकर भ्रमण करता है।॥७१॥

तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सततं चराः।
वृक्षाश्च पुष्पिताः काले फलिताः पल्लवान्विताः॥७२॥
शुष्यन्ति कालतः काले वर्धन्ते च तदाज्ञया। आविर्भूता तिरोभूता सृष्टिरेव यदाज्ञया।
तस्याऽज्ञया भवेत्सर्वं न किञ्चित्स्वेच्छया नृणाम्॥७३॥

उनकी ही आज्ञा से स्थावर अचल होकर स्थिर रहते हैं तथा जो जंगम (चर) हैं, वे सतत् गतिशील रहते हैं। उनकी आज्ञा से ही काल आने पर वृक्ष पुष्पित-फलित तथा पल्लवान्वित होते हैं। काल आने पर सब कुछ शुष्क हो जाता है। समय (काल) आने पर वह उनकी ही आज्ञा से बढ़ता है। सृष्टि का आविर्भाव-तिरोभाव सब कुछ उनकी आज्ञा से ही होता है। उनकी ही आज्ञा सबकी कारणरूपा है। उनकी ही आज्ञा से सब कुछ होता है। मनुष्य स्वेच्छा से कुछ नहीं कर सकता।॥७२-७३॥

नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबलः।
त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति॥७४॥
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन।
निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामि सुव्रते॥७५॥

जमदग्नि के पुत्र नारायण के अंश हैं तथा महाबली हैं। वे २१ बार पृथिवी को राजा (क्षत्रिय) रहित करेंगे। यह उनका प्रण कदापि विफल नहीं होगा। हे सुव्रते! निश्चित रूप से मुझे उनके द्वारा ही निहत होना है। यह मुझे पहले से ज्ञात है।॥७४-७५॥

ज्ञात्वा सर्वं भविष्यं च शरणं यामि तत्कथम्।
प्रतिष्ठितानां चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥७६॥

यह सब भविष्य मुझे विदित है। मैं उनका शरणागत कैसे हो सकूंगा? जो प्रतिष्ठित व्यक्ति है, उसके लिये तो अपयश मरण से बढ़ कर दुःखदायी होगा।।७६।।

इत्येवमुत्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः। वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्।।७७।।
शतकोटिनृपाणां च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम्। अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम्।।७८।।
अश्वानां च गजानां च पदातीनां तथैव च।
असंख्यकं रथानां च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः।।७९।।
बभूव स्तिमिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम्।
धृतवन्तं च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः।।८०।।
क्रीडागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि। पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः।।८१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

यह कह कर राजा युद्धार्थ जाने लगा। उस समय युद्धवाद्य बजने लगे। मंगल कार्य कराया जाने लगा। कार्त्तवीर्य की सैन्य में सौ कोटि राजा, तीन लाख महाराज तथा सौ अक्षौहिणी महाबली-पराक्रमी सैनिक थे। उसके पास असंख्य हाथी, अश्व तथा असंख्य पदाति सेना थी। जैसे ही वह गमन करने लगा, वहां मन्दस्मित वाली मनोरमा रानी आ गई तथा राजा को रोक कर उनका कवच तथा धनुष लेकर उनको क्रीड़ागृह में लाई। उसने राजा को क्षण पर्यन्त वक्ष से लगाया तथा राजा का मुखकमल एकटक देखते उसका मुखचुम्बन बार-बार करने लगी।।७७-८१।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

मनोरमा की मृत्यु, परशुराम कार्त्तवीर्य संवाद, भृगुकृत काली-स्तव वर्णन, ब्रह्मा भार्गव संवाद, सुचन्द्र वध वर्णन

नारायण उवाच

मनोरमा प्राणनाथं क्षणं कृत्वा स्ववक्षसि।
भविष्यं मनसा चक्रे यद्यत्स्वामिमुखाच्छ्रुतम्।।१।।

पुत्रांश्च पुरतः कृत्वा बान्धवांश्च स्वकिङ्करान्। सस्मार सा हरिपदं मेने सत्यं भवेन्मुने॥२॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं वायुं संस्थाप्य मूर्धनि। ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते॥३॥

स्वान्तमाकृष्य विषयाज्जलबुद्बुदसंनिभात्।
संस्थाप्य बध्वा ज्ञानेन लोलं ब्रह्मणि निष्कले॥४॥
त्रिविधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम्।
तत्र प्राणांश्च तत्याज न च प्राणाधिकं प्रियम्[१]॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—कार्त्तवीर्य की पत्नी मनोरमा ने अपने पति को कुछ क्षण हृदय से लगा कर स्वामी से उसने जो कुछ सुना था, उसके द्वारा उसने मन ही मन यह विवेचना किया कि भविष्य के लिये क्या करना है। हे नारद! तब मनोरमा ने अपने पुत्रगण को, बन्धुगण को तथा भृत्यों को वहां बुला कर श्री हरि के चरणकमल का स्मरण किया तथा संसार को सार रहित जल के बुलबुले के समान जान कर योग का अवलम्बन लेकर अपने देहस्थ षट्चक्र का भेदन किया। तदनन्तर सहस्रार कमल पर प्राणवायु को स्थापित करके वहां मन को भी स्थित कर दिया। अर्थात् वहां निष्कल ब्रह्म में ज्ञान द्वारा इस चंचल मन को अविचल स्थापित किया, तथापि प्राणाधिक प्रिय का शरीर नहीं छोड़ा अर्थात् आलिंगनरत रही॥१-५॥

स राजा तां मृतां दृष्ट्वा विललाप रुरोद च।
संनाहं संपरित्यज्य कृत्वा वक्ष्यस्युवाच ताम्॥६॥

राजा मनोरमा को मृत देख कर रुदन करने लगा। उसने अपना कवच आदि रख दिया तथा मनोरमा का शव हृदय से लगा कर कहने लगा—॥६॥

राजोवाच

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरम्। सचेतना मां पश्येति विलपन्तं मुहुर्मुहुः॥७॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सार्धं गृहं व्रज। न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भामिनि॥८॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ श्रीशैलं व्रज सुन्दरि। तत्र क्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा॥९॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये। जलक्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा॥१०॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि। पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने॥११॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि। त्वया सार्धं रमिष्येऽहं तत्र चन्दनकानने॥१२॥
शीतेन गन्धयुक्तेन वायुना सुरभीकृते। भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रिते॥१३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमालेपनं कुरु। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति॥१४॥

राजा कहता है—हे मनोरमा! उठो! मैं युद्धार्थ नहीं जाऊंगा। तुम संज्ञालाभ करके देखो। मैं

१. नृपप्राणाधिकप्रिया इत्यपि पाठः।

बारम्बार विलाप कर रहा हूं। हे मनोरमा! उठ कर मेरे साथ घर चलो। हे भाविनी! अब मैं परशुराम से युद्ध नहीं करूंगा। हे सुन्दरी! मनोरमा! उठो! मैं तुम्हारे साथ पूर्ववत् जलक्रीड़ा करूंगा। हे मनोरमा! उठो! अब नन्दनकानन चलो। वहां पुष्पभद्रा नदी के निर्जन तट पर विहार करो अथवा मलय पर्वत चलो जो शीतल चन्दन से सुगन्धित है। वहां पर भ्रमरों की झंकार तथा कोकिलों का मनोहर शब्द सुनते तुम्हारे साथ चन्दनवन में विहार करूंगा! हे सती! तुम मेरे अंगों में चन्दन, कस्तूरी लेप करो तथा हंसते हुए मेरे चन्दन चर्चित शरीर का अवलोकन करो॥७-१४॥

सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं रचय प्रिये। कुटिलभ्रूविकारं च कथं न कुरुषेऽधुना॥१५॥

हे प्रिये! अब तुम अमृततुल्य मधुर बात करो। अब अपना भ्रूभंग वक्र क्यों नहीं करती हो?॥१५॥

नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वाग्बभूवाशरीरिणी। स्थिरो भव महाराज कुरुषे रोदनं कथम्॥१६॥
त्वं महाज्ञानिनां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं पश्य शोभनम्॥१७॥
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम्।
त्वमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे॥१८॥

राजा का यह रुदन सुन कर वहां अशरीरी वाणी सुनाई पड़ी—"हे महाराज! स्थिर हो जाओ। क्यों रो रहे हो? तुम दत्तात्रेय की कृपा से प्रधान ज्ञानीगण में अग्रगण्य हो। यह सुन्दर संसार जल के बुलबुले जैसा क्षणिक है। लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न साध्वी मनोरमा कमला के धाम में चली गयी है। तुम भी युद्ध करके वैकुण्ठ जाओ।१६-१८॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं नराधिपः। ततश्चन्दकाष्ठेन चितां दिव्यां चकार ह॥१९॥
संस्काराग्निं कारयित्वा पुत्रद्वारा ददाह ताम्।
नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥२०॥

राजा ने यह सुन कर शोक त्याग दिया। उसने रानी के शवदाहार्थ चन्दन काष्ठ की दिव्य चिता बनवाया तथा उसका दाह-संस्कार पुत्र से कराया तथा ब्राह्मणों को मुदित मन से नाना प्रकार के रत्न प्रदान किया॥१९-२०॥

नानाविधानि दानानि [1]वस्त्राणि विविधानि च।
मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥२१॥
भुज्यतां भुज्यतां शश्वद्दीयतां दीयतामिति। शब्दो बभूव सर्वत्र कार्तवीर्याश्रमे मुने॥२२॥
कोषेषु स्वाधिकारेषु स्थितं यद्यद्धनं तदा। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥२३॥

उसने मनोरमा के उद्देश्य से ब्राह्मणगण को अनेक धन, विविध वस्त्र दिया। कार्त्तवीर्य के गृह

१. क. वस्तूनि।

में भोजन करो, भोजन करो, दान करो, प्रदान करो, यही कोलाहल सर्वत्र सुनाई देता था। उस समय राजकोष में तथा उस राजा के अधिकार में जितना धन था, वह उसने ब्राह्मणों को आनन्द पूर्वक दे दिया। यह सब उसने मनोरमा के पुण्य हेतु प्रदान किया था।।२१-२३।।

राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता। सार्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसंख्यकैः।।२४।।
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि। ययौ तथाऽपि समरं नाऽऽजगाम गृहं पुनः।।२५।।
मुक्तकेशीं छिन्ननासां रुदतीं च दिगम्बराम्। कृष्णवस्त्रपरीधानामपरां विधवामपि।।२६।।

मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्तां च कुट्टिनीम्।
पतिपुत्रविहीनां च डाकिनीं पुंश्चलीं तथा।।२७।।
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम्।
कुचैलमतिरूक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनम्।।२८।।
वसाविक्रयिणं चैव कन्याविक्रयिणं तथा।
चितादग्धं शवं भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च।।२९।।
सर्पक्षतं नरं सर्पं गोधां च शशकं विषम्।
श्राद्धपाकं च पिण्डं च मोटकं च तिलांस्तथा।।३०।।

देवलं वृषवाहं च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम्। शूद्रान्नपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम्।।३१।।
कुशपुत्तलिकां चैव शवदाहनकारिणम्। शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च।।३२।।

कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुक्कुरं शब्दकारिणम्।
दक्षिणे च शृगालं च कुर्वन्तं भैरवं रवम्।।३३।।
कपर्दकं च क्षौरं च च्छिन्नकेशं नखं मलम्।
कलहं च विलापं च तथा तत्कारिणं जनम्।।३४।।

इसके पश्चात् राजा दुःखी हृदय के साथ असंख्य सैन्य लेकर तथा असंख्य रणवाद्य के साथ रणस्थली पहुंचा। वह मार्ग में अनेक अपशकुन देखता यहां तक आया था, तथापि वह युद्धस्थल से पीछे नहीं लौटा। उसने मार्ग में पहले केश खुली, नाक कटी, रुदन करती नग्न नारी को देखा। तदनन्तर काला वस्त्र पहने विधवा को देखा। तदनन्तर रोगग्रस्ता, मुखदुष्टा, योनिदुष्टा, कुट्टिनी, पतिपुत्र रहिता, डाकिनी, व्यभिचारिणी, कुम्हार, तेली, बहेलिया, मदारी, मलिन वेशभूषाधारी, रूक्षशरीरी, नग्न, गेरू रंग का वस्त्र पहनने वाले, वसा विक्रेता, कन्या विक्रेता, चिता में अर्द्धदग्ध शव, भस्म, कोयला, सर्पदंष्ट्र मनुष्य, गोह, खरगोश, विष, श्राद्ध का पका अन्न, पिण्ड, मोटक, तिल, शूद्र के देवालय का पुजारी, गाड़ीवान, शूद्र श्राद्धान्न भोजी, शूद्र का भंडारी, शूद्र को यज्ञ कराने वाला, घूम-घूम कर यज्ञ कराने वाला, पंचकादि हेतु कुश का पुतला बना कर शवदाह कराने वाला, खाली घट, टूटा घट, तैल, लवण, अस्थि, कपास, कच्छप, चूर्ण, शब्दकारी श्वान, दाहिनी ओर भीषण शब्द

करता शृगाल, कौड़ी, क्षौरकार्य, कटे बाल, कटा नख, मल, कलह, विलाप करता व्यक्ति देखा। उसका कारण भी देखा।।२४-३४।।

अमङ्गलं वदन्तं च रुदन्तं शोककारिणम्।।३५।।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरं च नरघातिनम्। पुंश्चलीपतिपुत्रौ च पुंश्चल्योदनभोजिनम्।।३६।।
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणम्। दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम्।।३७।।
पितृमातृविरक्तं च द्विजाश्वत्थविघातिनम्।
सत्यघ्नं च कृतघ्नं च स्थाप्यस्याप्यपहारिणम्।।३८।।
विप्रमित्रद्रोहमेवं क्षतं विश्वासघातकम्। गुरुदेवद्विजानां च निन्दकं स्वाङ्गघातकम्।।३९।।

अमांगलिक वचन बोलने वाला, रुदन तथा शोक करता व्यक्ति मार्ग में देखा। मिथ्या गवाही देने वाला, चोर, नरघाती, व्यभिचारिणी के पति-पुत्र को, व्यभिचारिणी के अन्न को खाने वाले को, देव-गुरु-ब्राह्मण की वस्तु तथा धन हरणकर्त्ता को, स्वयं दिया हुआ दान हर लेने वाले को, दस्यु, हिंसक, चुगलखोर, दुष्ट को, पिता-माता की सेवा से विमुख को, द्विज तथा पीपल वृक्ष को नष्ट करने वाले को, सत्य का नाश करने वाले को, अमानत में खयानत करने वाले को, विप्रद्रोही-मित्रद्रोही को, आहत को, विश्वासघातक को, गुरु-देवता-ब्राह्मण के निन्दक को तथा स्वयं अपने अंगों पर आघात पहुंचाने वाले को राजा ने मार्ग में देखा।।३५-३९।।

जीवानां घातकं चैव स्वाङ्गहीनं च निर्दयम्। व्रतोपवासहीनं च दीक्षाहीनं नपुंसकम्।।४०।।
गलितव्याधिगात्रं च काणं[1] बधिरमेव च। पुल्कसं छिन्नलिङ्गं च सुरामत्तं सुरां तथा।।४१।।
क्षिप्तं वमन्तं रुधिरं महिषं गर्दभं तथा। मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रूक्षिणं नृकपालिनम्।।४२।।
चण्डवातं रक्तवृष्टिं वाद्यं वै वृक्षपातनम्।
वृकं च सूकरं गृध्रं श्येनं कंकं च भल्लुकम्।।४३।।

प्राणीघातक, अंग रहित, निर्दय प्रवृत्ति, व्रत-उपवास रहित, दीक्षाहीन, नपुंसक, जिसके अंग व्याधि से गल गये, काना, बहिरा, चाण्डाल, कटे लिंग वाला, मदमत्त, सुरा विक्रेता, रुधिर वमन करने वाला, महिष, गर्दभ, मल-मूत्र-श्लेष्मा, रूक्षकेश व्यक्ति, नरकपाल, प्रचण्ड आंधी, रक्तवर्षा, वाद्य, वृक्ष गिरना, भेड़िया, शूकर, गृध्र, बाज, कंक, भालू भी देखा।।४०-४३।।

पाशं च शुष्ककाष्ठं च वायसं गन्धकं तथा।।४४।।
प्रतिग्राहिब्राह्मणं च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम्। वैद्यं च रक्तपुष्पं चाप्यौषधं तुषमेव च।।४५।।
कुवार्तां मृतवार्तां च विप्रशापं[2] च दारुणम्।
दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राजाऽपश्यत्स वर्त्मनि।।४६।।

१. क. यक्ष्मव्याधिन मे०।
२. रिपुवार्त्ताञ्च इति वा पाठः।

मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम्।
वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह॥४७॥
तथाऽपि राजा निःशङ्को ददर्श समराङ्गणम्। सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम्॥४८॥

पाश, शुष्क काष्ठ, काक, गंधक, प्रतिग्राही (दान मांगने वाला) ब्राह्मण, तन्त्र-मन्त्र से जीविकोपार्जन करने वाला, वैद्य, लाल पुष्प, औषधि, भूसी (धान आदि की भूसी, गेहूं का भूसा), निन्दित समाचार, मृतक समाचार, दारुण विप्रशाप, दुर्गन्धित वायु, कुशब्द, दुःशब्द–यह सब अपशकुन राजा को मार्ग में परिलक्षित हो गा। राजा का मन यह सब देख कर व्याकुलित एवं क्षुब्ध हो गया। उसके वाम अंग निरन्तर फड़क रहे थे, देह में जड़ता हो रही थी। इतने पर भी राजा शंका रहित होकर युद्ध करने में ही अपना मंगल मान कर युद्धस्थल देख रहा था तथा समस्त सैन्य के साथ युद्धभूमि में प्रवेश कर गया।।४४-४८।।

अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम्। ननाम दण्डवद्भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः॥४९॥
आशिषं युयुजे रामः स्वर्गं याहीति वाञ्छितम्।
तेषां सह्यं तद्बभूवुदुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिषः॥५०॥
भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात्। आरुरोह रथं तूर्णं नानायुधसमन्वितम्॥५१॥
नानाप्रकारवाद्यं च दुन्दुभिं मुरजादिकम्। वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्॥५२॥
उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणां च संसदि। हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदां वरः॥५३॥

जब वहां उसने सम्मुख परशुराम को देखा, तब वह तत्काल रथ से नीचे उतरा तथा अपने साथ के राजाओं सहित उनको भक्तिभाव से धरती पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया। परशुराम ने भी राजा को शुभ आशीर्वाद दिया कि "तुम वांछित स्वर्ग गमन करो।" ब्राह्मण का आशीर्वाद अलंघनीय तथा अव्यर्थ होता है। तभी तत्क्षण राजा कार्त्तवीर्य ने अन्य राजाओं के साथ युद्ध हेतु सज्जित रथ पर आरोहण किया। तभी सहसा मुरुज एवं दुन्दुभि प्रभृति का रणवाद्य होने लगा। उस समय राजा ने ब्राह्मणगण को धन प्रदान किया। तदनन्तर वेदज्ञों में प्रधान परशुराम ने सभी राजाओं की उस युद्धस्थल स्थित सभा में राजा से हितप्रद, सत्य तथा नीतियुक्त वाक्यों को कहा-।।४९-५३।।

परशुराम उवाच

शृणु राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव। विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः॥५४॥

श्री परशुराम कहते हैं–हे राजन्! तुम धार्मिक तथा चन्द्रवंश में उत्पन्न हो। विष्णु के अंश तथा धीमान् दत्तात्रेय के शिष्य हो।।५४।।

स्वयं विद्वांश्च बेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात्।
कथं दुर्बुद्धिरधुना सज्जनानां विहिंसना॥५५॥

त्वं पूर्वमहनो लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम्।
ब्राह्मणी शोकसंतप्ता भर्त्रा सार्धं गता सती॥५६॥
किं भविष्यति ते भूप परत्रैवानयोर्वधात्। सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम्॥५७॥
सत्कीर्तिश्चाथ दुष्कीर्तिः कथामात्रावशेषिता।
विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्तेश्च सतामहो॥५८॥
क्व गता कपिला त्वं क्व क्व विवादो मुनिः कुतः।
यत्कृतं विदुषा राज्ञा न कृतं हालिकेन तत्॥५९॥

तुमने वेदज्ञों से वेद सुना है। इससे तुम स्वयं भी विद्वान् हो, तथापि तुम्हारी ऐसी दुर्बुद्धि कहां से हो गई जो तुमने सज्जनों की हिंसा कर दिया। तुमने कैसे कपिला गौ के लोभ में निरीह ब्राह्मण का वध कर दिया। तुम्हारे कारण शोकसन्तप्त सती ब्राह्मण पत्नी पति के साथ चली गई। हे राजन्! इस प्रकार ब्राह्मण दम्पत्ति का विनाश करके परलोक में तुम्हारी क्या गति होगी? इस संसार को उसी प्रकार मिथ्या मानो जैसे पद्मपत्र पर जल! इस जगत् में सत्कीर्त्ति तथा दुष्कीर्त्ति बाकी रह जाती है। दुष्कीर्त्ति होने पर साधुगण के बीच उससे बढ़ कर उपहासास्पद और क्या हो सकता है? सज्जन के लिये अपयश से बढ़ कर विडम्बना क्या है? इससे क्या लाभ? कहां गयी वह कपिला (तुमको नहीं मिली), उसके लिये जो विवाद था, वह कहां गया, वे मुनि कहां गये?, तथापि एक बुद्धिमान राजा ने जो कृत्य किया वह एक हल जोतने वाला भी नहीं करेगा॥५५-५९॥

त्वामुपोषितमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः।
पारणां कारयामास दत्तं तस्य फलं त्वया॥६०॥
अधीतं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने। जगत्ते यशसा पूर्णमयशो वार्धके कथम्॥६१॥
दाता बलिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्वी पुण्यवान्सुधीः।
कार्तवीर्यार्जुनसमो न भूतो न भविष्यति॥६२॥
पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले। यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्तिरीदृशी॥६३॥

धार्मिक मुनि ने देखा कि राजा उपवासी है, उन्होंने तुमको पारण कराया। उसका तुमने यह उपयुक्त फल उनको दिया? तुमने शास्त्र पढ़ा है। नित्य ब्राह्मणों को सविधि दान देते हो। तुम्हारे सुयश से जगत् पूर्ण है। इस वृद्धावस्था में तुमने अपयश एकत्र कर लिया, ऐसा क्यों किया? कार्त्तवीर्य के समान दाता, महान् धार्मक, यशस्वी, पुण्यात्मा, विद्वान् राजा न तो था न होगा। प्राचीन स्तुतिपाठक अभी तक यही कहते थे। तुम तो पुराणादि में भी प्रसिद्ध हो। तुम्हारा ऐसा अपयश हो गया, यह अनुचित है!॥६०-६३॥

दुर्वाक्यं दुःसहं राजंस्तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम्।
सङ्कटेऽपि सतां वक्त्राद्दुरुक्तिर्न विनिर्गता॥६४॥

न ददामि दुरुक्तिं ते प्रकृतं कथयाम्यहम्। उत्तरं देहि राजेन्द्र मह्यं राजेन्द्रसंसदि॥६५॥
सूर्यचन्द्रमनूनां च वंशजाः सन्ति संसदि।
सत्यं वद सभायां च शृण्वन्तु पितरः सुराः॥६६॥

हे राजन्! कटु वाक्य प्राणीगण को तीक्ष्ण अस्त्र से भी अधिक असह्य लगता है। संकट होने पर भी साधुओं के मुख से दुर्वाक्य निर्गत नहीं होता। मैं कदापि तुम्हारे विरुद्ध कटूक्ति प्रयोग नहीं करूंगा, मैं तो वास्तविक बात ही कह रहा हूं। हे राजेन्द्र! तुम इन राजाओं के समक्ष उत्तर प्रदान करो। इस सभा में सूर्यवंशी, मनुवंशी, चन्द्रवंशी राजागण उपस्थित हैं। यहां सत्य कहना। उसे पितृगण तथा देवता भी श्रवण करें॥६४-६६॥

शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्वक्तुमीश्वराः।
पश्यन्तो हि समं सन्तः पाक्षिकं न वदन्ति च॥६७॥

इसे सत्-असत् कहने वाले अधिकारी (सद्-असद् का निर्णय करने वाले) राजा भी सुनें। जो सन्त हैं, वे सर्वत्र समदृष्टि रखते हैं। वे पक्षपाती होते ही नहीं॥६७॥

इत्युत्त्वा रैणुकेयश्च विरराम रणस्थले। राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे॥६८॥

यह कह कर उस रणभूमि में रेणुकापुत्र परशुराम मौन हो गये। तब बृहस्पति के समान विद्वान् राजा उत्तर देने लगा—॥६८॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः। श्रुतो धर्मी मुखाद्येषां त्वं च तेषां गुरोर्गुरुः॥६९॥
कर्मणा[1] ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनाम्।
स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद्ब्राह्मण उच्यते॥७०॥
अन्तर्बहिश्च मननात्कुरुते कर्मनित्यशः। मौनी शश्वद्वदेत्काले यो वै मुनिरुच्यते॥७१॥
स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये पंके सुस्निग्धचन्दने।
समताभावना यस्य स योगी परिकीर्तितः॥७२॥

कार्त्तवीर्य अर्जुन कहते हैं—हे राम! आप हरि के अंश से उत्पन्न हरिभक्त तथा इन्द्रियजित् हैं। जिनसे लोग धर्म सुनते हैं, आप उन गुरुगण के भी गुरु हैं। व्यक्ति अपने कर्मफल से ही ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होता है। जो व्यक्ति ब्राह्मणवंश में जन्म लेकर बाह्य तथा अन्तर में मनन करके कर्म करते हैं, प्रायः मौनी रहते हैं तथा यथाकाल कभी-कभी वाणी का प्रयोग करते हैं, वे ही मुनि हैं। स्वर्ण तथा ढेला, गृह-अरण्य, कीचड़ तथा चन्दन में जिनका समान ज्ञान है (भावना है) वे ही योगी कहे जाते हैं॥६९-७२॥

१. ख. ०णा वाऽप्यसद्बुद्ध्या क०।

सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत्समताधिया।
हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः॥७३॥
तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्यथा। तपस्या कामधेनुश्च सततं तपसि स्पृहा॥७४॥
ऐश्वर्ये क्षत्रियाणां च वाणिज्ये च तथा विशाम्।
शूद्राणां विप्रसेवैव स्पृहा वेदेष्वनिन्दिता॥७५॥
क्षत्रियाणां च तपसि स्पृहाऽतीवाप्रशंसिता।
ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीव विनिन्दिता[1]॥७६॥

जो व्यक्ति सभी प्राणीगण में समज्ञान के साथ विष्णु का ही उनमें चिन्तन करता है, उनके प्रति भक्तियुक्त है, वही हरिभक्त है। ब्राह्मण हेतु तप ही उसका धन है। तप ही कल्पवृक्ष है। तप ही कामधेनु है तथा सतत् तप करना ही ब्राह्मणों की इच्छा है। क्षत्रियों की इच्छा है ऐश्वर्य प्राप्ति, वैश्यों की इच्छा है व्यापार लाभार्थ तथा शूद्रों की इच्छा है ब्राह्मण सेवा। यह वेदों में प्रशंसनीय कहा गया है। क्षत्रिय हेतु तपस्या की इच्छा तथा ब्राह्मण हेतु विवाद की इच्छा निन्दित है।।७३-७६।।

रागौ राजसिकं कार्यं[2] कुरुते कर्मरागतः।
रागान्धो यो राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्तितः॥७७॥
रागतः कामधेनुश्च मया वै याचिता मुने।
को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः॥७८॥
कुतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वया विना।
स्पृहा रणे वा भोगे वा युष्माकं च व्यतिक्रमः॥७९॥
त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम्।
निहत्याऽऽयान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने॥८०॥
आत्मानं हन्तुमायान्तमपि वेदाङ्गपारगम्। न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महाऽभवम्॥८१॥
प्रायश्चित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम्। वधः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः॥८२॥

जो सकाम व्यक्ति कामना के वशीभूत होकर राजस कर्म करते हैं, वे अनुरागान्ध राजसिक व्यक्ति राजा कहलाते हैं। हे मुनिवर! मैंने कामना के कारण ही कामधेनु की भिक्षा मांगा था। मैं अनुरागी क्षत्रिय हूं। इसमें मेरा क्या दोष? आप लोगों के अतिरिक्त कौन मुनि कामधेनु की, युद्ध की तथा भोग की कामना करता है? मैंने केवल आपके ही यहां यह विपरीत भाव देखा है। हे मुनिवर! आप तो मेरी तीन सौ अक्षौहिणी सैन्य तथा तीन करोड़ राजाओं का विनाश कर सकने को उद्यत हैं, तथापि समर में प्रवृत्त होने पर मेरा विनाश कोई नहीं कर सकेगा। जो व्यक्ति मेरा वध करने आयेगा, भले ही वह वेदांग

१. वेदेष्वनिन्दितेति वा पाठः।
२. क. स्वर्गां।

पारदर्शी क्यों न हो, उस व्यक्ति का वध करने में दोष नहीं होगा। उसे ब्रह्मवध का पातक नहीं लगता। जो हिंसा में लगा है, उसका वध करना उचित है। इसमें प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। ब्रह्मा तक ने कहा है कि ऐसे व्यक्ति का वध करना उचित है।।७७-८२।।

पित्रा ते निहता भूपा महाबलपराक्रमाः। इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः॥८३॥

त्रिःसप्तकृत्वा निर्भूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति।
त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्यास्त्वं पालनं कुरु॥८४॥

क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः। रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोके वेदे विडम्बना॥८५॥

तपोधनानां विप्राणां वाग्बलानां युगे युगे।
शान्तिः स्वस्त्ययनं कर्म विप्रधर्मो न सङ्गरः॥८६॥

आपके पिता ने महाबली-पराक्रमी राजाओं का वध किया है, उनके ही राजपुत्रों को मैं यहां लाया हूं। आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन करें, जिसमें आपने सभी राजाओं को २१ बार निर्मूल करने को कहा है। क्षत्रियों का धर्म है युद्ध। युद्ध में क्षत्रिय की मृत्यु कदापि निन्दनीय नहीं है, तथापि ब्राह्मणगण की युद्ध की अभिलाषा लोक तथा वेद में निन्दित है। सत्ययुग, त्रेता प्रभृति सभी युगों में वे वाग्बल प्रधान (वाणीबल प्रधान) ब्राह्मणगण शान्तिप्रद एवं मांगलिक कर्म ही सम्पन्न करते हैं। विप्रधर्म युद्ध कदापि नहीं है।।८३-८६।।

क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विशाम्।
भिक्षाबलं भिक्षुकाणां शूद्राणां विप्रसेवनम्॥८७॥
हरौ भक्तिर्हरेर्दास्यं वैष्णवानां बलं हरिः।
हिंसा बलं खलानां च तपस्या च तपस्विनाम्॥८८॥
बलं वेषश्च वेश्यानां योषितां यौवनं बलम्।
बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनं बलम्॥८९॥
सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेवासतां सदा।
अनुगानामनुगमः स्वल्पस्वानां च सञ्चयः॥९०॥
विद्या बलं पण्डितानां धैर्यं साहसिनां बलम्।
शश्वत्कुकर्मशीलानां गाम्भीर्यं साहसं बलम्॥९१॥
धनं बलं च धनिनां शुचीनां च विशेषतः।
बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेकता॥९२॥
गुणो बलं च गुणिनां चौराणां चौर्यमेव च।
प्रियवाक्यं च कापट्यमधर्मः पुंश्चलीबलम्॥९३॥

हिंसा च हिंस्त्रजन्तूनां सतीनां पतिसेवनम्।
वरशापौ सुराणां च शिष्याणां गुरुसेवनम्॥९४॥

क्षत्रियों का बल है युद्ध। वैश्यों का बल है वाणिज्य। भिक्षुकों का बल है भिक्षा, शूद्रों का बल है ब्राह्मण सेवा। वैष्णवों का बल है हरिभक्ति। हरि के दासों के बल हैं हरि। दुष्टों का बल है हिंसा। तपस्वियों का बल है तप। वेश्याओं का बल है वेश विन्यास। रमणियों का बल है यौवन। राजाओं का बल है प्रताप, बालकों का बल है रोना। सत्य साधुओं का बल, असाधुगण का बल है मिथ्या। विद्या पण्डितों का, वाणिज्य वणिकों का तथा गांभीर्य एवं साहस निरन्तर कुकर्मियों का बल है। धनियों का बल है धन। शुद्धाचारीगण विशेषतः शान्त स्वभाव वालों का बल है विवेक। अनुयायीगण का बल है अनुगमन। अल्प धनी का बल है संचय। गुणीगण का बल है एकता। गुणीगण का बल है गुण, चोरों का बल है चोरी करना। व्यभिचारिणियों का बल है कपटयुक्त व्यवहार तथा प्रिय वाक्य बोलना। हिंसा धर्म है हिंस्त्र जन्तुगण का, सती का बल है पति की सेवा। देवगण का बल है वर प्रदान करना, शाप देना, शिष्यों का बल है गुरुसेवा॥८७-९४॥

बलं धर्मो गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम्।
बलं स्तवः स्तावकानां ब्रह्म च ब्रह्मचारिणाम्॥९५॥
यतीनां च सदाचारो न्यासः संन्यासिनां बलम्। पापं बलं पातकिनामशक्तानां हरिर्बलम्॥९६॥

यतिगण का बल है सदाचार, संन्यासीगण का बल है त्याग, गृहस्थों का बल है धर्म, भृत्य का बल है राजा-स्वामी की सेवा, जो स्तुति करते हैं, उनका बल है स्तव, ब्रह्मचारीगण का बल है ब्रह्म, पातकी का बल है पाप तथा अशक्त लोगों के बल हैं हरि॥९५-९६॥

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्बलम्।
फलं बलं च वृक्षाणां जलजानां जलं बलम्॥९७॥
जलं बलं च सस्यानां मत्स्यानां च जलं बलम्।
शान्तिर्बलं च भूपानां विप्राणां च विशेषतः॥९८॥

पुण्यात्माओं का बल है पुण्य, प्रजा का बल है राजा। वृक्षों का बल है फल, जलजन्तुगण का बल है जल। मछलियों का बल है जल, राजागण का बल है शान्ति, ब्राह्मणगण का भी शान्ति विशेष बल है॥९७-९८॥

विप्रः शान्तो रणोद्योगी नैव दृष्टो न च श्रुतः।
स्थिते नारायणे देवे[१] बभूवाद्य विपर्ययः॥९९॥

यह न तो कहीं सुना गया न तो देखा गया कि शान्त ब्राह्मण कभी युद्ध हेतु उद्योग करे? भगवान् नारायण विद्यमान हैं, तब भी ऐसा उलटा काम (विपर्यय) हो रहा है?॥९९॥

१. क. विप्रे।

इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सद्यस्तूष्णीं बभूव ह॥१००॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे तीक्ष्णशस्त्रासिपाणयः। आरेभिरे रणं कर्तुं महावीरास्तदाज्ञया॥१०१॥

रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः।
समारेभे रणं कर्तुं मङ्गलं मङ्गलालयः॥१०२॥
शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तानपि।
चिच्छिदुः शरजालं च जमदग्निसुतास्तदा॥१०३॥

राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्यप्रभं मुने। माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चैव लीलया॥१०४॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव राजः संनाहमेव च॥१०५॥

यह कह कर रणभूमि में राजा मौन हो गया। राजा की बातों को सुन कर परशुराम भी तत्काल मौन हो गये। तदनन्तर तीक्ष्ण शस्त्र एवं तलवारधारी परशुराम के भ्रातागण उनकी आज्ञा से युद्ध करने लगे। तब मंगलाश्रय मंगलमय अत्यन्त बली मत्स्यराज ने भी उन लोगों को युद्धोन्मुख देख कर युद्ध आरम्भ किया तथा उन लोगों को रोकने लगे। इस समय जमदग्नि के पुत्रगण मत्स्यराज के बाणों को छिन्न-भिन्न कर रहे थे। इन मुनियों ने माहेश्वर अस्त्र से लीला में ही उनके अस्त्रों को भेदन कर दिया। जामदग्न्य वंश के मुनियों ने दिव्यास्त्रों से राजा मत्स्यराज का धनुष-बाण, रथ, सारथि तथा उसकी युद्धसज्जा का नाश कर दिया।।१००-१०५।।

न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः।
दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया॥१०६॥

इन जामदग्न्य मुनियों ने जब मत्स्यराज को शस्त्र रहित देखा, तब ये सभी अत्यन्त हर्षविह्वल हो उठे। उन्होंने इस राजा के वधार्थ शंकर प्रदत्त त्रिशूल उठाया।।१०६।।

शूलनिःक्षेपसमये वाग्बभूवाशरीरिणी।
शूलं त्यजत विप्रेन्द्राः शिवस्याव्यर्थमेव च॥१०७॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा।
मत्स्यराजगलेऽस्त्येतत्सर्वावयवरक्षणम् ॥१०८॥
प्राणानां च प्रदातारं कवचं याचतं नृपम्।
तदा निक्षिप्तशूलं च जघान नृपतीश्वरम्॥१०९॥
तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने।
श्रुत्वैवाऽऽकाशवाणीं च शृङ्गी संन्यासवेषकृत्॥११०॥
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान्।
राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डविजयं परम्॥१११॥

गृहीत्वा कवचं तच्च शूलेनैव जघान ह। पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः।
महाबलिष्ठो गुणवांश्चन्द्रवंशसमुद्भवः॥११२॥

जैसे ही मुनिगण ने वह शूल प्रहार करना चाहा, तभी उनको अशरीरी वाणी श्रुतिगोचर हो गई कि "हे ब्राह्मणश्रेष्ठगण! यह शिवशूल व्यर्थ नहीं जाता है, परन्तु मत्स्यराज को पूर्वकाल में दुर्वासा ने शिवकवच प्रदान किया था। यह कवच राजा के कण्ठ में बद्ध है। यह राजा के समस्त अवयवों की रक्षा करता है। इसी कवच से मत्स्यराज का प्राण रक्षित है। तुम लोग राजा के प्राणस्वरूप उस कवच की याचना करो। तदनन्तर उस राजा पर शूल प्रयोग करना। हे मुनिवर! यह शूल राजा के पास जाते ही सौ टुकड़े हो जायेगा।" यह आकाशवाणी सुन कर जमदग्नि के पुत्र शृंगी ने राजा से कवच मांगा। राजा ने शृंगी को वह उत्कृष्ट ब्रह्माण्डविजय कवच दे दिया। तदनन्तर उन्होंने कवच पाकर राजा का शूलास्त्र से वध कर दिया। इससे आहत होकर मत्स्यराज वहां गिर गया जो सहस्रों चन्द्र के समान, महाबली एवं चन्द्रवंश में उत्पन्न हुआ था।।१०७-११२।।

नारद उवाच

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धतम्। नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम॥११३॥

देवर्षि नारद कहते हैं–हे नारायण, महाभाग! कृपया मत्स्यराज द्वारा शिव से प्राप्त वह कवच भी मुझे बतायें, जिसे उन राजा ने धारण किया था। मुझे वह सुनने की कामना है?।।११३।।

नारायण उवाच

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शङ्करस्य महात्मनः। ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम्॥११४॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते। दत्त्वा षडक्षरं मन्त्रं [1]सर्वपापप्रणाशनम्॥११५॥
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम्।
अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः॥११६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे विप्रश्रेष्ठ नारद! यह सर्वावयव रक्षक ब्रह्माण्ड विजय नाम वाला सर्वपातक नाशक षडक्षर मन्त्रयुक्त कवच है, जिसे मत्स्यराज को दुर्वासा ने प्रदान किया था। जब तक यह कवच देह पर है, तब तक उस व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती। अस्त्र-शस्त्र, जल, अग्नि उसे सिद्ध हो जाते हैं, इसमें संशय न करे।।११४-११६।।

यद्धृत्वा पठनाद्बाणः शिवत्वं प्राप लीलया।
बभूव शिवतुल्यश्च यद्धृत्वा नन्दिकेश्वरः॥११७॥
वीरश्रेष्ठो वीरभद्रो साम्बोऽभूद्धारणाद्यतः।
त्रैलोक्यविजयी राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्॥११८॥

---
१. क. ॐ नमः शिवायेति च।

हिरण्याक्षश्च विजयी चाभवद्धारणाद्धि सः।
यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो दुर्वासा विश्वपूजितः॥११९॥
जैगीषव्यो महायोगी पठनाद्धारणाद्यतः। यद्धृत्वा वामदेवश्च देवलः पवनः स्वयम्।
अगस्त्यश्च पुलस्त्यचाप्यभवद्विश्वपूजितः॥१२०॥

इसे ही धारण करने तथा पाठ करने से बाणराज (बाणासुर) को लीला में ही (अनायास) शिवत्वलाभ हो गया। इसे धारण करके नन्दिकेश्वर शिवतुल्य हो गये। इसे धारण करके वीरभद्र भी वीरप्रवर हो गये तथा राजा हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष स्वयं त्रैलोक्यविजयी हो गये। इस कवच को धारण करने तथा पाठ करने से दुर्वासा ऋषि जगत्पूज्य तथा सिद्ध हो गये। जैगीषव्य मुनि इसके पाठ से तथा धारण करने से महायोगी हो गये। इसे धारण करने वाले वामदेव, देवल, पवनदेव, अगत्स्य तथा पुलत्स्य भी विश्वपूज्य हो गये॥११७-१२०॥

ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदाऽवतु।
ॐ नमः शिवायेति च स्वाहा भालं सदाऽवतु॥१२१॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम्॥१२२॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदाऽवतु॥१२३॥
ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तुं सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान्सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदाऽवतु॥१२५॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मे रुद्राय स्वाहा नाभिं सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं ऐं श्रीमीश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु॥१२६॥
ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय सहा भ्रुवौ सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमीशानाय स्वाहा पार्श्वं सदाऽवतु॥१२७॥
ॐ ह्रीं मीश्वराय स्वाहा चोदरं पातु मे सदा।
ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जय स्वाहा बाहू सदाऽवतु॥१२८॥

कवच–"ॐ नमः शिवाय" मस्तक की, "ॐ नमः शिवाय स्वाहा" भाल की, "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवाय स्वाहा" दोनों नेत्रों की, "ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवाय नमः" नासिका की, "ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा" कण्ठ की, "ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहार कर्त्रे स्वाहा" कर्णद्वय की, "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय

स्वाहा" केशों की, "ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा" वक्ष की, "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं रुद्राय स्वाहा" नाभि की, "ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा" पृष्ठदेश की, "ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा" भ्रूद्वय की, "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा" पार्श्व भाग की, "ॐ ह्रीं ईश्वराय स्वाहा" उदर की, "ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा" सदा बाहुद्वय की रक्षा करें॥१२१-१२८॥

ॐ ह्रीं श्रीं[1] क्लीमीश्वराय स्वाहा पातु करौ मम।
ॐ महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा॥१२९॥
ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु।
ॐ सर्वेश्वराय शर्वाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु॥१३०॥

"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा" मेरे हाथों की रक्षा करें। "ॐ महेश्वराय रुद्राय नमः" सदा नितम्बों की रक्षा करें। ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा" चरणद्वय की, "ॐ सर्वेश्वराय शर्वाय स्वाहा" चरण की रक्षा करें॥१२९-१३०॥

प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शङ्करः।
द्रक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च॥१३१॥
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः।
उत्तरे गिरिशः पातु चैशान्यामीश्वरः स्वयम्॥१३२॥

पूर्व दिशा में भूतेश, अग्निकोण में शंकर, दक्षिण में रुद्र, नैर्ऋत्य में स्थाणु, पश्चिम में खण्डपरशु, वायव्य कोण में चन्द्रशेखर, उत्तर में गिरीश, ईशान कोण में स्वयं ईश्वर मेरी रक्षा करें॥१३१-१३२॥

ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु चाधो मृत्युञ्जयः स्वयम्।
जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे सदा॥१३३॥
पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तं वै भक्तवत्सलः।
इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम्॥१३४॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवति निश्चितम्।
यदि स्यात्सिद्धकवचावे रुद्रतुल्यो भवेद्ध्रुवम्॥१३५॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्।
कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम्॥१३६॥

ऊर्ध्व में मृड, अधः में स्वयं मृत्युञ्जय, जल-थल-अन्तरिक्ष-स्वप्न-जागरण में मुझ भक्त की भक्तवत्सल पिनाकी सप्रेम रक्षा करें। हे वत्स! मैंने यह कवच प्रेम के कारण तुमसे कह दिया। यह परम

१. क. ०मीशानाय।

अद्भुत कवच है। यह १० लाख जप से निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है। यह कवच सिद्ध करने वाला रुद्र के समान हो जाता है। यह निश्चित है। यह कवच काण्वशाखा में कहा गया है तथा अत्यन्त दुर्लभ एवं गुप्त है।।१३३-१३६।।

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।१३७।।

एक सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय यज्ञ का पुण्य इस कवचपाठ का १/१६वां भाग भी नहीं है।।१३७।।

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
सर्वज्ञः सर्वसिद्धेशो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्।।१३८।।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः शङ्करप्रभुम्।
शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः।।१३९।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शङ्करकवचकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

इस कवच की मनुष्य की कृपा से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। वह निश्चित रूप से सर्वज्ञ, सर्वसिद्धीश, मनोवेगगामी हो जाता है। यह कवच जाने बिना जो शंकर प्रभु का भजन क़रता है, वह उनके मन्त्र को सौ लाख बार भी जपे, तथापि मन्त्रफल तथा सिद्धिलाभ नहीं होगा।।१३८-१३९।।

।।पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

मनोरमा को परलोक लाभ, भार्गव से कार्त्तवीर्य का संवाद, मत्स्यराज तथा परशुराम का युद्ध वर्णन प्रसंग एवं शिवकवच कथन

नारायण उवाच

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः। राजेन्द्रान्प्रेषयामास युद्धशास्त्रविशारदान्।।१।।
बृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भं मिथिलेश्वरम्। निषधाधिपतिं चैव मगधाधिपतिं तथा।।२।।

आययुः समरे योद्धुं जामदग्न्यं महारथाः। त्रितयाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारद॥३॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे वीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः। वारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्धनि॥४॥
ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः। वारयामासुरेकैकं भ्रातृवर्गान्भृगोस्तथा॥५॥

श्रीनारायण ऋषि कहते हैं—जब युद्ध में मत्स्यराज का निधन हो गया, तब युद्धपारंगत राजा कार्त्तवीर्य ने युद्धशास्त्र मर्मज्ञ बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भपति, मिथिलेश्वर, निषधाधिपति एवं मगधाधिपति को युद्धार्थ भेजा। हे नारद! ये लोग तीन अक्षौहिणी सेना के साथ रणभूमि में आये तथा महारथी जामदग्न्यों से युद्ध करने लगे। परशुराम के सभी भ्राता वीर थे, उन्होंने तीक्ष्ण अस्त्र धारण किया था। अस्त्रधारी इन वीर भ्रातागण ने युद्धभूमि में अपने अस्त्रों से उनको रोक लिया। कार्त्तवीर्य की सेना ने भी अपने बाणों तथा दिव्यास्त्रों से भृगु के भ्रातागण को क्रमशः एक के बाद एक रोक लिया॥१-५॥

आययौ समरे शीघ्रं दृष्ट्वा तांश्च पराजितान्।
पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः॥६॥

प्रदीप्त अग्निशिखा के समान तेजस्वी परशुराम ने भाईयों को पराजित होते देख कर पिनाक धनुष उठाया तथा शीघ्रता से उस युद्धस्थल पर आ गये॥६॥

चिक्षेप नागपाशं च जामदग्न्यो महाबलः। चिच्छेद तं गारुडेन सोमदत्तो महाबलः॥७॥
भृगुः शङ्करशूलेन सोमदत्तं जघान ह। बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या वै नैषधं तथा। मागधं चरणोद्घातैरस्त्रजालेन सैनिकान्॥९॥

महाबली जमदग्निनन्दन परशुराम ने शत्रुओं के प्रति जब नागपाशास्त्र का सन्धान किया, तब महाबली सोमदत्त ने गरुड़ास्त्र से उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। यह देख कर परशुराम ने शंकर प्रदत्त शूल से सोमदत्त का वध कर दिया। उन्होंने गदाघात से बृहद्बल का, मुष्टिप्रहार से विदर्भ का, मुद्गराघात से मैथिल का, शक्ति अस्त्र से नैषध का, चरणप्रहार मात्र से मगधेश्वर का और अस्त्रजाल से उनके सैन्य का नाश कर दिया॥७-९॥

निहत्य निखिलान्भूपान्संहाराग्निसमो रणे।
दुद्राव कार्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः॥१०॥

दृष्ट्वा तं योद्धमायान्तं राजानश्च महारथाः। आययुः समरं कर्तुं कार्तवीर्यं निवार्य च॥११॥

कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा।
राष्ट्रीयाः शतशश्चैव वीरेन्द्राः शतशस्तथा॥१२॥
सौम्या[1] वाङ्गाश्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश।
तथा गुर्जरजातीयाः कलिङ्गाः शतशस्तथा॥१३॥

१. क. सौवीराङ्गा०।

कृत्वा ते शरजालं च [1]भृगुं चिच्छिदुरेव च।
तं छित्वाऽभ्युत्थितो रामो नीहारमिव भास्करः॥१४॥
त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैः सार्धं समराजिरे। द्वादशाक्षौहिणीं सेनां तथा चिच्छेद पर्शुना॥१५॥

इस प्रकार महाबलशाली परशुराम ने इस संहाराग्नि के समान उस रणस्थल में सभी राजाओं का वध किया तथा वे कार्त्तवीर्य की ओर दौड़ पड़े। महारथी अन्य बचे हुए राजाओं ने जब परशुराम को उस ओर आते देखा, तब वे सभी कार्त्तवीर्य को वहां से हटा कर स्वयं युद्धार्थ अग्रसर हो गये। इनमें १०० कान्यकुब्ज, १०० सौराष्ट्र, १०० राष्ट्रीय, १०० वारेन्द्र, १०० सौम्य, १०० वंगीय, दस सौ महाराष्ट्र, कतिपय १०० गुर्जर के तथा कलिंग आदि के सैकड़ों राजाओं ने अपने शरजाल से परशुराम को आच्छादित कर दिया। परशुराम ने भी इस शरजाल को काट दिया तथा वे कुहरे से मुक्त सूर्य के समान शोकायमान होने लगे। इस प्रकार युद्धभूमि में परशुराम ने उनके साथ तीन दिनों के युद्ध में कार्त्तवीर्य की १२ अक्षौहिणी सेना का विनाश अपने कुठार (परशु) नामक अस्त्र से कर दिया था॥१०-१५॥

रम्भास्तम्भसमूहं च यथा खड्गेन लीलया।
छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः॥१६॥

जैसे केले का तना खड्ग से तत्काल कट जाता है, तदनुरूप परशुराम ने अनायास सैनिकों का वध करके शिवप्रदत्त त्रिशूल से उन सभी राजाओं के झुण्ड का वध कर दिया॥१६॥

सर्वांस्तान्निहतान्दृष्ट्वा सूर्यवंशसमुद्भवः। आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः॥१७॥
द्वादशाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह संयुगे। कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथा रणे॥१८॥
भृगुः शङ्करशूलेन नृपलक्षं निहत्य च। द्वादशाक्षौहिणीं सेनामहन्वै पर्शुना बली॥१९॥
निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली।
नागास्त्रं प्रेरयामास निर्हतं तं भृगुः स्वयम्॥२०॥
नागपाशं च चिच्छेद गारुडेन नृपेश्वरः। जहास च भृगुं राजा समरे च पुनः पुनः॥२१॥

इन सबको मृत देख कर सूर्यवंशी राजा सुचन्द्र एक लाख राजाओं के साथ १२ अक्षौहिणी सैन्य लेकर उस प्रकार परशुराम की ओर दौड़ पड़ा जैसे वन में क्रोधित सिंह अन्य प्रतिद्वन्द्वी सिंह पर आक्रमण कर देता है। क्रोधित राम ने भी उसी प्रकार उससे युद्ध किया। अन्ततः महाबली भार्गव परशुराम ने अपने कुठार से उन एक लाख राजाओं तथा १२ अक्षौहिणी सैन्य का वध कर दिया। इस प्रकार महाबली भार्गव उस सेना का वध करके सुचन्द्र से युद्ध करने लगे। उन्होंने सुचन्द्र पर नागास्त्र का प्रहार किया। परन्तु राजेश्वर सुचन्द्र ने उसे गारुड़ास्त्र से विच्छिन्न कर दिया और वह राजा बारम्बार परशुराम का उपहास करने लगा!॥१७-२१॥

भृगुर्नारायणास्त्रं च चिक्षेप रणमूर्धनि। अस्तं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्यसमप्रभम्॥२२॥

---
१. ख. भृगुश्चिच्छेद तत्क्षणम्।

दृष्ट्वाऽस्त्रं नृपशार्दूलश्चावरुह्य रथात्क्षणात्।
न्यस्तशस्त्रः प्राणमच्च स्तुत्वा नारायणं शिवम्॥२३॥
तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम्।
अस्त्रराजो भगवतो रामः संप्राप विस्मयम्॥२४॥

यह देख कर भार्गव ने युद्ध में नारायणास्त्र को छोड़ा। वह शत सूर्यसमप्रभ प्रतापशाली अस्त्र सुचन्द्र के वधार्थ तीव्र गति से बढ़ने लगा, जिसे देख कर सुचन्द्र तत्काल रथ से उतरा। उसने मंगलमय नारायण की स्तुति करके उस अस्त्र को प्रणाम किया। तब वह नारायणास्त्र सुचन्द्र को वहीं छोड़ कर भगवान् नारायण के पास चला गया। इसे देख कर परशुराम विस्मित हो गये!।।२२-२४।।

भृगुः शक्तिं च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा।
गदां पर्शुं च कोपेन चिक्षिपे तज्जिघांसया॥२५॥
जग्राह काली तान्सर्वान्सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता।
चिक्षेप शिवशूलं स नृपमाल्यं बभूव सः॥२६॥
ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम्।
बहन्तीं मुण्डमालां च विकटास्यां भयङ्करीम्॥२७॥

इसके अनन्तर परशुराम ने क्रोधित होकर राजा के विनाशार्थ शक्ति अस्त्र, मूसल, तोमर, पट्टिश, गदा एवं परशु का प्रहार उस पर किया, तथापि भगवती काली ने सुचन्द्र के रथ पर अवस्थित होकर इन सब अस्त्रों को पकड़ लिया! परशुराम ने अन्त में शिवप्रदत्त त्रिशूल का प्रहार सुचन्द्र के प्रति किया। वह त्रिशूल तो राजा के लिये माला जैसा हो गया। तब परशुराम ने भगवती काली को सामने देखा जो जगत् की जननी, मुण्डमालाधारिणी, विकटमुख तथा भयंकरी थीं।।२५-२७।।

विहाय शस्त्रमस्त्रं च पिनाकं च भृगुस्तदा। तुष्टाव तां महामायां भक्तिनम्रात्मकंधरः॥२८॥

भगवती को देखते ही परशुराम ने तत्काल अस्त्र-शस्त्र तथा धनुष को एक ओर रखा और भक्ति पूर्वक नतमस्तक होकर महामाया की स्तुति करने लगे।।२८।।

परशुराम उवाच

नमः शङ्करकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः॥२९॥
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः।
नमोऽस्तु ते जगन्मात्रे कारणायै ते नमो नमः॥३०॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादौ शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थिकां कुरु॥३१॥

परशुराम कहते हैं—शंकर की कान्ता, समस्त की सारभूता, देवी को बारम्बार प्रणाम करता हूं! आप दुर्गतिनाशिनी माया हैं। आप जगद्धात्री, जगत्कर्त्री, जगन्माता तथा जगत्कारण हैं। आपको बारम्बार

प्रणाम करता हूं! हे जगन्माता! आप सृष्टि-संहार करने वाली हैं। आप प्रसन्न हो जायें। मैं आपके चरणकमल की शरण लेता हूं। कृपया मेरी प्रतिज्ञा सार्थक करिये।।२९-३१।।

त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः।
त्वं प्रसन्ना भव शुभे मां भक्तं भक्तवत्सले॥३२॥

युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरानने॥३३॥

यदि आप मुझसे विमुख हैं, तब मेरी रक्षा कौन कर सकेगा? हे माता! हे शुभे! आप भक्तवत्सल हैं, मुझ भक्त के प्रति प्रसन्न हो जायें। हे वरानने! पूर्वकाल में शिवलोक में आप सबने मुझे वर दिया था, उसे सफल करने की कृपा करिये।।३२-३३।।

रैणुकेयस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाऽभवदम्बिका। मा भैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत॥३४॥

एतद्भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
महाभयात्समुत्तीर्णः स भवेदेव लीलया॥३५॥

स पूजितश्च त्रैलोक्ये तत्रैव विजयी भवेत्। ज्ञातिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः॥३६॥

रेणुकानन्द परशुराम का यह स्तव सुन कर जगदम्बा प्रसन्न हो गईं। उन्होंने कहा-"भय मत करो", तदनन्तर वे वहां से अन्तर्हित् हो गईं। इस भृगुकृत स्तोत्र को जो व्यक्ति भक्तियुक्त होकर पढ़ता है, वह महाभय से अनायास पार हो जायेगा। वह त्रैलोक्यपूजित एवं सर्वत्र विजयी होगा। वह अपने गोत्र वालों में श्रेष्ठ तथा वैरियों का मर्दनकारी भी हो जायेगा।।३४-३६।।

एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा भृगुं धर्मभृतां वरम्। आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च॥३७॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ धर्मात्मा राम के पास ब्रह्मा आये तथा उन्होंने राम को समस्त रहस्यों से अवगत कराया।।३७।।

ब्रह्मोवाच

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्वमेव च। सुचन्द्रजयहेतुं च प्रतिज्ञासार्थकाय च॥३८॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा। सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्या सुदुर्लभम्॥३९॥
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानां च सुदुर्लभम्। कवचं तद्गले यस्य सर्वशत्रुविमर्दकम्॥४०॥

अतीव पूज्यं शस्तं च त्रैलोक्यजयकारणम्।
तस्मिन्स्थिते च कवचे कस्त्वं जेतुमलं भुवि॥४१॥

भृगुर्गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृपम्। सूर्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मिकः॥४२॥

प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम्॥४३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं-हे महाभाग राम! मैं सर्वप्रथम एक उत्तम रहस्य कह रहा हूं। यही सुचन्द्र की विजय का कारण जानो। इसे जानने से तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। पूर्वकाल में दुर्वासा ने सुचन्द्र राजा

को दशाक्षरी महाविद्या तथा भद्रकाली का दुर्लभ सर्वशत्रुनाशक भद्रकाली कवच दिया था। देवगण के लिये भी दुर्लभतर यह कवच राजा के गले में बंधा है। यह कवच उसके गले में रहते कोई भी सुचन्द्र पर विजय नहीं पा सकता। यह अति पूज्य, प्रशस्त तथा त्रैलोक्य विजय का कारण है। हे भृगुनन्दन! तुम भिक्षा मांगने जाकर राजा से यह कवच मांगो। वह सूर्यवंशी राजा दाता एवं परम धर्मात्मा है। वह प्रार्थना करने पर कवच, मन्त्र तथा प्राण पर्यन्त दान कर देगा।।३८-४३।।

भृगुः संन्यासिवेषेण गत्वा राजान्तिकं मुने।
भिक्षां चकार मन्त्रं च कवचं परमाद्भुतम्।।४४।।
राजा ददौ च तन्मन्त्रं कवचं परमादरात्। ततः शङ्करशूलेन तं जघान नृपं भृगुः।।४५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगुकार्तवीर्ययुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

ब्रह्मा से यह सुन कर भार्गव परशुराम संन्यासी वेश में राजा सुचन्द्र के पास गये तथा उन्होंने भिक्षा में मन्त्र तथा परम अद्भुत कवच मांगा। राजा ने परम आदर के साथ वह दशाक्षर मन्त्र एवं कवच संन्यासी को दे दिया। तदनन्तर भार्गव ने शंकर प्रदत्त त्रिशूल से राजा का वध कर दिया।।४४-४५।।

।।षट्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भद्रकाली कवच वर्णन

नारद उवाच

कवचं श्रोतुमिच्छामि तां च विद्यां दशाक्षरीम्।
नाथ त्वत्तो हि सर्वज्ञ भद्रकाल्याश्च सांप्रतम्।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नाथ! आप सर्वज्ञ हैं। मैं दशाक्षरी विद्या तथा भद्रकाली का कवच सुनना चाहता हूं। कृपया कहिये।।१।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम्। गोपनीयं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च दशाक्षरीम्।
दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि॥३॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा। पञ्चलक्षजपेनैव पठन्कवचमुत्तमम्॥४॥
बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः।
कृत्स्नां हि पृथिवीं जिग्ये कवचस्य प्रसादतः॥५॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! मैं दशाक्षरी महाविद्या कहता हूं। श्रवण करो। साथ ही त्रैलोक्यदुर्लभ गोपनीय कवच भी सुनो। दशाक्षरी विद्या यह है–"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा" यह विद्या सूर्यग्रहण पर दुर्वासा ने राजा सुचन्द्र को पुष्कर तीर्थ में दिया था। यह मन्त्रसिद्धि १० लाख जप द्वारा उन्होंने पूर्वकाल में किया था। ५ लाख पाठ द्वारा उन्होंने परम उत्तम कवच को सिद्ध किया। तदनन्तर अयोध्या आकर कवच की कृपा से पृथिवी जय भी किया था॥२-५॥

नारद उवाच

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।
अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहि मे प्रभो॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं–मैंने त्रैलोक्य दुर्लभ दशाक्षरी विद्या सुना। अब हे प्रभो! कवच सुनने की इच्छा है। उसे कहें॥६॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम्। नारायणेन यद्दत्तं कृपया शूलिने पुरा॥७॥
त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च। तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने॥८॥
दुर्वाससा च यद्दत्तं सुचन्द्राय महात्मने। अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्॥९॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे विप्रेन्द्र! श्रवण करो। यह परम अद्भुत कवच पहले नारायण ने कृपा पूर्वक शूलपाणि शिव को दिया था। इसी के प्रभाव से घोर त्रिपुर का वध करके शिव विजयी हो सके। तदनन्तर शूलपाणि ने इसे मुनि दुर्वासा को प्रदान किया। तत्पश्चात् दुर्वासा ने यह कवच महात्मा सुचन्द्र को दे दिया था। यह समस्त मन्त्रों का विग्रहस्वरूप तथा अत्यन्त गोपनीय है॥७-९॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातुमस्तकम्।
क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीमितिलोचने॥१०॥
ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मे सदाऽवतु।
क्लीं कालिके रक्ष स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु॥११॥
क्लीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽधरयुग्मकम्।
ॐ ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु॥१२॥

ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदाऽवतु।
ॐ क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा स्कन्धं पातु सदा मम॥१३॥
ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा मम वक्षः सदाऽवतु।
ॐ क्लीं कालिकायै स्वाहा मम नाभिं सदाऽवतु॥१४॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा मम पृष्ठं सदाऽवतु।
रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा हस्तौ[1] सदाऽवतु॥१५॥
ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥१६॥
प्राच्यां पातु महाकाली[2] चाग्नेय्यां रक्तदन्तिका।
दक्षिणे पातु चामुण्डा नैर्ऋत्यां पातु कालिका॥१७॥
श्यामा च वारुणे पातु वायव्यां पातु चण्डिका।
उत्तरे विकटास्या चाप्यैशान्यां साट्टहासिनी॥१८॥
पातूर्ध्वं लोलजिह्वा सा मायाद्या पात्वधः सदा।
जले स्थले चान्तरिक्षे पातु विश्वप्रसूः सदा॥१९॥

कवच–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा–मस्तक की,
ॐ क्लीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा–कपाल की,
ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं कालिकायै स्वाहा–नेत्रों की,
ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा–नासिका की,
ॐ क्लीं कालिके रक्ष स्वाहा–दांतों की,
ॐ क्लीं भद्रकालिके स्वाहा–अधरोष्ठ की,
ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा–कण्ठ की,
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा–दोनों कानों की,
ॐ क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा–कंधे की,
ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा–वक्ष की,
ॐ क्लीं कालिकायै स्वाहा–नाभि की,
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा–पीठ की,

---

१. क. गुह्यं स.।
२. क. भद्रका.।

ॐ रक्तबीज विनाशिन्यै स्वाहा–हाथों की,

ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा–पैरों की,

ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा–सर्वांग की,

ये देवी इस प्रकार सदा रक्षा करें। पूर्वदिक् में महाकाली, अग्निकोण में रक्तदन्तिका, दक्षिण दिक् में चामुण्डा, नैर्ऋत् कोण में कालिका, पश्चिम दिक् में श्यामा, वायुकोण में चण्डिका, उत्तर में विकटास्या, ईशान कोण में अट्टहासिनी, ऊर्ध्व में लोलजिह्वा, अधः में मायाद्या, जल-स्थल-अन्तरिक्ष में विश्वप्रसु सदा मेरी रक्षा करें।।१०-१९।।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वेषां कवचानां च सारभूतं परात्परम्॥२०॥

सप्तद्वीपेश्वरो राजा [1]सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः।
कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः॥२१॥

हे वत्स! यह मैंने सर्वमन्त्रविग्रहरूपी कवच कहा जो परात्पर तथा सबका सार है। इसकी कृपा से सुचन्द्र सप्तद्वीपेश्वर हो गया। इसी कवच के प्रभाव से मान्धाता पृथिवीपति हो गये।।२०-२१।।

प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह।
यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिः पिप्पलायनः॥२२॥
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वसिद्धेश्वरो भवेत्।
महादानानि सर्वाणि तपांस्येवं व्रतानि च। निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२३॥

इसी कवच के प्रभाव से प्रचेता तथा लोमश सिद्ध हो सके। सौभरि एवं पिप्पलायन ऋषि इसी कवच के प्रभाव से योगीगण में प्रवर हो गये। जो कोई इस कवच को सिद्ध कर लेगा, वह सर्वसिद्धीश्वर होगा। सभी महादान, सभी तप, सभी व्रतादि इस कवच की तुलना में १/१६ कलात्मक भी नहीं हैं।।२२-२३।।

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कालीं जगत्प्रसूम्।
शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥२४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भद्रकालीकवचनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।

जो जगज्जननी काली की उपासना इस कवच को जाने बिना करेगा, उसे सौ लाख जप करने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं होगी।।२४।।

।।सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त।।

१. क. सुरथो।

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

पुष्कराक्ष के साथ परशुराम युद्ध का तथा महालक्ष्मी कवच का वर्णन

नारायण उवाच

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मन्राजेन्द्राणां शिरोमणौ। अगमत्पुष्कराक्षस्तु सेनात्र्यक्षौहिणीयुतः॥१॥
सूर्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयो महान्। महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्सूर्यसंनिभः॥२॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यस्य मनोहरम्। परमैश्वर्यसंयुक्तस्त्रैलोक्यविजयी ततः॥३॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे ब्रह्मन्! राजा सुचन्द्र का वध हो जाने पर राजाओं का शिरोमणि पुष्कराक्ष तीन अक्षौहिणी सैन्य के साथ युद्धार्थ आया। यह राजा सुचन्द्र का पुत्र तथा सूर्यवंशी था। यह देवी महालक्ष्मी का सेवक, लक्ष्मीवान् तथा सूर्य के समान था। इसके कण्ठ में महालक्ष्मी का मनोहर कवच बंधा था। यह त्रैलोक्यविजयी तथा परमैश्वर्यवान् था॥१-३॥

तं दृष्ट्वा भ्रातरः सर्वे रैणुकेयस्य धीमतः। आययुः समरं कर्तुं नानाशस्त्रास्त्रपाणयः॥४॥
राजेन्द्रः शरजालेन च्छादयामास तांस्तथा।
चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराश्चैव लीलया॥५॥

इस राजा को देख कर सभी रेणुका पुत्रगण नाना शस्त्रधारी होकर उससे युद्ध करने वहां आये। तब पुष्कराक्ष ने अपने बाणजाल से उनको आवृत्त कर दिया, परन्तु रेणुकापुत्रों ने उस बाणजाल को छिन्न-भिन्न कर दिया॥४-५॥

चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चबाणतः। सारथिं पञ्चबाणेन रथाश्वं दशबाणतः॥६॥
तद्धनुः सप्तबाणेन तूर्णं वै पञ्चबाणतः। चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान्विप्राः शङ्करशूलतः॥७॥
ते च त्र्यक्षौहिणीं सेनां निजघ्नुश्चापि लीलया।
हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीराः शिवशूलं निचिक्षिपुः।
गले बभूव तच्छूलं राज्ञः पुष्करमालिका॥८॥
शक्तिं च परिघं चैव भृशुण्डीं मुद्गरं तथा। गदां च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः॥९॥
तानि शस्त्राणि चूर्णानि क्ष्माभृतो देहयोगतः।
विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने॥१०॥

रेणुका पुत्रों ने पांच बाण से राजा के रथ, ५ बाण से सारथि तथा १० बाण से रथ के अश्वों को नष्ट कर दिया। इन ब्राह्मणों ने ७ बाणों से राजा का धनुष, ५ बाणों से उसका तूणीर (तरकश) तथा शिवप्रदत्त त्रिशूल से उसके भ्रातृवर्ग का भेदन कर दिया। इन वीरों ने अनायास पुष्कराक्ष की तीन

अक्षौहिणी सैन्य का वध करके पुष्कराक्ष के विनाशार्थ शिव त्रिशूल का प्रहार उस पर किया, तथापि यह त्रिशूल जाकर राजा के कण्ठ की कमल माला बन गया। इससे वे ब्राह्मण क्रोध से भर गये। उन्होंने अग्निवत् प्रज्वलित गदा, मुद्गर, शक्ति, परिघ, भुशुण्डि का प्रहार राजा पर किया, तथापि राजा के शरीर का स्पर्श करते ही ये सभी चूर्ण-विचूर्ण हो गये। हे महामुनि नारद! यह देख कर वे सभी रेणुकापुत्र अत्यन्त विस्मयाभिभूत हो गये!।।६-१०।।

रथं धनुश्च शस्त्राणि चास्त्राणि विविधानि च।
सेनां प्रस्थापयामास कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्।।११।।
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः। चकार शरजालं च महाघोरतरं मुने।।१२।।
चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराः शस्त्रपाणयः।
राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांश्चकार ह।।१३।।
भ्रातृंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा जामदग्न्यो महाबलः। क्षतविक्षतसर्वाङ्गबोधयामास तत्त्वतः।।१४।।
बोधयित्वा तान्निवार्य जगाम रणमूर्धनि। चिक्षेप पर्शुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसया।।१५।।

उसी समय कार्त्तवीर्य राजा ने रथ, धनुष, अस्त्र-शस्त्र तथा सेना को स्वयं वहां भेजा। हे नारद! इस महाबली राजा ने तब रथ पर बैठ कर अत्यन्त घोर शरजाल का वहां विस्तार कर दिया। जब अस्त्रधारी ब्राह्मण वीर शरजाल निवारित करने लगे, तब राजा ने प्रस्वापनास्त्र छोड़ कर इन सबको निद्राभिभूत कर दिया। जब महाबली जामदग्न्य परशुराम ने भाईयों को निद्रित देखा तथा उनके अंगों को बाण आदि के प्रहार से क्षत-विक्षत देखा, तब उन भ्रातागण को प्रबोधित करके अन्यत्र भेज दिया। तदनन्तर परशुराम क्रोधित हो उठे। उन्होंने राजा के वधार्थ अपने कुठार का तत्काल प्रयोग किया।।११-१५।।

छित्त्वा राज्ञः किरीटं च पशुर्भूमौ पपात ह। जग्राह परशुं शीघ्रं जामदग्न्यो महाबलः।।१६।।
तदा शङ्करशूलं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्।
नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगाम शिवसंनिधिम्।।१७।।
राजा निहन्तुं तं रामं शरजालं चकार ह। चिच्छेद शरजालं च रैणुकेयश्च लीलया।।१८।।
क्रमेण राजा नानास्त्रं चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्।
तच्चिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतां वरः।।१९।।
भृगुश्चिक्षेप नानास्त्रं महासंधानपूर्वकम्। तच्चिच्छेद महाराजः संधाननैव लीलया।।२०।।

इस कुठार ने राजा के किरीट को काट कर उसे भूमि पर गिरा दिया। महाबली परशुराम ने शीघ्रता से उसे पकड़ा तथा शिवदत्त त्रिशूल पर मन्त्र पढ़ कर उसे राजा पर छोड़ा। वह त्रिशूल राजा के कुण्डल को काट कर शिव के पास चला गया। यह देख कर राजा पुष्कराक्ष ने पुनः राम के वधार्थ बाणों का जाल फैला दिया तथा रैणुकेय परशुराम ने उसे खेल-खेल में काट दिया। तत्पश्चात् राजा ने

अनेक अभिमंत्रित अस्त्रों को क्रमशः परशुराम के विरुद्ध छोड़ा, तथापि भार्गव राम ने उनको अनायास काट दिया। तब महाशस्त्रधारी राम ने संधान करके उस राजा पर अनेक शस्त्रों का प्रहार किया, तथापि राजा पुष्कराक्ष ने उन सबको अनायास काट दिया।।१६-२०।।

रामश्चिक्षेप संधाय ब्रह्मास्त्रं मन्त्रपूर्वकम्। राजा निर्वापणं चक्रे संधानेनैव लीलया।।२१।।

सर्वाण्यस्त्राणि शस्त्राणि रामः पाशुपतं विना।
चिक्षेप कोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेद तानि च।।२२।।
रामः स्नात्वा[1] शिवं नत्वाऽऽददे पाशुपतं मुने।
नारायणश्च भगवानवोचद्विप्ररूपधृक्।।२३।।

यह देख कर राम कुपित हो उठे। उन्होंने मन्त्राभिमंत्रित ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, जिसे राजा ने भी संधान करके उसे अपने द्वारा छोड़े ब्रह्मास्त्र से उस दिव्यास्त्र को निवृत्त कर दिया। इस पर परशुराम ने कुपित होकर पाशुपत के अतिरिक्त समस्त अस्त्रों का प्रयोग किया, परन्तु राजा ने उन सबको काट दिया। हे मुनिवर! यह देख कर राम ने स्नानोपरान्त शिव के समक्ष नतशिर होकर पाशुपतास्त्र ग्रहण किया, तथापि तभी वहां भगवान् नारायण ने वृद्ध विप्ररूपी होकर वहां आगमन किया तथा कहने लगे–२१-२३।।

वृद्धब्राह्मण उवाच

किं करोषि भृगो वत्स त्वमेव ज्ञानिनां वरः।
नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किं क्षिपसि भ्रमात्।।२४।।
विश्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सेश्वरम्।
सर्वघ्नं स्याच्छस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमीश्वरम्।।२५।।

अहो पाशुपतं जेतुं नालमेव सुदर्शनम्। हरेः सुदर्शनं चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम्।।२६।।
खट्वाङ्गिनः पाशुपतं हरेरेव सुदर्शनम्। एते प्रधाने सर्वेषामस्त्राणां च जगत्त्रये।।२७।।
त्यज पाशुपतं ब्रह्मन्मदीयं वचनं शृणु। यथा जेष्यसि राजानं पुष्कराक्षं महाबलम्।।२८।।
कार्तवीर्यमजेतारं यथा जेष्यसि सांप्रतम्। श्रूयतां सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते।।२९।।

वृद्ध ब्राह्मण कहते हैं–हे भृगु! तुम तो ज्ञानीगण में श्रेष्ठ हो, यह क्या कर रहे हो? तुम सामान्य व्यक्ति की तरह एक मनुष्य का नाश करने के लिये पाशुपतास्त्र छोड़ रहे हो। यह सर्वसंहारक अस्त्र छोड़े जाने पर एक श्रीकृष्ण को छोड़ कर समस्त विश्व को तत्काल भस्म कर देगा। इस पाशुपतास्त्र पर भगवान् का चक्र सुदर्शन भी विजय नहीं पा सकता। यह सभी अस्त्रों का मर्दन करने वाला है। इस त्रैलोक्य में भगवान् का सुदर्शन तथा प्रभु शिव का पाशुपत सभी अस्त्रों में प्रधान है। हे ब्रह्मन्! इस

१. ख. स्तुत्वा।

पाशुपत को रख दो तथा मेरा वचन सुनो। उस उपाय से तुम महाबली राजा पुष्कराक्ष पर विजयलाभ कर सकोगे। तुम अविजित् कार्त्तवीर्य को किस उपाय से जीत सकोगे, वह सब कह रहा हूं। तुम वह सब सावधानी से श्रवण करो।।२४-२९।।

महालक्ष्म्याश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
भक्त्या च पुष्कराक्षेण धृतं कण्ठे विधानतः॥३०॥
परं दुर्गतिनाशिन्यः कवचं परमाद्भुतम्। धृतं च दक्षिणे बाहौ पुष्कराक्षसुतेन च॥३१॥
कवचस्य प्रभावेण विश्वं जेतुं क्षमौ च तौ।
को जेता च त्रिभुवने देहे च कवचे स्थिते॥३२॥

महालक्ष्मी का कवच त्रैलोक्य दुर्लभ है। उसे पुष्कराक्ष ने सविधि भक्ति पूर्वक कण्ठ में धारण किया है। यह परम अद्भुत् कवच परम दुर्गतिनाशक है। उधर पुष्कराक्ष के पुत्र ने दुर्गतिनाशिनी का परम अद्भुत् कवच दक्षिण बाहु में बांधा है। ये दोनों इस कवच के रहते अविजित हैं। उनको विश्व में तथा त्रैलोक्य में कोई नहीं जीत सकता। अपितु ये दोनों कवच के प्रभाव से विश्व को विजित कर सकते हैं।।३०-३२।।

अहं यास्यामि भिक्षार्थं संनिधाने तयोर्मुने।
करिष्यामि च तद्भिक्षां प्रतिज्ञासफलाय ते॥३३॥

मैं इनके पास कवच भिक्षा मांगने जा रहा हूं। इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल होगी।।३३।।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः संत्रस्तमानसः। उवाच ब्राह्मणं वृद्धं हृदयेन विदूयता॥३४॥

त्रस्त बुद्धि राम ने जब ब्राह्मण का वचन सुना, तब वे हृदय से दुःखी स्थिति में उन ब्राह्मण से कहने लगे—३४।।

परशुराम उवाच

न जानामि महाप्राज्ञ कस्त्वं ब्राह्मणरूपधृक्।
शीघ्रं च ब्रूहि मां मूढं तदा गच्छ नृपान्तिकम्॥३५॥

परशुराम कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! इस ब्राह्मण रूप में आप कौन हैं? मुझे ज्ञात नहीं है। कृपया अपना यथार्थ परिचय मुझसे कह कर, तब आप राजा के यहां भिक्षार्थ जायें।।३५।।

जामदग्न्यवचः श्रुत्वा प्रहस्य ब्राह्मणः स्वयम्।
उक्त्वा चाहं विष्णुरिति ययौ भिक्षितुमीश्वरः॥३६॥
गत्वा तयोः संनिधानं ययाचे कवचे च तौ।
ददतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया।
गृहीत्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं निर्जगाम सः॥३७॥

जामदग्न्य राम का वचन सुन कर ब्राह्मण ने हंसते हुए कहा–"मैं विष्णु हूं" तदनन्तर वे भिक्षार्थ राजा के गृह में गये। वहां पुष्कराक्ष तथा उनके पुत्र से उन्होंने कवच भिक्षारूपेण मांग लिया। विष्णुमाया से मोहित उन दोनों ने वृद्ध ब्राह्मण को अपना-अपना कवच भिक्षा रूप में दे दिया। विष्णु कवच लेकर वैकुण्ठ चले गये!।।३६-३७।।

नारद उवाच

महालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने। पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतुहलं मम।।३८।।

कवचं चापि दुर्गायाः पुष्कराक्षसुताय च। दुर्लभं केन वादत्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति।।३९।।

कवचं चापि किंभूतं तयोर्वा तस्य किं फलम्।
मन्त्रौ तु किंप्रकारौ च तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो।।४०।।

देवर्षि नारद कहते हैं–हे महामुनि! पुष्कराक्ष को यह महालक्ष्मी कवच किसके द्वारा प्राप्त हुआ था? उसके पुत्र को दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का कवच किसने दिया था? इन दोनों कवच का मन्त्र क्या है? उसे सुनने हेतु मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। हे जगद्गुरु! आप वह सब कहिये।।३८-४०।।

नारायण उवाच

दत्तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते। महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रश्चापि दशाक्षरः।।४१।।

स्तवनं चापि गोप्यं वै प्रोक्तं तच्चरितं च यत्।
ध्यानं च सामवेदोक्तं पूजां चैव मनोहराम्।।४२।।

दुर्गायाश्चापि कवचं दत्तं दुर्वाससा पुरा। स्तवनं चातिगोप्यं च मन्त्रश्चापि दशाक्षरः।।४३।।

पश्चाच्छ्रोष्यसि तत्सर्वं देव्याश्च परमाद्भुतम्। महायुद्धसमारम्भे दत्तं प्रार्थनया च यत्।।४४।।

महालक्ष्म्याश्च मन्त्रं च शृणु तं कथयामि ते।
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम्।।४५।।

ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने। दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते।।४६।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं– पूर्वकाल में सनत्कुमार ने ही महालक्ष्मी का दशाक्षर मन्त्र, कवच, गोप्य स्तव, उसका माहात्म्य, सामवेदोक्त देवी का ध्यान एवं मनोहर पूजाविधि पुष्कराक्ष को प्रदान किया था तथा दुर्वासा ने दुर्गाकवच, गोपनीय दुर्गास्तव, दशाक्षर मन्त्र पुष्कराक्ष के पुत्र को दिया था। देवी दुर्गा के उस अद्भुत कवचादि को बाद में सुनना। घोरतर युद्धकाल में विष्णु की प्रार्थनानुसार जो दिया गया था, उस महालक्ष्मी के मन्त्रादि को अभी कहता हूं। श्रवण करो। "ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा।" यह अतीव अद्भुत महालक्ष्मी मन्त्र है। सनत्कुमार ने इसे धीमान् पुष्कराक्ष को देकर सामवेदोक्त ध्यान तथा पूजाविधि भी प्रदान किया था। उसे सुनो।।४१-४६।।

सहस्त्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम्। पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम्।।४७।।

पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पाधिशायिनीम्।
पद्मिनीं पद्महस्तां च पद्ममालाविभूषिताम्॥४८॥
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्धिनीम्।
पद्माटवीं प्रपश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा॥४९॥

ध्यान–ये देवी महालक्ष्मी सहस्रदल कमल पर स्थित हैं। वे पद्मनाभ विष्णु की प्रेयसी हैं। वे कमलालया, पद्ममुखी कमल के समान मुख वाली हैं। उनको पद्मपुष्प प्रिय है। उनके नेत्र पद्मपत्रवत् विशाल हैं। वे पद्मपुष्प शय्या पर शयन करती हैं। वे स्वयं पद्मिनी हैं। उनके हाथ में पद्म है। गले में पद्ममाला है। वे नानाभूषणभूषिता हैं। वे पद्मों की शोभा का वर्द्धन करने वाली तथा सर्वदा पद्मकानन का अवलोकन करती हैं। उन सहास्यवदना (हंसते हुए मुख वाली) महादेवी का सानन्द भजन (ध्यान) करें!॥४७-४९॥

चन्दनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत्। गणं संपूज्य दत्त्वा चैवोपचारांश्च षोडश॥५०॥
ततः स्तुत्वा च प्रणमेत्साधको भक्तिपूर्वकम्।
कवचं श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वसारं वदामि ते॥५१॥

घिसे चन्दन से अष्टदल कमल (अंकन करे) बनाये। उसका कमलपुष्प से पूजन करें। तदनन्तर गणों की पूजा करके १६ उपचार अर्पित करें। तदनन्तर महालक्ष्मी की भक्तिभावेन स्तुति करके साधक उनको भावपूर्ण प्रणाम निवेदित करें। हे ब्रह्मन्! अब समस्त साररूप कवच श्रवण करो॥५०-५१॥

नारायण उवाच

शृणु विप्रेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम्। पद्मनाभेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपद्मके॥५२॥
संप्राप्य कवचं ब्रह्मा तत्पद्मे ससृजे जगत्। पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः॥५३॥
पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः। पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाद्भुतम्॥५४॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते। कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराक्षाय नारद॥५५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः सर्वसंपत्समन्वितः॥५६॥
यद्धृत्वा च धनाध्यक्षः कुबेरश्च धनाधिपः।
स्वायंभुवो मनुः श्रीमान्पठनाद्धारणाद्यतः॥५७॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे ब्राह्मण! सर्वप्रथम पद्मनाभ प्रभु ने यह कवच अपने नाभिकमलस्थ ब्रह्मा को दिया था। ब्रह्मा ने यह कवच पाकर उस नाभिपद्म पर स्थित रहते समस्त जगत् की सृष्टि किया था। उन्होंने पद्मालया से वर पाकर लक्ष्मीयुक्त स्थिति प्राप्त किया। पद्मयोनि ब्रह्मा देवी पद्मालया की ही कृपा तथा वरलाभ करने के कारण जगत् के प्रभु हो गये। तब पाद्मकल्प में उन्होंने अपने प्रिय पुत्र

बुद्धिमान् सनत्कुमार को यह अत्यद्भुत कवच दिया। हे नारद! सनत्कुमार ने इसे पुष्कराक्ष राजा को धारण तथा पाठ हेतु प्रदान किया, जो इसके प्रभाव से सर्वसिद्धीश्वर, परमैश्वर्यवान्, सर्वसम्पत्तियुक्त एवं सबके प्रभु हो गये। इसे धारण करने से कुबेर धनाधिप हो गये। इसके पाठ से तथा धारण करने से स्वायम्भुव मनु श्रीमान् कहलाये।।५२-५७।।

प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने। पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो ह्यभवद्धारणाद्यतः।।५८।।
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः। धर्मश्च कर्मणां साक्षी पाता यस्य प्रसादतः।।५९।।

हे मुनिवर! इसे धारण करने (तथा पाठ करने) से प्रियव्रत तथा उत्तानपाद राजा लक्ष्मीवान् हो गये तथा इसे धारण करने और पाठ करने से राजा पृथु सद्यः पृथिवीपति कहे गये। स्वयं दक्ष इसी कवच के प्रभाव से प्रजापति बने तथा इसी की कृपा से धर्म भी कर्मों के साक्षी हो गये।।५८-५९।।

यद्धृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायितः।
भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः।।६०।।
यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः।
सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद्यतः।।६१।।
राजा मरुत्तो भगवानभवद्धारणाद्यतः।
त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात्।।६२।।
विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गः पठनाद्धारणाद्यतः।
मुचुकुन्दो यतः श्रीमान्मान्धातृतनयो महान्।।६३।।

इसी कवच को विष्णु ने दाहिनी बाहु में बांधा तथा क्षीरसागरशायी कहलाये। नारायणांश से जन्मे शेषनाग भी इसे भक्ति के साथ कण्ठ में धारण करते हैं। इसके धारण करने से ही प्रजापति कश्यप को वामन प्रभु पुत्ररूपेण प्राप्त हो गये। इसको ही धारण करने के कारण इन्द्र सभी देवताओं के अधिपति हो गये। भगवान् मरुत्त इसे धारण करके राजा बने। श्रीमान् नहुष इसके धारण तथा पाठ करने के कारण त्रैलोक्य के अधिपति हो गये। राजा खट्वाङ्ग इसका पाठ करने तथा गले में धारण करने के कारण विश्वसंसार विजेता बन सके तथा इसी के प्रभाव से मान्धातानन्दन मुचुकुन्द राजा श्रीपति हो गये।।६०-६३।।

सर्वसंपत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम्।।६४।।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम्।।६५।।

विनियोग—सर्वसम्पदाप्रद इस कवच के ऋषि प्रजापति हैं। छंदः है बृहती। इसके देवी हैं भगवती पद्मालया। धर्म-अर्थ-काम-मोक्षार्थ इसका (विनियोग) प्रयोग करे। यह परमाद्भुत कवच पुण्यबीज रूप परम अद्भुत् है।।६४-६५।।

[1]ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः॥६६॥
[2]ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु।
[3]ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम्॥६७॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु।
ॐ श्रीं कृष्णाप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु॥६८॥
ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु।
ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु॥६९॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु॥७०॥
ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा च मम हस्तौ सदाऽवतु॥७१॥
ॐ श्रीनिवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥७२॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया।
पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया॥७३॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु सा स्वयम्।
उत्तरे कमला पातु चैशान्यां सिन्धुकन्यका॥७४॥

कवच–

ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा–मस्तक की,

ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा–कपाल की,

ॐ श्रीं श्रियै नमः–नेत्रों की,

ॐ श्रीं श्रियै स्वाहा–कर्णद्वय की,

ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा–नासिका की,

ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा–दन्तपंक्ति की,

ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै स्वाहा–दन्तरंध्र की,

१. क. ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं क०।
२. क. ॐ ह्रीं श्रीं।
३. क. ह्रीं श्रीं म०।

ॐ श्रीं नारायणेशायै स्वाहा–कण्ठ की,
ॐ श्रीं केशवकान्तायै नमः–कंधे की,
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा–नाभि की,
ॐ ह्रीं श्रीं ससारमात्रे स्वाहा–वक्ष की,
ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा–पृष्ठ की,
ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा–हाथ की,
ॐ श्रीनिवास कान्तायै स्वाहा–पैरों की,
ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा–सर्वाङ्ग की सदा रक्षा करें।।६६-७२।।

पूर्व दिक् में महालक्ष्मी, अग्निकोण में कमलालया, दक्षिण दिक् में पद्मा, नैर्ऋत् कोण में श्रीहरि प्रिया, पश्चिम दिक् में पद्मालया, वायुकोण में वे स्वयं, उत्तर दिक् में कमला, ईशान कोण में सिन्धुकन्या मेरी रक्षा करें।।७३-७४।।

नारायणी च पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु।
संततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम।।७५।।

ऊर्ध्व में नारायणी, अधः में विष्णुप्रिया, चतुर्दिक् विष्णुप्राणाधिका सदा मेरी रक्षा करें।।७५।।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्।।७६।।
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत्फलं लभते धर्मी कवचेन[1] ततोऽधिकम्।।७७।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान्प्रतिजन्मनि।।७८।।
अस्ति लक्ष्मीगृहे तस्य निश्चला शतपुरुषम्।
देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत्।।७९।।

हे वत्स! यह मैंने सर्वमन्त्र विग्रहरूप कवच कहा। यह सर्वैश्वर्यप्रद कवच अतीव अद्‌भुत है। जो पुण्यफल स्वर्ण का पर्वत ब्राह्मणों को दान करने से मिलता है, उसकी तुलना में अत्यधिक फल की प्राप्ति इस कवच पाठ से होगी। सविधि गुरु की सम्यक् पूजा करके यह कवच धारण करे। इसे कण्ठ किंवा बाहु में बांधने वाला प्रत्येक जन्म में श्रीमान् होता है। देवी कमला उसके गृह में १०० पीढ़ी तक अचला रहती हैं। वह व्यक्ति देवराजों तथा असुरराजों से भी अवध्य बना रहता है। यह निश्चित है।।७६-७९।।

स सर्वपुण्यवान्धीमान्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले।।८०।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरण्याय प्रकाशयेत्।।८१।।

१. क. सरलाय।

वह व्यक्ति सर्वपुण्यवान्, धीमान् होकर सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। जिसने गले में यह कवच धारण किया, उसने तो सभी तीर्थों में स्नान कर लिया! इसे भय-लोभ-मोह के वश में होकर जिस किसी को नहीं देना चाहिए। अपने गुरुभक्त शिष्य को प्रदान करे जो आश्रय प्रदान करने योग्य लगे।।८०-८१।।

इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० श्रीलक्ष्मीकवचवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

इस कवच का ज्ञान लाभ किये बिना जो कोई जगन्माता महालक्ष्मी का जप करता है, वह एक कोटि जप द्वारा भी मन्त्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।।८२।।

।।अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दुर्गा कवच का वर्णन

नारद उवाच

कवचं कथितं ब्रह्मन्पद्मायाश्च मनोहरम्। परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो॥१॥
पद्माक्षप्राणतुल्यं च जीवनं बलकारणम्। कवचानां च यत्सारं दुर्गासेवनकारणम्॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने मनोहर लक्ष्मी कवच कहा। हे प्रभो! अब दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का कवच कहिये, जो राजा पद्माक्षर को प्राणतुल्य प्रिय था। उस जीवनस्वरूप सभी कवचों के साररूप दुर्गा आराधना के कारणस्वरूप कवच का वर्णन करिये।।१-२।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम्। श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥३॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शङ्कराय ददौ पुरा। जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्वा भक्तिपूर्वकम्॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः। यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी॥५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ज्ञानवाञ्छक्तिमान्भुवि। शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः।
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः॥६॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! मंगलप्रद दुर्गाकवच कहता हूं। श्रवण करो। यह कवच पूर्वकाल में गोलोकधाम में श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को प्रदान किया था। महादेव ने भक्ति के साथ उसे धारण करके त्रिपुरासुर का वध किया था। महादेव ने गौतम को, गौतम ने पद्माक्षर को यह कवच दिया था। पद्माक्षर ने इसी कवच से सप्तद्वीपाधिपति होकर विजयलाभ किया था। ब्रह्मा ने इस कवच को धारण किया तथा इसका पाठ भी किया। इससे वे त्रैलोक्य में ज्ञानी एवं शक्तिशाली हो गये। महादेव इस कवच के ही प्रभाव से सर्वज्ञ एवं योगीगण के गुरु कहे गये। इसी के कारण मुनिवर गौतम भी शिवतुल्य हो गये थे।।३-६।।

ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी।।७।।
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः। [१]पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम्।।८।।

विनियोग–इस ब्रह्माण्डविजय नामक कवच के ऋषि हैं प्रजापति, छन्दः हैं गायत्री, देवता हैं दुर्गा। इसका विनियोग है ब्रह्माण्ड विजय करना। यह अत्याश्चर्यमय कवच महत् लोगों हेतु पुण्यतीर्थरूपी है।।७-८।।

ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
ॐ ह्रीं मे पातु कपालं चाप्यो[२] ह्रीं श्रीं पातु लोचने।।९।।
पातु मे कर्णयुग्मं चाप्यों दुर्गायै नमः सदा।
[३]ॐ ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः।।१०।।
[४]ह्रीं श्रीं ह्रूं मिति दन्तांश्च पातु क्लींमोष्ठयुग्मकम्।
क्लीं[५] क्लीं क्लीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डके।।११।।
स्कन्धं[६] महाकालि दुर्गे स्वाहा पातु निरन्तरम्।
वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः।।१२।।
दुर्गे दुर्गे रक्ष पार्श्वौ स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां पृष्ठं मे पातु सर्वतः।।१३।।
ॐ[७] ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदाऽवतु।
ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु।।१४।।

ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–मस्तक की,

१. क. ॰ण्यजीवश्च॰।
२. चाप्यैं ह्रीं।
३. 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं इति ना॰।
४. क. श्रीं ह्रीं क्लीमिति दन्तालिं पातु ह्रीं मो॰।
५. क. क्लीं ह्रीं ह्रीं पा॰।
६. क. ॰न्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वा॰।
७. क. ॐ श्रीं ह्रीं।

ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–कपाल की,

ॐ ह्रीं श्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–नेत्र की,

ॐ दुर्गायै नमः–कानों की,

ॐ ह्रीं श्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–नाक की,

ॐ ह्रीं श्रीं ह्रूं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–दन्त की,

ॐ क्लीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–अधरोष्ठ की,

ॐ क्लीं क्लीं क्लीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–कण्ठ की,

ॐ दुर्गे दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा–कपोल की,

ॐ महाकालि दुर्गे स्वाहा–कन्धे की,

ॐ विपद्विनाशिन्यै स्वाहा–वक्ष की,

ॐ दुर्गे दुर्ग रक्ष–उभय पार्श्व की,

ॐ दुर्गे स्वाहा–नाभि की,

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षां–सब ओर पृष्ठ की,

ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा–हाथ तथा चरण की,

ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा–सर्वाङ्ग की सदा रक्षा करें।।९-१४।।

प्राच्यां पातु महामाया चाऽऽग्नेय्यां पातु कालिका।
दक्षिणे दक्षकन्यां च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी।।१५।।

पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा।।१६।।

ऊर्ध्वं नारायणी पातु त्वम्बिकाऽधः सदाऽवतु।
ज्ञानं ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु।।१७।।

पूर्व दिक् में महामाया, अग्निकोण में कालिका, दक्षिण दिक् में दक्षकन्या, नैर्ऋत् कोण में शिवसुन्दरी, पश्चिम दिक् में पार्वती, वरुण कोण में वाराही, उत्तर दिक् में कुबेरमाला, ईशान कोण में ईशानी, सर्वदा मेरी रक्षा करें। ऊर्ध्व में नारायणी, अधः में अम्बिका, जाग्रदावस्था में ज्ञानदायिनी, स्वप्नावस्था में निद्रा देवी सदा मेरी रक्षा करें।।१५-१७।।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्।।१८।।
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः।।१९।।

हे वत्स! यह समस्त मन्त्रसमूहात्मक ब्रह्माण्डविजय कवच तुमसे कहा, जो परम अद्भुत है। समस्त तीर्थों में स्नान का, सभी यज्ञ करने का जो फल है, समस्त व्रतोपवास का जो फल है, इस कवच के पाठ का वही फल मनुष्य को मिलता है।।१८-१९।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
कण्ठे वा दक्षिणाए वाहौ कवचं धारयेत्तु यः॥२०॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः॥२१॥

गुरु की सविधि अर्चना करके वस्त्रालंकार, चन्दनादि से गुरु की सेवा करके इस कवच को कण्ठ अथवा बाहु में धारण करे। वह व्यक्ति त्रैलोक्यविजयी तथा सर्वशत्रु विमर्दक हो जाता है।।२०-२१।।

इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम्।
शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥२२॥
कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सिद्धिदम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० दुर्गतिनाशिनीकवचं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

यह कवच जाने बिना जो दुर्गतिनाशिनी देवी की आराधना करता है, उसे शत लक्ष मन्त्र जप से भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती। हे नारद! यह काण्वशाखोक्त कवच सिद्धिदायक है। इसे गोपनीय रखे। इस दुर्लभ कवच को जिस-किसी को कदापि प्रदान न करे।।२२-२३।।

।।एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

कार्त्तवीर्य-परशुराम युद्ध, महादेव द्वारा कार्त्तवीर्य से छलपूर्वक कवचग्रहण, कार्त्तवीर्य का परलोकगमन, राजा तथा परशुराम संवाद, ब्रह्मा-परशुराम संवाद

नारायण उवाच

तं गृहीत्वा सदा विष्णौ वैकुण्ठं च गते सति। सपुत्रं च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः॥१॥
कृत्वा युद्धं तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः। राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह॥२॥
पतिते तु सहस्राक्षे कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। आजगाम महावीरो द्विलक्षाक्षौहिणीयुतः॥३॥

सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम्। नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्धनि॥४॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–ब्राह्मणरूपधारी वैकुण्ठनाथ ने इन दोनों कवचों को लिया तथा वैकुण्ठ चले गये। अब परशुराम ने पुष्कराक्ष तथा उसके पुत्र का वध कर दिया। इस पुष्कराक्ष ने कवच रहित होकर भी अपने पुत्र सहित एक सप्ताह पर्यन्त परशुराम से युद्ध किया था। तदनन्तर भार्गव द्वारा छोड़े ब्रह्मास्त्र के प्रहार से मृत हो गया। पुष्कराक्ष के मृत होने पर महावीर कार्त्तवीर्य दो लाख अक्षौहिणी सैन्य के साथ उत्कृष्ट रत्नों के सार से निर्मित वस्त्र धारण करके स्वर्णरथ पर बैठ कर युद्धार्थ रणभूमि में आया। उसके पास नाना प्रकार के अस्त्र थे॥१-४॥

समरे तं परशुरामो राजेन्द्रं च ददर्श ह। रत्नालङ्कारभूषाढ्यं राजेन्द्राणां च कोटिभिः॥५॥
रत्नापत्रभूषाढ्यं रत्नालङ्कारभूषितम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम्॥६॥

परशुराम ने समरस्थल में वस्त्रालंकारभूषित कोटि राजेन्द्रों से घिरे उन राजेन्द्र कार्त्तवीर्य को देखा। वह रत्न छत्र तथा रत्नालंकार भूषित था। उसका सर्वांग चन्दन चर्चित था। वह मन्द मुस्कान युक्त तथा अत्यन्त मनोहर था॥५-६॥

राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवरुह्य रथादहो। प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सहः॥७॥
ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचिताम्।
प्रोवाच च गतार्थं तं स्वर्गं गच्छेति सानुगः॥८॥

जब राजा ने मुनीन्द्र परशुराम को देखा, वह रथ से नीचे उतरा तथा मुनि को प्रणाम करके पुनः राजाओं सहित रथारूढ़ हो गया। राम ने समयोचित आशीर्वाद राजा को दिया कि "तुम अपने अनुचरों के साथ स्वर्ग गमन करो"॥७-८॥

उभयोः सेनयोर्युद्धमभवत्तत्र नारद। पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः।
क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्तवीर्यप्रपीडिताः॥९॥

हे नारद! तदन्तर उभयपक्ष के सैनिक युद्ध करने लगे। इस युद्ध में परशुराम के शिष्यवर्ग तथा परशुराम के महाबली भ्रातागण कार्त्तवीर्य से प्रपीड़ित होकर अपने अंग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत होने के कारण रणभूमि से पलायित हो गये॥९॥

नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः। न ददर्श स्वसैन्यं च राजसैन्यं तथैव च॥१०॥
चिक्षेप रामश्चाऽऽग्नेयं बभूवाग्निमयं रणे। निर्वापयामास राजा वारुणेनैव लीलया॥११॥

राजा कार्त्तवीर्य के बाणों के जाल से परशुराम की सेना इतनी ढंक गई थी कि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम अपनी तथा राजसी सैन्य को देख ही नहीं पा रहे थे। अन्ततः राम ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग रणभूमि में किया, जिसके कारण रणभूमि अग्निमय हो गई। यह देख कर राजा ने वारुणास्त्र के प्रयोग द्वारा उस अग्नि को अत्यन्त सहजता पूर्वक शान्त कर दिया॥१०-११॥

चिक्षेप रामो गान्धर्वं शैलसर्पसमन्वितम्। वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया॥१२॥
चिक्षेप रामो नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयङ्करम्। गारुडेन महाराजः प्रेरयामास लीलया॥१३॥
माहेश्वरं च भगवांश्चिक्षेप भृगुनन्दनः। निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया॥१४॥
ब्रह्मास्त्रं चिक्षिपे रामो नृपनाशाय नारद। ब्रह्मास्त्रेण च शान्तं तत्प्राणनिर्वापणं रणे॥१५॥

तब राम ने गान्धर्वास्त्र का प्रयोग किया जो पर्वत तथा सर्पयुक्त था। उसे भी राजा ने वायव्यास्त्र से खेल-खेल में शान्त कर दिया। यह देख कर भृगुनन्दन राम ने माहेश्वरास्त्र को छोड़ा, उसे राजा ने लीला पूर्वक वैष्णवास्त्र से व्यर्थ कर दिया। यह देख कर भार्गव राम ने अत्यन्त भयानक दुर्निवार नागास्त्र छोड़ा जिसे गारुड़ास्त्र से महाराज ने लीला पूर्वक व्यर्थ कर दिया। अन्त में हे नारद! परशुराम ने राजा का नाश करने हेतु ब्रह्मास्त्र छोड़ा, परन्तु राजा ने उस प्राणनाशक अस्त्र को अपने ब्रह्मास्त्र से शान्त कर दिया॥१२-१५॥

दत्तदत्तं च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम्। जग्राह राजा परशुरामनाशाय संयुगे॥१६॥
शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्यसमप्रभम्। प्रलयाग्निशिखोद्रिक्तं दुर्निवार्यं सुरैरपि॥१७॥
पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद। मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन्॥१८॥

तदनन्तर रणांगण में सहस्त्रार्जुन कार्त्तवीर्य ने दत्तात्रेय से प्राप्त त्रिशूल को अभिमंत्रित करके परशुराम पर उनके वधार्थ छोड़ा। यह शूल अव्यर्थ था। परशुराम ने उस शतसूर्यसमप्रभ प्रलयाग्निशिखायुक्त एवं देवगण द्वारा भी निवृत्त न हो सके, ऐसा शूल अपनी ओर आते देखा। हे नारद! वह शूल राम पर गिर गया। वे हरिस्मरण करते मूर्च्छाग्रस्त हो गये॥१६-१८॥

पतिते तु तदा रामे सर्वे देवा भयाकुलाः। आजग्मुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥१९॥
शङ्करश्च महाज्ञानी महाज्ञानेन लीलया। ब्राह्मणं जीवयामास तूर्णं नारायणाज्ञया॥२०॥

परशुराम को भूपतित देख कर सभी देवता, ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर इस युद्धभूमि में आये। उस समय ज्ञानीप्रवर शंकर भी नारायण की आज्ञा से वहां आये। उन्होंने अपने ज्ञानबल से ब्राह्मण परशुराम को जीवित कर दिया॥१९-२०॥

भृगुश्च चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान्। प्रणनाम परं भक्त्या लज्जानम्रात्मकंधरः॥२१॥
राजा दृष्ट्वा सुरेशांश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणम्य शिरसा मूर्ध्ना तुष्टाव च सुरेश्वरान्॥२२॥

भृगुवंशी राम ने चेतना लाभ करके अपने समक्ष देवगण को देखा। उन्होंने लज्जा पूर्वक नतमस्तक होकर सभी देवगण को प्रणाम किया। उन्होंने देवगण की स्तुति भी किया॥२१-२२॥

तत्राऽऽजगाम भगवान्दत्तात्रेयो रणस्थलम्।
शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्भक्तवत्सलः॥२३॥

भृगु पाशुपतास्त्रं च सोऽग्रहीत्कोपसंयुतः। दत्तदत्तेन दृष्टेन बभूव स्तम्भितो भृगुः॥२४॥

दर्दर्श स्तम्भितो रामो राजानं रणमूर्धनि। नानापार्षदयुक्तेन कृष्णेनाऽऽरक्षितं रणे॥२५॥

तभी वहां रणभूमि में भगवान् दत्तात्रेय अपने शिष्य की रक्षा हेतु आ गये। वे कृपालु तथा भक्तवत्सल हैं। उसी समय भार्गव राम ने क्रोधयुक्त होकर पाशुपतास्त्र उठाया। वे छोड़ना ही चाहते थे, परन्तु दत्तात्रेय के दृष्टिपात मात्र से भार्गव परशुराम स्तम्भित हो गये। तभी स्तम्भितावस्था में परशुराम ने देखा कि राजा इस रण में नाना पार्षदयुक्त श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित है।।२३-२५।।

सुदर्शनं प्रज्वलन्तं भ्रमणं कुर्वता सदा। सस्मितेन स्तुतेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः॥२६॥

वे प्रभु सतत् चक्रमण करते सुदर्शन चक्र द्वारा राजा की रक्षा कर रहे थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर स्मित मुख हो उन प्रभु की स्तुति कर रहे थे।।२६।।

गोपालशतयुक्तेन गोपवेषविधारिणा। नवीनजलदाभेन वंशीहस्तेन गायता॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः॥२८॥

राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्नगुटिकान्वितम्।
गृहीतकवचे शंभौ भिक्षया योगिनां गुरौ॥२९॥
तदा हन्तुं नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद।
श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शङ्करो द्विजरूपधृक्॥३०॥

भगवान् सैकड़ों गोपों के साथ थे। वहां स्वयं गोपवेशधारी नव जलधर के समान कान्तिशाली, मुरलीधारी कृष्ण गायन कर रहे थे। तभी वहां परशुराम ने अशरीरी आकाशवाणी सुना। "दत्तात्रेय ने कृष्णकवच राजा कार्त्तवीर्य को दिया है। यह कवच राजा ने रत्नगुटिका (ताबीज) में भर कर दाहिनी बाहु में बांधा है। यदि योगीगण के गुरु शंभु उस कवच को भिक्षा में मांगे, तभी भार्गव राम राजा का वध कर सकेंगे।" यह अशरीरी वाणी सुन कर शंकर ने द्विजरूप धारण किया।।२७-३०।।

भिक्षां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च।
शंभुना भृगवे दत्तं कृष्णस्य कवचं च यत्॥३१॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम्। प्रत्युवाचापि परशुरामो वै समरे नृपम्॥३२॥

तदनन्तर शिव ब्राह्मण वेश में राजा के पास गये तथा उन्होंने राजा से भिक्षा में कृष्णकवच मांग कर ले लिया तथा वह कवच परशुराम को दे दिया। यह देख कर सभी देवता अपने-अपने उत्तम स्थान में चले गये। अब परशुराम ने युद्धभूमि में राजा से कहा-।।३१-३२।।

परशुराम उवाच

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम्। कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः॥३३॥

अधीतं विधिवद्दत्तं कृत्स्ना पृथ्वी सुशासिता।
[1]सम्यक कृतश्च संग्रामो त्वयाऽहं मूर्च्छितोऽधुना॥३४॥

१. क. यशः कृतं च संसारे स्व०।

जिताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणो जितः।
जितोऽहं दत्तशूलेन शंभुना जीवितः पुनः॥३५॥

परशुराम कहते हैं–हे राजेन्द्र! उठो! साहस पूर्वक युद्ध करो। मनुष्य को समयविशेष आने पर जय तथा समय (काल) विशेष आने पर पराजय मिलती है। तुमने अध्ययन किया, यथाविधि दान किया, समस्त धरती पर सुशासन किया है। मैंने सम्यक् रूप से संग्राम किया, तथापि उसमें तुम्हारे आघात से मूर्च्छित हो गया। तुमने सभी राजाओं को जीता, लीला से रावण पर विजय पाई। तुमने दत्तात्रेय प्रदत्त त्रिशूल से मुझे जीत लिया। तब पुनः शंभु ने मुझे जीवित किया था।।३३-३५।।

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः।
मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्त्या यथार्थोक्तिमुवाच ह॥३६॥

राम का वचन सुन कर परम धर्मात्मा राजा ने शिर नत करके भक्ति पूर्वक भार्गव को प्रणाम करके कहा–।।३६।।

राजोवाच

किमधीतं तथा दत्तं का वा पृथ्वी सुशासिता।
हताः कतिविधा भूपा मादृशा धरणीतले॥३७॥
बुद्धिस्तेजो विक्रमश्च विविधा रणमन्त्रणा।
श्रीरैश्वर्यं तथा ज्ञानं दानशक्तिश्च लौकिकम्॥३८॥
आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः। सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभो॥३९॥

राजा कहता है–मैंने क्या अध्ययन किया, क्या पृथिवी पालन किया, क्या दान किया, क्या पृथिवी शासन किया? इसमें कौन बड़ी बात है? इस पृथिवी पर मेरे जैसे न जाने कितने राजाओं ने लय प्राप्त कर लिया? हे प्रभो! मेरी बुद्धि, तेज, विक्रम, विविध युद्ध विषयक मन्त्रणा, श्री, ऐश्वर्य, ज्ञान, दानशक्ति, लौलिकता, आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा तथा परम तपस्या–ये सभी मेरी पत्नी मनोरमा के साथ चले गये।।३७-३९।।

सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वी पद्मांशसंभवा।
यज्ञेषु पत्नी मातेव स्नेहे क्रीडति सङ्गिनी॥४०॥
आबाल्यात्सङ्गिनी शश्वच्छयने भोजने रणे।
तां विना प्राणहीनोऽहं विषहीनो यथोरगः॥४१॥

वह मेरी पत्नी प्राणतुल्य, साध्वी तथा लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न थी। वह यज्ञकाल में पत्नी, स्नेह करने में माता जैसी तथा क्रीड़ा (रमण आदि में) संगिनी थी। वह शयन-भोजन तथा युद्ध में बाल्यकाल से ही मेरे साथ रहती थी। अब उसके अभाव में मैं विषहीन सर्प की तरह प्राणहीन हो रहा हूं।।४०-४१।।

त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता।
द्वितीया शोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च॥४२॥
काले सिंहः सृगालं च सृगालः सिंहमेव च।
काले व्याघ्रं हन्ति मृगो गजेन्द्रं हरिणस्तथा॥४३॥
महिषं मक्षिका काले गरुडं च तथोरगः।
किङ्करः स्तौति राजेन्द्रं काले राजा च किङ्करम्॥४४॥
इन्द्रं च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति।
तिरो भूत्वा सा प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे॥४५॥

हे विप्र! आपने मेरा पहले का युद्ध नहीं देखा है। यह मेरा पहला दुःख है। दूसरा दुःख यह है कि मैं एक ब्राह्मण द्वारा मारा जाने वाला हूं, समय आने पर सिंह शृगाल को, शृगाल सिंह को, महा व्याघ्र को मार देता है। हिरण गजराज का वध कर देता है। काल के कारण ही मक्षिका भी महिष का वध कर देती है। तदनुरूप सर्प गरुड़ का वध कर देता है। सामान्यतः सेवक राजा की स्तुति करता है तथा समय आने पर राजा सेवक की प्रार्थना करने लगता है। जब व्यक्ति का काल आ जाता है, तब सामान्य मानव इन्द्र का वध कर देता है। काल आने पर ब्रह्मा भी मृत होंगे। काल आते ही यह प्रकृति श्रीकृष्ण के देह में लीन हो जाती है॥४२-४५॥

मरिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः।
सर्वे काले लयं यान्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥४६॥
कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्त्रष्टुः स्त्रष्टा यथेच्छया।
संहर्ता चैव संहर्तुः पातुः पाता परात्परः॥४७॥

इन सभी देवगण की मृत्यु होगी, यह निश्चित है। समस्त त्रैलोक्य सचराचर सब कुछ काल में लयीभूत होता है। काल दुरतिक्रम जो है। लेकिन श्रीकृष्ण तो काल के भी काल हैं। वे सृष्टिकर्त्ता के भी स्त्रष्टा स्वेच्छा से हैं। वे स्वयं अपनी ही इच्छा से संहारकर्त्ता का भी संहार करने वाले, पालनहार का भी पालन करने वाले परात्पर हैं॥४६-४७॥

महास्थूलात्स्थूलतमः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमः कृशः।
[१]परमाणुपरः कालकालः स्यात्कालभेदकः॥४८॥
यस्य लोमानि विश्वानि स पुमांश्च महाविराट्।
तेजसां षोडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः॥४९॥

श्रीकृष्ण परमस्थूल से भी स्थूलतम हैं, वे सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्मतर हैं। वे कृश परमाणु से भी

१. क. पुराण. परम. का०।

परमाणुरूप हैं। वे काल के भी काल एवं काल का भेदन करने वाले हैं। जिसके रोमों में विश्व की स्थिति है, वह महाविराट् परमात्मा कृष्ण के तेज का १६वां भाग मात्र है।।४८-४९।।

ततः क्षुद्रविराड्जातः सर्वेषां कारणं परम्।
यः स्त्रष्टा च स्वयं ब्रह्मा यन्नाभिकमलोद्भवः॥५०॥
नाभेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः।
भ्रमणाल्लक्षवर्षं च ततः स्वस्थानसंस्थितः॥५१॥

उनसे ही क्षुद्रविराट् (जो महाविराट् के अतिरिक्त है) की उत्पत्ति होती है। वे सबके परम कारण भी हैं। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उनके नाभिकमल से उद्भूत हैं। ब्रह्मा ने प्रभूत प्रयास किया, तथापि सभी प्रयत्न करने पर भी वे उस कमलदण्ड का अन्त नहीं प्राप्त कर सके, जबकि उन्होंने एक लक्ष पर्यन्त तक उसका अन्वेषण किया था। अन्ततः हार कर ब्रह्मा पुनः स्वस्थान पर आ गये।।५०-५१।।

तपश्चक्रे ततस्तत्र लक्षवर्षं च वायुभुक्। ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णं च सपार्षदम्॥५२॥
गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीधरम्। रत्नसिंहासनस्थं च राधावक्षःस्थलस्थितम्॥५३॥
दृष्ट्वाऽनुज्ञां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः।
ईश्वरेच्छां च विज्ञाय स्त्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे॥५४॥

तदनन्तर एक लक्ष वर्ष पर्यन्त ब्रह्मा ने तप किया। तभी ब्रह्मा को भगवान् श्रीकृष्ण, गोलोकधाम तथा भगवान् के पार्षदगण का दर्शन मिल सका। तब ब्रह्मा ने पार्षदों तथा गोप-गोपीगण से घिरे, रत्नमय सिंहासनासीन श्री राधिका के वक्षःस्थल पर स्थित मुरलीधारी श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त किया तथा उनको ब्रह्मा ने बारम्बार प्रणाम निवेदित किया। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने ईश्वर की इच्छा जान कर उनकी आज्ञा से सृष्टिकार्य में अपना मन लगाया।।५२-५४।।

यः शिवः सृष्टिसंहर्ता स च स्त्रष्टुर्ललाटजः।
विष्णुः पाता क्षुद्रविराट्श्वेतद्वीपनिवासकृत्॥५५॥
सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः॥५६॥
तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट्।
सर्वप्रसूतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः॥५७॥

जो सृष्टि संहारकर्त्ता शिव हैं, वे भी स्त्रष्टा (ब्रह्मा) के ललाट से ही उत्पन्न हैं। श्वेत द्वीपवासी क्षुद्रविराट् विष्णु हैं, वे पालन कार्य करते हैं। ये सृष्टि के कारणभूत ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर श्रीकृष्ण के अंश से सम्भूत होकर समस्त विश्व में अवस्थान करते हैं। सभी देवता प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। महाविराट् की उत्पत्ति भी प्रकृति से कही गयी है। सब कुछ का प्रसव करने वाली आद्या प्रकृति ही है। एकमात्र कृष्ण ही प्रकृति से अतीत हैं।।५५-५७।।

न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना।
सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना॥५८॥
सा च कृष्णे तिरो भूत्वा सृष्टिसंहारकारके।
साऽऽविर्भूता सृष्टिकाले सा च नित्या[१] महेश्वरी॥५९॥
कुलालश्च घटं कर्तुं यथाऽशक्तो मृदं विना।
स्वर्णं विना स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः॥६०॥
सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया।
राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती॥६१॥

मायापति परमेश्वर भी इन प्रकृतिशक्ति के बिना सृजन नहीं कर सकते। यह माया सृष्टि संहारक एवं पालक कृष्ण में लीन होकर पुनः सृष्टिकाल में आविर्भूत हो जाती है। यह महेश्वरी प्रकृति नित्या है। जैसे कुंभकार मिट्टी के बिना घट नहीं बना सकता, स्वर्णकार स्वर्ण के बिना कुण्डलादि आभूषण का निर्माण नहीं कर सकता, तदनुरूप प्रकृति के बिना सृष्टिकार्य नहीं हो सकता। सृष्टिकाल में यह प्रकृति शक्ति ईश्वरेच्छा से पंचरूपात्मक हो जाती है। यथा–राधिका, लक्ष्मी, सावित्री, देवी दुर्गा तथा सरस्वती।।५८–६१।।

प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः।
प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्तिता॥६२॥
ऐश्वर्याधिष्ठातृदेवी सर्वमङ्गलकारिणी। परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मीः परिकीर्तिता॥६३॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या परमेशस्य दुर्लभा।
या माता वेदशास्त्राणां सा सावित्री प्रकीर्तिता॥६४॥

जो परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी हैं, उनकी प्राणाधिक प्रियतमा हैं, वे ही राधा हैं। जो सर्वमंगल करने वाली, ऐश्वर्य की अधिष्ठातृ देवी तथा परमानन्दरूपा हैं, वे ही लक्ष्मी हैं, जो विद्या की अधिष्ठातृ देवी तथा परमेश्वर की अत्यन्त दुर्लभा शक्ति हैं, जो विद्याधिष्ठातृ देवी, वेदशास्त्र की जननी हैं, वही सावित्री हैं।।६२–६४।।

बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
सर्वज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्गनाशिनी॥६५॥
वागधिष्ठातृदेवी या शास्त्रज्ञानप्रदा सदा।
कृष्णकण्ठोद्भवा सा स्याद्या च देवी सरस्वती॥६६॥
पञ्चधाऽऽदौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। ततः सृष्टिक्रमेणैव बहुधा कलया च सा॥६७॥

---
१. क. ०त्या यथेश्वराः।

योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च। मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भवः॥६८॥

जो बुद्धि की अधिष्ठातृ देवी, सर्वशक्तिरूपा, सर्व ज्ञानमयी तथा सर्वस्वरूपा हैं, वे ही हैं **दुर्गतिनाशिनी दुर्गा**। जो वाणी की अधिष्ठातृ देवी हैं, जो सर्वदा शास्त्रज्ञानप्रदा हैं, जो कृष्ण के कण्ठ से उत्पन्न हैं, वे ही **सरस्वती** हैं। देवी ईश्वरी मूलप्रकृति पहले इस प्रकार पंचधा विभक्त होकर प्रकट होती हैं। तदनन्तर सृष्टिक्रम में अपने अंश से नानारूपा हो जाती हैं। नारियां प्रकृति के अंश से तथा पुरुषांश से पुरुष उत्पन्न हुए हैं। सृष्टि के समय माया के न रहने पर इनके अभाव में संसार ही नहीं हो पायेगा॥६५-६८॥

सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन्ब्रह्मोद्भवा सदा।
पाता विष्णुश्च संहर्ता शिवः शश्वच्छिवप्रदः॥६९॥
दत्तदत्तं ज्ञानमिदं राम मह्यं च पुष्करे। दीक्षाकाले च माध्यां च मुनिप्रवरसंनिधौ॥७०॥

प्रत्येक विश्व की सृष्टि ब्रह्मा करते हैं। उसके पालनकर्त्ता विष्णु हैं, संहारक हैं, सदा कल्याण करने वाले शिव। हे राम! पुष्कर तीर्थ में दत्तात्रेय ने यह ज्ञान मुझे प्रदान किया था। माघी पूर्णिमा के दिन दीक्षाकाल में मुनिगण के निकट यह ज्ञान उन्होंने मुझे दिया था॥६९-७०॥

इत्युक्त्वा कार्तवीर्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः।
आरुरोह रथं शीघ्रं गृहीत्वा सशरं धनुः॥७१॥
रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह। नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन्॥७२॥
एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुंधराम्।
रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवं स्मरन्॥७३॥

यह कह कर कार्त्तवीर्य ने मुस्कराते हुए परशुराम को प्रणाम किया तथा अश्वारूढ़ होकर धनुष-बाण हाथ में उठाया। तत्पश्चात् परशुराम ने ब्रह्मास्त्र से राजा की सेना का वध कर दिया। उन्होंने शिव का स्मरण करके पाशुपतास्त्र छोड़ कर अनायास राजा का वध कर दिया। इस प्रकार परशुराम ने शिव का स्मरण करके वसुन्धरा को क्रमशः २१ बार क्षत्रिय रहित कर दिया॥७१-७३॥

गर्भस्थं मातुरङ्कस्थं शिशुं वृद्धं च मध्यमम्।
जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञापालनाय वै॥७४॥
कार्तवीर्यश्च गोलोकं त्वगमत्कृष्णसंनिधिम्।
जगाम परशुरामश्च स्वालयं श्रीहरिं स्मरन्॥७५॥

राम ने गर्भस्थ शिशुओं, माता की क्रोड़ में स्थित शिशुओं, वृद्ध एवं युवा क्षत्रियों का वध किया। यह उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के रक्षणार्थ किया था। उधर मृत्यु के अनन्तर कार्त्तवीर्य कृष्ण के पास गोलोक में आ गये। परशुराम भी श्रीहरि का स्मरण करते अपने गृह में लौट आये॥७४-७५॥

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं दृष्ट्वा महेश्वरः। पर्शुना रमणं दृष्ट्वा परशुरामं चकार तम्॥७६॥

देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः। सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्ध्नि च नारद॥७७॥

जब महेश्वर ने राम को फरसे से २१ बार धरती को क्षत्रिय रहित करते देखा, तब उनका नाम परशुराम रख दिया। उस समय देवता, मुनिगण, देवीगण, सिद्ध-गन्धर्व-किन्नरों ने राम के शिर पर पुष्पवर्षा किया।।७६-७७।।

स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हर्षशब्दो बभूव ह। यशसा चैव परशुरामस्याऽऽपूरितं जगत्॥७८॥
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च वाल्मीकिश्च्यवनस्तथा। जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः॥७९॥

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः सानन्दाश्रुसमन्विताः।
दूर्वापुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिषः॥८०॥

उस समय स्वर्ग में दुन्दुभिवादन होने लगा। देवगण हर्ष प्रकट करने लगे। परशुराम के शुभ यश से जगत् भर उठा। उस समय ब्रह्मा-भृगु-शुक्र-च्यवन-वाल्मीकि, जमदग्नि प्रभृति सभी रोमांचित होकर तथा आनंदाश्रुपूर्ण होकर हाथों में दूर्वा तथा पुष्प लेकर मंगल आशीर्वाद करते हुए ब्रह्मलोक से परमानन्द के साथ वहां आ गये।।७८-८०।।

प्रणनाम च तान्रामो दण्डवत्पतितो भुवि।
क्रोडे चकार ब्रह्माऽऽदौ क्रमात्तातेति संवदन्[१]॥८१॥

तमुवाचाथ परशुरामं ब्रह्मा जगद्गुरुः। वेदसारं नीतियुतं परिणामसुखावहम्॥८२॥

हे मुनि! परशुराम ने जब उनको देखा, तब उन्होंने दण्डवत् भूमि पर गिर कर उनको प्रणाम किया। यह देख कर परशुराम को सर्वप्रथम ब्रह्मा ने गोद में लेकर हे तात! हे तात! कह कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त किया और परिणाम में सुखप्रद, नीतियुक्त एवं वेद का साररूप वचन जगद्गुरु ब्रह्मा ने परशुराम से कहा-।।८१-८२।।

ब्रह्मोवाच

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सर्वसंपत्करं परम्। काण्वशाखोवतवचनं सत्यं वै सर्वसंमतम्॥८३॥

पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः।
जनको जन्मदानाच्च पालनाच्च पिता स्मृतः॥८४॥

गरीयाञ्जन्मदातुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने। विनाऽन्नं नश्वरो देहो न नित्यं पितुरुद्भवः॥८५॥

तयोः शतगुणं माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सैव प्रोक्ता गरीयसी॥८६॥

ब्रह्मा कहते हैं-हे परशुराम! सर्वसम्पत्तिप्रद, काण्वशाखोक्त सत्य, सर्वसम्मत वाक्य कहता हूं। श्रवण करो। हे मुनिप्रवर! जन्म देने तथा पालन करने के कारण जन्मदाता सभी पूज्यों में पूज्यतम

---

१. क. संरुदन्।

जनक तथा पिता कहलाता है, तथापि जन्मदाता से अन्नदाता पिता श्रेष्ठ कहा गया है। इसका कारण है कि अन्न बिना शरीरधारण संभव ही नहीं है। पिता से जो उत्पत्ति होती है, वह तो स्वभाव सिद्ध है। इन दोनों प्रकार के पिता की तुलना में माता गर्भधारिणी तथा पोषणकारिणी होने के कारण पिताद्वय से सौ गुना अधिक पूज्या कही गई है। वह मान्या, श्रेष्ठा तथा वन्दनीया होती है।।८३-८६।।

तेभ्यः शतगुणं पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः।
ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः।।८७।।

गुरुवद्गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका। देवे रुष्टे गुरु रक्षेद् गुरौ रुष्टे न कश्चन।।८८।।

श्रुति का कहना है कि माता से १०० गुना पूज्य हैं इष्टदेवता। लेकिन ज्ञान-विद्या-मन्त्रप्रदाता गुरु तो अभीष्ट देवता से भी अधिक है। गुरु के समान गुरुपुत्र को जाने। उससे अधिक सम्माननीय गुरुपत्नी होती है। यदि देवता रुष्ट हो जाय, तब गुरु रक्षा करते हैं। लेकिन गुरु के रुष्ट हो जाने पर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता।।८७-८८।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः।।८९।।

गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानं च हरिभक्तिदम्।
हरिभक्तिप्रदाता यः को वा बन्धुस्ततः परः।।९०।।
अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत्।
लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत्को वा बन्धुस्ततः परः।।९१।।

गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु तथा गुरु ही देवाधिदेव महेश्वर हैं। गुरुदेव ही परम ब्रह्म हैं। वे ब्राह्मण से भी अधिक प्रिय हैं। गुरुदेव शिष्य को ज्ञान प्रदान करते हैं। ज्ञान से ही हरिभक्तिलाभ होता है। जो हरिभक्ति प्रदान करता है, उससे बढ़ कर बन्धु कौन हो सकता है? अज्ञानान्धकार से आवृत लोग जिनके द्वारा ज्ञानदीप प्राप्त करते हैं, अर्थात् जिनसे वे निर्मल पथ देख पाते हैं, उन गुरु से श्रेष्ठ बन्धु और कौन हो सकता है?।।८९-९१।।

गुरुदत्तं सुमन्त्रं च जप्त्वा ज्ञानं ततो लभेत्।
सर्वज्ञत्वाच्च सिद्धिं च को वा बन्धुस्ततोऽधिकः।।९२।।
सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया।
यया पूज्योऽपि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः।।९३।।
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न यजेद्गुरुम्।
ब्रह्महत्यादिकं पापं लभते नात्र संशयः।।९४।।

गुरुप्रदत्त मन्त्रविद्या के प्रभाव से सभी जगह सुख पूर्वक विजयलाभ होता है। जिस विद्या द्वारा वह शिष्य जगत्पूज्य हो जाता है, उस विद्यादाता गुरु से बढ़ कर बन्धु कौन हो सकता है? जो व्यक्ति विद्यामद, धनमद में अन्धा-सा होकर गुरु की पूजा नहीं करता, वह मूढ़ व्यक्ति ब्रह्महत्यादि पापग्रस्त होता है, इसमें संदेह नहीं है।।९२-९४।।

दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्या भजेद्गुरुम्। तीर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु॥९५॥
अभीष्टदेवः श्रीकृष्णो गुरुस्ते शङ्करः स्वयम्। शरणं गच्छ हे पुत्र देवपूज्यतमं गुरुम्॥९६॥

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः।
प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिवं शरणं व्रज॥९७॥

जो व्यक्ति गुरु को दरिद्र, पतित अथवा क्षुद्र जान कर उसके प्रति मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, भले ही वह तीर्थ स्नान क्यों न करे, तनिक भी पवित्र नहीं होता। उसे किसी कर्म का अधिकार नहीं होता। हे वत्स! श्रीकृष्ण तुम्हारे अभीष्ट देव हैं, शिव स्वयं तुम्हारे गुरु हैं। हे वत्स! तुमको देवगण से भी अधिक पूज्य अपने गुरु की शरण लेनी चाहिए। तुम उन शिव की शरण ग्रहण करो, जो देवताओं से भी अधिक पूज्य हैं, उनकी ही कृपा से तुमने २१ बार धरती को क्षत्रिय रहित किया है। जिनकी कृपा से तुमने भगवान् की भक्ति प्राप्त किया है, उन देवों के पूज्यतम गुरु शिव के यहां शरण ग्रहण करो।।९५-९७।।

शिवां च शिवरूपं च शिवदं शिवकारणम्।
शिवाराध्यं शिवं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज॥९८॥

गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक्। य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज॥९९॥

भवानी रूप, शिव रूप, शिवप्रद, शिवकारण, शिवा के आराध्य देव, शान्त शिव गुरु की शरण ग्रहण करो। गोलोकनाथ भगवान् कृष्ण ने ही अपने अंश से शिवरूप धारण किया है। इष्टदेव ही गुरु हैं। उनकी शरण ग्रहण करो।।९८-९९।।

आत्मा कृष्णः शिवो ज्ञानं मनोऽहं सर्वजीविषु।
प्राणा विष्णुः सा प्रकृतिः सर्व शक्तियुता सुत॥१००॥

ज्ञानदं ज्ञानरूपं च ज्ञानबीजं सनातनम्। मृत्युञ्जयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज॥१०१॥

हे पुत्र! सबकी आत्मा हैं कृष्ण। शिव हैं ज्ञान। मैं मन हूं। विष्णु प्राण हैं। यह प्रकृति सर्वशक्तियुता है। यह जाने। वे गुरु मानप्रद, ज्ञानरूप, ज्ञानबीज सनातन हैं। ये काल के भी काल मृत्युंजय हैं। इन गुरु की शरण ग्रहण करो।।१००-१०१।।

ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम्। शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम्॥१०२॥
प्रकृतिर्लक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम्। कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज॥१०३॥

ये ब्रह्मा ज्योतिरूप, भक्तों पर कृपा करके विग्रहधारी हैं। हे सर्वज्ञ सनातन भगवान्! उन प्रभु की शरण ग्रहण करो। प्रकृति देवी ने एक लक्ष वर्ष तप द्वारा ईश्वर को अपने मनोहर प्रियपतिरूपेण प्राप्त किया है, ऐसे गुरु की शरण ग्रहण करो।।१०२-१०३।।

इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्धं जगाम कमलोद्भवः। रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० भृगोः कैलासगमनोपदेशो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

यह कह कर कमल से उद्भूत ब्रह्मा मुनिगण के साथ वहां से चले गये और परशुराम ने कैलास जाने का निर्णय लिया।।१०४।।

।।चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम का कैलास गमन

नारायण उवाच

हरेश्च कवचं धृत्वा कृत्वा निःक्षत्रियां महीम्।
रामो जगाम कैलासं नमस्कर्तुं शिवं गुरुम्।।१।।
गुरुपत्नीं शिवामम्बां द्रष्टुं गुरुसुतौ च तौ गुणैर्नारायणसमौ कार्तिकेयगणेश्वरौ।।२।।
मनोयायी महात्मा स भृगुः संप्राप्य तत्क्षणम्। ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम्।।३।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—परशुराम ने हरि का कवच सुन कर जब २१ बार पृथिवी को क्षत्रिय रहित कर दिया, तब वे गुरु शिव को प्रणाम करने तथा गुरुपत्नी शिवाम्बा एवं गुणों में नारायण के समान कार्त्तिकेय एवं गणपति के दर्शनार्थ कैलास गये। मनोवेग से युक्त महात्मा भार्गव तत्क्षण कैलास पहुंचे तथा उन्होंने वह अतीव मनोरम नगर देखा।।१-३।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशैर्मकिणभिः सुमनोहरैः। [1]सुवर्णभूमिसदृशै राजमार्गैर्विराजितम्।।४।।
सिन्दूरारुणवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः। संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः।।५।।
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः।
कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः।।६।।
सुवर्णकलशैर्दिव्यै राजतैः श्वेतचामरैः। रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः।।७।।
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः। बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः।।८।।
क्रीडद्भिः सस्मितैः शवत्स्वच्छन्दं च विराजितैः। पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरनीरजैः।।९।।
आकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्च सुगन्धिभिः।
कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः।।१०।।

---
१. क. ॰र्णल्यभास॰।

वह नगर शुद्ध स्फटिक की आभा वाला, सुन्दर मणियों से सज्जित स्वर्णभूमि के समान राजमार्ग वाला था। वह सिन्दूरमयी वेदिका से युक्त तथा मणिगृह से सम्पन्न था। इस नगर के मणिनिर्मित कपाट, स्तम्भ तथा सीढ़ियां शोभायमान थीं। वहां शतकोटि यक्षभवन भी बने थे। वह नगर दिव्य कलशों से युक्त था। वहां श्वेत चामर, रत्न, स्वर्ण भरे पड़े थे। वह यक्षेन्द्रगणों से पूर्ण था। वहां रत्नभूषणादि से दीप्त सुन्दरियां, बालक-बालिका जो हाथ में काठ की बनी पुतलियां लिये थीं, वे उससे मुस्कराते हुए खेल रही थीं। वे स्वच्छन्दता पूर्वक क्रीड़ा कर रही थीं। यह नगर मन्दाकिनी तट पर पुष्पित सुगन्धयुक्त पारिजात वृक्षों तथा पुष्पों से समाकीर्ण था। ये पुष्प पुष्पजाल जैसे शोभायमान थे। इन कल्पवृक्षों की छाया में आश्रय लेकर वहां सिद्धवृन्द, कामधेनु, सिद्ध विद्यादाता पुण्यात्मा विराजमान थे।।४-१०।।

सिद्धविद्यासु निपुणैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम्। त्रिलक्षयोजनोच्छ्रायैर्वटवृक्षैरथाक्षयैः।।११।।
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः। असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः।।१२।।
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशब्दितैः। कम्पितैः शीतवातेन मण्डितं च सुगन्धिना।।१३।।
पुष्पोद्यानसहस्रेण सरसां च शतेन च। सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः।।१४।।

वहां सिद्धविद्या में पारंगत पुण्यात्मा सिद्धगण रहते थे, जिनसे यह स्थान सेवित था। यह वृक्ष तीन लाख योजन उच्च, सौ योजन विस्तीर्ण तथा (सैकड़ों शाखा वाला) शतस्कन्धात्मक था। इसकी असंख्य शाखायें थीं तथा यह असंख्य फलयुक्त भी थी। यह नाना प्रकार के पक्षियों से पूर्ण था। वे इस पर मनोहर शब्द कर रहे थे। यहां सभी लोग शीतल सुगन्धित वायु के बहने का कम्पन अनुभव कर रहे थे। यहां हजारों पुष्पोद्यान थे, सौ नदियां थीं। यहां मणिरत्नों से निर्मित एक लाख सिद्धों के गृह भी थे।।११-१४।।

रामश्च दृष्ट्वा नगरमतिसंहृष्टमानसः। ददर्श पुरतो रम्यं श्रीयुक्तं शङ्करालयम्।।१५।।
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः। खचितं रत्नसारैश्च रचितं विश्वकर्मणा।।१६।।

राम ने यह नगर अत्यन्त हर्षित होकर देखा। तदनन्तर उन्होंने सामने की ओर परमरम्य श्रीयुत शंकर गृह का दर्शन किया। यह आश्रम विश्वकर्मा द्वारा रचित था तथा १०० संख्या वाली स्थूल स्वर्णवर्ण मणि द्वारा शोभायमान था।।१५-१६।।

त्रिपञ्चयोजनोच्छ्रायं चतुर्योजनविस्तृतम्। चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम्।।१७।।
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च। मणीन्द्रवेदिभिर्युक्तं मणिस्तम्भविराजितैः।।१८।।

इसकी उच्चता १५ योजन थी। इसका विस्तार ४ योजन था। यह चारों ओर से समान था। यह अत्यन्त मनोहर चौकोर प्राचीन से वेष्ठित नगर था। इसके द्वार रत्नों के बने तथा नाना चित्रयुक्त थे। यहां की वेदी मणियुक्त तथा मणिस्तम्भमय थीं।।१७-१८।।

तद्दक्षिणे वृषेन्द्रं च वामे सिंहं च नारद। नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयङ्करम्।।१९।।

विशालाक्षं च बाणं च विरूपाक्षं महाबलम्।
विकटाक्षं भास्कराक्षं रक्ताक्षं विकटोदरम्॥२०॥
संहारभैरवं कालभैरवं च भयङ्करम्। रुरुभैरवमीशाभं महाभैरवमेव च॥२१॥
कृष्णाङ्गभैरवं चैव क्रोधभैरवमुल्बणम्। कपालभैरवं चैव रुद्रभैरवमेव च॥२२॥

द्वार के दक्षिण (दाहिनी) की ओर वृषेन्द्र, वामभाग में सिंह, नन्दीश्वर, महाकाल, भयानक पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयानक कालभैरव, रुरुभैरव, ईशान, महाभैरव, कृष्णांगभैरव, क्रोधभैरव, उल्बण रूप कपाल भैरव, रुद्र भैरव विद्यमान थे॥१९-२२॥

सिद्धेन्द्रादीन्रुद्रगणान्विद्याधरसुगुह्यकान्। भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान्॥२३॥
वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्रांश्च जटाधरान्। यक्षान्किंपुरुषांश्चैव किन्नरांश्च ददर्श ह॥२४॥
तान्दृष्ट्वा नन्दिकेशाज्ञां गृहीत्वा भृगुनन्दनः।
तान्सं भाष्याभ्यन्तरं च जगामाऽऽनन्दसंप्लुतः॥२५॥

तत्पश्चात् सिद्धेन्द्र आदि रुद्रगण, विद्याधर, गुह्यकगण, भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, दानव, योगीन्द्र जो जटाधारी थे, यक्ष, किम्पुरुष, किन्नरों को वहां परशुराम ने देखा। तत्पश्चात् नन्दीश्वर की आज्ञा लेकर भृगुनन्दन उन लोगों से वार्त्ता करने के उपरान्त आनन्दाप्लुत होकर अन्दर गये॥२३-२५॥

रत्नेन्द्रसारखचितं ददर्श शतमन्दिरम्। अमूल्यरत्नकलशैर्ज्वलद्भिश्च विराजितम्॥२६॥
अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्मलदर्पणैः। हीरसारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम्॥२७॥
गोरोचनाभिर्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः। मणिसार विकारैश्च सोपानैः परिशोभितम्॥२८॥

वहां पर भार्गव राम ने अमूल्य रत्नों के सारभाग से जड़े १०० मन्दिरों को देखा जो हीरक के सारभाग से रचित कपाट वाले थे। वहां अमूल्य रत्नों से बने समुज्ज्वल कलश शोभायमान थे। वहां मोती जैसे अमूल्य रत्नयुक्त दर्पण भी सुशोभित थे। वे सब गोरोचन तथा मणियों से युक्त हजारों स्तम्भों वाले थे। वहां जो सोपान बने थे, वे सब मणि के सारभाग से निर्मित थे॥२६-२८॥

ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रैश्च चित्रितम्। माणिक्यमुक्ताग्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम्॥२९॥
ददर्श कार्तिकेयं च वामे दक्षे गणेश्वरम्। वीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम्॥३०॥

उन्होंने अनेक चित्रों से चित्रित तथा मुक्ता से एवं माणिक्य से ग्रथित मायाजाल से सजे अन्तर्द्वारों को देखा। वहां वाम भाग में कार्त्तिकेय को तथा दाहिने भाग में गणेश्वर को, महाकाय एवं शिव के समान पराक्रमी वीरभद्र को भी देखा॥२९-३०॥

प्रधानपार्षदगणान्क्षेत्रपालांश्च नारद। रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥३१॥

तान्संभाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः। पर्शुंहस्तः स परशुरामो गन्तुं समुद्यतः॥३२॥

हे नारद! वहां भार्गव राम ने प्रधान पार्षदों सहित रत्नसिंहासनासीन रत्नभूषणभूषित क्षेत्रपालों को भी देखा। परशुधारी महाबली-पराक्रमी परशुराम उन लोगों से कुछ बात करके आगे जाने हेतु उद्यत हो गये।।३१-३२।।

गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह। निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च॥३३॥

ईश्वराज्ञां गृहीत्वाऽहमत्राऽऽगत्य क्षणान्तरे।
त्वया सार्धं गमिष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम्॥३४॥

उनको अन्दर गमनोद्यत देख कर गणपति ने कहा-"हे तात! कुछ क्षण रुक जायें। अभी महादेव निद्रामग्न हैं। मैं शीघ्र उनकी आज्ञा लेकर आता हूं, तब आप भीतर मेरे साथ जाईयेगा। अभी प्रतीक्षा करिये।।३३-३४।।

गणेशवाक्यं परशुरामः श्रुत्वा महाबलः। बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे॥३५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कैलासवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

महाबली तथा बृहस्पति के समान वक्ता परशुराम ने गणेश का कथन सुन कर उनसे कहा-।।३५।।

एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

गणेश तथा भार्गव का संवाद वर्णन

परशुराम उवाच

यास्याम्यन्तः पुरं भ्रातः प्रणामं कर्तुमीश्वरम्।
प्रणम्य मातरं भक्त्या यास्यामि त्वरितं गृहम्॥१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्वा पृथ्वीं च लीलया।
कार्तवीर्यः सुचन्द्रश्च हतो यस्य प्रसादतः॥२॥

नानाविद्या यतो लब्ध्वा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम्। तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि सांप्रतम्॥३॥

सगुणं निर्गुणं चैव भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यं सत्यस्वरूपं च ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥४॥

स्वेच्छामयं दयासिन्धुं दीनबन्धुं मुनीश्वरम्।
आत्मारामं पूर्णकामं व्यक्ताव्यक्तं परात्परम्॥५॥

परापराणां स्त्रष्टारं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। पुराणं परमात्मानमीशानं त्वादिमव्ययम्॥६॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्यप्रदं वरम्॥७॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम्। भक्ताभयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम्॥८॥

परशुराम कहते हैं–हे भ्राता! मैं अन्तःपुर में ईश्वर को प्रणाम करने जा रहा हूं। तदनन्तर माता पार्वती को भी प्रणाम करके शीघ्र गृह वापस चला जाऊंगा। मैंने उनकी कृपा से पृथिवी को इक्कीस बार राजाओं (क्षत्रियों) से रहित कर दिया। मैंने कार्त्तवीर्य तथा सुचन्द्र का वध कर दिया। मैंने ईश्वर से नाना विद्या तथा दुर्लभ विविध शास्त्रज्ञान प्राप्त किया है। मैं सम्प्रति इन गुरुदेव, जगन्नाथ, सगुण, गुणातीत, भक्तजनों के प्रति अनुग्रह हेतु, देह (विग्रह) धारण करने वाले, स्वेच्छामय, दयासागर, दीनबन्धु, मुनिवर, आप्तकाम, पूर्णकाम, व्यक्त-अव्यक्त, परात्पर, परात्परगण के भी स्त्रष्टा, पुरुहूत, पुरुष्टुत, पुराण, परमात्मा, ईशान, अव्यय, सभी मंगलों का भी मंगल करने वाले, सर्वमंगल कारण, सर्वमंगलदाता, शान्त, सर्वैश्वर्यदाता, श्रेष्ठ, प्रसन्नवदन, शरणागतवत्सल, भक्तों को अभय देने वाले, भक्तवत्सल, समदर्शी, आशुतोष का दर्शन करना चाहता हूं।।१-८।।

इत्थं परशुरामोऽस्थादुक्त्वा गणपतेः पुरः। वाचा मधुरया तत्र समुवाच गणेश्वरः॥९॥

परशुराम यह कहने के अनन्तर गणपति के समक्ष दण्डायमान हो गये। तदनन्तर गणेश ने उनसे मधुर वाणी में कहा–।।९।।

गणेश्वर उवाच

क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ शृणु भ्रातरिदं वचः।
रहःस्थलस्थितो नैव द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान्॥१०॥

स्त्रीसंयुक्तं च पुरुषं यः पश्यति नराधमः। करोति रसभङ्गं वा कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्॥११॥
तत्र तिष्ठति पापीयान्यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विशेषतश्च पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विजम्॥१२॥

रहःसुरतसंसक्तं नहि पश्येद्विचक्षणः।
कामतः कोपतो वाऽपि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम्॥१३॥
स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु।
श्रोणीं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः।
कामतोऽपि विमूढश्च [1]सोऽन्धो भवति निश्चितम्॥१४॥

१. क. षण्डो भ०।

गणेश्वर कहते हैं–हे भाई! क्षणकाल रुक कर मेरा कथन श्रवण करें। स्त्री के साथ निर्जन में स्थित पुरुष को देखना ही नहीं चाहिये। जो नराधम स्त्रीयुक्त पुरुष का अवलोकन करता है अथवा उनका प्रणय भंग करता है, उसे तो निश्चय कालसूत्र नरक में जाना होगा। वहां वह पापी चन्द्रमा तथा सूर्य की स्थिति काल पर्यन्त नरक कष्ट भोगता है। हे विप्र! विशेषतया विद्वान् व्यक्ति निर्जन में रतिकार्यरत पिता, गुरु, राजा को कदापि न देखे। जो व्यक्ति काम-क्रोध के कारण रतिक्रीडारत व्यक्ति को देखेगा, निश्चय उसे ७ जन्मों तक स्त्रीवियोग सहन करना ही होगा। जो कामभाव से परनारी का नितम्बभाग, वक्ष तथा मुख देखता है, वह अवश्य अन्धत्व प्राप्त करेगा।।१०-१४।।

गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः। तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने॥१५॥

हे मुनि नारद! गणेश का कथन सुन कर भृगुनन्दन परशुराम ने हंस कर तदनन्तर क्रोधित भाव से गणपति से यह कठोर वचन कहा–।।१५।।

परशुराम उवाच

अहो श्रुतं किं वचनमपूर्वं नीतिसंयुतम्। इदमेवमहो नैवं श्रुतमीश्वरवक्त्रतः॥१६॥

श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनां च विकारिणाम्।
निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि॥१७॥
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक।
यथादृष्टं करिष्यामि मत्कार्यं समयोचितम्॥१८॥

तवैव तातो माता चेत्येवं नैव निरूपितम्। जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ॥१९॥

पार्वती स्त्री पुमाञ्छंभुरिति कैर्न निरूपितः। सर्वरूपः शङ्करश्च सर्वरूपा च पार्वती॥२०॥

गुणातीतस्य का क्रीडा तद्भङ्गो वा कुतो विभो।
क्रीडा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्यैव न चेशितुः॥२१॥

परशुराम कहते हैं–अहो! आज मैंने जो अपूर्व नीति संयुक्त वचन सुना है, वह मैंने पहले ईश्वर शिव के मुख से भी नहीं सुना था। आपने जो कुछ कहा है, वह सब तो वेदों में कामी एवं विकारग्रस्त के लिये कहा गया है। जो निर्विकार शिशु है, उसे यह सब दोष नहीं लगता। हे भाई! बालक! मैं जो अन्तःपुर में जा रहा हूं, इसमें आपकी क्या हानि? मैं वहां देख कर जैसी स्थिति होगी, तदनुरूप ही कार्य करूंगा। पार्वती तथा परमेश्वर केवल आपके ही माता-पिता नहीं हैं। ये तो जगत् के माता-पिता हैं। पार्वती नारी हैं तथा शिव पुरुष हैं, यह तो कोई निरूपित नहीं करता। शिव सर्वरूप हैं। पार्वती सर्वरूपा हैं। हे विभु गणेश! जो गुणों से परे हैं, उसकी कैसी रतिक्रीड़ा और कैसा उसका रतिभंग? यह रतिक्रीड़ा-लज्जा-भय तथा क्रीड़ा भंग शब्द तो ग्राम्य बुद्धि वालों के लिये हैं। ये ईश्वर के लिये नहीं हैं।।१६-२१।।

स्तनन्धयं च मां दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत्।
लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च सा कुतः॥२२॥
लज्जा लज्जां किमाप्नोतिं तापं किं वा हुताशनः।
शीतं शैत्यमहोभ्रातर्निदाघो दाहमेव च॥२३॥
भीतेर्भीतिमवाप्नोति मृत्योर्मृत्युर्बिभेति किम्।
कुतो ज्वरो ज्वरं हन्ति व्याधिं व्याधिश्च जीर्यति॥२४॥

क्या कहीं स्तन पीने वाले शिशु को देख कर पिता-माता को लज्जा हो सकती है? लज्जा एवं लज्जानाथ को लज्जा कैसी? क्या लज्जा कभी लज्जित होती है? क्या अग्नि को ताप कष्ट दे सकता है? हे भ्राता! क्या शीत को शीत लग सकती है? क्या ग्रीष्म को दाह हो सकता है? क्या मृत्यु स्वयं मृत्यु के भय से भयभीत होती है? क्या ज्वर का ज्वर से नाश संभव है? क्या व्याधि का नाश व्याधि से होना संभव है?॥२२-२४॥

संहर्तारं च संहर्ता कालः कालाद्बिभेति किम्।
स्रष्टारं सृजते स्रष्टा पाता किं पाति ते मते॥२५॥
क्षुत्क्षुधं समवाप्नोति तृष्णा तृष्णां प्रयाति किम्।
निद्रा निद्रां च शोभांश्रीः शान्तिः शान्ति च ते मते॥२६॥
पुष्टिः पुष्टिं किमाप्नोति तुष्टिस्तुष्टिं क्षमा क्षमाम्।
आत्मनः परमात्माऽस्ति शक्तिः शक्त्या बिभेति किम्॥२७॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ स्वात्मनैते न बाधिताः।
दया न बद्धा दयया नेच्छा बद्धेच्छया प्रभो॥२८॥
ज्ञानबुद्ध्योः को विकारो जरां नो बाधते जरा।
चिन्ता न चिन्तया ग्रस्ता चक्षुश्चक्षुर्न पश्यति॥२९॥
हर्षो मुदं किं प्राप्नोति शोकं शोको न बाधते।
का विपत्तिर्विपत्तेश्च संपत्तिः संपदः कुतः॥३०॥

क्या संहारकर्त्ता संहार से डरेगा? क्या काल काल से डरेगा? क्या स्रष्टा स्रष्टासृजन, पालनकर्त्ता पालनकर्त्ता का रक्षण करेगा? क्या क्षुधा को कभी क्षुधा तथा पिपासा को कभी पिपासा प्राप्त होती है? क्या निद्रा को निद्रा, शोभा को शोभा, शान्ति को शान्ति, पुष्टि को पुष्टि, तुष्टि को तुष्टि, क्षमा को क्षमा प्राप्त होती है? क्या आत्मा में आत्मा है? क्या शक्ति से शक्ति को भय लगता है? (अर्थात् स्वयं से स्वयं को कैसे भय लगेगा?) हे प्रभो! क्या काम काम से, क्रोध क्रोध से, लोभ लोभ से, मोह मोह से नहीं बाधित होता। क्या दया दया से, इच्छा इच्छा से बद्ध होती है? ज्ञान से क्या बुद्धि में विकार होता है?

क्या जरा जरा को बाधित कर सकती है? चिन्ता कदापि चिन्ता से ग्रस्त नहीं होती। आंख आंख को (स्वयं को) नहीं देखती। क्या कभी हर्ष को हर्ष हो सकता है? क्या शोक शोक को बाधित कर सकता है? क्या विपत्ति को विपत्ति होती है? क्या सम्पदा को कभी सम्पत्ति हो सकती है?।।२५-३०।।

मेधाया धारणाशक्तिः स्मृतेर्वा स्मरणं कुतः।
न दग्धः स्वप्रतापेन विवस्वानिति संमतः॥३१॥
विपरीतमतो भ्रातस्त्वयैवाऽऽचारितोऽधुना।
न श्रुतोऽयं गुरुमुखान्न दृष्टो न श्रुतौ श्रुतः॥३२॥

मेधा को धारणा शक्ति की तथा स्मृति को स्मरण की क्या आवश्यकता? विवस्वान् सूर्य अपने प्रताप से कभी दग्ध नहीं होता! यही शास्त्र का मत है। हे भाई! तुम तो सब विपरीत आचरण कर रहे हो। जैसा तुमने कहा वह तो न तो कभी गुरु से सुना न तो कहीं देखा!।।३१-३२।।

इत्युक्त्वा चापि परशुरामः शश्वत्प्रहस्य सः। शीघ्रं गन्तुं मनश्चक्रे तद्गृहाभ्यन्तरं मुदा॥३३॥
तच्च रामवचः श्रुत्वा जितक्रोधो गणेश्वरः। शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च प्रहस्य तमुवाच ह॥३४॥

यह कह कर परशुराम ने जोरों से हास्य किया तथा मुदित होकर शीघ्रता से गृह में प्रवेश करना चाहा, तथापि परशुराम का वचन सुन कर क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाले शुद्ध सत्वरूप गणेश ने मुदित मन से हंसते हुए कहा—।।३३-३४।।

गणपतिरुवाच

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानं प्राप्नोति तद्विदः।
पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानं दुर्लभं भाग्यवाँल्लभेत्॥३५॥
श्रुतं ज्ञानं विशिष्टं च ज्ञानिनामपि दुर्लभम्।
किञ्चिन्मे त्वं मन्दबुद्धेः शृणु भ्रातर्निवेदनम्॥३६॥
यो निर्गुणः स निर्लिप्तः शक्तिभिर्नहि संयुतः।
सिसृक्षुराश्रितः शक्त्या निर्गुणः सगुणो भवेत्॥३७॥
यावन्ति च शरीराणि भोगार्हाणि महामुने।
प्राकृतानि च सर्वाणि विना श्रीकृष्णविग्रहम्॥३८॥
ध्यायन्ति योगिनस्तं च शुद्धज्योतिः स्वरूपिणम्।
हस्तपादादिरहितं निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥३९॥

गणपति देव कहते हैं—अज्ञान रूपी तिमिर से आच्छन्न व्यक्ति ज्ञानी से ज्ञान लाभ करते हैं, तथापि कोई भाग्यवान् ही पिता तथा भ्राता से दुर्लभ ज्ञानलाभ कर पाता है, तथापि मैं मंदबुद्धि आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूं। जब सत्व-रजः-तमः गुण से अतीत ईश्वर संसार की सृष्टि वासना से

रहित होते हैं, तब वे शक्ति से विहित रहते हैं, तथापि वे निर्गुण पुरुष जब सृष्टिकार्यादि की अभिलाषा करते हैं, तब वे शक्ति का आश्रय लेकर सगुण हो जाते हैं। हे मुनिप्रवर! समस्त भोगों के लिये देह है। श्रीकृष्ण को छोड़ कर सबकी देह प्रकृति से ही उत्पन्न होती है। योगी लोग शुद्ध ज्योतिरूप हाथ-पैर अंग रहित गुणातीत प्रकृति से भी परे श्रीकृष्ण का ध्यान करते रहते हैं।।३५-३९।।

वैष्णवास्तं नमस्यन्ति भक्तानुग्रहकारकम्।
कुतो बभूव तज्ज्योतिरहो तेजस्विना विना।।४०।।

ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं शरीरं श्यामसुन्दरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम्।।४१।।

अतीवामूल्यसद्रत्नभूषणैश्च विभूषितम्।
ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्तिं पश्यन्ति कृपया विभोः।।४२।।
तदा दास्ये नियुक्तास्ते भवन्त्येवेश्वरेच्छया।
योगस्तपो वा दास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्।।४३।।
यदा सृष्ट्यन्मुखः कृष्णः ससृजे प्रकृतिं मुदा।
तद्योनौ ह्यर्पितं वीर्यं वीर्याड्डिम्भो बभूव ह।।४४।।

उन भक्तों पर अनुग्रहकर्त्ता प्रभु को वैष्णवगण प्रणाम करते हैं। समस्त तेज के आधार के बिना ऐसा (ज्योति) तेज कहां संभव हो सकेगा? उस ज्योतिर्मय की ज्योति के मध्य में द्विभुज मुरलीधारी सहास्यवदन पीताम्बर तथा अमूल्य रत्नालंकार भूषित श्याम कलेवरधारी मूर्त्ति का दर्शन करके वे वैष्णव स्वेच्छा से प्रभु के दासत्व में लग जाते हैं। समस्त योग तथा तप तो श्रीहरि के दासत्व की तुलना में १/१६वां भाग भी नहीं है। जब वे प्रभु सिसृक्षु (सृष्टि की इच्छायुक्त) हो गये, तब उन्होंने प्रकृति का आनन्द पूर्वक सृजन करके उसकी योनि में गर्भ स्थापित किया जो डिम्भ (गर्भ) बना।।४०-४४।।

दिव्येन लक्षवर्षेण गर्भाड्डिम्भो विनिर्गतः। तदा बभूव निःश्वासस्ततो वायुर्बभूव ह।।४५।।
निःश्वासेन समं भ्रातर्मुखबिन्दुर्विनिर्गतः। ततो बभूव सहसा जलराशिर्हरेः पुरः।।४६।।

तज्जले च स्थितो डिम्भो दिव्यवर्षाणि लक्षकम्।
ततो बभूव सहसा विश्वाधारो महाविराट्।।४७।।
यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मनः।
ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम्।।४८।।

तत्रैव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। देवा नराश्च मुनयो विद्यमानाश्चराचराः।।४९।।

दिव्य मान वाला १ लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर इस गर्भ से वह डिम्भ (स्वर्ण अण्ड) बहिर्गत् हो गया। तब कृष्ण ने जो निःश्वास त्याग किया, उसी से वायु निर्मित हो गया। हे भाई! निःश्वास त्याग के समय कृष्ण के मुख से जो विन्दु निर्गत हुआ था, वही श्रीहरि के समक्ष जलराशि हो गया। उस जलराशि में यह स्वर्णमय डिम्भ १ लाख दिव्य वर्ष (मानव का ३६० वर्ष = १ दिव्य वर्ष) तक स्थित

था, जिससे विश्वाधार महाविराट् उत्पन्न हो गये। इन महात्मा महाविराट् के देह में जितने रोम हैं, उतने ब्रह्माण्ड निश्चितरूपेण विद्यमान हैं। प्रत्येक ब्रह्माणु में पृथक्-पृथक् त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) हैं। देवता, मुनि तथा सचराचर सब कुछ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित है।।४५-४९।।

महाविराडाश्रयश्च सर्वस्य च जनस्य च। निःश्वासवायुर्भगवान्बभूव श्रीहरेर्मुने॥५०॥
महाविष्णुश्च कलया ततः क्षुद्रविराडभूत्। तन्नाभिकमले ब्रह्मा शङ्करस्तल्लाटजः॥५१॥

विष्णुस्तदंशः पाता यः श्वेतद्वीपनिवासकृत्।
एवं ते प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥५२॥

ये महाविराट् सर्वलोक के आश्रयरूप हैं। वायु तो श्रीहरि की निःश्वास वायु से उत्पन्न हैं। महाविष्णु भी श्रीहरि के अंश हैं। उनसे ही क्षुद्रविराट् का आविर्भाव कहा गया है। उनके नाभिकमल से ब्रह्मा तथा ललाट से महेश्वर उत्पन्न हैं। श्वेत द्वीपवासी लोकपालनकर्त्ता विष्णु भी उनके ही अंश हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक ब्रह्मा, एक विष्णु तथा एक महेश्वर विराजमान रहते हैं।।५०-५२।।

स्वयं च स्वांशकलया नानामूर्तिधरो हरिः। तदाऽभवच्च सगुणः सर्वशक्तियुतस्तदा॥५३॥

कथं लज्जादिरहितः स च स्वेच्छामयो महान्।
सर्वदा सर्वभोगार्हः सर्वशक्तिसमन्वितः॥५४॥

भगवान् हरि अपनी अंशकला से नाना मूर्त्ति धारण करते हैं। इस प्रकार वे सर्वशक्तियुक्त सगुण हो जाते हैं। ऐसे स्वेच्छामय महान् देव किस प्रकार से लज्जादि रहित हो गये? वे सदा सर्वशक्ति समन्वित हैं, अतः वे सभी भोगों के लिये अर्ह (अधिकारी, योग्य, उपयुक्त) हैं।।५३-५४।।

लज्जा नास्त्येव लज्जायामतोऽयं सर्वसंमतः।
या च लज्जावती देवी तस्या लज्जा कुतो गता॥५५॥
सर्वशक्तिमती दुर्गा प्रकृत्या सा च शैलजा।
तस्या लज्जादयः सन्ति सर्वदा सर्वसंमताः॥५६॥
पञ्चधा प्रकृतिर्या च श्रीकृष्णस्य बभूव ह।
राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती॥५७॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः।
प्राणाधिका प्रिया सा च राधाऽऽस्ते तस्य वक्षसि॥५८॥

लज्जा की लज्जा कहां चली जायेगी? सर्वशक्ति सम्पन्ना देवी दुर्गा स्वभावतः पर्वतनन्दिनी हैं। अतः वे प्राकृत हैं। इस कारण यह सर्वसम्मत है कि उनमें लज्जादि गुण सदा विद्यमान रहते हैं। भगवान् कृष्ण की प्रकृति पंचधा होकर राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा, सरस्वती इन पांच रूपमयी हो गयी। इन पांचों में से कृष्ण के प्राण की अधिष्ठातृ देवी प्राणाधिक प्रिया राधा हैं। वे सदा उनके वक्षःस्थलस्थ रहती हैं।।५५-५८।।

विद्याधिष्ठातृदेवी या सावित्री ब्रह्मणः प्रिया।
लक्ष्मीर्नाराणस्यैव सर्वसंपत्स्वरूपिणीम्॥५९॥
सरस्वती द्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुखनिर्गता।
[1]सावित्री ब्रह्मणः कान्ता स्वयं नारायणस्य च॥६०॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या ज्ञानसूः शक्तिसंयुता।
सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा कुतो गता॥६१॥

जो विद्या की अधिष्ठातृ देवी हैं, वे ब्रह्मा की प्रेयसी सावित्री हैं। जो सर्वसम्पदारूपा हैं, वे नारायण पत्नी लक्ष्मी हैं। देवी सरस्वती द्विधा विभक्ता होकर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निर्गत हो गयीं। वे एक रूप (सावित्री) होकर ब्रह्मा की पत्नी तथा अन्य रूप से नारायण पत्नी सरस्वती हो गईं। जो ज्ञानप्रसविनी शक्तियुता बुद्धि की अधिष्ठातृ देवी हैं, वे ही महादेव की प्रेयसी दुर्गा हैं। उनकी लज्जा कहां जायेगी?॥५९-६१॥

प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च बभूव ह। इमां प्रधानाः कलया बभूवुर्नैकधा यतः॥६२॥
विप्रेन्द्र नित्यं वैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते।
अविनाशि स्थलं शश्वल्लये प्राकृतिके ध्रुवम्॥६३॥

हे भ्राता! गोलोक धाम में प्रकृति इस प्रकार पंचधा हो गईं। वे प्रधाना हैं। वे कला से क्रमशः उत्पन्न हैं। युगपत रूप से एक साथ उत्पन्न नहीं हैं। हे विप्रेन्द्र! वैकुण्ठधाम ब्रह्माण्ड से पूर्णतः अतिरिक्त तथा नित्य है। वह शाश्वत स्थल है। अविनाशी है। वह महाप्रलय में भी विद्यमान रहता है। यह निश्चित है॥६२-६३॥

तत्र नारायणो देवः कृष्णार्धांशश्चतुर्भुजः।
वनमाली पीतवासाः शक्त्या वै पद्मया सह॥६४॥
स्वयं कृष्णश्च गोलोके द्विभुजः श्यामसुन्दरः।
सस्मितो मतुरलीहस्तो राधावक्षः स्थलस्थितः॥६५॥
शश्वद्गोगोपगोपीभिः संयुक्तो गोपरूपधृत्। परिपूर्णतमः श्रीमान्निर्गुणः प्रकृतेः परः॥६६॥
स्वेच्छामयः स्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधृत्।
सुराः कमलोद्भवा यस्य षोडशांशो महाविराट्॥६७॥
यतो भवन्ति विश्वानि स्थूलसूक्ष्मादिकानि च। पुनस्तत्र प्रलीयन्त एवमेव मुहुर्मुहुः॥६८॥

वैकुण्ठ में श्रीकृष्ण के अर्द्धांश विष्णु चतुर्भुज, वनमाली, पीतवस्त्रधारी देव नारायण की शक्ति लक्ष्मी के साथ रहते हैं। द्विभुज मुरलीधर, सहास्यमुख श्यामसुन्दर कृष्ण स्वयं गोलोकधाम में राधा के

१. क. भारती व्र०।

वक्षःस्थल पर विराजित हैं। वे गौ, गोप तथा गोपियों से निरन्तर घिरे रहते हैं। वे प्रभु स्वयं गोपवेशधारी, परिपूर्णतम, श्रीमान्, गुणातीत, प्रकृति से अतीत, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र, परमानन्दरूप हैं। देवगण उनके अंश से ही उत्पन्न हैं। महाविराट् तो उनका सोलहवां (१/१६) अंश मात्र है। उनसे ही स्थूल-सूक्ष्मादि विश्व उद्भूत होकर उनमें ही लीन हो जाते हैं। यही पुनः-पुनः घटित होता है।।६४-६८।।

गोलोक ऊर्ध्वं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनः।नास्ति लोकस्तदूर्ध्वं च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः।।६९।।
इदं श्रुतं शंभुवक्त्रान्मया ते कथितं द्विज। क्षणं तिष्ठाधुना भ्रातरीश्वरः सुरतोन्मुखः।।७०।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशपरशुरामसंवादो नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।

गोलोकधाम वैकुण्ठ से ५० करोड़ योजन ऊर्ध्वस्थ है। उसके ऊर्ध्व में कोई लोक है ही नहीं। हे द्विज! मैंने महादेव से जो कुछ सुना था, वह आपसे कह दिया। अब क्षणकाल बैठे रहिये। महादेव इस समय (रतिकार्य) सुरत कार्य की ओर उन्मुख हैं।।६९-७०।।

।।द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम-गणेश युद्ध, युद्ध में गणेश का एक दांत भग्न होना

नारायण उवाच

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा वेगतः सुधीः। पर्शुहस्तः स वै रामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः।।१।।
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय यत्नतः। वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः।।२।।
रामस्तं प्रेरयामास हुं कृत्वा तु पुनः पुनः। बभूव च ततस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षजैः।।३।।
पर्शुनिःक्षेपणं कर्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा। हाहा कृत्वा कार्तिकेयो बोधयामास संसदि।।४।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–तब कुठारधारी पण्डित परशुराम गणेश का कथन सुन कर निर्भय रथारूढ़ होने लगे। गणेश ने यह देख कर यत्नतः उठ कर परम प्रेम के साथ पुनः-पुनः परशुराम को मना किया। परन्तु परशुराम बारम्बार हुंकार करके गणेश की बात की अवहेलना कर रहे थे। इससे वहां वाग्युद्ध तथा जोर आजमाया जाने लगा। तभी भार्गव राम ने गणेश पर परशु प्रहार करना चाहा। यह देख कर सभा के लोग हाहाकार करने लगे। तब वहां कार्त्तिकेय ने परशुराम को उस स्थान पर समझाना चाहा।।१-४।।

अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपत्रे कथं क्षिपेः। गुरुवद्गुरुपुत्रं च मा भवान्हन्तुमर्हति॥५॥
पर्शुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम्। गणेशो रोधयामास निवर्तस्वेत्युवाच तम्॥६॥

कार्त्तिकेय कहते हैं–हे भाई! तुम गुरुपुत्र पर इस कभी व्यर्थ न जाने वाले कुठार का प्रहार क्यों करने को उद्यत हो? गुरुवत् गुरुपुत्र पर संहार करना तुम्हारे योग्य कार्य नहीं है। तब परशुप्रहारार्थ समुद्यत भार्गव राम को क्रोधित तथा रक्तवर्ण कमल वर्ण के हो गये उनके नेत्रों को देख कर गणेश ने उनको रोकते हुए कहा–"आप वापस चले जाईये"॥५-६॥

पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपतः। पपात पुरतो [1]वेगान्मानहीनो गजाननः॥७॥

राम ने पुनः क्रोध में भर कर गणेश को लड़ने हेतु ललकार दिया। तब स्वयं को इस तरह अपमानित करते देख कर गणपति अत्यन्त तीव्रता पूर्वक राम के समक्ष आये॥७॥

गजाननः समुत्थाय धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्।
पुनस्तं बोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः॥८॥

निवर्तस्व निवर्तस्वेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञां विना प्रभो॥९॥
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासंबन्धतो ध्रुवम्। ईश्वरप्रियशिष्यश्च सोढं वै तेन हेतुना॥१०॥

नह्यहं कार्तवीर्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः।
[2]अतो विप्र न जानासि मां च विश्वेरात्मजम्॥११॥
क्षणं तिष्ठ निवर्तस्व समये ब्राह्मणातिथे।
क्षणान्तरे त्वया सार्धं यास्यामीश्वरसंनिधिम्॥१२॥

अब क्रोधित गणेश ने खड़े होकर धर्म को साक्षी बना कर कहा–"हे प्रभो! शान्त हो जायें। ईश्वर की अनुमति के बिना आपकी क्या शक्ति है, जो अन्दर प्रवेश कर सकें?" यह कह कर गणेश बारम्बार परशुराम को प्रबोधित करने लगे। गणेश कहते हैं–आप अतिथि हैं। विद्याध्यायन वाले सम्बन्धानुसार मेरे भाई हैं। आप शिव के प्रिय शिष्य हैं। इसी कारण मैंने सब सहन किया है। मैं कार्त्तवीर्य नहीं हूं। मैं वह क्षुत्प्राण राजाओं की तरह भी नहीं हूं। हे विप्र! मैं विश्वेश्वर का पुत्र हूं, जिसे आप लोग नहीं जानते। हे ब्राह्मण अतिथि! कुछ क्षण विश्राम करिये। युद्धकार्य त्याग दीजिये। कुछ क्षणों पश्चात् मैं आपके साथ ईश्वर शिव के यहां चलूंगा॥८-१२॥

नारायण उवाच

हेरम्बवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनः पुनः। पर्शुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य हरिशङ्करौ॥१३॥

पर्शुं क्षिपन्तं कोपेन तं च रामं गजाननः।
दृष्ट्वा मुमूर्षुं देवेशो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्॥१४॥

---

१. क. ०गाच्छन्नमानो।
२. क. अये।

[1]योगेन वर्धयामास शुण्डां तां कोटियोजनाम्।
योगीन्द्रस्तत्र संतिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनः पुनः॥१५॥
शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्र वै। ऊर्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुडो यथा॥१६॥
सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च मेरुं चाखिलसागरान्। क्षणेन दर्शयामास रामं योगपराहतम्॥१७॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हेरम्ब (गणपति) का कथन सुन कर परशुराम बारम्बार हंसने लगे। तदनन्तर उन्होंने मन ही मन हरि एवं शिव को प्रणाम करके अपने परशु का प्रहार क्रोध पूर्वक गणेश पर करने का निश्चय किया। जब गजानन ने देखा कि परशुराम उनके वधार्थ परशु प्रहार करने पर उद्यत हैं, उसी समय गणेश धर्म को साक्षी करके योग द्वारा अपनी सूंड़ को एक करोड़ योजन लम्बी करके उसे घूर्णित करते हुए उससे परशुराम को सैकड़ों बार लपेट कर घुमाने लगे। जैसे छोटे सर्प को गरुड़ उठा कर ऊर्ध्व में घुमाता है, तदनुरूप गणेश ने परशुराम को ऊपर उठा कर योगबल से स्तंभित कर दिया तथा सातों द्वीप, सातों पर्वत, मेरु पर्वत, समस्त सागरों के ऊपर घुमा दिया।।१३-१७।।

हस्तपादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम्। पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः॥१८॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च सुरेश्वरः।
जनोलोकं तपोलोकं दर्शयामास लीलया॥१९॥
पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम्।
सत्यलोकं ब्रह्मलोकं ध्रुवलोकं च तत्परम्॥२०॥
गौरीलोकं शंभुलोकं दर्शयामास नारद।
दर्शयित्वा तु विध्यण्डं स पपौ सप्तसागरान्॥२१॥
पुनरुद्गिरणं चक्रे सनक्रमकरोदकम्। तत्र तं पातयामास गम्भीरे सागरोदके॥२२॥

लोगों के दर्प का नाश करने वाले गणेश ने बलदर्पित परशुराम के अंगों को कम्पित कर दिया। उनके हाथ-पैर को अवश करके जड़ीभूत परशुराम को अपनी सूंड़ से गणेश पुनः घुमाने लगे। हे नारद! देवप्रवर गणपति ने उनको क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक तक घुमा दिया। इस प्रकार गणेश ने परशुराम को ब्रह्माण्ड से ऊर्ध्व श्रेष्ठ सत्यलोक, ब्रह्मलोक, ध्रुवलोक तथा गौरी लोक एवं शिवलोक तक सूंड़ से घूर्णित करते ले जाकर दिखलाया। इसी तरह गणेश ने ब्रह्माण्ड दर्शन कराया तथा सप्तसागर को समस्त (जल) पान कर लिया। तदनन्तर जलचर जीवों सहित सातों सागर को पुनः उलट कर उस परम गहरे सागर जल में परशुराम को पटक दिया।।१८-२२।।

मुमूर्षुं तं संतरन्तं पुनर्जग्राह लीलया। पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमप्यमुम्॥२३॥
वैकुण्ठं दर्शयामास सलक्ष्मीकं जनार्दनम्॥२४॥

---

१. क. कोपेन।

वहां सतरण (तैरते हुए) मरणासन्न स्थिति वाले परशुराम को अपनी सूंड़ से पकड़ कर घुमाते हुए समस्त ब्रह्माण्ड से भी ऊर्ध्व में वैकुण्ठलोक ले जाकर वहां परशुराम को लक्ष्मी एवं चतुर्भुज नारायण का दर्शन कराया।।२३-२४।।

क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया। पुनः करं च योगेन वर्धयामास लीलया।।२५।।
गोलोकं दर्शयामास विरजां च नदीश्वरीम्। वृन्दावनं शृङ्गशतं शैलेन्द्रं रासमण्डलम्।।२६।।
गोपीगोपादिभिः सार्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम्।।२७।।
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। तेजसा कोटिसूर्याभं राधावक्षःस्थलस्थितम्।।२८।।

योगीन्द्र गणेश ने योगमाया द्वारा परशुराम को क्षणमात्र घुमा कर अपनी सूंड़ को और बढ़ाया तथा उनको लपेट कर विरजा नदी युक्त गोलोक तक ले गये। वहां परशुराम को विरजा नदी, वृन्दावन, शतशृंग पर्वत, रासमण्डल, गोप-गोपी के साथ द्विभुज मुरलीधारी सहास्यमुख मनोहर रत्नमय सिंहासन पर राधिका के वक्ष पर स्थित कोटिसूर्य समप्रभ तेजस्वी श्यामसुन्दर कृष्ण का दर्शन कराया।।२५-२८।।

एवं कृष्णं दर्शयित्वा प्रणमय्य पुनः पुनः। क्षणेन लम्बमानं च भ्रामयित्वा पुनः पुनः।।२९।।
दृष्ट्वा कृष्णं चेष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम्। भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह।।३०।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण का दर्शन करा कर तथा बारम्बार परशुराम द्वारा उनको प्रणाम करवाया। तदनन्तर उन्होंने पुनः सूंड़ को बढ़ा कर परशुराम को उससे घूर्णित करते बारम्बार इष्टदेव प्रभु श्रीकृष्ण का दर्शन कराया, जिससे उन भार्गव राम के भ्रूणहत्यादि समस्त पातक दूर करा दिया। प्रभु श्रीकृष्ण तो सर्व पातक नाशक हैं।।२९-३०।।

न भवेद्यातना नष्टा विना भोगेन पापजा।
स्वल्पां च बुभुजे रामो गताऽन्या कृष्णदर्शनात्।।३१।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य भुवि वेगात्पपात ह। बभूव दूरीभूतं च गणेशस्तम्भनं भृगोः।।३२।।
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम्। अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शंभुं जगद्गुरुम्।।३३।।

पाप कदापि यातना भोगे बिना नष्ट नहीं होता। गणेश ने उनको कष्ट देकर कुछ यातना भोग समाप्त कराया था। शेष पातक कृष्णदर्शन से नष्ट हो गये। तदनन्तर क्षणमात्र के चेतना प्राप्त परशुराम को वेग से भूमि पर आकर गणेश ने गिरा दिया। इससे गणेश द्वारा परशुराम पर किया गया स्तम्भन दूर हो गया। तभी परशुराम ने गुरु शिव प्रदत्त अमोघ दुर्लभ कवच तथा स्तोत्र का और गुरु शिव एवं इष्टदेव कृष्ण का स्मरण किया।।३१-३३।।

चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यं च तेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने।।३४।।

हे मुनि नारद! तत्पश्चात् भार्गव राम ने अपना अमोघ शिवतुल्य दीप्त तेज वाला कुठार का

प्रहार गणेश के विरुद्ध किया जो परशु ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य से भी शतगुणित तेजयुक्त था।।३४।।

पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्। जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह।।३५।।
निपात्य पर्शुर्वेगेन च्छित्वा दन्तं समूलकम्। जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च।।३६।।

गणपति ने उस अपने पिता प्रदत्त अस्त्र को अपनी ओर आते देख कर पिता के सम्मानार्थ अपने बायें दांत पर उसका प्रहार झेल लिया और उसे व्यर्थ नहीं होने दिया। वह कुठार गणेश के बायें दांत को पूर्णतः नष्ट करके महादेव के बल द्वारा पुनः परशुराम के हाथों में आ गया।।३५-३६।।

हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया। वीरभद्रः[1] कार्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः।।३७।।
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दयंस्तदा। पपात गैरिकायुक्तो यथा स्फटिकपर्वतः।।३८।।

शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया।
कैलास्तथा जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया।।३९।।

उस समय आकाश में देवता, वीरभद्रादि शिवगण, कार्त्तिकेय, क्षेत्रपाल आदि पार्षद यह देख कर हाहाकार करने लगे। हे नारद! उस समय रक्तलिप्त वह गणेश जी का दांत जो गेरुआ वर्ण का रक्त के लगे होने के कारण प्रतीत हो रहा था तथा गेरु युक्त स्फटिक पर्वतवत् लग रहा था, महाघोर शब्द के साथ भूपतित हो गया। हे ब्राह्मणप्रवर! उस घोर शब्द से धरती कम्पित हो उठी। कैलासवासी लोग भय से मूर्च्छित हो गये।।३७-३९।।

निद्रा बभञ्ज तत्काले निद्रेशस्य जगत्प्रभो।
आजगाम बहिः शंभुः पार्वत्या सह संभ्रमात्।।४०।।

पुरो ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतेन तम्। भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने।।४१।।

यह शब्द सुन कर निद्राधीश जगत्स्वामी शिव की निद्रा भंग हो गई। वे हठात् पार्वती के साथ कक्ष से बाहर निकल कर सामने देखते हैं कि दांत भंग हो जाने के कारण रक्तलिप्त चेहरे के साथ क्रोध रहित गणेश लज्जा से मुस्कराते हुए अवनत मुख होकर वहां खड़े हैं।।४०-४१।।

पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक।
स च तां कथयामास वार्तां पौर्वापरीं भिया।।४२।।

चुकोप दुर्गा कृपया रुरोद च मुहुर्मुहुः। उवाच शंभोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि।।४३।।

संबोध्य शंभुं शोकेन भिया विनयपूर्वकम्।
उवाच प्रणता साध्वी प्रणतार्तिहरं पतिम्।।४४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशदन्तभङ्गकारणवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

१. क. ०द्रश्च नन्दिश्च।

पार्वती ने यह देख कर स्कन्द से पूछा–"हे पुत्र! क्या हो गया?" तब वहां कार्त्तिकेय स्कन्द ने समस्त पूर्वापर वृत्तान्त माता से कह दिया। यह सुन कर दुर्गा (पार्वती) पुनः-पुनः रुदन करने लगीं। उन्होंने गणेश को वक्ष से लगा कर शोक एवं विनय के साथ प्रणतजन की आर्त्ति का हरण करने वाले अपने पति से कहा–।।४२-४४।।

।।त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वती द्वारा परशुराम की भर्त्सना किया जाना, विष्णु द्वारा परशुराम को उपदेश तथा गणेश स्तोत्र का वर्णन

पार्वत्युवाच

सर्वे जानन्ति जगति दुर्गां शङ्करकिङ्करीम्। अपेक्षारहिता दासी तस्या वै जीवनं वृथा।।१।।
ईश्वरस्य समाः सर्वास्तृणपर्वतजातयः। दासीपुत्रस्य शिष्यस्य दोषः कस्येति च प्रभो।।२।।
विचारं कर्तुमुचितं त्वं च धर्मविदां वरः।
वीरभद्रः कार्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः।।३।।
साक्ष्ये मिथ्यां को वदेद्वा द्वावेषां भ्रातरौ समौ। साक्ष्ये समे शत्रुमित्रे सतां धर्मनिरूपिणे।।४।।
साक्षी सभायां यत्साक्ष्यं जानन्नप्यन्यथा वदेत्।
कामतः क्रोधतो वाऽपि लोभेन च भयेन च।।५।।
स याति कुम्भीपाकं च निपात्य शतपूरुषम्। तैश्च सार्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।६।।

पार्वती कहती हैं–हे प्रभो! जगत् में सभी दुर्गा को आप शिव की दासी मानते हैं तथा जिस दासी की स्वामी को आवश्यकता ही न हो, उसका जीवन तो व्यर्थ है। तृण से पर्वत तक सभी ईश्वर के समक्ष समान हैं, यह दासीपुत्र है, यह शिष्य है, इनमें से यहां किसका दोष है, यह आपके द्वारा विचारणीय है। आप तो धर्मज्ञों में अग्रगण्य जो हैं। इस घटना के साक्षी वीरभद्र, कार्त्तिकेय तथा आपके पार्षद हैं। इस साक्ष्य को कौन मिथ्या कहेगा? इन साक्षी लोगों के लिये गणेश एवं परशुराम दोनों भाई जैसे ही हैं। जब साक्ष्य देने की बात आती है, तब साक्ष्य देने वाले साक्षी (गवाह) के लिये शत्रु-मित्र सामने होते हैं। यह साधुगण ने शास्त्र में कहा है। जो साक्षी समस्त घटना को यथार्थतः जान कर भी इच्छा से, क्रोध से अथवा किसी लालच में आकर अन्य प्रकार का (झूठा, बनावटी) साक्ष्य देता है,

वह अपनी १०० पीढ़ी को नरकगामी करके कुम्भीपाक नरकगामी होता है तथा जब तक चन्द्र सूर्य की सृष्टि में स्थिति है, तब तक वहां दुःख भोगता रहता है।।१-६।।

अहं विबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि।
तथाऽपि तव साक्षात्तु ममाऽऽज्ञा निन्दिता श्रुतौ।।७।।
किङ्कराणां प्रभा कुत्र नृपे वसति संसदि। उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथा प्रभो।।८।।
सुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाम्बुजम्। परित्यागभयेनैव संततं भीतया मया।।९।।

मैं तो इन दोनों के दोष-गुण को जानती हूं तथा इनका निर्णय कर सकती हूं, तथापि आपके सामने मेरा कोई आदेश देना शास्त्र में निन्दित कार्य कहा जायेगा। राजा की सभा में राजा के समक्ष सेवकों का तेज उसी प्रकार का होता है, जैसे सूर्य के समक्ष खद्योत का (जुगनू का)! मैंने दीर्घकालीन तप द्वारा आपके चरणकमल को प्राप्त किया है। मुझे सदैव यह भय रहता है कि मेरे किसी दोष से आप मेरा त्याग न कर दें!।।७-९।।

यत्किंचित्कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहेन तत्परम्।
तत्क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दारुणात्।।१०।।
त्वया यदि परित्यक्ता तदा पुत्रेण तेन किम्।
साध्व्या सद्वंशजायाश्च शतपुत्राधिकः पतिः।।११।।
असद्वंशप्रसूता या दुःशीला ज्ञानवर्जिता।
स्वामिनं मन्यते नासौ पित्रोर्दोषेण कुत्सिता।।१२।।

हे जगन्नाथ! मैंने दारुण पुत्रमोहवशात् क्रोध किंवा शोक के कारण जो कुछ भी अनुचित कहा हो, कृपा पूर्वक आप क्षमा करिये। यदि आपने ही मेरा त्याग कर दिया, तब मैं इन पुत्र को लेकर क्या करूंगी? सद्कुल में उत्पन्न पतिव्रता स्त्री हेतु पति ही १०० पुत्रों से भी बढ़ कर होता है। निन्दित कुल में उत्पन्न दुःखभावा ज्ञानशून्या स्त्री ही माता-पिता के दोष के कारण पति का सम्मान नहीं करती।।१०-१२।।

कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्।
कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम्।।१३।।
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः। पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हति षोडशीम्।।१४।।
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च।
तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।१५।।
पुत्रो वाऽपि पिता वाऽपि बान्धवोऽथ सहोदरः।
योषितां कुलजातानां न कश्चित्स्वामिनः समः।।१६।।

जो सत्कुलोत्पन्न नारी है, वह कुरूप, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी तथा जड़ पति को भी सदैव विष्णुतुल्य ही मानती है। तभी अग्निदेव एवं समस्त तेजस्वीगण में प्रधान सूर्यदेव का तेज भी पतिव्रता के तेज की तुलना में सोलहवां भाग (१/१६) भी नहीं है। महादान, पुण्यव्रत, उपवास, तप ये पति सेवा के पुण्य का सोलहवां भाग भी नहीं है। सत्कुलोत्पन्न नारी के लिये पुत्र-पिता-बन्धु सहोदर कोई भी पतितुल्य नहीं है।।१३-१६।।

इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम्।
शंभोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाच ह।।१७।।

स्वामी से यह कह कर अपने सम्मुख महादेव की चरण सेवा कर रहे निर्भय परशुराम को देख कर देवी ने उनसे कहा-।।१७।।

पार्वत्युवाच

अये राम महाभाग ब्रह्मवंश्योऽसि पण्डितः।
पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्य योगिनां गुरोः।।१८।।
माता ते रेणुका साध्वी पद्मांशा सत्कुलोद्भवा।
मातामहो वैष्णवश्च मातुलश्च ततोऽधिकः।।१९।।
त्वं च रेणुकभूपस्य मनुवंशोद्भवस्य च। दौहित्रो मातुलः साधुः शूरो विष्णुपदाश्रयः।।२०।।

देवी पार्वती कहती हैं-हे महाभाग परशुराम! तुम ब्राह्मण वंश में उत्पन्न, पण्डित, जमदग्निनन्दन, योगी गुरु महादेव के प्रधान शिष्य हो। तुम्हारी माता सत्कुल उत्पन्न लक्ष्मी की अंशरूपा रेणुका थीं। वे परम पतिव्रता कही गयी हैं। तुम्हारे मातामह परम वैष्णव हैं। मामा तो और भी प्रधान वैष्णव हैं। तुम मनुवंशोत्पन्न रेणुक राजा की कन्या रेणुका के पुत्र हो। तुम्हारे मामा साधु, वीर तथा सतत् विष्णु चरणाश्रय में रहते हैं।।१८-२०।।

कस्य दोषेण दुर्धर्षस्त्वं न जानेऽप्यशुद्धधीः। येषां दोषैर्जनो दुष्टस्तमृते शुद्धमानसः।।२१।।
अमोघं प्राप्य पर्शुं च गुरोश्च करुणानिधेः।
परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा बभूवास्य सुते पुनः।।२२।।
गुरवे दक्षिणादानमुचितं च श्रुतौ श्रुतम्।
भग्नो दन्तस्तत्सुतस्य च्छिन्धि मस्तकमप्यहो।।२३।।

पता नहीं तुम किसके दोष से ऐसे दुर्दम एवं उद्धत हो गये? जिस दोष द्वारा मनुष्य दुष्ट प्रवृत्ति होता है, वैसा तुम्हारे साथ नहीं है, क्योंकि तुम्हारे कुल वाले तो सभी विशुद्ध हैं। तुम केवल करुणामय गुरु महादेव से अमोघ अव्यर्थ गुण वाला परशु पाकर इतने गर्वित हो गये कि उसके बल की परीक्षा क्षत्रियों का संहार करने के पश्चात् अब अपने गुरु के पुत्र पर तुमने कर लिया? गुरु को दक्षिणा देने की

बात तो शास्त्र में वर्णित है, परन्तु गुरुपुत्र का दांत भग्न करने वाली गुरुदक्षिणा तुमने आज दिया है? तुम्हारे लिये तो यह उचित है कि अब गुरुपुत्र का मस्तक ही काटो।।२१-२३।।

गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेदावयोः पुरः।
स त्वं लब्ध्वाऽऽशिषो लोके पूजितोऽभूर्जगत्त्रये॥२४॥

तुम जो गणेश को पराजित करके हमारे सामने बैठे हो, इससे तुम यह मत समझना कि तुम हमारा आशीर्वाद पाकर त्रैलोक्यपूज्य हो गये।।२४।।

पर्शुनाऽमोघवीर्येण शङ्करस्य वरेण च। हन्तुं शक्तःसृगालश्च सिंहं शार्दूलमाखुभुक्॥२५॥

त्वद्विधं लक्षकोटिं च हन्तुं शक्तो गणेश्वरः।
जितेन्द्रियाणां प्रवरो नहि हन्ति च मक्षिकाम्॥२६॥
तेजसा कृष्णतुल्योऽयं कृष्णांशश्च गणेश्वरः।
देवाश्चान्ये कृष्णकलाः पूजाऽस्य पुरतस्ततः॥२७॥

इस अमोघ शक्ति वाला परशु अस्त्र से तथा महादेव द्वारा प्राप्त वर के प्रभाव से शृगाल भी सिंह को, बिड़ाल बाघ को मार सकता है। गणेश तो तुम्हारे समान लाखों-करोड़ों परशुराम का नाश कर सकते हैं, तथापि ये जितेन्द्रियों में अग्रगण्य हैं। ऐसे लोग तो एक मक्खी का भी वध नहीं करते। ये गणपति तेज में कृष्ण के समान तथा उनके अंश हैं। अन्य देवता कृष्ण के अंश न होकर उनकी कला हैं। तभी गणेश अग्रपूज्य हैं।।२५-२७।।

व्रतप्रभावतः प्राप्तः शङ्करस्य वरेण च। शोकेनातिकठोरेण नहि संपद्विनाऽऽपदम्॥२८॥

मैंने अपने व्रत के प्रभाव से, शंकर के वर प्रभाव से तथा अत्यन्त कठोर शोक से गणेश को प्राप्त किया है। क्योंकि बिना आपदा झेले सम्पदा नहीं मिलती।।२८।।

इत्युक्त्वा पार्वती रोषार्त रामं शप्तुमुद्यता।
रामः सस्मार तं कृष्णं प्रणम्य मनसा गुरुम्॥२९॥

यह कह कर रोषार्त्त दुर्गा परशुराम को शाप देने के लिये उद्यत हो गईं। इसे देख कर परशुराम ने मन ही मन गुरु को प्रणाम किया तथा कृष्ण स्मरण किया।।२९।।

एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा ददर्श पुरतो द्विजम्। अतीव वामनं बालं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥३०॥

शुक्लदन्तं शुक्लंवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम्।
दण्डिनं छत्रिणं चैव सुप्रभं तिलकोज्ज्वलम्॥३१॥

दधतं तुलसीमालां सम्मितं सुमनोहरम्। रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम्॥३२॥
रत्ननूपुरपादं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम्॥३३॥
स्थिरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरेण च। दक्षिणेऽभयमुद्रां च भक्तेशं भक्तवत्सलम्॥३४॥

बालिकाबालकगणैर्नगरैः सस्मितैर्युतम्। कैलासवासिभिः सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा॥३५॥

तं दृष्ट्वा संभ्रमाच्छंभुः सभृत्यः सहपुत्रकः।
मूर्ध्ना भक्त्या प्रणामच्च दुर्गा च दण्डवद्भुवि॥३६॥

तभी दुर्गा ने अपने समक्ष सूर्यकोटिसमप्रभ एक अत्यन्त वामन द्विज बालक को देखा। उसके चरण में नूपुर बंधे थे, मस्तक पर रत्नमुकुट था, दोनों गालों पर रत्नमय कुण्डलद्वय विराजित थे। भक्तवत्सल भक्तप्रभु भक्त परशुराम के प्रति उन्होंने बायें हाथ से स्थिर मुद्रा तथा दाहिने हाथ से अभयमुद्रा प्रदर्शित किया। मुस्कराते हुए नगरस्थ बालक-बालिका उस वामन बालक को चतुर्दिक् घेरे हुए थे। समस्त कैलास निवासी उस बालक को आनंदित होकर देख रहे थे। उस बालक को देख कर शिव ने सहसा अपने भृत्य-पुत्रों एवं दुर्गा के साथ शिर नत करके तथा पृथिवी पर दण्डवत् होकर उनको प्रणाम किया॥३०-३६॥

आशिषं प्रददौ बालः सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदाम्।
तं दृष्ट्वा बालकाः सर्वे महाश्चर्यं ययुर्भिया॥३७॥

उस बालक ने सभी को वांछित प्राप्त होने का आशीर्वाद प्रदान भी किया। तदनन्तर यह देख कर नगर के जो बालक वहां आये थे, वे सभी महान् आश्चर्य में पड़ कर अपने-अपने स्थान पर भयभीत होकर चले गये॥३७॥

दत्त्वा तस्मै शिवो भक्त्या तूपचारांस्तु षोडश।
पूजां चकार श्रुत्युक्तां परिपूर्णतमस्य च॥३८॥
तुष्टाव काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकंधरः।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम्॥३९॥
रत्नसिंहासनस्थं च प्रावोचच्छङ्करः स्वयम्।
अतीव तेजसाऽत्यन्तं प्रच्छन्नाकृतिमेव च॥४०॥

शिव ने उस बालक को भक्ति के साथ षोडशोपचार प्रदान करके श्रुति के अनुसार उस बालक की पूजा किया जो परिपूर्णतम प्रभु थे। उन शिव के सभी अंग उस समय पुलकित हो उठे तथा उन्होंने नतशिर होकर काण्वशाखोक्त स्तोत्र से सनातन भगवान् की स्तुति किया। तदनन्तर शिव उन रत्नसिंहासनस्थ तथा स्वतेज से समस्त आकाश को आच्छन्न करने वाले बालक का स्तव करने लगे॥३८-४०॥

शङ्कर उवाच

आत्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीव विडम्बनम्।
ते शश्वत्कुशलाधाराः कुशलाः [1]कुशलप्रदाः॥४१॥

---
१. क. ०शलात्मिकाः।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन्कृष्णसेवाफलोदयात्॥४२॥

श्री शंकर कहते हैं–जो आत्माराम हैं, उनसे प्रश्न करना एक विढम्बना मात्र है। ये निरन्तर कुशलाधार, कुशलस्वरूप तथा कुशलप्रदायक हैं। हे ब्राह्मण! आज मेरा जन्म सफल है। जीवन सार्थक हो गया। इसका कारण यह है कि भगवान् कृष्ण की सेवा का फलोदय होने के कारण आप मुझे अतिथिरूपेण प्राप्त हो सके हैं।।४१-४२।।

परिपूर्णतमः कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे। पुण्यक्षेत्रे हि कलया भारते च कृपानिधिः॥४३॥

अतिथिः पूजितो येन पूजिताः सर्वदेवताः।
अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरः स्वयम्॥४४॥

स्नानेन सर्वतीर्थेषु सर्वदानेन यत्फलम्। सर्वव्रतोपवासेन सर्वयज्ञेषु दीक्षया॥४५॥
सर्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभिः। तदेवातिथिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम्॥४६॥

आप परिपूर्णतम कृष्ण हैं। लोक निस्तारार्थ आप इस पुण्यक्षेत्र भारत में अपने अंश से अवतीर्ण हो जाते हैं। जिन व्यक्ति द्वारा अतिथि पूजित हो जाता है, सभी देवता उनके द्वारा पूजित हो जाते हैं। सभी तीर्थों में स्नान-दान का, सभी व्रतोपवास का तथा सभी यज्ञों की दीक्षा का, सभी तरह के नित्य-नैमित्तिक तपःश्चरण का जो फल है, वह सब अतिथि सेवा की तुलना में सोलहवां भाग (१/१६) भी नहीं है।।४३-४६।।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात्।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्॥४७॥

स्त्रीगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः। पितृमातृगुरूणां च निन्दको नरघातकः॥४८॥

संध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः।
ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः॥४९॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत्। शवदाही ग्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः॥५०॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः। कन्याविक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी॥५१॥

[1]लाक्षामांसतिलानां च लवणस्य तिलस्य च।
विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा॥५२॥

एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते। एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः॥५३॥

जिसके गृह से अतिथि निराश होकर क्रोध पूर्वक निकल जाता है, उस गृहस्थ का करोड़ों जन्म का पुण्य निश्चित रूप से क्षयीभूत हो जाता है। जो ब्राह्मण स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, ब्रह्मघात, गुरुपत्नीगामी, पिता-माता की निन्दा करना, मनुष्यहत्या, संन्ध्याहीनता, आत्महत्या, सत्यनाश, हरिनिन्दा,

१. क. ०क्षालोहरसानां च।

ब्राह्मण का धन हरण, मिथ्या साक्ष्य देना, मित्रद्रोह, बैल पर बोझ लादने वाला, भोजन पकाने वाला भंडारी, शवदाह करने वाला, घूम-घूम कर ग्रामों में यज्ञ कराने वाला, शूद्रा का पति ब्राह्मण, शूद्र के श्राद्ध में भोजन करने वाला, शूद्रों के श्राद्ध में जो भोजन करता है, कन्या विक्रय करने वाला, हरिनाम विक्रेता, लाख-मांस-तिल-लवण, अश्व तथा गौ विक्रेता ब्राह्मण, भारत में एकादशी व्रत रहित तथा भगवान् कृष्ण की सेवा से रहित ब्राह्मण, ये सभी त्रैलोक्य में महापातकी एवं अति निन्दित कहे गये हैं।।४७-५३।।

कालसूत्रे च नरके पतन्ति ब्रह्मणां शतम्।
एतेभ्योऽप्यधमः सोऽपि यश्चातिथिपराङ्मुखः।।५४।।

ऐसे लोग कालसूत्र नरक में सौ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त फलभोग करते हैं। इनसे भी बढ़ कर पातकी वह है, जो अतिथि को विमुख कर देता है।।५४।।

नारायण उवाच

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा संतुष्टः श्रीहरिः स्वयम्।
मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच जगत्पतिः।।५५।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–शंकर का कथन सुन कर श्रीहरि सन्तुष्ट हो गये। उन जगत्पति ने अपनी मेघगंभीर वाणी में उनसे कहा–।।५५।।

विष्णुरुवाच

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलं च वः।
अस्य रामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्य सांप्रतम्।।५६।।
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
रक्षामि तांश्चक्रहस्तो गुरुमन्यं विना शिव।।५७।।

श्रीविष्णु कहते हैं–हे महादेव! मैं आप सबका यह कोलाहल सुन कर कृष्णभक्त परशुराम की रक्षा करने हेतु यहां श्वेतद्वीप से आया हूं। कृष्णभक्त का कदापि अमंगल नहीं होता। मैं हाथ के सुदर्शन चक्र द्वारा उनकी रक्षा करता रहता हूं। केवल जो स्वयं को गुरु मानता है, उस गुरुद्रोही की रक्षा नहीं करता।।५६-५७।।

नाहं पाता गुरौ रुष्टे बलवद्गुरुहेलनम्। तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरोश्च यः।।५८।।
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत्।
अहो यस्य प्रसादेन सर्वान्पश्यति मानवः।।५९।।
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
ततो विस्तारकरणात्कलया स प्रजापतिः।।६०।।

तथापि गुरु जिस पर रुष्ट हो जाते हैं, उसकी रक्षा कर सकने में मैं भी असमर्थ हूं। जो गुरुसेवा रहित है, उससे बढ़ कर कोई भी पातकी नहीं है। जिस जन्मदाता की कृपा से मनुष्य जगत् दर्शन करता है, वह पिता सर्वापेक्षा सबका पूज्य तथा माननीय है। वह जन्मदान देने के कारण जनक है। रक्षक होने के कारण वही पिता है। वंश विस्तारक होने के कारण वह प्रजापति का अंश है।।५८-६०।।

पितुः शतगुणं माता पोषणाद्गर्भधारणात्।
वन्द्या पूज्या च मान्या च [1]प्रसूः स्याद्वै वसुंधरा।।६१।।
मातुः शतगुणं वन्द्यः पूज्यो मान्योऽन्नदायकः।
यद्विना नश्वरो देहो विष्णुश्च कलयाऽन्नदः।।६२।।
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः। गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायकः।।६३।।
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा। यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परो नैव बान्धवः।।६४।।

इन जन्मदाता पिता की अपेक्षा जननी गर्भधारण तथा प्रतिपालन करने के कारण सौ गुना वन्दनीया है, वह अत्यन्त माननीया तथा पूज्यनीया है। वह माता तो वसुन्धरा रूप है। माता की तुलना में अन्नदाता सौ गुना पूज्य, मान्य तथा वन्दनीय है। वह तो साक्षात् विष्णु का कलांश रूप है। क्योंकि अन्न के अभाव में देह नश्वर (नष्ट) हो जाता है। अन्नदाता से सौ गुना पूज्य इष्टदेवता हैं। उनकी तुलना में सौ गुना अधिक गुरु है, क्योंकि गुरु ही विद्या तथा मन्त्र देता है। गुरु ज्ञानचक्षु रूप दीपालोक द्वारा अज्ञान तमः से आच्छन्न नेत्रों के सभी वस्तु (तत्वों) का दर्शन कराता है। गुरु से श्रेष्ठ कोई बन्धु ही नहीं है।।६१-६४।।

गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत्। सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परो नैव बान्धवः।।६५।।
सर्वं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया।
तस्मात्पूज्यो हि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः।।६६।।

जिस गुरु प्रदत्त मन्त्र के प्रकाश में व्यक्ति तप द्वारा वांछित सुख लाभ करता है, वह इसी मन्त्र के प्रभाव से सर्वज्ञत्व तथा सभी प्रकार की सिद्धिलाभ करता है, उस गुरु से बढ़ कर बन्धु कौन हो सकता है? लोग गुरु प्रदत्त मन्त्र के प्रभाव से (गुरुप्रदत्त विद्या के प्रभाव से) सब पर जयलाभ करते हैं, तब जगत् में गुरु से बढ़ कर कौन बन्धु हो सकता है?।।६५-६६।।

विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न भजेद्गुरुम्।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैः स लिप्तो नात्र संशयः।।६७।।
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्याऽऽचरेद्गुरुम्।
तीर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु।।६८।।

---

१. क. प्रसूरूपा व०।

पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरु परम्।
यो न पुष्णाति कापट्यात्स महापातकी शिव॥६९॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुर्भास्कररूपकः॥७०॥
गुरुश्चन्द्रस्तथेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनलः। सर्वरूपो हि भगवान्परमात्मा स्वयं गुरुः॥७१॥

जो विद्यान्ध, धनान्ध मूढ़ मनुष्य गुरु का भजन नहीं करता, उसे निःसंशय रूप से ब्रह्महत्यादि पातक लगता है। यदि गुरु दरिद्र, पतित अथवा क्षुद्र-सा क्यों न हो, उसके प्रति भी मनुष्य बुद्धि जैसा (मनुष्य मान कर) आचरण करता है, वह तीर्थ में स्नान करके भी कर्म का अधिकारी नहीं माना जाता। हे महादेव! जो मनुष्य सक्षम होकर भी कपट पूर्वक पिता, माता, पत्नी गुरु तथा पत्नी के गुरु का पोषण नहीं करता, वह महापातकी कहा गया है। गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हैं। गुरु तो सूर्य स्वरूप हैं। गुरु ही इन्द्र-चन्द्र-वायु-वरुण तथा अग्निस्वरूप हैं। वह स्वयं सर्वरूप परमात्मा भगवान् भी हैं।।६७-७१।।

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नहि कृष्णात्परः सुरः।
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीदलात्॥७२॥
नास्ति क्षमावती भूमेः पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः।
न च दैवात्परा शक्तिर्नैकादश्याः परं व्रतम्॥७३॥

वेद से बढ़ कर कोई शास्त्र नहीं है। कृष्ण से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। गंगा से बढ़ कर तीर्थ नहीं है। तुलसीदल से श्रेष्ठ कोई पुष्प नहीं है। पृथिवी से श्रेष्ठ कोई क्षमावान् नहीं है। पुत्र से अधिक कोई भी प्रिय नहीं होता। एकादशी से बढ़ कर कोई व्रत नहीं है। दैव से बढ़ कर कोई शक्ति नहीं है। (दैव = अदृष्ट, भवितव्यता)।।७२-७३।।

शालग्रामात्परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम्।
परं पुण्यस्थलानां च पुष्यं वृन्दावनं यथा॥७४॥
मोक्षदानां यथा काशी वैष्णवानां यथा शिवः।
न पार्वत्याः परा साध्वी न गणेशात्परो वशी॥७५॥

शालग्राम से बढ़ कर कोई यन्त्र नहीं है। भारत से बढ़ कर कोई क्षेत्र नहीं है। वृन्दावन से बढ़ कर पवित्र पुण्यस्थल कोई नहीं है। मोक्षप्रदा काशी से बढ़ कर कोई नहीं है। शिव से श्रेष्ठ कोई वैष्णव नहीं है। पार्वती से श्रेष्ठ कोई साध्वी नहीं है। गणेश से श्रेष्ठ इन्द्रियों को वश में करने वाला कोई नहीं है।।७४-७५।।

न च विद्यासमो बन्धुर्नास्ति कश्चिद्गुरोः परः।
विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समौ नात्र संशयः॥७६॥
गुरुस्त्रियां च पुत्रे चाप्यभवद्रामहेलनम्। परं संमार्जनं कर्तुमागतोऽहं तवाऽऽलयम्॥७७॥

विद्या के समान कोई मित्र नहीं है। गुरु से बढ़ कर कोई भी है ही नहीं। विद्यादाता का पुत्र तथा विद्यादाता की पत्नी भी उन्हीं के समान होती है। परशुराम ने गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्र की अवहेलना किया है। मैं उसके इस घोर पाप का क्षालन (नाश) करने आपके यहां आया हूं।।७६-७७।।

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा शंभुं च दुर्गां संबोध्य नारद। उवाच भगवांस्तत्र सत्यसारं परं वचः।।७८।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—हे नारद! भगवान् ने यह कह कर दुर्गा एवं शंभु को सम्बोधित करके सत्य एवं साररूप परम उत्तम वचन कहा—।।७८।।

विष्णुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं वचनं शुभम्। नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम्।।७९।।

श्री विष्णु कहते हैं—हे देवी! मैं आपसे हितप्रद, नीतिगर्भ युक्त वेदसार तथा परिणाम में सुख कर तथ्य कहता हूं। आप मेरे मंगलमय श्रेष्ठ कथन का श्रवण करें।।७९।।

यथा ते गजवक्त्रश्च कार्तिकेयश्च पार्वति। तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः।।८०।।
नास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शङ्करस्य च। विचार्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम्।।८१।।
पुत्रेण सार्धं पुत्रस्य विवादो दैवदोषतः। दैवं हन्तुं को हि शक्तो दैवं न बलवत्तरम्।।८२।।
पुत्राभिधानं वेदेषु[1] पश्य वत्से वरानने। एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्।।८३।।
पुत्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि। शृणुष्वावहितं मातः[2] सर्वविघ्नहरं परम्।।८४।।

जिस प्रकार गजानन तथा कार्त्तिकेय आपके पुत्र हैं, भृगुपुत्र परशुराम भी उसी प्रकार पुत्र स्वरूप हैं। इनके प्रति आपके तथा महादेव के स्नेह में कोई तारतम्य नहीं है। अर्थात् प्रेम में कोई भेद नहीं है। हे माता! सर्वज्ञे! तब इस सम्बन्ध में यथोचित विचार करके कार्य करो। एक पुत्र का दूसरे पुत्र के साथ विवाद दैवदोष से हुआ है। दैव का निवारण कौन कर सकता है? दैव सर्वापेक्षा बली तथा श्रेष्ठ है। हे वत्से! वरानने! वेद में अपने पुत्र के सम्बन्ध में देखना। उसका नाम वेद में एकदन्त कहा गया है। वह सर्वदेव नमस्कृत है। हे ईश्वरी! हे माता! आप सामवेद में कहा गया सर्वविघ्नाशक स्तोत्र सुनें, जो आपके पुत्र के आठ नामों से युक्त है। उसे सावधानी से सुनिये।।८०-८४।।

विष्णुरुवाच

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्।।८५।।
अष्टाख्यार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये। स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम्।।८६।।
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्।।८७।।

१. क. देवेषु।
२. क. मत्तः।

एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥८८॥

दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः।
पालकं दीनलोकानां हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥८९॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः।
विपत्खण्डनकारं तं प्रणमे विघ्ननायकम्॥९०॥

विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बं पुरोदरम्। पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥९१॥

शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारकौ। संपद्दौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥९२॥

गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननाशक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजानन, गुहाग्रज, ये आठ नाम हैं। हे हरप्रिया! इनका अर्थ श्रवण करो। यह स्तोत्रों का सार तथा सर्वविघ्ननाशक है। विष्णु कहते हैं–"ग" का अर्थ है ज्ञान। "ण" का अर्थ है मुक्ति। इन दोनों को प्रदान कर सकता है तथा परब्रह्मरूप है, उन **गणेश** को मैं प्रणाम करता हूं! "हे" शब्द का अर्थ है दीन। जो दीनजनप्रतिपालक **हेरम्ब** हैं, उनको प्रणाम! "विघ्न" का अर्थ है विपत्ति "नाशक" का अर्थ है खण्डन। अतः उन **विघ्ननाशक** को प्रणाम! एक का अर्थ है प्रधान। दन्त का अर्थ है बल। अतः सर्वप्रधान बली **एकदन्त** को प्रणाम! पिता प्रदत्त तथा विष्णुप्रदत्त नैवेद्य भक्षण से जिनका उदर लम्बमान हो गया उन **लम्बोदर** को प्रणाम! जिनके कर्ण शूप के आकार के हैं तथा ये विघ्न को दूर करने के कारण हैं। जो ज्ञानरूपी सम्पदा देते हैं, उन **शूर्पकर्ण** को प्रणाम!॥८५-९२॥

विष्णुप्रसादं मुनिना दत्तं यन्मूर्ध्नि पुष्पकम्।
तद्गजेन्द्रमुखं कान्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥९३॥

मुनिप्रदत्तं (दुर्वासा प्रदत्त) विष्णु का प्रसादरूपी पुष्प (इन्द्र ने) जिसके मस्तक पर था (गणेश के शिर पर जो पुष्प रखा गया वह एक हाथी का शिर था, जिस पर इन्द्र ने वह पुष्प रखा था। फलतः वह पुष्प धारण करने के प्रभाव से वह शिर गणेश को लगाया गया) ऐसे गजेन्द्र मुखयुक्त **गजानन** को प्रणाम करता हूं!॥९३॥

गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये। वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥९४॥

ये प्रभु शिव के यहां स्कन्द के जन्म के पूर्व जन्मे थे। अतः समस्त देवपूजित गुह के बड़े भाई की वन्दना करता हूं। अतः इनका नाम **गुहाग्रज** है।॥९४॥

एतन्नामाष्टकं दुर्गे नानाशक्तियुतं परम्। एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं [1]नानार्थसहितं शुभम्॥९५॥

त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी।
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद्यथोरगाः॥९६॥

---

१. क. नामार्थस०।

हे दुर्गे! यह नामाष्टक नाना शक्तियुक्त है। यह अनेक अर्थ से युक्त शुभ स्तोत्र हैं। जो तीनों सन्ध्या में यह पढ़ता है, वह सर्वत्र सुखी हो जाता है। उसे देख कर सभी विघ्न इस तरह पलायित हो जाते हैं, जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भाग जाते हैं।।९५-९६।।

गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद्ध्रुवम्। पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी कुशलां स्त्रियम्।।९७।।

महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद्ध्रुवम्।
पुत्र त्वं पश्य वेदे च तथा कोपं च नो कुरु।।९८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशस्तोत्रकथनं नाम चतुश्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

वह व्यक्ति गणेश्वर की कृपा से निश्चित रूप से महाज्ञानी हो जाता है। पुत्रार्थी पुत्रलाभ करता है, भार्यार्थी स्त्री लाभ करता है। जो महान् जड़ बुद्धि कवीन्द्र हो जाता है, वह विद्यावान् भी हो जाता है। हे पुत्र! वेद में देखो, क्लेश न करो।।९७-९८।।

।।चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम कृत दुर्गा स्तोत्र का वर्णन

नारायण उवाच

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णु राममुवाच ह। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्।।१।।

श्री नारायण मुनि कहते हैं—जब विष्णु ने पार्वती को प्रबोधित किया, तब उन्होंने परिणाम में सुखकर्म नीति गर्भित वाक्यों को परशुराम से कहा–।।१।।

विष्णुरुवाच

राम त्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्मते। कोपात्कृत्वा दन्तभङ्गं गणेशस्य स्थिते[1] शिवे।।२।।

स्तोत्रेणैव मयोक्तेन स्तुत्वा गणपतिं परम्।
काण्वशाखोक्तविधिना स्तुहि दुर्गां जगत्प्रसूम्।।३।।
श्रीकृष्णस्य परा शक्तिर्बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः।
अस्यां च तव रुष्टायां हता बुद्धिर्भविष्यति।।४।।

१. ख. स्थितोऽशि०।

श्री विष्णु कहते हैं–हे परशुराम! तुमने क्रोध के कारण गणेश का दांत भग्न करके एक अपराध सत्यतः किया है। शिव के स्थित रहते ऐसा घोर कार्य किया है। अतः काण्वशाखा के अनुसार जगज्जननी दुर्गा की स्तुति करो तथा मेरे कहे स्तोत्र से गणेश स्तुति भी करो। ये जगत्प्रसु श्रीकृष्ण की बुद्धिरूपा प्रधाना शक्ति हैं। यदि दुर्गा तुम्हारे प्रति क्रोधित हो जाती हैं, तब तुम बुद्धिशून्य हो जाओगे।।२-४।।

सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत्। अनया शक्तिमान्कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः।।५।।
सृष्टिं कर्तुं न शक्तश्च ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना। वयमस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।६।।
सुरसङ्घेऽसुरग्रस्ते काले घोरतरे द्विज। तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा[1] सती।।७।।

ये देवी सर्वशक्ति स्वरूपा हैं। इनसे ही जगत् शक्तियुक्त होता है। गुणातीत प्रकृति से पृथक् श्रीकृष्ण भी इनके ही द्वारा शक्तिसम्पन्न होते हैं। ब्रह्मा भी इन शक्तिरूपिणी की सहायता के बिना सृष्टिकार्य करने में असमर्थ हैं। इन शक्ति से ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर आदि हम सभी उत्पन्न हैं। हे विप्र! पूर्वकाल में भीषण युद्ध के समय देवता जब असुरों द्वारा आक्रान्त हो गये, तब सती इन देवगण के तेज से आविर्भूत होकर श्रीकृष्ण के आदेशक्रमेण उन्होंने असुरगण का वध किया था।।५-७।।

कृष्णाज्ञयाऽसुरान्हत्वा दत्त्वा तेभ्यः पदं ततः।
दक्षपत्न्यां जनिं लेभे दक्षस्य तपसा पुरा।।८।।
भार्या भूत्वा शङ्करस्य पुनः पत्युश्च निन्दया।
देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनिं लेभे पुरा सती।।९।।
शङ्करस्तपसा लब्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।
लब्धो गणपतिः पुत्रः कृष्णांशः कृष्णसेवया।।१०।।

कृष्ण की आज्ञा से उन देवी ने देवगण को उनका पद प्रदान कर दिया। देवी ने कृष्ण की आज्ञा से दक्ष के तपोबल से उनकी पत्नी से जन्म ग्रहण किया था। उस समय ये देवी महादेव की पत्नी हो गईं, परन्तु पुनः पतिनिन्दा सुन कर देहत्याग कर दिया। तब उन्होंने हिमालय पर्वत की पत्नी के गर्भ से जन्मलाभ किया। इन्होंने तपःश्चरण करके योगीगण के गुरु के गुरु महादेव को पतिरूपेण पाया तथा श्रीकृष्ण की आराधना करके कृष्ण के अंश से उत्पन्न गणपति को पुत्ररूपेण प्राप्त किया था।।८-१०।।

यं ध्यायस्येव नित्यं किं तं न जानासि बालक।
स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन गिरिजासुतः।।११।।
कृताञ्जलिर्नतो भूत्वा स्तुहि दुर्गां शिवप्रियाम्।
शिवां शिवप्रदां शैवां शिवबीजां शिवेश्वरीम्।।१२।।

---

१. क. सनातनी।

शिवायाः स्तोत्रराजेन पुरा शूलिकृतेन वै। त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च॥१३॥

हे बालक! परशुराम! तुम जिनका नित्य ध्यान करते हो, क्या उनको नहीं जानते। वे भगवान् कृष्ण ही पार्वतीपुत्र गणेश के रूप में आविर्भूत हैं। हे वत्स! तुम प्रणत होकर तथा हाथ जोड़ कर मंगलमयी, मंगलप्रदा, मंगलोद्भूता, मंगलकारण, मंगलमयी, शिवप्रिया दुर्गा को स्तव द्वारा प्रसन्न करो। पूर्वकाल में त्रिपुरवध काल में महादेव ने ब्रह्मा द्वारा प्रेरित होकर जिस शिवास्तोत्र की रचना किया था, उसी स्तोत्र से दुर्गा की स्तुति करो॥११-१३॥

इत्युक्त्वा श्रीपदं शीघ्रं जगाम श्रीनिकेतनम्।
गते हरौ हरिं स्मृत्वा रामस्तां स्तोतुमुद्यतः॥१४॥
स्तोत्रेण विष्णुदत्तेन सर्वविघ्नहरेण च। धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे।
गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौते च वाससी॥१६॥
आचम्य नत्वा मूर्ध्ना तां भक्तिनम्रात्मकंधरः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गचानन्दाश्रुसमन्वितः॥१७॥

यह कहने के अनन्तर नारायण लक्ष्मी के गृह में शीघ्र चले गये। उस समय परशुराम ने शुद्ध गंगाजल से स्नान किया। उन्होंने श्वेत वस्त्र पहन कर तथा हाथ जोड़ कर भक्तवत्सल गुरु को प्रणाम किया। तदनन्तर आचमन करके भक्ति पूर्वक मस्तक नत करके देवी को प्रणाम किया। उस समय परशुराम के अंग पुलकित रोमांचित हो रहे थे। उस समय उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ रहे थे। वे विष्णुप्रदत्त सर्वविघ्नहर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के कारण उस स्तोत्र से देवी की स्तुति करने लगे॥१४-१७॥

परशुराम उवाच

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च।
आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च॥१८॥
सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालङ्कारभूषिता।
वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा॥१९॥
नवयौवनसंपन्ना [1]सिन्दूरारुण्यशोभिता। ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम्॥२०॥

परशुराम कहते हैं—हे दुर्गे! पूर्वकाल में गोलोकधाम में परिपूर्णतम श्रीकृष्ण जब सृष्टिकार्य में उन्मुख हो गये थे, तब आपका आविर्भाव उनके शरीर से आप आविर्भूत हो गयी थीं। आप वस्त्रालंकार विभूषिता कोटिसूर्यसमप्रभ प्रभायुता होकर तथा अग्नि समुज्ज्वल वस्त्र पहन कर मुस्कराती हुई सुशोभना लग रही थीं। आप नवयौवना तथा सिन्दूरविन्दुयुक्त ललाट से शोभायमान थीं। आपके केशपाश मालतीमाला से सज्जित थे॥१८-२०॥

१. क. ०न्दूरबिन्दुशो०।

अहोऽनिर्वचनीया त्वं चारुमूर्तिं च बिभ्रती।
मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महाविष्णुर्विधिः स्वयम्॥२१॥
मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम्।
[१]बालैः संभूय सहसा सस्मिता धाविता[२] पुरा॥२२॥
सद्भिः ख्याता तेन राधा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
कृष्णस्तां सहसां[३] भीतो वीर्याधानं चकार ह॥२३॥

अहो! हे देवी! आप अनिर्वचनीया तथा चारुमूर्त्तिधारी हैं। आप मुमुक्षुगण हेतु मोक्षप्रदा हैं। क्षणमात्र आपको देखते ही महाविष्णु तथा ब्रह्मा आपके सर्वमोहन रूप पर मोहित हो गये थे। तभी आप बालकवत् होकर सहसा बालकगण के साध धावित होने लगीं। तभी सज्जनगण ने आपको मूलप्रकृति राधा कहा। तभी कृष्ण ने सहसा भयभीत होकर आपमें वीर्य स्थापित किया।।२१-२३।।

ततो डिम्भं महज्जज्ञे ततो जातो महान्विराट्।
यस्यैव लोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥२४॥

इससे मूलप्रकृति से एक स्वर्ण डिम्भ उत्पन्न हो गया। उससे महाविराट् उत्पन्न हो गये। उन महाविराट् के प्रत्येक रोमकूपों में समस्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं।।२४।।

राधारतिक्रमेणैव तन्निःश्वासो बभूव ह।
स निःश्वासो महावायुः स विराड्विश्वधारकः॥२५॥
भयधर्मजलेनैव पुप्लुवे विश्वगोलकम्। स विराड्विश्वनिलयो जलराशिर्बभूव ह॥२६॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्च मूर्तीश्च बिभ्रती। प्राणाधिष्ठातृमूर्तिर्या कृष्णस्य परमात्मनः॥२७॥
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः। वेदाधिष्ठातृमूर्तिर्या वेदशास्त्रप्रसूरपि॥२८॥

राधा के साथ रमण काल में कृष्ण का जो निःश्वास उत्पन्न हुआ, वह महावायु तथा विश्वाधार विराट् हो गया। रमण काल में उनके देह से जो पसीना निकला था, वह गोलोक धाम को प्लावित कर रहा है। वही जलराशि विश्वाधार हो गई। तदनन्तर आप पंचधा विभक्त होकर पंचमूर्त्ति हो गईं। तदनन्तर जो मूर्त्ति परमात्मा कृष्ण की प्राणाधिष्ठातृ देवी हैं, पुराविद् विद्वान् उनको कृष्ण के प्राणों से भी अधिक राधा कहते हैं। वेदशास्त्र प्रसविनी जो मूर्त्ति वेदाधिष्ठातृ हैं, पण्डितगण उनको अति पवित्र सावित्री कहते हैं। वे वेदशास्त्र को उत्पन्न करती हैं।।२५-२८।।

तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः।
ऐश्वर्याधिष्ठातृमूर्तिः शान्तिस्त्वं शान्तरूपिणी॥२९॥

१. रासे सं०।
२. क. राधिता।
३. क. ०साऽज्ञाय भी०।

लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम्।
रागाधिष्ठातृदेवी या शुक्लमूर्तिः सतां प्रसूः॥३०॥
सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञाः शास्त्रज्ञां प्रवदन्त्य हो।
बुद्धिर्विद्या सर्वशक्तेर्या मूर्तिरधिदेवता॥३१॥
सर्वमङ्गलदा सन्तो वदन्ति सर्वमङ्गलाम्। सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी॥३२॥

पुराविद् ब्राह्मण कहते हैं कि कृष्ण को प्राणों से अधिक राधा प्रिय हैं। जो वेदशास्त्र की उत्पत्ति करने वाली वेदाधिष्ठातृ मूर्त्ति हैं, उनको मनीषीगण शुद्धरूपा सावित्री कहते हैं। शान्तिस्वरूपा शान्तिमयी जो मूर्त्ति ऐश्वर्य की अधिष्ठातृ हैं, पण्डितगण उन शुद्धसत्वस्वरूपा मूर्त्ति को लक्ष्मी कहते हैं। साधुगण को जन्म देने वाली शुक्लवर्णा शास्त्रों की अधिष्ठातृ देवी को शास्त्रज्ञ सरस्वती कहते हैं। जो मूर्त्ति बुद्धि, विद्या तथा सर्वशक्ति की अधिष्ठातृ देवी हैं, साधुगण उन सर्वमंगलदायिनी मूर्त्ति को सर्वमंगला कहते हैं। आप सभी मंगलों का भी मंगल करने वाली तथा सर्वमंगलस्वरूपा हैं।।२९-३२।।

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य निलयेऽधुना। शिवास्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके॥३३॥
सरस्वती च सावित्री वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया। राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च॥३४॥
परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी। त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः॥३५॥
त्वं विद्या योषितः सर्वाः सर्वेषां बीजरूपिणी।
छाया सूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी॥३६॥

आप इस समय मंगल को भी मंगल देने वाली सर्वमंगला मूर्त्ति इस समय सर्वमंगलकारण शिव भवन में रहती हैं। हे माता! आप शिव के पास शिवा, नारायण के यहां लक्ष्मी हैं। आप ही ब्रह्मा के यहां सरस्वती तथा वेदमाता सावित्री हैं। आप परमानंदमय रासेश्वर परिपूर्णतम कृष्ण के यहां राधा रूप से विराजित रहती हैं। आपके अशेष अंश से ही देवांगनाओं की उत्पत्ति होती है। समस्त स्त्रियां आपके ही अंश से उत्पन्न हैं। आप सबकी बीजरूपा हैं। आप ही विद्या हैं। आप ही सूर्यपत्नी छाया हैं, आप ही चन्द्र की भार्या रोहिणी हैं, जो सर्वमोहिनी हैं।।३३-३६।।

शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी।
वरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्री प्राणवल्लभा॥३७॥

आप इन्द्र की शची, काम की कामिनी रति, जलपति वरुण की नारी वरुणानी हैं। आप ही वायु की पत्नी प्राणवल्लभा हैं।।३७।।

वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी।
यमस्य तु सुशीला च नैर्ऋतस्य च कैटभी॥३८॥
ऐशानी स्याच्छशिकला शतरूपा मनोः प्रिया।
देवहूतिः कर्दमस्य वसिष्ठस्याप्यरुन्धती॥३९॥

लोपामुद्राऽप्यगस्त्यस्य देवमाताऽदितिस्तथा।
अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारा वसुंधरा॥४०॥
गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां या सरिद्वरा।
एताः सर्वाश्च या ह्यन्या सर्वास्त्वत्कलयाऽम्बिके॥४१॥
गृहलक्ष्मीर्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु।
तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च॥४२॥

आप अग्नि की पत्नी स्वाहा, कुबेरपत्नी सुन्दरी, यमपत्नी सुशीला, निर्ऋत् की पत्नी कैटभी, ईशान की पत्नी शशिकला, मनु की प्रिया शतरूपा, कर्दम पत्नी देवहूति, वसिष्ठ की अरुन्धती, देवताओं की माता अदिति, अगत्स्य की भार्या लोपामुद्रा, गौतमपत्नी अहल्या, सर्वाधारा वसुन्धरा, गंगा, तुलसी तथा पृथिवी की सभी नदियां आप ही हैं। ये सभी नदियां तथा अन्य नदियां आपकी कला से उत्पन्न हैं। आप ही मनुष्यों के गृह में गृहलक्ष्मी, तपस्वियों की तपस्या तथा ब्राह्मणगण की गायत्री हैं।।३८-४२।।

सतां [१]सत्त्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा।
ज्योतीरूपा निर्गुणस्य शक्तिस्त्वं सगुणस्य च॥४३॥
सूर्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने।
जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे॥४४॥
त्वं भूमौ गन्धरूपा चाप्याकाशे शब्दरूपिणी।
क्षुत्पिपासादयस्त्वं च जीविनां सर्वशक्तयः॥४५॥
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी।
स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वा ज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम्॥४६॥

आप साधुगण में सत्वस्वरूपा, असाधुओं में कलहबीज तथा गुणातीतों में ज्योतिरूपा हैं। आप सगुण ईश्वर की शक्ति हैं। आप ही सूर्य की प्रभा, अग्नि की दाहिका शक्ति, जल की शीतलता तथा चन्द्र की शोभा हैं। आप भूमि में गन्धरूपा, आकाश में शब्दरूपा तथा जीवों में क्षुधा-पिपासा प्रभृति और सभी प्रकार की शक्ति हैं। आप सबकी बीज (कारण) हैं। आप ही संसार में एकमात्र सार हैं। आप पण्डितों की स्मृति, मेधा, बुद्धि तथा ज्ञानशक्ति हैं।।४३-४६।।

कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा।
शूलिने कृपया सा त्वं यया मृत्युञ्जयः शिवः॥४७॥
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते॥४८॥
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तो धाता प्रकम्पितः।
स्तुत्वा मुक्तश्च यां देवीं तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम्॥४९॥

१. क. सत्यस्व.।

मधुकैटभयोर्युद्धे त्राताऽसौ विष्णुरीश्वरीम्।
बभूव शक्तिमान्स्तुत्वा तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्॥५०॥
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे। यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्॥५१॥
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शंभुः समुत्थितः।
जघान त्रिपुरं स्तुत्वा तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्॥५२॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपा परवश होकर शूलपाणि शिव को जो सर्वज्ञानप्रदा कल्याणकारी विद्या प्रदान किया था तथा महादेव ने जो विद्या पाकर मृत्युंजयत्व लाभ किया था, वह विद्या आप ही हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर में क्रमशः जो सृष्टिशक्ति, पालन शक्ति तथा संहार शक्ति है, वह आप ही हैं। विधाता ब्रह्मा ने मधुकैटभ के भय से भीत एवं कंपित होकर जिन देवी का स्तवन किया था तथा जिनकी कृपा से भय रहित हो गये, उन आप दुर्गा को मैं नतशिर होकर प्रणाम कर रहा हूं। त्रिपुर के साथ महायुद्ध में जब रथ सहित शिव भूपतित हो गये थे। उस समय देवगण ने जिन दुर्गा का स्तव किया, उनको मैं प्रणाम करता हूं! उस समय विष्णु ने वृषरूपी होकर स्वयं शिव को उठाया। तब शंभु ने जिनका स्तव करके त्रिपुरवध किया, उन दुर्गा को मेरा नमस्कार!।।४७-५२।।

यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति संततम्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्॥५३॥
यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद्भ्रमति वेगतः। मृत्युश्चरति जन्तूनां तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्॥५४॥
स्त्रष्टा सृजति सृष्टिं च पाता पाति यदाज्ञया। संहर्ता संहरेत्काले तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्॥५५॥
ज्योतिःस्वरूपो भगवाञ्छ्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम्।
यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि ताम्॥५६॥

जिनकी आज्ञा से निरन्तर वायु प्रवाहित है तथा सूर्य तपते रहते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि दहन करते हैं, उन दुर्गा को प्रणाम करता हूं! जिनकी आज्ञा से काल सतत् वेग से भ्रमण करता रहता है, मृत्यु प्राणीगण में सतत् विचरण करती रहती है, उन दुर्गा को प्रणाम करता हूं! जिनकी आज्ञा से स्त्रष्टा सृष्टि का सृजन करते हैं, पालनहार पालन करते हैं, संहर्त्ता संहार करते हैं, उन दुर्गा को प्रणाम करता हूं! भगवान् श्रीकृष्ण ज्योतिस्वरूप निर्गुण प्रभु जिनके बिना सृष्टि कर ही नहीं सकते, उन भगवती को मैं प्रणाम करता हूं!।।५३-५६।।

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे। शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति॥५७॥

हे जगन्माता! मेरा अपराध क्षमा करिये। मेरी रक्षा करिये। शिशु के अपराध करने पर माता कदापि कुपित नहीं होती!।।५७।।

इत्युक्त्वा परशुरामश्च नत्वा तां च रुरोद च। तुष्टा दुर्गा संभ्रमेण चाभयं च वरं ददौ॥५८॥
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज। सर्वप्रसादात्सर्वत्र जयोऽस्तु तव संततम्॥५९॥

सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टः स्यात्संततं हरिः।
भक्तिर्भवतु ते कृष्णे शिवदे च शिवे गुरौ॥६०॥

यह कह कर परशुराम ने देवी को प्रणाम किया तथा रोदन करने लगे। उस समय दुर्गा ने प्रसन्न होकर उनको अभय तथा वर प्रदान किया। भगवती ने कहा–"हे पुत्र! तुम सुस्थिर हो जाओ। तुम अमर हो जाओ। सहोदर भ्राताओं की कृपा से तुम्हारी जय सर्वत्र तथा सदा हो। सर्वान्तर्यामी श्रीहरि सदा तुम्हारे प्रति प्रसन्न रहेंगे। प्रभु श्रीकृष्ण तथा गुरु महादेव के प्रति तुम्हारी भक्ति बनी रहे।।५८-६०।।

इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती। तं हन्तुं न हि शक्ता वा रुष्टा वा सर्वदेवताः॥६१॥

श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्यो वै शङ्करस्य च।
गुरुपत्नीं स्तौषि यस्मात्कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः॥६२॥

जिसकी भक्ति इष्टदेवता तथा गुरु के प्रति निरन्तर रहती है, भले ही उससे सभी देवता रुष्ट हो जायें, तथापि उसका हनन कोई नहीं कर सकता। हे भार्गव राम! तुम कृष्णभक्त तथा शंकर के शिष्य हो। तुम गुरुपत्नी अर्थात् मेरी स्तुति कर रहे हो, तुम्हारा वध कौन कर सकेगा?।।६१-६२।।

अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्ता वा निरङ्कुशाः॥६३॥
चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो।
तेषां तारागणा रुष्टाः किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः॥६४॥
यस्मै तुष्टः पालयति नरदेवो महान्सुखी।
तस्य किंवा करिष्यन्ति रुष्टा भृत्याश्च दुर्बलाः॥६५॥

विशेषतः कृष्णभक्त का कहीं भी अशुभ नहीं होता। जो अन्य देवता के उपासक हैं, वे कभी निरापद नहीं रह पाते। हे परशुराम! बलवान् चन्द्रमा जिस भाग्यवान् व्यक्ति पर प्रसन्न है, दुर्बल तारकगण उस पर भले ही रुष्ट हों, उसकी क्या हानि कर सकते हैं? यदि सभा स्थित राजा एक व्यक्ति के प्रति यदि सन्तुष्ट हो जाता है, तब उसके सामान्य दुर्बल राजसेवक उस व्यक्ति के विरुद्ध रुष्ट होकर भी उसकी क्या हानि कर सकते हैं?।।६३-६५।।

इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामाय चाऽऽशिषम्।
जगामान्तःपुरं तूर्णं हर्षशब्दो बभूव ह॥६६॥
स्तोत्रं वै कण्वशाखोक्तं पूजाकाले च यः पठेत्।
यात्राकाले तथा प्रातर्वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम्॥६७॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत्।
विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाऽप्नुयात्प्रजाः॥६८॥

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं नष्टवित्तो धनं लभेत्।
यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा॥६९॥
तस्मै तुष्टश्च वरदः स्तोत्रराजप्रसादतः। दस्युग्रस्तः [1]फणिग्रस्तः शत्रुगस्तो भयानकः॥७०॥
व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः। राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च वन्धने॥७१॥

देवी पार्वती ने यह कह कर भृगुनन्दन राम को आशीर्वाद दिया। वे अन्तःपुर में यह कह कर चली गयीं। इससे वहां उपस्थित लोग हर्षित होकर हर्षयुक्त शब्द करने लगे। यह कण्वशाखोक्त देवीस्तव का जो कोई पूजाकाल में, यात्राकाल में अथवा प्रातःकाल पाठ करता है, वह वांछित प्राप्त करता है, यह निश्चित है। पुत्रार्थी को पुत्र, कन्यार्थी को कन्या, विद्यार्थी को विद्या, प्रजार्थी को प्रजा, राज्यभ्रष्ट को राज्य, नष्ट धन वाले को धनलाभ होता है। जिस व्यक्ति पर राजा, गुरु, किंवा बान्धवगण रुष्ट रहते भी हैं, वे इस स्तोत्र पाठ के प्रभाव से वरप्रद तथा सन्तुष्ट हो जाते हैं। जब व्यक्ति दस्युग्रस्त, सर्पभयग्रस्त, भयानक शत्रुग्रस्त, व्याधिग्रस्त हो, तब इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से वह भय रहित हो जाता है। राजद्वार पर, श्मशान में, कारागृह में अथवा बन्धन के समय!॥६६-७१॥

जलराशौ निमग्नश्च मुक्तस्तत्स्मृतिमात्रतः। स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे॥७२॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम्। कृत्वा हविष्यं वर्षं च स्तोत्रराजं शृणोति या॥७३॥
भक्त्या दुर्गां च संपूज्य महावन्ध्या प्रसूयते।
लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्॥७४॥

जलराशि में डूबते समय इस स्तव के स्मरण मात्र से वह मुक्त हो जाता है। जब कभी स्वामी से, पुत्र से, मित्र से दारुण भेद हो जाय, उस स्थिति में भी इस स्तव के स्मरणमात्र से वांछित लाभ हो जाता है (विरोध मिट जाता है)। जो वर्ष पर्यन्त हविष्यान्न भोजी होकर यह स्तवराज सुनती है तथा भक्तिभाव से दुर्गा की पूजा करती है, वह महावन्ध्या भी पुत्रवती हो जायेगी। उसे ज्ञानी, दिव्य तथा चिरजीवी पुत्रलाभ होगा॥७२-७४॥

असौभाग्या च सौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत्।
नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः॥७५॥
स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम्।
कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या॥७६॥
घटे संपूज्य दुर्गां च सा पुत्रं लभते ध्रुवम्॥७७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामकृतदुर्गास्तोत्रं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

१. क. ग्रहग्र०।

भाग्यहीना को सौभाग्य की प्राप्ति हेतु इसे छः माह श्रवण करने से यह कामना पूर्ण होगी। काकवन्ध्या तथा मृतवत्सा नारी भी ९ माह तक इस स्तवराज का श्रवण करने से पुत्रलाभ करेंगी, यह ध्रुवनिश्चित जानें। जिसे बराबर कन्या ही उत्पन्न होती हों, जो पुत्रहीना हो, वह इस स्तोत्र को ५ माह पर्यन्त श्रवण करे। दुर्गा का घट में पूजन करे। उसे निश्चित पुत्रलाभ होगा।।७५-७७।।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त

❖❖❖

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम द्वारा तुलसी रहित गणेश पूजा करने पर तुलसी तथा परशुराम द्वारा एक-दूसरे को शाप देना

नारायण उवाच

स्तुत्वा तां परशुरामोऽसौ हर्षसंफुल्लमानसः।
स्तोत्रेण हरिणोक्तेन स तुष्टाव गणाधिपम्।।१।।
पूजां चकार भक्त्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि। धूपैर्दीपैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना।।२।।
संपूज्य भ्रातरं भक्त्त्या स रामः शङ्कराज्ञया। गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्तुमुद्यतः।।३।।

श्री नारायण ऋषि कहते हैं—परशुराम ने दुर्गा का स्तव करने के उपरान्त आनन्द से विह्वल होकर श्रीहरि द्वारा बताये स्तव से गणपति की स्तुति किया। उन्होंने नाना प्रकार के नैवेद्य, धूप-दीप, गन्ध द्वारा, तुलसी को छोड़ कर अन्य सभी पुष्पों से भक्ति के साथ गणेश पूजन किया। उन्होंने महादेव के आदेशानुरूप भक्तिभाव से भ्राता गणेश की पूजा किया और गुरुपत्नी तथा महादेव को प्रणाम करके जाने लगे।।१-३।।

नारद उवाच

पूजां भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा। नैवेदैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीं च विना कथम्।।४।।
तुलसीं सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा। कथं पूतां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः।।५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—जब परशुराम ने विविध नैवेद्य तथा पुष्पों द्वारा भगवान् गणेश की पूजा किया था, उस पूजा में उन्होंने तुलसी को वर्जित क्यों रखा? तुलसी तो सभी पुष्पों में मान्या-धन्या-मनोहरा हैं, तथापि इस सारभूता पवित्र तुलसी को गणपति ने पूजा में ग्रहण क्यों नहीं किया?।।४-५।।

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढं न मनोहरम्।।६।।

एकदा तुलसी देवी प्रोद्भिन्नवयौवना। तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम्। अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितं पीतवाससम्॥८॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। ध्यायन्तं कृष्णपादाब्जं जन्ममृत्युजरापहम्॥९॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्। सुरूपहार्यं निष्कामं सकामा तमुवाच ह॥१०॥

श्री नारायण ऋषि कहते हैं–हे नारद! ब्रह्मकल्प के अत्यन्त गोपनीय मनोहर वृत्तान्तमय पुरातन इतिहास को कहता हूं। श्रवण करो। एक बार नवयौवन सम्पन्ना नारायणपरायणा तुलसी ने अनेक तीर्थों में तपस्या हेतु भ्रमण करते-करते प्रसन्नानन यौवनयुक्त अति सुन्दर पवित्र पीत वस्त्रधारी गणेश को गंगातट पर देखा। उनका सर्वाङ्ग चन्दन लिप्त था। वे रत्नाभूषणों से भूषित थे। वे जन्म-मृत्यु-जरा का हरण करने वाले श्रीकृष्ण के चरणकमल के ध्यान में लीन थे। वे जितेन्द्रिय लोगों में श्रेष्ठ, योगीन्द्र लोगों के गुरुगण के भी गुरु, सुरूप एवं निष्काम गणेश को देख कर कहा–॥६-१०॥

तुलस्युवाच

अहो ध्यायसि किं देव शान्तरूप गजानन। कथं लम्बोदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव॥११॥
एकदन्तः कथं वक्त्रे वदामुत्र च कारणम्।
त्यज ध्यानं महाभाग सायंकाल उपस्थितः॥१२॥

देवी तुलसी कहती हैं–हे शान्तरूप गजानन! किन देवता का ध्यान कर रहे हो। तुम्हारा शरीर यह लम्बे उदर वाला तथा गजमुख कैसे हो गया? हे महाभाग! तुमको एक ही दांत क्यों है? यह सायंकाल का अवसर है, ध्यान त्यागो॥११-१२॥

इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः।
परं चेतसि दग्धा सा कामबाणैः सुदारुणैः॥१३॥

यह कह कर देवी तुलसी हंसने लगीं। वे बारम्बार ऊपर से हंस रही थीं, तथापि उनका चित्त दारुण कामबाण से दग्ध था॥१३॥

गणेशस्य प्रधानाङ्गे दत्त्वा किञ्चिज्जलं मुने।
जघान तर्जन्यग्रेण निष्पन्दं कृष्णमानसम्॥१४॥
बभूव ध्यानभग्नं च तस्य नारद चेतनम्।
दुःखं च ध्यानभेदेन तद्विच्छेदो हि शोकदः॥१५॥
ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा चापश्यत्कामिनीं पुरः।
नवयौवनसंपन्नां सस्मितां कामपीडिताम्॥१६॥
लम्बोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम्।
उवाच सस्मितः शान्तः शान्तां कामातुरां वशी॥१७॥

उस समय गणेश के प्रधान अंग पर (शिर पर) किंचित् जल छोड़ कर तुलसी ने उनको अपनी तर्जनी से तनिक ढकेला। उस समय गणपति निष्पन्द रूप से अपना मन कृष्ण में लगा कर स्थित थे। हे नारद! इस ढकेले जाने से उनका ध्यान भंग हो गया। इससे वे परम दुःखी हो गये, क्योंकि ऐसी स्थिति वाले लोगों को ध्यान भंग होना उनके लिये दुःखद होता है। अन्ततः ध्यान त्याग कर उन्होंने हरि का स्मरण किया तथा सामने खड़ी नारी की ओर देखा। वह नवयौवना मुस्कराती हुई कामपीड़िता लग रही थी। लम्बोदर ने उसको देख कर मुस्कराते हुए विनय पूर्वक शान्तभाव से उस तुलसी से कहा-।।१४-१७।।

गणेश्वर उवाच

का त्वं वत्से कस्य कन्या मातर्मां ब्रूहि किं शुभे।
पापदोऽशुभदः शश्वद्ध्यानभङ्गस्तपस्विनाम्।।१८।।
कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नं कृपानिधिः।
[1]तद्ध्यानभङ्गजाद्दोषान्नाशुभं स्यात्तु ते शुभे।।१९।।

गणेश्वर देव कहते हैं-हे पुत्री! तुम किसकी कन्या हो? हे शुभे! हे माता! यह कहो। तुमने क्यों मेरा ध्यान भंग किया? उसे कहो। क्योंकि तपस्वियों का ध्यान भंग करना पातक है, जो अशुभ फलप्रद होता है। हे शुभे! दयालु कृष्ण तुम्हारा विघ्न दूर करें। तुम्हारा कल्याण करें। मेरा ध्यान भंग करने का कोई अपराध तुमको न लगे!।।१८-१९।।

गणेशवचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा। सस्मितं सकटाक्षं च देवं मधुरया गिरा।।२०।।

गणपति का कथन सुन कर काम से आतुर तुलसी ने मुस्कान तथा कटाक्ष के साथ मधुर वाणी में गणेश से कहा-।।२०।।

तुलस्युवाच

घर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढा च तपस्विनी।
तपस्या मे स्वामिनोऽर्थे त्वं स्वामी भव मे प्रभो।।२१।।

तुलसी कहती हैं-हे प्रभो! मैं धर्मध्वज की कन्या यौवनावस्था में तपस्विनी होकर स्वामीलाभार्थ तप कर रही हूं। हे प्रभो! तुम मेरे पति हो जाओ।।२१।।

तुलसीवचनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन्। तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञीं मधुरया गिरा।।२२।।

तुलसी का वचन सुन कर गणपति ने भगवान् श्रीहरि का स्मरण किया। तदनन्तर उन महाज्ञानी गणेश ने मधुर वाणी से उस प्राज्ञी तुलसी से कहा-।।२२।।

गणेश उवाच

हे मातर्नास्ति मे वाञ्छा घोरे दारपरिग्रहे। दारग्रहो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन।।२३।।

१. क. भद्धयः।

हरिभक्तेर्व्यवायश्च तपस्यानाशकारकः। मोक्षद्वारकपाटश्च भवबन्धनपाशकः॥२४॥
गर्भवासकरः शश्वत्तत्त्वज्ञाननिकृन्तकः। संशयानां समारम्भो यस्त्याज्यो वृषलैरप॥२५॥

गणपति कहते हैं–हे माता! मुझे अत्यन्त घोर स्त्री ग्रहण की कोई आकांक्षा नहीं है। यह कार्य सुखदायक न होकर दुःखप्रद ही होता है। इससे हरिभक्ति में विघ्न होता है। यह कार्य तपस्या नाशक है। यह मोक्ष भवन में जाने से रोकने वाला कपाट है। यह भवबन्धन का पाश रूप है। यह गर्भवास कारक तथा शाश्वत तत्वज्ञान का उच्छेदक भी है। इसी से संशयों का आरम्भ होता है। इसे तो शूद्र लोग तक त्यागें।।२३-२५।।

गहोऽहङ्करणाना च सर्वमायाकरण्डकम्। साहसानां समूहश्च दोषाणां च विशेषतः॥२६॥
निवर्तस्व महाभागे पश्यान्यं कामुकं पतिम्।
कामुकेनैव कामुक्याः सङ्गमो गुणवान्भवेत्॥२७॥

यह अहंकार का गृह रूप है। सभी प्रकार की माया की पिटारी, दुःसाहस का समूह तथा विशेषतया दोषों का ढेर है। हे महाभागे! तुम मुझे क्षमा करो तथा अन्य कामुक पति का अन्वेषण करो। कामुकी नारी का कामुक पुरुष से संबंध गुणमय होता है।।२६-२७।।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा कोपात्सा तं शशाप ह।
दारास्ते भविताऽसाध्वी गणेश्वर न संशयः॥२८॥
इत्याकर्ण्य सुरश्रेष्ठस्तां शशाप शिवात्मजः।
देवि त्वमसुरग्रस्ता भविष्यसि न संशयः॥२९॥
तत्पश्चान्महतां शापाद्वृक्षस्त्वं भवितेति च। महातपस्वीत्युक्त्वा तां विरराम च नारद॥३०॥

यह सुन कर तुलसी ने गणेश को शाप दिया–"हे गणपति! तुम व्यभिचारिणी पत्नी प्राप्त करोगे। यह निःसंशय है।" तब शिवनन्दन गणपति ने भी तुलसी को शाप दिया–"हे देवी! तुम निःसंशय असुरग्रस्ता रहोगी।" तदनन्तर महत् जनों के शाप से तुम वृक्ष होगी।" हे नारद! महातपस्वी गणेश यह कह कर मौन हो गये।।२८-३०।।

शापं श्रुत्वा तु तुलसी सा रुरोद पुनः पुनः। तुष्टाव च सुरश्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम्॥३१॥

हे मुनि! यह शाप सुन कर तुलसी बारम्बार रुदन करने लगी। उसने देवप्रवर गणपति की स्तुति किया। तब गणेश प्रसन्न होकर तुलसी से कहने लगे–३१।।

गणेश्वर उवाच

पुष्पाणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे। कलांशेन महाभागे स्वयं नारायणप्रिया॥३२॥
प्रिया त्वं सर्वदेवानां श्रीकृष्णस्य विशेषतः।
पूता विमुक्तिदा नृणां मया भोग्या न नित्यशः॥३३॥

गणपति कहते हैं–हे मनोरमे! तुम पुष्पों का सारभाग हो जाओगी। हे महाभागा तुलसी! तुम अपने कलांश से नारायण की प्रिया हो जाओगी। तुम सभी देवगण की तथा विशेषतया कृष्ण-प्रिया हो जाओ। तुम पवित्र तथा मनुष्यों को मुक्तिप्रदा होगी, तथापि मैं गणेश तुम्हारा उपभोग नहीं करूंगा।।३२-३३।।

इत्युक्त्वा तां सुरश्रेष्ठो जगाम तपसे पुनः। हरेराराधनव्यग्रो बदरीसंनिधिं ययौ।।३४।।
जगाम तुलसीदेवी हृदयेन विदूयता। निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम्।।३५।।
पश्चान्मुनीन्द्रशापेन गणेशस्य च नारद।
सा प्रिया शङ्खचूडस्य बभूव सुचिरं मुने।।३६।।
ततः शङ्करशूलेन स ममारासुरेश्वरः। सा कलांशेन वृक्षत्वं ययौ नारायणप्रिया।।३७।।

यह कह कर सुरश्रेष्ठ गणेश पुनः तप करने लगे। वे सतत् हरि की आराधना हेतु व्यग्र रहने के कारण बदरिकाश्रम गये। उधर हृदय में दुःख करती तुलसी ने पुष्कर तीर्थ जाकर वहां निराहार रहते १ लाख वर्ष तक तप किया। हे नारद! तदनन्तर वह गणेश के शाप से दीर्घकाल तक असुर शंखचूड़ की पत्नी होकर स्थित थी। उस असुरेश्वर का वध शंकर ने अपने त्रिशूल से किया। तुलसी धरती पर अपने कलांश से वृक्ष बन कर नारायण को प्रिय हो गई।।३४-३७।।

कथितश्चेतिहासस्ते श्रुतो धर्ममुखात्पुरा। मोक्षप्रदश्च सारश्च पुराणेन प्रकीर्तितः।।३८।।
ततः परशुरामोऽसौ जगाम तपसे वनम्। प्रणम्य शङ्करं दुर्गां संपूज्य च गणेश्वरम्।।३९।।
पूजितो वन्दितः सर्वैः सुरेन्द्रमुनिपुङ्गवैः। पार्वतीशिवसांनिध्ये सुखं तस्थौ गणेश्वरः।।४०।।
इदं गणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः।
स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम्।।४१।।

पूर्वकाल में मैंने यह इतिहास धर्मदेव से सुना था। वही तुमसे कह दिया। यह श्रेष्ठ मोक्षप्रद इतिहास अन्य पुराणों में भी कहा गया है। तदनन्तर महाभाग्यवान् भार्गव राम ने शिव-पार्वती को प्रणाम करके गणपति की पूजा किया तथा तप करने वन में चले गये। गणपति भी देवताओं तथा मुनियों से पूजित एवं वन्दित होकर शिव-पार्वती के पास रहने लगे। हे मुनिवर! जो मनुष्य एकाग्र होकर इस गणेशखण्ड का श्रवण करेगा, वह निश्चय ही राजसूय यज्ञफल लाभ करेगा।।३८-४१।।

अपुत्रो लभते पुत्रं श्रीगणेशप्रसादतः। धीरं वीरं च धनिनं गुणिनं चिरजीविनम्।।४२।।
यशस्विनं पुत्रिणं च विद्वांसं सुकवीश्वरम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरं दातारं सर्वसंपदाम्।।४३।।
सुशीलं[1] च सदाचारं प्रशंस्यं वैष्णवं लभेत्।
अहिंसकं दयालुं च तत्त्वज्ञानविशारदम्।।४४।।

१. क. सुपवित्रं स०।

इससे श्रीगणेश की कृपा से अपुत्र को पुत्रलाभ होगा जो धीर-वीर-धनी-गुणी-दीर्घजीवी होगा। इसके पाठ से वह यशस्वी, पुत्रवान्, विद्वान्, सुकवि, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, सर्वसम्पत्तिप्रदाता, सुशील, सदाचारी, प्रशंसनीय, वैष्णव, अहिंसक, दयालु तथा तत्वज्ञ होगा।।४२-४४।।

भक्त्या गणेशं संपूज्य वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। श्रुत्वा गणपतेः खण्डं महावन्ध्या प्रसूयते।।४५।।

मृतवत्सा काकवन्ध्या ब्रह्मन्पुत्रं लभेद्ध्रुवम्।
अदूष्यदूषणपरा शुद्धा चैव लभेत्सुतम्।।४६।।

भक्तिभाव से वस्त्र, अलंकार, चन्दनादि से गणपति पूजन करके गणपति खण्ड के श्रवण से महावन्ध्या तक पुत्रवती हो जाती है। मृतवत्सा, काकवन्ध्या भी पुत्रलाभ करती हैं। यह ध्रुव निश्चित है। हे ब्रह्मन्! जो स्त्री निरपराध पर दूषण (दोष) लगाती है, वह इसके श्रवण द्वारा शुद्ध होकर पुत्रवती होती है।।४५-४६।।

सपूर्णं ब्रह्मवैवर्तं श्रुत्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वेदं खण्डमुत्तमम्।।४७।।

वाञ्छां कृत्वा तु मनसि शृणोति परमास्थितः। तस्मै ददाति सर्वेष्टं शूरश्रेष्ठो गणेश्वरः।।४८।।

श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय यत्नतः।
स्वर्णयज्ञोपवीतं च श्वेतच्छत्रं च माल्यकम्।।४९।।
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकान्।
परिपक्वफलान्येव देशकालोद्भवानि च।।५०।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारदनारायणसंवादे परशुरामागमनैतत्खण्ड-श्रवणफलवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

।।समाप्तमिदं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणस्य तृतीयं महागणपतिखण्डम् ।।

सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्त्त पुराण श्रवण का जो फल है, वह मात्र इस उत्तम गणेशखण्ड के श्रवण से ही प्राप्त होगा। जो कामना को मन में रख कर अत्यन्त श्रद्धा विश्वास के साथ इस खण्ड का श्रवण करेगा, उसे शूरप्रवर गणपति समस्त कामना फल प्रदान करते हैं। व्यक्ति गणेश खण्ड का श्रवण करके विघ्ननाशार्थ स्वर्ण का यज्ञोपवीत, श्वेतच्छत्र, माला-पाठवाचक को प्रदान करे। बड़ा, तिल का लड्डू, पके फल जो देशकाल जनित हो, गणेश को प्रदान करें।।४७-५०।।

।।षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

।।गणेश खण्ड समाप्त।।

शिवपुराण

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

(श्री नाथ खण्डेलवाल)

वायवीय संहिता के मतानुसार शिवपुराण द्वादश संहितात्मक है परन्तु सम्प्रति देवनागरी में अब तक उपलब्ध यह पुराण मात्र सात संहिता युक्त है। प्रस्तुत संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें **ज्ञानसंहिता, सनत्कुमार संहिता** तथा **धर्मसंहिता** भी अंकित है जो किसी देवनागरी लिपि के संस्करण में नहीं है। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण दस संहिता युक्त है । ज्ञान संहिता तथा सनत्कुमार संहिता भी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ एसियाटिक सोसाईटी बंगाल में संग्रहीत है। इनका उल्लेख म. म. हरप्रसाद शास्त्री ने भी किया है। अतः इनकी प्रामाणिकता निर्विवाद है। इन दोनों संहिताओं की गंगाधर कृत टीका की पाण्डुलिपि भी वहाँ संरक्षित है। तीसरी संहिता धर्मसंहिता का उल्लेख वायवीय संहिता (शिवपुराण) में आता है। अतः इन तीनों संहिता की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। अनेक परिश्रम से प्राप्त इन तीन विशाल संहिताओं के समावेश के कारण यह संस्करण अभूतपूर्व तथा अत्यन्त उपयोगी है। पुराण रचना काल के पश्चात् पाणिनीय व्याकरण का लेखन हुआ था। अतः व्याकरण लेखन के पूर्व लिखी गई पुराणों में भले ही व्याकरण जनित विसंगति मिले तथापि इससे उनका महत्व यथावत् ही बना रहेगा। शिवपुराण का यह दस संहिताओं वाला संस्करण इसी कारण अभूतपूर्व अलौकिक संस्करण कहा जा सकता है।

₹ 5900.00 (5 Volumes Set)

ISBN : 978-81-218-0408-0 (Vol. I)

₹ [redacted].00